भूमिका ।

सम्प्रति यत्र तत्र भाषाप्रचारोऽधिकतरोऽस्तीति कस्य न विदितम्—अतः पण्डितवरैर्बहवो ग्रन्था भाषायामुक्ताः परन्तु तेषां ये कर्तारो विज्ञास्ते भाषाभिज्ञास्तत्संस्थाचतुराश्च न भवंति ये च भाषाभिज्ञास्ते विज्ञा न भवंति द्वयं चैकत्रासम्भवीति निश्चितम्, यद्यपि तेषां भाषानभिज्ञत्वं तत्पाण्डित्यमच्छिन्तुं न क्षमते, यतस्ते तुच्छा इति तान्नाद्रियन्ते तथापि भाषाप्रियैन ततोर्थः सम्यगवबुध्यते, तेष्वहमपि जंगन्मत्या पंचदशवर्षेभ्यः पूर्वं तादृश एवासम्, किंतु भारतबन्धुयन्त्राधिपभाषासंस्थानप्रवरवकीलहाईकोर्टेष्वुपाधिधारिणा बाबूपाद्धतोतारामवर्मणाऽलीगढस्थेन निजयन्त्रकार्यकुल्मैनेजरेतिपदव्यां भाषासंवर्द्धिनीसभोपसंपादकपदव्यां च विद्वत्स्वीकारानर्हायामप्याहृत्य किञ्चित्कालं नियतः, तत्सङ्गमहिम्ना मे शास्त्रीयबुद्धिकौशल्यं भाषायामपि प्रसृतम्, भाषासंवर्द्धिनीसभोपसंपादकेन च मया तत्रागतग्रंथावलोकन शोधने केषांचित्समालोचनं च यथामत्यकारि । क्वचित्क्वचित् निर्माणकर्त्राज्ञया न्यूनाधिकभावोपि कृतः, परन्तु पूर्वोक्तद्वयस्यासंभव एव तत्रतत्र दृढः, यद्यप्यनेन भाषारचनाश्रमेण सततं शास्त्रविरोधिना तुच्छमपि पाण्डित्यं तुच्छतरमभूत्, तथापि बुद्धिप्रसरस्यानिवार्यत्वेनेदानीं ततो लेखनी न विरमति, यतोऽनभिज्ञेऽपि मयि क्षेमराजादिश्रेष्ठिबुद्धौ भाषाभिज्ञोयमिति बुद्धिः, अतस्तदीरणतोपि मया बहवो ग्रन्थाः संशोधिता निर्मिताश्च सन्तीति जगद्विदितम्. तत्प्रेरणवशान्निर्मितेयं मिताक्षराप्रकाशाऽपरनामदीपिकापि याज्ञवल्क्यविज्ञानेश्वरान्तःकरणनिविष्टपदार्थानां सर्वसाधारणावगमसमवेतत्वं नूनं धोतयन्ती विद्भिः स्वीयबुद्ध्यांगीकरणीयेति भृशमभ्यर्थयते.

विद्वदनुचरो मिहिरचंद्रः ।

निवेदनम् ।

विज्ञान्प्रेणम्य रचिताञ्जलिरानतोहं
शश्वद्विधाय विन ं विनिवेदनं मे ॥
स्वीकर्तुमर्हथ निजोति विचार्य विज्ञा
दूष्यं भवेन्निजमतौ सुविचारणा चेत् ॥ १ ॥
भाषातत्त्वविदो भवंति बहुशः पृथ्वीतले संप्रति
तेषामेव कृते कृता बुधवरैर्मत्साहसं क्षम्यताम् ॥
या स्यादत्र पदे कचिःस्खलतिका सह्या कृपाशालिभि
र्ये केचित्सहसा लिखन्ति मतितो मुह्यंति ते संशयम् ॥ २ ॥
श्रीमद्गौतमवंशभूर्हरिसहायेति प्रसिद्धो द्विज
स्तत्सूनुर्द्वयरामरक्षकभुवा श्रीक्षेमराजेरणात् ॥
स्वीकार्यां मिहिरादिचन्द्रविदुषा भाषारसप्रीतये
चक्रे योगिवसोदितोज्ज्वलकरी सद्भिर्बुधैर्दीपिका ॥ ३ ॥

विद्वदनुचरो मिहिरचंद्रशर्मा.

॥ श्रीः ॥

अथ याज्ञवल्क्यमिताक्षराप्रकाशस्थविषयानुक्रमणिका ।

इति ऋणादानप्रकरण ॥ ३ ॥

*

इति दायविभागप्रकरण ॥ ८ ॥

अथ सीमाविवादप्रकरण ॥ ९ ॥

इति सीमाविवाद प्रकरण ॥ ९ ॥

अथ स्वामिपालविवाद प्रकरण ॥१०॥

इति दण्डपारुष्यप्रकरण ॥ १९ ॥

अथ साहसप्रकरण ॥ २० ॥

इति साहसप्रकरण ॥ २० ॥

अथ विक्रीयासंप्रदानप्रकरण ॥ २१ ॥

अथ प्रायश्चित्ताध्याय ॥३॥

अथ आशौच प्रकरण ॥१॥

इति आशौच प्रकरण ॥ १ ॥

इति प्रायश्चित्त प्रकरण ॥ ६ ॥

॥ इति मिताक्षराप्रकाशसहितयाज्ञवल्क्यस्मृतिविषयानुक्रमणिका ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

मिताक्षराप्रकाशटीकासमेता ।
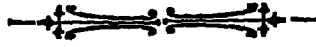
उपोद्घातप्रकरणम् १.

श्रीगणेशाय नमः । श्रीसरस्वत्यै नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीमद्ग्रंथकृद्भ्यो नमः । धर्माधर्मौ तद्विपाकास्त्रयोऽविक्लेशाः पंचप्राणिनामायतंते । यस्मिन्नेतैर्नो परामृष्ट ईशो यस्तं वंदे विष्णुमोंकारवाच्यम् ॥ १ ॥

धर्म और अधर्म और धर्म अधर्मके तीनों विपाक (फल) ये पांच क्लेश सब प्राणियोंको होते हैं और जो परमेश्वर इन पांचोंके सवधसे रहित है और जो ओंकारका वाच्य (अर्थ) है उस व्यापक परमेश्वरको मैं (विज्ञानेश्वर) नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

[1]याज्ञवल्क्यमुनिभाषितं मुहुर्विश्वरूपाविकटोक्तिविस्तृतम् । धर्मशास्त्रमृजुभिर्मिताक्षरैर्बालबुद्धिविधये विविच्यते ॥ २ ॥

जो धर्मशास्त्र याज्ञवल्क्य मुनिने कहा है । और विश्वरूपने अपनी विकट (कठिन) उक्तियोंसे जिसका विस्तार कियाहै उस धर्मशास्त्रकी कोमल और प्रमित अक्षरोंसे बालकोंके बोधार्थ विवेचना (प्रकट रीतिसे वर्णन) करताहूं ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्यशिष्यः कश्चित्प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्यप्रणीतं धर्मशास्त्रं संक्षिप्य कथयामास । यथा मनुनोक्तं भृगुः । तस्य चायमाद्यश्लोकः ॥

याज्ञवल्क्यके रचेहुए उस धर्मशास्त्रको जिसमें प्रश्न और उत्तररूपसे धर्मोंका वर्णन था किसी याज्ञवल्क्यके शिष्यने संक्षेपरीतिसे उस प्रकार कहा जैसे मनुके कहे धर्मशास्त्रको भृगुजीने । उस याज्ञवल्क्यस्मृतिका प्रथम श्लोक यह है कि–

योगीश्वरं याज्ञवल्क्यं संपूज्य मुनयोऽब्रुवन् । वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानशेषतः ॥ २ ॥

पद–योगीश्वरम् २ याज्ञवल्क्यम् २ संपूज्यऽ– मुनयः १ अब्रुवन् क्रि०–वर्णाश्रमेतराणाम् ६ नः ४ ब्रूहि क्रि०–धर्मान् २ अशेषतःऽ– ॥

योजना–मुनयः योगीश्वर याज्ञवल्क्यं संपूज्य वर्णाश्रमेतराणाम् अशेषतः धर्मान् नः (अस्मभ्यम्) ब्रूहि इति अब्रुवन् ॥

तात्पर्यार्थ–सनकादि योगिजनोंमें श्रेष्ठ उस याज्ञवल्क्यका भली प्रकार पूजन अर्थात् मनसे स्मरण, वाणीसे स्तुति, कायासे नमन करके, सुने हुए पदार्थका धारण करनेमें योग्य, साम

---

[1] प्रकृति (वर्णन करने योग्य) की सिद्धिके लिये चिंता होय उसे उपोद्घात कहते हैं ।

अब आदि मुनि याज्ञवल्क्यमुनिको यह बोले कि, संपूर्ण धर्मोंको हमारे प्रति इस प्रकार कहो कि, जो ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रम और इतर अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज और मूर्द्धावसिक्त आदि हैं उनके सम्पूर्ण धर्मोंका हमको ज्ञान होजाय, नीच-वर्णकी विवाहित कन्यामें ऊंचे वर्णके पुरुषसे जो सतान होय वह अनुलोमज और ऊंचे वर्णकी विवाहिता कन्यामें नीच वर्णके पुरुषसे जो संतान होय वह प्रतिलोमज कहाते हैं, इस श्लोकमें धर्म शब्दसे यह छः प्रकारका स्मार्त-धर्म ग्रहण किया है कि-वर्णधर्म १, आश्रम-धर्म २, वर्णाश्रमधर्म ३, गुणधर्म ४, निमित्त-धर्म ५, साधारणधर्म ६, इनमें वर्णका धर्म यह है कि-ब्राह्मण मदिराको वर्जिदे, आश्रमका धर्म यह है कि-ब्रह्मचारी अग्निके अर्थ ईंधन लावे और भिक्षाटन करे, वर्णाश्रम धर्म यह है कि-ब्राह्मणवर्णका ब्रह्मचारी, पलाश (ढाक) के दण्डको ग्रहण करे, गुणधर्म यह है कि-जिस राजामें शास्त्रोक्तरीतिसे अभिषेक आदि गुण हों वही प्रजाका पालन करे, निमित्तधर्म यह है कि शास्त्रोक्तके न करने और शास्त्रमें निषिद्धके करनेपर धर्मशास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करना, साधारण धर्म यह है कि-किसी प्राणीकी हिंसा न करनी क्योंकि इस श्रुतिके[1] अनुसार किसी भूतकी हिंसा न करना चांडाल पर्यंतका साधारण धर्म है, यद्यपि सब शास्त्रोंके पढनेमें विषय, संबंध, प्रयोजन, अधिकारी ये चार अनुबध होते हैं तथापि उनके यहां वर्णन करनेका इस लिये अत्यन्त उपयोग नहीं है कि, इस वचनके[2] अनुसार आचार्य्य (यज्ञोपवीत देनेवाला) अपने ब्रह्मचारीको वेदोक्त शौच और आचरणकी शिक्षा दे तो धर्मशास्त्रका पढना आचार्यको करनेके अनन्तर आवश्यक है, उस धर्मशास्त्रके पढने और आचरणमें यह क्रम है कि, यज्ञोपवीतसे पहिले आचरण, बोलना, भोजन ये अपनी इच्छाके अनुसार होते हैं अर्थात् इनके अन्यथा करनेमें कोई प्रायश्चित्त नहीं और यज्ञोपवीतके अनतर और वेदपठनके प्रारंभसे पूर्व धर्मशास्त्रको पढे फिर धर्मशास्त्रमें कहे हुए यम-नियमोंमें तत्पर ब्रह्मचारी वेदोंको पढे फिर वेदके जाननेकी इच्छा करे फिर वेदोक्त शुद्धि और आचरणको करे। यद्यपि इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारोंका वर्णन है तथापि इन चारोंमें धर्म ही प्रधान है। इस लिये इस श्लोकमें धर्मकाही ग्रहण किया और धर्मकी प्रधानता इस लिये है कि, अर्थ, काम, मोक्ष इन तीनोंका कारण धर्मही है, कदाचित् कोई शका करै कि, अर्थका कारण धर्म है और धर्मका कारण अर्थ इसमें कोई विशेषता नही, सो ठीक नहीं, क्योंकि धनके विनाभी जप, तप, तीर्थयात्रा आदिसे धर्मकी उत्पत्ति होसकती है और धर्मके विना धनका और काम, मोक्षका लेशभी नहीं होसकता ॥

भावार्थ-सनकादिक मुनियोंमें उत्तम याज्ञवल्क्य ऋषिका भले प्रकार पूजन करके संपूर्ण मुनि यह बोले कि, हे मुने! वर्ण, आश्रम, अनुलोम और प्रतिलोमसे उत्पन्न हुई जातियोंके संपूर्ण धर्मोंको हमारे प्रति वर्णन करो ॥ १ ॥

मिथिलास्थः स योगीन्द्रः क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीन्मुनीन्। यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत ॥ २ ॥

पद-मिथिलास्थः १ सः १ योगीन्द्रः १ क्षणम् २ ध्यात्वाऽ-अब्रवीत् क्रि०-मुनीन् २ यस्मिन् ७ देशे ७ मृगः १ कृष्णः १ तस्मिन् ७ धर्मान् २ निबोधत क्रि०- ॥

१ न हिंस्यात्सर्वभूतानि । २ श्रुत्युक्तशौचाचारांश्च शिक्षयेत् ।

योजना—सः मिथिलास्थः योगीन्द्रः क्षण ध्यात्वा यस्मिन् देशे कृष्णः मृगः तस्मिन् धर्मान् निबोधत इति मुनीन् अब्रवीत् ॥

तात्पर्यार्थ—पूर्वोक्त प्रकारसे पूँछा है जिसको ऐसी मिथिला नाम नगरीमें स्थित वह याज्ञवल्क्य योगीश्वर क्षणभर ध्यान करके अर्थात् कुछ कालतक इस लिये अपने मनका समाधान करके कि, सुननेके अधिकारी ये मुनि नम्र होकर पूँछते हैं इस लिये इनके प्रति धर्मका वर्णन करना युक्त है। यह बोले कि, भो मुनीश्वरो! जिस देशमें काला मृग होय उस देशके धर्मोंको तुम सुनो अर्थात् जिस देशमें कृष्णसार मृग यथेच्छ विचरता होय उसी देशमें वे धर्म करने योग्य हैं और अन्य देशमें नहीं जिन धर्मोंका वर्णन मैं आपके सम्मुख करूँगा इस वचनसे आचार्य ब्रह्मचारीको धर्मशास्त्र पढावे कि शौच, आचरणोंकी शिक्षा आचार्य दे, शौच और आचरणोंका ज्ञान धर्मशास्त्रके विना नहीं होसकता ॥

भावार्थ—मिथिला नगरीमें टिके हुए और योगिजनोंके स्वामी वे याज्ञवल्क्य मुनि क्षणभर ध्यान करके मुनियोंको यह बोले कि, जिस देशमें काला मृग यथेच्छ विचरता होय उस देशके धर्मोंको तुम सुनो ॥ २ ॥

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ ३ ॥

पद—पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः १ वेदाः १ स्थानानि १ विद्यानाम् ६ धर्मस्य ६ चऽ- चतुर्दश १ ॥

योजना—पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः वेदाः एते चतुर्दश विद्यानां च पुनः धर्मस्य स्थानानि भवंति ॥

तात्पर्यार्थ—यद्यपि आचार्य ब्रह्मचारीको धर्मशास्त्र पढावे यह विधि हो परंतु शिष्य धर्मशास्त्रको पढे इसमें क्या कारण है? इस शंकाके दूर करनेके लिये यह तीसरा श्लोक है। ब्राह्म आदि १८ पुराण तर्कविद्यारूप न्याय-मीमांसा अर्थात् वेदवाक्यका विचार धर्मशास्त्र (मनुस्मृति आदि) वेदके छओं अग अर्थात् शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्त ४ ज्योतिष ५ छंद ६ इन दशोंसमेत चारों वेद ये चौदह विद्या अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्षके हेतुरूप ज्ञानोंके और धर्मके स्थान (कारण) हैं अर्थात् विद्या और धर्मका ज्ञान इन चौदहसे ही होताहै और ये सब तीनों द्विजातियोंके पढने योग्य हैं इनके अंतर्भूत (बीचमें) होनेसे धर्मशास्त्र भी पढने योग्य है और इन सबको ब्राह्मण विद्याप्राप्ति और धर्म करनेके लिये पढें, क्षत्रिय और वैश्य धर्म करनेके लिये पढें, क्योंकि शख ऋषिने विद्यास्थानोंके प्रारंभके समयमें इस वचनसे यह कहा है कि, इन विद्याके स्थानोंका ब्राह्मण अधिकारी है और वही अन्यवर्णोंके वर्तावको धर्मशास्त्रके अनुसार दिखावे अर्थात् इतर वर्णोंको धर्मोंका उपदेश करे और मनुने भी इस वचनसे धर्मशास्त्रके पढने और वर्णन करनेमें ब्राह्मणकोही अधिकार कहाहै कि, गर्भाधानसे लेकर श्मशानपर्यंत जिसके संपूर्ण विधिविधान वेदोक्त मंत्रोंसे कहे होय उसी द्विजातिका इस धर्मशास्त्रमें अधिकार है अन्य किसी वर्णका नहीं

१ शौचाचारांश्च शिक्षयेत्।

१ निषेकादिश्मशानांतो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥ विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः। शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित् ॥।

विद्वान् ब्राह्मणही इस धर्मशास्त्रको वडे यत्नसे पढै और अपने शिष्योंको भले प्रकार उपदेश करै (पढावै), और कोई वर्ण उपदेश न करै । इससे शिष्यको धर्मशास्त्रका पढना आवश्यक है ॥

भावार्थ-ये चौदह, विद्या (ज्ञान) और धर्मके स्थान हैं, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और शिक्षा आदि वेदके छः अंग और चारों वेद ॥ ३ ॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंगिराः। यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ४ ॥

पद-मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनः १ अंगिराः १ यमापस्तवसंवर्ताः १ कात्यायनबृहस्पती १ ॥

पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः ५

पद-पराशरव्यासशखलिखिताः १ दक्षगौतमौ १ शातातपः १ वसिष्ठः चऽ-धर्मशास्त्रप्रयोजकाः संति ॥

योजना-एते मन्वादयः विंशतिः धर्मशास्त्रप्रयोजकाः संति ॥

तात्पर्यार्थ-यह वात रही कि, शिष्यको धर्मशास्त्र पढना फिरभी यह कैसे आया कि, याज्ञवल्क्यका रचा यह शास्त्रभी पढना इस शंकाकी निवृत्तिके लिये इन दो २ श्लोकोंसे धर्मशास्त्रके रचनेवालोंको कहते हैं कि-मनु, आत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशनाः, अंगिराः, यम, आपस्तब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वसिष्ठ ये २० बीस ऋषि धर्मशास्त्रके प्रयोजक (रचनेवाले) हैं। इससे याज्ञवल्क्यका रचाहुआ यह धर्मशास्त्रभी शिष्यको पढना चाहिये । यहभी इन श्लोकोंमें परिसंख्या (गिनती) नहीं है कि, इतनेही धर्मशास्त्रके वनानेवाले हैं इतर नहीं किंतु प्रदर्शन (दिखाना) के लिये है इससे वौधायन आदिके रचेकोभी धर्मशास्त्र माननेमें कोई विरोध नहीं है यद्यपि इन सपूर्ण ऋषियोंके रचे हुए ग्रंथोंकी प्रमाणता है तथापि जिन २ स्मृतियोंमें साकांक्षता है अर्थात् कोई धर्म वर्णन न कियाहो अथवा सूक्ष्म कियाहो उसको दूसरी स्मृतिसे पूर्ण करना और जहां दो स्मृतियोंका परस्पर विरोध हो वहां विकल्प समझना अर्थात् दोनों ऋषियोंका कथन प्रामाणिक मानना चाहै जिसके कथनको मानै यह करनेवालेकी इच्छा है दूसरेके कथनके न माननेमें दोष नहीं है ॥

भावार्थ-ये वीस ऋषि धर्मशास्त्रके रचनेवाले हैं कि, मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशनाः, अंगिराः, यम, आपस्तंव, सवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ ॥

देशे काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् । पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥ ६ ॥

पद-देशे ७ काले ७ उपायेन ३ द्रव्यम् १ श्रद्धासमन्वितम् १ पात्रे ७ प्रदीयते क्रि०-यत्१ तत् १ सकलम् १ धर्मलक्षणम् १ ॥

योजना-यद्द्रव्य देशे काले उपायेन श्रद्धासमन्वितं पात्रे प्रदीयते तत् सकलं धर्मलक्षणं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त देश (जिसमें कालामृग स्वच्छंद विचरे), में, सक्रांति आदि कालमें उपाय (शास्त्रोक्त दानकी विधिके समूह) से, जो प्रतिग्रह आदिसे मिलाहुआ गौ आदि द्रव्य श्रद्धा (आस्तिक्यबुद्धि) से उस सुपात्रको

भली प्रकार दियाजाय जिसका लक्षण इस वचनसे आगे दानप्रकरणमें कहेंगे कि, केवल विद्या और तपसे पात्र नहीं होता किंतु जिसमें विद्या और तप दोनों हों वही पात्र कहा है और वह इस प्रकार दिया जाय कि, फिर लौटे नहीं और उसमें दूसरेके स्वत्वकी उत्पत्ति होजाय ऐसे त्यागको धर्मका उत्पादक (पैदा करनेवाला) कहतेहैं कुछ इतनाही धर्मका लक्षण नहीं किंतु सकल अर्थात् इसकी जो और कला (भाग) शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार याग और होमादि हैं उन सहित दानको धर्मका कारक कहतेहैं। इससे धर्मके कारक ये चार हैं कि, जाति, गुण, द्रव्य, क्रियाभाव, अर्थ (धन) ये संपूर्ण अथवा पृथक् २ शास्त्रोक्तके अनुसार धर्मके हेतु जानने और श्रद्धाका होना सबमें आवश्यक है इस श्लोकसे धर्मके कारक हेतुओंका वर्णन किया।

भावार्थ–जो द्रव्य उत्तमदेश और श्रेष्ठकालमें शास्त्रोक्तरीति और श्रद्धासे पात्रको भली प्रकार दिया जाय वह सपूर्ण धर्मका लक्षण होता है ॥ ६ ॥

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ ७ ॥

पद–श्रुतिः १ स्मृतिः १ सदाचारः १ स्वस्य ६ चऽ– प्रियम् १ आत्मनः ६ सम्यक्-सकल्पजः १ कामः १ धर्ममूलम् १ इदम् १ स्मृतम् ॥ १ ॥

योजना–श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः च पुनः स्वस्य आत्मनः प्रियं सम्यक् संकल्पजः कामः इद (सर्वं) मुनिभिः धर्ममूलम् स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ–अब धर्मके ज्ञापक (जतानेवाले) हेतुओंको कहते हैं श्रुति (वेद) स्मृति (धर्मशास्त्र) क्योंकि इस मनुके वचनानुसार श्रुतिको वेद स्मृतिको धर्मशास्त्र कहतेहैं सदाचार (शिष्टोंका आचरण) अर्थात् जिनको कर्मके फलकी प्राप्तिमें संदेह न होय उन शिष्टोंका कर्त्तव्य और जो अपनेको अच्छा प्रतीत होय वह। इसमें यह शंका नहीं करनी कि, किसीको मदिरापान आदि अनिष्टकर्म प्रिय होय तो वहभी धर्मका मूल क्यों न होय, क्योंकि अपनेको प्रिय वही कर्म धर्मका ज्ञापक होताहै जिसको शास्त्रमें विकल्प (दो प्रकार) से कहा होय. जैसे कि इस वचनसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे वा जन्मसे आठवें वर्षमें करै, इन दोनोंमें करनेवालेकी इच्छाही नियामक है चाहै गर्भसे आठवें वा जन्मसे आठवें वर्षमें और अच्छे संकल्पसे पैदाहुआ शास्त्रके अनुकूल काम जैसे कि, कोई यह प्रण करले कि, मैं भोजनके विना जलपान न करूंगा अर्थात् भोजन समयमेंही जल पीऊँगा ये सब (पांचों) धर्मके मूल (प्रमाण) ऋषियोंने कहे हैं। जहां कहीं इनका परस्पर विरोध प्रतीत होय वहां पहिला २ क्रमसे बलवान् समझना ॥

भावार्थ–वेद, धर्मशास्त्र, शिष्टोंका आचरण अपने आत्माको प्रिय, अच्छे, सकल्पसे पैदा हुई कामना ये सब धर्ममें प्रमाण ऋषियोंने कहे हैं ॥ ७ ॥

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम्। अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥

पद–इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ६ अयम् १ तुऽ–परमः १ धर्मः १ यत् १ योगेन ३ आत्मदर्शनम् १ ॥

१ न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता। यत्र वृत्तामिमे चोभे तद्धि पात्र प्रकीर्तितम् ॥।

१ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
२ गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्।

योजना-इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणां परमः धर्मः अयम् (अस्ति) यत् योगेन आत्मदर्शनम् (आत्मज्ञानम्) भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब पूर्वोक्त देश आदि कारक हेतुओंका अपवाद कहतेहैं कि इज्या (यज्ञ करना) आचार, दम (इंद्रियोंका दमन), अहिंसा, दान, स्वाध्याय (वेदपाठ) इन कर्मोंका यही परम धर्म (फल) है कि योगसे अर्थात् बाह्यविषयोंसे चित्तवृत्तिको रोकनेसे अपने आत्माके यथार्थस्वरूपको जानना अर्थात् योगसे आत्माके ज्ञानमें देशकाल आदिका कुछ नियम नहीं है क्योंकि इस योगसूत्रमें यह लिखाहै कि जहां मनकी एकाग्रता है वहां देश आदिकी कोई विशेषता नहीं ॥

भावार्थ-यज्ञ करना, आचरण, इंद्रियोंका दमन, अहिंसा, दान, वेदपाठ इन सब कर्मोंका यही परम धर्म है कि विषयोंसे चित्तवृत्तिको रोककर आत्माको जानना ॥ ८ ॥

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्यमेव वा ।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥

पद-चत्वारः १ वेदधर्मज्ञाः १ पर्षत् १ त्रैविद्यम् १ एवऽ-वाऽ-सा १ ब्रूते क्रि०-यम्२ सः १ धर्मः १ स्यात् क्रि० एकः १ वाऽ-अध्यात्मवित्तमः १ ॥

योजना-वेदधर्मज्ञाः चत्वारः वा त्रैविद्यं पर्षत् (सभा) भवति सा वा, अध्यात्मवित्तमः एकः य ब्रूते सः धर्मः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जहां धर्मके कारक वा ज्ञापक हेतुओंमें संदेह होय वहां निर्णयके हेतुको कहते हैं कि वेद और धर्मशास्त्रके ज्ञाता चार ब्राह्मण जिसमें होंय अथवा आन्वीक्षिकी आदिकी तीन विद्याओंके और धर्मशास्त्रके ज्ञाताकी सभा पण्डित जिसमें उसे पर्षत् (सभा) कहते हैं वह पूर्वोक्तसभा जिसको कहै अथवा अध्यात्मज्ञानियोंमें निपुण और वेद और धर्मशास्त्रका ज्ञाता एकभी जिसको कहै वही धर्म जानाना ॥

भावार्थ-वेद और धर्मशास्त्रके ज्ञाता चार अथवा तीनों विद्याओंके ज्ञाताओंका समूहरूप सभा और ब्रह्मज्ञानियोंमें उत्तम वेद धर्मशास्त्रका ज्ञाता एकभी जिसको कहै वह धर्म होता है ॥ ९ ॥

---

१ यत्रैकाग्रत तत्राविशेषात् ।

इति मिताक्षराप्रकाशटीकासहितायां याज्ञवल्क्यस्मृतौ उपोद्घातप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ ब्रह्मचारिप्रकरणम् २.

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः। निषेकाद्याः श्मशानांतास्तेषां वै मंत्रतः क्रियाः॥ १०॥

पदं-ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः १ वर्णाः १ तु ऽ आद्याः १ त्रयः १ द्विजाः १ निषेकाद्याः १ श्मशानान्ताः १ तेषाम् ६ वैऽ- मंत्रतःऽ- क्रियाः॥ १॥

योजना-ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः वर्णाः तु पुनः आद्याः त्रयः द्विजाः भवंति, तेषां वै (एव) निषेकाद्याः श्मशानांताः क्रियाः मंत्रतः भवंति॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण हैं जिनके पृथक् २ लक्षण आगे वर्णन करेंगे उनमें आदिके तीन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विज इसलिये कहाते हैं कि ये तीनों दो बार पैदा होते हैं एकवार मातासे और दूसरी वार आचार्यके द्वारा उपदेशके समय गायत्रीसे, उन द्विजोंके ही गर्भाधानसे लेकर श्मशानके अततक (अंत्येष्टि) संपूर्ण कर्म मंत्रोंसे होते हैं अर्थात् इन तीनोंकेही पूर्वोक्त कर्मोंमें वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण होताहै और शूद्र आदकमें नहीं॥

भावार्थ-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारों वर्ण और इनमें पहिले तीन द्विज होते हैं और उन द्विजोंके ही गर्भाधान आदि भरणपर्यंत कर्म वेदोक्त मंत्रोंसे होते हैं॥ १०॥

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्यंदनात्पुरा। षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो मास्येते जातकर्म च॥ ११॥

पद-गर्भाधानम् १ ऋतौ ७ पुसः ६ सवनम् १ स्यन्दनात् ५ पुराऽ-षष्ठे ७ अष्टमे ७वाऽ- सीमन्तः १ मासि ७ एते १ जातकर्म १ चऽ-॥

अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम्॥ १२॥

पद्-अहनि ७ एकादशे ७ नाम १ चतुर्थे ७ मासि ७ निष्क्रमः १ षष्ठे ७ अन्नप्राशनम् १ मासि ७ चूडा १ कार्या १ यथाकुलम्ऽ-॥

योजना-ऋतौ गर्भाधानं, स्यन्दनात्पुरा पुंसः सवनम्, षष्ठे वा अष्टमे मासि सीमंतः च पुनः एते (गर्भात् कुमारे बहिरागते) जातकर्म, एकादशे अहनि (दिने) नाम (नामकरणम्), चतुर्थे मासि निष्क्रमः (गृहाद्बहिर्गत्वा बालस्य सूर्यदर्शनं), षष्ठे मासि अन्नप्राशनं (अन्नभक्षणं), चूडा यथाकुलं कार्या, कुलाचारानुसार कार्येति क्रिया प्रत्येक योज्या॥

तात्पर्यार्थ-अब उन क्रियाओंको क्रमसे कहतेहैं कि गर्भाधान यह अन्वर्थ (जिसका अर्थ कर्ममें मिले) कर्मका नाम है अर्थात् गर्भका स्थापन, यह कर्म सब कर्मोंमें प्रथम है और उस प्रथम ऋतु समय (रजोदर्शनसे १६ रात्रियोंके भीतर) किसी शुभ दिनमें होताहै जिसका लक्षण आगे कहेंगे। पुंसवनकर्म गर्भमें बालकके हिलने चलनेसे पूर्व इसका प्रयोजन यह है कि, जिसके करनेसे पुरुषही पैदा हो कन्या न हो। छठे वा आठवें मासमें सीमंतोन्नयन कर्म करना। ये दोनों कर्म (पुंसवन, सीमत) क्षेत्र (गर्भ) के सस्कार (शोधक) होनेसे प्रथम गर्भमें करने प्रतिगर्भमें नहीं। क्योंकि देवलऋषिने[1] इस वेचनसे यह कहाहै कि जिस स्त्रीके एक गर्भमें संस्कार होगया हो वह प्रत्येक गर्भमें संस्कारवाली होतीहै और जब गर्भमेंसे बालक बाहिर आजाय उस समय जातकर्म करना। जन्मसे ग्यारहवें दिन

[1] सकृत् सुसस्कृता नारी सर्वगर्भेषु सस्कृता।

नामकरण करना और वह नाम ऐसा रखना जो पितामह वा मातामह आदिमें मिले अथवा कुलदेवतासे मिलता हो क्योंकि शंख ऋषिने इस वचनसे यह कहाहै कि पिता कुलदेवसे मिलाहुआ नाम पुत्रका रक्खे और चौथे मासमें निष्क्रम नामका कर्म करे अर्थात् बालकको घरसे बाहिर निकालकर सूर्यका दर्शन करावे, और छठे मासमें अन्नप्राशनकर्म करै अर्थात् बालकको प्रथम अन्नका भक्षण करावे। और चूडाकर्म (मुंडन) अपनी कुलरीतिके अनुसार करै। मनुनेभी इस श्लोकसे यह कहा है कि पहिले वा तीसरे वर्षमें श्रुतिकी आज्ञा और धर्मके अनुसार सब द्विजातियोंका मुडन करावे। इन दोनों श्लोकोंमें कार्य (करना) इस क्रियाका प्रत्येक कर्ममें संबध होताहै ॥

भावार्थ-ऋतुसमयमें गर्भाधान, गर्भके चलने हिलनेसे पहिले पुंसवन, छठे वा आठवें महीनेमें सीमंत, गर्भसे बाहिर बालकके आने-पर जातकर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीनेमें निष्क्रमण (बाहर निकालकर सूर्यको दिखाना) और छठे महीनेमें अन्नप्राशन (अन्नका प्रथम भक्षण) और कुलकी रीतिके अनुसार चूडाकर्म (मुडन) करना ॥ ११ ॥ १२ ॥

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।
तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समंत्रकः ॥ १३ ॥

पद्-एवम्ऽ-एनः १ शमम् २ याति क्रि० बीजगर्भसमुद्भवम् १ तूष्णीम्ऽ- एताः १ क्रियाः १ स्त्रीणाम् ६ विवाहः १ तुऽ-समंत्रकः १ ॥

योजना-एवं बीजगर्भसमुद्भवम् एनः (पाप) शमं याति स्त्रीणाम् एताः (जातकर्मादिकाः) क्रियाः तूष्णीं (मंत्रं विना) कार्याः-विवाहस्तु समन्त्रकः कार्यः ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि ये कर्म नित्य हैं तथापि इनका यह फलभी है कि, इस प्रकारसे किये गर्भाधान आदि कर्मोंसे बीज और गर्भसे उत्पन्न हुआ पाप अर्थात् माता पिताके गात्रकी व्याधिसे शुक्र शोणित द्वारा जो पाप गर्भमें आताहै वही पाप शांति (नष्टता) को प्राप्त होजाता है। और जो पाप पतित होनेसे उत्पन्न होता है वह शांत नहीं होता। स्त्रियोंके लिये यह विशेष है कि, ये पूर्वोक्त जातकर्म आदि कर्म स्त्रियोंके मंत्रोंके विनाही शास्त्रोक्त समय पर करने और विवाह तो स्त्रियोंकाभी मंत्रोंसे ही होता है।

भावार्थ-इस प्रकार बीज और गर्भसे पैदा हुआ पाप नष्ट होता है और स्त्रियोंके जातकर्म आदि कर्म मंत्रोंके विना और विवाह वेदोक्त मंत्रोंसे होता है ॥ १३ ॥

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम् ॥ १४ ॥

पद्-गर्भाष्टमे ७ अष्टमे ७ वाऽ-अब्दे ७ ब्राह्मणस्य ६ उपनायनम् २ राज्ञाम् ६ एकादशे ७ सैके ७ विशाम् ६ एके १ यथाकुलम्ऽ-॥

योजना-ब्राह्मणस्य उपनायनं (यज्ञोपवीतं) गर्भाष्टमे वाऽष्टमेऽब्दे राज्ञाम् एकादशे विशां सेके एकादशे (द्वादशे)ऽब्दे उपनायनं कुर्यात्। एके (आचार्याः) यथाकुलम् (कुलरीत्या) उपनयनम् इच्छन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-अब यज्ञोपवीतके समयको कहते हैं ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भाधानसे वा

---

१ कुलदेवतासम्बद्ध पिता नाम कर्यात् ।
२ चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मत. ।
'प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्य श्रुतिचोदनात्- म० अ० २ श्लो० ३५ ।

जन्मसे आठवें वर्षमें इन दोनोंमें कर्त्ताकी इच्छासे विकल्प समझना चाहै जब करै, क्षत्रियोंका यज्ञोपवीत ग्यारहवें और वैश्योंका यज्ञोपवीत वारहवें वर्षमें करै और क्षत्री तथा वैश्योंके यज्ञोपवीतमें गर्भसे वर्षोंकी गिर्नती जाननी क्योंकि इस स्मृतिके वचनसे गर्भसेही ग्यारहवें वारहवें क्षत्री और वैश्यका यज्ञोपवीत कहाहै। यह वात गर्भाष्टमें इस समस्त (मिलेहुए) पदमेंसे गर्भशब्दको बुद्धिसे पृथक् करके और यहां एकादशे और सैके इनके संग मिलानेसे समझना, अन्यथा पूर्वोक्त स्मृति और इस याज्ञवल्क्यके वचनका परस्पर विरोध होजाता कदाचित् कोई यह कहै कि समस्त पदमेंसे पृथक् होकर दूसरेके सग मिल नहीं सकता सो ठीक नहीं, क्योंकि भाष्यकार मतंजलिने इस वचनमेंसे षष्ठ्यत 'शब्दानाम्' इस शब्दका पृथक् लौकिक और वैदिक शब्दोंके सग अन्वय कियाहै, इस श्लोकमेंभी पूर्वोक्त कार्यकी अनुवृत्ति करनी। कोई एक आचार्य कुलरीतिके अनुसार यज्ञोपवीतकी इच्छा करते हैं ॥

भावार्थ–गर्भसे वा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका और गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और गर्भसे वारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत करना, कोई एक ऋषि कुलरीतिके अनुसार यज्ञोपवीत करना कहते हैं ॥ १४ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥ १५ ॥

पद–उपनीयऽ–गुरुः १ शिष्यम् २ महाव्याहृतिपूर्वकम् २ वेदम् २ अध्यापयेत् क्रि०–एनम् २ शौचाचारान् २ चऽ-शिक्षयेत् क्रि०-॥

योजना–गुरुः शिष्यम् उपनीय महाव्याहृतिपूर्वक वेदम् एनम् अध्यापयेत् च पुनः शौचाचारान् शिक्षयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–गुरुके धर्मोको कहते हैं कि अपने गृह्यसूत्रमें उक्त विधिके अनुसार यज्ञोपवीत देकर गुरु शिष्यको प्रथम महाव्याहृति[1] पश्चात् वेदको पढावे वे महाव्याहृतियें भूः आदि सात वा गौतम ऋषिके वचनानुसार पाँच होती हैं और यज्ञोपवीतके अनतर निम्न लिखित शौच और आचरणोंकी शिक्षा दे। इससे यह प्रकट है कि यज्ञोपवीतसे प्रथम शौच और आचरणके अन्यथा करनेमें वालकोंको कामचार है अतएव अन्यथा करनेमें कोई प्रायश्चित्त नहीं और वर्णोंके धर्मोको छोडकर स्त्रियोंकोभी विवाहसे पहिले कामचार है, क्योंकि स्त्रियोंके विवाहकोही उपनयनके स्थानमें कहा है ॥

भावार्थ–गुरु अपने शिष्यको यज्ञोपवीत देकर व्याहृतिपूर्वक शिष्यको वेद पढावे और शौच आचरणोंकी शिक्षा दे ॥ १५ ॥

दिवासंध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः। कुर्यान्मूत्रपुरीषे च रात्रौचेद्दक्षिणामुखः॥१६

पद–दिवासंध्यासु ७ कर्णस्थब्रह्मसूत्रः १ उदङ्मुखः १ कुर्यात् क्रि०–मूत्रपुरीषे २ चऽ–रात्रौ ७ चेत्ऽ–दक्षिणामुखः ॥ १ ॥

योजना–कर्णस्थब्रह्मसूत्रः ब्रह्मचारी दिवासंध्यासु उदङ्मुखः रात्रौ चेत् (तु) दक्षिणामुखः (सन्) मूत्रपुरीषे कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–अव शौचाचारको कहते हैं, कि, कानपर ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) को रखकर

---

१ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भाद्धि द्वादशे विशः ।

२ अथ शब्दानुशासन केषां शब्दानां लौकिकानां वैदिकानाम् ।

[1] भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् ।

दिन और संध्याओंके समय उत्तराभिमुख होकर मूत्र और पुरीष (विष्ठा) का त्याग करै, यहां यद्यपि सामान्य रीतिसे कर्णही (कानही) शब्द पढा है, तथापि दक्षिण कर्ण समझना, क्योंकि इस वचनमें दक्षिण कर्ण ही लिखा है कि, पवित्र (जनेऊ) को दाहिने कानपर रखकर विष्ठा और मूत्रका त्याग करै और रात्रिके समय दक्षिणको मुख करके मूत्र और पुरीषका त्याग करै और ऐसे देशमें मूत्र पुरीषका त्याग करै जहां भस्म आदि न पडे हौंय ॥

भावार्थ–दक्षिण कर्ण पर जनेऊको रखकर और उत्तराभिमुख होकर दिन और संध्याके समय और रात्रिको दक्षिणाभिमुख होकर मूत्र और मलका त्याग करै ॥ १६ ॥

गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः।
गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्रितः॥१७॥

पद–गृहीताशिश्नः१ चऽ उत्थायऽ मृद्भिः ३ अभ्युद्धृतैः ३ जलैः ३ गंधलेपक्षयकरम् २ शौचम् २ कुर्यात् क्रि० अतंद्रितः १ ॥

योजना–गृहीताशिश्नः उत्थाय मृद्भिः अभ्युद्धृतैः जलैः अतंद्रितः सन् गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–मल मूत्र त्यागके अनतर ब्रह्मचारी शिश्न (लिंग) को ग्रहण किये उठकर कूप आदिसे खींचे हुए जल और आगे जो वर्णन की जायँगी उन मिट्टियोंसे इस प्रकार शौचको करै कि मलकी दुर्गंधि और लेप दोनों नष्ट होजांय और शौच करनेके समय आलस्य न करै, इस वचनमें जलको कूप आदिमेंसे निकालकर शौच कहनेसे यह प्रकट है कि, जलके भीतर शौच करनेका निषेध है, गंध और लेपके क्षय करनेवाला यह शौच चारों आश्रमवालोंका साधारण धर्म है और हाथ आदिमें मिट्टी लगानेकी संख्याका जो नियम है वह अदृष्टके लिये है ॥

भावार्थ–लिंगको ग्रहण किये उठकर और आलस्यको त्यागकर मिट्टी और खींचे हुए जलसे ऐसा शौच करै जिससे दुर्गंधि और लेप दूर होजाय ॥ १७ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥

पद–अंतर्जानुः १ शुचौ ७ देशे ७ उपविष्टः १ उदङ्मुखः १ प्राक् २ वाऽ– ब्राह्मेण ३ तीर्थेन ३ द्विजः १ नित्यम् १ उपस्पृशेत् क्रि० -॥

योजना–अंतर्जानुः शुचौ देशे उपविष्टः उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा द्विजः ब्राह्मेण तीर्थेन नित्यं उपस्पृशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जिसमें किसी अशुद्ध द्रव्यका स्पर्श न होय ऐसे शुद्ध देशमें बैठा हुआ अर्थात् उपानह और शय्या आदिपर न बैठकर और न सोता हुआ और न खडा हुआ और न चलता हुआ उत्तराभिमुख वा प्राङ्मुख स्थित अर्थात् इतर दिशाओंके सन्मुख बैठकर द्विज सदैव आगे लिखित ब्राह्मतीर्थसे जानुओंके भीतर दोनों हाथ करके दक्षिण हाथसे आचमनको करै ! इस श्लोकमें शुद्ध देश कहनेसे पादप्रक्षालन करना समझना और 'द्विजः' यह कहनेसे शूद्र आदिको आचमनका निषेध है अतएव मनुने इस वचनसे आचमनके स्थानमें शूद्रको होठोंपर जलका स्पर्श ही

१ पवित्रं दक्षिणे कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत् ।

१ शूद्रः स्पृष्टाभिरततः ।

लिखा है और याज्ञवल्क्य भी आगे यही कहेंगे ॥

भावार्थ–हाथोंको गोडोंके भीतर करके शुद्ध देशमें उत्तर वा पूर्वको मुख किये हुए बैठा द्विज सदैव ब्राह्मतीर्थसे आचमन करै ॥ १ ॥

कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च । प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् १९

पद–कनिष्ठादेशिन्यगुष्ठमूलानि १ अग्रम् १ करस्य ६ चऽ – प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थानि१ अनुक्रमात् ५ ॥

योजना–कनिष्ठादेशिन्यंगुष्ठमूलानि च पुनः करस्य अग्रम् एतानि अनुक्रमात् प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थानि (ज्ञातव्यानि) ॥

तात्पर्यार्थ–अव तीर्थोंका वर्णन करते हैं– कनिष्ठा, तर्ज्जनी, अंगूठा इन तीनोंकी मूल और हाथका अग्रभाग ये चारों प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, देवतीर्थ क्रमसे जानने अर्थात् कनिष्ठाके मूलमें प्रजापतितीर्थ, तर्ज्जनीके मूलमें पितृतीर्थ और अगूठेके मूलमें ब्रह्मतीर्थ और करके अग्रभागमें देवतीर्थ होताहै ॥

भावार्थ–कनिष्ठा, तर्ज्जनी, अंगूठा इन तीनोंके मूल और करके अग्रभागमें क्रमसे प्रजापति, पितृ, ब्रह्म, देव तीर्थ जानने ॥ १९ ॥

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य खान्यद्भिः समुपस्पृशेत् । अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ २० ॥

पद–त्रिःऽ–प्राश्यऽ–अपः२द्विःऽ–उन्मृज्यऽ- खानि २ अद्भिः ३ समुपस्पृशेत् क्रि०–अद्भिः ३ तुऽ- प्रकृतिस्थाभिः ३ हीनाभिः ३ फेनबुद्बुदैः ३ ॥

योजना–द्विजः अपः त्रिः (त्रिवारम्) प्राश्य–द्विः (द्विवारम्) उन्मृज्य प्रकृतिस्थाभिः फेनबुद्बुदैः हीनाभिः अद्भिः (जलैः) खानि (छिद्राणि) समुपस्पृशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–तीन वार जलको पीकर और अंगूठेके मूलसे दो वार मुखका मार्जन करके जिनमें और द्रव्य न मिलाहो और फेन (झाग) और बुलबुलेभी जिनमें न हों ऐसे जलोंसे नासिका आदि ऊपरके छिद्रोंका भली प्रकार स्पर्श करै। एक वार अद्भिः इस पदसे जलोंको कहकर फिर दुबारा उसी पदसे जलोंके कहनेका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक छिद्रमें स्पर्श करै और वे जल प्रकृति (स्वभाव) में स्थित हों अर्थात् जिनके गधरूप रस स्पर्श न विगडे हों और इस श्लोकमें तु शब्दके पढनेसे वर्षा और शूद्रके लाये जलसे स्पर्श (आचमन) करनेका निषेध है।

भावार्थ–तीन बार जलको पीकर और दो बार मुखका मार्जन करके स्वच्छ और झाग और बुलबुले जिनमें न हों ऐसे निर्मल जलोंसे नासिका आदि ऊपरके छिद्रोंका स्पर्श करै अर्थात् उक्त जलसे नासिका आदिको शुद्ध करै ॥ २० ॥

हृत्कंठतालुगाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः। शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरंततः ॥ २१ ॥

पद–हृत्कठतालुगाभिः ३ तुऽ–यथासख्यम्ऽ- द्विजातयः १ शुध्येरन् क्रि०–स्त्री १ चऽ– शूद्रः१ चऽ–सकृत्ऽ–स्पृष्टाभिः ३ अततःऽ–॥

योजना–द्विजातयः (ब्राह्मणक्षत्रियविशः) यथासंख्यं (क्रमेण) हृत्कंठतालुगाभिः अद्भिः

शुद्धचेरन् च (पुनः) स्त्री च (पुनः) शूद्रः अंततः (तालुना) स्पृष्टाभिः शुद्धचेताम् ॥

तात्पर्यार्थ-हृदय, कंठ, तालुमें प्राप्त हुए आचमनके जलसे तीनों द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमसे शुद्ध होतेहैं और स्त्री तथा शूद्र और चशब्दसे जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह ये सब तालुसे एक वारही जलके स्पर्शमात्रसे शुद्ध होते हैं ॥

भावार्थ-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों द्विज क्रमसे हृदय, कंठ, तालु इनमें पहुँचे हुए जलसे और स्त्री और शूद्र ये दोनों तालुसे एक वार जलके स्पर्शसेही शुद्ध होते हैं ॥ २१ ॥

स्नानमब्दैवतैर्मंत्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः । सूर्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥ २२ ॥

पद-स्नानम् १ अब्दैवतैः ३ मत्रैः ३ मार्जनम् १ प्राणसंयमः १ सूर्यस्य ६ चऽ-अपिऽ-उपस्थानम् १ गायत्र्याः ६ प्रत्यहम्ऽ-जपः१ ॥

योजना-स्नानम् अब्दैवतैः मत्रैः मार्जनं प्राणसयमः । च (पुनः) सूर्यस्य अपि उपस्थानं (स्तुतिः) प्रत्यह (प्रतिदिनं) गायत्र्याः जपः कार्यः । अत्र कार्यशब्दः तत्तल्लिंगानुसारेण प्रत्येकं योज्यः ॥

तात्पर्यार्थ-शास्त्रोक्तरीतिसे प्रातःकालस्नान और जल है देवता जिनका ऐसे " आपोहिष्ठा" आदि मत्रोंसे मार्जन (देहकी शुद्धि) और प्राणायाम (जिसका स्वरूप आगे वर्णन करेंगे) और सूर्यकी है स्तुति जिनमें ऐसे "उद्वयं" आदि मंत्रोंसे सूर्यका उपस्थान (स्तुति) और गायत्री (तत्सवितुः) आदिका प्रतिदिन जप इन पूर्वोक्त कर्मोंको तीनों द्विजाति करैं ॥

भावार्थ-प्रातःकाल स्नान वरुणके मंत्रोंसे मार्जन, प्राणायाम, सूर्यकी स्तुति और प्रतिदिन गायत्रीका जप इनको द्विज प्रतिदिन करै ॥ २२ ॥

गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥ २३ ॥

पद-गायत्रीम् २ शिरसा ३ सार्द्धम्ऽ-जपेत् क्रि०-व्याहृतिपूर्विकाम् २ प्रतिप्रणवसंयुक्ताम् २ त्रिःऽ-अयम् १ प्राणसयमः १॥

योजना-प्रतिप्रणवसंयुक्तां व्याहृतिपूर्विकां गायत्रीं शिरसा सार्द्धं त्रिः (त्रिवारं) जपेत् अयं (पूर्वोक्तस्य त्रिर्जपः) प्राणसंयमः (प्राणायामः (ज्ञेयः) ॥

तात्पर्यार्थ-"आपोज्योति"इत्यादि जो शिरः सज्ञक मंत्र उससे सयुक्त और उक्त ७ व्याहृति हैं पूर्व जिसके और प्रतिव्याहृति (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) हैं ओंकार पूर्व जिसमें उसका तीन बार मुख और नासिकामें संचारी (रहनेवाली) वायुको मनसे रोंककर जो जप उसको प्राणायाम कहतेहैं । इस प्राणयामसे ही योगिजन अनेक सिद्धियोंको प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ-सात व्याहृति हैं पूर्व जिसके ऐसी जो ओंकारसहित और शिरः मत्रसहित गायत्री उसका जो प्राणोंको रोंककर तीन वार जपै उसे प्राणायाम कहते हैं ॥ २३ ॥

प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य तृचेनाब्दैवतेन तु । जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात्॥

१ ॐ अपोज्योतीरसोमृत ब्रह्म भूर्भुवःस्वः ।

२ ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्-ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ आपोज्योती रसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्-अयं प्राणायामः ।

पद–प्राणान् २ आयम्यऽ–संप्रोक्ष्यऽ–तृचेन ३ अब्दैवतेन ३ तुऽ– जपन् १ आसीत क्रि०– सावित्रीम् २ प्रत्यक् २ आऽ–तारकोदयात् ॥

योजना–प्राणान् आयम्य तु (पुनः) अब्दैवतेन तृचेन (देहं) संप्रोक्ष्य सावित्रीं जपन् सन् आ तारकोदयात् प्रत्यक् सध्यां आसीत सायं प्रत्यङ्मुखो गायत्रीं जपेदित्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्त प्राणायामको करके और जल है देवता जिनका ऐसी "आपोहिष्ठा" आदि तीन ऋचाओंसे अपने देहका भली प्रकार प्रोक्षण (छिडकना) करके गायत्री जपता हुआ द्विज प्रत्यङ्मुख (पश्चिमाभिमुख) होकर प्रत्यक् संध्या (सायकालके सध्योपासन) को करै और वह सायंकालकी सध्या और जप तारकाओंके उदयपर्यंत करना दिन रात्रिकी संधिमें जो कर्म किया जाय उसे सध्या कहते हैं, और सपूर्ण सूर्यमडलके दर्शन योग्य जो काल उसे दिन और उससे विपरीत समयको रात्रि कहते हैं और जिस कालमें सूर्यमंडल खड (अपूर्ण) प्रतीत हो उसको संधि कहते हैं और वह समय सूर्यके उदय और अस्त होनेके समयमें ही होता है ॥

भावार्थ–प्राणायाम और जल है देवता जिनका ऐसी तीन ऋचाओंसे अगका भले प्रकार प्रोक्षण करके सायंकालकी संध्याके समय गायत्रिको जपता हुआ द्विज नक्षत्रोंके उदय पर्यंत पश्चिमको मुख किये बैठारहै ॥ २४ ॥

संध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् । अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ॥ २५ ॥

पद–संध्यां २ प्राक् २ प्रातःऽ–एवंऽ–हिऽ–तिष्ठेत् क्रि०आऽ-सूर्यदर्शनात् ५ अग्निकार्यं २ ततःऽ–कुर्यात् क्रि०–संध्ययोः ७ उभयोः ७ अपिऽ– ॥

योजना–एवं (पूर्वोक्तविधिं आचरन्) प्राक् संध्यां प्रातः आ सूर्यदर्शनात् तिष्ठेत् । प्राङ्मुखः गायत्रीं जपेदित्यर्थः । ततः उभयोः अपि संध्ययोः अग्निकार्यं (अग्निहोमादि) कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–इस प्रकार पूर्वोक्तविधिको करता हुआ द्विज प्रातःकालके समयमें पूर्वाभिमुख स्थित होकर सूर्योदय पर्यंत गायत्रीका जप करै फिर सन्ध्योपासनाके अनन्तर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निमें समित् (काष्ठ) प्रक्षेप आदि कार्यको करे ॥ २५ ॥

ततोऽभिवादयेद् वृद्धानसावहमिति ब्रुवन्। गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥ २६ ॥

पद–ततःऽ–अभिवादयेत् क्रि०–वृद्धान् २ असौ १ अहम् १ इतिऽ–ब्रुवन् १ गुरुम् २ चऽ-एवऽ–अपिऽ–उपासीत क्रि०–स्वाध्यायार्थम् २ समाहितः १ ॥

योजना–ततः असौ अह इति ब्रुवन् सन् वृद्धान् अभिवादयेत् च पुनः गुरुं अपि एवं (निश्चयेन) समाहितः सन् स्वाध्यायार्थं उपासीत (सेवेत) ॥

तात्पर्यार्थ–फिर सन्ध्योपासना और अग्निहोत्रके अनंतर यह मैं हू इस प्रकार अपने नामको कहता हुआ गुरु पिता आदि जो अपने वडे हैं उनको नमस्कार करै । और तिसी प्रकार गुरु (जिसका स्वरूप आगे कहेंगे) की स्वाध्याय (वेद आदिका पठन) के लिये चित्तको सावधान करके उपासना करे अर्थात् गुरुके समीप जायकर इस प्रकार अध्ययन करे कि–॥

भावार्थ–फिर यह मैं हू यह कहता हुआ गुरु आदि वृद्धोंको नमस्कार करै और पढनेके-

१ असौ देवदत्तशर्माहं भो गुरो वा पितः त्वामभिवादये (नमस्करोमि) ।

-अर्थ सावधानीसे गुरुकीभी इसी प्रकार उपासना (सेवा) करै कि- ॥ २६ ॥

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं तस्मै निवेदयेत् । हितं तस्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २७॥

पद-आहूतः १ चऽ- अपिऽ- अधीयीत क्रि०-लब्धम् २ तस्मै ४ निवेदयेत् क्रि० हितम् २ तस्य ६ आचरेत् क्रि०-- नित्यम् २ मनोवाक्कायकर्मभिः ३ ॥

योजना-आहूतः सन् अपि (एव) अधीयीत-लब्धम् (अन्नादि) तस्मै निवेदयेत् मनोवाक्कायकर्मभिः तस्य हितं नित्यम् आचरेत् (कुर्वीत) ॥

तात्पर्यार्थ-अव गुरुके यहां पढनेके प्रकार कहते हैं कि गुरुके आह्वान (बुलाना) करने पर अध्ययन करै और पढनेके लिये गुरुको स्वयं प्रेरणा न करै । और जो कुछ द्रव्य आदि याचना आदि द्वारा कहींसे मिलजाय वह गुरुको ही निवेदन कर दे और मन वाणी देह और कर्मसे गुरुके हितकाही आचरण करै कदाचित् भी गुरुके प्रतिकूल आचरण न करै और गुरुके दर्शन होनेपर कठ आदि अपने अंगका प्रावरण (खोलना) न करै अर्थात् निःशंक होकर न बोले ॥

भावार्थ-गुरुके बुलाने पर ही पढे और जो कुछ मिलै वह सव गुरुको निवेदन करै और मन वाणी देह कर्मसे गुरुके हितका ही नित्य आचरण करे ॥ २७ ॥

कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः । अध्याप्या धर्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ॥ २८ ॥

पद-कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः १ अध्याप्याः १ धर्मतःऽ- साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः १ ॥

योजना-कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्मानसूयकाः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः धर्मतः अध्याप्या भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-कृतज्ञ जो किये हुए उपकारको विस्मरण न करे (न भूले) अद्रोही जिसके हृदयमें दया हो, मेधावी जिसकी ऐसी सामर्थ्य हो कि गुरुके पढाये हुएको धारण करसके । शुचिः जिसका वाह्य शुद्धिसे देह और अन्तःशुद्धिसे अन्तःकरण ये दोनों शुद्ध हों, कल्प जिसको आधि (मनकी पीडा) और व्याधि (देहकी पीडा) न हों, जो अनसूयक हो अर्थात् गुरुके दोषोंको प्रकट न करै और गुणोंको प्रगट करै, और साधु जिसका आचरण श्रेष्ट हो, जो शक्त हो अर्थात् गुरुकी सेवा करनेमें समर्थ हो और जो आप्त हो अपना वधु हो और जो ज्ञानद हो अर्थात् किसी अन्य विद्याको दे, जो वित्तद (जो अर्पण पूर्वक धनको दे) ये पूर्वोक्त गुण जिनमें संपूर्ण हों अथवा न्यूनाधिक हों वे शिष्य धर्मसे अर्थात् शास्त्रके अनुसार पढाये जावें ॥

भावार्थ-कृतज्ञ, अद्रोही, बुद्धिमान, शुद्ध, नीरोग, अनिंदक, साधु, शक्त, आप्त, तथा ज्ञान और धनके दाता इनको धर्मसे पढावे ॥ २८ ॥

दंडाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धारयेत् । ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्ष्यमनिंद्येष्वात्मवृत्तये ॥ २९ ॥

पद-दंडाजिनोपवीतानि २ मेखलाम् २ चऽ-एवऽ-धारयेत् क्रि० ब्राह्मणेषु ७ चरेत् क्रि० भैक्ष्यम् २ अनिंद्येषु ७ आत्मवृत्तये ४ ॥

योजना-दंडाजिनोपवीतानि च (पुनः) मेखलाम् एव (अपि) धारयेत् अनिंद्येषु ब्राह्मणेषु आत्मवृत्तये भैक्ष्यं चरेत् (कुर्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ-पालाश (ढाक) आदिके दंड और आजिन (कृष्ण मृगचर्म) और कपास आदिके यज्ञोपवीत और मुंज आदिकी

मेखला (कोंदनी) आदिको धारण करै। यहां आदि शब्दसे कमडलु आदि ब्रह्मचारीके उपकरण समझने। इस प्रकार दंड आदिसे युक्त ब्रह्मचारी, पतित और शाप आदि दोषोंसे रहित जो अपने धर्ममें तत्पर ब्राह्मण उनके घरोमेंसे अपने जीवनके अर्थ भिक्षाका आचरण करै अर्थात् किसी अन्यके लिये भिक्षा न मांगे उस भिक्षाको गुरुको निवेदन करके और गुरु न होय तो उनके पुत्र स्त्री आदिको अर्पण करके उनकी आज्ञासे भोजन करै इस श्लोकमें ब्राह्मणका ग्रहण इस नियमके लिये नहीं है कि ब्राह्मणोंके यहांहीसे मांगे किन्तु संभव होय तो ब्राह्मणोंसे न मिले तो तीनों द्विजातियोंसे भी भिक्षाटनमें दोष नहीं, जो किसीने इस वचनसे चारों वर्णोंमे भिक्षा मांगनी लिखी है वहभी तीनों वर्णोंमें ही समझनी क्योंकि यज्ञोपवीतका अधिकार तीनोंकोही है शूद्रको नही अत एव उसका अन्नभी वर्जित लिखा है ओर जो इस वचनसे चारों वर्णोंको भिक्षाटन लिखा है वह भी आपत्तिके समयमें ही समझना॥

भावार्थ-दंड, मृगचर्म, जनेऊ और मेखलाको धारण करै और निंदाके अयोग्य ब्राह्मणोंमें अपने जीवनके लिये भिक्षा मांगे॥ २९॥

आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्ष्यचर्या यथाक्रमम्॥ ३०॥

पद-आदिमध्यावसानेषु ७ भवच्छब्दोपलक्षिता १ ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् ६ भैक्ष्यचर्या १ यथाक्रमम्ऽ-॥

योजना-ब्राह्मणक्षत्रियविशां आदिमध्यावसानेषु यथाक्रमं भवच्छब्दोपलक्षिता भैक्ष्यचर्या कर्तव्येति शेषः। भवति भिक्षां देहि, भिक्षां भवति देहि, भिक्षां देहि भवति॥

तात्पर्यार्थ-भावार्थ-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनोंको आदि मध्य अतमें जिसके भवति शब्द होय ऐसे वाक्योंको क्रमसे कहकर भिक्षा मांगनी अर्थात् ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि, क्षत्रिय भिक्षां भवति देहि, वैश्य भिक्षां देहि भवति शब्दको कहै॥

कृताग्निकार्यो भुंजीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया। अपोशनक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नम कुत्सयन्॥ ३१॥

पद-कृताऽग्निकार्यः १ भुजीत क्रि० वाग्यतः १ गुर्वनुज्ञया ३ अपोशनक्रियापूर्वम् २ सत्कृत्यऽ-अन्नम् २ अकुत्सयन्॥ १॥

योजना-कृताग्निकार्यः वाग्यतः ब्रह्मचारी अन्नं सत्कृत्य अकुत्सयन् (सन्) गुर्वनुज्ञया अपोशनक्रियापूर्वं भुजीत॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्तविधिसे मिली भिक्षाको गुरुको निवेदन करके अग्निहोत्र करनेके अनतर मौन होकर अन्नका सत्कार करके और अन्नकी निंदाको त्यागकर भोजनसे पूर्व अपोशन क्रियाको करके अर्थात् 'अमृतोपस्तरणमसि' इस वचनसे आचमन करके गुरुकी आज्ञासे भोजनको करै। यद्यपि प्रथम पच्चीस २५ के श्लोकमें ब्रह्मचारीको अग्निहोत्र करना लिख आये हैं इससे पुनः अग्निहोत्रका करना इसलिये नहीं है कि भोजनके समयमेंभी तीसरी वार अग्निहोत्र कियाजाय, किंतु इसलिये है कि दैववशसे संध्याके समयमें अग्निहोत्र न किया होय तो भोजनके समय कर ले॥

भावार्थ-अग्निहोत्र और अन्नका सत्कार करके गुरुकी आज्ञासे अन्नकी निंदाको त्यागकर मौन होकर और अपोशन (आचमन) करके भोजन करै॥ ३१॥

---

१ सार्ववर्णिक भैक्ष्याचरणम्।
२ चातुर्वर्णिक चरेद्भैक्ष्यम्।

ब्रह्मचर्ये स्थितो नैकमन्नमद्यादनापदि॥ ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ॥ ३२ ॥

पद्–ब्रह्मचर्ये ७ स्थितः १नऽ-एकम् २अन्नम् २ अद्यात् क्रि० अनापदि ७ ब्राह्मणः १कामम् २ अश्नीयात् क्रि०श्राद्धे ७व्रतम् २ अपीडयन्१॥

योजना–ब्रह्मचर्ये स्थितः ब्राह्मणः अनापदि एकम् अन्नं न अद्यात् श्राद्धे व्रतम् अपीडयन् (सन्) कामम् अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ–ब्रह्मचर्यमें स्थित ब्राह्मण आपत्तिके विना एकके अन्नको न खाय अर्थात् शरीरमें कोई व्याधि आदि होय तो दोष नहीं और श्राद्धके विषय कोई निमन्त्रण दे तो ऐसे भोजनको यथेच्छ करले जिससे अपने व्रतका भंग न होय अर्थात् मधु मांस आदिका भक्षण श्राद्धमें भी न करै इस श्लोकमें ब्राह्मणका लेख इसलिये है कि क्षत्री वैश्यको श्राद्धके भोजनका इस वचनसे[1] निषेध है कि क्षत्री वैश्यका यह काम नहीं है कि श्राद्धका भोजन करें ॥

भावार्थ–ब्रह्मचारी विना आपत्तिके एकके अन्नको न खाय और ब्राह्मण अपने व्रतकी रक्षापूर्वक श्राद्धमें यथेच्छ भोजन करै ॥३२॥

मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् । भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

पद्–मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम् २ भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि२ वर्ज्जयेत् क्रि० ॥

योजना–मधुमांसांजनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनं भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि (ब्रह्मचारी) वर्ज्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–ब्रह्मचारी इन सब वस्तुओंको वर्जे दे कि मधु (सहत) यहां मधु शब्दसे मदिराका ग्रहण नहीं क्योंकि इस वचनसे[1] ब्राह्मणको मदिराका सदैव निषेध है मांस अंजन अर्थात् घृत आदिको देहमें और कज्जल आदिको नेत्रमें लगाना, गुरुका उच्छिष्ट, शुक्त (कठोर वचन) यहां शुक्तपदसे अन्नरस इसलिये नहीं लिया कि उसका अभक्ष्य प्रकरणमें निषेध कहेंगे, स्त्रीका संग, प्राणियोंका हिंसन, उदय और अस्तके समय सूर्यका दर्शन, अश्लील (झूठ बोलना), परिवाद (सच्चे और झूठे पराये दोषोंको कहना) और आदिशब्दसे अन्य स्मृतियोंमें कहेहुए गंध और माल्य आदिकोभी वर्जे दे ॥

भावार्थ–सहत, मांस, अंजन, गुरुका उच्छिष्ट, कठोर वचन, स्त्रीसंग, प्राणियोंकी हिंसा, उदय अस्तके समय सूर्यको देखना और झूठ बोलना और गंध माल्यको धारना इन सबको ब्रह्मचारी वर्जि दे ॥ ३३ ॥

सगुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । उपनीय दद्द्वेदमाचार्यः स उदाहृतः ॥ ३४ ॥

पद्–सः १ गुरुः १ यः १ क्रियाः २ कृत्वाऽ वेदम् २ अस्मै ४ प्रयच्छति–क्रि० उपनीयऽ-ददत् १ वेदम् २ आचार्यः १ सः १ उदाहृतः॥१॥

योजना–यः क्रियाः कृत्वा अस्मै वेदं प्रयच्छति स गुरुः यः उपनीय वेदं ददत्(भवति) स आचार्यः उदाहृतः

ता० भा०–जो गर्भाधान आदि उपनयन पर्यंत क्रियाओंको विधिसे कराकर ब्रह्मचारीको वेद पढावे उसे गुरु और जो यज्ञोपवीतहीको करकर वेद पढावे उसे आचार्य कहते हैं ॥ ३४ ॥

---

1 राजन्यवैश्ययोश्चैव नैतत्कर्म प्रचक्षते ।

1 नित्य ब्राह्मणो मद्य वर्जयेत् ॥

एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते। एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी ॥ ३५ ॥

पद–एकदेशम् २ उपाध्यायः १ ऋत्विक् १ यज्ञकृत् १ उच्यते क्रि० एते १ मान्याः १ यथापूर्वम्ऽ–एभ्यः ५ माता १ गरीयसी १ ॥

योजना-यः एकदेशम् अध्यापयति सः उपाध्यायः, यज्ञकृत् ऋत्विक् उच्यते, एते गुर्वाचार्योपाध्यायर्त्विजः यथापूर्वं मान्याः (भवंति) एभ्यः (सर्वेभ्यः) माता गरीयसी (पूज्यतमा)

तात्पर्यार्थभावार्थ–जो वेदके एकदेश मंत्र वा ब्राह्मण अथवा ६ अंग इनको पढावे वह उपाध्याय और जो वरण किया हुआ पाकयज्ञ आदि करै उसके ऋत्विज ये चारों (गुरु, आचार्य, उपाध्याय, ऋत्विग्) क्रमसे पूजा करनेके योग्य हैं और इन सबसे अधिक पूजने योग्य माता होती है ॥ ३५ ॥

प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं द्वादशाब्दानि पंच वा। ग्रहणांतिकमित्येके केशांतश्चैव षोडशे ३६

पद–प्रतिपेदम् २ ब्रह्मचर्यम् १ द्वादशाब्दानि २ पंच १ वा ऽ–ग्रहणांतिकम् २ इतिऽ–एके १ केशांतः १ चऽ–एवऽ–षोडशे ७ ।

योजना–ब्राह्मणेन प्रतिवेदं द्वादश वा पंच अब्दानि ब्रह्मचर्यं कार्यं एके आचार्याः ग्रहणांतिकं वदंति च पुनः केशांतः षोडशे वर्षे कार्यः।

तात्पर्यार्थ–जब विवाह न हुआ होय इस मनुके वचनानुसार चार वा २ दो वा एक वेद पढनेका ब्राह्मणको अधिकार है तब एक२ वेदके पढनेमें बारह १२ वर्ष अथवा पांच वर्ष ब्रह्मचर्य करै और कोई वेदके ग्रहण आनेतक ब्रह्मचर्यको कहते हैं और केशांत गर्भसे १६ सोलहवें वर्षमें ब्राह्मणका करना, यह बात जभी है जब बारह वर्षका ब्रह्मचर्य होय, पांच वर्षके ब्रह्मचर्यमें तो सोलह वर्षसे पहिलेभी केशांत कर्म करले, क्षत्री और वैश्यको तो जनेऊके समान बाईस २२ या चौबीस २४ वर्षमें केशांत कर्म करना ॥

भावार्थ–प्रत्येक वेदके पढनेमें १२ बारह या पांच वर्षतक ब्रह्मचर्य वा जबतक वेद आवे तबतक ब्रह्मचर्य करना और केशांत कर्म सोलहवें वर्षमें करना ॥ ३६ ॥

आषोडशाद्द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्चवत्सरात् । ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ३७

पद–आऽ–षोडशात् ५ आऽ–द्वाविंशात् ५ चतुर्विंशात् ५ चऽ–वत्सरात् ५ ब्रह्मक्षत्रविशाम् ६ कालः १ औपनायनिकः १ परः १ ॥

योजना–आषोडशात् आद्वाविंशात् च पुनः चतुर्विंशात् वत्सरात् ब्रह्मक्षत्रविशाम् औपनायनिकः परः कालः (स्मृतः) ॥

ता० भा०–सोलह वर्षतक ब्राह्मणके बाईस वर्षतक क्षत्रीके चौवीस वर्षतक वैश्यके यज्ञोपवीतका समय उत्तम कहाहै; इससे परे उपनयनका समय नहीं रहता ॥ ३७ ॥

अतऊर्ध्वं पतंत्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृतेक्रतोः

पद–अतः ऊर्ध्वम् २ पतंति क्रि०–एते १ सर्वधर्मबहिष्कृताः १ सावित्रीपतिताः १ व्रात्याः १ व्रात्यस्तोमात् ५ ऋतेऽ–क्रतोः ५ ॥

योजना–अतऊर्ध्वम् सर्वधर्मबहिष्कृताः एते पतंति व्रात्यस्तोमात् क्रतोः ऋते सावित्रीपतिताः संतः व्रात्याः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्तकालसे परे संपूर्ण धर्मोंके अनधिकारी ये तीनों पतित होते हैं और व्रात्यस्तोम यज्ञ किये विना सावित्रीसे पतित,

१ वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वेति प्रवर्त्तते ।

होजातेहैं अर्थात् गायत्रीके उपदेश योग्य नहीं रहते यदि ये व्रात्यस्तोम यज्ञ करलें तो यज्ञोपवीतके अधिकारी पूर्वोक्त गौणकालके अनंतर भी होते हैं ॥

भावार्थ-इससे आगे ये तीनों संपूर्ण धर्मके अनधिकारी पतित होजाते हैं और व्रात्यस्तोम यज्ञ किये विना व्रात्य होनेसे गायत्रीके अधिकारी नहीं रहते ॥ ३८ ॥

मातुर्यदग्रे जायंते द्वितीयं मौंजिबंधनात्॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः

पद्-मातुः ५ यत्ऽ-अग्रे ७ जायंते क्रि-द्वितीयम् १ मौंजिबन्धनात् ५ ब्राह्मणक्षत्रिय-विशः १ तस्मात् ५ एते १ द्विजाः १ स्मृताः १ ॥

योजना-यस्मात् अग्रे एते मातुः सकाशात् जायंते एषां द्वितीयं जन्म मौंजिबंधनात् भवति तस्मात् एते ब्राह्मणक्षत्रियविशः द्विजाः स्मृताः॥

ता० भा०-जिससे ये तीनों प्रथम माताके सकाशसे और दुबारा मौंजिबंधन (यज्ञोपवीतके समय पैदा होते हैं तिससे ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विजाति कहलाते हैं ॥ ३९ ॥

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेदएव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः४०॥

पद्-यज्ञानाम् ६ तपसाम् ६ चऽ-एवऽ-शुभानाम् ६ चऽ-एवऽ-कर्मणाम्६ वेदः१एवऽ-द्विजातीनाम् ६ निःश्रेयसकरः १ परः १ ॥

योजना-द्विजातीनां यज्ञानां च पुनः तपसां च पुनः शुभानां कर्मणां निःश्रेयसकरः परः वेद एव-नान्य इति यावत् ॥

ता० भा०-श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित (कहीहुई) यज्ञोंके, और कायसंताप आदि तपोंके और चांद्रायण आदि शुभकार्य और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंका बोध कहनेसे वेद ही द्विजातियोंके परम निःश्रेयस (मोक्ष) का कर्ता है अन्य नहीं और एव शब्दसे वेदमूल स्मृतिभी मोक्षफलकी देनेवाली होती हैं ॥४०॥

मधुना पयसा चैव सदेवांस्तर्पयेद्द्विजः ॥
पितॄन्मधुघृताभ्यां च ऋचोधीते च योन्वहम्

पद्-मधुना ३ पयसा ३ चऽ-एव-ऽ सः १ देवान् २ तर्पयेत् क्रि०-द्विजः १ पितॄन् २ मधुघृताभ्याम् ३-चऽ-ऋचः २ अधीते क्रि-चऽ-यः १ अन्वहम्ऽ- ॥

योजना-यः अन्वहम् ऋचः (ऋग्वेदम्) अधीते सः देवान् मधुना च पुनः पयसा च पुनः पितॄन् मधुघृताभ्यां तर्पयेत् ॥

ता० भा०-जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदको पढताहै वह मधु (सहत वा मिष्ट) और दूधसे देवताओंको तथा मधु और घृतसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४१ ॥

यजूंषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृतामृतैः।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितॄंस्तथा॥

पद्-यजूंषि २ शक्तितःऽ-अधीते क्रि०-यः १ अन्वहम्ऽ-सः १ घृतामृतैः ३ प्रीणाति क्रि-देवान् २ आज्येन ३ मधुना ३ चऽ-पितॄन् २ तथाऽ-॥

योजना-यः शक्तितः अन्वहं यजूंषि अधीते सः घृतामृतैः देवान्-तथा आज्येन च पुनः मधुना पितॄन् प्रीणाति (तर्पयति) ॥

ता० भा०-जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन यजुर्वेदको पढता है वह घृत और अमृतसे देवताओंको तथा घृत और मधुसे पितरोंको, तृप्त करताहै ॥ ४२ ॥

स तु सोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद्योऽन्वहं पठेत्। सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ॥ ४३ ॥

पद्–सः १ तुऽ–सोमघृतैः ३ देवान् २ तर्पयेत् क्रि–यः १ अन्वहम्ऽ–पठेत् क्रि० सामानि २ तृप्तिम् २ कुर्यात् क्रि–चऽ–पितृणाम् ६ मधुसर्पिषा ३ ॥

योजना–यः अन्वहं सामानि पठेत् सः सोमघृतैः देवान् तर्पयेत् च पुनः मधुसर्पिषा पितृणां तृप्तिं कुर्यात् ॥

ता० भा०–जो द्विज प्रतिदिन सामवेदको पढता है वह सोम (अमृतलता) और घृतसे देवताओंको तृप्त करताहै और मधु और घीसे पितरोंकी तृप्तिको करता है ॥ ४३ ॥

मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वांगिरसः पठन्। पितृंश्च मधुसर्पिभ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः ॥ ४४ ॥

पद्–मेदसा ३–तर्पयेत् क्रि–देवान् २ अथर्वांगिरसः २ पठन् १ पितॄन् २ चऽ–मधुसर्पिर्भ्याम् ३ अन्वहम्ऽ-शक्तितःऽ–द्विजः १॥

योजना–द्विजः शक्तितः अथर्वांगिरसः पठन् सन् अन्वह मेदसा देवान् च पुनः मधुसर्पिर्भ्यां पितॄन् तर्पयेत् ॥

ता० भा० जो द्विज अपनी शक्तिके अनुसार अथर्वांगिरस (अथर्वणवेद) को प्रतिदिन पढता है वह मेद (मज्जा) से देवताओंको मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥४४॥

वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योऽन्वहम ॥ ४५ ॥

पद्–वाकोवाक्यम् २ पुराणम् २ चऽ–नाराशंसीः २ चऽ–गाथिकाः २ इतिहासान् २ तथाऽ–विद्याः २ शक्त्या ३ अधीते क्रि–हिऽ–यः १ अन्वहम् ऽ॥

योजना–यः द्विजः वाकोवाक्यं च पुनः पुराणं च पुनः नाराशंसीः गाथिकाः तथा इतिहासान्–विद्याः शक्त्या अन्वहं अधीते (पठति)

ता० भा० जो द्विज वाकोवाक्य (प्रश्नोत्तररूप वेदके वाक्य) ब्राह्म आदि पुराण और चकार पढनेसे मानव आदि धर्मशास्त्र और नाराशसी (रुद्र है देवता जिनका ऐसे मत्र) और गाथा (इद्रगाथा आदि यज्ञगाथा) महाभारत आदि इतिहास वारुणि आदि विद्या इन सबको अपनी शक्तिके अनुसार पढता है॥४५॥

मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं सदिवौकसाम्। करोतितृप्तिंकुर्याच्चपितृणांमधुसर्पिषा॥४६

पद्–मांसक्षीरौदनमधुतर्पणम् २ सः १ दिवौकसाम् ६ करोति क्रि–तृप्तिम् २ कुर्यात् क्रि–चऽ–पितृणाम् ६ मधुसर्पिषा ३ ॥

योजना–सः द्विजः दिवौकसां मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं करोति–च पुनः पितृणां तृप्तिं मधुसर्पिषा कुर्यात् ॥

ता० भा० वह द्विज, मांस, दूध, ओदन (भात) मधु इनसे देवताओंको--और मधु और घीसे पितरोंको तृप्त करता है ॥ ४६ ॥

तेतृप्तास्तर्पयंत्येनंसर्वकामफलैः शुभैः ॥ यंयंक्रतुमधीतेसौतस्यतस्याप्नुयात्फलम् ॥

पद्–ते १ तृप्ताः १ तर्पयति क्रि–एनम् २ सर्वकामफलैः ३ शुभैः ३ यम् २ यम् २ क्रतुम् २ अधीते क्रि–असौ १ तस्य ६ तस्य ६ आप्नुयात् क्रि– फलम् २ ॥

योजना–तृप्ताः सन्तः ते (देवाः पितरः) एन शुभैः सर्वकामफलैः तर्पयंति–असौ यं यं क्रतुं अधीते तस्य तस्य क्रतोः फलं आप्नुयात् (प्राप्स्यति)॥

ता० भा० तृप्त हुए वे पितर और देवता इस द्विजको उन शुभ फलोंसे तृप्त करते हैं जिनको कोई नष्ट न करसके और जिस २ यज्ञके वेदको यह पढताहै उस २ के फलको प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

त्रिर्वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य फलमश्नुते । तपसो यत्परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान् द्विजः ॥ ४८ ॥

पद्-त्रिःऽ-वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य ६ फलम् २ अश्नुते क्रि-तपसः ६ यत् १ परस्य ६ इहऽ नित्यम् २ स्वाध्यायवान् १ द्विजः १ ॥

योजना-नित्यम् स्वाध्यायवान् द्विजः त्रिः (त्रिवारं) वित्तपूर्णपृथिवीदानस्य परस्य तपसः यत् फलं भवति तत्फलं अश्नुते (भुनक्ति)

ता० भा०-प्रतिदिन स्वाध्यायवाला (वेद्पाठी,) द्विज-वित्त (धनसे) भरी हुयी पृथिवीके तीनवार दानका और चांद्रायण आदि परम तपका जो फल इस लोकमें होता है उसको प्राप्त होता है इसमें नित्य पद इसलिये है कि काम्य (जिससे कुछ फलकी इच्छा हो) भी उत्तम कर्म नित्य होताहै ॥ ४८ ॥

नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ । तदभावेस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेपि वा ॥

पद्-नैष्ठिकः १ ब्रह्मचारी १ तुऽ वसेत् क्रि० आचार्यसन्निधौ ७ तदभावे ७ अस्य ६ तनये ७ पत्न्यां ७ वैश्वानरे ७ अपिऽ-वाऽ- ॥

योजना-नैष्ठिकः तु ब्रह्मचारी आचार्य सन्निधौ वसेत् तदभावे अस्य तनये पत्न्यां वा वैश्वानरे (अग्नौ) वसेत् ॥

ता० भा०-इस पूर्वोक्त प्रकारसे अपने देहकी निष्ठाको मरणपर्यंत जो पहुंचादे अर्थात् मरणपर्यंत गुरुके यहांही रहे उसे नैष्ठिक कहते हैं वह नैष्ठिकब्रह्मचारी जीवन पर्यंत आचार्यके समीपमें वसै आचार्यके न होनेपर उनके पुत्रके अथवा उनकी पत्नीके वा अग्निके समीप वसै अर्थात् उनकी अग्निकी ही रक्षा करता रहै ॥ ४९ ॥

अनेन विधिना देहं साधयन्विजितेंद्रियः ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥ ५०

पद्-अनेन ३ विधिना ३ देहम् २ साधयन् १ विजितेन्द्रियः १ ब्रह्मलोकम् २ अवाप्नोति क्रि०नऽ-चऽ-इहऽ-जायते क्रि०पुनःऽ-

योजना-अनेन विधिना देह साधयन् विजितेंद्रियः ब्रह्मचारी ब्रह्मलोकं अवाप्नोति च पुनः इह (जगति) पुनः न जायते (जन्म न लभते) ॥

ता० भा० इस प्रकार अपने देहका साधन करता हुआ और भली प्रकार जितेंद्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त होता है और इस जगत्में कदाचित् भी नहीं जन्मता है ॥ ५० ॥

इति ब्रह्मचारिप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ विवाहप्रकरणम् ३.

गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
वेदं व्रतानि वा पारं नीत्वा ह्युभयमेव वा॥५१॥

पद-गुरवे ४ तुऽ-वरम् २ दत्त्वाऽ-स्नायीत क्रि-तदनुज्ञया ३ वेदम् २ व्रतानि २ वाऽ-पारम् २ नीत्वाऽ-हिऽ-उभयम् २ एवऽ-वाऽ-॥

योजना-वेद वा व्रतानि वा उभय (वेदव्रते) एव पारं नीत्वा तु पुनः गुरवे वरं दत्त्वा तदनुज्ञया स्नायीत-(गृहस्थाश्रमप्रवेशयोग्यं स्नान कुर्यात्) ॥

ता०भा०पूर्वोक्त प्रकारसे मन्त्रब्राह्मणरूप वेदको अथवा वेद और व्रतों (ब्रह्मचारीके धर्म) को अथवा वेद और व्रत दोनोंको समाप्त करके और गुरुको वांछित वर देकर और गुरुकी आज्ञा होय तो विना वर दिये भी स्नान करै अर्थात् गृहस्थाश्रममें प्रवेश योग्य स्नानविधिको करै ॥ ५१ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कांतामसपिंडां यवीयसीम् ॥

पद-अविप्लुतब्रह्मचर्यः १ लक्षण्याम् २ स्त्रियम् २ उद्वहेत् क्रि० अनन्यपूर्विकाम् २ कान्ताम् २ असपिंडाम् २ यवीयसीम् २ ॥

योजना-अविप्लुतब्रह्मचर्यः ब्रह्मचारी लक्षण्याम् अनन्यपूर्विकां कांताम् असपिण्डां यवीयसीम् स्त्रियम् उद्वहेत् (परिणयेत्) ॥

तात्पर्यार्थ-नष्ट नहीं हुआ है ब्रह्मचर्य जिसका ऐसा द्विज ऐसी कन्याके संग विवाह करै कि, जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त हो अर्थात् जिसके देह और अंतरात्माके लक्षण श्रेष्ठ हों। देहके लक्षण वे हैं जो मनुने इस श्लोकमें कहे हैं जिसका कोई अंग विकल न हो, नाम सौम्य-हो, जो हंस वा हस्तीके समान गमन करै, जिसके लोम केश दांत ये तीनों छोटे २ हों, जिसका अग कोमल हो। और अतरात्माके श्रेष्ठ लक्षण इस वचनसे आश्वलायन ऋषिने कहा है कि विवाह वा वाग्दान (सगायी) से प्रथम रात्रिमें इन आठ स्थानोंमेंसे मिट्टीको लाकर प्रत्येक मिट्टीका एक २ पिंड बनावे अर्थात् गोशाला, वामी, द्यूतका स्थान, जलका कुण्ड, ऊपर, खेत, चतुष्पथ (चौराह) और श्मशान ये आठ पिंड बनाकर कन्यासे वर कहै कि, इन आठों पिंडोंमेंसे चाहे जिस पिंडका तू स्पर्श करले। यदि वह कन्या गोशालाकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करले तो धान्यवाली, वामीकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करनेसे पशु-वाली द्यूतस्थानकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श कर-नेसे अग्निहोत्रकी शुश्रूषा करनेवाली, कुण्डकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करनेसे विवेकवाली चतुर सबकी पूजामें परायण, ऊपरकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करले तो रोगिणी, खेतकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करै तो वंध्या, चौराहेकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करै तो व्याभिचा-रिणी और श्मशानकी मिट्टीके पिंडका स्पर्श करै तो विधवा होती है। इस प्रकार श्रेष्ठ लक्ष-णवालीको ही देखकर विवाह करै और जो स्त्री हो अर्थात् नपुसकत्व निवृत्तिके लिये जिसके स्त्रीत्वकी परीक्षा स्त्रियोंके द्वारा करली है और जो अनन्य पूर्विका हो अर्थात् दान वा, भोगसे

१ अव्यगांगी सौम्यनाम्नी हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्वंगीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ मनु० ३ अ० १० श्लो०

पूर्वस्यां रात्रौ गोष्ठवल्मीकिकितवस्थानह्रदेरिणक्षेत्रचतुष्पथश्मशानेभ्यो मृत्तिकां गृहीत्वा पिंडाष्टकं कर्तव्यं तत्रानुक्रमेण प्रथमे पिंडे स्पृष्टे धान्यवती भवेत्, द्वितीये स्पृष्टे पशुमती भवेत्, तृतीयेऽग्निहोत्रशुश्रूषणपरा भवति चतुर्थे विवेकिनी चतुरा सर्वजनार्चनपरा भवति, पंचमे रोगिणी, षष्ठे वंध्या, सप्तमे व्यभिचारिणी, अष्टमे विधवा भवेत् ।

जिसको अन्य पुरुषका संग न हुआ हो, और जो कांत हो अर्थात् वरके मन और नेत्रोंको आनद दे क्यों कि आपस्तंब ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि जिसमें मन और चक्षु ये दोनों निरंतर लगे रहैं उस कन्यासे विवाह होनेसे ऋद्धि होती है परन्तु न्यून वा अधिक बाह्य अगोंके दोष न होनेपरही यह समझनी यदि वे दोष होंय तो पूर्वोक्त कांताकोभी न विवाहै । और जो असापिंडा हो अर्थात् जिसका देह अपने देहके सग एक न हो क्यों कि सापिंडता तभी होती है जब शरीरके अवयव एक हों, सोई दिखाते हैं कि पुत्रका पिताके सग इससे सापिंड्य है कि पिताके शरीरके अवयवोंका सबध वीर्य द्वारा पुत्रमें है इसी प्रकार पिताके द्वारा पितामह आदिके सगभी सपिंडता समझनी इसी प्रकार माताके शरीरके सम्बधसे माताके संग और माताके द्वारा मातामहआदिके संग समझनी । इसी प्रकार परपरासे एक शरीरका सवध होनेसे मौसी और मातुल और चाचा पिताकी स्वसाके सग समझना। इसी प्रकार पतिके सग पत्नीकी सपिंडता है उसके सग अंगकी एकता होनेवाली है । इसी प्रकार भ्राताकी स्त्रियोंके संग अपनी सपिंडता है क्योंकि भ्राताओंके संग अपने शरीरकी एकता है और उनके देहोंके संग उनकी स्त्रियोंके देहोंकी । इस प्रकार जहां २ सपिंड शब्द हो वहां २ साक्षात् वा परंपरा संबंधसे शरीरके अवयवोंका एकही संबध जानना । इसमें यह शंका होती है कि जो मातामह आदिभी सपिंड हैं तो इस वचनके अनुसार उनको दशदिनकाही सूतक मरनेका होना चाहिये सो शंका ठीक नहीं है क्यों कि उसका यह विशेष वचन बाधक है कि विवाही हुई कन्याओंका अशौच वेही मानें जिनके विवाही हों । इससे जिन सपिंडोंमें विशेष वचन न हो तहांही पूर्वोक्त वचन दशदिनके अशौचका बोधक समझना इसीसे एक शरीरके अवयवोंके अन्वयसे सपिंडता अवश्य कहनी । क्योंकि इन श्रुतियोंमेंभी यही कहा है कि आत्माही आत्मासे पैदा हुआहै और प्रजाके अनु (पीछे २) तूही पैदा होता है, और आपस्तबनेभी यह कहा है वही पिता आदि पैदा होकर प्रत्यक्षसे दीखती है तिसी प्रकार गर्भोपनिषद्में लिखा है कि इस शरीरमें छः कोश (वस्तु) हैं तीन पितासे और तीन मातासे अस्थि स्नायु मज्जा पितासे त्वचा मांस रुधिर मातासे होते हैं । इस प्रकार जहां २ शास्त्रोंमें अन्वयका प्रतिपादन किया है । यदि साक्षात् पिताके ही सबंधसे सपिंडता मानोगे तो माताकी सतान और भ्राताके पुत्रोंमें सापिंडता न होगी । क्योंकि समुदायशक्तसे रूढि मानोगे तो जहां तहां मानी हुई अवयवशक्ति त्यागनी पडेगी और परपरासे एक शरीरके अवयवसबधसे सपिंडता माननेमें दोषका अभाव आगे कहेंगे । और जो कन्या अपनेसे यवीयसी हो अर्थात् अवस्था और देहके प्रमाणसे न्यून होय उसको अपनी गृह्यसूत्रमें कही हुई विधिसे विवाहै ॥

भावार्थ—नहीं नष्ट हुआ है व्रत जिसका ऐसा ब्रह्मचारी श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त और स्त्री जिसका पर पुरुषके सग सबध न होय

१ यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबंधस्तस्यामृद्धिः ।
२ दशाहं शावमाशौच सपिंडेषु विधीयते ।

१ प्रत्तानामितरे कुर्युः ।
२ आत्माहि जज्ञे आत्मनः । प्रजामनुप्रजायसे ।
३ स एवाय विरूढः प्रत्यक्षेणोपलभ्यते ।
४ एतत् षाट्कौशिक शरीर त्रीणि पितृतः त्रीणि मातृतः अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः त्वड्मांसरुधिराणि मातृत इति ।

और जो मनोहर हो और अपने सपिंडोंमें न होय और जो अवस्था वा देह प्रमाणसे न्यून होय ऐसी कन्याको विवाहे ॥ ५२ ॥

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् । पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ ५३ ॥

पद-अरोगिणीम् २ भ्रातृमतीम् २ असमानार्षगोत्रजाम् २ पंचमात् ५ सप्तमात् ५ ऊर्ध्वम् २ मातृतः-ऽपितृतःऽ-तथाऽ-॥

योजना-अरोगिणीं भ्रातृमतीम् असमानार्षगोत्रजां कन्याम् (उद्वहेत्) मातृतः पचमात् पितृतः सप्तमात् ऊर्ध्वं सापिण्ड्यं निवर्तते इति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जो कन्या ऐसे रोगवाली न होय जिसकी चिकित्सा न हो सके और जिसका भ्राता विद्यमान होय और अपने प्रवर गोत्रकी न होय क्योंकि गौतम ऋषिने उनका विवाह नहीं लिखा कि जिनका प्रवर एक होय और मनुजीनेभी माता और पिताके सपिंडकी कन्याके संग विवाह नहीं लिखा । और माताके गोत्रकाभी कन्याका विवाह कोई नहीं चाहते । क्योंकि इस वचनसे उक्त कन्याके विवाहमें प्रायश्चित्त लिखा है कि, मामाकी पुत्री माताके गोत्रकी और अपने प्रवरकी कन्याको विवाह ले तो उसे त्यागकर चांद्रायण प्रायश्चित्त करे । पिछले श्लोकके असपिंडा पदसे पिता और माताकी बहिनकी पुत्रियोंका निषेध है और यहां असगोत्रा पदसे उसका निषेध है जो भिन्नकुलमें पैदा हुई असपिंड तो होय पर गोत्र एक होय । असमानप्रवरां इससे उसका निषेध है जो असपिंड और असमानगोत्रकीभी होय पर जिसका प्रवर एक होय । और असपिंडा इस पदसे सपिंड कन्याका विवाह चारों वर्णोंको निषिद्ध है क्योंकि सपिंडता सबमें होसकती है और एक गोत्र और एक प्रवरकी कन्याका जो निषेध है वह द्विजातियोंके ही लिये है । यद्यपि क्षत्री और वैश्योंका कोई प्रातिस्विक (भिन्न २) गोत्रके न होनेसे प्रवर नहीं हो सकता तथापि पुरोहितके गोत्र और प्रवरोंको वर्जदे । क्योंकि आश्वलायन ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि यजमानके प्रवरोंका विभाग करो यह कहकर क्षत्री और वैश्यको पुरोहितकेही प्रवरोंका विभाग होता है. सिद्धांत यह है कि सपिंडा, समानगोत्रा, समानप्रवरा ये तीनों भार्या ही नहीं होसकती और रोगवाली और जिसका भ्राता न होय ये दोनों भार्या हो सकती हैं परतु लौकिक विरोध है अर्थात् रोगिणीमें सतानके न होनेकी जिसके भाई न होयं उसमें पुत्रिका करनेकी शका बनी रहती है, और माताके वशमें मातासे पांचवीं पीढीसे और पिताके वंशमें सातवीं पीढीसे ऊपर सपिंडता नहीं रहती है, इससे यद्यपि यह सपिंड शब्द अवयव शक्ति (अर्थके अनुसारसे) सबका बोधक होनेपर मथकर पकज आदि शब्दके समान इनहीं परिमितोंका बोधक है कि पिता आदि छः ६ वा पुत्र आदि छः और सातवां आत्मा (आप) और संतानके भेदमेंभी जिससे सतानभेद होय उससे सातवीं पीढीतक गिनले तिससे मातासे लेकर माताके पिता और पितामहकी गिनतीमें जो पांचवीं पीढी होय उसे मातृतः पांचवीं कहते हैं इसी प्रकार पितासे लेकर पितामह आदिकी।

१ असमानप्रवरैर्विवाहः ।

२ असपिंडा च या मातुरसपिंडा च या पितुः ।

३ मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ।

१ यजमानस्यार्षेयान् प्रवृणीत इत्युक्त्वा पौरोहित्यान् राजविशान् प्रवृणीते ॥

गिनतीमें जो सातवीं पीढी हो वह पितृतः सप्तमी कहाती है, परंपरा संबंधसे भगिनी, भ्राता, भ्राताकी पुत्री और पितृव्य (चाचा) इनके विवाहमें भिन्न २ कुलसे उत्पन्न होनेसे शाखाका भेद गिना जाताहै, वशिष्ठजीने जो यह कहा है कि मातासे पांचवीं पितासे सातवीं और पैठीनसीने मातासे तीन और पितासे पांचवीं पीढीमें न होय उसे विवाहै यह भी उससे इधरकी कन्याको निषेधके लिये है कुछ प्राप्तिके लिये नहीं, इससे सब स्मृतियोंका अविरोध है यह बातभी सजातीयोंमें जाननी विजातीयोंमें तो शंखऋषिने यह कहा है कि ब्राह्मण आदि एक जातिसे भिन्न २ जातिकी स्त्रियोंमें पैदा हुए जन पृथक् २ होते हैं और जो सजातीय भिन्न २ स्त्रियोंमें पैदा हुए वे सपिंड होते हैं इन सबका शौच (शुद्धि) पृथक् २ होता है जिसको अशौच प्रकरणमें कहेंगे और सपिंड तो तीन पुरुष पर्यंतही होते हैं, यद्यपि इन श्लोकोंसे माताके गोत्रकी कन्याके संग विवाह कहा है तथापि यह किसी २ दक्षिण आदि देशोंमें ही प्रचलित हैं सर्वत्र नहीं ॥

भावार्थ–जिस कन्याके रोग न होय और भ्राता हो और जो अपने गोत्र और प्रवरकी न होय उसे विवाहै और मातासे पांचवीं और पितासे सातवी पीढीतक सापिंडता रहती है॥९३॥

दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात्।
स्फीतादपि न संचारिरोगदोषसमन्वितात्॥

पद–दशपूरुषविख्यातात् ५ श्रोत्रियाणाम् ६ महाकुलात् ५ स्फीतात् ५ अपिऽ–नऽ–संचारिरोगदोषसमन्वितात् ५ ॥

योजना–श्रोत्रियाणां दशपूरुषविख्यातात् महाकुलात् (कन्या) आहर्त्तव्या संचारिरोगदोषसमन्वितात् स्फीतादपि न आहर्त्तव्या ॥

तात्पर्यार्थ–वेदपाठियोंका मातासे और पितासे पांच २ पुरुषोंतक विख्यात जो महान् कुल अर्थात् पुत्र पौत्र पशु दासी ग्राम आदिसे प्रसिद्ध उससे कन्याको विवाह कर लावे और जिसमें कुष्ठ अपस्मार (मृगी) आदि संचारि रोग और माता पिताके शुक्रशोणितद्वारा संतानमें प्रवेश करनेवाले दोष होंय वो चाहै महाकुलभी होय तो उसकी कन्याको न विवाहै। क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे ये दशकुल विवाहमें वर्जित किये हैं, कि, क्रियाहीन, पुरुषहीन, वेदरहित, रोमश, (जिस कुलके मनुष्योंके देहपर अधिक रोम हों), अर्श (ववासीर) की व्याधिसे युक्त, क्षयी, मंदाग्नि, अपस्मारी, श्वित्री (सपेद दाद) कुष्ठी ॥

भावार्थ–दशपुरुषोंतक विख्यात वेदपाठियोंके महान् कुलकी कन्याको विवाहै और संचरि रोग और दोषसे युक्त वडे कुलकीभी कन्याको न विवाहै ॥ ९४ ॥

एतैरेवगुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः।
यत्नात्परीक्षितःपुंस्त्वे युवाधीमाञ्जनप्रियः॥

पद–एतैः ३ एवऽ–गुणैः ३ युक्तः १ सवर्णः १ श्रोत्रियः १ वरः १ यत्नात् ५ परीक्षितः १ पुंस्त्वे ७ युवा १ धीमान् १ जनप्रियः १ ॥

---

१ पचमी सप्तमीं चैव मातृतः पितृतस्तथा ।
२ त्रीनतीत्यमातृतः पंचातीत्य च पितृतः ।
३ यद्येकजाता बहवः पृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः ।
एकापिंडाः पृथक्शौचाः पिंडस्त्वावर्तते त्रिषु ॥ "

१ हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याव्यपस्मारी श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ।

योजना–एतैः एव गुणैः युक्तः सवर्णः श्रोत्रियः यत्नात् पुंस्त्वे परीक्षित युवा धीमान् जनप्रियः वरः (द्रष्टव्य इति शेषः) ॥

तात्पर्यार्थ–अब कन्याके ग्रहणमें नियमोंको कहकर कन्याके दानमें वरके नियमोंको कहते हैं कि इन पूर्वोक्त गुणोंसे ही युक्त और दोषोंसे जो वर्जित होय और जो अपनेसे उत्कृष्ट वा समान वर्णका होय हीन वर्णका न होय और जो स्वय वेदपाठी होय और जिसके पुंस्त्वकी यत्नसे इस नारदोक्त वचनके अनुसार परीक्षा करली होय कि जिसका वीर्य जलमें तरै और जिसका मूत्र मुखसे ऐसा निकसे कि पृथ्वी पर गिरनेके समय झाग उठे इन लक्षणोंसे जो युक्त वह पुरुष और विपरीत लक्षणोंसे युक्त वह नपुसक होता है। और जो युवा होय वृद्ध न होय और जो लौकिक और वेदोक्त व्यवहारोंमें निपुण होय और जो हास्यपूर्वक कोमल भाषण आदिसे सबको प्यारा प्रतीत होय ऐसा वर देखना चाहिये ॥

भावार्थ–जो इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त, सवर्ण वेदपाठी, यत्नसे की हुई परीक्षामें पुरुष, युवा, व्यवहारोंमें निपुण, जनोंको प्रिय होय वही वर देखना ॥ ५५ ॥

यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम्

पद–यत् १ उच्यते क्रि०–द्विजातीनाम् ६ शूद्रात् ५ दारोपसग्रहः १ नऽ–एतत् १ मम ६ मतम् १ यस्मात् ५ तत्रऽ–अयम् १ जायते क्रि०–स्वयम् १ ॥

१ "यस्याप्सुप्लवते बीज ह्रादि मूत्र च फेनिलम् पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु पण्डकः ॥"

योजना–यत् द्विजातीनां शूद्रात् दारोपसंग्रहः उच्यते एतत् मम मतं न (अस्ति) कुतः यस्मात् अय (द्विजातिः) तत्र स्वयं जायते ॥

तात्पर्यार्थ–विवाहके तीन भेद हैं १ रतिके लिये २ पुत्रके लिये ३ धर्मके लिये। उन तीनोंमें पुत्रार्थ विवाहके दो भेद हैं। एक नित्य दूसरा काम्य, नित्यमें प्रजाके लिये सवर्ण वेदपाठी वर देखना इससे सवर्णा कन्या ही मुख्य दिखाई। अब काम्यमें नित्य सयोग होनेसे अनुकल्प (गौण) ताको कहते हैं कि जो काम्य विवाहमें मनुजीने ब्राह्मणको इस प्रकरणमें लिखा है कि कामनासे प्रवृत्त हुए द्विजातियोंकी क्रमसे ये स्त्री श्रेष्ठ होती हैं कि ब्राह्मणकी चारों वर्णकी क्षत्रीकी तीन वर्णकी वैश्यकी दो वर्णकी शूद्रकी १ वर्णकी भार्या होती है यह जो द्विजातियोंको शूद्राका विवाह है यह मुझे (याज्ञवल्क्यको) संमत नही। क्योंकि यह द्विजाति भार्यासे स्वय पैदा होता है और इस श्रुतिमेंभी, यह लिखा है कि वही जाया होती है जिसमें यह पुत्ररूपसे पुनः पैदा होय। इस श्लोकसे जो आवश्यक पुत्रोत्पादनमें प्रवृत हुए द्विजातिको शूद्राके विवाहका निषेध किया उससे यह प्रगट आज्ञा प्रतीत हुई कि आवश्यक पुत्रोत्पत्तिके लिये काम्य विवाहमें ब्राह्मणको क्षत्रिया वैश्याके, क्षत्रीको वैश्याके विवाहमें दोष नहीं क्योंकि वेभी द्विजाति हैं परतु यहभी विवाह अब प्रचलित नहीं है किंतु समान वर्णकी कन्याका विवाहही उत्तम समझा जाता है।

१ "कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाःस्युः क्रमशो वराः शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ॥ ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः।"

२ 'तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।'

भावार्थ-जो मनु आदिकोंने द्विजातियोंकोभी शूद्रसे स्त्रीका विवाह करना लिखा है वह मेरा मत नहीं अर्थात् याज्ञवल्क्यको समत नहीं क्योंकि यह द्विजाति जायामें स्वयं पैदा होता है ॥५६॥

तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥

पद्-तिस्रः १ वर्णानुपूर्व्येण ३ द्वे २ तथाऽ-एका १ यथाक्रमम्ऽ-ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् ६ भार्या १ स्वा १ शूद्रजन्मनः ६ ॥

योजना-ब्राह्मणक्षत्रियविशां वर्णानुपूर्व्येण तिस्रः द्वे तथा एका यथाक्रमं भार्याः भवंति शूद्रजन्मनः स्वा (शूद्रा एव) ॥

तात्पर्यार्थ-अव उस मनुष्यके विवाहका क्रम कहते हैं जिसको रतिकी कामना होय और पुत्रवान् होय और भार्या नष्ट होगई होय और जो अन्य आश्रमका अधिकारी न होय और जिसको गृहस्थाश्रममें टिकनेकी आकांक्षा होय कि वर्णके क्रमसे तीनों द्विजातियोंमें ब्राह्मणकी तीन ३ क्षत्रीकी दो २ वैश्यकी एक १ शूद्रकी भी एकही भार्या होतीहै और सवर्णा तो सबको मुख्य है । और पूर्व पूर्व वर्णकी कन्याके अभावमें उत्तर २ वर्णकी भार्या होसकती है और यही क्रम नित्य विवाहके समान पुत्रोत्पत्तिके लिये किये हुए काम्य विवाहमें भी समझना । अतएव शूद्रापुत्रका पुत्रोंके मध्यमें गिनना और उसके विभागको कहनाभी उसकाही है जो रतिकी कामनासे गृहस्थाश्रमवालेकी आकांक्षासे उत्पन्न होय और जो अकस्मात् शूद्रामें पैदा होय वह न पुत्र है और न उसको, धनका विभाग मिलता है ॥

भावार्थ-ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनों द्विजातियोंकी क्रमसे तीन ३ दो २ एक और शूद्रकी शूद्राही एक भार्या होती है ॥ ५७ ॥

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥

पद्-ब्राह्मः १ विवाहः १ आहूयऽ-दीयते क्रि-शक्त्यलंकृता १ तज्जः १ पुनाति क्रि-उभयतःऽ-पुरुषान् २ एकविंशतिम् २ ॥

योजना-यस्मिन् आहूय शक्त्यलंकृता कन्या दीयते सः ब्राह्मः विवाहः तज्जः पुत्रः उभयतः एकविंशतिं पुरुषान् पुनाति ॥

ता० भा०-अव आठ प्रकारोंके विवाहोंमें प्रथम ब्राह्म विवाहका लक्षण कहते हैं कि जिस विवाहमें पूर्वोक्त वरको बुलाकर शक्तिसे अलंकृत की हुई कन्या सकल्प करके दी जाय उस विवाहको ब्राह्म विवाह कहते हैं उस कन्यामें पैदा हुआ पुत्र यदि सुपात्र होय तो दोनों तरफ इक्कीस २१ कुलोंको अर्थात् दश पिता आदि और दस पुत्र आदि इक्कीसवां अपना आत्मा पवित्र करता है ॥ ५८ ॥

यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् । चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥ ५९ ॥

पद्-यज्ञस्थे ७ ऋत्विजे ४ दैवः १ आदायऽ-आर्षः १ तुऽ-गोद्वयम् २ चतुर्दश २ प्रथमजः १ पुनाति क्रि-उत्तरजः १ चऽ-षट् २ ॥

योजना-यस्मिन् यज्ञस्थे ऋत्विजे कन्या दीयते स दैवः तु पुनः यस्मिन् वरात् गोद्वयं आदाय कन्या दीयते सः आर्षः प्रथमजः चतुर्दश उत्तरजः षट् पुनाति ॥

ता० भा०-जिस विवाहमें यज्ञ कराते हुए ऋत्विजको कन्या दीजाय वह दैव और जिस विवाहमें वरसे आवश्यक और विवाहमें करने योग्य धर्मके लिये दो बैल लेकर कन्या दीजाय वह आर्षविवाह होता है

क्योंकि मनुजीने इसे वचनसे धर्मके लिये ही १ गोमिथुन वा २ गोमिथुन लेंने कहे हैं। दैव विवाहसे पैदा हुआ चौदह कुलोंको ७ पहिले ७ पिछले और आर्ष विवाहसे पैदा हुआ छः कुलोंको अर्थात् तीन पिछले तीन अंगलोंको पवित्र करताहै ॥ ५९ ॥

इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेर्थिने। स कायः पावयेत्तज्जः षट्षड्वंश्यान्सहात्मना ॥ ६० ॥

पद–इतिऽ–उक्त्वाऽ–चरताम् क्रि–धर्मं २ सहऽ–या १ दीयते क्रि–अर्थिने ४ सः १ कायः १ पावयेत् क्रि–तज्जः १ षट् २ षट् वंश्यान् २ सहऽ–आत्मना ३ ॥

योजना–सह धर्मं चरताम् इति उक्त्वा या कन्या अर्थिने दीयते सः विवाहः कायः (प्राजापत्यः) तज्जः पुत्रः आत्मना सह षट् षट् वंश्यान् पावयेत् ॥

ता० भा० तुम दोनों मिलकर अपने २ धर्मोंका आचरण करो यह कहकर जो याचना करनेवाले वरको कन्या दीजाय वह विवाह प्राजापत्य होताहै उससे पैदा हुआ पुत्र छः पिछले और छः अगले और एक अपनी आत्मा इस प्रकार तेरह १३ को पवित्र करताहै ॥ ६० ॥

आसुरो द्रविणादानाद्गांधर्वः समयान्मिथः राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥

पद–आसुरः १ द्रविणादानात् ५ गांधर्वः १ समयात् ५ मिथःऽ–राक्षसः १ युद्धहरणात् ५ पैशाचः १ कन्यकाछलात् ५ ॥

योजना–द्रविणादानात् आसुरः मिथः समयात् गांधर्वः, युद्धहरणात् राक्षसः, कन्यकाछलात् पैशाचः विवाहः स्मृतः बुधैरिति शेषः ॥

१ "एक गोमिथुन द्वे वा वरादादाय धर्मतः। कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥"।

ता० भा०–वरसे द्रव्यको लेकर कन्याका जो दान वह आसुर, परस्पर कन्या और वरकी प्रीतिसे जो विवाह वह गांधर्व, और युद्धसे कन्याको हरनेसे जो विवाह सो राक्षस, और छलसे स्वाप आदिके समयमें जो कन्याका ग्रहण वह पैशाच विवाह कहाताहै ॥ ६१ ॥

पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम्। वैश्या प्रतोदमाद्द्याद्वेदने त्वग्रजन्मनः ॥ ६२ ॥

पद–पाणिः १ ग्राह्यः १ सवर्णासु ७ गृह्णीयात् क्रि–क्षत्रिया १ शरम् २ वैश्या १ प्रतोदम् २ आदद्यात् क्रि–वेदने ७ तुऽ–अग्रजन्मनः ६ ॥

योजना–अग्रजन्मनः (ब्राह्मणस्य) वेदने सवर्णासु पाणिर्ग्राह्यः क्षत्रिया शरं गृह्णीयात् वैश्या प्रतोदम् आदद्यात् ॥

ता० भा० सवर्णा स्त्रियोंके विवाहमें अपने गृह्यमें उक्त विधिसे पाणि (हाथ) कोही और अपनेसे उत्कृष्ट (उत्तम) वरके विवाहमें क्षत्रियकी कन्या बाणको और वैश्या प्रतोद (कोरडा) को और इस मनुवचनके अनुसार शूद्रा वस्त्रकी दशाको ग्रहण करै ॥ ६२ ॥

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

पद–पिता १ पितामहः १ भ्राता १ सकुल्यः १ जननी १ तथाऽ–कन्याप्रदः १ पूर्वनाशे ७ प्रकृतिस्थः १ परः १ परः १ ॥

योजना–पिता पितामहः भ्राता सकुल्यः तथा जननी, एषां मध्ये पूर्वनाशे सति प्रकृतिस्थः परः परः कन्याप्रदः भवति ॥

ता० भा०–पिता, बाबा, भाई, कुलमें उत्पन्न, और माता इन सबमें यदि पूर्व २ न होय तो पर २ (अग्रिम) कन्याका दान करै परन्तु यदि वह प्रकृतिस्थ हो अर्थात् उन्माद आदि दोषसे रहित हो ॥ ६३ ॥

१ 'वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने।'

अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ।
गम्यं त्वभावे दातॄणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम्

पद्-अप्रयच्छन् १ समाप्नोति क्रि-भ्रूणहत्याम् २ ऋतौ ७ ऋतौ ७ गम्यम् २ तुऽ-अभावे ७ दातॄणाम् ६ कन्या १ कुर्यात् क्रि-स्वयम् १ वरम् २ ॥

योजना-यस्य दानाधिकारः सः कन्याम् अप्रयच्छन् सन् ऋतौ ऋतौ भ्रूणहत्याम् अवाप्नोति, दातॄणाम् अभावें तु कन्या स्वयं गम्य वर कुर्यात् ॥

ता० भा०-इन पूर्वोक्त पिता आदि दाताओंमें जो ऋतुसमयमें कन्याका दान न करै वह एक २ ऋतुमें भ्रूण (बाल) हत्याको प्राप्त होताहै, और इन सबके अभावमें कन्या गमनके योग्य वरके सग स्वंय विवाह करले ॥ ६४॥

सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चोरदंडभाक् ।
दत्तामपि हरेत्पूर्वाच्छ्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत् ॥

पद्-सकृत्ऽ-प्रदीयते क्रि-कन्या१ हरन् १ ताम् २ चोरदंडभाक् १ दत्ताम् २ अपिऽ-हरेत् क्रि० पूर्वात् ५ श्रेयान् १ चेत्ऽ-वरः १ आव्रजेत् क्रि- ॥

योजना-कन्या सकृत् प्रदीयते, तां हरन् सन् चोरदंडभाक् भवति, चेत् (यदि) पूर्वात् श्रेयान् वरः आव्रजेत् तर्हि दत्ताम् अपि हरेत् ॥

ता० भा०-शास्त्रका नियम यह है कि कन्याका दान एक बारही होता है इससे दिये पीछे उसको जो हरै वह चौरदडका भागी होताहै। यदि प्रथम वरकी अपेक्षा विद्या आभिजन (कुल) आदिसे उत्तम वर आजाय और प्रथम वर पातकी और दुराचारी होय तो दीहुई कन्याकोभी हरले यहभी सप्तपदीसे प्रथम वा वाग्दानसे दी हुई कन्याके विषयमें समझना, क्योंकि इस मनुवचनके[1] अनुसार सप्तपदी होनेपरही विवाहकी समाप्ति होती है ॥ ६५ ॥

अनाख्याय ददद्दोषं दंड उत्तमसाहसम् ।
अदुष्टां तु त्यजन्दंड्यो दूषयंस्तु मृषाशतम्॥

पद्-अनाख्यायऽ-ददत् १ दोषम् २ दडः १ उत्तमसाहसम् २ अदुष्टाम् २ तुऽ-त्यजन् १ दंड्यः १ दूषयन् १ तुऽ-मृषाऽ-शतम् २ ॥

योजना-यः (कन्यायाः) दोषम् अनाख्याय ददत् सन् भवति सः पिता उत्तमसाहसं दड्यः अदुष्टां कन्यां त्यजन् तु पुनः मृषा दूषयन् वरः शतम् दड्यः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पिता कन्याके ऐसे दोषको न कहकर दान करता है जो नेत्रोंसे दीखसके उसको और जो वर निर्दोष कन्याको प्रतिग्रह लेकर त्यागदे उसको उत्तम साहसका यह दड राजादे उत्तम साहसका[2] दड कमसे कम सहस्रपण लेना या सर्वस्व हरना, अथवा देहमें दाग देकर पुरसे निकालना अथवा उसके अगको छेदन करना होता है और इसको उत्तम साहस कहते हैं, कि विष वा शस्त्रसे मारना, परदाराका सग, और जिससे प्राणोंका नाश होनेकी सभावना होय वह और जो विवाहसे पहिलेही द्वेष आदिसे कन्याको झूठे दोष लगावे उसको राजा सौ पण दड दे ॥

भावार्थ-कन्याके दोषको न कहकर दान देनेवालेको और निर्दोष कन्याके त्यागनेवाले

---

[1] तेषा निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ।

[2] "उत्तमे साहसे दडः सहस्रावर इष्यते । वधः सर्वस्वहरण पुरान्निर्वासनांकने ॥ तदगच्छेद इत्युक्तो दड उत्तमसाहसे । व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम् ॥ प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ।"

वरको उत्तम साहस दंड दे। और जो कन्याको झूठा दोष लगावे उसको सौ पण दंड दे॥६६॥

अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूःसंस्कृता पुनः। स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतःश्रयेत्

पद्–अक्षता १ चऽ–क्षता १ चऽ–एवऽ–पुनर्भूः १ संस्कृता १ पुनःऽ–स्वैरिणी १ या १ पतिम् २ हित्वाऽ–सवर्णम् २ कामतःऽ–श्रयेत् क्रि॰॥

योजना–अक्षता च पुनः क्षता या पुनः संस्कृता भवेत् सा पुनर्भूः या पतिं हित्वा कामतः सवर्णं श्रयेत् सा स्वैरिणी॥

ता॰ भा॰–प्रथम ५२ श्लोकमें वह कन्या विवाहनी लिखी है जो अन्यपूर्वा न होय अब उस अन्यपूर्वाके दो भेद कहते हैं १ पहिली पुनर्भूः दूसरी २ स्वैरिणी और पुनर्भूभी दो प्रकारकी होती है। विवाहसे पहिले पुरुष सबधसे जो दूषित वह क्षता और पुनः संस्कारसे जो दूषित वह अक्षता और जो कौमार अवस्थाहीमें अपने पतिको त्यागकर अन्य सवर्ण किसी पुरुषका आश्रय ले ले वह स्वैरिणी कहाती है॥ ६७॥

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया। सपिंडो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात्॥ ६८॥

पद्–अपुत्राम् २ गुर्वनुज्ञातः १ देवरः १ पुत्रकाम्यया ३ सपिंडः १ वाऽ–सगोत्रः१वाऽ–घृताभ्यक्तः १ ऋतौ ७ इयात् क्रि–॥

आगर्भसंभवाद्गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्। अनेन विधिना जातःक्षेत्रजोस्यभवेत्सुतः६९

पद्–आऽ–गर्भसंभवात् ५ गच्छेत् क्रि॰ पतितः १ तुऽ–अन्यथाऽ–भवेत् क्रि–अनेन ३ विधिना ३ जातः १ क्षेत्रजः १ अस्य ६ भवेत् क्रि–सुतः १॥

योजना–गुर्वनुज्ञातः देवरः सपिंडः वा सगोत्रः पुत्रकाम्यया घृताभ्यक्तः (सन्) ऋतौ अपुत्राम इयात् गच्छेत्(सन्) आगर्भसंभवात् गच्छेत् अन्यथा तु पतितः भवेत् अनेन विधिना जातः पुत्रः अस्य (पूर्वनोढुः) क्षेत्रजः पुत्रो भवेत्॥

ता॰भा॰–जिस स्त्रीके पुत्र न हुआ होय उस स्त्रीके संग पिता आदिकी आज्ञासे पुत्रकी कामनाके लिये घृतसे अपने अंगको लपेटकर ऋतुके समयमें देवर वा सपिंड वा सगोत्र गमन करे और तबतक गमन करै जबतक गर्भ न रहे। गर्भके अनंतर पुत्र होनेपर जो गमन करे वह पतित होता है। इस विधिसे पैदा हुआ जो पुत्र है वह प्रथम पतिका क्षेत्रज पुत्र होता है। आचार्य तो यह कहते हैं कि यह वचन उसी कन्याके विषयमें है जो वाग्दत्ता होय क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे यह कहा है कि जिस कन्याका वाग्दान किये पीछे पति मरजाय तिसको इस विधिसे अपना निजका देवर विवाह ले परन्तु इस मनुजीके श्लोकमें अपुत्रा पदसे वाग्दानके अनंतर विवाहसे प्रथम पुत्र न होनेका निश्चय यद्यपि दुर्घट है तथापि वरमें जो ऐसे दोष प्रथम ही प्रतीत होजाँय कि जिनसे पुत्र न होय तो उस वाग्दत्ता कन्याको देवर विवाह ले॥ ६८॥ ६९॥

हृताधिकारां मलिनां पिंडमात्रोपजीविनीम्। परिभूतामधः शय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम्॥ ७०॥

पद्–हृताधिकाराम् २ मलिनाम् २ पिंडमात्रोपजीविनीम् २ परिभूताम् २ अधःशय्याम् २ वासयेत् क्रि॰ व्यभिचारिणीम् २॥

---

१ "यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

योजना-व्यभिचारिणीं (स्त्रियं) हृताधिकाराम् मलिनाम् पिंडमात्रोपजीविनीम् परिभूतां अधःशय्यां (स्वगृहे एव) वासयेत् ॥

ता० भा०-जो स्त्री व्यभिचारिणी होय उसको इस प्रकार अपने घरमेंही बसावे कि भृत्योंके भरण पोषणका अधिकार उससे छीन ले और देहके निर्वाहमात्रके लिये भोजन दे धिक्कार आदिसे उसका तिरस्कार करै और भूतलपर शयन करावै यह सब वैराग्यके ही लिये हैं क्योंकि इस वचनसे[1] यह कहा है कि उसका वही प्रायश्चित्त है जो पुरुषको परस्त्री गमनमें करना पडता है ॥ ७० ॥

सोमः शौचं ददावासां गंधर्वश्च शुभां गिरम्।
पावकःसर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो ह्यतः॥

पद-सोमः १ शौचम् २ ददौ क्रि-आसाम्६ गंधर्वः १ चऽ-शुभाम् २ गिरम् २ पावकः १ सर्वमेध्यत्वम् २ मेध्याः १ वैऽ-योषितः १ हिऽ-अतःऽ-॥

योजना-आसां (स्त्रीणां) सोमः शौचं गंधर्वः शुभां गिरम् पावकः सर्वमेध्यत्वं यतः ददौ अतः योषितः मेध्याः वै (एव) ॥

ता० भावार्थ-जिससे इन स्त्रियोंको विवाहसे पहिले भोगनेके अनंतर चंद्रमाने शुद्धि गधर्वोंने मधुर वचन अग्निने संपूर्ण अंगोंकी पवित्रता दी है इससे स्त्री पवित्र ही होती है यह वचन अर्थवादरूप है ॥ ७१ ॥

व्यभिचारादृतौ शुद्धिर्गर्भेत्यागो विधीयते।
गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके७२॥

पद-व्यभिचारात् ५ ऋतौ ७ शुद्धिः १ गर्भे७ त्यागः १ विधियिते क्रि-गर्भभर्तृवधादौ ७ चऽ-तथाऽ-महति ७ पातके ७ ॥

योजना-व्यभिचारात् स्त्रियाः ऋतौ शुद्धिः विधियते गर्भे च पुनः गर्भभर्तृवधादौ तथा महति पातके त्यागः विधीयते ॥

तात्पर्यार्थ-यदि स्त्री अपने मनमें पुरुषांतरके संग भोगका ऐसा संकल्प करै कि जिसका प्रकाश न होय, उससे जो पाप उसकी शुद्धि रजोदर्शनके अनतर होजातीहै और यदि शूद्र आदिके संगसे गर्भ रहजाय अथवा गर्भ और भर्त्ताको नष्ट करदे या कोई महापातक करै तो उस स्त्रीको उपभोग और धर्मकार्य इनसे त्याग दे अर्थात् ये इससे न करावै कुछ घरसे न निकाल दे क्योंकि इस[1] वचनसे एक घरमें उसका रोकना लिखा है और इस[2] वचनसे द्विजातियोंकी भार्याओंका शूद्रके सग भोग होनेपर उनकाही प्रायश्वित लिखा है जिनके संतान न हुई होय और ये चार स्त्री भी इस वचनसे[3] त्यागने योग्य लिखी है कि शिष्यके और गुरुके सग जो गमन करै और पतिके मारनेवाली और जो चर्मकार आदिका सग करै सिद्धांत यह है कि मनके व्यभिचारसे शुद्धि है शरीरकेसे नहीं ॥

भावार्थ-मनके व्यभिचारमें ऋतुसे गर्भकी स्थिति गर्भ और भर्त्ताका नाश और ब्रह्महत्या आदि करनेसे स्त्रीका त्याग करदे ॥७२॥

सुरापी व्याधिता धूर्ता वंध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्यापुरुषद्वेषिणी तथा ॥

पद-सुरापी १ व्याधिता १ धूर्त्ता १ वध्या १ अर्थघ्नी १ अप्रियंवदा १ स्त्रीप्रसूः १ चऽ-अधिवेत्तव्या १ पुरुषद्वेषिणी १ तथाऽ-॥

योजना-सुरापी व्याधिता धूर्ता वध्या अर्थघ्नी अप्रियंवदा स्त्रीप्रसूः तथा पुरुषद्वेषिणी

---

१ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ।

१ निरुंध्यादेकवेश्मनि ।

२ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः । अप्रजातास्ता विशुध्यति प्रायश्चित्तेन नेतराः ।

३ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या । पतिघ्नी च विशेषण जुगितोपगता च या ।

एवमष्टप्रकारा स्त्री अधिवेत्तव्या तस्याः सत्त्वेपि अन्या स्त्री परिणेया ॥

ता० भावार्थ–इन आठ प्रकारकी स्त्रियोंके होने परभी मनुष्य अन्य स्त्रीको विवाह लेवे जो मदिराको पीवै वा शूद्रा हो क्योंकि ईस वचनसे उस मनुष्यका आधा शरीर पतित हो जाता है जिसकी भार्या मदिराको पीवै, सामान्यसे सवका निषेध है इससे सुरापी शब्दसे शूद्रा लेनी, दीर्घरोगसे ग्रस्त, धूर्ता (कपटित) वध्या (निष्फल), धनको जो नष्ट करे, कठोर वचन, जिसके लडकीहि होती हों, जो पुरुषका हित न करे अर्थात् ये आठ स्त्री अधिवेदन करने योग्य होती हैं । अन्य भार्य्याके स्वीकारको अधिवेदन कहते हैं ॥ ७३ ॥

अधिविन्ना तु भर्तव्या महदेनोन्यथा भवेत् । यत्रानुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते ॥ ७४ ॥

पद–अधिविन्ना १ तुऽ–भर्त्तव्या १ महत् १ एनः १ अन्यथाऽ– भवेत् क्रि–यत्रऽ– आनुकूल्यम् १ दंपत्योः ६ त्रिवर्गः १ तत्रऽ– वर्धते क्रि– ॥

योजना–अधिविन्ना (स्त्री) पत्या भर्त्तव्या अन्यथा (अपालने) महत् एनः भवेत् दंपत्योः यत्र आनुकूल्यं तत्र त्रिवर्गः वर्धते ॥

ता० भा०–अधिविन्ना (जिसके होते विवाह किया जाय) स्त्रीकी पालना दानमानसत्कारसे अवश्य करनी जो न करै तो महान् पाप दडके योग्य होताहै क्योंकि जिस घरमें स्त्री पुरुषका एकचित्त होताहै वहां धर्म, अर्थ, काम तीनों वढते हैं ॥ ७४ ॥

मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सेह कीर्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह ॥ ७५ ॥

पद–मृते ७ जीवति ७ वाऽ–पत्यौ ७ या १ नऽ–अन्यम् २ उपगच्छति क्रि–सा १ इहऽ–कीर्तिम् २ अवाप्नोति क्रि–मोदते क्रि– चऽ– उमया ३ सहऽ– ॥

योजना–पत्यौ मृते वा जीवति सति या स्त्री अन्यं न उपगच्छति सा इह (लोके) कीर्तिम् अवाप्नोति च पुनः उमया सह मोदते ॥

ता० भा०–पतिके जीते हुए वा मरने पर जो स्त्री अन्यपुरुषका संग नहीं करती वह इस लोकमें कीर्तिको प्राप्त होतीहै और पुण्यके प्रतापसे पार्वतीके सग क्रीडा करती है अर्थात् आनद भोगतीहै ॥ ७५ ॥

आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् । त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः ॥ ७६ ॥

पद–आज्ञासंपादिनीम् २ दक्षाम् २ वीरसूम् २ प्रियवादिनीम् २ त्यजन् १ दाप्यः १ तृतीयांशम् २ अद्रव्यः १ भरणम् २ स्त्रियाः ६ ॥

योजना–आज्ञासपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीं त्यजन् (पुरुषः) तृतीयांशम् अद्रव्यः स्त्रियाः मरण दाप्यः (दंड्यः) राज्ञेति शेषः ॥

ता० भा०–जो पुरुष आज्ञाकारिणी दक्ष (चतुरा) पुत्रवती मधुरभाषिणी स्त्रीको त्यागताहै अर्थात् उसके होते हुए, द्वितीय विवाह करता है उसको राजा धनके तीसरे भागका और निर्धन होय तो पहिली स्त्रीके भरण पोपणका दण्ड दे ॥ ७६ ॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धर्मःपरःस्त्रियाः ॥ आशुद्धेःसंप्रतीक्ष्योहि महापातकदूषितः ७७

पद–स्त्रीभिः ३ भर्तृवचः १ कार्यम् १ एषः १ धर्मः १ परः १ स्त्रियाः ६ आऽशुद्धेः ५ संप्रतीक्ष्यः १ हिऽ–महापातकदूषितः १ ॥

योजना–स्त्रीभिः भर्तृवचः कार्यं यतः स्त्रियाः एष धर्मः परः अस्ति महापातकदूषितः हि (अपि) आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यः ॥

१ पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरा पिवेत् ।

ता० भा०-स्त्रियोंको अपने पतिका वचन मानना क्योंकि स्त्रीका परम धर्म यही है यदि पति महापातक (ब्रह्महत्या) आदिसे दूषित होजाय तो तबतक उसकी प्रतीक्षा करै जबतक महापातकसे शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार जिसकी शुद्धि न हुई होय शुद्धिके अनन्तर उसी प्रकार पतिके स्वतंत्र होजाती है निदान महापातकके समय वचन न माने तो दोष नहीं।

लोकानंत्यं दिवः प्राप्तिःपुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। यस्मात्तस्मात्स्त्रियःसेव्याःकर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥ ७८ ॥

पद-लोकानंत्यम् १ दिवः ६ प्राप्तिः १ पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ३ यस्मात् ५ तस्मात् ५ स्त्रियः १ सेव्याः १ कर्त्तव्याः १ चऽ-सुरक्षिताः १ ॥

योजना-यस्मात् पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैःलोकानत्यं दिवःप्राप्तिर्भवति तस्मात् स्त्रियः सेव्याः च पुनः सुरक्षिताः कर्त्तव्याः ॥

तात्पर्यार्थ-अब शास्त्रीय दाराके संग्रहका फल कहतेहैं जिससे स्त्रियोंकेही प्रतापसे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रसे लोकानत्य (वंशकी स्थिरता) और अग्निहोत्र आदि करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै तिससे प्रजाके लिये स्त्रियोंके सग उपभोग करना और धर्मके लिये स्त्रियोंकी भली प्रकार रक्षा करनी क्योंकि आपस्तंब ऋषिने इस वचनसे दारसंग्रह (विवाह) का प्रयोजन, धर्म और प्रजाका होनाही कहा है कि यदि धर्म, शील, और पुत्रवती भार्याके विद्यमान रहते दूसरी स्त्रीको न विवाहै। रतिका फल तो केवल लौकिक है ॥

भावार्थ-जिससे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रोंसे वंशका विस्तार और स्वर्गकी प्राप्ति स्त्रियोंसेही होती हैं तिससे स्त्रियोंको भोगना और भली प्रकार रक्षा करना ॥ ७८ ॥

१ धर्मप्रजासपन्नेषु दारेषु नान्यां कुर्वीत ।

षोडशर्तुनिशाःस्त्रीणांतस्मिन्युग्मासुसंविशेत् । ब्रह्मचार्येवपर्वाण्याद्याश्चतस्रश्चवर्जयेत् ॥ ७९ ॥

पद-षोडश १ ऋतुनिशाः १ स्त्रीणाम् ६ तस्मिन् ७ युग्मासु ७ संविशेत् क्रि-ब्रह्मचारी १ एवऽ- पर्वाणि २ आद्याः २ चतस्रः २ चऽ-वर्जयेत् क्रि० ॥

योजना-स्त्रीणाम् ऋतुनिशाः षोडश भवति तस्मिन् युग्मासु संविशेत् यः पर्वाणि च पुनः आद्याः चतस्रः वर्जयेत् सः ब्रह्मचारी एव (अस्ति) ॥

तात्पर्यार्थ-गर्भ धारणके योग्य समयको ऋतु कहते हैं वह रजोदर्शनके दिनसे षोडश १६ अहोरात्र होताहै। उस ऋतुमें जो रात्रियां युग्म (सम) ६।८।१० आदि हों उनमें ही पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रीका सग करै इस श्लोकमें युग्मासु यह बहुवचन समुच्चयके लिये है। इस लिये ही नहीं कि तीन रात्रियोंमें गमन करै अन्य दिनमें न करै इससे एक ऋतुमें यदि संपूर्ण युग्म रात्रि अनिषिद्ध (शुद्ध) मिलजांय तो सबमें गमन करै इस प्रकार गमन करता हुआ गृहस्थ ब्रह्मचारी होताहै। अतएव जहां श्राद्ध आदिमें गृहस्थीको ब्रह्मचर्यसे रहना लिखा है वहांभी स्त्रीके संगसे ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं होता । और अमावस्या आदिपर्व और प्रथमकी चारि रात्रि इनको वर्जिदे। इस श्लोकमें पर्वाणि इस बहुवचनसे अष्टमी और चतुर्दशीभी समझनी क्योंकि मनुजीने इस श्लोकसे अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णमासी इनकाभी ऋतु समयमें गृहस्थी द्विजको त्याग लिखकर ब्रह्मचारी कहा है निदान पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रियोंको इस नियमसेही भोगे ॥

१ अमावस्यामष्टमी च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः॥

भावार्थ-स्त्रियोंका ऋतु रजो दर्शनसे सोलह १६ रात्रि होती हैं उनमें सम रात्रियोंमें गमन करै और आदिकी चार रात्रियोंको जो वर्जे दे वह ब्रह्मचारीही होता है ॥ ७९ ॥

एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्। सुस्थ इंदौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ८०

पद-एवम् ऽ-गच्छन् १ स्त्रियम् २ क्षामाम् २ मघाम् २ मूलम् २ च ऽ-वर्जयेत् क्रि-सुस्थे ७ इन्दौ ७ सकृत् ऽ-पुत्रम् २ लक्षण्यम् २ जनयेत् क्रि-पुमान् १ ॥

योजना-एवं क्षामां स्त्रियं सकृत् (एकवारम्) गच्छन् पुमान् इंदौ सुस्थे (सति) लक्षण्यं पुत्रं जनयेत् च पुनः मघां मूलं च वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इस पूर्वोक्त प्रकारसे स्त्रीका संग करता हुआ पुरुष क्षामा (निर्बल) स्त्रीकाही संग करै यद्यपि उस समय निर्बलता रजोदर्शनके व्रतसेही स्त्रियोंको होजाती है पर यदि न होय तो अल्प भोजन वा स्निग्ध भोजनसे पुत्रोत्पत्तिके लिये स्त्रीको निर्बल करना चाहिये क्योंकि इस वचनमें यह लिखा है पुरुषका वीर्य अधिक होय तो पुरुष और स्त्रीका अधिक होय तो स्त्री होती है, जिस समय युग्म रात्रिमेंभी स्त्रीका शोणित अधिक होता है तब स्त्री होती है परंतु उसका आकार पुरुषके समान होता है और विषम रात्रिमेंभी जब पुरुषका वीर्य अधिक होता है उस समय पुरुष होता है परंतु उसका आकार स्त्रीके समान होता है क्योंकि काल तो निमित्तमात्र है गर्भके उपादान कारण होनेसे शुक्रशोणित ही प्रबल है तिससे ऋतुके समय स्त्रीको निर्बल करना आवश्यक है । मघा मूल इन दो नक्षत्रोंको वर्जे दे और चंद्रमा एकादश आदि शुभस्थानोंमें स्थित होय चकारसे पुंनक्षत्रयोग लग्नभी शुद्ध होय तो एकही रात्रिमें पुमान् जिसके पुरुषपनमें कुछ बाधा न होय शोभन लक्षणोंसे युक्त पुत्रको पैदा करता है ॥

भावार्थ-इस प्रकार निर्बल स्त्रीके संग गमन करै मघा और मूल इन दो नक्षत्रोंको वर्जे दे और चंद्रमा शुभस्थान (११ आदि) में स्थित होय तो पुरुष उत्तम लक्षणवाले पुत्रको पैदा करता है ॥ ८० ॥

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतःस्मृताः ८१

पद-यथाकामी १ भवेत् क्रि-वा ऽ-अपि ऽ-स्त्रीणाम् ६ वरम् २ अनुस्मरन् १ स्वदारनिरतः १ च ऽ-एव ऽ-स्त्रियः १ रक्ष्याः १ यतः ऽ-स्मृताः १ ॥

योजना-वा स्त्रीणां वरम् अनुस्मरन् स्वदारनितरः पुरुषः यथाकामी भवेत् यतः स्त्रियः रक्ष्याः स्मृताः-मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-यथाकामी उसको कहते हैं जो भार्याकी इच्छाके अनुसार भोगमें प्रवृत्त हो इद्रने जो स्त्रियोंको वर दिया है. उसका स्मरण करता हुआ पुरुष यथाकामी हो, वह वर यह है कि जो तुम्हारी कामनाको न करैगा वह पातकी होगा, वे स्त्री बोली कि हम वरको स्वीकार करती हैं और ऋतुसे हमारे प्रजा हो और प्रजाके होनेतक कामकी चेष्टा रहे तिससेही

१ 'पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियः ।

१ भवतीनां कामविहता पातकी स्यात् इति यथा ता अब्रुवन् वरं वृणीमहे ऋत्वियात्प्रजां विदामहे काममाविजनिनोः सभवामेति तस्मात् ऋत्वियात् स्त्रियः प्रजां विदंति काममाविजनिनोः संभवंति वरं वृतं तासामिति ।

स्त्री ऋतुसेही प्रजाको प्राप्त होती हैं और संतान होनेतक कामचेष्टा रहती है यही स्त्रियोंका वर है, और अपनी ही स्त्रीमें मनुष्य रत रहै (मन रक्खै) और प्रायश्चित्तके भयसे अन्य-स्त्रीका संग न करै, इन दोनोंके लौकिक प्रयोजन को कहते हैं कि जिससे धर्मशास्त्रमें स्त्री रक्षा करने योग्य कही है, तिससे सुरक्षिता करनी और उनकी भली प्रकार रक्षा तभी हो सकती है जब मनुष्य अन्य स्त्रीके संगको त्यागै और अपनी स्त्रीमें यथाकामी रहै इसीसे पूर्व कह आये हैं कि (तस्मिन् युग्मासु संविशेत्) तिस ऋतुमें युग्म रात्रियोंमें ही स्त्रीका संग करे, क्या ऋतुमें गमन करै यह वाक्य विधि है ? वा नियम है ? अथवा परिसंख्या है ? विधि वहां होतीहै जहां सर्वथा प्राप्ति न हो, और नियम वहां होता है जहां कहीं पावे कहीं नहीं, और परिसख्या वहां होती है जहां तिसमें भी और अन्यत्र भी पावे क्योंकि इस वचनसे यही कहाहै, यह विधि तो नहीं है क्योंकि स्त्रीका गमन रागसे प्राप्त है, परिसंख्याभी नहीं है क्योंकि परिसंख्याके माननेमें तीन दोष आवेंगे कि प्राप्तका बाध, परार्थकल्पना, स्वार्थका त्याग, इससे न्यायके ज्ञाता नियमको मानते हैं इन तीनों पूर्वोक्त विधियोंमें भेद (फरक) क्या है, इनका भेद यह है कि, जहां विधेयकी सर्वथा प्राप्ति न हो वहां विधि होती है, जैसे इन वाक्योंसे अग्निहोत्र करै, अष्टका श्राद्ध करै, अग्निहोत्र और अष्टकाश्राद्ध करना किसी अन्य वचनसे प्राप्त न था ! और जिस जगह प्राप्त हो उससे अन्य ऐसे पक्षमें प्राप्तिको बोध न करै जहां प्राप्ति न हो वह नियम होता है जैसे इन वाक्योंसे समदेशमें यज्ञ करै, दर्श और पौर्णमास यज्ञ करै, यज्ञका करना कहा है वह देश विना नहीं होसकता इससे अर्थात् देश पाया, वह देश दो प्रकारका है एक सम और दूसरा विषम, यदि यजमान समदेशमें ही यज्ञ करा चाहै तौ (समे यजेत) यह वचन उदासीन होता है क्योंकि इसके अर्थका त्याग होगया जब यजमान विषमदेशमें यज्ञ करा चाहै तब (सम यजेत) यह यह वचन स्वार्थका करताहै क्योंकि उस समय समदेशमें यज्ञ प्राप्त न था, और विषम देशकी निवृत्ति तो अर्थात् होजायगी श्रुतिमें कहे समदेशसेही यज्ञ होजायगा । यदि अशास्त्रोक्त (विषम) देशका स्वीकार यजमान करेगा तो शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार यज्ञका अनुष्ठान (करना) न होगा, इसी प्रकार यह स्मृतिकोभी नियम विधिमें समझना कि पूर्वाभिमुख होकर अन्नोंका भोजन करै । जहां एकही विधेय अनेक जगह प्राप्त हों उसकी एकसे निवृत्तिकरके पुनः एकमें जो विधान वह परिसंख्या विधि होती है जैसे इस मंत्रसे अश्वाभिधानी और गर्दभाभिधानी रसनाका ग्रहण प्राप्त है पुनः (अश्वाभिधानीं आदत्ते) इस मन्त्रसे अश्वाभिधानीका ग्रहण होताहै गर्दभाभिधानीकी निवृत्ति होतीहै अर्थात् अश्वकी जिह्वाका ग्रहण और गर्दभकी जिह्वाकी निवृत्ति होतीहै तिसी प्रकार (पंचपचनखा भक्ष्या) यहां भी यदृच्छा (स्वेच्छा) श्वा आदि और शश आदिका भक्षण रागसे प्राप्त था शश आदिकोंका मंत्रमें श्रवण है इससे श्वा आदिके भक्षणकी निवृत्ति होती है । फिर यहां नियमविधि

१ विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसख्या विधीयते ।

२ अग्निहोत्रं जुहुयात् अष्टकाः कर्तव्याः ।

१ समे देशे यजेत दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत ।

२ प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत ।

३ इमामगृभ्णन् रशना मृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्ते ।

४ ऋतौ उपेयात् ।

माननी कि परिसंख्याविधि? कोई कहताहै कि परिसंख्या क्योंकि किया है विवाह जिसने ऐसे पुरुषको अपनी इच्छासे ऋतुमें गमन प्राप्त है इससे विधिका यह विषय नहीं और इस गृह्यस्मृतिके विरोधसे नियमविधिभी नहीं कह सकते क्योंकि विवाहके अनंतर तीन रात्र द्वादशरात्र वा संवत्सर ब्रह्मचारी रहै, यदि द्वादशरात्र वा संवत्सरसे पूर्वही ऋतु होजाय तो ऋतुमें गमन करेही इस नियमसे ब्रह्मचर्य खंडित होजायगा और जिस वचनका भावार्थ प्राप्त होजाय वह विशेषण पर होजाताहै यहां भी ऋतुमें भार्यागमन इच्छासे प्राप्त है इससे यह अर्थ करना पडेगा कि गमन करै तो ऋतुहीमें करै और पुत्रोत्पत्तिविधि नियमित है उसीसे ऋतुगमन नित्य प्राप्तही है, जो ऋतुमें गमन करै ही यह नियम निरर्थक होजायगा। और नियममें अदृष्ट (एव की) कल्पना करनी पडेगी क्योंकि इस वाक्यमें एवपद नहीं है किंच ऋतुमें गमन करै ही यह नियम स्वकार करोगे तो जो पति परदेशमें है वा व्याधि आदिसे असमर्थ है वा भोगका अनभिलाषी है उसको ऐसे अर्थका उपदेश होजायगा जो वह न कर सके और नियम मानोगे तो नियममें विधिका अनुवादरूप विरोधभी होगा क्योंकि एक वार पढा हुआ शब्द एकपक्षमें उसी अर्थका अनुवाद करेगा और एकपक्षमें उसीका विधान तिससे ऋतुहीमें गमन करै अन्यत्र न करै यह परिसंख्याही युक्त है यहां भारुचि विश्वरूप आदि परिसंख्याको नहीं मानते इससे नियमविधिही युक्त है क्योंकि पक्षमें अपने अर्थका उसमें विधान है और इस स्मृतिसे ऋतुमें गमन न करनेमें दोषभी है कि जो ऋतुस्नानवाली भार्याके समीप न जाय तो उसको घोर भ्रूणहत्या लगती है कदाचित् कहो कि नियममें विधिके अनुवादका विरोध है सो ठीक नहीं यह अनुवाद नहीं है किंतु यह वचन विध्यर्थही है क्योंकि विधिके अनुवादका विरोध वहांही होता है जहां विधेयपर्यंत उसीको उतनाही फिर दुवारा कहा जाय और अन्यके उद्देशसे अप्राप्तका विधान किया जाय जैसे वाजपेयाधिकरण पूर्वपक्षमें इस वाक्यमें कि स्वाराज्य (चक्रवर्ती) की कामनावाला पुरुष वाजपेय यज्ञ करै वाजपेयरूप गुणके विधानपर्यंत तो यागका अनुवाद है फिर स्वाराज्यके फलके लिये उसका विधान है इससे ऋतौ भार्या उपेयात् इस वाक्यमें अनुवादका कोई काम नहीं और यह कहोगे कि नियममें अदृष्टकी कल्पना करनी होयगी वह परिसंख्यामेंभी समान है और ऋतुभिन्नमें गमन करनेवालेको दोषकी कल्पना करनी होयगी—जो कोई यह कहै कि नियमसे पुत्रोत्पत्तिकी जो विधि उसके आक्षेपसेही नित्य गमन प्राप्त है इससे नियम नहीं, सो ठीक नहीं क्योंकि वही यह नियमसे पुत्रोत्पत्तिकी विधि मानोगे कि इस प्रकार दुर्बल स्त्रीका संग करता हुआ पुरुष सुलक्षण पुत्रको पैदा करता है पुत्रके उत्पादनकी विधि स्त्रीके गमनसे भिन्न है सो ठीक नहीं क्योंकि गमन है करण जिसमें ऐसा पुरुषका व्याप-

---

१ दारसंग्रहानंतर त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा ब्रह्मचारी स्यात्।

१ ऋतुस्नाता तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः।

२ वाजपेयेन स्वाराज्यकामो यजेत।

३ एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां लक्षण्यं पुत्रं जनयेत्।

रही पुत्रोत्पत्तिका कर्म उक्त वचनमें दीखता है जैसे अग्निहोत्रको करता हुआ स्वर्गको प्राप्त होता है । कदाचित् वह पूर्वोक्त दोष होगा कि दूरपर स्थित और असमर्थ पतिको अशक्य स्त्रीभोगकी विधिका उपदेश शास्त्र करेगा । वह दोषभी नहीं क्योंकि समीपवर्ती और समर्थ पतिके लिये ही शास्त्रका उपदेश है क्योंकि इन वचनोंमें विशेषकर यह कहा है कि समीपमें वर्तमान जो पति स्त्रीके ऋतुस्नान किये पीछे गमन नहीं करता, जो स्वस्थ पुरुष ऋतुस्नानके अनंतर अपनी स्त्रीके समीप नहीं जाता वह हत्याका भागी होता है। इच्छाके अभावकी निवृत्तिभी नियमके बलसे होजायगी । जब नियम है तो इच्छाके अभावमेंभी गमन करना पडेगा । और इस विधिको पूर्वोक्त विशेषणपरताभी नहीं कह सकते । क्योंकि पक्षमें भावार्थ विधिही यह हो सकती है । पूर्वोक्त गृह्यस्मृतिकाभी विरोध नहीं क्यों कि वर्षदिनसे पूर्वही ऋतुके समय होनेपर गमन करनेवालेको श्राद्ध आदिमेंभी ब्रह्मचर्यहानिका दोष नहीं तिससे अपने अर्थकी हानि, अन्य अर्थकी कल्पना प्राप्तका बाध यह तीन दोषवाली परिसख्या विधि युक्त नहीं । यद्यपि पच पचनखा भक्ष्याः यहां शश आदिका भक्षण प्राप्त है इससे पक्षमें नियम और शशआदि और श्वा आदि दोनोंका भक्षण प्राप्त है इससे पक्षमें परिसख्या इस प्रकार नियम परिसंख्या दोनोंका सभव है। तथापि नियम पक्षमें शश आदिका भक्षण न करोगे तो दोषका प्रसग होगा, और श्वा आदिका भक्षण न करोगे तो दोष न होनेका प्रसंग होगा इससे प्रायश्चित्त स्मृतिके विरोधसे परिसंख्याही मानी है । इसी प्रकार यहांभी नियममें विधिही है कि सायकाल और प्रातःकालके समयमें भोजन द्विजातियोंको स्मृतिमें कहा है यदि परिसंख्या मानोगे तो वीचमें भोजन न करै यह पुनः उक्त दोष आवेगा । इससे नियम होनेपर ऋतु २ में गमन करै यह वीप्सा (द्विर्वचन) भी लब्ध होती है निमित्त ऋतुकी आवृत्ति (पुनः पठन) होगी तो नैमित्तिक (स्त्रीगमन) की भी आवृत्ति हो जायगी । इसी प्रकार 'यथाकामी भवेत्' यह भी नियमही है कि अनृतु (ऋतुके विना) मेंभी स्त्री की कामना होय तो स्त्रीके सग रमण करै ही । ऋतुमें गमन करैही, वा निषिद्धको छोडकर सर्वत्र गमन करैही, इन गौतमके दोनों सूत्रोंमें भी नियमही है । इससे ऋतौ उपेयात् तस्मिन् युग्मासु सविशेत् यहां नियम है परिसंख्या नहीं । इस प्रकार अत्यंत विस्तारसे अल (समाप्ति) है अर्थात् इतनाही वहुत है ॥

भावार्थ—अथवा स्त्रियोंके वरको स्मरण करता हुआ पुरुष स्त्रियोंकी इच्छाके अनुसार गमन करै और जिससे स्त्री रक्षा करने योग्य कही है इससे अपनी स्त्रियोंमें रत रहै ॥ ८१ ॥

भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः । बंधुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ ८२ ॥

पद—भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ३ बंधुभिः ३ च ऽ—स्त्रियः १ पूज्याः १ भूषणाच्छादनाशनैः ३ ॥

---

१ अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः ।

२ ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति । यःस्वदारानृतुस्नातान् स्वस्थः सन्नोपगच्छति ।

१ सायंप्रातर्द्विजातीनामशन स्मृतिनोदितम् ।

२ नान्तरा भोजन कुर्यात् ।

३ ऋतौ उपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्ज्यम् ।

योजना–भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुर देवरैः च पुनः बंधुभिः स्त्रियः भूषणाच्छादनाशनैः पूज्याः॥

ता० भा०–पति भाई पिता ज्ञातिके मनुष्य सासु और श्वशुर और देवर और बंधु ये सब साध्वी स्त्रियोंका पूजन अपनी २ शक्तिके अनुसार भूषण वस्त्र पुष्प आदिसे करें क्योंकि पूजितकी हुई स्त्री धर्म अर्थ कामको बढाती हैं॥ ८२॥

संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी। कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवंदनं भर्तृतत्परा ८३॥

पद्–संयतोपस्करा १ दक्षा १ हृष्टा १ व्ययपराङ्मुखी १ कुर्यात् क्रि० श्वशुरयोः ६ पादवंदनम २ भर्तृतत्परा १॥

योजना–सयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी भर्तृतत्परा स्त्री श्वशुरयोः पादवंदनं कुर्यात्॥

तात्पर्यार्थ–रक्खे हैं जहांके तहां उपस्कार (गृहसामग्री) जिसने जैसा ऊखल मूसल और सूप ये कडनके स्थानमें और चक्की और हाथा ये पीसनेके स्थानमें और गृहके व्यापारमें कुशल और सदैव प्रसन्न और व्यय (खर्च) में पराङ्मुख और अपने पतिके वशमें रहती हुई सास और श्वशुरके चरणोंको प्रतिदिन नमस्कार करे। जिस स्त्रीको घरका व्यापार सौंपा जाय वह इस प्रकारही रहै॥

भावार्थ–सावधानीसे गृहकी सामग्री रक्खै और चतुर प्रसन्नमुख और कम खर्च करै और पतिके वशमें रहकर सास और श्वशुरके चरणोंको नमस्कार करे॥ ८३॥

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ८४

पद्–क्रीडाम् २ शरीरसंस्कारम् २ समाजोत्सवदर्शनम् २ हास्यं २ परगृहे ७ यानं २ त्यजेत् क्रि०–प्रोषितभर्तृका १॥

योजना–प्रोषितभर्तृका (स्त्री) क्रीडां शरीरसस्कारं समाजोत्सवदर्शन हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्॥

ता० भा०–जिस स्त्रीका पति परदेशमें होय वह गेंद आदिसे क्रीडा और उवटने आदिसे शरीरका सस्कार, जनोंका समूह और विवाह आदि उत्सवोंका दर्शन, हंसी और पराये घरमें गमन इन सबको त्याग दे॥ ८४॥

रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्धके। अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातंत्र्यं क्वचित्स्त्रियाः॥

पद्–रक्षेत् क्रि० कन्याम् २ पिता १ विन्नाम् २ पतिः १ पुत्राः १ तुऽ–वार्धके ७ अभावे ७ ज्ञातयः १ तेषाम् ६ नऽ–स्वातंत्र्यम् १ क्वचित्ऽ–स्त्रियाः ६॥

योजना–पिता कन्यां पतिः विन्नां रक्षेत् तु पुनः वार्द्धके पुत्राः तेषां अभावे ज्ञातयः रक्षेयुः स्त्रियाः क्वचित् आपि स्वातंत्र्य नास्ति॥

ता० भा०–विवाहसे पहिले कन्याकी निंदित कर्मोंसे पिता विवाहके अनंतर पति और पतिके अभावमें पुत्र रक्षा करै और यदि वृद्ध अवस्थामें ये न होयँ तो ज्ञातिके मनुष्य और ज्ञातिके मनुष्यभी न होंय तो राजा रक्षा करै क्योंकि इस वचनसे[1] पितृकुल और पतिकुलके अभावमें राजाकोही प्रभु और रक्षक लिखा है इससे स्त्रियोंको किसी अवस्थामें स्वतत्रता नहीं॥८५॥

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः। हीना न स्याद्विना भर्त्रा गर्हणीयान्यथा भवेत्॥

पद्–पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः ३ हीना १ नऽ– स्यात् क्रि–विनाऽ–भर्त्रा ३ गर्हणीया १ अन्यथाऽ–भवेत् क्रि०–॥

[1] पक्षद्वयावसाने तु राजा भर्ता प्रभुः स्त्रियाः।

योजना-भर्त्रा विना पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः स्त्री हीना न स्यात् अन्यथा गर्हणीया भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पति समीपमें न होय तो स्त्री ऐसे स्थानमें न रहै जहां पिता, माता, पुत्र, भ्राता, सास, श्वशुर, और मामा न हों इनके विना रहै तौ निंदाके योग्य होती है । यह कथन उसी पक्षमें है जब स्त्री पतिके मरणानंतर ब्रह्मचारिणी रहै क्योंकि विष्णुस्मृतिमें विधवावस्थामें ब्रह्मचर्य और सती होना लिखा है और व्यासजीने कपोतिनीके इतिहासमें इन वचनोंसे महान् पुण्य दिखाया है कि कपोतिनी पतिव्रता जलती हुई चिताकी अग्निमें प्रविष्ट होगई वहां चित्रांगदधर अपने पतिको प्राप्त हुई फिर वह पक्षी भार्यासे मिलकर स्वर्गमें गया और बडी पूजासे भार्या सहित रमता भया और तिसी प्रकार शंख और अंगिरा ऋषिने भी यह कहा है कि जो स्त्री पतिके संग सती होती है वह उतने कालतक स्वर्गमें वसती है जितने मनुष्यके शरीरमें रोम हैं, जैसे सर्पका पकडनेवाला विलमेंसे सांपको निकालता है इस प्रकार वहभी अपने पतिको नरकसे उद्धार करके पतिके सग आनद भोगती है । और पतिमें तत्पर हुई अप्सराओंके गण स्तुति करते हैं जिसकी ऐसी वह स्त्री अपने पतिके संग तावत् कालपर्यंत क्रीडा करती है इतने चौदह (१४) इंद्र राज्य भोगें । जो स्त्री विधवा होनेसे प्रथम पतिके मरतेही अग्निमें पतिके संग मरती है । चाहै वह पति ब्रह्म हत्यारा वा मित्रका हत्यारा होय वा कृतघ्नी होय उसको भी पवित्र करती है । पतिके मरे पीछे जो स्त्री सती होती है वह अरुंधतीके समान स्वर्गलोकमें पूजी जाती है । इतने स्त्री पतिके मरे पीछे देहको अग्निमें दग्ध न करै इतने वह स्त्रीके शरीरसे नहीं छूटती । हारीत ऋषिनेभी यह लिखा है कि जो स्त्री सती होती है वह माता पिता और पतिके कुलको पवित्र करती है जो स्त्री दुःखित पतिके संग दुःखी प्रसन्नके समय प्रसन्न परदेश जानेके समय मलीन और कृश होती है और पतिके मरतेही मरती है वही स्त्री पतिव्रता जाननी यह धर्म चांडालपर्यंत उन स्त्रियोंका है जो गर्भवती न होय और जिनकी संतान वालक न होय । क्योंकि सब वचनोंमें यही सामान्यसे लिखा है कि भर्ताके सग जो सती होती है जो ब्राह्मणीको सती होनेके यह निषेध हैं वे दूसरी चितामें जलनेके ही निषेधक हैं कि ब्राह्मणीको मृत पतिके संग होना नहीं है और तीनों वर्णोंमें सती होना परम तप है यही वेदकी आज्ञा है । जीती हुई पतिके हितको करै पतिके मरे पीछे आत्मघात करै । जो ब्राह्मणी मरे हुये पतिके साथ सती होती है वह आत्म

१ भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा ।

२ पतिव्रता सम्प्रदीप्तं प्रविवेश हुताशनम् । तत्र चित्रांगदधरं भर्तारं सान्वपद्यत ॥ ततः स्वर्गतः पक्षी भार्ययासह सगतः कर्मणा पूजितस्तत्र रेमे च सह भार्यया ।

३ तिस्रः कोट्योर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे। तावत्काल वसेत्स्वर्गे भर्त्तारं यानुगच्छति । व्यालग्राही यथा व्याल वलादुद्धरते विलात् । तद्वदुद्धृत्य सा नारी सह तेनैव मोदते ॥ तत्र सा भर्तृपरमास्तूयमानाप्सरोगणैः । क्रीडते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ब्रह्मघ्नो वाथ मित्रघ्नः कृतघ्नो वा भवेत् पतिः । पुनात्य विधवा नारी तमादाय मृतातु या । मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् । सारुंधतीसमाचारा स्वर्गलोके महीयते । यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् । तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात् कथचन ।

१ मातृकं पैतृकं चापि यत्र चैव प्रदीयते । कुलत्रय पुनात्येषा भर्तारं यानुगच्छति ।

हत्यासे पति और अपने आत्माको स्वर्गमें नहीं पहुंचाती इत्यादि वचन जो ब्राह्मणीको सती होनेके निषेधके हैं वे सब पृथक् चितामेंही सती होनेके (निषेधक हैं क्योंकि) इस वचनसे पृथक् चितामेंही निषेध है कि पृथक् चितामें ब्राह्मणी सती न हो इससे यहभी स्पष्ट है कि क्षत्रिय आदिकोंकी स्त्रियोंको पृथक् चितामेंभी दोष नहीं, कोई यह जो कहते हैं कि पुरुषोंके समान स्त्रियोंकोभी आत्महत्या निषिद्ध है इससे श्येनयागके समान यह उपदेश उसी स्त्रीको है जिसको बडी भारी स्वर्गकी इच्छा है और जो निषेध शास्त्रको नहीं मानती, श्येनका उपदेश (शत्रुके मारनेका अभिलाषी पुरुष श्येनयज्ञ करे) भी उसी पुरुषको है जिसके अंतःकरणमें तीव्र क्रोध हो और हिंसाके निषेधको न मानै, यह उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि जो मनुष्य श्येन है करण जिसमें ऐसी जो भावना (करना) जिसमें प्राणीकी हिंसा होनेवाली उसमें विधिका तो स्पर्श न हो और निषेधका स्पर्श होनेसे श्येनको अनर्थता (बुरा) इससे कहतेहैं कि उसका फल बुरा है उनके मतमें स्त्रीका सती होना शास्त्रसे विहित है इससे हिंसाही स्वर्गके अर्थ है क्योंकि अग्नीषोमके पशुवत् निषेधका स्पर्श नहीं है, इससे सतीका होना श्येनके समान नहीं है जो कोई यह मानते हैं कि मारनेके पैदा करनेवाले व्यापारको हिंसा कहते हैं श्येनको परके मरणानुकूल व्यापार होनेसे हिंसा कह सकते हैं क्योंकि कामनाके अधिकारमें करणमें रागसे प्रवृत्ति हो सकती है इससे विधिको प्रवर्तकता नहीं है रागके द्वारा हिंसारूप होनेसे श्येनयाग निषिद्ध (बुरी) है इससे उसका रूपही अनर्थ है, उनके मतमेंभी सती होनेके शास्त्रने मरणकोही स्वर्गका साधन कहा है यद्यपि मरणमें रागसे प्रवृत्ति है तथापि अग्निमें प्रवेशरूप मरणके पैदा करनेवाले व्यापारमें विधिसेही प्रवृत्ति है इससे भूतोंकी हिंसा न करै इस निषेधका अवकाश नहीं है जैसे भूति (धन) की कामनावाला पुरुष वायव्य श्वेत पशुकी हिंसा करै तिससे यह बात स्पष्ट है कि सती होना श्येनके समान नहीं है जो कोई यह कहते हैं कि स्वर्गकी कामनासे अपनी अवस्थाके प्रथम न करै इस श्रुतिके विरोधसे सती होना मने है सो ठीक नहीं है क्योंकि उक्त श्रुतिका यह तात्पर्य है कि स्वर्गकी कामनासे अपनी अवस्थाके पूर्व वही मनुष्य न मरै जिसको मोक्षकी अभिलाषा हो क्योंकि अवस्थाके शेष रहनेपर नित्य और नैमित्तक कर्मोंके करनेसे अंतःकरणका मल जब नष्ट होजायगा तो श्रवण मनन निदिध्यासनकी प्राप्तिके द्वारा नित्य निरातिशय (सर्वोत्तम) ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्ष होनेके संभव है तिससे वह अनित्य अल्पसुखरूप स्वर्गके लिये अपनी अवस्थाका व्यय (नाश) न करै इससे जो स्त्री मोक्षको नहीं चाहती और अनित्य अल्प सुखरूप स्वर्गकोही चाहती है उसको अन्य काम्यकर्मोंके समान सती होना युक्त है इससे संपूर्ण निर्दोष है ॥

---

१ मृतानुगमन नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरे षु तु वर्णेषु तपः परममुच्यते ॥ जीवंती तद्धितं कुर्यान्मरणादात्मघातिनी ॥ या स्त्री ब्राह्मणजाताथा मृत पतिमनुव्रजेत् । सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ।

२ पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रा गंतुमर्हति ।

३ श्येनेनाभिचरन्यजेत ।

१ न हिंस्यात्सर्वाभूतानि ।

२ वायव्य श्वेतमालभेत भूतिकामः ।

३ तस्मादुहन पुरायुषः स्वः कामी प्रेयात् ।

भावार्थ-स्त्री पतिके मरनेपर पिता माता पुत्र भाई सास श्वशुर मामा इनसे हीन (इन के विना) न रहै जो रहती है वह निंदाको प्राप्त होती है ॥ ८६ ॥

पतिप्रियाहिते युक्ता स्वाचारा विजितें-द्रिया । सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानु-त्तमां गतिम् ॥

पद-पतिप्रियाहिते ७ युक्ता १ स्वाचारा १ विजितेंद्रिया १ सा. १ इहऽ-कीर्तिं २ अवा-प्नोति क्रि-प्रेत्यऽ-चऽ-अनुत्तमां २ गतिम्२ ॥

योजना-या स्त्री पतिप्रियहिते युक्ता स्वा-चारा विजितेंद्रिया भवति सा इह कीर्तिं च पुनः प्रेत्य अनुत्तमां (सर्वोत्तमां) गतिं अवा-प्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-जो स्त्री पतिके प्रिय (निर्दोष मनके अनुकूल आचरण) में और हित (परलोकमें हितकारी) में युक्त होती है और जिसका आचरण शोभन है। शंख ऋषिने इस वचनसे[1] शोभन आचरण यह कहा कि विना कहे घरसे बाहिर न जाय, विना डुपट्टा ओढे न जाय, शीघ्र न चलै, पर पुरुषके सग न बोले, और व्यापारी वैद्य सन्यासी वृद्ध इनसे बोलनेमें दोष नहीं है, नाभिको न दिखावे, टकनों तक वस्त्रको पहिने, स्तनोंको न खोले, न हँसे, न नग्न हो, पति और पतिके बधुओंके संग वैर न करै, गणिका, धूर्त, कुटिनी, संन्या-सिनी, प्रेक्षणिक (यद्वातद्वा फिरै), मायासे कपट करनेवाली, दुष्टस्वभाव इनके सग न बैठे क्योंकि संसर्गसेभी दुष्टचरित्र हो जाताहै। और श्रोत्र और वाक् आदि इंद्रियोंको जीते ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होती है यह सपूर्ण स्त्रीका धर्म विवाहसे पीछे समझना क्योंकि इस वच-नसे[1] विवाहसे पूर्व स्त्रियोंको यथेच्छ आचरण कहा है और विवाहकी विधिही स्त्रियोंका यज्ञो-पवीत कहा है ॥

भावार्थ-पतिके प्रिय और हितमें लगी रहै शुद्ध आचरण करे इद्रियोंको जीते ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम गतिको प्राप्त होती है ॥ ८७ ॥

सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधौ धर्म्ये ज्येष्ठया न विने-तरा ॥ ८८ ॥

पद-सत्याम् ७ अन्याम् २ सवर्णायाम् ७ धर्मकार्यम् २ नऽ-कारयेत् क्रि-सवर्णासु ७ विधौ ७ धर्म्ये ७ ज्येष्ठया ३ नऽ-विनाऽ-इतरा १ ॥

योजना-सवर्णायां सत्याम् अन्यां धर्मकार्यं न कारयेत् सवर्णासु वह्वीषु मध्ये ज्येष्ठया विना धर्म्ये विधौ इतरा न नियोज्या ॥

भावार्थ-सवर्णा (सजातिय) स्त्रीके विद्यमान होनेपर अन्य वर्णकी स्त्रीसे धर्मसबधी कार्य न करावे और वहुतसी सवर्णा स्त्रियोंके होनेपर ज्येष्ठा पत्नीके विना अन्य स्त्रीको धर्मकार्यमें नियुक्त न करै ॥ ८८ ॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः । आहरेद्विधिवद्दारानग्नींश्चैवाविलंबयन् ॥ ८९ ॥

पद-दाहयित्वाऽ-अग्निहोत्रेण ३ स्त्रियम् २ वृत्तवतीम् २ पतिः १ आहरेत् क्रि-विधिवत्ऽ-दारान् २ अग्नीन् २ चऽ-एवऽ-अविलंबयन्१ ॥

[1] नानुक्त्वा गृहान्निर्गच्छेत्, नानुत्तरीया, न त्वरित व्रजेत्, न परपुरुष भाषेतान्यत्र वणिक्प्रव्रजितवृद्धेभ्य , ननाभि दर्शयेत्, आ गुल्फाद्वासः परिदध्यात्, न स्तनौ विवृतौ कुर्यात्, न हसेदप्रावृता, भर्तारं तद्ब न्धून्वा न द्विष्यात् । न गणिकाधूर्ताभिसारिणीप्रव्राजि-ताप्रेक्षणिकामायामूलकुहककारिकादुःशीलादिभिः सहै-कत्र तिष्ठेत्, संसर्गेण हि चारित्र दुष्यतीति ।

[1] प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः वैवा-हिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः ।

योजना-पतिः वृत्तवतीं स्त्रियम् अग्निहोत्रेण विधिवत् दाहयित्वा च पुनः अविलंबयन् सन् दारान् च पुनः अग्नीन् विधिवत् आहरेत् (स्वीकुर्यात्)॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त आचरणवाली स्त्री यदि मरजाय तो उसको अग्निहोत्रकी अग्निसे-वह अग्नि न मिले तो स्मार्त (लौकिक) अग्निसे भस्म करके, यदि पुत्र उत्पन्न न हुआ हो और कोई यज्ञभी न किया हो अन्य कोई स्त्रीभी न होय तो पुनः स्त्री और अग्निहोत्रको शीघ्रही विधिसे स्वीकार करै क्योंकि दक्षऋपिने इस वचनसे[1] यह कहा है कि द्विज एकदिनभी विना आश्रम न रहै। यह धर्म उसही स्त्रीका है जिसको अग्निके आधानका सह अधिकार हो अन्यका नहीं और जो इन वचनोंसे[1] यह कहा है कि जो मनुष्य पहिली भार्याके जीवते हुए दूसरी भार्याको वैतानिक (वैदिक) अग्निसे दग्ध करता है वह दग्ध करना मदिरापानके समान है। जो मनुष्य दूसरी स्त्रीके मरनेपर और जो अपनी इच्छासे अग्निहोत्रको त्यागता है इन दोनोंको ब्रह्महत्यारे जानै। वह निषेध उसही दूसरी स्त्रीके लिये है जिसको पतिके सग अग्निके आधान करनेका अधिकार न हो अर्थात् जो भिन्न वर्णकी हो॥

भावार्थ-श्रेष्ठ आचरणवाली स्त्रीको पति अग्निहोत्रसे भस्म करके, शीघ्रही विधिसे अग्निहोत्र और दारा (स्त्री) योंको स्वीकार करै अर्थात् विवाह करै॥ ८९॥

१ अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः।

१ द्वितीयां चैव यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः। जीवत्यां प्रथमार्यां तु सुरापानसम हि तत्। मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत। ब्रह्मघ्नं तं विजानीयात् यश्च कामात्समुत्सृजेत्।

इति विवाहप्रकरणम्॥ ३॥

अथ वर्णजातिविवेकप्रकरणम् ॥४॥

**सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायंते हि सजातयः॥
अनिंद्येषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः९०॥**

पद-सवर्णेभ्यः ५ सवर्णासु ७ जायन्ते क्रि-हि ऽ-सजातयः १ अनिंद्येषु ७ विवाहेषु७ पुत्राः १ संतानवर्द्धनाः १ ॥

योजना-सवर्णासु स्त्रीषु सवर्णेभ्यः पतिभ्यः अनिंद्येषु विवाहेषु संतानवर्द्धनाः सजातयः पुत्राः जायते ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मण आदि सवर्ण पतियोंसे ब्राह्मणी आदि विवाही हुई सवर्णा स्त्रियोंमें जो पुत्र पैदा होते हैं वे मातापिताके सजातीय होते हैं क्योंकि इस वचनसे विवाहित स्त्रियोंमेंही पूर्वोक्त विधि मानी है और उक्त वचनमें विन्नापद[1] सबंधिशब्द है इससे अपने दूसरे शब्दकी अपेक्षा करनेसे सवर्ण पतिके संग जिसका विवाह हुआ हो उस सवर्णा स्त्री कोही जनावैगा इससे इस श्लोकमें एक सवर्ण पद स्पष्टार्थ है इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि उक्त विधिसे विवाही हुई सवर्णामें सवर्ण विवाहनेवाले वरसे जो उत्पन्न हुए होंवे समान जातीय होते हैं, इससे कुंड, गोलक, कानीन, सहोढज आदि सवर्ण नहीं हो सकते और सवर्ण अनुलोमज प्रतिलोमजोंसे भिन्न उनका अहिंसा आदि साधारण धर्मोंमें अधिकार है क्योंकि इस वेचनसे यह कहा है कि जो अपध्वंस (व्यभिचार) से पैदा हुए हैं वे सब शूद्रोंके समान धर्मवाले कहे हैं[2] अर्थात् द्विजोंकी सेवा आदिही वे करैं। कदाचित् कोई यह शंका करै कि कुंड और गोलकको ब्राह्मण न मानोगे तो श्राद्धमें निषेध क्यों कहा क्योंकि प्राप्ति होनेपर निषेध होता है और इस न्यायका विरोध है कि जो जिस जातिके मनुष्यसे जिस जातिकी स्त्रीमें पैदा होता है वह इस प्रकार उसही जातिवाला होता है जैसे गौसे गौमें पैदा हुई गौ और अश्वसे घोडीमें पैदा हुआ अश्वही होता है तिससे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें पैदा हुआ ब्राह्मण यह विरुद्ध नहीं है और कानीन पौनर्भव आदि पुत्रोंके प्रकरणमें जो यह वेचन कहा है कि यह विधि मैंने सजातीय पुत्रोंमें कही है[1], उस वचनकाभी विरोध होगा, यह शका उनकी अच्छी नहीं है क्योंकि श्राद्धमें निषेध इस भ्रमकी निवृत्तिके लिये है कि ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें पैदा हुआ ब्राह्मणही होता है जैसे अत्यंत अप्राप्तभी पतितका श्राद्धमें निषेध है और न्यायकाभी विरोध नहीं है। क्योंकि वहांही न्याय विरोध होता है जहां जाति प्रत्यक्ष जानी जाय। ब्राह्मण आदि जाती तो स्मृतियोंसे जानी जाती है जैसे ब्राह्मणत्वके समान होनेपरभी कुंडिनका वशिष्ठ और अत्रिका गौतम गोत्र इस स्मृतिसे[2] होता है तैसे मनुष्यके समान होनेपरभी ब्राह्मण आदि जाति स्मृतिसेही जानी जाती है और माता पिताकीभी जातिका लक्षण यही है। कदाचित् कहो अनवस्था होगी सो नहीं संसारके अनादि होने शब्द और अर्थका व्यवहार है। सजातीय पुत्रोंकी यह विधि मैंने कही इस वचनका व्याख्यान भी उक्तके अनुवादरूपसे करेंगे। क्षेत्रज पुत्र तो नियोगके शास्त्रोक्त होनेसे और शिष्टाचारसे माताका सजातीय होता है जैसे धृतराष्ट्र, पांडु, विदुर क्षेत्रज माताके

---

१ विन्नास्वेष विधिः स्मृतः ।
२ शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेपध्वसजाः स्मृताः ।

१ सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः ।
२ कुंडिनो वशिष्ठोत्रिर्गौतमः ।

सजातिय हुए और शुद्ध विवाहों (ब्राह्म- आदि) में सतानके वढानेवाले, रोगहीन, दीर्घायु, धर्म प्रजाके संयुक्त पुत्र होते हैं ॥

भावार्थ–सजातीय पुरुषोंसे सजातीय स्त्रियोंमें शुद्ध विवाहोंमें संतानके वढानेवाले सजातीयही पुत्र पैदा होते हैं ॥ ९० ॥

विप्रान्मूर्द्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् । अंवष्ठः शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपिवा ॥ ९१ ॥

पद–विप्रात् ५ मूर्द्धावसिक्तः १ हिऽ–क्षत्रियायाम् ७ विशः ६ स्त्रियाम् ७ अंवष्ठः १ शूद्र्यां ७ निषादः १ जातः १ पारशवः १ अपिऽ–वाऽ ॥

योजना–विप्रात् क्षत्रियायां मूर्द्धावसितः विशः स्त्रियाम् अवष्ठः शूद्र्यां जातः निषादः वा पारशवः अपि स्मृतः ॥

तात्पर्यार्थ–ब्राह्मणसे विवाही हुई क्षत्रियामें जो पुत्र पैदा होता है वह मूर्द्धावसिक्त होता है और विवाही हुई वैश्यकन्यामें जो पुत्र पैदा होता है वह अंवष्ठ होता है और विवाही हुई शूद्रामें निषाद नाम पुत्र होता है यह वह निषाद नहीं जो मत्स्योंको मारता है और प्रतिलोमसे पैदा होता है किंतु यह निषाद नामके भेदसे वह है जिसको पारशव कहते हैं। जो शंख ऋषिने इस वचनसे यह कहा है कि ब्राह्मणसे क्षत्रियामें पैदा हुआ क्षत्रियही होता है और क्षत्रियसे वैश्यामें पैदा हुआ वैश्य और वैश्यसे शूद्रामें पैदा हुआ शूद्र । वह शंखका कथन इस लिये है कि उनको क्षत्रियके करने योग्य कर्म करने कुछ इस लिये नहीं हैं कि मूर्द्धावसिक्त आदि जातिही नहीं होती इससे इन मूर्द्धा-वसिक्त आदिकोंको यज्ञोपवीत उनही दृढचर्म–यज्ञोपवीत आदिसे होता है जो क्षत्रिय आदिकोंको कहे हैं और इनकोभी क्षत्रिय आदि-कोंके समान यज्ञोपवीतसे पहिले यथेच्छ आच-रण करना कुछ विशेष शुद्धिकी अपेक्षा नहीं है ॥

भावार्थ–ब्राह्मणसे विवाही हुई क्षत्रियामें मूर्द्धावसिक्त और विवाही हुई वैश्य कन्यामें अंवष्ट और विवाही हुई शूद्रकन्यामें निषाद वा पारशव पुत्र पैदा होता है ॥ ९१ ॥

वैश्याशूद्र्योस्तु राजन्यान्माहिष्योग्रौ सुतौ स्मृतौ । वैश्यात्तु करणः शूद्र्यां विन्नास्वेषविधिः स्मृतः ॥ ९२ ॥

पद–वैश्याशूद्र्योः ७ तुऽ–राजन्यात् ५ माहिष्योग्रौ १ सुतौ १ स्मृतौ १ वैश्यात् ५ तुऽ–करणः १ शूद्र्याम् ७ विन्नासु ७ एषः १ विधिः १ स्मृतः १ ॥

योजना– राजन्यात् वैश्यशूद्र्योः माहिष्यो-ग्रौ सुतौ स्मृतौ–वैश्यात् शूद्र्यां करणः सुतः स्मृतः एषः पूर्वोक्तः विधिः विन्नासु (विवा-हितासु) स्मृतः (संमतः) ऋषिभिरितिशेषः ।

तात्पर्यार्थ–विवाही हुई वैश्य और शूद्रकी कन्याओंमें क्षत्रियके सकाशसे माहिष्य और उग्र नामके दो पुत्र क्रमसे पैदा होते हैं और वैश्यसे विवाही हुई शूद्रामें करण नामक पुत्र पैदा होता है। यह सपूर्ण मूर्द्धावसिक्त आदि संज्ञाओंका विधान विवाही हुई स्त्रियोंमेंही जानना और मूर्द्धावसिक्त, अंवष्ठ, निषाद, माहिष्य, उग्र, करण ये छः पुत्र अनुलोमज जानने अर्थात् ऊंचे वर्णके पुरुषसे नीच वर्णकी कन्यामें पैदा होते हैं ॥

भावार्थ–विवाही हुई वैश्य और शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे माहिष्य और उग्र दो पुत्र

१ ब्राह्मणेन क्षत्रियायामुत्पादितः क्षत्रिय एव भवति क्षत्रियेण वैश्यायामुत्पादितो वैश्य एव भवति वैश्येन शूद्रायामुत्पादितः शूद्र एव भवति ।

क्रमसे पैदा होते हैं और वैश्यसे विवाही हुई शूद्रकी कन्यामें करण नामका पुत्र पैदा होता है यह मूर्द्धावसिक्त आदि छः सज्ञाओंकी विधि विवाही हुई कन्याओंमेंही ऋषियोंने मानी है ॥ ९२ ॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहिकस्तथा । शूद्राज्जातस्तु चांडालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

पद्-ब्राह्मण्यां ७-क्षत्रियात् ५ सूतः १ वैश्यात् ५ वैदेहिकः १ तथाऽ-शूद्रात् ५ जातः १ तुऽ-चांडालः १ सर्वधर्मबहिष्कृतः १ ॥

योजना-क्षत्रियात् ब्राह्मण्यां जातः सूतः तथा वैश्यात् ब्राह्मण्यां जातः वैदेहिकः-शूद्रात् ब्राह्मण्यां जातः सर्वधर्मबहिष्कृतः चांडालः-भवतीति शेषः ॥

ता० भा०-क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें जो पैदा हो वह सूत और वैश्यसे ब्राह्मणीमें जो पैदा हो वह वैदेहिक और शूद्रसे जो ब्राह्मणीमें पैदा हो वह ऐसा चांडाल होता है जिसको किसीभी धर्म करनेका अधिकार नहीं होता ॥ ९३ ॥

क्षत्रियामागधं वैश्याच्छूद्रात्क्षत्तारमेव च । शूद्रादायोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ॥ ९४ ॥

पद्-क्षत्रिया १ मागधम् २ वैश्यात् ५ शूद्रात् ५ क्षत्तारम् २ एवऽ-चऽ-शूद्रात् ५ आयोगवम् २ वैश्या १ जनयामास क्रि-वैऽ-सुतम् ॥ २ ॥

योजना-वैश्यात् क्षत्रिया मागधं-च पुनः शूद्रात् क्षत्रिया क्षत्तार-शूद्रात् वैश्या आयोगवं सुतं जनयामास ॥

ता० भा०-क्षत्रियकी कन्या वैश्यसे मागध नाम पुत्रको और वही कन्या शूद्रसे क्षत्ता नाम (बढई) पुत्रको और वैश्यकी कन्या शूद्रसे आयोगव नाम पुत्रको पैदा करती है । ये छओं सूत, वैदेहिक, चांडाल, मागध, क्षत्ता, आयोगव, प्रतिलोमज पुत्र होते हैं छओंकी जीविका शुक्रनीति और मनुस्मृतिमें जो लिखी हैं वेही जाननी ॥ ९५ ॥

माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते । असत्संतस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ।

पद्-माहिष्येण ३ करण्याम् ७ तुऽ-रथकारः १ प्रजायते क्रि-असत्सन्तः १ तुऽ-विज्ञेयाः १ प्रतिमोलानुलोमजः १ ॥

योजना-माहिष्येण करण्यां रथकारः प्रजायते तु पुनः एते पूर्वोक्ताः प्रतिलोमानुलोमजाः असत्सन्तः विज्ञेयाः-विद्वद्भिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-माहिष्य (जो क्षत्रियसे वैश्यकी कन्यामें पैदा हो) से करणी (जो कन्या वैश्यसे शूद्रामें पैदा हुई हो) में जो लडका पैदा हो वह जातिका रथकार होता है उस रथकारके इसे शास्त्रऋषिके वचनानुसार यज्ञोपवीत आदि सब संस्कार करनेकी क्षत्रिय और वैश्यकी अनुलोम सतानसे पैदा हुआ जो रथकार है उसके यज्ञ, दान, यज्ञोपवीत सस्कार होते हैं । और घोडोंकी प्रतिष्ठा (साधना) रथ सूत्रकी वृत्ति (सारथीपन) वास्तुविद्या (स्थान बनानों) और पढना ये उसकी वृत्ति (जीविका) होती है । इसी प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रियासे पैदा हुए मूर्द्धावसिक्त माहिष्य आदि अनुलोम संकरमें भी भिन्नजातिकी और यज्ञोपवीत आदिकी प्राप्ति जाननी । क्योंकि वे दोनों द्विजातियोंसे पैदा होनेसे द्विजातिही होते हैं और अन्य स्मृतियोंसे इनकी सज्ञा (नाम) जाननी यह सकीर्ण सकरजातियोंका वर्णन दिखाने मात्र ही है क्योंकि संकीर्ण जाती इतनी

१ क्षत्रियवैश्यानुलोमान्तरोत्पन्नजो रथकारस्तस्येज्यादानोपनयनसस्कारक्रिया अश्वप्रतिष्ठारथसूत्रवास्तुविद्याध्ययनवृत्तिता चेति ।

अनंत है कि कहनेमें नहीं आसक्ती, इससे यहांपर इतनाही कहने योग्य है कि जो प्रतिलोम (नीच वर्णसे ऊंचे वर्णकी कन्यामें पैदा हुए) हैं वे असत् (बुरे) और जो अनुलोमज (ऊंचे वर्णसे नीच वर्णकी कन्यामें पैदा हुए) हैं वे सत (श्रेष्ठ जानने ॥

भावार्थ–माहिष्यसे करणकन्यामें रथकार नामका पुत्र पैदा होताहै और पूर्वोक्त प्रतिलोम और अनुलोमसे पैदा हुए संकीर्ण जातिके पुत्र असत् (बुरे) और सत् (श्रेष्ठ) होते हैं ॥ ९५ ॥

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पंचमे सप्तमेपि वा ॥ व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम् ॥ ९६ ॥

पद–जात्युत्कर्षः १ युगे ७–ज्ञेयः १ पंचमे ७ सप्तमे ७ अपि ऽ–वा ऽ–व्यत्यये ७ कर्मणाम् ६ साम्यम १ पूर्ववत् ऽ–च ऽ–अधरोत्तम् १ ॥

योजना–पचमे वा सप्तमे युगे (जन्मनि) जात्युत्कर्षः ज्ञेयः कर्मणां व्यत्यये सति साम्यं भवति न उत्कर्ष इत्यर्थः–अधरोत्तरम् पूर्ववत् ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ–मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंका उत्कर्ष अर्थात् ब्राह्मणत्वजाति आदिकी प्राप्ति सातवें पांचवें और अपि शब्दके पढनेसे छठे जन्ममें जानना। इस विकल्पकी व्यवस्था यह है कि ब्राह्मणने शूद्रामें पैदा की जो निषादी वह ब्राह्मणको विवाही जाय और उसके जो कन्या हो वहभी ब्राह्मणकोही विवाही जाय और उससे फिर कन्याही पैदा हो इसी प्रकार छठी कन्यासे जो लडका पैदा होगा वह ब्राह्मणही सातवीं पीढीमें होगा। ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें पैदा हुई अम्बष्ठा ब्राह्मणको विवाही जाय वहभी इसी प्रकार पांचवीं छठी पीढीमें ब्राह्मणकोही पैदा करेगी। इसी प्रकार चौथी मूर्द्धावसिक्ताभी पांचवें ब्राह्मणकोही पैदा करेगी। इसी प्रकार क्षत्रियने विवाही उग्रा और माहिष्याभी क्रमसे छठे और पांचवें क्षत्रियकोही पैदा करेगी। तैसेही वैश्यने विवाही करणी पांचवें वैश्यको ही पैदा करेगी। इसी प्रकार अन्यत्रभी जातिका उत्कर्ष जानना और यदि कर्मोंका व्यत्यय हो जाय अर्थात् वे पूर्वोक्त वर्णसकरोंकी कन्याओंके विवाहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी २ जातिके कर्मोंको न करते हों जैसा ब्राह्मणकी मुख्य वृत्तिसे नही जीवता हुआ ब्राह्मण क्षत्रियका कर्म करता हो और क्षत्रियकी वृत्तिसे निर्वाह न चलै तो वैश्यकी वृत्ति करताहो और वैश्यकी वृत्तिसेभी निर्वाहके न होनेपर शूद्रकीही वृत्ति करता हो। इसी प्रकार क्षत्रियभी अपनी वृत्ति (जीविका) से निर्वाहके न होनेपर वैश्य वा शूद्रकी वृत्तिको करता हो। ऐसेही वैश्यभी अपनी वृत्तिसे निर्वाहके न होने पर शूद्रकीही वृत्तिसे जीविका करता होय और इस कर्मोंके व्यत्ययमें यदि आपत्तिके दूर होनेपरभी उन भिन्न जातिके कर्मोंको न त्यागै तो पांचवी छठी वा सातवीं पीढीमें जातिकी समता रहती है अर्थात् जिस हीनवर्णके कर्मोंसे जीविका करता हो वही जाति पाचवीं आदि पीढियोंमें इस प्रकार होतीहै कि ब्राह्मण शूद्रवृत्तिसे जीवताहो और इस शूद्रवृत्तिको न त्यागकर जिस पुत्रको पैदा करे और पुत्रभी शूद्रवृत्तिसेही एक पुत्रको पैदा करै इस परपरासे सातवीं पीढीमें जो पुत्र पैदा हो वह शूद्र होगा। और वैश्य वृत्तिसे जीवता होय तो छठी पीढीमें वैश्यको और क्षत्रियकी वृत्तिसे जीवता होय तो पांचवीं पीढीमें क्षत्रियकोही पैदा करताहै। ऐसेही क्षत्रिय वृत्तिसे नहीं जीवता हुआ और शूद्रवृत्तिसे जीवता हुआ क्षत्रिय छठी

पीढीमें शूद्रको और वैश्यवृत्तिसे जीवता हुआ पांचवीं पीढीमें वैश्यको पैदा करताहै। ऐसेही वैश्यभी शूद्रवृत्तिसे जीवता होय और उसको न त्यागे तो पांचवीं पीढीमें शूद्रको पैदा करता है। और अधर और उत्तर जो वर्णसंकरोंसे पैदा होते हैं वे पूर्वके समान ही समझने अर्थात् अधर असत् और उत्तर सत् होते हैं इससे पहिले अनुलोमज और प्रतिलोमज वर्ण सकर दिखाये और रथकार आदि संकीर्ण संकरोंसे पैदा हुए दिखाये अव इस अधरोत्तर पदसे वर्ण संकरोंसे पैदा हुए दिखाते हैं कि जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंसे मूर्द्धावसिक्ता कन्यामें पैदा हुए पुत्र और अवष्ठामें वैश्य शूद्रोंसे पैदा हुए पुत्र और निषादीमें शूद्रसे पैदा हुए पुत्र अधर प्रतिलोमज होते हैं तिसी प्रकार मूर्द्धावसिक्ता अंबष्ठा ओर निषादीमें ब्राह्मणसे पैदा हुए पुत्र और माहिष्य और उग्रकी कन्याओंमें ब्राह्मण और क्षत्रियसे पैदा हुए पुत्र और करणीमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यसे पैदा हुए पुत्र उत्तर अनुलोमज होते हैं इसी प्रकार अन्यभी समझने ये अधर प्रतिलोमज और उत्तर अनुलोमज असत् और सत् जानने अर्थात् अधर निकृष्ट और उत्तर उत्तम होते हैं॥

भावार्थ-पूर्वोक्त मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंको पांचवीं वा छठी वा सातवीं पीढीमें जातिकी उत्तमता जाननी। यदि कर्मोंकी विपरीतता होय तो जातिकी साम्यता (वहकी वह) होती है और अधर प्रतिलोमज और सत् अनुलोमजभी पूर्वके समानही असत् और सत् जानने॥ ९६॥

इति वर्णजातिविवेकप्रकरणम्॥ ४॥

अथ गृहस्थधर्मप्रकरणम् ५.

कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही॥ दायकालाहृते वापि श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ ९७॥

पद-कर्म २ स्मार्तं २ विवाहाग्नौ ७ कुर्वीत क्रि-प्रत्यहम् २ गृही १ दायकालाहृते ७ वाऽ-अपिऽ-श्रौतम् २ वैतानिकाग्निषु ७ ॥

योजना-गृही स्मार्तं कर्म विवाहाग्नौ वा दायकालाहृते अग्नौ प्रत्यहं कुर्वीत। श्रौत कर्म वैतानिकाग्निषु कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ-वेद और स्मृतिमें कहे हुए कर्म अग्निसे होतेहैं यह दिखानेके लिये कहते हैं किस अग्निमें कौन कर्म करना स्मृतिमें उक्त वैश्वदेव आदि कर्म और प्रतिदिनके पाक आदि लौकिक कर्म इनको गृहस्थी विवाहमें संस्कार की हुई अग्निमें वा विभागके समयमें लाई हुई अग्निमें करै क्योंकि वैश्यकुलसे अग्निको लाकर विवाहरूप संस्कार करे यह भी शास्त्रमें कहाहै और अपिशब्दसे जब गृहका स्वामी मरजाय तब लाकर जो अग्नि संस्कृत की हो उसमें पूर्वोक्त कर्म करे फिरभी तीनों कालोंका अतिक्रम होजाय तो द्विज प्रायश्चित्तके योग्य होता है। और श्रुतिमें कहे हुए अग्निहोत्र आदिकर्म वैतानिक (आहवनीय आदि) अग्नियोंमें करे ॥

भावार्थ-स्मृतिमें कहे कर्म विवाहकी वा दाय (बांटा) कालमें लाई अग्निमें और वेदोक्त कर्म आहवनीय आदि अग्निमें गृहस्थी प्रतिदिन करे ॥ ९७ ॥

शरीरचिंता निर्वर्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः॥ प्रातः संध्यामुपासीत दंतधावनपूर्वकम्९८

पद-शरीरचिंताम् २ निर्वर्त्यऽ-कृतशौचविधिः १ द्विजः १ प्रातःऽ-सध्याम् २ उपासीत क्रि-दन्तधावनपूर्वकम् २ ॥

योजना-कृतशौचविधिः द्विजः शरीरचिन्तां निर्वर्त्य दन्तधावनपूर्वकं प्रातः संध्याम् उपासीत ॥

तात्पर्यार्थ-अब गृहस्थके धर्म कहते हैं। आवश्यक इस शरीरकी चिन्ताको (दिन और सध्यामें यज्ञोपवीत कानपर रख और उत्तराभिमुख होकर मूत्र और मलका त्याग करे इत्यादि विधिसे कही) निवृत्त करके गंध और लेपके क्षय करनेवाले शौचको करै इत्यादि वचनसे कही विधिसे की है शौचकी विधि जिसने ऐसा द्विज दतधावनपूर्वक प्रातःकाल संध्याकी विधिको करै दन्तधावनकी विधि यह है कि कांटे और दूधवाले वृक्षकी हो और बारह अगुलकी हो और जो कनिष्ठा अंगुलीके अग्रभागके समान मोटी हो और जिसका कूर्च (कुची) आधेपर्व (अगुल) का हो ऐसी दतोन और जिह्वाकी उल्लेखिनी कही है इस वचनमें वृक्षकी कहनेसे तृण ढेला अगुली आदिका और ढाक और पीपल आदिकाभी निषेध अन्य स्मृतियोंमें कहा हुआ जानना। दंतधावनका मंत्र यह है कि अवस्था, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, धन, वेद पढनेकी बुद्धि और बुद्धि इनको हे वनस्पते (वृक्ष)! तू हमें दे। ब्रह्मचारी प्रकरणमें कहे भी सध्यावंदनका पुनः वचन दतधावन पूर्वक करनेके लिये हैं क्योंकि ब्रह्मचारी दतोन नृत्य गीत आदिको वर्जे दे इस वचनसे ब्रह्मचारीको दतोनका निषेध है ॥

भावार्थ-मलमूत्र त्यागनेके अनंतर विधिसे शौचको करके द्विज दतोन करके प्रातःकालकी सध्याको करे ॥ ९८ ॥

हुत्वाग्नीन्सूर्यदैवत्याञ्जपेन्मंत्रान्समाहितः। वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानिच

पद्-हुत्वाऽ-अग्नीन् २ सूर्यदैवत्यान् २ जपेत् क्रि-मंत्रान् २ समाहितः १ वेदार्थान् २ अधिगच्छेत् क्रि-चऽ-शास्त्राणि २ विविधानि २ चऽ-॥

योजना-अग्नीन् हुत्वा समाहितः सन् सूर्यदैवत्यान् मंत्रान् जपेत्-वेदार्थान् च पुनः विविधानि शास्त्राणि अधिगच्छेत्॥

तात्पर्यार्थ-प्रातःकाल संध्यावंदनके अनतर आहवनीय आदि अग्नियोंमें वा औपासन अग्निमें शास्त्रोक्त विधिसे होम करके सूर्य है देवता जिनका ऐसे 'उदुत्यंजातवेदसं०' इत्यादि मंत्रोंको चित्तको सावधान करके जपै फिर निरुक्त और व्याकरण आदिके श्रवणसे वेदके अर्थको पढै और चकारसे पढे हुएका अभ्यास (विचार) करै फिर धर्म अर्थ आरोग्य आदिके बोधक मीमांसा आदि अनेक शास्त्रोंको जाने ॥

भावार्थ- अग्निहोत्र करके सूर्यदेवताके मन्त्रोंको जपै और वेदका अर्थ और अनेक शास्त्रोंको जाने ॥ ९९ ॥

उपेयादीश्वरं चैव योगक्षेमार्थसिद्धये ॥ स्नात्वादेवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा१००॥

पद्-उपेयात् क्रि-ईश्वरम् २ चऽ-एवऽ-योगक्षेमार्थसिद्धये ४ स्नात्वाऽ- देवान् २ पितॄन् २ चऽ-एवऽ-तर्पयेत् क्रि-अर्चयेत् क्रि-तथाऽ-

योजना-च पुनः योगक्षेमार्थसिद्धये ईश्वरं उपेयात् । स्नात्वा देवान् च पुनः पितॄन् अर्चयेत् तथा तर्पयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-तिसके अनन्तर अभिषेक (राजतिलक) आदि गुणोंसे युक्त राजाके व अन्य श्रीमान्के अनिंदित (शुद्ध) योग क्षेम (अलभ्य वस्तुके लाभको योग और लब्ध वस्तुके पालनको क्षेम कहते हैं) के लिये धनकी सिद्धिके अर्थ समीप जाय यह कहनेसे सेवाके निषेधको आचार्य कहता है क्योंकि वेतनको ग्रहण करके आज्ञा करनेको सेवा कहते हैं वह श्वा (कुत्ता) की वृत्ति होनेसे निषिद्ध है । फिर मध्याह्नमें शास्त्रोक्त विधिसे नदी आदिमें स्नान करके देवता (जो अपने गृह्यसूत्रमें कहे हों) पितर और चकारसे ऋषि इनका देव आदि तीर्थसे तर्पण करै । फिर गध पुष्प अक्षतोंसे हरि हर ब्रह्मा आदि देवोंमें किसी एकका अपनी वासनाके अनुसार ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदके मन्त्रोंसे वा पूजाके प्रकाशके चतुर्थी विभक्ति और नमःपद जिनके अन्तमें ऐसे नामोंसे (हरये नमः आदि) शास्त्रोक्त विधिसे आराधन (पूजन) करै ॥

भावार्थ-योगक्षेम (निर्वाह) के लिये राजा वा धनीके समीप जाय और स्नान करके देवता पितर ऋषि इनका तर्पण और पूजन करै ॥ १०० ॥

वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः । जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ १०१ ॥

पद्-वेदाथर्वपुराणानि २ सेतिहासानि २ शक्तितः ऽ- जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थंऽ-; विद्यां २ चऽ- आध्यात्मिकीम् २ जपेत् क्रि- ॥

योजना-सेतिहासानि वेदाथर्वपुराणानि च पुनः आध्यात्मिकीं विद्यां जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं शक्तितः जपेत् ॥

ता० भा०-फिर वेद अथर्वण इतिहास पुराण व्यस्त (एक दो) वा समस्त (सब) इनको और आध्यात्मिकी (ब्रह्म) विद्याको जपयज्ञकी सिद्धिके लिये जपै अर्थात् विचार करै ॥ १०१ ॥

बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः। भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणांमहामखाः॥

पद-बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसं-त्क्रियाः १ भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणाम् ६ महा-मखाः १ ॥

योजना-बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथि-सत्क्रियाः भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां क्रमेण महामखाः भवन्तीति शेषः।

तात्पर्यार्थ-बलि वैश्वदेवकर्म, भूतयज्ञ और स्वधा (तर्पणश्राद्ध) पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, स्वाध्याय (वेदपाठ) ब्रह्मयज्ञ और अतिथिका सत्कार मनुष्ययज्ञ, ये पांच महायज्ञ प्रतिदिन करने क्योंकि ये सब कर्म नित्य हैं काम्य नहीं हैं, जो कहीं २ इनके फलका श्रवण है वह इनकी पवित्रता बोधनके लिये है, कुछ काम्य बोधनके लिये नहीं है, नित्यकर्म वह होता है जिसके न करनेमें पाप हो और करनेमें कुछ फल नहीं और काम्य कर्म वह होता है जिसके करनेका कुछ फल हो ॥

भावार्थ-बलि, वैश्वदेव, स्वधा, होम, वेद-पाठ, अतिथिका सत्कार, ये पांचों क्रमसे भूत पितर अमर (देव) ब्रह्म मनुष्य इनके महा-यज्ञ होते हैं ॥ १०२ ॥

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेपाद्भूतबलिं हरेत् ॥
अन्नं भूमौ श्वचांडालवायसेभ्यश्च निक्षिपेत्॥

पद-देवेभ्यः ४ च-हुतात् ५ अन्नात् ५ शेपात् ५ भूतबलिम् २-हरेत् क्रि-अन्नम् २ भूमौ ७ श्वचांडालवायसेभ्यः ४ च-निक्षिपेत् क्रि- ॥

योजना-देवेभ्यः हुतात् शेपात् अन्नात् भूतबलिं हरेत। च पुनः श्वचाण्डालवायसेभ्यः भूमौ अन्नं निक्षिपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अपने गृह्यमें कही विधिसे वैश्व-देव होमको करके उससे शेप जो अन्न उसमेंसे भूतोंको बलि दे, अन्न पदका कहना अपक्कके निषेधार्थ है, तिसके अनंतर शक्तिके अनुसार श्वा, चांडाल, काकोंके लिये और चशब्दसे कीट पापरोगी पतितोंके लिये भूमिमें अन्न गेर दे। सोई मनुने इस वचनसे कहा है कि कुत्ते पतित चांडाल पापरोगी काक कृमि (कीडे) इनको अन्न शनैः २ (बिना मंत्र) भूमिपर गेरदे। यह कर्म सायकाल और प्रातःकाल करना, क्योंकि आश्वलायनका वचन है कि सायंकाल और प्रातःकाल बनेहुए हविष्यः अन्नमेंसे होम करे, यहां कोई आचार्य वैश्वदेव कर्मको पुरुषार्थ और अन्नका संस्कारक कहते हैं क्योंकि सायकाल और प्रातःकाल सिद्ध हविष्य अन्न-मेंसे होम करै इससे तो सस्कार कर्म प्रतीत होता है, इसके अनंतर पांच महायज्ञ कहते हैं इस प्रकरणमें उनको ही प्रतिदिन करै इस वचनसे नित्य कहाहै इससे पुरुषार्थभी जाना-जाता है सो ठीक नहीं क्योंकि पुरुषार्थ कहोगे तो अन्नसंस्कार कर्म नहीं हो सकता, जैसे द्रव्यसस्कार पक्षमें वैश्वदेव कर्मको अन्नार्थता है और पुरुषार्थ पक्षमें वैश्वदेव कर्मार्थ द्रव्य होगा इस परस्पर विरोधसे पुरुषार्थ ही मानना युक्त हैं क्योंकि मनुकी स्मृति है कि महायज्ञ और यज्ञोंसे ब्राह्मणका शरीर बनाया जाताहै तैसेही वैश्वदेव किये पीछे यदि अन्य अतिथि आजाय तो उसको भी यथाशक्ति अन्न दे पुनः बलि वैश्वदेव न करै। पुरुषार्थ होनेसे वैश्वदेव कर्मका प्रतिपाकमें करना योग्य नहीं है, तिससे पूर्वोक्त सायंकाल और प्रातःकाल करै इत्यादि वचनसे उत्पत्ती और प्रयोग दिखाये, तिन इन यज्ञोंको प्रतिदिन करै यह अधिकारका विधान है, इससे सब निर्दोपी हैं ॥

---

१ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद् भुवि ॥

२ तानेतान्यज्ञानहरहः कुर्वीत।

भावार्थ-देवताओंके होमसे शेष अन्नमेंसे भूतोंको बलि दे और कुत्ते चांडाल काक इनको भी भूमिमें अन्न डाल दे ॥ १०३ ॥

अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम्॥ स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यान्न पचेदन्नमात्मने॥

पद-अन्नम् १ पितृमनुष्येभ्यः ४ देयम् १-अपिऽ-अन्वहम् २ जलम् १ स्वाध्यायम् २ चऽ-अन्वहम् २ कुर्यात् क्रि-नऽ-पचेत् क्रि-अन्नम् २ आत्मने ४ ॥

योजना-पितृमनुष्येभ्यः अपि अन्वहम् अन्न जल देयम्। च पुनः अन्वहम् स्वाध्यायं कुर्यात्। आत्मने अन्न न पचेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पितर और मनुष्योंको अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन अन्न दे, अन्न न होय तो कंद मूल फल आदि दे, वहभी न होय तो जल दे, और अपिशब्दसे अविस्मरण (न भूलना) के लिये निरतर स्वाध्याय (वेदपाठ) करे और केवल अपने निमित्त अन्नको न पकावे किन्तु देवताओंके निमित्त ही पकावे, यहां अन्न पदका ग्रहण संपूर्ण भक्षणके योग्य द्रव्योंके दिखाने (जताने) के लिये है ॥

भावार्थ-पित्तर और मनुष्योंको प्रतिदिन अन्न जल दे, और प्रतिदिन वेदको पढे और अपने लिये अन्न न पकावे ॥ १०४ ॥

बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः । संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दंपत्योः शेषभोजनम् ॥ १०५ ॥

पद-बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः २ संभोज्यऽ-अतिथिभृत्यान् २ चऽ-दंपत्योः ६ शेषभोजनम् २ ॥

योजना-बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः च पुनः अतिथिभृत्यान् संभोज्य दंपत्योः शेषभोजनं कर्तव्यमिति शेषः ॥

ता०भा०-बालक, स्ववासिनी, वृद्ध, गर्भिणी, आतुर (रोगी) और कन्या और अतिथि और भृत्य इन सबको भोजन कराकर शेष भोजनको स्त्री और पुरुष करे । जो विवाही हुई कन्या पिताके घरमें रहै वह स्ववासिनी कहाती है ॥ १०५ ॥

आपोशनेनोपरिष्टादधस्तादश्नता तथा। अनग्नममृतं चैव कार्यमन्नं द्विजन्मना ॥ १०६ ॥

पद-आपोशनेन ३ उपरिष्टात्ऽ-अधस्तात्ऽ-अश्नता ३ तथाऽ-अनग्नम् १ अमृतम १ चऽ-एवऽ-कार्यम् १ अन्नम् १ द्विजन्मना ३ ॥

योजना-अश्नता द्विजन्मना आपोशनेन उपरिष्टात् च पुनः अधस्तात्, अनग्न च पुनः अमृतम् अन्न कार्यम् ॥

ता० भा०-भोजन करते हुए ब्राह्मणने आपोशन भोजनसे पूर्व आचमन कर्मसे पीछे और पहिले अन्नको अनग्न (ढका) और अमृत रूप करना, यहां द्विजन्मना पदके ग्रहणसे उपनयन आदि सब आश्रमोंका यह साधारण धर्म है ॥ १०६ ॥

अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः । अप्रणोद्योतिथिःसायमपि वाग्भूतृणोदकैः॥

पद-अतिथित्वेन ३ वर्णानाम् ६ देयम् १ शक्त्या ३ अनुपूर्वशःऽ-अप्रणोद्यः १ अतिथिः १ सायम्ऽ-अपिऽ-वाग्भूतृणोदकैः ३ ॥

योजना-वर्णानाम् अतिथित्वेन शक्त्या अनुपूर्वशः देयम्,सायम् अपि आतिथिः वाग्भूतृणोदकैः अप्रणोद्यः ॥

तात्पर्यार्थ-वैश्वदेवके अनतर ब्राह्मण आदि वर्ण युगपत् (इकट्ठे) अतिथि आजांय तो ब्राह्मण आदि क्रमसे सामर्थ्यके अनुसार अन्न दे और सायकालके समयभी यदि अतिथि आजांय तो वहभी अप्रणोद्य (नाहींके अयोग्य) है सोई मनुने इस

वचनसे कहा है कि तृण भूमि जल और चौथी सत्य कोमल वाणी ये सत्पुरुषोंके घरमेंसे कभी भी नष्ट नहीं होते यदि कुछभी भक्षणके योग्य पदार्थ न हो तोभी वाणी भूमि तृण और जलसे उसका सत्कार करे ॥

भावार्थ-ब्राह्मण आदि एकही समय चारों अतिथि आजांय तो उनको ब्राह्मण आदि क्रमसे शक्तिके अनुसार अन्न दे सायंकालकोभी अतिथिको नाहीं न करै किंतु कुछ न हो तोभी वाणी भूमि तृण जलसे उसका सत्कार करै ॥ १०७ ॥

सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षां दातव्या सुव्रतायच। भोजयेच्चागतान्काले सखिसंबंधिबांधवान्॥

पद-सत्कृत्यऽ-भिक्षवे ४ भिक्षा १ दातव्य १ सुव्रताय ४ चऽ-भोजयेत् क्रि-चऽ-आगतान् २ काले ७ सखिसंबधिबांधवान् २ ॥

योजना-भिक्षवे च पुनः सुव्रताय भिक्षवे सत्कृत्य भिक्षा दातव्या च पुनःकाले आगतान् सखिसंबंधिबांधवान् भोजयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-भिक्षुकको तो सामान्य भिक्षा देनी और सुव्रत (ब्रह्मचारी)को और सन्यासीको तो सत्कार करके अर्थात् स्वस्तिवाचनपूर्वक भिक्षा दे और भिक्षाभी ग्रासके प्रमाणकी होती है और मोरके अंडेके प्रमाण ग्रास होता है क्योंकि शातातपकी स्मृति है कि ग्रासके प्रमाणकी भिक्षा और भिक्षासे चौगुना पुष्कल और चार पुष्कल हंतकार और उससेभी तिगुना अग्र होताहै और भोजनके समयमें आये सखा सबंधी बांधवोंको भोजन करावे सखा (मित्र) जिनसे कन्याके लेने वा देनेका संबध हो वे संबंधी और माता पिताके सबंधी बांधव कहाते हैं ॥

भावार्थ-भिक्षुको सामान्य भिक्षा और ब्रह्मचारीको सत्कारपूर्वक भिक्षा देनी और भोजनके समय आये हुए मित्रसंबधी बांधवोंकोभी जिमावे ॥ १०८ ॥

महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्। सत्क्रियान्वासनं स्वादुभोजनं सूनृतं वचः ॥

पद-महोक्षम् २ वाऽ-महाजम् २ वाऽ-श्रोत्रियाय ४ उपकल्पयेत् क्रि- सत्क्रिया १ अन्वासनम् १ स्वादु १ भोजनम् १ सूनृतम् १ वचः १ ॥

योजना-महोक्षम् वा महाज श्रोत्रियाय उपकल्पयेत् सत्क्रिया अन्वासन स्वादु भोजनं सूनृतं वचः वक्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-बडा उक्षा (बैल) वा बडा अज (बकरा) उक्तलक्षण श्रोत्रिय (वेदपाठी) को समर्पित करै (दे) अर्थात् तुम्हारी प्रीतिके लिये यह हमने पाला है कुछ दान वा हिंसाके लिये नही जैसे शिष्ट लोग कहते हैं कि यह सब आपकाही है और प्रति वेदपाठी बैलका असमव है और यह निषेधभी है कि स्वर्गका नाशक और जगत्में निन्दित कर्म न करै तिससे अतिथिका सत्कार करना और स्वागतवचन आसन अर्घ पाद्य आचमन आदिके देनेको सत्कार कहते हैं अतिथिके बैठनेपर पीछे बैठना और स्वादु (मिष्ट) भोजन और सूनृत वचन अर्थात् आज आपके आगमनसे हम धन्य हैं यह कथन यदि वेदपाठी न होय तो उसके लिये अश्रोत्रियको दे इस गौतमके वचनानुसार जल और आसन दे ॥

भावार्थ-वेदपाठीके लिये बडा (धोरी)

---

१ तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी च सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यते कदाचन ॥

२ ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा पुष्कल तच्चतुर्गुणम्। हन्तस्तु तच्चतुर्भिः स्यादग्र तत्त्रिगुणं भवेत् ॥

१ अश्रोत्रिये पुनरश्रोत्रियस्योदकासने ।

बैल वा बडा बकरा अर्पण करै और पीछे बैठे और स्वादु भोजन दे और मीठे वचनसे बोले१०९

प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थि-वाः। प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यु-र्त्विजः पुनः ॥ ११० ॥

पद्-प्रतिसंवत्सरम्ऽ-तुऽ-अर्घ्याः १ स्नातकाचार्यपार्थिवाः १ प्रियः १ विवाह्यः १ चऽ-तथाऽ-यज्ञम् २ प्रतिऽ-ऋत्विजः १ पुनःऽ-॥

योजना-स्नातकाचार्यपार्थिवाः प्रियः च पुनः विवाह्यः एते प्रतिसंवत्सरम्-ऋत्विजः पुनः यज्ञ प्रति अर्घ्याः (पूजनयोग्याः) भवन्तीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-स्नातक तीन होते हैं। १ विद्यास्नातक, २ व्रतस्नातक, ३ विद्याव्रतस्नातक। वेदको समाप्त करके और व्रतको समाप्त न करके जो समावर्तन (गृहस्थ) करै अर्थात् गृहस्थमें आवे वह विद्यास्नातक और जो व्रतको समाप्त करके और वेदको समाप्त न करके समावर्तन करै वह व्रतस्नातक और दोनोंको समाप्त करके जो समावर्तन करै वह विद्याव्रतस्नातक कहाताहै। आचार्य वह जिसका लक्षण कह आये हे और पार्थिव (राजा) वह जिसका लक्षण आगे कहेंगे, प्रिय (मित्र) विवाह्य (जामाता) चकारसे श्वशुर, चाचा, मातुल आदि लेने। क्योंकि आश्वलायनका वचन है कि वरणके अनतर ऋत्विजोंको और स्नातकको और आये हुए राजाको और आचार्य, श्वशुर, पितृव्य, मातुल इनको मधुपर्क दे ये स्नातक आदि सब अपने घर आये हुए प्रतिवर्ष मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं। यहां अर्घ शब्द मधुपर्कका उपलक्षण (बोधक) है और पूर्व कह आये हैं लक्षण जिनका ऐसे ऋत्विज तो वर्षसे पहिलेभी यज्ञ २ में मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं ॥

भावार्थ-स्नातक, आचार्य, राजा, प्रिय, जामाता ये घर आये प्रतिवर्ष मधुपर्कसे और ऋत्विज तो यज्ञ २ में वर्षसे पहिलेभी पूजने योग्य हैं ॥ ११० ॥

अध्वनीनोतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः। मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः॥

पद्-अध्वनीनः १ अतिथिः १ ज्ञेयः १ श्रोत्रियः १ वेदपारगः १ मान्यौ १ एतौ १ गृहस्थस्य ६ ब्रह्मलोकम् २ अभीप्सतः ६ ॥

योजना-अध्वनिनः अतिथिः वेदपारगः श्रोत्रियः ज्ञेयः। एतौ ब्रह्मलोकं अभीप्सतः गृहस्थस्य मान्यौ स्त इति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-मार्गमें जो वर्तमान (फिरता) वह आतिथि और वेदका पारगामी श्रोत्रिय जानना। मार्गमें वर्तमान ये पूर्वोक्त दोनों ब्रह्मलोककी आकांक्षा करनेवाले गृहस्थीको मान्य हैं अर्थात् अतिथिरूपसे सत्कारके योग्य हैं। यद्यपि केवल अध्ययनसेभी श्रोत्रिय होता है तथापि यहां श्रुत और पढनेसे संपन्न श्रोत्रिय जानना और एक शाखाके अध्ययनमें जो समर्थ वह वेदपारग जानना ॥

भावार्थ-मार्गमें वर्तमान द्विज और वेदका पारगामी वेदपाठी अतिथि जानने। ये दोनों ब्रह्मलोकके अभिलाषी गृहस्थीको मानने योग्य हैं ॥ १११ ॥

परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामंत्रणादृते ॥ वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम्॥

पद्-परपाकरुचिः १ नऽ- स्यात् क्रि-अनिंद्यामंत्रणात् ५ ऋतेऽ-वाक्पाणिपादचापल्यम् २ वर्जयेत् क्रि-चऽ-अतिथिभोजनम् २ ॥

योजना-अनिंद्यामंत्रणात् ऋते परपाक-

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् स्नातकायोपस्थिताय राज्ञे चाचार्याय च श्वशुरपितृव्यमातुलानां च ।

रुचिः न स्यात् । वाक्पाणिपादचापल्यं च पुनः अतिभोजनं वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अनिंद्यके आमत्रण (नोता) को छोडकर परपाकमें रुचि न करै । क्योंकि यह स्मृति है कि अनिंद्यके निमंत्रणको स्वीकार करके न हटै । वाणी, हाथ, पाद इन तीनोंका चापल्य वर्ज दे । असभ्य (अयोग्य) और अनृत (झूठ) बोलनेको वाक्चापल्य कहते हैं । हाथोंके बजानेको पाणिचापल्य कहते हैं और लघने कूदनेको पादचापल्य. कहते हैं । चकार पढनेसे नेत्रोंका चापल्य लेते हैं। क्योंकि गौतमका वचन है कि लिंग उदर हाथ नेत्र पाणी इनका चापल्य न करै । और रोगका हेतु होनेसे अतिभोजनकोभी वर्ज दे ॥

भावार्थ–शुद्ध निमत्रणके विना अन्यके बनाये पाकमें रुचि न करै । और वाणी हाथ पैर इनकी चपलता और अतिभोजन इनको वर्ज दे ॥ ११२ ॥

अतिथिं श्रोत्रियं तृप्तमासीमांतमनुव्रजेत् । अहःशेषं समासीत शिष्टैरिष्टैश्च बंधुभिः ११३

पद्–अतिथिम् २ श्रोत्रियम् २ तृप्तम् २ आसीमांतम् २ अनुव्रजे(क्रि–अहःशेषम् २ समासीत क्रि–शिष्टैः ३ इष्टैः ३ चऽ–बंधुभिः३॥

योजना–तृप्तम् अतिथिं श्रोत्रियम् आसीमांतम् अनुव्रजेत् । अहःशेष शिष्टैः च पुनः इष्टैः बंधुभिः समासीत ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्त श्रोत्रिय अतिथि और वेदके पारगामी अतिथिको भोजन आदिसे तृप्त करके सीमाके अंततक उसके पीछे जाय । फिर इतिहास पुराणके ज्ञाता शिष्ट और काव्योंकी कथा कहनेमें चतुर इष्ट और अनुकूल बोलनेमें कुशल बंधु इनके संग शेष दिनमें बैठे ॥

१ अनिंद्येनामंत्रितो नापक्रामेत् ।

२ न शिश्नोदरपाणिपादचक्षुर्वाक्चापलानि कुर्यात् ।

भावार्थ–तृप्त हुए अतिथि और श्रोत्रियके पीछे सीमापर्यंत जाय और शेष दिनमें शिष्ट इष्ट और बंधुओंके संग बैठे ॥ ११३ ॥

उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्य च । भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वानातितृप्याथ संविशेत् ॥ ११४ ॥

पद्–उपास्यऽ–पश्चिमाम् २ संध्याम् २ हुत्वाऽ–अग्नीन् २ तान् २ उपास्यऽ–चऽ–भृत्यैः ३ परिवृतः १ भुक्त्वाऽ–नऽ–अतितृप्यऽ–अथऽ–संविशेत् क्रि–॥

योजना–पश्चिमां संध्याम् उपास्य अग्नीन् हुत्वा च पुनः तान् उपास्य भृत्यैः सह भुक्त्वा न अतितृप्य अथ (अनंतरं) संविशेत् (स्वप्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ–फिर पूर्वोक्त विधिसे सायंकालकी संध्याके अनंतर अग्निहोत्र करके और उन अग्नियोंकी पूजा करके और पूर्वोक्त भृत्य और स्ववासिनी आदि सहित भोजन करके और चकारसे घरके आय व्यय (लाभ खर्च) की चिंतासे निवृत्त होकर शयन करै ॥

भावार्थ–सायंकालकी संध्या अग्निहोत्र और अग्नियोंकी पूजा और भृत्योंसहित भोजनके अनंतर अत्यंत तृप्त न होकर शयन करै॥ ११४॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिंतयेदात्मनो हितम् ॥ धर्मार्थकामान्स्वे काले यथाशक्ति न हापयेत् ॥

पद्–ब्राह्मे ७ मुहूर्ते ७ चऽ– उत्थायऽ–चिंतयेत् क्रि–आत्मनः ६ हितम् २ धर्मार्थकामान् २ स्वे ७ काले ७ यथाशक्तिऽ– नऽ–हापयेत् क्रि–॥

योजना–च पुनः ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय आत्मनः हितं चिंतयेत् । स्वे काले धर्मार्थकामान् यथाशक्ति न हापयेत् (न त्यजेत्) ॥

तात्पर्यार्थ–फिर ब्राह्म मुहूर्त (पिछला आधा प्रहर) में उठकर किये और करने योग्य अपने हितकी और वेदके अर्थमें सदेहोंकी चिंता करै क्योंकि उस समय चित्तके अव्याकुल होनेसे तत्वके समझनेकी योग्यता होती है। फिर अपने उचित समयमें धर्म अर्थ कामोंको यथाशक्ति न त्यागै। किंतु यथासम्भव (जैसे होसके) पुरुषार्थ होनेसे सब करै। सोई गौतमने कहा है कि पूर्वाह्ण, मध्यदिन, अपराह्ण इनको वृथा न करै और धर्म अर्थ कामोंमेंभी धर्मको मुख्य समझे। यहां यद्यपि सामान्यसे करना कहा है तथापि काम और अर्थको धर्मके अनुकूल करै वे दोनों धर्ममूल हैं। इसी प्रकार प्रतिदिन करै॥

भावार्थ–ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर अपने हितकी चिंता करै और धर्म अर्थ कामोंको अपने २ समयमें शक्तिके अनुसार न त्यागै॥ ११५॥

विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैर्मान्या यथाक्रमम्।
एतैः प्रभूतैः शूद्रोपि वार्धके मानमर्हति ११६

पद–विद्याकर्मवयोबधुवित्तैः ३ मान्याः १ यथाक्रमम्ऽ– एतैः ३ प्रभूतैः ३ शूद्रः १ अपिऽ– वार्धके ७ मानम् २ अर्हति क्रि–॥

योजना–विद्याकर्मवयोबंधुवित्तैः युक्ताः यथाक्रमम् मान्याः भवंति। प्रभूतैः एतैः युक्तः शूद्रः अपि वार्द्धके मानम् अर्हति॥

तात्पर्यार्थ–पूर्वोक्त विद्या, वेद और धर्मशास्त्रोक्त कर्म अपनेसे वा सत्तर वर्षसे अधिक अवस्था, अपने स्वजन बांधवोंकी संपदाग्राम रत्न आदि धन इनसे युक्त पुरुष क्रमसे मान्य (पूजन योग्य) होते हैं और अत्यंत अधिक विद्या कर्म वयो बंधु धनसे युक्त ये चाहै समस्त हो वा एक दो हो। शूद्रभी वृद्ध [अस्सी वर्षसे अधिक] मानके योग्य है। क्योंकि गौतमका वचन है कि अस्सी वर्षका शूद्रभी श्रेष्ठ है॥

भावार्थ–विद्या कर्म अवस्था बांधव धनसे युक्त मनुष्य क्रमसे मानने योग्य होते हैं। और अधिक विद्या आदिसे युक्त होय तो शूद्रभी वृद्ध अवस्थामें मानके योग्य होता है॥ ११६॥

वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणाम्।
पंथा देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः॥

पद–वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचाक्रिणाम् ६ पथाः १ देयः १ नृपः १ तेषाम् ६ मान्यः १ स्नातः १ चऽ–भूपतेः ६॥

योजना–वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचक्रिणां पन्थाः देयः तेषां वृद्धादीनां नृपः मान्यः च पुनः स्नातः भूपतेः मान्यः भवतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ–जिसका पका शरीर हो वह वृद्ध भार (बोझा) वान्, नृप (राजा) कुछ क्षत्रिय मात्र नहीं, विद्या और व्रत दोनोंसे स्नातक, स्त्री, रोगी, वर (विवाहके लिये उद्यत), चक्री (गाडीवान्), चकारसे मत्त और उन्मत्त लेने। क्योंकि शखकी यह स्मृति है कि बालक, वृद्ध मत्त, उन्मत्त, पीडासयुक्त, भारसे आक्रांत, स्त्री, स्नातक, सन्यासी इनको मार्ग छोडदे अर्थात् ये सन्मुख आते होंय तो एक तरफको हट जाय। इन सबको मार्ग दे। यदि वृद्ध आदिकोंके सग राजाका समवाय (मेल) हो जाय तो राजाको मार्ग छोडदे। राजाकोभी स्नातक (ब्रह्मचारी) मानने योग्य है। यह

१ न पूर्वाह्णमध्यादिनापराह्णानफलान् कुर्यात् धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु धर्मोत्तरः स्यात्।

१ शूद्रोप्यशीतिको वरः।

२ बालवृद्धमत्तोन्मत्तोपहतदेहभाराक्रातस्त्रीस्नातकप्रव्राजितेभ्यः।

स्नातकसे सब स्नातक लेने कुछ ब्राह्मणही नहीं क्योंकि स्नातक सदैव गुरु (बडा) है सोई शंखने कहा है कि ब्राह्मणको आगे मार्ग दे और कोई कहते हैं कि राजाको मार्ग दे सो ठीक नहीं क्योंकि गुरु और ज्येष्ठ ब्राह्मण राजासे अधिक हैं इससे उनको मार्ग दे। यदि वृद्ध आदिकोंका मार्गमें परस्पर समागम होजाय तो अत्यत वृद्धकी अपेक्षासे वा विद्या आदिकी अपेक्षासे विशेषको देखले अर्थात् जो विद्या आदिसे अधिक हो उसको मार्ग छोडदे।

भावार्थ–वृद्ध, भारवाला, राजा, स्नातक, स्त्री, रोगी, वर, गाडीवान् इनको मार्ग देदे और वृद्ध आदि राजाको और राजा स्नातकको मार्ग छोड दे ॥ ११७ ॥

इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च। प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा ॥

पद–इज्याध्ययनदानानि १ वैश्यस्य ६ क्षत्रियस्य ६ चऽ–प्रतिग्रहः १ अधिकः १ विप्रे ७ याजनाध्यापने १ तथाऽ–॥

योजना–वैश्यस्य च पुनः क्षत्रियस्य इज्याध्ययनदानानि कर्माणि सन्ति। विप्रे प्रतिग्रहः अधिकः अस्ति तथा याजनाध्यापने अधिके स्तः इति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–वैश्य क्षत्रिय चकारसे ब्राह्मण और अनुलोमज और प्रतिलोमज इनके यज्ञ अध्ययन दान साधारण कर्म हैं और ब्राह्मणके प्रतिग्रह यज्ञ कराना और पढाना अधिक हैं तथा इसके कहनेसे अन्यस्मृतियोंमें कही जीविका लेनी सोई गौतमने कहा है कि अपने आप किये खेती और व्यापार और व्याज ये वैश्यके धर्म हैं और क्षत्रिय और वैश्यका पढना धर्म तो ब्राह्मणकी आज्ञासे होताहै अपनी इच्छासे नहीं क्यों कि गौतमका वचन है आपत्तिके समय ब्राह्मण भिन्नसेभी ब्राह्मण विद्या पढै। विद्याकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणही गुरु होजाता है। ये छः कर्म ब्राह्मणके अनापत्तिमें हैं तिनमें यज्ञ आदि तीन धर्मार्थ हैं और प्रतिग्रह आदि तीन जीविकार्थ हैं क्योंकि मनुका वचन है कि ब्राह्मणके छः कर्मोंमें यज्ञ कराना पढाना और शुद्ध जातिका प्रतिग्रह ये तीन कर्म जीविका हैं, इससे यज्ञ आदि अवश्य करने और प्रतिग्रह आदि आवश्यकतासे न करने, क्योंकि गौतमका वचन है कि द्विजातियोंके पढना यज्ञ दान ये तीन कर्म हैं और ब्राह्मणके ये तीन अधिक हैं कि पढाना यज्ञ कराना और प्रतिग्रह इन छओंमें पहिले तीनोंमें नियम है ॥

भावार्थ–यज्ञ पढना दान ये तीन कर्म वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मणके हैं और ब्राह्मणके ये तीन अधिक हैं कि प्रतिग्रह यज्ञ कराना और पढाना ॥ ११८ ॥

प्रधानं क्षत्रिये कर्मप्रजानां परिपालनम्। कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतम् ॥ ११९ ॥

पद–प्रधानम् १ क्षत्रिये ७ कर्म १ प्रजानाम् ६ परिपालनम् १ कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यम् १ विशः ६ स्मृतम् १ ॥

योजना–क्षत्रिये प्रधान कर्म प्रजानां परिपालनम् विशः प्रधान कर्म कुसीदकृषिवाणिज्यपाशुपाल्यं स्मृतम् ॥

---

१ अथ ब्राह्मणायाग्रे पथा देयो राज इत्येके तन्नानिष्टं गुरुज्येष्ठेश्च ब्राह्मणो राजानमतिशेते तस्मै पन्था इति।

२ कृषिवाणिज्ये वा स्वयंकृते कसीदं चेति।

१ आपत्काले ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्यो पयोगोऽनुगमन शुश्रूषासमाप्ते ब्राह्मणो गुरुः।

२ षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥

३ द्विजातीनामध्ययनमिज्यादान ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रातिग्रहाः पूर्वेषु नियमः।

तात्पर्यार्थ-क्षत्रियका प्रधान कर्म प्रजाओंकी पालना है वह धर्म जीविकाके लिये है और वैश्यका प्रधानकर्म कुसीद कृषि वाणिज्य और पशुओंकी पालना है, वृद्धि (सूद) के लिये द्रव्यके देनेको कुसीद और लाभ (नफा) के लिये क्रय विक्रय (लेन देन) को वाणिज्य कहते हैं क्योंकि मनुका वचन है कि शस्त्र और अस्त्रको धारण करना क्षत्रियका और वाणिज्य पशु कृषि (खेती) जीविकाके लिये हैं और दान पढना यज्ञ करना ये धर्म हैं ॥

भावार्थ-प्रजाओंकी पालना करना क्षत्रियका प्रधान कर्म है, और व्याज लेना खेती करना लेनदेन और पशुओंकी पालना करना वैश्यके प्रधानकर्म हैं ॥ ११९ ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तया जीवन्वणिग्भवेत्।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन्॥

पद-शूद्रस्य ६ द्विजशुश्रूषा १ तया ३ अजीवन् १ वणिक् १ भवेत् क्रि-शिल्पैः ३ वाऽ-विविधैः ३ जीवेत् क्रि-द्विजातिहितम् २ आचरन् १ ॥

योजना-द्विजशुश्रूषा शूद्रस्य प्रधान कर्म तया अजीवन् वणिक् भवेत् वा द्विजातिहितम् आचरन् विविधैः शिल्पैः जीवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-तीनों द्विजोंको सेवा करना शूद्रका प्रधान कर्म है और वह धर्म और जीविकाके लिये है उनमेंभी ब्राह्मणकी सेवा करना परमधर्म है क्योंकि मनुका वचन है कि ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रका श्रेष्ठ कर्म कहा है। और जब द्विजोंकी सेवासे न जी सकै तब वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करै वा द्विजातियोंके हितका आचरण करता हुआ उन कर्मोंसे जीवै जिनके करनेसे द्विजातियोंके कर्मके अयोग्य न हो वे कर्म देवलने ये कहे हैं कि द्विजातियोंकी सेवा पापको छोडकर स्त्री आदिका पालन, खेती पशुओंकी पालना, भारका ले जाना, लेन देन, व्यापार, चित्राम करने, नाचना, गाना, वेणु वीणा मुरजमृदंग आदिको बजाना ये सब शूद्रके कर्म हैं ॥

भावार्थ-तीनों द्विजोंकी सेवा शूद्रका प्रधान कर्म है उससे न जीसकै तो वैश्यवृत्तिसे वा द्विजातियोंके हितको करता हुआ अनेक प्रकारके शिल्पोंसे जीविका करै ॥ १२० ॥

भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियापरः।
नमस्कारेण मंत्रेण पंचयज्ञान्न हापयेत् १२१

पद-भार्यारतिः १ शुचिः १ भृत्यभर्ता १ श्राद्धक्रियापरः १ नमस्कारेण ३ मंत्रेण ३ पचयज्ञान् २ नऽ-हापयेत् क्रि-॥

योजना-भार्यारतिः शुचिः भृत्यभर्ता श्राद्धक्रियापरः शूद्रः नमस्कारेण मत्रेण पंचयज्ञान् न हापयेत् (न त्यजेत्) ॥

तात्पर्यार्थ-जिसकी रति (भोग) भार्यामेंही हो और वेश्या आदि साधारण स्त्री और पराई स्त्रियोंमें न हो। और जो बाहिर और भीतरके शौचसे युक्त हो, और द्विजोंके समान भृत्योंकी पालना करै और जो श्राद्धक्रियामें तत्पर हो अर्थात् नित्य नैमित्तिक और काम्य श्राद्ध और धर्मके अविरोधी स्नातक व्रतरूप क्रिया इनमें तत्पर हो ऐसा शूद्र नमस्कार मत्रसे पूर्वोक्त पच यज्ञोंको न छोडे और कोई तो देवता पितर महायोगी स्वाहा स्वधा इनको नमस्कार है इसको और कोई नमः इसको

१ शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः। आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं याजिः ॥

२ विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।

१ शूद्रधर्मो द्विजातिशुश्रूषा पापवर्जनं कलत्रादिपोषणं कर्षणपशुपालनभारोद्वहनपण्यव्यवहारचित्रकर्मनृत्यगीतवेणुवीणामुरजमृदंगवादनादीनि ।

२ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ।

नमस्कारका मंत्र कहते हैं। उन यज्ञोंमें वैश्वदेव लौकिक अग्निमें करना, विवाहकी अग्निमें नहीं यह आचार्य कहते हैं॥

भावार्थ–अपनी स्त्रीमें रत, शुद्ध, भृत्योंका भर्त्ता, श्राद्ध और क्रियाओंमें परायण ऐसा शूद्र नमस्कार मंत्रसे पचयज्ञोंको न त्यागै ॥१२१॥

अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः। दानं दमो दया क्षांतिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

पद्–अहिंसा १ सत्यम् १ अस्तेयम् १ शौचम् १ इंद्रियनिग्रहः१ दानम् १ दमः १दया १ क्षांतिः १ सर्वेषाम् ६ धर्मसाधनम् १ ॥

योजना–अहिंसा सत्यम् अस्तेयं शौचम् इंद्रियनिग्रहः दानं दमः दया क्षांतिः एतत्सर्वं सर्वेषां धर्मसाधनम् भवतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ–अब साधारण धर्मोंको कहते हैं। प्राणियोंकी पीडाको न करना, जिससे प्राणियोंको दुःख न हो ऐसे यथार्थ वचनको कहना, विना दिये किसीके पदार्थको न लेना, देह और अतरात्माको शुद्ध रखना, ज्ञान और कर्म इंद्रियोंको वशमें रखना, अपनी शक्तिके अनुसार अन्न जल देकर प्राणियोंके दुःखको दूर करना, अतःकरणको रोकना, शरण आयेकी रक्षा करनी, किसीके अपकार करनेपरभी चित्तमें विकार न करना ये सब कर्म ब्राह्मण आदि चांडालपर्यंत सव पुरुषोंके धर्मके साधन हैं अर्थात् इनके करनेमें सबका धर्म है॥

भावार्थ–हिंसाका त्याग, सत्य, चोरी न करना, शौच, इंद्रियोंको रोकना, दान, अंतःकरणको रोकना, दया, क्षमा, ये सबके धर्म हैं॥ १२२॥

वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम्। आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा॥

पद्–वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणाम् ६ आचरेत् क्रि–सदृशीम् २ वृत्तिम् २ अजिह्माम् २ अशठाम् २ तथाऽ–॥

योजना–वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेषश्रुताभिजनकर्मणां सदृशीम् अजिह्मां तथा अशठां वृत्तिम् आचरेत्॥

तात्पर्यार्थ–बाल्य और यौवन आदि अवस्था, लौकिक और वैदिक व्यवहारोंमें स्वाभाविक बुद्धि, गृह धन क्षेत्र आदि कथन वस्त्र और माला आदिका धारणरूप वेष, पुरुषार्थके शास्त्रोंका श्रवण, कुल जीविकाके लिये प्रतिग्रह आदि कर्म इन सबके उचित (अर्थात् वृद्ध अपने योग्य आचरण करै यौवनके योग्य न करै) वृत्ति और कपट शठतासे रहित वृत्ति (आचरण) को करै। तात्पर्य यह है कि अनुचित आचरणको न करै॥

भावार्थ–अवस्था, बुद्धि, धन, वाणी, वेष, शास्त्र, कुल, कर्म इनके सदृश और कपट शठतासे रहित आचरणको करै॥ १२३॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिबेद्द्विजः। प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्याद्यस्यान्नं वार्षिकं भवेत्॥ १२४॥

पद्–त्रैवार्षिकाधिकान्नः १ यः १ सः १ हिऽ–सोमम् २ पिबेत् क्रि–द्विजः १ प्राक्सौमिकीः २ क्रियाः २ कुर्यात् क्रि–यस्य ६ अन्नम् १ वार्षिकम् १ भवेत् क्रि–॥

योजना–यः त्रैवार्षिकाधिकान्नः सः द्विजः हि निश्चयेन सोम पिबेत्। यस्य वार्षिकम् अन्नं भवेत् सः प्राक्सौमिकीः क्रियाः कुर्यात्॥

तात्पर्यार्थ–इस प्रकार स्मार्त कर्मोंको कहकर वेदोक्त कर्मोंको कहते हैं तीन वर्षके जीवने योग्य वा अधिक जिसके घरमें अन्न हो वही द्विज सोम पान करै जिसके अल्प

धन हो वह न करै क्योंकि इस वचनसे यह दोष सुना जाता है कि अल्प द्रव्य होनेपर जो द्विज सोमपान करता है वह सोम पीनेपरभी सोम-पानके फलको प्राप्त नहीं होता यहभी काम्य-कर्मके अभिप्रायसे है। नित्य कर्मके अवश्य कर्तव्य होनेसे उसमें नियम नहीं है। और जिसके घरमें एक वर्षके जीवन योग्य अन्न हो वह सोम यज्ञसे पहिले करने योग्य कर्मोंको (अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास पशु चातुर्मास्य) करै क्योंकि ये सब सोमयज्ञके विकार (अंग) हैं ॥

भावार्थ-जिसके तीन वर्षके जीवनसे अधिक अन्न हो वही द्विज सोमपान करै। और जिसके यहां एक वर्षका अन्न हो वह सोमयज्ञसे प्रथम करने योग्य कर्मोंको करै ॥ १२४ ॥

प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुः प्रत्ययनं तथा । कर्तव्याग्रायणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि॥

पद-प्रतिसवत्सरम् २ सोमः १ पशुः १ प्रत्ययनम् २ तथाऽ-कर्तव्या १ आग्रायणेष्टिः १ चऽ-चातुर्मास्यानि १ चऽ-एव-हिऽ- ॥

योजना-सोमः प्रतिसवत्सरम् कार्यः पशुः प्रत्ययनम् तथा (प्रतिसंवत्सरं) कार्यः। च पुनः आग्रायणेष्टिः कर्तव्या च पुनः प्रतिसंव-त्सरं चातुर्मास्यानि कर्तव्यानि ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार वेदोक्त काम्य कर्मोंको कहकर वेदोक्त नित्य कर्मोंको कहतेहैं सोमयज्ञ वर्ष २ में करना और पशुयज्ञ दक्षिणायन और उत्तरायणमें वा प्रतिवर्षमें करना। क्योंकि यह स्मृति है कि पशुयज्ञ प्रतिवर्षमें वा छः छः मासमें करै और आग्रायण यज्ञ अन्नकी उत्पत्ति होने वर्ष २ में करना और चातुर्मास्य यज्ञ प्रतिवर्ष करना ॥

भावार्थ-सोमयज्ञ वर्षमें और पशुयज्ञ अयन २ में वा प्रतिवर्ष करना, आग्रायण यज्ञ और चातुर्मास्य यज्ञ वर्ष २ में करने॥१२५॥

एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः । हीनकल्पं नकुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम्॥१२६

पद-एषाम् ६ असंभवे ७ कुर्यात् क्रि-इष्टिम् २ वैश्वानरीम् २ द्विजः १ हीनकल्पम्२ नऽ-कुर्वीत क्रि-सति ७ द्रव्ये ७ फलप्रदम्२॥

योजना-एषाम् असंभवे द्विजः वैश्वानरीम् इष्टिं कुर्यात्। द्रव्ये सति हीनकल्पं न कुर्वीत। फलप्रद कर्मापि हीनकल्पं न कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त इन सोम आदि यज्ञोंका किसी प्रकारसे असभव होय तो उस समय द्विज वैश्वानरी (अग्निहोत्र आदि) यज्ञ करे। और जो यह हीनकल्प कहा है उसको द्रव्य होय तो न करै। और जो फलका दाता काम्य-कर्म है उसकोभी हीनकल्प (न्यूनप्रकारसे) न करै ॥

भावार्थ-यदि किसी प्रकार ये सोमयज्ञ आदि न होसकै तो द्विज वैश्यानरी यज्ञ करै और द्रव्यके होते इस हीनकल्प (प्रकार) को न करै। और फलके दाता कर्मकोभी हीन प्रकारसे न करै ॥ १२६ ॥

चांडालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्। यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोपि वा भवेत् ॥

पद-चाण्डालः १ जायते क्रि-यज्ञकरणात् ५ शूद्राभिक्षितात् ५ यज्ञार्थम्ऽ-द्रव्यम्२ अददत् १ भासः १काकः १ अपिऽ-वाऽ-भवेत् क्रि-॥

---

१ अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबाति द्विजः स पीतसोमपूर्वोपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥

२ पशुना संवत्सरे संवत्सरे यजेत् षट्सु षट्सु वा मासेष्वित्येके ।

योजना–शूद्रभिक्षितात् यज्ञकरणात् चांडालः जायते। यज्ञार्थं लब्धं धनम् अददत् भासः वा काकः अपि भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ–यज्ञके लिये शूद्रसे धनकी याचना करके जो यज्ञ करै वह अन्यजन्ममें चांडाल होता है। जो यज्ञके अर्थ मांगे हुए संपूर्ण धनको नहीं लगाता वह भास (शकुंत) वा काक सौवर्षतक होता है क्योंकि मनुने यह कहा है कि यज्ञके लिये धनको मांगकर सबको जो नहीं देता है वह ब्राह्मण सौ वर्षतक भास वा काक होता है ॥

भावार्थ–शूद्रसे भिक्षा मांगकर यज्ञ करनेसे चांडाल होता है। यज्ञके लिये मांगे हुए संपूर्ण धनको जो नहीं लगाता है वह सौ वर्षतक भास वा काक होताहै ॥ १२७ ॥

कुशूलकुंभीधान्यो वा त्र्याहिको श्वस्तनोपि वा। जीवेद्वापि शिलोंछेन श्रेयानेषां परः परः ॥ १२८ ॥

पद–कुशूलकुंभीधान्यः १ वाऽ–त्र्याहिकः १ अश्वस्तनः १ अपिऽ–वाऽ– जीवेत् क्रि–वाऽ–अपिऽ–शिलोञ्छेन ३ श्रेयान् १ एषाम् ६ परः १ परः १ ॥

योजना–कुशूलकुंभीधान्यः वा अस्वस्तनः अपि स्यात्। वा शिलोञ्छेन जीवेत् एषां मध्ये परः परः श्रेयान् भवति ॥

तात्पर्यार्थ–कोठीभर वा ऊंटनीभर अन्नको रक्खै अपने कुटुंबके द्वादश १२ दिनतक भोजनके योग्य जिसके अन्न हो उसे कुशूल धान्य कहते हैं और छः ६ दिनके खाने योग्य जिसके धान्य हो उसे कुंभी धान्य कहते हैं। और तीन दिनके भक्षण योग्य जिसके धान्य हो उसे त्र्याहिक धान्य कहते हैं। जिसके अग्रिमदिनके भक्षण योग्य अन्न न हो उसे अश्वस्तन कहते हैं। इन कुशूल धान्य आदिके सचयका उपाय कहते हैं कि कुशूल धान्य आदि चार प्रकारका गृहस्थी शिल वा उञ्छसे जीवै। व्रीहि आदिकी पड़ी हुई और खेतके स्वामीकी त्यागी हुई बालोंके संचयको शिल और त्यागेहुए एक २ दानेके ग्रहणको उञ्छ कहते हैं। इन दो वृत्तियोंसे गृहस्थी कुशूल धान्य आदि रहै। इन चारों ब्राह्मणोंके मध्यमें पहला २ अत्यंत श्रेष्ठ है। यह द्विजका प्रकरण होनेसेभी ब्राह्मणकेही लिये समझना क्योंकि विद्या और शांतिका योग ब्राह्मणकोही है। सोई मनुने कहा है कि भूतोंके द्रोहका त्याग वा अल्पद्रोहसे जो जीविका उसको करके ब्राह्मण आपत्तिके विना जीवै इस वचनसे ब्राह्मणके प्रकरणमेंही मनुने कहा है कि कुशूलधान्यक वा कुंभीधान्यक रहै यह भी अत्यत सपन्न और संयमी जो यायावर उसके प्रति कहा है, ब्राह्मणमात्रके अभिप्रायसे नहीं। ब्राह्मणमात्रके प्रति मानोगे तो इस वचनके संग विरोध होगा कि तीन वर्षसे अधिक जिसके अन्न हो वह द्विज सोमपान करै। तैसेही दो प्रकारके गृहस्थी तहां २ कहे हैं सोई देवलने कहा है कि यायावर और शालीन इन दो प्रकारके गृहस्थी हैं। दोनोंमें याजन अध्यापन प्रतिग्रह धनसंचय इनके त्यागसे

---

१ यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यः सर्वं न प्रयच्छति। स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥

१ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥

२ कुशूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव वा।

३ द्विविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च तयोर्यायावरः प्रवरः याजनाध्यापनप्रतिग्रहरिक्थसचयवर्जनात्–षट्कर्माधिष्ठितः। प्रेष्यचतुष्पदगृहग्रामधनधान्ययुक्तो लोकानुवर्त्ती शालीनः।

-यायावर श्रेष्ठ है। छः कर्मोंका कर्ता सेवक पशु घर ग्राम धन अन्न इनसे युक्त और जगत्का अनुवर्त्ती जो होय उसे शालीन कहते हैं। वह भी चार प्रकारका है याजन पढना प्रतिग्रह खेती व्यापार पशुकी पालना इन छःसे जीवै। याजन आदि तीनसे जीवै। याजन अध्यापन इन दोसे जीवै ४ वेद पढानेसेही जीवे सोई मनुने कहा है कि इनके मध्यमें पहिला छः कर्मोंसे, दूसरा तीनसे, तीसरा दोसे और चौथा ब्रह्मसत्र (अध्यापन) से जीताहै और यहां ब्राह्मणको प्रतिग्रह अधिक है इत्यादि वचनसे शालीनकी वृत्ति कही और यायावरकी वृत्ति शिलोञ्छसे जीना कहा है॥

भावार्थ-गृहस्थी-कुशूलधान्य वा कुंभीधान्य वा त्र्याहिक वा अश्वस्तन रहै और शिलोञ्छसे जीवै अर्थात् शिलोञ्छसेही पूर्वोक्त चार प्रकारका रहै इन चारोंमें पहला पहला श्रेष्ठ है॥ १२८॥

१ षट्कर्मैको भवत्येषा त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते। द्वाभ्यामेकश्चतुर्थश्च ब्रह्मसत्रेण जीवति॥

इति गृहस्थधर्मप्रकरणम्॥ ५॥

अथ स्नातकधर्मप्रकरणम् ६.

न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः । न विरुद्धप्रसंगेन संतोषी च भवेत्सदा ॥ १२९ ॥

पद्-नऽ-स्वाध्यायविरोधि २ अर्थम् २ ईहेत क्रि-नऽ-यतःऽ-ततःऽ-नऽ- विरुद्धप्रसंगेन ३ संतोषी १ चऽ-भवेत् क्रि-सदाऽ- ॥

योजना-स्वाध्यायविरोधि यतः ततः विरुद्धप्रसगेन अर्थं न ईहेत च पुनः सदा सतोषी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त गृहस्थके कर्मोंको कहकर अव स्नानसे लेकर विधिनिषेधरूप ब्राह्मणके अवश्य कर्तव्य मानससकल्परूप स्नातकके व्रतोंको कहते हैं । प्रतिग्रह आदि जो धनके उपाय ब्राह्मणके कहेहैं उनमें यह विशेष है कि वेद पढनेमें विरुद्ध अनिषिद्धभी धनकी और विना विचारे जहांतहांसे और विरुद्ध (अयाज्ययाजनसे) और प्रसग(नृत्यगीत आदि)से धनकी इच्छा न करै । नपद जो पुनः२ पढाहै वह प्रत्येकके निषेधके लिये है । इस सपूर्ण स्नातकप्रकरणमें नशब्दका निषेध अर्थ है और धन मिलनेपरभी संतोषसे सदैव तृप्त और चकारसे संयमी रहै क्योंकि मनुने यह कहा है कि परम सुखका अभिलाषी मनुष्य सदा सयमी रहै[1] स्नातकके व्रत ब्राह्मणको अवश्य करने योग्य हैं ॥

भावार्थ-वेदपाठके विरोधी और विना विचारे जहां तहांसे और धर्मके विरुद्ध और नाचने और गानेसे धनसंचयकी चिंता न करै और सदा संतोषी रहै ॥ १२९ ॥

राजांतेवासियाज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा । दंभिहैतुकपाखंडिबकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥ १३० ॥

पद्-राजान्तेवासियाज्येभ्यः५सीदन्१इच्छेत् क्रि-धनम् २ क्षुधा ३ दम्भिहैतुकपाखण्डिबकवृत्तीन् २ चऽ-वर्जयेत् क्रि-॥

योजना-क्षुधा सीदन् स्नातकः राजान्तेवासियाज्येभ्यः धनम् इच्छेत् । च पुनः दम्भिहैतुकपाखंडिबकवृत्तीन् वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-क्षुधासे पीडित स्नातक जिसका वृत्तांत ज्ञात हो और जिसके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे अतेवासी (शिष्य) से और यज्ञ करानेके योग्यसे धनको ग्रहण करै । क्षुधासे पीडित यह कहनेसे यह बात समझी गई कि जिसको विभाग आदिसे कुटुबके पोषणयोग्य धन मिलाहो वह किसीसेभी धनकी इच्छा न करै और लौकिक और वैदिक और शास्त्रोक्त सब कार्योंमें दंभी हैतुक पाखंडी बकवृत्ति और चकारसे विकर्मस्थ और बैडालवृत्तिक और शठ इनको वर्ज दे । सोई मनुने कहा है[1] कि पाखडी विकर्मी बैडालवृत्तिक शठ हेतुक बकवृत्ति इनका वाणीसेभी पूजन न करै । जो जगत्की प्रसन्नताके लिये कर्म करै उसे दंभी और जो अपनी युक्तिके बलसे सबको सदेह करै उसे हैतुक और शास्त्रके विरुद्ध जिन्होंने आश्रम ग्रहण किया हो, उन्हें पाखंडी बकके समान जो वर्तै उसे बकवृत्ति कहते हैं सोई मनुने कहा है[2] कि जिसकी नीचेको दृष्टि और कृतघ्नी और अपनी प्रयोजनकी सिद्धिमें तत्पर और शठ और मिथ्या नम्र हो उसे बकवृत्ति कहते हैं निषिद्धकी जो सेवा करैं वे विकर्मस्थ और बिडाल (मार्जार) के समान जिसका स्वभाव हो उसे बिडालवृत्तिक कहते

---

१ संतोषं परमास्थाय सुखार्थी सयतो भवेत् ।

१ पाखडिनो विकर्मस्थान् बैडालवृत्तिकाञ्छठान् । हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

२ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्याविनीतश्च बकवृत्तिरुदाहृतः ॥

हैं उसका लक्षण मनुने यह कहा है कि धर्मध्वजी सदा लोभी कपटी दंभी हिंसक सर्वाभिसंधि (झूठा सबको धोखा दे) शठ (सबसे टेढा) इनके संग ससर्गके निषेधसे आप ऐसा न हो ॥

भावार्थ-राजा अतेवासी यज्ञ कराने योग्य इनसे धनकी इच्छा क्षुधासे दुःखी होनेपर करै। दंभी हैतुक पाखडी और बकवृत्तियोंको वर्ज दे अर्थात् उनसे धन न ले ॥ १३० ॥

शुक्लांबरधरो नीचकेशश्मश्रुनखःशुचिः ।
न भार्यादर्शनेश्नीयान्नैकवासानसंस्थितः॥

पद-शुक्लाम्बरधरः १ नीचकेशश्मश्रुनखः १ शुचिः १नऽ-भार्यादर्शने ७ अश्नीयात् क्रि-नऽ-एकवासाः १ नऽ-सस्थितः१ ॥

योजना-शुक्लाम्बरधरः नीचकेशश्मश्रुनखः शुचिः स्यात् । भार्यादर्शने एकवासाः सस्थितः न अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ-शुक्ल (धुलेहुए) वस्त्रोंको धारण करै और केश श्मश्रु (डाढी) नख इनको कटाय रक्खै बाहेर और भीतरसे शुद्ध रहै और स्नान चन्दन धूप माला आदिसे सुगंधित रहै सोई गौतमने कहा है स्नातक नित्य शुद्ध सुगंधिमान् और स्नानमें शीलवान् रहै सुगंधि रहनेकी विधिसेही गन्धसे हीन मालाका निषेध है सोई गोभिलने कहाहै कि सुवर्ण और रत्नकी मालाको छोडकर गन्धसे हीन मालाको न धारै स्नातकको सदैव इस प्रकार रहनाभी धन होनेपर समझना क्योंकि यह स्मृतिका वर्चन है कि जीर्ण और मैले वस्त्रों को धन होय तो न पहरै और भार्याके आगे देखतेहुए वीर्यसे हीन सन्तानकी उत्पत्तिके भयसे भोजन न करै सोई श्रुति है कि जायाके समीप भोजन न करै क्योंकि करै तो वीर्यसे हीन सन्तान होतीहै इससे भार्याके संग भोजन तो सर्वथा निषिद्ध है और एकवस्त्र धारण किये और खडा होकर भोजन न करै ॥

भावार्थ-शुक्लवस्त्रोंको धारै नख केश श्मश्रु इनको कटाये रक्खै शुद्ध रहै और भार्याके देखते हुए और एकवस्त्र धारण किये और खडा होकर भोजन न करै॥१३१॥

न संशयं प्रपद्येत नाकस्मादप्रियंवदेत् ।
नाहितं नानृतं चैव न स्तेनः स्यान्नवार्धुषी ॥ १३२ ॥

पद-नऽ-संशयम्२प्रपद्येत क्रि-नऽ-अकस्मात्ऽ-अप्रियं २ अनृतम्२वदेत् क्रि-नऽ-अहितम् २ नऽ- अनृतम् २ चऽ-एवऽ-नऽ-स्तेनः १ स्यात् क्रि- नऽ-वार्धुषी१ ॥

योजना-संशय न प्रपद्येत अकस्मात् अप्रियम् अहितम् अनृत न वदेत्-स्तेनः वार्धुषी न स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जिसमें प्राणोंकी विपत्तिका संशय हो उस कर्मको कदाचित् न करै जैसे सिंह चौर आदि जिस देशमें हों वहां गमन और कारणके विना अत्यंत कठोर और उद्वेग करनेवाले अप्रिय वचनको कदाचित् भी न कहै और अहित अनृत असभ्य भयानक अप्रियवचनको भी न कहै यहभी हँसीके विना समझना क्योंकि यह स्मृति है कि कुटिलताको छोडकर गुरुके साथभी हास्य करना और चौर न हो अर्थात् विना दिये पराई वस्तुको ग्रहण न करै और वार्धुषी न हो अर्थात् निषिद्धवृद्धि (व्याज) से जीविका न करै ॥

---

१ धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदांभिकः । बैडालवृत्तिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसधिकः ॥
२ स्नातको नित्यशुचिः स्नानशीलः ॥
३ नागधा स्रज धारयेदन्यत्र हिरण्यरत्नस्रजः ।
४ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ।

१ जायायाअतेनाश्नीयादवीर्यवदपत्य भवति ।
२ गुरुणापि समं हास्य कर्त्तव्यं कुटिल विना ।

भावार्थ-जिसमें प्राणोंका संदेह हो उस कर्मको न करै और अप्रिय अहित अनृत वचनको विना विचारै न कहै चोरी और वृद्धि (सूद) से आजीविका न करै ॥ १३२॥

दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान्सकमंडलुः।
कुर्यात्प्रदक्षिणं देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् १३३

पद-दाक्षायणी १ ब्रह्मसूत्री १-वेणुमान् १ सकमण्डलुः १ कुर्यात् क्रि-प्रदक्षिणम् २ देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् २ ॥

योजना-दाक्षायणी ब्रह्मसूत्री वेणुमान् सकमण्डलुः स्यात्। देवमृद्गोविप्रवनस्पतीन् प्रदक्षिणीकुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-दाक्षायण (सुवर्ण) को जो धारण करै उसे दाक्षायणी कहतेहैं और ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) जो धारै उसे ब्रह्मसूत्री कहतेहैं अर्थात् स्नातक सुवर्ण और यज्ञोपवीतको धारण करै। और वैणव (बांसकी) यष्टि (लाठी) और कमंडलु इनको धारण करै। यहां ब्रह्मचारिप्रकरणमें कहे हुए यज्ञोपवीतका पुनः कहना दूसरे यज्ञोपवीतकी प्राप्तिके लियेहै सोई वसिष्ठने कहाहै कि स्नातकोंके अतर्वस्त्र और उत्तर वस्त्र दो वस्त्र और दो यज्ञोपवीत यष्टि और जलसहित कमंडलु होतेहैं। यद्यपि यहां दाक्षायणी पदसे सामान्य रीतिसे सुवर्णका धारण कहा है तथापि कुडलका धारणही करना क्योंकि मनुकी स्मृति है कि बांसकी यष्टि, जलसहित कमडलु, यज्ञोपवीत, वेद और सुदरसुवर्णके कुंडल इनको स्नातक धारण करै। और देवताकी पूजा, तीर्थकी मिट्टी, गौ, ब्राह्मण और पीपल आदि वनस्पति इनको दक्षिणभागमें करके गमन करै इसी प्रकार चतुष्पथकोभी समझना। क्योंकि मनुका वचन है कि-मिट्टी, गौ, देवता, ब्राह्मण, घृत, मधु, चतुष्पथ (चौराहा)। और प्रसिद्ध २ वनस्पति (वृक्ष) इनको प्रदक्षिण भागमें करके गमन करै ॥

भावार्थ-सुवर्ण, जनेऊ, बांसकी यष्टि, कमंडलु इनको धारण करै। और देव, मिट्टी, गौ, ब्राह्मण, वनस्पति इनको दक्षिणभागमें करके गमन करै ॥ १३३ ॥

नतु मेहेन्नदीछायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु।
न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्यांबुस्त्रीद्विजन्मनः॥

पद-नऽ-तुऽ-मेहेत् क्रि-नदीछायावर्त्मगोष्ठाम्बुभस्मसु ७-नऽ-प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसंध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः २ ॥

योजना-नदीछायावर्त्मगोष्ठांबुभस्मसु अग्न्यर्कगोसोमसध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनः प्रति न तु मेहेत् (मूत्रपुरीषे न कुर्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ-नदी, वृक्षकी छाया, मार्ग, गोशाला, जल, भस्म इनमें मूत्र और मलका त्याग न करै। इसी प्रकार श्मशान आदिमेंभी न करै सोई शंखने कहा है कि गोमय, जुता और बोया खेत, घास, चिता, श्मशान, मार्ग, खलियान, पर्वत, नदीका तट इनमें मूत्र पुरीष न करै। क्योंकि ये सब भूतोंके जीवनके आधार हैं और तैसेही अग्नि, सूर्य, गौ, चद्रमा, संध्या, जल, स्त्री, ब्राह्मण इनके सन्मुख और इनको देखता हुआ मूत्र और पुरीष न करै। सोई गौतमने

१ स्नातकाना द्वितीय स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम्। यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमडलुः ॥
२ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमंडलुम्। यज्ञोपवीत वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥

१ मृद गां देवतां विप्र घृतं मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥
२ न गोमयकृष्टोप्तशाड्वलचितिश्मशानवर्त्मखलपर्वतपुलिनेषु मेहेत् भूताधारत्वात्।

कहा है कि वायु अग्नि ब्राह्मण सूर्य जल देवता गौ इनके सन्मुख और देखता हुआ मूत्र मल और अपवित्र वस्तु न गेरै और देवताके सन्मुख चरण न फैलावै इन पूर्वोक्त देशोंको छोडकर और भूमिको यज्ञके अयोग्यतृणोंसे ढककर मूत्र पुरीष करै सोई वसिष्ठने कहा है कि शिरके ऊपर-वस्त्र लपेटकर और यज्ञके अयोग्य तृणोंसे भूमिको ढककर मूत्र पुरीष करै ॥

भावार्थ-नदी छाया मार्ग गोष्ठ जल भस्म इनमें और अग्नि सूर्य गौ चंद्रमा संध्या जल स्त्री ब्राह्मण इनके संमुख और इनको देखता हुआ मलमूत्रका त्याग न करै ॥ १३४ ॥

नेक्षेतार्क न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुना-। न च मूत्रं पुरीषं वा नाशुचीराहुतारकाः ॥ १३५ ॥

पद-नऽ-ईक्षेत् क्रि-अर्कम् २ नऽ-नग्नाम् २ स्त्रीम् २ नऽ-चऽ-संसृष्टमैथुनाम् २ नऽ-चऽ-मूत्रम् २ पुरीषम् २ वाऽ-नऽ- अशुचिः १ राहु तारकाः २ ॥

योजना-अर्क नग्नां संसृष्टमैथुनां स्त्रीं च पुनः मूत्रं वा पुरीषम् अशुचिः सन् राहुतारकाः न ईक्षेत् (पश्येत्) ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि सूर्यको न देखे यह सामान्यसे सूर्यके दर्शनका निषेध कहा है तथापि इस मनुके वचनानुसार उदय और अस्त राहुग्रहण जलमें प्रतिबिंब और मध्याह्नके समयही सूर्यका दर्शन निषिद्ध है सर्वदा नहीं । और इस आश्वलायनके वचनसे भोगको छोडकर नग्नस्त्रीको न देखे । और भोगके अंतमें अनग्नभी स्त्रीको और चकारसे भोजन करतीहुईको न देखै । सोई मनुने कहा है कि भार्याके संग भोजन न करै और न भोजन करतीहुई भार्याको देखै और छींकती, जँभाई लेती, सुखसे बैठीहुई, नेत्रोंमें अजन लगाती, उवटना करती, नंगी और बालक जनतीहुई स्त्रीको कल्याणका अभिलाषी द्विजोंमें उत्तम न देखे । और मूत्र ,और. मलको और अशुद्धिके समय राहु और तारागणोंको न देखै और चकारसे इस वचनके अनुसार जलमें अपने प्रतिबिम्बको न देखै ॥

भावार्थ-सूर्य, नग्नस्त्री, मैथुनके अनतर स्त्री, मूत्र, मल इनको और अशुद्धिके समय राहु और तारागणोंको न देखै ॥ १३५ ॥

अयं मे वज्र इत्येवं सर्वं मंत्रमुदीरयेत् । वर्षत्यप्रावृतो गच्छेत्स्वपेत्प्रत्यक्शिरानचा

पद-अयं मे वज्रः १ इतिऽ-एवम्ऽ-सर्वम् २ मंत्रम् २ उदीरयेत् क्रि-वर्षति ७ अप्रावृतः १ गच्छेत् क्रि-स्वपेत् क्रि-प्रत्यक्शिराः १ नऽ-चऽ-॥

योजना-वर्षति सति अयमेवज्र इत्येवं सर्वं मंत्रम् उदीरयेत् अप्रावृतः गच्छेत् च पुनः प्रत्यक्शिराः न स्वपेत् ॥

---

१ नवाय्वग्निविप्रादित्यापोदेवतागाश्च प्रति पश्यन्वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येन्न देवताः प्रतिपादौ प्रसारयेत् एतद्देशव्यतिरेकेण भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ।

२ परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यात् ।

३ नेक्षेतोद्यंतमादित्यं नास्तं यांतं कदाचन । नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥

---

१ अन्यत्र मैथुनात् ।

नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् । क्षुवती जृंभमाणां च नचासीनां यथासुखम् ॥ नांजयन्तीं स्वके नेत्रे नचाभ्यक्तामनावृताम् । न पश्येत्प्रसवन्तीं च श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ॥

३ न चोदके निरीक्षेत स्वरूपमिति धारणा ।

तात्पर्यार्थ–वर्षतेहुए अय मे वज्रः यह वज्र मेरे पापको नष्ट करो इस सर्व मंत्रको पढै और वस्त्रोंके विना पहिने गमन न करै। क्योंकि यह निषेध[2] है कि वर्षते हुए गमन न करै और पश्चिमको शिर किये न सोवै, और चकारसे नग्न और एकाकी शून्यघरमें न सोवै क्योंकि मनुका यह निषेध[3] है कि नंगा और शून्य घरमें अकेला न सोवै ॥

भावार्थ–वर्षते हुए 'अयं मे वज्र' इस मंत्रको पढै और वस्त्रोंको न पहिनकर गमन करै और पश्चिमको शिर किये न सोवै ॥ १३६ ॥

ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांस्यप्सु न निक्षिपेत्। पादौ प्रतापयेन्नाग्नौनचैनमभिलंघयेत् ॥ १३७ ॥

पद–ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांसि २ अप्सु ७ नऽ–निक्षिपेत् क्रि–पादौ २ प्रतापयेत् क्रि–नऽ–अग्नौ ७ नऽ–एनम् २ अभिलंघयेत् क्रि–॥

योजना–अप्सु ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्ररेतांसि न निक्षेपत्, अग्नौ पादौ न प्रतापयेत् च पुनः एनं न अभिलंघयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–ष्ठीवन (थूक वा वमन) रुधिर, मल, मूत्र, वीर्य इनको और इस शंखवचनसे[4] तुष आदिको जलमें न फेंके कि तुष केश मल भस्म हाड थूक नख लोम इनको जलमें न फेंके। और चरण और हाथसे जलको न ताडे और अग्निमें चरण न तपावे और न अग्निको लंघै और चकारसे थूक आदिको अग्निमें न फेंके और न मुखसे अग्निको धमैं, सोई मनुने लिखा है कि मुखसे अग्निको न धमैं नग्नस्त्रीको न देखै अग्निमें अपवित्रवस्तु न फेंके न चरण तपावै अग्निको अपने नीचे न रक्खै न लंघै, और न पैरके नीचे रक्खै और ऐसा कर्म न करै जिसमें प्राणान्त कष्ट हो ॥

भावार्थ–थूक रुधिर मल मूत्र वीर्य इनको जलमें न फेंकै, और अग्निमें चरण न तपावै, और न लंघै ॥ १३७ ॥

जलंपिबेन्नांजलिनानशयानंप्रबोधयेत्। नाक्षैःक्रीडेन्नधर्मघ्नैर्व्याधितैर्वानसंविशेत्

पद–जलम् २ पिबेत् क्रि–नऽ–अजलिना ३ नऽ–शयानम् २ प्रबोधयेत् क्रि–नऽ–अक्षैः ३ क्रीडेत् क्रि–नऽ–धर्मघ्नैः ३ व्याधितैः ३ वाऽ–नऽ–सविशेत् क्रि–॥

योजना–अंजलिना जलं न पिबेत्, शयानं न प्रबोधयेत्, अक्षैः धर्मघ्नैः न क्रीडेत्, व्याधितैः सह न संविशेत्, (न शयीत) ॥

तात्पर्यार्थ–मिलेहुये हाथोंसे जल न पीवै और विद्या आदिसे जो अपनेसे अधिक हो उसे सोतेसे न उठावै क्योंकि यह विशेष वचन[2] है कि अपनेसे श्रेष्ठको न जगावे, अक्ष (फांसे) और धर्मके नाशक पशुलंभन आदिसे क्रीडा न करै, और ज्वर आदिसे युक्त रोगियोंके सग एक शय्यापर न सोवै ॥

भावार्थ–अंजलिसे जल न पीवे, सोतेसे न जगावे, पासोंसे और धर्मके नाशकोंके सग न खेलै और रोगियोंके संग न सोवै ॥ १३८ ॥

१ अयं मे वज्रः पाप्मानमपहन्तु।

२ न प्रधावेच्च वर्षति।

३ न च नग्नः शयीत नैकः स्वप्याच्छून्यगृहे।

४ तुषकेशपुरीषभस्मास्थिश्लेष्मनखलोमान्यप्सु न निक्षिपेत् पादेन पाणिना वा जलं नाभिहन्यात्।

१ नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्। नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलघयेत्। न चैन पादतः कुर्यान्न प्राणावाधमाचरेत्।

२ श्रेयांसं न प्रबोधयेत्।

विरुद्धंवर्जयेत्कर्मप्रेतधूमंनदीतरम् ।
केशभस्मतुषांगारकपालेषुचसंस्थितिम् ॥

पद-विरुद्धम् २ वर्जयेत् क्रि-कर्म २ प्रेतधूमम् २ नदीतरम् २ केशभस्मतुषांगारकपालेषु ७ चऽ-संस्थितिम् २ ॥

योजना-विरुद्ध कर्म प्रेतधूमं च पुनः केशभस्मतुषांगारकपालेषु संस्थितिं वर्जयेत् ॥

ता० भा०-देश ग्राम कुल आचारके विरुद्ध कर्म प्रेतका धूम भुजाओंसे नदीको तरना और केश भस्म तुष अंगार कपाल और चकारसे अस्थि कपाल और अपवित्रस्थान इनमें स्थिति इनको वर्जदे ॥ १३९ ॥

नाचक्षीतधयंतींगांनाद्वारेणविशेत्क्वचित् ।
नराज्ञःप्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः

पद-नऽ-आचक्षीत क्रि-धयतीम् २ नऽ-अद्वारेण ३ विशेत् क्रि-क्वचित्ऽ-नऽ-राज्ञः ६ प्रतिगृह्णीयात् क्रि-लुब्धस्य ६ उच्छास्त्रवर्तिनः ६ ॥

योजना-परस्मै धयतीं गां न आचक्षीत, अद्वारेण क्वचित् न विशेत्, लुब्धस्य राज्ञः उच्छास्त्रवर्तिनः न प्रतिगृह्णीयात् ॥

ता० भा०-परके दूध आदि पीवती गौको परको न कहे, किसीभी नगर ग्राम वा मंदिरमें विना द्वार न घुसे, और कृपण और शास्त्रकी मर्यादाके उल्लंघन करनेवाले राजासे प्रतिग्रह न ले ॥ १४० ॥

प्रतिग्रहेसूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः ।
दुष्टादशगुणंपूर्वात्पूर्वादेतेयथाक्रमम् १४१॥

पद-प्रतिग्रहे ७ सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः १ दुष्टाः १ दशगुणम् २ पूर्वात् ५ पूर्वात् ५ एते १ यथाक्रमम्ऽ-॥

योजना-सूनिचक्रिध्वजिवेश्यानराधिपाः एते पूर्वात् पूर्वात् यथाक्रमं प्रतिग्रहे दशगुणं दुष्टा भवंति ॥

ता० भा०-सूनि (प्राणिहिंसक) चक्री (तेली) ध्वजी (मदिरा बेचनेवाला) वेश्या (रंडी) और राजा ये पांचों क्रमसे पूर्व २ से दशगुणे प्रतिग्रहमें दुष्ट हैं अर्थात् पूर्व २ से पर दुष्ट है ॥ १४१ ॥

अध्यायानामुपाकर्मश्रावण्यांश्रवणेनवा ।
हस्तेनौषधिभावेवापंचम्यांश्रावणस्यतु १४२

पद-अध्यायानाम् ६ उपाकर्म १ श्रावण्यां ७ श्रवणेन ३ वाऽ-हस्तेन ३ औषधिभावे ७ वाऽ-पचम्याम् ७ श्रावणस्य ६ तुऽ-॥

योजना-श्रावण्यां वा श्रवणेन युक्ते दिने हस्तेन युक्तायां वा श्रावणस्य पंचम्यां वा ओषधिभावे अध्यायानाम् उपाकर्म कर्तव्यम् ॥

ता०-अब अध्ययनके धर्मोंको कहते हैं। जो पढे जांय उने अध्याय (वेद) कहते हैं उनका उपाकर्म, उपक्रम (प्रारंभ) औषधियोंके जमनेपर श्रावणमासकी पूर्णिमाको वा श्रवणनक्षत्रयुक्त दिनमें वा हस्तनक्षत्रयुक्त पचमीको अपने गृह्यसूत्रमें कही विधिसे करै और जिस वर्ष श्रावणमासमें औषधियोंकी उत्पत्ति न हो तब भाद्रपदमासमें श्रवणनक्षत्रमें करै, फिर साढे चार मासतक वेदोंको पढे सोई मनुने लिखा है कि श्रावणी श्रावण वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको ब्राह्मण विधिसे उपाकर्म करके सावधानीसे साढेचारमासतक वेदोंको पढे

भावार्थ-श्रावणमासकी पूर्णिमा वा श्रवण नक्षत्रयुक्त दिनमें वा हस्तनक्षत्रयुक्त पचमीको औषधियोंके जमनेपर उपाकर्म करै ॥ १४२ ॥

पौषमासस्यरोहिण्यामष्टकायामथापिवा ।
जलांतेछंदसांकुर्यादुत्सर्गंविधिवद्बहिः॥४३॥

१ श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छंदांस्यधीयीत मासान्विप्रोर्धपंचमान् ॥

पद्-पौषमासस्य ६ रोहिण्याम् ७ अष्टकायां ७ अथऽ-अपिऽ-वाऽ-जलांते ७ छंदसाम् ६ कुर्यात् क्रि-उत्सर्गम् २ विधिवत्ऽ-वहिःऽ-

योजना-पौषमासस्य रोहिण्याम् अथवा अष्टकायां जलांते छदसाम् उत्सर्गं ग्रामाद्वहिः विधिवत् कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब उत्सर्ग सस्कारके समयको कहते हैं। पौषमासकी रोहिणी वा अष्टकाको ग्रामसे वाहिर जलके समीप अपने गृह्यसूत्रमें कही विधिसे वेदोंका उत्सर्ग करै और जब भाद्रपद मासमें उपाकर्म हो तव माघशुक्कके प्रथम दिनमें उत्सर्ग करै सोई मनुने कहाहै कि पौपमासमें वा माघमासमें शुक्लपक्षके प्रथम दिनके पूर्वाह्णमें ग्रामसे वाहिर वेदोंका उत्सर्ग करै उसके अनंतर पक्षिणी (दो दिन एक रात्रि) वा अहोरात्र अनध्याय करके शुक्लपक्षमें वेद और कृष्णपक्षमें वेदांगोंको पढै सोई मनुने कहा है कि शास्त्रके अनुसार ग्रामसे वाहिर वेदोंका उत्सर्ग करके पक्षिणी वा अहोरात्र अनध्याय करै। इसके अनतर शुक्लपक्षमें वेद और कृष्णपक्षमें सव वेदांगोंको पढै ॥

भावार्थ-पौषमासकी रोहिणी वा अष्टकाको जलके समीप ग्रामसे वाहिर वेदोंका उत्सर्ग करै ॥ १४३ ॥

त्र्यहंप्रेतेष्वनध्यायःशिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु।
उपाकर्मणिचोत्सर्गेस्वशाखाश्रोत्रिये तथा॥

पद्-त्र्यहम् २ प्रेतेषु ७ अनध्यायः १ शिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु ७ उपाकर्मणि ७ चऽ-उत्सर्गे ७ स्वशाखाश्रोत्रिये ७ तथाऽ-॥

योजना-शिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु प्रेतेषु उपाकर्मणि च पुनः उत्सर्गे तथा स्वशाखाश्रोत्रिये मृते सति त्र्यहं अनध्यायः कर्तव्यः ॥

तात्पर्यार्थ-अब अनध्यायोंको कहते हैं। उस प्रकारसे वेदपाठियोंके शिष्य ऋत्विग् गुरु और बधु इनके मरनेपर उपाकर्म और उत्सर्ग कर्म करनेके अनतर और अपनी शाखा पढनेवाले वेदपाठीके मरनेपर तीन दिन अनध्याय करना और उत्सर्गमें मनुने जो पक्षिणी और अहोरात्र अनध्याय कहा है उसके संग इसका विकल्पहै ॥

भावार्थ-शिष्य, ऋत्विग्, गुरु, बधु, अपनी शाखाका वेदपाठी इनके मरने और उपाकर्म उत्सर्गमें तीन दिन अनध्याय करना ॥१४४॥

संध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातने।
समाप्यवेदंद्युनिशमारण्यकमधीत्यच १४५॥

पद्-सध्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने ७ समाप्यऽ- वेदम् २ द्युनिशम्ऽ-आरण्यकम् २ अधीत्यऽ-चऽ-॥

योजना-सध्यागर्जितनिर्घातभूकपोल्कानिपातने वेदं समाप्य च पुनः आरण्यकम् अधीत्य द्युनिशम् अनध्यायो भवति ॥

ता० भा० सध्याके समय मेघके गर्जनेमें आकाशमें उत्पात शब्द भूमिका चलना, उल्काका पतन मत्र वा ब्राह्मणकी समाप्ति और आरण्यका अध्ययन इनमें अहोरात्र अनध्याय होता है ॥ १४५ ॥

पंचदश्यांचतुर्दश्यामष्टम्यांराहुसूतके॥
ऋतुसंधिषुभुक्त्वावाश्राद्धिकंप्रतिगृह्यच ॥

पद्-पचदश्याम् ७ चतुर्दश्याम् ७ अष्टम्याम् ७ राहुसूतके ७ ऋतुसंधिषु ७ भुक्त्वाऽ-वाऽ-श्राद्धिकम् २-प्रतिगृह्यऽ-चऽ- ॥

---

१ पौषे तु छन्दसां कुर्याद्वहिरुत्सर्जनं बुधः। माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥

२ यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छदसां वाहिः। विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्वाप्येकमहर्निशम् ॥ अतऊर्ध्वं तु छंदांसि शुक्लेषु नियतः पठेत्। वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु सपठेत् ॥

योजना-पंचदश्यां चतुर्दश्याम् अष्टम्यां राहुसूतके द्युनिशम् अनध्यायो भवति। ऋतुसंधिषु श्राद्धिकं भुक्त्वा वा प्रतिगृह्य द्युनिशम् अनध्यायो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अमावास्या पूर्णिमा चतुर्दशी अष्टमी और चंद्रसूर्यका ग्रहण इनमें अहोरात्र अनध्याय होता है। जो यह वचन[1] है कि राजा और राहुसूतकमें तीन दिन वेदको न पढै वह ग्रस्तास्तके विषयमें जानना और ऋतुकी संधिकी प्रतिपदाको और श्राद्धके भोजन और प्रतिग्रहमें अहोरात्र अनध्याय होता है। यह भी एकोद्दिष्ट श्राद्धसे भिन्नमें समझना। क्योंकि यह स्मृति[2] है कि बुद्धिमान् मनुष्य एकोद्दिष्टके निमत्रणको ग्रहण करके तीन दिन वेद न पढै ॥

भावार्थ-अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी अष्टमी, ग्रहण, ऋतुकी संधि, श्राद्धका भोजन और प्रतिग्रह लेकर अहोरात्र अनध्याय करै ॥ १४६ ॥

पशुमंडूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः ।
कृतेंतरेत्वहोरात्रंशक्रपातेतथोच्छ्र्ये ॥१४७॥

पद-पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः ३ कृते ७ अंतरे ७ तुऽ-अहोरात्रम् २ शक्रपाते ७ तथाऽ-उच्छ्र्ये ७ ॥

योजना-पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैः अंतरे कृते सति शक्रपाते तथा उच्छ्र्ये अहोरात्रं अनध्यायः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पढनेवालोंके बीचमें पशु मेंढक नकुल कुत्ता सर्प बिलाव मूसा निकलजाय और इंद्रकी ध्वजाके बांधने और उतारनेके दिन अहोरात्र अनध्याय होताहै। यद्यपि द्युनिशं इस पदसे अहोरात्रका प्रकरण था फिर-अहोरात्रपदका ग्रहण इस लिये है कि संध्याका गर्जन भूकम्प उल्काका पात इनमें जो अनध्याय है वह अकालिक है[1]। यही इस गौतम वचनमें लिखाहै कि अनध्यायके निमित्त कालसे परले दिन इतने वही काल आवै उसे अकाल कहते हैं और उसका अनध्याय अकालिक कहाताहै यह भी प्रातःकालकी सध्याके[2] गर्जनेमें समझना रात्रिकी सध्याके गर्जनेमें तो रात्रिकाही अनध्याय होताहै क्योंकि हारितका वचन है कि सायंकालकी सध्याके गर्जनेमें रात्र और प्रातःकालकी सध्याके गर्जनेमें अहोरात्र अनध्याय होता है। और जो गौतमने यह कहाहै कि[3] श्वान, नौला, सर्प, मेंडक, मार्जार, इनके बीचको निकसनेमें तीन दिन उपवास, परदेशमें गमन करै। वह प्रथम पढनेमें समझना ॥

भावार्थ-पशु, मेंडक, नौला, कुत्ता, सर्प, मार्जार, मूसा ये बीचको निकसजांय। और इंद्रकी ध्वजाके बांधने और उतारनेमें अहोरात्र अनध्याय होता है ॥ १४७ ॥

श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ।
अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके ॥

पद-श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने ७ अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके ७ ॥

योजना-श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबाणार्तनिःस्वने अमेध्यशवशूद्रांत्यश्मशानपतितांतिके तत्कालम् अनध्यायः भवति ॥

---

१ त्र्यहं न कीर्त्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ।
२ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहं न कीर्त्तयेद्ब्रह्म ।

१ अकालिकनिर्घातभूकपराहुदर्शनोल्काः ।
२ साय स्तनिते रात्रिः प्रातः स्तनितेऽहोरात्रम् ।
३ श्वनकुलसर्पमण्डूकमार्जाराणा त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च ।

ता०भा० कुत्ता, गीदड, गधा, उल्लू, सामवेद, वाण, रोगी इनके शब्दमें, अपवित्र वस्तु, शव, शूद्र, अंत्यज, श्मशान, पतित इनके समीपमें तत्काल अनध्याय होताहै, वीणा आदिके शब्दमें ऐसेही समझना क्योंकि यह गौतमका वचन है कि वांसवीणा, भेरी, मृदंग, शकट, रोगी इनके शब्दमेंभी तत्काल अनध्याय होताहै १४८

देशेशुचावात्मनिचविद्युत्स्तानितसंप्लवे। भुक्त्वार्द्रपाणिरंभोंतरर्धरात्रेतिमारुते १४९

पद-देशे ७ अशुचौ ७ आत्मनि ७ चऽ-विद्युत्स्तानितसंप्लवे ७ भुक्त्वाऽ-आर्द्रपाणिः १ अभोन्तःऽ-अर्द्धरात्रे ७ अतिमारुते ७ ॥

योजना-अशुचौ देशे च पुनः अशुचौ आत्मनि, विद्युत्स्तनितसंप्लवे भुक्त्वा आर्द्रपाणिः अभोन्तः अर्द्धरात्रे अतिमारुते वेदं न अधीयीत ॥

ता० भा०-अशुद्ध देश और अशुद्ध आत्मा जब हो बिजली और गर्जना वारवार होय और भोजनके अंतमें गीले हाथ हों जलके मध्यमें अर्द्ध रात्र, और अत्यत पवनके चलनेमें वेदको न पढे ॥ १४९ ॥

पांसुप्रवर्षेदिग्दाहेसंध्यानीहारभीतिषु। धावतःपूतिगंधेचशिष्टेचगृहमागते ॥१५०॥

पद-पांसुप्रवर्षे ७ दिग्दाहे ७ सध्यानीहारभीतिषु ७ धावतः ६ पूतिगधे ७ चऽ-शिष्टे ७ चऽ-गृहम् २ आगते ७ ॥

योजना-पांसुप्रवर्षे, दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु धावतः पूतिगंधे च पुनः शिष्टे गृहम् आगते सति वेदं न अधीयीत ॥

ता० भा०-उत्पातकी धूलिकी वर्षा और दिशाओंमें दाह होना सध्या नीहार (कोल) चौर और राजा आदिका भय धावनका समय दुर्गंधिका आना वेदपाठी आदि शिष्टका अपने घर आना इनमें तत्काल अनध्याय होताहै१५०॥

खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे। सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ॥

पद-खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे ७ सप्तत्रिंशत् २ अनध्यायान् २ एतान् २ तात्कालिकान् २ विदुः क्रि- ॥

योजना-खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे तत्कालम् अनध्यायः अनध्यायविधिज्ञा एतान् सप्तत्रिंशत् अनध्यायान् तात्कालिकान् विदुः ॥

तात्पर्यार्थ-गर्दभ उष्ट्र (ऊंट) यान (रथ आदि) हस्ती अश्व नौ वृक्ष ईरिण (ऊखर वा मरुस्थल) इनपर चढने वा गमन करनेमें तत्काल अनध्याय होताहै। इस प्रकार श्वक्रोष्टगर्दभ इससे लेकर यहांतक तीस अनध्यायोंको तात्कालिक, अनध्याय विधिके जाननेवाले कहतेहैं अर्थात् ये उतनेही काल होतेहैं जितनी देर अनध्यायका निमित्त रहै। विदुः इस पदके कहनेसे अन्यस्मृतियोंमें कहेहुए अनध्यायभी समझने सोई मनुने कहाहै कि सोता हुआ और प्रौढपाद (उकडू बैठना) मांस और सूतकके अन्नको खाकर वेदको न पढै ॥

भावार्थ-गर्दभ ऊंट रथ आदि हाथी अश्व नाव वृक्ष ऊखर इनमें गमन करनेपर तत्काल अनध्याय होताहै, इन सैंतीस ३७ अनध्यायोंको तात्कालिक कहते हैं ॥ १५१ ॥

देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञांछायांपरस्त्रियाः। नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादिच १५२

---

१ वेणुवीणाभेरीमृदंगगन्त्र्यार्तशब्देषु।

१ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्। नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥

पद्-देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञाम् ६ छायाम् २ परस्त्रियाः ६ नऽ-आक्रामेत् क्रि-रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि २ चऽ-॥

योजना-देवर्त्विक्स्नातकाचार्यराज्ञां परस्त्रियाः छायां च पुनः रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्तनादि न आक्रामेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार अनध्यायोंको कहकर पूर्वोक्त स्नातकके व्रतोंको फेर कहते हैं। देवता ऋत्विज स्नातक आचार्य राजा और पराई स्त्री इनकी छायाको जानकर न लंघे और न बैठे। सोई मनुने कहाहै कि देवता गुरु स्नातक राजा आचार्य और नकुलके समान है वर्ण जिसका ऐसा गौ अश्व आदि पशु इनकी छायाको जानकर न लंघे और रुधिर मल मूत्र थूक मैल स्नान वमन इनकोभी न लंघै ॥

भावार्थ-देवता ऋत्विज स्नातक आचार्य राजा पराई स्त्री रुधिर मल मूत्र इनकी छायाको न लंघै ॥ १५२ ॥

विप्राहिक्षत्रियात्मानोनावज्ञेयाःकदाचन । आमृत्योःश्रियमाकांक्षेन्नकंचिन्मर्मणिस्पृशेत् ॥ १५३ ॥

पद्-विप्राहिक्षत्रियात्मानः १ नऽ-अवज्ञेयाः १ कदाचनऽ-आमृत्योःऽ-श्रियम् २ आकांक्षेत् क्रि- नऽ-, कंचित्ऽ-मर्मणि ७ स्पृशेत् क्रि-॥

योजना-विप्राहिक्षत्रियात्मानः न कदाचित् अवज्ञेयाः आमृत्योः श्रियम् आकांक्षेत् कंचित् मर्मणि न स्पृशेत् ॥

ता० भा०-बहुश्रुत ब्राह्मण सर्प राजा और अपना आत्मा इनका तिरस्कार कदाचित्भी न करै और जबतक जीवै तबतक लक्ष्मीकी इच्छा करै, और किसीके मर्म और दुष्टचरित्रका प्रकाश न करै ॥ १५३ ॥

दूराद्वुच्छिष्टविण्मूत्रपादांभांसिसमुत्सृजेत् । श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्नित्यमाचारमाचरेत् ॥ १५४ ॥

पद्-दूरात्ऽ-उच्छिष्टविण्मूत्रपादांभांसि २ समुत्सृजेत् क्रि-श्रुतिस्मृत्युदितम् २ सम्यक्ऽ-नित्यम् २ आचारम् २ आचरेत् क्रि-॥

योजना-उच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि दूरात् समुत्सृजेत् श्रुतिस्मृत्युदितम् आचारं सम्यक् नित्यम् आचरेत् ॥

ता० भा०-उच्छिष्ट मल मूत्र चरणोंका जल इनको घरसे दूर डालै,वेद और धर्मशास्त्रमें कहेहुए आचारको भलीप्रकार नित्य करै१५४॥

गोब्राह्मणानलान्नानि नोच्छिष्टो न पदा स्पृशेत् । न निंदाताडनेकुर्यात्पुत्रंशिष्यं चताडयेत् ॥ १५५ ॥

पद्-गोब्राह्मणानलान्नानि २ नऽ-उच्छिष्टः १ नऽ-पदा ३ स्पृशेत् क्रि-नऽ-निन्दाताडने २ कुर्यात् क्रि-पुत्रम् २ शिष्यम् २ चऽ-ताडयेत् क्रि-॥

योजना-उच्छिष्टः सन् गोब्राह्मणानलान्नान न स्पृशेत् च पुनः पदा न स्पृशेत् । निंदा ताडने न कुर्यात्, च पुनः पुत्रं शिष्यं ताडयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-गौ ब्राह्मण अग्नि और भोजनका अन्न और विशेषकर पक्वान्न इनको अशुद्ध हुआ स्पर्श न करै, और विना उच्छिष्टभी चरणसे स्पर्श न करै यदि प्रमादसे इनका स्पर्श करै तो आचमनके पीछे मनुके कहे हुए इस प्रायश्चि-

---

१ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोरपि । नाक्रामेत् कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥

१ स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् । गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥

त्तको करै कि अशुद्ध मनुष्य इनका स्पर्श करके जलोंसे प्राणायाम और गात्रोंका स्पर्श करके हस्ततलसे नाभिका स्पर्श करै। इसी प्रकार हस्ततलसे प्राणोंकाभी स्पर्श करै और किसी-कीभी निंदा और ताडना न करै। यहभी उसके लिये है जिसने अपराध न किया हो। क्योंकि यह वंचन है कि युद्धको न करतेहुए ब्राह्मणके अज्ञानसे रुधिर निकासकर मनुष्य मरनेके अनंतर महान् दुःखको प्राप्त होता है। पुत्र और शिष्य और चकारसे दास इनकी तो शिक्षाके लिये ताडना करै। और ताडनाभी रज्जु आदिसे उत्तम अंगको छोडकर करनी। क्योंकि यह गौतमका वंचन है कि शिष्यकी शिक्षा उस प्रकार करै जिससे मरण न हो और जो शिष्य पीडाको न सहसकै उसकी ताडना रज्जु बांस विदल (वकलआदि) कोमलोंसे करै। अन्यसे करै तो राजा उसे दंड दे। और यहभी वचंन है कि शरीरकी पीठपर ताडै और मुख आदि उत्तम अंगोंमें कदाचित् न ताडै॥

भावार्थ–गौ ब्राह्मण अग्नि भोजनका अन्न उच्छिष्ट हुआ चरणसे इनका स्पर्श न करै। किसीकी निंदा और ताडना न करै, पुत्र और शिष्यकी ताडना करै॥ १५५॥

कर्मणामनसावाचायत्नाद्धर्मंसमाचरेत्।
अस्वर्ग्यंलोकविद्विष्टंधर्म्यमप्याचरेन्नतु१५६।

पद–कर्मणा ३ मनसा ३ वाचा ३ यत्नात् ५ धर्मम् २ समाचरेत् क्रि–अस्वर्ग्यम् २ लोकविद्विष्टम् २ धर्म्यम् २ अपिऽ–आचरेत् क्रि–नऽ–तुऽ–॥

योजना–कर्मणा मनसा वाचा यत्नात् धर्मं समाचरेत्। तु पुनः लोकविद्विष्टम् अस्वर्ग्यं धर्म्यम् अपि कर्म न आचरेत्॥

ता० भा०–देहसे यथाशक्ति धर्मको करै और उसकाही मनसे ध्यान और वाणीसे कथन करै और शास्त्रोक्तभी लोकमें निंद्य (मधुपर्कमें गोवध आदि) कर्मको न करै क्योंकि उससे अग्निष्टोमके समान स्वर्ग नहीं होता॥ १५६॥

मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसंबंधिमातुलैः।
वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः॥१५७॥

पद–मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसबंधिमातुलैः ३ वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः ३॥

ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः।
विवादंवर्जयित्वातुसर्वांल्लोकाञ्जयेद्गृही॥

पद–ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः ३ विवादम् २ वर्जयित्वाऽ–तुऽ–सर्वान् २ लोकान् २ जयेत् क्रि–गृही १॥

योजना–मातृपित्रतिथिभ्रातृजामिसबंधिमातुलैः वृद्धबालातुराचार्यवैद्यसंश्रितबांधवैः ऋत्विक्पुरोहितापत्यभार्यादाससनाभिभिः सह विवादं वर्जयित्वा गृही सर्वान् लोकान् जयेत्॥

ता० भा०–माता पिता अतिथि भिन्नोदरभाई सुहागिनस्त्रीसंबंधि मातुल वृद्ध (७० सत्तर वर्षसे अधिक) बाल (सोलहवर्षसे न्यून) वैद्य (विद्यावान् वा भिषक्) संश्रित (सेवक) पिता और माताके पक्षके बांधव, मातुलका पृथक् पढना आदरके लिये है, ऋत्विज, पुरोहित, संतान, भार्या, दास, सहोदरभाई और भगिनी इनके संग वाणीके कलहको छोडकर गृहस्थी प्राजापत्य आदि सर्व लोकोंमें प्राप्त होता है॥ १५७॥ १५८॥

१ अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगं ततः। दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याऽप्राज्ञतया नरः॥

२ शिष्यशिष्टिरवधेन वाधनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्ये न घ्नन् राज्ञा शास्यते।

३ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन।

पंचपिंडाननुद्धृत्यनस्नायात्परवारिषु ।
स्नायान्नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषुच ॥१५९॥

पद्-पंच २ पिण्डान् २ अनुद्धृत्यऽ-नऽ-स्नायात् क्रि-परवारिषु ७ स्नायात् क्रि-नदी-देवखादह्रदप्रस्रवणेषु ७ चऽ- ॥

योजना-परवारिषु पच पिंडान् अनुद्धृत्य न स्नायात् च पुनः नदीदेवखातह्रदप्रस्रवणेषु स्नायात् ॥

तात्पर्यार्थ-पराये उन जलोंमें जो सब जीवोंके निमित्त न त्यागे होंय पांच पिंडोंके विना निकासे स्नान करै। इससे अपने और सब भूतोंके निमित्त त्यागे हुए तडाग आदिकोंमें पिण्डोंके विना उद्धार कियेभी स्नान करै यह अनुज्ञात हुआ और जो साक्षात् वा परंपरासे समुद्रमें जातीहों उन नदियोंमें और देवताओंके बनाये पुष्कर आदि देवखातोंमें और जलप्रवाहके जोरसे हुए जलसहित बडे गहरे ह्रदों (कुण्ड) में और पर्वत आदि ऊचे देशसे निकसे प्रस्रवण (झरना) के जलोंमें पांच पिण्डोंके विना निकासेभी स्नान करले। यहभी सभव होय तो नित्य स्नानके विषयमें समझना, क्योंकि इस वचनमें[1] नित्य पदका ग्रहण है कि नदी देवखात तडाग सर गर्त प्रस्रवण इनमें नित्य स्नान करै, और शौच आदिके लिये तो यथासभव पराये जलोंके वर्त्तावमें पांच पिण्डोंके निकासे विनाभी दोष नहीं है ॥

भावार्थ-पराये जलोंमें पांच पिंडोंके निकासे विना स्नान न करै, और नदी देवखात ह्रद और प्रस्रवणोंमें पांच पिंडोंके निकासे विनाभी स्नान करै ॥ १५९ ॥

[1] नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च । स्नान समाचरेन्नित्य गर्तप्रस्रवणादिषु ॥

परशय्यासनोद्यानगृहयानानिवर्जयेत् ।
अदत्तान्यग्निहीनस्यनान्नमद्यादनापदि ॥

पद्-परशय्यासनोद्यानगृहयानानि २ वर्जयेत् क्रि-अदत्तानि २ अग्निहीनस्य ६ नऽ-अन्नम् २ अद्यात् क्रि-अनापदि ७ ॥

योजना-अदत्तानि परशय्यासनोद्यानगृहयानानि वर्जयेत् । अग्निहीनस्य अन्नम् अनापदि न अद्यात् ॥

ता०भा०-विना दिये पराई शय्या आसन, उद्यान (बगीचा), गृह, यान इनको वर्जे दे और श्रौत और स्मार्त अग्निका जिसे अधिकार नहीं उस शूद्रका और अग्निहोत्रके अधिकारी अग्निसे रहित प्रतिलोमजका आपत्तिके विना भोजन न करै और प्रतिग्रह न ले, तिससे गौतमके[1] वचनानुसार अपने कर्मसे शुद्ध श्रेष्ठ जातियोंका ब्राह्मण भोजन करै और प्रतिग्रह ले ॥ ६ ॥

कदर्यबद्धचौराणांक्लीबरंगावतारिणाम् ।
वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् ।

पद्-कदर्यबद्धचौराणां ६ क्लीबरंगावतारिणाम् ६ वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् ६ ॥

योजना-कदर्यबद्धचौराणां, क्लीबरगावतारिणाम्, वैणाभिशस्तवार्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् अन्नं न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-कदर्य-(लुब्ध) जो इस वचनमें[2] कहा है कि आत्मा धर्मकार्य पुत्र स्त्री माता पिता भृत्य इनको जो लोभसे

[1] तस्मात्प्रशस्ताना स्वकर्मणा शुद्धजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत प्रतिगृह्णीयाच्च ।

[2] आत्मान धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् । लोभाद्यः पितरौ भृत्यान्स कदर्य इति स्मृतः ॥

दुःखी रक्खे उसे कदर्य कहते हैं वेडी और वाणीसे जो रोकमें हो उसे बद्ध, ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न जो अन्यके धनको चुरावै वह चौर कहाता है और नपुंसक रंगावतारी (नट चारण मल्ल आदि) वैण (बासोंको काटकर जो जीवै) अभिशस्त (जिसको पातककर्म लगा हो) वार्धुष्य निषिद्ध सूद लेनेवाला) गणिका (वेश्या) गणदीक्षी (जो वहुतोंको यज्ञ करावै) इनके अन्नको न खाय ।

भावार्थ-कदर्य, बद्ध, चौर, नपुंसक, नर, चारण, मल्ल, वांस वेचनेवाले, पतित, निषिद्ध, व्याज लेनेवाले, वेश्या, वहुयाजक इनके अन्नको भक्षण न करै ॥ १६१ ॥

चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ।
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम्

पद-चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्तविद्विषाम् ६ क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम् ६ ॥

योजना-चिकित्सकातुरक्रुद्धपुंश्चलीमत्ताविद्विषां, क्रूरोग्रपतितव्रात्यदांभिकोच्छिष्टभोजिनाम् अन्नं न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-वैद्यवृत्तिसे जीनेवाला चिकित्सक और इस वचनमें कहे महारोगोंसे युक्त आतुरकी, वातव्याधि, पथरी, कुष्ठ, प्रमेह, महोदर, भगदर, अर्श, ग्रहणी, ये आठ महारोग कहे हैं-क्रोधी व्यभिचारणी स्त्री विद्या आदिसे मत्त, विद्विट् (शत्रु), क्रूर (जिसके भीतर अत्यंत कोप हो) वाणी और कायाके व्यापारसे दूसरेको कपानेवाला उग्र ब्रह्महा आदि पतित, व्रात्य (जिसका उचित कालमें संस्कार न हुआ हो), दांभिक (वंचक) उच्छिष्टभोजी इनके अन्नको भक्षण न करै ॥

१ वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगदराः । अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥

भावार्थ-वैद्य, रोगी, क्रोधी, वेश्या, मत्त, शत्रु, क्रूर, उग्र, पतित व्रात्य, दंभी, उच्छिष्टभोजी इनके अन्नको न खाय ॥ १६२ ॥

अवीराख्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम्।
शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् १६३॥

पद-अवीराख्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ६ शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् ६

योजना-अवीराख्रीस्वर्णकारस्त्रीजितग्रामयाजिनां शस्त्रविक्रयकर्मारतंतुवायश्ववृत्तिनाम् अन्न न अद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-व्यभिचारके विनाभी पतिपुत्र से रहित स्वतत्र स्त्री-सुनार-स्त्रीका वशीभूत स्त्रीजित-ग्रामयाजी-(ग्रामकी शांति आदिका कर्त्ता वा बहुतोंको यज्ञोपवीत देनेवाला) शस्त्र बेचनेवाला-कर्मार-(लुहार वा तक्षा आदि) ततुवाय श्ववृत्ति (जो कुत्तोंसे आजीविका करै) इनके अन्नको न खाय ॥

भावार्थ-अवीरा स्त्री-सुनार-स्त्रीके वशीभूत ग्रामयाजी-शस्त्रविक्रेता-लुहार-तंतुवाय-श्ववृत्ति इनके अन्नको न खाय ॥ १६३ ॥

नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ।
चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् १६४

पद-नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् ६ चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनाम् ६ ॥

पिशुनानृतिनोश्चैवतथाचाक्रिकबंदिनाम् ।
एषामन्नंनभोक्तव्यंसोमविक्रयिणस्तथा ॥

पद-पिशुनानृतिनोः ६ चऽ-एवऽ-तथाऽ-चाक्रिकबंदिनाम् ६ एषाम् ६ अन्नम् १ नऽ-भोक्तव्यम् १ सोमविक्रयिणः ६ तथाऽ-॥

योजना-नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनां चैलधावसुराजीवसहोपपतिवेश्मनां च पुनः

पिशुनानृतिनोः तथा चाक्रिकबदिनां तथा सोमविक्रयिणः एषाम् अन्नं न भोक्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-नृशंस (निर्दयी) राजा और उसका पुरोहित क्योंकि शखने इस वचनसे पुरोहितका अन्नभी वर्जित लिखा है-कि भयभीत-निंदित-रोनेवाला-आक्रांदित (बद्ध) अवघुष्ट (शापित) क्षुधित-(यद्वातद्वाभोक्ता) विस्मित-उन्मत्त-अवधूत-राजा और पुरोहित इनके अन्नको वर्जे दे-वस्त्र आदिको नील आदि रंगसे रंगनेवाला रजक-कृतघ्न(उपकारको जो न मानै) प्राणियोंकी हिंसासे जीनेवाला वधजीवी-चैलधाव (धोबी) सुराजीव (मदिरा बेचकर जो जीवै) जिसके घरमें जार रहता हो पिशुन (चुगलखोर) अनृती (मिथ्यावादि) चाक्रिक (तेली वा गाडीवान्) क्योंकि इस वचनमें अभिशस्तको पतित और चाक्रिकको तेली कहा है-बदीजन (जो वशआदिकी स्तुति करते हों) सोमलताके बेचनेवाला-इनके अन्नका भोजन न करै-ये सब कदर्य और कायरता आदि दोषोंसे दुष्ट द्विजही लेने क्योंकि इतर जातिकी प्राप्ति नही है और निषेध प्राप्तिपूर्वक ही होताहै ॥

भावार्थ-निर्दयी राजा रगरेज कृतघ्नी हिंसक धोबी कलार जिसके घरमें जार हो चुगल मिथ्यावादी तेली बदीजन तथा सोमविक्रयी इनके अन्नको न खाय ॥ १६४ ॥ १६९ ॥

१ भीतावगतिरुदिताक्रादिताववुष्टक्षुधितपारिभुक्तविविस्मितोन्मत्तावधूतराजपुरोहितान्नानि वर्जयेत् ।

२ अभिशस्तः पतितश्चाक्रिकस्तैलकः ।

शूद्रेषुदासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ।
भोज्यान्नानापितश्चैवयश्चात्मानंनिवेदयेत् ॥

पद-शूद्रेषु ७ दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः १ भोज्यान्नाः १ नापितः १ चऽ-एवऽ-यः १ चऽ-आत्मानं २ निवेदयेत् क्रि- ॥

योजना-दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः च पुनः नापितः च पुनः यः आत्मानं निवेदयेत् एते शूद्रेषु भोज्यान्नाः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-आपत्तिके विना अग्निहीनके अन्नको न खाय इस वचनसे शूद्रको अभोज्यान्न कहा है। अब उसका प्रतिप्रसव (निषेधका निषेध) कहते हैं-दास(गर्भदास आदि) गोपाल (जो गौओंकी पालनासे जीवै) पिता पितामह आदिक्रमसे चला आया कुलका मित्र-अर्द्धसीरी (जो कृषिके आधे अन्न आदिको ले और उघाई न ले)-नापित (घरके व्यापार करनेवाला वा नाई) और जो मैं तेरा हू यह कहकर वाणी मन कायाको निवेदन करै और चकारसे कुंभकार-शूद्रोंमें इनका अन्न भोजन करने योग्य है क्योंकि इस वचनमें कुंभकार भी भोज्यान्नोंमें पढा है-कि गोप नापित कुंभकार कुलमित्र अर्द्धसीरी निवेदितात्मा शूद्रोंमें इनका अन्न भोजन करने योग्य है ॥

भावार्थ-दास गोपाल कुलमित्र अर्द्धसीरी कुंभकार शूद्रोंमें इनका अन्न भोजनके योग्य है ॥ १६६ ॥

१ गोपनापितकुंभकारकुलमित्रार्द्धकानिवेदितात्मानो भोज्यान्नाः ।

इति स्नातकधर्मप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अथ भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ७.

अनर्चितंवृथामांसंकेशकीटसमन्वितम्।
शुक्तंपर्युषितोच्छिष्टंश्वस्पृष्टंपतितेक्षितम्॥

पद-अनर्चितम् २ वृथामांसम् २ केशकीट समन्वितम् २ शुक्तम् २ पर्युषितोच्छिष्टम् २ श्वस्पृष्टम् २ पतितेक्षितम् २ ॥

उदक्यास्पृष्टसंघुष्टंपर्यायान्नंचवर्जयेत्।
गोघ्रातंशकुनोच्छिष्टंपदास्पृष्टंचकामतः॥

पद-उदक्यास्पृष्टसघुष्टम् २ पर्यायान्नम् २ चऽ-वर्जयेत् क्रि-गोघ्रातम् २ शकुनोच्छिष्टम् २ पदा ३ स्पृष्टम् २ चऽ-कामतःऽ-॥

योजना-अनर्चित वृथामांसं केशकीटसमन्वितं शुक्त पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्ट पतितेक्षितम् उदक्या स्पृष्ट सघुष्ट पर्यायान्नं गोघ्रात च पुनः कामतः पदा स्पृष्टम् अन्न वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणके स्नातक व्रतोंको कहकर अव द्विजातियोंके धर्मोंको कहते हैं कि तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ पदार्थ-वृथामांस (जो वक्ष्यमाण प्राणान्त कष्टके विना देवपूजनसे शिष्ट न हो) किंतु अपने लियेही बनाया हो केश और कीट आदिसे युक्त वस्तु-शुक्त जो अम्ल न हो अधिककाल वा अन्यद्रव्यसे मिलनेसे अम्ल (खट्टा) होजाय-वह भी दधि आदिको छोडकर समझना क्योंकि यह शंखका वचन है कि पापीका अन्न-द्विपक्व-शुक्त-पर्युषित इनको न खाय और राग-खांड-चुक्र-दही-गुड-गेहूं जौ-इनके विकारके खानेका दोष नहीं-पर्युषित-(वासी) उच्छिष्ट-(भोजनका शेष) कुत्तेका छुआ-पतितका देखा-उदक्या (रजस्वला) का छुआ-उदक्या पदसे यहां चांडाल आदि लेने क्योंकि यह शंखका वचन है कि अपवित्र-पतित,[1] चाण्डाल, पुल्कस, रजस्वला, कुनखी, कुष्ठी इनके छुए अन्नको-और सघुष्ट अन्न कोई भोजन करै है यह शब्द कहकर जो दिया-जाय उसे सघुष्टान्न कहते हैं-पर्य्यायान्न जो अन्यका अन्न अन्यके नामसे दिया जाय उसे पर्यायान्न कहते हैं-जैसे कि इस वचनमें लिखा है कि ब्राह्मणान्नको देता हुआ शूद्र और शूद्रान्नको देताहुआ ब्राह्मण उन दोनोंका अन्न भक्षण योग्य नही और भक्षण करै तो चान्द्रायण करै पर्याचान्त यह पाठ होय तो कुल्ला करनेके अनन्तर भोजन न करै-अर्थात् गण्डूष (कुल्ला) से पीछे और आचमनसे पहिले भोजन करना अयोग्य है-और जव पार्श्वाचान्त पाठ है तव यह अर्थ है कि एक पंक्तिमें बैठेहुओंमें. पासका आचमन जब करले और भस्म आदिकी मर्य्यादा न हो तो भोजन न करै, गौका सूघा-और शकुनोच्छिष्ट (काकआदि पक्षियोंका जूठ और) जानकर पैरोंसे छुआ इतने अन्नोंको वर्जदे ॥

भावार्थ-तिरस्कारसे दिया अन्न-वृथामांस-केशकीटसे युक्त अन्न-शुक्त-पर्युषित-उच्छिष्ट-कुत्तेका छुआ और पतितका देखा अन्न-रजस्वलाका छुआ-सघुष्ट और पर्य्यायान्न-गौका सूंघा-पक्षियोंका जूठा-और जानकर पैरोंसे छुआ अन्न-इतने अन्नोंको वर्ज दे ॥ १६७ ॥ १६८॥

अन्नंपर्युषितंभोज्यंस्नेहाक्तंचिरसंस्थितम्।
अस्नेहाअपिगोधूमयवगोरसविक्रियाः १६९

---

१ न पापीयसोऽन्नमश्नीयान्न द्विःपक्वं न शुक्त न पर्युषित अन्यत्रागखाण्डवचुक्रदधिगुडगोधूमयवपिष्टविकारेभ्यः।

१ अमेध्यपतितचाण्डालपुल्कसरजस्वलाकुनखिकुष्ठिसंस्पृष्टान्नं वर्जयेत्।

२ ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्न ब्राह्मणो ददत्। उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चांद्रायण चरेत् ॥

पद्-अन्नम् १ पर्युषितम् १ भोज्यम् १ स्नेहाक्तम् १ चिरसंस्थितम् १ अस्नेहाः १ अपिऽ-गोधूमयवगोरसविक्रियाः १ ॥

योजना-स्नेहाक्तं चिरसंस्थित पर्य्युषितमप्यन्नं भोज्य भवति-गोधूमयवगोरसविक्रियाः अस्नेहा अपि भोज्या भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-अब पर्युषितका प्रतिप्रसव कहतेहैं कि घृतआदि स्नेहसे युक्त चिरकालका संस्थितभी पर्युषित अन्न भोजन करने योग्य होताहै-और गोधूम जौ गोरस इनके विकार चिरकालके भी स्थित मंडक सत्तू किलाट कूर्चिका आदि भोजन करने योग्य हैं यदि वे विकारको प्राप्त न हुए हों क्योंकि यह वसिष्ठकी स्मृति है कि अपूप धान करभ सत्तू पाचक तैल पायस शाक ये शुक्त (खट्टे) होगये हों तो वर्जदे ॥

भावार्थ-स्नेहसे युक्त चिरकालकाभी बासी अन्न भोजन करने योग्य है और स्नेहसे रहितभी गेहूं जौ गोरसके विकार भोजन करने योग्य हैं ॥ १६९ ॥

संधिन्यनिर्दशावत्सागोपयःपरिवर्जयेत्। औष्ट्रमैकशफंस्त्रैणमारण्यकमथाविकम्॥

पद्-सधिन्यनिर्दशावत्सागोपयः २ परिवर्जयेत् क्रि-औष्ट्रम् २ ऐकशफम् २ स्त्रैणम् २ आरण्यकम् २ अथऽ-आविकम् २ ॥

योजना-सधिन्यनिर्दशावत्सागोपयः अथ औष्ट्रम् ऐकशफ स्त्रैणम् आरण्यकम् आविकं पयः परिवर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-संधिनी (जो गौ दूध देती हुई घनचढै) क्योंकि यह त्रिकांडी स्मृति है कि वशाको वंध्या और वृषाक्रांताको संधिनी कहते हैं-और जो एक समयको छोडकर दूसरे समय दूध देना बछडे विनाही दूध दे उसे भी सधिनी कहतेहैं-अनिर्देशा (जिसके प्रसवको दशादिन न बीते हों) अवत्सा-(जिसका वत्स मरगया हो) इन तीन प्रकारकी गौओंका दूध वर्जदे-यहां सधिनी पदसे स्यंदिनी और यमलसूभी लेनी-सोई गौतमने कहा है कि स्यदिनी यमलसू सधिनीका दूध वर्जित है जिसका सदैव दूध निकसतारहै उसे स्यदिनी और जिसके दो वत्स पैदा हों उसे यमलसू कहतेहैं इसी प्रकार बकरी और भसका दूध दशादिन तक वर्जित है क्योंकि वसिष्ठकी यह स्मृति है कि बकरी और भैंस और गौका दूध दशादिनतक वर्जित है-दूधके ग्रहणसे उसके विकार दही आदिकाभी निषेध है जैसे मांसके निषेधमें उसके विकारका भी निषेध है-और जहां विकारका निषेध है वहां प्रकृतिका निषेध नहीं और दूधके निषेधसे गोबर और मूत्रका निषेध नही-और ऊटनी और घोडी आदिका दूध स्त्रीका दूध-स्त्रीके ग्रहणसे अजासे भिन्न सब द्विस्तनियोंका निषेधहै-क्योंकि शंखन यह कहाहै कि बकरीको छोडकर सर्व द्विस्तनियोंका दूध अभोज्य है-भैंसको छोडकर और वनके पशुओंका दूध-क्योंक यह वचन है कि महिषीको छोडकर वनके सब पशुओंका दूध वर्जितहै और आविक ये सब दूध वर्जितहैं औष्ट्र इस पदमें विकारमें अण् प्रत्यय होनेसे ऊटनीके विकार दूध मूत्र आदिका सर्वदा निषेध है

१ अपूपधानाकरमसक्तुयावकतैलपायसशाकानि शुक्तानि वर्जयेत् ।

२ वशां वध्या विजानीयाद्वृषाक्रांता च सधिनीम् ।

१ स्यदिनीयमलसूसधिनीना च

२ गोमहिष्यजानामनिर्दशानाम् ।

३ सर्वासा द्विस्तनीना क्षीरमभोज्यमजावर्ज्यम् ।

४ आरण्याना च सर्वेषा मृगाणा माहिषं विना ।

क्योंकि गौतमका वचन है कि भेड ऊटनी एक खुरके जीव इनके दूध आदि विकार वर्जित हैं ॥

भावार्थ-संधिनी-अनिर्दशा और अवत्सा गौका दूध-और ऊटनी-एक खुरवाली घोडी आदिका दूध-स्त्री-वनके पशु-भेड इनका दूध वर्जित है ॥ १७० ॥

देवतार्थहविःशिग्रुंलोहितान्व्रश्चनांस्तथा। अनुपाकृतमांसानिविड्जानिकवकानिच॥

पद्-देवतार्थम् २ हविः२शिग्रुम् २लोहितान्२ व्रश्चनान् २ तथाऽ-अनुपाकृतमांसानि २ विड्जानि २ कवकानि २ चऽ-॥

योजना-देवतार्थं हविः शिग्रु-तथा लोहितान् व्रश्चनान् च पुनः अनुपाकृतमांसानि विड्जानि कवकानि वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-देवताकी बलि देनेके लिये बनाई हुई जो हवि वह होमसे पहिले अभक्ष्य है शिग्रु (सोंहजना) और वृक्षका लाल गूंद-और वृक्षके छेदनेसे पैदा हुए सब प्रकारके गूंद-सोई मनुने कहाहै कि वृक्षके लाल गूंद और छेदनसे पैदा हुए गूंद वर्जित है-लोहितके ग्रहणसे हींग और कपूर आदिका दोष नहीं-अनुपाकृतमांस (यज्ञमें न होमें पशुका) विड्ज-(मनुष्यके भक्षित बजिसे पैदा हुए तण्डुल आदि) और कवक (छत्राक) ये सब वर्जित हैं ॥

भावार्थ-देवताके लिये हवि सोहजना लाल और वृक्षके छेदनसे पैदा हुए गूंद और यज्ञमें न होमें पशुका मांस विष्ठामें पैदा हुए अन्न और छत्राक इन सबको वर्जदे ॥१७१॥

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्। सारसैकशफान्हंसान्सर्वांश्चग्रामवासिनः॥

1 नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमैकशफच।

२ लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवास्तथा।

पद्-क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् २ सारसैकशफान् २ हंसान् २ सर्वान् २ चऽ-ग्रामवासिनः २॥

योजना-क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान्-सारसैकशफान्-हंसान् च पुनः सर्वान् ग्रामवासिनः वर्जयेत् ॥

ता० भा०-क्रव्याद (कच्चे मांसके भक्षक जीव) गीध आदिपक्षी-दात्यूह (चातक) शुक (तोता) प्रतुद (जो चोंचसे तोडकर खाते हैं वे श्येन आदि) टिट्टिभ (टटीरी) सारस-एकशफ (अश्वआदि) हंस-और-ग्राममें बसनेवाले कबूतर आदि सपूर्ण जीव ये सब वर्जित हैं ॥ १७२ ॥

कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्। वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः॥१७३॥

पद्-कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान् २ वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः २ ॥

योजना-कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान्-वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीःवर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-कोयष्टि (क्रौंच) प्लव (जलमुरगा) चक्राह्व (चकवा) बलाका (बगला) विष्किर (जो नखोंसे फाडकर भक्षण करते हैं वे चकोर आदि) लेने क्योंकि लावक मयूर आदि भक्ष्य हैं और ग्रामके कुक्कुटका ग्रामवासी होनेसे निषेध है-इनको यष्टि आदि जीवोंको वर्जदे-और देवताओंके निमित्त विना बनाये कृशर सयाव पायस अपूप शष्कुलिभी वर्जित हैं-तिल और मूंगमिले ओदनको कृशर कहते हैं-क्षरि गुड घृत आदिमें पकाये चूर्णको संयाव (मोहनभोग) कहते हैं-दूधमें पकाये ओदनको पायस (खीर) कहते हैं-अपूप (पूडे) शष्कुली (पूरी) ये दोनों घी आदि स्नेहमें पके गोधूम

का विकार है-ये सब भक्षणमें वर्जित हैं। यद्यपि अपने लिये अन्नको न पकावै इस वचनसे कृशर आदिकोंका निषेध सिद्ध था पुनः कहना अधिक प्रायश्चित्तके लिये है ॥

भावार्थ-क्रौंच, जलकुक्कुट-चक्रवाक-बलाका-बगला-चकोर आदि-इनको वर्जदे और देवताके निमित्त विना, बनाये कृशर संयाव पायस अपूप शष्कुलि इनकोभी वर्जदे ॥ १७३ ॥

कलविंकंसकाकोलंकुररंरज्जुदालकम् ।
जालपादान्खंजरीटानज्ञातांश्चमृगद्विजान् ॥

पद-कलविंकम् २ सकाकोलम् २ कुररम् २ रज्जुदालकम् २ जालपादान् २ खंजरीटान् २ अज्ञातान् २ चऽ-मृगद्विजान् २ ॥

योजना-सकाकोलं-कलविंकं-कुररं-रज्जुदालकं-जालपादान्-खजरीटान्-च पुनः अज्ञातान् मृगद्विजान् वर्जयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-कलविंक (ग्रामका) चिडा यद्यपि ग्रामवासी होनेसे निषेध सिद्ध था तथापि पुनः वचन सब चटकोंके निषेधार्थ है काकोल (द्रोणकाक) कुरर (उत्क्रोश) रज्जुदालक (वृक्षकुट्टक) जालपाद (जिनके पैर जालके समान हों) हंसोंके विना जालभी पैर होते हैं इससे पुनर्वचन है-खंजरीट (खंजन) और जिन मृगपक्षियोंकी जातिका ज्ञान न होवे-इन सबको वर्जदे ॥

भावार्थ-ग्रामका चिडा द्रोणकाक, कुरर-वृक्षकुट्टक जालपाद खजन और अज्ञात मृग और पक्षी इनको वर्जदे ॥ १७४ ॥

चाषांश्चरक्तपादांश्चसौनंवल्लूरमेवच ।
मत्स्यांश्चकामतोजग्ध्वासोपवासस्त्र्यहंवसेत् ॥ १७५ ॥

पद-चाषान् २ चऽ-रक्तपादान् २ चऽ-सौनम् २ वल्लूरम् २ एवऽ-चऽ-मत्स्यान् २ चऽ-कामतःऽ-जग्ध्वाऽ-सोपवासः १ त्र्यहम् २ वसेत् क्रि-॥

योजना-चाषान् च पुनः रक्तपादान् च पुनः सौनं च पुनः वल्लूर च पुनः मत्स्यान् कामतः जग्ध्वा त्र्यह सोपवासः वसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-चाष (पपीहा) रक्तपाद (कादव) सौन (घातस्थान) का मांस-वल्लूर (सूखा मांस) मत्स्य-इन चाष आदिको वर्जदे, चकारसे नाली सण कुसुंभ आदिभी वर्जितहैं-क्योंकि ये वचन है कि नाली सण छत्राक कुसुभ अलाबू विष्ठामें उत्पन्न कुम्भी (तर्बूज) कडुक बैंगन-कोविदार इनको वर्जदे तैसेही अकालमें पैदा हुये फल और पुष्प और विकार करनेवालोंको प्रयत्नसे वर्जदे तैसेही वट, पिलखन, पीपल, कदव, कैत, मातुलिंग इनके फलोंको वर्जदे-इन पूर्वोक्त संधिनी आदिके दूध आदिको जानकर भक्षण करै तो तीन-रात्र उपवास करै-और अज्ञानसे भक्षण करै तो अहोरात्र उपवास करै-क्योंक शेषोंमें अहोरात्र व्रत करै यह मनुका वचन है-और जो शंखने यह कहा है कि बक, बलाका, हंस, प्लव, चक्रवाक, कारंडक, गृहचटक (चिडा) कपोत, कबूतर, पाण्डु, शुक, सारिका,

१ नपचेदन्नमात्मने ।

१ नालिकाशणछत्राककुसुभालाबुविड्भवान् । कुम्भीकंदुकवृन्ताककोविदारांश्च वर्जयेत्॥ तथा कालप्ररूढानि पुष्पाणि च फलानि च। विकारवच्च यत्किंचित् प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ वटप्लक्षाश्वत्थकपित्थनीपमातुलिंगफलानि वर्जयेत् ।

२ शेषेषूपवसेदहः ।

३ बकबलाकाहंसप्लवचक्रवाककारण्डवगृहचटककपोतपारावतपाण्डुशुकसारिकासारसटिट्टिभोलूककंकरक्तपादचाषभासवायसकोकिलशार्ङ्गलिकुक्कुटहारीतभक्षणेद्वादशरात्रमनाहारः पिबेद्गोमूत्रयावकम् ।

सारस, टिट्टिभ, उलूक, कंक, रक्तपाद, चाक, भास, वायस, कोकिल, शाह्लि, कुक्कुट, हारीत इनके भक्षणमें द्वादश रात्रतक भोजनको छोडकर गोमूत्र और जौको पीवे यह शंखका प्रायश्चित्त बहुत कालके अभ्यासमें वा जानकर सबके भक्षणमें जानना ॥

भावार्थ–चाष रक्तपाद कसाईका और सूखा मांस और मत्स्य इनको ज्ञानसे खाकर तीन दिन उपवास करै ॥ १७५ ॥

पलांडुंविड्वराहं च छत्राकंग्रामकुक्कुटम्।
लशुनंगृंजनंचैवजग्ध्वाचांद्रायणंचरेत् १७६

पद–पलांडुम् २ विड्वराहम् २ चऽ–छत्राकम् २ ग्रामकुक्कुटम् २ लशुनम् २ गृंजनम् २ चऽ–एवऽ–जग्ध्वाऽ–चांद्रायणम्२चरेत् क्रि–॥

योजना–पलांडु च पुनः विड्वराह छत्राकं ग्रामकुक्कुट लशुनं च पुनः गृंजनं जग्ध्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–पलांडु (लसुनके समान स्थूल कद आदि) विड्वराह (ग्रामसूकर) छत्राक (सर्पछत्र) ग्रामकुक्कुट (मुर्गा) लसुन (लहसन) गृंजन (गाजर) इन छःको एकवार ज्ञानसे खाकर चांद्रायण व्रत करै। यद्यपि ग्रामकुक्कुट और छत्राकका पहिले निषेध कर आये हैं फिर यहां कहना पलांडु आदिके समान प्रायश्चित्तके लिये है। जानकर चिरकालतक भक्षण किये होंय तो यह मनुका कहा प्रायश्चित्त है कि छत्राक विड्वराह लसुन ग्रामकुक्कुट पलांडु गृंजन इनको ज्ञानसे खाकर द्विज पतित होताहै। अज्ञानसे इनके भक्षणका अभ्यास किया हो तो इस वचनमें कहाहुआ प्रायश्चित्त करै कि अज्ञानसे इन छःको खाकर सांतपन कृच्छ्र वा यतिचांद्रायण व्रत करै वा इसके कहे प्रायश्चित्तको करै कि लसुन पलांडु–गृंजन–विड्वराह–ग्रामकुक्कुट–कुंभीक इनके भक्षणमें द्वादश रात्रतक दुग्धपान करै।

भावार्थ–पलांडु–सलगम–विड्वराह–छत्राक ग्रामकुक्कुट–लहसन और गाजर इनको खाकर चांद्रायण करै ॥ १७६ ॥

भक्ष्याःपंचनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः।
शशश्चमत्स्येष्वपिहिसिंहतुंडकरोहिताः १७७

पद–भक्ष्याः १ पंचनखाः १ सेधागोधाकच्छपशल्लकाः १ शशः १ चऽ–मत्स्येषु ७ अपिऽ–हिऽ–सिंहतुण्डकरोहिताः १ ॥

तथापाठीनराजीवसशल्काश्चद्विजातिभिः।
अतःशृणुध्वंमांसस्यविधिंभक्षणवर्जने १७८॥

पद–तथाऽ–पाठीनराजीवसशल्काः १ चऽ–द्विजातिभिः ३ अतःऽ–शृणुध्वम् क्रि–मांसस्य ६ विधिम् २ भक्षणवर्जने ७ ॥

योजना–सेधागोधाकच्छपशल्लकाः च पुनः शशः एते पचनखाः मत्स्येषु अपि सिंहतुण्डकरोहिताः तथा पाठीनराजीवसशल्काः द्विजातिभिः भक्ष्याः भवति। अतः अनतर हे मुनयः मांसस्य भक्षणवर्जने विधिं यूय शृणुध्वम् ॥

तात्पर्यार्थ–सेधा (सेह श्वाविध) गोधा (गोह) कच्छप–शल्लक–(शल्लकी) और शश ये पांच नखवाले पांचों–कुत्ता मार्जार वानर आदि ये पांच नखवालोंमें और चकारसे गेंडा भक्षण करने योग्य हैं–सोई गौतमने कहा है कि शशा शल्लक सेह गोह खड्ग–कच्छप

१ छत्राक विड्वराह च लशुनं ग्रामकुक्कुटम्। पलांडु गृंजन चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥

२ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्।

१ लशुनपलाण्डुगृंजनविड्वराग्रामकुक्कुटकुंभकिभक्षणे द्वादशरात्र पयः पिवेत्।

२ पचनखाः शशशल्लकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाः।

ये पंचनखोंमें छः भक्ष्य[1]-मनुनेभी कहा है कि सेह शल्लक गोह गेंडा कछुवा शशा पंचनखोंमें ये और ऊटको छोडकर एक दांतवाले भक्षणके योग्य है-जो वशिष्ठने इस वचनसे खड्गको अभक्ष्य कहा है कि खड्गके भक्ष्य माननेमें विवाद करते हैं[2] वह श्राद्धसे अन्यत्र समझना क्योंकि श्राद्धमें खड्गके मांसका यह फल लिखा है कि पितृकर्ममें खड्गका मांस देनेसे अक्षय होताहै[3]-तैसेही मत्स्योंके मध्यमें सिंहतुड-(सिंहमुख) रोहित (रक्तवर्ण) पाठीन (चंद्रक) राजीव (पद्मवर्ण) सशल्क जिसके शरीरपर सीपके समीप समान आकारहों ये सब नियुक्त ही-अर्थात् श्राद्धआदिके लिये बनायेही भक्ष्य हैं आत्मार्थ नहीं-क्योंकि मनुका[4] यह वचन है कि पाठीन रोहित सिंहतुण्ड राजीव सशल्क ये सब हव्यकव्यमें नियुक्त हैं-ये सब द्विजातियोंको भक्षण करने योग्य हैं-इस वचनमें द्विजातिका ग्रहण शूद्रको भक्षणका दोष नहीं है इस लिये है-अब द्विजातियोंकी धर्मोंको कहकर चार वर्णोंके धर्मको कहते हैं-कि इसके अनंतर प्रोक्षित मांसके भक्षणमें और उससे भिन्न निषिद्ध मांसके वर्जनेमें हे मुनियो ! तुम विधिको सुनो ॥

भावार्थ-सेह, गोह, कछवा, शल्लक और कच्छ ये पंचनख, और मत्स्योंमें सिंहतुण्ड, रोहित, तथा पाठीन, राजीव, सशल्क, ये द्विजातियोंको भक्षण करने योग्य हैं-हे मुनियो ! इसके अनंतर तुम मांसभक्षण और निषेधकी विधिको सुनो ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

प्राणात्ययेतथाश्राद्धेप्रोक्षितंद्विजकाम्यया । देवान्पितॄन्समभ्यर्च्यखादन्मांसंन दोषभाक् ॥ १७९ ॥

पद-प्राणात्यये ७ तथाऽ-श्राद्धे ७ प्रोक्षितम् २ द्विजकाम्यया ३ देवान् २ पितॄन् २ समभ्यर्च्यऽ-खादन् १ मांसम् २ नऽ-दोषभाक् १ ॥

योजना-प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया देवान् पितॄ[न्सम]भ्यर्च्य मांसं खादन् दोषभाक् न भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अन्नका अभाव हो वा व्याधि हो और मांसके भक्षणके विना प्राणोंको बाधा होय तो मांसका भक्षण नियमसे करै-क्योंकि यह आत्माके रक्षाकी विधि है कि-सबसे देहकी रक्षा करै[1]-और इस वचनसे मरणका निषेध है कि-स्वर्गकी इच्छासेभी अवस्थासे पहिले न मरै[2]-तैसेही श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण नियमसे मांसका भक्षण करै क्योंकि भक्षण न करनेमें मनुने यह दोष कहा है कि जो श्राद्धमें नियुक्त ब्राह्मण मांस नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्मतक पशु होता है[3]-और जिस पशुका अग्नि सोम-आदि यज्ञके लिये वेदोक्त प्रोक्षण संस्कार हुआ है होमसे बचे उस पशुके प्रोक्षित मांसका भक्षण करै क्योंकि भक्षणके विना यज्ञकी सिद्धि नहीं होसकती-और ब्राह्मणभोजनार्थ वा देव पितरोंके अर्थ-जो बनायाहो उसके भोजन और पूजाके शेष मांसभक्षणसे दोषभागी नहीं होता इसी प्रकार भृत्योंके भरण पोषणके शेषमेंभी

---

१ श्वाविधं शल्लकं गोधां खड्गकूर्मशशास्तथा । भक्ष्यान्पंचनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥

२ खड्गे तु विवदते ।

३ खड्गमांसैर्भवेदत्तमक्षय्यं पितृकर्मणि ।

४ पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः । राजीवाः सिंहतुडाश्च सशल्काश्चैव सर्वशः ॥

१ सर्वत एवात्मानं गोपायेत् ।

२ तस्मादिह न पुरायुषः स्वःकामी प्रेयात् ।

३ यथाविधि नियुक्तस्तु यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ।

दोष नहीं, क्योंकि यह मनुका वचन है कि ब्राह्मण यज्ञके लिये और भृत्योंके जीवनके लिये प्रशस्त मृग और पक्षियोंको हते क्योंकि अगस्त्यने तैसाही आचरण किया है, पूर्वोक्त मांसके भक्षणमें दोषभागी नहीं होता यह कहनेसे अतिथिके पूजनसे शेषमांसकीभी आज्ञामात्र है कुछ प्रोक्षितके समान नियम नहीं, न खाय तो कुछ दोष नहीं, इसी प्रकार जिनका निषेध न हो वे शश आदिभी प्राणबाधाके विना अभक्ष्य हैं, इससे शूद्रकोभी मांसकी सपूर्ण विधि निषेधका अधिकार है यह सिद्ध भया ॥

भावार्थ–प्राणोंकी बाधा और श्राद्धमें और प्रोक्षित और ब्राह्मणकी इच्छासे और देवता और पितरोंको पूजकर मांसभक्षण करनेवाला दोषभागी नहीं होता ॥ १७९ ॥

वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः ।
संमितानि दुराचारो यो हंत्यविधिनापशून्॥

पद–वसेत् क्रि–सः १ नरके ७ घोरे ७ दिनानि २ पशुरोमभिः ३ समितानि २ दुराचारः १ यः १ हन्ति क्रि–अविधिना३ पशून् २॥

योजना–यः दुराचारः अविधिना पशून् हंति सः पशुरोमभिः समितानि घोरे नरके वसेत् ॥

ता०भा०–(अब वृथा मांसभक्षणकी निंदा कहते हैं) जो दुराचारी देवता आदिके निमित्त विना अविधिसे पशुओंको मारता है वह पशुरोमोंके तुल्य दिनोंतक घोर नरकमें वसता है। यहां आठ प्रकारके घातक मनुके कहे हुए लेने अनुमतिका दाता, कहनेवाला, मारनेवाला, लेने और वेचनेवाला, पकानेवाला और खानेवाला और भक्षणका कर्त्ता ॥ १८०॥

सर्वान्कामानवाप्नोति हयमेधफलं तथा ।
गृहेपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ॥

पद–सर्वान् २ कामान् २ अवाप्नोति क्रि–हयमेधफलं २ तथाऽ–गृहे ७ अपिऽ–निवसन्१ विप्रः १ मुनिः १ मांसविवर्जनात् ५ ॥

योजना–विप्रः मांसविवर्जनात् सर्वान् कामान् तथा हयमेधफलं अवाप्नोति । गृहेपि निवसन् सन् मुनिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य प्रोक्षित मांसको छोडकर मैं मांस भक्षण नहीं करूंगा यह सत्य संकल्प करता है वह जिस कार्यकी सिद्धिमें प्रवृत्त होगा वह शुद्धान्तःकरण होनेसे उसको अवश्य प्राप्त होगा, सोई मनुने लिखा है कि जो मनुष्य किसीकी हिंसा नहीं करता वह जो ध्यान करता है जिसको करता है जिसमें प्रीति करता है उसके फलको निर्विघ्न प्राप्त होता है, यह फल प्रासगिक है मुख्य फलको कहते हैं कि वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है, यह फलभी एक वर्षके संकल्पका है क्योंकि मनुका वचन है कि जो सौ वर्षतक अश्वमेध यज्ञ करै और जो मांस न खाय उन दोनोंका पुण्यफल समान है, तैसेही घरमेंभी वसता हुआ ब्राह्मण आदि वर्ण मांसके त्यागसे माननेयोग्य मुनि होता है, यहभी न निषिद्धमांसके विषयमें है न प्रोक्षितमांसके विषयमें है किंतु परिशेषसे अतिथिपूजनसे शेषमांसके विषयमें समझना ॥

भावार्थ–ब्राह्मण मांसके त्यागसे सब कामनाओंको अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है और घरमें वसता हुआभी मुनि होता है१८१ ॥

१ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः । भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्तथा ॥

२ अनुमन्ता विशसिता निहता क्रयविक्रयी । संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

१ यद्ध्यायते यत्कुरुते रतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्यविघ्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥

२ वर्षेवर्षेश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥

इति भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम् ।

अथ द्रव्यशुद्धिप्रकरणम् ८.

सौवर्णराजताब्जानामूर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम् । शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् १८२

पद-सौवर्णराजताब्जानाम् ६ ऊर्ध्वपात्रग्रहाश्मनाम् ६ शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणाम् ६ ॥

पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते। चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राण्युष्णेन वारिणा ॥

पद-पात्राणाम् ६ चमसानाम् ६ चऽ-वारिणा ३ शुद्धिः १ इष्यते क्रि-चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राणि १ उष्णेन ३ वारिणा ३ ॥

योजना-सौवर्णराजताब्जानाम् ऊर्ध्वपात्रग्रहाश्मनां शाकरज्जुमूलफलवासोविदलचर्मणां पात्राणां च पुनः चमसानां- शुद्धिः उष्णेन वारिणा इष्यते चरुस्रुक्स्रुवसस्नेहपात्राणि उष्णेन वारिणा शुद्धयन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-अब द्रव्यशुद्धिको कहते हैं, सुवर्णसे और चांदीसे किया पात्र और जलसे पैदा हुए मोती शंख सीप आदिके पात्र, और यज्ञके उलूखल आदि ऊर्ध्वपात्र, और ग्रह (षोडशी आदि), दृषत् (पत्थरके पात्र), शाक, बल्वज आदिकी रज्जु, मूल (अदरख आदि), आम्र-आदि फल, वस्त्र बाँस आदि विदल और अजा आदिका चर्म, यहां बिदल चर्म आदिका ग्रहण उनके विकार छत्र वस्त्र आदिके लिये है, और प्रोक्षणीपात्र आदि पात्र, होताकी चमस आदि लेपसे रहित इनकी उच्छिष्ट होनेपर जलसे धोनेसे शुद्धि होती है, और चरुस्थाली स्रुक्स्रुव, स्नेहसहित पात्र (प्राशित्र हरण आदि) ये सब लेपसे रहित होय तो उष्ण जलसे शुद्ध होते हैं क्योंकि मनुका वचन है कि लेपरहित सुवर्ण, जलसे उत्पन्न पत्थर और चांदीके वे पात्र जलसे शुद्ध होते हैं, जिनका खात (गढ्ढा) भरा न हो और लेप सहितोंकी शुद्धि तो मनुने इस वचनमें लिखी है कि तेज और मणि और पत्थरके सब पात्रोंकी शुद्धि भस्म और मिट्टीसे मनीषियोंने कही है, यहां मिट्टी और भस्ममें एकके कार्य होनेसे विकल्प है जल तो दोनोंके संग है, काक आदिका मुख लग जाय तो यह शुद्धि है कि काकके मुखसे स्पर्श किये पात्रको खुदवावे और श्वापदके मुखसे स्पर्श किये पात्रको फिर काममें न ले, यह मार्जारको छोडकर है क्योंकि मनुका वचन है, कि मार्जार, कडछी, पवन, ये सदैव शुद्ध हैं ॥

भावार्थ-सुवर्ण चांदीके और जलसे उत्पन्न, उलूखल, ग्रह, पत्थरके पात्र और बथुवा आदि शाक, रज्जु, मूल, फल, वस्त्र, विदल, चर्म, पात्र, चमसा इनकी जलसे और चरु, स्रुक्, स्रुव और स्नेहसहित पात्र (चिकने) इनकी उष्ण जलसे शुद्धि होती है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुसलोलूखलानसाम् । प्रोक्षणं संहतानां च बहूनां धान्यवाससाम् ॥ १८४ ॥

पद-स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां ६ मुसलोलूखलानसाम् ६ प्रोक्षणम् १ संहतानाम् ६ चऽ-बहूनाम् ६ धान्यवाससाम् ६ ॥

योजना-स्फ्यशूर्पाजिनधान्यानां मुसलोलूखलानसाम् उष्णेन वारिणा शुद्धिः च पुनः

---

१ निर्लेपं कांचनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्धयति। अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥

१ तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च । भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ।

२ काकशकुनिमुखावघृष्ट पात्रं निर्लिखेत् श्वापदमुखावमृष्टं पात्रं न प्रयुञ्जीत ।

३ मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः ।

बहूनां धान्यवाससां संहतानां प्रोक्षणं शुद्धिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ–स्फ्य (यज्ञका अंग वज्र), शूर्प, मृगचर्म, धान्य, मुसल, उलूखल, शकट इनकी उष्णजलसे शुद्धि है। यहां फिर मृगचर्मका ग्रहण यज्ञका अंग मृगचर्मके लिये है और जिनकी शुद्धि कह आये हैं इकट्ठे उन द्रव्योंकी और बहुतसे अन्न और वस्त्रोंकी शुद्धि जल छिडकनेसे होतीहै। यहां बहुत स्पर्शकी अपेक्षासे लेना सिद्धांत यह है कि जब राशी किये हुए अन्न और वस्त्रोंमें चांडालके छुये अल्प हों और विना छुये बहुत होंय तो छुये छुयोंकी वहही शुद्धि है जो पहिले कह आये हैं। और विना छुयोंकी शुद्धि प्रोक्षणसे होती है। सोई इस अन्य स्मृतमें कहाहै कि वस्त्र अन्नकी राशिमें एक देशको दूषण लगै तो उतनेको निकालकर शेषकी शुद्धि प्रोक्षणसे होतीहै। और जब छुये हुए बहुत हों और विना छुये कम हों तब धोनेसे सबकी शुद्धि होतीहै। सोई मनुने कहा है कि बहुत अन्न और वस्त्रकी शुद्धि जल छिडकनेसे और अल्पोंकी शुद्धि धोनेसे होती है। और छुये विना छुये समान हों तो प्रोक्षणसे शुद्धि होतीहै। जब बहुतोंका प्रोक्षण कहाहै तो अल्पोंकी धोनेसे शुद्धि है। क्योंकि अल्पोंके धोनेका वचन समानोंके धोनेकी निवृत्तिके लिये है और जहां यह विवेक नहीं इतना छुया इतना नहीं वहां धोनेसेही शुद्धि होती है क्योंकि पक्षका दोषभी दूर करने योग्य है और अनेक पुरुषोंके धारण किये वस्त्र वा अन्न छुये हों वा न छुये हों तो प्रोक्षणसे शुद्धि होती है यह शास्त्रकार कहते हैं ॥

भावार्थ–स्फ्य, शूर्प, मृगचर्म, धान्य, मूसल, ओखल, गाडी इनकी शुद्धि उष्ण जलसे होती है। और इकट्ठे किये हुए पूर्वोक्त द्रव्य और अन्न वस्त्रोंकी शुद्धि प्रोक्षणसे होती है ॥ १८४ ॥

तक्षणं दारुशृंगास्थ्नां गोवालैः फलसंभवाम्। मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिनायज्ञकर्मणि १८५

पद–तक्षणम् १ दारुशृंगास्थ्नाम् ६ गोवालैः ३ फलसंभवाम् ६ मार्जनं १ यज्ञपात्राणाम् ६ पाणिना ३ यज्ञकर्मणि ७ ॥

योजना–दारुशृंगास्थ्नां यज्ञपात्राणां तक्षणं फलसंभवाम् गोवालैः मार्जनं यज्ञपात्राणां यज्ञकर्मणि हस्तेन मार्जनं कर्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–लेपरहित स्पर्शमात्रसे दुष्ट पात्रोंकी शुद्धिको कहकर लेपसहितोंकी शुद्धि कहते हैं। काठके और मेष महिष आदिके सींगोंके और हाथी वाराह शंख आदि अस्थियोंके और दांतोंके पात्र उच्छिष्ट और स्नेह आदिसे लिपे होंय और मिट्टी व भस्मसे शुद्ध न हो सकें तो अशुद्ध अंगके छीलनेसे शुद्धि होती है। क्योंकि इस वचनसे यह सामान्य शुद्धि कही है कि अशुद्ध द्रव्योंमें जबतक गध और लेप दूर न हो तबतक जलसे धोवै और बेल तूंबी नारिकेल आदि फलके पात्रोंकी शुद्धि गऊके बालोंको घिसकर होती है और स्रुक्, स्रुव आदि जब यज्ञके काममें लाये जायं तो दक्षिण हाथ, कुशा, वस्त्रकी दशा, वा पवित्रीसे शास्त्रोक्त रीतिसे मार्जन करना क्यों कि विना मार्जन किये यज्ञके अंग नहीं होसक्ते. यह वेदोक्त उदाहरण यह दिखानेको है, कि

१ वस्त्रधान्यादिराशीनामेकदेशस्य दूषणात्। तावन्मात्रं समुद्धृत्य शेषं प्रोक्षणमर्हति।

२ अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्। प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते।

१ यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गंधो लेपश्च तत्कृतः। तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु।

अन्यभी सुवर्ण आदिके पात्र स्मार्त और लौकिक कर्मके शौच करनेसेही अंग होसक्ते हैं । और यज्ञके अंगपात्रोंका यह मार्जन शुद्ध करनेके अनंतर संस्कारके लिये है ॥

भावार्थ-काठ, सींग, अस्थियोंके पात्रोंकी छीलनेसे और फलके पात्रोंकी गोबालोंसे मार्जन करनेसे और यज्ञके पात्रोंकी हाथसे मार्जन करनेसे यज्ञकर्ममें शुद्धि होती है ॥ १८५ ॥

सोखैरुदकगोमूत्रैः शुद्धयत्याविककौशिकम्। सश्रीफलैरंशुपट्टं सारिष्टैः कुतपं तथा१८६

पद-सोखैः ३ उदकगोमूत्रैः ३ शुद्धयति क्रि-आविककौशिकम् १ सश्रीफलैः ३ अंशुपट्टम् १ सारिष्टैः ३ कुतपम् १ तथाऽ-॥

योजना-आविककौशिकं सोखैःउदकगोमूत्रैः अंशुपट्टं सश्रीफलैः तथा कुतपं सारिष्टैःशुद्धयति।

तात्पर्यार्थ-ऊन और कोशसे पैदा हुए कंबल और टसरी पट्ट आदि ऊखरकी मिट्टीसहित गोमूत्र और जलसे शुद्ध होते हैं। उदकगोमूत्रैः यह बहुवचन इस लिये है कि मिट्टी लगाकर पीछे जल और गोमूत्रसे धोवै और वक्कलके तंतुओंसे बना अंशुपट्ट बेलके फलसहित जलोंसे और पर्वतकी बकरीके रोमोंसे बना कुतपनामका कंबल रीठेके फलोंसहित जल और गोमूत्रसे शुद्ध होता है। यहभी उच्छिष्ट और स्नेह आदिके लगनेपर जानना और अल्प अशुद्धि होय तो प्रोक्षणही करना क्योंकि धोनेको ये पूर्वोक्त वस्त्र नहीं सहसक्ते क्योंकि सर्वत्र वही शुद्धि इष्ट है जिसमें द्रव्यका नाश न हो सोई देवलने कहा है कि ऊन कौशेय कुतप पट्ट क्षौम दुकूल इनके वस्त्र अल्पशुद्धिवाले होते हैं इससे सुखाने और प्रोक्षणसे शुद्ध होजाते हैं यह कहकर फिर देवलने कहाहै कि यदि वेही वस्त्र अपवित्रतासे युक्त हों तो अपनी शुद्धि करनेवाले पदार्थ और अन्नकी खल और फलके रस और खार इनसे धोवै और क्षौमके समानही शणके वस्त्रोंकी शुद्धि होती है। ऊन आदिका ग्रहण ऊनके और रुईके वस्त्रोंके लिये है यदि उसमें अपवित्र वस्तु न लगी हो और अल्प अशुद्धि होय तो जलसे पूर्वोक्त प्रकारसे धोवै क्योंकि देवलने यह कहा है कि रुई पहरनेका वस्त्र और पुष्प रक्त वस्त्र इनको धूपमें कुछ सुखाकर हाथोंसे मार्जन करै और फिर जलसे छिडककर यज्ञकर्ममें ले और वे अत्यत मलीन होंय तो यथावत् शुद्धि करै। कुंकुम और कुसुमसे रंगे वस्त्रको पुष्परक्त कहते हैं। पुष्परक्तके ग्रहणसे हरिद्रा आदिसे रंगा वह वस्त्र लेना जो धोनेको न सहसकै क्योंकि शंखने कहा है कि रंगे हुए द्रव्य प्रोक्षणसे शुद्ध होते हैं ॥

भावार्थ-भेडकी ऊनका और तसरिपट्ट आदि कौशिक वस्त्र ऊखरकी मिट्टी सहित जल और गोमूत्रसे वक्कलके वस्त्र बेल और जल गोमूत्रसे पर्वतकी छागका कवल रीठे सहित जल गोमूत्रसे शुद्ध होते हैं॥ १८६ ॥

सगौरसर्षपैः क्षौमं पुनः पाकान्महीमयम्। कारुहस्तः शुचिः पण्यं भैक्ष्यं योषिन्मुखं तथा ॥ १८७ ॥

पद-सगौरसर्षपैः ३ क्षौमम् २ पुनःऽ-पा-

---

१ ऊर्णाकौशेयकुतपपट्टक्षौमदुकूलजाः। अल्पशौचा भवन्त्येते शोषणप्रोक्षणादिभिः।

१ तान्येवामेध्ययुक्तानि क्षालयेच्छोधनैःस्वकैः। धान्यकल्कैस्तु फलजै रसैः क्षारानुगैरपि।

२ तूलिकामुपधानं च पुष्परक्तांबरं तथा । शोषयित्वातपे किंचित्करैः समार्जयेन्मुहुः। पश्चाच्च वारिणा प्रोक्ष्य विनियुजीत कर्मणि । तान्यप्यतिमलिष्ठानि यथावत्परिशोधयेत्।

३ रागद्रव्याणि प्रोक्षितानि शुचीनि ।

कात् ५ महीमयम् २ कारुहस्तः १ शुचिः १ पण्यम् १ भैक्ष्यम् १ योषिन्मुखम् १ तथाऽ—॥

योजना—क्षौमं सगौरसर्षपैः उदकगोमूत्रैः महीमयं पुनः पाकात् शुद्ध्यति। कारुहस्तः शुचिः भवति तथा पण्यं भैक्ष्य योषिन्मुखं शुद्धं भवति ॥

तात्पर्यार्थ—क्षौमं (अतसीके सूतका) वस्त्र गौरसर्षपसहित जल और गोमूत्रसे शुद्ध होता है। और मिट्टीके घट आदि दुबारा पकानेसे शुद्ध होते हैं। यहभी तब जानना जब उच्छिष्ट स्नेह आदि लगे हों क्योंकि यह स्मृति है कि मदिरा मूत्र मल कफ राध आंसु रुधिर इनसे स्पर्श किया मट्टीका पात्र फिर शुद्ध नहीं होता। यदि चांडाल आदि छूले तो त्यागने योग्य होताहै। सोई पराशरने कहाहै कि चाण्डाल आदिका छुआ अन्न और वस्त्र जल छिडकनेसे शुद्ध होताहै। और मट्टीका पात्र त्यागने योग्य है। रजक और धोबी, सूपकार आदि कारुओंका हाथ सदैव शुद्ध है और शुद्धभी सूतक आदि होनेपर वस्त्रके धोवन आदिकोंमें उनके करने योग्य कर्ममेंही समझना सोई अन्य स्मृतिमें भी लिखा है कि कारु, शिल्पी, दासी, दास, राजा, राजाके भृत्य इनकी शुद्धि उसी समय होती है। पण्य (बेचने योग्य जौ व्रीहि आदि) लेनेवाले अनेक मनुष्योंके हाथमें छूने और व्यापारियोंके सूतक आदिसे अशुद्ध नहीं होता। और ब्रह्मचारी आदिके हाथमें आया भिक्षाका अन्न आचमन करनेसे पहिले स्त्री आदिके देनेसे वा अशुद्ध मार्गके गमनसे अशुद्ध नहीं होता और संभोग (रति) के समय स्त्रीका मुख शुद्ध है सोई इस स्मृतिमें कहा है कि रतिके संगममें स्त्री शुद्ध है ॥

भावार्थ—क्षौमका वस्त्र, गौरसरसों और जल गोमूत्रसे और मट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध होता है। कारीगरका हाथ बेचने योग्य द्रव्य भिक्षाका अन्न और रतिके समय स्त्रीका मुख ये शुद्ध होते हैं ॥ १८७ ॥

भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद्गोक्रमणात्तथा। सेकादुल्लेखनाल्लेपाद्गृहं मार्जनलेपनात् १८८

पद—भूशुद्धिः १ मार्जनात् ५ दाहात् ५ कालात् ५ गोक्रमणात् ५ तथाऽ—सेकात् ५ उल्लेखनात् ५ लेपात् ५ गृहम् १ मार्जनलेपनात् ५॥

योजना—मार्जनात् दाहात् कालात् तथा गोक्रमणात् सेकात् उल्लेखनात् लेपनात् भूशुद्धिर्भवति गृहं मार्जनलेपनात् शुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ—मार्जन अर्थात् मार्जनी (बुहारी) से धूल और तृण आदिके दूर करनेसे, और तृण और काष्ठ आदिसे दाह करनेसे और जितने कालमें अशुद्ध लेप आदिका नाश हो उतने कालसे, और गौके क्रमण (फिरना) से और दूध गोमूत्र जल गोमयसे वा वर्षासे, उल्लेखन (खुरचना वा खोदना) से और गोमय आदिके लीपनेसे इन संपूर्ण वा एक दोसे अपवित्र और मलिन भूमि शुद्ध होती है। सोई देवलने कहा है कि जहां नारीके प्रसव हो मरै वा दाह कियाजाय, जहां चांडाल वसे हों वा विष्ठा आदिका संसर्ग हो उस भूमिको अमेध्य

१ मद्यमूत्रपुरीषैश्च श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः। संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम्॥।

२ चाण्डालाद्यैस्तु संस्पृष्टं धान्यं वस्त्रमथापि वा। प्रक्षालनेन भक्ष्येत परित्यागान्महीमयम्।

३ कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥

१ स्त्रियश्च रतिसंसर्गे।

२ यत्र प्रसूयते नारी म्रियते दह्यतेऽपि वा। चाण्डालाध्युषितं यत्र यत्र विष्ठादिसंगतिः। एवं कश्मलभूयिष्ठा भूरमेध्या प्रकीर्तिता॥ श्वसूकरखरोष्ट्रादिसंस्पृष्टा दुष्टतां व्रजेत। अंगारतुषकेशास्थिभस्माद्यैर्मलिना भवेत्।

कहते हैं। और कुत्ता सूकर गधा ऊंट आदिका जहां स्पर्श हो वह भूमि दुष्ट होती है, अंगार तुष कश अस्थि भस्म आदिका जहां स्पर्श हो वह भूमि मलिन होती है । इस प्रकार अमेध्य दुष्ट मलिन तीन प्रकारकी शुद्धि योग्य भूमिको कहकर यह शुद्धिका विभाग देवलने दिखाया है कि पांच वा चार प्रकारसे अमेध्यभूमि, तीनि वा दो प्रकारसे दुष्टभूमि और एक प्रकारसे मलिन भूमि शुद्ध होती है अर्थात् जहां मनुष्य भूँखे जायँ चाण्डाल वसेहों उन दो भूमियोंका दाहकाल, गौओंका गमन, सेक और छीलना इन पांच प्रकारसे और जहां मनुष्य पैदा हो वह मरैं, और जहां अत्यत मल मूत्रका संग हो वह भूमि दाहको छोडकर पूर्वोक्त चार प्रकारसे और कुत्ता सूकर खर ये जहां बहुत दिनतक वसेहों वह गौओंके गमन छिडकना और छीलना इन तीन प्रकारसे, और जहां ऊंट ग्रामके मुर्गाआदि चिरकालतक वसे हों वह छिडकना और छीलना इन दो प्रकारसे, अंगार और तुष आदि जहां बहुत दिनतक रहे हों वह छीलना इस एक प्रकारसे शुद्ध होती है। मार्जन और लीपना तो सब शुद्धियोंमें समझना इसी प्रकार मार्जन और लीपनेसे गृह शुद्ध होताहै । गृहका पृथक् पढना इस लिये है कि उसका मार्जन लेपन प्रतिदिन शुद्धिके अर्थ करना ॥

भावार्थ-मार्जन, दाह, काल, गौओंका गमन, छिडकना, छीलना, लीपना इनसे भूमिकी और मार्जन, लेपन इनसे गृहकी शुद्धि होती है ॥ १८८ ॥

गोघ्रातेऽन्ने तथाकेशमक्षिकाकीटदूषिते । सलिलंभस्ममृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये१८९

पद-गोघ्राते ७ अन्ने ७ तथाऽ-केशमक्षिकाकीटदूषिते ७ सलिलं १ भस्म १ मृत् १ वाऽ-अपिऽ-प्रक्षेप्तव्यम् १ विशुद्धये ४ ॥

योजना-गोघ्राते तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते अन्ने सलिलं भस्म वा मृत् विशुद्धये प्रक्षेप्तव्यम् ।

ता० भा०-गौके सूघे और केशमक्षिकाकीट (पिपीलिका आदि) से दूषित अन्नमें जल भस्म वा मिट्टीको शुद्धिके लिये यथासम्भव फेंकै । जो गौतमने कहा है कि केशकीटसे युक्त अन्न भोजन करने योग्य नहीं वह वहां समझना जहां अन्न केशकीटोंके संग पकाया हो ॥ १८९ ॥

त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः । भस्माद्भिः कांस्यलोहानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य तु ॥ १९० ॥

पद-त्रपुसीसकताम्राणाम् ६ क्षाराम्लोदकवारिभिः ३ भस्माद्भिः ३ कांस्यलोहानाम् ६ शुद्धिः १ प्लावः १ द्रवस्य ६ तुऽ-॥

योजना-त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः कांस्यलोहानां भस्माद्भिः तु पुनः द्रव्यस्य प्लावः शुद्धिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ-लाख शीशा तामा इनकी शुद्धि खारे वा अम्लजलसे वा केवल जलसे उपघात (अशुद्धि) की अपेक्षा सब वा एक-२ से शुद्धि होती है । कांसी और लोहेकी शुद्धि भस्म और जलसे होती है । यहां ताम्रके ग्रहणसे रांग और पित्तलभी लेने क्योंकि ये सब एकसेही उत्पन्न हैं । यह ताम्र आदिकोंकी शुद्धिका अम्लोदक आदिसे कहना नियमके लिये नहीं है क्योंकि इस वचनसे

---

१ पचधा वा चतुर्द्धा वा भूरमेध्यापि शुध्यति । दुष्टान्विता त्रिधा द्वेधा शुध्यते मलिनैकथा ।

१ नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नम् ।

२ मलसंयोगजं तज्ज यत्र येनोपहन्यते । तस्य तच्छोधनं प्रोक्तं सामान्यं द्रव्यशुद्धिवत् ।

यह शुद्धि अभिषेकसे कही है कि जिस द्रव्यके मलका संयोग जिस द्रव्यसे दूर होय वही उसकी शुद्धि सामान्य रीतिसे सब द्रव्य-शुद्धियोंमें कही है, इससे यदि तामा आदिका उच्छिष्ट जलका लेप अन्यसे न जासके तो नियमसे अम्लोदकसेही शुद्धि करनी इसीसे मनुने यह सामान्यसे कहाहै कि तामा लोहा कांसी रांग लाख शीशा इनका शौच यथा-योग्य खारे वा खट्टे वा केवल जलसे करना और जो यह वचन है कि भस्मसे कांसी और अम्लसे तामा शुद्ध होता है वह अत्यंत शुद्धिके लिये है कुछ अन्य शुद्धिके निषेधार्थ नहीं है, और जब उपघात अधिक होय तब अम्लो-दक आदिकोंसे वारंवार शुद्धि करे क्योंकि यह स्मृति है कि गौके सूंघे कांसीके पात्र और शूद्रके उच्छिष्ट और कुत्ता और काकके छुये पात्र दश बार खार लगानेसे शुद्ध होते हैं और द्रवद्रव्य (घृत आदि) प्रस्थपरिमाणसे अधिक हो और उसे काक आदि छूलें वा अपवित्र वस्तुका स्पर्श होजाय प्लाव (बहाना) शुद्धि है अर्थात् सजातीय द्रव्यसे पात्रको भरै जब उसमेंसे बहने लगै तब शुद्ध हो जाताहै उससे अल्प होय तो त्याग कहाहै बहुत और अल्प तो देश वा कालकी अपेक्षा जानने सोई बौधायनने कहाहै कि देशकाल, अपना आत्मा, द्रव्य द्रव्यका प्रयोजन, उपपत्ति और अवस्था इनको जानकर शौच करै, कीट आदि छूलें तो छानले क्योंकि मनुने कहाहै कि संपूर्ण द्रवद्रव्योंकी शुद्धि उत्पवन (छानना) कही है अन्यथा कीट आदि नहीं निकस सकते, शूद्रके पात्रमें स्थित मधु और उदक आदिकी शुद्धि दूसरे पात्रमें लानेसे होती है, क्योंकि बौधाय-नको वचन है कि मधु, जल, दूध, और उनके विकार एक पात्रसे दूसरे पात्रमें लानेसे शुद्ध होते हैं, यदि मधु और घृतादि नीचवर्णके हाथसे मिले होंय तो दूसरे पात्रमें रखकर फिर तपावे यही शंखने कहाहै, कि भोजन करने योग्य घृतके पदार्थोंको फिर पकावे इसी प्रकार स्नेह और रसोंको समझना ॥

भावार्थ–लाख, शीशा, तांबा, खारे, खट्टे, जल वा शुद्ध जलोंसे कांसी, लोहा, भस्म और जलोंसे घृत आदि द्रव द्रव्य, प्लाव (बहाना) से शुद्ध होते हैं ॥ १९० ॥

अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैःशुद्धिर्गंधादिकर्षणात्।
वाक्शस्तमंबुनिर्णिक्तमज्ञातंचसदाशुचिः ॥

पद–अमेध्याक्तस्य ६ मृत्तोयैः ३ शुद्धिः १ गंधादिकर्षणात् ५ वाक्शस्तम् १ अंबुनिर्णिक्तम् १ अज्ञातम् १ चऽ–सदाऽ–शुचिः १ ॥

योजना–अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः गंधादिकर्षणात् शुद्धिः भवति वाक्शस्तम् अंबुनिर्णिक्तं च पुनः अज्ञातं सदा शुचिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ–सुवर्ण और चांदीके सब पात्रोंकी शुद्धिको कहकर अब अमेध्यसे उच्छिष्ट लिये उनकीही शुद्धिको कहते हैं । अमेध्य (शरीरसे पैदा हुए वसा शुक्र आदि मल) उनसे लिप्त पदार्थकी शुद्धि मिट्टी और जलसे करनी

१ ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥

२ भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।

३ गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च । शुध्यंति दशभिः क्षारैः श्वकाकोपहतानि च ॥

४ देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥

५ द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम् ।

१ मधूदके पयस्तद्विकाराश्च पात्रात्पात्रांतरानयने शुद्धाः ।

२ अभ्यवहार्य्याणां घृतेनाभिघारितानां पुनः पच-नम् एवं स्नेहानां स्नेहवद्रसानाम् ।

वे मल मनु और देवल[1] आदिने ये कहे हैं कि वसा, शुक्र, रुधिर, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कर्णविष्ठा, नख, थूक, अश्रु, ढीढ, पसीना ये बारह मनुष्योंके मल हैं। और मनुष्यका अस्थि, शव, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, स्त्रीका रज, वसा, पसीना, अश्रु, ढीढ, कफ, मद्य, ये अमेध्य कहाते हैं और शुद्धि गंधके कर्षण (दूर करना) से होती है। और आदिपदसे लेप भी लेना सोई गौतमने[2] कहाहै कि अमेध्यलिप्तकी शुद्धि गधके दूर करनेसे होती है। सब शुद्धियोंमें पहिले तो मिट्टी और जलसे लेप और गंधको दूर करना और उनसे न होसके तो अन्यसे करना सोई गौतमकी स्मृति[3] है कि मिट्टी और जलसे प्रथम शुद्धि होती है। वसा आदिकी ग्रहण सबको अमेध्य बतानेके लिये है कुछ समान उपघातके लिये नहीं, क्योंकि उपघातमें विशेष[4] यह कहा है कि तत्कालके मूत्र, पुरीष, श्लेष्म, पूय, शोणित, अश्रु इनसे स्पर्श किया हुआ मिट्टीका पात्र पुनः पाकसे शुद्ध नहीं होता। अपवित्रभी ये देहसे पृथक् होनेसे होते हैं क्योंकि यह वचन[5] है कि देहसे पृथक् हुए मल अमेध्य होते हैं। हाथोंको छोडकर पुरुषकी नाभिके ऊपरके अंगोंमें यदि अमेध्यका स्पर्श होजाय तो स्नान करै। सोई देवल[6]ने कहा है कि दूसरेके अस्थि, वसा, विष्ठा, रज, मूत्र, वीर्य, मज्जा, रुधिरको स्पर्श करके स्नान करै और अपनोंका स्पर्श करके धोने और आचमनसे शुद्ध होता है और नाभिसे ऊपर हाथोंको छोडकर जिस अंगमें उपघात होय तो स्नानसे और नीचेके अंगमें उपघात होय तो प्रक्षालन और आचमनसे शुद्ध होता है। शास्त्रोक्त शौच करनेपरभी जहां मनके असंतोषसे शुद्धिका संदेह होय वह वाक्शस्त कहनेसे अर्थात् यह शुद्ध है इस ब्राह्मण वचनसे शुद्ध होता है और जहां कोई शुद्धि नहीं कही वहां अंबुनिर्णिक्त (जलमें धोना) होनेसे शुद्धि होती है और जो द्रव्य जलमें धोना न सहे उसकी छिडकनेसे शुद्धि होती है जो पदार्थ अज्ञात हो अर्थात् काक आदिका छुया प्रतीत न हो वह शुद्ध है उसके खानेमें अदृष्ट दोष नहीं और उसमें कुछ विरोध नहीं क्योंकि जिसका दोष न देखाहो उसका यह प्रायश्चित्त कहा है कि अज्ञात भोजनकी शुद्धि और विशेषकर ज्ञातकी शुद्धिके लिये ब्राह्मण एक कृच्छ्र[1] करै यह ठीक नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त भोजनके विषयमें है और दोषका अभाव अन्यके उपयोगमें है॥

भावार्थ-अमेध्यसे युक्त पदार्थकी शुद्धि मट्टी और जलसे गंध आदिके दूर करनेसे होती है। वाणीसे श्रेष्ठ कहा और जलसे धुला और अज्ञात सदैव शुद्ध होता है॥ १९१॥

शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम्।
तथा मांसंश्वचांडालक्रव्यादादिनिपातितम्

पद-शुचि १ गोतृप्तिकृत् १ तोयम् १ प्रकृतिस्थम् १ महीगतम् १ तथाऽ-मांसम् १ श्वचाण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् १॥

---

१ वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविण्नखाः। श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥ मानुष्यास्थि शवं विष्ठा रेतो मूत्रार्त्तव वसा। स्वेदोश्रुदूषिका श्लेष्म-मद्यं चामेध्यमुच्यते॥

२ शौचममेध्यलिप्तस्य लेपगंधापकर्षणैः।

३ तदाद्भिः पूर्वं मृदाच।

४ मद्यैर्मूत्रपुरीषैश्च श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः। संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम्॥

५ अमेध्यत्वं चैवमेतेषां देहाच्चैव मलाश्च्युताः।

६ मानुषास्थिवसाविष्ठामार्तवं मूत्ररेतसी। मज्जानं शोणितं स्पृष्ट्वा परस्य स्नानमाचरेत्। तान्येव स्वानि संस्पृश्य प्रक्षाल्याचम्य शुध्यति।

१ संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः। अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥

योजना–गोतृप्तिकृत् प्रकृतिस्थम् महीगतं तोयं शुचि भवति, तथा श्वचाण्डालक्रव्यादादिनिपातितं मांसं शुचि भवति ॥

तात्पर्यार्थ–पृथ्वीमें स्थित एक गौकी तृप्तिके योग्य और प्रकृतिस्थ अर्थात् जिसमें अन्यके रूप रस गंध स्पर्शका संबंध न हुआ हो वह शुद्ध है अर्थात् आचमन आदि करने योग्य है। यहां महीगत पद अशुद्ध भूमिमें स्थितभी जलकी अशुद्धताके निषेधार्थ है, कुछ आकाशके और निकासे हुए जलकी शुद्धताके निवृत्तिके लिये नहीं है। क्योंकि देवलका वचन है कि शुद्ध पात्रसे निकासे हुए उद्धृतभी जल शुद्ध होते हैं। और एक रात्रके वासी शुद्धभी जल त्यागने योग्य हैं। तैसेही चाण्डाल आदिके बनाये तडाग आदिमेंभी दोष नहीं। क्योंकि शातातपका वचन है कि अंत्यजोंके बनाये हुएभी कूप पूल वापी आदिमें स्नान और जलपान करनेका प्रायश्चित्त नहीं है। तैसेही कुत्ता चाण्डाल मांसभक्षक पक्षी इनका गिराया मांस शुद्ध है। आदि पदसे पुल्कस आदि लेने निपातितका ग्रहण भक्षितकी निवृत्तिके लिये है ॥

भावार्थ–जिससे एक गौ तृप्त होजाय ऐसा स्वच्छ और भूमिपर पडा हुआ जल शुद्ध है और कुत्ता चांडाल मांसभक्षक पक्षी इनका गिराया मांस शुद्ध है ॥ १९२ ॥

रश्मिरग्नी रजश्छाया गौरश्वो वसुधानिलः।
विप्रुषो मक्षिकाः स्पर्शे वत्सः प्रस्रवणे शुचिः॥

पद्–रश्मिः १ अग्निः १ रजः १ छाया १ गौः १ अश्वः १ वसुधा १ अनिलः १ विप्रुषः १ मक्षिकाः १ स्पर्शे ७ वत्सः १ प्रस्रवणे ७ शुचिः १॥

योजना–रश्मिः अग्निः रजः छाया गौः अश्वः वसुधा अनिलः विप्रः मक्षिकाः एते स्पर्शे प्रस्रवणे वत्सः शुचिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ–सूर्य आदिकी किरण, अग्नि, बकरी आदिसे भिन्नकी रज, क्योंकि उसमें यह दोष है कि कुत्ता काक ऊंट गधा उल्लू सूकर ग्रामके पक्षी और बकरी भेडकी रज इनके स्पर्शसे अवस्था और लक्ष्मीका नाश होता है। मार्जन आदि कार्योंमें वृक्ष आदिकी छाया गौ अश्व भूमि वायु नीहार (कोल) की बूंद मक्षिका ये सब चांडाल आदिके छुयेभी स्पर्शमें शुद्ध हैं। और प्रस्रवण (चुंचना) में वत्स शुद्ध है। यहां वत्सग्रहणसे बालककाभी उपलक्षण है क्योंकि यह वचन है कि जो बालकोंने स्पर्श किया हो और स्त्रियोंने आचरण किया है, वह सब और जिसका ज्ञान न हो वह सदैव पवित्र है ॥

भावार्थ–किरण, रज, छाया, गौ, अश्व, पृथिवी, पवन, मक्षिका ये स्पर्शमें और चौखनेमें वत्स ये शुद्ध होते हैं ॥ १९३ ॥

अजाश्वयोर्मुखं मेध्यं न गोर्न नरजा मलाः।
पंथानश्चविशुद्धंतिसोमसूर्यांशुमारुतैः॥१९४

पद्–अजाश्वयोः ६ मुखं १ मेध्य १ नऽ–गोः ६ नऽ–नरजाः १ मलाः १ पथानः १ चऽ–विशुद्धयन्ति क्रि–सोमसूर्यांशुमारुतैः ३ ॥

योजना–अजाश्वयोः मुख मेध्यं भवति गोः नरजाः मलाः मेध्याः न भवंति। च पुनः सोमसूर्यांशुमारुतैः पंथानः विशुद्धयंति ॥

---

१ उद्धृताश्चापि शुद्ध्यंति शुद्धैःपात्रैः समुद्धृताः। एकरात्रोषिता आपस्त्याज्याः शुद्धा अपि स्वयम् ॥

२ अन्त्यैरपिकृते कूपे सेतौ वाप्यादिके तथा। तत्र स्नात्वा जपित्वा च प्रायश्चित्त न विद्यते ॥

१ श्वकाकोष्ट्रखरोलूकसूकरग्रामपक्षिणाम्। अजाविरेणुसंस्पर्शादायुर्लक्ष्मीश्च हीयते ॥

२ बालैरनुपरिक्रांतं स्त्रीभिराचरित च यत्। अविज्ञातं च यत्किंचिन्नित्यं मेध्यमि ति स्थितिः ॥

ता०भा०–बकरी और अश्वका मुख पवित्र है और गौका नहीं और देहके वसा आदि मल पवित्र नहीं हैं, और चाण्डाल आदिके स्पर्श कियेभी मार्ग रात्रिमें चंद्रमाकी किरण और पवनसे और दिनमें सूर्यकी किरण और पवनसे शुद्ध होजाते हैं ॥ १९४ ॥

मुखजा विप्रुषो मेध्यास्तथाचमनबिंदवः । श्मश्रु चास्यगतं दंतसक्तं त्यक्त्वा ततः शुचिः

पद–मुखजाः १ विप्रुषः १ मेध्याः १ तथाऽ–आचमनबिंदवः १ श्मश्रु १ चऽ–आस्यगतं १ दंतसक्तं १ त्यक्त्वाऽ–ततःऽ–शुचिः १ ॥

योजना–मुखजाः विप्रुषः तथा आचमनबिंदवः मेध्याः भवंति चः पुन आस्यगतं श्मश्रु मेध्यं भवति । दन्तसक्त त्यक्त्वा ततः शुचिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ–मुखमें पैदा हुई कफकी बूंद पवित्र हैं अर्थात् उच्छिष्ट नहीं करती यदि वे अंगमें न पडैं क्योंकि गौतमका वचन[1] है मुखकी बूंद अगमें न पडैं तो उच्छिष्ट नहीं करती तोभी जो आचमनके जलकी बूंद हैं वे चरणोंका स्पर्श करलें तो पवित्र हैं और मुखपर लगी हुई श्मश्रु मुखमें प्रविष्ट होजाय तो उच्छिष्ट नहीं करती। दांतोंमें लगे उस अन्नको जो स्वयं गिरजाय त्यागकर शुद्ध होजाता है और जो अन्न न गिरै वह दांतोंके समान है सोई गौतमने कहा[2] है कि दांतोंमें लगा अन्न जिह्वाके स्पर्शसे गिरनेसे पहिले शुद्ध है जब गिरजाय तो जलके स्रावके समान समझे उसके निगिलनेसे शुद्ध होता है। और निगिलनेकाभी इसी श्लोकमें याज्ञवल्क्यने कहे त्यागके संग विकल्प है और निगरेन्नैव यह एवपद इस विष्णुके वचनमें[1] कहे आचमनके निषेधार्थ है कि पानके चर्वणको छोडकर चर्वणमें नित्य आचमन करे और ओष्ठोंको उलटे करके और वस्त्रोंको पहनकरभी आचमन करै। तांबूलका ग्रहण फल आदिके उपलक्षणार्थ है सोई शातातपने कहा[2] है कि तांबूल फल इनका और स्नेहसे शेषको भोजनमें और दांतोंमें लग्नके स्पर्शमें द्विज उच्छिष्ट नहीं होता।

भावार्थ–मुखकी बूंद और आचमनकी बूंद और मुखमे गई श्मश्रु शुद्ध हैं और दांतोंमें लगेको त्यागकर मनुष्य शुद्ध होताहै॥ १९५

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योसर्पणे। आचांतः पुनराचामेद्वासो विपरिधायच ॥

पद–स्नात्वाऽ–पीत्वाऽ–क्षुते ७ सुप्ते ७ भुक्त्वाऽ–रथ्योपसर्पणे ७ आचान्तः १ पुनःऽ–आचामेत् क्रि–वासः २ विपरिधायऽ–चऽ–॥

योजना–स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे च पुनः वासः विपरिधाय आचांतः पुनः आचामेत् ॥

तात्पर्यार्थ–स्नान, जलपान, क्षुत (छींक), सोना, भोजन, गलीमें गमन, वस्त्रोंका धारण इनको करके आचमनके अनतरभी आचमन करै अर्थात् दो बार आचमन करै और चकारसे रोना पढनेका प्रारंभ और अलपझूठ इनमेंभी करै सोई वसिष्ठने कहा[3] है, सोना, भोजन छींकना, स्नान, पान, रोना इनमें आचमन करके आचमन करै ॥

---

१ न मुखाविप्रुष उच्छिष्ट कुर्वंति न चेदंगे निपतंति ।

२ दतलग्नं तु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिमर्शनात्स्वात् च्युतेः ।

१ चर्वणे त्वाचमेन्नित्य मुक्त्वा ताम्बूलचर्वणम् । ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ।

२ ताम्बूले च फले चैव भुक्ते स्नेहावशिष्टके । दंतलग्नस्य संस्पर्शे नोच्छिष्टो भवति द्विजः ।

३ सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा स्नात्वा पीत्वा रुदित्वाचाचांतः पुनराचामेत् ।

मनुनेभी कहा है कि सोना, छींकना, भोजन, थूकना, झूठ वचन कहना, जल पीना, पढना इनमें सावधानभी मनुष्य आचमन करै । भोजनमें तो आदिमेंभी दो आचमन करै क्योंकि आपस्तंबकी स्मृति है कि भोजन करनेवाला सावधानीसे प्रथम दो आचमन करै । स्नान और जलपानमें पहिले एक वार, पढनेके प्रारंभमें दो वार और शेषोंमें अंतमेंही दो वार आचमन करै॥

भावार्थ–स्नान, जलपान, छींक, सोना, भोजन, गलीमें गमन इनको करके और वस्त्रोंको पहिनकर आचमनके अनंतरभी फिर आचमन करै ॥ १९६ ॥

---

१ सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च ष्ठीवित्वोक्त्वानृत वचः । पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोपि सन् ॥

२ भोक्ष्यमाणस्तु प्रयतोपि द्विराचामेत् ।

रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यंत्यश्ववायसैः॥ मारुतेनैव शुद्ध्यंति पक्केष्टिकचितानि च ॥१९७॥

पद–रथ्याकर्दमतोयानि १ स्पृष्टानि १ अंत्यश्ववायसैः ३ मारुतेन ३ एवऽ–शुद्ध्यति क्रि–पक्केष्टिकचितानि १ चऽ–॥

योजना–अंत्यश्ववायसैः स्पृष्टानि रथ्याकर्दमतोयानि च पुनः पक्केष्टिकचितानि गृहाणि मारुतेनैव शुद्ध्यंति ॥

ता० भा*–(सब मार्ग) के कर्दम (पक) तोय (जल) को चांडाल, कुत्ता, काक, स्पर्श करले तो पवनसे और पक्की ईंटोंसे चिने सफेद घर (महल) भी चांडाल आदिके स्पर्श करनेसे पवनसेही शुद्ध होते हैं यहभी संहतों (इकट्ठे) का प्रोक्षण करै, इस पूर्वोक्त प्रोक्षणके निषेधार्थ है । तृणकाष्ठ आदिके घर तो प्रोक्षणसे ही शुद्ध होते हैं ॥ १९७ ॥

इति द्रव्यशुद्धिप्रकरणम् ।

अथ दानप्रकरणम् ९.

तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये। तृप्त्यर्थं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ॥ १९८ ॥

पद्-तपः २ तप्त्वाऽ-असृजत् क्रि-ब्रह्मा १ ब्राह्मणान् २ वेदगुप्तये ४ तृप्त्यर्थंऽ-पितृदेवानाम् ६ धर्मसंरक्षणाय ४ चऽ-॥

योजना-ब्रह्मा तपः तप्त्वा वेदगुप्तये पितृदेवानां तृप्त्यर्थं च पुनः धर्मसंरक्षणाय ब्राह्मणान् असृजत् ॥

ता० भा०-कल्पकी आदिमें ब्रह्माने तपकरके वेदकी रक्षा और पितर और देवताओंकी तृप्ति और धर्मकी रक्षाके लिये सबसे पहिले ब्राह्मणोंको रचा इससे ब्राह्मणोंको दियेका अक्षयफल होता है ॥ १९८ ॥

सर्वस्य प्रभवो विप्राः श्रुताध्ययनशीलिनः। तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योप्यध्यात्मवित्तमाः ॥ १९९ ॥

पद्-सर्वस्य ६ प्रभवः १ विप्राः १ श्रुताध्ययनशीलिनः १ तेभ्यः ५ क्रियापराः १ श्रेष्ठाः १ तेभ्यः ५ अपिऽ-अध्यात्मवित्तमाः १ ॥

योजना-श्रुताध्ययनशीलिनः विप्राः सर्वस्य प्रभवः संति तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठाः तेभ्यः अध्यात्मवित्तमाः श्रेष्ठाः भवंति ॥

ता० भा०-ब्राह्मण सब क्षत्रिय आदि वर्णोंसे जाति और कर्मसे श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमेंभी वेदपाठी और वेदपाठियोंमें वेदोक्तकर्मके कर्त्ता और उनमेंभी शमदम आदि योगसे आत्मतत्त्वके ज्ञाता श्रेष्ठ हैं ॥ १९९ ॥

नविद्ययाकेवलयातपसावापिपात्रता यत्रवृत्तमिमेचोभेतद्धिपात्रंप्रकीर्तितम्२००

पद्-नऽ-विद्यया ३ केवलया ३ तपसा ३ वाऽ-अपिऽ-पात्रता १ यत्रऽ-वृत्तं १ इमे १ चऽ-उभे १ तत् १ हिऽ-पात्रम् १प्रकीर्तितम्१॥

योजना-केवलया विद्यया वा केवलेन तपसा अपि पात्रता न भवति यत्र वृत्तं च पुनः इमे उभे (विद्यातपसी) स्तः हि निश्चयेन तत् पात्रं प्रकीर्तितम् ।

तात्पर्यार्थ-अब जाति विद्यानुष्ठान तपइनमें एक २ की प्रशंसासे पात्रताको कहकर सबसे पूर्ण पात्रताको कहते हैं। केवल विद्या (वेदाध्ययन) और केवल तप (शम दम आदि) और आदि पद्से केवल कर्मका अनुष्ठान और केवलजातिसे पूर्णपात्रता नहीं होती किंतु जिस पुरुषमें वृत्त (कर्मका अनुष्ठान) और दोनों विद्या और तप और चशब्दसे ब्राह्मणजाति हो वही मन्वादिकोंने यथार्थ पात्र कहा है। हि (निश्चय) है कि उससे परे पात्र नहीं है और जाति विद्या अनुष्ठान तपसे ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं उसीके अनुसार दानका फलभी होता हैं।

भावार्थ-केवल विद्या और तपसे पात्र नहीं होता जिसमें कर्मका अनुष्ठान और विद्या तप ये दोनों हों वही पात्र मनु आदिकोंने कहा है ॥ २०० ॥

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्। नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥ २०१॥

पद्-गोभूतिलहिरण्यादि १ पात्रे ७ दातव्यम् १ अर्चितम् १ नऽ-अपात्रे ७ विदुषा ३ किंचित्ऽ-आत्मनः ६ श्रेयः २ इच्छता ३ ॥

योजना-आत्मनः श्रेय इच्छता विदुषा पुरुषेण गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे अर्चितं दातव्यम् अपात्रे किंचित् न दातव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त पात्रको और पात्रविशेषके फलविशेषको जानता हुआ और अपने संपूर्ण फलका अभिलाषी पुरुष गौ

पृथिवी तिल सुवर्ण आदिको शास्त्रोक्त संकल्प आदि विधिपूर्वक पूजासे दे और अपात्र क्षत्री आदि और पतित ब्राह्मणको अल्पभी न दे। यहां कल्याणका अभिलाषी कहनेसे यह सूचित किया कि अपात्रके दानमेंभी तमोगुणी फल है सोई व्यासने कहा है कि देशकालके अभावमें वा अपात्रको और असत्कार तिरस्कारपूर्वक जो दिया जाता है वह दान तमोगुणी कहा है और अपात्रको न देय वह कहनेसे यहभी सूचित किया कि देशकाल और द्रव्य उत्तम हो और पूर्वोक्त पात्र समीप न हो तो उस पात्रके निमित्त द्रव्यका त्याग वा प्रतिज्ञा करके समर्पण करदे अपात्रको कदाचित् न दे और प्रतिज्ञा कियेहुए द्रव्यकोभी पीछेसे पातक आदि लगनेपर न दे क्योंकि यह निषेध है कि प्रतिज्ञा करकेभी अधर्मीको न दे ॥

भाषार्थ-गौ पृथिवी तिल सुवर्ण ये चार सत्पात्रको सत्कारसे दे और अपने कल्याणका अभिलाषी मनुष्य अपात्रको कदाचित् न दे२०१

विद्यातपोभ्यांहीनेन नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः। गृह्णन्प्रदातारमधोनयत्यात्मानमेवच२०२

पद-विद्यातपोभ्यां ३ हीनेन ३ नऽ-तुऽ-ग्राह्यः१प्रतिग्रहः१गृह्णन् १ प्रदातारम्२अधःऽ-नयति क्रि-आत्मानम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना-विद्यातपोभ्यां हीनेन प्रतिग्रहः न तु ग्राह्यः गृह्णन् सन् आत्मानं च पुनः प्रदातारम् अधः नयति ॥

ता० भा०-विद्या और तपसे हीन मनुष्य सुवर्ण आदिका प्रतिग्रह न ले क्योंकि विद्या तपसे हीन मनुष्य लेनेसे दाताको और आत्माको नरकमें लेजाता है ॥ २०२ ॥

दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः ॥२०३ ॥

पद-दातव्यम् १ प्रत्यहऽ-पात्रे ७ निमित्ते७ तुऽ-विशेषतःऽ-याचितेन ३अपिऽ-दातव्यम्१ श्रद्धापूतम् १ तुऽ-शक्तितःऽ-॥

योजना-पात्रे प्रत्यह तु पुनः निमित्ते विशेषतः दातव्य-याचितेनापि तु पुनः श्रद्धापूतं शक्तितः दातव्यम् ॥

ता०भा०-पात्रको शक्तिके अनुसार शास्त्रोक्त विधिसे कुटुंबकी अनुकूलतासे प्राति दिन दे और चद्रग्रहण आदि निमित्तोंमें तो विशेषकर दे और याचनासेभी श्रद्धासे पवित्र द्रव्यको शक्तिसे दे। याचितेन इस पदसे यह सूचितहै कि यथार्थ पात्रके समीप जाकर वा बुलाकर जो दान वह महाफल होता है सोई स्मृतिमें कहा है कि जाकर जो दान दियाजाता है उसका अनंत फल है पात्रको बुलाकर जो दियाजाता है वह सहस्रगुणा और मांगनेपर पांच सौ ५०० गुणा होता है ॥

हेमशृंगी खुरै रौप्यैःसुशीलावस्त्रसंयुता। सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौःसदक्षिणा ॥ २०४ ॥

पद-हेमशृंगी १ खुरैः ३ रौप्यैः ३ सुशीला १ वस्त्रसंयुता १ सकांस्यपात्रा १ दातव्याः १ क्षीरिणी १ गौः १ सदक्षिणा १॥

योजना-हेमशृंगी रौप्यैः खुरैः युक्ता, सुशीला, वस्त्रसंयुता, सकांस्यपात्रा, क्षीरिणी, सदक्षिणा गौः दातव्या ॥

ता०भा०-गोदानमें विशेष कहते हैं कि सुवर्णके जिसके सींग हों रूपे (चांदी) के खुर हों और जो सुशील वस्त्रोंसे युक्त होय

१ अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।
२ प्रतिश्रुत्याधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

१ गत्वा यद्दीयते दान तदनतफल स्मृतम्। सहस्रगुणमाहूय याचितेतुतदर्द्धकम ।

कांसीके पात्र और दक्षिणासहित ऐसी दूधदेती गौको दे ॥ २०४ ॥

दातास्याःस्वर्गमाप्नोति वत्सरान्रोमसंमितान् । कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥ २०५ ॥

पद-दाता १ अस्याः६ स्वर्गम् २ आप्नोति क्रि-वत्सरान् २ रोमसंमितान् २ कपिला१चेत्ऽ-तारयति क्रि-भूयः ऽ-च ऽ-आसप्तमम्ऽ-कुलम् २ ॥

योजना-अस्याःदाता रोमसंमितान् वत्सरान् स्वर्गम् आप्नोति च पुनः कपिला चेत् आसप्तम कुलं भूयः (अपि) तारयति ॥

ता०भा०-इस गौकी रोमोंक तुल्य वर्षोंतक गौका दाता स्वर्गमें जाता है यदि वह कपिला होय तो पिता आदि ६ सातवीं अपनी आत्मा इन ७ कुलोंको तारती है इस श्लोकमें भूयः पद अपिके अर्थमें है ॥ २०५ ॥

सवत्सारोमतुल्यानियुगान्युभयतोमुखीम् दातास्याःस्वर्गमाप्नोतिपूर्वेणविधिनाददत्॥

पद-सवत्सारोमतुल्यानि २ युगानि २ उभयतोमुखीम् २ दाता १ अस्याः ६ स्वर्गम् २ आप्नोति क्रि-पूर्वेण ३ विधिना ३ ददत् १ ॥

योजना-उभयतोमुखीं पूर्वेण विधिना ददत् सवत्सारोमतुल्यानि युगानि अस्याः दाता स्वर्गम् आप्नोति ॥

ता०भा०-उभयतोमुखी गौको पूर्वोक्त विधिसे देता हुआ इस गौका दाता वत्स और याके रोमोंके तुल्य युगोंतक स्वर्गमें प्राप्त होता है ॥ २०६ ॥

यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ मुखं योन्यां च दृश्यते । तावद्गौःपृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुंचति ॥ २०७ ॥

पद-यावत्ऽ-वत्सस्य ६ पादौ १ द्वौ १ मुखम् १ योन्याम् ७,चऽ-दृश्यते क्रि-तावत्ऽ-गौः १ पृथिवी १ ज्ञेया १ यावत्ऽ-गर्भम् २ नऽ-मुंचति क्रि-॥

योजना-यावत् वत्सस्य द्वौ पादौ च पुनः मुखं योन्यां दृश्यते-यावत् गर्भं न मुचंति तावत् गौः पृथिवी ज्ञेया ॥

ता०भा०-उभयतोमुखीका लक्षण और उसके दानका फल कहतेहैं कि जब गर्भसे निकलते हुए वत्सके दो पाद और मुख योनिमें दीखते हों तबतक गौ उभयतोमुखी होती है और इतने यह गर्भको नहीं छोडती तबतक पृथिवीके समान जाननी इससे उसके दानका अधिक फल है ॥ २०७ ॥

यथाकथंचिद्दत्त्वा गां धेनुं वा धेनुमेव वा । अरोगामपरिक्लिष्टांदाता स्वर्गेमहीयते २०८

पद-यथाकथाचत्ऽ-दत्त्वाऽ-गाम् २ धेनुम् २ वाऽ-अधेनुम् २ एवऽ-अरोगाम् २ अपारक्लिष्टाम् २ दाता १ स्वर्गे ७ महीयते क्रि-॥

योजना-धेनुं वा अधेनुम् अरोगाम् अपरिक्लिष्टां गां यथाकथंचित् दत्त्वा दाता स्वर्गे महीयते

ता०भा०-धेनु (दूध देती) वा अधेनु और रोगरहित और अत्यन्त दुर्बलतासे हीन गाको यथाकथंचित् देकर अर्थात् सुवर्ण आदि शृंगके अभावमेंभी पूर्वोक्त विधिसे गौका दाता स्वर्गमें पूजा जाताहै ॥ २०८ ॥

श्रांतसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् । पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥

पद-श्रांतसंवाहनम् १ रोगिपरिचर्या १ सुरार्चनम् १ पादशौचम् १ द्विजोच्छिष्टमार्जनम् १ गोप्रदानवत्ऽ-॥

योजना-श्रांतसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनं-द्विजानां पादशौचं-द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ज्ञेयम् ॥

ता०भा०-श्रांत (थका) का शय्या

आसन आदि दानसे श्रमका अपनयन (दूर करना) और यथाशक्ति औषधी आदि दानसे रोगियोंकी परिचर्या, विष्णु आदि देवका गन्धमाल्यसे पूजन, द्विजोंके चरणोंका धोना और उनकेही उच्छिष्टका मार्जन ये सब पूर्वोक्त गोदानके तुल्य जानने ॥ २०९ ॥

भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्। नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गेमहीयते२१०

पद-भूदीपान् २ चऽ-अन्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् २ नैवेशिकम् २ स्वर्णधुर्यम् २ दत्त्वाऽ-स्वर्गे ७ महीयते क्रि-॥

योजना-भूदीपान् च पुनः अन्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा दाता स्वर्गे महीयते ॥

तात्पर्यार्थ-फल देनेवाली भूमि, देवमंदिर आदिमें दीपक, अन्न, वस्त्र, जल, तिल, घी, परदेशियोंका आश्रय (धर्मशाला) और गृहस्थके लिये कन्या, सुवर्ण और धोरी बैल इनको देकर दाता स्वर्ग लोकमें पूजताहै। यहां भूमिदान आदिका स्वर्गफल अन्य फलोंकी निवृत्तिके लिये समझना क्योंकि इन वचनोंसे अन्यभी फल कहा है कि जानकर वा अज्ञानसे जो पाप करताहै गोचर्ममात्र पृथिवीके दानसे उस पापसे छूटताहै। जलका दाता तृप्तिको, अन्नका दाता अक्षय सुखको, तिलका दाता इष्ट प्रजाको, दीपकका दाता उत्तम नेत्रोंको और वस्त्रका दाता चन्द्रलोकको और अश्वका दाता अश्विनीकुमारके लोकको प्राप्त होताहै। गोचर्मका लक्षण बृहस्पतिने यह कहाहै कि सात हाथके दण्डसे तीस दंड मापे ऐसे दश गोचर्म होते हैं उसको देकर स्वर्गमें पूजा जाता है ॥

भावार्थ-भूमि, दीपक, अन्न, वस्त्र, जल, तिल, घी, धर्मशाला, विवाहके अर्थ कन्या, सुवर्ण, धोरी बैल इनको देकर स्वर्गमें पूजा जाता है॥२१०॥

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्। यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ २११ ॥

पद-गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् २ यानम् २ वृक्षम् २ प्रियम् २ शय्याम् २ दत्त्वाऽ-अत्यन्तम्ऽ-सुखी १ भवेत् क्रि-॥

योजना-गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनं यानं वृक्ष प्रियं शय्यां दत्त्वा नरः अत्यन्तं सुखी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-गृह, धान्य (शाली साठीचांवल) गोधूम आदि अन्न, अभय (भयभीतकी रक्षा) उपानहछत्र, मल्लिका (चमेली) आदिके पुष्पोंकी माला, कुंकुम, चन्दन आदि अनुलेपन, रथ आदि यान (सवारी), आम्र आदि उपकारी वृक्ष, धर्म आदि प्रिय और शय्या इनको देकर मनुष्य अत्यंत सुखी होताहै। यहां कोई यह शंका करै कि धर्म आदिको सुवर्ण आदिके समान हाथमें नहीं देसकते इससे इनका दान असंभव है तो ठीक नहीं, क्योंकि भूमिदान आदिकोंमेंभी ऐसाही है और अन्यस्मृतिमेंभी धर्मदान सुना है कि, देवता गुरु माता पिता इनको प्रयत्नसे पुण्यको दे और अपुण्यका दान कहीं नहीं लिखा। लोभ आदिसे लेनेवाले और दाताको पापके देनेमें पापही बढता है

---

१ यत्किंचित्कुरुते पाप ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपिवा ॥ अपिगोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् । वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ॥

२ सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दंडं निवर्त्तनम्, दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥

१ देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च। पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं क्वचित्।

क्योंकि यह स्मृति है कि जो दुर्मति पापको निर्बल जानकर लेता है उसको निंदित आचरणसे उसके समान पाप लगता है। और दाताओंको दूना, सहस्रगुणा, अनत पाप होताहै। यहां सब जगह देश काल पात्र देने योग्य वस्तु और दाता इनके विशेषसे दानमें फल मैंने कहा, हिंसामेंभी इसी प्रकार पाप समझना। इससे प्रतिगृहीताकी वृत्तिके विशेषसे दाता और प्रतिगृहीताको न्यून अधिक फल जानना ॥

भावार्थ-गृह, धान्य, अभय, उपानह, छत्र, माला, अनुलेपन, सवारी, वृक्ष, प्रिय(धर्म आदि) और शय्या इनको देकर दाता अत्यंत सुखी होताहै ॥ २११ ॥

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योधिकं यतः। तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम्॥

पद-सर्वधर्ममयम् १ ब्रह्म १ प्रदानेभ्यः ५ अधिकम् १ यतः ऽ-तत् २ ददत् १ समवाप्नोति क्रि-ब्रह्मलोकम् २ अविच्युतम् २ ॥

योजना--यतः सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्यः अधिकम् अस्ति तत् ददत् सम् अविच्युतं ब्रह्मलोकं समवाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-दानका फल कह आये अब दानके विनाभी दानके फलकी प्राप्तिमें कारणको कहते हैं कि जिससे ये वेदधर्मोंका अवबोधक (ज्ञापक) होनेसे सर्व धर्ममय (धर्मरूप) है इससे इसका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है इससे अध्यापनद्वारा इस वेदको देता हुआ मनुष्य जिससे कभी नहीं गिरै ऐसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है अर्थात् प्रलयपर्यंत ब्रह्मलोकमें टिकता है इस ब्रह्मदानमें अन्यके स्वत्वको पैदा करना मात्र दान है क्योंकि अपने स्वत्वकी निवृत्ति करनेको अशक्य है ॥

भावार्थ-सब धर्मोंका बोधक वेदका दान सब दानोंसे अधिक है इससे उसका दाता सदैवके लिये ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ २१२ ॥

प्रतिग्रहसमर्थोपि नादत्ते यःप्रतिग्रहम्। ये लोकादानशीलानांसतानाप्नोति पुष्कलान्॥

पद-प्रतिग्रहसमर्थः १ अपिऽ-नऽ-आदत्ते क्रि-यः १ प्रतिग्रहम् २ ये १ लोकाः १ दानशीलानाम् ६ सः १ तान् २ आप्नोति क्रि-पुष्कलान् ॥

योजना--यः प्रतिग्रहसमर्थः अपि सन् प्रतिग्रहं न आदत्ते स दानशीलानां ये लोकाः तान् पुष्कलान् आप्नोति ॥

ता०भा०-दानके विनाभी दानफलकी प्राप्तिको कहते हैं कि जो मनुष्य प्रतिग्रहमें समर्थ (पात्र) होकरभी प्रतिग्रह नहीं लेता अर्थात् सुवर्ण आदिका स्वकिार नहीं करता वह दानियोंके जो स्वर्ग आदि लोक हैं उन सबको प्राप्त होता है ॥ २१३ ॥

कुशाःशाकं पयो मत्स्या गंधाः पुष्पं दधि क्षितिः। मांसं शय्यासनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च॥ २१४ ॥

पद-कुशाः १ शाकम् १ पयः १ मत्स्याः १ गधाः १ पुष्पम १ दधि १ क्षितिः १ मांसम् १ शय्या १ आसनम् १ धानाः १ प्रत्याख्येयम् १ नऽ- वारि १ चऽ-॥

योजना-कुशाः शाकं पयः मत्स्याः गंधाः पुष्पं दधि क्षितिः मांस शय्या आसनं धानाः च पुनः वारि न प्रत्याख्येयम् ॥

तात्पर्यार्थ-कुशा, शाक, दूध, मत्स्य, गंध, पुष्प, दही, भूमि, मांस, शय्या, आसन, धान (भुने जौ) ये और चकारसे गृह आदि स्वयं प्राप्त हुए ये सब और जल इनको ग्रहण

१ यः पापमबलं ज्ञात्वा प्रतिगृह्णाति दुर्मतिः। गर्हिताचरणात्तस्य पापं तावत्समाश्रयेत्। सम द्विगुण साहस्रमानन्त्यं च प्रदातृषु।

करनेकी नाहीं न करे क्योंकि मनुका वचन है कि शय्या घर कुशा गंध जल पुष्प मणि दही मत्स्य धान दूध मांस शाक इनको नाहीं न करे, और तैसेही वचन है कि गंधे जल मूल फल अन्न मधु घी अभय दक्षिणा प्राप्त हुए इनको सबसे ले ले॥

भावार्थ–कुशा शाक दूध मत्स्य गंध पुष्प दही भूमि मांस शय्या आसन धान और जल इनको सबसे ग्रहण करले॥ २१४॥

अयाचिताहृतंग्राह्यमपिदुष्कृतकर्मणः।
अन्यत्रकुलटाषंढपतितेभ्यस्तथाद्विषः॥

पद–अयाचिताहृतम् १ ग्राह्यम् १ अपिऽ–दुष्कृतकर्मणः ६ अन्यत्रऽ–कुलटाषंढपतितेभ्यः५ तथाऽ–द्विषः ५॥

१ शय्यां गृहान्कुशान्गंधानापः पुष्पं मणीन्दधि। मत्स्यान् धानाः पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत्।

२ गंधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत्। सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वाज्याभयदक्षिणाम्।

योजना–कुलटाषंढपतितेभ्यः तथा द्विषः अन्यत्र दुष्कृतकर्मणः अपि अयाचिताहृतं ग्राह्यं भवति॥

ता० भा०–कुलटा (व्यभिचारिणी) नपुंसक पतित शत्रु इनको छोडकर विना मांगनेके मिले पूर्वोक्त कुशा आदिको कुकर्मीसे भी ग्रहण करले तो दोष नहीं॥ २१५॥

देवातिथ्यर्चनकृतेगुरुभृत्यार्थमेवच।
सर्वतःप्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेवच २१६॥

पद–देवातिथ्यर्चनकृते ४ गुरुभृत्यार्थम् २ एवऽ–चऽ–सर्वतःऽ–प्रतिगृह्णीयात् क्रि–आत्मवृत्त्यर्थम् २ एवऽ–चऽ–॥

योजना–देवातिथ्यर्चनकृते च पुनः गुरुभृत्यार्थम् च पुनः आत्मवृत्त्यर्थं सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्॥

ता० भा०–आवश्यक जो देवता और अतिथिका पूजन, उसके और गुरु और भृत्य और अपने जीवनके लिये पतित और अत्यंत निंदितोंको छोडकर सबसे प्रतिग्रहको ले॥ २१६॥

इति दानधर्मप्रकरणम्॥ ९॥

अथ श्राद्धप्रकरणम् १०.

अमावास्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोयनद्वयम् ।
द्रव्यंब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः २१७॥

पद-अमावास्या १ अष्टका १ वृद्धिः १ कृष्णपक्षः १ अयनद्वयम् १ द्रव्यम् १ ब्राह्मण-संपत्तिः १ विषुवत् १ सूर्यसक्रमः १ ॥

व्यतीपातोगजच्छायाग्रहणंचंद्रसूर्ययोः ।
श्राद्धंप्रतिरुचिश्चैवश्राद्धकालाःप्रकीर्तिताः।

पद-व्यतीपातः १ गजच्छाया १ ग्रहणम् १ चंद्रसूर्ययोः ६ श्राद्धं २ प्रतिऽ-रुचिः १ चऽ-एवऽ-श्राद्धकालाः १ प्रकीर्तिताः १ ॥

योजना-अमावास्या अष्टका वृद्धिः कृष्ण पक्षः अयनद्वय द्रव्यं ब्राह्मणसंपात्तिः विषुवत् सूर्यसंक्रमः व्यतीपातः गजच्छाया चद्रसूर्ययोः ग्रहणं च पुनः श्राद्धं प्रति रुचिः एते बुधैः श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ॥

तात्पर्यार्थ-अब श्राद्धप्रकरणका प्रारम करते हैं। भोजन करने योग्य वा उसके स्थानीय (प्रतिनिधि) द्रव्यका प्रेतके निमित्त जो त्याग उसे श्राद्ध कहते हैं, वह दो प्रकारका है पार्वण और एकोद्दिष्ट। तीन पुरुषोंके निमित्त जो किया जाय वह पार्वण और एक पुरुषके निमित्त जो किया जाय वह एकोदिष्ट कहाताहै फिर श्राद्ध तीन प्रकारका है नित्य नैमित्तिक काम्य, जिसके करनेके समयका नियम हो उसे प्रति दिनके और अमावस्या अष्टका श्राद्धको नित्य, २ जिसके समयका नियम न हो उस पुत्रजन्म आदिके श्राद्धको नैमित्तिक, जो फलके कामनासे किया जाय उस स्वर्गकी कामनासे करने योग्य कृत्तिका नक्षत्रके श्राद्धको काम्य कहते हैं, फिर वह पांच प्रकारका है कि नित्य श्राद्ध, पार्वण, वृद्धिश्राद्ध, एकोद्दिष्ट और सपिंडीकरण, उनमें नित्य श्राद्ध इस वचनसे कह आये कि पितर और मनुष्योंको प्रतिदिन अन्न दे, सोई मनुने कहाहै कि अन्न आदिसे वा जलसे वा दूध और मूलफलोंसे श्राद्ध पितरोंकी अक्षय प्रीतिका अभिलाषी करै अब पार्वण और वृद्धि श्राद्धके कालोंका कहते हैं, जिस दिन चंद्रमा न दीखै उसे अमावास्या कहते हैं यदि वह दोनों दिन होय तो पितरोंको देनेका समय अपराह्ण होता है इस वचनसे अपराह्णव्यापिनी लेनी, और पांच प्रकारसे विभाग किये दिनके चौथे भागको अपराह्ण कहते हैं, और हेमत शिशिरके चारों मासोंमें कृष्ण पक्षकी चार अष्टमी आश्वलायनने अष्टका कही हैं, और वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, उत्तरायण, द्रव्य (कृष्णसार मृगका मांस आदि), उत्तम २ ब्राह्मणोंकी सपति (मिलना), दोनों विषुवत् (मेषतुलाकी सक्रांति), सूर्यकी संक्रांति, अर्थात् एकराशिसे दूसरी राशिपर सूर्यका गमन, यद्यपि मेष और तुलाकी संक्रांतिसे आजाते तथापि उनका पृथक् कहना अधिक फलके लिये है, व्यतीपात योग, गजच्छाया, इस वचनमें कही है कि जब चंद्रमा मघापर हो और सूर्य हस्तपर हो और दशमी तिथि हो वह गजच्छाया कही है, जो कोई हाथीकी छाया कहते हैं वह यहां कालके प्रकरणसे नहीं लेनी, चंद्रमा और सूर्यका ग्रहण, और जब कर्ताकी श्राद्ध करनेमें रुचि हो वह

---

१ दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा । पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥

२ अपराह्णः पितॄणाम् ।

३ हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः।

४ यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः । याम्यातिथिर्भवेत्सा हि गजच्छाया प्रकीर्तिता ॥

और चशब्दसे युगादि तिथि ये सब श्राद्धके काल बुद्धिमानोंने कहे हैं। यद्यपि चंद्रमा और सूर्यके ग्रहणमें भोजन न करे इस वचनसे ग्रहणमें भोजनका निषेध है तथापि भोजन करनेवालेको निषेधका दोष है दाताको पुण्यवृद्धि है॥

भावार्थ–अमावास्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्ण पक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य, ब्राह्मणोंकी संपत्ति, मेषतुलकी और सूर्यकी संक्रांति, व्यतीपात, गजच्छाया, चंद्रमा और सूर्यका ग्रहण और श्राद्ध करनेमें रुचि ये सब श्राद्धके काल कहे हैं॥ २१७॥ २१८॥

अग्र्याःसर्वेषुवेदेषुश्रोत्रियोब्रह्मविद्युवा।
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामात्रिमधुस्त्रिसुपर्णिकः॥

पद–अग्र्याः १ सर्वेषु ७ वेदेषु ७ श्रोत्रियः १ ब्रह्मवित् १ युवा १ वेदार्थवित् १ ज्येष्ठसामा १ त्रिमधुः १ त्रिसुपर्णिकः १॥

योजना–सर्वेषु वेदेषु अग्र्याः, श्रोत्रियः, ब्रह्मवित्, युवा, वेदार्थवित्, ज्येष्ठसामा, त्रिमधुः त्रिसुपर्णिकः एते ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः संति॥

तात्पर्यार्थ–संपूर्ण ऋग्वेद आदि वेदोंमें अनन्यमन होकर एकरस पढनेमें जो समर्थ वे अग्र्य, और वेदके पढनेमें समर्थ श्रोत्रिय, और ब्रह्मज्ञानी, युवा जिसकी मध्यम अवस्था हो, युवापद सबका विशेषण है, मंत्र और ब्राह्मणरूप वेदके अर्थको जो जाने वह वेदार्थवित्, ज्येष्ठसामवेदके पढनेके व्रतको करके जो ज्येष्ठसामको पढे वह ज्येष्ठसामा, त्रिमधु (ऋग्वेदका भाग) उसके व्रतको करके उसे जो पढे, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद और यजुर्वेदका भाग) उसके पढनेमें व्रतको करके जो उसे पढे वह त्रिसुपर्णिक ये ब्राह्मण श्राद्धकी संपदा (सिद्ध करनेवाले) हैं॥

भावार्थ–सब वेदोंमें मुख्य, वेदपाठी, ब्रह्मज्ञानी, युवा, वेदार्थका ज्ञाता, ज्येष्ठसामको पाठी, त्रिमधु और त्रिसुपर्णिक ये ब्राह्मण श्राद्धके साधक हैं॥ २१९॥

स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः। त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः॥ २२०॥

पद–स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः१त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः१॥

योजना–स्वस्रीयऋत्विग्जामातृयाज्यश्वशुरमातुलाः त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवः ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदो भवंति॥

तात्पर्यार्थ–स्वस्रीय (भानजा), ऋत्विज, जामाता, याज्य (यज्ञ कराने योग्य), श्वशुर, मातुल, त्रिणाचकेत अर्थात् यजुर्वेदके एकदेशको उसके व्रतको करके जो पढे, दौहित्र, शिष्य, संबंधि बांधव ये सब पूर्वोक्त अग्र्य और श्रोत्रिय आदिके अभावमें जानने क्योंकि मनुने इस वचनसे[1] स्वस्रीय आदिको गौण कहा है, कि हव्यकव्यके देनेमें यह प्रथम कल्पमें कहा और यह स्वस्रीय आदिकोंका अनुकल्प (गौण) सत्पुरुषोंमें यहभी निन्दित नहीं॥

भावार्थ–भानजा, ऋत्विज, जामाता, याज्य, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत, दौहित्र, शिष्य संबंधी बांधव ब्राह्मण ये सब श्राद्धकी संपदा हैं॥ २२०॥

कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पंचाग्निर्ब्रह्मचारिणः। पितृमातृपराश्चैवब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः॥

पद–कर्मनिष्ठाः १ तपोनिष्ठाः १ पंचाग्निः १

१ चंद्रसूर्यग्रहे नाद्यात्।

१ एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः। अनुकल्पस्त्वयं प्रोक्तः सदा सद्भिरगर्हितः।

ब्रह्मचारिणः १ पितृमातृपराः १ चऽ-एवऽ- ब्राह्मणाः १ श्राद्धसंपदः १ ॥

योजना-कर्मनिष्ठाः तपोनिष्ठाः पंचाग्निः ब्रह्मचारिणः च पुनः पितृमातृपराः ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः भवन्ति ॥

ता० भा० शास्त्रोक्त कर्म करनेमें तत्पर तपस्वी और पंचाग्नि अर्थात् सभ्य आवसथ्य और त्रेता ये पांच अग्नि जिसमें हों अथवा पंचाग्नि विद्या पढता हो, ब्रह्मचारी (उपकुर्वाण वा नैष्ठिक), पितामाताके भक्त और चकारसे ज्ञाननिष्ठ आदि ये ब्राह्मण श्राद्धकी संपदा हैं अर्थात् श्राद्धमें अक्षयफलके दाता हैं ॥ २२१ ॥

रोगी हीनातिरिक्तांगःकाणःपौनर्भवस्तथा ।
अवकीर्णी कुंडगोलौ कुनखी श्याव दंतकः॥

पद-रोगी १ हीनातिरिक्तांगः १ काणः १ पौनर्भवः १ तथाऽ-अवकीर्णीः १ कुंडगोलौ १ कुनखी १ श्यावदंतकः १ ॥

योजना-रोगी हीनातिरिक्तांगः काणःपौनर्भवः तथा अवकीर्णी कुंडगोलौ कुनखी श्यावदंतकः एते ब्राह्मणाः श्राद्धे निंदिताः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-रोगी (महारोगसे युक्त), हीन वा अधिक जिसका अंग हो, एक नेत्रसे जो देखै वह काणा इसीसे अंध बधिर वृद्ध प्रजनन खंज दुश्चर्म आदिभी निंदित हैं और पौनर्भव अर्थात् पूर्वोक्त पुनर्भूका पुत्र, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य अवस्थामें जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट हो गया हो) कुंडगोलक जिनके लक्षण इस वचनमें ये कहे हैं कि पराई स्त्रीमें कुंडगोलक ये दो पुत्र पैदा होते हैं । पतिके जीवते कुंड और मरे पीछे गोलक पैदा होता है, कुनखी (जिसके नख संकुचित हों), श्यावदंतक (जिसके दांत स्वभावसे काले हों) ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदित हैं ॥

भावार्थ-महारोगी, हीन वा अधिक जिसका अंग हो, काणा, पुनर्भूका पुत्र, अवकीर्णी, कुंड, गोलक, कुनखी और श्यावदत ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदित हैं ॥ २२२ ॥

भृतकाध्यापकःक्लीबःकन्यादूष्यभिशस्तकः ।
मित्रध्रुक्पिशुनः सोमविक्रयी परिविंदकः ॥

पद-भृतकाध्यापकः १ क्लीबः १ कन्यादूषी १ अभिशस्तकः १ मित्रध्रुक् १ पिशुनः १ सोमविक्रयी १ परिविंदकः १ ॥

योजना-भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूषी अभिशस्तकः मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविंदक एते ब्राह्मणाः श्राद्धे निंदिताःभवति ॥

तात्पर्यार्थ-वेतनको लेकर जो पढावै वह भृतकाध्यापक और वेतन देकर जो पढै वह भृतकाध्यापित, क्लीब (नपुसक) असत् वा सत् दोषोंसे जो कन्याको दूषित करै वह कन्या-दूषी, ब्रह्महत्यादिसे जो युक्त वह अभिशस्त, मित्रध्रुक् मित्रद्रोही, पराये दोषोंको कहनेवाला, पिशुन (चुगल), सोमविक्रयी यज्ञमें सोम बेचनेवाला, परिविंदक (परिवेत्ता) जो ज्येठे भाईसे पहिले अग्निहोत्र ले वा विवाह करै वह परिवेत्ता और ज्येठा परिवित्ति होताहै सोई मैनुने कहा है कि जो छोटा भाई बडे भाईके रहते उससे पहिले अग्निहोत्रका ग्रहण और विवाह करताहै उसे परिवेत्ता और ज्येष्ठको परिवित्ति जानना इसी प्रकार दाता और याजकभी निंदित हैं क्योंकि यह वचैन है कि परिवित्ति और

१ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुडगोलकौ । पत्यौ जीवति कुंडः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥

१ दाराग्निहोत्रसंयोग कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।

२ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वेते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ।

परिवेत्ता और जिस कन्यासे विवाह हुआ हो वह विवाही कन्या दाता और याजक ये पांचों सबके सब नरकमें जाते हैं ॥

भावार्थ–भृतकाध्यापक, क्लीब, कन्यादूषी अभिशस्त, मित्रध्रुक्, पिशुन, सोमविक्रयी ये ब्राह्मण श्राद्धमें निंदित हैं २२३ ॥

मातापितृगुरुत्यागी कुंडाशी वृषलात्मजः।
परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मदुष्टाश्चनिंदिताः ॥

पद्–मातापितृगुरुत्यागी १ कुंडाशी १ वृषलात्मजः १ परपूर्वापतिः १ स्तेनः १ कर्मदुष्टाः १ चऽ–निंदिताः १ ॥

योजना–मातापितृगुरुत्यागी कुंडाशी वृषलात्मजः परपूर्वापतिः स्तेनः च पुनः कर्मदुष्टाः एते श्राद्धे निंदिताः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–विना कारण जो माता पिता गुरुओंको त्यागै, इसी प्रकार भार्या पुत्रोंके त्यागीभी समझने क्योंकि मनुने इस वचनसे इनको समान दिखाया है, कि वृद्ध माता पिता और साध्वी भार्या और बालक पुत्र इनकी सौ अकार्य करकेभी पालना करै यह मनुने कहा है, कुंडके अन्नको भोजन जो करै वह कुण्डाशी, इसी प्रकार गोलकका अन्नभक्षकभी समझना। क्योंकि यह वचन है कि कुंड गोलकके अन्नको जो खाय उसे कुंडाशी कहते हैं। वृषल (विधर्मी) का जो पुत्र परपूर्वा (पुनर्भू) का पति, चोर, कर्मदुष्ट अर्थात् शास्त्रविरुद्ध कर्मके कर्ता और चकारसे कितव देवलक आदि लेने ये श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण हैं। यद्यपि 'अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु' इत्यादि पूर्वोक्त वचनोंसे श्राद्धयोग्य ब्राह्मणोंके कहनेसेही उनसे भिन्न अयोग्य सिद्ध थे फिरभी रोगी आदिकोंका निषेध इस लिये है कि पूर्वोक्त योग्य ब्राह्मण न मिलसकैं तो निषिद्धसे भिन्न ब्राह्मणोंको श्राद्धमें भोजन करा दे ॥

भावार्थ–पिता माता गुरु इनका त्यागी, कुंडके अन्नका भोक्ता, वृषलका पुत्र, पुनर्भूका पति, चोर और कर्मसे दुष्ट ये श्राद्धमें निन्दित हैं ॥ २२४ ॥

निमंत्रयेत् पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवाञ्शुचिः।
तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥

पद्–निमंत्रयेत् क्रि–पूर्वेद्युःऽ–ब्राह्मणान् २ आत्मवान् १ शुचिः १ तैः ३ चऽ–अपिऽ–संयतैः ३ भाव्यम् १ मनोवाक्कायकर्मभिः ३ ॥

योजना–आत्मवान् शुचिः सन् पूर्वेद्युः ब्राह्मणान् निमंत्रयेत् च पुनः तैः अपि मनोवाक्कायकर्मभिः संयतैः भाव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–अब पार्वणश्राद्धके प्रयोगको कहते हैं। शोक और उन्मादसे रहित अथवा जितेन्द्रियरूप आत्मवान् और शुद्ध होकर पूर्वोक्त ब्राह्मणको पूर्व दिनमें वा उसी दिन श्राद्धके लिये निमंत्रण दे, कि श्राद्धमें भोजनके लिये अवसर रखियो क्योंकि मनुने इस वचनसे यह कहाहै कि श्राद्धकर्मके आनेपर पूर्वदिन वा उसी दिन कमसे कम तीन पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे और वे निमंत्रित ब्राह्मणभी मन वाणी काया कर्मसे नियत रहैं ॥

भावार्थ–आत्मवान् शुद्ध होकर पहिले दिन ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे और वे ब्राह्मणभी मन वाणी काया कर्मसे नियत शुद्ध रहैं ॥ २२५ ॥

अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान्।
पवित्रपाणिराचांतानासनेषूपवेशयेत् २२६ ॥

---

१ वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥

२ यस्तयोरन्नमश्नाति स कुंडाशी प्रकीर्तितः ॥

१ पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्यवस्थिते। निमंत्रयेत्त्र्यवरान् सम्यग् विप्रान्यथोदितान् ॥

पद-अपराह्णे ७ समभ्यर्च्यऽ-स्वागतेन ३ आगतान्२ तुऽ-तान् २ पवित्रपाणिः १ आचांतान् २ आसनेषु ७ उपवेशयेत् क्रि-॥

योजना-आगतान् तान् अपराह्णे स्वागतेन समभ्यर्च्य पवित्रपाणिः सन् आचांतान् आसनेषु उपवेशयेत् ॥

तात्पर्यार्थ उन निमंत्रित ब्राह्मणोंको अपराह्णके समय स्वागत वचनसे पूजकर और उनके पैर धोकर और आचमन कराकर बिछाये हुए आसनोंपर हाथोंको पवित्र करके बैठादे। यद्यपि यहां सामान्यसे अपराह्ण कहा है तथापि कुतुपमें प्रारंभ करके कुतुप आदि पांच मुहूर्तोंमें श्राद्धकी समाप्तिसे कल्याण होताहै क्योंकि यह वचन है कि दिनके पद्रह मुहूर्त्त सदैव होते हैं उनमें आठवें, मुहूर्त्तको कुतुप कहते हैं। जिससे मध्याह्नमें सूर्य सदैव मद होताहै इससे मध्याह्नमें आरंभ अनत फलका दाता है। कुतुप मुहूर्तसे पीछेके चार मुहूर्त और एक कुतुप ये पांच मुहूर्त स्वधाभवन कहे हैं। तिसी प्रकार अन्यभी श्राद्धके उपयोगी कुतुप इन वचनोंमें कहे हैं कि मध्याह्न गैंडेका पात्र नेपालकंबल चांदी कुशा तिल गौ और आठवां दौहित्र कहा है। पापको कुत्सित कहते हैं जिससे ये आठ उस पापके संताप करनेवाले हैं तिससे कुतुप नामसे विख्यात हैं ॥

१ अह्नो मुहूर्ता विख्याता दशपच च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः॥ मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मंदीभवति भास्करः। तस्मादनतफलदस्तत्रारंभो विशेष्यते ॥ ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपंचकं ह्येतत्स्वधाभवनमिष्यते ॥

२ मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकबलः। रौप्य दर्भास्तथा गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः । अष्टावेते यतस्तस्मात्कुतुपा इति विश्रुताः ॥

भावार्थ-अपराह्ण आये हुए ब्राह्मणका स्वागतसे सत्कारपूर्वक पूजन और हाथको पवित्र करके ब्राह्मणोंको आचमन कराकर आसनोंपर बिठावे ॥ २२६ ॥

युग्मान्दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च । परिस्तृते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा ॥ २२७ ॥

पद-युग्मान् २ दैवे ७ यथाशक्तिऽ-पित्र्ये७ अयुग्मान् २ तथाऽ-एवऽ-चऽ-परिस्तृते ७ शुचौ ७ देशे ७ दक्षिणाप्रवणे ७ तथाऽ-॥

योजना-दैवे युग्मान् तथा पित्र्ये अयुग्मान् ब्राह्मणान् यथाशक्ति परिस्तृते शुचौ तथा दक्षिणाप्रवणे देशे उपवेशयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-दैव (आभ्युदयिक) श्राद्धमें युग्म (सम) ब्राह्मणोंको यथाशक्ति बैठावे यहां वैश्वदेवमें दो दो और माता आदि तीनोंमें एक एकके दो दो वा तीनोंके दो दो इस प्रकार पिता आदि तीनोंमें एक एकके दो दो वा तीनोंके दो दो इसी प्रकार मातामह आदिमेंभी समझना। अथवा तीनोंमें वैश्वदेवश्राद्धतन्त्रसे (एक) करै। पित्र्य (पार्वण) श्राद्धम अयुग्म (विषम) ब्राह्मणोंको बैठावे और इस श्राद्धको चारों तरफ वस्त्र आदिसे ढकै और गोमय आदिसे लीपै और दक्षिणसे नीचे शुद्धदेशमें करै ॥

भावार्थ-आभ्युदयिक श्राद्धमें सम और पार्वण श्राद्धमें विषम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति बैठावे। और वस्त्र आदिसे ढके और शुद्ध दक्षिणदिशासे नीचे देशमें श्राद्ध करै ॥२२७॥

द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा । मातामहानामप्येवं तंत्रं वा वैश्वदेविकम् ॥

पद-द्वौ १ दैवे ७ प्राक् १ त्रयः १ पित्र्ये ७ उदक् १ एकैकम् १ एवऽ-वाऽ-मातामहानाम् ६ अपिऽ-एवम्ऽ-तंत्रम्१वाऽ-वैश्वदेविकम्१॥

योजना–दैवे द्वौ प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रयः उदङ्मुखाः उपवेश्याः वा उभयत्र एकैकं उपवेशयेत् मातामहानामपि श्राद्धे एवं कर्त्तव्यं वा वैश्वदेविकं तत्रं कर्त्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–वैश्वदेवमें दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख बैठावै और पिता आदिके स्थानमें तीन ब्राह्मण उत्तराभिमुख बैठावै अथवा विश्वेदेवा और पितरोंके श्राद्धमें एक एकही ब्राह्मण बैठावै। यहां संभवसे विकल्प समझना। मातामहोंके श्राद्धमें इसी प्रकार निमंत्रणसे लेकर ब्राह्मणोंकी संख्या और बैठनेका प्रकार समझना अर्थात् पितृश्राद्धके समान सब कर्मको करना अथवा पितृश्राद्ध और मातामहश्राद्धमें विश्वेदेवाओंका श्राद्ध एकतंत्रसे करना अर्थात् एकही विश्वेदेवाओंके स्थानमें दो ब्राह्मण बैठावै और जब दोही ब्राह्मण मिलैं तो विश्वेदेवाओंके श्राद्धमें पात्र रखकर पितृपक्ष और मातृपक्षमें एक एक ब्राह्मण बैठादे। सोई वसिष्ठने कहा है कि यदि श्राद्धमें एक ब्राह्मणको जिमावै तो वहां दैवश्राद्ध कैसे हो बनाये हुए संपूर्ण अन्नको पात्रमें विश्वेदेवाओंके आगे रखकर फिर श्राद्धको करै। उस विश्वेदेवाओंके अन्नको अग्निमें होम दे, अथवा ब्रह्मचारीको दे॥

भावार्थ–दैवश्राद्धमें दो ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितृश्राद्धमें तीन ब्राह्मण उत्तराभिमुख वा दोनों जगह एक एक बैठावै और इसी प्रकार मातामहोंका श्राद्ध करै अथवा पितृ और मातृश्राद्धमें तंत्रसे विश्वेदेवाओंका श्राद्ध करै॥२२८

पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा २२९

पद–पाणिप्रक्षालनम् २ दत्त्वाऽ–विष्टरार्थम्ऽ–कुशान् २ अपिऽ–आवाहयेत् क्रि–अनुज्ञातः१ विश्वेदेवास इत्यृचा ३ ॥

योजना–पाणिप्रक्षालनं विष्टरार्थम् कुशान् अपि दत्त्वा ब्राह्मणैः अनुज्ञातः सन् विश्वेदेवास इत्यृचा विश्वेदेवान् आवाहयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–उसके अनंतर विश्वेदेवाओंके लिये ब्राह्मणोंके हाथमें जल और आसनके लिये युग्म कुशाओंको देकर और विश्वेदेवाओंका आवाहन करताहूं ऐसे ब्राह्मणोंसे पूछकर आवाहन कर इन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे विश्वेदेवास इस ऋचासे वा आगच्छतु महाभागाः इस स्मार्तमंत्रसे विश्वेदेवाओंका आवाहन करै, यह विश्वेदेवाओंका आवाहन यज्ञोपवीती और सव्य होकर प्रदक्षिण क्रमसे करना क्योंकि पितृश्राद्धमें यह विशेष वचन है कि फिर अपसव्य होकर पितरोंका श्राद्ध और आवाहन अप्रदक्षिण क्रमसे करै ॥

भावार्थ–ब्राह्मणके हाथमें जल और आसनके लिये कुशा देकर ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनंतर विश्वेदेवास इस मंत्रसे विश्वेदेवाओंका आवाहन करै ॥ २२९ ॥

यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके।
शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वायवोसीतियवांस्तथा
यादिव्या इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्॥

पद–यवैः ३ अन्ववकीर्यऽ–अथऽ–भाजने ७ सपवित्रके ७ शन्नोदेव्या ३ पयः २ क्षिप्त्वाऽ–

१ यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत्। अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च। देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत्। प्रास्येदन्नं तदग्नौ तु दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे॥

१ विश्वान्देवानहमावाहयिष्ये।

२ विश्वेदेवा सऽआगतऽशृणुतामऽइम ५ हवम् एद बर्हिर्निषदत ॥

३ आगच्छंतु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये यत्र योजिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥

४ अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम्।

-यवोसीतिऽ-यवान् २. तथाऽ-यादिव्या इतिऽ-मंत्रेण ३ हस्तेषु७ अर्घ्यम्२ विनिक्षिपेत् क्रिऽ॥

योजना-अथ यवैः अन्ववकीर्य सपवित्रके भाजने शंन्नोदेव्या पयः यवोसीतिमन्त्रेण यवान् क्षिप्त्वा तथा यादिव्या इति मंत्रेण हस्तेषु अर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर विश्वेदेवाओंके लिये ब्राह्मणके समीप भूमिमें प्रदक्षिणंक्रमसे जौ बखेरकर फिर चांदी आदिके और दो कुशाओंकी पवित्रीसे ढके पात्रमें शन्नोदेवी इस मंत्रसे जल और यवोसि इस मंत्रसे यव डालकर अर्घ्यपात्र और पवित्रीसे ढके ब्राह्मणोंके हाथमें या दिव्या इस मंत्रसे हे विश्वेदेवाओ यह अर्घ्य आपके लिये है यह कहकर अर्घ्यका जल छोडदे॥

भावार्थ-भूमिपर यवोंको बखेर पवित्रीसहित अर्घ्यपात्रमें शन्नोदेवी इस मंत्रसे जल और यवोसि इस मत्रसे जौ डालकर फिर उस अर्घ्यको या दिव्या इस मंत्रसे ब्राह्मणोंके हाथपर छोडे ॥ २३० ॥

दत्त्वोदकंगंधमाल्यंधूपदानंसदीपकम् २३१ तथाच्छादनदानं च करशौचार्थमंबु च । अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥

पद-दत्त्वाऽ-उदकम् २ गंधमाल्यम् २ धूपदानम् २ सदीपकम् २ तथाऽ-आच्छादनदानम् २ चऽ-करशौचार्थम् २ अम्बु २ चऽ-अपसव्यम् १ ततःऽ- कृत्वाऽ-पितॄणाम् ६ अप्रदक्षिणम् १ ॥

योजना-उदकं गंधमाल्यं सदीपकं धूपदानं तथा आच्छादनदानं च पुनः करशौचार्थम् अंबु दत्त्वा ततः अपसव्यं कृत्वा पितॄणां कर्म अप्रदक्षिणं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर हाथोंकी शुद्धिके लिये जल देकर क्रमसे गंध पुष्प धूप दीप तथा आच्छादन वस्त्र इनको दे । गंध आदिमें अन्य स्मृतियोंमें कहा हुआ यह विशेष समझना । विष्णुने कहा है कि चंदन कुंकुम कपूर अगुरु पद्मक (कमल) ये उपलेपनके लिये दे[1] । पुष्पभी इस वचनमें कहे हुए लेने कि श्राद्धमें जाती मल्लिका श्वेतयूथिका (जूही) जलमें पैदा हुए पुष्प और चमेली ये श्रेष्ठ हैं[2] । और इस वचनमें कहे पुष्प वर्जित जानने, कि जिनमें अधिक गंध हो वा गंध न हो जो चैत्य (चबूतरा) वृक्षके हों, वा रक्तवर्ण हों, कांटेवाले वृक्षका न हों, और अकंटकवृक्षका शुक्ल और सुगंधि हो, वह दे[3] । और रक्त न हो, और रक्तभी कुंकुम और जलजको दे और धूपमें यह विशेष विष्णुने कहाहै कि संपूर्ण प्राणियोंके अंगकी धूप न दे घृत मधु संयुक्त गुग्गुल चंदन अगर देवदारु सरल आदिकी धूप दे[4] । दीपकमें यह विशेष शंखने कहा है घृत वा तिलोंके तेलका दीपक दे और वसा (चर्बी) और मेदोंके दीपकको वर्ज्ज दे और आच्छादनका वस्त्र शुक्ल और नवा हो और जो जीर्ण न हो ऐसा दशा (छोर) सहित दे[5] । यह संपूर्ण वैश्वदेव श्राद्धका कर्म उत्तराभिमुख होकर करै ।

---

१ शन्नोदेवीरभिष्टयऽआपोभवतु पीतये । शंय्योरभिस्रवंतु नः ॥

२ यवोसियवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः ।

३ यादिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या ऽअंतरिक्षा उतपार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः स ५ स्योनाः सुहवा भवतु ॥

१ चंदनकुंकुमकर्पूरागुरुपद्मकान्युपलेपनार्थम् ।

२ श्राद्धे जात्यः प्रशस्ताः स्युर्मल्लिका श्वेतयूथिका । जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च पुष्पकम् ॥

३ उग्रगंधीन्यगंधानि चैत्यवृक्षोद्भवानि च । पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥

४ प्राण्यंगं सर्वं धूपार्थं न दद्याद्घृतमधुसंयुक्तं गुग्गुलुश्रीखंडागरुदेवदारुसरलादि ।

५ घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः । वसामेदोद्भवं दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ आच्छादनं च शुभ्रं नवमहतं सदशं दद्यात् ।

और पितृश्राद्धका कर्म दक्षिणाभिमुख होकर करै। ऐसेही वृद्ध शातातपने कहा है कि देवताओंको उत्तराभिमुख होकर और पितरोंको दक्षिणाभिमुख होकर पार्वणश्राद्धमें विधिसे देवपूजनपूर्वक संपूर्ण दे ॥

भावार्थ-जल गंध माला धूप दीप आच्छादन वस्त्र और हस्तप्रक्षालनके लिये जल देकर फिर अपसव्य होकर पितरोंका श्राद्ध अप्रदक्षिण करै ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा ह्युशंतस्त्वेत्यृचा पितॄन्। आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायंतु नस्ततः ॥ २३३ ॥

पद-द्विगुणान् २ तुऽ-कुशान् २ दत्त्वाऽ-हिऽ-उशन्तस्त्वेत्यृचा ३ पितॄन् २ आवाह्यऽ-तदनुज्ञातः १ जपेत् क्रि-आयन्तुनः २ ततःऽ-॥

योजना-द्विगुणान् कुशान् दत्त्वा ततः तदनुज्ञातः सन् पितॄन् आवाह्य आयन्तुनः इति मंत्रं जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-वैश्वदेव कर्मके अनंतर अपसव्य हुए यज्ञोपवीतको सव्य करके, यहां ततः यह कहनेसे देवकाण्डका अनुसमय (उत्तरकाल) सूचन किया। पिता आदि तीनोंको द्विगुण भुग्न हों ऐसी विषम कुशाओंको वाम भागमें जलदानपूर्वक आसनोंपर देकै फिर जल दे। क्योंकि आश्वलायनेकी स्मृति है कि जल देकर द्विगुण भुग्न कुशा और जल दे। यह आद्यतमें जलदान वैश्वदेव और पितृश्राद्धमें पदार्थ २ के साथ देना यह सूचना करनेके लिये समझना। पिता पितामह प्रपितामह इनका आवाहन करताहूं यह ब्राह्मणोंसे पूछकर आवाहनकर इन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पितरोंका आवाहन उशन्तस्त्वानिधीमहि इस ऋचासे करके आयन्तुनः पितरः इस मंत्रसे स्तुति करै ॥

भावार्थ-द्विगुणी भुग्न कुशाओंको देकर फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उशन्त इत्यादि ऋचासे पितरोंका आवाहन करके आयन्तुनः इत्यादि मंत्रको जपै ॥ २३३ ॥

अपहता इति तिलान्विकीर्य च समंततः। यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादिपूर्ववत्

पद-अपहता १ इतिऽ-तिलान् २ विकीर्यऽ-चऽ-समंततःऽ-यवार्थाः १ तुऽ-तिलैः ३ कार्याः १ कुर्यात् क्रि-अर्घ्यादि २ पूर्ववत्ऽ-॥

दत्त्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः। पितृभ्यःस्थानमसीति न्युब्जं पात्रंकरोत्यधः॥

पद-दत्त्वाऽ-अर्घ्यम् १ संस्रवान् २ तेषाम् ६ पात्रे ७ कृत्वाऽ-विधानतःऽ-पितृभ्यःस्थानमसीतिऽन्युब्जम् १ पात्रम् २ करोति क्रि-अधःऽ-॥

योजना-च पुनः अपहता इति मंत्रेण समंततः तिलान् विकीर्य्य यवार्थाः तिलैः कार्याः तु पुनः अर्घ्यादि पूर्ववत् कुर्यात् अर्घ्यं दत्त्वा तेषां (अर्घ्याणां) संस्रवान् विधानतः पितृपात्रे निधाय पितृभ्यः स्थानमसीति मंत्रेण पात्रं अधः न्युब्जं करोति ॥

तात्पर्यार्थ-जौसे जो सिद्ध हों ऐसे अवकिरण (बखेरना) आदि कार्य तिलोंसे करने फिर अर्घ्यपात्रके आसनसे लेकर आच्छादनपर्यंत कर्मको पूर्ववत् करै। तिसमें यह विशेष है कि तिलोंको अपहता असुरारक्षांसि इत्यादि मंत्रसे ब्राह्मणोंके चारों तरफ अप्र-

१ उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः। प्रदद्यात्पार्वणे सर्वं देवपूर्वं विधानतः॥

२ अपः प्रदाय द्विगुणभुग्नान्कुशान्दत्त्वाऽपःप्रदाय।

१ उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः समिधीमहि उशन्नुशतऽआवह पितॄन्हविषेऽअत्तवे।

२ आयन्तुनः पितरःसोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रुवंतु तेवंत्वस्मान्।

३ अपहताऽअसुरारक्षांसिवेदिषदः।

दक्षिण बखेरकर अयुग्म कुशाओंसे बनाई हुई कूचीसे ढके तीन चांदीके पात्रोंमें शन्नोदेवी० इस मंत्रसे जल और तिलोसि सोमदेवत्यो इस मंत्रसे तिल पुष्प गंध इनको डालकर उन पात्रोंको स्वधार्घ्या इस मंत्रसे ब्राह्मणोंके आगे स्थापन करै। फिर यादिव्या इस मन्त्रके अंतमें हे पितः यह अर्घ्य आपको मिलो, हे पितामह यह अर्घ्य आपको मिलो, हे प्रपितामह यह अर्घ्य आपको मिलो, यह कहता हुआ उस अर्घ्यको ब्राह्मणोंके हाथपर छोडदे। दोनों स्थानोंमें एक रक्खे इस पक्षमेंभी तीन पात्र करने। इस प्रकार अर्घ्यको देकर उन अर्घ्योंके सस्रवो (ब्राह्मणोंके हाथसे गिरा हुआ जल) को पितृपात्रमें लेकर दक्षिणको जिसका अग्रभाग है ऐसे उस कुशस्तम्ब (कूची) को पृथिवीपर रखकर तिसके ऊपर पितृभ्यःस्थानमसि इस मन्त्रसे तिस पात्रको न्युब्ज (मूधा) करे तिसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्रोंको रक्खै। उसके अनंतर गंध पुष्प धूप दीप आच्छादन वस्त्र इनको हे पितः यह गंध आपको प्राप्त हो, हे पितः यह पुष्प आपको मिलो इत्यादिको कहताहुआ दे॥

भावार्थ-अपहता इस मन्त्रसे ब्राह्मणोंके चारों तरफ तिलोंको बखेरकर यव (जौ) के स्थानमें तिलोंसें कार्य और अर्घ्य आदिको पूर्ववत् करै अर्घ्य देकर और उनके संस्रवको पात्रमें करकै पितृभ्यःस्थानमासि इस मन्त्रसे उस पात्रको न्युब्ज (अधोमुख) करै ॥२३४-२३५॥

अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नंघृतप्लुतम्
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातोहुत्वाग्नौपितृयज्ञवत् ॥

पद-अग्नौ ७ करिष्यन् १ आदायऽ-पृच्छति क्रि-अन्नम् २ घृतप्लुतम् २ कुरुष्व क्रि-इतिऽ-अभ्यनुज्ञातः १ हुत्वा ऽ-अग्नौ ७ पितृयज्ञवत् ऽ-॥

हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः।
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः २३७

पद-हुतशेषम् २ प्रदद्यात् क्रि-तु ऽ-भाजनेषु ७ समाहितः २ यथालाभोपपन्नेषु ७ रौप्येषु ७ च ऽ-विशेषतः ऽ-॥

योजना-अग्नौ करिष्यन् घृतप्लुतम् अन्नम् आदाय पृच्छति कुरुष्व इति अभ्यनुज्ञातः सन् पितृयज्ञवत् अग्नौ हुत्वा हुतशेष समाहितः सन् यथालाभोपपन्नेषु च पुनः विशेषतः रौप्येषु भाजनेषु दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फिर अग्नौकरण करनेकी इच्छासे घी मिले अन्नको लेकर ब्राह्मणोंको यहीं पूछे कि मैं अग्नौकरण करताहू, यहां घृतका ग्रहण सूपशाक आदिकी निवृत्तिके लिये है जब ब्राह्मण करो यह आज्ञा दे दें तब प्राचीनावीती (सव्य) होकर अग्निका स्थापन करके और मेक्षणसे घीको लेकर अवदानके समान इन मन्त्रोंसे होम करै कि सोमाय पितृमते स्वधा नमः अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः, पिंडपितृयज्ञके प्रकारसे यह अग्निहोत्र करके और मेक्षणको अग्निके समीप रखकर होमसे शेष अन्नको मिट्टीके पात्रोंको छोडकर यथाशक्ति मिले हुए पात्रोंमें और विशेषकर चांदीके पित। आदिके पात्रोंमें परसदे विश्वेदेवाओंके पात्रमें न परसै और परसता हुआ समाहित रहै अर्थात् अन्यत्र मनको न लगावै, यहां यद्यपि अग्नौ यह अविशेषसे कहाहै तथापि जिसने अग्निहोत्र ले रक्खा है उसको सर्वाधानपक्षमें औपासन अग्निका अभाव है इससे पिण्डपितृयज्ञके अंतर्भावी पार्वणश्राद्धमें शास्त्रोक्त दक्षिणाग्नि समीप है इससे दक्षिणाग्निमें

---

१ तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान्पृणाहि नः स्वाहा।

२ यादिव्या आपःपयसेति पूर्वोक्तम्।

होम करै क्योंकि स्मार्त कर्म विवाह अग्निमें करै इसका यह अपवाद है सोई मार्कण्डेयने कहा है आहिताग्नि मनुष्य सावधानीसे दक्षिणाग्निमें अग्नौकरण होम करै अनाहिताग्नि तो औपसद् अग्निमें औपसद् न होय तो ब्राह्मणका मुख वा जलमें करै और जब अर्धाधानपक्ष है तब औपासन अग्निभी होसकती है तब आहिताग्नि और अनाहिताग्नि दोनोंका होम औपासन अग्निमें होताहै। इसी प्रकार अन्वष्टका आदि तीनोंमें पिंडपितृयज्ञकाही प्रकार माना है और काम्य आदि चार श्राद्धोंमें ब्राह्मणके हाथमेंही अग्नौकरण होम होताहै। सोई गृह्यकारोंने कहा है कि, अन्वष्टका श्राद्ध पूर्वदिन (सप्तमी) में होता है, और पार्वण मास २ में होता है, काम्य अभ्युदयमें और एकोद्दिष्ट आठवां होता है, पहिले चारों श्राद्धमें साग्नियोंका होम वह्निमें होता है और पिछले चारोंमें ब्राह्मणोंके हाथमें होता है। इसका अर्थ स्पष्ट यह है कि, हेमंत शिशिरके चारों मासोंमें कृष्णपक्षकी अष्टमी चारों अष्टका होती है, नौमीमें जो श्राद्ध किया जाय वह आन्वष्टक्य कहाता है, सप्तमीमें जो किया जाय वह पूर्वेद्यु कहाता है, मास २ के कृष्णपक्षकी पंचमी आदि जिस किसी तिथिमें अन्वष्टका श्राद्धके अतिदेशसे जो किया जाय वह और अमावास्याके पिंडपितृयज्ञके अनंतर जो किया जाय वह पार्वण, स्वर्ग आदिकी इच्छासे कृत्तिका आदिमें जो किया जाय वह काम्य, पुत्रकी उत्पत्ति तडाग आदिकी प्रतिष्ठामें जो किया जाय वह अभ्युदय, पूर्वोक्त चार ४ अष्टकाओंमें अष्टका श्राद्ध और एकोद्दिष्ट यहां एकोद्दिष्ट शब्दसे सपिंडी लेते हैं, उसमेंभी एकका उद्देश्य है। केवल पार्वणका ग्रहण नहीं क्योंकि साक्षात् एकोद्दिष्टमें अग्नौकरणका अभाव है। अथवा गृह्यभाष्यकारके मतसे साक्षात् एकोद्दिष्टमेंभी पाणिहोम होताहै। इससे एकोद्दिष्टसे साक्षात्ही एकोद्दिष्ट लेना। इन आठोंमें पहिले चार श्राद्धोंमें साग्निकका अग्निमें होम और पिछले चारों निराग्नि वा साग्निक पितृब्राह्मणोंके हाथमें होमें होताहै। जिसका पिता मरगया हो उसको पार्वण सदैव करना इससे वहभी ब्राह्मणके हाथमें होम करै क्योंकि, यह वचन है कि मरगया है पिता जिसका ऐसा जो द्विज वह मास २ की प्रतिपदाको जो पार्वण नहीं देता वह प्रायश्चित्तका भागी होता है। इसी प्रकार काम्य अभ्युदय अष्टका एकोद्दिष्ट इनमेंभी हाथमें होम होता है। क्योंकि यह मनुका वचन है कि अग्नि न हो तो ब्राह्मणके हाथमें अन्न देदे परतु ब्राह्मणके हाथमें दिये अन्नका पृथक् ग्रासका निषेध कहते हैं अर्थात् उस अन्नको सब अन्नमें मिलाकर खाय। सोई गृह्यकारोंने कहा है कि हाथमें दिये अन्नको निर्बुद्धि खाते हैं उससे पितर तृप्त नहीं होते और शेष अन्न पितरोंको नहीं मिलता जो हाथमें दिया अन्न है और जो परसाहुआ अन्न है उसे मिलाकर खाय पृथग्भाव न करै॥

---

१ आहिताग्निस्तु जुहुयाद् दक्षिणाग्नौ समाहितः। अनाहिताग्निस्त्वौपसद अग्न्यभावे द्विजेप्सु वा॥

२ आन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम्। काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमे। चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते। पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि॥

---

१ न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः। इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः।

२ अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्।

३ अन्नं पाणितले दत्तं पृथगश्नन्त्यबुद्धयः। पितरस्तेन तृप्यन्ति शेषान्नं न लभन्ति ते॥ यच्च पाणितले दत्तं यच्चान्यदुपकल्पितम्। एकीभावेन भोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते।

भावार्थ-अग्नौकरण करता हुआ मनुष्य घीसे मिले अन्नको लेकर ब्राह्मणोंसे अग्नौकरणको पूछे जब करनेकी आज्ञा देदे तब पितृयज्ञके समान अग्निमें होम करै। होमसे शेष अन्नको जैसे मिले वा विशेषकर चांदीके पात्रोंमें सावधानीसे परसै ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमंत्रणम्। कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजांगुष्ठं निवेशयेत् ॥ २३८ ॥

पद-दत्त्वाऽ-अन्नम्२ पृथिवीपात्रम्१ इतिऽ-पात्राभिमन्त्रणम् २ कृत्वाऽ-इदंविष्णुः १ इतिऽ-अन्ने ७ अंगुष्ठम् २-निवेशयेत् क्रि-॥

योजना-अन्नं दत्त्वा पृथिवीपात्रम् इति मन्त्रेण पात्राभिमंत्रणं कृत्वा इदंविष्णुः इति मंत्रेण अन्ने अंगुष्ठं निवेशयेत्॥

तात्पर्यार्थ-भा०-ओदन सूप पायस आदि अन्नको पात्रमें देकर पृथिवीतेपात्र इस मन्त्रसे पात्रोंका अभिमन्त्रण करके इदंविष्णुः इस मंत्रसे अन्नके ऊपर ब्राह्मणके अंगुष्ठको स्पर्श करावै। और विश्वेदेवाओंके आगे सव्य होकर हव्यकी रक्षा करो और पितरोंके आगे अपसव्य होकर हे विष्णो कव्यकी रक्षा करो यह कहै ऐसे ही मनुने कहाहै ॥ २३८ ॥

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृचम्। जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुंजीरंस्तेपि वाग्यताः ॥ २३९ ॥

पद-सव्याहृतिकाम् २ गायत्रीम् २ मधुवाता इतिऽ-तृचम् २ जप्त्वाऽ-यथासुखम्ऽ-वाच्यम्१ भुंजीरन् क्रि-ते १ अपिऽ-वाग्यताः१॥

योजना-सव्याहृतिकां गायत्रीं-मधुवाता इति तृचं जप्त्वा यथासुखं जुषध्वम् इति वाच्यं ते ब्राह्मणाः अपि वाग्यताः (मौनिनः) भुंजीरन्॥

तात्पर्यार्थ-उसके अनन्तर परसाहुआ और परसने योग्य यह अन्न तृप्तिपर्यंत विश्वेदेवाओंको प्राप्त हो यह कहकर जौ और जलसे दैवश्राद्धमें निवेदन करके और तैसेही पिता पितामह प्रपितामहोंको अमुकगोत्र अमुकशर्माको परसाहुआ और परसने योग्य यह अन्न तृप्तिपर्यंत प्राप्त हो यह कहकर तिल और जलदानसे निवेदन करके आपोशान देकर और पूर्वोक्त व्याहृतियोंसहित गायत्री और मधुवाता इन तीन ऋचाओंको जपकर और तीन वार मधु कहकर सुखसे भोजन करो यह कहै और वे ब्राह्मणभी मौन होकर भोजन करैं। पारस्करका यह वचन है कि पितर और देवताओंके निमित्त अन्नका सकल्प करके सावित्री और मधुवाता ऋचाओंको जपै। फिर श्राद्धका निवेदन आपोशान, यथासुख भोजन करो कहना, तीन वा एकवार व्याहृतिसहित गायत्रीका और मधुवाता इन तीन ऋचाओंका जप और तीन वार मधु ३ जप करै॥

भावार्थ-भू आदि व्याहृतियोंसहित गायत्री और मधुवाता इन तीन ऋचाओंका जप करके कहै कि सुखसे भोजन करो वे ब्राह्मणभी मौन होकर भोजन करें ॥ २३९ ॥

अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा ॥ २४० ॥

पद-अन्नम् २ इष्टम् २ हविष्यम् २ चऽ-दद्यात् क्रि-अक्रोधनः १ अत्वरः १ आऽ-तृप्तेः ५ तुऽ-पवित्राणि २ जप्त्वाऽ-चऽ-एवऽ-अनुमान्यऽ-चऽ- ॥

---

१ पृथिवीते पात्र द्यौरपिधान ब्राह्मणस्य मुखेअमृते ऽमृत जुहोमि स्वाहा।

२ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् समूढमस्यपा* सुरे।

१ सकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीं मधुमज्जपः। श्राद्धं निवेद्यापोशान जुषप्रेषोऽथ भोजनम्। गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाता इति तृच मध्वित्येते त्रिक तथा।

योजना—अक्रोधनः अत्वरः सन् इष्टम् अन्नं च पुनः हविष्यं दद्यात् तु पुनः आ तृप्तेः पवित्राणि जप्त्वा तथा पूर्वजपं जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ—भक्ष्य भोज्य लह्य चोष्य पेय रूप पांच प्रकारके और ब्राह्मण प्रेत वा यजमानको इष्ट (रोचक), हविष्य (श्राद्धहविके योग्य) जो इस अन्यस्मृतिमें प्रसिद्ध है कि व्रीहि शाली यव गेहू मूंग उडद मुनियोंका अन्न कालके शाक, महाशल्क, इलायची, सोंठ, मिरच, हींग, गुड, शर्करा, कपूर, सैंधव, सांभर, पनस, नारियल, कदली, बेर, गव्य, दूध, दही, घृत, पायस, मधु, मांस आदि, इन सबको दे और हविष्यके कहनेसे इस अन्य स्मृतिमें कहे अयोग्य अन्नोंकी निवृत्ति समझनी कि कोदा, मसूर, चणा, कुलथी, पुलाक, निष्पाव, राजमाष (लोबिया), कूष्मांड, बैंगन, दोनों कटेहली, उपोदकी, वांसके अकुर, पीपल, वच, सोंफ, ऊषरलवण, माहिष (भैंस), चमरीगौका दूध, घी पायस आदि श्राद्धमें निषिद्ध हैं और उक्त अन्नको क्रोध और शीघ्रताको छोडकर तृप्तिपर्यंत दे और तुशब्दसे जो कुछ उच्छिष्ट बचे वैसा दे क्योंकि वह दासोंका भाग होता है क्योंकि मनुका वचन है कि भूमिमें पडा, उच्छिष्ट, कपट और शठतासे हीन दास और उसके पिताका भाग कहा है तैसेही तृप्तिपर्यंत पुरुषसूक्त आदि पवित्रोंको जपकर और तृप्त ब्राह्मणोंको जानकर व्याहृतियों सहित पूर्वोक्त गायत्रीको जपे ॥

भावार्थ—क्रोध और शीघ्रतासे रहित इष्ट और हविष्य अन्नको तृप्तिपर्यंत देकर पवित्रमंत्रोंको जपकर पूर्वोक्त प्रकारसे गायत्रीको जपै ॥ २४० ॥

अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमान्यच।
तदन्नंविकिरेद्भूमौदद्याच्चापःसकृत्सकृत् ॥

पद—अन्नम् २ आदायऽ—तृप्ताः १ स्थ क्रि—शेषम् २ चऽ—एवऽ-अनुमान्यऽ—चऽ- तत् २ अन्नम् २ विकिरेत् क्रि—भूमौ ७ दद्यात् क्रि—चऽ—अपः २ सकृत्ऽ—सकृत्ऽ—॥

योजना—अन्नम् आदाय तृप्ताः स्थ इति पृच्छेत् च पुनः शेषम् अन्नम् अनुमान्य तत् अन्नं भूमौ विकिरेत् च पुनः सकृत्सकृत् अपः दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ—फिर सब अन्नको लेकर ब्राह्मणोंको तृप्त हुए ऐसे पूछे जब वे तृप्त हुए ऐसे कहदें तब यह पूछै कि शेषभी कुछ अन्न है उसे क्या करें। इष्ट मित्रोंसहित भोजन करो इस उनकी आज्ञासे उस अन्नको पितृब्राह्मणके आगे उच्छिष्टके समीप ऐसी भूमिमें तिलजलपूर्वक इस मंत्रसे दे कि जो दक्षिणाग्रकुशाओंसे ढकी हो कि मेरे कुलमें जिनको अग्निका दाह मिला है वा नहीं मिला वे भूमिमें दिये अन्नसे तृप्त होकर परमगतिको प्राप्त हों और ब्राह्मणोंके हाथमें एक २ बार कुल्लेके लिये जल दे ॥

भावार्थ—अन्नको लेकर ब्राह्मणोंसे तृप्त हुए यह पूछै जब वे तृप्त हुए यह कहदें तब उनकी आज्ञासे उस अन्नको कुशा रखकर भूमिपर विकिर दे फिर कुल्लेके लिये एक २ बार ब्राह्मणोंको जल दे ॥ २४१ ॥

---

२ व्रीहिशालियवगोधूममुद्गमाषमुन्यन्नकालशाकमहाशल्कैलासुठीमरीचीहिंगुगुडशर्करार्कर्पूरसैंधवसांभरपनसनालिकेरकदलीवदरगव्यपयोदधिघृतपायसमधुमांसप्रभृति।

२ कोद्रवमसूचणककुलित्थ पुलाकनिष्पावराजमाषकूश्मांडवार्ताकबृहती द्वयोपोदकीवशांकुरपिप्पली वचाशतपुष्पोषरीवडलवणमाहिषचामरक्षीरदधिघृतपाय०

३ उच्छेषेण भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च। दासवर्गस्य तत्पित्रे भागधेयं प्रचक्षते ॥

१ अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यांतु परां गतिम् ॥

सर्वमन्नमुपादायसलिलंदक्षिणामुखः ।
उच्छिष्टसन्निधौपिंडान्दद्याद्वैपितृयज्ञवत् ॥

पद्-सर्वम् २ अन्नम् २ उपादाय:ऽ-सतिलम् २ दक्षिणामुखः १ उच्छिष्टसन्निधौ ७ पिण्डान् २ दद्यात् क्रि-वैऽ-पितृयज्ञवत्ऽ-॥

योजना-सतिल सर्वम् अन्नम् उपादाय दक्षिणामुखः सन् उच्छिष्टसन्निधौ पितृयज्ञवत् पिण्डान् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ, भावार्थ-पिंडपितृयज्ञके समान चरु पकाया होय तो अग्नौकरणसे बचा जो चरु उसको और सब अन्नको मिलाकर अग्निके समीप पिण्ड दे चरु न पकाया होय तो ब्राह्मण के भोजनार्थ वनाये सब अन्नको लेकर उच्छिष्टके समीप तिलसहित पिण्डोंको दक्षिणको मुख करके पितृयज्ञके समान पिंडोंको दे ॥ २४२ ॥

मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ।
स्वस्तिवाच्यं ततःकुर्यादक्षय्योदकमेवच ॥

पद्-मातामाहानाम् ६ अपिऽ-एवम्ऽ-दद्यात् क्रि-आचमनम् २ ततःऽ-स्वस्तिऽ-वाच्यम् १ ततःऽ-कुर्यात् क्रि-अक्षय्योदकम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना-मातामहानाम् अपि एव कुर्य्यात् ततः आचमन दद्यात्-ततः स्वस्तिवाच्य च पुनः अक्षय्योदकं कुर्यात् ॥

ता०भा०-मातामहोंका आवाहनसे पिंडदान पर्यंत कर्म ऐसेही करे फिर ब्राह्मणोंको आचमन दे फिर ब्राह्मणोंको स्वस्ति कहो ऐसे कहे फिर वे स्वस्ति कह दें फिर अक्षय्य हो यह कहकर ब्राह्मणोंको हाथपर जलदान करै ब्राह्मणभी अक्षय हो यह कह दें ॥ २४३ ॥

दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत्
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यस्वधोच्यतां ।

पद-दत्त्वाऽ-तुऽ-दक्षिणाम् २ शक्त्या ३स्वधाकारम् २ उदाहरेत् क्रि-वाच्यताम् क्रि-इतिऽ-अनुज्ञातः १प्रकृतेभ्यः४स्वधा१उच्यताम् क्रि-॥

योजना-तु पुनः शक्त्या दक्षिणां दत्त्वा स्वधाकारम् उदाहरेत्-वाच्यताम् इति अनुज्ञातः सन् प्रकृतेभ्यः स्वधा उच्यताम् इति उदाहरेत् ॥

ता०भा०-फिर यथाशक्ति सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर स्वधाको कहावता हू यह कहै जब ब्राह्मण स्वधावाचन कराओ यह कहदें तब ब्राह्मणोंको यह कहै कि पिता आदि और मातामह आदिको दिया स्वधा (पहुँचे) होय कहै ॥ २४४ ॥

ब्रूयुरस्तुस्वधेत्युक्तेभूमौसिंचेत्ततोजल
विश्वेदेवाश्चप्रीयंतांविप्रैश्चोक्तमिदंजपेत्

पद-ब्रूयुः क्रि-अस्तु क्रि-स्वधाऽ-इतिऽ-उक्ते ७ भूमौ ७ सिंचेत् क्रि-ततःऽ-जलम् २ विश्वेदेवाः १ चऽ-प्रीयंताम् क्रि-विप्रैः ३ चऽ-उक्तम् १ इतिऽ-जपेत् क्रि- ॥

योजना-ते ब्राह्मणा अस्तु स्वधा इति ब्रूयुः तैः उक्ते सति ततः भूमौ जलं सिंचेत् च पुनः विश्वेदेवाः प्रीयताम् इति विप्रैः उक्तं जपेत् ॥

ता०भा०-वे ब्राह्मण स्वधा हो जब ऐसे कह दें तब कमण्डलुसे भूमिमें जल सींचे फिर विश्वेदेव प्रसन्न हों ऐसे कहै जब ब्राह्मणभी प्रसन्न हों ऐसे कह दें तब इसको जपै कि॥२४५॥

दातारो नोभिवर्धतांवेदाः संततिरेवच ।
श्रद्धा च नोमाव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्तु२४६

पद-दातारः १ नः ६ अभिवर्द्धताम् क्रि-वेदाः१ संततिः१ एवऽ-चऽ-श्रद्धा १ चऽ-नः ६ माऽ-व्यगमत् क्रि-बहु १ देयम् १ चऽ-नः ६ अस्तु-क्रि- ॥

योजना-नः (अस्माकं) दातारः वेदाः

संततिः अभिवर्द्धन्तां च पुनः श्रद्धा मा व्यगमत् च पुनः नः (अस्माक)बहुदेयम् अस्तु ॥

ता० भा०-हमारे कुलमें दाताओंकी वृद्धि हो, पठन पाठन आदिसे वेदकी, पुत्र पौत्र आदिसे संतानकी वृद्धि हो और पितृकर्ममेंसे हमारी श्रद्धा मत जाओ और हमें बहुत देनेको सुवर्ण आदि मिलें इस तरह ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करे ॥ २४६ ॥

इत्युक्त्वोक्त्वा प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत्। वाजेवाज इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम् ॥ २४७ ॥

पद-इत्युक्तः १ उक्त्वा ऽ-प्रियाः २ वाचः २ प्रणिपत्य ऽ-विसर्जयेत् क्रि-वाजेवाज इति ऽ-प्रीतः १ पितृपूर्वम् १ विसर्जनम् १ ॥

योजना-इत्युक्तः सन् प्रियाः वाचः उक्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत्। कथं विसर्जयेदित्याह वाजे वाजे इति मन्त्रेण प्रीतः सन् पितृपूर्वं विसर्जनं कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-इस पूर्वोक्त मन्त्रको जपकर और आपके दोनों चरणोंकी रजसे गृह जिनके पवित्र हुए और शाक आदिके भोजनके दुःखको न मानकर जो आपने अनुगृहीत किये हैं ऐसे हमको धन्य, इस तरह मधुर वाणियोंको कहकर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करके विसर्जन इस प्रकार करै कि वाजे वाजे इस ऋचासे पितृपूर्वक प्रपितामह और विश्वेदेवापर्यंतोंका विसर्जन, प्रसन्न हुआ हे पितर तुम उठो यह कहताहुआ करै ॥

भावार्थ-इस कहनेके अंनतर मधुर वाणियोंको ब्राह्मणोंके प्रति कहकर वाजेवाजे इस ऋचासे पिता आदिका विसर्जन करै ॥ २४७ ॥

यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः। पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥

पद-यस्मिन् ७ ते १ संस्रवाः १ पूर्वम् २ अर्घ्यपात्रे ७ निवेशिताः १ पितृपात्रम् २ तत् २ उत्तानम् २ कृत्वा ऽ-विप्रान् २ विसर्जयेत् क्रि-॥

योजना-यस्मिन् अर्घ्यपात्रे ते संस्रवाः पूर्वं निवेशिताः, तत् पितृपात्र उत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥

ता० भा०-जिस अर्घ्यपात्रमें पहिले अर्घ्यदानके पीछे ब्राह्मणके हाथसे गिरा हुआ अर्घ्यका जल रक्खा था उस औंधे हुए पितृपात्रको सूधा रखकर ब्राह्मणोंका विसर्जन करै। यह विसर्जन आशीर्वादके मत्रसे पीछे वाजे २ इस मत्रके उच्चारणसे पूर्व समझना। क्योंकि 'कृत्वा विसर्जयेत्' यहां पूर्वकालबोधक क्त्वा-प्रत्ययका श्रवण है ॥ २४८ ॥

प्रदक्षिणमनुव्रज्यभुञ्जीतपितृसेवितम्। ब्रह्मचारीभवेत्तांतुरजनींब्राह्मणैः सह २४९

पद-प्रदक्षिणम् २ अनुव्रज्य ऽ-भुंजीत क्रि-पितृसेवितम् २ ब्रह्मचारी १ भवेत् क्रि-ताम् २ तु ऽ-रजनीम् २ ब्राह्मणैः ३ सह ऽ- ॥

योजना-प्रदक्षिणम् अनुव्रज्य पितृसेवितं भुंजीत-तु पुनः तां रजनीं ब्राह्मणैः सह ब्रह्मचारी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इसके अनंतर सीमापर्यंत ब्राह्मणोंके पीछे जाय फिर आप जाओ बैठो इस उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे लौटकर पितृसेवित श्राद्धके शेष अन्नको इष्ट मित्रोंके साथ भोजन करै, यह नियम है, परिसंख्या नहीं। मांसमें तो यथा रुचि हो वह द्विज काम्यया-यहां कह आये जिस दिन श्राद्ध किया उस रात्रिका भोक्ता (भोजन करनेवाले) ब्राह्मणोंसहित ब्रह्मचारी (विषय आदिसे राहित) रहै-और तुशब्दसे यह समझना कि पुनर्भोजनं आदिको

१ वाजे वाजे वतवाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः।

भी न करे। क्योंकि यह वचन है कि दंतधावन तांबूल स्निग्ध स्नान (तैलाभ्यंग) पुनर्भोजन रमण औषध पराया अन्न इनको श्राद्धका कर्त्ता वर्ज दे। पुनर्भोजन अध्वा भार (बोझा) अध्ययन मैथुन दान प्रतिग्रह होम इन आठको श्राद्धका भोक्ता वर्ज दे॥

भावार्थ-ब्राह्मणोंके पीछे चलकर पितरोंके भोगे श्राद्धके अन्नको खावे और ब्राह्मणों सहित उस रात्रिमें ब्रह्मचारी रहै॥ २४९॥

एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नांदीमुखान्पितॄन्। यजेत् दधिकर्कंधुमिश्रान्पिंडान्यवैः क्रियाः॥२५०॥

पद-एवम्ऽ-प्रदक्षिणावृत्कः१वृद्धौ ७ नांदीमुखान् २ पितॄन् २ यजेत् क्रि-दधिकर्कंधुमिश्रान् २ पिंडान् २ यवैः ३ क्रियाः १॥

योजना-एवं प्रदक्षिणावृत्कः सन् वृद्धौ नांदीमुखान् पितॄन् दधिकर्कन्धुमिश्रान् पिंडान् दत्त्वा यजेत् क्रियाः यवैः कर्तव्याः॥

तात्पर्यार्थ-अब वृद्धिश्राद्धको कहते हैं। पुत्रजन्म आदि निमित्तोंमें जो किया जाता है उस वृद्धिश्राद्धमें इस पूर्वोक्त प्रकारसे पितरोंका पूजन करै। तिसमें विशेष कहते हैं कि यह कर्म प्रदक्षिणावृत्क है अर्थात् इस कर्मको अनुष्ठानका मार्ग प्रदक्षिणाक्रमसे है। यहां नांदीमुखान् यह पितॄन् इस पदका विशेषण है इससे आवाहन आदिमें नांदीमुख पितरोंका आवाहन करताहूं नांदीमुख पितामहोंका आवाहन करताहूं इत्यादि वचन कहने। किस प्रकार पूजन करै इस अपेक्षासे कहते हैं कि दधि कर्कन्धुमिश्र अर्थात् बेर और दधिसे मिश्रित पिण्डोंको देकर पूजन करै और तिलसे जितने कर्म हैं वे सब जौसे करने, यहां ब्राह्मणोंकी संख्या, देवश्राद्धमें युग्म ब्राह्मण यथाशक्ति करै यह पूर्व कह आये यहां प्रदक्षिणक्रम आदि गिननेसे अन्य स्मृतियोंमें कहे औरभी विशेष धर्म लेने सोई आश्वलायनने कहा है कि[1] आभ्युदयिकं श्राद्धमें युग्म ब्राह्मण मूलरहित कुशा, पूर्वाभिमुख, सव्य प्रदक्षिण होकर क्रम, तिलोंके स्थानमें जौ, गंध आदि और आसनमें दो २ ऋजु कुशा दे यवोसि इस मन्त्रसे[2] जौ दे, हे विश्वेदेवा यह आपको अर्घ्य है हे नांदीमुख पितरो यह आपको अर्घ्य है ऐसे अर्घ्य दे। कव्यवाहन अग्निको स्वाहा है पितृमान् अग्निको स्वाहा है इन दो मंत्रोंसे[3] ब्राह्मणोंके हाथपर होम करै। मधुवाता इन तीन ऋचाओंके स्थानमें उपास्मै गायत ये पांच मधुमति और अक्षन्नमीमदंत यह छठी ऋचा सुनावै जब ब्राह्मणभोजनके अंतमें आचमन कर ले तब गोवरसे लीपकर और पूर्वाग्र कुशाको बिछाकर वहां बेर और घी मिले भोजनके शेष अन्नसे एक २ को दो २ पिण्ड दे यद्यपि यहां पितरोंकी पूजा करै यह सामान्यसे कहा है तथापि तीन श्राद्ध करै उसका क्रम अन्यस्मृतियोंसे जानना। सोई शातातपने कहा है कि[4] पहिले माताका श्राद्ध फिर पिताओंका फिर मातामहोंका ये तीन श्राद्ध वृद्धिमें कहे हैं॥

दंतधावनतांबूल स्निग्धस्नानमभोजनम्। रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकृत् सप्त वर्जयेत्॥ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम्॥ दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुक्त्वष्ट वर्जयेत्।

१ अथाभ्युदयिके अमूला दर्भाः प्राङ्मुखो यज्ञोपवीती स्यात्प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थो गवादिदानम्।

२ यवोसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमाद्भिः पृक्तःपुष्ट्या - नान्दीमुखान्पितॄल्लोकान्प्रीणाहि नः स्वाहा।

३ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा।

४ मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनंतरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्।

भावार्थ–इस प्रकार वृद्धिमें नांदीमुख पितरोंको प्रदक्षिण क्रमसे दही बेर मिले पिण्डोंसे पूजै और तिलोंके कर्मको जौसे करै ॥ २५० ॥

एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ।
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् २५१॥

पद–एकोद्दिष्टम् १ देवहीनम् १ एकार्घ्यैकपवित्रकम् १ आवाहनाग्नौकरणरहितम् १ हिऽ–अपसव्यवत्ऽ–॥

योजना–दैवहीनम्, एकार्घ्यैकपवित्रकम्, आवाहनाग्नौकरणरहितम् अपसव्यवत् एकोद्दिष्टं भवति ॥

ता० भा०–एकोद्दिष्ट श्राद्धको कहते हैं। एकका उद्देश जिसमें हो उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं, शेष कर्मको पूर्वके समान करै। इससे पार्वणके सब धर्म पाये एकोद्दिष्टके विशेषको कहते हैं कि देवसे रहित और एक अर्घ्य एक पात्र एक कुशाकी पवित्री, आवाहन, अग्नौकरण होमसे रहित और अपसव्यसे एकोद्दिष्ट होता है ॥ २५१ ॥

उपतिष्ठतामक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने ।
अभिरम्यतामिति वदेद्ब्रूयुस्तेऽभिरताःस्मह।

पद–उपतिष्ठताम् क्रि–अक्षय्यस्थाने ७ विप्रविसर्जने ७ अभिरम्यताम् क्रि–इतिऽ–वदेत् क्रि–ब्रूयुः क्रि–ते १ अभिरताः १ स्मः क्रिऽ–हऽ–॥

योजना–अक्षय्यस्थाने उपतिष्ठतां, विप्रविसर्जने अभिरम्यताम् इति वदेत्, ते (ब्राह्मणाः) अपि अभिरताः स्मः इति ब्रूयुः ॥

तात्पर्यार्थ–जो यह कहाहै कि स्वस्तिवाचनके अनतर अक्षय्योदक दे, वहां अक्षय्यके स्थानमें उपतिष्ठतां (प्राप्त हो) कहै और वाजे २ मन्त्रसे ब्राह्मणोंके विसर्जनमें अभिरम्यतां (रमण करो) कहै वे ब्राह्मणभी रमण करते हैं ऐसे कहैं, शेष कर्म पूर्वके समान समझना, यह मध्याह्नमें करना सोई देवलने[1] कहा है कि देवकर्म पूर्वाह्णमें पितृकर्म अपराह्णमें एकोद्दिष्ट मध्याह्नमें वृद्धिश्राद्ध प्रातःकालमें करै, पितरोंके शेपका भोजन करै इस शेपभोजनका किसी एकोद्दिष्टमें निषेधभी देखते हैं कि नवश्राद्धका शेष, और गृहका वासी अन्न और स्त्रीपुरुषके भुक्तका शेष इनको भोजन न[2] करै, नवश्राद्ध तो यह है कि प्रथम तृतीय[3] पञ्चम सप्तम नवम और एकादशदिनोंके श्राद्धको नवश्राद्ध कहते हैं ॥

भावार्थ–अक्षय्यके स्थानमें उपतिष्ठतां और ब्राह्मणोंके विसर्जनमें अभिरम्यतां कहै वे ब्राह्मणभी अभिरत हुए (जाते हैं) ऐसे कहैं ॥ २५२ ॥

गंधोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसिंचयेत्२५३

पद–गंधोदकतिलैः ३ युक्तम् १ कुर्यात् क्रि–पात्रचतुष्टयम् २ अर्घ्यार्थम् २ पितृपात्रेषु ७ प्रेतपात्रम् २ प्रसिंचयेत् क्रि–॥

येसमानाइति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ।।
एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि२५४

पद–येसमानाइतिऽ–द्वाभ्याम् ३ शेषम् २ पूर्ववत्ऽ–आचरेत् क्रि–एतत् १ सपिंडीकरणम् १ एकोद्दिष्टम् १ स्त्रियाः ६ अपिऽ–॥

योजना–गंधोदकतिलैः युक्त पात्रचतुष्टयम् अर्घ्यार्थं कुर्यात्, प्रेतपात्र पितृपात्रेषु ये समानाइति द्वाभ्यां प्रसिंचयेत्, शेप पूर्ववत् आचरेत्, एतत्सपिंडीकरणम् एकोद्दिष्टं स्त्रियाः अपि भवति ॥

---

१ पूर्वाह्णे दैविकं कर्म अपराह्णे तु पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ।

२ नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे पर्युषितं च यत् । दम्पत्योर्भुक्तशिष्टं च न भुंजीत कदाचन ।

३ प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ।

तात्पर्यार्थ-अब सपिंडीकरण श्राद्धको कहते हैं। गंध जल तिलोंसे युक्त चार पात्र अर्घ्य देनेके लिये पूर्वोक्त प्रकारसे करै। चार पात्रोंके कहनेसे पितृवर्गमें चार ब्राह्मण दिखाये दो विश्वेदेवाओंके थेही, यहां किंचित् शेष प्रेतपात्रके जलको तीन प्रकारसे विभाग करके पितरोंके पात्रोंमें ये समाना इन दो मंत्रोंसे सींचै और शेष विश्वेदेवाओंके आवाहन आदि विसर्जनपर्यंत कर्मको पार्वणके समान करै और प्रेतके अर्घ्यपात्रके शेषजलको प्रेतब्राह्मणके हाथमें देकर शेषकर्मको एकोद्दिष्टके समान समाप्त करै और तीनों पितरोंके अर्थोंमें पार्वणके समान कर्मको करे, यह सपिंडीकरण और पूर्वोक्त एकोद्दिष्ट स्त्री (माता) काभी करना, यह कहनेसे यह जानागया कि पार्वणमें माताका श्राद्ध पृथक् न करै, यहां प्रेतशब्दको पिताके प्रपितामहका वोधक कोई कहते हैं क्योंकि वह तीनके मध्यमें है और इसीसे सपिंडीके पीछे उसके पिंडदानकीभी निवृत्ति हो सकती है जो क्रमपूर्वक मरा हो उसके पिंडजलदानका अतर्भाव युक्त नहीं इसीसे यमने कहाहै कि जो सपिंडी किये प्रेतको पृथक् पिंडमें मिलाता है विधिका नाशक वह पितरोंको नष्ट करनेवाला होताहै । प्रकर्षसे (भली प्रकार) जो इत (गया) हो उसे प्रेत कहतेहैं इससे चौथेमेंभी प्रेतशब्द होसकता है और यहभी लिखा है कि पितरोंकोही दे। और इस वचनसे कि सपिंडीकरण श्राद्ध देवपूर्वक करै और उसमें पितरोंको जिमावे फिर प्रेतशब्दका उच्चारण न करै। सपिंडी किये पीछे प्रेतको श्राद्ध आदिका निषेध देखते हैं वह अनंतर (तत्काल) मरेका नहीं हो सकता क्योंकि अमावास्या आदिमें उसका श्राद्ध कहाहै और सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होजातीहै यह वचनभी तभी घट सकता है जब चौथेका तीनमें अतर्भाव मानो कि चौथा तीन पिंडोंमें पांचवां दो पिंडोंमें छठा एक पिंडमें अधिकारी है और सातवेंमें पिंडकी निवृत्ति होजाती है। पितृपात्रोंमें सींचे यह पूर्वोक्त वचनभी इसी पक्षमें पिताको मुख्य होनेसे घट सकता है और प्रपितामह आदि होनेसे अन्यथा नहीं घटसकता तिससे पितृपात्रोंमें उस प्रेतपात्रको सींचे। यह सब कोईका कहना ठीक नहीं क्योंकि यहां पिंड मिलानेका यह प्रयोजन नहीं है कि पिताके प्रपितामहके पिंडकी निवृति हो किंतु पिताको प्रेतत्वकी निवृत्ति और पितृत्वकी प्राप्ति है। प्रेतत्व यह है कि क्षुधा तृषा आदि अत्यत दुःख भोगनेकी अवस्था। सोई मार्कंडेयने कहाहै कि हे भृगुनदन ! प्रेतलोकमें मनुष्य एक वर्ष वसतेहैं वहां प्रतिदिन क्षुधा तृषा होतीहै। और वसु आदि श्राद्ध देवताओंके सम्बधको पितृत्व प्राप्ति कहतेहैं। पूर्वोक्त एकोद्दिष्टसहित सपिंडी करनेसे जब प्रेतत्वकी निवृत्ति होगई तब पितृत्वको प्राप्त हो जाता है यह ज्ञात भया क्योंकि ये वचन है कि

१ ये समानाः समनसो जीवाजीवेषु मामकाः। तेषाᳪ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शत ᳪ समाः ॥ ये समानाः समनसो पितरो यमराज्ये तेषां लोक स्वधा नमः यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।

२ यः सपिडीकृत प्रेतं पृथक्पिंडे नियोजयेत् । विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥

३ सपिडीकरणं श्राद्ध देवपूर्वं नियोजयेत् । पितॄन्नैवाशयेत्तत्र पुनः प्रेतं न निर्दिशेत् ॥

१ सपिडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।

२ प्रेतलोके तु वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्तिता । क्षुत्तृष्णे प्रत्यह तत्र भवेतां भृगुनदन ।

३ यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश । प्रेतत्व सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ चतुरोनिर्वपेत्पिण्डान् पूर्वं तेषु समापयेत् । ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमश्नुते ॥

ये सोलह प्रेत श्राद्ध जिसको नहीं दिये जाते उसका सौ श्राद्ध देने परभी प्रेतत्व स्थिर रहताहै। प्रथम चार पिंड दे पहिला पिंड तीनमें मिलादे उससे आदि लेकर प्रेत पितरोंके समान होजाता है। और जो सपिंडी किये प्रेतको इस पूर्वोक्त वचनसे भी यह जाना गया कि पृथक् एकोद्दिष्टका निषेध है और पार्वणकी विधि है तिससे पितरोंके संग पिंडदान होता है। यहभी वार्षिक और पाक्षिक एकोद्दिष्ट विधिके लिये कहते हैं। और जो यह वचन है कि फिर प्रेत शब्दका निर्देश न करै वह प्रेतशब्दका उच्चारण न करै किंतु पितृशब्दका उच्चारण करै इस लिये है। और जिसका प्रकर्ष गमन हो उसमें प्रेतशब्द नहीं जिससे अधिक दुःखके अनुभवकी अवस्थाका प्रेत शब्द रूढिसे कहता है यह कह आये। और जो सब मरो ये प्रेत शब्दका प्रयोग है वहभी भूतपूर्वगतिसे है अर्थात् वेभी कभी प्रेत थे। सातवें पुरुषमें सपिण्डता निवृत्त होती है इसका यह अभिप्राय है कि पहिला पिंड चौथेतक दूसरा पांचवें तक तीसरा छठे तक व्याप्त होता है और सातवेंमें निवृत्त होजाता है अर्थात् जिन पिण्डोंको देता है वे सपिण्डीमें छठेतक ही मिले हैं। और यहभी वात है कि दिये हुए पिंडोंके सवधसे साापिण्ड्य नहीं, क्योंकि वहां व्यापकता नहीं अपि तु एक शरीरके जो अवयव उनके अन्वयसे है यह पहिले कह आये। और पितृशब्दभी प्रेतत्वकी निवृत्तिसे श्राद्ध देवता जो होगये हैं उनमें वर्तताहै इससे पितरोंके पात्रोंमें मिलावे इसकाभी विरोध नहीं तिससे अनंतर मरेके पात्रोंका जल और पिण्ड पितरोंके पात्र और पिण्डोंमें मिलावै यह वात स्थित हुई। आचार्यने तो परका मतही लिखाहै और यह पिताका सपिण्डीकरण पितामह आदि तीनोंके मरनेपर जानना। पितामर गया हो और पितामह वा प्रपितामह जीवता हो तो सपिण्डीकरण नहीं होता क्योंकि यह वचन[1] है कि जो क्रमसे न मरे हों उनकी सपिण्डी न करै जो यह मनुका वचन[2] है कि जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीता हो वह पिताके नामको लेकर पितामहके नामको लें वहभी पितृ शब्दके उच्चारणके लिये नियमार्थ है दो पिण्ड देनेके लिये नहीं, क्योंकि यह वचन[3] है कि पिता जीता होय तो वा पिता मरगया हो और पितामह जीता हो वह भी उनको पिण्ड दे जो पूर्व मरे हों, दोनों पक्षमें भी कैसे दे इस शकामें यही कहा है कि पिताका नाम लेकर प्रपितामहका नाम ले इस आदि और अतके ग्रहण (उच्चारण) से सव जगह पिताको पितामहको प्रपितामहको यह पिण्ड है यही कहे और कदाचित्भी पितामह और प्रपितामह आदि नहीं हो सकते और वृद्ध प्रपितामह वा उसका पिता अन्त नहीं हो सकते, इससे पिता आदि शब्द सवधके बोधक हैं, इससे पिता जीता होय तो पिताके पिता पितामह प्रपितामहको और पितामह जीता होय तो वह पितामहके पिता पितामह प्रपितामहको यह पिण्ड है ऐसे प्रयोग करै इससे पिण्डपितृयज्ञमें शुन्धन्तां पितर इत्यादि मन्त्रोंमें ऊह नहीं होता अर्थात् पितरके स्थानमें पितामह यह बदलना नहीं

1 व्युत्क्रमाच्च प्रमीतानां नैव कार्या सपिण्डता।

2 पिता यस्य च वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः। पितुः स नाम सकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥

3 म्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्। पिता यस्य च वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः॥

पडता जो विष्णुका यह वचन है कि जिसका पिता मर गया हो वह पितृपिण्डको देकर पितामहसे परले दोको पिण्ड दे इस वचनका यह अर्थ है कि पितामह जीता हो और पिता मर गया हो वह पिताके एक पिण्डको एकोद्दिष्ट विधिसे मिलाकर पिताके पितामहको और उसके परले दोको दे क्योंकि अपना प्रपितामह जो पिताका पितामह वह संप्रदानरूप विद्यमान है। इससे प्रपितामह और उससे परले दोको दे। शब्दोंके उच्चारणका नियम तो पूर्वोक्तही है। इसी प्रकार गौ ब्राह्मणसे हतेकी भी सपिण्डीका अभाव जानना। सोई कात्यायनने कहा है कि ब्राह्मण आदिसे पिता मरा हो पतित वा सन्यासी हो वा क्रमसे न मरा हो तो पुत्रभी उनकोही श्राद्ध दे जिनको पिता देताथा इस वचनसे पिताकी सपिण्डीके संभवमें पिताको लंघकर पितामह आदिको पार्वणकी विधि सिद्ध हुई। इससे पिताकी सपिण्डीका अभाव जाना गया। अन्य स्मृतिमेंभी लिखा है कि जो नर संततिसे हीन हैं उनकी सपिण्डी नहीं होती और उनके संग सोलह १६ एकोद्दिष्ट नहीं करने। माताके पिण्डदान आदिमें गोत्रका विवाद है। कि पतिके गोत्रसे वा उसके पिताके गोत्रसे दोनों प्रकारका वचन दीखते हैं कि विवाहकी सप्तपदीमें नारी अपने गोत्रमें नहीं रहती उसके पिण्ड और जलदान पतिके गोत्रसे करने। इससे भर्ताका गोत्र और पिताके गोत्रको छोडकर भर्ताके गोत्रसे न करै क्योंकि जन्म और मरणमें स्त्रीको पिताका गोत्र है। इस प्रकारसे विवादमें आसुर आदि विवाहोंमें और पुत्रिकाके करनेमें पिताका गोत्रही रहता है। क्योंकि तहां २ विशेष वचन है और इन पूर्वोक्त विवाहोंमें दानकीभी निवृत्ति नहीं हुई। और ब्राह्म . आदि विवाहोंमें व्रीहि यवके और बृहद्रथंतर सामके समान विकल्प है अर्थात् दोनों गोत्रोंमें कोइसा मानो उनमेंभी इस वचनके अनुसार वंशपरंपराके आचरणसे व्यवस्था जाननी कि जिस मार्गसे इसके पिता पितामह चलेहों सत्पुरुषोंके मार्गसे चलता हुआ उसी मार्गको चलै। इस प्रकारके विना इस वचनका अन्य विषय नहीं है। और जहां शास्त्र वा आचारसे व्यवस्था न हो वहां 'आत्मनस्तुष्टिरेव च' इस वचनसे अपने संतोषसेही व्यवस्था जाननी जैसे गर्भसे वा जन्मसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीतका करना। माताकी सपिंडी करनेमें विरुद्ध २ वचन दीखते हैं वहां पितामही आदिके संग सपिंडीकरण कहा है तैसे भर्ताके सग और अपनी माता आदिके सग सपिंडीकरण पैठीनसिने कहा है कि अपुत्र स्त्री मरजाय तो पति सास आदिके सग सपिंडीकरण होता है। पतिके सग सपिंडी यमने कहाहै कि स्त्रीकी सपिंडी एक पतिके संग करै क्योंकि मरीभी वह मंत्र आहुति व्रतोंसे पतिके सग एकताको प्राप्त हुई है। उशनाने

१ यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पितृपिंड विधाय पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात्।

२ ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते। व्युत्क्रमाच्च मृते देय येभ्य एव ददात्यसौ॥

३ ये नराः संततिच्छिन्ना नास्ति तेषां सपिण्डता। न च तैः सह कर्तव्यान्येकोद्दिष्टानि षोडश॥

४ स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे। स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोदकक्रिया॥ पितृगोत्र समुत्सृज्य न कुर्याद्भर्तृगोत्रतः। जन्मन्येवं विपत्तौ च नारीणां पैतृक कुलम्॥

१ येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥

२ अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात्सपिंडताम्। श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिंडीकरणं भवेत्॥

३ पत्या चैकेन कर्तव्य सपिंडीकरणं स्त्रियाः। सा मृतापि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः॥

तो मातामहके संग सपिण्डी कही है कि जैसे पूर्ण वर्ष होनेसे पिताकी पितामहमें सपिंडी होती है इसी प्रकार माताकी मातामहमें करनी। तैसेही वचन है कि पुत्र पूरे वर्ष दिनमें पिताको जैसे पितामहमें मिलाते हैं तैसेही माताको मातामहमें मिलादें। यह भगवान् शिवने कहा है। इस प्रकार अनेक वचनोंके होते सन्ते पुत्रहीन भार्या मर जाय तो पति अपनी माताके संग सपिण्डी करै। अन्वारोहण (सती होना) में तो पुत्र अपने पिताके संगही सापिण्डी करै। आसुर आदि विवाहोंसे उत्पन्न हुआ पुत्र और पुत्रिकाका पुत्र मातामहके सग करे। ब्राह्म आदि विवाहोंसे पैदा हुआ पुत्र पिता वा मातामह वा पितामही इनके संग विकल्पसे करे अर्थात् इनमेंसे किसी एकके साथ करदे। इसमभी जो वशका समाचार नियत हो उसी आचरणसे करै और जो नियत न हो तो अपनी प्रसन्नताके अनुसार रुचिसे करै। उसमें भी चाहे जिस किसीके संग माताको सपिण्डी हो जिन अन्वष्टका आदिमें माताका श्राद्ध पृथक् इस वचनसे कहा है वहां पितामही आदिके संगही पार्वण श्राद्ध करै। कि अन्वष्टका वृद्धि क्षयाह इनमें माताका श्राद्ध पृथक् करै अन्यत्र पतिके संग करै। क्योंकि पतिके सग सपिण्डी होनेसेही उसे उसका अश मिलता है। और मातामहके अशभागिनी होनेसे मातामहके संग करै। सोई शातातपने कहा है कि सपिण्डी किये पीछे पत्नी पति और पिताके सग एकताको प्राप्त होजाती है तिससे उनके अशकी भागिनी होती है। जब ऐसे है तो माताकी सपिण्डी जब मातामहके सग है तब मातामहका श्राद्ध पितृश्राद्धके समान नित्य (अवश्य करने योग्य) है जब पति वा पितामहीके सग सपिण्डी हो तब मातामहका श्राद्ध नित्य नहीं अर्थात् करे तो पुण्य है और न करे तो कुछ दोष नहीं॥

भावार्थ–गध जल तिलोंसहित अर्घ्यके लिये चार पात्र करै। प्रेतपात्रका ये समाना इन दो ऋचाओंसे पितरोंके पात्रोंमें सींचे। शेष कर्मको पूर्वकी समान करै। यह सपिंडीकरण और एकोद्दिष्ट माताकाभी करना॥ २५३॥ २५४॥

अर्वाक्सपिंडीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत्। तस्याप्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजे॥ २५५॥

पद–अर्वाक् १ सापिंडीकरणम् १ यस्य ६ संवत्सरात् ५ भवेत् क्रि–तस्य ६ अपिऽ–अन्नम् २ सोदकुंभम् २ दद्यात् क्रि–सवत्सरम् २ द्विजे ७॥

योजना–यस्य सपिंडीकरणं संवत्सरादर्वाक् भवेत् तस्य अपि सोदकुंभम् अन्नं द्विजे संवत्सरं दद्यात्॥

तात्पर्यार्थ–वर्षदिनसे पहिले जिसकी सपिंडी की हो उसके निमित्त वर्षदिनतक वा प्रतिदिन वा प्रतिमास जलघटसहित अन्न ब्राह्मणको दे। वर्षदिनसे पहिले सापिण्डी कहनेसे यह बात दिखाई कि पूरे वर्षदिनमें वा पहिले करै सोई आश्वलायनने कहा है कि इसके अनंतर सपिंडी वर्षदिनके अतमें वा द्वादशदिनमें करै कात्यायनने

१ पितुः पितामहे यद्वत्पूर्णे सवत्सरे सुतैः। मातुर्मातामहे तद्वदेषा कार्या सपिण्डता॥

२ पिता पितामहे योज्यः पूर्णे संवत्सरे सुतैः। माता मातामहे तद्वदित्याह भगवाञ्छिवः॥

३ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह॥

४ एकमूर्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते। पत्नीपतिपितॄणां च तस्मादशेन भागिनी॥

१ अथ सपिंडीकरण सवत्सरांते द्वादशाहे वा।

२ ततः सवत्सरे पूर्णे सपिंडीकरण भवेत्। त्रिपक्षे वा यदा चार्वाग्वृद्धिरापद्यते तदा॥

कहा है कि तिसके अनंतर पूर्ण वर्षके होने पर वा त्रिपक्षमें अथवा पहिले जव वृद्धि (उत्सव) आन पडे तव सपिण्डी होती है। सपिण्डीमें ये चार पक्ष दिखाये कि द्वादश दिन, त्रिपक्ष, वृद्धिकी प्राप्ति और वर्षकी पूर्ति। उन चारोंमें वारहवें दिन पिताकी सपिण्डी अग्निहोत्री करै। क्योंकि सपिण्डीके विना पिण्डपितृयज्ञ नहीं होसकेगा। क्योंकि यह वचन है कि जव कर्ता वा प्रेत आग्निहोत्री हों तव वारहवें दिन पिताकी सपिण्डी करे। और निराग्नि तो त्रिपक्ष वा वृद्धिकी प्राप्तिमें करै। जव सवत्सरसे पहिले सपिंडी करै तव षोडश श्राद्ध करके सपिण्डी करै अथवा सपिंडी करके अपने२ कालमें षोडश श्राद्ध करै यह संदेह होता है और दोनों प्रकारके वचन देखते हैं। षोडश श्राद्ध दिये विना सपिण्डी न करै। किंतु षोडशश्राद्ध देकर करै षोडशश्राद्ध यह हैं कि द्वादशादिन, त्रिपक्ष, षण्मास, मासिक और वार्षिक ये षोडश श्राद्ध विद्वानोंने कहे हैं। तैसेही वचन है कि वर्षदिनसे पहिले जिसकी सपिण्डी हो उसकोभी वर्षदिनतक मासिकश्राद्ध और जलका घट दे। इसमें मुख्य पक्ष यह है कि सपिण्डी करके अपने २ कालमें षोडश श्राद्ध करै क्योंकि कालके न आनेसे पहिले अधिकार नहीं जो यह पक्ष है कि षोडशश्राद्ध करके वर्षदिनसे पहिलेभी सपिण्डी करै वह आपत्तिका पक्ष है जव इस आपत्तिके पक्षको मानकर सपिण्डीसे पहिले प्रेत श्राद्धोंको करै तव एकोद्दिष्ट विधिसे करै। और जव पूर्वोक्त मुख्य पक्षको मानकर अपने कालमें ही करै तव जो मनुष्य वार्षिक श्राद्धको पार्वण वा एकोद्दिष्ट जैसे करता हो उसी प्रकार मासिकको करै। क्योंकि यह स्मृति है कि सपिंडीसे पहिले षोडश श्राद्ध करै तो सवको एकोद्दिष्टविधिसे करै। सपिंडीसे पीछे करै तो प्रतिवर्ष क्षयाह श्राद्धको जैसे करता हो तैसेही षोडशश्राद्धोंको करै। यह प्रेतश्राद्धसहित सपिण्डीकरण जिन्होंने धन वॉट लियाहो.ऐसे भाइयोंके होते भी एक २ के करनेसे ही सव पूर्ण होता है इसको सव पृथक् २ न करैं क्योंकि यह वचन है कि नवश्राद्ध सपिंडी और षोडशश्राद्ध भाइयोंके पृथक्२ होनेपरभी एकको ही करने। और प्रेतश्राद्धसहित यह सपिंडीकरण संन्यासीसे भिन्न पिताओंका पुत्र नियमसे करै। क्योंकि यह प्रेतकी मुक्तिके लिये है। और संन्यासियोंका न करै सोई उशनाने कहा है कि सन्यासियोंका एकोद्दिष्ट न करै किंतु एकादशाहके दिन पार्वण श्राद्ध करै। पुत्र आदि सन्यासियोंकी सपिण्डी न करै। त्रिदण्डके ग्रहणसे ही वे प्रेत नहीं होते पुत्र आदिके समीप न होनेपर जिस सगोत्री

---

१ साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान्भवेत्। द्वादशाहे तदा कार्यं सपिंडीकरणं पितुः॥

२ श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डताम्। श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डताम्।

३ द्वादशाऽहे त्रिपक्षे च षण्मासे मासि चाब्दिके। श्राद्धानि षोडशैतानि सस्मृतानि मनीषिभिः।

४ यस्यापि वत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं भवेत्। मासिकं चोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम्।

१ सपिंडीकरणादर्वाक्कुर्वञ्छ्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु॥ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः। प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्यात्स तान्यपि॥

२ नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि।

३ एकोद्दिष्टं च कर्तव्यं यतीनां नैव सर्वदा। अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते। सपिण्डीकरणं तेषां न कर्त्तव्यं सुतादिभिः। त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते॥

आदिने दाहकर्म किया हो वहही दशदिनतक प्रेत कर्म करै। क्योंकि यह स्मृति है कि असगोत्र हो वा सगोत्र हो स्त्री हो वा पुरुष हो जो पहिले दिन पिण्ड दे वही दशदिनतकके कर्मको समाप्त करै। शूद्रोंकी भी यह सपिण्डी विना मंत्र बारहवें दिन करनी क्योंकि यही विष्णुकी स्मृतिमें लिखा है सपिंडीके पीछे वार्षिक और पार्वण आदि पुत्र नियमसे करै और अन्य करै चाहै न करै॥

भावार्थ-जिसकी सपिण्डी वर्ष दिनसे पहिले होजाय उसकोभी वर्षदिनतक ब्राह्मणको अन्न और जलका घट दे॥ २५५॥

मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि॥२५६॥

पद-मृते ७ अहनि ७ तुऽ-कर्त्तव्यम् १ प्रतिमासम् २ तुऽ-वत्सरम् २ प्रतिसवत्सरम् २ चऽ-एवम्ऽ-आद्यम् १ एकादशे ७ अहानि ७॥

योजना-वत्सर मृते अहनि प्रतिमास च पुनः प्रतिसंवत्सरम् एकोद्दिष्टम् एकादशे अहनि आद्यं कर्त्तव्यम्॥

तात्पर्यार्थ-अब एकोद्दिष्टके कालको कहते हैं। मरनेके दिन वर्षदिनतक प्रतिमासमें एकोद्दिष्ट करै और सापिण्डीके पीछे प्रतिवर्ष मरनेके दिन एकोद्दिष्ट करै और सब एकोद्दिष्टोंके मूल आद्य श्राद्धको मरनेसे ग्यारहवें दिन करै। यदि मरनेके दिनका ज्ञान न हो तो जिस दिन मरनेकी सुने उस दिन वा अमावास्याको एकोद्दिष्ट करै। यह स्मृतिमें लिखा है और अमावास्याभी उस मासकी लेनी जिस मासमें परदेशमें गया हो क्योंकि यह स्मृति है कि परदेशमें जानेके दिन वा उस मासकी अमावास्याको पिंड दे। और मरनेके दिनकाभी विशेष जातूकर्ण्यने कहा है कि त्रिपक्षसे पीछेका जो श्राद्ध है वह मरणदिनमें और त्रिपक्षसे पहिलेका श्राद्ध दाहके दिनसे अग्निहोत्री ब्राह्मणका होता है। तात्पर्य यह है कि त्रिपक्षसे पहिले प्रेतकर्म दाहके दिनसे और त्रिपक्षसे पीछेका श्राद्ध मरण दिनमें करै। और जो अग्निहोत्री न हो उसके सब श्राद्ध मरण दिनमेंही होते हैं और आद्य श्राद्ध ग्यारहवें दिन होताहै यह अशौचका उपलक्षण है यह कोई कहते हैं। शुद्ध होकर कर्मको करै यह वचन शुद्धिका अग है और अशौचके जानेपर इसका प्रारभ करके सामान्यसे सब वर्णोंको एकोद्दिष्ट करना विष्णुने कहा है। यह ठीक नहीं क्योंकि पैठीनसिकी यह स्मृति है कि एकादशाहका जो श्राद्ध है वह चारों वर्णोंका सामान्य कहाहै और सूतक पृथक् २ होताहै और इस शंखवचनकाभी विरोध है कि अशुद्धभी मनुष्य एकादशाहको आद्य श्राद्ध करै श्राद्धके समयतक कर्ता शुद्ध है और फिर वह अशुद्धही है और सामान्यके प्रकरणका विष्णुवचन दश दिनके अशौचमेंभी घट सकताहै और प्रतिवर्ष ऐसे ही मरणदिनमें एकोद्दिष्ट करना याज्ञवल्क्यने इसी वचनमें कहा है सोई अन्यस्मृतिमें

१ असगोत्रः सगोत्रो वा स्त्री दद्याद्यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाह समापयेत्।

२ एव सपिण्डीकरण मत्रवर्ज्यं शूद्राणां द्वादशेऽह्नि।

३ अपरिज्ञातेमृतेऽहनिअमावास्यायांश्रवणदिवसेवा।

१ प्रवासदिवसे देय तन्मासेन्दुक्षयेऽपि वा।

२ ऊर्ध्वंत्रिपक्षाद्यच्छ्राद्धं मृतेऽहन्येव तद्भवेत्। अधस्तु कारयेद्दाहादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः।

३ अथाशौचापगमे।

४ एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामपि वर्णानां सूतक च पृथक्पृथक्॥

५ आद्यश्राद्धमशुद्धोऽपि कृत्वा चैकादशेऽहनि। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः।

६ वर्षे वर्षे तु कर्तव्या मातापित्रोस्तु सत्क्रिया। अदैव भोजयेच्छ्राद्ध पिंडमेक तु निर्वपेत्।

कहा है कि वर्ष २ में माता पिताकी सत्क्रिया और विश्वेदेवाओंसे रहित श्राद्ध करै और एक-पिंड दे । यमने भी कहा है कि सपिंडीके पीछे प्रतिवर्ष पुत्र मातापिताके निमित्त मरणदिनमें एकोद्दिष्ट करै । व्यासने तो पार्वणका निषेध कहा है कि जो मनुष्य एकोद्दिष्टको छोडकर पार्वण करता है वह विना किया जानना और वह पितृघातक होता है । जमदग्निने तो पार्वण कहा है कि औरसपुत्र विधिसे सपिंडी करके माता-पिताके, मरणदिनमें अमावस्याके समान पार्वणश्राद्ध करै । शातातपनेभी कहा है कि सपिंडी करके सदैव पार्वण प्रतिवर्ष करै यह विधि छागलेयने कही है । इस पूर्वोक्त प्रकारसे जब वचनोंका विवाद है इसमें दक्षिणी ऐसे व्यवस्था कहते हैं औरस और क्षेत्रज पुत्र मातापिताके क्षयाहमें पार्वणही करैं और दत्तक आदि एकोद्दिष्टको जातूकर्ण्यके वचनसे करैं कि क्षेत्रज औरसपुत्र प्रतिवर्ष पार्वण विधिसे और इतर दशपुत्र एकोद्दिष्ट करैं सो ठीक नहीं क्योंकि इसमें क्षयाह वचन नहीं किंतु प्रत्यब्द वचन है और क्षयाहको छोडकर प्रतिवर्षके श्राद्ध अक्षय्यतृतीया माघपूर्णिमा वैशाखी आदि है इससे यह वचन क्षयाहमें पार्वण और एकोद्दिष्टकी व्यवस्था करनेको समर्थ नहीं और जो पराशरका वचन हैं कि मरे हुए पिताका देवत्व औरसको तीन पुरुषतक और अनेकगोत्र पुत्रोंका देवता एकही मरण दिनमें होता है वह भी व्यवस्थाका बोधक नहीं जिससे उसका यह अर्थ है कि देवत्वको प्राप्त हुए (सपिंड किये) पिताका सदैव औरसपुत्र तीन पुरुषतक पार्वण करै और भिन्न गोत्र (मातुल आदि) का जो श्राद्ध वह एकके ही निमित्त और एकोद्दिष्ट ही होता है और सपिंडी किये पीछे औरस भी एकोद्दिष्ट ही करै यह पैठीनसिने कहा है कि औरस मरनेके दिनमें एकोद्दिष्ट करै और सपिंडी किये पीछे पार्वण न करै । और उदीच्य इस प्रकार व्यवस्था कहते हैं कि अमावास्या और भाद्रपदके कृष्णपक्षमें मरणदिन होय तो पार्वण और अन्यत्र होय तो एकोद्दिष्ट होता है । यही स्मृतिमें लिखा है कि अमावास्या और प्रेतपक्षमें जिसका मरण होय तो पार्वण करै एकोद्दिष्ट कदाचित् न करै, इस व्यवस्थाकाभी वृद्ध आदर नहीं करते । क्योंकि जिसके मूलकी निश्चय नहीं ऐसे इस वचनसे जिनके मूलका निश्चय है ऐसे अनेक और क्षयाह मात्रमें पार्वणके बोधक वचनोंका अमावास्या प्रेतपक्ष मृताहविषयक मानकर संकोच अयुक्त है और सामान्यवचनभी अनर्थक होजायगे वहां ही सामान्यवचनसे विशेष वचनका उपसंहार होता है जहां सामान्य और विशेषके संवध ज्ञानसे दोनों वचन अर्थवाले हों जैसे सप्तदश सामधेनीयोंको

---

१ सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतः । मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ।

२ एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते नरः । अकृतं तद्विजानीयाद्भवेच्च पितृघातकः ॥

३ आपाद्य च सपिंडत्वमौरसो विधिवत्सुतः । कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्धं मातापित्रोः क्षयेऽहनि ॥

४ सपिंडीकरणं कृत्वा कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवत्सरं विद्वाञ्छागलेयोदितो विधिः ॥

५ प्रत्यब्दं पार्वणेनैव विधिना क्षेत्रजौरसौ । कुर्यातामितरे कुर्युरेकोद्दिष्टं सुता दश ॥

---

१ पितुर्गतस्य देवत्वमौरसस्य त्रिपौरुषम् । सर्वत्रानेकगोत्राणामेकस्यैव मृतेऽहनि ॥

२ एकोद्दिष्टं हि कर्तव्यमौरसेन मृतेऽहनि । सपिंडीकरणादूर्ध्वं मातापित्रोर्न पार्वणम् ॥

३ अमावस्याक्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः । पार्वणं तत्र कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन ॥

४ सप्तदशसामिधेनीरनुब्रूयात् ।

पीछेसे कहे प्रारम किये विना पढे और विकृतिमात्र विषयक सप्तदश १७ वाक्यका सामधेनीलक्षणद्वारा संबंधसे जो अर्थ उसके वश मित्रविंदाआदि प्रकरणमें पढे सप्तदश वाक्यसे मित्रविंदा अधिकारसे पूर्व २ संबंधके वोधसे सार्थकता है और मित्रविंदा आदि प्रकरणमें उपसहार (समाप्ति) है अर्थात् मित्रविंदाप्रकरणसे पहिले २ सप्तदश सामधेनियोंको पठन है यहां तो दोनों वचन मृताहके विषय होनेसे अर्थवान् नहीं होसकते इससे यहां पाक्षिक एकोद्दिष्टकी निवृत्तिके लिये पार्वणके नियमका विधान युक्त है और एकोद्दिष्टके वचनोंको मातापिताके क्षयाहविषयक और पार्वणके वचनोंको मातापितासे अन्यके क्षयाहविषयक माननेसे व्यवस्था युक्त नहीं। क्योंकि दोनों जगह माता पिता सुत पदका ग्रहण विद्यमान है कि ये वचन हैं कि सपिंडीके पीछे पुत्र मातापिताके मरणदिनमें पृथक् २ एकोद्दिष्ट करै और औरसपुत्र विधिसे सपिण्डी करके मातापिताके मरण दिनमें अमावास्याके समान (पार्वण) श्राद्ध करै। और जो कोई यह कहते हैं कि इस सुमतुके वचनसे मातापिताके मरणदिनमें अग्निहोत्री पार्वण और निरग्नि एकोद्दिष्ट करै। वहभी सत्प्रतिपक्ष (विरुद्ध) होनेसे त्यागने योग्य है। क्योंकि यह स्मृति[3] है कि जो ब्राह्मण अनेक अग्निवाले वा एक अग्निवाले हैं वे सपिण्डीके पीछे एकोद्दिष्ट करैं पार्वण नहीं वहां यह निर्णय है कि सन्यासियोंका क्षयाहमें पुत्र पार्वण ही करैं। क्योंकि यह प्रचेताका वचन[1] है कि त्रिदंडके ग्रहणसे सन्यासियोंकी सपिण्डीका अभाव है इससे एकोद्दिष्ट नही होता सदैव पार्वण होताहै। अमावस्या वा प्रेतपक्षमें क्षयाह हो तो पूर्वोक्त वचनको नियम वोधक होनेसे पार्वण ही होता है अन्यत्र क्षयाहमें पार्वण और एकोद्दिष्टका व्रीहि और यवके समान विकल्प है और वशके आचारसे व्यवस्था होय तो विकल्पकी व्यवस्था है अन्यथा अपनी इच्छा है अतिप्रसगके कहनेको समाप्त करते हैं॥

भावार्थ-एकवर्षतक प्रतिमासके और प्रतिवर्षसे मरण दिनमें एकोद्दिष्ट करै और एकादशाहको आद्यश्राद्ध करै॥ २५६॥

पिंडांस्तु गोऽजविप्रेभ्योदद्यादग्नौजलेऽपिवा। प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषु द्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत्॥ २५७॥

पद-पिण्डान् २ तुऽ-गोजविप्रेभ्यः ४ दद्यात् क्रि-अग्नौ ७ जले ७ अपिऽ-वाऽ-प्रक्षिपेत् क्रि-सत्सु ७ विप्रेषु ७ द्विजोच्छिष्टम् २ नऽ-मार्जयेत् क्रि-॥

योजना-तु पुनः पिण्डान् गोऽजविप्रेभ्यः दद्यात् अग्नौ वा जले अपि प्राक्षिपेत् विप्रेषु सत्सु द्विजोच्छिष्ट न मार्जयेत्॥

ता० भा०-पिण्डोंको गौ, बकरी, ब्राह्मणको दे अथवा अग्नि वा जलमें फेंक दे और ब्राह्मण भोजनके स्थानमें बैठे होय तो उनके उच्छिष्टका मार्जन न करै॥ २५७॥

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः॥

---

१ सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सर सुतैः। मातापित्रोः पृथक्कार्य्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि॥ आपाद्य सह पिण्डत्वमौरसो विधिवत्सुतः। कुर्वीत दर्शवच्छ्राद्ध मातापित्रोः क्षयेऽहनि॥

२ वर्षेवर्षे सुतः कुर्यात्पार्वण योऽग्निमान्द्विजः। पित्रोरनाग्निमान्धीरः एकोद्दिष्ट मृतेऽहाने॥

३ बह्वग्नयस्तु ये विप्रा ये चैकाग्नय एव च। तषां सपिण्डनादूर्ध्वमेकोद्दिष्ट न पार्वणम्॥

१ एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह। सपिण्डीकरणाभावात्पार्वणं तस्य सर्वदा॥

पद्-हविष्यान्नेन ३ वैऽ-मासम् २ पायसेन ३ तुऽ-वत्सरम् २ मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ३ ॥

ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ।
मासवृद्ध्याभितृप्यंतिदत्तैरिहपितामहाः ॥

पद्-ऐणरौरववाराहशाशैः ३ मांसैः ३ यथाक्रमम्ऽ-मासवृद्ध्या ३ अभितृप्याति क्रि-दत्तैः ३ इहऽ-पितामहाः १ ॥

योजना-हविष्यान्नेन मासं तु पुनः पायसेन वत्सरं मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ऐणरौरववाराहशाशैः दत्तैः मांसैः पितामहाः यथाक्रम मासवृद्ध्या अभितृप्यंति ॥

तात्पर्यार्थ-हविके योग्य तिल व्रीहि आदि हविष्यसे पितर एक मासतक तृप्त होते हैं। सोई मनुने कहाहै कि तिल व्रीहि जौं उडद् जल मूल फल विधिपूर्वक इनके देनेसे मनुष्योंके पितर एक मासतक तृप्त होतेहैं। और गौके दूधसे बनाये पायस (खीर) से इस वचनके अनुसार एक वर्षतक तृप्त होतेहैं। और पाठीन आदि भक्षणके योग्य मत्स्य हरिण (ताम्रमृग) क्योंकि एण कालामृग और हरिण ताम्रमृग आयुर्वेदमें कहाहै उरभ्र (भेड) शकुन (पक्षी) छाग (बकरी) पृषत (चित्रमृग) एण रुरु संबर वराह (वनका शूकर) शशा (खरगोस) पितरोंके निमित्त दिये इनके मांससे क्रमसे एक २ मासकी वृद्धितक पितर तृप्त होतेहैं ॥

भावार्थ-हविष्यान्नसे मासतक, पायससे वर्षतक, मत्स्य ताम्रमृग भेड बकरी चित्रमृग एण रुरु वाराह शशा इनके मांसके देनेसे एक २ मासकी वृद्धितक पितर यथाक्रम तृप्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ २५८ ॥ २५९ ॥

खड्गामिषं महाशल्कंमधुमुन्यन्नमेवच ।
लोहामिषंमहाशाकंमांसंवार्ध्रीणसस्यच ॥

पद्-खड्गामिषम् २ महाशल्कम् २ मधु २ मुन्यन्नम् २ एवऽ-चऽ-लोहामिषम् २ महाशाकम् २ मांसम् २ वार्ध्रीणसस्य ६ चऽ-॥

यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानंत्यमश्नुते ।
तथा वर्षात्रयोदश्यांमघासु च विशेषतः२६१

पद्-यत् २ ददाति क्रि-गयास्थः १ चऽ-सर्वम् २आनन्त्यम्२ अश्नुते क्रि-तथाऽ-वर्षात्रयोदश्याम् ७ मघासु ७ चऽ-विशेषतःऽ-॥

योजना-खड्गामिष महाशल्क मधु च पुनः मुन्यन्नं लोहामिष महाशाक च पुनः वार्ध्रीणसस्य मांसं च पुनः गयास्थः तथा वर्षात्रयोदश्यां च पुनः विशेषतः मघासु यत् ददाति तत्सर्वम् आनन्त्यम् अश्नुते ॥

तात्पर्यार्थ-खड्ग (गेंडा) का मांस महाशल्क रूप मत्स्यका मांस मधु (सहत) नीवार आदि मुनियोंके अन्न, लोह (लाल-बकरी) का मांस महाशाक, वार्ध्रीणसका मांस (जो यज्ञके कर्ताओंमें इस वचनके अनुसार प्रसिद्ध है) कि जो जल तीनसे पीवै अर्थात् जिसकी जिह्वा और कान जल पीते हुए जलसे स्पर्श करैं । ऐसे निर्बल इन्द्रियवाले श्वेत, वृद्ध, बकरियोंके पति, बकरेको यज्ञके कर्त्ता श्राद्धकर्ममें वार्ध्रीणस कहते हैं. और गयामें जाकर जो शाक आदि देताहै, और चकारसे हरिद्वार आदिमें जो देताहै वह सब अनंत फलका दाता होताहै । क्योंकि

---

१ तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा । दत्तेन मास प्रीयन्ते विधिवत्पितरो नृणाम् ।

२ संवत्सर तु गव्येन पयसा पायसेन वा ।

३ एणः कृष्णमृगो ज्ञेयस्ताम्रो हरिण उच्यते ।

१ त्रिपिबंत्विन्द्रियक्षीण श्वेत वृद्धमजापतिम् । वार्ध्रीणसं तु त प्राहुर्याज्ञिका यज्ञकर्माणि ॥

यह वचन है कि गंगाद्वार, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, अर्बुद, सन्निहत्या, गया इनमें दिया श्राद्ध अक्षय होता है। तैसेही वर्षात्रयोदशी अर्थात् भाद्रपद वदी १३ और विशेषकर मघानक्षत्र-युक्त त्रयोदशीको जो कुछ दिया जाता है वह सब अनतफलदायी होता है। यद्यपि यहां मुनियोंके अन्न मांस मधु आदि सब वर्णोंके लिये सामान्यसे श्राद्धयोग दिखाये हैं तोभी इस वचनसे पुलस्त्यकी कही हुई व्यवस्था आदर करने योग्य है। कि नीवार आदि मुनियोंका अन्न जो श्राद्ध योग्य कहा वह ब्राह्मणके लिये प्रधान और समग्र फलका दाता है, और जो मांस कहा है वह क्षत्रिय वैश्यके लिये प्रधान है और जो मधु (सहत) कहा है वह शूद्रके लिये प्रधान है अब इन तीनोंको छोडकर जो शास्त्रनिषिद्ध नहीं वह और शास्त्रोक्त वास्तूक आदि वह सब वर्णोंको समग्र फलका दाताहै॥

भावार्थ–गैंडेका मांस और महाशल्कका मांस और मधु, मुनियोंका अन्न, लाल बकरीका मांस, समयका शाक, वार्ध्रीणसका मांस गयाका श्राद्ध यह सब और भाद्रपदवदी और मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशीका श्राद्ध यह सब अनत फलका दाता है॥ २६०॥ २६१॥

कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि।
द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफंतथा॥

पद–कन्याम् २ कन्यावेदिनः ६ च ऽ– पशून् २ वैऽ–सत्सुतान् २ अपिऽ–द्यूतम् २ कृषिम् २ चऽ–वाणिज्यम् २ द्विशफैकशफम् २ तथाऽ–॥

ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरौप्ये सकुप्यके।
जातिश्रैष्ठ्यंसर्वकामानाप्नोतिश्राद्धदःसदा॥

पद–ब्रह्मवर्चस्विनः १ पुत्रान् २ स्वर्णरौप्ये २ सकुप्यके २ जातिश्रैष्ठ्य २ सर्वकामान् २ आप्नोति क्रि– श्राद्धदः १ सदाऽ–॥

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।
शस्त्रेण तु हता येवै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते२६४॥

पद–प्रतिपत्प्रभृतिषु ७ एकाम् २ वर्जयित्वाऽ–चतुर्दशीम २ शस्त्रेण ३ तुऽ–हताः १ ये १ वैऽ–तेभ्यः ४ तत्रऽ–प्रदीयते क्रि–॥

योजना–ये शस्त्रेण हताः तत्र तेभ्यः प्रदीयते ताम् एकां चतुर्दशी वर्जयित्वा प्रतिपत्प्रभृतिषु श्राद्धदः सदा कन्यां कन्यावेदिनः पशून् च पुनः सत्सुतान्। द्यूत कृषिं च पुनः वाणिज्यं द्विशफैकशफ तथा ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान् सकुप्यके स्वर्णरौप्ये जातिश्रैष्ठ्य सर्वकामान् क्रमेण अवाप्नोति॥

तात्पर्यार्थ–रूपलक्षणशीलवाली कन्या रूप-लक्षणसे युक्त कन्याके वेदी (जमाई) और अजा आदि क्षुद्रपशु सन्मार्गमें वर्तनेवाले पुत्र द्यूतका विजय कृषिका फल वाणिज्य (व्यापार) में लाभ, द्विशफ (गौ आदि) और एक शफ (अश्व आदि) पशु वेदके पठन और वेदोक्त कर्मके करनेसे पैदाहुआ जो ब्रह्मतेज, सुवर्ण चांदी और (त्रपु सीस आदि) कुप्य, जातिमें श्रेष्ठता और स्वर्ग पुत्र पशु आदि सपूर्ण कामना, इन कन्या आदि संपूर्णफलोंको कृष्ण प्रतिपदासे अमावास्यापर्यन्त चतुर्दशीसे वर्जित चौदह तिथियोंमें श्राद्धका दाता क्रमसे प्राप्त होता है क्योंकि चतुर्दशीको जो कोई शस्त्रसे मरे हों उनकोही श्राद्ध दे यदि वे ब्राह्मणसे न मरे हों

---

१ गंगाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करेऽर्बुदे। सन्निहत्यां च गयायां श्राद्धमक्षय्यतां व्रजेत्॥

२ मुन्यन्नं ब्राह्मणस्योक्तं मांसं क्षत्रियवैश्ययोः। मधुप्रधानं शूद्रस्य सर्वेषां चाविरोधि यत्॥

क्योंकि यह स्मृति है कि सपिण्डी कियेभी शस्त्रसे मरे पिताका एकोद्दिष्ट महालयमें चतुर्दशीको पुत्र करैं। यहां यह नियम है कि भाद्रपदवदी १४ चतुर्दशीको शस्त्रहतकाही श्राद्ध करै अन्यको न करै और यह नियम नहीं शस्त्रहतका-श्राद्ध हो तो चतुर्दशीकोही हो, तिससे क्षयाह आदिमें शस्त्रहतकाभी श्राद्ध श्रद्धाके अनुसार करै। भाद्रपदवदी चतुर्दशीको करै यह विधि नहीं। यह बात मानने योग्य है। क्योंकि शौनककी यह स्मृति है कि भाद्रपदके कृष्णपक्षमें और मास २ में शस्त्रके हतका श्राद्ध करै॥

भावार्थ-कन्या जमाई पशु श्रेष्ठपुत्र जूआ खेती व्यापारमें लाभ गौ अश्व आदि पशु ब्रह्मतेजवाले पुत्र, सुवर्ण चांदी त्रपु (शीश) जातिमें श्रेष्ठता और सपूर्ण कामना इन चौदह फलोंको चतुर्दशीको छोडकर प्रतिप्रदा आदि चौदह तिथियोंमें मनुष्य प्राप्त होता है। क्योंकि चतुर्दशीको जो शस्त्रसे मरैं उनकोही श्राद्ध दिया जाता है॥ २६२॥ २६३॥ २६४॥

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा। पुत्रं श्रेष्ठ्यं ससौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम्॥ २६५॥

पद-स्वर्गम् २ हिऽ-अपत्यम् २ ओजः २ च-ऽशौर्य्यम् २ क्षेत्रम् २ बलम् २ तथाऽ-पुत्रम् २ श्रैष्ठ्यम् २ ससौभाग्यम् २ समृद्धिम् २ मुख्यताम् २ शुभम् २॥

प्रवृत्तचक्रतांचैववाणिज्यप्रभृतीनपि। अरोगित्वंयशोवीतशोकतांपरमांगतिम्॥

पद-प्रवृत्तचक्रताम् २ च-ऽएवऽ-वाणिज्यप्रभृतीन् २ अपिऽ-अरोगित्वम् २ यशः २ वीतशोकताम् २ परमाम् २ गतिम् २॥

धनं वेदान्भिषक्सिद्धिं कुप्यं गा अप्यजाविकम्। अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति॥ २६७॥

पद-धनम् २ वेदान् २ भिषक्सिद्धिम् २ कुप्यम् २ गाः २ अपिऽ-अजाविकम् २ अश्वान् २ आयुः २ चऽ-विधिवत्ऽ-यः १ श्राद्धम् २ सप्रयच्छति क्रि-॥

कृत्तिकादिभरण्यंतं स कामानाप्नुयादिमान्। आस्तिकः श्रद्धानश्च व्यपेतमदमत्सरः॥ २६८॥

पद-कृत्तिकादिभरण्यन्तम् २ सः १ कामान् २ आप्नुयात् क्रि-इमान् २ आस्तिकः १ श्रद्धानः १ चऽ-व्यपेतमदमत्सरः १॥

योजना-च पुनः आस्तिकः श्रद्धानः यः कृत्तिकादिभरण्यन्तं विधिवत् श्राद्धं प्रयच्छति सः इमान् कामान् अवाप्नुयात्, स्वर्गम्, अपत्य, च पुनः-ओजः, शौर्य्य, क्षेत्र, तथा बलं, पुत्र, ससौभाग्य, श्रैष्ठ्य, समृद्धि, मुख्यतां, शुभं, च पुनः प्रवृत्तचक्रतां वाणिज्यप्रभृतीन्, अरोगित्व, यशः, वीतशोकतां, परमां गतिं, धनं, वेदान्, भिषक्सिद्धिं, कुप्य, गाः, अजाविकं, अश्वान्, आयुः॥

ता० भा०-आस्तिक (विश्वासी) और श्रद्धावान् और गर्व और ईर्ष्यासे रहित जो कृत्तिकासे भरणीतक श्राद्ध देता है वह क्रमसे स्वर्ग (अधिक सुख), सतान, ओज (अधिकशक्ति), शौर्य (निर्भयता), फलवाला क्षेत्र, शरीरमें बल, गुणी पुत्र, जातिमें श्रेष्ठता, सौभाग्य (जनोंका प्यार), धन आदिकी वृद्धि, मुख्यता, शुभ, प्रवृत्तचक्रता (आज्ञाका प्रचार), कृषि, कुसीद, गोरक्षा आदि, वाणिज्य, रोगका अभाव यश, शोकका नाश (अर्थात् इष्ट वियोग आदि दुःखका नाश), परमगति (ब्रह्मलोककी प्राप्ति) सुवर्ण आदि धन, ऋग्वेद आदि वेद, भिषक्सिद्धि (औषधके फलकी

१ समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य वै। एकोद्दिष्टं पितुः कार्यं चतुर्दश्यां महालये।
२ प्रौष्ठपद्यामपरपक्षे मासिमासि चैवम्॥

प्राप्ति), कुप्य (सुवर्णरजतसे भिन्न ताम्र आदि धन), गौ, अजा (बकरी), अवि (भेड), अश्व, अवस्था (अधिक जीना) क्रमसे इन फलोंको प्राप्त होताहै ॥२६५॥२६६॥ २६७ ॥ २६८ ॥

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः। प्रीणयंति मनुष्याणां पितॄञ्श्राद्धेन तर्पिताः॥

पद–वसुरुद्रादितिसुताः १ पितरः १ श्राद्धदेवताः १–प्रीणयाति क्रि–मनुष्याणाम् ६पितॄन् २ श्राद्धेन ३ तर्पिताः १ ॥

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानिच। प्रयच्छंति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

पद–आयुः २प्रजाम् २ धनम् २ विद्याम् २ स्वर्गम् २ मोक्षम् २ सुखानि २ चऽ–प्रयच्छति क्रि–तथाऽ–राज्यम् २प्रीताः१ नणाम् ६ पितामहाः १ ॥

योजना–श्राद्धेन तर्पिताः श्राद्धदेवताः वसुरुद्रादितिसुताः पितरः मनुष्याणां पितॄन् प्रीणयन्ति । तथा प्रीताः नृणां पितामहाः आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्ष तथा राज्य प्रयच्छन्ति ॥

तात्पर्यार्थ–यहां दिये हुए श्राद्ध आदिसे मास वृद्धिसे पितामह तृप्त होते हैं इस पूर्वोक्त प्रकारसे पितरोंकी तृप्ति कही सो ठीक नहीं क्योंकि जो अपने २ कर्मवश स्वर्ग नरक आदिमें गत हैं उनके पुत्र आदिके दिये अन्नसे तृप्तिका असंभव है और संभवभी हो तोभी स्वयं असमर्थ वे कैसे स्वर्ग आदि फलको देते हैं इससे यह समाधान है कि यहां पितृ आदि शब्दोंसे श्राद्धकर्ममें संप्रदानरूप (दानके पात्र) देवदत्त आदि नहीं समझने किंतु पितृ पितामह प्रपितामहके अधिष्ठाता वसु रुद्र आदित्य सहितहीका बोध होताहै । जैसे देवदत्त आदि शब्दोंसे शरीरमात्र वा आत्ममात्रका बोध नहीं होता किंतु शरीरविशिष्ट आत्माका बोध होता है । इसी प्रकार अधिष्ठातृदेवताओंसहित देवदत्त आदि पितृ आदिशब्दोंसे कहे जाते हैं इससे वसु आदि अधिष्ठाता देवता पुत्र आदिके दिये अन्नपान आदिसे तृप्त हुए उन देवदत्त आदिको तृप्त करतेहैं जैसे माता गर्भपोषणके लिये अन्यके दिये दोहद अन्न पान आदिसे स्वयं भोजन करके तृप्त हुई अपने उदरमें स्थित बालककोभी तृप्त करती है और दोहदअन्नके देनेवालोंकोभी प्रत्युपकारका फल देती है । तिसी प्रकार वसु रुद्र आदित्यही वे पितर पिता पितामह प्रपितामह शब्दसे कहे जाते हैं केवल देवदत्त ही श्राद्धकर्मके सप्रदानरूप नहीं वे स्वयं भोजन किये श्राद्धसे तृप्त हुए मनुष्योंके पितरोंको ज्ञानशक्ति देकर तृप्त करतेहैं । और केवल पितरोंकोही तृप्त नहीं करते किंतु श्राद्ध करनेवाले मनुष्योंको अवस्था प्रजा धन विद्या स्वर्ग मोक्ष और राज्य इनको प्रसन्न होकर मनुष्योंके पितामह देते हैं और चकारसे शास्त्रमें तहां तहां कहे अन्य फलोंकोभी देतेहैं॥

भावार्थ–श्राद्धसे तृप्त हुए वसु रुद्र आदि श्राद्ध देवता मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करतेहैं और तैसेही प्रसन्न हुए पितामह जनोंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और राज्य इनको देते हैं ॥ २६९ ॥ २७० ॥

इति श्राद्धप्रकरणम् ॥ १० ॥

अथ गणपतिकल्पप्रकरणम् ११.

विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः।
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा२७१

पद्-विनायकः १ कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थम्ऽ-विनियोजितः१ गणानाम् ६-आधिपत्ये ७ चऽ-रुद्रेण ३ ब्रह्मणा ३ तथाऽ-॥

योजना-रुद्रेण तथा ब्रह्मणा कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं च पुनः गणानां आधिपत्ये विनायकः विनियोजितः ॥

ता० भा०-दृष्ट और अदृष्टफलके साधन कहे और कहैंगे उनका करना और फलकी सिद्धि अविघ्नसे होती है। इससे अविघ्नके लिये कर्म करनेकी इच्छासे विघ्नके कारक हेतुओंको कहते हैं। विनायक इत्यादि श्लोकसे दोनों प्रकारके हेतुओंका ज्ञान है इससे विघ्नके प्राक् होनेकी पालना और हुए विघ्नके नाशके लिये जानकर करनेवाले प्रवृत्त होते हैं और रोगही दोनों प्रकारके विघ्नोंका हेतु है। विनायक (गणेश) पुरुषार्थके साधन कर्मोंकी विघ्नसिद्धिके लिये अर्थात् विघ्नोंके स्वरूप और फलसाधनके नाशार्थ रुद्र ब्रह्मा और चकारसे विष्णुने पुष्पदंत आदि गणोंका अधिपति नियुक्त किया ॥ २७१ ॥

तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत। स्वप्नेवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुंडांश्च पश्यति ॥ २७२ ॥

पद्-तेन ३ उपसृष्टः १ यस्तस्य ६ लक्षणानि २ निबोधत क्रि-स्वप्ने ७ अवगाहते क्रि-अत्यर्थम् २ जलम् २ मुण्डान् २ चऽ-पश्यति क्रि-॥

काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति। अंत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते॥२७३॥

पद्-काषायवाससः २ चऽ-एवऽ-क्रव्यादान् २ चऽ-अधिरोहति क्रि-अत्यजैः ३ गर्दभैः३उष्ट्रैः३ सहऽ-एकत्रऽ-अवतिष्ठते क्रि-॥

व्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेनुमतंपरैः। विमना विफलारंभः संसीदत्यनिमित्ततः ॥

पद्-व्रजन् १ अपिऽ-तथाऽ-आत्मानम् २ मन्यते क्रि-अनुमतम् २ परैः ३ विमनाः १ विफलारंभः १ ससीदति क्रि-अनिमित्ततः ऽ-

योजना-यः तेन (विनायकेन) उपसृष्टः तस्य लक्षणानि यूय निबोधत। स्वप्ने अत्यर्थं जलम् अवगाहते च पुनः मुण्डान् च पुनः काषायवाससः पश्यति। च पुनः क्रव्यादान् अधिरोहति अत्यजैः गर्दभैः उष्ट्रैः सह एकत्र अवतिष्ठते तथा व्रजन् अपि आत्मान परैः अनुमतं मन्यते। विमनाः विफलारभः सन् अनिमित्ततः संसीदति ॥

ता० भा०-इस प्रकार विघ्नके कर्ता हेतुओंको कहकर ज्ञापक हेतुओंको कहतेहैं। उस विनायकसे ग्रहण किये मनुष्यके लक्षणोंको हे मुनियो! जानो। फिर मुनियोंका संबोधन शांतिप्रकरणके प्रारंभार्थ जानो। स्वप्नमें अत्यतजलका अवगाहन (डूबना तिरना) करताहै और सिरमुडे गेरुसे रगे वस्त्रवालोंको देखताहै। और मांस भक्षण गीध आदि पक्षी और मृगपर चढताहै। चाण्डालादि गर्दभ ऊंट इनके बीचमें बैठताहै। और चलताहुआभी पीछे दौडते हुए शत्रुओंसे अपनेको तिरस्कार प्राप्त हुआ देखता है और विक्षिप्तचित्त निष्फल आरंभ हुआ किसीभी फलको प्राप्त नहीं होता। इससे विना निमित्त दुःखी होताहै अर्थात् कारणके विना दीनमन हो जाता है ॥ २७२ ॥ २७३ ॥ २७४ ॥

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनंदनः। कुमारी च नभर्तारमपत्यं गर्भमंगना२७५॥

पद्-तेन ३ उपसृष्टः १ लभते क्रि-नऽ-राज्यम् २ राजनंदनः १ कुमारी १ चऽ-नऽ-भर्तारम् २ अपत्यम् २ गर्भम् २ अंगना १ ॥

आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चापि कृषीवलः ॥

पद्-आचार्यत्वम् २ श्रोत्रियः १ चऽ-नऽ-शिष्यः १ अध्ययनम् २ तथाऽ-वणिक् १ लाभम् २ नऽ-चऽ-आप्नोति-क्रि-कृषिम् २ चऽ-अपिऽ-कृषीवलः १ ॥

योजना-तेन उपसृष्टः राजनन्दनः राज्य न लभते । कुमारी भर्तारम् अगना अपत्य गर्भं श्रोत्रियः आचार्यत्वं च पुनः शिष्यः अध्ययन तथा वणिक् लाभं च पुनः कृषीवलः कृषि न आप्नोति ॥

ता० भा०-विनायकसे युक्त राजनन्दन (राजपुत्र) राज्यको प्राप्त नहीं होता चाहे वह विद्या शूरवीरता धैर्य आदि गुणोंसे युक्त हो, रूप लक्षण आदिसे युक्तभी कुमारी पतिको, और गर्भिणी स्त्री सन्तानको और ऋतुमती स्त्री गर्भको, और पठन और अर्थका ज्ञाताभी वेदपाठी आचार्यत्वको और विनय और आचारसे युक्तभी शिष्य पढनेको, और वणिक् (वैश्य) लाभ (नफे) को, और किसान कृषिके फलको प्राप्त, नहीं होता । इसी प्रकार जो मनुष्य जिस वृत्तिसे जीता हो वह विघ्नेश्वरसे युक्त होनेसे उसके आरंभमें निष्फल समझना ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ॥

पद्-स्नपनम् १ तस्य ६ कर्त्तव्यम् १ पुण्येऽह्नि ७ विधिपूर्वकम् २ गौरसर्षपकल्केन ३ साज्येन ३ उत्सादितस्य ६ चऽ-॥

सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजाः शुभाः ॥ २७८ ॥

पद्-सर्वौषधैः ३ सर्वगंधैः ३ विलिप्तशिरसः ६ तथाऽ-भद्रासनोपविष्टस्य ६ स्वस्तिवाच्याः १ द्विजाः १ शुभाः १ ॥

योजना-तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकं स्नपनं कर्त्तव्य, साज्येन गौरसर्षपकल्केन उत्सादितस्य च पुनः सर्वौषधैः सर्वगंधैः विलिप्तशिरसः तथा भद्रासनोपविष्टस्य शुभाः द्विजाः स्वस्तिवाच्याः कर्त्तव्याः ॥

ता० भा०-इस प्रकार कारक और ज्ञापक हेतुओंको कहकर विघ्नशान्तिका कर्म कहते हैं । उस विनायकसे उपसृष्टको अथवा विनायक उपसर्गकी निवृत्तिके अभिलाषी मनुष्यको अनुकूल नक्षत्र आदि दिनमें विधिसे स्नान करना । वह विधि यह है कि, गौर सरसोंके चूनमें घी मिलाकर उबटना करै और प्रियंगु नागकेशर आदि सर्वौषधि और चदन अगर आदि सर्व गंधोंसे शिरको लीपकर और भद्रासन (जो आगे कहेंगे) पर बैठाकर वेदाध्ययनसे युक्त सुंदर चार ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करैं । और उसी समय गृह्योक्त मत्रसे पुण्याहवाचन करैं ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गंधान्गुग्गुलुं चाप्सु निक्षिपेत् ॥ २७९ ॥

पद्-अश्वस्थानात् ५ गजस्थानात् ५ वल्मीकात् ५ सगमात् ५ ह्रदात् ५ मृत्तिकाम् २ रोचनाम् २ गधान् २ गुग्गुलुम् २ चऽ-अप्सु ७ निक्षिपेत् क्रि- ॥

या आहृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं ततः ॥ २८० ॥

पद्-याः १ आहृताः १ एकवर्णैः ३ चतुर्भिः ३ कलशैः ३ ह्रदात् ५ चर्मणि ७ आ-

नडुहे ७ रक्ते ७ स्थाप्यम् १ भद्रासनम् १ ततःऽ-॥

योजना-अश्वस्थानात् गजस्थानात् वल्मीकात् संगमात् तथा ह्रदात् मृत्तिकाम् आनीय रोचनां च पुनः गुग्गुलं गंधान् तासु अप्सु निक्षिपेत् । याः आपः एकवर्णैः चतुर्भिः कलशैः ह्रदात् आहृताः ततः आनडुहे रक्ते चर्मणि भद्रासनं स्थाप्यम् ॥

ता० भा०-अश्व हाथी वल्मीक नदियोंका संगम इनसे लाई पांच प्रकारकी मिट्टी गोरोचन गुग्गुल गंध इनको उन जलोंमें डाल जो एक वर्णके चार कलशोंमें ह्रद (कुण्ड) से भरके लाये हों फिर बैलके लाल उस चर्मपर जिसकी उत्तर दिशामें लोम और पूर्वको ग्रीवा हो मनोरम श्रीपर्णीसे बनाये आसनका स्थापन करै फिर पूर्वोक्त मृत्तिका आदि सहित आमके पत्ते अनेक प्रकारकी माला चंदन नवीन वस्त्रसे शोभित उन घटोंको पूर्व आदि चार दिशाओंमें स्थापन करके शुद्ध और लिपे स्थंडिलमें रचे पांच वर्णके स्वस्तिक पर लाल बैलके चर्मको पूर्वोक्त प्रकारसे बिछाकर उसके ऊपर श्वेत वस्त्रसे ढके आसनको स्थापन करै इसकोही भद्रासन कहते हैं। इसपर बैठे यजमानको ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करै ॥ २७९ ॥ २८० ॥

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिंचामि पावमान्यः पुनंतु ते ॥ २८१ ॥

पद-सहस्राक्षम् १ शतधारम् १ ऋषिभिः ३ पावनम् १ कृतम् १ तेन ३ त्वाम् २ अभिषिंचामि क्रि-पावमान्यः १ पुनंतु क्रि-ते ६ ॥

योजना-सहस्राक्षं शतधारं ऋषिभिः पावनं कृतं यज्जलं तेन त्वाम् अभिषिंचामि पावमान्यः ऋचः ते (त्वां) पुनंतु ॥

ता० भा०-स्वस्तिवाचनके अनन्तर सुहागिन रूप, सुवेषवाली स्त्रियोंके मंगल करनेके अनन्तर पूर्व दिशाके कलशको लेकर गुरु इस मन्त्रसे अभिषेक करै कि सहस्राक्ष अनेक शक्तिवाला शतधार (अनेक प्रवाहवाला) जो जल ऋषियोंने पवित्र किया है उस जलसे विनायकके उपसर्ग शांत्यर्थ तेरा अभिषेक करताहू । ये पवित्र जल तुझे पवित्र करो । फिर दक्षिण दिशामें रक्खे दूसरे कलशको लेकर इस मन्त्रसे सींचै कि ॥ २८१ ॥

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिंद्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः२८२॥

पद-भगम् २ ते ४ वरुणः १ राजा १ भगम् २ सूर्यः १ बृहस्पतिः १ भगम् २ इंद्रः २ चऽ-वायुः १ चऽ-भगम् २ सप्तर्षयः १ ददुः क्रि-॥

योजना-वरुणः राजा ते तुभ्य भग सूर्यो बृहस्पतिः ते भगम् इंद्रः च पुनः वायुः सप्तर्षयः ते तुभ्यं भगं ददुः ॥

ता० भा०-राजा वरुण सूर्य बृहस्पति इन्द्र वायु और सप्तर्षि तुझे कल्याण दो फिर तीसरे कलशको लेकर इस मन्त्रसे सींचै कि ॥

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमंते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नंतु सर्वदा ॥ २८३ ॥

पद-यत् १ ते ६ केशेषु ७ दौर्भाग्यम् १ सीमते ७ यत् १ चऽ-मूर्द्धनि ७ ललाटे ७ कर्णयोः ७ अक्ष्णोः ७ आपः १ तत् २ घ्नंतु क्रि-सर्वदाऽ-॥

योजना-ते केशेषु सीमंते यद्दौर्भाग्यम् अस्ति यत्सीमते च पुनः मूर्द्धनि ललाटे कर्णयोः अक्ष्णोः अस्ति तत् आपः सर्वदा घ्नंतु ॥

ता० भा०-तेरे केशोंमें और सीमंत मस्तक ललाट कर्ण और नेत्रोंमें जो दौर्भाग्य (अकल्याण) है उस सबको ये जल शांत

करो फिर चौथे कलशको लेकर पूर्वोक्त तीनों मंत्रोंसे अभिषेक करै। क्योंकि इस मंत्रमें यही लिखा है कि सब मंत्रोंको पढकर चौथे घटसे अभिषेक करै ॥ २८३ ॥

स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुंबरेण तु।
जुहुयान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु २८४

पद-स्नातस्य ६ सार्षपम् २ तैलम् २ स्रुवेण३ औदुम्बरेण ३ तुऽ-जुहुयात् क्रि-मूर्धनि ७ कुशान् २ सव्येन ३ परिगृह्यऽ-तुऽ-॥

योजना-स्नातस्य मूर्धनि सव्येन कुशान् परिगृह्य औदुम्बरेण स्रुवेण सार्षप तैलं तु पुनः सव्येन कुशान् परिगृह्य जुहुयात् ॥

ता० भा०-उक्त प्रकारसे किया है अभिषेक जिसका ऐसे यजमानके उस मस्तकपर जो सव्य (वाम) हाथसे पकडी कुशाओंसे ढका हो गूलरके स्रुवसे सरसोंके तेलको वक्ष्यमाण मंत्रोंसे डाले ॥ २८४ ॥

मितश्च संमितश्चैव तथा शालकटंकटौ।
कूष्मांडो राजपुत्रश्चेत्यंते स्वाहासमन्वितैः॥

पद-मितः १ चऽ-संमितः १ चऽ-एवऽ-तथाऽ-शालकटंकटौ १ कूष्मांडः १ राजपुत्रः १ चऽ-इतिऽ-अन्ते ७ स्वाहासमन्वितैः ३ ॥

नामभिर्बलिमंत्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः।
दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः२८६

पद-नामभिः ३ बलिमंत्रैः ३ चऽ-नमस्कारसमन्वितैः ३ दद्यात् क्रि-चतुष्पथे ७ शूर्पे ७ कुशान् २ आस्तीर्यऽ-सर्वतःऽ-॥

कृताकृतांस्तंदुलांश्च पललौदनमेव च।
मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव च॥

पद-कृताकृतान् २ तन्दुलान् २ चऽ-पललौदनम् २ एवऽ-चऽ-मत्स्यान् २ पक्कान् २ तथाऽ-एवऽ-आमान् २ मांसम् २ एतावत् २ एवऽ-चऽ-॥

पुष्पं चित्रं सुगंधं च सुरां च त्रिविधामपि।
मूलकं पूरिकापूपं तथैवोंडेरजस्रजः॥२८८॥

पद-पुष्पम् २ चित्रम् २ सुगधम् २ चऽ-सुराम् २ चऽ-त्रिविधां २ अपिऽ-मूलकम् २ पूरिकापूपम् २ तथाऽ-एवऽ-उण्डेरकस्रजः २॥

दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम्।
एतान्सर्वान्समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततःशिरः॥

पद-दध्यन्नम् २ पायसम् २ चऽ-एवऽ-गुडपिष्टम् २ समोदकम् २ एतान् २ सर्वान् २ समाहृत्यऽ-भूमौ ७ कृत्वाऽ-ततःऽ-शिरः २॥

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोंबिकाम्।
दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमंजलिम्॥

पद-विनायकस्य ६ जननीम् २ उपतिष्ठेत् क्रि-ततःऽ-अंबिकाम् २ दूर्वासर्षपपुष्पाणाम् ६ दत्त्वाऽ-अर्घ्यम् २ पूर्णम् २ अंजलिम् २ ॥

योजना-अन्ते स्वाहासमन्वितैः मितः संमितः तथा शालकटंकटौ कूष्मांडः राजपुत्रः इति विनायकस्य नामभिः जुहुयात् च पुनः हुतशेष नमस्कारसमन्वितैः नामभिः बलिमंत्रैः (बलिमंत्ररूपैः) दशलोकपालेभ्यः दद्यात् ततः शिरः भूमौ कृत्वा कृताकृतान् तंदुलान् पललौदन पक्कान् तथा आमान् मत्स्यान् तु पुनः एतावदेव मांसं, सुगंध, चित्र पुष्प, च पुनः त्रिविधाम् अपि सुरां, मूलक, पूरिकापूप तथा उण्डेरकस्रजः, दध्यन्नं, च पुनः पायस समोदकं गुडपिष्टम् एतान् सर्वान् समाहृत्य सर्वतः शूर्पे कुशान् आस्तीर्य चतुष्पथे दद्यात् ततः दूर्वासर्षपपुष्पाणां पूर्णम् अंजलि दत्त्वा विनायकस्य जननीम् आम्बिकाम् उपतिष्ठेत् ॥

तात्पर्यार्थ-स्वाहा शब्द जिनके अंतमें और ॐकार आदिमें हो ऐसे विनायकके मित संमित आदि नामोंसे होम करै। स्वाहा शब्दके योगमें चतुर्थी होती है इससे ॐ मिताय स्वाहा इत्यादि

छः मंत्र सिद्ध होते हैं । इसके अनतर लौकिक अग्निमें स्थालीपाककी विधिसे चरुको पकाकर इन पूर्वोक्त छः ६ मन्त्रोंसेही तिसी अग्निमें होम करै, फिर उस होमके शेष अन्नको नमःशब्दसे अन्वित (युक्त) चतुर्थी विभक्ति जिनके अतमें हो ऐसे वलिके मंत्ररूप इंद्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा, अनत इनके नामोंसे इन पूर्वोक्त देवताओंको वलि दे। इसके अनंतर क्या करै इस अपेक्षासे कहते हैं कि कृताकृत तंदुल आदि बलिके समूहको विनायक और उसकी माताको देकर और भूमिपर शिरको रखकर इन दो मन्त्रोंको पढकर विनायक और अंविकाको नमस्कार करै फिर बलिसे शेष बचे अन्नको बिछाई हुई कुशाओंपर रखके सूपमें रखकर चौराहेमें दे । और कहै कि ये देवता वलिको ग्रहण करो कि आदित्य, वसु, मरुत्, अश्विनीकुमार, रुद्र, सुपर्ण, पन्नग, ग्रह, असुर, यातुधान, पिशाच, उरग, मातर, शाकिनी, यक्ष, वेताल, योगिनी, पूतना, शिवा, जृम्भक, सिद्ध, गधर्व, माया, विद्याधर, नर, दिक्पाल, लोकपाल, विघ्नविनायक व जगत्की शान्तिके कर्ता ब्रह्मा आदि महर्षि तृप्त हों और विघ्न पाप शत्रु मेरे न हों और तृप्त हुए भूतप्रेत आदि सब सुखदायी और सौम्य हों । एकवार छडे हुए तन्दुलोंको कृताकृत कहतेहैं । पलल (तिलकी पिट्ठी) से मिले ओदनको पललौदन कहतेहैं । पके और विना पके मत्स्य और विना पका मांस रक्त पीत आदि नाना प्रकारके पुष्प और चंदन आदि सुगंधिवाला द्रव्य, गौडी, माध्वी, पैष्टी तीन प्रकारकी मदिरा, मूलक (मूली), पूरी पूए उण्डेरक माला अर्थात् पिरोही हुई पिट्ठीकी माला, दही मिला अन्न, पायस (खीर), गुडपिष्ट अर्थात् गुडमिली शाली आदिकी पिट्ठी, मोदक (लड्डू) इन सवको देकर विनायककी जननी अंविकाको दूर्वा पुष्प सर्षपकी पूर्ण अंजलिसे जल देकर इन मंत्रोंसे स्तुति करै ॥

भावार्थ-अतमें स्वाहासे युक्त मित संमित शाल कटकट कूष्मांड राजपुत्र इन नामोंसे और नमस्कारसे युक्त बलिके मंत्रोंसे होम करै फिर चतुष्पथमें सूपके ऊपर कुशा रखकर पके और विना पके तंडुल, पललौदन, पके और विना पके मत्स्य और मांस अनेकें रंगके पुष्प सुगंध और तीन प्रकारकी मदिरा मूली पूरी अपूप, सूतमें पिरोही पिट्ठीकी माला, दही मिला अन्न, पायस (खीर) गुड मिली पिट्ठी मोदक इन सबको पूर्वोक्त सूपमें रखकर और भूमिमें शिरको टेककर और दूर्वा सरसों पुष्पोंसे भरी अंजलिसे अर्घ्य देकर विनायककी माता अंविकाकी इन मंत्रोंसे स्तुति करै कि ॥२८५॥२८६ ॥ २८७॥ ॥२८८॥२८९॥ २९० ॥

रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥

पद-रूपम् २ देहि क्रि-यशः २ देहि क्रि-भगम् २ भवति १ देहि क्रि-मे ४ पुत्राम् २ देहि क्रि-धनम् २ देहि क्रि-सर्वकामान् २ च०-देहि क्रि-मे ४ ॥

ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥

---

१ ॐमितायस्वाहा-ॐसमिताय० ॐशालाय० ॐ कटंकटाय० ॐकूष्मांडाय० ॐराजपुत्रायस्वाहा ।

२ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि । तन्नोदती प्रचोदयात् ॥ सुभगायै विद्महे सुमालिन्यै धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।

३ बलि गृह्णन्त्विमे देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगमातरः । शाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगंधर्वा माया विद्याधरा नराः । दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । मा विघ्नमाचरेत्पाप मा सन्तु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवत तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥

पद–ततः ऽ–शुक्लांबरधरः १ शुक्लमाल्यानुलेपनः १ ब्राह्मणान् २ भोजयेत् क्रि–दद्यात् क्रि–वस्त्रयुग्मम् २ गुरोः ६ अपिऽ–॥

योजना–हे भवति ! रूप देहि, मे (मह्यम्) यशः देहि, भगं देहि, पुत्रान् देहि, धनं देहि, च पुनः सर्वान् कामान् मे देहि, ततः शुक्लांबरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः यजमानः ब्राह्मणान् भोजयेत् गुरोः अपि वस्त्रयुग्मं दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–हे भवति (पूजने योग्य) ! मुझे रूप यश ऐश्वर्य पुत्र संपूर्ण कामना धन दे। यह स्तुतिका मंत्र है। विनायककी स्तुतिमें हे भवतिकी जगह हे भगवन् कहै। फिर अभिषेकके अनन्तर यजमान शुक्लवस्त्र और शुक्लमाला और चदनको धारण कर ब्राह्मणोंको जिमावै। और वेदपाठ और आचरणसे युक्त विनायक स्नानकी विधिके ज्ञाता गुरुको यथाशक्ति दो वस्त्र दे और अपिशब्दसे ब्राह्मणाकीभी यथाशक्तिभोजनकी दक्षिणा दे। इसके प्रयोगका यह क्रम है कि मन्त्रका ज्ञाता और उक्तलक्षण गुरु चार ब्राह्मणोंसहित भद्रासनकी रचनाके अनन्तर भद्रासनके समीप विनायक और उसकी माताका उक्त मन्त्रोंसे पूजन करके और चरुको पकाकर और भद्रासनपर बैठे यजमानका पुण्याहवाचन और चार कलशोंसे अभिषेक करके और उसके शिरपर सरसोंके तेलको डालकर और चरुको होमकर अभिषेकशालाकी चारों दिशाओंमें इन्द्रादिदेवताओंको बलि दे। यजमान तो स्नानके अनन्तर शुक्लमाला और वस्त्रोंको धारण कर गुरुसहित विनायक और अंबिकाको भेट देकर और भूमिमें शिरको लगाकर पुष्पजलसे अर्घ्य और दूब सरसोंकी अंजलि देकर विनायक और अंबिकाकी स्तुति करै। और आचार्य बलिके शेषको भूमिमें रखकर और शिरको भूमिमें झुकाकर चौराहेमें रखदे फिर यजमान गुरुको दक्षिणा और दो वस्त्र दे और ब्राह्मणभोजन करावै ॥

भावार्थ-हे भगवति ! मुझे रूप यश ऐश्वर्य पुत्र उन और संपूर्ण कामना दे फिर शुक्लवस्त्र धारण किये और शुक्लमाला और चंदन लगाकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै और गुरुको दो वस्त्र दे ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

इति विनायकस्नानविधिः ॥

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः ॥ कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं चाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ २९३ ॥

पद–एवम्ऽ–विनायकम् २ पूज्यऽ–ग्रहान् २ चऽ–एवऽ–विधानतःऽ–कर्मणाम् ६ फलम् २ आप्नोति क्रि–श्रियम् २ चऽ–आप्नोति क्रि–अनुत्तमाम् २ ॥

योजना–एव विनायकं च पुनः ग्रहान् संपूज्य कर्मणां फल च पुनः अनुत्तमां श्रियम् आप्नोति॥

ता० भा०– इस उक्त प्रकारसे विनायक और विधिसे ग्रहोंकी पूजा करके कर्मोंके फल और सर्वोत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है। यहां ग्रहपूजा इस लिये कही है कि ग्रहपीडाओंकी शान्ति और लक्ष्मीकी कामनाके लिये ग्रहपीडाको आगे कहेंगे ॥ २९३ ॥

आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २९४ ॥

पद–आदित्यस्य ६ सदाऽ– पूजाम् २ तिलकम् २ स्वामिनः ६ तथाऽ-महागणपतेः ६ चऽ–एवऽ–कुर्वन् १ सिद्धिम् २ अवाप्नुयात् क्रि–॥

योजना–आदित्यस्य सदा पूजां च पुनः तिलकं तथा स्वामिनः पूजां च पुनः महागणपतेः पूजां कुर्वन् सिद्धिम् अवाप्नुयात् ॥

ता०भा०–सूर्यकी रक्तचंदन कुंकुम आदिसे पूजा और स्कंदकी और महागणपतिकी नित्य पूजा और इन सबका तिलक करता हुआ मनुष्य आत्मज्ञानके द्वारा सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होताहै ॥ २९४ ॥

इति महागणपतिकल्पः ॥ ११ ॥

अथ ग्रहशान्तिप्रकरणम् १२.

श्रीकामःशांतिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्।
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि॥

पद-श्रीकामः १ शांतिकामः १ वा ऽ-ग्रहयज्ञम् २ समाचरेत् क्रि-वृष्ट्यायुःपुष्टिकामः १ वा ऽ-तथा ऽ-एव ऽ-अभिचरन् १ अपि ऽ-॥

योजना-श्रीकामः वा शांतिकामः वृष्ट्यायुःपुष्टिकामः तथा अभिचरन् अपि ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥

ता० भा०-अब ग्रहपूजाके अन्यभी फल कहते हैं,। लक्ष्मी दुःखकी शांति और सस्यकी वृद्धिके लिये वृष्टि अवस्था निरोग शरीर इन सबकी कामना करनेवाला और अभिचार (परपीडा) का अभिलाषी मनुष्य ग्रहयज्ञको करै ॥ २९५ ॥

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।
शुक्रःशनैश्चरो राहुःकेतुश्चेतिग्रहाःस्मृताः ।

पद-सूर्यः १ सोमः १ महीपुत्रः १ सोमपुत्रः १ बृहस्पतिः १ शुक्रः १ शनैश्चरः १ राहुः १ केतुः १ च ऽ-इति ऽ-ग्रहाः १ स्मृताः १ ॥

योजना-सूर्यः सोमः महीपुत्रः सोमपुत्रः बृहस्पतिः शुक्रः शनैश्चरः राहुः केतुः इति नवग्रहाः स्मृताः ॥

ता० भा०-सूर्य सोम मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतु ये नव ग्रह कहे हैं २९६

ताम्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचंदनात्स्वर्णकादुभौ । राजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्या ग्रहाः क्रमात् ॥ २९७ ॥

पद-ताम्रकात् ५ स्फाटिकात् ५ रक्तचंदनात् ५ स्वर्णकात् ५ उभौ १ राजतात् ५ अयसः ५ सीसात् ५ कांस्यात् ५ कार्याः १ ग्रहाः १ क्रमात् ५ ॥

स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धैर्मंडलकेषु वा ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानिच ॥

पद-स्ववर्णैः ३ वा ऽ-पटे ७ लेख्याः १ गन्धैः ३ मडलकेषु ७ वा ऽ-यथावर्णम् ऽ-प्रदेयानि १ वासांसि १ कुसुमानि १ च ऽ- ॥

गंधश्च वलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः।
कर्तव्या मंत्रवंतश्च चरवःप्रतिदैवतम्॥२९९॥

पद-गधः १ च ऽ-वलयः १ च ऽ-एव ऽ-धूपः १ देयः १ च ऽ-गुग्गुलुः १ कर्तव्याः १ मन्त्रवन्तः १ च ऽ-चरवः १ प्रतिदैवतम् २ ॥

योजना-ताम्रकात् स्फाटिकात् रक्तचन्दनात् स्वर्णकात् उभौ राजतात् अयसः सीसात् कांस्यात् ग्रहाः क्रमात् कार्याः । स्ववर्णैः वा गंधैः पटे वा मडलकेषु लेख्याः यथावर्णं वासांसि च पुनः कुसुमानि प्रदेयानि । गन्धः च पुनः वलयः च पुनः गुग्गुलुः धूपः देयः च पुनः प्रतिदैवत मन्त्रवन्तः चरवः कर्तव्याः ॥

तात्पर्यार्थ-सूर्य आदि नव ग्रहोंकी मूर्ति तांवा स्फटिक रक्तचन्दन सुवर्ण सुवर्ण चांदी लोहा सीसा कांसी इनकी क्रमसे बनवावे । ये न मिलें तो अपने २ वर्णसे वस्त्रके ऊपर वा रक्तचन्दन आदि गन्धोंसे मडलमें लिखने । और इनके दो भुजा आदि विशेष मत्स्यपुराणमें

१ पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वरथसस्थश्च द्विभुजः स्यात्सदा रवि- ॥ श्वेतः श्वेतांवरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्त्तव्यो वरदः शशी ॥ रक्तमाल्यांवरधरः शक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजो मेषगमः वरदः स्याद्धरासुतः ॥ पीतमाल्यांवरधरः कर्णिकारसमद्युति । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥ देवदैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥ इंद्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योर्कसुत. सदा ॥ करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रद । नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥ धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृध्रासनगता नित्य केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥ सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । स्वांगुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा ।

कहे जानने कि सूर्यका पद्मके समान आसन और हाथ हैं और पद्मके गर्भकी तुल्य कांति है, सात अश्ववाले रथसे युक्त है और दो भुजा हैं, और चद्रमा श्वेतवस्त्रधारी, दश अश्ववाला, श्वेतभूपण, गदा हाथमें जिसके ऐसा बनाना और मगल रक्तपुप्प और रक्तवस्त्रधारी, शक्ति-शूलगदाधारी, चतुर्भुजी, मेषवाहन, वरका दाता होता है, और बुध पीतमाला और पीतवस्त्रका धारी, कनेरके समान कांति, खड्ग चर्म गदा जिसके हाथमें, सिंहवाहन, वरका दाता है, देवता और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्र पीत श्वेत, चतुर्भुजी, दंडधारी और अक्षसूत्र कमडलुके धारी क्रमसे बनाने, और शनैश्चर इद्रनील मणिके समान कांति, शूल-धारी, वरका दाता, गीधवाहन, वाण और धनुषधारी सदैव करना, और राहु करालमुख, खड्गचर्म शूलधारी, वरका दाता, नीलरग सिंहासनपर स्थित करना कहा है, और केतु धूम्ररग, दो भुजा, गदाधारी, विकृतमुख, गीध-वाहनपर स्थित, वरके दाता कहे हैं, और जग-तके हितकारी सब ग्रहोंके मुकुट बनाने, और अपने अगुलसे ऊचे अष्ट उत्तर सौ बनाने, और इनके स्थापनका देशभी वहांही कहा है कि मध्यमें सूर्य, दक्षिणमें मगल, उत्तरमें बृहस्पति, पूर्वोत्तरमें बुध, पूर्वमें शुक्र, दक्षिणपूर्वमें चद्रमा, पश्चिममें शनैश्चर, पश्चिमदक्षिणमें राहु,[1] पश्चिम उत्तरमें केतुका श्वेत चावलोंसे स्थापन करै, अब पूजाकी विधिको कहते हैं, जिस ग्रहका जो रग है उसी वर्णके गध वस्त्र पुप्प देने और बलि देनी और धूप सबको गुग्गुलकी देनी, और देवता २ के प्रति चार २ मुष्टि चरु इस[1] मत्रसे देनी और अग्निस्थापन अन्वाधानपूर्वक चरु बना बनाकर भली प्रकार प्रज्वलित अग्निमें इध्मका आधान आदि आघारांत कर्म करके आदित्य आदिके निमित्त क्रमसे वक्ष्यमाण मंत्र और वक्ष्यमाण प्रकारसे होम कर चरु-ओंका होम करै ॥

भावार्थ–तांबा, स्फटिक, रक्तचदन, सुवर्ण, सुवर्ण, चांदी, लोहा, सीसा, कांसी इनके क्रमसे ग्रह बनावे, अथवा अपने २ वर्णके वा गधसे वस्त्र और मडलमें लिखने और वर्णके अनु-सारही वस्त्र आदि देने, गध, बलि, गुग्गुलकी धूप देना, और देवता २ के प्रति मत्रोंसे चरु बनाने ॥ २९७ ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवःककुत् । उद्बुध्यस्वेति च ऋचोयथासंख्यं प्रकीर्तिताः ।

पद–आकृष्णेन १ इमम् देवा १ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् १ उद्बुध्यस्व क्रि–इतिऽ–चऽ–ऋचः १ यथासख्यम्ऽ–प्रकीर्तिताः १ ॥

बृहस्पतेअतियदर्यस्तथैवान्नात्परिस्रुतः । श-न्नोदेवीस्तथाकांडात्केतुंकृण्वन्निमांस्तथा ॥

पद–बृहस्पतेअतियदर्यः १ तथाऽ–एवऽ–अन्नात्परिस्रुतः १ शन्नोदेवी १ तथाऽ–कांडात् १ केतुकृण्वन् १ इमान् २ तथाऽ–॥

योजना–आकृष्णेन, इमदेवाः, अग्निर्मूर्द्धा, उद्बुध्यस्व इति ऋचः बृहस्पते अतियदर्यः, तथैव अन्नात्परिस्रुतः तथा शन्नोदेवीः, काण्डात् केतुं कृण्वन् तथा इमान् मंत्रान् ग्रहाणां यथा-सख्य विदुः ॥

ता० भा०–आकृष्णेनरजसावर्तमान इत्यादि वेदोक्त नौ मंत्र सूर्य आदि ग्रहोंके क्रमसे जानने ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥

[1] मध्ये तु भास्कर विद्याल्लोहित दक्षिणेन तु । उत्तरेण गुरु विद्याद्बुध पूर्वोत्तरेण तु । पूर्वेण भार्गव विद्यात्सोम दक्षिणपूर्वके । पश्चिमेन शनि विद्याद्राहु पश्चिमदक्षिणे ॥ पश्चिमोत्तरतः केतु स्थाप्या वै शुक्लतण्डुलैः ॥

[1] चतुरश्चतुरो मुष्टीः निर्वपत्यमुष्मै त्वा जुष्टं निर्वपामि ।

अर्कःपलाशः खदिर अपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुंबरः शमीदूर्वाकुशाश्च समिधःक्रमात्॥

पद्-अर्कः १ पलाशः १ खदिरः १ अपामार्गः १ अथऽ-पिप्पलः १ औदुम्बरः १ शमी १ दूर्वा १ कुशाः १ चऽ-समिधः १ क्रमात् ५ ॥

योजना-अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गः अथ पिप्पलः औदुम्बरः शमी दूर्वा च पुनः कुशाः समिधः एताः क्रमान् ग्रहाणां समिधो भवंति ॥

ता० भा०-आक ढाक खैर ओंगा पीपल गूलर शमी (छोंकर) दूब और कुशा ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंकी समिध होती हैं और वे गीली विना टूटी और त्वचासहित प्रादेश मात्र लेनीं ॥ ३०२ ॥

एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव च ।
होतव्यामधुसर्पिर्भ्यांदध्नाक्षीरेणवायुताः॥

पद्-एकैकस्य ६ तुऽ-अष्टशतम् १ अष्टाविंशतिः १ एवऽ-चऽ-होतव्याः १ मधुसर्पिर्भ्याम् ३ दध्ना ३ क्षीरेण ३ वाऽ-युताः १ ॥

योजना-एकैकस्य तु मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना वा क्षीरेण युताः अष्टशतम् अष्टाविंशतिः आहुतयः होतव्याः ॥

ता० भा०-सूर्य आदि ग्रहोंमें एक एककी एक सौ आठ १०८ वा अट्ठाईस २८ लेकर मधु, घी, दूध, वा दधिसे युक्त समिध होमनी ॥ ३०३ ॥

गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरषाष्टिकम् ।
दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसंचित्रान्नमेवच ३०४

पद्-गुडौदनम् २ पायसम् २ चऽ-हविष्यम् २ क्षीरषाष्टिकम् २ दध्योदनम् २ हविश्चूर्णं २ मांसम् २ चित्रान्नम् २ एवऽ-चऽ-॥

दद्याद्ग्रहक्रमादेव द्विजेभ्यो भोजनं द्विजः ।
शक्तितो वा यथालाभंसत्कृत्यविधिपूर्वकम्

पद्-दद्यात् क्रि-ग्रहक्रमात् ५ एवऽ-द्विजेभ्यः ४ भोजनम् २ द्विजः १ शक्तितःऽ-वाऽ-यथालाभम्ऽ-सत्कृत्यऽ- विधिपूर्वकम्ऽ-

योजना-द्विजः ग्रहक्रमात् गुडौदन च पुनः पायसं हविष्य क्षीरषाष्टिकं दध्योदन, हविश्चूर्ण मांसं च पुनः चित्रान्नं एतानि शक्तितः यथालाभं विधिपूर्वकं सत्कृत्य द्विजेभ्यः भोजन दद्यात् ॥

ता० भा०-गुडसे मिश्रित ओदन (भात), पायस, हविष्य (मुनियोंका अन्न), दुग्धसे मिश्रित साठी चावलोंका ओदन, दध्योदन (दहीसे मिला भात), हविः (घृतमिश्रित भात), चूर्ण (तिलोंके चूर्णसे मिश्रित ओदन). मांस अर्थात् भक्षण करने योग्य, मांससे मिला हुआ ओदन, चित्रौदन (अनेक वर्णका भात) ये गुडौदन आदि सपूर्ण क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंके उद्देशसे ब्राह्मणोंको भोजनके लिये दे ब्राह्मणोंकी सख्या अपनी शक्तिके अनुसार समझनी, गुडौदन आदि न मिले तो प्राप्तिके अनुसार ओदन आदिको ब्राह्मणोंको पादोंके प्रक्षालन आदि विधिपूर्वक सत्कारसे दे ३०५ ॥

धेनुः शंखस्तथानड्वान्हेमवासोहयःक्रमात् ।
कृष्णागौरायसंछागएतावैदक्षिणाःस्मृताः॥

पद्-धेनुः १ शंखः १ तथाऽ-अनड्वान् १ हेम १ वासः १ हयः १ क्रमात् ५ कृष्णा १ गौः १ आयसम् १ छागः १ एता १ वैऽ-दक्षिणाः १ स्मृताः १ ॥

योजना-धेनुः शंखः तथा अनड्वान् हेम वासः हयः कृष्णा गौः आयस छागः एताः क्रमात् ग्रहाणां दक्षिणाः मुनिभिः स्मृताः ॥

ता० भा०-दूध देती हुई गौ, भार लेजानेमें समर्थ हो ऐसा बलवान् अनड्वान् (बैल), हेम (सुवर्ण), वासः (वस्त्र पीला), हयः (सफेद लाल वर्णका अश्व), काली गौ,

आयस (लोहेका शस्त्र) छाग (बकरी) ये धेनु आदि दक्षिणा सूर्य आदिके उद्देशसे मनु आदिकोंने ब्राह्मणोंको कही हैं। यह सब देनेकी शक्ति हो तो समझना, न मिलसके तो लाभके अनुसार शक्तिसे और ही कुछ देना ॥ ३०६ ॥

यस्य यः स्याद्य दादुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत्। ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ॥ ३०७ ॥

पद-यस्य ६ यः १ स्यात् क्रि-यदाऽ-दुःस्थः १ सः १ तम् २ यत्नेन ३ पूजयेत् क्रि-ब्रह्मणा ३ एषाम् ६ वरः १ दत्तः १ पूजिताः १ पूजयिष्यथ क्रि० ॥

योजना-यस्य (पुरुषस्य) यः यदा दुःस्थः स्यात् सः तं ग्रह यत्नेन पूजयेत् एषां (ग्रहाणां) ब्रह्मणा वरः दत्तः पूजिताः यूयं पूजयिष्यथ ॥

ता० भा०-जो ग्रह जिस पुरुषके दुष्ट (अष्टम आदि) स्थानमें जब स्थित हों वह मनुष्य तब उस ग्रहका यत्नसे पूजन करै। क्योंकि जिससे इन ग्रहोंको पूर्व ब्रह्माने यह वर दियाहै कि पूजा किये हुए तुम पूजन करनेवालोंको इष्ट वस्तुके देने और अनिष्ट वस्तुके नाश करनेसे प्रसन्न करो ॥ ३०७ ॥

ग्रहाधीना नरेंद्राणामुच्छ्रायाः पतनानि च। भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमाग्रहाः।

पद-ग्रहाधीनाः १ नरेन्द्राणाम् ६ उच्छ्रायाः १ पतनानि १ चऽ-भावाभावौ १ चऽ-जगतः ६ तस्मात् ५ पूज्यतमाः १ ग्रहाः १ ॥

योजना-नरेन्द्राणाम् उच्छ्रायाः च पुनः पतनानि च पुनः जगतः भावाभावौ ग्रहाधीनाः संति तस्मात् पूज्यतमाः ग्रहाः सति ॥

तात्पर्यार्थ-शान्तिक पौष्टिक आदि कर्मोंका अधिकार अविशेषसे द्विजोंको कहकर तिसमें अभिषेकसे युक्त राजाको विशेषसे अधिकार कहते हैं। नरेन्द्र (जिनका अभिषेक हुआ हो ऐसे क्षत्रिय) के ग्रह अतिशय पूज्य (श्रेष्ठ) होते हैं। इसमें अन्योंके भी ग्रह पूज्य होते हैं यह प्रतीत हुआ। उभयत्र (ऐश्वर्य और पडना) कारणोंको कहते हैं। कि प्राणियोंकी ऐश्वर्यकी वृद्धि और विनिपात (ऐश्वर्यसे गिरना) ग्रहोंके अधीन होते हैं, इससे इनके अधिकारियोंको ये ग्रह पूजने योग्य हैं। और स्थावर जंगमरूप इस जगत्के भावाभाव (उत्पत्ति मरण) भी ग्रहोंके अधीन हैं, तिस समयमें यदि ये पूजे जांय तो अपने समयानुसार उत्पत्ति और निरोध होते हैं अन्यथा नहीं। तिससे तिस जगत्के योगक्षेम करनेवाले राजाओंको जगत्के ईश्वर होनेसे वे ग्रह पूजने योग्य हैं। इससे शांति आदि कर्मोंमें विशेषकर अधिकार राजाओंको है सोई गौतमने इस प्रकार शांतिक आदि दिखाये हैं कि राजा ब्राह्मणसे अतिरिक्त संपूर्णोंका ईश्वर है[1]। यहां राजाका अधिकार करके वर्ण और आश्रमोंकी न्यायसे रक्षा करै और इन सबको अपने २ धर्ममें नियुक्त रक्खै इत्यादि राजाके धर्मोंको कहकर फिर कहाहै कि जो दैव उत्पातके विचार करनेवाले (ज्योतिर्विद्) कहैं उनको माने और कोई यह मानते हैं कि योगक्षेम उनके ही अधीन है। अब शांतिक पौष्टिक आदि अनुष्ठानके हेतुओंको कहकर शांतिक पुण्याहवाचन स्वस्त्ययन, आयुष्य मंगल इनके और शत्रुके स्तभन (निरोध) अभिचार और शत्रुओंकी वृद्धि इनसे युक्त जो अन्य आभ्युदयिक कर्म हैं उनको शालाग्निमें करै ॥ ३०८ ॥

इति ग्रहशान्तिप्रकरणम् ॥ १२ ॥

१ राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्ज्यमिति राजानमाधिकृत्य वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेच्च ततश्चैतान्स्वधर्मे स्थापयेदित्यादीन्कांश्चिद्धर्मानुक्त्वा यानि च दैवोत्पातचिंतकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत् तदधीनमपि ह्येके योगक्षेममभिजानते इति शान्तिकपौष्टिकाद्यनुष्ठानहेतुमभिधाय शांतिकपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलसंयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषिणः स्तभनाभिचारद्विपद्वृद्धियुक्तानि च शालाग्नौ कुर्यादिति शांतिकादीनि दर्शितानि।

अथ राजधर्मप्रकरणम् १३.

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः । विनीतः सत्त्वसंपन्नः कुलीनः सत्यवाक्शुचिः

पद-महोत्साहः १ स्थूललक्षः १ कृतज्ञः १ वृद्धसेवकः १ विनीतः १ सत्त्वसंपन्नः १ कुलीनः १ सत्यवाक् १ शुचिः १ ॥

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा । धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्॥

पद-अदीर्घसूत्रः १ स्मृतिमान् १ अक्षुद्रः १ अपरुषः १ तथाऽ-धार्मिकः १ अव्यसनः १ चऽ-एवऽ-प्राज्ञः १ शूरः १ रहस्यवित् १ ॥

स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दंडनीत्यां तथैव च। विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैवनराधिपः॥

पद-स्वरध्रगोप्ता १ आन्वीक्षिक्याम् ७ दंडनीत्याम् ७ तथाऽ-एवऽ-चऽ-विनीतः १ तुऽ-अथऽ-वार्त्तायाम् ७ त्रय्याम् ७ चऽ-एवऽ-नराधिपः १ ॥

योजना-नराधिपः महोत्साहाद्युक्तलक्षणकः स्यात् तथा आन्वीक्षिक्यां दडनीत्यां च पुनः वार्त्तायां तथा त्रय्यां विनीतः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-बहुत जिसे उत्साह अर्थात् पुरुषार्थसे जो सिद्ध कर्म उसके प्रारंभ करनेका निश्चय हो, और स्थूललक्ष, बहुदेय अर्थका दर्शी हो और कृतज्ञ अर्थात् दूसरेके किये उपकार और अपकार (तिरस्कार) को जो न भूलता हो, और तप और ज्ञानसे जो वृद्ध (अधिक ज्ञान और तपवाले) हैं उनका सेवक हो, विनीत अर्थात् विनय (नम्रता) से युक्त हो, यहां विनय शब्दसे शास्त्रसे अविरुद्ध पूर्व कहे हुए स्नातकके संशयको न प्राप्त हो और अकस्मात् किसीको कठोर वचन न कहै इत्यादि वचनसे पूर्व कहे धर्म लेते हैं। सत्त्वसंपन्न अर्थात् सपत्ति और आपत्तिमें सुख दुःखसे रहित हो और कुलीन अर्थात् माता और पितासे जिसका अभिजन हो, सत्यवाक् अर्थात् सत्य वचन कहनेवाला हो, शुचि अर्थात् वाह्य और भीतरकी शुद्धियुक्त हो, अदीर्घसूत्र अर्थात् अवश्य करने योग्य कर्मोंके प्रारंभमें और प्रारंभ किये कर्मोंकी समाप्तिमें जो विलम्ब (देर) न करता हो और जाने हुए अर्थको जो न भूले ऐसा स्मृतिवाला हो, अक्षुद्र अर्थात् जो असत्(खोटे) गुणोंकी निंदा करताहो, अपरुष अर्थात् पराये दोषको जो न कहताहो, धार्मिक (वर्णाश्रमके धर्मोंसे युक्त) हो, और अव्यसन अर्थात् जो व्यसनोंसे रहित हो, व्यसन ये अठारह १८ प्रकारके मनुने कहे हैं कि मृगया (सिकार) १, अक्षों (पांसों) से खेलना २, दिनमें सोना ३, निंदा करनी ४, दिनमें स्त्रीसेवन ५, मदिरा आदिसे मद (नसा) करना ६, तौर्यत्रिक (नाचना ७, गाना ८, वजाना ९) वृथा घात १० ये दश व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या (कपटसे मारना), असूया (दूसरेके गुणोंकी निंदा), दूषण वाणी और दण्डसे उत्पन्न हुई कठोरता अर्थात् आक्रोश आदि और ताडनादि ये आठ व्यसन क्रोधसे उत्पन्न होते हैं तिन अठाहरमें ये सात कष्टसाध्य कहे हैं कि मदिरा आदिका पान पाँसोंसे

---

१ मृगयाक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्यत्रिकं वृथाघातः कामजो दशको गणः ॥ पैशून्यं साहसं द्रोहः ईर्ष्यासूयाथ दूषणम् । वाग्दडजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥

२ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।-एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणम् । क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं भवेत् ॥

खेलना, स्त्रीसेवन और मृगया ये चार क्रमसे कामसे पैदा हुए व्यसनगणमें कष्टतम समझने। दण्डका पातन, वाक्पारुष्य (कठोरवचन), अर्थमें दोष देना ये तीन क्रोधसे उत्पन्न व्यसनगणमें कष्ट (कष्टसाध्य) समझने। प्राज्ञ अर्थात् जो गभीर (कूट) अर्थके जाननेमें समर्थ हो, जो शूर (निर्भय) हो, रहस्यवित् अर्थात् गोपनीय (छिपाने योग्य) अर्थके गुप्त रखनेमें चतुर हो, जो स्वरध्रगोप्ता अर्थात् अपने सातों अंगोंमें जो दूसरेके प्रवेश होनेके द्वारकी शिथिलता (आलस्य) उसे स्वरध्र कहते हैं उसका जो प्रच्छादन (छिपाना) करले अर्थात् जैसे अपने सातों अंगोंमें प्रवेश होनेका द्वार दूसरेको न मिले, और आन्वीक्षिकी जो (आत्मविद्या) और दंडनीति जो अर्थ और योगक्षेममें उपकार करनेवाली है उसमें और धनकी वृद्धिमें कारण जो कृषि, बाणिज्य, पशुपालनरूप, वार्त्ता और ऋक्, यजुः, साम ये वेदत्रयी इनमें जो विनीत अर्थात् इन दण्डनीति आदि विद्याओंके जाननेवालोंने जो इनमें चतुर कर रक्खाहो, जैसे मनुने कहा है कि त्रैविद्यों (वेदत्रयीके ज्ञाता) से वेदत्रयी और नीतिके जाननेवालोंसे नीति, आत्मविद्याके ज्ञाताओंसे आत्मविद्या और लोकसे वार्त्ताओंको जाने। ऐसा राज्याभिषेक जिसको हुआ हो ऐसा नराधिप हो ॥

भावार्थ-बडा उत्साही, स्थूललक्ष (अतिज्ञानी), कृतज्ञ और वृद्धोंका सेवक, विनययुक्त, सत्त्वसंपन्न, कुलीन, सत्यवादी, शुद्ध, अदीर्घसूत्र (जो कार्यमें देर न करै), स्मृतिमान्, अक्षुद्र (खोटे गुणोंका द्वेषी), अपरुष (जो कठोर न हो), धार्मिक, व्यसनरहित, प्राज्ञ, शूरबीर, रहस्यवित्, स्वरध्रगोप्ता और आत्मविद्या दण्डनीति और वेदत्रयी इनमें विनीत ऐसे लक्षणवाला राजा हो ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥

स मंत्रिणः प्रकुर्वीत प्राज्ञान्मौलान्स्थिराञ्छुचीन्। तैः सार्द्धं चिंतयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततःपरम् ॥

पद-सः १ मन्त्रिणः २ प्रकुर्वीत क्रि-प्राज्ञान् २ मौलान् २ स्थिरान् २ शुचीन् २ तैः ३ सार्द्धम्ऽ-चिंतयेत् क्रि-राज्यम् २ विप्रेण ३ अथऽ-ततःऽ- परम् २॥

योजना-सः प्राज्ञान्, मौलान्, स्थिरान्, शुचीन्, मन्त्रिणः प्रकुर्वीत । च पुनः तैः सार्द्ध राज्य चिंतयेत् अथ ततः पर विप्रेण सार्द्ध राज्यं चिंतयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-वह महोत्साह आदि गुणोंसे युक्त राजा जो हित और अहितके विवेकमें कुशल हों उन प्राज्ञोंको, जो वशपरम्परासे चले आये हैं उन मौलोंको और जो बडेभी आनन्द और दुःखके स्थानमें विकाररहित हों उन स्थिरोंको, और जो धर्म अर्थ काम भयसे शुद्ध हों उन शुद्धोंको मन्त्री करै। और वेभी इस मनुके वचनानुसार सात वा आठ करने कि मौल शास्त्रके ज्ञाता शूरवीर लक्ष्यके ज्ञाता कुलीन भली प्रकार परीक्षा करके सात वा आठ मन्त्री करै। इस प्रकार मन्त्रियोंको रखकर उन सबके वा एक दोके सग संधि विग्रह आदि राज्यकी चिंता करै उनके अभिप्रायको जानकर सपूर्ण शास्त्रोंके विचारमें कुशल ब्राह्मण (पुरोहित) के संग कार्यको विचार कर फिर अपनी बुद्धिसे विचारकर काम करै ॥

भावार्थ-वह राजा बुद्धिमान् मौल और स्थिर शुद्ध मंत्रियोंको करै उनके सग फिर ब्राह्मणके सग राज्यकी चिंता करै ॥ ३१२ ॥

---

१ त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च तद्विदः। आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥

१ मौलाञ्शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्ष्यान् कुलोद्भवान्। सचिवान् सप्त चाष्टौ वा कुर्वीत सुपरीक्षितान्॥

पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् । दंडनीत्यां च कुशलमथर्वांगिरसेतथा ३१३॥

पद-पुरोहितम् २ प्रकुर्वीत क्रि-दैवज्ञम् २ उदितोदितम् २ दंडनीत्याम् ७ चऽ-कुशलम् २ अथर्वांगिरसे ७ तथाऽ- ॥

योजना-दैवज्ञम् उदितोदित च पुनः दंडनीत्यां तथा अथर्वांगिरसे कुशलं पुरोहितं कुर्वीत ॥

ता० भा०-ग्रहोंके उत्पात और शांतिके ज्ञाता और विद्या आभिजन अनुष्ठान आदि शास्त्रोक्त लक्षणोंसे युक्त और दंडनीति शांति आदि कर्ममें जो कुशल ऐसे पुरोहितको करै अर्थात् दृष्ट और अदृष्ट कर्ममें दान मान सत्कारोंसे अपने संग मिलकर जो आगेसे आगे हित करै ॥ ३१३ ॥

श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेव चर्त्विजः । यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद्भूरिदक्षिणान् ॥

पद-श्रौतस्मार्त्तक्रियाहेतोः ५ वृणुयात् क्रि-एवऽ- चऽ- ऋत्विजः २ यज्ञान् २ चऽ- एवऽ-प्रकुर्वीत क्रि-विधिवत्ऽ-भूरिदक्षिणान्२॥

योजना-च पुनः श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोः ऋत्विजः वृणुयात् च पुनः भूरिदक्षिणान् यज्ञान् कुर्यात् ॥

ता०भा०-अग्निहोत्र आदि श्रौत कर्म और उपासन आदि स्मार्त कर्मके लिये ऋत्विजोंका वरण करै और अधिक दक्षिणासे युक्त राजसूय आदि यज्ञोंको करै ॥ ३१४ ॥

भोगांश्च दत्त्वा विप्रेभ्यो वसूनि विविधानि च । अक्षयोयं निधी राज्ञां यद्विप्रेषूपपादितम् ॥३१५॥

पद-भोगान् चऽ-दत्त्वाऽ-विप्रेभ्यः ५ वसूनि २ विविधानि २ चऽ-अक्षयः १ अयम् १ निधिः १ राज्ञाम् ६ यत् १ विप्रेषु ७ उपपादितम् १ ॥

योजना-विप्रेभ्यः भोगान् दत्त्वा च पुनः विविधानि वसूनि दद्यात् च पुनः यत् विप्रेषु उपपादितम् अयं राज्ञां निधिः अक्षयः भवति ॥

ता० भा०-ब्राह्मणोंका भोग (सुख) और सुवर्ण चांदी आदि अनेक धनोंको दे क्योंकि यह राजाओंकी अक्षय निधि (खजाना) है कि जो ब्राह्मणोंको देना ॥ ३१५ ॥

अस्कन्नमव्ययं चैव प्रायश्चित्तैरदूषितम् । अग्नेःसकाशाद्विप्राग्नौ हुतं श्रेष्ठमिहोच्यते ॥

पद-अस्कन्नम् १ अव्ययम् १ चऽ-एवऽ- प्रायाश्चित्तैः३ अदूषितम् १ अग्नेः५ सकाशात् ५ विप्राग्नौ७ हुतम्१ श्रेष्ठम्१ इहऽ-उच्यते क्रि॥

योजना-अग्नेः सकाशात् विप्राग्नौ हुतम् अस्कन्नं अव्ययम् च पुनः प्रायाश्चित्तः अदूषितम् इह श्रेष्ठम् उच्यते ॥

ता०भा०-ब्राह्मणरूप अग्निमें किया है होम (भोजन) जिससे क्षरण (-शोषण) और नाशरहित और पशुहिंसाही होनेसे प्रायश्चित्त योग्य इससे अग्निमें करने योग्य राजसूय आदि कर्मोंसे श्रेष्ठ कहा है ॥ ३१६ ॥

अलब्धमीहेद्धर्मेण लब्धं यत्नेन पालयेत् । पालितं वर्द्धयेन्नीत्या वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥

पद-अलब्धम् २ ईहेत् क्रि-धर्मेण३ लब्धम् २ यत्नेन ३ पालयेत् क्रि-पालितम् २ वर्द्धयेत् क्रि-नीत्या३ वृद्धम्२ पात्रेषु ७ निक्षिपेत् क्रि-॥

योजना-अलब्ध धन धर्मेण ईहेत लब्ध धनं यत्नेन पालयेत् पालित धन नीत्या वर्द्धयेत् वृद्धं धनं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥

ता०भा०-अलब्ध धन आदिका धर्मशास्त्रके अनुसार यत्न करै लब्ध धनकी यत्नसे पालना (रक्षा) करै । और रक्षा किये धनको व्यापार आदि नीतिसे बढावै और बढेहुए धनको धर्म अर्थकामरूप तीन प्रकारके पात्रोंको दे ॥ ३१७॥

दत्त्वा भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत्। आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः ॥ ३१८ ॥

पद-दत्त्वाऽ-भूमिम् २ निबंधम् २ वाऽ-कृत्वाऽ-लेख्यम् २ तुऽ-कारयेत् क्रि-आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय ४ पार्थिवः १ ॥

योजना-भूमिं दत्त्वा वा निबध कृत्वा पार्थिवः आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय लेख्य कारयेत् ॥

ता० भा०-शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका दान देकर और निबंधको करके अर्थात् एकभाण्ड भारके इतने रुपये और एकपर्ण भारके इतने पर्ण यह प्रवध करके राजा आगे होनेवाले श्रेष्ठ राजाओंके ज्ञानार्थ लेख्य करादे इससे यह बात सूचित है कि भूमिके दान और निबन्धमें राजाका अधिकार है भोगनेवालेका नहीं ३१८॥

पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम्। अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानञ्च महीपतिः

पद्-पटे ७ वाऽ-ताम्रपट्टे ७ वाऽ-स्वमुद्रोपरिचिह्नितम् २ अभिलेख्यऽ-आत्मनः ६ वश्यान् २ आत्मानम् २ चऽ-महीपातिः १ ॥

प्रतिगहपरीमाणं दानच्छेदोपवर्णनम्। स्वहस्तकालसंपन्नं शासनं कारयेत्स्थिरः॥

पद्-प्रतिग्रहपरीमाणम् २ दानच्छेदोपवर्णनम् २ स्वहस्तकालसंपन्नम् २ शासनम् २ कारयेत् क्रि-स्थिरम् २ ॥

योजना-पटे वा ताम्रपट्टे आत्मनः वश्यान् च पुनः आत्मानं स्वमुद्रोपरिचिह्नित, प्रतिग्रहपरीमाण, दानच्छेदोपवर्णनं स्वहस्तकालसंपन्न स्थिरं शासनं महीपातिः कारयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-वस्त्र वा तांबेके पट्टेपर अपने वंशके पितामह प्रपितामह आदिकोंको वीर्य और विद्या आदि गुणोंके वर्णन और प्रतिष्ठापूर्वक लिखकर और चशब्दसे प्रतिग्रह लेनेवालेको लिखकर और प्रतिग्रहका परिमाण और दानछेदका उपवर्णन, अर्थात् रूपक आदि निबधका प्रमाण और देने योग्य क्षेत्र आदिका छेद् (निवर्तन) उसके नदी और आवाटसे प्रमाण उसका वर्णन इस प्रकार लिखे कि अमुक नदीसे दक्षिण वा वाम यह क्षेत्र है और अमुक ग्रामके पूर्व इतना निवर्तन है क्योंकि नदी नगर मार्ग आदि आवाटकी भूमिका न्यूनाधिकभाव होसकता है उसकी निवृत्तिके लिये, अपने हस्तसे यह लिखदे कि जो इस पत्रके ऊपर लिखा है वह मुझे समत है और युक्त है और वह लेख शक सवत्सररूप दो प्रकारके कालसे और चद्रसूर्यके ग्रहणसे युक्त हो और गरुड वाराह आदि अपनी राजमुद्रासे अंकित हो ऐसे स्थिर (दृढ) शासन (शिक्षा) को इस लिये करै कि आगे होनेवाले राजा जानजायँ और महीपति कहनेसे यह सूचित किया कि भोगनेवालेका अधिकार नहीं, और यह लेखभी संधिविग्रह करनेवाले किसी अपने मुख्य अधिकारीसे करावै क्योंकि यह स्मृति है कि साधि विग्रह करनेवाला उसका लेखक हो तो राजाके शासनको लिखै ॥

भावार्थ-वस्त्र वा तामेके पत्रपर अपने वंशके पुरुष और अपनी आत्माको और प्रतिग्रहके परिमाण और दानछेदके उपवर्णनको लिखकर अपनी राजमुद्रासे ऊपर अंकित और अपने हाथ और कालसे युक्त दृढ शासनको राजा करवावै ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

रम्यं पशव्यमाजीव्यं जांगलं देशमावसेत्। तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोशात्मगुप्तये ३२१

पद-रम्यम् २ पशव्यम् २ आजीव्यम् २

---

१ संधिविग्रहकारी तु भवेद्यस्तस्य लेखकः। स्वयं राज्ञा समादिष्टः सभवेद्राजशासनात् ॥

जांगलम् २ देशम् २ आवसेत् क्रि-तत्र५-दुर्गाणि २ कुर्वीत क्रि-जनकोशात्मगुप्तये ४॥

योजना-राजा रम्यं पशव्यम् आजीव्यं जांगल देशम् आवसेत् । तत्र जनकोशात्मगुप्तये दुर्गाणि कुर्वीत ॥

तात्पर्यार्थ-अशोक चंपक आदिसे रमणीक और पशुओंकी वृद्धि करनेसे पशुओंको हित, और कंद मूल फल पुष्प आदिसे मनुष्योंको हित जांगल देशमें बसै । यद्यपि अल्प जल तरु और पर्वत जिसमें हों ऐसे देशको जांगल कहते हैं। तथापि यहां जल तरु जिसमें हों ऐसा देशही लेना । उस देशमें जन और सुवर्ण आदिका कोश इनकी रक्षाके लिये दुर्ग बनावै। वह किला छः प्रकारका इस मनुवचनमें कहाहै कि धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, नृदुर्ग, गिरिदुर्ग इन छः प्रकारके किलोंसे पुरको ढककर बसै । जलरहित पांच योजनका देश जिसके चारों तरफ हो वह धन्वदुर्ग, जो पत्थर और ईटोंसे युक्त, बारह हाथ ऊंचा और बहुत विस्तृत युद्धके लिये ऊपर फिरने योग्य और साधारण झरोखे आदिसे युक्त और चारों तरफ परकोटे और दरवाजोंसे युक्त हो, ऐसा महीदुर्ग, जिसको चारों तरफ अगाध जल हो वह जलदुर्ग और वृक्षोंसे युक्त वृक्षदुर्ग, चतुरंगिणी सेना नृदुर्ग, पर्वतसे युक्त गिरिदुर्ग कहाताहै ॥

भावार्थ-रमणीक पशुओंको हित ऐसे जांगल देशमें वसै और वहां जन और कोश और आत्माकी रक्षाके लिये किले बनवावै॥३२१ ॥

तत्रतत्र च निष्णातानध्यक्षान्कुशलाञ्छुचीन्। प्रकुर्यादायकर्मान्तव्ययकर्मसु चोद्यतान्॥

पद-तत्र५-तत्र५-च५-निष्णातान् २ अध्यक्षान् २ कुशलान् २ शुचीन् २ प्रकुर्यात् क्रि-आयकर्मांतव्ययकर्मसु ७ च५-उद्यतान् २ ॥

योजना-तत्रतत्र च निष्णातान् कुशलान् शुचीन् च पुनः आयकर्मांतव्ययकर्मसु उद्यतान् अध्यक्षान् कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-तहां तहां धर्म अर्थ काम आदिमें योग्य अधिकारियोंको नियुक्त करै, क्योंकि यह कहाहै कि धर्मकार्योंमें धर्मके ज्ञाता और अर्थके कार्योंमें पण्डित,स्त्रियोंमें नपुंसक,निन्दित कर्मोंमें नीचोंको नियुक्त करै, जो निष्णात हो अर्थात् जिनको अन्यव्यापार न हो, और जो सब व्यापारोंमें कुशल (चतुर) हों और जो चार प्रकारकी उपधासे शुद्ध हों और जो सुवर्ण आदिके उत्पत्तिके स्थानरूप आय कर्मोंमें सुवर्ण आदि दानस्थानरूप व्ययकर्मोंमें उद्यत और चकारसे प्राज्ञ हों, सोई कहाहै कि विद्वान् उपधा (छल) से शुद्ध अप्रमाद अभियुक्त (प्रतिष्ठा) ता, कार्योंमें व्यसनका अभाव स्वामीकी भक्ति इनसे योग्यता होती है ।

भावार्थ-तहां २ कुशल, शुद्ध, चतुर, आयकर्म और व्ययकर्मोंमें उद्यत अध्यक्षोंको नियत करै ॥ ३२२ ॥

नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम् । विप्रेभ्योदीयतेद्रव्यंप्रजाभ्यश्चाभयंसदा ॥

पद-न५-अतः५-परतरः १ धर्मः १ नृपाणाम् ६ यत् १ रणार्जितम् १ विप्रेभ्यः ४ दीयते क्रि-द्रव्यम् १ प्रजाभ्यः ४ च५-अभयम् १ सदा५-॥

योजना-यत् रणार्जितं द्रव्यं विप्रेभ्यः च पुनः सदा प्रजाभ्यः अभयं दीयते अतः परतरः धर्मः नृपाणां नास्ति ॥

---

१ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव च । नृदुर्गं गिरिदुर्गं च समावृत्य वसेत्पुरम् ॥

१ धर्मकार्येषु धर्मज्ञानर्थकार्येषु पण्डितान् । स्त्रीषु क्लीवान् नियुञ्जीत नीचान् निंद्येषु कर्मसु ॥

ता० भा०-इससे अधिक राजाओंका अन्य कोई धर्म नहीं कि जो रण (युद्ध) से संचित किया धन ब्राह्मणोंको और प्रजाओंको अभय सदैव देना ॥ ३२३ ॥

य आहवेषु वध्यंते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः । अकूटैरायुधैर्यांति ते स्वर्गं योगिनोयथा३२४

पद-ये १ आहवेषु ७ वध्यते क्रि-भूम्यर्थम् २ अपराङ्मुखाः १ अकूटैः ३ आयुधैः ३ यांति क्रि-ते १ स्वर्गम् २ योगिनः १ यथाऽ-॥

योजना-ये भूम्यर्थम् अपराङ्मुखाः सतः अकूटैः आयुधैः आहवेषु वध्यते ते यथा सुकृतिनः तथा स्वर्गं यांति ॥

ता० भा०-जो भूमि आदिके अर्थ प्रवृत्त हुए अपराङ्मुख (समुख) होकर मारे जाते हैं वे योगियोंके समान स्वर्गमें जातेहैं यदि वे कूट (विष लगे) आयुधोंसे युद्ध न करैं ३२४

पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्वप्यनिवर्तिनाम्। राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम्॥

पद-पदानि १ क्रतुतुल्यानि १ भग्नेषु ७ अपिऽ-अनिवर्तिनाम् ६ राजा १ सुकृतम् २ आदत्ते क्रि-हतानाम् ६ विपलायिनाम् ६ ॥

योजना-भग्नेषु अपि अनिवर्तिनां पदानि क्रतुतुल्यानि भवंति, विपलायिनां हतानां सुकृतं राजा आदत्ते ॥

ता० भा०-अपने हाथी अश्व रथ आदिके भग्न (टूट) होने परभी जो अनिवर्ती (न हटते) हैं अर्थात् पराई सेनाके सन्मुख चलते हैं उनके पद अश्वमेघ यज्ञके तुल्य हैं। और जो पलायन करते हैं अर्थात् पराङ्मुख होजाते हैं उन मरे हुओंके पुण्यको राजा लेताहै ॥ ३२५ ॥

तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतम्। न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥

पद-तव ६ अहम् १ वादिनम् २क्लीबम् २ निर्हेतिम् २ परसंगतम् २ नऽ-हन्यात् क्रि-विनिवृत्तम् २चऽ-युद्धप्रेक्षणकादिकम् २ ॥

योजना-अहं तव अस्मि इति वादिनं क्लीवं निर्हेतिं परसगतम् च पुनः विनिवृत्तं युद्धप्रेक्षणकादिक न हन्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मैं तेरा हूं ऐसे कहे, नपुंसक, आयुधसे रहित हो, अन्यके सग युद्ध करता हो, युद्ध करके बैठ रहाहो, और जो युद्धको देख रहा हो इतने शत्रुओंको न मारै आदि पदके ग्रहणसे अश्व और सारथि आदिका ग्रहण है, सोई गौतमने कहा है कि संग्राममें हिंसाका दोष इनको छोडकर है कि अश्व, सारथि, अनायुध (शस्त्ररहित), कृतांजलि, केशोंको फैलाये हुए, पराङ्मुख, बैठा हुआ, स्थल और वृक्षपर चढा हुआ, दूत, गौ, ब्राह्मण, वादी (कहै), शखनेभी कहाहै कि राजासे अतिरिक्त पुरुष, पानी पीता हुआ, भोजन करता हुआ, क्षत्रियसे अतिरिक्त, जूतोंको छोडता हुआ (छोडकर भागता हुआ), स्त्री, हथनी, अश्व, सारथि, दूत, ब्राह्मण और राजा इनको न मारै ॥

भावार्थ-तेरा हूं ऐसे कहता हुआ, नपुसक, निरायुध, दूसरेसे युद्ध करता हुआ, युद्धसे निवृत्त हुआ, युद्धको देखनेवाला और आदि शब्दसे अश्व सारथि इनको न मारै ॥ ३२६॥

कृतरक्षः समुत्थाय पश्येदायव्ययौ स्वयम्। व्यवहारांस्ततो दृष्ट्वा स्नात्वा भुंजीतकामतः।

---

१ न दोषो हिंसायामाहवेऽन्यत्राश्वसारथ्यनायुधकृतांजलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षारूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः ।

२ न पानीयं पिवन्तं न भुंजान नावमाणं नोपानहौ मुचतं न सवर्मा न स्त्रियं न करेणुं न वाजिन न सारथि न दूतं न ब्राह्मणं न राजानमराजा हन्यात् ।

पद्-कृतरक्षः १ समुत्थायऽ-पश्येत् क्रि-आयव्ययौ २ स्वयम्ऽ-व्यवहारान् २ ततःऽ-दृष्ट्वा-स्नात्वाऽ-भुंजीत क्रि-कामतःऽ-॥

योजना-कृतरक्षः समुत्थाय आयव्ययौ स्वयम् पश्येत् ततः व्यवहारान् दृष्ट्वा स्नात्वा कामतः भुंजीत ॥

ता० भा०-नगर और आत्माका रक्षक प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्वयं आय (आमदनी) और व्यय (खर्च) इनको देखै फिर व्यवहारोंको देखकर मध्याह्नकालमें स्नान करके इच्छासे यथाकाल भोजन करै ॥ ३२७ ॥

हिरण्यं व्यापृतानीतं भांडागारेषु निक्षिपेत्। पश्येच्चारांस्ततो दूतान्प्रेषयेन्मंत्रिसंगतः ॥

पद्-हिरण्यम्२व्यापृतानीतम् २ भाण्डागारेषु ७ निक्षिपेत् क्रि-पश्येत् क्रि-चारान् २ ततःऽ-दूतान् २ प्रेषयेत् क्रि-मंत्रिसंगतःऽ ॥

योजना-राजा व्यापृतानीतं हिरण्यं भांडागारेषु निक्षिपेत् ततः मंत्रिसंगतः चारान् पश्येत् दूतान् प्रेषयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-तदनतर सुवर्ण आदिके लानेमें नियुक्त किये पुरुषोंके लाये हुए सुवर्ण आदि द्रव्यको स्वय देखकर भाण्डागार (भंडार) में रखवावै, फिर सन्मुख आये हुए विश्वासी (जिनका भरोसा) चारोंको देखै जो दूसरे राज्यके वृत्तान्त जाननेके लिये परिव्राजक (संन्यासी) तपस्वी आदिके भेषको धारकर गुप्त विचरते हैं उन भेजे हुए चारोंको देखकर कहीं स्थापित करै। फिर उसके अनंतर दूतोंको देखै । दूत वे होतेहैं कि जो प्रकट रूपसेही अन्य राजासे गतागत वृत्तांतको कहते हैं। वे दूत तीन प्रकारके होते हैं कि निसृष्टार्थ, संदिष्टार्थ और शासनहारी। तिनमें निसृष्टार्थ वे होते हैं कि जो देश कालमें उचित राजकार्यको स्वयं कहनेको समर्थ हों और सदिष्टार्थ वे कि जो कहे हुएको दूसरेके प्रति निवेदन करैं। और शासनहारी वे कि जो राजाके लेख (पत्र) आदिको लेजायँ इन पहिले प्रेषित (भेजेहुए) दूत जब आवैं उनको मंत्रीसहित देखै और तिनसे वृत्तान्तको पूछकर फिर भेजै ॥

भावार्थ-सुवर्ण आदिके लानेमें नियुक्त किये पुरुषोंके लाये हुए सुवर्ण आदिको भाण्डागार (भडार) में रक्खै। फिर मत्री सहित चार और दूतोंको देखै ॥ ३२८ ॥

ततःस्वरविहारी स्यान्मंत्रिभिर्वासमागतः । बलानां दर्शनं कृत्वासेनान्या सहचिंतयेत्॥

पद्-ततःऽ-स्वैरविहारी १ स्यात् क्रि-मंत्रिभिः ३ वाऽ-समागतः १ बलानाम् ६ दर्शनम् २ कृत्वाऽ-सेनान्या ३ सहऽ-चिंतयेत् क्रि-॥

योजना-ततः मंत्रिभिः समागतः सन् स्वैरविहारी स्यात् । बलानां दर्शन कृत्वा सेनान्या सह चिंतयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-तिससे पीछे अपराह्ण कालमें अकेला अथवा परिहास (हँसी) के जाननेवाले और कला (चतुराई) में कुशल ऐसे विश्वासी मत्री अथवा रूप यौवन और हास्य इनसेयुक्त इन स्त्री सहित अन्तःपुर(विहारस्थान) में यथेष्ट विहार करै। क्योंकि मनुका वचन है कि भोजन करके रणवासमें स्त्रीको साथ लेकर विहार करै और विहार करके पुनः कार्योंकी चिन्ता करै फिर सुंदर वस्त्र पुष्प विलेपन (चंदन आदि) अलकार आदिसे शोभित हाथी अश्व, रथ और सेनाओंको देखकर सेना-

---

१ भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह । विहृ-त्य च यथाकाम पुनः कार्याणि चिंतयेत् ॥

पतिसहित तिसकी देशकालमें उचित रक्षा आदिका विचार करै ॥

भावार्थ–फिर अकेला वा मंत्रियोंसे सहित अन्तःपुरमें विहार करै फिर सेनाओंको देखकर सेनापतिसहित उसकी रक्षा आदिकी चिंता करै ॥ ३२९ ॥

संध्यामुपास्य शृणुयाच्चाराणां गूढभाषितम्। गीतनृत्यैश्च भुंजीत पठेत्स्वाध्यायमेव च ॥

पद्–संध्याम् २ उपास्यऽ–शृणुयात् क्रि–चाराणाम् ६ गूढभाषितम् २ गीतनृत्यैः ३ चऽ–भुंजीत क्रि-पठेत् क्रि-स्वाध्यायम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना–संध्याम् उपास्य चाराणा गूढभाषितं शृणुयात् च पुनः गीतनृत्यैः क्रीडित्वा भुंजीत च पुनः स्वाध्यायं पठेत् ॥

ता० भा०–फिर सायंकालके समय सध्योपासन करै। संध्योपासन सामान्यसेही प्राप्त था फिर लिखना इस लिये है कि वहुतसे कार्योंमे व्याकुल होनेसे विस्मरण न हो। फिर जो पूर्व (प्रातःकाल) देखकर किसी स्थानमें जो बैठा रक्खेथे उन चार पुरुषोंके गुप्तभाषणको किसी मकानके भीतर शस्त्रको धारण किये हुए सुनै। वही उस वचनमें कहाहै कि शस्त्रधारी राजा संध्योपासन करके गुप्तभाषी चारोंके चेष्टितको गृहके भीतर सुनै। फिर नृत्य गति आदिसे कुछ काल खेलकर अन्य गृहमें प्रविष्ट होकर भोजन करै। क्योंकि यह वचन है कि उस (रणवासके) मनुष्यको अनुज्ञा देकर अन्य गृहमें जाकर भोजनके लिये स्त्रियों सहित अंतःपुरमें प्रवेश करै फिर जैसे विस्मरण न हो इस लिये यथाशक्ति स्वाध्याय (वेदको) पढै ॥

भावार्थ–फिर सध्योपासन करै, चारपुरुषोंके गुप्त भाषणको सुनै, फिर नृत्यगीत आदिसे मन प्रसन्न करके भोजन करै फिर वेदको पढै॥ ३३०॥

संविशेत्तूर्यघोषेण प्रतिबुध्येत्तथैव च। शास्त्राणि चिंतयेद्बुद्ध्वा सर्वकर्तव्यतास्तथा॥

पद्–सविशेत् क्रि–तूर्यघोषेण ३ प्रतिबुध्येत् क्रि–तथाऽ–एवऽ–चऽ–शास्त्राणि २ चिंतयेत् क्रि–बुद्ध्वाऽ–सर्वकर्त्तव्यताः २ तथाऽ– ॥

प्रेषयेच्च ततश्चारान्स्वेष्वन्येषु च सादरान्। ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैराशीर्भिरभिनंदितः॥

पद्–प्रेपयेत् क्रि–चऽ–ततःऽ–चारान् २ स्वेषु ७ अन्येषु ७ चऽ–सादरान् २ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः ३ आशीर्भिः ३ अभिनंदितः १ ॥

दृष्ट्वा ज्योतिर्विदो वैद्यान्दद्याद्गां कांचनं महीम्। नैवेशिकानि च ततःश्रोत्रियेभ्यो गृहाणि च ॥ ३३३ ॥

पद्–दृष्ट्वाऽ–ज्योतिर्विदः २ वैद्यान् २ दद्यात् क्रि–गाम् २ कांचनम् २ महीम् २ नैवोशिकानि २ चऽ–ततःऽ–श्रोत्रियेभ्यः ४ गृहाणि २ चऽ– ॥

योजना–तूर्यघोषेण संविशेत् च पुनः तथैव प्रतिबुध्येत्, तथा शास्त्राणि सर्वकर्त्तव्यताः चिंतयेत् च पुनः स्वेषु अन्येषु च चारान् प्रेषयेत् ततः ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैः आशीर्भिः अभिनंदितः सन् ज्योतिर्विदः वैद्यान् दृष्ट्वा श्रोत्रियेभ्यः गां कांचनं मही नैवेशिकानि गृहाणि दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–तिसके अनंतर तूर्य (वाजे) शंख आदिके शब्दसहित सोवै और तूर्य आदिके शब्दसे ही उठै और उठकर शास्त्रके जानने-वाले विश्वासी मनुष्यों सहित वा अकेला दूसरे प्रहरमें शास्त्रोंका विचार और संपूर्ण कार्योंकि

---

१ संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्। रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥

२ गत्वा कक्षांतर त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम्। प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीभिरन्तःपुर सह ॥

चिंता करै। यह संपूर्ण स्वस्थके प्रति है यदि स्वस्थ न हो तो सब कार्योंमें अन्यको नियुक्त करै। सोई मनुमें कहाहै कि इस वृत्त (प्रजापालन आदि) रोगसे रहित राजा स्थित हो और यदि अस्वस्थ (रोग आदिसे युक्त) हो तो इस संपूर्ण कार्योंमें किसी मुख्य मंत्रीको नियुक्त करै। फिर वहांही स्थित हुआ विश्वासी और दान मान आदि सत्कारोंसे पूजित चार पुरुषोंको सामन्त आदि अधिकारी और अन्यमहीपतियोंके प्रति उनके चिकीर्षित (जो करनेको इष्ट हो) कार्यके जाननेके लिये भेजै। फिर प्रातः संध्योपासनको और अग्निहोत्रको करके पुरोहित ऋत्विक् आचार्य आदिकी दी आशीर्वादोंसे अभिनंदित होकर ज्योतिषियोंको देखै और उनसे ग्रह आदिकी स्थितिको जानकर और उनकी शांतिके आदि कर्म करनेकी आज्ञा पुरोहितोंको दे। फिर वैद्योंको देखकर उनसे अपने शरीर आदिकी दशाका निवेदन और प्रतिविधान (चिकित्सा) कहकर दूध देती गौ सुवर्ण मही (पृथ्वी) और नैवेशिक अर्थात् विवाहयोग्य कन्याके अलंकार आदि और सफेद गृह वेदपाठी ब्राह्मणोंको दे ॥

भावार्थ-वाजे और शंखके शब्दसे सोवै और जगे और संपूर्ण करने योग्य कार्य्योंको कहकर शास्त्रोंको विचारै फिर अपने और पराये कार्योंमें ऋत्विज पुरोहित आचार्य इनकी आशीर्वादको लेकर अपने और पराये कार्योंमें दूतोंको भेजे। ज्योतिषी और वैद्य इनको देखकर गौ सुवर्ण पृथिवी और गृह आदिको वेदपाठी ब्राह्मणोंको दे ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥

---

१ एतद्वृत्त समातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः। अस्वस्थः सर्वमेवैतन्मन्त्रिमुख्ये निवेदयेत् ॥

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनोऽरिषु। स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥ ३३४ ॥

पद्-ब्राह्मणेषु ७ क्षमी १ स्निग्धेषु ७ अजिह्मः १ क्रोधनः १ अरिषु ७ स्यात् क्रि-राजा १ भृत्यवर्गेषु ७ प्रजासु ७ चऽ-यथाऽ-पिता १ ॥

योजना-राजा ब्राह्मणेषु क्षमी, स्निग्धेषु अजिह्मः अरिषु क्रोधनः भृत्यवर्गेषु च पुनः प्रजासु यथा पिता राजा तथा स्यात् ॥

ता० भा०-निंदा करनेवाले ब्राह्मणोंमेंभी क्षमावान्, मित्रोंमें निष्कपट, शत्रुओंमें क्रोधी और भृत्यवर्ग और प्रजाओंमें पिताके समान राजा रहै ॥ ३३४ ॥

पुण्यात्षड्भागमादत्तेन्यायेनपरिपालयन्। सर्वदानाधिकंयस्मात्प्रजानांपरिपालनम्॥

पद्-पुण्यात् ५ षड्भागम् २ आदत्ते क्रि-न्यायेन ३ परिपालयन् १ सर्वदानाधिकम् १ यस्मात् ३ प्रजानाम् ६ परिपालनम् १॥

योजना-यस्मात् प्रजानां परिपालनं सर्वदानाधिकम् अस्ति तस्मात् न्यायेन परिपालयन् राजा षड्भागम् आदत्ते। तस्मात् राजा प्रजानां पिता इव अस्ति ॥

ता० भा०-जिससे प्रजाओंकी पालना सब दानोंसे अधिक है तिससे न्यायसे पालना करता हुआ राजा प्रजाओंके किये छठे भागको प्राप्त होता है। तिससे राजा प्रजाओंके पिताके समान है ॥ ३३५ ॥

चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः। पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः ॥

पद्-चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः ३ पीड्यमानाः २ प्रजाः २ रक्षेत् क्रि-कायस्थैः ३ चऽ-विशेषतःऽ-॥

योजना-चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिका-

दिभिः च पुनः विशेषतः कायस्थैः पीड्यमानाः प्रजाः राजा रक्षेत् ॥

तात्पर्यार्थ–चाट जो विश्वास देकर धनको हरते हैं वे ठग और छिपकर जो धनको हरैं वे तस्कर (चोर), दुर्वृत्त (इंद्रजालिक और कितव आदि) और बलसे धन हरनेवाले महासाहसिक, आदि शब्दसे मोल कुहकवृत्ति लेने इनसे पीडित और विशेषकर कायस्थ अर्थात् गणक और लेखक उनसे पीडित प्रजाकी रक्षा करै क्योंकि वे राजाके प्यारे और बडे मायावी होते हैं उनसे बचना कठिन है ॥

भावार्थ–ठग, चौर, इद्रजाली, महासाहसिक और विशेषकर कायस्थ इनसे पीडित प्रजाकी रक्षा करै ॥ ३३६ ॥

अरक्ष्यमाणाः कुर्वंति यत्किंचित्किल्बिषं प्रजाः। तस्मात्तु नृपतेरर्धं यस्मादगृह्णात्यसौ करान् ॥ ३३७ ॥

पद–अरक्ष्यमाणाः १ कुर्वंति क्रि–यत् २ किंचित्ऽ–किल्बिषम् २ प्रजाः १ तस्मात् ५ तुऽ–नृपतेः ६ अर्द्धम् १ यस्मात् ५ गृह्णाति क्रि–असौ १ करान् २ ॥

योजना–यस्मात् असौ राजा करान् गृह्णाति तस्मात् अरक्ष्यमाणाः प्रजाः यत् किंचित् किल्बिष कुर्वन्ति तस्मात् नृपतेः अर्द्धं भवति ॥

ता० भा०–जिससे राजा प्रजाओंसे कर लेताहै तिसमे नही रक्षा की हुई प्रजा जो पाप करती है उससे आधा राजाको मिलताहै ॥ ३३७ ॥

ये राष्ट्राधिकृतास्तेषां चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टितम्। साधून्संमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत् ॥

पद–ये १ राष्ट्राधिकृताः १ तेषाम् ६ चारैः ३ ज्ञात्वाऽ–विचेष्टितम् १ साधून् २ संमानयेत् क्रि–राजा १ विपरीतान् २ चऽ–घातयेत् क्रि–॥

उत्कोचजीविनो द्रव्यहीनान्कृत्वा विवासयेत्। सदानमानसत्कारान्श्रोत्रियान्वासयेत्सदा ॥ ३३९ ॥

पद–उत्कोचजीविनः २ द्रव्यहीनान् २ कृत्वाऽ–विवासयेत् क्रि–सदानमानसत्कारान् २ श्रोत्रियान् २ वासयेत् क्रि–सदाऽ–॥

योजना–ये राष्ट्राधिकृताः तेषा विचेष्टितं चारैः ज्ञात्वा साधून् संमानयेत् विपरीतान् घातयेत् उत्कोचजीविनः द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् सदानमानसत्कारान् श्रोत्रियान् सदा वासयेत् ॥

ता० भा०–जो अपने राज्यके अधिकारोंमें नियुक्त हैं उनके आचरणोंको पूर्वोक्त चारोंसे जानकर उनमें जिनका श्रेष्ठ आचरण हो उनकी दान मान सत्कारोंसे पूजा और जिनका दुष्ट आचरण हो उनका हनन राजा अपराधके अनुसार करावै और जो उत्कोच (रिशवत) से जीतेहों उनके द्रव्यको छीनकर अपने राष्ट्र (देश) से निकास दे और वेदपाठियोंको दान मान सत्कार कर सदैव बसावै ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अन्यायेन नृपो राष्ट्रात्स्वकोशं योऽभिवर्धयेत्। सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबांधवः ॥

पद–अन्यायेन ३ नृपः १ राष्ट्रात् ५ स्वकोशम् २ यः १ अभिवर्द्धयेत् क्रि–सः १ अचिरात्ऽ–विगतश्रीकः १ नाशम् २ एति क्रि–सबांधवः १ ॥

योजना–यो नृपः अन्यायेन राष्ट्रात् स्वकोशम् अभिवर्द्धयेत् सः अचिरात् विगतश्रीकः सन् सबांधवः नाशम् एति ॥

ता० भा० जो राजा अन्यायसे अपने कोशको राज्यमेंसे बढाताहै वह थोडेही कालमें लक्ष्मीसे हीन होकर बांधवोंसहित नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३४० ॥

प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलं श्रियंप्राणांश्चादग्ध्वाननिवर्तते॥

पद-प्रजापीडनसंतापात् ५ समुद्भूतः १ हुताशनः १ राज्ञः ६ कुलम् २ श्रियम् २ प्राणान् २ चऽ-अदग्ध्वाऽ-नऽ-निवर्त्तते क्रि-॥

योजना-प्रजापिडनसंतापात् समुद्भूतः हुताशनः राज्ञः कुलं, श्रियं, प्राणान् अदग्ध्वा न निवर्त्तते ॥

तात्पर्यार्थ, भावार्थ-तस्कर आदिके किये प्रजाओंके संतापसे पैदा हुई जो अग्नि अर्थात् पापकी राशि है वह राजाका कुल लक्ष्मी प्राण इनके विना दग्ध किये नहीं शान्त होती अर्थात् सबको दग्ध करदेती है ॥ ३४१ ॥

य एव नृपतेर्धर्मः स्वराष्ट्रपरिपालने । तमेव कृत्स्नमाप्नोति परराष्ट्रं वशं नयन् ॥३४२॥

पद-यः १ एवऽ-नृपतेः ६ धर्मः १ स्वराष्ट्रपरिपालने ७ तम् २ एवऽ-कृत्स्नम् २ आप्नोति क्रि-परराष्ट्रम् २ वशम् २ नयन् १ ॥

योजना-स्वराष्ट्रपरिपालने यः धर्मः नृपतेः अस्ति, परराष्ट्रं वश नयन् सन् तम् एव (धर्मं) कृत्स्नम् आप्नोति ॥

ता० भा०-न्यायसे अपने देशकी रक्षामें जो राजाका धर्म है वक्ष्यमाण न्यायसे दूसरेके देशको अपने अधीन करता हुआ राजा उसी सकल धर्मको प्राप्त होताहै ॥ ३४२ ॥

यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारःकुलस्थितिः तथैव परिपाल्योसौ यदावशमुपागतः३४३

पद-यस्मिन् ७ देशे ७ यः १ आचारः १ व्यवहारः १ कुलस्थितिः १ तथाऽ- एवऽ-परिपाल्यः १ असौ१ यदाऽ-वशम् २उपागतः १॥

योजना-यदा यः देशः वशम् उपागतः तदा यस्मिन् देशे यः आचारः व्यवहारः कुलस्थितिः यथा आसीत् तथा असौ परिपाल्यः राज्ञेति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जब पराये देश अपने देशमें होजाय तब अपने देशके आचार आदिके संग उसके आचारका संकर (मेल) न करै, अर्थात् जिस देशमें जो आचार कुलकी स्थिति (मर्यादा) और व्यवहार जिस प्रकार पूर्व हो तिसी प्रकार उस धर्मकी रक्षा करै, यदि वह शास्त्रविरुद्ध न हो तो, (यदावशम् उपागतः) इसके लिखनेसे यह दिखाया कि वश होनेसे पूर्व इस पूर्वोक्तका अनियम है तैसेही वचन है कि शत्रुको दाबकर बैठे और इसके देशको परिपीडित करे और इसके घास अन्न जल इंधन इनको दूषित करदे ॥

भावार्थ-जिस देशमें जो आचार व्यवहार कुलकी मर्यादा हो उस देशके वश होनेपर उसका प्रचार वैसेही करना ॥ ३४३ ॥

मंत्रमूलं यतो राज्यं तस्मान्मंत्रं सुरक्षितम्। कुर्याद्यथास्यनविदुःकर्मणामाफलोदयात् ॥

पद-मंत्रमूलम् १ यतःऽ-राज्यम् १ तस्मात् ५ मंत्रम् २ सुरक्षितम् २ कुर्यात् क्रि-यथाऽ-अस्य ६ नऽ-विदुः क्रि-कर्मणाम् ६ आऽ-फलोदयात् ५ ॥

योजना-यतः राज्यं मत्रमूलम् अस्ति तस्मात् यथा अस्य मंत्रं कर्मणाम् आफलोदयात् जनाः न विदुः तथा सुरक्षित मंत्रं कुर्यात् ॥

ता० भा०-जिससे मन्त्रियोंके संग राज्यकी चिन्ता करै, यह पूर्वोक्त मत्र राज्यका मूल है, तिससे मंत्रकी उस भले प्रकारसे रक्षा करै जैसे इस राजाके संधि विग्रह आदि

---

१ उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् । दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥

कर्मोंको फलकी सिद्धिके लिये कोई अन्यपुरुष न जाने॥ ३४४॥

अरिर्मित्रमुदासीनोनंतरस्तत्परः परः।
क्रमशो मंडलं चिंत्यं सामादिभिरुपक्रमैः॥

पद-अरिः १ मित्रम् १ उदासीनः १ अनन्तरः १ तत्परः १ परः १ क्रमशः ऽ-मंडलम् १ चिन्त्यम् १ सामादिभिः ३ उपक्रमैः ३॥

योजना-अरिः मित्रम् उदासीनः अनंतरः तत्परः परः-एतन्मण्डलं क्रमशः सामादिभिः उपक्रमैः चिन्त्यम्॥

तात्पर्यार्थ-अरि (शत्रु), मित्र और दोनों लक्षणों (शत्रुता मित्रता) से हीन उदासीन ये तीनों तीन २ प्रकारके हैं कि सहज, कृत्रिम, प्राकृत। उनमें सहजशत्रु वह होता है कि जो सापत्न (माकी सौतका पुत्र) पितृव्य और उसके पुत्र आदि कृत्रिम शत्रु जिसका अपकार कियाहो वा जिसने अपना अपकार कियाहो, प्राकृत शत्रु समीपके देशका राजा होता है और सहज मित्र भानजा फूफी और मौसीका पुत्र और कृत्रिम मित्र जिसको उपकार कियाहो वा जिसने अपना उपकार किया हो और प्राकृत मित्र उस देशका राजा जिसके देशमें एक देशका अन्तर हो और सहज और कृत्रिम मित्र वा शत्रुके लक्षण जिसमें न हों वह सहज कृत्रिमोदासीन और जिसके देश और अपने देशके बीचमें दो देश पडें वह प्राकृत उदासीन, इससे ये नौ भेद हुए। शत्रुभी चार प्रकारका होताहै। यातव्य, उच्छेत्तव्य, पीडनीय और कर्शनीय। उनमें यातव्य (चढने योग्य) समीपका राजा होता है, उच्छेत्तव्य वह है कि व्यसनी सेनासे हीन प्रजा जिसके वशमें न हों, दुर्ग न हो, मित्रसे हीन हो और दुर्बल हो, वह उखाडने योग्य है अर्थात् उसके सिंहासनको छीनले और मंत्र और सेनासे जो हीन वह पीडनीय होता है, जिसके मित्र और सेना बलवान् हो वह कर्शनीय है, सोई नीतिका वचन है कि निर्मूल करनेसे समुच्छेद, और बल (सेना) के निग्रहको पीडन, कोश और दण्डके छीननेको कर्शन कहते हैं। मित्रकेभी दो भेद हैं एक बृहणीय और कर्शनीय। कोश और सेनासे जो हीन वह बृहणीय (बढाने योग्य) और कोश सेनासे जो अधिक वह कर्शनीय (क्लेश करने योग्य)। अब प्राकृत मित्र अरि और उदासीनोंको कहते हैं। कि अनंतर जिसका देश समीप हो वह प्राकृत अरि, उससे परला प्राकृतमित्र और उससे परला प्राकृत उदासीन। शेष भेद प्रसिद्ध होनेसे नहीं कहे। यह राजमण्डल पूर्व आदि क्रमसे जानने योग्य है अर्थात् उनके आचरणको जानकर साम दान आदि वक्ष्यमाण उपायोंकी चिंता करे। इस प्रकार आगे पीछे दोनों पार्श्वोंमें तीन २ और एक आप इन त्रयोदश राजरूप यह राजमडल पद्मके आकार होता है और पार्ष्णिग्राह आक्रदासार आदि तो अरि मित्र उदासीनोंके बीचमें आजाते हैं उनके नाममात्रसेही भेद हैं। अन्य ग्रंथोंमें वे भेद दिखाये हैं इससे याज्ञवल्क्यने भेद पृथक् नहीं कहे॥

भावार्थ-अरि, मित्र, उदासीन, प्राकृतशत्रु, प्राकृतमित्र, प्राकृत उदासीन इस राजमण्डलका साम आदि उपायोंसे विचार करे॥ ३४५॥

उपायाः साम दानं च भेदो दंडस्तथैव च। सम्यक्प्रयुक्ताः सिध्येयुर्दंडस्त्वगतिका गतिः॥ ३४६॥

---

१ निर्मूलनात्समुच्छेद पीडनं बलनिग्रहम्। कर्शनं तु पुन. प्राहुः कोशदडापकर्षणात्॥

पद्-उपायाः १ साम १ दानम् १ चऽ-भेदः १ दण्डः १ तथाऽ-एवऽ-चऽ-सम्यक्प्रयुक्ताः १ सिध्येयुः क्रि-दण्डः १ तुऽ-अगतिका १ गतिः १ ॥

योजना-साम च पुनः दानम्, भेदः च पुनः तथैव दण्डः एते उपायाः सम्यक्प्रयुक्ताः सिध्येयुः च पुनः दण्डः अगतिका गतिः भवति ।

तात्पर्यार्थ--साम प्रियवचन, सुवर्ण आदिका दान, भेद अर्थात् भेदसे मंत्र आदिकोंको नष्ट करके वैरको पैदा करना, दण्ड अर्थात् छिपकर और प्रकाशसे धन छीनने आदि वधपर्यंत अपकार करना, ये साम आदि उपाय शत्रु आदिके साधनोंके उपाय हैं । यदि ये देशकाल आदिके अनुसार भले प्रकार किये जायँ तो अगतिकगति है अर्थात् अन्य उपाय न हो सकै तो देना चाहिये । यह दंडभी पीडनीय है और कर्शनीय शत्रुके लिये नहीं है किंतु यातव्य और उच्छेत्तव्य शत्रुके लिये है और ये साम आदि उपाय कुछ राजाकेही व्यवहारमें नहीं किंतु सब जगत्के व्यवहारमें हैं, जैसे कहा है कि हे पुत्र ! पढ तुझे मोदक दूंगा न पढैगा तो मोदक अन्यको दूगा और तेरे कान फाडूंगा ॥

भावार्थ-साम, दान, भेद, दंड ये चार उपाय भले प्रकार करनेसे सिद्ध होते हैं, और इनमें दंड अगतिक गति है (लाचारीमें है)३४६॥

संधिं च विग्रहंचैव यानमासनसंश्रयौ ।
द्वैधीभावंगुणानेतान्यथावत्परिकल्पयेत् ॥

पद्-सधिम् २ चऽ-विग्रहम् २ चऽ-एवऽ-यानम् २ आसनसश्रयौ २ द्वैधीभावम् २ गुणान् २ एतान् २ यथावत्ऽ-परिकल्पयेत् क्रि-॥

योजना-सधिं च पुनः विग्रहं च पुनः यानम् आसनसश्रयौ द्वैधीभावम् एतान् गुणान् यथावत् परिकल्पयेत् ॥

ता० भा०-सन्धि (मेल), विग्रह (अपकार), यान अर्थात् शत्रुके ऊपर चढना, आसन (छोडकर बैठ रहना), संश्रय (बलवान्के साथ मिलना) और द्वैधीभाव अर्थात् अपनी सेनाको दो प्रकारकी करनी । इन साधि आदि गुणोंकी देश काल शक्ति और मित्र इनके वशसे कल्पना करै ॥ ३४७ ॥

यदासस्यगुणोपेतंपरराष्ट्रंतदाव्रजेत् ।
परश्चहीनआत्माचहृष्टवाहनपूरुषः॥३४८॥

पद्-यदाऽ-सस्यगुणोपेतम् १ परराष्ट्रम् २ तदाऽ-व्रजेत् क्रि-परः १ चऽ-हीनः १ आत्मा १ चऽ-हृष्टवाहनपूरुषः १ ॥

योजना-यदा परराष्ट्र सस्यगुणोपेत परः शत्रुः हीनः च पुनः आत्मा हृष्टवाहनपूरुषः स्यात् तदा व्रजेत् १ ॥

ता० भा०-जब व्रीहि आदि सस्य और जल इंधन आदि गुणोंसे युक्त शत्रुका देश हो और शत्रु वल आदिसे हीन हो और आप प्रसन्न हुए हस्ती अश्व आदि वाहन और मनुष्य इनसे युक्त हो तब शत्रुके देशको अपने अधीन करनेको चढै ॥ ३४८ ॥

दैवेपुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता ।
तत्रदैवमभिव्यक्तं पुरुषं पौर्वदेहिकम्३४९॥

पद्-दैवे ७ पुरुषकारे ७ चऽ-कर्मसिद्धिः १ व्यवस्थिता १ तत्रऽ-दैवम् १ अभिव्यक्तम् १ पौरुषम् १ पौर्वदेहिकम् १ ॥

योजना-दैवे च पुनः पुरुषकारे कर्मसिद्धिः व्यवस्थिता तत्र दैव पौर्वदेहिक पौरुषम् अभिव्यक्तं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-प्राणियोंका अभ्युदय (ऐश्वर्यकी प्राप्ति) और विनिपात ये दैव (भाग्य) के अधीन हैं इससे यदि दैव है तो स्वयं ही

१ अधीष्व पुत्रकाधीष्व दास्यामि तव मोदकान् । यद्वाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णमुत्पाटयामि ते ॥

पर (शत्रु) के देश आदि वश होजायँगे और यदि दैव नहीं है तो पुरुषार्थ करनेपरभी वश न होंगे इससे यह यात्रा आदिका प्रसंग व्यर्थ है इस शंकासे कहते हैं कि इष्ट (अपनेको वांछित) और अनिष्टरूप जो कर्मकी सिद्धि अर्थात् फलकी प्राप्ति है वह केवल दैवके अधीन नहीं किन्तु पुरुषकार (पुरुषार्थ) केभी अधीन है, क्योंकि ससारमें तिसी प्रकार (पुरुषार्थसे सिद्ध) देखा जाता है और यदि ऐसाही मानोगे तो चिकित्सक आदिकोंके शास्त्र (चरक सुश्रुत आदि) भी व्यर्थ हो जायँगे और पुरुषार्थके विना दैवही सिद्ध नहीं, सोई कहते हैं कि क्योंकि दैव उसेही कहते हैं जो पूर्व देहसे अर्जित (इकट्ठा) किया पुरुषार्थ है और वह थोडे पुरुषार्थके करनेसे महाफलकी जो प्राप्ति है उससे प्रतीत हुआ पौरुष पौर्वदेहिक कर्म है, तिससे पुरुषार्थके विना दैव नहीं हो सक्ता इससे उस पुरुषार्थमें यत्न करना ॥

भावार्थ–कर्मकी सिद्धि दैव और पुरुषकार (पुरुषार्थ) में व्यवस्थित है तिसमें दैव पूर्व देहसे इकट्ठा किया पुरुषार्थ प्रतीत होता है ॥ ३४९ ॥

केचिद्दैवात्स्वभावाद्वा कालात्पुरुषकारतः ।
संयोगे केचिदिच्छंति फलं कुशलबुद्धयः ॥

पद–केचित् १ दैवात् ५ स्वभावात् ५ वाऽ–कालात् ५ पुरुषकारतःऽ–सयोगे ७ केचित् १ इच्छंति क्रि–फलम् २ कुशलबुद्धयः १ ॥

योजना–फल केचित् दैवात्, केचित् स्वभावात्, केचित् कालात्, केचित् पुरुपकारतः इच्छंति केचित् कुशलबुद्धयः संयोगे इच्छंति ॥

ता० भा०–कोई इष्ट अनिष्ट फलकी प्राप्तिको दैवसे, कोई स्वभाव अर्थात् कारण-के विनाही और कोई कालसे और कोई पुरुपार्थसे मानते हैं, अपने मतको कहते हैं कि कुशलबुद्धिवाले मनु आदि यह मानते हैं कि दैव आदिके समुच्चय (इकट्ठा) होनेपर फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३५० ॥

यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत् ।
एवं पुरुषकारेणविना दैवं न सिद्ध्यति ॥

पद–यथाऽ–हिऽ–एकेन ३ चक्रेण३ रथस्य ६ नऽ–गतिः १ भवेत् क्रि–एवम्ऽ–पुरुषकारेण ३ विनाऽ–दैवम् २ नऽ–सिद्ध्यति क्रि–॥

योजना–यथा हि रथस्य गतिः (गमनम्) एकेन चक्रेण न भवति एव पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥

ता० भा०–अकेलेसे फल सिद्ध नहीं होता । इसमें दृष्टांत कहते हैं कि जैसे एक चक्र (पहिया) से रथ नहीं चलता इसी प्रकार विना पुरुषार्थ दैव नहीं सिद्ध होता है ॥ ३५१ ॥

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः ।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत्सत्यं समाहितः ॥

पद–हिरण्यभूमिलाभेभ्यः ५ मित्रलब्धिः १ वरा १ यतःऽ–अतःऽ–यतेत क्रि–तत्प्राप्त्यै ४ रक्षेत् क्रि–सत्यम् २ समाहितः १ ॥

योजना–यतः हिरण्यभूमिलाभेभ्यः मित्रलब्धिः वरा अस्ति, अतः समाहितः सन् तत्प्राप्त्यै यतेत (च) सत्य रक्षेत् ॥

ता० भा०–लाभके लिये परराष्ट्र पर चढै यह पूर्व कहा यहां लाभ तीन प्रकारका है कि हिरण्यका लाभ, भूमिका लाभ और मित्रका लाभ, इनमें मित्रका लाभ सबसे श्रेष्ठ है तिससे उसकी प्राप्तिके लिये यत्न करना । वह प्राप्तिका यत्न सत्यवचन है सोई कहते हैं, कि जिससे हिरण्य और भूमिके लाभसे मित्रका लाभ श्रेष्ठ है तिससे तिसकी प्राप्तिमें यत्न और सावधान हुआ साम

आदि उपायोंसे सत्यकी रक्षा करै क्योंकि मित्रकी प्राप्तिमें सत्यही मूल (मुख्य उपाय) है ॥ ३५२ ॥

स्वाम्यमात्याजनोदुर्गं कोशो दंडस्तथैवच। मित्राण्येताःप्रकृतयोराज्यं सप्तांगमुच्यते ॥

पद्-स्वामी १ अमात्याः १ जनः १ दुर्गम्१ कोशः १ दण्डः १ तथाऽ-एवऽ-चऽ-मित्राणि१ एताः१प्रकृतयः१राज्यम्१सप्तांगम्१उच्यते क्रि-

योजना-स्वामी अमात्याः जनः दुर्गं कोशः दण्डः मित्राणि एताः प्रकृतयः भवति एवं राज्यं सप्तांगम् उच्यते ॥

ता० भा०-महोत्साह आदि जिसके लक्षण पूर्व कहे ऐसा महीपति स्वामी, मंत्री पुरोहित आदि अमात्य, ब्राह्मण आदि प्रजाके जन, धन्व-दुर्ग आदि, सुवर्ण आदि धनकी राशि कोश (खजाना), दण्ड अर्थात् हस्ती अश्व रथ पत्ति (पैदल मनुष्य) रूप चतुरंगसेना, सहज कृत्रिम प्राकृतादि मित्र, ये स्वामी आदि राज्यकी प्रकृति अर्थात् मूल कारण हैं, इस प्रकार राज्यको सप्तांग कहते हैं ॥ ३५३ ॥

तदवाप्य नृपो दंडं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्। धर्मो हि दंडरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ॥

पद्-तत् २ अवाप्यऽ-नृपः १ दंडम् २ दुर्वृत्तेषु ७ निपातयेत् क्रि-धर्मः १ हिऽ-दण्ड-रूपेण ३ ब्रह्मणा ३ निर्मितः १ पुराऽ- ॥

योजना-तत् (राज्यम्) अवाप्य नृपः दुर्वृत्तेषु दण्डं निपातयेत्, हि यतः धर्मः पुरा ब्रह्मणा दण्डरूपेण निर्मितः ॥

ता० भा०-उस राज्यको इस प्रकार प्राप्त होकर राजा वचक शठ आदि दुराचारि-योंमें उस दंडको दे, क्योंकि धर्मकोही दंडरूप ब्रह्माने पूर्व समयमें रचा है। दंड यह नाम यौगिक है क्योंकि गौतमने यह कहा है कि दमन करनेसे दंड कहते हैं तिससे दमनके जो योग्य उनका दमन करै ॥ ३५४ ॥

१ दण्डो दमनादित्याहुः तेनादांतान्दमयेत्।

सनेतुंन्यायतो शक्यो लुब्धेनाकृतबुद्धिना। सत्यसंधेन शुचिना सुसहायेन धीमता ॥

पद्-सः १ नेतुम्ऽ-न्यायतःऽ-अशक्यः १ लुब्धेन ३ अकृतबुद्धिना ३ सत्यसधेन ३ शुचिना ३ सुसहायेन ३ धीमता ३ ॥

योजना-लुब्धेन अकृतबुद्धिना राज्ञा स दंडः नेतुम् अशक्यः सत्यसधेन, शुचिना, सुसहायेन धीमता सः न्यायतः नेतु शक्यः ॥

ता० भा०-वह पूर्वोक्त दंड लोभी और चचलबुद्धि राजा न्यायसे नहीं दे सकता, और जो सत्यसध (निष्कपट) और शुद्ध और पूर्वोक्त सहायोंसहित और नय और धीमान् अर्थात् न्याय और अन्यायमें कुशल है ऐसा राजा उस दण्डको न्यायसे दे सकता है ॥ ३५५ ॥

यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन्सदेवासुरमानवम्। जगदानंदयेत्सर्वमन्यथा तत्प्रकोपयेत् ३५६

पद्-यथाशास्त्रम्ऽ-प्रयुक्तः १ सन् १ सदे-वासुरमानवम् १ जगत् २ आनदयेत् क्रि-सर्वम् २ अन्यथाऽ-तत् २ प्रकोपयेत् क्रि-॥

योजना-दंडः यथाशास्त्रं प्रयुक्तः सन् सदेवासुरमानवं सर्वं जगत् आनन्दयेत् अन्यथा तत् प्रकोपयेत् ॥

ता० भा०-शास्त्रोक्त मर्यादासे दिया वह दंड देवता असुर और संपूर्ण मनुष्यों सहित सब जगत्को आनंद करता है और शास्त्रके उल्लंघनसे दिया वह दंड सब जगत्को कुपित करता है ॥ ३५६ ॥

अधर्मदंडनं स्वर्गं कीर्तिं लोकांश्च नाशयेत्। सम्यक्तु दंडनं राज्ञःस्वर्गकीर्तिजयावहम् ॥

पद्-अधर्मदण्डनम् १ स्वर्गम् २ कीर्तिम् २

लोकान् २ चऽ–नाशयेत् क्रि–सम्यक् १ तुऽ–दण्डनम् १ राज्ञः ६ स्वर्गकीर्तिजयावहम् १ ॥

योजना–अधर्मदण्डनं राज्ञां स्वर्गं कीर्तिं च पुनः लोकान् नाशयेत् तु पुनः सम्यग्दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिजयावहं भवति ॥

ता० भा०–अधर्म (शास्त्रका उल्लंघन) से दिया हुआ दंड राजाके स्वर्ग कीर्ति और लोकोंको पापका हेतु होनेसे नष्ट करता है और शास्त्रोक्त प्रकारसे भली प्रकार दिया दंड राजाको स्वर्ग कीर्ति और जयका दाता है ॥ ३५७॥

अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा। नादंड्यो नाम राज्ञोस्ति धर्माद्विचलितः स्वकात् ॥ ३५८ ॥

पद–अपिऽ–भ्राता १ सुतः १ अर्घ्यः १ वाऽ–श्वशुरः १ मातुलः १ अपिऽ–वाऽ–नऽ–अदंड्यः १ नाम १ राज्ञः ६ अस्ति क्रि–धर्मात् ५ विचलितः १ स्वकात् ५ ॥

योजना–स्वकात् धर्मात् विचलितः भ्राता अपि सुतः अर्घ्यः च पुनः श्वशुरः मातुलः राज्ञः अदण्ड्यः नाम न अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ–भ्राता पुत्र अर्घ्य देनेके योग्य आचार्य आदि और मातुल येभी अपने धर्मसे चलायमान हों तो राजाको दंड देने योग्य हैं। क्योंकि अपने धर्मसे चलायमान कोईभी राजाको अदण्ड्य नहीं। यहभी माता पिता आदिको छोडकर समझना क्योंकि स्मृतिमें[1] लिखाहै कि माता पिता स्नातक सन्यासी पुरोहित वानप्रस्थ ये अदण्ड्य हैं कि विद्या शील शौच आचारवाले धर्मके अधिकारी हैं ॥

भावार्थ–अपने धर्मसे चलायमान भ्राता पुत्र अर्घ्य (आचार्य आदि) श्वशुर मातुल येभी राजासे दंड देने योग्य हैं ॥ ३५८ ॥

योदंड्यान्दंडयेद्राजा सम्यग्वध्यांश्च घातयेत्। इष्टं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः॥३५९॥

पद–यः १ दण्ड्यान् २ दण्डयेत् क्रि–राजा १ सम्यक्ऽ–वध्यान् २ चऽ–घातयेत् क्रि–इष्टम् १ स्यात् क्रि–क्रतुभिः ३ तेन ३ समाप्तवरदक्षिणैः ३ ॥

योजना–यः राजा दण्ड्यान् सम्यक् दंडयेत् च पुनः वध्यान् घातयेत् तेन राज्ञा समाप्तवरदक्षिणैः क्रतुभिः इष्टं स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–जो राजा अपने धर्मसे डिगने आदि कुकर्मोंसे दण्डके योग्योंको भली प्रकार शास्त्रोक्त मार्गसे अर्थात् धिग् धन दंड आदिसे दण्ड देता है और मारनेके योग्योंको मारताहै, उस राजाने भली प्रकार दी है दक्षिणा जिनमें ऐसे यज्ञोंसे मानो यजन किया, अर्थात् उसे पूर्वोक्त यज्ञोंका फल मिलता है। कदाचित् कोई शंका करै कि इस फलके सुननेसे दण्डका देना काम्य है सो ठीक नहीं, क्योंकि दण्डके न करनेमें इस वशिष्ठकी स्मृतिमें[1] प्रायश्चित्त लिखा है इससे यह नित्य कर्म है कि दंड देने योग्यके छोडनेमें राजा एक रात्र और पुरोहित तीन रात्र उपवास करै और दंड देने अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहित कृच्छ्र और राजा तीन रात्र उपवास करै ॥

भावार्थ–जो राजा दण्डके योग्योंको दंड देता है और मारने योग्योंको मारताहै वह अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंसे पूजन करता है ॥ ३५९ ॥

---

[1] अदण्ड्यौ मातापितरौ स्नातकपरिव्राजकपुरोहितवानप्रस्थाः श्रुतशीलशौचाचारवन्तस्ते हि धर्माधिकारिणः।

[1] दण्ड्योत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदण्ड्यदण्डने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा।

इति संचिंत्य नृपतिः क्रतुतुल्यफलं पृथक् ।
व्यवहारान्स्वयंपश्येत्सभ्यैः परिवृतोऽन्वहम्

पद्-इतिऽ-सचिंत्यऽ-नृपतिः १ क्रतुतुल्यफलम् २ पृथक्ऽ-व्यवहारान् २ स्वयम्ऽ-पश्येत् क्रि-सभ्यैः ३ परिवृतः १ अन्वहम्ऽ-॥

योजना-नृपतिः इति क्रतुतुल्यफलं संचिंत्य सभ्यैः परिवृतः सन् पृथक् व्यवहारान् स्वयम् अन्वह पश्येत् ॥

ता० भा०-इस पूर्वोक्त यज्ञके तुल्य फलको देखकर वक्ष्यमाण सभासदोंसे युक्त राजा पृथक् २ वर्णोंके वक्ष्यमाण व्यवहारोंको स्वय देखे क्योंकि विना स्वयं देखे दुष्ट और अदुष्टका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ ३६० ॥

कुलानि जातीःश्रेणीश्च गणाञ्जानपदानपि।
स्वधर्मच्चलितान्राजाविनीय स्थापयेत्पथि

पद्-कुलानि २ जातीः २ श्रेणीः २ चऽ-गणान् २ जानपदान् २ अपिऽ-स्वधर्मात् ५ चलितान् २ राजा १ विनीयऽ-स्थापयेत् क्रि-पथि ७ ॥

योजना-राजा स्वधर्मात् चलितानि कुलानि जातीः च पुनः श्रेणीः च पुनः जानपदान् गणान् विनीय पथि स्थापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मण आदिकुल और मूर्द्धाभिषिक्त आदि जाति, और ताम्बूलिक आदि श्रेणी और हेलावुक आदिगण, और कारुक आदि जनपद (देश) ये सब अपने धर्मसे चलायमान हों तो राजा अपराधके अनुसार दण्ड देकर अपने २ धर्ममें स्थापन करै । दुराचारियोंको दण्ड दे यह जो पूर्व कह आये हैं वह दंड शरीरदण्ड और धनदण्डके भेदसे इस नारदके वचनानुसार है कि शरीरदंड और अर्थदंड भेदसे दंड दो प्रकारका है । ताडनसे लेकर मरनेपर्यंत शरीरदण्ड और काकिणीसे लेकर संपूर्णधन छीनने पर्यंत अर्थदण्ड है और दो प्रकारकाभी यह अपराधके अनुसार अनेक प्रकारका होता है सोई कहा है कि शरीरदंड[1] दश प्रकारका और अर्थदण्ड कई प्रकारका होता है ॥

शारीरस्त्वर्थदंडश्च दंडस्तु द्विविधः स्मृतः । शारीरस्ताडनादिस्तु मरणांतः प्रकीर्त्तितः । काकिण्यादिस्त्वर्थदंडस्सर्वस्वान्तस्तथैव च ॥

भावार्थ-कुल, जाति, श्रेणी और जानपद अपने धर्मसे चलायमान हुए इनको अपने २ धर्ममें दण्ड देकर स्थापन करै ॥ ३६१ ॥

जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम् ।
तेष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते॥

पद्-जालसूर्यमरीचिस्थम् १ त्रसरेणुः १ रजः १स्मृतम् १ ते १ अष्टौ १ लिक्षाः १ तुऽ-ताः १ तिस्रः १ राजसर्षपः १ उच्यते क्रि-॥

गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु तेत्रय
कृष्णलः पंच ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पंच वापि प्रकीर्तितम्॥

पद्-गौरः १ तुऽ-ते, १ त्रयः १ षट् १ ते १ यवः१ मध्यः १ तुऽ-ते १ त्रयः १ कृष्णलः १ पच १ ते १ माषः १ ते १ सुवर्णः १ तुऽ-षोडश १ पलम् १ सुवर्णाः १ चत्वारः १ पच १ वाऽ-अपिऽ-प्रकीर्तितम् १ ॥

योजना-जालसूर्यमरीचिस्थं रजः त्रसरेणुः स्मृतः ते अष्टौ लिक्षा तास्तिस्रः राजसर्षपः उच्यते ते त्रयः गौरः (सर्षपः), ते षट् मध्यः यवः ते त्रयः कृष्णलः, ते पच माषः, ते षोडश सुव चत्वारः वा पच सुवर्णाः पल प्रकीर्तितम् ॥

तात्पर्यार्थ-जाल (झरोखा) के मध्यमें प्रविष्ट हुए सूर्यकी किरणोंमें स्थित जो रज उसे योगीश्वर त्रसरेणु कहते हैं । आठ त्रस-

[1] शारीरो दशधा प्रोक्तस्त्वर्थदण्डस्त्वनेकधा ।

रेणुकी एक लिक्षा (लीख) और तीन लिक्षाओंकी एक राई और तीन राईका एक गौरसर्षप (सरसों) होता है। और छः सरसोंका एक मध्ययव होता है अर्थात् स्थूल न सूक्ष्म। इससे गौरसर्षप और राजसर्षप भी मध्यम जानने और यहां मध्यम शब्दके लिखनेसे सर्षप आदि शब्द केवल तोलके वाची नहीं किंतु इनसे तुले द्रव्यके वाची हैं जैसे प्रस्थसे तुले द्रव्यको प्रस्थ कहते हैं। इसी प्रकार सर्षप आदिसे तुले द्रव्यको सर्षप कहते हैं। यदि सर्षप आदि शब्दको केवल तोलका वाची मानेंगे तो त्रसरेणु इकट्ठे करके तुल नहीं सकेंगे उसके द्वारा कृष्णल आदि व्यवहार न होगा उनमेंभी स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम, मध्यसर्षप आदि उन्मानके भेदसे देश २ में जब व्यवहारका भेद है तब दण्डके व्यवहारमें मध्य लेना, यह नियम इस वचनसे किया। वे तीन मध्ययवोंका कृष्णल होता है, पांच कृष्णलोंका एक माषा, षोडश माषोंका एक सुवर्ण, चार वा पांच सुवर्णोंका एक पल नारद आदि ऋषियोंने कहा है। यदि स्थूल तीन यवोंसे कृष्णल मानोगे तो व्यावहारिक निष्कका षोडशवां भाग कृष्णल होता है, उन पांच कृष्णलोंका माषा और सोलह माषोंका एक सुवर्ण होता है, और वह व्यावहारिक पांच निष्कोंका एक सुवर्ण होता है, और चार सुवर्णोंका एक पल होता है, क्योंकि वे सनिष्कोंको पल कहते हैं और जब सूक्ष्म तीन यवोंसे कृष्णलको मानोगे तो व्यावहारिक निष्कका बत्तीसवां भाग कृष्णल होता है। उस पक्षमें ढाई निष्कोंका सुवर्ण और दशनिष्कोंका पल होता है और जब मध्यम यवोंसे कृष्णल मानोगे तब निष्कका बीसवाँ भाग कृष्णल और चार कृष्णलका सुवर्ण और षोडश सुवर्णका पल होता है। इसी प्रकार पांच सुवर्णको पल कहते हैं इस पक्षमें बीस निष्कका नाम पल है। इसी प्रकार अन्यभी निष्कका चालीसवाँ भाग कृष्णल, दो निष्कका सुवर्ण और आठ निष्कका पल इत्यादि लोक व्यवहारके अनुसार इसी वचनसे जानने॥

भावार्थ—जालमें स्थित सूर्यके किरणोंके रजको त्रसरेणु कहते हैं। आठ त्रसरेणुकी एक लिक्षा, तीन लिक्षाओंकी एक राई कहाती है, तीन राईका एक सरसों, छः सरसोंका मध्ययव, और तीन मध्ययवोंका एक कृष्णल और पांच कृष्णलोंका एक माषा, और सोलह माषोंका एक सुवर्ण, और चार वा पांच माषोंका एक सुवर्ण कहा है॥ ३६२॥ ३६३॥

द्वे कृष्णले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते।
शतमानं तु दशभिर्धरणैःपलमेव तु ३६४॥

पद—द्वे १ कृष्णले १ रूप्यमाषः १ धरणम् १ षोडश १एवऽ—ते१ शतमानम् १ तुऽ-दशभिः ३ धरणैः ३ पलम् १ एवऽ—तुऽ—॥

योजना—द्वे कृष्णले रूप्यमाषो भवति, ते षोडश धरणं, दशभिः धरणैः शतमान तु पुनः पलम् एव भवति॥

ता० भा०—पूर्वोक्त दो कृष्णलोंका चांदीका माषा होता है और सोलह रूप्यमाषोंका एक धरण कहाता है, पुराणभी इसीको कहते हैं। क्योंकि सोलह माषोंका एक धरण वा पुराण मनुने कहा है। और दश धरणोंका शतमान और पल कहा है और पूर्वोक्त चार सुवर्णोंका एक चांदीका माषा होता है॥ ३६४॥

निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः॥३६५॥

पद—निष्कम् १ सुवर्णाः १ चत्वारः १ कार्षिकः १ ताम्रिकः १ पणः १॥

१ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणं चैव राजतः।

योजना-चत्वारः सुवर्णाः निष्क भवति कार्षिकः ताम्रिकः पणो भवति ॥

ता०भा०-पलका चौथा भाग लोकमें कर्ष प्रसिद्ध है। उस कर्षभर तांबेको पण वा कार्षापण कहते हैं, क्योंकि मनुने कर्षभर तांबेको पण और कार्षापण कहा है, जव पांच सुवर्णका पल मानते हैं तब वीस माषोंका पण होता है तिससे यह व्यवहारभी सिद्ध होता है कि पणके वीसवें भागको माषा कहते हैं। जब चार सुवर्णका पल मानते हैं तब सोलह माषेका पण होता है इस पक्षमें सुवर्ण कार्षापणपण इन शब्दोंका अर्थ एकही है तोभी पण और काषार्पण तांबेके लेने। इस प्रकार सोना चांदी तामा आदिका प्रमाण दंड उपयोगी होनेसे कहा इसी प्रकार लोक व्यवहारके अंग कांसी पीतलकाभी प्रमाण जानना ॥

भावार्थ-चार सुवर्णोका एक निष्क और कर्षभर तांबेका पण कहाता है ॥ ३६५ ॥

साशीतिपणसाहस्रो दंड उत्तमसाहसः। तदर्धं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधमःस्मृतः ॥

पद-साशीतिपणसाहस्रः १ दण्डः१ उत्तमसाहसः १ तदर्धम् १ मध्यमः १ प्रोक्तः १ तदर्धम् १ अधमः १ स्मृतः १ ॥

योजना-साशीतिपणसाहस्रः दण्डः उत्तमसाहसः प्रोक्तः तदर्धं मध्यमः प्रोक्तः तदर्धम् अधमः स्मृतः ॥

तात्पर्यार्थ-अस्सी अधिक सहस्रपण १०८० का जो दंड है वह उत्तमसाहस और उससे आधा (५४०) दंड मध्यम और उससे आधा (२७०) दंड अधम साहस कहा है। और जो मनुने यह कहा है कि (२५०) ढाई सौ पणका दंड प्रथम साहस और ५०० पांच सौका दंड मध्यम साहस और १००० हजारका दंड उत्तम साहस कहाहै वहभी दूसरा पक्ष अज्ञानसे अपराधके विषयमें समझना ॥

भावार्थ-अस्सी ऊपर हजार १०८० का दंड उत्तम साहस और उससे आधा मध्यम और उससे आधा दंड अधम साहस कहा है॥ ३६६॥

धिग्दंडस्त्वथ वाग्दंडो धनदंडो वधस्तथा। योज्याव्यस्तासमस्तावाह्यपराधवशादिमे ॥

पद-धिग्दंडः १ तुऽ-अथऽ-वाग्दण्डः १ धनदंडः १ वधः १ तथाऽ-योज्याः१व्यस्ताः १ समस्ताः १ वाऽ-हिऽ-अपराधवशात् ५ इमे१॥

योजना-धिग्दंडः अथः वाग्दंडः धनदंडः तथा वधः इमे व्यस्ताः वा समस्ताः अपराधवशात् योज्याः ॥

तात्पर्यार्थ-अव दंडके भेद कहते हैं कि धिग् धिग् यह वाणी कहकर निंदा करनी धिग्दंड, और कठोर वचन और शाप देना वाग्दंड, धनको हरना धनदंड, और रोकनेसे मरणपर्यंत शरीरका दण्ड वधदण्ड ये चार प्रकारके दंड एक एक वा तीन चार अपराधके अनुसार राजाको देने। पूर्वोक्त क्रमसे पहिला २ असाध्य होय तो पिछला २ देना। क्योंकि मनुने यह कहा है कि पहिले धिग्दंड फिर वाग्दंड फिर धनदंड, और उससे पीछे वधदंड देना।

भावार्थ-धिग्दण्ड, वाग्दंड, धनदंड, वधदंड इन एक २ को वा सबको राजा अपराधके वश (अनुसार) दे॥ ३६७ ॥

ज्ञात्वापराधं देशं च कालं बलमथापिवा। वयःकर्म च वित्तं चदंडंदंड्येषु पातयेत्३६८

पद-ज्ञात्वाऽ-अपराधम् २ देशम् २ चऽ-कालम् २ बलम् २ अथऽ-अपिऽ-वाऽ-वयः २

---

१ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकस्तथा।

२ पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः। मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥

कर्म २ च५-वित्तम् २ च५-दण्डम् २ दण्ड्येषु ७ पातयेत् क्रि-॥

योजना-अपराध च पुनः देश कालं बलम् अथ वयः च पुनः कर्म वित्तं ज्ञात्वा दण्डं दंड्येषु पातयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अपराध देश काल अवस्था कर्म धन इनको जानकर इनके अनुसारही दंड देने योग्योंको दंड दे । इसी प्रकार जानकर वा विना जाने एक वार वा वारंवार अपराधके अनुसार दंड दे । यद्यपि यह राजधर्मका समूह क्षत्रियके समूहमें कहा है तथापि देशमण्डल आदिकी पालनाके अधिकारी अन्यवर्णकामी यह धर्म जानना क्योंकि राजधर्मोंको कहताहूं जैसे आचरणवाला नृप हो इस वचनमें राजासे पृथक् नृपपदका ग्रहण है और करका लेना रक्षाके लिये है और रक्षा दंड देनेके अधीन है॥

भावार्थ-अपराध देश काल अवस्था कर्म धन इनको जानकर दंड देने योग्योंको दंड दे ॥ ३६८ ॥

इति राजधर्मप्रकरणम् ॥ १३ ॥

इति श्रीमिश्रोपाह्वपंडितरामरक्षात्मजपंडितमिहिरचंदकृतमिताक्षराप्रकाशभाषाविवृतिसहितयाज्ञवल्क्यस्मृतावाचाराध्यायः संपूर्णः ॥

अथ याज्ञवल्क्यस्मृतिः।

मिताक्षराप्रकाशभाषाटीकासमेता।

व्यवहाराध्यायः।

साधारणव्यवहारमातृकाप्र० १.

व्यवहारान्नृपः पश्येद्विद्वद्भिर्ब्राह्मणैः सह।
धर्मशास्त्रानुसारेणक्रोधलोभविवर्जितः १॥

पद—व्यवहारान् २ नृपः १ पश्येत् क्रि-विद्वद्भिः ३ ब्राह्मणैः ३ सह८—धर्मशास्त्रानुसारेण ३ क्रोधलोभविवर्जितः १॥

योजना—क्रोधलोभविवर्जितः नृपः धर्मशास्त्रानुसारेण विद्वद्भिः ब्राह्मणैः सह व्यवहारान् पश्येत्॥

तात्पर्यार्थ—अभिषेक (राजतिलकके समयका स्नान) आदि गुणोंसे युक्त राजाका परम धर्म प्रजाका पालन है, वह दुष्टोंको दण्ड दिये विना नहीं होसकता, और दुष्टका ज्ञान होना व्यवहारके विना देखे असभव है, इससे आचाराध्यायके राजधर्मप्रकरणमें इस वचनसे कह आये हैं कि सभासदोंसहित राजा प्रतिदिन व्यवहारोंको स्वय देखे परतु यह नहीं कह आये कि वह व्यवहार कैसा और किस प्रकारका और कैसे करना अर्थात् यह उसकी इतिकर्तव्यता (करनेकी रीति) नहीं कही उसकेही कहनेको इस दूसरे अध्यायका प्रारभ करते हैं। अन्यके विरोधसे अपने आत्माकी वस्तुको कहना (बताना) व्यवहार है जैसे कोई कहै कि यह क्षेत्र मेरा है इसी प्रकार दूसरा भी उसके विरोधसे कहै कि यह तेरा नहीं मेरा है और मदनरत्नमें मयूखने तो यह कहाहै कि विवाद करते हुए अन्य मनुष्यको अज्ञात और अधर्मका बोधक जो व्यापार उसे अथवा वादी और प्रतिवादि (मुद्दई मुद्दायले) योंका किया भोग साक्षी प्रमाण आदिसे परस्पर विरुद्ध कोटि जिसकी ऐसे व्यापारको व्यवहार कहा है। सप्रतिपत्ति (दावेको मानना) उत्तरमें तो व्यवहार पद गौण है, उस व्यवहारके अनेक प्रकार व्यवहारान् इस बहुवचनसे ही याज्ञवल्क्यने दिखाये हैं। क्रोध और लोभसे विवर्जित (रहित) नृप (नरोंका पालक) नृप इस पदके देनेसे यहभी दिखाया कि केवल क्षत्रियकाही यह धर्म नहीं किंतु प्रजाकी पालन करनेमें जो अधिकारी हैं उन सबका है। राजा व्यवहारोंको पश्येत् (देखे) पूर्वोक्त भी पश्येत् इसका अनुवाद धर्मविशेष जतानेके लिये है, वेद व्याकरण आदि धर्मशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणोंसहित राजा व्यवहारोंको देखे, क्षत्रिय आदिके सहित नहीं, यहां ब्राह्मणैः सह सहशब्दके योगमें ब्राह्मणैः यह अप्रधानमें तृतीया है इससे व्यवहारके देखनेमें राजा प्रधान है और ब्राह्मण अप्रधान हैं क्योंकि यह पाणिनिका सूत्र है इससे यदि राजा व्यवहारको न देखै वा अन्यथा देखै तो राजाको दोष है, ब्राह्मणोंको नहीं, सोई मनुने कहा है कि दंड देनेके अयोग्योंको दड देता और योग्योंको नहीं देता राजा अपयशको प्राप्त होता है और

१ व्यवहारान् स्वय पश्येत्सभ्यैः परिवृतोऽन्वहम्।

१ सहयुक्तेऽप्रधाने।

२ अदण्ड्यान् दडयन् राजा दड्यांश्चैवाप्यदंडयन्। अयशो महदाप्नोति नरक चाधिगच्छति॥

नरकमें जाताहै। और व्यवहारभी धर्मशास्त्रके अनुसार देखै औशनस आदि अर्थशास्त्रके अनुसार न देखै देश आदि सकेतका जो सामयिक धर्म यदि धर्मशास्त्रका विरोधी नही वहभी धर्मशास्त्रका विषय है इससे पृथक् नहीं कहा सोई कहेगे कि अपने धर्मके अविरोधसे जो धर्म सामयिक है और जो राजकृत धर्म है वहभी यत्नसे रक्षा करने योग्य है। धर्मशास्त्रके अनुसार यह कहनेसेही क्रोध लोभ विवर्जित आजाता फिर क्रोध लोभ विवर्जितका देना आदरके लिये है। न सहनेको क्रोध और अधिक अभिलाषाको लोभ कहतेहैं ॥

भावार्थ–क्रोध और लोभसे रहित राजा विद्वान् ब्राह्मणोंसहित धर्मशास्त्रके अनुसार व्यवहारोंको देखै ॥ १ ॥

श्रुताध्ययनसंपन्ना धर्मज्ञाः सत्यवादिनः।
राज्ञा सभासदः कार्या रिपौमित्रेच येसमाः

पद–श्रुताध्ययनसपन्नाः १ धर्मज्ञाः १ सत्यवादिनः १ राज्ञा ३ सभासदः १ कार्याः १ रिपौ ७ मित्रे ७ चऽ–ये १ समाः १ ॥

योजना–श्रुताध्ययनसपन्नाः धर्मज्ञाः सत्यवादिनः च पुनः रिपौ मित्रे ये समाः ते सभासदः राज्ञा कार्याः ॥

तात्पर्यार्थ–मीमांसा व्याकरण आदिके पढने और सुननेसे युक्त और वेदके पाठी धर्मशास्त्रके ज्ञाता और सत्यवादी और शत्रु और मित्रमें समदृष्टि (रागद्वेषसे रहित) सभामें जैसे वैठसके उसी प्रकार दान मान सत्कार पूर्वक राजाको सभासद करने। यद्यपि श्रुताध्ययनसंपन्नाः इस पदसे मीमांसा आदिके श्रोता और पढनेवाले अविशेषसे कहेहैं कुछ ब्राह्मणही नहीं तथापि ब्राह्मणही लेने क्योंकि कात्यायनने यह कहाहै कि स्थिर बुद्धिमान् मौल (परम्परासे चले आये) धर्मशास्त्रके अर्थमें कुशल और नीतिशास्त्रमें चतुर ऐसे सभासदोंसे युक्त राजा रहै। और वेभी सभासदः इस बहुवचनसे तीनही रखने और मनुनेभी कहाहै कि जिस देशमें वेदके ज्ञाता तीन ब्राह्मण टिकते हैं और बृहस्पतिने इस वचनसे सात ७ पांच ५ वा तीन ३ सभासद कहेहैं कि लोकवेद धर्मके ज्ञाता सात पांच वा तीन ब्राह्मण जहां बैठतेहैं वह सभा यज्ञके समान है कदाचित् कोई शंका करै कि पूर्व श्लोकमें कहे ब्राह्मणैः इस पदका श्रुताध्ययनसपन्नाः यह विशेषण है सो ठीक नही क्योंकि ब्राह्मणैः इस तृतीयांतका श्रुताध्ययनसंपन्नाः यह विशेषण नहीं होसकता और विद्वान् हो। यह है अर्थ जिसका ऐसे विद्भिः इस पदके सग पुनरुक्ति दोषभी आवेगा तैसेही कात्यायनेने ब्राह्मण और सभासदोंका भेद प्रकटतासे दिखाया है, कि प्राड्विवाक (वकील) अमात्य (मत्री) ब्राह्मण पुरोहित सभासद, इनसे युक्त होकर व्यवहारोंको देखनेवाला राजा धर्मके अनुसार स्वर्गमें टिकता है, उननेंभी यह भेद है कि ब्राह्मण अनियुक्त और समासद नियुक्त होते हैं, इसीसे कहा है कि नियुक्त (नोकर) हो वा अनियुक्त हो धर्मका

---

१ निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत्। सोपि यत्नेन सरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ॥

---

१ सतु सभ्यैः स्थिरैर्युक्तःप्राज्ञैर्मौलैर्द्विजोत्तमैः। धर्मशास्त्रार्थकुशलैरर्थशास्त्रविशारदैः ॥

२ यस्मिन् देशे निपीदान्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः।

३ लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः सप्त पच त्रयोऽपि वा। यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सा यज्ञसदृशी सभा ॥

४ सप्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः। ससभ्यः प्रेक्षको राजा स्वर्गे तिष्ठति धर्मतः ॥

५ नियुक्तो वानियुक्तो वा धर्मज्ञो वक्तुमर्हति ।

ज्ञाता ही व्यवहारको कह सकता है। उनमें नि-युक्त ब्राह्मणोंके यथार्थ व्यवहारके कहने परभी राजा अन्यथा करै तो ब्राह्मण उसका निवारण न करैं तो उसका दोष उनकोभी है। सोई कात्यायनने कहा है कि अन्यायसे चलते हुए राजाके पीछे जो सभासद् चलते हैं वेभी उस पापके भागी होते हैं इससे वे राजाको समझाकर अन्यायसे हटावैं। और अनियुक्तोंके अन्यथा कहने वा न कहनेमें दोष है, राजाके निवारण न करनेमें दोष नहीं। क्योंकि मनुका वचन है कि या तो सभामें प्रवेश न करै, करै तो यथार्थ कहै, न कहने और विरुद्ध कहनेमें मनुष्यको पाप होता है और (रिपौ मित्रे च) इस चकारसे जगत्की प्रसन्नताके लिये कतिपय (दो चार आदि) वैश्योंसे युक्तभी सभाको राजा रक्खै। सोई कात्यायनने कहा है कि कुल शील अवस्था आचरण धन इससे युक्त और मत्सर (पराये गुणोंको न सहना) तासे रहित जो वैश्य इनसे युक्त राजाकी सभा हो ॥

भावार्थ—मीमांसा आदि शास्त्रोंका श्रवण और पठनसे युक्त और धर्मके जाननेवाले सत्यवादी और शत्रु और मित्रमें समान राजाको सभासद् करने ॥ २ ॥

अपश्यता कार्यवशाद्व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्यैःसह नियोक्तव्यो ब्राह्मणःसर्वधर्मवित्॥

पद—अपश्यता ३ कार्यवशात् ५ व्यवहारान् २ नृपेण ३ तु ऽ—सभ्यैः ३ सह ऽ—नियोक्तव्यः १ ब्राह्मणः १ सर्वधर्मवित् १ ॥

योजना—कार्यवशात् व्यवहारान् अपश्यता नृपेण सभ्यैः सह सर्वधर्मवित् ब्राह्मणः नियोक्तव्यः ॥

तात्पर्यार्थ—राजाको व्यवहारोंको देखना जो कहा उसकों अनुकल्प (गौणता) कहते हैं, किसी अन्यकार्यमें व्याकुल हुआ राजा यदि व्यवहारोंको न देखसके तो संपूर्ण धर्मोंके ज्ञाता अर्थात् शास्त्रोक्त और सामयिक धर्मोंका विचारनेवाला जो ब्राह्मण उसको नियुक्त करै और क्षत्रिय आदिको व्यवहार देखनेमें नियत न करै और वहभी ऐसे गुणोंसे युक्त हो जो कात्यायनने इस वचनसे कहे हैं कि दान्त (इन्द्रियोंको दमन करनेवाला), कुलीन, मध्यस्थ (समवुद्धि), अनुद्वेगका कर्त्ता (जिससे कोई न डरै), परलोकसे भय माने, धर्मिष्ठ, उद्योगी, क्रोधसे रहित, यदि ऐसा ब्राह्मण मिलसकै तो क्षत्री या वैश्यको नियुक्त करै शूद्रको कदापि न करै। सोई कात्यायनने इस वचनसे कहा है कि जहां ब्राह्मण न हो वहां क्षत्री या वैश्यको नियत करै, शूद्रको यत्नसे वर्जदे। नारदने तो इसको ही प्रधान दिखायाहै राजाको नहीं, किं प्राड्विवाकके मतमें टिककर धर्मशास्त्रके अनुसार राजा सावधान होकर क्रमसे सब व्यवहारोंको देखै अर्थात् प्राड्विवाकके मतमें रहै अन्यके मतमें न रहै, जैसे राजा चार (दूत) नेत्रोंसे पराई सेनाको देखता है और प्राड्विवाक यह उसका नाम यौगिक है क्योंकि अर्थी प्रत्यर्थीको जो पूछे उसे प्राट् कहते हैं और उनके विरुद्ध वा अविरुद्ध वचनोंसे

१ अन्यायेनापि तं यान्त येऽनुयांति सभासदः । तेपि तद्भागिनस्तस्माद्बोधनीयः स तैर्नृपः ॥

२ सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसम्। अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥

३ कुलशीलवयोवृत्तवित्तवद्भिरमत्सरैः । वणिग्भिः स्यात्कतिपयैः कुलभूतैरधिष्ठितम् ॥

१ दांत कुलीन मध्यस्थमनुद्वेगकर स्थिरम् । परत्रभीरु धर्मिष्ठमुद्युक्त क्रोधवर्जितम् ॥

२ ब्राह्मणो यत्र न स्यात्तु क्षत्रिय तत्र योजयेत्। वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्र यत्नेन वर्जयेत् ॥

३ धर्मशास्त्र पुरस्कृत्य प्राड्विवाकमते स्थितः। समाहितमतिः पश्येद्व्यवहारानुक्रमात् ॥

सभासदोंकी विवेचना जो करै उसे विवाक कहते हैं, सोई इस वचनमें कहा है कि विवाद की वस्तुको पूछकर सभासदोंसहित उसको प्रयत्नपूर्वक जिससे विचारता है तिससे प्राड्विवाक कहाता है ॥

भावार्थ-यदि कार्यान्तरमें व्याकुल हुआ राजा व्यवहारोंको न देख सके तो सभासदोंके संग सब धर्मके ज्ञाता ब्राह्मणको नियत करै ॥ ३ ॥

रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः। सभ्याःपृथक्पृथग्दंड्या विवादाद्विगुणंदमम्

पद-रागात् ५ लोभात् ५ भयात् ५ वाऽ-अपिऽ-स्मृत्यपेतादिकारिणः १ सभ्याः १ पृथक्ऽ-पृथक्ऽ-दंड्याः १ विवादात् ५ द्विगुणम् २ दमम् २ ॥

योजना-रागात् लोभात् वा भयात् स्मृत्यपेतादिकारिणः सभ्याः विवादात् द्विगुण दमं राज्ञा पृथक् पृथक् दंड्याः ॥

तात्पर्यार्थ-प्राड्विवाक आदि सभासद यदि निरकुश रजोगुणके वशमें होकर राग (स्नेह), लोभ, भयसे स्मृति (धर्मशास्त्र) और सदाचारके विरुद्ध, व्यवहारको करैं तो राजा पृथक् २ एक २ सभासदको विवादके पराजय और जयके द्रव्यसे दूना दड दे, कुछ विवादके द्रव्यमात्रकाही दड न दे, उतनाही दड मानोगे तो स्त्रीसंग्रहण आदिमें दडका अभाव होगा, और राग लोभ भयका उपादान इस नियमके लिये है कि राग आदिमेंही दूना दंड है, अज्ञान मोह आदिमें नहीं, कदाचित् कोई शंका करै कि ब्राह्मणको छोडकर सवका ईश्वर राजा है इस गौतमके वचनसे ब्राह्मण अदंड्य (दडके अयोग्य) है सो ठीक नहीं क्योंकि वह वचन प्रशसाके लिये है। और जो यह कहा है कि राजा ब्राह्मणको इन छः कर्मोंमें छोड दे क्योंकि मारने और बांधने अयोग्य, दंडके अयोग्य, और वाहिर करने अयोग्य, निंदाके अयोग्य, त्यागने अयोग्य ब्राह्मण है। वहभी उस ब्राह्मणके विषयमें है जो वहुश्रुत हो । लोक वेद वेदांगका ज्ञाता हो, वाकोवाक्य इतिहास पुराणमें कुशल हो, इनकीही अपेक्षा और वृत्ति रखता हो, अठतालीस संस्कारोंसे युक्त हो, तीन कर्मोंमें वा छः कर्मोंमें रत हो, समयके आचरणोंमें कुशल हो। इस वचनसे उक्त वहुश्रुत ब्राह्मणके विषयमें समझना सब ब्राह्मणोंके लिये नहीं ॥

भावार्थ-राग लोभ भयसे धमशास्त्रके विरुद्ध कर्मके करनेवाले सभासदोंको राजा विवादसे दूना दड दे अर्थात् जितने द्रव्यका विवाद हो उससे दूना द्रव्य सभासदोंसे ले ॥ ४ ॥

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षितः परैः। आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्॥५॥

पद-स्मृत्याचारव्यपेतेन ३ मार्गेण ३ आधर्षितः १ परैः ३ आवेदयति क्रि-चेत्ऽ-राज्ञे ४ व्यवहारपदम् १ हिऽ-तत् १ ॥

योजना-परैः स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेण आधर्षितः पुरुषः चेत् (यदि) राज्ञे आवेदयति तत् व्यवहारपद ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-धर्मशास्त्र और समयाचारके विरुद्ध मार्ग (रीति) से शत्रुओंने किया है

---

१ विवादानुगतं पृष्ट्वा ससभ्यस्तत्प्रयत्नतः । विचारयति येनासौ प्राड्विवाकस्ततः स्मृतः ॥

१ षड्भिः परिहार्य्योः राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादण्ड्यश्चावहिष्कार्यश्चापरिवाद्यश्चापरिहार्यश्च ॥

२ स एष वहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदांगवित् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृत्तिश्चाष्टाचत्वारिंशत्संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वा समयाचारिकेष्वभिविनीतः ।

तिरस्कार जिसका ऐसा पुरुष राजाको वा प्राड्विवाकको विज्ञापन करै (अर्जी दे) तो वह विज्ञापन उस व्यवहारका पद (विषय) है जो व्यवहार प्रतिज्ञा, उत्तर, संशय, हेतु, परामर्श, प्रमाण, निर्णय, प्रयोजनरूप है यही उसका सामान्य लक्षण है । उस व्यवहारकेभी दो भेद हैं शङ्काभियोग और तत्वाभियोग । सोई नारदने कहा है कि शंका और तत्त्वके अभियोगसे अभियोग दो प्रकारका है असज्जनोंके संगसे शंका और चिह्नके दर्शनसे तत्त्वका अभियोग (ज्ञान) होता है और तत्त्वका अभियोग भी दो प्रकारका है प्रतिषेधरूप और विधिरूप जैसे मेरे सुवर्ण आदि धनको लेकर नहीं देता वा मेरे क्षेत्र आदिको यह हरता है सोई कात्यायनने कहा है कि जो स्वयं उचितको न करै वा अन्यायको करै वह व्यवहारभी फिर इन मनुके (अ. ८ श्लो. ४-५-६-७) वचनोंसे अठारह प्रकारका है । ऋणादान, निक्षेपाअस्वामिविक्रय (अन्यकी वस्तु बेचना), संभूयसमुत्थान (साझेका व्यापार), दियेको न देना, वेतनको न देना, प्रतिज्ञाकी हानि, क्रयविक्रयका अनुशय (त्याग) स्वामी और गोपालका विवाद, सीमाका विवाद, कठोरदण्ड और कठोरवाणी चोरी, साहस, स्त्रीसंग्रहण, स्त्रीपुरुषका धर्मविभाग, द्यूत, आह्वय (संग्राम) ये अष्टादश (१८) पद व्यवहारकी स्थितिमें होते हैं और ये अठारहभी साध्यके भेदसे बहुत होजाते हैं, सोई नारदने कहा है कि इनके औरभी अष्टोत्तरशत (१०८) भेद होते हैं, और मनुष्योंकी क्रियाके भेदसे इनकी सैकडों शाखा होती हैं और राजाको विज्ञापन करै इस कहनेसे यह दिखाया कि स्वयं जाकर निवेदन करै और राजा या राजाके पुरुषोंके कहनेसे निवेदन न करै, सोई मनुने कहा है कि राजा वा राजाका पुरुष स्वय कार्य (दावा) को पैदा न करै, और अन्यके निवेदन किये अर्थका ग्रास (छिपाना) किसी प्रकार न करै, परैः इस बहुवचनसे यह दिखाया कि एकके वा दोके वा बहुतोंके, सग एकका व्यवहार होसकता है, और जो यह नारदका वचन है कि एकका बहुतोंके संग, स्त्रियोंका, सेवकोंका विवाद धर्मके ज्ञाताओंको स्वीकारके अयोग्य लिखा है वह भिन्न २ साध्यके विषयमें समझना, और राजाको विज्ञापन करै, इससेही यह बात अर्थात् सिद्ध है राजाके पूछनेपर नम्रताका वेष धारै निवेदन करै और अर्थीको निवेदनयुक्त होय तो राजा अपनी मुद्राका पत्र भेजकर प्रत्यर्थीको बुलावै और बुलानेके योग्य न हो तो न बुलावै इससे सब यहां नहीं कहा अन्यस्मृतियोंमें तो स्पष्टके लिये यह कहा है

१ अभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः । शंकाऽसतां तु संसर्गात्तत्त्व होढाभिदर्शनात् ।

२ न्याय्य स्वं नेच्छते कर्तुमन्याय्य वा करोति यः ।

३ तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः । सभूय च समुत्थान दत्तस्यानपकर्म च ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः । क्रयविक्रयानुशयो विवादःस्वामिपालयोः ॥ सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दंडवाचिके । स्तेयं च साहस चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च । पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥

१ एषामेव प्रभेदोऽन्यः शतमष्टोत्तर भवेत् । क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते॥

२ नोत्पादयेत्स्वय कार्यं राजा वाप्यस्य पूरुषः। नच प्रापितमन्येन ग्रसेतार्थं कथचन॥

३ एकस्य बहुभिः सार्धं स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च । अनादेयो भवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः ॥

कि समयपर आये और आगे कहते हुए कार्यार्थीको पूछे कि क्या तेरा कार्य है और क्या दुःख है, भय मत करै, हे मनुष्य ! कहो किसने किस समय किस कारणसे तुझे दुःख दिया इस प्रकार सभामें आयेको पूछे इस प्रकार पूछाहुआ वह मनुष्य जो कहै उसको सभासद और ब्राह्मणोंके संग विचार कर करै और उचित होय तो, प्रत्यर्थीके बुलानेके लिये अपनी मुद्राके पत्रको अथवा पुरुषको भेजदे. और इतने मनुष्योंको राजा न बुलावै असमर्थ, बालक, वृद्ध, संकटमें स्थित, कार्यमें व्याकुल, अन्य कार्यमें आसक्त, व्यसनी, राजकार्यमें व्याकुल, मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त, दुःखी और भृत्य, हीनपक्षवाली और कुलीन और प्रसूता स्त्री, सब वर्णोंमें उत्तम कन्या इनकोभी न बुलावै, क्योंकि इनके प्रभु ज्ञातिके होते हैं और जिनके अधीन कुटुंब हो वे, और व्यभिचारिणी, वेश्या, कुलसे हीन, पतित जो हैं उनका बुलाना कहाहै, काल, देश और कार्योंका बल अबल देखकर असमर्थ आदिकोंकोभी शनैः २ राजा यानोंसे बुलावै, और अभियोग (दावा) की दशाको जानकर जो वनमें संन्यासी आदि हैं, उनकोभी इस प्रकार राजा बुलावै जो कार्य भारी हो और उनको क्रोध न आवै, आसेधकी व्यवस्थाभी अर्थात् सिद्ध-ही है वह नारदने कही है कि जो कहने योग्य अर्थपर न टिकै और अपने वचनको उलट जाय ऐसे मनुष्यका प्रत्यर्थीके आनेतक विवादार्थी राजा आसेध (रोक) करै और वह आसेध स्थान, काल, प्रवास, कर्म इनके भेदसे चार प्रकारका है, जो अपने पक्षको सिद्ध न कर सकै वह आसेधको न लंघै, आसेधके समयमें जो आसेधका भागी आसेधको नहीं मानता, अन्यथा करतेहुए उस आसिद्धको दण्ड और शिक्षा दे, जो आसिद्ध (कैदी) नदीका तरना वन दुष्ट देश और उपद्रव आदिमें आसेधका अवलंघन करता है वह अपराधी नहीं होता, सेवाका अभिलाषी, रोगसे आर्त, यज्ञ करनेवाला, व्यसनमें स्थित, अन्यके संग अभियुक्त (लडता), राजकार्यमें उद्यत, गौ चराते गोपाल और खेत बोते किशान, और शिल्पी और संग्राममें योद्धा, ये सब आसेधका उल्लंघन करतेहुए अपराधी नहीं होते, यदि वे पूर्वोक्त असमर्थ आदि, पुत्र आदि, वा किसी अन्य मित्रको भेजदें तो वे पराथवादी न समझने क्योंकि इस नारदके वचनसे पराथवा-

१ काले कार्यार्थिनं पृच्छेद्गृणत पुरत. स्थितम्। किं कार्यं का च ते पीडा माभैषीर्ब्रूहि मानव ॥ केन कस्मिन् कदा कस्मात्पृच्छेदेवं सभागतम्। एवं पृष्टः स यद्ब्रूयात स सभ्यैर्ब्राह्मणैः सह ॥ विमृश्य कार्यं न्याय्यं चेदाह्वानार्थमतः परम्। मुद्रां वा निक्षिपेत्तस्मिन्पुरुषं वा समादिशेत् ॥ अकल्पबालस्थविरविषमस्थक्रियाकुलान्। कार्यातिपातिव्यसनिनृपकार्योत्सवाकुलान्। मत्तोन्मत्तप्रमत्तार्तान्भृत्यानाह्वानयेन्नृपः। न हीनपक्षां युवतीं कुले जातां प्रसूतिकाम् ॥ सर्ववर्णोत्तमां कन्यां ता ज्ञातिप्रभुकाः स्मृताः ॥ तदधीनकुटुम्बिन्यः स्वैरिण्यो गणिकाश्च याः। निष्कुला याश्च पतितास्तासामाह्वानमिष्यते। कालं देशं च विज्ञाय कार्याणां च बलाबले। अकल्पादीनपि शनैर्यानैराह्वानयेन्नृपः। ज्ञात्वाभियोगं येऽपि स्युर्वने प्रव्रजितादयः। तानप्याह्वानयेद्राजा गुरुकार्येष्वकोपयन् ॥

१ वक्तव्यर्थे ह्यतिष्ठन्तमुत्क्रामन्तं च तद्वचः। आसेधयेद्विवादार्थी यावदाह्वानदर्शनम् ॥ स्थानासेध. कालकृतः प्रवासात्कर्मणस्तथा। चतुर्विध. स्यादासेधो नासिद्धस्तं विलङ्घयेत् ॥ आसेधकाल आसिद्ध आसेधं योऽतिवर्तते। स विनेयोऽन्यथा कुर्वन् नासेद्धा दण्डभाग्भवेत्। नदीसंतारकांतारदुर्देशोपप्लवादिषु ॥ आसिद्धस्तं परासेधमुत्क्रामन्नापराध्नुयात्। निर्वेष्टुकामो रोगार्तो यियक्षुर्व्यसने स्थितः ॥ अभियुक्तस्तथान्येन राजकार्योद्यतस्तथा। गवां प्रचारे गोपाला. सस्यावापे कृषीवलाः ॥ शिल्पिनश्चापि तत्कालमायुधीयाश्च विग्रहे ॥

२ यो न भ्राता नच पिता न पुत्रो न नियोगकृत्। परार्थवादी दण्ड्यः स्याद् व्यवहारेषु विब्रुवन् ॥

-र्थीको दण्ड लिखा है कि जो भ्राता पिता पुत्र और सेवक न हो, व्यवहारमें बोलता हुआ वह परार्थवादी दण्डच होता है ॥

भावार्थ-जो मनुष्य धर्मशास्त्र और आचारके विरुद्ध मार्गसे आधर्षित हो अर्थात् दबाया हो, यदि वह राजाके यहां जाकर विज्ञापन करै तो वह व्यवहारका पद होता है ॥ ५ ॥

प्रत्यर्थिनोग्रतोलेख्यंयथावेदितमर्थिना ।
समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम्॥

पद-प्रत्यर्थिनः ६ अग्रतः ऽ-लेख्यम् १ यथाऽ-आवेदितम् १ अर्थिना ३ समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम् १ ॥

योजना-अर्थिना यथा आवेदितं यथा प्रत्यर्थिनः अग्रतः समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितं लेख्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-साध्यरूप अर्थ है जिसका. अनुसार उसे अर्थी (मुद्दई) और उसके प्रतिपक्षीको प्रत्यर्थी (मुद्दालः) कहते हैं उस प्रत्यर्थीके आगे जिस प्रकार अर्थीने कहा हो उसी प्रकार लिखै अन्यथा न लिखे, यदि अर्थी अन्यथा कहै तो व्यवहार भग होजाता है अर्थात् अर्थी हार जाता है। क्योंकि इस वचनसे पांच प्रकारका अर्थी हीन कहा है, अन्यथा वादी, क्रियाका द्वेषी, जो न आवै, उत्तर न देसकै, बुलाया हो समयपर भाग जाय यह पांच प्रकारका अर्थी हीन कहा है, यद्यपि आवेदन कालमें ही अर्थीका वचन लिख लियाथा फिर लिखना वृथा है इससे कहते हैं कि वर्ष मास पक्ष तिथि वारसहित अर्थी प्रत्यर्थीका नाम और ब्राह्मण आदि जातिसे युक्त फिर लिखै, और आदिशब्दसे द्रव्य, द्रव्यकी संख्या, स्थान, समय, क्षमाके लिंग आदि लेने, सोई कहाहै कि अर्थवान्, धर्मसे युक्त, परिपूर्ण, आकुलसे भिन्न, साध्यके साधक जिसमें पद हों, प्रकृत अर्थका संबंधी हो, प्रसिद्ध हो, विरुद्ध न हो, निश्चित और साधनमें समर्थ हो, सक्षेपसे युक्त हो, सब बात जिसमें आगई हों, देश कालके विरुद्ध न हो, वर्ष ऋतु मास पक्ष दिन समय देश प्रदेशस्थान, गृहसाध्यका नाम जाति आकार अवस्था, इन सबसे युक्त हो, साध्यके प्रमाणकी सख्या और अर्थी प्रत्यर्थीका नाम हो, पराये और अपने पहिले अनेक राजाओंका जिसमें नाम हो, क्षमाका लिंग, अपनी पीडा हो और हरने और देनेवाले जिससे प्रतीत हों, ऐसा जो आवेदन राजाको किया जाय उसे भाषा (अर्जी-दावा) कहते हैं और उसकोही प्रतिज्ञा वा पक्ष कहते हैं, आवेदनके समय कार्यमात्र लिखा था प्रत्यर्थीके आगे वर्ष पक्ष आदिसे विशिष्ट लिखना इतनाही विशेष है। यद्यपि वर्षका लिखना सब व्यवहारोंमें उपयोगी नहीं तथापि आधि प्रतिग्रह और क्रय (मोल लेना) में निर्णयके लिये उसका उपयोग है, क्योंकि यह वचन है कि आधि प्रतिग्रह क्रीतमें पहिली क्रिया बलवान् होती है, अर्थ (धन) के व्यवहारमें भी एक वर्षमें जितना, जो द्रव्य जिससे

६ अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थाता निरुत्तरः । आहूतः प्रपलायी च हीनः पचविधः स्मृतः ॥

१ अर्थवद्धर्मसयुक्त परिपूर्णमनाकुलम् । साध्यवद्वाचकपद प्रकृतार्थानुबधि च॥ प्रसिद्धमविरुद्ध च निश्चितं साधने क्षमम् । सक्षितं निखिलार्थं च देशकालाविरोधि च ॥ वर्षर्तुमासपक्षाहोवेलादेशप्रदेशवत् । स्थानावसथसाध्याख्याजात्याकारवयोयुतम् ॥ साध्यप्रमाणसंख्यावदात्मप्रत्यर्थिनामवत् । परात्मपूर्वजानेकराजनामभिरंकितम् ॥ क्षमालिंगात्मपीडावत्कथिताहर्तृदायकम् । यदावेदयते राज्ञे तद्भाषेत्यमिधीयते ॥

२ आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा ।

जितने लियाहो और दे दिया हो, फिर अन्य वर्षमें वही द्रव्य उतनाही उससे उसने फिर लिया हो, यदि वह माँगने पर यह कहै कि सत्य है लिया था परंतु लौटा दिया था उस व्यवहारमें यह उपयोग होगा। अन्य वर्षमें लिया दियाथा इस वर्षमें लिया नही दिया इसी प्रकार महीनों आदिमेंभी समझना देश और स्थान आदिका उपयोग स्थावरोंमें है। क्योंकि यह स्मृति है कि देश स्थान सन्निवेश जाति नाम अधिवास प्रमाण क्षेत्रनाम पिता पितामह पहिले राजा इनका नाम ये दश स्थावर धनके विवादमें लिखने अर्थात् मध्य देश आदि देश, काशी आदि स्थान, पूर्वपश्चिम दिशाके विभागसे जानने योग्य गृह क्षेत्र आदि सन्निवेश, ब्राह्मण आदि जाति, समीप देशके निवासी जन, निवर्तन आदि भूमिका प्रमाण, शालि और क्रमुक आदिका क्षेत्र काली वा पीली भूमि पिता पितामह अर्थी प्रत्यर्थी पहिले तीन राजा इन सबके नाम ये सब लिखने। वर्ष मास आदिका जितना उपयोग जिस व्यवहारमें हो उतनाही लिखना इस प्रकारका जब पक्ष होताहै इन लक्षणोंसे जो रहित हैं वे पक्षके तुल्य दीखनेसे पक्षाभास अर्थात् हैं इससे योगीश्वरने पक्षाभास पृथक् नही कहे। अन्य आचार्योंने तो स्पष्टके अर्थ कहे हैं कि अप्रसिद्ध, निराबाध, निरर्थक, निष्प्रयोजन, असाध्य, विरुद्ध जो हो उस पक्षाभासको राजा वर्ज दे अर्थात् न ले अप्रसिद्ध जैसा कि मेरे शशाके सींगको लेकर नहीं देता है। निराबाध जैसा कि हमारे गृहके दीपकके प्रकाशसे यह अपने घरमें व्यवहार करताहै। निरर्थ जिसका कुछ अर्थ न हो (कचटतप आदि), निष्प्रयोजन जैसे कि यह हमारे घरके समीप बडे स्वरसे पढताहै, असाध्य जैसे कि यह भृकुटी चढाकर मेरी तरफको हँसा इसको सिद्ध नहीं कर सकते और अल्पकाल होनेसे इसमें कोई साक्षीभी नहीं होसकता लिखित वा दिव्यभी यह दूर और अल्प होनेसे नहीं हो सकता इससे असाध्य है, विरुद्ध जैसे कि मुझे मूक (गूगा) ने गाली दी अथवा जिसमें नगर और देशका विरोध हो (*इनका स्वभावसेही निराकरण होनेसे निराकरण नहीं करते, उसमेंभी अप्रसिद्ध आदिका लिखना जाननेके लिये है तो भी अनेक पदोंसे संकीर्ण (युक्त) का निराकरण नहीं करते) जो पक्ष राजाने त्याग दिया हो जिसमें पुर वा सब देशका वा प्रजाका विरोध हो वह और जो अन्यभी पुरग्राम महाजनोंके विरोधी हैं वे सब व्यवहार राजाको ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। जो यह कहा है कि अनेक पदोंसे सकीर्ण पूर्वपक्ष सिद्ध नहीं होता उसमें जो अनेक वस्तुओंका संकीर्ण कहो तो कुछ दोष नही, क्योंकि मेरे सुवर्ण वस्त्र रुपया आदि लेलिये हैं यह पक्ष अदुष्ट है, कोई कहै कि ऋणादान आदि पदोंसे सकर पक्षाभास हैं सोभी ठीक नहीं क्योंकि मेरे रुपये इसने व्याजपर लिये थे और सुवर्ण इसके हाथमें दिया था और मेरे क्षेत्रको यह हरताहै इत्यादिकोंको पक्षत्व इष्ट ही है किंतु क्रियाके भेदसे क्रमसे व्यवहार होता है। एक वार नहीं सोई कात्यायनने

१ देशश्चैव तथा स्थान सनिवेशस्तथैव च। जातिसज्ञाधिवासश्च प्रमाणं क्षेत्रनाम च॥ पितृपैतामह चैव पूर्वराजानुकीर्तनम्। स्थावरेषु विवादेषु दशैतानि निवेशयेत्॥

२ अप्रसिद्ध निराबाधं निरर्थं निष्प्रयोजनम्। असाध्यं वा विरुद्धं वा पक्षाभास विवर्जयेत्॥

१ अनेकपदसंकीर्णो व्यवहारो न सिध्यति।

२ बहुप्रतिज्ञं यत्कार्यं व्यवहारेषु निश्चितम्। कामं तदपि गृह्णीयाद्राजा तत्त्वबुभुत्सया।

(*) यह पाठ अधिक है कलिकाताकी छपी पुस्तक आदिमे नहीं है।

है कि जो कार्य निश्चयसे बहुत प्रतिज्ञावाला हो उसकोभी राजा तत्त्वके जाननेकी इच्छासे स्वीकार करै क्योंकि अनेक पद सकीर्ण व्यवहार एकवार सिद्ध नहीं होता यही उसका अर्थ है, अर्थीके ग्रहणसे पुत्रपौत्र आदिभी लेने क्योंकि ये सब एक हैं, नियुक्त (प्रतिनिधि) काभी नियोग (आज्ञा) से ही उसके सग एकार्थ होनेसे आक्षेपग्रहण है क्योंकि यह स्मृति है, कि अर्थीका नियुक्त वा प्रत्यर्थीका भेजा जो जिसके लिये विवाद करै वहां जय वा पराजय अर्थी प्रत्यर्थीका ही होता है अर्थात् नियुक्त (वकील आदि) के जय पराजयमें मूल स्वामियोंकाही जय पराजय होताहै। और इस पक्षको भूमि वा फलक (तखती) पर प्राड्विवाक प्रथम पांडुसे लिखकर आवाप (अधिक) के उद्धार (निकालना) से शोधकर पीछेसे पत्रपर लिखै। क्योंकि यह कात्यायनका वचन है कि स्वभावसे कहे पूर्वपक्षको पांडुके लेखसे प्राड्विवाक फलकपर लिखै फिर शुद्ध करके पत्र पर लिखै और शोधनाभी तबतक है जबतक प्रत्यर्थीका उत्तर न हो,अनवस्थाके प्रसंगसे उससे परे नहीं। इसीसे नारदने कहाहै इतने उत्तर न दीखै तबतक पूर्व वादको शुद्ध करै, जब उत्तरसे बँध गया तब शोधना निवृत्त होजाता है। यदि पूर्वपक्षके शोधन विना सभासद उत्तर दिवावैं तो विवादसे दूना पूर्वोक्त दंड सभ्योंको देकर फिर प्रतिज्ञापूर्वक व्यवहारोंको राजा करै ॥

१ अर्थिना संनियुक्तो वा प्रत्यर्थिप्रहितोऽपि वा । यो यस्यार्थे विवदते तयोर्जयपराजयौ ।

२ पूर्वपक्षं स्वभावोक्तं प्राड्विवाकोऽभिलेखयेत् । पांडुलेखेन फलके ततः पत्रे विशोधितम् ॥

३ शोधयेत्पूर्ववादं तु यावन्नोत्तरदर्शनम् । अवष्टब्धस्योत्तरेण निवृत्तं शोधनं भवेत् ॥

भावार्थ-अर्थीने जैसा विज्ञापन किया हो वैसाही वर्ष मास पक्ष दिन नाम जाति आदिसे युक्त व्यवहारको राजा प्रत्यर्थीके आगे लिखै॥६॥

श्रुतार्थस्योत्तरंलेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ।
ततोर्थीलेखयेत्सद्यःप्रतिज्ञातार्थसाधनम् ७

पद-श्रुतार्थस्य ६ उत्तरम् १ लेख्यम् १ पूर्वावेदकसन्निधौ ७ ततः ऽ-अर्थी १ लेखयेत् क्रि-सद्यःऽ-प्रतिज्ञातार्थसाधनम् २ ॥

योजना-पूर्वावेदकसन्निधौ श्रुतार्थस्य उत्तरं राज्ञा लेख्य ततः अर्थी प्रतिज्ञातार्थसाधनं सद्यः लेखयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार शुद्ध किये पूर्वपक्षको पत्रपर लिखकर राजा यह करै, कि सुन लियाहै भाषाका अर्थ जिसने ऐसे प्रत्यर्थीका उत्तर पूर्व आवेदक (अर्थी) के आगे राजा लिखै, और पूर्वोक्तके निराकरणको उत्तर कहतेहैं सोई कहाहै कि जो पक्षके निराकरणमें समर्थ हो और न्यायके अनुकूल हो और जो संदेहसे रहित हो और जो पूर्वापर विरुद्ध न हो, जो अव्याख्यागम्य हो अर्थात् अप्रसिद्ध पदोंके प्रयोगसे वा अन्यदेशकी भाषासे वा कठिन पदोंसे युक्त होनेसे जिसकी व्याख्या (टीका) करनी न पडै ऐसा उत्तर श्रेष्ठ होता है वह चार प्रकारका है कि संप्रतिपत्ति मिथ्या प्रत्यवस्कदन पूर्वन्याय यही इसे वचनसे कात्यायनने कहा है। उनमें पहिला सत्य उत्तर यह है कि इसपर मेरे सौ रुपये चाहिये, सत्य चाहते हैं। सोई कहाहै कि साध्यके सत्य वचनको संप्रतिपत्ति कहते हैं और मेरेपर

१ पक्षस्य व्यापकं सारमसंदिग्धमनाकुलम् । अव्याख्यागम्यमित्येतदुत्तरं तद्विदो विदुः ॥

२ सत्यं मिथ्योत्तरं चैव प्रत्यवस्कदनं तथा । पूर्वन्यायविधिश्चैवमुत्तरं स्याच्चतुर्विधम् ॥

३ साध्यस्य सत्यवचनं प्रतिपत्तिरुदाहृता ।

सौ रुपये नहीं चाहते हैं यह मिथ्योत्तर है सोई कात्यायनने लिखा है कि यदि अभियुक्त (प्रत्यर्थी) अभियोग (दावा) का अपह्नव (नाहि) करै तो उस उत्तरको व्यवहारसे मिथ्या जानै। वह मिथ्या उत्तर इस वचनमें चार प्रकारका कहा है कि यह झूठ है, मैं जानताभी नही, मैं उस समय वहां नहीं था, मैं उस समयतक पैदाभी नहीं हुआ था इस प्रकार मिथ्या उत्तर चार प्रकारका है। प्रत्यवस्कदन उत्तर उसको कहते हैं मैंने सौ रुपये लियेथे परंतु देदिये, अथवा प्रतिग्रहसे मिलेथे। सोई नारदने कहा है कि अर्थीने जो अर्थ लिखाहो उसे प्रत्यर्थी मानकर कोई कारण बतादे तो उस उत्तरको प्रत्यवस्कदन कहते हैं। और पूर्वन्याय उत्तर वह होता है जहां प्रत्यर्थी यह कहे कि जिस अर्थका इसने अभियोग किया है उसीमें मैं व्यवहारके मार्गसे पराजय कर चुकाहू। सोई कात्यायनने कहा है कि जो आचरणसे अवसन्न (हारा) अर्थी अर्थको यदि फिर लिखै तो पहिले जीता हुआ वह अर्थ होता है उससे उसका उत्तर प्राङ्न्याय उत्तर कहाता है। जब ये उत्तरके लक्षण हैं तो जिनमें उत्तरके लक्षण नहीं उत्तरके समान दीखते वे अर्थात् उत्तराभास हैं। सोई अन्य स्मृतिम स्पष्ट किया है कि संदिग्ध, प्रकृतसे अन्य, अत्यंत अल्प, अत्यंत अधिक, पक्षैकदेशव्यापी, व्यस्तपद, अव्यापी, निगूढार्थ, आकुल, व्याख्यागम्य, असार इतने उत्तर उत्तराभास होते हैं। उनमें संदिग्ध यह है कि इसने मेरे सौ सुवर्ण लियेहैं इस अभियोगमें सच लिये हैं परंतु यह खबर नहीं कि सौ सुवर्ण लिये वा सौ मासे, प्रकृतसे अन्य यह है कि सौ सुवर्णके अभियोगमें सौ पण मेरेपर चाहते हैं, अत्यल्प यह है कि सौ सुवर्णके अभियोगमें पांच सुवर्ण चाहते हैं, अत्यत अधिक वह है कि सौ सुवर्णके अभियोगमें दो सौ सुवर्ण चाहते हैं, पक्षैकदेशव्यापी वह है कि सोना और वस्त्र आदिके अभियोगमें सोना लिया है अन्य नहीं, व्यस्तपद वह है कि सौ सुवर्णके अभियोगमें यह उत्तर देना कि उसने मुझे मारा है, अव्यापी वह है कि जिसके देश स्थान आदि न मिलैं, जैसे मध्यदेश काशीकी पूर्व दिशामें इसने मेरा क्षेत्र छीन लिया इस पूर्वपक्षमें यह उत्तर देना कि मैंने क्षेत्र छीन लिया, निगूढार्थ वह होताहै कि सौ सुवर्णके अभियोगमें यह उत्तर देना कि क्या मेरे ही शिर इसके आते हैं, ऐसे प्रत्यर्थीके कथनको प्राड्विवाक वा सभासद वा अर्थी यह सूचन करै कि अन्यपर चाहते हैं, आकुल वह होता है कि पूर्वापर जो विरुद्ध हो जैसे सुवर्ण शतके अभियोगमें सच है लियाथा, परतु मेरेपर चाहते नहीं, व्याख्यागम्य वह होताहै कि जिसमें कठिन विभक्ति समास वा अन्य देशकी भाषा कहनेसे कठिनाई हो और उसका अर्थ खोलना पडै, जैसे कि सौ सुवर्ण इसके पिताने लियेथे इस अभियोगमें यह उत्तर कि लेनेवालेके सौ वचनसे सुवर्णोंको पिताको नहीं जानता। इसका यह अर्थ खोलना पडैगा कि लिये हैं सौ सुवर्ण जिसने ऐसे पिताके वचनसे सौ सुवर्ण पिताने लियेथे यह मैं नहीं जानता। असार वह है जो न्यायसे विरुद्ध हो जैसे सौ सुवर्ण इसने ब्याज-

१ अभियुक्तोभियोगस्य यदि कुर्यादपह्नवम्। मिथ्या तत्तु विजानीयादुत्तरं व्यवहारत.॥

२ मिथ्यैतन्नाभिजानामि तदा तत्र न सन्निधिः अजातश्चास्मि तत्काल इति मिथ्या चतुर्विधम्॥

३ अर्थिना लिखितो योऽर्थः प्रत्यर्थी यदि त तथा। प्रपद्य कारण ब्रूयात्प्रत्यवस्कदन स्मृतम्॥

४ आचारेणावसन्नोपि पुनर्लेखयते यदि। सोभिधेयो जितः पूर्वं प्राङ्न्यायस्तु स उच्यते॥

५ सन्दिग्धमन्यत्प्रकृतादत्यल्पमतिभूरि च पक्षैकदेशव्याप्यन्यत्तथानैवोत्तर भवेत्॥ यद्व्यस्तपदमव्यापि निगूढार्थं तथाकुलम्। व्याख्यागम्यमसार च नोत्तर स्वार्थसिद्धये॥

पर लियेथे वृद्धि (व्याज) ही दीहै मूल नहीं दिया। इस अभियोगमें सत्य है वृद्धि दीहै मूल मैं लियाही नहीं। उत्तर इस एक वचनसे उत्तरोंके संकरका निराश भया। सोई कात्यायनने कहा है कि जो पक्षके एक देशमें सत्य, एक देशमें कारण, एक देशमें मिथ्या हो ऐसा उत्तर संकर होनेसे ठीक उत्तर नहीं। और अनुत्तरमें कारणभी कात्यायनने कहा है कि एक विवादमें दो वादियोंकी क्रिया और दोनोंके अर्थकी सिद्धि नहीं होती और एक बार दो कार्यभी नहीं होते। मिथ्या और कारण उत्तरोंके संकरमें अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंकी क्रिया पाती है। क्योंकि यह स्मृति है कि पूर्व वादमें मिथ्या क्रिया और कारणमें प्रतिवादीकी क्रिया होती है। वे दोनों एक व्यवहारमें विरुद्ध हैं जैसे सुवर्णशत और रूपकशत इसने लिये हैं इस अभियोगमें सुवर्णशत मैं नहीं लिये सौ रुपये लिये थे परंतु देदिये थे। कारण और प्राङ्न्यायोत्तरमें तो प्रत्यर्थीकीही क्रिया होती है सोई इस वचनमें लिखा है जैसे सुवर्ण लिया था देदिया। और रूपकमें यह व्यवहारके मार्गसे पराजय हो चुका है यहां प्राङ्न्यायमें जीतके पत्रसे वा प्राङ्न्याय देखनेवालोंसे निश्चय करै और कारणके कथनमें साक्षीके लेख आदिसे निश्चय करै यही विरोध है। इसी प्रकार तीन उत्तरोंके संकरमेंभी जानना। जैसे इसने सुवर्ण सौ रुपये और वस्त्र लियेहैं इस अभियोगमें सच सुवर्ण लिया था परतु देदिया था। और सौ रुपये मैं नहीं लिये। और वस्त्रके विषयमें तो पहिले यह न्यायसे पराजित हो चुका है। ऐसेही चार उत्तरोंके संकरमें जानो। ये सब अनुत्तर इकट्ठे हो सकते हैं क्योंकि वह २ अंश उस २ के विना सिद्ध नहीं हो सकता। और क्रमसे तो ये सब उत्तरही हैं। और क्रमभी अर्थी प्रत्यर्थी और सभासदोंकी इच्छासे होता है। जहां दोका संकर है वहां जो अधिक पदार्थमें हो उसकी क्रियाके स्वीकारसे पहिले व्यवहार करै और पीछे अल्पविषयके उत्तरके उपादान (सुनना) से व्यवहार देखना। और जहां संप्रतिपत्ति और अन्य उत्तरका सकर है वहां अन्य उत्तरको सुनकर व्यवहार देखना। क्योंकि संप्रतिपत्ति उत्तरमें कोई क्रियाही नहीं होती। इसीसे हारीतने जहां मिथ्या और कारण उत्तर दोनों हों और अन्यके सग सत्यभी हो वहां कौनसा उत्तर मानना यह कहकर कहा है कि जिसके धनको विषय बहुत हो वा जहां क्रियाका कुछ फल हो वहांही उत्तर असंकीर्ण (साफ) जानना, इससे अन्य सकीर्ण होता है। शेष उत्तरोंमें क्रम अपनी इच्छासे होता है। उसमें प्रभूत अर्थ यह है कि इसने सुवर्ण, सौ रुपये और वस्त्र लिये हैं इस अभियोगमें सच सुवर्ण लियाथा। सौ रुपये नहीं लिये। वस्त्र तो लियेथे परंतु देदिये थे। यहां मिथ्या उत्तरका विषय अधिक है इससे अर्थीकी क्रियाको लेकर पहिले व्यवहार करना। फिर वस्त्रोंका व्यवहार करना। इसी प्रकार मिथ्या और प्राङ्न्यायके और कारण और प्राङ्न्यायके सकरमें समझना। तैसेही पूर्वोक्त अभियोगमें सच है सुवर्ण और सौ रुपये लियेथे दूंगा, वस्त्र तो नहीं लिये वा लियेथे परतु देदियेथे वा वस्त्रके विषयमें

१ पक्षैकदेशे यत्सत्यमेकदेशे च कारणम्। मिथ्या चैवैकदेशे च संकरात्तदनुत्तरम्॥

२ नचैकस्मिन्विवादे तु क्रिया स्याद्वादिनोर्द्वयोः। नचार्थसिद्धिरुभयोर्नचैकत्र क्रियाद्वयम्॥

३ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि।

४ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम्।

१ मिथ्योत्तर कारण च स्यातामेकत्र चेदुभे। सत्य चापि सहान्येन तत्र ग्राह्य किमुत्तरम्॥

२ यत्प्रभूतार्थविषय यत्र वा स्यात्क्रियाफलम्। उत्तरं तत्र तज्ज्ञेयमसकीर्णमतोऽन्यथा॥

यह पराजित हो चुका है। इस उत्तरमें यद्यपि संप्रतिपत्तिका विषय बहुत है तथापि उसमें क्रियाका अभाव होनेसे मिथ्या आदि उत्तरोंकी क्रियासे व्यवहार करना। जहां मिथ्या और कारण उत्तर सब पक्षके विषयमें हों जैसे सींग पकडकर कोई कहे कि यह गौ मेरी थी और अमुक समयमें खोई गयी थी, आज इसके घरमें देखी है, दूसरा यह कहताहै कि, यह झूठ है उससे पहिलेही मेरे घरमें थी वह पैदा हुई थी यह पक्षके निराकरणमें समर्थ होनेसे अनुत्तर नहीं और न मिथ्या ही है क्योंकि कारणसे युक्त है। एक देशके स्वीकारके अभावसे कारण उत्तरभी नहीं है तिससे यह कारणसहित मिथ्या उत्तर है। इस कारणमें प्रतिवादीकी क्रिया होतीहै इस वचनसे प्रथम प्रतिवादीकी क्रिया राजा करै। कदाचित् कोई शंका करै कि मिथ्या उत्तरमें पूर्ववादीकी क्रिया होती है इस वचनसे पूर्ववादीकी क्रिया पूर्व क्यों नहीं होती सो ठीक नहीं वह वचन शुद्ध मिथ्या उत्तरके विषयमें है। कदाचित् कोई शंका करै कि कारण उत्तरमें प्रत्यर्थीकी क्रिया (सुनाई) पूर्व करै यहभी शुद्धकारणके विषयमें क्यों नहीं माना जाताहै, सो ठीक नहीं, क्योंकि सब कारण उत्तरोंको मिथ्योत्तरके सहचारी होनेसे शुद्ध कारणोत्तरका असंभव है। प्रसिद्ध कारणोत्तरमेंभी प्रतिज्ञात अर्थके एकदेशके स्वीकारसे एकदेशमें मिथ्यात्व रहताहै जैसे कि सच है कि मैंने सौ रुपये लिय थे पर अब मुझपर नहीं चाहते हैं, क्योंकि मैंने देदिये थे, प्रकृत (इस) उदाहरणमें तो प्रतिज्ञात अर्थके एक देशकाभी स्विकार नहीं है इतना विशेष है। यह बात हारीतने इस वचनसे स्पष्ट कही है कि मिथ्या और कारण उत्तरमें कारण उत्तर स्विकार करने योग्य है और जहां मिथ्या और प्राङ्न्याय उत्तर पक्षके व्यापक हैं जैसे कि इसपर सौ रुपये चाहते हैं इस अभियोगमें यह बात मिथ्या है और इसमें इसका पहिले पराजय हो चुकाहै, वहांभी प्रतिवादीकीही पहिले क्रिया होती है, क्योंकि यह वचन है कि प्राङ्न्याय और कारणोत्तरमें प्रत्यर्थी क्रियाको दिखावै। शुद्ध प्राङ्न्याय उत्तरका अभाव होनेसे वह उत्तर ही नहीं होसकेगा संप्रतिपत्तिभी साध्यत्वके निराकरणसेही उत्तर होसकताहै क्योंकि साध्यरूप पक्ष उसमें सिद्ध माना जाताहै और जब कारण और प्राङ्न्यायका संकर है जैसे कि सौ रुपये इसने लिये हैं इस अभियोगमें सच लियेथे परंतु देदिये और इसमें पहिले न्यायसे यह पराजित हो चुका है वहांभी प्रतिवादीकी रुचिके अनुसार निर्णय करै, कहींभी वादी प्रतिवादियोंकी एक व्यवहारमें दो क्रिया नहीं होतीं यह निर्णय है, इस प्रकार पत्रके लिखनेपर कार्यकी सिद्धि कारणके अधीन है इस कारणके निर्देशको न करै इस अपेक्षासे कहते हैं फिर उत्तर लेनेके अनंतर अर्थी उसी समय प्रतिज्ञात (साध्य) अर्थके साधन (प्रमाण) को लिखवावै, यहां सद्यः ही लिखवावै इस बातके कहनेसे यह जाना गया कि उत्तरके देनेमें कालका विलंबभी स्वीकार है, सोई आगे पृथक् २ दिखावेंगे, अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखवावै यह कहनेसे यहभी कहागया कि जिसका साध्य हो वही प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखवावै इससे प्राङ्न्याय उत्तरमें प्राङ्न्यायकोही साध्य होनेसे प्रत्यर्थी ही अर्थी जानागया इससे वही साधनको लिखवावै, कारणोत्तरमेंभी कारण ही साध्य है इससे कारणका वादी ही अर्थी है इससे वही कारणको लिखवावै। मिथ्यो-

---

१ कारणे प्रतिवादिनि।

२ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे।

३ मिथ्याकारणयोर्वापि ग्राह्यं कारणमुत्तरम्।

१ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम्॥

त्तरमें तो पूर्ववादी ही अर्थी है वही साधनको लिखवावै, फिर अर्थी लिखवावे इस कहनेसे यहभी कहा गया कि अर्थी ही लिखवावै अन्य नहीं, इससे संप्रतिपत्ति उत्तरमें साध्यके अभावसे भाषा और उत्तरके वादी दोनों ही अर्थी नहीं हो सकते और साधनका दिखानाभी नहीं, क्योंकि उतने (प्रत्यर्थीका स्वीकार) सेही व्यवहार समाप्त होजाता है यही वात हारीतने स्पष्ट कही है कि प्राङ्न्याय और कारण उत्तरोंमें प्रत्यर्थी क्रियाको दिखावे और मिथ्या उत्तरमें पूर्ववादी क्रिया दिखावे और संप्रतिपत्ति उत्तरमें क्रिया नहीं होती ॥

भावार्थ-पूर्ववादीके सामने सुने हुए अर्थका उत्तर लिखना, फिर अर्थी अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन (कारण वा प्रमाण) लिखवावे ॥ ७ ॥

तत्सिद्धौसिद्धिमाप्नोतिविपरीतमतोन्यथा ।
चतुष्पाद्व्यवहारोयंविवादेषूपदर्शितः॥ ८॥

पद-तत्सिद्धौ ७ सिद्धिम् २ आप्नोति क्रि- विपरीतम् १ अतःऽ-अन्यथाऽ-चतुष्पात् १ व्यवहारः १ अयम् १ विवादेषु ७ उपदर्शितः १॥

योजना-तत्सिद्धौ (प्रमाणसिद्धौ) व्यवहारः सिद्धिम् आप्नोति । अतः अन्यथा विपरीत भवति। अय चतुष्पात् व्यवहारः विवादेषु उपदर्शितः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि वह साधन (प्रमाण) वक्ष्यमाण साक्षी आदिके लेखसे सिद्ध होजाय तो साध्यरूप अपने अर्थकी जयरूप सिद्धिको अर्थी प्राप्त होता है और इससे अन्यथा होय तो अर्थात् साधनकी सिद्धि न होय तो विपरीत होताहै अर्थात् पराजयरूप असिद्धिको प्राप्त होता है । राजा व्यवहारोंको देखै यह पूर्व कहा हुआ व्यवहार चतुष्पाद् अर्थात् चार अंश वा कलाओंसे युक्त ऋणादान आदि विवादोंमें वर्णन किया है । तिन चारोंमें प्रत्यर्थीके आगे लिखे यह भाषावाद प्रथम है और सुनेहुए अर्थका उत्तर लिखै यह उत्तर पाद दूसरा है, फिर अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको लिखै यह क्रियापाद तीसरा, साधनकी सिद्धिमें सिद्धिको प्राप्त होताहै यह साध्य सिद्धिका पाद चौथा है। सोई कहाहै कि मनुष्योंकी स्वार्थसिद्धिके परस्पर विवादोंमें वाक्यके न्यायसे व्यवस्थाको व्यवहार कहते हैं। उसके क्रमसे ये चार अंश होते हैं कि भाषा उत्तर क्रिया साध्य सिद्धि इससे उसको चतुष्पाद् कहते हैं। संप्रतिपत्ति उत्तरमें तो साधनका दिखाना नहीं और भाषाके अर्थकोभी सिद्ध नहीं करना पडता इससे साध्य सिद्धिरूप पाद नही है, वहां दो पादही व्यवहार होताहै । उत्तर कहनेके अनंतर सभासदोंका जो यह विचाररूप व्यवहार है कि अर्थी और प्रत्यर्थीके मध्यमें किसकी क्रिया पहिले हो वह याज्ञवल्क्यने पृथक् नहीं कहा और व्यवहार करनेवालेका कोई संबधभी नहीं इससे व्यवहार पाद नहीं होसकता यह स्थित भया ॥

भावार्थ-प्रमाणकी सिद्धिमें साध्य (दावा) सिद्धिको प्राप्त होता है और अन्यका (असिद्धिसे) सिद्धिको प्राप्त नहीं होता,यह पूर्वोक्त चार पादवाला व्यवहार विवादोंमें दिखायाहै ॥८॥

१ प्राङ्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत् क्रियाम् । मिथ्योक्तौ पूर्ववादी तु प्रतिपत्तौ न सा भवेत् ॥

१ परस्पर मनुष्याणां स्वार्थविप्रतिपत्तिषु । वाक्यन्यायाद्व्यवस्थानं व्यवहार उदाहृतः ॥ भाषोत्तरक्रियासाध्यसिद्धिभिः क्रमवृत्तिभिः ॥ आक्षिप्तचतुरंशस्तु चतुष्पादभिधीयते ॥

इति साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरणम् १.

असाधारणव्यवहारमातृकाप्रक० २.

अभियोगमनिस्तीर्थैनंप्रत्यभियोजयेत्।
अभियुक्तंचनान्येननोक्तंविप्रकृतिंनयेत्॥९॥

पद्–अभियोगम् २ अनिस्तीर्य ऽ–न ऽ–एनाम् २प्रत्यभियोजयेत् क्रि–अभियुक्ताम्२च ऽ–न ऽ–अन्येन३न ऽ–उक्तम्२ विप्रकृतिम्२नयेत् क्रि–॥

योजना–अभियोगम् अनिस्तीर्य एन न प्रत्यभियोजयेत्। अन्येन अभियुक्तम् अन्यः अर्थी न अभियोजयेत्। उक्तं विप्रकृतिं न नयेत्॥

तात्पर्यार्थ–अभियोग (दावाके) विना निस्तार (निर्णय) किये अर्थात् परिहार किये विना इस अभियोक्ता (दावेदार) को दूसरे अभियोगसे युक्त न करै। यद्यपि प्रत्यवस्कन्दनभी प्रत्यभियोगरूप है तथापि वह अपने अपराधका परिहाररूप है इससे निषेधका विषयही है इससे अपने अभियोगका अनिवारणरूप प्रत्यभियोगका यह निषेध है। यहभी प्रत्यर्थीके लिये है। जवतक अन्यके अभियोगका निवारण न हो तवतक अन्य अर्थी अभियोग (दावा) न करै अर्थात् एकके झगडा निपटने परही दूसरा अभियोग (दावा) करै। और आवेदनके समयमें जो कहाहो उसके विरुद्ध न करै अर्थात् जो वस्तु आवेदन (रपट) के समय निवेदन की हो वह वस्तु भाषाके समयभी उसी प्रकार लिखनी अन्यथा नहीं। कदाचित् कोई शका करै कि प्रत्यर्थीके आगे जैसा अर्थीने निवेदन कियाहो वैसाही लिखना इस वचनसेही यह कह आये हैं फिर दुवारा यह क्यों कहाहै कि पूर्वोक्तके विरुद्ध न कहै। इसका समाधान यह है कि अर्थीने जैसा आवेदन कियाहो, इसका तो यह तात्पर्य है कि आवेदनके समय जो वस्तु निवेदन की हो वही उसी प्रकार भाषाके समय लिखनी एकभी पदमें अन्य वस्तु नहीं लिखनी, जैसे इसने सौ रुपये व्याजपर लिये थे यह आवेदनके समय कहकर प्रत्यर्थीके आगे सौ वस्त्र व्याजपर लियेथे यह नहीं कहना। ऐसा कहने पर यद्यपि अन्यपदमें गमन नहीं तथापि अन्यवस्तुके गमनसे हीनवादी दड देने योग्य होताहै। और उक्तके विरुद्ध न कहै इससे एक वस्तु होनेपरभी अन्यपदमें गमनका निषेध है। जैसे यह सौ रुपये व्याजपर लेकर नहीं देताहै यह आवेदनके समय कहकर भाषाके समय यह कहै कि सौ रुपये वलसे चुरा लिये हैं। वहां तो अन्यवस्तुमें गमनका निषेध है। और यहां अन्य पदमें गमन निषिद्ध है इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है। यही वात स्पष्ट करके नारदने कहाहै कि पहिले वादको छोडकर जो अन्य वादको स्वीकार करताहै वह मनुष्य अन्यपदके गमनसे हीनवादी जानना। और हीनवादी दडके योग्य होताहै। कुछ प्रकृत अर्थ (दावे) से हीन नहीं होता अर्थात् उसके रुपये आदि मारे नहीं जाते। इससे अर्थी और प्रत्यर्थीके प्रमादको दूर करनके लिये ही यह (अभियोगके निर्णय विना) उपदेश है कुछ प्रकृत अर्थकी सिद्धि वा असिद्धिके विषयमें नहीं है। इसीसे कहैंगे कि छलको छोडकर वस्तुओंके तत्त्वानुसार राजा व्यवहारोंका निर्णय करै। यहभी अर्थके व्यवहारमें जानना। क्रोधसे किये व्यवहारमें प्रमादसे कुछ कहा जाय तो प्रकृत अर्थसेभी हीन होजाताहै सोई नारदने कहाहै कि सपूण अर्थोंके विवादोंमें वाणीका छल होय तो अवसादन (हरना) को प्राप्त

---

१ पूर्ववाद परित्यज्य योऽन्यमालवते पुनः। पदसंक्रमणाज्ज्ञेयो हीनवादी स वै नरः॥

२ छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः।

३ सर्वेष्वर्थविवादेषु वाक्छलेनावसीदाति। परस्त्रीभूम्यृणादानशास्योऽप्यर्थान्न हीयते॥

नहीं होता अर्थात् प्रकृत अर्थसे हीन नहीं होता इसका उदाहरण यह है कि जैसे पराई स्त्री भूमि ऋणके आदान (लेना) में दंड देने योग्यभी अर्थसे हीन नहीं होता। ऐसेही संपूर्ण अर्थविवादोंमें हीन नहीं होता। यह अर्थविवादके ग्रहणसे क्रोधसे किये विवादोंमें प्रमादका वचन कहै तो प्रकृत अर्थसे हीन हो जाताहै यह स्पष्ट जाना गया। जैसे इसने मेरे शिरपर पैरसे ताडना दी यह आवेदनके समय कहकर भाषाके समय यह कहना कि हाथसे वा पैरसे ताडना दी। यह कहता हुआ केवल दंड देने योग्य नहीं किंतु पराजित होताहै ॥

भावार्थ-अपराधका निर्णय किये विना अपराधी अपराधका दंड न दे, और एक अपराधीपर अन्य अर्थी अपराध न लगावे आर अपने कथनके विरुद्ध भाषाके समयमें न कहै९॥

कुर्यात्प्रत्यभियोगं च कलहे साहसेषु च।
उभयोःप्रतिभूर्ग्राह्यःसमर्थःकार्यनिर्णये १०॥

पद-कुर्यात् क्रि-प्रत्यभियोगम् २ चऽ-कलहे ७ साहसेषु ७ चऽ-उभयोः ६ प्रतिभूः १ ग्राह्यः १ समर्थः १ कार्यनिर्णये ७ ॥

योजना-कलहे च पुनः साहसेषु प्रत्यभियोगं कुर्यात् उभयोः कार्यनिर्णये समर्थः प्रतिभूः ग्राह्यः ॥

तात्पर्यार्थ-अब अभियोगके विना निर्णय किये इसपर दूसरा अभियोग अन्य अर्थी न करै इस पूर्वोक्त वचनका अपवाद कहते हैं कि कठोर वाणी और कठोर दंडरूप कलहमें और विष वा शस्त्रसे मारणरूप साहसोंमें प्रत्यभियोग होसकता है इससे अपने अभियोगके विस्तार किये विनाभी अभियोगवाले पर प्रत्यभियोग करै। कदाचित् कोई शंका करै कि पूर्वपक्षके खंडनका अभावरूप होनेसे यह उत्तर नहीं इससे प्रत्यभियोगभी दूसरी प्रतिज्ञारूप है इससे एकवार व्यवहारका न होना दोनोंमें समान है यह सत्य है कुछ यहां एकवार व्यवहारके लिये प्रत्याभियोगका उपदेश नहीं किंतु न्यूनदंडके लिये वा अधिक दंडकी निवृत्तिके लिये है, सोई दिखाते हैं। जैसे इसने मुझे ताडना दी और गाली दी इस अभियोगमें पहिले इसने मुझे ताडना दी और गाली दी इस प्रत्यभियोगमें अल्पदंड है। सोई नारदने कहा है कि जो पहिले अपराध करै वह नियमसे दोषका भागी है और जो पीछेसे अपराध करै वहभी अपराधी है परंतु पहिलेमें न्यायसे दंड अधिक है। और जहां दोनोंको एकवार ताडना आदिकी प्रवृत्ति है वहां अधिक दंडकी निवृत्ति होती है सोई कहा है कि कठोरवाक्य और साहस दोनों एककारही होय और विशेष प्रतीत न होय तो दोनोंमें दंड होता है। इसी प्रकार एकवार व्यवहारकी प्रवृत्तिके असभवमेंभी कलह आदिमें तो प्रत्यभियोग अर्थवान् (ठीक) है और ऋणादान आदिमें निरर्थक है। इस प्रकार अर्थी प्रत्यर्थीके कर्तव्यको कहकर सभासदोंसहित सभापतिके कर्तव्यको कहते हैं। सभासदोंसहित सभापति दोनों अर्थी और प्रत्यर्थीके ऐसे प्रतिभू (जामिन) को स्वीकार करैं जो सब विवादोंमें निर्णयके कार्य करनेमें समर्थ हों अर्थात् दोनोंके कार्योंमें उनके तुल्य हो और राजाके दिवाये धन वा दंडको देसकै। यदि ऐसा प्रतिभू न मिलै तो अर्थी और प्रत्यर्थीकी रक्षामें पुरुष नियत करने और उनको

१ पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु नियत स्यात्स दोषभाक्। पश्चाद्यः सोप्यसत्कारी पूर्वे तु विनयो गुरुः ॥

२ पारुष्ये साहसे वापि युगपत्सम्प्रवृत्तयोः। विशेषश्चेन्न लभ्येत विनयः स्यात्समस्तयोः ॥

वे दोनों वेतन दें सोई कात्यायनने कहा है यदि कार्यके योग्य वादीका प्रतिभू न होय तो रक्षा किया हुआ तो वह वादी संध्याके समय सेवकको वेतन (नौकरी) दे ॥

भावार्थ–कलह और साहसमें प्रत्यभियोग-कोभी करे। वादी और प्रतिवादी दोनोंके ऐसे प्रतिभूको स्वीकार करै जो कार्यके निर्णयमें समर्थ हो ॥ १० ॥

निह्नवेभावितोदद्याद्धनंराज्ञेचतत्समम्।
मिथ्याभियोगीद्विगुणमभियोगाद्धनंवहेत् ॥

पद्–निह्नवे ७ भावितः १ दद्यात् क्रि–धनम् २ राज्ञे ४ चऽ–तत्समम् २ मिथ्याभियोगी १ द्विगुणम् २ अभियोगात् ५ धनम् २ वहेत् क्रि॥

योजना–भावितः प्रत्यर्थी निह्नवे सति अर्थिने च पुनः तत्समम् धन राज्ञे दद्यात्। मिथ्याभि-योगी अर्थी अभियोगात् द्विगुण धनं राज्ञे वहेत् (दद्यात्) ॥

तात्पर्यार्थ–यदि अर्थीके निवेदन किये अभि-योगका प्रत्यर्थी निह्नव (न मानना) करै और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करादे तो प्रत्यर्थी उस अभियोगके धनको तो अर्थीको और उसके समानही झूठके दंडरूप धनको राजाको दे। यदि अर्थी अंगीकार न करासकै तो वही मिथ्या-भियोगी हुआ इससे अभियोगसे दूना धन राजाको दे। प्राङ्न्याय और प्रत्यवस्कंदनमेंभी इसी प्रकार समझना वहांभी अपह्नववादी अर्थी-को यदि प्रत्यर्थी अर्थका स्वीकार करादे तो राजाको प्रकृतधनके समान दंड दे और यदि प्रत्यर्थी प्राङ्न्याय और कारणको स्वीकार न करासके तो मिथ्याभियोगी प्रत्यर्थीही राजाको दूना धन और अर्थीको प्रकृत धन दे। संप्र-तिपत्ति उत्तरमें तो दंडका अभाव है यहभी ऋणादानके विषयमें समझना। पदांतर विष-योंमें तहां २ दंड कहा है और धनसे भिन्न व्यव हारोंमें इसका असभव है इससे यह वचन सब विषयमें नहीं है।राजा अधमर्णको दंडदे[1] यह वचन यद्यपि ऋणादानके विषयमें है तथापि इसका विशेष वहांही कहेंगे और यही वचन सब व्यव-हारके विषयमेंभी लगाने योग्य हैं, कैसे कि जब अभियुक्त प्रत्यर्थी अभियोगका निह्नव करै और अभियोक्ता साक्षी (अर्थी) आदिसे स्वीकार करदे तो अभियुक्त उसके समान धन राजाको दे, यह बात तहां २ उक्त है। यहां चशब्दका निश्चय अर्थ है, धनका दंड राजाको दे यह अनु-वाद है,यदि अभियोग करनेवाला अभियोगको न कहसकै तो मिथ्याभियोगी वह प्रतिपदोक्त धनसे दूना धन दे यह विधि है।यहांभी प्राङ्न्याय और प्रत्यवस्कंदनमें पूर्वके समान समझना ॥

भावार्थ–यदि प्रत्यर्थी अर्थीके अभियोगको न मानै और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करा-दे तो अर्थीको और राजाको अभियोगके समान धन प्रत्यर्थी दे और यदि अर्थीकाही अभियोग (दावा) मिथ्या हो तो वही अभियोगसे दूना धन राजाको दे ॥ ११ ॥

साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियाम्।
विवादयेत्सद्य एव कालोन्यत्रेच्छया स्मृतः॥

पद्-साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये७ स्त्रियाम् ७ विवादयेत् क्रि-सद्यःऽ-एवऽ-कालः१ अन्यत्रऽ-इच्छया ३ स्मृतः १ ॥

योजना–साहसस्तेयपारुष्यगोभिशापात्यये स्त्रियां सद्यः विवादयेत् अन्यत्र इच्छया कालः स्मृतः ॥

ता० भा०–विप शस्त्र आदिसे प्राणियोंकी हिंसारूप साहस और स्तेय (चोरी) पारुष्य

---

१ अथ चेत्प्रतिभूर्नास्ति कार्ययोग्यस्तु वादिनः। स रक्षितो दिनस्यांते दद्याद्भृत्याय वेतनम् ॥

[1] राजाधमर्णको दाप्यः।

(कठोरवाणी और कठोरदण्ड) गौ, पातक लगाना, प्राण और धनका नाश और कुलीनस्त्रीका चरित्र और दासीका स्वत्व इतने विवादोंमें उसी समय विवादको राजा प्रवृत्त करै अर्थात् प्रत्यर्थीसे उत्तर लेनेमें कालकी प्रतीक्षा न करै, देर न करै और अन्य विवादोंमें उत्तर देनेका समय अर्थी प्रत्यर्थी सभापति और सभासदोंकी इच्छासे कहा है ॥ १२ ॥

देशाद्देशांतरं याति सृक्किणीपरिलेढिच । ललाटं स्विद्यते चास्य मुखं वैवर्ण्यमेतिच१३

पद-देशात् ५ देशांतरम् २ याति क्रि-सृक्किणी २ परिलेढि क्रि-चऽ-ललाटम् १ स्विद्यते क्रि-चऽ-अस्य ६ मुखम् २ वैवर्ण्यम् २ एति क्रि-चऽ- ॥

परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यो विरुद्धं बहुभाषते । वाक्चक्षुःपूजयति नो तथोष्ठौ निर्भुजत्यपि॥

पद-परिशुष्यत्स्खलद्वाक्यः १ विरुद्धम् २ बहुऽ-भापते क्रि-वाक्चक्षुः २ पूजयति क्रि-नोऽ-तथाऽ-ओष्ठौ २ निर्भुजति क्रि-अपिऽ-॥

स्वभावाद्विकृतिं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः। अभियोगे च साक्ष्ये वा दुष्टः सपरिकीर्तितः

पद-स्वभावात् ५ विकृतिम् २ गच्छेत् क्रि-मनोवाक्कायकर्मभिः ३ अभियोगे ७ चऽ-साक्ष्ये ७ वाऽ-दुष्टः १ सः १ परिकीर्त्तितः १ ॥

योजना-पर देशात् देशांतरं याति यः सृक्किणी परिलेढि अस्य ललाटं स्विद्यते च पुनः मुखं वैवर्ण्यम् एति यः परिशुष्यंत्स्खलद्वाक्यः बहु विरुद्धं भाषते यः वाक्चक्षुः नो पूजयति च पुनः ओष्ठौ निर्भुजति एवं मनोवाक्कायकर्मभिः स्वभावात् विकृतिं यः गच्छति सः अभियोगे च पुनः साक्ष्ये दुष्टः परिकीर्तितः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य मन वाणी और काया कर्मोंसे स्वभावके अनुसार ही विना भय आदिके विकारको प्राप्त हो वह अभियोग करनेमें और साक्षी देनेमें दुष्ट कहाहै । उन विकारोंको ही पृथक् २ दिखाते हैं कि देशसे देशांतरमें जाय कहीं टिकै नहीं, और जो सृक्किणी (होठोंका प्रांत)को अपने जिह्वाके अग्रसे स्पर्श करै यह क्रियाका विकार है और जिसके मस्तकपर स्वेद (पसीना) आजाय और मुख विवर्ण (पीला वा काला) होजाय, यह कायाका विकार है और जो परिशुष्यत्स्खलद्वाक्य होकर अर्थात् गद्गद और अस्तव्यस्त वचनोंसे पूर्वापरके विरुद्ध (वरखिलाफ) वहुत वोलै, यह वाणीका विकार है और जो उत्तर देनेसे पराई वाणीकी और देखनेसे नेत्रोंकी पूजा न करै अर्थात् यथार्थ न कह सकै न देखसकै, यह मनके विकारका लिंग है और जो अपने ओष्ठोंको टेढा करै यहभी कायाका विकार है; इतने चिह्न जिसमें हों वह दुष्ट कहा है । यहभी दोषकी सभावनाके लिये कहाहै कुछ दोषनिश्चयके लिये नहीं, क्योंकि स्वाभाविक और नैमित्तिक विकारोंकी विवेचना कठिनतासे जानी जाती है । यदि कोई निपुण बुद्धिविवेकसे जानभी जाय तोभी पराजयके निमित्त कार्य नहीं होता । क्योंकि मरनेवालेका चिह्न देखकर मरनेका कार्य नही कियाजाता इसी प्रकार इसका पराजय होगा इस चिह्नसे ज्ञानके होनेपरभी पराजयके निमित्त कार्य नहीं होता ॥

भावार्थ-जो देशसे देशांतरको चलाजाय और सृक्किणीको चाटै, मस्तकपर पसीना आजाय, मुख विवर्ण हो जाय और जो गद्गदवाणीसे बहुत विरुद्ध कहै और जो यथार्थ उत्तर न देसकै और न देखसकै,

और जो दांतोंसे ओठोंको चवावै इस प्रकार जो मन वाणी काया और कर्म (क्रिया) से विकारको प्राप्त होताहै वह अभियोग और साक्षी देनेमें दुष्ट कहाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

संदिग्धार्थं स्वतंत्रोयःसाधयेद्यश्चनिष्पतेत्। नचाहूतो वदेत्किंचिद्धीनो दंडयश्चसस्मृतः॥

पद-संदिग्धार्थम् २ स्वतंत्रः १ यः १ साधयेत् क्रि-यः १ चऽ-निष्पतेत् क्रि-नऽ-चऽ-आहूतः १ वदेत् क्रि-किंचित्ऽ-हीनः १ दंडयः १ चऽ-सः १ स्मृतः १ ॥

योजना-यः स्वतंत्रः सन् संदिग्धार्थं साधयेत् च पुनः निष्पतेत् च पुनः आहूतः सन् किंचित् न वदेत् सः हीनः च पुनः दंडयः स्मृतः।

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य अधमर्णके नहीं स्वीकार किये संदिग्ध अर्थको स्वतन्त्र होकर अर्थात् साधनोंके विनाहि आसेध आदिसे सिद्ध करै और जो स्वय स्वकिार किये वा साधनोंसे सिद्ध किये अर्थसे गिरजाय, अर्थात् न दे और जो अभियोगी राजाके बुलानेसे सभामें कुछ न कहै वह हीन और दंड देने योग्य कहाहै अर्थात् वह हार जायगा और दंड देने योग्यभी होगा, अभियोग और साक्षीमें वह दुष्ट कहाहै यह प्रकरण था इससे हीनकाही ग्रहण न होजाय तिससे दंडयका ग्रहण किया, और दंडयभी शिक्षाके योग्य होताहै परंतु अर्थसे हीन नहीं होता। अर्थसे अहीन न होजाय तिससे हीनका ग्रहण किया ॥

भावार्थ-जो अर्थी स्वतत्र होकर सन्दिग्ध अर्थको सिद्ध करै और जो प्रमाणसे सिद्ध किये अर्थसे गिरजाय अर्थात् मॉगने पर न दे और जो राजाका बुलाया सभामें कुछ न कहसके वह अर्थ (दावे) से हीन और दंड देने योग्य कहाहै ॥ १६ ॥

साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः। पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवंत्युत्तरवादिनः॥ १७ ॥

पद-साक्षिषु ७ उभयतःऽ-सत्सु ७ साक्षिणः १ पूर्ववादिनः ६ पूर्वपक्षे ७ अधरीभूते ७ भवंति क्रि-उत्तरवादिनः ६ ॥

योजना-उभयतः साक्षिषु सत्सु पूर्ववादिनः साक्षिणः पूर्वं प्रष्टव्याः पूर्वपक्षे अधरीभूते सति उत्तरवादिनः साक्षिणः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-जहां दोनों भाषावादी एक वार धर्माधिकारीके समीप आवें उनमें एक तो प्रतिग्रहसे क्षेत्रको लेकर और कुछ काल भोगकर कार्यवश कुटुंबसहित देशांतरमें चलागया और दूसराभी उसी क्षेत्रको प्रतिग्रहसे लेकर कुछ काल भोगकर देशांतरमें चलागया फिर दोनोंभी एक समय आकर मेरा यह क्षेत्र है, मेरा यह क्षेत्र है ऐसे परस्पर विवाद करते हुए धर्माधिकारीके पास आये हों वहां प्रथम किसकी क्रियाको करै इस अपेक्षासे कहतेहैं कि दोनों वादियोंके साक्षियोंका सम्भव होय तो पूर्ववादीके अर्थात् पूर्वकालमें मुझे मिलाथा और पहिले ही मैंने भोगाथा ऐसे जो कहै उसके साक्षी पहिले होतेहैं, कुछ पूर्व जो निवेदन करै उसके नहीं, और जब दूसरा ऐसे कहै कि सच इसने पूर्व प्रतिग्रह लिया और भोगाथा किंतु राजाने यही क्षेत्र इससे मोल लेकर मुझे देदिया था अथवा इसनेही प्रतिग्रहसे लेकर मुझे देदिया था वहां पूर्वपक्ष असाध्य होनेसे जब अधर (न्यून) होजाय तब उत्तर कालमें मुझे मिला और मैंने भोगा ऐसे कहनेवाले उत्तर वादीके साक्षी पूछने, यही अर्थ अत्यत श्रेष्ठ है, और (अन्य) व्याख्यान ठीक नहीं है कि मिथ्या-उत्तरमें पूर्ववादीके साक्षी होते हैं, और प्राङ्न्याय और कारण उत्तरोंमें पूर्वपक्षके अधर होने पर उत्तम वादीके साक्षी होते हैं, क्योंकि यह

अर्थ तो फिर अर्थी प्रतिज्ञात अर्थके साधनको उसी समय लिखवावे इस वचनसे कह आयेथे इससे पुनरुक्तिदोष आवेगा,और यही अर्थ नारदने इने वचनोसे स्पष्ट कियाहै कि पूर्ववादमें मिथ्याकी और प्रतिवादमें कारणकी क्रिया होती है प्राड्न्याय और विधिकी सिद्धिमें जयका पत्रही क्रिया होती है यह कहकर कहाहै कि दोनों विवादोंके अर्थमें दोनोंके साक्षी होंय तो जिसका पक्ष पहिला हो उसकेही साक्षी होते हैं,-यह इस लिये पृथक् कहाहै कि यह सब व्यवहारोंसे विलक्षण है ॥

भावार्थ-दोनोंके साक्षी होय तो पूर्ववादीके साक्षी पहिले होते हैं,यदि पूर्व पक्ष किसी प्रकार न्यून हो जाय तो उत्तर वादीके होते हैं ॥१७॥

सपणश्चेद्विवादः स्यात्तत्रहीनं तु दापयेत् ।
दंडं च स्वपणं चैव धनिने धनमेवच॥१८॥

पद-सपणः १ चेत्ऽ-विवादः१ स्यात् क्रि-तत्रऽ-हीनम् २ तुऽ-दापयेत् क्रि-दण्डम् २ चऽ-स्वपणम् २ चऽ-एवऽ-धनिने ४ धनम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना-चेत् (यदि) विवादः सपणः स्यात् तत्र हीनं दंडं च पुनः स्वपणं च पुनः धनिने धनं राजा दापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि विवाद (व्यवहार) पण (सरत) सहित हो और उस व्यवहारमें जो हीन (पराजित) होजाय तो उसको राजा पूर्वोक्त दड और स्वकृत पण राजाको और धनी (अर्थी) को विवादका धन दिवावे जहां एक तो क्रोधमें आकर यह कहै कि यदि मैं इस विवादमें पराजित होजाऊंगा तो सौ पण दूंगा, और दूसरा कुछ प्रतिज्ञा न करै, वहांभी व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है उस व्यवहारमें पणकी प्रतिज्ञाका वादी यदि हीन हो जाय तो उसको पणसहित दड राजा दे, दूसरा पराजित हो जाय तो उसे दंड दे पण उससे न ले, क्योंकि वचनमें स्वपण (अपना पण) यह विशेप कहाहै, जहां एक सौ रुपयेका और दूसरा पचासका पण करै वहांभी पराजयमें अपने किये पणकेही दडभागी होते हैं, यदि विवाद पणसहित हो यह कहनेसे यहभी सूचित भया कि पणरहितभी विवाद होताहै ॥

भावार्थ-यदि विवाद पणसहित होय तो पणमें हीनको राजाको अपने किये पण और दंड और अर्थीको धन यह सब दड दे ॥ १८ ॥

छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ।
भूतमप्यनुपन्यस्तं हीयते व्यवहारतः॥१९॥

पद-छलम् २ निरस्यऽ-भूतेन ३व्यवहारान् २ नयेत् क्रि-नृपः १ भूतम् २ अपिऽ-अनुपन्यस्तम् १ हीयते क्रि-व्यवहारतःऽ-॥

योजना-नृपः छलं निरस्य भूतेन व्यवहारान् नयेत् । भूतम् अपि अनुपन्यस्तं व्यवहारतः हीयते ॥

तात्पर्यार्थ-प्रमादसे कथनरूप छलको छोडकर भूत (वस्तुका तत्त्व) के अनुसार राजा व्यवहारोंको समाप्त करै, तिससे भूत (वस्तु) काभी उपन्यास (लेख) भाषाके समय न किया होय तो व्यवहारसे हानिको प्राप्त होताहै तिससे भूतका अनुसरण राजा करै और जैसे अर्थी प्रत्यर्थी सत्यही कहैं वही यत्न सभासदोंसहित सभाका पति साम आदि उपायोंसे करे क्योंकि ऐसे करनेसे साक्षी आदिके अभावमेंभी निर्णय हो सकता

---

१ ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम् ।

२ मिथ्या क्रिया पूर्ववादे कारणे प्रतिवादिनि । प्राड्न्यायविधिसिद्धौ तु जयपत्रं क्रिया भवेत् ॥ द्वयोर्विवदतोरर्थे द्वयोः सत्सु च साक्षिषु । पूर्वपक्षो भवेद्यस्य भवेयुस्तस्य साक्षिणः ॥

है। यदि किसी प्रकारभी वस्तु तत्त्वके अनुसार व्यवहार न हो सके तो साक्षी आदिसे निर्णय करै यह अनुकल्प है। सोई कहाहै कि भूत और छलके अनुसार व्यवहार दो प्रकारका कहाहै। तत्त्व अर्थसे युक्तको भूत और प्रमादसे कहनेको छल कहते हैं। उनमें भूतका अनुसारी व्यवहार मुख्य है और छलका अनुसारी अनुकल्प है। साक्षी और लेख आदिके अनुसार व्यवहारके निर्णयमें कदाचित् वस्तुका अनुसरण हो जाताहै और कदाचित् नहींभी होता। क्योंकि साक्षी आदिके व्यभिचार (अन्यथा कहना) कीभी संभावना हो सकती है॥

भावार्थ–छलको छोडकर राजा वस्तुके तत्त्वको जानकर व्यवहारोंको समाप्त करै। जिस वस्तुके तत्त्वको लेख भाषाके समय न हुआ हो वह वस्तु व्यवहारके मार्गसे हानिको प्राप्त हो जाती है॥ १९॥

ह्नुते लिखितं नैकमेकदेशे विभावितः।
दाप्यः सर्वं नृपेणार्थं न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः।

पद–निह्नुते क्रि–लिखितम् २ नैकम् २ एकदेशे ७ विभावितः १ दाप्यः १ सर्वम् २ नृपेण ३ अर्थम् २ नऽ–ग्राह्यः १ तुऽ–अनिवेदितः १॥

योजना–अर्थिना लिखित नैक यः प्रत्यर्थी निह्नुते। एकदेशे विभावितः सः नृपेण सर्वम् अर्थं दाप्यः।अनिवेदितः अर्थः राज्ञा न ग्राह्यः॥

तात्पर्यार्थ–सुवर्ण चांदी वस्त्र आदि अनेक वस्तु जो भाषाके समय अर्थीने लिखवादीहों यदि उन सबका प्रत्यर्थी निह्नव (मुकरना) करै और उनमें सुवर्ण आदि एकदेशका अर्थी साक्षी आदिसे अंगीकार करादे तो पहिले लिखे संपूर्ण अर्थको राजा प्रत्यर्थीसे अर्थीको दिवादे, और जो वस्तु भाषाके समय अर्थीने न लिखाई हो और उसको अर्थी यह कहै कि मैं भूल गयाथा इस अर्थीके निवेदनको राजा न माने और प्रत्यर्थीसे अर्थको दिवावे और यह केवल वचनसेही नहीं क्योंकि एकदेशमें प्रत्यर्थीको जव मिथ्या वादित्वका निश्चय हो गया तो देशांतरमेंभी मिथ्या वादित्वका सभव होगा और अर्थीको जव एकदेश वस्तुमें सत्यत्वका निश्चय होगया तव देशांतर वस्तुमेंभी सत्यवादित्वका सभव होगा। इस प्रकार तर्क है दूसरा नाम जिसका ऐसी संभावना है अनुकूल जिसके ऐसे इसी योगीश्वरके वचनसे राजा सपूर्ण धनको दिवावे यह निर्णय है। ऐसे तर्कके वाक्यानुसार निर्णय करनेपर वस्तु अन्यथाभी हो जाय तोभी व्यवहार देखनेवालोंको कुछ दोष नहीं। सोई गौतमने कहाहै कि न्यायके स्वीकारमें तर्क उपाय है उससे स्वीकार करके वस्तुको स्थानके अनुसार पहुचादे। यह कहकर कहाहै कि राजा और आचार्य निंदाके अयोग्य हैं और यहां इतनीहि वात नहीं जाननी कि एकदेशका अगीकार करनेवाले प्रत्यर्थीका वचन माननें योग्य नहीं क्योंकि यह वचन है (एकदेश विभावितो नृपेण सर्वं दाप्यः) कि एक देशका जिसने स्वीकार किया हो ऐसे प्रत्यर्थीसे राजा सब धन दिवावे। जो कात्यायनने यह कहाहै कि अनेक अर्थके अभियोगमेंभी जितनेको धनी साक्षियोंसे सिद्ध करा दे उतनेही धनको अर्थी प्राप्त होताहै। वह वचन पुत्र आदिके ऋणके विषयमें है। क्योंकि वहां वहुत अर्थोंका है अभियोग जिसपर ऐसा पुत्र आदिमें नहीं जानता

---

१ भूतच्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः समुदाहृतः। भूत तत्त्वार्थसंयुक्तं यत्प्रमादाभिहितं छलम्॥

१ न्यायाधिगमे तर्कोऽभ्युपायस्तेनाभ्युपेत्य, यथास्थान गमयेत्।

२ तस्माद्राजाचार्यावनिन्द्यौ।

३ अनेकार्थाभियोगेपि यावत्ससाधयेद्धनी। साक्षिभिस्तावदेवासौ लभते साधितं धनम्॥

ऐसे कहता हुआ निह्नववादी नहीं होता इससे एक देशमें स्वीकार करायाभी वह कभी भी असत्यवादी नहीं होता इससे अनेक लेखोंको जो न माने यह वचन वहां प्रवृत्त नहीं होता। क्योंकि न निह्नव वाद है न अपेक्षित तर्क है, और अनेक अर्थके अभियोगमें भी यह पूर्वोक्त कात्यायनका वचन सामान्य विषयमें है इससे विशेष शास्त्रके विषय निह्नवके उत्तरको छोडकर अज्ञानसे जो उत्तर उसमें प्रवृत्त होता है, कदाचित् कोई शंका करै कि जव ऋण आदि व्यवहार प्रायः स्थिर हो जायँ तो ऊन वा अधिक कहने पर साध्यकी सिद्धि नही होती यह कहते हुए कात्यायनने अनेकअर्थके अभियोगमें साक्षियोंमें एक देशका स्वीकार वा अधिकका स्वाकार करादिया जाय तो सपूर्णकी ही सिद्धि नहीं होती यह कहाहै,तैसे होनेपर एक देशके स्वीकारमें विना स्वीकार किये एक देशकी सिद्धि कहां इस शंकाका समाधान कहते हैं कि लिखे हुए सव धनकी सिद्धिके लिये दिये हुए साक्षियोंके एक देशके वा अधिकके कहनेपर सपूर्ण ही साध्य सिद्ध नहीं होता यह उस वचनका अर्थ है, वहांभी निश्चयसे सिद्ध नहीं होत इस वचनसे पूर्वके समान सशयही है इससे अन्य प्रमाणकाभी अवसर है क्योंकि छलको छोडकर व्यवहार करै यह नियम है, और साहसमें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धिके लिये दिये साक्षी एक देश कोभी यदि सिद्ध करादें तो संपूर्ण साध्यकी सिद्धि होती ही है, क्योंकि उतनेसे ही साहस आदि सिद्ध है और कात्यायनका वचनभी है कि यदि साध्य अर्थक एक भागकोभी साक्षी कह दें तो उस सम्पूर्ण साध्यकी सिद्धि होती है जो स्त्रीका सग साहस चोरीके विषयमें हो ॥

भावार्थ-अनेक लिखाई हुई वस्तुओंको प्रत्यर्थी न माने और साक्षी आदि एक देशका स्वीकार करादें तो राजा सव धनको उससे दिवावे। और जो अर्थ भाषा (अर्जी) के समय निवेदन न किया हो उसको राजा ग्रहण न करै ॥ २० ॥

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तुबलवान्व्यवहारतः। अर्थशास्त्रात्तुबलवद्धर्मशास्त्रमितिस्थितिः ॥

पद-स्मृत्योः ६ विरोधे ७ न्यायः १ तुऽ-बलवान् १ व्यवहारतःऽ-अर्थशास्त्रात् ५ तुऽ-बलवत् १ धर्मशास्त्रम् १ इति-ऽस्थितिः १ ॥

योजना-स्मृत्योः विरोधे सति व्यवहारतः न्यायः बलवान् भवति । तु पुनः अर्थशास्त्रात् धर्मशास्त्रं बलवद्भवति इति स्थितिः (मर्यादा) अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-जहां दो स्मृतियोंका परस्पर विरोध हो वहां विरोध दूर करनेके लिये विषयकी व्यवस्थामें उत्सर्ग और अपवाद आदि न्याय बल्वान् होनेसे समर्थ है, वह न्याय कहांसे जानना इस लिये कहतेहैं कि व्यवहारसे अर्थात् वृद्धोंकेअन्वय व्यतिरेक व्यवहारके द्वारा वह व्यवहार जानना। इससे प्रकरणके उदाहरणमेंभी विषयकी व्यवस्था युक्त है। इसी प्रकार अन्यत्रभी विषयव्यवस्था और विकल्प आदि यथा संभव जानने, धर्मशास्त्रके अनुसार व्यवहारोंको करै इससेही अर्थशास्त्रका निरास हो चुका था तोभी धर्मशास्त्रके अन्तर्गतही नीति शास्त्र यहां कहनेको इष्ट है, इससे अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रकी स्मृतियोंका विरोध होय तो अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बल्वान् होताहै यह मर्यादा है, यद्यपि दोनोंका एक कर्ता होनेसे धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र-

१ ऋणादिषु विवादेषु स्थिरप्रायेषु निश्चितम् । ऊने वाप्यधिके वार्थे प्रोक्ते साध्यं न सिद्ध्यति ॥
२ साध्यार्थांशेपि गदिते साक्षिभिः सकलं भवेत् । स्त्रीसंगे साहसे चौर्ये यत्साध्यं परिकीर्तितम् ॥

के स्वरूपमें कोई विशेष नहीं है, तथापि प्रमाणके विषय धर्मको प्रधान और अर्थको अप्रधान होनेसे धर्मशास्त्र बलवान् है यह अभिप्राय है, धर्मकी प्रधानता शास्त्र आदिमें दिखाई है, तिससे धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रके विरोधमें अर्थशास्त्रका बाधही होता है, न विषयव्यवस्था है और न विकल्प है, इसमें उदाहरण क्या है प्रथम यह तो उदाहरण नहीं है कि गुरु बालक वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण आततायी होकर सन्मुख आता होय तो विना विचारे मारदे, आततायी (शस्त्रधारी) के मारनेमें मारनेवालेको कुछ गुप्त वा प्रकाश दोष नहीं होता, क्रोधका फल क्रोधमें छिप जाता है तैसेही वेदांतके पारगामीभी प्रत्यक्ष मारतेहुए आततायीको मारदे तो उससे ब्रह्महत्यारा नहीं होता, यहां अर्थशास्त्र विना जाने ब्राह्मणको मारकर यह शुद्धि कही है और जानकर ब्राह्मणके वधका तो प्रायश्चित्तही नही है इत्यादि धर्मशास्त्र है इन दोनोंके विरोधमें धर्मशास्त्र बलवान् है यह युक्त नहीं है, इन दोनोंका एक विषय न होनेसे विरोधका अभाव है इससे बल और अबलकी चिंताही नहीं होती, सोई दिखाते हैं, कि जहां धर्मका अवरोध हो वहां द्विजातिभी शस्त्रका ग्रहण करै यह प्रारंभ करके कहा है कि अपनी रक्षा, दक्षिणाओंका सग्राम (समूह), युद्ध, स्त्री, ब्राह्मणकी हिंसा आदि विपत्तिमें धर्मसे मारताहुआ दंडभागी नहीं होता, इस वचनसे अपनी रक्षा दक्षिणा आदि यज्ञके उपकरणोंकी रक्षा, युद्ध, स्त्री, ब्राह्मणका मारना इनमें आततायीको अकूट शस्त्रसे मारकर दंड पाने योग्य नहीं होता, यह कहकर उसके अर्थवादके लिये यह वचन है कि गुरु वा बालवृद्धको मारकर॰ इत्यादि, इन अत्यंत अवध्यभी आततायियोंको मारदे तो अन्योंको तो क्यों नहीं, वाशब्दके सुननेसे और अपि वेदांतपारगम् यहां अपिशब्दके सुननेसे गुरु आदि मारने योग्य हैं, यह प्रतीति नहीं होती क्योंकि यह सुमंतुका वचन है गौ ब्राह्मणको छोडकर आततायीके मारनेमें दोष नहीं है, और मनुकाभी यह वचन है कि शास्त्रका वक्ता आचार्य, माता, पिता, गुरु, ब्राह्मण, गौ, संपूर्ण तपस्वी इनकी हिंसा न करै यह वचन तभी सफल होसकता है जब आचार्य आततायी आदिकी भी हिंसाका निषेध हो, अन्यथा सफल नहीं होसकता, हिंसामात्रका निषेध तो सामान्यशास्त्रसेही सिद्ध है, आततायीके मारनेमें हननेवालेको कोई दोष नहीं यह भी ब्राह्मणसे भिन्नके विषयमें है, क्योंकि ये आततायी सामान्यसे दिखाये हैं कि अग्नि लगानेवाला, विषका दाता, शस्त्र जिसके हाथमें हो, धनका चोर, क्षेत्रस्त्रीका चोर ये छः आततायी

---

१ गुरु वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायांतं हन्यादेवाविचारयन् ॥ नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा मन्युस्त मन्युमृच्छति ॥ आततायिनमायांतमपि वेदांतग रणे । जिघांसंत जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

२ इय विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिन विधीयते ॥

३ शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते ।

१ नाततायिवधे दोषोऽन्यत्र गोब्राह्मणात् ।

२ आचार्यं च प्रवक्तार मातरं पितर गुरुम् । न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥

३ अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥ उद्यतासिर्विषाग्निश्च शापोद्यतकरस्तथा । आथर्वणेन हता च पिशुनश्चापि राजनि ॥ भार्यातिक्रमकारी च रन्ध्रान्वेषणतत्परः । एवमाद्यान्विजानीयात्सर्वानेवाततायिनः ॥

हैं, जैसे खड्ग उठाये, विष, अग्नि, शापके लिये जिसने हाथ उठाया हो, आथर्वण (अभिचार) से मारनेवाला, और राजाका पिशुन (चुगल), भार्याका त्यागी, छिद्र देखनेमें तत्पर इत्यादि संपूर्णोंको आततायी जाने, इससे ब्राह्मण आदि आततायी आत्मा आदिकी रक्षाके लिये हिंसामें निश्चयसे निवारण किये यदि प्रमादसे मरजांय तो वहां लघु प्रायश्चित्त है और राजदंडका अभाव है, तिससे यहां अन्य उदाहरण कहना, सोई कहतेहैं कि सुवर्ण भूमि इनके लाभसे जिससे मित्रका लाभ श्रेष्ठ है तिससे मित्रके लाभार्थ यत्न करै यह अर्थशास्त्र है, क्रोध लोभसे रहित राजा धर्मशास्त्रके अनुसार कार्योंको करै यह धर्मशास्त्र है, इनका किसी विषयमें विरोध होता है, जैसे चार पादका जब व्यवहार वर्तमान है और एककी जयका निश्चय है और उसमें मित्र लाभको देखै, धर्मशास्त्रको न मानै, और अन्यके जयमें धर्मशास्त्रका अनुकूल हो और मित्रलाभ न हो वहां अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बलवान् होता है, इसीसे धर्म और अर्थके सनिपात (मेल) में अर्थके माननेवालेको यही प्रायश्चित्त आपस्तम्बने गुरु (अधिक) अर्थात् द्वादश वर्षका दिखाया है ॥

भावार्थ-दो स्मृतियोंके विरोधमें व्यवहारके अनुसार न्याय बलवान् है, और अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्र बलवान् है, यह मर्यादा है ॥ २१ ॥

प्रमाणंलिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेतिकीर्तितं। एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते ॥

पद-प्रमाणम् १ लिखितम् १ भुक्तिः १ साक्षिणः १ चऽ-इतिऽ-कीर्तितम् १ एषाम् ६ अन्यतमाभावे ७ दिव्यान्यतमम् १ उच्यते क्रिऽ-॥

योजना-लिखितं, भुक्तिः च पुनः साक्षिणः इति प्रमाण बुधैः कीर्तितम्, एषाम् अन्यतमाभावे दिव्यान्यतमम् उच्यते ॥

तात्पर्यार्थ-प्रमीयते अनेन (जिससे निश्चय हो) उसे प्रमाण कहते हैं वह दो प्रकारका है मानुष और दैविक, मानुष तीन प्रकारका है लिखना, भोग, साक्षी यह महर्षियोंने कहा है। उनमें लिखित दो प्रकारका है शासन और चीरक, पूर्वोक्त शासन (दड) है, चीरकका स्वरूप कहेंगे। भुक्ति (भोग) साक्षी वे जिनका लक्षण आगे कहेंगे। कदाचित् कोई शका करे कि लिखित और साक्षी इनका शब्दकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) के द्वारा शाब्दप्रमाणमें अतर्भाव है इससे प्रमाण हो सकते हैं, भुक्ति कैसे प्रमाण होसकती है, इसका समाधान कहते हैं कि भुक्तिभी कुछेक विशेषणोंसे युक्त होकर स्वत्वके हेतु क्रय आदिका विना व्यभिचार अनुमान कराती वा अपनी असिद्धिसे क्रय आदिका कल्पना करती हुई अनुमान वा अर्थापत्तिमें क्रय आदिके विना भोग नहीं होसकता अंतर्भावको प्राप्त होती है इससे प्रमाणरूपही है। यदि इन लिखित आदि तीन प्रमाणोंमेंसे कोई प्रमाण न हो तो उन दिव्योंमेंसे कोईसा प्रमाण जाति देश काल द्रव्य आदिके अनुसार स्वीकार करना, जिन दिव्योंका स्वरूप आगे कहेंगे। क्योंकि मानुषप्रमाणके अभावमेंही दिव्यकी प्रमाणता इसी वचनसे जानी जाती है क्योंकि दिव्यका स्वरूप और प्रामाण्य आगम (शास्त्र) से जाना जाता है इससे जहां परस्परके विवादसे एक वार धर्माधिकारीके समीप आये मनुष्योंमेंसे एक मानुषीक्रियाको चाहता हो और दूसरा दैवीको स्वीकार करताहो,

१ हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः । अतो येतत तत्मात्सौ ।

वहां मानुषीक्रियाही लेनी। सोई कात्यायनने कहा है कि यदि एक मानुषीक्रियाको और दूसरा दैवी क्रियाको कहै वहां राजा मानुषीक्रियाको ग्रहण करै दैवीको न करै। और जहां प्रधान एकदेशका साधन मानुष हो वहांभी दैवप्रमाणका आश्रय न ले। जैसे यह सौ रुपये इतने सूदपर लेकर नहीं देता है इस अभियोगका अपह्नव (मुकरना) करै और लेनेके साक्षी हों, संख्या और सूदके न हों, इससे दिव्यसे स्वीकार कराऊंगा ऐसा कहनेपरभी वहां एकदेशके स्वीकार न्यायसेभी संख्या और सूद विशेषकी सिद्धि होनेसे दिव्य प्रमाणसे निर्णय करनेका अवकाश नहीं है। सोई कात्यायनने कहा है कि यदि एक देशव्यापिनीभी मानुषीक्रिया हो वही लेनी और कहते हुए मनुष्योंकी पूर्णभी दैवी क्रिया न लेनी। जो यह वचन है कि गुप्त साहसवालोंकी परीक्षा दिव्यसे करे। वहभी मानुष प्रमाणके असंभवमेंही नियमके लिये है। और नारदनेभी जो कहा है कि निर्जनवन, रात्रि, घरके भीतर, साहस, न्यास (धरोहर) का अपह्नव इनमें दिव्य क्रिया होती है। वहभी मानुषके असंभवमेंही है। तिससे यह बात स्वाभाविक है कि मानुषके अभावमेंही दिव्यसे निर्णय होता है। इसका अपवादभी देखते हैं कि साहसके प्रकरणमें वाद दंड और वाणीकी कठोरता और बलसे हुए कार्योंमें साक्षी और दिव्य दोनों होते हैं, तैसेही लेख आदिकाभी कहीं नियम देखते हैं। तैसेही वचन है कि पूग (समूह) श्रेणी गण आदिकी जो स्थिति कही है उसका साधन लेख है, दिव्य और साक्षी नहीं है तैसेही वचन है कि द्वार और मार्गकी क्रिया भोग जलप्रवाह आदिमें भोगकी क्रियाही गुर्वी (श्रेष्ठ) होती है, दिव्य और साक्षी नहीं, भृत्योंके देने वा न देनेमें स्वामीके निर्णय करने पर विक्रय और आदान (लेना) के संबंधमें और मोल लेकर जो धनको न चाहता हो, द्यूत और युद्धके विवादमें साक्षीही साधन हैं, दिव्य और लेखन नहीं॥

भावार्थ–प्रमाण ये तीन हैं कि लेख, भोग, साक्षी इनमें यदि कोई न होय तो दिव्योंमेंसे कोईसा प्रमाण कहाहै॥ २२॥

सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया।
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा२३

पद–सर्वेषु ७ अर्थविवादेषु ७ बलवती १ उत्तरा १ क्रिया १ आधौ ७ प्रतिग्रहे ७ क्रीते ७ पूर्वा १ तु-बलवत्तरा १॥

योजना–सर्वेषु अर्थविवादेषु उत्तरा क्रिया बलवती ज्ञेया, तु पुनः आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा बलवत्तरा भवति॥

तात्पर्यार्थ–ऋण आदि संपूर्ण अर्थोंके विवादोंमें पिछली क्रिया (कार्य) बलवान् होती है, यदि वह साक्षी आदिसे सिद्ध हो

---

१ यद्येको मानुषीं ब्रूयादन्यो ब्रूयात्तु दैविकीम्। मानुषीं तत्र गृह्णीयान्नतु दैवीं क्रियां नृप॥

२ यद्येकदेशव्याप्तापि क्रिया विद्येत मानुषी। सा ग्राह्या न तु पूर्णापि दैविकी वदतां नृणाम्॥

३ गूढसाहसिकानां तु दिव्यैः प्राप्त परीक्षणम्।

४ अरण्ये निर्जने, रात्रावन्तर्वेश्मनि साहसे। न्यासापह्नवने चैव दिव्या सम्भवति क्रिया॥

५ प्रक्रांते साहसे वादे पारुष्ये दण्डवाचिके। बलोद्भूतेषु कार्येषु साक्षिणो दिव्यमेव च॥

१ पूगश्रेणीगणादीनां या स्थितिः परिकीर्तिता। तस्यास्तु साधनं लेख्यं न दिव्यं नच साक्षिणः॥

२ द्वारमार्गक्रियाभोगजलवाहादिषु क्रिया। भुक्तिरेव तु गुर्वी स्यान्न दिव्यं नच साक्षिणः॥ दत्तादत्तेथ भृत्यानां स्वामिना निर्णये सति। विक्रयादानसंबंधे क्रीत्वाधनमनिच्छति॥ द्यूते समाह्वये चैव विवादे समुपस्थिते। साक्षिणः साधनं प्रोक्तं न दिव्यं नच लेखकम्॥

जाय तो उसके वादीका विजय होता है और पूर्व कार्य सिद्धभी हो जाय उसके वादीका पराजय होता है वह ऐसे है कि कोई तो ग्रहण (लेना) से धारण (कर्ज) को सिद्ध करताहै और कोई प्रतिदान (लौटानां) से अधारणको सिद्ध करताहै। उनमें ग्रहण और प्रतिदान प्रमाणोंसे सिद्धभी हो जाय तो प्रतिदान बलवान् है, इससे प्रतिदान वादीका विजय होता है। तैसेही पहिले दो सौ रुपये ग्रहण करके कालांतरमें तीन सौका स्वीकार जिसने, किया हो वहां दोनोंमें प्रमाणभी हों तोभी तीन सौका ग्रहण बलवान् है क्योंकि पूर्वका बाध पश्चात् होनेवालेसे हो गया इससे पूर्वकी उत्पत्तिही नहीं होती सोई कहा है कि पूर्व बाधके विना उत्तरकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती और आधि (गहने), प्रतिग्रह, क्रीत इन तीनोंमें पहिला कार्य बलवान् होता है वह ऐसे है कि एकही क्षेत्रको एक मनुष्यके यहां आधि करके और उससे कुछ रुपया लेकर फिर अन्यके यहां आधि करके कुछ रुपया लेले तो पूर्वकाही वह क्षेत्र होता है उत्तरका नहीं। इसी प्रकार प्रतिग्रह और बेचनेमें समझना, कदाचित् कोई शका करै कि आधि रक्खे हुएमें अपना स्वत्व ही नहीं रहा इससे पुनः आधिही नहीं हो सक्ती इसी प्रकार दिये हुएका दान और क्रीत (खरीदा) का क्रय नहीं तिससे यह वचन अनर्थक है। इसका समाधान यह है कि स्वत्व नहीभी है तोभी कोई मोह वा लोभसे फिर आधि आदिको करै तो वहां पहिला बलवान् होताहै इस न्यायमूलही यह वचन है इससे तर्कना करने योग्य नहीं ॥

भावार्थ-संपूर्ण ऋण आदि अर्थोंके विवादोंमें पिछला कार्य बलवान् होताहै और आधि, प्रतिग्रह, क्रीतमें पूर्व कार्य बलवान् होता है ॥ २३ ॥

पश्यतोऽब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ।
परेणभुज्यमानायाधनस्य दशवार्षिकी २४

पद-पश्यतः ६ अब्रुवतः ६ भूमेः ६ हानिः १ विंशतिवार्षिकी १ परेण ३ भुज्यमानायाः ६ धनस्य ६ दशवार्षिकी १ ॥

योजना-परेण भुज्यमानायाः भूमेः तां पश्यतः अब्रुवतः पुसः विंशतिवार्षिकी हानिः भवति धनस्य दशवार्षिकी हानिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि पर (अन्य) मनुष्य विना सबध (दावे) भूमि और धनको भोगता हो और स्वामी देखताहो और यह भूमि मेरी है तुझे भोगनी न चाहिये ऐसा निवारण न करता होय तो उस भूमिकी बीस वर्षमें हानि हो जाती है अर्थात् वह भोगनेवालेकी हो जाती है । यदि उसने निरंतर बीस वर्ष भोगी हो और हस्ती अश्व आदि धनकी दश वर्षमें हानि हो जाती है। कदाचित् कोई शका करै कि यह बात नही हो सकती है, क्योंकि स्वामीके मने न करनेसे स्वत्व नहीं जा सकता दान और विक्रयके समान अनिषेधकी स्वत्व निवृत्तिके हेतुओंमें प्रसिद्धि नही और न वीस वर्षके भोगसे स्वत्व उत्पन्न होताहै, क्योंकि उपभोग स्वत्वमें प्रमाण नहीं होसकता और प्रमाण प्रमेयको पैदा नहीं कर सकता, और रिक्थ (भाग) क्रय आदि जो स्वत्वके कारण (साधक) और हेतु हैं उनमें उपभोग नहीं पढा, सोई दिखाते हैं कि ये आठही स्वत्वके हेतु गौतमने पढे हैं. भोग नही पढा कि भाग, क्रय, संविभाग (प्रतिबंधवाला दाय) प्रतिग्रह, अधिगम

१ पूर्वाबाधेन नोत्पत्तिरुत्तरस्य हि सेत्स्यति ।

१ स्वामिरिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विनिर्जित निर्विष्ट वैश्यशूद्रयोः ।

(निधिका मिलना) और ब्राह्मणको प्रतिग्रहसे मिला, क्षत्रियका जीता हुआ और वैश्य और शूद्रका निर्विष्ट (खेती गोरक्षा और सेवा) इन आठोंसे स्वामी होता है । कदाचित् कहो कि यही वचन वीस वर्षके भोगको स्वत्वका हेतु प्रतिपादन करता है सो ठीक नहीं, क्योंकि स्वत्व और स्वत्वके हेतु लोकमें प्रसिद्ध हैं, केवल शास्त्रसे नहीं जाने जाते । यह विभागके प्रकरणमें भली प्रकार वर्णन करेंगे । गौतमका वचन तो नियमके लिये है । और अनागम (अस्वत्व) भोगको स्वत्वका हेतु मानोगे तो यह वचन भी विरुद्ध हो जायगा कि वहुतसे सैकडों वर्षतक जो अनागम (विना मिला) को भोगता है उसको पृथिवीका राजा चोरका दंड दे । और यह बातभी कहनेको युक्त नहीं है कि अनागमको जो भोगै यह वचन परोक्ष विषयमें है और देखकर जो निषेध न करै यह वचन प्रत्यक्ष विषयमें है । क्योंकि आगमके विना जो भोगै वह अविशेषसे कथन है प्रत्यक्ष वा परोक्षका नामभी नहीं है । और यह कात्यायनका भी वचन है कि पशु स्त्री पुरुष आदिके हरनेवाला वा उसका पुत्र उपभोगमें वल न करै यह धर्मकी व्यवस्था है । प्रत्यक्षके भोगमें हानिके कारणका अभाव है इससे हानिका असभव है आर यहभी मानने योग्य नहीं कि आधि प्रतिग्रह क्रयोंमें पहिली क्रियाकी प्रवलताके अपवादरूप इस वचनसे भूमिके विषयमें वीस वर्षके और धनके विषयमें दश वर्षके उपभोगवाली उत्तर क्रियाकी प्रवलता कही है । क्योंकि आधि आदिकमें यथार्थसे उत्तर क्रिया ही नहीं हो सकती क्योंकि अपनी वस्तुकोही आधि देना विक्रय होता है । और आधि किये और दिये और विक्रीत (वेचा) का स्वत्व नहीं जाता । यदि स्वत्वरहितको दे तो दड इस वचनसे कहा है कि देनेके अयोग्यको जो लेता है और जो देता है वे दोनों चोरके समान शिक्षाके योग्य होनेसे उत्तम साहस दंडके योग्य हैं। तैसेही आधि आदि तीनका अपवादभी यह वचन होगा तो अगले श्लोकमें आधि सीमा आदि अपवाद न हो सकेंगे । तिससे भूमि आदिकी हानि सिद्ध नहीं होसकती । और व्यवहारकी भी हानि नहीं है । क्योंकि नारदने इस वचनसे उपेक्षामें लिंगके अभावसे व्यवहारकी हानि कही है वस्तुके अभावसे नहीं कि, उपेक्षा करनेवाले और तूष्णीं वैठे हुए इस मनुष्यका पूर्वोक्त काल वीत जाय तो व्यवहार सिद्ध नहीं होता । तैसेही मनुनेभी व्यवहारसे भग दिखाया है वस्तुसे नहीं कि यदि जड और पौगडसे भिन्न जिसके विषयको भोगैं तो वह व्यवहार भग्न होता है और भोगनेवाला उस धनके योग्य होता है । और व्यवहारका भग ऐसे है कि भोक्ता कहताहै कि (जड मूर्ख वा अज्ञानी) और पौगंडसे भिन्न यह वालक है इसके समीप मैंने निरतर वीस वर्षतक भोगाहै उसके वहुत साक्षी हैं । यदि इसके स्वत्वको मैंने अन्यायसे भोगा तो यह इतने कालतक उदासीन क्यों रहा इसमें यह वालक उत्तर नही देसकता । इसी प्रकार उत्तर न देनेवालेभी वालकका वास्तवमें व्यवहार होता ही है क्योंकि ऐसा नियम है कि

१ अनागमं च यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि । चोरदण्डेन तं पापं दण्डयेत्पृथिवीपतिः ॥

२ नोपभोगे वलं कार्यमाहर्त्रा तत्सुतेन वा । पशुस्त्रीपुरुषादीनामिति धर्मो व्यवस्थितः ॥

१ अदेयं यश्च गृह्णाति यश्चादेयं प्रयच्छति । उभौ तौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ चोत्तमसाहसम् ॥

२. उपेक्षां कुर्वतस्तस्य तूष्णींभूतस्य तिष्ठतः । काले विपन्ने पूर्वोक्ते व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥

३ अजडश्चेदपौगंडो विषये चास्य भुज्यते । भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति ॥

छलको छोडकर यथार्थ वस्तुके अनुसार राजा व्यवहारोंको समाप्त करै। कदाचित् यह मानो कि यद्यपि वस्तु वा व्यवहारकी हानि नहीं तथापि देखकर निषेध न करनेवालेकी व्यवहार हानिकी शंका होजाती है उसकी निवृत्तिके लिये तूष्णीं न रहना यह उपदेश है, वह ठीक नहीं। क्योंकि स्मरण है कालका जिसके ऐसी भुक्ति हानिकी शकाका कारण नहीं हो सकती और तूष्णीं नहीं रहना जब इतनेही कहनेकी इच्छा है तो बीस वर्षका नाम लेना अविवक्षित हो जायगा। कदाचित् कहो कि बीस वर्षका ग्रहण इस लिये है कि बीस वर्षके पीछे पत्रमें कोई दोषकी शंका न करै। सोई कात्यायनने कहा है कि जिस समर्थका धन सन्निधिमें ही लेखसे भोगाजाय उसे यदि बीस वर्ष वीत जांय तो वह पत्र दोषसे वर्जित है, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि आधि आदिकोंमेंभी बीस वर्षके पीछे पत्रमें दोषकी शकाका निराकरण समान होनेसे अपवादही न होसकेगा। सोई कात्यायनेने कहा है, कि यदि बीस वर्षतक आधि निश्चयसे भोगी होय तो उसी लेखसे उस आधिकी सिद्धि है। क्योंकि लेखकके दोषसे रहित है। तैसेही वचन है कि सीमाके विवाद निर्णयमें सीमाका पत्र लिखा जाता है उसके दोष बीसवर्षतक ही कहने। इससे धनकी हानि दश वर्षकी है यहभी प्रत्युक्त (खडित) भया। तिससे इस श्लोकका अन्यही अर्थ कहने योग्य है सोई कहते हैं कि भूमि और धनके फलकी हानि यहां विवक्षित है न वस्तुकी हानि न व्यवहारकी हानि सोई दिखाते हैं कि विना आक्रोश (रोक) बीस वर्षके उपभोगके पीछे यद्यपि स्वामी न्यायसे क्षेत्रको प्राप्त होता है तथापि फलके अनुसार (लाभ) को अनिषेधरूप अपने वचनसे और इस वाक्यसे प्राप्त नहीं होता और परोक्ष भोगमें तो बीस वर्षके पीछेभी फलानुसरणको प्राप्त होता है, क्योंकि पश्यतः (देखते) यह वचन है और प्रत्यक्ष भोगमें और आक्रोशमें अब्रुवतः (मने न करना) यह वचन है। बीससे पहिले प्रत्यक्ष वा निराक्रोशमें फलको प्राप्त होता है क्योंकि बीसका ग्रहण है। कदाचित् कोई शका करै कि उससे पैदा हुए फलमेंभी स्वत्व है इसमे उसकी हानि नहीं होसकती है, यह सत्य है। क्योंकि उसके स्वरूपके अविनाशसे तैसेही स्थिति रहनेपर जैसे उसमें पैदा हुए पूग (सुपारी) पनस वृक्ष आदिकोंमें जो उपभोगसे नष्ट होगया हो वहां तो स्वरूपके नाशसेही स्वत्वका नाश हो जाता है। विना आगम जो बहुत वर्षतक भोगताहै पृथिवीका पति उसे चौरका दंड दे इस वचनसे निष्क्रय रूपसे गिनती करके चौरके समान उसके तुल्य द्रव्यका दान पाया इससे बीस वर्षकी हानिका कथन है। राजाका दंड तो बीस वर्षके पीछेभी है ही। विना आगम उपभोगसे अपवादकाभी अभाव है। तिससे स्वामीकी उपेक्षारूप अपने अपराधसे और इस वचनसे बीस वर्ष पीछे नष्ट हुए फलको प्राप्त नही होता यह स्थित हुआ। इससे धनकी हानिभी दश वर्षकी जो है वहभी व्याख्यात भया॥

भावार्थ—प्रत्यक्षमें भोगते हुए अन्यको निषेध न करै तो बीस वर्षमें भूमिकी हानि

---

१ शक्तस्य सन्निधावर्थो यस्य लेख्येन भुज्यते। विंशतिवर्षाण्यतिक्रांत तत्पत्रं दोषवर्जितम्॥

२ अथ विंशति वर्षाणि आधिर्भुक्तः सुनिश्चितः। तेन लेख्येन तत्सिद्धिर्लेख्यदोषविवर्जिता॥

३ सीमाविवादे निर्णीते सीमापत्रं विधीयते। तस्य दोषाः प्रवक्तव्या यावद्वर्षाणि विंशतिः॥

१ अनागम तु यो भुंक्ते बहून्यब्दशतानपि। चौरदंडेन त पाप दंडयेत्पृथिवीपतिः॥

हो जाती है और धनकी हानि दश वर्षकी होती है ॥ २४ ॥

आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैर्विना।
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि २५

पद-आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैः ३ विना ऽ-तथा ऽ-उपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणाम् ६ धनैः ३ विना ऽ-॥

योजना-आधिसीमोपनिक्षेपजडबालधनैः तथा उपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणाम् अपि धनैः विना (भूमेर्विंशतेः धनस्य दशवर्षेभ्यः ऊर्ध्वं हानिर्भवति) ॥

तात्पर्यार्थ-आधि, सीमा, उपनिक्षेप, जड (अज्ञानी) और बालकका धन इनके और उपनिधि राजा स्त्री और वेदपाठीका धन इनके विना भूमिकी वीसवर्षके अनंतर और धनकी दशवर्षके अनंतर हानि होती है अर्थात् इनकी भूमि वा धन होय तो वीस और दश वर्षके अनंतरभी हानि नहीं होती। उपनिक्षेप वह होता है कि रुपयेकी संख्या करके रक्षाके लिये पराये हाथमें रखना। सोई नारदने कहाहै कि अपना द्रव्य जहां विश्वाससे शकाको छोडकर रक्खा जाय वह निक्षेप नाम व्यवहारका पद बुद्धिमानोंने कहा है। समीप रखनेको उपनिधि कहते हैं। इन आधि आदिकोंमें देखकरभी न कहते हुए पूर्वोक्तोंकी भूमिकी बीस वर्षके अनतर और धनकी दश वर्षके अनंतर हानि नही होती। क्योंकि जिससे हानि हो वह पुरुषका अपराध नहीं है। और उपेक्षाका कारणभी इनमें सब जगह कोई न कोई है सोई दिखावते हैं, कि आधिका भोग आधि कर देनेसे है इससे उपेक्षा करनेमेंभी पुरुषका अपराध नहीं है। सीमाका निश्चयभी चिरकालके किये तुष और अगार आदि चिह्नोंसे होसकता है इससे उपेक्षा हो सकती है। उपनिक्षेप और उपनिधिका भोग निषिद्ध है। इससे निषेधको न मानकर भोग करै तो स्वामीको सोदय (मयसूद) फलका लाभ होगा इससे उपेक्षा होसकती है। जड और बालकोंको जड और बालक होनेसे उपेक्षा युक्तही है। राजा बहुतसे कार्योंमें व्याकुल होताहै और स्त्रियोंको अज्ञान होता है और स्त्री प्रगल्भभी नही होती। और वेदपाठी पठन पाठन वेदके अर्थका विचार, अनुष्ठान आदिमें व्याकुलतासे उपेक्षा युक्तही है, तिससे आधि आदि सबमें उपेक्षाके कारणका सभव है, संपूर्णके भोगमें वा निराक्रोश (अनिषेध) में कदाचित्भी फलकी हानि नहीं होती ॥

भावार्थ-आधि, सीमा, उपनिक्षेप, जड, बालक इनके धनोंको और उपनिधि, राजा, स्त्री, वेदपाठी इनके धनोंको छोडकर भूमिकी वीस वर्षके और धनकी दश वर्षके अनंतर हानि होती है ॥ २५ ॥

आध्यादीनांविहर्तारंधनिनेदापयेद्धनम्।
दंडंचतत्समंराज्ञेशक्त्यपेक्षमथापिवा २६॥

पद-आध्यादीनाम् ६ विहर्तारम् २ धनिने ४ दापयेत् क्रि-धनम् २ दंडम् २ च ऽ-तत्समम् २ राज्ञे ४ शक्त्यपेक्षम् २ अथ ऽ-अपि ऽ-वा ऽ-॥

योजना-आध्यादीनां विहर्तारं, धनिने धनं च पुनः तत्समम्, अथवा शक्त्यपेक्षं, दंडं राज्ञे दापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जो आधि आदि वेदपाठीके द्रव्यपर्यंतोंका चिरकालतक उपभोगके बलसे अपहरण करै तो विवादका जो धन है वह स्वामीको राजा दिवावे और राजाभी उसके समान दंड ले, यद्यपि गृह क्षेत्र आदिमें उनके

---

१ स्वं द्रव्य यत्र विस्रंभान्निक्षिपत्यविशंकितः। निक्षेपो नाम तत्प्रोक्त व्यवहारपदं बुधैः ॥

समान दंड नहीं होसकता तथापि मर्यादाके भेदन और सीमाके अवलंघनमें इस वचनसे जो कहेंगे वह दंड जानना, यदि अपहरण (छीनना) करनेवालेका बहु धनी होनेसे तिसके समान दंडसे दमन न होय तो शक्तिके अनुसार दंडका धन दिवावे अर्थात् जितनेसे उसका अभिमान खंडित हो उतना दंड दें, क्योंकि दमनसे दड कहतेहैं तिससे दांत जो न हों उनका दमन करै इसे वचनमें दंडका ग्रहण दमनके अर्थमें है, और जिसके यहां उसके समान भी द्रव्य न हो उसकोभी उतना दंड दे जितनेसे उसे दुःख पहुचै, जिसके पास कुछभी धन न हो उसका दमन धिग्दंडसे करै, सोई मनुने कहा है कि पहिले धिग्दड दे फिर वाणीका दड और तीसरा धन दंड दे, वधका दडभी शरीरमें दश प्रकारका ब्राह्मणसे भिन्नोंको कहा है सोई मनुका वचन है उस दंडके दशस्थान स्वायंभुव मनुने कहे हैं जो तीनों वर्णोंमें होताहै,ब्राह्मण तो अक्षत (घावरहित) ही गमन करै, कि लिंग, उदर, जिह्वा, हस्त, पाद, नेत्र, नासिका, कर्ण, धन, देह, इनमेंभी जिस अंगसे अपराध हुआ हो उसकी उपस्थ आदिमें दड देना, यह देखने योग्य है अथवा उस अपराधीसे काम कराले वा बंधनागारमें प्रवेश करदे।सोई कात्यायनने कहा है कि धनके देनेमें जो समर्थ न हो उसको अपने अधीन करके काम करावे, काम करनेमेंभी असमर्थ होय तो ब्राह्मणको छोडकर बंधनागारमें प्रवेश कर दे, और ब्राह्मणके पास द्रव्य न होय कर्मके वियोग आदिका दंड दे सोई गौतमने कहा है कि कर्मके वियोग (न करने देना) का विख्यापन (प्रकाश) पुरसे निकासना चिह्न करना आदि दड, जीविकासे हीन ब्राह्मणको दे, नारदनेभी कहा है कि वध, सर्वस्वको हरना, पुरसे निकासना, चिह्न (दाग) करना, अंगका छेदन यह उत्तमसाहसका दंड है, अविशेषसे यही सबके दडकी विधि है यह कहकर कहाहै कि, ब्राह्मणके वधको छोडकर यह दंड है, क्योंकि ब्राह्मण वधके योग्य नहीं है। किंतु शिरका मुंडन, पुरसे निकासना, मस्तकपर श्रेष्ठ चिह्न और गर्दभपर चढाकर गमन ये ब्राह्मणको दड है । और चिह्नकी व्यवस्थाभी दिखाई है कि गुरुकी शय्यापर गमनमें भगका चिह्न, मदिराके पीनेमें मदिराकी ध्वजाका, चोरीमें कुत्तेके पादका और ब्रह्महत्यामें शिरसे हीन पुरुषका चिह्न करै । जो यह आपस्तवंका वचन है कि ब्राह्मणके नेत्रोंको निरोध करदे, उसका यह अर्थ है कि पुरमेंसे निकासनेके समय ब्राह्मणके नेत्रोंको मूंद दे ।

१ मर्यादायाः प्रभेदे च सीमातिक्रमणे तथा ।

२ दंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान्दमयेत् ।

३ धिग्दडं प्रथम कुर्याद्वाग्दड तदनतरम् । तृतीय धनदंडं तु वधदडमतःपरम् ।

४ दशस्थानानि दडस्य मनुः स्वायभुवोऽब्रवीत् । त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत्॥ उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पचमम्।चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥

५ धनदानासहं बुद्धा स्वाधीन कर्म कारयेत् । अशक्तौ बंधन गारे प्रवेश्यो ब्राह्मणादृते ॥

१ कर्मवियोगविख्यापननिर्वासनांककरणादीन्यवृत्तौ।

२ वध.सर्वस्वहरण पुरान्निर्वासनांकने । तदगच्छेद इत्युक्तो दड उत्तमसाहसः ॥ अविशेषेण सर्वेषामेवं दडविधिः स्मृतः ॥

३ वधादृते ब्राह्मणस्य न वध ब्राह्मणोऽर्हति ।

४ शिरसो मुंडन दडस्तस्य निर्वासन पुरात् । ललाटे चाभिशस्तांकः प्रयाण गर्दभेन च ॥

५ गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः। स्तेये तु श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥

६ चक्षुर्निरोधो ब्राह्मणस्य ।

कुछ निकासना अर्थ नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण अक्षत (विना घाव) गमन करे। ब्राह्मणको शरीरका दंड नहीं है इत्यादि मनु और गौतमके वचनोंका विरोध है। अब प्रसंगके कथनसे पूर्णता हुई ॥

भावार्थ-आधि आदिका जो हरण कर उससे धनीको तो धन और उस धनके समान वा शक्तिके अनुसार धनका दंड राजाको धर्मका अधिकारी दिवावे ॥ २६ ॥

आगमोऽभ्यधिको भोगाद्विनापूर्वक्रमागतात्। आगमेऽपिबलंनैव भुक्तिः स्तोकापियत्रनो॥२७॥

पद-आगमः १ अभ्यधिकः १ भोगात् ५ विनाऽ-पूर्वक्रमागतात् ५ आगमे ७ अपिऽ-बलम् १ नऽ-एवऽ-भुक्तिः १ स्तोका १ अपिऽ-यत्रऽ-नोऽ-॥

योजना-पूर्वक्रमागतात् भोगात् विना आगमः भोगात् अभ्यधिकः अस्ति। यत्र स्तोका अपि भुक्तिः नो अस्ति तस्मिन् आगमे अपि बलं नैव अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-स्वत्वके हेतु जो प्रतिग्रह क्रय आदि आगम है वह भोगसे बलवान् है, क्यों कि स्वत्वके बोधनमें भोगको आगमकी अपेक्षा है। सोई नारदने कहाहै कि विशुद्ध आगमसे भोग प्रमाणताको प्राप्त होताहै। जिस भोगमें आगम शुद्ध न हो वह प्रमाणताको प्राप्त नहीं होता और भोग मात्रसे स्वत्व नहीं आता है क्योंकि पराई वस्तुकाभी अपहार (चोरी) आदिसे उपभोग हो सकताहै। इसीसे यह स्मृति है कि जो केवल भोगकोही कहै और कदाचित्भी आगमको न कहै वह भोगरूप छलके नामसे तस्कर जानना। इससे यह समझना कि आगमसहित, बहुत दिनका, निरंतर, निराक्रोश, प्रत्यर्थीके प्रत्यक्ष यह पांच प्रकारका भोग प्रमाण होताहै। सोई स्मृति है कि अगामसे युक्त, दीर्घकालका, निरतर-निंदासे रहित, प्रत्यर्थीके समक्ष यह पांच प्रकारका भोग है। कहीं आगमका निरपेक्षभी भोग प्रमाण है कि पिता आदि तीन पूर्व पुरुषोंके क्रमसे आये जो भोग उसके विना आगम बलवान् है, वह भोग तो आगमसेभी अधिक है इससे आगमकी अपेक्षाको छोडकरही प्रमाण है। उसमेंभी आगमके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं। सत्ताकी अपेक्षा है और सत्ताभी उससेही जानी जाती है और पूर्व क्रमसे आये भोगके विना यह वचनभी स्मरणके योग्य काल दिखानेके लिये है। और आगम भोगसे अधिक है यहभी स्मरण योग्यकालके विषयमें है। इससे स्मरणयोग्य कालमें योग्य अनुपलब्धि (आगमका न मिलना) से आगमके अभावका निश्चय होनेसे आगमके ज्ञानका सापेक्षही भोग प्रमाण है। और स्मरणके अयोग्य कालमें तो योग्य अनुपलब्धिके अभावसे आगमके अभावका निश्चय नहीं हो सकता इससे आगमके ज्ञानका निरपेक्षही निरंतर भोग प्रमाण है। यही बात कात्यायनने स्पष्ट की है स्मरणके योग्यकालमें भूमिकी क्रिया आगमसहित भोग है और स्मरणके अयोग्य कालमें तो अनुगमके अभावसे अर्थात् योग्य अनुपलब्धिके अभावसे आगमके अभावका जो निश्चय उससे वह क्रिया प्रमाण है जो तीन पुरुषोंसे चली आई हो। वह स्मरण योग्यकाल सौ वर्षपर्यंत

१ अक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् न शारीरो ब्राह्मणे दंडः।

२ आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम्। अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नैव गच्छति ॥

३ भोगं केवलतो यस्तु कीर्तयेन्नागमं क्वचित्। भोगच्छलापदेशेन विज्ञेयः स तु तस्करः ॥

१ सागमो दीर्घकालश्चाविच्छेदोऽपरवांछितः। प्रत्यर्थिसंनिधानोपि परिभोगोपि पंचधा ॥

२ स्मार्तकाले क्रियाभूमेः सागमा भुक्तिरिष्यते। अस्मार्तेऽनुगमाभावात्क्रमात्त्रिपुरुषागता ॥

है क्योंकि इस श्रुतिमें पुरुषकी अवस्था सौ वर्षकी कही है, इससे सौ वर्षसे अधिकका निरंतर और निषेधसे रहित प्रत्यर्थीका प्रत्यक्ष जो भोग वह चाहे आगमके अभावकाभी निश्चय हो अव्यभिचारसे (आगमके विना भोग नहीं होता) आगमका आक्षेप (अनुमान) करके स्वत्वको जनाता है। और स्मरणके अयोग्य कालमेंभी परपरासे आगमके अभावकाही स्मरण होय तो भोग प्रामाणिक नहीं हो सकता। इससे यह कह आये हैं कि आगमके विना जो बहुतसे सैकडों वर्षतकभी भोग भूमिका राजा उसे चौरका दंड दे। कदाचित् कोई शका करै कि 'अनागम तु यो भुंक्ते' यहां एकवचनके निर्देश और 'बहून्यब्दशतान्यपि' इस अपिशब्दके प्रयोगसे प्रथमपुरुष आगमके विना चिरकालतक भोगै तोभी दंड होगा. सो ठीक नहीं क्योंकि दूसरे वा तीसरे पुरुष (पीढी)में आगमके विना भोग प्रमाण हो सकताहै और यह इष्ट नहीं है, क्योंकि आदिमें कारण दान है और मध्यमें आगमसहित भोग यह नारदकी स्मृति है। तिससे सर्वत्र आगमके विना भोगमें 'अनागम तु यो भुक्ते' यह पूर्वोक्त चौरका दंड जानना। और जो यह वचन है कि अन्यायसे पिता और पहिले तीन पुरुषोंने जो क्रमसे तीन पुरुषसे चला आया वह अपहरण (छीनना) करनेको शक्य नहीं है। उस वचनमेंभी पिता सहित पहिले तीन पुरुषोंने भोगा हो, यही अन्वय करना और उस वचनमेंभी 'क्रमात्त्रिपुरुषागत' क्रमसे तीन पुरुषोंसे चली आई हो यह स्मरणके अयोग्य कालका उपलक्षण (बोधक) है। तीन पुरुषकाही बोधक मानोगे तो एक वर्षके मध्यमेंभी तीन पुरुष बीतसकते हैं दूसरेही वर्षमें आगमके विनाभी भोग प्रमाण होजायगा। वह होजायगा तो इस पूर्वोक्त स्मृतिका विरोध होजायगा कि स्मरण योग्य कालमें भूमिकी क्रिया आगमसहित भोग है। 'अन्यायेनापि यद्भुक्त' इस वचनका यह अर्थ करना कि अन्यायसे भोगेकोभी नहीं छीनसकते, अन्यायके अनिश्चयमें तो कैसे छीन सकते हैं, क्योंकि वचनमें अपि शब्द सुना जाताहै और जो हारीतने कहाहै कि जो आगमके विना पूर्वले तीन पुरुषोंने अत्यन्त (निरंतर) भोगाहो तीन पुरुषसे चले आये उसको छीन नही सकते। उसकाभी यह अर्थ करना कि अत्यत आगमके विना अर्थात् उपलभ्यमान (दीखता) आगमके विना जो भोगा हो, कुछ आगमके स्वरूपके विना यह अर्थ नहीं क्योंकि आगमका स्वरूप न होय तो सैकडों भोगोंसेभी स्वत्व नहीं होताहै। क्रमात्त्रिपुरुषागतं इसका वही अर्थ है जो कह आये हैं। कदाचित् कोई शका करै कि स्मरणयोग्य कालमें आगमका सापेक्ष भोग प्रमाण नहीं होसकता सोई दिखातेहैं कि, यदि आगमका ज्ञान किसी अन्य प्रमाणसे हुआ होय तो उसी प्रमाणसे स्वत्वका ज्ञान होजायगा तो भोग स्वत्व वा आगममें प्रमाण नहीं होसकता। यदि अन्य प्रमाणसे आगम न जाना हो तो आगमसे युक्त भोग कैसे प्रमाण हो सकताहै। इस शंकाका समाधान कहतेहैं कि अन्य प्रमाणसे जाने हुए आगमसे युक्त निरतर भोग कालांतरमें स्वत्वको जना देताहै और प्रमाणसे जानाभी आगम भोगरहित होय तो कालांतरमें स्वत्वके जाननेको समर्थ नहीं है, क्योंकि मध्यमें भी

१ शतायुर्वै पुरुषः।

२ अन्यायेनापि यद्भुक्तं पित्रा पूर्वतरैस्त्रिभिः। न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम्॥

१ यद्विनागममत्यंत भुक्त पूर्वैस्त्रिभिर्भवेत्। न तच्छक्यमपाहर्तुं क्रमात्त्रिपुरुषागतम्॥

दान विक्रय आदिसे स्वत्व आसकता है इससे सब निर्दोष है। आगम सापेक्ष भोगको प्रमाण कहा। अब यह कहतेहैं कि भोगसे निरपेक्षही आगम प्रमाण है जिस आगममें अल्पभी भोग न हो उस आगममें बल नहीं है अर्थात् वह पूर्ण नहीं है। यहां यह अभिसंधि (निर्णय) है कि अपने स्वत्वकी निवृत्ति और पराये स्वत्वकी उत्पत्तिको दान कहते हैं। और परका स्वत्व तभी पैदा हो सकताहै यदि पर स्वीकार करे अन्यथा नहीं। और स्वीकार तीन प्रकारका है मानसिक, वाचिक, कायिक। उनमें यह मेरा है यह मनसे संकल्परूप मानस है। यह मेरा है इत्यादि वचन जिसमें कहा जाय वह विकल्पसहित प्रतीति रूप वाचिक है और कायिक उपादान (ग्रहण) स्पर्श आदि रूपसे अनेक प्रकारका है, उसमें यह स्मृति नियमके लिये है कि कृष्णमृगचर्मको और गौको पुच्छ पकडकर और हाथीको सूंड और अश्वको केसर और दासीको शिर पकडकर दान करे। आश्वलायननेभी कहाहै कि प्राणीका अनुमंत्रण (कथन) और अप्राणी और कन्याके स्वीकारमें स्पर्श करे उसमेंभी सुवर्ण और वस्त्र आदिमें जलदानके अनतरही उपादान (लेना) का संभव होसकता है, इससे तीन प्रकारकाभी स्वीकार हो सकता है, और क्षेत्र आदिमें तो फलके उपभोग विना कायिक स्वीकारका असंभव होनेसे अल्प भी उपभोग होना चाहिये। अन्यथा दानक्रय आदिकी संपूर्णता न होगी इससे फलके उपभोगरूप कायिक स्वीकारसे रहित आगम दुर्बल हो जाता है। क्योंकि स्वीकारसहित आगम नहीं है यहभी तब है जब दोनोंके पूर्व और अपर कालका ज्ञान न हो, यदि पूर्व अपर कालका ज्ञान होये तो त्रिगुणभी पूर्व कालका आगमही बलवान् होता है, अथवा लेख साक्षी भोग यह तीन प्रकारका प्रमाण कहा है, इन तीनोंके समुदायमें कहां किसको प्रबलता है इस लिये यह वचन है कि पूर्व क्रमसे चले आये भोगको छोडकर भोगसे आगम अधिक है और जहां अल्पभी भोग न हो वहां आगममेंभी बल नहीं होता यह तात्पर्य है कि पहिले पुरुषके समय साक्षियोंसे स्वीकार कराया आगम भोगसे अधिक (बलवान्) है परतु पूर्व क्रमसे चले आये भोगके विना वह पूर्व क्रमसे चला आया भोग चौथे पुरुषमें लेखसे स्वीकार किये आगमसे बलवान् है। मध्यमपुरुषमें तो भोगरहित आगमसे अल्प भोगसहित भी आगम बलवान् होता है यही बात नारदने स्पष्ट की है कि पहिला कारण दान है, मध्यमें आगमसहित भोग और निरतर और चिरकालका जो भोग है वही एक मुख्य कारण है ॥

भावार्थ–पूर्व क्रमसे चले आये भोगको छोडकर आगम भोगसे अधिक है और जहां अल्पभी भोगसे अधिक है और जहां अल्पभी भोग न हों वहां आगममेंभी बल नही होता ॥ २७ ॥

आगमस्तु कृतो येन सोभियुक्तस्तमुद्धरेत्।
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्रगरीयसी॥

पद–आगमः १ तुऽ–कृतः १ येन ३ सः १ अभियुक्तः १ तम् २ उद्धरेत् क्रि–नऽ–तत्सुतः१ तत्सुतः १ वाऽ–भुक्तिः १ तत्रऽ–गरीयसी १ ॥

योजना–येन आगमः कृतः सः अभियुक्तः सन् तम् उद्धरेत् तत्सुतः वा तत्सुतः (पौत्रः) न उद्धरेत्। तत्र भुक्तिः एव गरीयसी भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जिन पुरुषने भूमि आदिका आगम (स्वीकार) किया हो वह पुरुषही

१ दद्यात् कृष्णाजिनं पुच्छे गां पुच्छे करिणं करे। केसरेषु तथैवाश्व दासी शिरसि दापयेत् ॥

२ अनुमन्त्रयेत्प्राण्यभिमृशेदप्राणिकन्यां च।

१ आदौ तु कारण दान मध्ये भुक्तिस्तु सागमा। कारणं भुक्तिरेवैका सतता या चिरतनी।

तेरा क्षेत्र आदि कहां है ऐसा अभियोग करनेपर उस प्रतिग्रह आदि आगमको लिखित आदिसे उद्धार (स्वीकार) करावे । इससे यह बात उक्त-प्राय (कहीसी) है प्रथम पुरुष आगमका उद्धार न करै तो दंड होता है । उसका पुत्र दूसरा अभियोग करनेपर आगमका उद्धार न करै । किंतु निरतर और आक्रोशरहित प्रत्यक्ष भोगका उद्धार करावे । इससे यह वात कही गई कि आगमका उद्धार न करते हुए दूसरे पुरुषको तो दंड नहीं होता और विशिष्ट भोगका जो उद्धार न करे उसको दंड होता है । और उस पुत्रका पुत्र तीसरा पुरुष (पोता) न आगमका न विशिष्टभोगका उद्धार करै, किंतु क्रमसे चले आये भोगकाही उद्धार करै । इससेभी यह वात कही गई कि तीसरा पुरुष क्रमसे चले आये भोगका उद्धार न करे तो दंड है, आगमका उद्धार न करै वा विशिष्टभोगका उद्धार न करै तो दंड नहीं है । वहां उन दूसरे और तीसरेका भोगही अत्यंत गुरु है, उनमेंभी दूसरेमें गुरु तीसरेमें अत्यत गुरु यह विवेक है । और तीनोंमेंभी आगमका उद्धार न होय तो अर्थकी हानि समानही है और दंडमें तो विशेष है यह तात्पर्यार्थ है । सोई हारितने कहा है कि जिसने आगम कियाहो वह यदि उसका उद्धार न करै तो दंडके योग्य है, उसका पुत्र वा उसके पुत्रका पुत्र दंडके योग्य तो नहीं, परंतु भोगकी हानि उसकीभी होती है ॥[1]

भावार्थ–जिसने आगम किया हो वह अभियोग करनेपर उसका उद्धार न करावे और उसका पुत्र वा पौत्र उद्धार न करावे उनमें भोगही अत्यंत गुरु है ॥ २८ ॥

योभियुक्तः परेतः स्यात्तस्य रिक्थीतमुद्धरेत् । नतत्र कारणं भुक्तिरागमेनविनाकृता ॥ २९ ॥

पद–यः १ अभियुक्तः १ परेतः १ स्यात् क्रि-तस्य६रिक्थी१तम्२उद्धरेत् क्रि-नऽ-तत्रऽ-कारणम् १ भुक्तिः १ आगमेन ३ विनाऽ-कृता॥१॥

योजना–यः अभियुक्तः परेतः स्यात् तस्य रिक्थी तम् उद्धरेत् । आगमेन विना कृता भुक्तिः तत्र कारणं न भवति ॥

तात्पर्यार्थ–विना पूर्वक्रमागतात् इस वचनमें जिसके कालका स्मरण न हो ऐसे, और आगमके ज्ञानसे निरपेक्ष उपभोगको प्रामाण्य (मानने योग्य) कहा, अव उसका अपवाद कहते हैं । जव आहरण आदिका करनेवाला व्यवहारके निर्णयसे पहिले मरजाय तो उसका रिक्थी (पुत्र आदि) उस आगमका उद्धार करै जिससे उस व्यवहारमें साक्षी आदिसे सिद्ध कियाभी आगमरहित भोग प्रमाण नहीं है, क्योंकि पूर्वके अभियोगसे भोग अपवादसहित है । नारदनेभी कहा है नवीन हुआ है विवाद जिसका ऐसे परलोकमें गये (मरे) व्यवहारीका पुत्र उस अर्थका शोधन करै, भोग उसको निवृत्त नहीं करसकता ॥[1]

भावार्थ–जो अभियुक्त मरजाय तो उसका पुत्र उस अभियोगका उद्धार करै । आगमके विना किया भोग उस व्यवहारमें कारण (प्रमाण) नहीं होसकता ॥ २९ ॥

नृपेणाधिकृताः पूगाः श्रेणयोथ कुलानि च । पूर्वंपूर्वंगुरुज्ञेयं व्यवहारविधौनृणाम् ॥ ३० ॥

पद–नृपेण ३ अधिकृताः १ पूगाः १

---

[1] आगमस्तु कृतो येन स दंड्यस्तमनुद्धरन् । न तत्सुतस्तत्सुतो वा भोग्यहानिस्तयोरपि ॥

[1] नवारूढविवादस्य प्रेतस्य व्यवहारिणः । पुत्रेण सोर्थः संशोध्यो न तं भोगो निवर्तयेत् ॥

श्रेणयः १ अय ऽ—कुलानि १ च ऽ—पूर्वम् १ पूर्वम् १ गुरु १ ज्ञेयम् १ व्यवहारविधौ ७ नृणाम् ६ ॥

योजना—नृपेण अधिकृताः पूगाः श्रेणयः अथ कुलानि सति तेपु नृणां व्यवहारविधौ पूर्वं पूर्वं गुरु ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ—व्यवहारके निर्णयसे पहिले व्यवहारी मरजाय तो व्यवहार निवृत्त नहीं होता यह स्थित भया, निर्णय किये व्यवहारकोभी स्थितिमें वा व्यवहारीके रहते कही व्यवहार प्रवृत्त होता है, कहीं नही, इस व्यवस्थाकी सिद्धिके लिये व्यवहारके देखनेवालोंको वल और अवल कहते हैं। नृप (राजा) ने अधिकार दिया है व्यवहार देखनेके लिये जिनको ऐसे वे प्राड्विवाक आदि सभासद् जो राजा सभासदोंको करै इस वचनसे कहे हैं, पूग (समूह) भिन्न २ जातिके और भिन्न २ वृत्तिवाले एकस्थानके निवासियोंको पूग कहते हैं, जैसे ग्राम नगर आदि, श्रेणि नानाजातिके वा एकजातिके जो एकजातिके कर्मोंसे जीवें ऐसे समूहोंको श्रेणि कहते हैं, जैसे हेडाबुक आदि और तमोली, कुविंद, चर्मकार आदि, कुल ज्ञातिसंवधि वधुओंके समूह, राजाके नियत किये इन सभासद आदि चारोंके मध्यमें पूर्व २ जो इस श्लोकमें पढा है वह २ गुरु (श्रेष्ठ) मनुष्योंके व्यवहारके देखनेमें जानना, यह कहा गया कि, राजाके अधिकारी व्यवहारका निर्णय करदें और पराजितको यदि कुदृष्ट बुद्धिसे संतोप न होय तो पूग आदिमें पुनः व्यवहार नहीं होता, इसी प्रकार पूगका निर्णय किया व्यवहार श्रेणी आदिपर नहीं जासकता, तैसेही श्रेणीका निर्णय किया कुलमें नही जासकता, कुलका निर्णय किया तो श्रेणी आदिमें जासकता है, श्रेणीका निर्णय किया पूगमें, पूगका निर्णयकिया राजाके अधिकारियोंमें जासकता है। नारदने तो राजाके अधिकारियोंने निर्णय किया व्यवहार राजाके पास जाता है यह कहा है, कुल श्रेणी पूग अधिकारी राजा इनसे व्यवहारोंकी स्थिति होती है और इनमें उत्तर २ श्रेष्ठ है, उसमेंभी जब व्यवहार राजाके समीप जाय तव अपने उत्तर (निचला) सभासदसहित राजाको पूर्व २ सभ्योंसहित पणसहित व्यवहारका निर्णय करना होय और यह कुदृष्टवादी पराजित होजाय तो दंड देने योग्य होता है और जो यह जयको प्राप्त होजाय तो सभासद दडके योग्य होते हैं ॥

भावार्थ—राजाके अधिकारी, पूग, श्रेणी और कुल जो है उनमें मनुष्योंके व्यवहार करनेमें पूर्व पूर्व गुरु (श्रेष्ठ) जानना ॥ ३० ॥

बलोपाधिविनिर्वृत्तान्व्यवहारान्निवर्तयेत्।
स्त्रीनक्तमंतरागारबहिःशत्रुकृतांस्तथा ३१॥

पद—वलोपाधिविनिर्वृत्तान् २ व्यवहारान् २ निवर्तयेत् क्रि—स्त्रीनक्तमन्तरागारवहिःशत्रुकृतान् २ तथा ऽ—॥

योजना—वलोपाधिविनिर्वृत्तान् तथा स्त्रीनक्तमतरागारवहिःशत्रुकृतान् व्यवहारान् राजा निवर्तयेत् ॥

ता० भा०—बलात्कार और उपाधि (भय आदि) से किये और स्त्री, रात्रिमें, गृहके भीतर, ग्रामसे वाहिर और शत्रुओंके किये व्यवहारोंको राजा निवृत्त कर दे अर्थात् वल आदिसे किये व्यवहारोंके जय पराजयको राजा न माने॥ ३१॥

मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतादियोजितः ।
असंबन्धकृतश्चैवव्यवहारोनसिद्ध्यति॥३२॥

---

१ राज्ञा सभासदः कार्या रिपौ मित्रे च ये समाः ।

१ कुलानि श्रेणयश्चैव पूगश्चाधिकृता नृपः । प्रतिष्ठा व्यवहाराणां गुर्वेषामुत्तरोत्तरम् ॥

पद-मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिबालभीतादियोजितः १ असंबंधकृतः १ चऽ-एवऽ-व्यवहारः १ नऽ-सिद्ध्यति क्रि-॥

योजना-मत्तोन्मत्तार्तव्यसनिवालभीतादियोजितःच पुनःअसम्बधकृतःव्यवहारो न सिद्ध्यति।

तात्पर्यार्थ-मदिराके पान आदिसे मत्त और वात पित्त सन्निपात ग्रह इनसे पैदा हुए उन्मादसे उन्मत्त व्याधि आदिसे आर्त्त इष्टका वियोग और अनिष्टकी प्राप्तिसे पैदा हुए दुःखसे युक्त (व्यसनी) व्यवहारके अयोग्य बालक और चौर आदिसे भीत और आदि पदके ग्रहणसे पुर और देशका विरोधी लेना इनका किया हुआ व्यवहार सिद्ध नहीं होता अर्थात् माननेके अयोग्य है, मनुकाभी वचन है कि पुर और देशसे विरुद्ध और राजाका त्यागाहुआ वाद धर्मके ज्ञाताओंने ग्रहण करने अयोग्य कहा है और असम्बंध (जो राज्यमें नियुक्त न हों) उनका किया भी व्यवहार सिद्ध नहीं होता और जो यह वचन है कि गुरु शिष्य, पिता पुत्र, स्त्री पुरुष, स्वामी भृत्य इनके परस्पर विरोधमेंभी व्यवहार सिद्ध नहीं होता, यह वचनभी गुरु शिष्य आदिके व्यवहारके सर्वथा निषेधार्थ नहीं है, क्योंकि उनकाभी व्यवहार किसी प्रकार इष्ट है सोई दिखाते हैं कि शिष्यकी शिक्षा वधको छोडकर करै, असमर्थ होय तो रस्सी बांस विदल जो कोमल है उनसे करै, अन्यसे मारै तो राजा गुरुको दंड दे, इस गौतमके और उत्तम अंगमें कदाचित् न मारै इस मनुके वचनसे यदि गुरु क्रोधके वश होकर बडे दंडसे वा उत्तम अंगमें ताडै और धर्मशास्त्रसे विरुद्ध ताडा हुआ शिष्य यदि राजाको निवेदन करै तो व्यवहारका पद होताही है, तैसेही भूर्या 'पितामहोपात्ता' जो पितामहकी पैदा की हुई भूमि आदि हैं उनमें पिता पुत्रोंको स्वाम्य समानभी है, यदि पिता विक्रय (वेचना) आदिसे पितामहकी पैदा की हुई भूमि आदिको नष्ट करै और तब पुत्र धर्माधिकारीको कहे तो पिता पुत्रकाभी व्यवहार होता है, तैसेही दुर्भिक्ष कार्य व्याधि सप्रतिरोध (कैद) इनमें ग्रहण किये स्त्रीधनको भर्ता अपनी इच्छाके विना देने योग्य नहीं है इस वचनसे यदि दुर्भिक्ष आदिके विना स्त्रीधनका व्यय (खर्च) भर्ता करै और याचना करनेसेभी विद्यमान धनको न दे तब स्त्रीपुरुषकाभी व्यवहार होता है, तैसेही भक्त दासका स्वामीके संग व्यवहार कहेंगे,और गर्भदास आदिकाभी, इस नारदके वचनसे कि जो इन गर्भदास आदिकोंमें स्वामीको प्राणसंशयसे छुटावे वह दासभावसे छूटता है और पुत्रके भागको प्राप्त होताहै, स्वामीके न छोडने और पुत्रभागके न देनेमें स्वामीके संग व्यवहारको कौन निवारण कर सकता है, तिससे गुरु आदिके संग व्यवहार दृष्ट और अदृष्ट(दोनों लोक) में कल्याणकारी नहीं होता इससे प्रथम सभासदों सहित राजा शिष्य आदिका निवारण करै यही इस श्लोकका तात्पर्यार्थ है, यदि अत्यत हठ करैं तो शिष्य आदि

१ पुरराष्ट्रविरुद्धश्च यश्च राज्ञा विसर्जितः। अनादेयो भवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः ॥

२ गुरोः शिष्ये पितुः पुत्रे दंपत्योः स्वामिभृत्ययोः । विरोधोपि मिथस्तेषां व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥

३ शिष्याशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्यामन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः ॥

१ नोत्तमांगे कथचन ।

२ दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके। गृहीत स्त्रीधनं भर्ता नाकामो दातुमर्हति ॥

३ यश्चैषां स्वामिन कश्चिन्मोचयेत्प्राणसशयात्। दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च ॥

कोंकाभी उक्त रीतिसे व्यवहार प्रवृत्त करने योग्य है । जो यह नारदका वचन है कि एकका बहुतोंके संग और स्त्री और सेवक जन इनका विवाद धर्मके ज्ञाताओंने ग्रहण करनेके अयोग्य कहा है । उसमें एकका भी जो गणके द्रव्यको हरे और संविदका अवलवन करे । तैसेही एकको मारते हुए बहुतोंका इत्यादि वचनोंसे एककार्यवाले बहुतोंके संग व्यवहार इष्टही है । इससे यह जानना कि भिन्न २ अर्थवाले बहुतोंके सग एकका एक संग व्यवहार नहीं होता । स्त्रियोंमें गोप शौंडिक आदिकी स्त्रियोंको स्वतंत्र होनेसे व्यवहार इष्टही है । उससे अन्य कुलकी स्त्रियोंको पतिके जीवते हुए उनके अधीन होनेसे व्यवहार ग्रहण करने योग्य नहीं है यही अर्थ करना । प्रेष्य जनोंमेंभी प्रेष्य जन स्वामीके पराधीन हैं अपने लिये व्यवहारमेंभी स्वामीकी आज्ञासे ही व्यवहार होसकता है अन्यथा नहीं । यही योजना करनी ॥

भावार्थ-मत्त, उन्मत्त, रोगी, व्यसनी, बालक और भयभीत इनका और विना संबधसे किया व्यवहार सिद्ध नहीं होता (राजा उसे न ले) ॥ ३२ ॥

प्रनष्टाधिगतं देयं नृपेण धनिने धनम् ।
विभावयेन्न चेल्लिंगैस्तत्समं दंडमर्हति ॥ ३३

पद-प्रनष्टाधिगतम् १ देयम् १ नृपेण ३ धनिने ४ धनम् १ विभावयेत् क्रि-नऽ-चेत्ऽ-लिंगैः ३ तत्समम् २ दण्डम् २ अर्हति क्रि-॥

योजना-प्रनष्टाधिगतं धन नृपेण धनिने देयम् चेत् (यदि) लिंगैः न विभावयेत्, तर्हि तत्समं दंडम् अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-प्रणष्ट सुवर्ण आदि द्रव्य यदि शौल्किक (महसूल लेनेवाले) और स्थानके पालक इनको मिलाहो और इन्होंने राजाको दे दिया होय तो राजा उस धनको धनीको तब दे यदि धनी रुपयोंकी संख्या आदिसे विभावना (निश्चय) करादे । यदि वह यथार्थ रीतिसे उसके चिह्न न वता सकै (बतावे कुछ हो कुछ) तो उतनेही धनके दंड देने योग्य होता है, क्योंकि वह मिथ्यावादी है । अधिगमको स्वत्वका निमित्त होनेसे प्रणष्टमेंभी स्वत्व पाया उसकी निवृत्ति इस वचनसे कही है । इसमें कालकी अवधि कहेंगे कि शौल्किक वा स्थानोंके रक्षकोंने जो धन लायाहो उसको वर्ष दिनसे पहिले स्वामी और उससे परे राजा ले । मनुने तो तीन वर्षकी अवधि कही है कि स्वामीके नष्ट हुए धनको राजा तीन वर्षतक कोशमें रक्खै, तीन वर्षसे पहिले उस धनको स्वामी ले । उससे परे राजाने उसकी तीन वर्ष पर्यंत रक्षा करनी । यदि वर्ष दिनसे पहिलेही स्वामी आजाय तो संपूर्ण धनकोही राजा देदे । और वर्ष दिनसे पीछे आवे तो कुछ रक्षाका मूल्यभाग लेकर शेष धन स्वामीको देदे । सोई कहा है कि मिले हुए नष्ट धनका छठा दशवां वा बारहवां भाग सत् पुरुषोंके धर्मको जानता हुआ राजा ग्रहण करे । उसमेंभी प्रथम वर्षमें संपूर्णकोही दे । दूसरेमें द्वादश भाग और तीसरेमें दशवां भाग और चतुर्थ आदिमें

---

१ एकस्य बहुभिः सार्द्धं स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च । अनादेयो भवेद्वादो धर्मविद्भिरुदाहृतः ॥

२ गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः । एकघ्नतां बहूनां च ॥

१ शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक्त वत्सरात्स्वामी हरेत परतो नृपः ॥

२ प्रनष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् । अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् ॥

३ आददीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतान्नृपः । दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥

छठा भाग लेकर शेष धन स्वामीको देदे, और राजाके भागमेंसे चौथा भाग उसको दे जिसको धन मिला (पाया) हो, यदि स्वामी न आया होय तो संपूर्ण धनमेंसे चौथा भाग पानेवालेको देकर शेष धनको राजा ग्रहण करै, सोई गौतमने कहाहै कि स्वामीके नष्ट धनको पाकर राजा वर्ष दिनतक रक्षा करै, वर्षके पीछे चौथा भाग पानेवालेका और शेष राजाका होताहै, इस वचनमें संवत्सरम् यह एकवचन अविवक्षित है, क्योंकि राजा तीन वर्षतक रक्खै यह मनुका वचन है, और वर्षसे परे राजा लेले यहभी स्वामी न आया होय तो तीन वर्षके अनंतर राजा व्यय (खर्च) करनेकी आज्ञाके लिये है, तीन वर्षके पीछे स्वामी आवे तो स्वामीके व्यय हुए द्रव्यमेंसे अपना भाग ले (काट) कर उसके समान धन राजा दे, यहभी सुवर्ण आदिके विषयमें है, गौ आदिके विषयमें तो कहेंगे एकशफ (घोडा आदि) में पणको दे ॥

भावार्थ-नष्ट हुए मिले धनको राजा धनीको देदे, यदि वह धनी उसके चिह्न संख्या न बता सके तो उस धनके समान ही दंडका भागी होताहै ॥ ३३ ॥

राजा लब्ध्वा निधिंदद्याद्विजेभ्योर्धंद्विजः।
पुनःविद्वानशेषमादद्यात्ससर्वस्यप्रभुर्यतः॥

पद-राजा १ लब्ध्वाऽ-निधिम् २ दद्यात् क्रि-द्विजेभ्यः ४ अर्धं २ द्विजः १ पुनःऽ-विद्वान् १ अशेषम् २ आदद्यात् क्रि-सः १ सर्वस्य ६ प्रभुः १ यतःऽ-॥

इतरेण निधौ लब्धे राजा षष्ठांशमाहरेत्।
अनिवेदितविज्ञातो दाप्यस्तंदंडमेव च३५॥

पद-इतरेण ३ निधौ ७ लब्धे ७ राजा १ षष्ठांशम् २ आहरेत् क्रि-अनिवेदितविज्ञातः १ दाप्यः १ तम् २ दण्डम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना-राजा निधिं लब्ध्वा अर्धं द्विजेभ्यः दद्यात् । विद्वान् द्विजः पुनः (तु) अशेषम् आदद्यात् । यतः सः सर्वस्य प्रभुः भवति । इतरेण निधौ लब्धे सति राजा षष्ठांशं दत्त्वा आहरेत् । अनिवेदितविज्ञातः पुरुषः तं (निधिं) च पुनः दंडम् एव (अपि) दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त निधिको राजा लेकर आधा ब्राह्मणोंको देकर शेषको कोशमें रक्खै। यदि वेदका अध्ययन आदिसे युक्त विद्वान् सदाचारी ब्राह्मणको निधि (खजाना) मिलजाय तो वह सवकोही ग्रहण करले क्योंकि यह विद्वान् सव जगत्का स्वामी है। यदि राजा वा विद्वान् ब्राह्मणसे भिन्न किसीको निधि मिलजाय तो राजा पानेवालेको छठा भाग देकर शेष निधिको स्वयं ग्रहण करै। सोई वसिष्ठने कहा है कि विना जाना धन जिसको मिलजाय तो राजा उसको ग्रहण करै। और छठा भाग मिलनेवालेको दे। गौतमकोही वचन है कि निधिका मिलना राजधन है। और विद्वान् ब्राह्मणको मिला निधि राजाका नहीं होता, और कोई यह कहतेहैं कि ब्राह्मणसे भिन्नभी कहनेवाला छठे भागको पाताहै, और जो मिले हुए निधिको राजासे न कहै और राजाको प्रतीत होजाय तो उसको सव निधिका दड और अन्यभी दंड राजा शक्तिके अनुसार दे, और यदि स्वामी आनकर रुपयोंकी संख्या आदिसे अपना स्वत्व वतादे तो राजा उसको निधि देकर छठा वा द्वादश

---

१ प्रनष्टस्वामिकमधिगम्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यमूर्ध्वमधिगंतुश्चतुर्थोंशो राज्ञः शेषम् ।

२ पणानेकशफे दद्यात् ।

१ अप्रज्ञायमानं वित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्धरेत् षष्ठमंशमधिगंत्रे दद्यात् ।

२ निध्यधिगमो राजधनं भवति ।

वां भाग स्वयं लेले, सोई मनुने कहा है (अ ८ श्लो. ३९) जो मनुष्य सत्यसे यह कहे कि यह निधि मेरी है उसके छठे वा द्वादशवें भागको राजा ग्रहण करे, भागोंका यह छठा दशवां आदि विकल्प तो देशकाल आदिकी अपेक्षासे जानना ॥

भावार्थ-राजा निधिको प्राप्त होकर आधा द्रव्य ब्राह्मणोंको दे, यदि विद्वान् ब्राह्मणको निधि मिल जाय तो वह संपूर्णको लेले, क्योंकि वह सब जगत्का प्रभु (स्वामी) है, यदि किसी अन्यको निधि मिल जाय तो राजा उसको छठा भाग देकर शेपको आप ले ले, यदि कोई मनुष्य निधिको पाकर राजाको न बतावे और ज्ञात होजाय तो उसको निधिका और इतर दंड राजा दे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

देयं चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जानपदाय तु।
अददद्धिसमाप्नोतिकिल्बिषं यस्यतस्यतत्॥

पद-देयम् १ चौरहृतम् १ द्रव्यम् १ राज्ञा ३ जानपदाय ४ तुऽ-अददत् १ हिऽ-समाप्नोति क्रि-किल्बषम् २ यस्य ६ तस्य ६ तत् १ ॥

योजना-चोरहृत द्रव्य राजा जानपदाय देयम्, हि (यतः) अददत् राजा यस्य तत् धनं तस्य किल्बिप (पाप) समाप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-चोरोंने जो द्रव्य हरा हो उस धनको चोरोंसे जीतकर अपने देशके निवासी जो जानपद (देशके मनुष्य) में जिसका वह धन हो उसको दे, क्योंकि नहीं देता हुआ राजा जिसका वह चुराया हुआ द्रव्य था उसको और चोरके पापको प्राप्त होता है सोई मनुने कहा है कि चोरोंके चुराये हुए धनको राजा सव वर्णोंको दे, क्योंकि उसको भोगता हुआ राजा चोरके पापको प्राप्त होता है, यदि चोरके हाथसे लेकर स्वय भोगै तो चोरके पापको प्राप्त होता है, यदि चोरके चुराये हुएकी राजा उपेक्षा करै तव देशनिवासियोंके पापको प्राप्त होता है, यदि चोरोंके चुरायेका प्रतिआहरण (निकासना) के लिये यत्न करता हुआभी राजा प्रतिआहरण न करसकै तो उतना धन अपने कोशमेंसे दे, सोई गौतमेंने कहा है कि चोरके चुरायेको जीतकर यथास्थान (स्वामीको) पहुंचा दे वा कोशमेंसे देदे, कृष्णद्वैपायनकाभी वचन है, यदि चोरोंके चुराये धनका प्रत्याहरण न करसके तो असमर्थ राजा अपने कोशमेंसे देदे ॥

भावार्थ-चोरोंके चुराये धनको राजा देशके निवासियोंको दे क्योंकि नहीं देता हुआ राजा देशके वासियोंके पापको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

---

१ ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः। तस्याददीत षड्भाग राजा द्वादशमेव वा ॥

१ दातव्य सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरहृत धनम्। राजा तदुपयुंजानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥

२ चौरहृतमवजित्य यथास्थान गमयेत् कोशाद्वा दद्यात् ॥

३ प्रत्याहर्तुं न शक्तस्तु धनं चौरहृत यदि। स्वकोशात्तद्धि देयं स्यादशक्तेन महीक्षिता ॥

इति असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ ऋणादानप्रकरणम् ३.

अशीतिभागोवृद्धिःस्यान्मासिमासिसबंधके। वर्णक्रमाच्छतंद्वित्रिचतुःपचकमन्यथा।

पद-अशीतिभागः १ वृद्धिः १ स्यात् क्रि- मासि ७ मासि ७ सबंधके ७ वर्णक्रमात् ५ शतम् १ द्वित्रिचतुःपचकम् १ अन्यथाऽ-॥

योजना-सबंधके प्रयोगे मासि मासि अशीतिभागः वृद्धिः स्यात्, अन्यथा वर्णक्रमात् द्वित्रिचतुःपंचक शतं वृद्धिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-साधारण और असाधारणरूप व्यवहारोंकी मातृकाको कहकर अब अठारह व्यवहारोंके पदोंमें पहिले ऋणादान पदको दिखाते हैं ' अशीति भाग ' इसे लेकर 'मोच्य आधिस्तदुत्तन्ने प्रविष्टे द्विगुणे धने ' यहांतक ग्रंथसे। वह ऋणादान सात प्रकारका है। कि १ ऐसा ऋण देने योग्य, २ ऐसा देने अयोग्य, ३ यह अधिकारी दे, ४ इस समयमें दे, ५ और इस प्रकारसे दे, यह पांच प्रकार तो अधमर्ण (लेनेवाला) के लिये हैं, और उत्तमर्णके लिये देनेकी विधि आर लेनेकी विधि ये दो प्रकार हैं, यह बात नारदने स्पष्ट की है कि देने योग्य, देने अयोग्य, जिसने, जिस समय, जिस प्रकार देने और ग्रहण करनेके धर्म यह ऋणादान सात प्रकारका कहा है,[1] उनमें पहिले उत्तमर्णके देनेकी विधिको कहते हैं, क्योंकि अन्य सब उसकेही अधीन हैं। बधक (जो विश्वासके लिये उत्तमर्णके समीप भूषण आदि रख दिया जाय) सहित ऋणके प्रयोग (गिरवी) में दिये हुए द्रव्यका अस्सीवां ८० भाग (१ सैकडा) वृद्धि धर्मके अनुकूल होती है, अन्यथा अर्थात् बधकरहित प्रयोगमें ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे शत रुपयेपर दो, तीन, चार, पांच रुपयेकी वृद्धि धर्मके अनुकूल होती है अर्थात् सौ रुपयेपर ब्राह्मणसे दो रुपये, क्षत्रियसे तीन, वैश्यसे चार और शूद्रसे पांच रुपये लेने, और वृद्धिकी वृद्धिको (सूदपर सूद) चक्रवृद्धि, प्रतिमासकी वृद्धिको कालिका और अपनी इच्छासे कीहुईको कारिता, देहके कर्मसे जो हो वह कायिका वृद्धि कहाती है, और यह वृद्धि मास २ में ली जाती है इससे कालिका होती है और इसी वृद्धिको दिनकी गिनतीके प्रतिदिन लेय तो कायिका होती है,[1] सोई नारदने स्पष्ट किया है[2] कि कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि यह चार प्रकारकी वृद्धि शास्त्रोंमें उस धनकी होती है, यह कहकर कहा है कि कायाके अविरोधिनी और निरंतर पण पाद आदि जिसमें हो वह कायिका, और प्रतिमास जो आवे वह वृद्धि कालिका मानी है, जिसको अधमर्ण स्वयं करले वह वृद्धि कारिता कहाती है, और वृद्धिकीभी पुनः वृद्धिको चक्रवृद्धि कहते है ॥

भावार्थ-बंधक (गिरवी) सहित प्रयोगमें अस्सीवां भाग मास २ में होता है और बंधक जिसमें न हो उसमें ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे सौ रुपयेपर दो तीन चार पांच रुपयेकी वृद्धि होती है ॥ ३७ ॥

---

१ ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्। दानग्रहणधर्माश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥

---

१ वृद्धेर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिः प्रतिमासं तु कालिका। इच्छाकृता कारिता स्यात्कायिका कायकर्मणा ॥

२ कायिका कालिका चैव कारिता च तथापरा। चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा ॥

३ कायाविरोधिनी शश्वत्पणपादादिकायिका। प्रतिमासं स्रवती या वृद्धिः सा कालिका मता ॥ वृद्धिः सा कारिता नामाधमर्णेन स्वयं कृता। वृद्धेरपि पुनर्वृद्धिश्चक्रवृद्धिरुदाहृता ॥

कांतारगास्तु दशकं सामुद्रा विंशकं शतम्।
दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु॥३८

पद-कांतारगाः १ तु ऽ-दशकम् २ सामुद्राः १ विंशकम् २ शतम् २ दद्युः क्रि-वा ऽ-स्वकृताम् २ वृद्धिम् २ सर्वे १ सर्वासु ७ जातिषु ७॥

योजना-कांतारगाः दशकं सामुद्राः विंशकं शतं दद्युः वा सर्वे सर्वासु जातिषु स्वकृतां वृद्धिं दद्युः॥

तात्पर्यार्थ-कांतारग जो वृद्धिसे धनको लेकर अधिक लाभके लिये अतिगहन प्राण और धनकी शंकाके स्थानमें जांय वे मास २ में सौ रुपयेपर दश रुपये दें। और समुद्रमें जानेवाले सौ रुपयेपर वीस रुपये दें। यह बात इससे कही गई कि कांतारगोंसे दश रुपये और सामुद्रगोंसे वीस रुपये उत्तमर्ण (देनेवाला) लेले। क्योंकि वहां मूलके नाशकीभी शंका है। वा संपूर्ण ब्राह्मण आदि अधमर्ण बंधकसे रहित और बंधकसहित ऋणके प्रयोगमें अपनी स्वीकार कीहुई वृद्धिको संपूर्ण जातियोंमें दे, कहीं तो विना की हुईभी वृद्धि होती है। सोई नारदने कहा है कि प्रीतिसे दिये रुपयोंकी विना की हुई वृद्धि कहीं भी नही होती और अकारितभी धन छः मासके अनंतर वढता है। जो याचित (मांगे) धनको लेकर देशांतरमें चला गयाहो उसके लिये कात्यायनने कहा है जो याचित (उधारा) धनको लेकर उस धनके विना दिये देशांतरमें चलाजाय तो वर्ष दिनके अनंतर उसका वह धन वृद्धिको प्राप्त होता है। और याचित धनको लेकर और मांगनेसेभी न देकर देशांतरमें चलाजाय उसके प्रतिभी कात्यायनने ही कहा है कि जो याचित (जिसपर मांगा जाय) किये हुए उद्धारके विना दिये देशांतरमें चलाजाय तो तीन मासके पीछे उसका वह धन वृद्धिको प्राप्त होजाता है। और जो याचित अपने देशमें रहताही याचना करने परभी याचित धनको न दे उससे याचित कालसे लेकर राजा उत्तमर्णको वृद्धि दिवावे। सोई कहा है कि अपने देशमें स्थितभी जो याचितको कदाचित् न दे तो उससे और न चाहनेवालेसे अकारित वृद्धिको भी राजा दिवावे। अनाकारित वृद्धिका तो अपवाद नारदने कहा है, पण्य (वेचने योग्य) का मूल्य, भृति (नोकरी), न्यास (धरोहर) और दिया हुआ दंड वृथादान, आक्षिकपण (द्यूतका पण) और अविवक्षित (अकारित) वृद्धि ये नहीं वढते हैं॥

भावार्थ-गहन वनमें जानेवाले दश रुपये और समुद्रमें जानेवाले वीस रुपये सौ रुपये पर प्रतिमास वृद्धि दें। वा संपूर्ण मनुष्य सब जातियोंमें अपनी २ स्वीकार की हुई वृद्धिको दे॥ ३८॥

संततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणापरा
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणापरा॥

पद-संततिः १ तु ऽ-पशुस्त्रीणाम् ६ रसस्य ६ अष्टगुणा १ परा १ वस्त्रधान्यहिरण्यानाम् ६ चतुस्त्रिद्विगुणा १ परा १॥

योजना-पशुस्त्रीणां संततिः रसस्य अष्टगुणा वृद्धिः परा भवति। वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा वृद्धिः परा ज्ञेया॥

---

१ न वृद्धिः प्रीतिदत्तानां स्यादनाकारिता क्वचित्। अनाकारितमप्यूर्ध्वं वत्सरार्द्धाद्विवर्द्धते॥

२ यो याचितकमादाय तमदत्त्वा दिशं व्रजेत्। ऊर्ध्वं संवत्सरात्तस्य तद्धनं वृद्धिमाप्नुयात्॥

१ कृतोद्धारमदत्त्वा यो याचितस्तु दिशं व्रजेत्। ऊर्ध्वं मासत्रयात्तस्य तद्धनं वृद्धिमाप्नुयात्॥

२ स्वदेशेऽपि स्थितो यस्तु न दद्याद्याचितः क्वचित्। तं ततोऽकारितां वृद्धिमनिच्छंतं च दापयेत्॥

३ पण्यमूल्यं भृतिर्न्यासो दंडो यश्च प्रकल्पितः। वृथा दानाक्षिकपणा वर्द्धंते नाविवक्षिताः॥

तात्पर्यार्थ-अब द्रव्यके विशेषसे वृद्धिको कहतेहैं। पशु और स्त्रियोंकी वृद्धि सतान होती है। जो मनुष्य पशु और स्त्रीके पोषणमें असमर्थ होनेसे उनकी पुष्टि और संतानकी कामनासे किसी अन्यको दे और ग्रहण करनेवाला दूध और सेवाके लिये ग्रहण करले तो स्वामी उनकी संतानरूप वृद्धिका भागी होता है। अब यह कहते हैं कि जो दिया हुआ द्रव्य वृद्धि लिये विनाही चिरकालतक रहै उसमें किस द्रव्यकी कितनी वृद्धि अधिकसे अधिक होती है। वृद्धिके ग्रहण किये बिना चिरकालतक टिके तैल घृत आदिकी वृद्धि यदि अपनी को हुई वृद्धिसे वह बढगया होय तो अधिकसे अधिक अष्टगुणा वृद्धि होती है अर्थात् आठगुणा बढताहै अधिक नहीं। तैसेही वस्त्र अन्न सुवर्ण इनकी क्रमसे चौगुनी तिगुनी दुगुनी वृद्धि अधिकसे अधिक होती है। वसिष्ठने तो रसकी तिगुनी कही है कि दुगुना सुवर्ण और तिगुना अन्न रस पुष्प मूल फल बढते हैं। तोले हुए रस आदि तीनों आठगुने होते हैं। मनुने तो धान्य पुष्प मूल फल आदिकोंको पांचगुना कहाहै कि, धान्य, शद (पुष्पमूल फल आदि क्षेत्रका फल), लव (मेषकी ऊन चमरीगौके केश आदि), वाह्य (बैल अश्व आदि) इनकी वृद्धि पांच गुनेसे अधिक नहीं होती। उसमें भी अधमर्णकी योग्यता, दुर्भिक्ष आदिका समयके अनुसार व्यवस्था जाननी। यहभी एकवार देने और लेनेमें समझना। अन्य पुरुषके नामसे वा अन्य प्रयोग (देना) करने वा उसी पुरुषको अनेकवार प्रयोग करनेमें तो सुवर्ण आदि दुगुनेसे अधिकभी पूर्वके समान बढतेही हैं। और एकवारके प्रयोगमेंभी प्रतिदिन प्रतिमास वा प्रतिवर्ष वृद्धिके लेनेमें अधमर्णको जो देना था वह दूना हो सकता है। इससे पूर्व लीहुई वृद्धिके सब मिलाकर दूनेसे अधिकभी बढताही है। सोई मनुने कहाहै कि एकवार ठहराई हुई कुसीद (बढनेके लिये दिया धन) की वृद्धि दूनेसे अधिक नहीं होती। और अन्य पुरुषके द्वारा वा दूसरे प्रयोगसे ठहराई हुई तो दूनेसभी अधिक हो जाती है। यदि 'सकृदाहृता' यह पाठ होय तो शनैः २ प्रतिदिन प्रतिमास वा प्रतिवर्ष अधमर्णसे लेली होय तो दूनेसे अधिक नहीं होती। सोई गौतमनेभी कहाहै कि 'चिरकालमें प्रयोग (देना) दूना हो जाताहै यह 'प्रयोगस्य' इस एक वचनसे दूसरा प्रयोग करनेमें दूनेसे अधिकका होना इष्ट है और 'चिरस्थाने' यह कहनेसे शनैः २ वृद्धिके ग्रहणमें दूनेका अवलंघन दिखायाहै ॥

भावार्थ-पशु और स्त्रियोंकी वृद्धि सतान होती है और रसकी वृद्धि अधिकसे अधिक आठगुनी और वस्त्र अन्न सुवर्ण इनकी वृद्धि क्रमसे चौगुनी तिगुनी और दूनी अधिकसे अधिक होती है ॥ ३९ ॥

प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतेर्भवेत्।
साध्यमानोनृपंगच्छन्दंडचोदाप्यश्चतद्धनम्।

पद-प्रपन्नम् २ साधनम् १ अर्थम् २ नऽ-वाच्यः १ नृपतेः ६ भवेत् क्रि-साध्यमानः १ नृपम् २ गच्छन् १ दंडचः १ दाप्यः १ चऽ-तद्धनम् २ ॥

योजना-प्रपन्नम् अर्थ साधयन् उत्तमर्णः नृपतेः वाच्यः न भवेत् नृप गच्छन् साध्यमानः अधमर्णः दण्डचः च पुनः तद्धन दाप्यः भवति ॥

१ द्विगुणं हिरण्यं त्रिगुण धान्यं धान्येनैव रसाः व्याख्याताः पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतं त्रितयमष्टगुणम्।

२ धान्ये शदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पंचताम्।

१ कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्य नात्येतिसकृदा हिता (दाहृता)

तात्पर्यार्थ–अधमर्णने प्रपन्न (स्वीकृत) किये वा साक्षी आदिसे स्वीकार कराये धनको धर्म आदि उपायोंसे प्रत्याहरण (वसूल) करते हुए उत्तमर्णको राजा निवारण न करे। धर्म आदि उपाय मनुने दिखाये हैं कि प्रीतिके सत्यवचनरूप धर्मसे, साक्षी लेख आदि व्यवहारसे, छल (उत्सव आदिके बहानेसे भूषण आदिके ग्रहण) से, आचरित (भोजनके अभाव) से और पांचवें निगड बधन आदि बलसे उपचय (बढाना) के अर्थ दिये द्रव्यको इन उपायोंसे अपने अधीन करे। प्रपन्न अर्थको सिद्ध करते हुए उत्तमर्णको राजा मने न करै। यह कहनेसे यह दिखाया कि अप्रतिपन्नको सिद्ध करते हुएको राजा निवारण करे। यही बात कात्यायनने स्पष्ट की है कि जो धनी न्यायवादी ऋणवालेको पीडा दे। वह उस धनकी हानिको प्राप्त होता है और उस धनीके धनके समान दण्डको पाता है। और धर्म आदि उपायोंसे याचना करनेपर स्वीकार करनेवाला राजाके समीप जाकर साधन करनेवालेपर अभियोग (दावा) करे तो वह शक्तिके अनुसार दण्डका भागी होता है और राजा उससे धनीको धन दिवादे। राजाके धन दिवानेके प्रकार दिखाये हैं कि राजा स्वामीको ब्राह्मणसे शांतिके द्वारा और अन्योंसे देशके आचरणसे और दृष्टोंसे दुःख दे २ कर धनको दिवादे। और जो धनी सुहृद् (मित्र) होय तो छलसेभी धनको दिवादे। 'साध्यमानो नृप गच्छेत्' यह वचन (जो मांगनेपर राजाके पास जाय) स्मृति आचारसे भिन्न मार्गसे दबाया हुआ राजाको निवेदन करे तो वह व्यवहारका पद है इसका प्रत्युदाहरण जानना॥

भावार्थ–अधमर्णसे स्वीकार किये अर्थको जो सिद्ध (वसूल) करे उसका निवारण राजा न करै। यदि अधमर्ण साधन करनेपर राजाके समीप जाय तो दण्डके योग्य होता है और धनीके धनको उससे राजा दिवादे ॥ ४० ॥

गृहीतानुक्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः।
दत्त्वा तु ब्राह्मणायैव नृपतेस्तदनन्तरम् ॥

पद–गृहीतानुक्रमात् ५ दाप्यः १ धनिनाम् ६ अधमर्णिकः १ दत्त्वाऽ–तुऽ–ब्राह्मणाय ४ एवऽ–नृपतेः ६ तदनन्तरम् २ ॥

योजना–धनिनां गृहीतानुक्रमात् अधमर्णिकः राज्ञा दाप्यः। तु पुनः ब्राह्मणाय दत्त्वा तदनन्तर नृपतेः दाप्यः ॥

ता॰ भा॰–यदि धनी समान जातीके एकवार राजाके समीप आवे तो जिस क्रमसे धन लियाहो उसी क्रमसे अधमर्णसे दिवावे। यदि वे उत्तमर्ण भिन्न २ जातिके होंय तो प्रथम ब्राह्मणके और फिर क्षत्रियके धनको दिवावे ४१॥

राज्ञाधर्मणिको दाप्यः साधिताद्दशकंशतम्।
पंचकं च शतं दाप्यः प्राप्तार्थोह्युत्तमर्णिकः॥

पद–राज्ञा ३ अधमर्णिकः १ दाप्यः १ साधितात् ५ दशकम् २ शतम् २ पचकम् २ चऽ–शतम् २ दाप्यः १ प्राप्तार्थः १ हिऽ–उत्तमर्णिकः १ ॥

योजना–राज्ञा अधमर्णिकः साधितात् दशकं शत दाप्यः। प्राप्तार्थः उत्तमर्णिकः पंचकं शतं दाप्यः ॥

ता॰भा॰–यदि दुर्बल उत्तमर्ण स्वीकार किये अर्थको धर्म आदि उपायोंसे सिद्ध न कर सके और राजा सिद्ध करले तो राजा अध-

१ धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च। प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥

२ पीडयेद्यो धनी कश्चिद्दणिकं न्यायवादिनम्। तस्मादर्थात्स हीयेत तत्समं चाप्नुयाद्दमम्।

३ धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च। प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥

मर्णसे साधित अर्थमेंसे प्रतिशतमेंसे दश रुपये दंडके ले अर्थात् राजा दशवां भाग दडरूप ग्रहण करै। और मिलगया है धन जिसको ऐसे उत्तमर्णसे प्रति शतमेंसे पांच रुपये भृतिरूप राजा ले अर्थात् बीसवें भागको राजा ग्रहण करै। यदि अस्वीकार किये अर्थको राजा सिद्ध करादे तो वहां दडका विभाग 'निह्नवे भावितो दद्यात्' इस श्लोकमें दिखाय आये हैं ॥ ४२॥

हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्मकारयेत्। ब्राह्मणस्तु परिक्षीणःशनैर्दाप्यो यथोदयम्॥

पद-हीनजातिम् २ परिक्षीणम् २ ऋणार्थम्ऽ-कर्म२कारयेत् क्रि-ब्राह्मणः १ तुऽ-परिक्षीणः १ शनैःऽ-दाप्यः १ यथोदयम्ऽ-॥

योजना-परिक्षीणं हीनजातिम् ऋणार्थं कर्म कारयेत्। तु पुनः परिक्षीणः ब्राह्मणः शनैः यथोदयं दाप्यः॥

तात्पर्यार्थ-धनवान् अधमर्णके प्रति कहा, अब निर्धन अधमर्णके प्रति कहते हैं कि ब्राह्मण आदि उत्तमर्ण परिक्षीण (निर्धन) क्षत्रिय आदि हीन जातिसे ऋणकी निवृत्तिके लिये अपना कर्म उनकी जातिके अनुरूप करावे, उसमेंभी उनके कुटुंबका विरोध न करै। यदि ब्राह्मण परिक्षीण (निर्धन) होय तो उससे शनैः २ यथोदय (जैसे होसकै) ऋणको राजा दिवावे। यहां हीनजाति समान जातिकाभी उपलक्षण है। इससे निर्धन सजातीयसे यथोचित कर्म करावे और ब्राह्मणका ग्रहणभी श्रेष्ठ जातिका उपलक्षण है इससे निर्धन क्षत्रिय आदिभी वैश्य आदिका शनैः २ यथोचित कर्म करै। यही मनुने स्पष्ट किया है (अ.८श्लो १७६) कि सजाति अधमर्ण अपने आत्माको कर्म करकेभी धनीके सम (तुल्य) करै अर्थात् आपसमें उत्तमर्ण अधमर्ण नामको दूर करै। और हीन जाति अधमर्ण होय तो उस धनको दे और श्रेष्ठजाति तो शनैः २ ऋणको दे॥

भावार्थ-निर्धन हीनजाति अधमर्णसे ऋण दूर करनेके लिये कामको करावे। ब्राह्मण निर्धन अधमर्ण होय तो उससे यथासभव ऋणको राजा दिवादे॥ ४३॥

दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकंधनम्। मध्यस्थस्थापितं चेत्स्याद्वर्द्धतेन ततःपरम्॥

पद-दीयमानम् २ नऽ-गृह्णाति क्रि-प्रयुक्तम् २ यः १ स्वकम् २ धनम् २ मध्यस्थस्थापितम् १ चेत्ऽ-स्यात् क्रि-वर्धते क्रि-नऽ-ततःऽ-परम् २ ॥

योजना-यः उत्तमर्णः प्रयुक्तं स्वकं धनं दीयमान न गृह्णाति चेत् यदि तत् मध्यस्थस्थापितं स्यात् तदा ततः पर न वर्द्धते॥

ता० भा०-बढानेके लिये दिये धनको यदि उत्तमर्ण अधमर्णके देनेपर वृद्धिके लोभसे ग्रहण न करै, और यदि अधमर्ण उसे मध्यस्थके हाथमें स्थापित करदे (रखदे) तो वह धन स्थापनसे आगे नहीं बढता। यदि स्थापितकोभी याचना करनेपर न दे तो पूर्वके समान बढताही है॥ ४४॥

अविभक्तैःकुटुंबार्थे यदृणं तु कृतं भवेत्। दद्युस्तद्रिक्थिनःप्रेते प्रोषिते वा कुटुंबिनि॥

पद-अविभक्तैः ३ कुटुवार्थे ७ यत् १ ऋणम् १ तुऽ-कृतम् १ भवेत् क्रि-दद्युः क्रि-तत् २ रिक्थिनः १ प्रेते ७ प्रोषिते ७ वाऽ-कुटुविनि ७॥

योजना-अविभक्तैः कुटुंबार्थे कृतं यत् ऋणं भवेत्। कुटुंबिनि प्रेते वा प्रोषिते तत् ऋणं रिक्थिनः दद्युः॥

ता० भा०-अविभक्त (इकट्ठे) बहुतोंने जो ऋण पृथक् २ किया हो उसको कुटुंबी

---

१ कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकेनाधमर्णिकः। समोऽपकृष्टजातिश्च दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः॥

दे और कुटुंबी मरजाय वा परदेशमें चला जाय तो सब रिक्थी (हिस्सेदार) दें ॥ ४५ ॥

न योपित्पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता। दद्यादृते कुटुंबार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ४६

पद—नऽ—योपित् १ पतिपुत्राभ्याम् ३ नऽ—पुत्रेण ३ कृतम् २ पिता १ दद्यात् क्रि—ऋतेऽ—कुटुंबार्थात् ५ नऽ-पतिः १ स्त्रीकृतम् २तथाऽ—॥

योजना—पतिपुत्राभ्यां कृतम् ऋणं योपित्, पुत्रेण कृत पिता, तथा स्त्रीकृतं पतिः कुटुंबार्थात् ऋते न दद्यात् ॥

ता०भा०—पतिके किये हुए ऋणको भार्या और पुत्रके किये ऋणको माता और पुत्रके किये ऋणको पिता न दें। यदि वह कुटुंबके पोषणार्थ किया होय तो चाहै जिसने कियाहो उसको सब कुटुंबी दे। यदि कुटुंबी न होयें तो उसके दायभागी दें ॥ ४६ ॥

सुराकामद्यूतकृतं दंडशुल्कावशिष्टकम्। वृथादानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ४७

पद—सुराकामद्यूतकृतम् २ दंडशुल्कावशिष्टकम् २ वृथादानम् २ तथाऽ—एवऽ—इहऽ—पुत्रः १ दद्यात् क्रि—नऽ—पैतृकम् २ ॥

योजना—सुराकामद्यूतकृतम्,दंडशुल्कावशिष्टकम्, तथैव इह वृथादानं पैतृकं पुत्रः न दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ—मदिराका पीना, कामदेव (स्त्रीका व्यसन), द्यूतमें पराजय इनमें किया और दंड वा शुल्क (महसूल) इनका शेप जो पिताका किया ऋण है और तैसेही धूर्त वंदीजन मल्ल आदिको जो वृथा दान है पिताके किये इतने ऋणोंको शौंडिक (करार) आदिके ऋणको पुत्र न दे क्योंकि यह स्मृति है कि धूर्त वंदीजन मल्ल खोटा वैद्य कपटी शठ चाट चारण चोर इनको दिया निष्फल होताहै। यह दंड शुल्कके शेपको न दे यह कहनेसे यह नहीं समझना कि दंड आदि संपूर्णको दे, क्योंकि उशनाकी यह स्मृति है कि दंड वा दंडका शेप शुल्क वा शुल्कका शेप और जो व्यवहारका न हो वह इनको पुत्र न दे। गौतमने भी कहा है कि मदिरा शुल्क द्यूत काम दंड इनको पुत्र न दें अर्थात् ये ऋण पुत्रोंके ऊपर नहीं होते, इस वचनसे देनेके अयोग्य ऋण कहा ॥

भावार्थ—मदिरा विपयभोग द्यूत इनमें किया और दंड वा शुल्कका शेप और वृथादान पिताके किये इतने ऋणोंको पुत्र न दे ॥ ४७ ॥

गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम्। ऋणं दद्यात्पतिस्तासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया॥

पद—गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोपिताम् ६ ऋणम् २ दद्यात् क्रि—पतिः १ तासाम् ६ यस्मात् ५ वृत्तिः १ तदाश्रया १ ॥

योजना—गोपशौंडिकशैलूषरजकव्याधयोषिताम् ऋणं तासां पतिः दद्यात् यस्मात् वृत्तिः तदाश्रया (स्त्र्यधीना) भवति ॥

ता०भा०—गोपाल शौंडिक (करार), शैलूप (नट) रजक (रंगरेज) व्याध इनकी स्त्रियोंने जो ऋण कियाहो उसको उनके पति दें, क्योंकि उनकी जीविका स्त्रियोंके अधीन होती है। (यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया) इस हेतुके कहनेसे यह बात जानी गई कि अन्यभी जिनका जीवन स्त्रियोंके अधीन है वेभी स्त्रीके किये ऋणको दें ॥ ४८ ॥

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत्कृतम्। स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यत्स्त्री दातुमर्हति ॥

---

१ धूर्ते वादिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे । चाटचारणचौरेषु दत्तं भवति निष्फलम् ॥

१ दंडं वा दंडशेषं वा शुल्कं तच्छेषमेव वा । न दातव्यं तु पुत्रेण यच्च न व्यावहारिकम् ॥

२ मद्यशुल्कद्यूतकामदडान् पुत्रानध्यावहेयुः ।

पद-प्रतिपन्नम् १ स्त्रिया ३ देयम् १ पत्या ३ वाऽ-सहऽ-यत्१ कृतम् १ स्वयम्ऽ-कृतम् १ वाऽ-यत् १ ऋणम् १ नऽ-अन्यत् १ स्त्री १ दातुम्ऽ-अर्हति क्रि-॥

योजना-यत् ऋणम् स्त्रिया प्रतिपन्नं वा पत्या सह यत् कृतम् वा स्वयंकृतं तत् ऋणम् स्त्रिया देयम् । अन्यत् ऋणं दातुम् स्त्री न अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-मरते वा परदेशमें जाते हुए पतिके कहनेसे ऋणादानमें जो ऋण स्त्रीने स्वीकार करलियाहो और जो पतिके जीवन समयमें उसकी संमतिसे कियाहो और जो स्वयं किया हो, वह ऋण पतिके अभावमें स्त्री दे। कदाचित् कोई कहै कि स्वीकृत आदि इन तीन ऋणोंको स्त्री दे यह वचन न कहना चाहिये। क्योंकि इनके देनेमें सदेहका अभाव है। इसका समाधान यह है कि भार्या पुत्र दास ये तीनों निर्धन कहे हैं ये तीनों जो पैदा करें वह धन उसकाही होता है, जिसके ये तीनों हों। इस वचनसे स्वीकृत आदिमें भी न देनेकी शका निवृत्तिके लिये यह वचन कहा है और यह पूर्वोक्त वचनभी स्त्री आदिके निर्धनकाभी बोधक नहीं है किन्तु पराधीनताका बोधक है। यह बात विभागप्रकरणमें स्पष्ट करैंगे। कदाचित् कहो कि अन्य धनको स्त्री देने योग्य नहीं है, यह भी न कहना चाहिये क्योंकि विधिसेही निषेध सिद्ध हो जायगा अर्थात् स्वीकृत आदि तीनसे भिन्न ऋणको स्त्री न दे, इसका समाधान कहते हैं, पूर्वोक्त स्वीकृत आदिके अपवादके लिये यह वचन है अर्थात् अन्य जो सुरा काम आदि हैं वे चाहैं स्वीकार किये हों चाहे पतिके संग किये हों उनको स्त्री न दे ॥

१ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः। यत्ते समधिगच्छाति यस्यैते तस्य तद्धनम् ॥

भावार्थ-जो ऋण स्त्रीने स्वीकार कर लियाहो और जो पतिके संग कियाहो और जो स्वयं किया हो उस ऋणको स्त्री दे; और अन्य ऋणके देने योग्य स्त्री नही होती ॥ ४९ ॥

पितरिप्रोषितेप्रेतेव्यसनाभिप्लुतेपिवा । पुत्रपौत्रैर्ऋणंदेयं निह्नवे साक्षिभावितम् ५०

पद-पितरि ७ प्रोषिते ७ प्रेते ७ व्यसनाभिप्लुते ७ अपिऽ-वाऽ-पुत्रपौत्रैः ३ ऋणम् १ देयम् १ निह्नवे ७ साक्षिभावितम् १ ॥

योजना-प्रोषिते प्रेते वा व्यसनाभिप्लुते पितरि सति पुत्रपौत्रैः ऋण देयम् । निह्नवे साक्षिभावितम् तैः एव देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-पिता देने योग्य ऋणको न देकर मरगयाहो, वा दूर देशमें चलागयाहो अथवा चिकित्साके अयोग्य व्याधि आदिसे युक्त हो और पिताके किये ऋणको कोई बतावे तो उसको पुत्र वा पौत्र पिताका धन न हो तोभी दे, क्योंकि वे उसके पुत्र और पौत्र हैं, उसमें क्रमभी यह है कि पिताके अभावमें पुत्र और पुत्रके अभावमें पौत्र दे, यदि पुत्र वा पौत्र उस ऋणका निह्नव करैं (मुकरैं) और अर्थी साक्षी आदिसे स्वीकार करादे तो पुत्र पौत्र ऋणको दें, इस वचनमें पिता परदेशमें चलागयाहो इतनाही कहाहै, काल विशेष तो नारदका कहा जानना कि पिता पितृव्य (चाचा) ज्येष्ठ भाई ये परदेशमें चलेगये होंय तो बीस वर्षसे पहिले पुत्र आदि इनके ऋणको न दें, और पिताके मरनेपरभी वह पुत्र न दे जिसको व्यवहारके समयका ज्ञान न हो, और जिसे ज्ञान हो वह दे, वह व्यवहारका समयभी नारदने

१ नार्वाक्सवत्सराद्विंशातिपतरि प्रोषिते सुतः। ऋणं दद्यात्पितृव्ये वा ज्येष्ठे भ्रातर्यथापिवा ॥

२ गर्भस्थैः सदृशो ज्ञेयः अष्टमाद्वत्सराच्छिशुः। बाल आ षोडशाद्वर्षात्पौगण्डश्चोति शब्यते ॥

ही दिखाया है कि आठ वर्षतक शिशु (बालक) गर्भमें स्थितके समान जानना और सोलह वर्षपर्यंत बाल वा पोगंड कहाताहै इससे परे व्यवहारका ज्ञाता स्वतन्त्र पितराद्वत (पिताके समान व्यापारका कर्ता) कहाताहै। यद्यपि पिताके मरणानंतर बालकभी स्वतंत्र होगया तोभी ऋणका भागी नहीं होता। सोई कहाहै कि यदि व्यवहारको न जानता होय तो स्वतन्त्र ऋणका भागी नहीं होता क्योंकि स्वतंत्रता ज्येष्ठमें होतीहै और ज्येष्ठ गुण और अवस्थासे होताहै। और तिसी प्रकार व्यवहारके अज्ञानीको आसेध (अर्जी) और आह्वान (बुलाना) काभी निषेध देखतेहैं कि व्यवहारका अज्ञानी, दूत, दान देनेमें उद्यत, व्रती और संकटमें स्थित ये आसेधके योग्य नहीं हैं और न राजा इनका आह्वान करै। तिससे इस वचनमें पुत्र पदका व्यवहारका ज्ञाता और जात पदका निष्पन्न (कुशल) अर्थ करना कि इससे व्यवहारका ज्ञान होनेपर पुत्र अपने स्वार्थको छोडकर बडे यत्नसे पिताको ऋणसे ऐसे छुटावे जैसे पिता नरकमें न जाय। श्राद्धमें तो बालककाभी अधिकार है, क्योंकि यह गौतमकी स्मृति है कि श्राद्धको छोडकर बालक वेदका उच्चारण न करे। और 'पुत्रपौत्रैः' इस बहुवचनके दिखानेसे यदि पुत्र पृथक् २ होगये हांय तो अपने २ भागके अनुसार दें, और इकट्ठे हांय तो मिलकर धनको पैदा करके दें, यदि उनमें कोई गौण और कोई प्रधान होय तो प्रधान पुत्रही ऋणको दे, यह जाना गया। सोई नारदने कहाहै पिताके मरे पीछे पुत्र विभक्त हों वा इकट्ठे हों पिताका ऋण दें अथवा जो उनमें भारवाही (मुख्य) हो वही दे। और यहां पुत्र पौत्र ऋण दें यह अविशेषसे कहाहै तथापि यह विशेष जानना कि पुत्र तो वैसाही ऋण दे जैसा पिता वृद्धिसहित देता था और पौत्र मूलके समानही दे, वृद्धि न दे। क्योंकि यह बृहस्पतिका वचन है कि पुत्र पिताके ऋणको अपनेके समान दे और पौत्र मूल मात्र दे और प्रपौत्र प्रपितामहके ऋणको न दे। और यहां विभावित (स्वीकृत) इस अविशेष कहनेसे साक्षिविभावित इस पूर्वोक्त वचनमें साक्षीका ग्रहण प्रमाणका उपलक्षण है। सम दे इसका अर्थ यह है कि जितना लियाहो उतनाही दे, वृद्धि न दे। यह सब अगले श्लोकमें स्पष्ट करेंगे॥

भावार्थ-पिता परदेशमें हो वा मर गयाहो वा दुःखसे युक्त हो पुत्र और पौत्र ऋणको दें। यदि वे निह्नव (मुकरना) करें और साक्षियोंसे स्वीकृत हो जाय तोभी ऋणको दें॥ ५०॥

रिक्थग्राहऋणंदाप्योयोपिद्ग्राहस्तथैवच।
पुत्रोनन्याश्रितद्रव्यःपुत्रहीनस्यरिक्थिनः॥

पद-रिक्थग्राहः १ ऋणम् २ दाप्यः १ योषिद्ग्राहः १ तथाऽ-एवऽ-चऽ-पुत्रः १ अनन्याश्रितद्रव्यः १ पुत्रहीनस्य ६ रिक्थिनः १॥

योजना-रिक्थग्राहः तथैव योषिद्ग्राहः अनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रः ऋणं दाप्यः। पुत्रहीनस्य रिक्थिनः ऋणं दाप्याः॥

तात्पर्यार्थ-दूसरेका द्रव्य क्रय आदिके विना जो अपना हो जाय उसे रिक्थ कहते हैं। जो विभागके द्वारा रिक्थको ग्रहण करै (ले) उसे रिक्थग्राह कहते हैं। उससे राजा ऋणको

१ अप्राप्तव्यवहारश्चेत्स्वतन्त्रोपि हि नर्णभाक्। स्वातन्त्र्यं हि स्मृतं ज्येष्ठे ज्यैष्ठ्यं गुणवयःकृतम्॥

२ अप्राप्तव्यवहारश्च दूतो दानोन्मुखो व्रती। विषमस्थाश्च नासेध्या न चैतानाह्वयेन्नृपः॥

३ अतः पुत्रेण जातेन स्वार्थमुत्सृज्य यत्नतः। ऋणात्पिता मोचनीयो यथा न नरके व्रजेत्॥

४ न ब्राह्मणेभिव्याहरेदन्यत्र स्वधानिनयनात्।

१ अत ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋणं दद्युर्यथांशतः। अविभक्ता विभक्ता वा यस्तामुद्वहते धुरम्॥

२ ऋणमात्मीयवत्पित्र्यं देयं पुत्रैर्विभावितम्। पैतामहं समं देयमदेयं तत्सुतस्य तु॥

दिवावे। यह बात इससे कही गई कि जो मनुष्य जिसके द्रव्यको रिक्थरूपसे ग्रहण करै उसीसे उसका किया ऋण दिवावे। और योषित् (भार्या) को जो ग्रहण करै उसे योषिद्ग्राह कहते हैं उससेभी ऋणको दिवावे अर्थात् जो जिसकी भार्याको ग्रहण करै वही उसके किये ऋणको दे। योषित् इस लिये पृथक् लिखीहै कि वह बांटनेका द्रव्य न होनेसे रिक्थ नहीं हो सकती। जिसके मातापिताका द्रव्य अन्यके पास न पहुंचा हो ऐसे पुत्रसेभी राजा ऋणको दिवावे। और जो पुत्रसे हीन हो उसका ऋण रिक्थियोंसे दिवावे। और इनका समवाय (ये सब) होंय तो पढनेके क्रमसे दिवावे कि प्रथम रिक्थग्राह, उसके अभावमें योषिद्ग्राह, उसके अभावमें पुत्र ऋण दे। कदाचित् कोई शंका करै कि इनका समूहही नहीं होसकता भाई और पितर पिताके रिक्थके भागी नहीं होते किंतु पुत्रही होताहै इस वचनसे पुत्रके होते अन्य रिक्थका ग्रहणही नहीं कर सकता और योषित्का ग्रहण भी नहीं हो सकता क्योंकि यह मनु (अ. ५ श्लो. १६२) का वचन है कि साध्वी स्त्रियोंका दूसरा भर्ता कहीं नहीं कहा, और पुत्रसे पिताका ऋण दिवावे यहभी नहीं हो सकता, क्योंकि पुत्र पौत्र ऋणको दें यह कह आये हैं। अनन्याश्रित द्रव्य (जिसके माता पिताका द्रव्य अन्यको न मिला हो) यह विशेषणभी ठीक नहींहै अर्थात् अनर्थकहै। पुत्रके होते द्रव्य अन्यके आश्रय होही नही सकता और होय भी तो रिक्थग्राही इससेही काम चलसकै था। पुत्रहीनका ऋण रिक्थी (हिस्सेदार) दें यहभी न कहना चाहिये, पुत्रके होते भी जब रिक्थग्राही ऋण दें, पुत्रके न होनेपर तो अवश्य दें, यह सिद्धही था। इन सब शंकाओंका समाधान कहतेहैं कि पुत्रके होतेभी रिक्थका ग्राही अन्य हो सकताहै क्योंकि क्लीब अंधे बधिर ये पुत्रभी हैं परतु रिक्थके ग्राही नहीं हो सकते। सोई क्लीब आदिकोंको क्रमसे पढकर यह कहेंगे कि अंशसे हीन इनका भरण (पालन) करै। तैसेही सवर्णाका पुत्रभी अन्यायवृत्ति होय तो अंशका भागी नहीं होता इस गोतमके वचनसे पुत्रभी रिक्थका ग्राही नहीं हो सकता। इससे नपुंसक आदि पुत्रोंके रहते और सवर्णाके पुत्रके अन्यायवृत्ति होनेपर पितृव्य और पितृव्यके पुत्र रिक्थग्राही हो सकतेहैं। यद्यपि शास्त्रके विरोधसे योषिद्ग्राह नहीं होसकता तथापि जिसने शास्त्रके निषेधको न माना वह पूर्व पतिके किये ऋण दूर करनेका अधिकारी होही सकता है और वह योषिद्ग्राह होताहै। जो चार स्वैरिणियोंमें पिछलीको और तीन पुनर्भुओंमें पहिलेको ग्रहण करै। सोई नारदने कहाहै कि परपूर्वा

१ न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।

२ न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते।

१ भर्तव्यास्तु निरंशकाः।

२ सवर्णापुत्रोप्यन्यायवृत्तिर्नलभेतैकेषाम्।

३ परपूर्वाः स्त्रियस्त्वन्याः सप्त प्रोक्ता यथाक्रमम्। पुनर्भूस्त्रिविधा तासां स्वैरिणी तु चतुर्विधा॥ कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता। पुनर्भूः प्रथमा नाम पुनः संस्कारकर्मणा॥ देशधर्मानवेक्ष्य स्त्री गुरुभिर्या प्रदीयते। उत्पन्नसाहसान्यस्मै सा द्वितीया प्रकीर्तिता॥ असत्सु देवरेषु स्त्री बांधवैर्या प्रदीयते। सवर्णाय सपिंडाय सा तृतीया प्रकीर्तिता॥ स्त्री प्रसूताऽप्रसूता वा पत्यावेव तु जीवति। कामात्समाश्रयेदन्यं प्रथमा स्वैरिणी तु सा॥ कौमारं पतिमुत्सृज्य या त्वन्यं पुरुषं श्रिता। पुनः पत्युर्गृहं यायात्सा द्वितीया प्रकीर्तिता॥ मृते भर्तरि तु प्राप्तान् देवरादीनपास्य या। उपगच्छेत्परं कामात्सा तृतीया प्रकीर्तिता॥ प्राप्ता देशाद्धनक्रीता क्षुत्पिपासातुरा च या। तवाहमित्युपगता सा चतुर्थी प्रकीर्तिता॥ आसां मा स्वैरिणीनां या प्रथमा च पुनर्भुवाम्। ऋणं तयोः पातिकृतं दद्याद्यस्तामुपाश्रितः॥

(जिनका पहिले अन्य पति हो चुका हो) स्त्री अन्य क्रमसे सात कहीं हैं उनमें तीन प्रकारकी पुनर्भू और चार प्रकारकी स्वैरिणी होती है। जो अक्षतयोनि (पुरुषके सबंधसे रहित) कन्याही विवाहके हुए पीछे पुनः विवाह करे वह प्रथमा पुनर्भू होतीहै। देश धर्मोको देखकर जिस साहस (व्यभिचार) वाली स्त्रीको माता पिता आदि अन्यको देदें वह दूसरी पुनर्भू होतीहै। जिस स्त्रीको देवरोंके न होनेपर सवर्ण और सपिंडको बांधव देदें वह तीसरी कही है। प्रसूता स्त्री हो वा अप्रसूता हो पतिके जीवतेही कामदेवसे अन्यका आश्रय ले वह प्रथमा स्वैरिणी होतीहै। जो कुमारपतिको छोडकर अन्य पुरुषके आश्रय होकर फिर पतिके घर चली आवे वह दूसरी होतीहै। जो स्त्री पतिके मरे पीछे देवर आदिको छोडकर कामदेवसे अन्यका आश्रय लेले वह तीसरी कहीहै। जो अपने देशसे आईहुई धनसे मोल लेली हो और जो भूखी प्यासी मैं तेरी हू यह कहकर मिलीहो वह चौथी कही है। जो स्वैरिणियोंमें पिछली और पुनर्भुओंमें पहिली है उन दोनोंके पतियोंके किये ऋणको वह दे जिसके आश्रय वह स्त्री हुई हो। उससे अन्यभी योपिद्ग्राह ऋण दूर करनेका अधिकारी नारदने दिखाया है कि जो अत्यत धनवती स्त्री संतानसहित अन्यका आश्रय लेले वही उसके पतिका ऋण दे वा उसे उसी प्रकार त्याग दे। तैसेही वचन है कि मरेहुए निर्धन पुत्रहीन मनुष्यकी स्त्रीको जो प्राप्त हो (ले) वही विवाहनेवालेके ऋणको ले, क्योंकि वह स्त्रीही उसका धन कहा है। पुत्रका पुनः कहना क्रमके लिये है और अनन्याश्रित द्रव्य (जिसके पिताका द्रव्य अन्यको न मिला हो) यहभी इस लिये है कि वहुत पुत्रोंके होते और रिक्थके होनेपरभी ऋणके दूर करनेमें उसकाही अधिकार है जो अंश ग्रहण करनेके योग्य हो, अध आदिका नहीं और 'पुत्रहीनस्य रिक्थिनः' यहभी इस लिये है कि पुत्रपौत्रहीन मनुष्यके धनको यदि प्रपौत्र आदि ग्रहण करें तो उनसे ऋणको दिवावे, अन्यथा न दिवावे। और पुत्रपौत्रोंसे तो रिक्थ ग्रहणके अभावमेंही दिवावे, यह कह आये। सोई नारदने कहा है कि क्रमसे निरंतर चला आया जो ऋण पुत्रोंने दूर न किया हो पितामहके उस ऋणको पौत्र दे और चतुर्थ (प्रपौत्र) के ऊपरसे वह ऋण निवृत्त हो जाता है अर्थात् चौथा न दे इससे सब निर्दोप यह वचन है। अथवा योपिद्ग्राहके अभावमें पुत्रसे ऋण दिवावे यह कह आये। पुत्रके अभावमें योपिद्ग्राहसे दिवावे यह अब कहते हैं। कि पुत्रहीनका ऋण रिक्थी दें। यहां रिक्थशब्दसे योपित् ही कही है क्योंकि यह स्मृति है कि वह स्त्रीही उसका धन कहा है। और यहभी वचन है कि जो जिसकी स्त्रीको हरै वह उसके मानो धनको हरता है। कदाचित् कोई शका करै कि योपिद्ग्राहके अभावमें पुत्रसे और पुत्रके अभावमें योपिद्ग्राहसे ऋण दिवावे यह परस्पर विरुद्ध है, दोनों न होंय तो किसीसे न दिवावे, यह दोप नहीं है। क्योंकि पिछली स्वैरिणीका और पहिली पुनर्भूका ग्रहण करनेवाला और अत्यंत धनवती स्त्रीका हरनेवाला न होय तो पुत्रसे ऋण दिवावे। पुत्र न होय तो धन और संतानसे हीन

---

१ या तु सप्रधनैव स्त्री सापत्या वान्यमाश्रयेत्। सोऽस्या दद्यादृण भर्तुरुत्सृजेद्वा तथैव ताम्।

२ अधनस्य ह्यपुत्रस्य मृतस्योपैति यः स्त्रियम्। ऋणं वोढुः स भजते सैवास्य च धन स्मृतम्।

१ क्रमादव्याहृत प्राप्तं पुत्रैर्यन्नर्णमुद्धृतम्। दद्युः पैतामह पौत्रास्तच्चतुर्थान्निवर्तते ॥

२ यो यस्य हरते दारान् स तस्य हरते धनम्।

स्त्रीका जो ग्राही उससे ऋण दिवावे । यही नारदने कहा है कि धन स्त्रीके हरनेवाले और पुत्र इनमें वही ऋणका भागी होता है जो धनको ले । स्त्री और धनके हारी न होंय तो पुत्र और धनहारी और पुत्र न होंय तो स्त्रीके हरनेवाला ऋणका भागी होता है । और स्त्रीहारीके अभावमें पुत्र और पुत्रके अभावमें स्त्रीहारी ऋणका भागी होताहै, इस विरोधका परिहार (हटाना) पूर्वके समान जानना । 'पुत्रहीनस्य रिक्थिनः' इसका अन्यभी अर्थ है कि ये धनहारी स्त्रीहारी पुत्र किसके ऋणको दें इस अपेक्षामें यह कह सकते हैं कि उत्तमर्णके ऋणको दें । उत्तमर्णके अभावमें उसके पुत्र आदिके और पुत्र आदिके अभावमें किसके ऋणको दे यह जब अपेक्षा हुई तब यह वचन है कि 'पुत्रहीनस्य रिक्थिनः' पुत्र आदि वंशसे हीन उत्तम वर्णका जो धन ग्रहण करनेके योग्य है उस धनीके सपिंड आदि ऋणको दें । सोई नारदने कहा है कि यदि ब्राह्मणके वंशमें देने योग्य कोई नहीं अर्थात् धनका भागी न हो तो वह धन अपने सकुल्योंको वा अपने बंधुओंको देदे । यदि सकुल्य, संबधी, बांधवभी न होंय तो ब्राह्मणोंको देदे । ब्राह्मणभी न होय तो राजा जलमें फेंक दे ॥

भावार्थ-जो रिक्थका ग्राही और योषित् (स्त्री) का जो ग्राही और जिसके मातापिताका द्रव्य अन्यको न मिला हो वह पुत्र ऋणको दें । और पुत्रहीनके धनको रिक्थी (अंशके भागी) दें ॥ ५१ ॥

भ्रातॄणामथदंपत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि।
प्रातिभाव्यमृणं साक्ष्यमविभक्तेनतुस्मृतम्॥

पद-भ्रातॄणाम् ६ अथऽ-दम्पत्योः ६ पितुः ६ पुत्रस्य ६ चऽ-एवऽ-हिऽ-प्रातिभाव्यम् १ ऋणम् १ साक्ष्यम् १ अविभक्ते ७ नऽ-तुऽ-स्मृतम् १ ॥

योजना-भ्रातॄणां दम्पत्योः च पुनः पितुः पुत्रस्य अविभक्ते द्रव्ये प्रातिभाव्य ऋण साक्ष्यं मन्वादिभिः नतु स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ-भ्राता, भार्या और पति, पिता और पुत्र इनका अविभक्त (इकट्ठे) धनमें प्रातिभाव्य (जामनी) ऋण और साक्ष्य परस्पर मनुआदिकोंने नही कही है, प्रत्युत साधारण होनेसे निषेध किया है । प्रातिभाव्य और साक्षी करनेसे तो पक्षमें द्रव्यके व्ययका अवसान (अंत) है, और ऋण अवश्य देने योग्य होगा, यह बातभी परस्परकी अनुमतिके अभावमें समझनी । परस्परकी अनुमतिसे तो अविभक्तोंकेभी प्रातिभाव्य आदि होतेही हैं । और विभागके पीछे तो परस्परकी अनुमतिके विनाभी प्रातिभाव्य आदि होते हैं । कदाचित् कोई शंका करै कि भार्या और पतिको प्रातिभाव्य आदिका निषेध विभागसे पहिले ठीक नही है क्योंकि उनका विभाग नहीं हो सकता, इससे विशेषण (विभागसे पहिले) अनर्थक है उनके विभागका अभाव आपस्तंबने दिखाया है कि स्त्री और पुरुषका विभाग नहीं है यह सत्य है । वेद और धर्मशास्त्रमें उक्त अग्निसे सिद्ध होनेवाले कर्मोंमें और उन कर्मोंके फलोंमें विभागका अभावहै कुछ संपूर्ण कर्म और द्रव्योंमें नहीं। सोई दिखाते हैंकि जाया और पतिका विभाग

१ धनस्त्रीहारिपुत्राणामृणभाग्योधनं हरेत् । पुत्रोऽसतो स्त्रीधनिनोः स्त्रीहारी धनपुत्रयोः ॥

२ ब्राह्मणस्य तु यद्देयं सान्वयस्य च नास्ति चेत् । निर्वपेत्तत्सकुल्येषु तदभावे स्वबंधुषु ॥ यदा तु न सकुल्याः स्युर्नच सबंधिबांधवाः । तदा दद्याद्द्विजेभ्यस्तु तेष्वसत्स्वप्सु निक्षिपेत् ॥

१ जायापत्योर्न विभागो विद्यते ।

२ जायापत्योर्नविद्यते । पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु तथा पुण्यफलेषु च ।

नहीं है, क्यों नहीं है यह जब अपेक्षा हुई तो यह हेतु कहाहै कि विवाहसे स्त्री पुरुषका सहत्व (एकता) कर्म और पुण्यके फलोंमें होताहै, जिससे विवाहके प्रारंभसे कर्मोंमें सहत्व शास्त्रमें सुना जाता है, जायापति अग्निका आधान करें तिससे आधानमें सह (इकट्ठे) अधिकारसे अधीन की हुई अग्निमें किये कर्मोंमेंभी सह अधिकार है, तैसेही स्मार्तकर्म विवाहके अग्निमें करें इत्यादि स्मृतिसे विवाहमें मिली अग्निमें जो कर्म होते हैं उनमें भी सह अधिकार है इससे दोनों प्रकारकी अग्निके निरपेक्ष जो पूर्त (वापी कूप तड़ाग आदि) हैं उनमें जाया पतिका पृथक् २ ही अधिकार है, यह सिद्ध भया, तैसेही पुण्योंके फल स्वर्ग आदिमें भी जायापतिका सहत्व श्रुतिमें है कि स्वर्गमें अजर ज्योतिका आरंभ दोनों करें, यह जानने योग्य है कि जिन पुण्यकर्मोंमें सह अधिकार है उनके फलमें भी सहत्व है, कुछ भर्ताकी आज्ञासे किये हुए पूर्त वापी कूप आदि कर्मोंके फलोंमेंभी सहत्व है यह नहीं, कदाचित् कोई शंका करे कि द्रव्यके स्वामित्वमेंभी सहत्व कहाहै, द्रव्यके स्वीकारमें सहत्व है, क्योंकि भर्ता परदेशमें हो और नैमित्तिक दान करे तो वह किसी शास्त्रकारनेभी चोरी नहीं कही है, यह सच है परन्तु इस वचनने पत्नीको द्रव्यकी स्वामिता दिखाई, कुछ विभागका अभाव नहीं दिखाया; जिससे 'द्रव्यपरिग्रहेषु च' यह कहकर उसमें कारण कहाहै कि भर्ता परदेशमें हो, किसी निमित्तमें दान अवश्य करना है वा अतिथिभोजन भिक्षा देनेमें स्तेय (चोरी) कहींभी मनु आदिकोंने नहीं कही, तिससे भार्याकोभी द्रव्यका स्वामित्व है अन्यथा चोरी हो जाती, तिससे भर्ताकी इच्छासे भार्याके द्रव्यकाभी विभाग होता है अपनी इच्छासे नहीं सोई कहेंगे कि यदि समान अंश करे तो पत्नियोंकोभी समान भाग करे ॥

भावार्थ–भाई, स्त्री और पति, पिता और पुत्र इनका परस्पर अविभक्त द्रव्यमें प्रातिभाव्य, ऋण, साक्षी होना ये तीन नहीं कहे हैं ॥ ५२॥

दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्यं विधीयते ॥
आद्यौतुवितथेदाप्याावितरस्यसुता अपि ५३

पद–दर्शने ७ प्रत्यये ७ दाने ७ प्रातिभाव्यम् १ विधीयते क्रि–आद्यौ १ तुऽ–वितथे ७ दाप्यौ १ इतरस्य ६ सुताः १ अपिऽ–॥

योजना–दर्शने प्रत्यये दाने प्रातिभाव्य विधीयते । वितथे आद्यौ दाप्यौ । इतरस्य सुता अपि दाप्याः ॥

तात्पर्यार्थ–प्रातिभाव्य उसको कहते हैं जो विश्वासके लिये दूसरे पुरुषके संग समय (इकरार) करना वह विषयके भेदसे तीन प्रकारका होता है, जैसे कि दर्शनमें इसको मैं समयपर दिखा दूंगा, दूसरा प्रत्यय (विश्वास) में जैसे मेरे विश्वाससे इसको धन देदो यह तुम्हारे संग ठगाई न करेगा, क्योंकि यह उन (प्रतिष्ठित) का पुत्र है, इसकी भूमि सुंदर है इसके पास उत्तम ग्राम है, तीसरा दानमें जैसे यदि यह न देगा तो मैं दूंगा, इन पूर्वोक्त दर्शन आदिमें प्रातिभाव्य (जामिनी) कहा है, इन तीनोंमें वितथ (अन्यथा होना) होनेपर अर्थात् न दिखासके और विश्वास न करे तो राजा दर्शन और विश्वासके जो प्रतिभू हैं उनसे उत्तमर्णका जो धन हो वह दिवावे और दानका जो प्रति-

१ जायापती अग्निमादधीयाताम् ।
२ कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ ।
३ दिवि ज्योतिरजरमारभेताम् ।
४ द्रव्यपरिग्रहेषु च नहि भर्तृविप्रवासे नैमित्तिके दाने स्तेयमुपदिशन्ति ।

-भू है उसके तो पुत्रोंसेभी दिवावे। यदि अधमर्ण अन्यथा करै शठता वा निर्धन होनेसे न दे सके तो प्रतिभूके सही पुत्रभी दें, 'इतरस्य सुताः' यह कहनेसे पहिले दोनों प्रतिभुओंके पुत्रोंसे न दिवावे, और सुताः यह कहनेसे पौत्रोंसे न दिवावै यह दिखाया है ॥

भावार्थ—दर्शन, विश्वास और देना इनमें प्रतिभू (जामिन) करना कहाहै, वितथ (झूठ) होनेपर पहिले दोनोंसेही धनको राजा दिवावे, और इतरके तो पुत्रोंसेभी दिवावे ॥ ५३ ॥

दर्शनप्रातिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोपि वा।
न तत्पुत्रा ऋणं दद्युर्दद्युर्दानाय यःस्थितः॥

पद—दर्शनप्रातिभूः १ यत्रऽ—मृतः १ प्रात्ययिकः १ अपिऽ—वाऽ—नऽ—तत्पुत्राः १ ऋणम् २ दद्युः क्रि—दद्युः क्रि—दानाय ४ यः १ स्थितः ॥ १ ॥

योजना—यत्र दर्शनप्रतिभूः वा प्रात्ययिकः अपि मृतः तत्पुत्राः ऋण न दद्युः। यः दानाय स्थितः तस्य पुत्राः ऋणं दद्युः ॥

तात्पर्यार्थ—जब दर्शन और विश्वासके प्रतिभू स्वर्गमें चले गये हों उनके पुत्र प्रातिभाव्यसे चले आये धनको न दें, और जो दानका प्रतिभू था वह यदि स्वर्गमें चला जाय तो उसके पुत्रभी उक्त धनको दें, पौत्र न दें, और पुत्रभी मूलही दें वृद्धिको न दें, क्योंकि व्यासका यह वचन है कि पितामहके ऋणको पौत्र दें और प्रातिभाव्य (जामिनी) से चले आये धनको पुत्र सम (मूलमात्र) दे और उनके पुत्र न दें[1] अर्थात् प्रातिभाव्यको छोडकर पितामहने जितना ऋण लियाहो उतनाही दे वृद्धि न दे, तैसेही पुत्रभी प्रातिभाव्यसे चले आये पिताके ऋणको समही दे, उन पूर्वोक्त पुत्र और पौत्रके जो पुत्र (पौत्र-प्रपौत्र) हैं वे दोनों प्रातिभाव्यके और अप्रातिभाव्यके ऋणको न दें। यदि उन्होंने धन न पाया हो और जो यह स्मृति है कि खादक[1] (अधमर्ण) धनसे हीन हो और लग्नक (प्रतिभू) यदि धनवान् होय तो वह मूलही दे, वृद्धि न दे, इसकाभी यह अर्थ करना कि लग्नक यदि वित्तवान् (धनी) मरगया होय तो उसका पुत्र मूलही दे वृद्धि न दे और जहां दर्शनका प्रतिभू वा प्रत्ययका प्रतिभू पूरा[2] बधक (प्रातिभाव्यका द्रव्य) अपने पास रखकर प्रतिभू हुए हों वहां तो उनके पुत्रभी उसी बंधकमेंसे प्रातिभाव्यके ऋणको अवश्य दें। सोई कात्यायनने कहाहै कि जहां बंधकको लेकर अधमर्णके दर्शनमें स्थित हो अर्थात् रुपया लेकर हाजिर जामिनी करै, पिताके मरने वा दूर देशमें जानेपर पुत्रसेभी उसी बंधकके धनमेंसे ऋणको राजा दिवावै, दर्शन विश्वासका उपलक्षण है ॥

भावार्थ—दर्शन और प्रत्यय (विश्वास) का प्रतिभू जहां मरगयाहो उनके पुत्र ऋण न दें। जो दानका प्रतिभू था उसके तो पुत्रभी ऋणको दें ५४

बहवःस्युर्यदिस्वांशैर्दद्युःप्रतिभुवोधनम्।
एकच्छायाश्रितेष्वेषुधनिकस्ययथारुचि ॥

पद—बहवः १ स्युः क्रि—यदिऽ—स्वांशैः ३ दद्युः क्रि—प्रतिभुवः १ धनम् २ एकच्छायाश्रितेषु ७ एषु ७ धनिकस्य ६ यथारुचिऽ—॥

योजना—यदि बहवः प्रतिभुवः स्युः तर्हि स्वांशैः धनं दद्युः एषु एकच्छायाश्रितेषु सत्सु धनिकस्य यथारुचि तथा दद्युः ॥

---

१ ऋणं पैतामहं पौत्राः प्रातिभाव्यागतं सुताः। सम-दद्यात्तत्सुतौ तु न दाप्याविति निश्चयः ॥

१ खादको वित्तहीनः स्यात् लग्नको वित्तवान्यदि। मूलं तस्य भवेद्देयं न वृद्धिं दातुमर्हति ॥

२ गृहीत्वा बधकं यत्र दर्शनेस्य स्थितो भवेत्। विना पित्रा धनात्तस्माद्दाप्यः स्यात्तद्दणं सुतः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि एक प्रयोगमें दो वा बहुत प्रतिभू हों तो वे सब ऋणको बांटकर अपने २ भागके अनुसार धनको दें। यदि वे सब एकच्छायामें आश्रित हों अर्थात् अधमर्णके समान पृथक् २ पूर्णधनके प्रतिभू हों जैसे अधमर्ण संपूर्ण धनको देता वैसेही वेभी संपूर्ण धनके दिवानेके लिये पृथक् २ प्रतिज्ञा करें। इस प्रकार दर्शन और प्रत्ययमें एकच्छायाश्रित होने पर धनिक (उत्तमर्ण) की रुचिके अनुसार दें। इससे जो धानिक प्रतिभुओंके धनकी अपेक्षासे अपने द्रव्यको चाहे तो उससेही सब धनको राजा दिवादे, भागके अनुसार नहीं। उन एकच्छायाश्रितोंमेंसे यदि कोई देशांतरमें चला गयाहो और उसका पुत्र समीपमें हो तोभी उत्तमर्णकी इच्छाके अनुसार सब धन दे। यदि कोई मरगया होय तो उसका पुत्र वृद्धिसहित अपने पिताका भाग दे। सोई कात्यायाने कहा है कि एकच्छायामें जो प्रविष्ट हैं उनमें वही धन दे जो देने योग्य दीखे। जो परदेशमें चला गया हो उसका पुत्र सपूर्ण धनको और जो मरगयाहो उसका पुत्र सम (मूलमात्र) धनको दे॥

भावार्थ-बहुत प्रतिभू होंय तो अपने २ भागके अनुसार उत्तमर्णको धन दें। यदि वे पृथक् २ संपूर्ण धन देनेके प्रतिभू होजांय तो उत्तमर्णकी इच्छाके अनुसार धनको दें॥५५॥

प्रतिभूर्दापितो यत्तु प्रकाशं धनिनो धनम्। द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत्॥

पद-प्रतिभूः १ दापितः १ यत् २ तु ऽ-प्रकाशम् २ धानिनः ६ धनम् २ द्विगुणम् १ प्रतिदातव्यम् १ ऋणिकैः ३ तस्य ६ तत् १ भवेत् क्रि-॥

योजना-धानिनः यत् धनम् प्रतिभूः प्रकाशं दापितः। ऋणिकैः (अधमर्णैः) तस्य तत् धनम् द्विगुणम् प्रतिदातव्यम्॥

तात्पर्यार्थ-प्रतिभूको ऋण देनेकी विधिको कहकर अब प्रतिभूने जो दियाहो उसकी प्रतिक्रिया (लौटाना) कहते हैं। जिस द्रव्यको प्रतिभू वा उसका पुत्र उत्तमर्णकी पीडा(तकाजा) से प्रकाश (सबके प्रत्यक्ष) उत्तमर्णको राजाकी आज्ञासे और फिर दूनेके लोभसे दें ऋणिक (अधमर्ण) उस प्रतिभूको उस धनसे दूना धन दे। सोई नारदने कहाहै कि धनिकसे पीडित प्रतिभू जो धन दे, ऋणिक उस धनको दूना प्रतिभूको दे, वहभी कालविशेषकी अपेक्षाको छोडकर शीघ्रही दूना देना। क्योंकि यह वचन इसी लिये है और यहभी सुवर्णके विषयमें समझना। कदाचित् कोई शंका करै कि यह वचन दूनेको बोधन करता है। इससे पूर्वोक्त कालकी कला (सूद) के अबाधसेभी लग सकता है। जैसे जातेष्टिकी विधि शुचित्वके अबाधसे होती है, और जब यह पक्ष है कि उसी समय वृद्धिसहित दे तो पशु स्त्री इनकी संतान सद्यः नहीं हो सकती इससे मूल्यका दानही पाता है, सो शंका ठीक नहीं। क्योंकि वस्त्र दान सुवर्ण इनकी क्रमसे चौगुनी, तिगुनी, दूनी अधिकसे अधिक वृद्धि होती है इस पूर्वोक्त वचनसेही कालकी कलाके क्रमसे दूने आदिकी सिद्धि होनेसे दूने मात्रकाही यह वचनभी विधान करेगा तो अनर्थक हो जायगा, और पशु स्त्रियोंका तो कालक्रमके पक्षमेंभी संततिका अभाव होय तो स्वरूप (वस्तु) काही दान होता है। जब प्रतिभूनी द्रव्य देनेके अनंतर कुछ कालके पीछे अध-

१ एकच्छायां प्रविष्टानां दाप्यो यस्तत्र दृश्यते। प्रोषिते तत्सुतः सर्वं पित्र्यंश तु मृते समम्॥

१ य चार्थं प्रतिभूर्दद्याद्धनिकेनोपपीडितः। ऋणिकस्तं प्रतिभुवे द्विगुणं प्रतिदापयेत्।

२ वस्त्रदानहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा परा।

मर्णसे मिल गया तब संततिभी हो सकती है और दी जातीहै। अथवा पहिली हुई संतानसहित पशु स्त्रियोंको दे देगा यह पूर्वोक्त कथन ठीक नहीं और जो प्रातिभाव्यका ऋण प्रतिभूने प्रीतिसे दियाहो उसकी मांगनेसे पहिले वृद्धि नहीं है सोई[१] कहीहै कि जो धन प्रीतिसे दियाहै वह मांगनेके विना नहीं बढता। यदि मांगनेपर न दिया होय तो सौ रुपयेपर पांच रुपये बढते हैं, इससे नहीं मांगेभी इस प्रीतिसे दिये धनकी देनेके दिनसे लेकर कालके क्रमसे तबतक बढतीहै जबतक दूना धन हो, यह बात इस वचनसे कही, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि यह अर्थ इस वचनसे प्रतीत नहीं होता किंतु दूना दे इतनाही प्रतीत होताहै, तिससे कालके क्रमकी अपेक्षाको छोडकर इस वचनके आरंभसामर्थ्यसे दूना देना यह बहुत ठीक कहा ॥

भावार्थ–राजाने सब जनोंके प्रत्यक्षमें जो धनीको प्रतिभूसे धन दिवायाहो उससे दूना धन प्रतिभूको ऋणिक (अधमर्ण) दे ॥ ५६ ॥

संततिः स्त्रीपशुष्वेव धान्यं त्रिगुणमेवच ।
वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा५७॥

पद–संततिः १ स्त्रीपशुषु ७ एवऽ–धान्यम् १ त्रिगुणम् १ एवऽ–चऽ–वस्त्रम् १ चतुर्गुणम् १ प्रोक्तम् १ रसः १ चऽ–अष्टगुणः १ तथाऽ–॥

योजना–स्त्रीपशुषु संततिः,च पुनः धान्यं त्रिगुणं,वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं, तथा रसः अष्टगुणः प्रोक्तः ॥

तात्पर्यार्थ–प्रतिभूने जो दिया वह सर्वत्र दूना पाया अब उसका अपवाद कहते हैं दूने सुवर्णके समान स्त्री पशु आदिकोंको भी पूर्वोक्त वृद्धिके अनुसार ही राजा दिवावै यह श्लोक तो व्याख्यातही है अर्थात् सीधा है। स्त्री पशुओंकी संतानको, तिगुने अन्नको, चौगुने वस्त्रको, आठगुने रसको राजा अधमर्णसे प्रतिभूको दिवावै। जिस द्रव्यकी जितनी वृद्धि अधिकसे अधिक कहीहै प्रतिभूके दिये हुए उतने द्रव्यको खादक (अधमर्ण) उस वृद्धिसहित कालविशेषकी अपेक्षाको छोडकर शीघ्रही देदे यह तात्पर्यार्थ है। जब दर्शनका प्रतिभू प्राप्त हुए समयपर अधमर्णको न दिखा सकै तब उसको अधमर्णके ढूंढनेके लिये तीन पक्षकी अवधि दे, तीन पक्षमें यदि उसे दिखादे तो प्रतिभू छोडने योग्य है न दिखासकै तो उससे प्रस्तुत (दावेका) धन उत्तमर्णको राजा दिवावै। क्योंकि कात्यायनका यह वचन[१] है कि नष्टके ढूंढनेके लिये अधिकसे अधिक तीन पक्ष दें, उनमें यदि वह दिखादे तो प्रतिभू छोडने योग्य है। यदि प्रतिभू उसे न दिखा सकै और अवधिका काल बीतजाय तो उस निबंधको दे। यही विधि अधमर्णके मरनेपर है। लग्नक (प्रतिभू) विशेषका निषेधभी कात्यायनने[२] ही कहाहै,कि स्वामी,शत्रु, स्वामीका अधिकारी,निरुद्ध (कैदी),दंडित, संदिग्ध, रिक्थी, मित्र, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, राजकार्यमें नियुक्त, संन्यासी,, जो धनिका धन न दे

१ प्रीतिदत्तं तु यत् किंचिद्वर्धते न त्वयाचितम्। याच्यमानमदत्तं चेद्वर्धते पंचकं शतम् ॥

१ नष्टस्यान्वेषणार्थं तु दाप्यं पक्षत्रयं परम्। यद्यसौ दर्शयेत्तत्र मोक्तव्यः प्रतिभूर्भवेत्॥ काले व्यतीते प्रतिभूर्यदि तं नैव दर्शयेत्। निबंधं दापयेत्तत्र प्रेते चैष विधिः स्मृतः।

२ न स्वामी नच वै शत्रुः स्वामिनाधिकृतस्तथा। निरुद्धो दंडितश्चैव संदिग्धश्चैव न क्वचित् ॥ नैव रिक्थी न मित्रं च नचैवात्यंतवासिनः। राजकार्यनियुक्तश्च ये च प्रव्रजिता नराः॥ न शक्तो धनिने दातुं धनं राज्ञे च तत्समम्। जीवन्नापि पिता यस्य तथैवेच्छाप्रवर्तकः ॥ नाविज्ञातो ग्रहीतव्यः प्रतिभूः स्वक्रियां प्रति॥

सकै, जो इसके समान राजाको दंड न दे सके, जिसका पिता जीता हो, इच्छासे जो वर्ताव करे, अज्ञात, इतने प्रतिभू अपनी क्रियामें नहीं लेने । इति प्रतिभूविधिः । धनके प्रयोगमें विश्वासके हेतु दो हैं, एक प्रतिभू और दूसरा आधि यह नारदने कहा है[1] उनमें प्रतिभूका निरूपण किया अब आधिका निरूपण करते हैं, आधि (गिरवी वा रहन) वह है जो ग्रहण किये धनके ऊपर विश्वासके लिये अधमर्ण उत्तमर्णके यहां रख दे, वह आधि दो प्रकारका है एक कृतकाल और दूसरा अकृतकाल अर्थात् अवधिसहित और निरवधिक, फिर प्रत्येक दोनों दो दो प्रकारकी हैं गोप्य और भोग्य; सोई नारदने कहाहै कि,[2] अधिकृत जो की जाय (रक्खी जाय) उसे आधि कहते हैं उसके दो लक्षण जानने, कृतकाल छुटाने योग्य, और यावद्देयोद्यत (जो ऋणके देनेतक रहे), वह फिर दो प्रकारका है गोप्य और भोग्य, कृतकाल वह है जिसमें यह समय आधान (रखना) के समयही हो जाय कि दीपमालिका आदि अमुक कालमें इस आधिको मैं छुटालूंगा अन्यथा आपकी ही होजायगी, इस प्रकार कहे कालमें अपने अपने पास लौटाने (छुटाने) योग्य है, दूसरी इतने लिया हुआ धन न पहुंचे तबतक रहती है, इससे यावद्देयोद्यत कहाती है । वह गोप्य रक्षा करने योग्य होती है ॥

भावार्थ—स्त्री और पशुओंकी सन्तान, तिगुना अन्न, चौगुना वस्त्र और आठगुना रस प्रतिभूको देना कहा है ॥ ५७ ॥

आधिःप्रणश्येद्द्विगुणेधने यदिनमोक्ष्यते ।
काले कालकृतोनश्येत्फलभोग्योननश्यति॥

पद—आधिः १ प्रणश्येत् क्रि—द्विगुणे ७ धने ७ यदिऽ—नऽ—मोक्ष्यते क्रि—काले ७ कालकृतः १ नश्येत् क्रि—फलभोग्यः १ नऽ—नश्यति क्रि— ॥

योजना—यदि न मोक्ष्यते तर्हि प्रयुक्ते धने द्विगुणे सति आधिः प्रणश्येत् कालकृतः काले नश्येत्, फलभोग्यः न नश्यति ॥

तात्पर्यार्थ—प्रयुक्त (दिया हुआ) धन जब अपनी कीहुई वृद्धिसे दूना कालके क्रम सूदसे होजाय और अधमर्ण द्रव्यको देकर आधिको न छुटावे तो आधि नष्ट होजाती है, अधमर्णका धन देनेवाले (उत्तमर्ण) का स्व (धन) होता है, और जो कृतकाल है वह निश्चित किया काल दूनेसे पहिले वा पीछे पूरा होजाय तो नष्ट होजाती है, और जिस क्षेत्र आराम आदिके फलको उत्तमर्ण भोगे वह कदाचित्भी नष्ट नहीं होती, कृतकाल आधि गोप्य हो चाहै भोग्य हो उसका कालके बीतनेपर नाश कहा है कि कालकृत आधि कालपर नष्ट हो जाती है और जो अकृतकाल है और भोग्यभी है उसके नाशका अभाव, फल भोग्य आधि नष्ट नहीं होती, इस कहनेसे कहा, अब परिशेषसे आधि प्रणश्येत्, यह वचन अकृतकाल और गोप्य आधिके विषयमें रहा, दूना धन होनेपर और निश्चित कालके बीतनेपरभी आधिके नाशमें इस बृहस्पतिके[1] वचनसे चतुर्दश (१४) दिनकी प्रतीक्षा उत्तमर्ण करे कि सुवर्ण आदि धन दूना होजाय और की हुई अवधि पूरी होजाय तो धनका स्वामी बंधक (अधमर्ण)

---

१ विस्रम्भहेतू द्वावत्र प्रतिभूराधिरेव च ।

२ अधिक्रियत इत्याधिः स विज्ञेयो द्विलक्षणः । कृतकालोऽपनेयश्च यावद्देयोद्यतस्तथा ॥ स पुनर्द्विविधः प्रोक्तो गोप्यो भोग्यस्तथैव च ॥

---

१ हिरण्ये द्विगुणीभूते प्राप्ते काले कृतावधेः । बंधकस्य धनी स्वामी द्विसमाहं प्रतीक्ष्य च ॥ तदंतरा धन दत्त्वा ऋणी बंधमवाप्नुयात् ॥

दो सप्ताह प्रतीक्षा करै, यदि उन दो सप्ताहके मध्यमें बंधक धनको दे दे तो अपने बंध (आधि) को प्राप्त होता है, कदाचित् कोई शंका करै कि यह नहीं हो सकता कि आधि नष्ट हो जाती है क्योंकि अधमर्णके स्वत्व निवृत्तिके हेतु दान विक्रय आदिका, और धनीके स्वत्व होनेके हेतु प्रतिग्रह क्रय आदिका अभाव है, और इस मनु (अ० ८ श्लो० १४३) वचनकाभी विरोध है कि कालके संरोध (चिरकालतक रहना) से आधिका निसर्ग (अन्यत्र आधि करना) और विक्रय नहीं है, इस प्रकार आधि करने और विक्रय करनेके निषेधसे प्रतीत होता है कि धनीका स्वत्व आधिमें नहीं है इस आशंकाका समाधान कहते हैं कि आधिका करनाही लोकमें उपाधि (रखदेना) सहित स्वत्व निवृत्तिका हेतु और उपाधिसहित स्वीकारही स्वत्वकी उत्पत्तिका हेतु प्रसिद्ध है उसमें जब दूना धन होजाय वा नियत काल बीतजाय तो इस वचनसे द्रव्यके प्रतिदानकी निवृत्ति होनेसे अधमर्णके स्वत्वकी अत्यंत निवृत्ति और उत्तमर्णका अत्यंत स्वत्व होता है। कदाचित् कहो पूर्वोक्त मनुवचनका विरोध है सोभी नहीं, क्योंकि (अ० ८ श्लो० १४३) मनुका वचन है कि उपकार करनेवाली आधिमें कौसीदी (सूद) वृद्धिको प्राप्त नहीं होता, यह भोग्य आधिके प्रकरणमें कहाहै कि कालके संरोधसे आधिका निसर्ग और विक्रय नहीं है, भोगने योग्य आधि चाहै चिरकालतक रहै तोभी उसके आधि और विक्रय करनेके निषेधसे धनीका स्वत्व नहीं होता, यहांभी कहाहै कि फलभोग्य नष्ट नहीं होती, गोप्य आधिमें तो मनुने पृथक् वचन (अ० ८ श्लो० १४४) रचा है कि बलसे आधिको न भोगै, भोगै तो वृद्धिको छोडदे, यहांभी कहेंगे कि गोप्य आधिके भोगमें वृद्धि नहीं होती, और दूना धन होनेपर आधि नष्ट हो जाती है यह गोप्य आधिके विषयमें है, इससे सब अविरुद्ध है ॥

भावार्थ-यदि न छुटाई जाय तो दूना धन होनेपर आधि नष्ट हो जाती है और कालकृत (अवधिसहित) आधि अपने कालमें नष्ट होती है और फल भोग्य आधि नष्ट नहीं होती॥५८॥

गोप्याधिभोगेनोवृद्धिः सोपकारेऽथहापिते ।
नष्टोदेयोविनष्टश्चदैवराजकृताहृते ॥ ५९ ॥

पद-गोप्याधिभोगे ७ नोऽ-वृद्धिः १ सोपकारे ७ अथऽ-हापिते ७ नष्टः १ देयः १ विनष्टः १ चऽ-दैवराजकृतात् ५ ऋतेऽ- ॥

योजना-गोप्याधिभोगे, सोपकारे अथ हापिते आधि वृद्धिः नो भवति, नष्टः आधिः च पुनः दैवराजकृतात् ऋते विनष्टः आधिः देयः ॥

तात्पर्यार्थ-तांबेके कटाह आदि आधिकी उपभोग करने (वर्तना) से वृद्धि नहीं होती। अल्पभी उपभोगमें आधिकीभी वृद्धि छोडने योग्य है क्योंकि प्रतिज्ञाका अवलघन होगया, तैसेही उपकार करनेवाली बैल तांबेके कटाह आदि भोग्य आधिमें, और भोग्य आधि वृद्धि सहित हानिको प्राप्त होगये हों अर्थात् व्यवहारके अयोग्य अधमर्णने करदिये होंय तो उसमेंभी वृद्धि नहीं होती, और छिद्र आदि होनेसे नष्ट (विकार) हुए तांबेके कटाह आदि पूर्वके समान करके अधमर्णको देने, उनमें भी

१ न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोस्ति न विक्रयः ।
२ नत्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।

१ न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुंजानो वृद्धिमुत्सृजेत् । गोप्याधिभोगे नो वृद्धिः ।

गोप्य आधि नष्ट होगई होय तो पूर्वके समान देनी और भोगी होय तो वृद्धि (सूद) भी छोड देनी । यदि भोग्य आधि नष्ट होगयी होय तो पूर्वके समान करके देनी उसमें वृद्धि होय तो वह छोड देनी । और जो आधि विनष्ट अत्यंत नाशको प्राप्त होगई हो वहभी मूल्य आदिके द्वारा देनी उसके देनेपर उत्तमर्णको वृद्धिसहित मूल मिलता है। यदि न दे तो मूलका नाश होताहै क्योंकि यह नारदका वचन है कि दैव और राजाके कियेको छोडकर आधिके विनाशमें मूलका नाश होताहै। अग्नि जल देशमें उपद्रव आदि दैवके किये और अपने अपराधको छोडकर राजाके किये विनाशको छोडकर विनष्ट आधिमें मूलका नाश होताहै और दैव राजाके किये विनाशमें तो अधमर्ण वृद्धिसहित मूल्य दे वा अन्य आधि रखदे । सोई कहा है कि क्षेत्रको स्रोत नष्ट कर दे वा राजा हरले तो अन्य आधि करदेनी अथवा धनीको धन दे देना इसमें स्रोतसे सब दैवी उपद्रव लेने ॥

भावार्थ–गोप्य आधिके भोगने और उपकार करनेवाली और हानिको प्राप्त हुई आधिमें वृद्धि नहीं होती और नष्ट (विगडी) हुई आधि देने योग्य है । और दैव और राजाके किये विनाशको छोडकर विनष्ट हुई आधिभी देने योग्य है ॥ ५९ ॥

आधेः स्वीकरणात्सिद्धी रक्ष्यमाणोप्यसारताम् । यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग्वा धनीभवेत् ॥ ६० ॥

पद–आधेः ६ स्वीकरणात् ५ सिद्धिः १ रक्ष्यमाणः १ अपिऽ–असारताम् २ यातः १ चेत्ऽ–अन्यः १ आधेयः १ धनभाक् १ वाऽ–धनी १ भवेत् क्रि–॥

योजना–स्वीकरणात् आधेः सिद्धिः भवति रक्ष्यमाणः अपि असारतां यातः चेत् अन्यः आधेयः, वा धनी धनभाक् भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ–भोग्य और गोप्यरूप आधिकी सिद्धि स्वीकार (उपभोग) से होती है कुछ साक्षी और लेख्यमात्रसे नहीं और नाममात्रसेभी आधि नहीं होती । सोई नारदने कहा है कि आधि दो प्रकारकी है जंगम और स्थावर इस दोनों प्रकारकी आधिकी सिद्धि भोगसे है अन्यथा नहीं,इसका फल यह है कि आधि प्रतिग्रह क्रीतमें पहिली क्रियाको जो अत्यंत वलवती कह आये हैं वहां स्वीकारसे हीन पहिलीभी वलवती नहीं होती । वह आधि प्रयत्नसे रक्षा करनेसेभी असारताको प्राप्त होजाय अर्थात् वृद्धिसहित मूल द्रव्य देने योग्य न रहे तो अन्य आधि कर देनी अथवा धनीको धन देदेना । रक्षा करनेसेभी असारताको प्राप्त होजाय यह कहनेसे यह जनाया कि धनी आधिकी प्रयत्नसे रक्षा करे ॥

भावार्थ–स्वीकार करनेसे आधिकी सिद्धि होती है । यदि रक्षा की हुईभी आधि असारता को प्राप्त होजाय तो अन्य आधि रखनी वा धनीको धन देने ॥ ६० ॥

चरित्रबंधककृतं सवृद्ध्या दापयेद्धनम् । सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ६१

पद–चरित्रबंधककृतम् २ सवृद्ध्या ३ दापयेत् क्रि–धनम् २ सत्यंकारकृतम् २ द्रव्यम् २ द्विगुणम् २ प्रतिदापयेत् क्रि–॥

---

१ विनष्टे मूलनाशः स्याद्दैवराजकृताहते ।
२ स्रोतसामपहारे क्षेत्रे राज्ञा चैवापहारिते । आधिरन्योऽथ कर्तव्यो देय वा धनिने धनम् ॥

१ आधिस्तु द्विविधः प्रोक्तो जंगमः स्थावरस्तथा । सिद्धिरस्योभयस्यापि भोगो यद्यस्ति नान्यथा ॥

योजना-चरित्रबंधककृतं धनम् राजा सवृद्ध्या दापयेत् । सत्यंकारकृतं द्रव्यं द्विगुणम् प्रतिदापयेत् ।

तात्पर्यार्थ-जो द्रव्य चरित्र (शोभनाचरण) से जो बंधक उससे अपने वा पराये अधीन करदिया है यह उक्तही समझना । जहां धनीका अंतःकरण स्वच्छ है वहां बहुमूल्यभी द्रव्यको अधीन करके अधमर्णके अल्पही द्रव्य लिया हो वा अधमर्णका अतःकरण स्वच्छ होनेसे जहां अल्प मोलकी आधि ग्रहण करके बहुतसा द्रव्य धनीने अधमर्णके अधीन करादिया हो उस धनको राजा वृद्धिसहित दिवा दे यह आशय है कि एक रुपयाभी बंधक द्विगुण द्रव्य होने परभी नष्ट नहीं होता किंतु द्रव्यही देना चाहिये । तैसेही सत्यंकारकृत (सत्यके करनेसे किया) अर्थात् बंधक देनेके समयमें ही यह कह दियाहो कि दूना द्रव्य होने परभी मैं दूना द्रव्यही दूंगा आधिका नाश न होगा तब वह धन राजा दूना दिवावे । अन्यभी इस श्लोकका अर्थ है कि चरित्रही बंधक चरित्र शब्दसे गंगास्नान अग्निहोत्र आदिसे पैदा हुआ अपूर्व (पुण्यका संस्कार) लेते हैं । जहां उस धर्मरूप अपूर्वको आधि करके जो द्रव्य अपने अधीन कियाहो वहां वही द्विगुण द्रव्य देना आधिका नाश नहीं होता आधिके प्रसगसे अन्यभी कुछ कहते हैं । सत्यकारकृतम् क्रय विक्रय (लेना देना) आदिकी व्यवस्थाके निर्वाहार्थ जो अंगूठी आदि पराये हाथमें देदी हो यदि उस व्यवस्थाका अवलंबन करै तो द्विगुण देना चाहिये । उसमेंभी यदि अंगूठी अर्पण करनेवाला व्यवस्थाका अवलघनं करै तो वह उस अंगूठीको ही देदे यदि इतर व्यवस्थाको लंघै तो उसही अंगूठीको दूनी करके दे ॥

भावार्थ-चरित्रसे बंधक किया द्रव्य वृद्धिसहित धनीको राजा दिवावे और सत्यंकार किये द्रव्यका दूना प्रतिदान राजा दिवावै ॥ ६१ ॥

उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथाभवेत् । प्रयोजके साति धनं कुलेन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

पद-उपस्थितस्य ६ मोक्तव्यः १ आधिः १ स्तेनः १ अन्यथाऽ-भवेत् क्रि-प्रयोजके ७ असाति ७ धनम् १ कुले ७ अन्यस्य ६ आधिम् २ आप्नुयात् क्रि-॥

योजना-उपस्थितस्य आधिः मोक्तव्यः अन्यथा स्तेनः भवेत्। प्रयोजके असाति अन्यस्य कुले धनं आधिम् आप्नुयात् ॥

ता० भा०-धनको लेकर जो धनी आधिके छुटानेको उपस्थित (आया) हो उसको आधिको छोडदे, वृद्धिके लोभसे अपने पास न रक्खे । अन्यथा (न छोडै तो) स्तेन (चोर) के समान दंडके योग्य होता है । यदि प्रयोक्ता (देनेवाला) समीपमें न होय तो वह धन अन्यके कुलमें किसी आप्त (सज्जन) के हाथमें वृद्धिसहित रखकर अपने बंधकको ग्रहण करले ॥ ६२ ॥

तत्कालकृतमूल्योवातत्रतिष्ठेदवृद्धिकः । विनाधारणिकाद्वापिविक्रीणीतससाक्षिकम्

पद-तत्कालकृतमूल्यः १ वाऽ-तत्रऽतिष्ठेत् क्रि-अवृद्धिकः १ विनाऽ-धारणिकात् ५ वा-अपिऽ-विक्रीणीत क्रि-ससाक्षिकम् २ ॥

योजना-वा तत्कालकृतमूल्यः आधिः अवृद्धिकः तत्र तिष्ठेत् । वा धारणिकात् विना ससाक्षिकं विक्रीणीत ॥

तात्पर्यार्थ-यदि प्रयोक्ताभी समीपमें न हो और उसके आप्तभी धनको न ले अथवा

प्रयोक्ता समीप न हो और अधमर्ण आधिको बेंचकर धन देना चाहै, उस समय आधिका मूल्य करके उसी धनीके पास उस आधिको वृद्धिसे रहित छोडदे उससे आगे वह फिर नहीं बढ्ती। इतने धनी धनको लेकर उस आधिको छोडै वा इतने उसका मूल्य द्रव्य अधमर्णको न दे। जब ऋण देनेके समयमें ही यह निश्चय कर लियांहो कि दूना होनेपरभी धनको ही लेना आधिका नाश न होने पावै वहां दूना होनेपर अधमर्ण समीपमें न आवै तो उस अधमर्णके विनाभी साक्षी और आप्त (सज्जन) मनुष्योंसमेत उस आधिको बेंचकर धनी धनका ग्रहण करले। यहां वा शब्द विकल्पके लिये है। जब ऋणके ग्रहण समयमें द्विगुण धन होनेपरभी धनही लेना आधिका नाश न होगा यह न विचारा हो तब आधि दूना धन होनेपर नष्ट होजाती है इस पूर्वोक्त वचनसे आधिका नाश होता है। विचारा हो तो यह पक्ष है कि साक्षियोंके प्रत्यक्ष विक्रय करदे॥

भावार्थ-उस कालमें आधिका मोल करके वृद्धिके विनाही आधिको उत्तमर्णके समीप रहने दे। वा अधमर्णके विनाभी साक्षियोंसहित आधिको बेंचकर धनी अपने धनको ग्रहण करले॥ ६३॥

यदातुद्विगुणीभूतमृणमाधौतदाखलु।
मोच्यआधिस्तदुत्पन्नेप्रविष्टेद्विगुणेधने ६४॥

पद-यदाऽ-तुऽ-द्विगुणीभूतम् १ ऋणम् १ आधौ ७ तदाऽ-खलुऽ-मोच्यः १ आधिः १ तदुत्पन्ने ७ प्रविष्टे ७ द्विगुणे ७ धने ७॥

योजना-यदा तु आधौ ऋणं द्विगुणीभूतं भवेत् तदा खलु तदुत्पन्ने द्विगुणे धने प्रविष्टे ति आधिः मोच्यः॥

तात्पर्यार्थ-जब प्रयुक्त धन अपनी की हुई वृद्धिसे दूना होजाय और आधिसे पैदा हुआ द्रव्य दूना धनीको मिलचुका हो तब धनी आधिको छोडदे। और जब आदिमें इस विचारसे कि दूना धन होनेपर तुम आधिको छोड देना, कालांतरसे वा भोगके अभावसे आधिमें दूना ऋण होगया हो तब आधिसे पैदा हुआ धन भोगके लिये धनीके पास पहुंचगया हो तो आधि छोडने योग्य है, अधिक धन भोगा होय तो वहभी दे। यह वचन उस आधिके विषयमें है जो वृद्धिसहित मूलके दूर करनेके लिये भोगी जाती है। इस आधिको जगत्‌में क्षयाधि कहते हैं। और यह निर्णय होगया हो कि वृद्धिके लियेही आधिका उपभोग है वहां दूनेसे अधिकभी होनेसे जबतक मूल धन न मिलै तबतक आधिको भोगतेही हैं। यह सब बृहस्पतिने इस वचनसे स्पष्ट किया है कि फल है भोग्य जिसका ऐसा बधक (आधि) दो प्रकारका है। प्रथम वृद्धिसहित मूल जिसमें मिलै, दूसरा वृद्धिमात्र धन जिसमें मिलै। उनमें वृद्धिसहित मूल मिलनेवाले बन्धकका काल (अवधि) पूर्ण होजाय तो उसको अधमर्ण प्राप्त होताहै अर्थात् फलके द्वारा वृद्धिसहित मूल जब धनीको मिलगयाहो तब बन्धक अधमर्णको मिलजाता है। और जो बधक वृद्धिके ही दूर करनेके लिये है उसको सामक (मूलमात्र) धनको ही देकर अधमर्ण प्राप्त होताहै। इसका यह अपवाद है कि यदि उस बंधकका फल वृद्धिसेभी अधिक होगया होय तो धनी मूलमात्र धनकाभी भागी नहीं होता अर्थात् मूलकेभी विना दिये अधमर्ण

१ ऋणीबंधमवाप्नुयात्। फलभोग्य पूर्णकाके दत्वा द्रव्यं तु सामकम्॥ यदि प्रकर्षितं तत् स्यात्तदा न धनभाग्धनी। ऋणी च न लभेद्बंधं परस्परमतं विना॥

बंधकको प्राप्त हो जाता है और जो वह बंधक वृद्धिके लियेभी पूरा न होय तो मूलमात्र देकर अधमर्णको बंधक नहीं मिलता। किंतु वृद्धिका जो शेष उसको देकरही मिलताहै। फिर पूर्वोक्त दोनों बंधकोंमें अपवाद कहते हैं कि उत्तमर्ण और अधमर्णकी परस्पर संमति न होय तो यह पूर्वोक्त समझना परस्पर संमतिमें तो उत्कृष्ट (अधिक फलका दाता) भी बंधकको मूलमात्र धनके देनेपर्यंतही धनी भोगताहै और निकृष्ट (वृद्धिसे न्यून फलका दाता) बंधकको मूलमात्र धनके देनेसेही अधमर्ण प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-जब आधिमें ऋण दूना होगया हो और आधिसे पैदा हुआ धन धनीको दूना मिलचुकाहो तब उत्तमर्ण आधिको छोडदे अर्थात् अधमर्णको देदे ॥ ६४ ॥

इति ऋणादानप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ उपनिधिप्रकरणम् ४.

वासनस्थमनाख्यायहस्तेन्यस्ययदर्प्यते। द्रव्यंतदौपनिधिकंप्रतिदेयंतथैवतत् ॥६५॥

पद-वासनस्थम् १ अनाख्यायऽ-हस्ते ७ अन्यस्य ६ यत् १ अर्प्यते क्रि-द्रव्यम् १ तत् १ औपनिधिकम् १ प्रतिदेयम् १ तथाऽ-एवऽ- तत् १ ॥

योजना-वासनस्थं यत् (द्रव्यम्) अनाख्याय अन्यस्य हस्ते अर्प्यते तत् द्रव्यम् औपनिधिकं भवति तत् तथैव प्रतिदेयम् ॥

ता०भा०-निक्षेप (धरोहर) जिसमें रक्खी जाय ऐसे अन्य द्रव्य (पिटारी) आदिको वासन कहते हैं, उस वासनमें रखकर रुपयेकी संख्या आदिको न कहकर और अपनी मुद्रा (मोहर) लगाकर रक्षाके लिये विश्वाससे जो अर्पण (सौंपना) किया जाय उसे औपनिधिक कहते हैं। सोई नारदने कहा है कि विना संख्याकरके और विना जाने और मुद्रा लगाकर जो सौंपा जाय उसे उपनिधि और गिनकर जो रक्खा जाय उसे निक्षेप कहते हैं। वह द्रव्य वैसाही पहिली मुद्राके चिह्नसहित रखनेवालेको प्रतिदेय (लौटाने योग्य) है ॥ ६५ ॥

नदाप्योपहृतंतंतुराजदैविकतस्करैः। भ्रेषश्चेन्मार्गितेदत्तेदाप्योदंडंचतत्समम् ॥

पद-नऽ-दाप्यः १ अपहृतम् २ तम् २ तुऽ-राजदैविकतस्करैः ३ भ्रेषः १ चेत्ऽ-मार्गिते ७ अदत्ते ७ दाप्यः १ दंडम् २ चऽ-तत्समम् २ ॥

योजना-राजदैविकतस्करैः अपहृतं तं राज्ञा न दाप्यः। चेत् (यदि) मार्गिते अदत्ते सति भ्रेषः (नाशः) तर्हि दाप्यः च पुनः तत्समं दण्डं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-यदि वह उपनिधि राजा दैव (जल आदि) चोर इनसे नष्ट हो जाय तो जिसके समीप रक्खी हो उससे राजा न दिवावै। क्योंकि धनीकाही वह द्रव्य नष्ट हुआ है, यदि उसमें कोई छल न हो। सोई नारदने कहाहै कि जो उपनिधि ग्रहण करनेवालेके धनसहित नष्ट हुआ हो तो धनके स्वामीकाही नष्ट होताहै और तैसेही दैव और राजासे नष्ट हुआ कपटसे रहित होय तो रखनेवाले धनीकाही नाश समझना, इसकाभी अपवाद कहते हैं कि यदि स्वामीने धनको ढूंढ लिया हो और मांगनेपर न दिया हो उसके अनतर चाहै राजा आदिसे भ्रेष (नाश) हो जाय तो उस द्रव्यका मोल करके धनीको धन और राजाको उसके तुल्य दंड धर्मका अधिकारी ग्रहण करनेवालेसे दिवावै ॥

भावार्थ-राजा दैव चोरोंसे नष्ट हुई उपनिधिको न दिवावै, यदि ढूंढनेपरभी न दी हो और फिर नष्ट होगई होय तो उस उपनिधिको और उतनाही दंड राजाको वह दे जिसके समीप रक्खीथी ॥ ६६ ॥

आजीवन्स्वेच्छयादंड्योदाप्यस्तं चापि सोदयम्। याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिष्वयं विधिः ॥ ६७ ॥

पद-आजीवन् १ स्वेच्छया ३ दण्ड्यः १ दाप्यः १ तम् २ चऽ-अपिऽ-सोदयम् २ याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिषु ७ अयम् १ विधिः १ ॥

योजना-स्वेच्छया आजीवन् दण्ड्यः च पुनः तम् अपि सोदयम् दाप्यः भवेत् अयम्

१ असंख्यातमविज्ञात समुद्रं यन्निधीयते। तज्जानीयादुपनिधिं निक्षेपं गणितं विदुः ॥

१ ग्रहीतुः सह योऽर्थेन नष्टो नष्टः स दायिनः। दैवराजकृते तद्वद्वेन्न जिह्मकारितम् ॥

विधिः याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिषु ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य स्वामीकी आज्ञाके विना उपनिधिके द्रव्यसे जीविका करता है वा प्रयोग आदिसे लाभके लिये व्यवहारमें लगाता है वह भोग वा लाभके अनुसार दंडके योग्य होता है और उससे धनीको उपभोगमें वृद्धिसहित और व्यवहारमें लाभसहित उपनिधिको राजा दिवावै, वृद्धिका प्रमाण कात्यायनने कहा है कि निक्षेप, वृद्धिका शेष, क्रय विक्रय इनको मांगनेसे न दे तो सौ रुपये पर पांचरुपये बढते हैं। यहभी भक्षितमें समझना। उपेक्षा और अज्ञानसे नष्ट हुएमें तो उसनेही विशेष दिखाया है कि भक्षितमें सोदय (लाभसहित) और उपेक्षितमें मूलके समान और अज्ञानसे नष्ट हुए द्रव्यमेंसे कुछ न्यून (चौथाई न्यून) राजा ग्रहण करनेवालेसे दिवावै। विवाह आदि उत्सवोंमें जो वस्त्र अलंकार आदि मांगकर ले जाय वह याचित, जो द्रव्य एकके यहां रक्खाहो और उसनेभी फिर अन्यके यहां रखदियाहो वह अन्वाहित, गृहके स्वामीको दिखाकर उसके परोक्ष उसी घरके किसी मनुष्यके हाथमें दियाजाय कि गृहके स्वामीको तू देदीजियो वह न्यास, और घरके स्वामीके प्रत्यक्षमें देना निक्षेप, इन याचित आदिकोंमें और आदि शब्दसे सुनार आदिके हाथमें कटक आदि बनानेके लिये रक्खे हुए सुवर्ण आदिका प्रतिन्यास (लौटाना) का परस्पर प्रयोजनकी अपेक्षामें, तुम इसकी रक्षा करियो और मैं तुम्हारे इसकी रक्षाकरूगा, ऐसी प्रतिज्ञासे दिये हुएका ग्रहण लेना। सोई नारदने कहाहै कि याचित और अन्वाहित आदिमें और शिल्पीके समीप उपनिधि न्यास और प्रतिन्यासमें यही विधि जाननी। इस याचित आदिमें यही विधि है जो उपनिधिके प्रतिदानकी है ॥

भावार्थ-जो अपनी इच्छासे स्वामीकी आज्ञाके विना उपनिधिके द्रव्यको भोगता है वह दंड देने योग्य है और लाभसहित धन धनीको दे। यही विधि याचित अन्वाहित न्यास निक्षेप आदिमें समझना ॥ ६७ ॥

---

१ निक्षेपं वृद्धिशेष च क्रय विक्रयमेव च। याच्यमानो नचेद्द्याद्वर्धते पचक शतम् ॥

२ भक्षित सोदय दाप्यः सम दाप्य उपेक्षितम्। किंचिन्यून प्रदाप्यः स्यात् द्रव्यमज्ञाननाशितम् ॥

१ एष एव विधिर्दृष्टो याचितान्वाहितादिषु। शिल्पिषूपनिधौ प्रतिन्यासे तथैव च।

इति उपनिधिप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ साक्षिप्रकरणम् ५.

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः। धर्मप्रधानऋजवःपुत्रवंतोधनान्विताः ॥ ६८ ॥

पद–तपस्विनः १ दानशीलाः १ कुलीनाः १ सत्यवादिनः १ धर्मप्रधानाः १ ऋजवः १ पुत्रवंतः १ धनान्विताः १ ॥

त्र्यवराःसाक्षिणोज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः। यथाजातियथावर्णसर्वेसर्वेषुवास्मृताः

पद–त्र्यवराः १ साक्षिणः १ ज्ञेयाः १ श्रौतस्मार्तक्रियापराः १ यथाजातिऽ–यथावर्णम्ऽ–सर्वे १ सर्वेषु ७ वाऽ–स्मृताः १ ॥

योजना–तपस्विनः दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः धर्मप्रधानाः ऋजवः पुत्रवंतः धनान्विताः श्रौतस्मार्तक्रियापराः त्र्यवराः यथाजाति यथावर्णं साक्षिणः ज्ञेयाः वा सर्वे सर्वेषु साक्षिणः स्मृताः ॥

तात्पर्यार्थ–शास्त्रमें लिखित भुक्ति साक्षी प्रमाण कहे हैं, यह कह आये उनमें भुक्तिका निरूपण किया, अब साक्षीका स्वरूप निरूपण करते हैं। और साक्षात् दर्शन और सुननेसे साक्षी होता है सोई मनु (अ० ८ श्लो० ७४) ने कहा है कि [1]समक्ष देखने और सुननेसे साक्षी सिद्ध होता है। वह साक्षी दो प्रकारका है कृत और अकृत, जिसको साक्षी कह दियाहो वह कृत, जिसको न कह दियाहो वह अकृत होता है। उनमें कृत पांच प्रकारका और अकृत छः प्रकारका है ऐसे ग्यारह प्रकारका साक्षी कहा है। सोई नारदने कहा है कि [2]ग्यारह प्रकारका साक्षी बुद्धिमानोंने शास्त्रमे देखाहै,पांच प्रकारका कृत और छः प्रकारका अकृत, उनका भेदभी नारदनेही दिखाया है कि [1]लिखित, स्मारित, यदृच्छाभिज्ञ, गूढ, उत्तरसाक्षी यह पांच प्रकारका साक्षी कहा है। लिखित आदिका स्वरूप तो कात्यायनने कहा है कि [2]जिसको अर्थी आप लाकर लेख (अर्जी) में नाम लिखवादे वह लिखित है, और जो पत्रपर न लिखाहो वह स्मारित होताहै, 'स्मारितः पत्रकादृते' इसका अर्थ कात्यायननेही कियाहै कि [3]जिसको अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कार्यको देखकर वारबार अर्थी स्मरण करावै वह स्मारित कहाता है, जो अकस्मात् (अचानक) आया साक्षी कियाजाय वह यदृच्छाभिज्ञ होताहै। ये दोनों पत्र पर लिखे नहीं होते। इनका भेद कात्यायननेही दिखाया है कि [4]प्रयोजनसे जिसे लावे और प्रसंगसे जो चला आवै विना लिखेभी ये दो साक्षी पूर्वपक्षके साधक होते हैं। तैसेही वचन है कि [5]जिसको अर्थीने प्रत्यर्थीका वचन स्फुट सुना दियाहो और गुप्त स्थित रहे वह गूढ साक्षी कहाता है, तैसेही [6]साक्षियोंकेभी साक्ष्यको सुनने वा सुनानेसे ऊपर २ से कहे वह उत्तरसाक्षी कहा है। छः प्रकारके अकृतका

१ समक्षदर्शनात्साक्ष्य श्रवणाच्चैव सिद्धचति।

२ एकादशविधः साक्षी शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः। कृतः पचविधो ज्ञेयः षड्विधोऽकृत उच्यते।

१ लिखितः स्मारितश्चैव यदृच्छाभिज्ञ एव च। गूढश्चोत्तरसाक्षी च साक्षी पञ्चविधः स्मृतः ॥

२ अर्थिना स्वयमानीतो यो लेख्ये सनिवेश्यते। स साक्षी लिखितो नाम स्मारितः पत्रकादृते ॥

३ यस्तु कार्यप्रसिद्ध्यर्थं दृष्ट्वा कार्यं पुनःपुनः। स्मार्यते ह्यर्थिना साक्षी स स्मारित इहोच्यते ॥

४ प्रयोजनार्थमानीतः प्रसगादागतश्च यः। द्वौ साक्षिणौ त्वलिखितौ पूर्वपक्षस्य साधकौ ॥

५ अर्थिना स्वार्थसिद्ध्यर्थं प्रत्यर्थिवचनं स्फुटम्। यः श्रावितः स्थितो गूढो गूढसाक्षी स उच्यते ॥

६ साक्षिणामपि यः साक्ष्यमुपर्युपरि भाषते। श्रवणाच्छ्रावणाद्वापि स साक्ष्युत्तरसंज्ञितः ॥

भेद नारदने दिखाया है कि ग्राम, प्राड्विवाक, राजा, कार्यका अधिकारी, अर्थीका भेजा, कुलके विवादोंमें कुलके मनुष्य ये भी साक्षी जानने। इस वचनमें प्राड्विवाकका ग्रहण लेखक और सभ्योंकाभी उपलक्षण है क्योंकि यह वचन है कि लेखक, प्राड्विवाक, सभासद ये सब राजाके कार्यको देखनेके समयमें साक्षी कहे हैं। अब यह कहते हैं कि वे साक्षी कैसे और कितने होते हैं कि तपस्वी, दानमें तत्पर, कुलीन, सत्यवादी, जो धर्मको मुख्य समझे, अर्थ कामको नहीं, ऋजु (कोमल वा अकुटिल), पुत्रवान्, धनवान्), वेद और धर्मशास्त्रमें कही हुई क्रियामें तत्पर ऐसे पुरुष त्र्यवर (कमसे कम तीन) साक्षी होतेहैं अर्थात् तीनसे कम नहीं होते। अधिक तो चाहै जितने अपनी इच्छाके अनुसार होतेहैं और वेभी यथाजाति अर्थात् (मूर्द्धावसिक्त आदि जाति और अनुलोमज प्रतिलोमज) होतेहैं। उस जातिके कार्योंमें उसी जातिके साक्षी होतेहैं और यथावर्ण होतेहैं अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णोंके ब्राह्मण आदि वर्णही साक्षी होतेहैं। इसी प्रकार क्षत्रिय आदिमेंभी समझना। जैसे इस मनु (अ० ८ श्लो० ६८) वचनके अनुसार स्त्रियोंकी साक्षी स्त्री करैं। यदि सजाती और सवर्ण न मिलैं तो मूर्द्धावसिक्त और ब्राह्मण आदि सबमें यथासंभव (जो मिलसकैं) साक्षी होते हैं। पूर्वोक्त स्वरूप साक्षियोंका असंभव होय तो निषेधसे रहित अन्यभी साक्षियोंके कहनेके लिये असाक्षी कहने योग्य हैं। वे नारदने पांच प्रकारके दिखाये हैं कि असाक्षीभी बुद्धिमानोंने शास्त्रमें पांच प्रकारका देखा है कि वचनसे, दोषसे, भेदसे, स्वयं कहनेसे, मृतांतर वचनसे असाक्षी ये कहे हैं कि वेदपाठी, तपस्वी, वृद्ध और संन्यासी आदि ये वचन(शास्त्रका कथन) से ही असाक्षी होते हैं, इसमें अन्य कोई कारण नहीं कहाहै। तपस्वी पदसे वानप्रस्थ लेने, आदि पदसे वे लेने जो पिताके संग विवाद करै, सोई शखने कहाहै कि पिताके संग विवादी, गुरुकुलका वासी, संन्यासी, वानप्रस्थ, निर्ग्रंथ (बंधनरहित) ये असाक्षी होतेहैं। दोषसेभी असाक्षी दिखाये हैं, कि चौर, साहसिक, चंड (क्रोधी), कितव (जुआरी), वंचक ये दुष्ट होनेसे असाक्षी होतेहैं, क्योंकि इनमें सत्य नहीं होता। भेदसे जो असाक्षी उनका स्वरूपभी उसनेही दिखायाहै कि साक्षी लिखित, निर्दिष्ट, वादी इनमें एकभी अन्यथा कहैं तो वे सब भेदसे साक्षी नहीं होते। तैसेही स्वयमुक्तिका स्वरूपभी कहाहै कि विना कहे स्वयं आनकर जो कहे उसको शास्त्रमें सूची कहते हैं, वह साक्षी देने योग्य नहीं है। मृतांतरकाभी लक्षण कहाहै कि जिस

१ ग्रामश्च प्राड्विवाकश्च राजा च व्यवहारिणाम्। कार्येष्वधिकृतो यः स्यादर्थिना प्रहितश्च यः ॥ कुल्याः कुलविवादेषु विज्ञेयास्तेपि साक्षिणः ॥

२ लेखकः प्राड्वीवाकश्च सभ्याश्चैवानुपूर्वशः। नृपे पश्यति तत्कार्ये साक्षिणः समुदाहृताः ॥

३ असाक्ष्यपि हि शास्त्रेषु दृष्टः पञ्चविधो बुधैः। वचनाद्दोषतो भेदात्स्वयमुक्तेर्मृतान्तरः ॥

१ श्रोत्रियास्तापसा वृद्धा ये च प्रव्रजितादयः। असाक्षिणस्ते वचनान्नात्र हेतुरुदाहृतः ॥

२ पित्राविवदमानगुरुकुलवासिपरिव्राजकवानप्रस्थनिर्ग्रंथाश्चासाक्षिणः।

३ स्तेनाः साहसिकाश्चंडाः कितवा वंचकास्तथा। असाक्षिणस्ते दुष्टत्वात्तेषु सत्यं न विद्यते ॥

४ साक्षिणां लिखितानां च निर्दिष्टानां च वादिनाम्। तेषामेकोऽन्यथावादी भेदात्सर्वे न साक्षिणः ॥

५ स्वयमुक्तिरनिर्दिष्टः स्वयमेवैत्य यो वदेत्। सूचीत्युक्तः स शास्त्रेषु न स साक्षित्वमर्हति ॥

६ योऽर्थः श्रावयितव्यः स्यात्तस्मिन्नसति चार्थिनि। क्व तद्वदतु साक्षित्वमित्यसाक्षी मृतांतरः।

अर्थी वा प्रत्यर्थीको जो वात सुनानी हो कि तुम इस बातके साक्षी हो उस अर्थी वा प्रत्यर्थीके मरनेपर और अर्थमी उसने निवेदन न किया हो और साक्षी ऐसे कि किस अर्थमें किसके लिये साक्षी है वह मृतांतर साक्षी नहीं होता जहां मरनेवाले स्वस्थ पिता आदिने अपने पुत्र आदिको यह सुना दिया हो कि इस अर्थमें ये साक्षी हैं वहां मृतांतरभी साक्षी होताहै। सोई नारदने कहाहै कि मरनेवालेने सुनायेको छोडकर अर्थीके मरनेपर मृतांतर साक्षी नहीं होता तैसेही वचन है कि जो अर्थ स्वस्थ अवस्थामें धर्मपूर्वक सुनादिया हो अर्थीके मरने परभी उसमें और छःहों अन्वाहित आदिमें मृतांतरभी साक्षी होताहै ॥

भावार्थ–तपस्वी, कुलीन, दानी, सत्यवादी, जो धर्मको मुख्य समझे, कोमलहृदय, पुत्रवान्, अत्यंत धनी, वेद और धर्ममें कहे कर्मोंमें तत्पर, अपनी जाति, वा अपने वर्णके, कमसे कम तीन साक्षी जानने अथवा सब संपूर्णोंके साक्षी कहे हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः। रंगावतारिपाखंडिकूटकृद्विकलेंद्रियाः॥७०॥

पद–स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः १ रंगावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः १ ॥

पतितातार्थसंबंधिसहायरिपुतस्कराः। साहसीदृष्टदोषश्चनिर्धूताद्यास्त्वसाक्षिणः ॥

पद–पतितातार्थसम्बधिसहायरिपुतस्कराः १ साहसी १ दृष्टदोषः १ चऽ–निर्धूताद्याः १ तुऽ–असाक्षिणः १ ॥

योजना–स्त्रीबालवृद्धकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः रंगावतारिपाखण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः पतितातार्थसंबंधिसहायरिपुतस्कराः साहसी च पुनः दृष्टदोषः तु पुनः निर्धूताद्याः असाक्षिणो भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–स्त्री, जिसको व्यवहारका ज्ञान न हो वह बालक, वृद्ध (अस्सी ८० वर्षका), यहां वृद्ध शब्दसे पूर्व वचनमें निषिद्ध अन्यभी साक्षी आदि लेने, कितव (जुवारी), मदिरापान आदिसे मत्त और ग्रहों (भूत आदि) से युक्त, उन्मत्त, ब्रह्महत्या आदि पातक जिसको लगायाहो वह, अभिशस्तरंगावतारी (चारण), पाखण्डी (निर्ग्रंथ आदि), कूटकृत् (जो कपटका लेख लिखै), विकलेन्द्रिय (बधिर आदि), पतित (ब्रह्महत्यारा आदि), सुहृद्, जिस अर्थमें विवाह होय उसका सम्बंधी, जिसका एकही कार्य होय वह, सहाय, शत्रु और चौर, साहसी जो अपने बलका ग्रहण करै अर्थात् अन्यकी बात न चलने दे, दृष्टदोष (जिसका मिथ्या वचन देखाहो), निर्धूत (जो बंधुओंने त्यागा हो) और आद्य शब्दसे अन्य स्मृतियोंमें कहे हुए दोष वा भेदसे असाक्षियोंका और स्वयमुक्ति और मृतांतरका ग्रहण करना। ये स्त्री बाल आदि सब साक्षी नहीं करने ॥

भावार्थ–स्त्री, बाल, वृद्ध, जुवारी, मत्त, उन्मत्त, पातकी, रगावतारी (नट), पाखण्डी, कपटसे लिखनेवाला, बधिर आदि, ब्रह्महत्यारा, मित्र, अर्थसंबधी, सहायक, शत्रु, तस्कर, साहसी, दृष्टदोष और निर्धूत आदि ये साक्षी नहीं करने ॥ ७० ॥ ७१ ॥

उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्मवित्। सर्वः साक्षी संग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे ७२

---

१ मृतांतरोर्थिनि प्रेते मुमूर्षुश्राविताहृते।

२ श्रावितो नातुरेणापि यस्त्वर्थो धर्मसंयुतः। मृतेपि तत्र साक्षीस्यात्षट्सु चान्वाहितादिषु ॥

पद-उभयानुमतः १ साक्षी १ भवति क्रि- एकः १ अपिऽ-धर्मवित् १ सर्वः १ साक्षी १ संग्रहणे ७ चौर्यपारुष्यसाहसे ७ ॥

योजना-एकः अपि धर्मवित् उभयानुमतः साक्षी भवति। सग्रहणे चौर्यपारुष्यसाहसे सर्वः साक्षी भवति ॥

तात्पर्यार्थ-ज्ञानपूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्मको जो करै वह धर्मवित् होताहै वह एकभी अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंको सम्मत होय तो साक्षी होता है और अपिशब्दके बलसे धर्मके वेत्ता दोभी साक्षी होते हैं। यद्यपि उनत्तरके (६९) श्लोकमें वेद और धर्मकी क्रियामें तत्पर कमसे कम तीनभी धर्मवेत्ताओंका कहना समान है। तथापि वे दोनोंकी अनुमतिके अभावमें ही साक्षी हो सकते हैं। यहां एक वा दो धर्मके वेत्ता दोनोंकी अनुमतिसेंही साक्षी होते हैं, इस वास्ते कमसे कम वहां तीनका ग्रहण है और यह वचन उसका अपवाद है। अब तपस्वी और दानशील इसका अपवाद कहते हैं। सग्रहण (जिनका लक्षण कहेंगे) में चौर्य पारुष्य (कठोर वचन) साहस इनमें सब साक्षी हो सकते हैं अर्थात् वचनोंमें निषिद्ध और तप आदि गुणसे युक्तभी साक्षी हो जाते हैं, और दोष और भेदसे जो असाक्षी हैं और स्वयमुक्ति जो हैं वे संग्रहण आदिमेंभी साक्षी नहीं होसकते। क्योंकि इनमेंभी वही साक्षी होताहै जो सत्यवादी हो। यद्यपि मनुष्यका मारना, चोरी, पराई दाराका स्पर्श, कठोर वचन और कठोर दंड रूप पारुष्य यह चार प्रकारका साहस होताहै इस[1] वचनसे स्त्रीसंग्रहण चौर्य्य पारुष्यभी साहस हैं तथापि वे साहससे पृथक् इस लिये पढे हैं कि अपने बलसे सब मनुष्योंके संमुख किये हुए वे साहस कहाते है और एकांतमें किये हुए संग्रहण कहाते हैं ॥

[1] मनुष्यमारणं चौर्य्यं परदाराभिमर्शनम्। पारुष्यमुभयं चेति साहसं स्याच्चतुर्विधम्॥

भावार्थ-एकभी धर्मका वेत्ता दोनोंकी अनुमतिसे साक्षी होताहै और चौर्य (सग्रहण), पारुष्य, साहस इनमें सब साक्षी होते हैं॥७२॥

साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान्। ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा॥

पद-साक्षिणः २ श्रावयेत् क्रि-वादिप्रतिवादिसमीपगान् २ ये १ पातककृताम् ६ लोकाः १ महापातकिनाम् ६ तथाऽ- ॥

अग्निदानां च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम्। स तान्सर्वानवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥

पद-अग्निदानाम् ६ चऽ-ये १ लोकाः १ ये १ चऽ-स्त्रीबालघातिनाम् ६ सः १ तान् २ लोकान् २ अवाप्नोति क्रि-यः १ साक्षी १ हिऽ- अनृतम् २ वदेत् क्रि- ॥

सुकृतं यत्त्वया किंचिज्जन्मांतरशतैः कृतम्। तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे वृथा॥७५॥

पद-सुकृतम् १ यत् १ त्वया ३ किंचित्ऽ- जन्मान्तरशतैः ३ कृतम् १ तत् २ सर्वम् २ तस्य ६ जानीहि क्रि-यम् २ पराजयसे क्रि- वृथाऽ- ॥

योजना-वादिप्रतिवादिसमीपगान् साक्षिणः श्रावयेत्। ये पातककृतां लोकाः तथा महापातकिनां ये लोकाः च पुनः ये अग्निदानां लोकाः च पुनः ये स्त्रीबालघातिनां लोकाः यः साक्षी अनृतं वदेत् सः तान् सर्वान् लोकान् अवाप्नोति यत् त्वया जन्मांतरशतैः किंचित् सुकृतं कृतं तत्सर्वं तस्य जानीहि त्वं यं वृथा पराजयसे ॥

तात्पर्यार्थ-अर्थी और प्रत्यर्थीके सन्मुख

इकट्ठे हुए साक्षियोंको वक्ष्यमाण (जो कहेंगे) सुनावैं क्योंकि गौतमका वचन है कि असमवेत (पृथक् २) पूछनेसे साक्षी न कहै उसमेंभी कात्यायनने यह विशेष दिखायाहै कि सभाके मध्यमें अर्थी और प्रत्यर्थीके सन्मुख इस विधिसे शान्त करता हुआ प्राड्विवाक साक्षियोंको नियुक्त करै (सुनै) देवता और ब्राह्मणोंके समीप उत्तर वा पूर्वाभिमुख बैठे शुद्धब्राह्मणोंसे शुद्ध होकर सत्यरूपसे साक्ष्यको पूछै, और शपथ (कसम) देकर जाना है आचरण जिनका और जाना है अर्थ जिन्होंने ऐसे संपूर्ण साक्षियोंको पृथक् २ पूछै तैसेही ब्राह्मण आदिके सुनानेमें मनु (अ० ८ श्लो० ११३) ने नियम दिखायाहै ब्राह्मणको सत्यकी, क्षत्रियको वाहन आयुधोंकी, वैश्यको गौ बीज सुवर्णकी, शूद्रको सब पातकोंकी शपथ दे अर्थात् ब्राह्मणको यह कहै कि अन्यथा कहनेसे तेरा सत्य नष्ट हो जायगा, क्षत्रियको तेरे वाहन और आयुध निष्फल हो जांयगे, वैश्यको तेरे गौ बीज सुवर्ण निष्फल हो जांयगे, और शूद्रको तुझे सब पातक लगेंगे, इसका अपवादभी उसनेही दिखाया है कि (अ० ८ श्लो० १०२) गौओंके रक्षक व्यापारी, कारीगर, कुशीलव (गानेवाले), प्रेष्य (नोकर), वार्धुषिक (सूद लेनेवाले) जो ब्राह्मण हैं उनके संग शूद्रके समान आचरण करे । इसमें ब्राह्मणका ग्रहण क्षत्रिय और वैश्यकाभी उपलक्षण है । प्रतिवादी जब साक्षीमें दूषण दे दे और प्रत्यक्षसे दूषणके योग्य बाल्य आदिमेंभी तैसेही निर्णय है और अयोग्य दूषणोंका तो उनके वचन और लोकसे निर्णय करै कुछ दूसरे साक्षियोंकी अपेक्षा नहीं है इससे अवस्था दोष नहीं, यदि साक्षीके दोषको प्रकट करके प्रतिवादी सिद्ध न कर सकै तो दोषके अनुसार दण्डके योग्य है, यदि सिद्ध कर दे तो वे साक्षी नहीं समझने, सोई कहाहै कि साक्षियोंके दूषणको प्रकटरीतिसे सिद्ध न करै वह दण्डयोग्य है, सिद्ध कर दे तो साक्षीके धर्मसे रहित वे साक्षी वर्जित हैं । यदि दिये हुए साक्षी सब दूषित हो जांय और अर्थीभी कोई दूसरी क्रिया न कर सकै तो पराजित होताहै,क्योंकि यह स्मृति है कि शास्त्रोक्त मार्गसे जिसका पराजय हुआ हो वह वादी साक्षियोंके सत्यपर टिका हो, और निराकांक्ष हो अर्थात् अन्य क्रिया (दावा) न करना चाहता हो वह नम्रतासे दंड देने योग्य है, साकांक्ष (चाहता) होय तो दूसरी क्रियाको करै, पातक उपपातक महापातकोंके कर्ता अग्नि लगानेवाले, स्त्री बालकोंके घातक इनको जो लोक होते हैं उन सबको वह प्राप्त होता है जो साक्षी मिथ्या बोलता है, और तैसेही सैकडों जन्मांतरोंमें सुकृत (पुण्य) तुमने कियाहै वह सब उसको मिलेगा जो तेरे झूंठसे पराजित होगा, यह सब साक्षियोंको सुनावै । यहभी शूद्रके विष-

---

१ नासमवेताः पृष्टाः प्रब्रूयुः ।

२सभान्तःसाक्षिणः सर्वानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । प्राड्विवाको नियुंजीत विधिनानेन सांत्वयन् ॥ देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् । उदङ्मुखान् प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥ आहूय साक्षिणः पृच्छेन्नियम्य शपथैर्भृशम् । समस्तान्विदिताचारान् विज्ञातार्थान् पृथक् पृथक् ॥

३ सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोबीजकांचनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।

४ गोरक्षकान् वाणिजिकान् तथा कारुकशीलवान्। प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥

१ असाधयन्दम दाप्यो दूषणं साक्षिणां स्फुटम् । भाविते साक्षिणो वर्ज्याः साक्षिधर्मनिराकृताः ॥

२ जितः सविनयं दाप्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। यदि वादी निराकांक्षः साक्षिसत्ये व्यवस्थितः ॥

धर्म है, क्योंकि शूद्रको सब पातक लगेंगे, इस मनुवचनसे सब पातकोंका सुनाना कहाहै, और गोपाल आदि द्विजातियोंके विषयमेंभी है। क्योंकि गोरक्षक आदि ब्राह्मणको शूद्रके समान समझना उसी मनुवचनमें कह आये हैं, अनेक जन्मोंके पुण्योंका मिलना और महापातक आदिके फलकी प्राप्ति झूठमात्रसे नहीं होसकती इससे यह साक्षियोंके दुःखके लिये कहा जाता है, सोई नारदने कहाहै कि पुराण धर्मके वचन, सत्यके माहात्म्यका कीर्तन, असत्यकी निंदा इनसे साक्षियोंको निरंतर त्रास दे (डरावे)॥

भावार्थ-वादी और प्रतिवादीके समीप बैठे हुए साक्षियोंको यह सुनावे कि पातकी और महापातकी, अग्नि लगानेवाले, स्त्री बालकोंके हत्यारे इनको जो नरक आदिलोक होते हैं वह उन सबको प्राप्त होतेहैं जो साक्षी झूठ बोलता है, सैकडों जन्मांतरोंमें जो पुण्य तुमने कियाहै वह सब उसका जान जिसका पराजय वृथा (झूठ बोलके) तू कराता है॥७३॥७४॥७५॥

अब्रुवन्हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबंधकम्।
राज्ञा सर्वंप्रदाप्यः स्यात्षट्चत्वारिंशकेहनि।

पद-अब्रुवन् १ हिऽ-नरः १ साक्ष्यम् २ ऋणम् २ सदशबंधकम् २ राज्ञा ३ सर्वम् २ प्रदाप्यः १ स्यात् क्रि-षट्चत्वारिंशके ७ अहनि७॥

योजना-हि (यतः) साक्ष्यं अब्रुवन् नरः सदशबंधकम् सर्वम् ऋणम् षट्चत्वारिंशके अहनि राज्ञा प्रदाप्यः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य साक्षी होनेको स्वीकार करके शपथ (सौगंध देना) आदिके सुनानेपर किसी प्रकार नहीं बोलता अर्थात् साक्षी नहीं देता राजा उससे वृद्धिसहित और दश भागसे युक्त संपूर्ण ऋण दिवावै, इसमें दशवां भाग राजाका होताहै, राजा अधमर्णिकसे साधित धनमेंसे दशवां भाग स्वयं ले, यहभी छालीसवें दिनके आनेपर जानना, उससे पहिले साक्षी देदे तो दशम भाग दंडके योग्य नहीं है, यह भी तब है जब व्याधि आदिका कोई उपद्रव न हो, सोई मनु (अ०८श्लो०१०७) ने कहाहै कि रोगरहित मनुष्य तीन पक्षके भीतर ऋण आदिमें साक्षी न दे तो उस सब ऋणको और दशमांश राजदंडको प्राप्त होताहै। यहां अगद (रोगरहित) पद राजा और दैव उपद्रवके अभावका उपलक्षण है ॥

भावार्थ-जो साक्षी तीन पक्षके भीतर साक्ष्यको नहीं कहता है अर्थात् साक्षी नहीं देता, छालीसवें दिन उससे राजा वह सब ऋण और दशांश अपना भाग ग्रहण करे ॥ ७६ ॥

न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपिनराधमः।
स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दंडेन चैव हि॥

पद-नऽ-ददाति.क्रि-हिऽ-यः १साक्ष्यम् २ जानन् १ अपिऽ-नराधमः १ सः १ कूटसाक्षिणाम् ६ पापैः ३ तुल्यः १ दण्डेन ३ चऽ-एवऽ-हिऽ-॥

योजना-यः नराधमः जानन् अपि साक्ष्यं न ददाति सः पापैः च पुनः दंडेन कूटसाक्षिणां तुल्यः भवति तेषां पापं दंड चाप्नोतीत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्योंमें अधम विवादके अर्थको विशेष कर जानता हुआभी साक्षी होनेका स्वीकार नहीं करता अर्थात् साक्षी नहीं होता, वह पाप और दंडसे कूटसाक्षियोंके तुल्य है, कूटसाक्षियोंके दंडको-

१ पुराणैर्धर्मवचनैः सत्यमाहात्म्यकीर्तनैः। अनृतस्यापवादैश्च भृशमुत्त्रासयेदिमान् ॥

१ त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः। तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबंधं च सर्वतः ॥

आगे कहेंगे और कूटसाक्षियोंको दंड देकर पुनः व्यवहारको प्रवृत्त करना और व्यवहार समाप्तभी होगयाहो कूटसाक्षीके ज्ञान होनेपर निवृत्त करदेना सोई मनु (अ० ८ श्लो० ११७) ने कहा है। जिस २ विवादमें कूटसाक्ष्य होगयाहो उस २ कार्यको निवृत्त करै, कियाभी वह विना कियाही होताहै ॥

भावार्थ–जो मनुष्योंमें अधम जानकरभी साक्षी नहीं देता, वह पाप और दंडसे कूटसाक्षियोंके तुल्य होताहै अर्थात् उक्तसाक्षियोंके पाप और दंडका भागी होताहै ॥

द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनां तथा।
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तमाः ७८॥

पद–द्वैधे ७ बहूनाम् ६ वचनम् १ समेषु ७ गुणिनाम् ६ तथाऽ–गुणिद्वैधे ७ तुऽ–वचनम् १ ग्राह्यम् १ ये १ गुणवत्तमाः १ ॥

योजना–द्वैधे बहूनां वचन तथा समेषु गुणिनां वचनं गुणिद्वैधे ये गुणवत्तमाः तेषां वचनं ग्राह्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–साक्षियोंका जहां द्वैध (परस्पर विवाद) होय तो बहुतोंका वचन मानने योग्य है। यदि द्वैधमेंभी समानही संख्या होय तो उनका वचन प्रमाण है जो गुणी हों और जहां गुणियोंकीभी परस्पर विप्रतिपत्ति (विवाद) हो वहां जो गुणवत्तम हैं अर्थात् जो वेदके पठन पाठन वेदोक्त कर्मका करना, धन पुत्र आदि गुणोंसे संपन्न हैं उनका वचन ग्रहण करने योग्य है। और जहां गुणी तो कतिपय (अल्प) और निर्गुण बहुत हों वहांभी गुणियोंका वचनही ग्रहण करनेयोग्य है। क्योंकि इस पूर्वोक्त वचनसे गुणकी अधिकता मुख्य है कि दोनोंको संमतधर्मका वेत्ता एकभी साक्षी होताहै और जो यह कहाहै कि भेदसे असाक्षी होते हैं (भेदा दसाक्षिणः) वह उस विषयमें है जो समरूपसे ग्रहण न कियेहों ॥

भावार्थ–परस्परके विवादमें बहुतोंका और समानोंमें गुणियोंका और गुणियोंमें जो अत्यंत गुणवान् हैं उनका वचन ग्रहण करने योग्य है॥

यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां
स जयी भवेत्। अन्यथावादिनो
यस्य ध्रुवस्तस्यपराजयः ॥ ७९ ॥

पद–यस्य ६ ऊचुः क्रि–साक्षिणः १ सत्याम्२ प्रतिज्ञाम्२ सः १ जयी१ भवेत् क्रि–अन्यथाऽ–वादिनः १ यस्य ६ ध्रुवः १ तस्य ६ पराजयः१॥

योजना–यस्य वादिनः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञाम् ऊचुः सः जयी भवेत् यस्य साक्षिणःअन्यथा ऊचुः तस्य ध्रुवः पराजयो भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जिस वादीकी द्रव्य जाति संख्या आदि विशिष्ट प्रतिज्ञाको सत्य कहैं अर्थात् हम जानते हैं यह कहैं उसका जय होताहै और जिस वादीकी प्रतिज्ञाको अन्यथा (विपरीत) अर्थात् यह मिथ्या है यह कहैं उसका निश्चयसे पराजय होताहै और जहां प्रतिज्ञा किये हुए अर्थके होने और न होनेको विस्मरण आदिसे साक्षी न कहसकै वहां अन्य प्रमाणसे राजा निर्णय करै, वारंवार साक्षियोंको न पूछै किंतु अपने स्वभावसे कहाहुआही साक्षियोंका वचन ग्रहण करने योग्य है सोई कहाहै कि स्वभावसे कहा साक्षियोंका दोषसे हीन वचन ग्रहण करने योग्य है"

---

१ यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्य कृतं भवेत्। तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृत चाप्यकृत भवेत् ॥

२ उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्मवित् ।

१ स्वभावोक्तं वचस्तेषां ग्राह्य यद्दोषवर्जितम्। उक्ते तु साक्षिणे राज्ञा न प्रष्टव्याः पुनः पुनः ॥

और वचन कहनेके अनंतर साक्षियोंको राजा वारवार न पूछै ॥

भावार्थ–जिस वादीकी प्रतिज्ञाको साक्षी निश्चयसे कहैं उसका जय और जिसकी विपरीत कहै उसका पराजय होताहै ॥ ७९ ॥

उक्तेपि चाक्षिभिःसाक्ष्येयद्यन्ये गुणवत्तमाः। द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः ॥ ८० ॥

पद–उक्ते ७ अपिऽ–साक्षिभिः ३ साक्ष्ये ७ यदिऽ–अन्ये १गुणवत्तमाः १ द्विगुणाः१ वाऽ–अन्यथाऽ–ब्रूयुः क्रि–कूटाः १ स्युः क्रि–पूर्वसाक्षिणः १ ॥

योजना–साक्षिभिःसाक्ष्ये उक्तेऽपि यदि अन्य_ गुणवत्तमाः वा द्विगुणाः साक्षिणः अन्यथा ब्रूयुः पूर्वसाक्षिणः कूटाः (मिथ्यावादिनः) स्युः ॥

तात्पर्यार्थ–पूर्व कह आये हैं लक्षण जिनका ऐसे साक्षियोंके साक्ष्य (अपना अभिप्राय) के विपरीत अर्थात् अर्थीको प्रतिज्ञा किये अर्थके अन्यथा कहनेपर यदि पहिले साक्षियोंसे अत्यंत गुणी अन्य साक्षी वा पूर्वोक्त साक्षियोंसे दूने साक्षी अन्यथा कह दें अर्थात् अर्थीके प्रतिज्ञात अर्थके अनुकूल कहैं तो पहिले साक्षी कूट (मिथ्यावादी) होजाते हैं। कदाचित् कोई शंका करै कि अर्थी प्रत्यर्थी सभासद सभापति इन्होंने की है परीक्षा जिनकी ऐसे साक्षियोंके प्रामाणिक कहनेपर प्रमाणांतरका अन्वेषण (ढूढना) करोगे तो अनवस्थादोष होगा इससे पहिले साक्षी कूट नहीं होसकते क्योंकि नारद–का वचन है कि व्यवहारके निर्णयानन्तर जो पहिले निवेदन न कियाहो वह लेख वा साक्षीरूप प्रमाण निष्फल होता है, जैसे अन्नके पकनेपर वर्षाऋतुके गुण निष्फल होते हैं। इसी प्रकार निर्णय किये हुए व्यवहारमें प्रमाणभी निष्फल होता है इस शङ्काका समाधान कहते हैं। जव अर्थी अपने प्रतिज्ञात अर्थमें अन्तरात्माकी साक्षीसे नहीं किया है प्रकृष्ट दोष जिन्होंने ऐसे साक्षियोंके वचनकोभी अर्थका विरोधी होनेसे अप्रमाण मानकर साक्षियोंमेंभी दोष कल्पना करता है तव प्रमाणान्तरके ढूंढनेको कौन मने कर सक्ता है। सोई कहा है कि जिसका करण दुष्ट हो और जिसमें मिथ्याकी प्रतीति हो वह साक्षी समीचीन नहीं होता। जैसे चक्षु आदि करणों (इंद्रिय) के दोषोंके अनिश्चयमेंभी अर्थके विसंवाद (अयथार्थता) से उससे पैदा हुए ज्ञानको अप्रमाण होनेसे करणमें दोषकी कल्पना होती है तैसेही यहांभी साक्षियोंकी परीक्षाके विना जो साक्षियोंके वाक्यकी परीक्षा शास्त्रमें इस वचनसे (कि साक्षियोंके कथनकी समासदोंसहित परीक्षा करै) कही है उसी परीक्षासे पहिले साक्षियोंमें दोष समझना। कात्यायननेभी कहाहै कि जब साक्षियोंकी क्रिया अर्थात् साक्षी न्यायसे शुद्ध हों तब उनके वाक्यका शोधन करै और उनके वाक्यकी शुद्धि सत्यके कहनेसे इस वचनके अनुसार होती है, इस प्रकार शुद्ध क्रिया और शुद्ध वाक्यसे जो अर्थ शुद्ध हो वह

१ निर्णिक्ते व्यवहारे तु प्रमाणमफलं भवेत्। लिखितं साक्षिणो वापि पूर्वमावेदित न चेत् ॥ यथा पक्वेषु धान्येषु निष्फलाः प्रावृषो गुणाः। निर्णिक्तव्यवहाराणां प्रमाणमफलं तथा ॥

१ यस्य च दुष्टं करणं यत्र च मिथ्येति प्रत्ययः स एवासमीचीनः।

२ साक्षिभिर्भाषितं वाक्यं सह सभ्यैःपरीक्षयेत्।

३ यदा शुद्धाः क्रिया न्यायात्तदा तद्वाक्यशोधनम् शुद्धाच्च वाक्याद्यः शुद्धः स शुद्धार्थ इति स्थितिः ॥

४ सत्येन शुध्यते वाक्यम्।

शुद्ध है, यह न्यायके ज्ञाताओंकी मर्यादा है; यदि कारणके दोषका कोई बाधकप्रत्यय (प्रतीति) न होय तो अर्थ (दावा) सत्यसे वितथ (रहित) होता है, कदाचित् कोई शका करै कि अर्थीने स्वयप्रमाण किये साक्षियोंका अवलघन करके दूसरी क्रियाको क्यों प्रमाण करतेही यहभी दोष नहीं क्योंकि बलवती क्रियाको छोडकर जो दुर्बल क्रियाका आश्रय लेता है वह सभासदोंसे अर्थनिर्णय करनेपरभी उस क्रियाको प्राप्त नहीं होता। इस कात्यायनके वचनके अनुसार जयके निश्चयसे उत्तर कालमें अन्य क्रियाके ग्रहण करनेका निषेध होनेसे जयके निश्चयसे पूर्वही क्रियान्तरका प्रतिग्रह दिखाया है। नारदनेभी व्यवहारके निर्णय हुएपर प्रमाण निष्फल होता है यह कहकर जयके निश्चयानतरही प्रमाणांतरका निषेध किया है पूर्व नही, तिससे साक्षियोंको साक्षी देनेपर जिसे सतोष न आवे वह क्रियांतरका स्वीकार करै, यह सिद्धांत हुआ। जब यह सिद्धांत है तो कहा है वचन जिन्होंने ऐसे साक्षियोंसे श्रेष्ठ गुणी वा दूने पहिले दियेहुए साक्षी समीपमें नभी हों तोभी वे ही प्रमाण करने क्योंकि स्वभावसे जो कहै वही व्यवहारमें ग्रहण करने योग्य है, यह वचन सब व्यवहारोंमें शेष है, और यह पूर्वोक्त नारदका वचनभी है व्यवहारके निर्णय किये पीछे प्रमाण निष्फल है। चाहै लेख हो वा साक्षी हो यदि वह पहिले निवेदन न किया हो, यदि पहिले दिये साक्षियोंका असभव होय तो विना दियेभी उनके तुल्य साक्षियोंको ग्रहण करै, दिव्य प्रमाणको नही। क्योंकि यह स्मृति है कि साक्षियोंके सभवमें बुद्धिमान् मनुष्य दैवी क्रियाको वर्जदे। साक्षियोंका असंभव होय तो दिव्यकोभी प्रमाण करना। इससे आगे सतोषको न प्राप्त हुआभी अर्थी प्रमाणांतरका अन्वेषण न करै किंतु मनुके वचनानुसार व्यवहारको समाप्त करै। जहां प्रत्यर्थीको अपनी प्रतीति विसंवादी (विपरीत) होनेसे साक्षीके वचनको अप्रमाण मानकर साक्षियोंमें दोष दिखाकर संतोष न हो वहां प्रत्यर्थीको क्रिया देनेके अवसरका अभाव है, इससे सात दिनतक दैविक वा राजकीय दुःखके होनेसे साक्षियोंकी परीक्षा करनी, यदि सात दिनमें दोषका निश्चय होजाय तो विवादका ऋण और यथाशक्ति दंड साक्षियोंसे दिवावै, और दोषका निश्चय न होय तो प्रत्यर्थी उतनेसेही संतोष करले। सोई मनुने कहा है कि (अ० ८ श्लो० १०८) कहा है वाक्य जिसने ऐसे साक्षीको सात दिनके भीतर रोग, अग्नि ज्ञातिका मरण दीखजाय तो उससे ऋण और दंड दिवावै, यह वचन असंतोषी प्रत्यर्थीके विषयमें इस पूर्वोक्त वचनका अपवाद समझना कि जिसकी प्रतिज्ञाको साक्षी सत्य कहें उसका जय होता है। कोई तो यह व्याख्यान करते हैं कि साक्षियोंके साक्षी देनेपर यह वचन इस लिये है कि अर्थीके दिये हुए साक्षी अर्थीके अनुकूल कहते हों, यदि प्रत्यर्थी श्रेष्ठगुणी वा दूने साक्षी अर्थीके साक्षियोंसे विपरीत दे तो अर्थीके साक्षी कूट समझने, सो ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्यर्थीकी क्रियाही नही हो सकती, सोई दिखाते हैं कि साध्य अर्थके कहनेवालेको अर्थी कहते हैं, उसका प्रतिपक्षी साध्यके अभावको जो कहे वह प्रत्यर्थी होता है, उनमें अभावको भावके

---

१ क्रियां बलवती मुक्त्वा दुर्बलां योऽवलम्बते। स जयेऽवधृते सभ्यैः पुनस्तां नाप्नुयात्क्रियाम्॥

२ निर्णिक्ते व्यवहारे तु प्रमाणमफलं भवेत्।

३ स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम्।

१ सभवे साक्षिणां प्राज्ञो वर्जयेद्दैविकीं क्रियाम्।

२ यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः। रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः॥

सिद्धिकी अपेक्षा है वा भावकी सिद्धिमें अभावकी सिद्धिकी कुछ अपेक्षा नहीं है, इससे भावही साध्य ठीक है। अभाव स्वरूपसे साक्षी आदिसे प्रमेयभी नहीं हो सकता, इससे अर्थीकीही क्रिया युक्त है, और उत्तरके अनुसार सर्वत्रही क्रियाका नियम कहाहै, कि प्राड्न्याय और कारण उत्तरोंमें प्रत्यर्थी अपनी क्रिया दिखावै, और मिथ्या उत्तरमें अर्थी और प्रतिपत्ति उत्तरमें क्रिया नहीं होती, और एक व्यवहारमें इस वचनसे दोनों वादी प्रतिवादियोंकी क्रिया नहीं होती तिससे यह नहीं हो सकता कि प्रतिवादीके गुणी वा दूने साक्षी अन्यथा कहैं तो पहिले कूट समझने। कदाचित् कोई यह मानै कि जहां दोनों भावकीही प्रतिज्ञाको कहै जैसे एक कहै कि यह द्रव्य मुझे दायसे मिलाहै दूसरा कहै कि मुझे दायसे मिला है और पूर्व वा उत्तर कालके विभागको न कहैं वहां दोनोंके साक्षियोंके होनेपर किससे साक्षी लेने इस आकांक्षामें इस वचनके अनुसार जो पहिले निवेदन करै उसके साक्षी होते हैं, कि किसी अर्थमें दो विवादी हों, और दोनोंके साक्षी होय तो जिसका पूर्वपक्ष है उसकी साक्षी होतेहैं, ऐसे सिद्धांतका अपवाद कहाहै कि साक्षी साक्ष्य कह दें तोभी गुणी वा दूने साक्षी आकर अन्यथा कहैं तो पहिले कूट समझने, इससे पूर्व और उत्तरवादी दोनोंके साक्षी गिनती वा गुणसे तुल्य हांय तो पूर्ववादीके ही साक्षी पूछने, और जब उत्तरवादीके साक्षी अत्यत गुणी वा द्विगुण हांय तब प्रतिवादीके साक्षी पूछने इस प्रकार अभावसाध्य नहीं, क्योंकि दोनों भावके वादी हैं और चार प्रकारके उत्तरसे विलक्षण होनेसे प्रकृत (इस) उदाहरणमें क्रियाकी व्यवस्था नहीं है। जैसे अन्यके मतमें एक व्यवहारमें एक अर्थीकी दो क्रिया होती हैं, तैसेही वादी प्रतिवादीकी दो क्रियाओंके माननेमें भी कोई विरोध नहीं। इस अर्थको भी आचार्य नहीं मानते क्योंकि 'उक्तेपि साक्षिभिः साक्ष्ये' साक्षियोंकी साक्षी देनेपरभी इस अपिशब्दके पढनेसे अर्थसे वा प्रकरणसे अर्थका ज्ञान न होय तो यह समझना अन्यथा नहीं, प्रसगके कथनसे अल (पूर्ण) है॥

भावार्थ-साक्षियोंके साक्ष्य देनेपरभी यदि श्रेष्ठ गुणी वा द्विगुण साक्षी अन्यथा कहें अर्थात् पूर्वोक्तके विरुद्ध कहें तो पहिले साक्षियोंको कूट (झूंठे) समझना ॥ ८० ॥

पृथक्पृथग्दंडनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा। विवादाद्द्विगुणं दंडंविवास्योब्राह्मणःस्मृतः॥

पद-पृथक्ऽ-पृथक्ऽ-दंडनीयाः १ कूटकृत् १ साक्षिणः १ तथाऽ-विवादात् ५ द्विगुणम् २ दंडम् २ विवास्यः १ ब्राह्मणः १ स्मृतः १ ॥

योजना-कूटकृत् तथा साक्षिणः विवादात् द्विगुण दंड पृथक् २ दंडनीयाः। ब्राह्मणः विवास्यः स्मृतः, मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जो अर्थी धन देने आदिसे साक्षियोंको कूट करै वह कूटकृत् और वे कूटसाक्षी विवादके पराजयमें जो दंड तहां २ कहाहै उससे दूने दंडके योग्य पृथक् २ होते हैं, ब्राह्मण तो राज्यमेंसे विवास्य (निकासने योग्य) है, यहभी तब जानना जब लोभ आदि कारणविशेषका ज्ञान न हो वा एक दो बारही अपराध हो, लोभ आदि कारणविशेषके ज्ञान और अभ्यास (वारंवार) में तो मनुनें (अ० ८ श्लो० १२०-१२१)

---

१ प्राड्न्यायकारणोक्तौ तु प्रत्यर्थी निर्दिशेत्क्रियाम्। मिथ्योक्तौ पूर्ववादी तु प्रतिपत्तौ न सा भवेत् ॥

२ नचैकस्मिन्विवादे तु क्रिया स्याद्वादिनोर्द्वयोः।

३ द्वयोर्विवदतोरर्थे द्वयोः सत्सु च साक्षिषु। पूर्वपक्षाभवेद्यस्य भवेयुस्तस्य साक्षिणः ॥

कहा है कि लोभसे सहस्र और मोहसे पूर्व साहस, भयसे मध्यम, और मित्रतासे चौगुना पूर्वसाहसदण्ड होता है। कामसे दशगुना पूर्वसाहस, क्रोधसे तिगुना, अज्ञानसे पूरे दो सौ और बालिश्य (अज्ञानता) से सौका दंड होता है। इन वचनोंमें सहस्र आदिकोंमें ताम्रके पण लेने। सोई मनुने (अ० ८ श्लो० १२३) कहा है कि धार्मिक राजा कूट साक्षी करते हुए तीनों वर्णोंको दंड देकर प्रवास (मारना) करै और ब्राह्मणको तो प्रवासही करदे अर्थात् देशसे वाहिर निकासदे। यहभी अभ्यास (पुनः २) के विषयमें है। क्योंकि (कुर्वाणान्) करते हुए यह वर्तमान कालका निर्देश है। क्षत्रिय आदि तीन वर्णोंको पूर्वोक्त दंड देकर प्रवास (मारना) करै क्योंकि अर्थशास्त्रमें प्रवासका मारण अर्थ है और यहभी अर्थशास्त्ररूपही है। उसमेंभी प्रवास, ओष्ठोंका छेदन, जिह्वाका छेदन, प्राणोंका वियोगरूप, अपराध (कूट साक्षी) के अनुसार समझना। ब्राह्मणको तो दंड देकर अपने देशसे विवास करदे अर्थात् नग्न कर दे। विगत है वास (वस्त्र) जिसके उसे विवास कहते हैं। अथवा वसे हैं जिसमें वह वास (गृह) विगत है वास जिसका वह विवास होताहै अर्थात् ब्राह्मणके घरको भग्न (तोडना) करदे। ब्राह्मणकोभी लोभ आदिके अज्ञानमें और अनभ्यासमें तहां २ कहा दंडही होता है। अभ्यासमें तो धनका दंड और विवास नहीं है। उसमेंभी जाति द्रव्य अनुबंध आदिकी अपेक्षासे विवासन, नग्न करना, घरका भग, देशसे निकासना यह व्यवस्था जाननी। लोभ आदि कारण विशेषका अज्ञान, अनभ्यास और अल्प विषयमें कूट साक्षी होय तो ब्राह्मणकोभी क्षत्रिय आदिके समान अर्थका ही दंड होताहै। बडे विषयमें तो देशसे निर्वासन ही होता है। यहांभी अभ्यासमें सबकोही मनुका कहा दंड जानना, ब्राह्मणको धनका दंड नहीं है यह नहीं मानना। क्योंकि धनके दंडका अभाव होगा और शरीरका दंड निषिद्ध है ही। अल्पभी अपराधमें नग्न करना, घरका भग, विप्रवास करना पडेगा वा सर्वथा दंडका अभाव होजायगा। और यह स्मृति भी है कि प्रायश्चित्त न करते हुए चारों वर्णोंको धनसे युक्त शरीरका दंड धर्मके अनुसार दे। और मनुकाभी वचन है (अ० ८ श्लो० ३७८) कि रक्षा की हुई ब्राह्मणीसे गमन करनेवाला ब्राह्मण एक सहस्र दंड दे। और जो यह शंखका वचन है कि तीनों वर्णोंका धनका हरण, वध, बंधन करै और ब्राह्मणका विवासन और चिह्न करना कहा है। उसमें धनका अपहार वधके संग पढनेसे सर्वस्वका अपहार विवक्षित (कहनेको इष्ट) है क्योंकि 'इस वचनमें वध और सर्वस्व हरण सगमें पढे हैं कि अवरोध आदि जीवनके अन्ततक शरीरका दंड और काकिणीसे लेकर सर्वस्वके अंततक अर्थका दंड होता है। जो यह वचन है कि घावसे रहित

१ लोभात्सहस्रं दण्ड्यः स्यान्मोहात्पूर्वं तु साहसम्। भयाद्वौ मध्यमो दण्डो मैत्र्यात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्। अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥

२ कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः। प्रवासयेद्दंडयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥

१ चतुर्णामपि वर्णानां प्रायश्चित्तमकुर्वताम्। शारीरं धनसंयुक्तं दंडं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥

२ सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यः गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन्।

३ त्रयाणां वर्णानां धनापहारवधबंधनक्रियाविवासनांककरणं ब्राह्मणस्य।

४ शारीरस्त्ववरोधादिर्जीवितांतः प्रकीर्तितः। काकिण्यादिस्त्वर्थदंडः सर्वस्वांतस्तथैव च ॥

५ राष्ट्रादेनं बहिष्कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।

और संपूर्ण धनसे युक्त ब्राह्मणको देशसे बाहिर कर दे। वहभी प्रथमही किये साहसके विषयमें है सब साहसोंमें नहीं। शरीरका दड तो ब्राह्मणको कदाचित् नहीं होता क्योंकि यह सामान्यसे मनु (अ० ८ श्लो० ३८०) का वचन है कि सब पापोंमें टिकेभी ब्राह्मणको न मारै। तैसेही मनुका (अ० ८ श्लो० ३८१) वचन है कि ब्राह्मणके वधसे अधिक अधर्म पृथिवी पर नहीं है तिससे राजा ब्राह्मणके वधकी मनसे भी चिन्ता (विचार) न करै॥

भावार्थ-जो धन आदि देकर कूट साक्षियोंको करै वह कूटकृत् और वे कूट साक्षी विवादसे दूने दंड देने योग्य पृथक् २ होते हैं और ब्राह्मण कूटसाक्षी होय तो विवास (देशसे निकासना आदि) के योग्य है ॥ ८१ ॥

यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः। स दाप्योऽष्टगुणं दंडं ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ ८२ ॥

पद-यः १ साक्ष्यम् २ श्रावितः १ अन्येभ्यः ५ निह्नुते क्रि-तत् २ तमोवृतः १ सः १ दाप्यः १ अष्टगुणम् २ दंडम् २ ब्राह्मणम् २ तुऽ-विवासयेत् क्रि-॥

योजना-साक्ष्य श्रावितः यः साक्षी तमोवृतः सन् तत् साक्ष्य अन्येभ्यः निह्नुते सः अष्टगुणं दंडं दाप्यः। तु पुनः ब्राह्मण विवासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य साक्ष्य देनेको स्वीकार करके अन्य साक्षियोंके सग साक्ष्यको सुनकर कहनेके समय अज्ञान वा राग आदिसे वशीभूत चित्त होकर उस साक्ष्यको अन्य साक्षियोंसे छिपाता है अर्थात् यह कहताहै कि मैं इसमें साक्षी न हूंगा। वह उस दंडसे आठ गुना दंड देने योग्य है। जो विवादके पराजयमें होता है और आठगुने द्रव्यके देनेमें असमर्थ ब्राह्मणको तो देशसे निकास दे। और विवासनभी नग्न करना, गृहभंग, देश निर्वासन आदि विषयके अनुसार जानना। इतर जातियोंको तो अष्टगुण द्रव्य दंडके असभवमें अपनी जातिमें उचित कर्मको करना। निगड (बेडी) में बधन, कारागृहमें प्रवेश आदि जानने। यह बात पिछले श्लोकमेंभी समझनी। और जब सब साक्षी साक्ष्यका निह्नव (छिपाना) करै तब संपूर्ण समान दोषी हैं। और जब साक्ष्यको कहकर फिर अन्यथा कहते हैं तब अनुबधकी अपेक्षासे दडके योग्य हैं सोई कात्यायनने कहा है कि कहकर जो अन्यथा कहते हैं वे वाणीके छलसे दंडके योग्य होते हैं और अन्यके कहे हुए साक्षियोंके सग अन्यके संग एकान्तमें न बतलावै। सोई नारदने कहा है कि परके दिखाये साक्षीके संग एकांतमें न जाय और न अन्यके संग भेद करै, करै तो हीन होताहै ॥

भावार्थ-जो तमोगुणसे युक्त मनुष्य साक्ष्यको सुनकर अन्यसाक्षियोंसे चुराता है। वह विवादसे आठगुने दड देने योग्य है और ब्राह्मणको तो राजा देशसे निकास दे ॥ ८२ ॥

वर्णिनांहि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्। तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरुःसारस्वतो द्विजैः॥

पद-वर्णिनाम् ६ हिऽ-वधः १ यत्रऽ-तत्रऽ-साक्षी १ अनृतम् २ वदेत् क्रि-तत्पावनाय ४ निर्वाप्यः १ चरुः १ सारस्वतः १ द्विजैः ३ ॥

१ न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्। २ न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि। तस्मास्यद वधं राजा मनसापि न चिंतयेत् ॥

१ उक्त्वान्यथाब्रुवाणाश्च दण्ड्याः स्युर्वाक्छलान्विताः। २ न परेण समुद्दिष्टमुपेयात्साक्षिणं रहः। भेदयेन्नैव चान्येन हीयेतैवं समाचरन् ॥

योजना—यत्र वर्णिनां वधः तत्र साक्षी अनृत वदेत् तत्पावनाय द्विजैःसारस्वतः चरुःनिर्वाप्यः॥

तात्पर्यार्थ—जहां शूद्र वैश्य क्षत्री और ब्राह्मण इन चारों वर्णोंके सत्य वचन कहनेसे वधकी सभावना हो वहां साक्षी अनृत बोले अर्थात् सत्य न कहे इस सत्य वचनके निषेधसे पहिले निषिद्ध कियेभी असत्यवचनकी और अवचन(नबोलना) की आज्ञा साक्षीको समझनी और जहां शका और अभियोग आदिमें सत्य वचन कहनेसे वर्णोंका वध हो और असत्य वचन कहनेसे किसीका वध न हो वहां साक्षी झूठ बोले, यह आज्ञा है। और जहां सत्य वचन कहनेसे अर्थी और प्रत्यर्थी दोनोंका वध हो और असत्य बोलनेसे एकका वध हो वहां तूष्णीं रहनेकी आज्ञा है, यदि राजा स्वीकार करै। यदि राजा किसी प्रकार विना कथन न माने तहां भेदसे साक्ष्य करना। यदि वहभी न होसके तो सत्यही कहै क्योंकि असत्य वचनसे वर्णी (ब्राह्मण आदि) के वधका दोष और झूठका दोष है। और सत्यवचनमें तो वर्णीके वधका एकही दोष है। और उसका शास्त्रके अनुसार प्रायश्चित्त करना। प्रायश्चित्त कहते हैं कि उस असत्य वचन और तूष्णीं रहनेसे पैदा हुए पापकी निवृत्तिके लिये द्विज पृथक् २ सरस्वती है देवता जिसका ऐसा चरु बनावे। जिसकी उप्मा (मांड) न निचोडी जाय उस पके ओदनको चरु कहते हैं। यहां यह सिद्धांत है कि साक्षियोंको मिथ्या वचन और अवचनका जो निषेध है उसकी यहां आज्ञा है। और जो मिथ्या न बोलैं, न कहने और विरुद्ध कहनेसे मनुष्यको पाप लगताहै इन वचनोंसे सामान्यसे मिथ्या वचन और अवचनका निषेध है, उसके अवलघनमें यह प्रायश्चित्त न मानना। साक्षियोंको मिथ्या वचन और अवचनकी आज्ञा होनेपरभी साधारण जो मिथ्या वचन और अवचनका निषेध उसके अवलंघनके निमित्त जो प्रत्यवाय (पाप) वह ज्योंका त्यों रहैगा इससे अवचनकी आज्ञाका वचन अनर्थक होगा। क्योंकि साक्षियोंके असत्य वचन और अवचनके निषिद्धका जो अवलंघन उसमें अधिक प्रायश्चित्त है और साधारण मिथ्या वचन और अवचनका अल्प पाप है, इससे उनकी आज्ञाका वचन सार्थकहै। यद्यपि बहुतसे पापकी निवृत्तिसे प्रसंगसे हुए अल्प पापकी निवृत्तिभी अन्यत्र देखी है तथापि यहां आज्ञाके वचनसे और प्रायश्चित्तकी विधानसे अधिक प्रायश्चित्तकी निवृत्तिसे अल्पभी प्रासंगिक पाप निवृत्त नहीं होता, यह ज्ञात होता है। यही बात अन्य प्रश्नोंमें वर्णीके वधकी आशंका होय वहां पथिक आदिकोंको अनृत वचन और अवचनकी आज्ञा जाननी, और वहां अन्य निषेधके अभावसे प्रायश्चित्तकी निवृत्तिभी नहीं। किसी अन्य निमित्तसे कालांतरमें अर्थका तत्त्व प्रतीतभी होजाय तोभी साक्षी और अन्य अधिकारीको इसी वचनसे दंडका अभाव समझना॥

भावार्थ—जहां ब्राह्मण आदि वर्णोंका वध हो वहां साक्षी मिथ्या बोले और उसकी शुद्धिके लिये ब्राह्मण सरस्वतीके निमित्त चरु बनावै ८३

१ नानृत वदेत्। अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी।

इति साक्षिप्रकरणम्॥ ५॥

अथ लेख्यप्रकरणम् ६.

यःकश्चिदर्थोनिष्णातः स्वरुच्यातुपरस्परम्।
लेख्यंतुसाक्षिमत्कार्यंतस्मिन्धनिकपूर्वकम्॥

पद-यः १ काश्चित्ऽ-अर्थः १ निष्णातः १ स्वरुच्या ३ तुऽ-परस्परम् १ लेख्यम् १ तुऽ-साक्षिमत्१कार्यम्१तास्मिन् ७धनिकपूर्वकम् १॥

योजना-यः कश्चित् स्वरुच्या परस्परम् अर्थः निष्णातः तस्मिन् धनिकपूर्वकं साक्षिमत् लेख्यं कार्य्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-अब लेख्यका निरूपण करते हैं। उसमें लेख्य दो प्रकारका है शासन और जानपद। उनमें शासनका निरूपण कर आये, अब जानपदका निरूपण करतेहैं। वह दो प्रकारका है अपने हाथसे किया और अन्यके हाथसे किया, उनमें अपने हाथसे कियेमें साक्षी नहीं होता और अन्यके कियेमें साक्षी होता है। इन दोनोंको देशाचारके अनुसार प्रमाणता है, यही नारदने इस वचनसे कहाहै कि उत्तमर्ण अधमर्णोंने अपनी रुचिसे परस्पर जिस अर्थका निश्चय कर लियाहो कि इतने कालमें इतना देना और प्रतिमास इतनी वृद्धि देना उस अर्थमें कालांतरमें होनेवाले विवादमें वस्तु तत्त्वके निर्णयार्थ पूर्वोक्त साक्षियोंसे युक्त और सबसे प्रथम उत्तमर्णके नामसे युक्त लेख्य करना और पूर्वोक्त साक्षीभी उस लेख्यके करने क्योंकि यह स्मृति है कि जो कर्ताने कार्य कियाहो उसकी सिद्धिके लिये लेख्यके साक्षी विवादोंमें होते हैं कि अपना किया लेख्य है कि नहीं॥

---

१ लेख्यं तु द्विविधं ज्ञेय स्वहस्तान्यकृतं तथा। असाक्षिमत्साक्षिमच्च सिद्धिर्देशस्थितेस्तयोः।

२ कर्त्रा तु यत्कृतं कार्यं सिद्ध्यर्थं तस्य साक्षिणः। प्रवर्तंते विवादेषु स्वकृत वाथ लेख्यकम्।

भावार्थ-अधमर्ण और उत्तमर्णकी परस्पर रुचिसे जिस अर्थका निश्चय होगया हो साक्षी और उत्तमर्णके नामसहित उसका लेख्य करै॥ ८४॥

समामासतदर्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः।
सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम्॥

पद-समामासतदर्द्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः३ सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् १॥

योजना-समामासतदर्द्धाहर्नामजातिस्वगोत्रकैः चिह्नितम् सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नित लेख्यं कर्त्तव्यम्॥

ता० भा०-वर्ष, चैत्र आदि मास, शुक्ल वा कृष्णपक्ष, प्रतिपदा आदि तिथि, धनिक और अधमर्णका नाम, ब्राह्मण आदि जाति और वशिष्ठ आदि गोत्र इनसे चिह्नित (युक्त) और बह्वृच कठ आदि ब्रह्मचारीके नाम और धनिक और अधमर्णके पिताका नाम और आदिपदसे द्रव्यकी सख्या और वार इनसे युक्त लेख्य करना अर्थात् कागद लिख देना॥ ८५॥

समाप्तेतुऋणीनामस्वहस्तेननिवेशयेत्।
मतंमेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितम् ८६॥

पद-समाप्ते ७ अर्थे ७ ऋणी १ नाम २ स्वहस्तेन ३ निवेशयेत् क्रि-मतम् १ मे ६ अमुकपुत्रस्य ६ यत् १ अत्रऽ-उपरिऽ-लेखितम् १॥

योजना-अर्थे समाप्ते सति ऋणी स्वहस्तेन अमुकपुत्रस्य मे यत् अत्र उपरि लेखित तत् मतं तथा नाम स्वहस्तेन लेखयेत्॥

ता०भा०-उत्तमर्ण और अधमर्णमें अपनी रुचिसे जब अर्थ समाप्त कर दिया हो तब अधमर्ण अपना नाम लिखै और यहभी

लिखदे कि इस पत्रके ऊपर जो लिखा है वह अमुकके पुत्र मुझे समत है अर्थात् स्वीकृत है८६॥

साक्षिणश्चस्वहस्तेनपितृनामकपूर्वकम्।
अत्राहममुकः साक्षीलिखेयुरितितेसमाः॥

पद्-साक्षिणः १ चऽ-स्वहस्तेन ३ पितृनामकपूर्वकम् २ अत्रऽ-अहम् १ अमुकः १ साक्षी १ लिखेयुः क्रि-इतिऽ-ते १ समाः १॥

योजना-च पुनः साक्षिणः स्वहस्तेन अमुकः अहम् अत्र साक्षी इति पितृनामपूर्वकं लिखेयुः। ते साक्षिणः समाः कर्तव्याः॥

तात्पर्यार्थ-उस लेख्यमें जो साक्षी लिखे हों वेभी अपने पिताके नामको लिखकर यह अपने हाथसे पृथक् २ लिखदें कि इसमें अमुक (देवदत्त) मैं साक्षी हूं और वे साक्षी भी संख्या और गुणसे समान होने चाहिये। यदि अधमर्ण वा साक्षी लिखना न जानते होंय तो अधमर्ण किसी अन्यसे और साक्षी दूसरे साक्षीसे सब साक्षियोंके सन्मुख अपनी संमतिको लिखवादे। सोई नारदने कहा है कि जो अधमर्ण लिखना न जानता हो वह किसी अन्यसे और साक्षी सब साक्षियोंके समीपमें दूसरे साक्षीसे अपने अभिप्रायको लिखवादें, वेभी सम होते हैं॥

भावार्थ-साक्षीभी अपने हाथसे पिताका नाम और इसमें अमुक मैं साक्षी हूं यह पृथक् २ लिखदें और वे साक्षीभी सम होते हैं, विषम नहीं॥ ८७॥

उभयाभ्यर्थितेनैतन्मयाह्यमुकसूनुना।
लिखितंह्यमुकेनेतिलेखकोंऽततोलिखेत्॥

पद्-उभयाभ्यर्थितेन ३ एतत् १ मया ३ हिऽ-अमुकसूनुना ३ लिखितम् १ हिऽ-अमुकेन ३ इतिऽ-लेखकः १ अंते ७ निवेशयेत् क्रि-॥

योजना-ततः उभयाभ्यर्थितेन अमुकसूनुना अमुकेन मया एतत् लिखितम् इति लेखकः अन्ते निवेशयेत्॥

तात्प०-भावार्थ-फिर सबके अतमें लेखक यह लिखदे कि धनिक और अधमर्ण दोनोंकी प्रार्थनासे अमुकके पुत्र और अमुक मैंने यह लिखा है॥ ८८॥

विनातुसाक्षिभिर्लेख्यंस्वहस्तलिखितंतुयत्।
तत्प्रमाणंस्मृतंलेख्यंबलोपाधिकृताहते॥८९॥

पद्-विनाऽ-तुऽ-साक्षिभिः ३ लेख्यम् १ स्वहस्तलिखितम् २ तुऽ-यत् १ तत् १ प्रमाणम् १ स्मृतम् १ लेख्यम् १ बलोपाधिकृतात् ५ ऋतेऽ-॥

योजना-तु पुनः यत् लेख्य स्वहस्तलिखितं तत् साक्षिभिर्विना बलोपाधिकृतात् ऋते प्रमाणं स्मृतम्॥

तात्पर्यार्थ-जो लेख्य अधमर्णने अपने हाथसे लिखा हो वह साक्षियोंके विनाभी मनु आदिकोंने प्रमाण कहा है, परतु बलात्कारसे और छल क्रोध लोभ भय मद आदिरूप उपाधिसे जो किया हो उसको छोडकर। नारदनेभी कहा है कि मत्त, अभियुक्त (जिस पर दावा दूसरा हो), स्त्री, बालक, बलात्कार इनसे जो कियाहो वा भय और उपाधिसे जो कियाहो वह लेख्य अप्रमाण होता है, सो यह पराये और अपने हाथसे किया लेख्य देशके आचरणके अनुसार, बंधकसहित (गिरवी) और बंधकसे रहित व्यवहारमें लिखना युक्त है, और ऐसा लिखाजाय जिसमें अर्थका और अक्षरोंका क्रम न बिगडै कुछ इतनाही न हो

---

१ अलिपिज्ञ ऋणी यःस्यात्स्वमतं तु स लेखयेत्। साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमर्पितः॥

१ मत्ताभियुक्तस्त्रीबालबलात्कारकृत च यत्। तदप्रमाण लिखित भयोपाधिकृत तथा॥

कि शब्दही शब्द साधु हों, और प्रतिदेशकी भाषासेंभी लिखने योग्य है, सोई नारदने कहा है कि देशाचारसे अविरुद्ध और आधिकी विधिका जिसमें लक्षण प्रकट हो, जिसमें अर्थ और क्रमसे अक्षरोंका लोप न हो और राजाकी आज्ञासे जो युक्त हो ऐसा लेख प्रमाण करने योग्य होता है, कुछ साधु २ शब्दोंकाही इसमें नियम नहीं है ॥

भावार्थ-अधमर्णके हाथसे लिखा हुआ जो लेख्य है वह साक्षियोंके विनाभी बलात्कारसे और छल क्रोध आदि उपाधिसे कियेको छोडकर प्रमाण करने योग्य है ॥ ८९ ॥

ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु ।
आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते ९०

पद-ऋणम् १ लेख्यकृतम् १ देयम् १ पुरुषैः ३ त्रिभिः ३ एवऽ-तुऽ-आधिः १ तुऽ-भुज्यते क्रि-तावत्ऽ-यावत्ऽ-तत् १ नऽ-प्रदीयते क्रि-॥

योजना-लेख्यकृतम् ऋणं त्रिभिः (पितृ-पुत्र-पौत्रैः) एव देयम्, तु पुनः आधिः यावत् तत् ऋणं न प्रदीयते तावत् उत्तमर्णेन भुज्यते ॥

तात्पर्यार्थ-जैसे साक्षी आदिसे सिद्ध किये ऋणको तीनही देने योग्य हैं इसी प्रकार लेख्यसे किये ऋणकोभी आहर्ता (लेनेवाला) और पुत्र पौत्र ये तीनही दें, चतुर्थ आदि न दें यह नियम इस वचनसे किया है । कदाचित् कोई शंका करै कि पुत्र पौत्र ऋणको दें ' पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं ' इस वचनसे सामान्य रीतिसे ऋणमात्रको तीनही दें यह नियम था ही फिर यह कहना वृथा है, यह शंका मानने योग्य है, इसी उत्सर्गमें जो पत्रमें लिखे ऋणके विषयमें अन्य स्मृतिके वचनसे पैदा हुई अपवादकी शंका उसके दूर करनेके लिये यह वचन रचा है, सोई दिखाते हैं कि पत्रके लक्षणको कहकर कात्यायनने इस वचनसे कहाहै कि इसी प्रकार जिसका काल व्यतीत होगया हो वहीभी पितरोंका ऋण दिवाया जाता है अर्थात् इस प्रकार पत्रपर लिखा हुआ पितरोंका ऋण कालके वीतने परभी राजा दिवादे, यहां पितॄणां इस बहुवचनसे, कालमतिक्रांतम्, इस वचनसे चौथे आदि (प्रपौत्र) से न दिवावै, तैसेही हारीतनेभी कहाहै कि जिसके हाथमें लेख्य हो उसको ऋणका लाभ होता है इस सामान्य वचनसे चतुर्थ आदिसेभी ऋणका लाभ प्रतीत होता है, इससे इसी आशंकाकी निवृत्तिके लिये यह वचन है, ये दोनों वचन योगीश्वर (याज्ञवल्क्य) के वचनके अनुसार लगाने योग्य हैं, जो ऋणबंधक (गिरवी) सहित पत्रपर आरूढ (लिखा हुआ) है वह भी तीनही दें, इस नियमसे ऋणके दूर करनेमें जब चतुर्थ आदिका अधिकार नहीं तो आधिके अपहरण (छीनना वा छुटाना) मेंभी अधिकार न होगा इस लिये यह वचन है कि इतने चौथा वा पांचवां ऋणको न दे तबतक आधि भोगी जाती है इस कहनेसे चौथेको बंधकसहित ऋणके दूर करनेमें अधिकार है, यह दिखाया। कदाचित् कहो कि यह भी कहही आये हैं कि फल भोग्य आधि नष्ट नहीं होती, सत्य है, यदि यह अपवादका वचन न होता तो वहभी तीनही पुरुषोंके विषयमें होता, इससे सब निर्दोष है ॥

भावार्थ-लेख्यपर किये हुए ऋणको

---

१ देशाचाराविरुद्धं यद्व्यक्ताधिविधिलक्षणम् । तत्प्रमाणं स्मृतं लेख्यमविलुप्तक्रमाक्षरम् ॥

१ एवकालमतिक्रांत पितॄणां दाप्यते ऋणम् ।
२ लेख्यं यस्य भवेद्धस्ते लाभ तस्य विनिर्दिशेत् ।

तीन पुरुषही दें। और आधि तो इतने कोई वंशका पुरुष ऋण न दे तबतक भोगी जातीहै॥

देशांतरस्थे दुर्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा।
भिन्ने दग्धेऽथवा छिन्ने लेख्यमन्यत्तुकारयेत्॥

पद-देशांतरस्थे ७ दुर्लेख्ये ७ नष्टोन्मृष्टे ७ हृते ७ तथाऽ-भिन्ने ७ दग्धे ७ अथवाऽ-छिन्ने ७ लेख्यम् २ अन्यत् २ तुऽ-कारयेत् क्रि ॥

योजना-देशांतरस्थे, दुर्लेख्ये, नष्टोन्मृष्टे, तथा हृते, भिन्ने, दग्धे अथवा छिन्ने (लेख्यपत्रे) सति अन्यत् लेख्यं कारयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब यह कहतेहैं कि व्यवहारके अयोग्य पत्र हो जाय तो दूसरा पत्र लिखवावे। सोई दिखाते हैं कि यदि पत्र अत्यत व्यवहित (दूर) देशमें स्थित हो वा दुर्लेख्य हो, जिसकी लिपिके अक्षर वा पद संधिग्ध हों, वा बॉच न सके ऐसे हों, जो काल पाकर नष्ट होगयाहो, जो स्याहीकी दुर्बलतासे उन्मृष्ट हो अर्थात् जिसकी लिपिके अक्षर मले गये हों, जिसको चोर चुरा ले गये हों, भिन्न होगयाहो (दलामला गयाहो), दग्ध होगयाहो, छिन्न (फटना) हो गया हो ऐसे सब प्रकारसे पत्रके नष्ट होनेपर दूसरा पत्र लिखवावे। यहभी वादी और प्रतिवादीकी परस्पर अनुमतिसे जानना। यदि समति न होय तो व्यवहारके समय देशांतरसे पत्र मगानेके लिये कठिन मार्ग आदिकी अपेक्षासे समय देना चाहिये। यदि पत्र दुर्गम देशमें हो वा नष्ट होगया होय तो साक्षियोंसेही व्यवहारका निर्णय करे। सोई नारदने कहाहै कि लेख्य देशांतरमें स्थित हो, शीर्ण (जीर्ण) हो, दुष्ट लिखाहो, चुराया गया हो, यदि वह विद्यमान होय तो कालकी अवधि करे,न होय तो साक्षियोंसे निर्णय करे अर्थात् वह देशांतरमें होय तो देशांतरसे मगानेके लिये कालकी अवधि दे कि इतने दिनमें मंगालो। और विद्यमान न होय तो जो पहिले साक्षी थे उनसेही व्यवहारकी समाप्ति करे। जब साक्षीभी न होंय तो दिव्यसे निर्णय करे। क्योंकि यह स्मृति है कि जिसका लेख्य साक्षी न हो उस व्यवहारमें दैवी क्रियासे निर्णय करे। यह व्यवस्थापत्र जानपद (देशके मनुष्योंका) है, राजकीय व्यवस्थापत्र भी ऐसाही होताहै। इतना तो विशेष है कि जो राजाके हाथसे लिखाहो और राजाकी मुद्रा (मोहर) से चिह्नित हो और साक्षीसे युक्त हो वह लेख्य सब अर्थोंमें राजकयि होताहै। अन्यभी राजकीय जयपत्र वृद्धवशिष्ठने कहाहै कि जो निवेदन किये साध्य अर्थसे सयुक्त हो और उत्तरकी क्रियासहित हो, और अवधारण (निश्चय) से सहित हो, वह जयपत्र इष्ट है। जिसपर प्राड्विवाकके हस्ताक्षर हों और जिसपर राजाकी मुद्रा हो, अर्थ सिद्ध होनेपर जिसकी जीत हो उस वादीको जयपत्र दे, तैसेही सभासदभी में अमुकके पुत्रका दिया यह कहकर अपने हाथसे दें, क्योंकि यह मनुने कहा है कि राजाकी सभामें जो स्मृति और शास्त्रके ज्ञाता सभासद हैं वे लेख्यकी विधिके अनुसार अपने हाथसे जयपत्र दें। यदि सभासदोंकी पर-

१ लेख्ये देशांतरन्यस्ते शीर्णे दुर्लिखिते हृते। सतस्तत्कालकरणमसतो द्रष्टृदर्शनम् ॥

१ अलेख्यसाक्षिके दैवी व्यवहारे विनिर्दिशेत्।

२ राज्ञः स्वहस्तसयुक्त स्वमुद्राचिह्नित तथा। राजकीय स्मृत लेख्य सर्वेष्वर्थेषु साक्षिमत् ॥

३ यथोपन्यस्तसाध्यार्थ सयुक्त सोत्तरक्रियम्। सावधारणक चैव जयपत्रकमिष्यते ॥ प्राड्विवाकादिहस्तांकमुद्रित राजमुद्रया। सिद्धेऽर्थे वादिने दद्याज्जयिने जयपत्रकम् ॥

४ सभासदश्च ये तत्र स्मृतिशास्त्रविदः स्थिताः। यथालेख्यविधौ तद्वत् स्वहस्त दद्युरेव ते ॥

स्पर अनुमति न होय तो व्यवहार छिद्रसे रहित नहीं होता सोई नारदने कहाहै कि जिसको सम्पूर्ण सभासद् साधु (अच्छा) मानें वही व्यवहार निश्शल्य होताहै, और नहीं तो सशल्य (छिद्रसहित) होता है, यहभी चातुष्पाद् व्यवहारमें समझना । क्योंकि यह स्मृति है कि जिससे साध्य अर्थ सिद्ध हो और जो चतुष्पाद् हो और जिसपर राजाकी मुद्रा (मुहर) हो वह जयपत्र होताहै और जिसमें हीनता होय वहां जयपत्र नहीं दिया जाता किंतु हीनपत्र दिया जाता है । जैसे कि अन्यथावादी क्रियाका द्वेषी उपस्थातासे भिन्न (जो न आवे) जो उत्तर न दे, बुलानेपर भाग जाय, यह पांच प्रकारका वादी हीन कहाहै । और हीनपत्र कालांतरमें दण्डके लिये और जयपत्र प्राङ्न्यायकी सिद्धिके लिये है ॥

भावार्थ-यादि पत्र देशांतरमें हो, यथार्थ न लिखाहो, नष्ट हो गया हो, जिसकी लिपिके अक्षर बिगड गये हों, चोरीमें गयाहो, भिन्न वा छिन्न होगया होय तो दूसरा लेख्य करावे॥९१॥

संदिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात्स्वहस्तलिखितादिभिः ॥ युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः ॥ ९२ ॥

पद-संदिग्धलेख्यशुद्धिः १ स्यात् क्रि- स्वहस्तलिखितादिभिः ३ युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः ३ ॥

योजना-स्वहस्तलिखितादिभिःयुक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसंबंधागमहेतुभिः संदिग्धलेख्यशुद्धिः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-शुद्ध है वा अशुद्ध ऐसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि अपने हाथसे लिखित आदिसे होतीहै अर्थात् अपने लिखे अक्षरोंके सदृश अक्षर मिलजाँय तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध होता है । आदि शब्दसे साक्षी, लेखक, अपने लिखे अन्य लेखकके सवाद (मेल) से शुद्धि होतीहै और युक्तिसे प्राप्ति अर्थात् देश काल पुरुष इनका द्रव्यके संग संबध होना कि इस काल और इस देशमें यह द्रव्य इस पुरुषका घट सकताहै । क्रिया साक्षियोंका देना, चिह्न (असाधारण श्री आदि), सबध अर्थात् पहिलेभी अर्थी और प्रत्यर्थीके परस्पर विश्वाससे लेने वा देनेका संबध, आगम अर्थात् इतने अर्थकी प्राप्ति होसकतीहै इतने हेतुहैं । इनसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि होतीहै । और जब लेख्यके संदेहमें निर्णय न होसके तब साक्षियोंसे निर्णय करे । सोई कात्यायनने कहाहै कि पत्र दूषित होजाय तो वादी पत्रपर लिखे साक्षियोंको दे । यह वचन भी साक्षियोंके सभवमें है । साक्षियोंके असंभवमें तो हारीतका वचन है कि यह पत्र मैंने नहीं किया इसने कूट करा लियाहै । ऐसे पत्रको अधर करके अर्थात् न्यून समझकर दिव्यसे अर्थका निर्णय करे ॥

भावार्थ-अपने हाथके लेख आदि और युक्ति, प्राप्ति, क्रिया, चिह्न, सबंध, आगम इतने हेतुओंसे संदिग्ध लेख्यकी शुद्धि होतीहै ॥ ९२ ॥

लेख्यस्यपृष्ठेऽभिलिखेद्दत्त्वादत्त्वर्णिकोधनम् । धनीवोपगतं दद्यात्स्वहस्तपरिचिह्नितम् ९३

पद-लेख्यस्य ६ पृष्ठे ७ अभिलिखेत् क्रि- दत्त्वाऽ-दत्त्वाऽ-ऋणिकः १ धनम् २ धनी १

---

१ यत्र सभ्यो जनः सर्वः साध्वेतदिति मन्यते । स निःशल्यो विवादः स्यात्सशल्यस्त्वन्यथा भवेत् ॥
२ अन्यवादी क्रियाद्वेषी नोपस्थाता निरुत्तरः । आहूतप्रपलायी च हीनः पंचविधः स्मृतः ॥

१ दूषिते पत्रके वादी तदारूढांस्तु निर्दिशेत् ।
२ न मयैतत् कृतं पत्रं कूटमेतेन कारितम् । अधरीकृत्य तत्पत्रमर्थे दिव्येन निर्णयः ॥

वा० - उपगतम् २ दद्यात् क्रि-स्वहस्तपरिचिह्नितम् २ ॥

योजना-ऋणिकः धनं दत्त्वा दत्त्वा लेख्यस्य पृष्ठे अभिलिखेत् । वा धनी उपगतं धनी स्वहस्तपरिचिह्नितम् ऋणिकाय लेख्यपृष्ठे वा दद्यात् ॥

ता० भा०-जब अधमर्ण सब ऋणको न दे सके तो अपनी शक्तिके अनुसार दे २ कर पूर्व लिखे हुए लेख्यकी पीठपर लिखदे कि इतना मैंने दिया । अथवा उत्तमर्ण उपगत (मिला) धनको उसी लेख्यकी पीठके ऊपर लिखदे कि इतना मुझे मिला । वहभी अपने हाथसे लिखे अक्षरोंसे चिह्नित हो । अथवा उपगत (प्रवेशपत्र रसीद) अपने हाथसे लिखकर उत्तमर्ण अधमर्णको दे दे ॥ ९३ ॥

दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्ध्यै वान्यत्तु कारयेत् ।
साक्षिमच्च भवेद्यद्वा तद्दातव्यं ससाक्षिकम् ॥

पद-दत्त्वा० - ऋणम् २ पाटयेत् क्रि-लेख्यम् २ शुद्ध्यै ४ वा० - अन्यत् १ तु० - कारयेत् क्रि-साक्षिमत् १ च० - भवेत् क्रि-यत् १ वा० - तत् १ दातव्यम् १ ससाक्षिकम् ॥

योजना-ऋणं दत्त्वा लेख्यं पाटयेत् वा शुद्ध्यै अन्यम् कारयेत् । च पुनः यत् लेख्य साक्षिमत् भवेत् तत् ससाक्षिकम् दातव्यम् ॥

ता० भा०-क्रमसे वा एकवार सपूर्ण ऋणको देकर पूर्व किये हुए लेख्यको फाडदे जब दूर देश आदिमें पत्र स्थित हो वा लेख्य नष्ट होगया हो तब शुद्धिके लिये अधमर्ण उत्तमर्णसे शुद्धि कराले अर्थात् पूर्वोक्त क्रमसे उत्तमर्ण विशुद्धिका पत्र अधमर्णको देदे । यदि पूर्व किया लेख्य साक्षिसहित होय तो पहिले किये साक्षियोंके सामनेही देना ॥ ९४ ॥

इति लेख्यप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अथ दिव्यप्रकरणम् ७.

तुलाग्न्यापो विषं कोशो दिव्यानिह विशुद्धये
महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेभियोक्तरि ॥

पद-तुला १ अग्न्यापः १ विषम् १ कोशः १ दिव्यानि १ इहऽ-विशुद्धये ४ महाभियोगेषु ७ एतानि १ शीर्षकस्थे ७ अभियोक्तरि ७ ॥

योजना-इह विशुद्धये तुलाग्न्यापोविष कोशः एतानि अभियोक्तरि शीर्षकस्थे सति महाभियोगेषु दिव्यानि प्रमाणानि भवति ॥

तात्पर्यार्थ-लिखित साक्षी भुक्तिरूप तीन प्रकारका प्रमाण कहा अब अवसरसे प्राप्त हुए दिव्य प्रमाण कहनेकी इच्छासे आदिके पांच श्लोकोंसे दिव्यमातृकाको कहते हैं। उनमें पहिले दिव्योंका कथन करते हैं। तुला अग्नि जल विष कोश शुद्धिके लिये ये दिव्य प्रमाण हैं अर्थात् संदिग्ध अर्थके निर्णायक हैं। यद्यपि अन्यत्र तंडुल आदिभी दिव्य इस[1] पितामह वचनके अनुसार हैं कि तोल, अग्नि, जल, विष, कोश, तंडुल और तपाया माष। तथापि ये पांच प्रमाण बडे २ अभियोगों (दावे) में ही हैं, अन्यत्र नहीं इस नियमके लिये यह वचन है इस लिये नहीं कि इतनेही दिव्य हैं। बडे प्रमाणकी अवधि कहेंगे। कदाचित् कोई कहै कि अल्प अभियोगमेंभी कोश प्रमाण दें, इस[2] वचनसे अल्प अभियोगमेंभी कोष इष्ट है। सत्य है परंतु कोशका तुला आदिमें पाठ इस नियमके लिये नहीं है कि बडे२ अभियोगोंमें ही कोश है किंतु अवष्टंभसहित अभियोगमेंभी प्राप्तिके लिये है। अन्यथा शंकाके अभियोगमेंही होता। क्योंकि यह स्मृति है कि[1] अवष्टम-सहित अभियोगोंमें तुला आदि प्रमाण दे और शंकाके अभियोगोंमें तंडुल और कोश प्रमाण दे, इसमें संशय नहीं है और ये तुला आदि प्रमाण उसी अभियुक्तके होते हैं जिसका अभियोक्ता (अर्थी) शीर्षकमें स्थित हो। व्यवहारके जय पराजयरूप चौथे पादको शीर्षक कहते हैं उससेभी दंड लेना, अर्थात् जय, पराजयके दंडका भागी जो हो वह शीर्षकस्थ कहाता है ॥

भावार्थ-तुला, अग्नि, जल, विष और कोश ये पांच शुद्धिके लिये दिव्य होते हैं और ये बडे २ अभियोगोंमें तभी होते हैं जब अभियोक्ता शीर्षकमें स्थित हो अर्थात् दंडका भागी हो ॥ ९५ ॥

रुच्यावान्यतरः कुर्यादितरोवर्तयेच्छिरः ।
विनापिशीर्षकात्कुर्यान्नृपद्रोहेथपातके ९६

पद-रुच्या ३ वाऽ-अन्यतरः १ कुर्यात् क्रि-इतरः १ वर्तयेत् क्रि-शिरः २ विनाऽ-अपिऽ-शीर्षकात् ५ कुर्यात् क्रि-नृपद्रोहे ७ अथऽ-पातके ७ ॥

योजना-वा अन्यतरः रुच्या दिव्यं कुर्यात् इतरः शिरः वर्तयेत्। नृपद्रोहे अथ पातके शीर्षकात् विना अपि दिव्यं कुर्यात्।

तात्पर्यार्थ-फिर अर्थी शीघ्र अपने प्रतिज्ञात अर्थका साधन लिखै इससे भाववादीकीही क्रिया दिखाई है। अब उसके अपवादार्थ कहते हैं, कि अभियोक्ता और अभियुक्तकी परस्पर रुचि (स्वीकार) से अन्यतर (अभियोक्ता वा अभियुक्त) दिव्य प्रमाणका स्वीकार करै और इतर (दूसरा अभियुक्त वा अभियोक्ता) शिरका वर्तन करै अर्थात्

---

1 घटोग्निरुदकं चैव विषं कोशस्तथैव च। तण्डुलाश्चैव दिव्यानि सप्तमस्तप्तमाषकः।

2 कोशमल्पेपि दापयेत्।

1 अवष्टभाभियुक्तानां घटादीनि विनिर्दिशेत्। तंडुलाश्चैव कोशश्च शंकास्वेव न संशयः ॥

शरीरबाधनके दंडको स्विकार करै, यहां यह सिद्धांत है कि मानुष्य प्रमाणके समान दिव्यप्रमाण केवल भावकेही विषयमें नहीं है किंतु अविशेपसे भाव और अभावके विषयमें है; इससे मिथ्योत्तर और प्रत्यवस्कदन और प्राङ्न्याय उत्तरोंमें अर्थी वा प्रत्यर्थी अन्यतर (कोईसा) की इच्छासे दिव्य होता है, अल्प अभियोग, महाभियोग, शका, अवष्टंभ इनमें अविशेषसे कोशका होना कहा, और तुलासे विषतक तो महाभियोगोंमेंही होते हैं और अवष्टंभमेंभी होते हैं यह नियम दिखाया। अब अवष्टंभके अभियोगमेंभी होते हैं इस नियमका अपवाद कहते हैं कि राजाके द्रोहकी आशका और ब्रह्महत्या आदि पातकोंकी शका होय तो शिरका स्थायी न हो तोभी तुला आदिकोंको करै और महा चोरीकी शकामेंभी करै सोई कहा है कि राजाओंको जिनसे शका हो चौरोंने जो दिखाये हों वे अपनी शुद्धि चाहै तो शीर्षकके विनाभी दिव्य प्रमाणको दे, और तंडुल तो अल्प चोरीकी शकामेंही दे क्योंकि पितामहका वचन है कि चौरीमेंही तडुल दे अन्यत्र न दे यह निश्चय है, तपाया माष तो महा चौरीकी शंकामेंही देना क्योंकि यह स्मृति है कि चौरीकी शकासे जो अभियुक्त हैं उनको तप्तमाष कहा है, अन्य जो शपथ हैं वे अल्प अर्थके विषयमें है, क्योंकि नारद आदिका वचन है कि सत्य, वाहन, शस्त्र, गौ, बीज, सुवर्ण, पुत्र, स्त्री, मित्र इनके शिरका स्पर्श अथवा सब अभियोगोंमें कोशका पान ये सब शपथ स्वल्पकारणमें मनुने कहे हैं। यद्यपि जिसका निर्णय मानुषप्रमाणसे न हो उसकेही निर्णयके लिये जो हो वह दिव्य होता है, इस लोककी प्रसिद्धिसे शपथभी दिव्य है तथापि कालांतरमें निर्णयके निमित्त शपथ, तत्काल निर्णयके निमित्त तुला आदिसे भिन्न दिव्य हैं।यह ब्राह्मण और सन्यासीके समान भेदसे कथन है। कोश यद्यपि शपथ है तथापि तुला आदिमें इस लिये पढा है कि महाभियोग और अवष्टंभ अभियोगके विषयमें होनेसे यहभी तुला आदिके समान है, कुछ इस लिये नहीं पढा कि कोशभी तत्काल निर्णयका हेतु है, और तडुल और तप्तमाष इस लिये तुला आदिमें, नही पढे कि तत्कालकेभी निर्णय कहे तथापि अल्पविषय और शकाके विषयमें होते हैं इससे तुला आदिसे विलक्षण हैं। जो यह पितामहका वचन है कि स्थावर विवादोंमें दिव्य प्रमाणोंको वर्जे दे, वहभी इस लिये है कि लिखित और सामंत आदिके होते दिव्योंको वर्जे दे। कदाचित् कोई शका करै कि अन्यविवादोंमेंभी प्रमाणांतरका सभव हो सकैगा इससे दिव्योंको अवकाश ही न मिलेगा अर्थात् व्यर्थ हो जांयगे, सत्य है तथापि जहां ऋण आदि विवादोंमें अर्थीने पूर्वोक्त साक्षीभी दे दिये हों, यदि प्रत्यर्थी दडके स्वीकारका अवष्टंभ करके दिव्य प्रमाणको चाहै वहां दिव्यभी होता है, क्योंकि साक्षियोंमें अंतःकरणका दोष होसकता है और दिव्यमें कोई दोष नहीं है इससे वस्तुके तत्त्वको निर्णायक है और धर्मकाभी यही लक्षण है।

---

१ राजाभिः शकितानां च निर्दिष्टानां च दस्युभिः। आत्मशुद्धिपराणां च दिव्य देयं शिरोविना॥

२ चौर्ये तु तडुला देया नान्यत्रेति विनिश्चयः।

३ चौर्यशकाभियुक्तानां तप्तमाषो विधीयते।

४ सत्यवाहनशस्त्राणि गोबीजकनकानि च। स्पृशेच्छिरांसि पुत्राणां दाराणां सुहृदां तथा॥ अभियोगेषु सर्वेषु कोशपानमथापि वा। इत्येते शपथाः प्रोक्ता मनुना स्वल्पकारणे॥

१ स्थावरेषु विवादेषु दिव्यानि परिवर्जयेत्।

सोई नारदने कहा है कि सत्यमें धर्म और साक्षीमें व्यवहार स्थित है; दैव प्रमाणसे जो सिद्ध होसकै उसमें लेख्य और मानुष प्रमाण न दे, स्थावर विवादोंमें प्रत्यर्थी दंडका अवष्टंभ करके चाहे दिव्यका स्वीकार करले तौभी सामंत आदि दृष्ट (दीखते) प्रमाण मिले तो दिव्यको ग्रहण न करै इस विकल्पके निराकरणार्थ स्थावर विवादोंमें दिव्योंको वर्ज दे यह पितामहका वचन आत्यतिक दिव्यके निराकरणार्थ नहीं है, क्योंकि लिखित सामंत आदिके अभावमें स्थावर विवादोंमें निर्णयका अभाव हो जायगा ॥

भावार्थ-अर्थी और प्रत्यर्थी परस्परके रुचिसे दिव्यको कोई एक स्वीकार करै और दूसरा शरीरके वा धनके दंडको स्वीकार करै वहां और राजाका द्रोह वा पातकमें शीर्षक (शरीरबाधनके दंड) के विनाभी दिव्यको स्वीकार करै ॥ ९६ ॥

सचैलंस्नातमाहूय सूर्योदय उपोषितम्। कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ९७॥

पद-सचैलम् २ स्नातम् २ आहूयऽ-सूर्योदये ७ उपोषितम् २ कारयेत् क्रि-सर्वदिव्यानि २ नृपब्राह्मणसन्निधौ ७ ॥

योजना-सूर्योदये सचैलम् स्नातम् उपोषितम् आहूय नृपब्राह्मणसन्निधौ सर्वदिव्यानि कारयेत्॥

तात्पर्यार्थ-पहिले दिन किया है उपवास जिसने और सूर्योदयपर सचैल स्नान किये दिव्य देनेवालेको बुलाकर नृप और सभासद ब्राह्मणोंके समीपमें प्राड्विवाक संपूर्ण दिव्यों को करै, और पितामहने, जो यह उपवासका विकल्प कहाहै वह प्रबल निर्बल महान् कार्य और अल्पकार्यकी अपेक्षासे समझनो कि तीन रात्रके उपासे वा एक रात्रके उपासे शुद्ध और आर्द्र (गीले) वस्त्र धारण किये पुरुषको सदैव दिव्य देने, और दिव्य करानेवाले प्राड्विवाककोभी उपवासका नियम है, क्योंकि पितामहका वचन है कि, राजाकी आज्ञाके अनुसार उपवासको करके प्राड्विवाक उस प्रकार सब दिव्योंमें कार्योंको करै जैसे यज्ञोंमें अध्वर्यु । यद्यपि यहां सूर्योदयमेंही अविशेषसे कहाहै तथापि शिष्टोंके समाचारसे आदित्यवारको दिव्य दे, और उसमेंभी, यह पितामहका कहा विशेष जानने योग्य है, कि पूर्वाह्णमें अग्निकी परीक्षा और तुला, मध्याह्नमें जल, धर्मतत्त्वका अभिलाषी पूर्वाह्णमें कोशकी सिद्धि और रात्रिके पिछले प्रहर शीतल समयमें विष दे । जिनमें कालका विशेष नहीं कहा ऐसे तंदुल तप्तमाष आदि पूर्वाह्णमेंही देने, क्योंकि नारदकी यह सामान्य स्मृति है कि पूर्वाह्णमें सब दिव्योंका देना कहा है । दिनके तीन भाग करके पूर्वभागको पूर्वाह्ण मध्य भागको मध्याह्न उत्तर भागको अपराह्ण कहते हैं । तैसेही अन्यभी कालविशेष विधि और निषेध मुखसे दिखायाहै, उसमें विधिमुखसे यह है कि शिशिर-हेमत और वर्षाऋतुमें अग्निका, शरद्

---

१ तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिणि । दैवसाध्ये पौरुषेयीं न लेख्यं वा प्रयोजयेत् ॥

१ त्रिरात्रोपोषिताय स्यादेकरात्रोषिताय वा । नित्य दिव्यानि देयानि शुचये चार्द्रवाससे ॥

२ दिव्येषु सर्वकार्याणि प्राड्विवाकः समाचरेत् । अध्वरेषु तथाध्वर्युः सोपवासो नृपाज्ञया ।

३ पूर्वाह्णेऽग्निपरीक्षा स्यात्पूर्वाह्णे च घटो भवेत् । मध्याह्ने तु जलं देयं धर्मतत्त्वमभीप्सता॥ दिवसस्य तु पूर्वाह्णे कोशशुद्धिर्विधीयते । रात्रौ तु पश्चिमे यामे विषं देयं सुशीतले ॥

४ पूर्वाह्णे सर्वदिव्यानां प्रदानं परिकीर्तितम् ।

५ अग्नेः शिशिरहेमन्तौ वर्षाश्चैव प्रकीर्तिताः। शरद्ग्रीष्मेषु सलिलं हेमन्तशिशिरे विषम् ॥ चैत्रो मार्गशिराश्चैव वैशाखश्च तथैवच। एते साधारणा मासा दिव्यानामविरोधिनः ॥ कोशस्तु सर्वदा देयस्तुला स्यात्सार्वकालिकी॥

और ग्रीष्ममें जलका, हेमंत शिशिरमें विषका दान करै। चैत्र मार्गशिर वैशाख ये साधारण मास दिव्योंके देनेमें विरोधी नहीं हैं। कोश और तुला ये दोनों सब कालोंमें होतेहैं। यहां कोशका ग्रहण सपूर्ण शपथोंका उपलक्षण है। तडुलोंका कोई विशेष काल नहीं कहा इससे सब कालमें देने। निषेध मुखसेभी यह है कि शीतकालमें जलकी और उष्णकालमें अग्निकी सिद्धि नहीं है। और वर्षाऋतुमें विष न दे और प्रवात (अतिपवन) के समय तुला न दे। अपराह्न, सध्या, मध्याह्नमें कदाचित् न दे। शीतकालमें जलकी सिद्धि नहीं होती। यह शीतशब्दसे हेमंत शिशिर वर्षाका ग्रहण है और उष्णकालमें अग्निसे शुद्धि नहीं। यहांभी उष्णशब्दसे लब्ध हुएभी ग्रीष्म और शरद्का पुनः निषेध आदरके लिये है। इसका प्रयोजन तो कहेंगे॥

भावार्थ–प्रथम दिनके उपासे और सूर्योदयपर सचैल स्नान किये पुरुषको आह्वान (बुलाना) करके राजा और सभासद् ब्राह्मणोंके समीप धर्माधिकारी सब दिव्य प्रमाणोंको करावें॥ ९७॥

तुला स्त्रीबालवृद्धांधपंगुब्राह्मणरोगिणाम्॥ अग्निर्जलं वाशूद्रस्य यवाः सप्तविषस्यवा९८

पद–तुला १ स्त्रीबालवृद्धान्धपंगुब्राह्मणरोगिणाम् ६ अग्निः १ जलम् १ वाऽ–शूद्रस्य ६ यवाः १ सप्त १ विषस्य ६ वाऽ–॥

योजना–स्त्रीबालवृद्धांधपगुब्राह्मणरोगिणाम् तुला स्यात्। क्षत्रियवैश्ययोः अग्निः वा जलं शूद्रस्य विषस्य सप्त यवाः स्युः शोधनार्थमिति शेषः॥

१ न शीते तोयसिद्धिःस्यान्नोष्णकालेऽग्निशोधनम्। न प्रावृषि विषं दद्यात्प्रवाते न तुलां तथा॥ नापराह्णे न संध्यायां न मध्याह्ने कदाचन॥

तात्पर्यार्थ–संपूर्ण स्त्री चाहे वे कोई जातिकी वा किसी अवस्थाकी हो, इसी प्रकार जातिविशेषको छोडकर सोलह वर्षसे प्रथमका बालक, अस्सी वर्षका वृद्ध, अंध, पगु (लगडा), सब प्रकारके ब्राह्मण, रोगी इनकी शुद्धिके लिये तुलाही होतीहै यह नियम है। अग्नि (तपाई फाल वा तपाया माष) क्षत्रियको और वैश्यको केवल जल शोधनेके लिये होता है। यहां वा शब्दका निश्चय अर्थ है। और विषके सात यव (जो) जिनका प्रमाण कह आये हैं शूद्रकी शुद्धिके लिये होते हैं। ब्राह्मणको तुला कही और शूद्रको विषके सात यव कहे इससे अग्नि और जल क्षत्रिय और वैश्यके लिये कहे हैं यही बात पितामहने स्पष्ट की है, कि ब्राह्मणको तुला देना, क्षत्रियको अग्नि, वैश्यको जल, शूद्रको विष दिवावै। जो स्मृतिमें स्त्रियोंको दिव्यका अभाव कहाहै कि व्रतवाले, अत्यत दुःखी, रोगी, तपस्वी और स्त्री इनको धर्मकी अपेक्षावाला राजा दिव्य न दे। यह वचन इस विकल्पकी निवृत्तिके लिये कि रुचिसे कोईसे दिव्यका स्वीकार करै। यह उक्त समझना कि अवष्टंभ (रोक) के अभियोगोंमें स्त्री आदि अभियोक्ता (दावेदार) होय तो जिनपर अभियोग हो उनकोही दिव्य होता है और स्त्री आदिकोंपर अभियोग होय तो अभियोग करनेवालोंपरही दिव्य होता है। परस्पर अभियोगमें तो विकल्पही होता है, उनमेंभी तुलाही होती है, यह नियम इस वचनसे किया है। तैसे ही महापातक आदि शंकाके अभियोगोंमें स्त्री

१ ब्राह्मणस्य धटो देयः क्षत्रियस्य हुताशनः। वैश्यस्य सलिलं प्रोक्तं विषं शूद्रस्य दापयेत्॥

२ सव्रतानां भृशार्तानां व्याधितानां तपस्विनाम्। स्त्रीणां च न भवेद्दिव्यं यदि धर्मस्त्वपेक्षितः॥

आदिकोंको तुलाही होती है, यह वचन इससेही सार्थक हो सकता है। सब दिव्योंमें साधारण जो मार्गशिर चैत्र वैशाख आदि मास हैं उनमें स्त्री आदिकोंको सब दिव्योंके होनेपरभी तुलाही देनी, कुछ सब कालोंमें स्त्रियोंको तुला दे इससेही सार्थक यह वचन नहीं समझना, क्योंकि इसे वचनसे विष जलको छोडकर तुला कोश अग्नि आदिसे स्त्रियोंकी शुद्धि कही है कि स्त्रियोंको विष और जल नहीं कहे,तुला और कोश आदिसे उनके अतःकरणको विचारै, इसी प्रकार बालक आदिमेंभी समझना, जैसे ब्राह्मण आदिकोंको सब कालोंमें तुला आदिका नियम नहीं है, क्योंकि यह पितामहका वचन है कि सब वर्णोंकी कोशसे शुद्धि कही है और तुला आदि सब वर्णोंकी ब्राह्मणको विष छोडकर होते हैं, तिससे साधारण कालमें बहुत दिव्योंके होनेपर तुला आदिके नियमके लियेही यह वचन है, और अन्यकालमें तो सबको तिस २ कालमें कहा हुआ दिव्य होता है, सोई दिखाते हैं कि वर्षा ऋतुमें अग्निही सबको होता है, हेमन्त और शिशिरमें क्षत्रिय आदि तीनोंको अग्नि और विषमें विकल्प है और ब्राह्मणको अग्निही दे, कदाचित्भी विष नही, क्योंकि ब्राह्मणको विषके विना दिव्य यह निषेध है, ग्रीष्म और शरद्में तो जलही दे और जिनको विशेष व्याधियोंके कारण अग्नि आदिकोंका निषेध है कि कुष्ठियोंको अग्नि, श्वासकासवालोंको जल, पित्त और कफवालोंको विष सदैव वर्जदे। उनको अग्नि आदिके कालमेंभी साधारण तुला आदिही दिव्य होता है। तैसेही जल अग्नि विष ये बलधारी मनुष्योंको दे। इस वचनसे दुर्बल मनुष्योंको सर्वथा विधि और निषेधसे ऋतुकालके अनुसार जाति अवस्था और देहके अनुसार दिव्य देने ॥

भावार्थ-स्त्री, बालक, वृद्ध, अंधे, पंगु, ब्राह्मण, रोगी इनको तुलाही दिव्य दे। और तपाया फाल और तपाया माषरूप अग्नि क्षात्रियको और वैश्यको केवल जल और शूद्रको सात विषके यव (जौ) शुद्धिके लिये दे॥९८॥

नासहस्राद्धरेत्फालं न विषं न तुलां तथा।
नृपार्थेष्वभिशापे च वहेयुः शुचयः सदा॥९९॥

पद-नऽ-आसहस्रात्ऽ-हरेत् क्रि-फालम् २ नऽ-विषम् २ नऽ-तुलाम् २ तथाऽ-नृपार्थेषु ७ अभिशापे ७ चऽ-वहेयुः क्रि-शुचयः १ सदाऽ- ॥

योजना-आसहस्रात् फालं, विष तथा तुलां न हरेत् (न कारयेत्) नृपार्थेषु च पुनः अभिशापे उपवासादिना शुचयः सदाः वहेयुः(कुर्युः)।

तात्पर्यार्थ-सहस्र पणके दंडके नीचे फाल विष तुला इन तीन दिव्योंको न करै, और इनके मध्यमें पढे जलकोभी न करै, सोई कहा है कि तुलासे विषपर्यंत गुरु अर्थोंके विषयमें दे, यह कोशका ग्रहण इस लिये नही किया कि यह स्मृति है कि अल्प अभियोगमेंभी कोश रूप दिव्यको दे, इन चारों दिव्योंको सहस्र पणसे ऊपरही दे नीचे न दे कदाचित् कोई शंका करै कि पितामहने सहस्रपणसे

१ स्त्रीणां च न विषं प्रोक्तं न चापि सलिलं स्मृतम्। घटकोशादिभिस्तासामंतस्तत्त्वं विचारयेत् ॥

२ सर्वेषामेव वर्णानां कोशशुद्धिर्विधीयते । सर्वाण्येतानि सर्वेषां ब्राह्मणस्य विषं विना ॥

३ ब्राह्मणस्य विषं विना ।

४ कुष्ठिनां वर्जयेदग्निं सलिलं श्वासकासिनाम् । पित्तश्लेष्मवतां नित्यं विषं तु परिवर्जयेत् ॥

१ तोयमग्निं विषं चैव दातव्यं बलिनां नृणाम् ॥

२ तुलादीनि विषांतानि गुरुष्वर्थेषु दापयेत् ।

३ कोशमल्पेपि दापयेत् ।

नीचेभी अग्नि आदि दिखाये हैं कि सहस्र पणमें तुलाको, आधे सहस्रमें लोहेको, उससे आधेमें जलको और उससे आधेपर विषको देना कहा है। वह शंका सत्य है, उसकी यह व्यवस्था है कि जिस द्रव्यके हरनेसे पतित होजाय उसमें तो पितामहका वचन और इतर द्रव्यके विषयमें योगीश्वरका वचन है। ये दोनों वचन चोरी और साहसके विषयमें हैं। अपह्नव (झूठ) में विशेष तो कात्यायनने दिखाया है कि जहां दिये हुएका अपह्नव हो वहां प्रमाणकी कल्पना करै । चोरी और साहसमें दिव्यप्रमाणको अत्यत अल्प अर्थमेंभी दे। संपूर्ण द्रव्यके प्रमाणको देखकर सोनेकी कल्पना करै और सोनेका जितना प्रमाण हो उतनाही दिव्य दे। सोनेकी संख्याको जानकर यदि सौ सुवर्णका नाश हुआ होय तो विषको देना कहा है। अस्सीका नाश हुआ होय तो अग्निका देना कहा है। साठके नाशमें जल, चालीसके नाशमें तुला, तीसके नाशमें कोशका पान कहाहै । पांचसे अधिकके नाशमें और उसके आधेकेभी आधेके नाशमें तंडुलप्रमाण कहाहै । उससे आधेकेभी अर्धके नाशमें पुत्र आदिके मस्तकका स्पर्श करे। और उससे आधेकेभी आधेके नाशमें लौकिकक्रिया करनी कहीहै । इस प्रकार विचारता हुआ राजा धर्म और अर्थसे हीन नहीं होता। सुवर्णोंकी सख्याको जानकर यहां सुवर्णपदसे पूर्वोक्त सोलह मासे सोना लेना और नाशशब्दसे अपह्नव लेना । और सहस्रसे नीचे फाल न दे। यहां तांवेके सहस्र पण लेने। और राजाका द्रोह और महापातकके अभियोगमें द्रव्यकी सख्याको छोडकर इन सब दिव्योंको उपवास आदिसे शुद्ध हुए मनुष्य सदैव करै । तैसेही देशविशेष नारदने कहाहै कि सभा, राजकुलका द्वार, देवमदिर, चौराहा इनमें धूपमाला चदन इनसे पूजा करके निश्चल तुलाका स्थापना करै। व्यवस्थाभी कात्यायनने कहीहै कि पतित और महापातकी मनुष्योंको इन्द्र (मंदिर) के स्थानमें और राजाके द्रोहियोंको राजद्वारमें और प्रतिलोमसे (ऊंचे वर्णकी कन्यामें नीचे वर्णसे) पैदा हुओंको चौराहेमें और इनसे जो अन्य हैं उनको सभाके मध्यमें बुद्धिमानोंने दिव्य देना कहाहै । और स्पर्शके अयोग्य नीच और दासोंको, म्लेच्छ और पापियोंको और प्रतिलोमसे पैदा हुओंको निश्चयसे राजाके समुख दिव्य दे । और पूर्वोक्तोंमें सदेह होय तो तिन २ में जो २ दिव्य प्रसिद्ध हों वे २ ही दे ॥

भावार्थ—सहस्र तांबेके पणोंसे नीचे फाल, विष, तुला इन दिव्योंको न करै। और राजाका द्रोह और महापातकके अभियोग (दावा) में उपवास आदिसे शुद्ध होकर सदैव दिव्यको करैं ॥ ९९ ॥ इति दिव्यमातृका ॥

१ सहस्रे तु घट दद्यात् सहस्रार्धे तथायसम् । अर्धस्यार्धे तु सलिल तस्यार्धे तु विप स्मृतम् ॥

२ दत्तस्यापह्नवो यत्र प्रमाण तत्र कल्पयेत् । स्तेयसाहसयोर्दिव्यं स्वल्पेऽप्यर्थे प्रदापयेत्॥सर्वद्रव्यप्रमाण तु ज्ञात्वा हेम प्रकल्पयेत्। हेमप्रमाणयुक्त तु तदा दिव्य नियोजयेत्॥ ज्ञात्वा सख्यां सुवर्णानां शतनाशे विष स्मृतम्। अशीतेस्तु विनाशे वै दद्यादेव हुताशनम् ॥ षष्ट्या नाशे जलं देयं चत्वारिंशति वै घटम् । विंशद्दशविनाशे तु कोशपानं विधीयते॥ पचाधिकस्य वा नाशे ततोऽर्धार्धस्य तंडुलाः । ततोऽर्धार्धविनाशे हि स्पृशेत्पुत्रादिमस्तकान्॥ ततोऽर्धार्धविनाशे तु लौकिक्यश्च क्रियाः स्मृता. । एव विचारयन् राजा धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥

१ सभाराजकुलद्वारे देवायतनचत्वरे । निधेयः निश्चलः पूज्यो धूपमाल्यानुलेपनैः ॥

२ इन्द्रस्थानेऽभिशस्तानां महापातकिनां नृणाम् । नृपद्रोहे प्रवृत्तानां राजद्वारे प्रयोजयेत् ॥ प्रातिलोम्यप्रसूतानां दिव्य देयं चतुष्पथे।अतोऽन्येषु सभामध्ये दिव्य देय विदुर्बुधाः ॥ अस्पृश्याधमदासानां म्लेच्छानां पापकारिणाम् । प्रातिलोम्यप्रसूतानां निश्चयोऽत्र तु राजनि ॥ तत्प्रसिद्धानि दिव्यानि संशये तेषु निर्दिशेत् ॥

तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः ।
प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वावतारितः ॥

पद-तुलाधारणविद्वद्भिः ३ अभियुक्तः १ तुलाश्रितः १ प्रतिमानसमीभूतः १ रेखाम् २ कृत्वाऽ-अवतारितः १ ॥

त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता ।
तत्सत्यं वद कल्याणि संशयान्मां विमोचय ॥

पद-त्वम्- १ तुले १ सत्यधामा १ असि-क्रि-पुराऽ-देवैः ३ विनिर्मिता १ तत्ऽ-सत्यम्ऽ-वद क्रि-कल्याणि १ संशयात् ५ माम् २ विमोचय क्रि- ॥

यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय ।
शुद्धश्चेद्गमयोर्ध्वं मां तुलामित्यभिमंत्रयेत् ॥

पद-यदिऽ-अस्मि क्रि-पापकृत् १ मातः १ ततःऽ-माम् २ त्वम् १ अधःऽ-नय क्रि-शुद्धः १ चेत्ऽ-गमय क्रि-ऊर्ध्वम् ऽ-माम् २ तुलाम् २ इतिऽ-अभिमंत्रयेत् क्रि- ॥

योजना-तुलाधारणविद्वद्भिः तुलाश्रितः प्रतिमानसमीभूतः रेखां कृत्वा अवतारितः अभियुक्तः। हे तुले! पुरा देवैः विनिर्मिता त्वं सत्यधामा असि तत् (तस्मात्) हे कल्याणि ! सत्यं वद मां संशयात् विमोचय। हे मातः ! यदि पापकृत् अस्मि ततः (तर्हि) मां त्वम् अधः नयं। चेत् (यदि) शुद्धः तर्हि माम् ऊर्ध्वं गमय इति तुलाम् अभिमंत्रयेत् (प्रार्थयेत्) ॥

तात्पर्यार्थ-तुलाके धारण (तोल) को जो सुनार आदि जानते हों वे मिट्टी आदिके प्रतिमान (तोल) से अभियुक्त वा अभियोग करनेवालेको सम (बराबर) करें और दिव्यका कारी प्रतिमान करनेके समयमें छीकेके नीचे जहां अभियुक्त टिकाहो वहा पांडु आदिसे एक रेखा कर दे इस प्रकार तोला हुआ वह फिर तुलाका इस प्रकार मंत्र पढकर अभिमंत्रण (प्रार्थना) करे कि हे तुले ! तू सत्यका स्थान है और पहिले (आदि सृष्टिके समयमें) हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) आदि देवताओंसे तू रची है तिससे तू सत्य कहिये अर्थात् सदिग्ध अर्थके स्वरूपको दिखाइये और हे कल्याणि ! इस सशयसे मुझे छुटावो। यदि हे मातः ! मैं पापकर्मा हू अर्थात् झूठा हू तो तू मुझे नीचे करियो और यदि मै शुद्ध (सत्यवादी) हू तो मुझे तू ऊपरको पहुचाइयो । यह मत्र दिव्यप्रमाण करनेवालेका है और प्राड्विवाक जिस मत्रसे तुलाका अभिमत्रण करै वह मंत्र अन्य स्मृतियोंमें कहाहै । जय पराजयका स्वरूप तो इस पूर्वोक्त मत्रसेही जाना गया इससे पृथक् नहीं कहाहै । तुलाका बनाना और पुनः (दुबारा) तुला पर बैठना यह सब अर्थात् सिद्ध है । और वह इस प्रकार पितामह नारद आदिकोंने

१ छित्वा तु यज्ञिय वृक्ष यूपवन्मत्रपूर्वकम् । प्रणम्य लोकपालेभ्यस्तुला कार्या मनीषिभिः ॥ मत्रः सौम्यो वानसपत्यश्छेदने जप्य एव च। चतुरस्रा तुला कार्या दृढा ऋज्वी तथैव च ॥ कटकानि च देयानि त्रिषु स्थानेषु चार्थवत्। चतुर्हस्ता तुला कार्या पादौ चोपरि तत्समौ॥ प्रांतर तु तयोर्हस्तौ भवेदध्यर्धमेव वा। हस्तद्वय निखेय तु पादयोरुभयोरपि ॥तोरणे च तथा कार्ये पार्श्वयोरुभयोरपि । घटादुच्चतरे स्यातां नित्य दशभिरगुलैः ॥ अवलबौ च कर्तव्या तोरणाभ्यामधोमुखौ । मृन्मयौ सूत्रसबद्धौ घटमस्तकचुम्बिनौ ॥ प्राड्मुखौ निश्चलः कार्यः शुचौ देशे घटस्तथा । शिक्यद्वय समासज्य पार्श्वयोरुभयोरपि॥ प्राड्मुखान्कल्पयेद्भान् शिक्ययोरुभयोरपि । पश्चिमे तोलयेत्कर्तॄनन्यस्मिन्मृत्तिका शुभाम् ॥पिटक पूरयेत्तस्मिन्निष्टकाग्रावपांसुभि. । अत्र च मृत्तिकेष्टकाग्रावपांसूनां त्रिकल्पः ॥ परीक्षका नियोक्तव्यास्तुलामानविशारदाः । वाणिजो हेमकाराश्च कांस्यकारास्तथैव च ॥ कार्यः परीक्षकैर्नित्यमवलम्बसमो घटः । उदक च प्रदातव्य घटस्योपरि पाण्डितैः ॥यस्मिन्न प्लवते तोय स विज्ञेयः समो घटः

स्पष्ट किया है कि यज्ञके यूपके समान मन्त्रोंको पढकर यज्ञके वृक्षको काटै। और लोकपालोंको प्रणाम करके बुद्धिमान् मनुष्य तुलाको बनवावै। और काटनेके समयमें वनस्पति है देवता जिसका ऐसे सौम्य मन्त्रको जपै। और चौकोर

तोलयित्वा नरं पूर्वं पश्चात्तमवतार्य तु॥ घटं तु कारयेन्नित्यं पताकाध्वजशोभितम्। तत आवाहयेद्देवान् विधिनानेन मंत्रवित्॥ वादित्रतूर्यघोषैश्च गंधमाल्यानुलेपनैः। प्राङ्मुखः प्रांजलिर्भूत्वा प्राड्विवाकस्ततो वदेत्॥ एह्येहि भगवन्धर्म ह्यस्मिन्दिव्ये समाविश। सहितो लोकपालैश्च वस्वादित्यमरुद्गणैः॥ अवाह्य तु घटे धर्मं पश्चादंगानि विन्यसेत्। इंद्रं पूर्वे तु संस्थाप्य प्रेतेशं दक्षिणे तथा॥ वरुणं पश्चिमे भागे कुबेरं चोत्तरे तथा। अग्न्यादिलोकपालांश्च कोणभागेषु विन्यसेत्॥ इंद्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः। कुबेरस्तु सुवर्णाभो वह्निश्चापि सुवर्णभः॥ तथैव निर्ऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते। ईशानस्तु भवेद्रक्त एवं ध्यायेत्क्रमादिमान्॥ इंद्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनाराधयेद्बुधः। धरो ध्रुवस्तथा सोम आपश्चैवानिलोनलः॥ प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः। देवेशेशानयोर्मध्ये आदित्यानां तथा गुणम्॥ धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशुर्भगः स्तथा। इंद्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः॥ ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः। इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्तिताः॥ अग्निः पश्चिमभागे तु रुद्राणामयनं विदुः। वीरभद्रश्च शंभुश्च गिरिशश्च महायशाः॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः। भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पतिः॥ स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः। प्रेतेशरक्षोमध्ये तु मातृस्थानं प्रकल्पयेत्॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा। वाराही चैंद्री माहेन्द्री चामुण्डा गणसंयुता॥ निर्ऋतेरुत्तरे भागे गणेशायतनं विदुः। वरुणोस्योत्तरे भागे मरुतां स्थानमुच्यते॥ गगनः स्पर्शनो वायुरनिलो मारुतस्तथा। प्राणः प्राणेशजीवौ च मरुतोऽष्टौ प्रकीर्तिताः॥ घटस्योत्तरभागे तु दुर्गामावाहयेद्बुधः। एतासां देवतानां तु स्वनाम्ना पूजनं विदुः॥ भूषा वसानि धर्माय दत्त्वा चार्घ्यादिकं क्रमात्। अर्घ्यादिपश्चादंगानां भूपांतमुपकल्पयेत्॥ गंधादिकां नैवेद्यांतां परिचर्यां प्रकल्पयेत्॥

दृढ और कोमल तुला करनी और उसके तीन स्थानोंमें कडे लगाने। चार हाथकी तुला हो और ऊपरके पायेभी चारही हाथके हों उन दोनोंका अंतर (फरक) मध्यमें एक वा आधे हाथका हो। और दोनों पादोंका निखेय (गाडना) दो हाथका हो और दोनों पार्श्वोंमें एक २ तोरण हो। वे दोनों तुलासे दश अंगुल ऊंचे हों और तुलाके मस्तकपर नीचेको है मुख जिनका और सूतसे जो बंधेहों ऐसे दो अवलंब हो। उनका और तुलाका मुख पूर्वको हो और वह शुद्ध देशमें करनी और निश्चल बनानी। दोनों पार्श्वोंमें दो छींके बांधदे। और उन छींकोंके ऊपर पूर्वाभिमुख कुशाओंको रक्खे। पश्चिमके छींकेपर कर्ताओंको तोलै और पूर्वके छींकेपर श्रेष्ठ मिट्टीको तोलै। छींकेके पिटक (पिटारी) को ईंट पत्थर वा धूलिसे पूर्ण करदे यहां मिट्टी ईंट पत्थर वा धूलि इनमें विकल्प समझना और तुलाके तोलनेमें चतुर परीक्षकोंको नियुक्त करै। वे वैश्य सुनार, वा कांसीकर हों, वे परीक्षक तुलाको अवलंबमें समान करें और तुलाके ऊपर जल डारैं जिस तुलाका जल इधर उधरको न गिरै वह सम जाननी इस प्रकार मनुष्यका तोल करै और उतारकर तुलाको ध्वजा और पताकासे सदैव शोभित करै फिर मंत्रका वेत्ता इस विधिसे देवताओंका आवाहन करै कि फिर वादित्र और तूर्यके शब्दोंसे गंध पुष्प चंदनसे तुलाकी पूजा करके पूर्वाभिमुख और हाथ जोडकर प्राड्विवाक यह कहै कि हे भगवन् धर्म ! तुम आओ लोकपाल वसु आदित्य और मरुद्गणोंसहित इस दिव्यमें समावेश करो इस प्रकार तुलामें धर्मका आवाहन करके फिर अंगन्यास करै कि पूर्वमें इंद्रका, दक्षिणमें यमका, पश्चिममें वरुणका,

उत्तरमें कुबेरका और अग्नि आदि कोणोंमें अग्नि आदि लोकपालोंका न्यास करै इनमें इंद्र पीला, यम श्याम, वरुण स्फटिकके समान, कुबेर और अग्नि सुवर्णके समान और निर्ऋति श्याम और वायु धूम्र और ईशान रक्तरूप है इस प्रकार क्रमसे इनका ध्यान करै और इंद्रके दक्षिण पार्श्वमें बुद्धिमान् मनुष्य वसुओंकी आराधना करै। धर, ध्रुव, सोम, आप, पवन, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभात ये आठ वसु कहे हैं। इंद्र ईशानके मध्यमें आदित्योंके गणकी आराधना करै। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशु, भग, इंद्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा और विष्णु जो विष्णु छोटे बडे रूपसे दो प्रकारका है ये बारह आदित्य नामोंसे कहे हैं। और अग्निसे पश्चिमके भागमें रुद्रोंका स्थान कहते हैं। वीरभद्र, शंभु, गिरीश, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, भुवनाधीश्वर, कपाली, स्थाणु, भव ये ग्यारह रुद्र कहे हैं। यम और निर्ऋतिके मध्यमें मातृओंके स्थानकी कल्पना करै। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा ये सात गुणसे युक्त मातर हैं। निर्ऋतिसे उत्तर भागमें गणेशका और वरुणसे उत्तर भागमें मरुतोंका स्थान कहा है। गगन, स्पर्शन, वायु, अनिल, मारुत, प्राण, प्राणेश, जीव ये आठ मरुत् कहे हैं। तुलाके उत्तर भागमें बुद्धिमान् मनुष्य दुर्गाका आवाहन करै। इन सब देवताओंका अपने २ नामसे पूजन कहा है। धर्मको भूषण और वस्त्र देकर क्रमसे अर्घ्य आदि दे। फिर अंगके देवताओंको अर्घ्यसे भूषण पर्यंत देकर गंधसे नैवेद्य पर्यंत पूजा करै। और यहां पताका और ध्वजासे तुलाको शोभित करके और उस तुलामें एहि एहि इस पूर्वोक्त मंत्रसे धर्मका आवाहन करके धर्मको अर्घ्य देताहू धर्मको नमस्कार है इत्यादि प्रयोगसे अर्घ्य पाद्य आचमनीय और मधुपर्क आचमनीय स्नान वस्त्र यज्ञोपवीत आचमनीय मुकुट कटक आदि भूषण पर्यंत देकर इंद्र आदि दुर्गापर्यंत देवताओंको ओंकार जिनकी आदिमें चतुर्थी और नमः जिनके अंतमें ऐसे अपने २ नाम मंत्रोंसे (ओं दुर्गायै नमः इत्यादि) अर्घ्यसे भूषणपर्यंत पदार्थोंको समय २ पर देकर और धर्मको गंध पुष्प धूप दीप नैवेद्य देकर इंद्र आदिकोंकोभी पूर्वके समान गंध आदि दे और तुलाकी पूजामें गंध पुष्प रक्त लेने सोई नारदने कहाहै कि रक्त गंध और पुष्प, दधि पूए और अक्षत आदिसे प्रथम तुलाकी पूजा करके शिष्टोंका पूजन करै। और इंद्र आदिकी पूजामें विशेष नहीं कहा इससे जैसे मिल सकै रक्त वा अन्य पुष्पोंसे पूजा करै, यह पूजाका क्रम है। इस पूर्वोक्त सबको प्राड्विवाकभी करै सोई कहाहै कि फिर वेदवेदांगका पारगामी वेद और आचरणसे युक्त शांतचित्त मत्सरसे मुक्त सत्यवादी शुद्ध चतुर सब प्राणियोंका हितकारी और उपवास शुद्धवस्त्रोंका धारण इनको करके प्राड्विवाक ब्राह्मण सब देवताओंकी पूजा विधिसे करै तैसेही चार ऋत्विजोंसे तुलाकी चार दिशाओंमें होम करै सोई कहाहै कि वेदके पारगामी ब्राह्मण घी हवि और होमके साधन समिधोंसे स्वाहा है अंतमें जिसके

---

१ रक्तैर्गंधैश्च माल्यैश्च दध्यपूपाक्षतादिभिः । अर्चयेत्तु घटं पूर्वं ततः शिष्टांस्तु पूजयेत् ॥

२ प्राड्विवाकस्ततो विप्रो वेदवेदांगपारगः । श्रुतवृत्तोपसंपन्नः शांतचित्तो विमत्सरः ॥ सत्यसंधः शुचिर्दक्षः सर्वप्राणिहिते रतः । उपोषितः शुद्धवासाः कृतदन्तानुधावनः ॥ सर्वासां देवतानां च पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥

३ चतुर्दिक्षु तथा होमः कर्तव्यो वेदपारगैः । आज्येन हविषा चैव समिद्भिर्होमसाधनैः ॥ सावित्र्या प्रणवेनाथ स्वाहान्तेनैव होमयेत् ॥

ऐसी ओंकारसहित गायत्रीसे होम करै अर्थात् ओंकार आदि गायत्रीको पढकर फिर स्वाहा है अंतमें जिसके ऐसे ओंकारको पढकर समिध घी चरु इनकी प्रत्येक अष्टोत्तरशत १०८ आहुति दे। इस प्रकार हवनपर्यंत देव पूजा करनेके अनतर वक्ष्यमाण मन्त्रसाहित अभियुक्त अर्थ (दावेका धन) को पत्रपर लिखकर उस पत्रको शोध्य (शुद्ध करने योग्य) मनुष्यके शिरपर रक्खै, सोई कहाहै कि जो यथार्थ अभियोग हो उसको इस मंत्रसहित पत्रपर लिखकर शिरपर रक्खै, वह मत्र यह है कि सूर्य चंद्रमा पवन अग्नि द्यौ (आकाश) भूमि जल हृदय यम दिन रात्रि दोनों संध्या और धर्म ये सब मनुष्यके वृत्तांतको जानते हैं, यह धर्मके आवाहनसे लेकर शिरपर पत्र रखने पर्यंत कर्मका समूह सब दिव्योंमें साधारण है, सोई कहाहै कि इस सपूर्ण मंत्रविधिको सब दिव्योंमें करै, तैसेही सब देवताओंका आवाहनभी करै, फिर प्राड्विवाक तुलाकी प्रार्थना करै क्योंकि यह स्मृति है कि शास्त्रका ज्ञाता इस विधिसे तुलाकी प्रार्थना करै उसके मत्र ये दिखाये हैं कि हे धट (तुले)! तुझे दुरात्माओंकी परिक्षाके लिये ब्रह्माने रचा है। धकारसे तू धर्ममूर्ति है औरं टकारसे कुटिल नरको धारण करके विचारती है इससे तुझे धट कहते हैं, तू सब जतुओंके पुण्य और पापको जानतीहै, हे देव! जिसको मनुष्य नहीं जानते उसको तू जानती है, व्यवहारमें अभिशस्त हुआ मनुष्य शुद्धिको चाहता है तिससे धर्मके अनुसार सशयसे इसकी रक्षा करने योग्य तू है। शुद्धिके योग्य मनुष्य तो त्व तुले इत्यादि पूर्वोक्त मत्रसे तुलाकी प्रार्थना करै फिर प्राड्विवाक शिरपर रक्खे हुए पत्रको शोधन करके और अनुकूल स्थानमें रखकर तुलाके ऊपर शोध्य मनुष्यको बैठावे, क्योंकि यह स्मृति है कि कुछ काल टिककर और पत्रको रखकर फिर तुलाके ऊपर बैठावे, और बैठाकर पांच विनाडी इतने बीतें तबतक वैसेही स्थापित रक्खै और उस कालकी परीक्षा ज्योतिःशास्त्रका ज्ञाता ब्राह्मण करै क्योंकि यह स्मृति है कि ज्योतिषी श्रेष्ठ ब्राह्मण कालकी परीक्षा करै। पांच विनाडी पण्डितोंने परीक्षाका काल कहाहै, दश गुरु अक्षरोंका उच्चारण काल प्राण और छः प्राणोंकी विनाडी होतीहै सोई कहाहै कि दश गुरु वर्णोंका प्राण छः प्राणोंकी विनाडी और साठ विनाडियोंकी एक घटी और साठ घटियोंका एक अहोरात्र और तीस अहोरात्रोंका एक मास होताहै, और उस परीक्षाके कालमें राजा शुद्ध ब्राह्मणोंको नियतकरै वे शुद्धि और अशुद्धिको राजा-

१ यथार्थमभियुक्तः स्याल्लिखित्वा त तु पत्रके। मंत्रेणानेन सहित तत्कार्यं तु शिरोगतम्॥

२ आदित्यचंद्रावनिलोनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदय यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च सध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥

३ इम मन्त्रविधि कृत्स्न सर्वदिव्येषु योजयेत्। आवाहन च देवानां तथैव परिकल्पयेत्॥

४ धटमामन्त्रयेच्चैव विधिनानेन शास्त्रवित्।

५ त्व धट ब्रह्मणा सृष्टः परीक्षार्थं दुरात्मनाम्। धकाराद्धर्ममूर्तिस्त्व टकारात्कुटिल नरम्॥ धृतो भावयसे यस्माद्धटस्तेनाभिधीयते। त्व वेत्सि सर्वजतूनां पापानि सुकृतानि च॥ त्वमेव देव जानीपे न विदुर्यानि मानवाः। व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषः शुद्धिमिच्छति॥ तदेनं सशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि॥

१ पुनरारोपयेत्तस्मिन् स्थित्वावस्थितपत्रकम्।

२ ज्योतिर्विद्ब्राह्मणः श्रेष्ठः कुर्यात्कालपरीक्षणम्। विनाड्यः पच विज्ञेयाः परीक्षाकालकोविदैः॥

३ दशगुरुवर्णैः प्राणः षट्प्राणाः स्याद्विनाडिका तासाम्। षष्ट्या घटी घटीनां षष्ट्याहोरात्र उक्तश्च त्रिंशद्भिर्दिनैर्मासः॥

के प्रति कहैं, सोई पितामहने कहाहै कि साक्षियोंके मध्यमें जैसा देखें वैसेही अर्थको कहनेवाले ज्ञानी, शुद्ध, लोभरहित, ब्राह्मणोंको राजा नियुक्त करे वे राजाको शुद्धि वा अशुद्धिको कहैं और शुद्धि और अशुद्धिके निर्णयका कारणभी कहाहै कि यदि तोलमें बढ जाय तो निःसन्देह शुद्ध है और सम (उतनाका उतना) हो वा न्यून हो जाय तो वह मनुष्य शुद्ध नहीं होता, और जो यह पितामहका वचन है कि जो अल्प दोष है वह सम जानना और बहुत दोषवाला हीन (कम) होजाताहै उसका यह अभिप्राय है कि यदि अभियोगका अर्थ अल्प है वा बहुत है यह दिव्य प्रमाणसे निश्चय न होसके तोभी एक बार विना जाने अल्प और वारवार और जानकर महत्त्व दण्ड वा प्रायश्चित्तमें निश्चय समझना, और जब नहीं दीखते हुए दृष्ट कारणोंसे ही कोख (कुक्षि) आदिका छेदन वा भग होजाय तोभी अशुद्धिही समझनी, क्योंकि यह स्मृति है कि कक्षका छेदन, तुलाका भग, घडा और कर्कटका भग, रस्सीका छेदन, अक्षका भंग हो जाय तो उसी प्रकार अशुद्धि कहनी, कक्ष नाम छींकेका तल, कर्कट नाम तुलाके दोनों प्रांतके भागोंमें छींका लटकानेके कुछ वक्र लोहेके कीलक, कडीके तुल्य होतेहैं, अक्षनाम पादके स्तंभोंके ऊपर रक्खा हुआ तुलाका आधार पट्ट, जब किसी दीखते हुए कारणके वश इनका भंग होजाय तो तुलाको फिर रक्खे, क्योंकि यह स्मृति है कि छींके आदिका छेदन वा भग होजाय तो मनुष्यको फिर बैठावै, फिर ऋत्विज पुरोहित आचार्य इनको दक्षिणाओंसे प्रसन्न करै इस प्रकार करता हुआ राजा मनोरम भोगोंको भोगकर महती (बडी) कीर्तिको प्राप्त होताहै और अंत समयमें मुक्त होताहै। यदि राजा पूर्वोक्त तुलाका उसी प्रकार स्थापन रखना चाहै तो काक आदि उपघातों (नाशक) के निवारणार्थ कपाट आदि सहित शालाको बनवावै, क्योंकि यह स्मृति है कि विशाल, ऊंची, शुक्ल, घटकी ऐसी शाला बनवावै जिसमें स्थापन की हुई तुलाको कुत्ते चांडाल काक नष्ट न करैं, और उसी शालाकी दिशाओंमें लोकपालोंका स्थापन करै, और उनका गंध, पुष्प, चदनसे त्रिकाल पूजन करै, और जो शालाकी वाड और जो व्रीहि आदिके बीजोंसे युक्त और सेवकोंसे रक्षित हो और मिट्टी जल अग्नि इनसे युक्त हो और शून्यभी न हो ऐसी शालाको राजा बनवावै ॥

भावार्थ-तुलाके धारणको जो जानतेहों वे अभियुक्त पुरुष तुलापर रक्खै और प्रतिमान (वाट) के समान करके उसको उतारले, फिर वह अभियुक्त वा अभियोक्ता

---

१ साक्षिणां ब्राह्मणाः श्रेष्ठा यथा दृष्टार्थवादिनः । ज्ञानिनः शुचयोऽलुब्धा नियोक्तव्यो नृपेण तु । शंसंति साक्षिणः श्रेष्ठाः शुद्ध्यशुद्धी नृपे तदा ॥

२ तुलितो यदि वर्द्धेत स शुद्धः स्यान्न संशयः । समो वा हीयमानो वा न स शुद्धो भवेन्नरः ॥

३ अल्पदोषः समो ज्ञेयः बहुदोषस्तु हीयते ।

४ कक्षभेदे तुलाभगे घटकर्कटयोस्तथा । रज्जुच्छेदेऽक्षभगे वा तथैवाशुद्धिमादिशेत् ॥

१ शिक्यादिच्छेदभगेषु पुनरारोपयेन्नरम् ।

२ एव कारयिता राजा भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । महतीं कीर्तिमाप्नोति ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

३ विशालामुन्नतां शुभ्रां धटशालां तु कारयेत्। यत्रस्था नोपहन्येत श्वभिश्चांडालवायसैः ॥ तत्रैव लोकपालादीन् सर्वान् दिक्षु निवेशयेत् । त्रिसध्य पूजयेच्चैतान् गधमाल्यानुलेपनैः ॥ कपाटबीजसयुक्तां परिचारकरक्षिताम् । मृत्पानीयाग्निसंयुक्तामशून्यां कारयेन्नृपः ॥

तुलाकी इस प्रकार प्रार्थना करै कि हे तुले ! तू सत्यका स्थान है, देवताओंसे तू पहिले रची है, तिससे हे कल्याणि ! सत्य कहिये और संशयसे मुझे छुटाइये। हे मातः ! यदि मैं पापकर्मा हूं तौ मुझे नीचे करियो और जो मैं शुद्ध हूं तो ऊपरको पहुचाइयो अर्थात् मेरे पलडेको ऊचा करियो ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

इति धटविधिः।

करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वाततो न्यसेत्।
सप्ताश्वत्थस्य पत्राणितावत्सूत्राणिवेष्टयेत् ॥

पद–करौ २ विमृदितव्रीहेः ६ लक्षयित्वाऽ-ततःऽ–न्यसेत् क्रि–सप्त २ अश्वत्थस्य ६ पत्राणि २ तावत्ऽ–सूत्राणि २ वेष्टयेत् क्रि–॥

योजना–विमृदितव्रीहेः पुरुषस्य करौ लक्षयित्वा (अङ्कयित्वा) ततः अश्वत्थस्य सप्त पत्राणि न्यसेत्, तावत् सूत्राणि वेष्टयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–दिव्यमातृकामें कहे हुए साधारणधर्मोंके होते तुलाकी विधिमें कहे धर्मोंमें जो आवाहन शिरपर पत्रके रखनेके अंतमें अग्निकी विधिमें यह विशेष है,कि मले हैं हाथोंसे व्रीहि जिसने ऐसे पुरुषके हाथोंको देखै और हाथोंमें जहां २ काला तिल, व्रण, किण (रेखा) आदि स्थानोंमें लाखके रस आदिसे चिह्नको कर दे, सोई नारदने कहाहै कि हाथके सब क्षतों (चिह्न) में हंसपदोंको[1] करे, फिर सात पीपलके पत्तोंको अंजली किये हाथोंमें रखदे, क्योंकि यह स्मृति है कि[2] पीपलके सात पत्तोंसे अंजलीको पूर्ण करै, और हाथसहित उन पत्तोंपर सात वारही सूतको लपेटदे, वे सात सूत शुक्ल होते हैं, क्योंकि नारदका वचन है कि सपेद सात सूतके तन्तुओंसे हाथको लपेटै[1], तैसेही सात शमी और दूर्वाके पत्ते अक्षत और दही मिले अक्षत इन सबको पीपलके पत्तोंपर रखदे, क्योंकि यह स्मृति है कि[2] सात पीपलके पत्ते और शमीके पत्ते अक्षत और सात दूर्वाके पत्ते, और दही मिले अक्षत इन सबको हाथके ऊपर रखदे, और पुष्पोंकोभी रखदे, क्योंकि यह पितामहका वचन है कि[3] सात पीपलके पत्ते अक्षत, पुष्प, दधि इनको हाथपर रखदे और सूतसे लपेटदे, और जो यह वचन है कि अग्निसे तपाये लोहेकी सात आँकके पत्तोंसे ढककर हाथोंमें लेकर सात पद गमन करै यदि सात पदतक दग्ध न होय तो शुद्ध जानना, वह वचन पीपलके पत्तोंके अभावमें आँकके पत्तोंके विषयमें जानना, क्योंकि पीपलके पत्तोंकीही पितामहके वचनमें प्रशंसा लिखी है, इससे वेही मुख्य हैं, कि पीपलसे[4] अग्नि पैदा होती है, पीपल वृक्षोंका राजा है इससे बुद्धिमान् मनुष्य उसके पत्तोंको हाथोंके ऊपर रक्खै ॥

भावार्थ–हाथोंसे मले हैं व्रीहि (धान) जिसने ऐसे पुरुषके हाथोंमें काले तिल आदिके चिह्नोंको देखकर उनमें लाखके रंगसे हंसपद आदिके चिह्न करके सात पीपलके पत्तोंको अजलीमें रखदे और हाथसहित पत्तोंको सात सपेद सूतके डोरोंसे लपेटदे ॥ १०३ ॥

---

१ हस्तक्षतेषु सर्वेषु कुर्याद्धंसपदानि तु।
२ पत्रैरंजलिमापूर्य आश्वत्थैः सप्तभिः समैः।

---

१ वेष्टयीत सितैर्हस्त सप्तभिः सूत्रतन्तुभिः।
२ सप्तपिप्पलपत्राणि शमीपत्राण्यथाक्षतान्। दूर्वायाः सप्तपत्राणि दध्यक्तांश्चाक्षतान्न्यसेत् ॥
३ सप्त पिप्पलपत्राणि अक्षतान्सुमनो दधि। हस्तयोर्निक्षिपेत्तत्र सूत्रेणावेष्टन तथा ॥
४ पिप्पलाज्जायते वह्निः पिप्पलो वृक्षराट् स्मृतः। अतस्तस्य तु पत्राणि हस्तयोर्विन्यसेद्बुधः॥

त्वमग्नेसर्वभूतानामंतश्चरसि पावक।
साक्षिवत्पुण्यपापेभ्योब्रूहिसत्यंकवेमम१०४

पद-त्वम् १.अग्ने १ सर्वभूतानाम् ६ अन्तः ऽ-चरसि क्रि-पावक १ साक्षिवत् ऽ-पुण्यपापेभ्यः ५ ब्रूहि क्रि-सत्यम् २ कवे १ मम ६ ॥

योजना-हे अग्ने त्व सर्वभूतानां अन्तः चरसि हे पावक! हे कवे! पुण्यपापेभ्यः (पुण्यपापम् अवेक्ष्य) साक्षिवत् सत्यं ब्रूहि ॥

तात्पर्यार्थ-हे अग्ने! तू जरायुज (मनुष्य आदि) अण्डज (पक्षी आदि) स्वेदज (कृमि) और उद्भिज्ज (वृक्ष) इन चार प्रकारके भूतोंके शरीरके भीतर विचरता है अर्थात् उपयोगी अन्नपान आदिके पाचकरूपसे रहताहै,हे पावक! (शुद्धिके कारण) हे कवे! तू साक्षीकी समान पुण्य और पापको देखकर सत्य कह, तीन दफे तपाये हुए अयःपिण्डको सन्दश (सडासी) से आगे लाकर पश्चिममण्डलमें पूर्वाभिमुख बैठा हुआ कर्ता इस मन्त्रसे अग्निकी प्रार्थना करै, सोई नारदने कहा है कि अग्निके समान तपाये हुए लोहेके पिण्डको स्फुलिंग (अग्निकण) सहित और भली प्रकार रंजित उसको तीसरे तापमें सत्ययुक्त वचनसे प्रार्थना करै अर्थात् लोहकी शुद्धिके लिये भली प्रकार तपाये हुए लोहेके पिण्डको जलमें गेरकर फिर तपाकर फिर गेरकर फिर तीसरी दफे तपाये हुए उसको संडासीसे पकडकर शोध्य मनुष्यके आगे लाकर सत्य शब्दयुक्त त्वमग्ने सर्वभूतानां इत्यादि मंत्रको कर्ता पढे, प्राड्विवाक तो मण्डलोंमेके दक्षिण देशमें लौकिक अग्निका स्थापन करके उस अग्निमें 'अग्नये पावकाय स्वाहा' इस मंत्रसे घीकी अष्टोत्तरशत१०८आहुति दे,क्योंकि इस वचनमें यही लिखा है। होमके अनंतर उस अग्निमें लोहेके पिण्डको गेरकर और उसके तपते हुए धर्मके आवाहनसे हवन पर्यंत पूर्वोक्तविधिको करके तीसरी वारके तापमें उस लोहपिण्डकी अग्निकी इन मंत्रोंसे प्रार्थना करै, कि हे, अग्ने! तू चारों वेदरूप है, तू यज्ञोंमें होमा जाता है, तूही सव देवता और ब्रह्मवादियोंका मुख है, जठर (पेट) में टिका हुआ तू प्राणियोंके शुभ और अशुभको जानता है और जिससे तू पापसे पवित्र करता है इससे पावक कहाता है, हे पावक! पापियोंको अपने स्वरूपको दिखाकर तेजस्वी हो और शुद्धि भावोंमें हे हुताशन!शीतल हो,हे अग्ने! तू सब देवताओंके भीतर साक्षी होकर विचरता है हे देव! जिनको मनुष्य नहीं जानते उनको तू जानता है, व्यवहारमें अभिशस्त (फसा हुआ) यह मनुष्य शुद्धि चाहता है तिससे इसकी इस सशयसे धर्मपूर्वक रक्षा करो ॥

भावार्थ-हे अग्ने! तू सब भूतोंके भीतर विचरता है, हे पावक! हे कवे! मेरे पुण्य पापको देखकर सत्य कहियो अर्थात् दिखाइयो ॥१०४॥

तस्येत्युक्तवतोलौहंपंचाशत्पलिकंसमम्।
अग्निवर्णन्यसेत्पिंडंहस्तयोरुभयोरपि१०५॥

पद-तस्य ६ इति ऽ-उक्तवतः ६ लौहम् २ पचाशत्पलिकम् २ समम् २ अग्निवर्णम् २ न्यसेत्

---

१ अग्निवर्णमयःपिण्ड सस्फुलिंग सुरंजितम्। तापे तृतीये संताप्य ब्रूयात्सत्यपुरस्कृतम् ॥

१ घृतमष्टोत्तर शतम्।

२ त्वमग्ने वेदाश्चत्वारस्त्व च यज्ञेषु हूयसे। त्व मुखं सर्वदेवानां त्व मुख ब्रह्मवादिनाम्॥ जठरस्थो हि भूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम्। पाप पुनासि वै यस्मात्तस्मात्पावक उच्यसे ॥ पापेषु दर्शयात्मानमर्चिष्मान्भव पावक। अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव हुताशन॥ त्वमग्ने सर्वदेवानामन्तश्चरासि साक्षिवत्। त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानवाः॥ व्यवहाराभिशस्तोयं मानुषः शुद्धिमिच्छाति। तदेनं संशयादस्माद्धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥

क्रि–पिण्डम् २ हस्तयोः ७ उभयोः ७ अपि ऽ–॥

योजना–इति उक्तवतः तस्य उभयोः अपि हस्तयोः लौहं पचाशत्पलिकं सम अग्निवर्णं पिण्ड न्यसेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जब वह कर्ता त्वमग्ने सर्वभूतानां इस पूर्वोक्त मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना कर चुके तब उसके दोनों हाथोंपर जो पीपलके पत्ते दधि दूर्वा आदिसे ढकेहों अग्निके समान है वर्ण जिसका ऐसे पचास पलभर सम और कोणोंसे रहित आठ अंगुलका जिसका विस्तार हो और जो चिकना हो ऐसे अयःपिण्डको प्राड्विवाक रखदे। क्योंकि पितामहका वचन है कि आठ अगुल पचास पलभर लोहेके पिण्डको बराबर और कोणोंसे हीन करके अग्निमें तपावै ॥

भा०–इस पूर्वोक्त अग्निकी स्तुतिको करते हुए कर्ताके दोनों हाथोंपर जो पचास पलभर हो अग्निकासा जिसका वर्ण हो ऐसे बराबर लोहेके पिण्डको प्राड्विवाक रक्खै ॥ १०५ ॥

सतमादायसप्तैवमंडलानि शनैर्व्रजेत्। षोडशांगुलकं ज्ञेयं मंडलं तावदंतरम् ॥ १०६ ॥

पद–सः १ तम् २ आदाय ऽ–सप्त २ एव ऽ–मण्डलानि २ शनैः ऽ–व्रजेत् क्रि–षोडशांगुलकम् १ ज्ञेयम् १ मण्डलम् १ तावत् १ अन्तरम् १ ॥

योजना–सः तम् आदाय सप्त एव मण्डलानि शनैः व्रजेत्। मण्डलं षोडशांगुलक ज्ञेय अन्तर च तावत् एव ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ–वह पुरुष तपाये हुए लोहपिण्डको अंजलिमें लेकर और सात मण्डलोंके भीतरही चरणोंको रखकर और शनैः शनैः गमन करै। यहां एवपदके देनेसे मण्डलोंमें ही पैरको रक्खै मण्डलोंका अवलंघन न करै। सोई पितामहने कहा है कि मण्डलका अवलंघन न करै और न उससे पहिले पाद रक्खै और सोलह अगुल प्रमाण जिसका ऐसा मण्डल जानना और एक मण्डलका दूसरे मण्डलसे अन्तर (फरक) भी सोलह अगुलकाही जानना। षोडश अगुलोंके सात मण्डलोंमें गमन करै यह कहनेसे यह कहा गया कि पहिला एक मण्डल अवस्थान (बैठना) का और सात मण्डल गमन करनेके इस प्रकार आठ मण्डल सोलह अंगुलके होते हैं और वे उन सातोंके मध्यभागभी सोलह अंगुलके जानने। वही बात नारदने सख्या करके कही है कि मण्डलसे दूसरे मण्डलका अंतर बत्तीस अंगुलका होता है इस प्रकार आठ मण्डलोंके दोसौ चालीस २४० अगुल भूमि अगुलके प्रमाणसे होती है। इसका यह तात्पर्य है कि अवस्थानके षोडशांगुल १६ मण्डलसे सोलह अगुलके अतरपर द्वितीय आदि सोलह २ अगुलके सात मण्डल बत्तीस २ अगुलके अंतरसहित होते हैं और अवस्थानका मण्डल तो सोलह अगुलकाही होताहै इस प्रकार अतरालसहित आठों मण्डलोंका प्रमाण २४० दोसौ चालीस अंगुल भूमि होती है। इस पक्षमें अवस्थानके मण्डलको सोलह अंगुलका वनकर मध्यके भागोंसहित बत्तीस अंगुलके सात भूमिके भागोंके दो २ भाग करके अंतराल (मध्य) के भूभागोंके सोलह अंगुल छोडकर मडलके भूभाग जो सोलह अंगुलके प्रमाणके हैं उनमें ऐसे सात मण्डल

१ अस्त्रहीन सम कृत्वा अष्टांगुलमयोमयम्। पिण्डं तु तापयेदग्नौ पंचाशत्पलिकं समम् ॥

१ न मण्डलमतिक्रामेन्नाप्यर्वाक् स्थापयेत्पदम्।

२ द्वात्रिंशदगुल प्राहुर्मण्डलान्मडलांतरम्। अष्टाभिर्मण्डलैरेव मण्डलानां शतद्वयम् ॥ चत्वारिंशत्समाधिकं भूमेरंगुलमानतः ॥

बनावै जो गमन करनेवालेके पदोंके समान (तुल्य) हों। सोई तिसनेही कहाहै कि मण्डलका प्रमाण उसके चरणके समान बनावै । और जो पितामहने यह कहाहै कि आठ मण्डल बनावै और पहिला एक नवम ९ मण्डल बनावै पहिला मण्डल अग्निका, दूसरा वरुणका, तीसरा वायुका, चौथा यमका, पांचवां इन्द्रका, छठा कुबेरका, सातवां सोमका, आठवां सावित्रीका, नौवां सब देवताओंका होताहै, यह दिव्यके ज्ञाता जानते हैं । और मंडलसे मंडलका अंतर बत्तीस अंगुलका होताहै इस प्रकार आठों मंडलोंके २५६ दोसौ छप्पन अंगुल भूमिकी रचना हो । और मंडलका प्रमाण कर्ताके पादके प्रमाणसे होताहै और मडल २ में शास्त्रोक्त कुशा रखनी । उस वचनमेंभी सब हैं देवता जिसके ऐसा जो नवम मडल उसके अगुलोंका प्रमाण नहीं होता है उसको छोडकर आठ मडल और आठ अतरालोंका प्रमाण प्रत्येक सोलह २ अंगुलका होता है इससे सपूर्ण मंडलोंके दोसौ छप्पन्न अगुल सिद्ध होते हैं, उसमेंभी गमन करनेके मडल सातही होते हैं इससे इस वचनकाभी विरोध नहीं है कि पहिले मण्डलमें लोहेके पिंडको लेकर खडा होता है और नवम मंडलमें फेंक देताहै और अंगुलका प्रमाण यह कहाहै कि तिरछे जौके आठ ८ उदर वा खडे हुए तीन व्रीहि अंगुलका प्रमाण कहाहै । बारह अंगुलकी एक वितस्ति और दो वितस्तियोंका एक हाथ, चार हाथका एक दड, दो सहस्र दडका एक कोश और चार कोशका एक योजन होताहै ॥

भावार्थ-वह कर्ता उस लोहेके पिंडको लेकर शनैः २ सात मडलोंमें गमन करै और सोलह अगुलका मडल और सोलहही अगुलोंका मंडलोंका अतर (मध्य) होता है ॥ १०६ ॥

मुक्त्वाग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात् । अंतरापतिते पिंडे सन्देहे वा पुनर्हरेत् १०७

पद-मुक्त्वाऽ-अग्निम् २ मृदितव्रीहिः १ अदग्धः १ शुद्धिम् २ आप्नुयात् क्रि-अतराऽ-पतिते ७ पिंडे ७ सन्देहे ७ वाऽ-पुनःऽ-हरेत् क्रि-॥

योजना-अग्नि मुक्त्वा मृदितव्रीहिः अदग्धः पुरुषः शुद्धिम् आप्नुयात् । पिंडे अंतरा पतिते वा सदेहे पुनः पिंड हरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-आठवें मडलमें टिककर नवम मडलमें अग्निसे तपाये लोहेके पिंडको त्यागकर और हाथोंसे व्रीहियोंको मलकर यदि पुरुष दग्ध न हो (न जले) तो शुद्धिको प्राप्त होताहै और जल जाय तो अशुद्ध है यह बात अर्थात् सिद्ध है । और जो संत्रास (दुःख)से गिरता हुआ मनुष्य हाथोंसे भिन्न शरीरमें जलजाय तोभी अशुद्ध नहीं होता । सोई कात्यानने कहा है कि यदि

१ मडलस्य प्रमाण तु कुर्यात्तत्पदसमितम् ।

२ कारयेन्मडलान्यष्टौ पुरस्तान्नवम तथा । आग्नेय मडलं चाद्य द्वितीयं वारुण स्मृतम् ॥ तृतीय वायुदैवत्य चतुर्थं यमदैवतम् । पचम त्विन्द्रदैवत्य षष्ठं कौबेरमुच्यते ॥ सप्तम सोमदैवत्य सावित्र त्वष्टम तथा । नवम सर्वदैवत्यमिति दिव्यविदो विदुः ॥ द्वात्रिंशदगुल प्राहुर्मंडलान्मडलांतरम् । अष्टाभिर्मंडलैरेव मण्डलानां शतद्वयम् ॥ षट्पचाशत्समधिक भूमेस्तु परिकल्पना । कर्तुः पदसम कार्यं मंडल तु प्रमाणतः ॥ मंडले मंडले देयाः कुशाः शास्त्रप्रचोदिताः ॥

३ प्रथमे तिष्ठति नवमे क्षिपति ।

१ तिर्यग्यवोदराण्यष्टावूर्ध्वा वा व्रीहयस्त्रयः । प्रमाणमंगुलस्योक्त वितस्तिर्द्वादशांगुलः ॥ हस्तो वितस्तिद्वितय दडो हस्तचतुष्टयम् । तत्सहस्रद्वयं क्रोशो योजन तच्चतुष्टयम् ॥

२ प्रस्खलन्नभिशस्तश्चेत्स्थानादन्यत्र दह्यते । अदग्धं त विदुर्देवास्तस्य भूयोपि दापयेत् ॥

गिरता हुआ अभिशस्त (अपराधी) स्थान (हाथों) से अन्यत्र जल जाय तो उसकोभी देवता अदग्ध कहते हैं, वा उसके हाथमें भूयः (फिर) लोहेके पिंडको दिवावै। यदि गमन करते हुए मनुष्योंके हाथोंमेंसे आठवें मंडलसे अर्वाक् (पहिले) ही पिंड गिरजाय और जलने और न जलनेमें संदेह होय तो फिर उक्त पिंडको लेकर चलै। यहां यह अनुष्ठान (करना) का क्रम है कि पहिले दिन भूतशुद्धिको करके और परले दिन शास्त्रोक्तरीतिसे मंडलोंको रचकर और तिस २ मंडलमें मंडलोंके देवताओंको पूजकर और अग्निका स्थापन करके और शांतिके होमसे निवृत्त होकर और उपवास किया है जिसने ऐसे स्नान किये और आर्द्र (गीले) वस्त्र धारण किये पुरुषको पश्चिमके मंडलमें स्थित करके व्रीहियोंके मर्दन (मलना) आदि हाथोंके संस्कारको करके और मंत्रोंसहित प्रतिज्ञा (दावा) के पत्रको कर्ताके शिरपर बांधकर तीसरे तापमें प्राड्विवाक अग्निकी प्रार्थना करके और तपाये हुए लोहेके पिंडको सदंश (सडाशी) से पकडकर कर्ता जब अग्निकी प्रार्थना करचुकै तब उसकी अंजलीमें लोहके पिंडको रखदे। वहभी सात मण्डलोंमें गमन करके नवम मण्डलमें दग्ध न होय तो शुद्ध होता है॥

भावार्थ–अग्निका छोडकर और हाथोंसे व्रीहियोंको मलकर दग्ध न होय तो शुद्धिको प्राप्त होता है। यदि लोहेका पिंड अष्टम मंडलसे पहिलेही गिरपडै और जलने वा न जलनेमें संदेह होय तो लोहेके पिंडको लेकर पुनः (दुबारा) गमन करै॥ १०७॥ इत्यग्निविधिः॥

सत्येन माभिरक्ष त्वं वरुणेत्यभिशाप्यकम्।
नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरूजलंविशेत्॥

पद–सत्येन ३ मा २ अभिरक्ष क्रि–त्वम् १ वरुण १ इतिऽ–अभिशाप्यऽ–कम् २ नाभिदघ्नोदकस्थस्य ६ गृहीत्वाऽ–ऊरू २ जलम् २ विशेत् क्रि–॥

योजना–हे वरुण! त्व मा (मां) सत्येन अभिरक्ष इति क (जलम्) अभिशाप्य (अभिमन्त्र्य) नाभिदघ्नोदकस्थस्य ऊरू गृहीत्वा शोध्यः जलं विशेत्॥

तात्पर्यार्थ–हे वरुण! तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस मंत्रसे जलकी प्रार्थना करके नाभितक है प्रमाण जिसका ऐसे जलमें स्थित किसी अन्य पुरुषकी जंघाओंको पकडकर शोध्य मनुष्य जलमें प्रवेश करै (डूबै)। यहभी वरुणकी पूजाके अनंतर करै। क्योंकि नारद[1] की स्मृति है कि गंध पुष्प चंदन मधु दूध घृत आदिसे सावधान होकर प्रथम वरुणकी पूजा करै और तैसेही धर्मका आवाहन आदि संपूर्ण देवताओंकी पूजा होम और मंत्रोंसहित प्रतिज्ञा पत्रके शिरपर रखने पर्यंत साधारण कर्मोंको करके जलमें प्रवेश करै। और तैसेही जब प्राड्विवाक इस प्रकार जलकी प्रार्थना[2] करले कि, हे जल! तू प्राणियोंकी प्राणसृष्टिकी आदिमें रचाहै और द्रव्य और देहधारियोंकी शुद्धिका कारण कहाहै इससे शुभ और अशुभकी परीक्षामें अपने स्वरूपको दिखा। तब शोध्य मनुष्य हे वरुण! तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस प्रकार जलकी प्रार्थना करै। उदकके स्थान नारद[3]ने ये कहेहैं

---

१ गंधमाल्यैः सुरभिभिर्मधुक्षीरघृतादिभिः। वरुणाय प्रकुर्वीत पूजामादौ समाहितः॥

२ तोय त्व प्राणिनां प्राणसृष्टेराद्य तु निर्मितम्। शुद्धेश्च कारणं प्रोक्तं द्रव्याणां देहिनां तथा॥ अतस्त्वं दर्शयात्मानं शुभाशुभपरीक्षणे॥

३ नदीषु तनुवेगासु सागरेषु वहेषु च। ह्रदेषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च॥

कि सूक्ष्म जिनका वेग हो ऐसी नदी सागर वह ह्रद (कुंड) देवखात (पुष्कर आदि) तडाग और सरोवर । तैसेंही पितामहने भी कहेहै कि स्थिर जलमें गोता लगावै और जिसमें ग्राह हो वा अल्पजल हो उसमें न लगावै तृण और शिवालसे रहित जलौका (जोंक) और मत्स्यसे वर्जित जलमें और देवखातके जलमें शोधन करै । और जो जल आहार्य हो अर्थात् तडाग आदिसे लाकर तामेके कडाह आदिमें रक्खाहो उसको और अधिक वेग-वाली नदियोंको सदैव वर्जदे । और जिसमें तरंग और कीच न हो ऐसे जलमें प्रवेश करै और नाभितक जलमें टिका हुआभी यज्ञके वृक्षकी धर्मस्थूणा (थूनी) को पकडकर पूर्वाभिमुख स्थित रहै । क्योंकि यह स्मृति है कि धर्मकी स्थूणाको ग्रहण करके जलमें पूर्वको मुख किये खडा रहै ॥

भावार्थ-हे वरुण ! तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस प्रकार जलकी प्रार्थना करके और नाभिमात्र जलमें खडे हुए किसी अन्य मनुष्यकी जंघाको पकडकर जलमें प्रवेश करै (डूबै) ॥ १०८ ॥

समकालमिषुं मुक्तमानीयान्यो जवी नरः।
गतेतस्मिन्निमग्नांगंपश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात्॥

पद-समकालम् २ इषुम् २ मुक्तम् २ आनीयऽ-अन्यः १ जवी १ नरः १ गते ७ तस्मिन् ७ निमग्नांगम् २ पश्येत् क्रि-चेत्ऽ-शुद्धिम् २ आप्नुयात् क्रि- ॥

योजना-समकालं गते तस्मिन् जाविनि एकस्मिन्पुरुषे साति अन्यः (शरपातस्थानस्थः) जवी नरः मुक्तम् इषुम् आनीय चेत् (यदि)निमग्नांग पश्येत् तर्हि शुद्धिम् आप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ-निमज्जनके समान कालमें (डूबतेही) एक पुरुष वेगसे जब बाणके सग चलै, और जहां बाण गिरै वहां स्थित अन्य वेग-वाला मनुष्य पहिले छोडेहुए बाणको लाकर जलमें डूबेहुए अपराधीको यदि देखै तो अपराधी शुद्ध होता है । यहां यह बात कही समझनी कि तीन बाणोंके छोडनेपर एक वेगवाला मनुष्य मध्यम शरके पातस्थानमें जाकर और शरको लिये वहांही खडा रहै, और अन्य वेगवान् पुरुष बाणके छोडनेके स्थानमें तोरणके नीचे स्थित रहै, इस प्रकार ये दोनों जब स्थित हो जांय तब तीसरी करतालीके बजानेपर शोध्य मनुष्य जलमें डूबै, उसी समय तोरणके मूलमें स्थित मनुष्य बडे वेगसे मध्यम बाण जहां गिराहो वहां जाय और उसके वहां आतेही शरग्राही (बाणवाला) दूसरा वेगवाला मनुष्य बडे वेगसे तोरणके मूलमें आकर यदि अपराधीको जलमें अतर्गत (डूबा) न देखै तो अपराधी अशुद्ध होताहै । यही सब पितामहने स्पष्ट कियाहै कि जानेवालेका गमन और कर्ताका जलमें मज्जन एक कालमेंही दोनों होतेहैं । वेगवाला मनुष्य तोरणके मूलसे लक्ष्य (निशाना) के स्थानमें जाय उसके जातेही दूसरा भी वेगसे बाणको लेकर उसी तोरणके मूलके समीप आवे जहांसे वह पुरुष गयाथा आयाहुआ

१ स्थिरतोये निमज्जेत्तु न ग्राहिणि न चाल्पके । तृणशैवालरहिते जलौकामत्स्यवर्जिते ॥ देवखातेषु यत्तोय तस्मिन्कुर्याद्विशोधनम् । आहार्यं वर्जयेन्नित्यं शीघ्रगासु नदीषु च ॥ आविशेत्सलिले नित्यमूर्मिपंकविवर्जिते ॥

२ उदके प्राङ्मुखस्तिष्ठेद्धर्मस्थूणां प्रगृह्य च ।

१ गन्तुश्चापि च कर्तुश्च समं गमनमज्जनम् । गच्छेत्तोरणमूलात्तु लक्ष्यस्थान जवी नरः ॥ तस्मिन्गते द्वितीयोपि वेगादादाय सायकम्। गच्छेत्तोरणमूल तु यतः स पुरुषो गतः ॥ आगतस्तु शरग्राही न पश्यति यदा जले । अंतर्जलगत सम्यक्तदा शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥

बाणका ग्राही यदि जलमें न देखै तो अशुद्धिको और जलमें देखै तो शुद्धिको कहै। और वेगवाले पुरुषोंका निर्द्धारण (निर्णय) नारदने कियाहै कि पचास दौडनेवालोंमें जो वेगसे अधिक दौडे वे बाणके लानेके लिये नियुक्त करने। और तोरणभी जलमें डूबनेके स्थानसे समीपमें शोध्य मनुष्यके कानकी बराबर बनवाना क्योंकि नारदकी स्मृति है कि उस जलके स्थानमें जाकर सम (एकसे) भूमिके भागमें कानकी बराबर ऊचा तोरण बनावे। और तीनों बाणोंका और बांसके धनुषका मंगलके श्वेत गंध पुष्पोंसे पहिले पूजन करके अन्य कर्मको करै यह पितामहने कहा है। धनुषका प्रमाण और लक्ष्यका स्थान नारदने कहा है कि सात अधिक सौ अगुल जिसका प्रमाण हो वह क्रूर और छः अधिक सौतक मध्यम और पांच अधिक सौतक मद होता है, यह धनुषकी विधि जाननी। मध्यम धनुषसे तीन बाण फेंकने, और डेढ सौ १५० हाथपर बुद्धिमान् मनुष्य लक्ष्यको बनाकर न्यून वा अधिकपर बाणोंको जो फेंके उसको दोष होताहै। अर्थात् सात अधिक सौ अगुलके ग्यारह अगुल ऊपर चार हाथ होते हैं, वही क्रूर धनुषका प्रमाण है। मध्यमका दश अगुल ऊपर और मंदका नौ अंगुल ऊपर चार हाथ होताहै। और बाणभी बांसके हों और अग्रभागमें लोहा न लगाहो ऐसे बनवावे क्योंकि यह स्मृति है कि जिनके अग्रभागमें लोहा न लगाहो ऐसे बांसके बाणोंको शुद्धिके अर्थ बनावे और फेंकनेवाला दृढतासे फेंके। और फेंकनेवालाभी क्षत्रिय हो वा क्षत्रियकी वृत्तिवाला ब्राह्मण हो और जिसने उपवास कियाहो वह नियुक्त करना। सोई कहा है कि फेंकनेवाला क्षत्रिय वा क्षत्रियवृत्ति ब्राह्मण जिसका हृदय क्रूर न हो, जो शांत हो, जिसने उपवास कियाहो वही बाणोंको फेंके। तीन बाणोंमें छोडनेपर मध्यम बाण ग्रहण करना। क्योंकि यह वचन है कि छोडेहुए शास्त्रोक्त उन बाणोंमें बलवान् मनुष्य मध्यम बाणको ग्रहण करै। वहभी पडनेके स्थानसे लाना, सर्पण (सरकना) स्थानसे नहीं। क्योंकि यह वचन है कि बाणके पडनेको ग्रहण करै सर्पणको वर्ज दे। क्योंकि सर्पता २ बाण बहुत दूर चला जाता है। और पवनके चलते और विषम आदि देशमें बाणको न छोडै। क्योंकि यह पितामहका वचन है कि अत्यंत पवनके चलते और ऊची नीची भूमिमें और बहुत वृक्षोंके स्थानमें जहां तृण गुल्म लता वल्ली पंक वा पाषाण हों वहां बुद्धिमान् मनुष्य बाणको न फेंके, शोध्यको आनकर डूबाहुआ देखै तो शुद्धिको,

१ पचाशतो धावकानां यौ स्यातामधिकौ जवे। तौ च तत्र नियोक्तव्यौ शरानयनकारणात् ॥

२ गत्वा तु तज्जलस्थानं तटे तोरणमुच्छ्रितम्। कुर्वीत कर्णमात्रं तु भूमिभागे समे शुचौ ॥

३ शरान्सपूजयेत्पूर्वं वैणवं च धनुस्तथा। मंगलैर्धूपपुष्पैश्च ततः कर्म समाचरेत् ॥

४ क्रूरं धनुः सप्तशतं मध्यमं षट्शतं स्मृतम्। मदं पंचशतं ज्ञेयमेष ज्ञेयो धनुर्विधिः ॥ मध्यमेन च चापेन प्रक्षिपेत्तु शरत्रयम्। हस्तानां तु शते सार्द्धे लक्ष्यं कृत्वा विचक्षणः ॥ न्यूनाधिके तु दोषः स्यात् क्षिपतस्सायकांस्तथा ॥

१ शरांश्चानाय साग्रांस्तु प्रकुर्वीत विशुद्धये। वेणुकाण्डमयांश्चैव क्षेप्ता तु सुदृढं क्षिपेत् ॥

२ क्षेप्ता च क्षत्रियः प्रोक्तस्तद्वृत्तिर्ब्राह्मणोपि वा। अक्रूरहृदयः शांतः सोपवासस्ततः क्षिपेत् ॥

३ तेषां च प्रेषितानां च शराणां शास्त्रचोदनात्। मध्यमस्तु शरो ग्राह्यः पुरुषेण बलीयसा ॥

४ शरस्य पतनं ग्राह्यं सर्पणं तु विवर्जयेत्। सर्पन् सर्पन् शरो यायाद्दूराद्दूरतरं यतः ॥

५ इषुं न प्रक्षिपेद्विद्वान्मारुते चातिवायति। विषमे भूप्रदेशे च वृक्षस्थानसमाकुले ॥ तृणगुल्मलतावल्ली पङ्कपाषाणसंयुते ॥

प्राप्त होताहै। यह कहनेसे यह दिखाया कि शोध्य उन्मज्जित अंग (जलसे बाहर) होय तो अशुद्ध होताहै और अन्य स्थानके गमनमेंभी पितामहने अशुद्धि कही है कि यदि एक अंगभी दीखजाय और जिस स्थानमें प्रथम प्रवेश कियाहो उससे अन्यत्र गमन करै तो शुद्धि नहीं होती और एक अगका दीखनाभी कर्ण आदिका लेना क्योंकि यह विशेष वचन है कि जिसका जलके प्रवेशमें केवल शिर दीखे कान और नासिका न दीखैं उसकोभी शुद्ध कहै। यहां प्रयोगकी विधिका यह क्रम है कि पूर्वोक्त जलस्थानके समीप पूर्वोक्त तोरण बनाकर कहा है प्रमाण जिसका ऐसे देशमें लक्ष्य (निशान) को रखकर तोरणके समीप बाणसहित धनुषकी पूजा करके और जलस्थानमें वरुणका आवाहन और पूजन करके और जलके तीर धर्म आदि देवताओंकी हवनपर्यंत पूजा करके और शोध्य मनुष्यके शिरपर प्रतिज्ञापत्रको बांधकर हे जल! तू प्राणियोंका प्राण है इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रसे प्राड्विवाक जलकी प्रार्थना करे। फिर शोध्य मनुष्य हे वरुण! सत्यसे मेरी रक्षा करो इस पूर्वोक्त मंत्रसे जलकी प्रार्थना करके ग्रहण की है स्थूणा जिसने और नाभिमात्र जलमें स्थित बलवान् पुरुषके पास जाय। जब तीन बाण छोडदियेहों और जहां मध्यम बाण पडाहो वहां मध्यम बाणको लेकर एक वेगवान् पुरुष स्थित हो और दूसरा तोरणके मूलमें स्थित हो जब प्राड्विवाक तीन हाथकी ताली फटकारचुके तब एकवार गमन और जलमें डूबना और बाणका लाना होता है॥

भावार्थ-डूबनेके समयमें जब वेगवान् एक पुरुष चलाजाय नब दूसरा वेगवान् नर छोडेहुए बाणको लाकर जलमें डूबेहुए शोध्यको देखै तो वह शोध्य शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ १०९ ॥

इत्युदकविधिः ॥

त्वं विष ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितः। त्रायस्वास्मादभीशापात्सत्येन भव मेऽमृतम्

पद-त्वम् १ विष १ ब्रह्मणः ६ पुत्रः १ सत्यधर्मे ७ व्यवस्थितः१ त्रायस्व क्रि-अस्मात् ५ अभीशापात् ५ सत्येन ३ भव क्रि-मे ६ अमृतम् ॥ १ ॥

एवमुक्त्वा विषं शार्ङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजम्। यस्य वेगैर्विना जीर्येच्छुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत्

पद-एवम्ऽ-उक्त्वाऽ-विषम् २ शार्ङ्गम् २ भक्षयेत् क्रि-हिमशैलजम् २ यस्य ६ वेगैः ३ विनाऽ-जीर्येत् क्रि-तस्य ६ शुद्धिम् २ विनिर्दिशेत् क्रि- ॥

योजना-हे विष! त्व ब्रह्मणः पुत्रः सत्यधर्मे व्यवस्थितःअसि अस्मात् अभीशापात् मां त्रायस्व सत्येन मे अमृतं भव एवमुक्त्वा शार्ङ्गहिमशैलजं विषं भक्षयेत् यस्य वेगैर्विना विषं जीर्येत् तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ-हे विष! तू ब्रह्माका पुत्र है और सत्यधर्ममें स्थित है इस अपराधसे मेरी रक्षा कर और मेरे सत्यसे अमृतरूप हो। इस मन्त्रसे विषकी प्रार्थना करके हिमाचल आदिके शिखरोंमें पैदा हुए विषको शुद्धिका कर्ता भक्षण करै। वह भक्षण किया विष वेगोंके विना जीर्ण होजाय,अर्थात् पच जाय तो वह कर्ता शुद्ध होताहै। यहां विष वेगसे एक धातुसे दूसरी धातुमें प्राप्ति इस वचनसे

---

१ अन्यथा न विशुद्धिः स्यादेकांगस्यापि दर्शनात्। स्थानाद्वान्यत्र गमनाद्यस्मिन्पूर्वं निवेशितः ॥

२ शिरोमात्र तु दृश्येत न कर्णौ नापि नासिका। अप्सु प्रवेशने यस्य शुद्धं तमपि निर्दिशेत् ॥

१ धातोर्धात्वतरप्राप्तिर्विषवेग इति स्मृतः।

कहीहै और त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र ये सात ७ धातु होती हैं और सात ही विषके वेग होते हैं उनके पृथक् २ लक्षण विषतंत्रमें कहेहैं कि,पहला विषका वेग शरीरमें रोमांच खडी करताहै, दूसरा स्वेद और मुखको शुष्क करताहै, तीसरा और चौथा शरीरके वर्णका भेद और कपको पैदा करते हैं, पांचवां वेग विवश होना और कंठका भग और हुचकी पैदा करताहै, छठा वेग श्वास और मुहको और सातवां वेग भक्षण करनेवालेकी मृत्युको पैदा करताहै, यहां महादेवकी पूजा करनी सोई नारदने कहाहै, किया है उपवास जिसने ऐसा प्राड्विवाक धूप उपहार (भेट) और देवताओंके समीप विषको दे, उपवास और मत्रोंसे महादेवकी पूजा करके ब्राह्मण और महादेवकी पूजाके अनतर प्राड्विवाक शोध्य मनुष्यके आगे विषको रखकर और हवनपर्यंत धर्म आदिकी पूजा करके शोध्य मनुष्यके शिरपर प्रतिज्ञापत्रको धरकर विषकी प्रार्थना करै कि हे विष! तू दुरात्माओंकी परीक्षाके लिये ब्रह्माने रचाहै,पापियोंको मारदे और शुद्धको अमृतरूप हो,हे मृत्युरूप विष! तू ब्रह्माने रचाहै इस मनुष्यकी पापसे रक्षा कर और सत्यसे अमृतरूप हो, इस प्रकार विषकी प्रार्थना करके दक्षिणाभिमुख बैठे शोध्यपुरुषको विष दे, क्योंकि नारदका वचन है कि ब्राह्मणोंके समीप दक्षिणाभिमुख बैठे हुए मनुष्यको उत्तर वा पूर्वाभिमुख बैठा प्राड्विवाक विष दे, और विषभी वत्सनाभ आदि लेना, क्योंकि पितामहका वचन है कि सींग वत्सनाभ वा हिमका विष दे और वर्जितभी ये विष कहेहैं कि चारितजीर्ण, कृत्रिम, भूमिमें उत्पन्न इन सब विषोंको वर्जदे. नारदनेभी कहाहै कि भुना, चारित, धूपित, मिश्रित, कालकूट, अलावु इन विषोंको यत्नसे वर्जदे। कालभी नारदने कहाहै कि तोलकर उस विषको समयपर दे जिसको कर्ता चाहै और शीतकालमें दे और अपराह्न मध्याह्न, सध्या इनमें धर्मका ज्ञाता विषको न दे। अन्यकालमें तो पूर्वोक्त प्रमाणसे अल्प विषको दे, क्योंकि यह स्मृति है कि वर्षामें चार जौभर, ग्रीष्ममें पांच जौ, हेमंतमें सात जौ और शरदृतुमें उससेभी अल्प मात्रा (छः जौ) कही है, हेमतके ग्रहणसे शिशिरकाभी ग्रहण है क्यों कि इस श्रुतिमें हेमत और शिशिरको समान (तुल्य) कहाहै वसतऋतुको सब दिव्योंमें साधारण होनेसे उसमेंभी सात जौकी मात्रा देनी, और विषभी घी

---

१ वेगो रोमांचमाद्यो रचयति विपजः स्वेदवक्त्रोपशोषौ तस्योर्ध्वस्ततपरौ तौ वपुषि जनयतो वर्णभेदप्रवेपौ। यो वेगः पचमोऽसौ नयति विवशतां कण्ठभग च हिक्कां षष्ठो निश्वासमोहौ वितरति च मृतिं सप्तमो भक्षकस्य॥

२ दद्याद्विषं सोपवासो देवब्राह्मणसन्निधौ। धूपोपहारमन्त्रैश्च पूजयित्वा महेश्वरम्॥

३ त्व विप ब्रह्मणा सृष्टं परीक्षार्थं दुरात्मनाम्। पापानां दर्शयात्मान शुद्धानाममृत भव॥ मृत्युमूर्ते विप त्व हि ब्रह्मणा परिनिर्मितम्। त्रायस्वैन नरं पापात्सत्येनास्यामृतं भव॥

१ द्विजानां सन्निधावेव दक्षिणाभिमुखे स्थिते। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा विषं दद्यात्समाहितः॥

२ शृङ्गिणो वत्सनाभस्य हिमजस्य विषस्य वा।

३ चारितानि च जीर्णानि कृत्रिमाणि तथैवच। भूमिजानिच सर्वाणि विपाणि परिवर्जयेत्॥

४ भृष्ट च चारित चैव धूपित मिश्रितं यथा। कालकूटमलावु च विप यत्नेन वर्जयेत्॥

५ तोलयित्वेप्सित काले देय तद्धि हिमागमे। नापराह्णे न मध्याह्ने न सध्यायां तु धर्मवित्॥

६ वर्षे चतुर्यवा मात्रा ग्रीष्मे पचयवा स्मृता। हेमन्ते सा सप्तयवा शरद्यल्पा ततोऽपि हि॥

मिलाकर देना क्योंकि नारदका वचन है कि छः पल विषका जो बीसवां भाग आठवें भागसे हीन (कम) उसको घी मिलाकर शुद्धिके लिये दे, अर्थात् चार सुवर्णका पल होताहै और उसका छठा भाग दशमाष और दश यव होते हैं; तीन जौका एक कृष्णल और पांच कृष्णलोंका एक माष, अर्थात् पंद्रह १५ यव एक माषमें होतेहैं इस प्रकार दशमाषोंके सार्द्धशत (१५०) जौ होतेहैं और दश जौ वे जो पहिले पलके छठे भागमें दशभागोंके ऊपर कह आयेहैं ऐसे षष्ट्यधिक शत (१६०) जौ पलके छठे भागमें होतेहैं, और उसके बीसवें भागमें आठ जौ हुए उसका आठवां भाग ऊन (कम)करनेसे सात जो रहे उतने विषको घी मिलाकर शोध्यको दे, और विषसे तीसगुणा घी मिलावै, क्योंकि यह कात्यायनका वचन है कि पूर्वाह्नके समय शीतल देशमें देहधारियोंको विष दे और तीस गुने घृतमें पीसकर स्वच्छ विषको मिला दे और शोध्य मनुष्यको कपटी आदिकोंसे रक्षा करै क्योंकि यह पितामहका वचन है कि तीन वा पांचरात्रितक अपने पुरुषोंसे युक्त दिव्यकरनेवालेकी कपटी आदिकोंसे राजा रक्षा करै और औषधी मंत्रके योग मणि जो विषको दूर करनेवाले हैं उनकी और कर्ताके शरीरकी दशाकी गुप्तरीतिसे रक्षा करै तैसेही विषकीभी रक्षा करै क्योंकि नारदका वचन है कि शृंग और हिमवान्का विष गंध वर्ण और विषसे युक्त रस अकृत्रिम असमूढ (जिससे मोह न हो) और जो मंत्रसे उपहत न हो वह विष श्रेष्ठ होताहै । तैसेही विष पीनेके अनंतर इतने पच शत(५००) करतालिका दे, तबतक उसकी प्रतीक्षा करै उसके अनतर चिकित्सा करने योग्य है, सोई नारदने कहाहै कि पांच सौ ५०० करतालीके कालतक शोध्य पुरुष निर्विकार होय तो शुद्ध होताहै उसके अनतर उसकी चिकित्सा करै । पितामहने तो दिनका अत अवधि कहाहै वह अल्पमात्राके विषयमें समझना कि भक्षणके अनन्तर मूर्च्छा और छर्दि (वमन) से रहित दिनके अततक रहै तो उसकोभी शुद्ध कहै, यह क्रम समझा कि प्राड्विवाक उपवास और महादेवकी पूजा शोध्यके आगे विषका स्थापन करके धर्म आदिकोंका पूजन और शोध्यके शिरपर प्रतिज्ञापत्रको रखकर और विषकी प्रार्थना करकै दक्षिणाभिमुख बैठे शोध्यको विष दे और वह शोध्यभी विषकी प्रार्थना करके भक्षण करै ॥

भावार्थ–हे विष ! तू ब्रह्माका पुत्र है और सत्य धर्ममें स्थित है और इस अपराधसे मेरी रक्षा कर और सत्यसे अमृतरूप हो इस प्रकार विषकी प्रार्थना करके हिमाचलके शिखर आदिसे पैदा हुए विषको भक्षण करै जिसका विष वेगोंके विना जीर्ण होजाय अर्थात् पच जाय उसको शुद्ध कहै ॥ ११०॥ १११॥ इति विषविधानम्॥

---

१ विषस्य पलषड्भागान् भागो विंशतिमस्तु यः। तमष्टभागहीनन्तु शोध्ये दद्याद् घृतप्लुतम् ॥

२ पूर्वाह्णे शीतले देशे विषं देय तु देहिनाम् । घृते नियोजित श्लक्ष्णं पिष्ट त्रिंशद्गुणान्वितम् ॥

३ त्रिरात्र पंचरात्र वा पुरुषैः स्वैरधिष्ठितम्। कुहकादिभयाद्राजा रक्षयेद्दिव्यकारिणम् ॥ औषधीमन्त्रयोगांश्च मणीनथ विषापहान् । कर्तुः शरीरसंस्थांस्तु गूढोत्पन्ना न्परीक्षयेत् ॥

१ शार्ङ्गं हैमवत शस्त गधवर्णरसान्वितम् । अकृत्रिममसमूढममन्त्रोपहत च यत् ॥

२ पचतालिशतं काल निर्विकारो यदा भवेत्। तदा भवति सशुद्धः ततः कुर्याच्चिकित्सितम्॥

३ भक्षिते तु यदा स्वस्थो मूर्छाछर्दिविवर्जितः । निर्विकारो दिनस्यांते शुद्ध तमपि निर्दिशेत् ॥

देवानुग्रान्समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत्।
संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलंतुप्रसृतित्रयम्॥

पद्–देवान् २ उग्रान् २ समभ्यर्च्यऽ–तत्स्नानोदकम् २ आहरेत् क्रि–संश्राव्यऽ–पाययेत् क्रि–तस्मात् ५ जलम् २ तुऽ–प्रसृतित्रयम् २॥

योजना–उग्रान् देवान् समभ्यर्च्य तत्स्नानोदकम् आहरेत् तु पुनः संश्राव्य तस्मात् प्रसृतित्रयं जल प्राड्विवाकः पाययेत्॥

तात्पर्यार्थ–दुर्गा आदित्य आदिकोंका स्नान और गंध पुष्प आदिकोंसे भली प्रकार पूजन करके उनके स्नानके जलको लेकर और हे जल-तू प्राणियोंका प्राण है इस पूर्वोक्त मन्त्रसे प्राड्विवाक उसकी प्रार्थना करै और जब शोध्य उस जलको दूसरे पात्रमें करके हे वरुण! तू मेरी सत्यसे रक्षा कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करले तब तीन प्रसृति (अंजलि) जल पिलादे यह भी तब पिलावै जब ये सब साधारण कर्म कर लिये हों कि धर्मका आवाहन सब देवताओंका पूजन होम मंत्रोंसहित प्रतिज्ञापत्रका स्थापन, यहां स्नान कराने योग्य देवताकार्य्य और अधिकारी इन तीनोंका नियम पितामह आदिकोंने कहा है कि जो मनुष्य जिस देवताका भक्त हो उसकाही जल उसको पिलावे। यदि देवताओंमें समान भाव होय तो सूर्यका पिलावे। चौर और शस्त्रसे जो जीवै उनको दुर्गाका पिलावे, और सूर्यका जल ब्राह्मणको न पिलावे। दुर्गाके शूलको स्नान करावे और सूर्यके मंडलको और अन्य देवताओंकेभी आयुधोंको स्नान करावे[1]। इति देवतानियमः। अब कार्यके नियमको कहते हैं कि विस्रंभ (विश्वास) सब प्रकारकी शंका संधिका कार्य इनमें चित्तकी विशुद्धिके लिये सदैव कोशको दे। इति कार्यनियमः। अब अधिकारियोंको कहते हैं, कि उपासेको पूर्वाह्णमें और स्नान किये आर्द्र वस्त्रधारी, सशूक (आस्तिक) को व्यसनसे रहितको कोशका पान कहा है, और मदिरा पीनेवाला, स्त्रीव्यसनी, कितव (कपटी) और जो नास्तिक है इनको कोश न दे और महापराध (महापातक), निर्धर्म (वर्ण आश्रमसे रहित), कृतघ्न, नपुंसक, कुत्सित (निंदित), नास्तिक, व्रात्य (जिनका समयपर जनेऊ न हुआहो), दाश (धीवर) इनको कोश न पिलावे। इति अधिकारिनियमः। तैसे गोमयका मंडल रचकर और शोध्यको सूर्यके सम्मुख बैठाकर पिलावे यह बात नारदके वचनसे जाननी सोई कहा है कि उस अपराधीको बुलाकर महामंडलमें आदित्यके सम्मुख करके तीन प्रसृति जलको पिलावे॥

भावार्थ–देवताओंकी स्नान और पूजा करके उनके स्नानका जो जल उसको ले और उस जलमेंसे अभिमन्त्रण (प्रार्थना) करके

---

१ भक्तो यो यस्य देवस्य पाययेत्तस्य तज्जलम्। समभावे तु देवानामादित्यस्य तु पाययेत्॥ दुर्गायाः पाययेच्चौरान् ये च शस्त्रोपजीविनः भास्करस्य तु यत्तोय ब्राह्मणं तन्न पाययेत्॥ दुर्गायाः स्नापयेच्छूलमादित्यस्य तु मण्डलम्। अन्येषामपि देवानां स्नापयेदायुधानि तु॥

१ विस्रंभे सर्वशंकासु संधिकार्ये तथैव च। एषु कोशः प्रदातव्यो नित्य चित्तविशुद्धये॥

२ पूर्वाह्णे सोपवासस्य स्नातस्यार्द्रपटस्य च। सशूकस्याव्यसनिनः कोशपान विधीयते॥ मद्यपस्त्रीव्यसनिनां कितवानां तथैव च। कोशः प्राज्ञैर्न दातव्यो ये च नास्तिकवृत्तयः॥ महापराधे निर्धर्मे कृतघ्ने क्लीबकुत्सिते। नास्तिकव्रात्यदासेषु कोशपान विवर्जयेत्॥

३ तमाहूयाभिशस्त तु मंडलाभ्यंतरे स्थितम्। आदित्याभिमुख कृत्वा पाययेत्प्रसृतित्रयम्॥

प्राड्विवाक तीन प्रसृति (अजलि) जल पिलावे ॥ ११२ ॥

अर्वाक्चतुर्दशादह्नोयस्यनोराजदैविकम् ।
व्यसनंजायतेघोरंसशुद्धःस्यान्नसंशयः ॥

पद-अर्वाक् १ चतुर्दशात् ५ अह्नः ५ यस्य ६ नोऽ-राजदैविकम् १ व्यसनम् १ जायते क्रि-घोरम् १ सः १ शुद्धः १ स्यात् क्रि-नऽ-संशयः १ ॥

योजना-चतुर्दशात् अह्नः अर्वाक् यस्य राजदैविकं घोरं व्यसन नो जायते सः शुद्धः स्यात् । अत्र संशयः न अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-चौदह दिनसे पहिले जिसको राजा और देवताओंसे पैदा हुआ घोर (बडा) दुःख न हो । अल्प दुःख तो देहधारियोंका हटही नहीं सकता इससे उसकी कुछ चिंता नहीं । वह अपराधी शुद्ध जानना । चौदह दिनके पीछे न मरै तो कुछ दोष नहीं है । सोई नारदने कहाहै कि जिसके दो सप्ताह (१४ दिन) से पीछे महान् विकार हो वह मनुष्य बुद्धिमान् राजाको अभियोग करने योग्य है क्योंकि जो समय था वह बीतगया । चौदह दिनसे पहिले बडे अभियोगके विषयमें समझना क्योंकि ये सर्व महान् अभियोगमें समझने ये सबके प्रस्तावमें कहाहै जो अन्य अवधि पितामहने कही हैं वे अल्प विषयमें हैं क्योंकि यह कह आये हैं कि अल्प अपराधमेंभी कोशको दे,वे ये हैं कि तीन रात्र, सात रात्र द्वादश दिन, चौदह दिनके भीतर जिसको विकार दीखै वह पापकर्मा कहा है, महाभियोगके द्रव्यके तीन भाग करके त्रिरात्र आदिमेंभी तीन पक्षकी व्यवस्था समझनी ॥

१ ऊर्ध्वं यस्य द्विसप्ताहाद्वैकृतं तु महद्भवेत् । नाभियोज्यस्तु विदुषा कृतं कालव्यतिक्रमात् ॥
२ महाभियोगेष्वेतानि ॥
३ कोशमल्पे तु दापयेत् ॥

भावार्थ-चौदह दिनसे पहिले जिसका राजा वा दैवसे कोई घोर दुःख न होय तो वह शुद्ध जानना इसमें संशय नहीं है ॥ ११३ ॥

इति कोशविधिः ।

तुलासे लेकर कोशपर्यंत पांच महादिव्य क्रमसे योगीश्वरने कहे, अन्य स्मृतियोंमें अल्प अभियोगोंके विषय अन्यभी दिव्य कहे हैं सोई पितामहने कहा है कि भक्षणमें कही तडुलकी विधिको कहताहू । चोरको तंडुल देने अन्यको नहीं यह निश्चय है, शालीके शुक्ल तडुल ले अन्य किसीके नहीं मिट्टीके पात्रमें रखकर और सूर्यके आगे शुद्ध होकर स्नानके जलमें मिलावे और रात्रिमें वहांही बसावै । उपासे और पूर्वाभिमुख बैठे और स्नान किये और शिरपर प्रतिज्ञापत्र रक्खेहुए मनुष्य तडुलोंको भक्षण करके पिप्पलके वा भोजपत्रके पत्तेपर थूकदे जिसके मुखमें और हनु (ठोडी) और तालुमें घाव दीखै और गात्र कपै उसको अशुद्ध कहै । शिरपर पत्र रखवाकर और तंडुल भक्षण कराकर प्राड्विवाक शोध्य मनुष्यपर थुकवावे । और सब दिव्योंमें धर्मके आवाहन आदि कर्म पूर्वके समान करना ॥

इति तण्डुलविधिः ।

तप्तमाषकी विधि पितामहने कही है सोई

१ तण्डुलानां प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणनोदितम् । चौरे तु तण्डुला देया नान्यस्येति विनिश्चयः ॥ तण्डुलान्कारयेच्छुक्लाञ् शालेर्नान्यस्य कस्यचित् । मृन्मये भाजने कृत्वा आदित्यस्याग्रतः शुचिः ॥ स्नानोदके न समिश्रान् रात्रौ तत्रैव वासयेत् । प्राङ्मुखोपोषितं स्नात शिरोरोपितपत्रकम् ॥ तण्डुलान्भक्षयित्वा तु पात्रे निष्ठीवयेत्ततः । पिप्पलस्य तु नान्यस्य अभावे भूर्ज एव च ॥ लोहित यस्य दृश्येत हनुस्तालु च शीर्यते । गात्र च कम्पयेद्यस्य तमशुद्ध विनिर्दिशेत् ॥

दिखाते हैं सोने चांदी वा तामेका वा मिट्टीका सोलह सोलह अंगुलका चार अंगुल गहरा मंडल बनावे उसको बीसपल घी और तेलसे भरे, भली प्रकार तपाये हुए उसमें सुवर्णका माष गेरे अंगूठे और अंगुलीसे उस तप्तमाषको निकासे हाथके अग्रभागको न तपावे यदि विस्फोट (फफोला) न होय और हाथ अंगुलीमें कोई विकार न होय तो धर्मसे शुद्ध होता है, तप्तमाषका उद्धरणभी पात्रसे ऊपर फेंकना है कुछ अधिक ऊपर फेंकना नहीं ॥

दूसरा प्रकार यह है कि शुद्ध मनुष्य सुवर्ण वा चांदी तामा लोहा वा मिट्टीके पात्रमें घीको तपावे फिर उसमें सोना चांदी तांवा वा लोहेकी मुद्रा शुद्ध की हुई और एक वार जो जलमें धोईहो उसे छोडै, जब उस घीमें खद २ और तरग उठजाय और नखके स्पर्श योग्य न हो तव आर्द्र (गीला) पत्तेसे उसकी परीक्षा करै जब पत्ता शब्दसे चुरकरने लगे तब इस मंत्रसे एक वार प्रार्थना करै कि हे घृत ! तू यज्ञमें परम पवित्र है पापको शुद्ध कर और हिमके समान शीतल हो, उपासे और स्नान किये और आर्द्र वस्त्र पहिने उस शोध्य मनुष्यसे ग्रहण करावे और परीक्षक उसकी अंगुलीकी परीक्षा करै जिसके विस्फोटक न हो वह शुद्ध और जिसके होजाय वह अशुद्ध होता है, यहांभी धर्मके आवाहन आदि समझने, यहां घृतकी प्रार्थना प्राड्विवाक करै और शोध्य मनुष्य त्वमग्ने सर्वभूतानां इस मन्त्रसे अग्निकी प्रार्थना करै, प्रदेशिनीकी परीक्षा करै, यह कहनेसे प्रदेशिनीसेही मुद्रिकाको निकासै ॥

इति तप्तमाषविधिः

धर्म अधर्मके दिव्यकी विधि पितामहने कही है कि अब धर्माधर्मकी परीक्षा साहसके अभियोगमें मारनेवालोंको और धनके अभियोगमें मांगनेवालोंको और पातकके अभियोगमें प्रायश्चित्तके अभिलाषियोंको कहताहूं, चांदीका धर्म और शीशे वा लोहेका अधर्म बनावे ॥

दूसरे पक्षको कहते हैं भोजपत्रपै वा पट्टे

---

१ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं वा षोडशांगुलम् । चतुरंगुलखातं तु मृन्मयं वाथ मण्डलम् ॥ पूरयेद्घृततैलाभ्यां विंशत्या तु पलैस्तु तत् । सुवर्णमाषकं तस्मिन्सुतप्ते निक्षिपेत्ततः ॥ अंगुष्ठांगुलियोगेन उद्धरेत्तप्तमाषकम् । कराग्रं यो न धुनुयाद्विस्फोटो वा न जायते ॥ शुद्धो भवति धर्मेण निर्विकारकरांगुलिः ॥

२ सौवर्णे राजते ताम्रे आयसे मृन्मयेपि वा । गव्यं घृतमुपादाय तदग्नौ तापयेच्छुचिः ॥ सौवर्णीं राजतीं ताम्रीमायसीं वा सुशोधिताम् । सलिलेन सकृद्धौतां प्रक्षिपेत्तत्र मुद्रिकाम् ॥ भ्रमद्वीचितरंगाढ्ये ह्यनखस्पर्शगोचरे । परीक्षेतार्द्रपर्णेन चुरुकारं सुघोषकम् ॥ ततश्चानेन मन्त्रेण सकृत्तदभिमन्त्रयेत् ! परं पवित्रममृतं घृत त्वं यज्ञकर्मसु ॥ दह पावक पापं त्वं हिम शीत शुचौ भव । उपोषितं ततः स्नातमार्द्रवाससमागतम् ॥ ग्राहयेन्मुद्रिकां तां तु घृतमध्यगतां तथा । प्रदेशिनीं च तस्याथ परीक्षेयुः परीक्षकाः ॥ यस्य विस्फोटका न स्युः शुद्धोऽसावन्यथाऽशुचिः ॥

१ अधुना संप्रवक्ष्यामि धर्माधर्मपरीक्षणम् । हन्तॄणां याचमानानां प्रायश्चित्तार्थिनां नृणाम् ॥ राजतं कार्यद्धर्ममधर्मं सीसकायसम् ॥

२ लिखेद्भूर्जे पटे वापि धर्माधर्मौ सितासितौ। अभ्युक्ष्य पंचगव्येन गंधमाल्यैः समर्चयेत् ॥ सितपुष्पस्तु धर्मः स्यादधर्मोऽसितपुष्पधृक् । एवं विधायोपलिप्य पिण्डयोस्तौ निधापयेत् ॥ गोमयेन मृदा वापि पिंडौ कार्यौ समततः । मृद्भाण्डकेऽनुपहते स्थाप्यौ चानुपलक्षितौ ॥ उपलिप्ते शुचौ देशे देवब्राह्मणसन्निधौ। आवाहयेत्ततो देवान् लोकपालांश्च पूर्ववत्॥ धर्मावाहनपूर्वं तु प्रतिज्ञापत्रकं लिखेत् । यदि पापविमुक्तोहं धर्मस्त्वायातु मे करे ॥ अशुद्धश्चेन्मम करे पापमायातु धर्मत ॥

पर शुक्ल कृष्ण धर्म अधर्मकी मूर्ति लिखै उनके ऊपर पचगव्य छिडककर शुक्ल पुष्पोंसे धर्मका और कृष्ण पुष्पोंसे अधर्मका और चदनसे दोनोंका पूजन करै ऐसे करके उन दोनोंको गोमय या मिट्टीके पिण्डपर स्थापन करै, उन दोनों पिण्डोंको मट्टीके नवीन पात्रमें इस प्रकार ढककर रक्खै लीपे हुए शुद्ध देशमें देवता और ब्राह्मणोंके समीप देवता और लोकपालोंका आवाहन करै, और धर्मका आवाहन करके प्रतिज्ञा पत्रको लिखै फिर अपराधी इस प्रकार प्रार्थना करै, कि यादि मैं पापसे मुक्त हूं तो मेरे हाथमें धर्म आवो और अशुद्ध हूं तो पाप आवो, यह कह अभियुक्त मनुष्य उन पिंडोंमेंसे शीघ्र एक पिंड ग्रहण करै यादि वह धर्मको ग्रहण करले तो शुद्ध और अधर्मको ले तो अशुद्ध होता है इस प्रकार सक्षेपसे धर्म, अधर्मकी परीक्षा कही ॥

इति धर्माधर्मविधिः ।

अन्यभी शपथ (कसम) द्रव्यके अल्प और महत्त्वमें और विशेषजातियोंमें मनु आदिकोंने कहे हैं, जैसे कि एक निष्कके अभियोगमें सत्यवचन, दो निष्कके अभियोगमें चरणोंका स्पर्श, तीन निष्कके पहिले पहिले पुण्यका शपथ दे, इससे परे कोशपान करावै मनुने (अ० ८ श्लो० ११३) कहाहै कि ब्राह्मणोंको सत्यकी क्षत्रियको वाहन और आयुधोंकी वैश्यको गौ बीज सुवर्णकी और शूद्रको सब पातकोंकी सौगद दे, और यहां शुद्धिका निश्चयभी मनुने कहाहै कि जिसको राजा वा दैवसे घोर दुःख न हो वह शपथमे शुद्ध जानना, कालका नियमभी एक रात्रसे तीन रात्रतक और तीन रात्रसे पांचरात्र न कहै यह एकरात्र आदिभी कार्यका लाघव और गौरव देखकर जानना, इस प्रकार जब दिव्योंसे जय पराजयका निश्चय हो जाय तब दंड विशेषभी कात्यायनने दिखाया है कि शुद्ध मनुष्य पैसे पचास दिलावै और अशुद्धको दड दे, वह दड यह है कि विष, जल, अग्नि, तुला, कोश, तण्डुल, तप्तमाष इन दिव्योंमें सहस्र, षट्शत, पचशत, चार, तीन, दो, एक क्रमसे दंड होता है और अपराधोंमें अल्प दंडकी कल्पना करै, निह्नवमें साक्षियोंसे सिद्ध किये धनको राजा दिवावै, इस उक्तदडके सग इस दिव्यदंडका समुच्चय समझना ॥

---

१ अभियुक्तस्तयोश्चैक प्रगृह्णीताविलबितः । धर्मे गृहीते शुद्धः स्यादधर्मे तु स हीयते ॥ एव समासतः प्रोक्तं धर्माधर्मपरीक्षणम् ॥

२ निष्के तु सत्यवचन द्विनिष्के पादलंभनम् । त्रिकादर्वाक्तु पुण्य स्यात्कोशपानमतः परम् ॥

१ सत्येन शापयेद्विप्र क्षत्रिय वाहनायुधैः । गोबीजकांचनैर्वैश्य शूद्र सर्वैस्तु पातकैः ॥

२ नाचार्तिमृच्छाति क्षिप्र स ज्ञेयः शपथे शुचिः ।

३ शतार्द्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दडभाग्भवेत् ।

४ विषे तोये हुताशे च तुलाकोशे च तण्डुले । तप्तमाषकादिव्ये च क्रमाद्दड प्रकल्पयेत् ॥ सहस्र षट्शत चैव तथा पच शतानि च । चतुस्त्रिद्व्येकमेव च हीन हीनेषु कल्पयेत् ॥

इति दिव्यप्रकरणम् ॥ ७ ॥

अथ दायविभागप्रकरणम् ८.

मानुष और दैवभेदसे दो प्रकारके प्रमाण वर्णन किया, अब योगमूर्ति याज्ञवल्क्य ऋषि दायके विभागका वर्णन करतेहैं। वहां दाय-शब्दसे वह धन कहा जाताहै जो धन स्वामीके संबंध निमित्तसेही अन्यका स्व (धन) हो जाय। वह दाय दो प्रकारका है एक अप्रतिबंध अर्थात् जिसको कोई रोक न सके, दूसरा सप्रतिबंध अर्थात् जिसका कोई प्रतिबंधक हो। उनमें पुत्र और पौत्रोंका पुत्ररूप और पौत्ररूपसे पिता और पितामहके धनमें स्वत्व है, वह अप्रतिबध दाय होताहै, क्योंकि उसको कोई हटाय नहीं सकता और पितृव्य और भ्राता आदिकोंका पुत्र और पिताके अभावमेंही स्वत्व हो सकताहै। इससे पुत्रका होना और स्वामीका होना उसके स्वत्वमें प्रतिबधक है। इससे पितृव्यरूपसे और भ्रातारूपसे जिसमें स्वत्व हो वह सप्रतिबंध दाय होताहै, इसी प्रकार उनके पुत्र आदिमेंभी समझना। विभाग इसका नाम है, कि अनेक हैं स्वामी जिसमें ऐसे द्रव्यसमुदायके विषयोंमेंसे जो स्वामियोंके एकदेशमें द्रव्यकी व्यवस्था विभाग कहाती है। इसी अभिप्रायसे नारदने कहाहै कि पिताके धनका विभाग जहां पुत्र करै वह दायभाग नामका व्यवहार पद बुद्धिमानोंने कहाहै। इस वचनमें पितृपदसे स्वत्वके सवधी और पुत्रपदसे निकटके वर्ती समझने। यहां यह निरूपण करने योग्य है कि किस कालमें किसका किस-प्रकार और कौन विभाग करें। उनमें किस कालमें किस प्रकार और कौन इनका निरूपण तो तहां २ श्लोकके व्याख्यानमेंही कहेंगे। यहां तो इतना विचारते हैं कि विभाग किसका होताहै, क्या विभाग करनेसे धनमें स्वत्व पैदा होताहै, वा स्वत्ववाले धनकाही विभाग होताहै, अर्थात् पुत्र आदिका जन्मसेही उस धनमें स्वत्व था उसमें प्रथम स्वत्वकाही निरूपण करते हैं। क्या स्वत्व एक शास्त्रसेही जाना जाताहै वा किसी प्रमाणांतरसेभी जाना जाताहै, उन दोनोंमें शास्त्रसेही जाना जाता है यही युक्त है। क्योंकि यह गौतमका वचन है कि रिक्थ (हिस्सा), क्रय (मोल लेना), सविभाग (बांटना), परिग्रह (प्रतिग्रह), अधिगम (गडा धन मिलना) इनमें स्वामी होताहै। और ब्राह्मणको प्रतिग्रहसे मिला, क्षत्रियको विजयसे, वैश्यको व्यापार और सेवासे मिले हुएमें स्वत्व होताहै। यदि स्वत्व (अपना हो जाना) प्रमाणांतरसे जाना जाता तो यह वचन अनर्थक हो जाता। तैसेही यदि स्वत्व लौकिक होता तो अर्थात् लोकसे जाना जाता तो मनुने (अ ८-श्लो. ३४०) में यह जो दण्ड कहा है कि, जो ब्राह्मण यज्ञ कराने वा पढानेसेभी उससे धन लेनेकी इच्छा करै, जो दाता और दायका भागी न होय वहभी चौरके समान है, वह दडका विधानभी संगत न होगा और यदि स्वत्व लौकिक होता तो मेरा स्व इसने चुराया है यह कोई नहीं कहता। क्योंकि चुरानेवालेकेही हाथमें होनेसे उसकाही स्वत्व प्रतीत होता है, अन्यथा स्व अपनाही

---

१ विभागोर्थस्य पित्र्यस्य तनयैर्यत्र कल्प्यते। दायभाग इति प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः॥

१ स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाऽधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः॥

२ योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम्। याजनाध्यापनाद्वापि यथा स्तेनस्तथैव सः॥

इस चोरने चुराया है यह कहसक्ते थे । इससे चुरानेवालेका धनमें स्वत्व नहीं होसकता क्योंकि शास्त्रमें नहीं कहा है और ऐसेही यह भी संशय सुवर्ण और रजत आदिके स्वरूपके समान नही होगा कि इसका स्व है वा अन्यका है, तिससे स्वत्व केवल शास्त्रसेही जाना जाता है। इसमें हम यह कहते हैं कि स्वत्व लौकिक है क्योंकि लौकिक प्रयोजन और क्रियाओंका साधन है । शास्त्रसे जानने योग्य आहवनीय आदि अग्निहोत्र लौकिक नहीं। कदाचित् कोई शंका करै कि आहवनीय क्रियाके साधन नही होते इससे वे लौकिक आदिभी पाक आदिके साधन होनेसे लौकिक हैं सो ठीक नहीं। क्योंकि वे आहवनीयरूपसे पाकके साधन नहीं किंतु प्रत्यक्ष देखने योग्य अग्नि आदिरूपसे हैं। यहां तो सुवर्ण आदि धन सुवर्ण आदिरूपसे क्रयसाधन नहीं किंतु स्वत्वसे है। क्योंकि जिसका जो स्व नही होता वह उसकी क्रय आदि अर्थक्रियाको सिद्ध नहीं करसक्ता। और जिन्होंने शास्त्रका व्यवहार नहीं देखा उन प्रत्यन्तवासि (ग्रामीण आदि) योंमेंभी क्रय विक्रय (लेनदेन) आदिके देखनेसे स्वत्वका व्यवहार देखते हैं । और नियत है उपाय जिसका ऐसा स्वत्व लोकसिद्ध है यह न्यायके ज्ञाता मानते हैं । सोही दिखाते हैं लिप्सासूत्रके तृतीय वर्णकमें द्रव्यार्जन (द्रव्यसंचय) के नियमोंको क्रत्वर्थ मानोगे तो स्वत्वही न होगा क्योंकि स्वत्व अलौकिक है। इस पूर्वपक्षके असंभवकी आशंका करके गुरुने यह पूर्वपक्ष समर्थित (पुष्ट) किया है कि, प्रतिग्रह आदिसे द्रव्यका जो अर्जन वह स्वत्वका साधन लोकमें प्रसिद्ध है और द्रव्यके अर्जनको क्रत्वर्थ (यज्ञार्थ) मानोगे तो स्वत्वहीन होगा इससे यज्ञकी भी प्रवृत्ति नहीं होगी। तिससे विरुद्ध कहनेवाले यह किसीने प्रलाप (अनर्थ) कहा कि द्रव्यका अर्जन स्वत्वको पैदा नहीं करता। तैसेही सिद्धांतमेंभी स्वत्वको लौकिक मानकर विचारका प्रयोजन कहा है इससे पुरुषको नियम अतिक्रम (अवलघन) है क्रतु (यज्ञ) का नही । पूर्वोक्त गुरुवचनं अर्थ इस प्रकार किया है कि जब द्रव्यसचयके नियम क्रतुके लिये है तब नियमसे सचित द्रव्यसे ही कतुकी सिद्धि होती है और नियमके अवलघनसे सचित किये द्रव्यसे क्रतुकी सिद्धि नही होती । पूर्वपक्षमें नियमके अवलघनका दोष पुरुषको नहीं होता । सिद्धांतमें तो द्रव्यसचयका नियम पुरुषके लिये है, उसके अवलबनसे सचित किया जो धन उससेभी क्रतुकी सिद्धि होती है । केवल पुरुषको नियमके अवलघनका दोष होता है। नियमके अवलघनसे संचित किये द्रव्यमेंभी स्वत्व माना है। न मानोगे तो क्रतुकी सिद्धि नहीं होगी। कदाचित् कोई शका करै कि चोरी आदिसे प्राप्त हुए धनमेंभी स्वत्व होजायगा सो ठीक नहीं क्योंकि चोरी आदिसे प्राप्त हुए धनसे स्वत्व लोकमें प्रसिद्ध नही । क्योंकि चोरीमें व्यवहारका विसंवाद है । इस प्रकार प्रतिग्रह आदि हैं उपाय जिसके ऐसा स्वत्व जब लौकिक है वहां अदृष्टके लिये यह नियम है कि ब्राह्मणके प्रतिग्रह आदि और क्षत्रियके विजित आदि और वैश्यके कृषि आदि और शूद्रके शुश्रूषाआदि उपाय हैं और पूर्वोक्त गौतम वचनमें कहे हुए रिक्थ, क्रय, सविभाग, परिग्रह, अधिगम जो सबके लिये साधारण उपाय हैं। उनमें अप्रतिबंध दायको रिक्थ कहते हैं।

---

१ द्रव्यार्जननियमानां क्रत्वर्थत्वे स्वत्वमेव न स्यात्स्वत्वस्यालौकिकत्वात् ॥

क्रय (मोल लेना) संविभाग (सप्रतिबंध दाय) नहीं है। अन्य स्वामी पहिले जिसका ऐसे जल तृण काष्ठ आदिके स्वीकारको परिग्रह कहते हैं। निधि आदिकी प्राप्तिको अधिगम कहते हैं। ये सब निमित्त होंय तो स्वामी जाना जाता है और प्रतिग्रह आदिसे मिलेमें ब्राह्मणका और विजय और दंड आदिसे मिलेमें क्षत्रियका और कृषि गोरक्षा आदिसे मिलेमें वैश्यका और द्विजोंकी सेवा आदिसे मिलेमें शूद्रका असाधारण स्वत्व होता है। इसी प्रकार अनुलोमज और प्रतिलोमजके जो जगत्में प्रसिद्ध स्वत्वके हेतु हैं उनमें जो २ असाधारण कहा है कि जैसे कि सूतोंको अश्वका सारथ्य, वह सब पूर्वोक्त गौतमके वचनमें कहे निर्दिष्ट शब्दसे लिया जाता है क्योंकि वह सब भृतिरूप है और त्रिकाण्ड कोशमेंभी लिखा है, कि भृति और भोगको निर्वेश कहते हैं वह सब पूर्वोक्तोंका असाधारण स्वत्वका हेतु जानना। और जो पुत्रहीन मनुष्यके पत्नी दुहिता आदि क्रमसे स्वामी होते हैं वहांभी स्वामीके संबधीरूपसे बहुतसे दायके विभागी प्राप्त थे। लोकसे प्रसिद्धभी स्वत्वमें व्यामोहनिवृत्तिके लिये यह वचन है कि पत्नी दुहिता आदिही होते हैं अन्य नहीं, इससे सब निर्दोष हैं। और स्वत्वको लौकिक माननेमें जो यह दोष दियाहै कि मेरा स्व इसने हरलिया यह नहीं कह सकेंगे, वहभी ठीक नहीं, क्योंकि स्वत्वके हेतु जो क्रय आदि उनके संदेहसे स्वत्वका सदेह हो सकता है। विचारका प्रयोजन तो यह है कि जो धन ब्राह्मणोंने निंदित कर्मसे संचित कियाहै उसके त्यागसे जप और तपसे शुद्ध होते हैं इस वचनसे केवल शास्त्रसिद्धभी स्वत्व है तोभी निंदित असत्प्रतिग्रह आदि और व्यापार आदिसे जो मिलाहो उसमें स्वत्वही नहीं होसकता। इससे वह धन पुत्रोंके विभाग करने योग्य ही नहीं, और जब स्वत्व लौकिक है तब असत्प्रतिग्रह आदिसे मिलेमें भी स्वत्व होनेसे उसके पुत्रोंको वह विभाग करने योग्यही है। उसके त्यागसे शुद्ध होते हैं यह प्रायश्चित्त सचय करनेवालेकोही है। उसके पुत्रोंको तो वह दाय है इससे ही स्वत्व होनेसे पुत्रोंको दोषका सवध नहीं है। यह मनु (अ० १० श्लो० ११५) काभी वचन है, कि धन आनेके सात उपाय धर्मसे हैं, कि दाय, लाभ, क्रय, जय, प्रयोग और कर्मयोग और श्रेष्ठ प्रतिग्रह। अब यह सदेह शेष रहा कि विभाग किये पीछे स्वत्व होताहै अथवा विद्यमान है स्वत्व जिसमें ऐसे धनका विभाग होताहै, उनमें विभागसे स्वत्व होता है यही युक्त है। क्योंकि जात (पैदा हुए) पुत्रका आधान कहाहै, यदि जन्मसेही स्वत्व होता तो पैदा हुए पुत्रकाभी वह साधारण धन है, इससे धनसे साध्य आधान आदिमें पिताका अधिकार न होगा। तैसेही विभागसे पहिले पिताकी प्रसन्नतासे जो धन किसी पुत्रको मिलाहो उसके विभागका निषेध है वहभी न होगा, क्योंकि सवकी अनुमतिसे दिया है इससे विभागकी प्राप्तिही नहीं। सोई कहाहै कि शूर वीरतासे मिला और भार्याका धन और विद्याधन ये तीनों विभाग करने योग्य नहीं हैं और पिताकी प्रसन्नतासे मिला

१ निर्वेशो भृतिभोगयोः।

१ यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम्। तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यंति जप्येन तपसैव च ॥

२ सप्तवित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः। प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥

३ शौर्यभार्याधने चोभे यच्च विद्याधनं भवेत्। त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः ॥

जो धन वहभी विभागके योग्य नहीं होता। तैसेही इस वचनसे प्रीतिका दानभी ठीक न होगा कि प्रसन्न होकर भर्ताने स्त्रीको जो धन दिया है उसके मरेपरभी उस धनको यथेच्छ भोगै वा स्थावरको छोडकर किसीको देदे। कदाचित् कोई कहै है जन्मसेही स्वत्व माननेमें यह संबंध युक्त है कि 'स्थावराद्दते यद्दत्तं' स्थावरके विना जो दिया है उसकोंही यथेच्छ भोगे इससे स्थावरका प्रीतिसे दानही नहीं हो सकता सो ठीक नहीं। क्योंकि व्यवहित (दूरकी) योजना (अन्वय) का प्रसंग होजायगा। और जो यह वचन है कि मणि मोती प्रवाल (मूगा) इन सबका स्वामी पिता है और संपूर्ण स्थावरका तो न पिता स्वामी है और न पितामह है। और तैसेही वचन है कि पिताकी प्रसन्नतासे वस्त्र और भूषण भोगे जाते हैं और स्थावर तो पिताकी प्रसन्नता होनेपरभी नहीं भोगा जाता। इन वचनोंसे जो स्थावर आदिका प्रसन्नतासे देनेका निषेध है वह पितामहके पैदा किये स्थावरके विषयमें है। पितामहके मरनेपर तो वह धन पिता और पुत्रका साधारणभी यदि है तोभी मणि मुक्ता आदि तो पिताकेही हैं और स्थावर तो दोनोंका साधारण है यह इसी वचनसे जाना जाता है। तिससे जन्मसे स्वत्व नहीं होता किंतु स्वामीके मरण वा विभागसे स्वत्व होता है इसीसे इस शंकाकाभी अवकाश नहीं कि पिताके मरनेपर और विभागसे पहिले द्रव्यमें स्वत्व नष्ट हो चुका तो अन्य कोई ग्रहण करने लगे तो निवारण (मने) नहीं कर सकेंगे। तैसेही जो पुत्र एकही है तो उसका स्वत्व पिताके मरनेसेही होजाताहै इससे विभागकी अपेक्षा वहां नहीं है। इस विषयमें हम यह कहते हैं कि लोकप्रसिद्धही स्वत्व है यह कह आयेहैं और लोकमें पुत्र आदिकोंका जन्मसेही जो स्वत्व अत्यंत प्रसिद्ध है वह अपह्नवके योग्य नही अर्थात् वह हट नहीं सकता। और विभाग शब्दभी बहुत हैं स्वामी जिसके ऐसे धनके विषयमेंही लोकमें प्रसिद्ध है, अन्यके धनमें वा मृतकके धनमें नहीं है। और गौतमकाभी वचन है कि उस अर्थके स्वामित्वको उत्पत्तिसेही प्राप्त होता है यह आचार्य कहतेहैं। और पूर्वोक्त "मणिमुक्ताप्रवालानां" यह वचनभी जन्मसे स्वत्व माननेके पक्षमेंही ठीक होसकता है, और पितामहके पैदा किये स्थावरके विषयमें है यह युक्त नहीं। क्योंकि यह वचन है कि पिता और पितामह स्थावरके स्वामी नहीं हैं। अपना संचित किया भी पितामहका स्थावर धन पुत्र और पौत्रोंके होते देने योग्य नहीं है यह वचनभी जन्मसेही स्वत्वको जनाताहै। जैसे अन्यके मतमें पितामहकेभी मणि मोती वस्त्र भूषणोंमें पिताका ही स्वत्व वचनसे है। इसी प्रकार हमारे मतमें भी पिताके संचित कियेभी इनमें पिताको दानका अधिकार वचनसे है इससे कोई विशेष नहीं है। और जो यह विष्णुका वचन है कि प्रसन्न होकर जो भर्ताने दियाहै उसको यथेच्छ भोगै यह स्थावरको प्रीतिसे देनेका बोधन है उसका अर्थ यह करना कि अपना संचितभी पुत्र आदिकी आज्ञासेही देना। क्योंकि पूर्वोक्त मणि मुक्ता आदि वचनोंसे स्थावरसे भिन्नोंकाही

---

१ भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन्मृतेपि तत्। सा यथाकाममश्नीयाद्दद्याद्वा स्थावराद्दते ॥

२ मणिमुक्ताप्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः। स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः ॥

पितृप्रसादाद्भुज्यते वस्त्राण्याभरणानि च । स्थावरं तु न भुज्येत प्रसादे सति पैतृके ॥

१ त तथोत्पत्त्यैवार्थस्वामित्वं लभेतेत्याचार्याः।

प्रीतिसे दानकी योग्यताका निश्चय है। और जो यह कहाहै कि धनसे साध्य वेदोक्त कर्मोंमें अधिकार न होगा, वहां वेदोक्त कर्मकी विधिसेही अधिकार जानाजाताहै, तिससे पिता और पितामहके द्रव्यमें जन्मसेही स्वत्व है। तथापि पिताको अवश्य करने योग्य धर्मके कार्योंमें और वचनोंसे प्राप्त प्रासाद (घर), दान, कुटुंबका पालन, आपत्तिकी निवृत्ति आदिमें स्थावरसे भिन्न द्रव्यके देनेमें पिताकी स्वतन्त्रता (इखत्यार) है यह स्थित भया। अपने संचित और पिता आदिसे मिले स्थावरमें तो पुत्र आदिकी परतन्त्रता हीं है अर्थात् पुत्र आदिकी समतिके विना दान आदि पिता नहीं करसकता। क्योंकि ऐसा वचन है कि स्वय संचय कियेभी स्थावर और द्विपद (भृत्य आदि) हैं उनका सब पुत्रोंकी सम्मातिके विना न दान है न विक्रय है। जो पुत्र पैदा हो चुके हैं और जो पैदा नहीं हुए गर्भमेंही स्थित हैं वेभी वृत्ति (जीविका) को चाहतेहैं इससे उनके विना दान और विक्रय नहीं हो सकता। इसका अपवादभी वचन है कि आपत्तिके लिये कुटुबके अर्थ और विशेष कर धर्मके लिये एकभी मनुष्य दान आधि और विक्रय करदे। इसका तात्पर्य यह है कि जब पुत्र और पौत्रोंको तो व्यवहारका ज्ञान न हो और अनुज्ञा देनेमेंभी असमर्थ हों और भ्राताभी अविभक्त हों वा पुत्रोंके समानही हों और ऐसी आपत्ति हो कि जो सब कुटुंबमें आप्त (फैली) हो उसमें और कुटुंबके पोषणमें और अवश्य करने योग्य पिताके श्राद्ध आदिमें एकभी समर्थ स्थावर धनका दान आधि विक्रय करदे। जो यह वचन है कि अविभक्त वा विभक्त जो सपिंड हैं वे सब स्थावर धनमें समान हैं उनमें एक दान आधि विक्रय करनेमें समर्थ नहीं है। वह वचनभी इस प्रकार व्याख्या करने योग्य है कि अविभक्त भाइयोंका जो द्रव्य है वह मध्यमें स्थित है उसका एक स्वामी नहीं हो सकता इससे सबकी संमति अवश्य लेनी। विभक्त (जुदे २) हुए पीछे तो विभक्त और अविभक्तका संदेह दूर होनेसे व्यवहारकी सुकरता (भलाई) के लिये सबकी संमति होतीहै। कुछ एकके अनीश्वर (नही मालिक) होनेसे नहीं इससे विभक्तोंकी अनुमतिके विनापि व्यवहार सिद्ध होताहै। और जो यह वचन है कि अपना ग्राम, जाति, सामंत, दायाद इनकी अनुमति और सुवर्ण और जलके दान (सकल्प) से इन छः से पृथ्वी दूसरेकी हो जातीहै उसमेंभी ग्रामकी अनुमति इस लिये अपेक्षित है कि प्रतिग्रह प्रकाश करके होताहै और स्थावरका तो प्रकाश विशेष करके होताहै इस वचनमे व्यवहारका प्रकाश होजाय कुछ ग्रामकी अनुमतिके विना व्यवहारकी असिद्धि नहीं होती। और सामतों (समीपके जिमीदार) की अनुमति तो सीमामें विवाद दूर करनेके लिये है। जाति और दायादोंकी अनुमतिका प्रयोजन तो कह आये। 'हिरण्योदकदानेन' सुवर्ण और जलदानसे इसका यह अर्थ है कि स्थावरका विक्रय नहीं

---

१ स्थावरं द्विपदं चैव यद्यपि स्वयमार्जितम्। असभूय सुतान्सर्वान्न दान न च विक्रयः॥ ये जाता यप्यजाताश्च ये च गर्भे व्यवस्थिताः। वृत्तिं च तेऽभिकांक्षति न दान न च विक्रयः॥

२ एकोपि स्थावरे कुर्याद्दानाधमनविक्रयम्। आपत्काले कुटुंबार्थे धर्मार्थे च विशेषतः॥

१ अविभक्ता विभक्ता वा सपिंडा स्थावरे समाः। एको ह्यनीशः सर्वत्र दानाधमनविक्रये॥

२ स्वग्रामज्ञातिसामतदायादानुमतेन च हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छति मेदिनी॥

३ प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः।

होता किंतु सबकी अनुमतिसे आधि (गिरवी) करदे इस वचनसे स्थावरके विक्रयका निषेध है और इस वचनसे दानकी प्रशंसाभी देखतेहैं कि जो भूमिका प्रतिग्रह लेताहै और जो भूमिको देताहै वे दोनों पुण्यकर्मा नियमसे स्वर्गमें जाते हैं इससे विक्रयभी करना होय तो सुवर्णसहित जल देकर दानकी रीतिसे स्थावरका विक्रय करै अर्थात् लोमसे न करै ॥ १४३ ॥

विभागंचेत्पिताकुर्यादिच्छयाविभजेत्सुतान् ज्येष्ठंवाश्रेष्ठभागेनसर्वेवास्युः समांशिनः ॥

पद-विभागम् २ चेत्ऽ-पिता १ कुर्यात् क्रि-इच्छया ३ विभजेत् क्रि-सुतान् २ ज्येष्ठम् २ वाऽ-श्रेष्ठभागेन ३ सर्वे १ वाऽ-स्युः क्रि-समांशिनः १ ॥

योजना-चेत् (यदि) पिता विभागं कुर्यात् तर्हि इच्छया सुतान् विभजेत् । वा ज्येष्ठं श्रेष्ठभागेन विभजेत् । वा सर्वे समांशिनः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि पिता और पितामहके धनमें जन्मसेही स्वत्व है तथापि इसका विशेष 'भूर्या पितामहोपात्ता' इस वचनमें कहेंगे । अब यह कहतेहैं कि जिस कालमें जो जैसे विभाग करैं । जब पिता विभाग किया चाहै तब पुत्रोंको अर्थात् एक दो तीन आदि पुत्रोंको अपने सकाशसे विभाग करदे । इच्छामें कोई अंकुश नहीं होता इससे नियमके लिये पिछले आधे श्लोकसे इच्छासे विभागकाही विवरण कियाहै वे दोनों पक्षही इच्छामें मानोगे तो वाक्यभेद होजायगा और यह अव्यवस्थाभी हो जायगी कि एकको लक्ष किसीको कपर्दिका और किसीको कुछभी न मिलैगा । अथवा ज्येष्ठको श्रेष्ठ भागसे, मध्यमको मध्यम भागसे, कनिष्ठको कनिष्ठ भागसे विभक्त करै । श्रेष्ठ आदि विभाग मनुने (अ ८ श्लो. ११२) कहाहै कि ज्येष्ठका वीसवां उद्धार वा द्रव्यमेंसे श्रेष्ठ वस्तु, उससे आधा मध्यमका और छोटे भाईका उद्धार चौथाई होता है । इस वचनमें वा शब्द वक्ष्यमाण पक्षकी अपेक्षासे है कि अथवा सब ज्येष्ठ आदि भाई समान भागी हों इस प्रकार पिता विभाग करै । और यह विषम विभागभी अपने पैदा किये द्रव्यके विषयमें है और जो द्रव्य पिता पितामहके क्रमसे चला आया है उसमें तो पिता और सब भाइयोंका समान स्वामित्व आगे कहेंगे इससे पिताकी इच्छासे विषम विभाग युक्त नहीं है । यदि पिता विभाग करै इस कथनसे जब पिताकी विभाग करनेकी जो इच्छा वह एक विभागका समय है । दूसरा समयभी यह है पिताके जीवतेभी जब पिताको द्रव्य संचयकी इच्छा न हो, स्त्रीसंगसे निवृत्ति हो और माताकाभी रजोधर्म निवृत्त होचुकाहो तो पिताकी इच्छाके न होनेपरभी पुत्रोंकी इच्छासेही विभाग होता है । सोई नारदने कहाहै कि पिताके मरे पीछे पुत्र धनको सम (बराबर) बाँटलैं इस प्रकार पिताक मरे पीछे विभागको कहकर यह दिखाया है कि माताका रजोधर्म निवृत्त होचुकाहो और भगिनियोंका विवाह होगयाहो और पिताकी स्त्रीसंग और धनसंचयमें वांछा न रही होय तो पुत्र धनको समान

१ स्थावरे विक्रयो नास्ति कुर्यादाधिमनुज्ञया ।

२ भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति । उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥

१ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥

२ अत ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा विभजेयुर्धनं समम् । मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च ॥ निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ॥

(इससे) भागसे बांटलें। गौतमनेभी पिताके मरे पीछे पुत्र धनको बांटलें यह कहकर माताका रजोधर्म निवृत्त होनेपर दूसरा विभागका समय दिखाया है और जीवतेहुए पिताकी इच्छा तीसरा विभागका काल दिखाया है। तैसेही माताको रजोधर्मभी होताहो और पिताकी इच्छा भी न हो और पिता अधर्ममें वर्तताहो वा दीर्घ रोगसे ग्रस्त होय तो पुत्रोंकी इच्छासे भी विभाग होता है। सोई शखने कहा है पिताके निष्काम और वृद्ध होनेपर धनका विभाग होता है और जब पिताका चित्त विपरीत (अधर्ममें) होजाय वा पिता रोगी होजाय तब विभाग होता है॥

भावार्थ—यदि पिता विभाग करै तो अपनी इच्छासे चाहै जब पुत्रोंको विभक्त (जुदे २) करदे। अथवा जेठे पुत्रको श्रेष्ठ भाग देकर पृथक् २ करै। अथवा सबको समान (बराबर) भाग देकर पृथक् २ करै॥ ११४॥

यदिकुर्यात्समानंशान्पत्न्यः कार्याः समांशिकाः। न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा॥ ११५॥

पद—यदिऽ—कुर्यात् क्रि—समान् २ अंशान् २ पत्न्यः १ कार्याः १ समांशिकाः १ नऽ—दत्तम् १ स्त्रीधनम् १ यासाम् ६ भर्त्रा ३ वाऽ—श्वशुरेण ३ वाऽ—॥

योजना—यदि समान् अंशान् कुर्यात् तर्हि यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण स्त्रीधनं न दत्त ताः पत्न्यः समांशिकाः कार्याः॥

तात्पर्यार्थ—जब पिता अपनी इच्छासे सब पुत्रोंको समान भागी करै तब उन पत्नियोंकोभी समानही भाग दे। जिन पत्नियोंको पति और श्वशुरने स्त्रीधन न दियाहो, स्त्रीधनके देनेपर तो इस वचनसे आधा भाग देना कहेंगे। जब पिता श्रेष्ठ भाग आदि देकर ज्येष्ठ आदि पुत्रोंका विभाग करै तब पत्नियोंको श्रेष्ठ आदि भाग प्राप्त नहीं होता, किंतु निकासा है उद्धार जिसमेंसे ऐसे इकट्ठे धनमेंसे समान भाग और अपने उद्धारकोही पत्नी प्राप्त होती है। सोई आपस्तंबने कहा है कि घरके परीभांड (पात्र) और अलंकार (गहना) भार्याका होता है। कहीं तो पिताकी इच्छाके विनाभी विभाग बृहस्पतिने कहा है कि क्रम (परंपरा) से चले आये गृह क्षेत्र आदि धनमें पिता और पुत्र समानभागी हैं इससे पिताकी इच्छाके विनाभी पैतृक विभागके अनुसार विभाग करने योग्य हैं अर्थात् पितामह आदिके संचय किये धनमें पिताकी इच्छाके न होनेपरभी अपना अंश बटवा सकते हैं॥

भावार्थ—यदि पिता समान भाग करै तो उन पत्नियोंकोभी समान भाग दे जिनको भर्ता वा श्वशुरने स्त्रीधन न दियाहो॥ ११५॥

शक्तस्यानीहमानस्य किंचिद्दत्त्वा पृथक्क्रिया। न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः॥ ११६॥

पद—शक्तस्य ६ अनीहमानस्य ६ किंचित्ऽ—दत्त्वाऽ—पृथक्क्रिया १ न्यूनाधिकविभक्तानाम् ६ धर्म्यः १ पितृकृतः १ स्मृतः १॥

योजना—अनीहमानस्य शक्तस्य किंचित् दत्त्वा पृथक्क्रिया कर्तव्या। न्यूनाधिकविभ-

---

१ ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा रिक्थं विभजेरन् इत्युक्त्वा निवृत्ते चापि रजसि। जीवति चेच्छति।

२ अकामे पितरि रिक्थविभागो वृद्धे विपरीतचेतसि रोगिणि च।

१ दत्ते त्वर्द्धं प्रकल्पयेत्।

२ परीभांड च गृहेऽलंकारो भार्यायाः।

३ क्रमागते गृहक्षेत्रे पिता पुत्राः समांशिनः। पैतृकेन विभागार्हाः सुताः पितुरनिच्छया॥

क्तानां विभागः धर्म्यः (शास्त्रोक्तः चेत्) पितृकृतः स्मृतः मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पुत्र स्वय द्रव्यके संचय करनेमें समर्थ होनेपर पिताके धनकी इच्छा न करै उसको यत् किंचित् (बुरा भला) धन देकर पिता अन्यपुत्रोंका इसलिये विभाग करदे कि उस समर्थ पुत्रके पुत्रोंकी किसी कालांतरमें अंश लेनेकी इच्छा न हो। न्यून वा अधिक भाग देकर विभक्त (जुदे) किये पुत्रोंका जो विभाग पिताने किया है वह विभाग यदि धर्म्य (शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार) है तो पितृकृत है अर्थात् वह निवृत्त नहीं होसक्ता। यह मनु आदिकोंने कहाहै शास्त्रोक्तरीतिके अनुसार न होय तो पिताका कियाभी न्यूनाधिक विभाग निवृत्त होसकता है सोई नारदने कहाहै कि रोगी, क्रोधी, विषयोंमें जिसका मन आसक्त हो और जो शास्त्रोक्तरीतिसे अनुसार विभाग न करै ऐसा पिता विभागमें प्रभु (समर्थ) नहीं है अर्थात् उसका किया विभाग लौट सकता है।

भावार्थ-जो समर्थ पुत्र पिताके धनको न चाहै उसको कुछ द्रव्य देकर पिता विभाग कर दे। और न्यून अधिक (कम ज्यादह) किया है विभाग जिनका ऐसे पुत्रोंका विभाग शास्त्रोक्तरीतिसे हुआ होय तो पिताका कियाही यह विभाग समझना यह मनु आदिकोंने कहा है ॥ ११६ ॥

विभजेरन्सुताः पित्रोरूर्ध्वं रिक्थमृणंसमम्। मातुर्दुहितरःशेषमृणात्ताभ्यऋतेऽन्वयः ॥

पद-विभजेरन् क्रि-सुताः १ पित्रोः ६ ऊर्ध्वम् २ रिक्थम् २ ऋणम् २ समम् २ मातुः ६ दुहितरः १ शेषम् २ ऋणात् ५ ताभ्यः ५ ऋते ऽ-अन्वयः १ ॥

योजना-पित्रो ऊर्ध्वं सुताः रिक्थं ऋणं सम विभजेरन् ऋणान् शेषं मातुर्धनं दुहितरः विभजेरन् ताभ्य ऋते अन्वयः गृह्णीयात् ॥

तात्पर्यार्थ-माता पिताके मरण पीछे पुत्र धन और ऋणको समान (बराबर) ही बांट लें। यहां मातापिताके मरनेके समय और पुत्र विभागके कर्ता और समान यह विभागके प्रकार क्रमसे दिखाये हैं कदाचित् कोई शंका करै कि मनुने मातापिताके मरण पीछे यह प्रारंभ करके (अ० ९ श्लो० १०५) में कहा है कि ज्येष्ठ पुत्रही पिताके सब धनको ग्रहण करे और शेषपुत्र उसके आश्रयसे इस प्रकार जीवे जैसे पिताके आश्रयसे जीतेथे यह कहकर (अ० ९ श्लो० ११२) में मनुने कहा है कि सब धनके समुदायमेंसे वीसवां भाग और सब द्रव्योंमें श्रेष्ठ द्रव्य ज्येष्ठको और उससे आधा चालीसवां भाग और मध्यम द्रव्य मध्यमको और उससे चौथा अस्सीवां भाग और हीन (छोटासा) द्रव्य कनिष्ठको दे। यह उद्धार विभाग मातापिताके मरने अनतर मनुने दिखायाहै तैसेंही मनुने (अ० ९ श्लो० ११६-११७) में कहा है. उद्धार न निकासा होय तो इस प्रकार पुत्रोंके अंशकी कल्पना करै कि ज्येष्ठ पुत्र एक भाग अधिक ले, उससे छोटा आधा भाग अधिक ले और उससे छोटे एक २

---

१ व्याधितः कुपितश्चैव विषयासक्तमानसः। अन्यथाशास्त्रकारी च न विभागे पिता प्रभुः ॥

१ ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः। शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं धनम् ॥

२ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्। ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥

३ उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना। एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्द्धं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥

भागको ग्रहण करैं यह धर्मकी व्यवस्था है अर्थात् ज्येष्ठा दो भाग और उससे छोटा डेढ भाग और उससे छोटे एक २ भागको ग्रहण करैं, उद्धारके विनाभी यह विषम विभाग दिखाया है और स्वयभी याज्ञवल्क्यने मातापिताके मरनेके अनन्तर और उनके जीवन समयके विभागमें विषम विभाग इस वचनसे ' ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन ' दिखाया है इससे सव कालमें जव विषम विभाग है तौ यह नियम कैसे करते हो कि वरावर विभाग करले, इस शकाका समाधान कहते हैं कि यह वात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्रमें देखाहै तथापि जगत्‌में निंदित होनेसे करने योग्य नहीं, क्योंकि यह निषेध[1] है कि स्वर्गको न देनेवाले जगत्‌में निंदित शास्त्रोक्त कर्मकोभी न करे जैसे वडा वैलवा वडा वकरा वेदपाठीके निमित्त दे[2] यह विधिभी है, तथापि जगत्‌में निंदित होनेसे इसे कोई नही करता और जैसे मित्रावरुण हैं देवता जिसके ऐसी वंध्या गौका आलंभन (हिंसा) करै इस वचनसे[3] गवालंभनका विधानभी है तथापि जगत्‌में निंदित होनेसे कोई नहीं करता सोई कहा है कि जैसे शास्त्रोक्तभी नियोग धर्मका और अनुबध्या गौके[4] वधका अव प्रचार नहीं इसी प्रकार उद्धार विभागभी आज कल प्रचलित नहीं है, आपस्तंवनेभी जीवता हुआ पिता पुत्रोंका समान रीतिसे दायका विभाग करदे, इस वचनसे[5] समता (तुल्यभाग) को कहकर एक ज्येष्ठ पुत्रही दायका भागी है यह कोई कहते हैं,इस[1] वचनसे एक ज्येष्ठकोही सव धनका ग्रहण करना किसीके मतसे लिखकर फिर देशविशेषसे सुवर्ण कृष्णा गौ कृष्ण (कवल आदि) भूमिका पदार्थ ज्येष्ठ पुत्रके और रथ पिताका और घरके परीभाण्ड और भूषण और ज्ञातिसे मिला धन ये भार्याके होते हैं यह कोई कहते हैं कि इस[2] वचनसे किसीके मतसे उद्धार भागको दिखाकर वह शास्त्रमें निषिद्ध है इस[3] वचनसे निराकरण किया है वह शास्त्रका निषेध मनुने[4] स्वयं दिखाया है कि पुत्रोंका दायविभाग करै यह वात अविशेष(न्यूनाधिक विना)से शास्त्रमें सुनी है,तिससे शास्त्रमें देखाभी विषम विभाग लोक और वेदके विरोधसे करने योग्य नही है इससे सम (वरावर) ही वांटलें यह नियम किया है। अव माताके धनमें इसका अपवाद कहते हैं कि ऋणसे शेष माताके धनको दुहिता (पुत्री) विभाग करले अर्थात् माताके किये ऋणको दूर करके शेष धनको पुत्री ग्रहण करै, यदि ऋणसे न्यून वा समानही माताका धन होय तो उस माताके धनका पुत्रही विभाग करलें, यह वात समझनी कि माताके किये ऋणको पुत्रही दूर करै दुहिता न करै, ऋणसे बचे धनको तो दुहिता लेले और यह युक्तभी है कि पुरुषका वीर्य अधिक होय तो पुरुष और स्त्रीका अधिक होय तो कन्या होती है इस[5] वच-

---

१ अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु।
२ महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्।
३ मैत्रावरुणीं गां वशामनु वध्यामालभेत।
४ यथा नियोगधर्मो नो नानुवंध्यावधोपि वा। तथोद्धारविभागोपि नैव संप्रति वर्त्तते।
५ जीवन्पुत्रेभ्यो दायं विभजेत्समम्।

---

१ ज्येष्ठो दायाद इत्येके।
२ सुवर्णं कृष्णा गावः कृष्णं भौमं ज्येष्ठस्य रथः पितुः परीभांडं च गृहेलंकारो भार्याया ज्ञातिधनं चेत्येके।
३ शास्त्रविप्रतिपिद्धम्।
४ पुत्रेभ्यो दायं विभजेदित्यविशेषेण श्रूयते।
५ पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।

नसे पुत्रियोंमें स्त्रियोंके अवयवोंकी अधिकता होनेसे स्त्रीका धन पुत्रियोंको और पिताके अवयव पुत्रोंमें अधिक होते हैं इससे पिताका धन पुत्रोंको मिलता है उसमेंभी गौतमने यह विशेष दिखाया है कि विना विवाही और अप्रतिष्ठित (निर्धन) दुहिताओंको स्त्रीधन मिलता है इस वचनका यह अर्थ है कि विवाही और विना विवाही कन्याओंके समुदायमें उनकोही स्त्रीधन मिलता है जिनका विवाह न हुआहो, और विवाही हुइयोंमेंभी प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितके समुदायमें उनकोही स्त्रीधन मिलता है जो अप्रतिष्ठित हों, यदि दुहिता न होंय तो पुत्र आदि अन्वय (वंश) काही कोई अधिकारी स्त्रीधनको ग्रहण करैं, यह बात माता पिताके पीछे पुत्र धनका विभाग करैं इससेही सिद्ध थी तथापि स्पष्टके अर्थ पुनः कही है ॥

भावार्थ-माता पिताके मरे पीछे पुत्र धन और ऋणको बराबर बांट लें और ऋणसे बचे माताके धनको पुत्री ग्रहण करैं, पुत्री न होंय तो पुत्र आदिही ग्रहण करैं ॥ ११७ ॥

पितृद्रव्याविरोधेनयदन्यत्स्वयमर्जितम् ।
मैत्रमौद्वाहिकंचैवदायादानांनतद्भवेत् ११८

पद-पितृद्रव्याविरोधेन ३ यत् १ अन्यत् १ स्वयम्ऽ-अर्जितम् १-मैत्रम् १ औद्वाहिकम् १ चऽ-एवऽ-दायादानाम् ६ नऽ-तत् १ भवेत् क्रि-

क्रमादभ्यागतंद्रव्यंहृतमप्युद्धरेत्तुयः।
दायादेभ्योनतद्दद्याद्विद्ययालब्धमेवच ११९

पद-क्रमात् ५ अभ्यागतम् २ द्रव्यम् २ हृतम् २ अपिऽ-उद्धरेत् क्रिऽ-तुऽ-यः १ दायादेभ्यः ४ नऽ-तत् २ दद्यात् क्रि-विद्यया ३ लब्धम् २ एवऽ-चऽ-॥

१ स्त्रीधन दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ॥

योजना-यत् अन्यत् पितृद्रव्याविरोधेन स्वयम् अर्जितं च पुनः मैत्रम् औद्वाहिकं यत् द्रव्यं तत् दायादानां न भवेत् क्रमात् अभ्यागत हृतम् अपि द्रव्यं यः उद्धरेत् तत् च पुनः विद्यया लब्ध दायादेभ्यः न दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-माता पिताके द्रव्यका विना व्यय किये स्वयं संचित किया जो धन है वा मित्रके सकाशमें मिला अथवा विवाहमें मिला जो धन है वह दायके भागी भ्राताओंका नहीं होता। जो पिताके क्रमसे चला आया कुछ द्रव्य किसी अन्यने हर (छीन) रक्खाहो और असमर्थ आदिसे पिता आदि उसका उद्धार (वसूल) न करसके हों पुत्रोंके मध्यमें जो कोई पुत्र उस धनका दूसरे पुत्रोंकी आज्ञा लेकर उद्धार करले तो उस धनको भ्राता आदि दायादोंको न दे किंतु उद्धार करनेवालाही ग्रहण करले उसमेंभी क्षेत्र होय तो उद्धार करनेवालेको चौथाई भाग मिलताहै और शेष सब क्षेत्र सबका समान होताहै, सोई शंखने कहाहै कि पहिले नष्ट हुई भूमिका जो एक उद्धार करै उसको चौथाई भाग देकर सब भाई अपने २ भागके अनुसार प्राप्त होतेहैं तैसेही वेदका पढना पढाना और उसकी व्याख्या करनेसे मिला जो धन वहभी दायादोंको न दें किंतु संचय करनेवाला ही ग्रहण करै, यहां पिताके द्रव्यको विना व्यय किये जो कुछ स्वयं संचय कियाहै यह वाक्य सबका शेष समझना इससे पिताके द्रव्यको व्यय न करके मित्रसे जो मिलाहो वा पिताके, द्रव्यको खर्च न करके विवाहमें जो मिलाहो अथवा तैसेही क्रमसे चले आये द्रव्यको उद्धार कियाहो वा विद्यासे

१ पूर्वं नष्टां तु यो भूमिमेकश्चेदुद्धरेत् क्रमात् । यथा भागं लभतेऽन्ये दत्त्वांशं तु तुरीयकम् ॥

मिलाहो इस प्रकार सवमें पितृद्रव्याविरोधेन इस पदका सवमें संबध करना अर्थात् पिताके द्रव्यका खर्च न करके जो पूर्वोक्त सव प्रकारसे मिला हुआ धन है वह भ्राता आदिकोंका नहीं होता। इससे पिताके द्रव्यको व्यय (खर्च) करके क्रमसे चले आये द्रव्यका जो उद्धार किया हो वा मित्रका प्रत्युपकार करके मित्रसे मिलाहो आसुर आदि विवाहोंमें जो मिलाहो वा पिताका द्रव्य खर्च करके पढीहुई विद्यासे मिलाहो, ऐसे धनको सब भाई, पिता बांटलें। तैसेही पितृद्रव्याविरोधेन (पिताके द्रव्यको न खर्च करके) इसको सवका शेष होनेसेही पिताके द्रव्य खर्च करके प्रतिग्रहसे मिलाहो वह सव विभाग करने योग्य है और इसको सवका शेष न मानोगे तो मित्रसे और विवाहमें मिला उसमें चाहै पिताके द्रव्यका विरोधभी होय तोभी विभाग करनेके अयोग्य होनेसे जो मित्र आदिसे लब्ध (मिले) धनको न बांटनेका बोधक वचन है वह सार्थक है, यह कहोगे तो लोकके समाचारका विरोध होगा अर्थात् यह अनुचित होगा कि पिताके द्रव्यको खर्च करके मित्र आदिसे मिले और पिता और शेष पुत्र उसके भागी न हों। और विद्यासे मिले धनमें इस नारदके[1] वचनकाभी विरोध होगा कि विद्या पढते हुए भ्राताके कुटुंबकी जो पालना करै वह चाहै अश्रुत (विना पढा) भी हो, तोभी उस विद्यासे मिले धनको प्राप्त होताहै। और तैसेही विभाग करनेके अयोग्य विद्याधनका लक्षणभी कात्यायनने[2] कहाहै कि पराये भोजनको खाकर जो किसी अन्यसे विद्या प्राप्त हुई है उस विद्यासे मिले धनको विद्या प्राप्त कहते हैं। तैसेही पितृद्रव्याविरोधेन (पिताके द्रव्यको न विगाडकर) इसको भिन्नवाक्य मानोगे तो प्रतिग्रहसे मिला धनभी विभाग करनेके अयोग्य हो जायगा और वह आचरणके विरुद्ध है। यही बात मनुने[1] स्पष्ट की है (अ० ९ श्लो० २०८) कि पिताके द्रव्यको नष्ट न करके श्रम (सेवा युद्ध आदि) से जिस धनको संचय करै वा विद्यासे जो मिले उसको भ्राता आदि दायादोंको न दे। कदाचित् कोई शंका करै कि पिताके द्रव्यको खर्च न करके जो धन मित्र आदिसे मिला है वह विभाग करनेके अयोग्य न कहना चाहिये। क्योंकि विभागकी प्राप्तिही इससे नहीं है कि जो धन जिसको मिलै वह उसकाही होताहै अन्यका नही यह जगत्में अत्यत प्रसिद्ध है और निषेध उसकाही होता है जिसकी प्राप्ति हो। यहां कोई इस प्रकार प्राप्तिको कहते हैं कि पिताके मरे पीछे जो कुछ धन ज्येष्ठ पुत्रको मिलै उसमें उन छोटे भ्राताओंका भी भाग होताहै जो उसकी विद्याकी पालना करते हों। ज्येष्ठ वा[2] कनिष्ठ वा मध्यम भ्राता पिताके मरने वा न मरनेपर जो धनसंचय करै उसमें छोटे वडे सवका भाग होताहै। इस प्रकार उसके व्याख्यानसे पिताके विद्यमान रहते वा न रहते मित्र आदिसे मिले धनका जो विभाग पाया उसका यह निषेध है सो ठीक नही क्योंकि यहां प्राप्तका निषेध नहीं किंतु यह सिद्धका अनुवाद है, क्योंकि इस प्रकरणके सव वचन प्रायः लोकसिद्धके अनुवाद हैं। अथवा इस वचनसे प्राप्तका यह निषेध है कि

---

१ कुटुंबं बिभृयाद्भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः। भागं विद्याधनात्तस्मात्स लभेताश्रुतोऽपि सन्॥

२ परभक्तोपयोगेन विद्या प्राप्तान्यतस्तु या। तया लब्धं धनं यत्तु विद्याप्राप्तं तदुच्यते॥

---

१ अनघ्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जयेत्। दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च॥

२ समवेतैस्तु यत्प्राप्तं सर्वे तत्र समांशिनः।

इकट्ठोंको जो मिलाहो उसमें सबका समान भाग होताहै इससे तुझे (शंका करनेवालेको) सन्तोष करना चाहिये, इससे जो कुछ धन पिताके मरे पीछे ज्येष्ठको मिले, इस पूर्वोक्त वचनमें ज्येष्ठ आदि पदोंकी अविवक्षासे प्राप्ति है यह व्यामोह (भ्रम) मात्र है, इससे पूर्वोक्त मैत्र आदि वचनोंसे पिताके मरणसे पहिले वा पीछे विभाग करनेके योग्य जो कहाहै कि पिताके मरे पीछे जो धन ज्येष्ठको मिले उसमें छोटोंकाभी भाग है इस वचनकाही यह अपवाद (निषेध) है यही अर्थ करने योग्य है । तैसेही अन्यभी (पदार्थ) विभाग करनेके अयोग्य मनुने (अ०९श्लो० २१९) कहाहै कि वस्त्र, पत्र (वाहन), अलंकार, कृतान्न (लड्डूआदि), उदक (कूप आदि), स्त्री (दासी), योगक्षेम और प्रचार (गृह आदिका द्वार वा मार्ग) ये विभाग करनेके अयोग्य बुद्धिमानोंने कहे हैं, धारण किये हुए वस्त्रभी विभागके अयोग्य हैं अर्थात् जो जिसने धारण किया वह उसका ही होताहै पिताके धारण किये वस्त्रोंको तो विभाग करनेवाले भाई श्राद्धके भोक्ता ब्राह्मणको देदें, और नवीन वस्त्रोंको तो बांटले, पत्र नाम अश्व पालकी आदि वाहनका है वहभी जिसपर जो चढा वह उसकाही होताहै। पिताका वाहन तो वस्त्रके समान विभाग करने योग्य है, यदि अश्व आदि बहुत होंय तो वे उनकोही विभाग करनेके योग्य हैं । जो अश्व आदिके विक्रय (बेचने) से जीते हैं यदि विषम होनेसे विभाग न हो सकै तो ज्येष्ठ पुत्रके होते हैं, क्योंकि मनु (अ० ९ श्लो० ११९) की यह स्मृति है कि बकरी भेड एकशफ (घोडा आदि) विषम होंय तो कदाचित् विभाग न करै किन्तु बकरी भेड एकशफ ज्येष्ठकेही कहेहैं । भूषणभी जो जिसने धारण किया हो वह उसका ही होता है विना धारण किया जो साधारण है वह तो विभाग करने योग्य है । मनुका (अ० ९ श्लो० २००) वचन है कि पतिके जीते हुए स्त्रीने जो आभूषण धारण किया हो उसका भ्राता आदि दायाद विभाग न करैं, करे तो पतित होते हैं।जो अलंकार धारण किया हो यह विशेष कहनेसे यह बात जानी गई कि धारण किये विभागके अयोग्य हैं । कृतान्न पदसे तण्डुल और मोदक आदि लेने वेभी विभागके अयोग्य हैं किंतु यथासभव भोगनेके योग्य हैं । उदकपदसे जलका आधार कूप आदि लेते हैं वहभी भ्राताओंकी संख्यासे विषम होंय तो विक्रय करके विभाग करनेके अयोग्य हैं किंतु पर्याय (क्रम) से भोगने योग्य हैं । स्त्रीपदसे दासी लेना वेभी विषम होंय तो विक्रय करके विभागके अयोग्य हैं किंतु क्रमसे उनसे अपनीर सेवा कराले । पिताकी रोकी हुई वेश्या आदि समभी जो स्त्री हैं उनकाभी पुत्र विभाग न करै क्यों कि यह गौतमका वचन है कि संयुक्त (भोगी हुई) स्त्रियोंका विभाग नहीं होता योग और क्षेमको योगक्षेम कहतेहैं उनमें अलभ्य वस्तुके लाभका जो कारण श्रौत स्मार्त्त अग्निमें होनेवाला यज्ञरूप कर्म योग कहाताहै, और प्राप्त हुएकी रक्षाका जो कारण जो वेदीका बाहरका दान तालाव और आराम आदिका बनाना पूर्तकर्म क्षेम

१ वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः । योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥

२ अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् । अजाविकं सैकशफं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥

१ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन् दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥

२ स्त्रीषु च संयुक्तास्वविभागः ।

कहाता है। पिताके द्रव्यको व्यय करके संचित किये भी ये दोनों और पिताके ये दोनों विभाग करनेके अयोग्य हैं सोई लौगाक्षिने कहा है कि तत्त्वके देखनेवालोंने पूर्वको क्षेम और इष्टको योग कहा है और वे दोनों और शय्या और आसन ये विभागके अयोग्य कहे हैं। कोई तो यह कहते हैं कि योगक्षेमशब्दसे योगक्षेम करनेवाले राजा मंत्री पुरोहित आदि लेने और अन्य यह कहते हैं कि छत्र चँवर शस्त्र उपानह आदि लेने। जो उशनाने क्षेत्रको विभागके अयोग्य कहा है कि, सहस्त्रकुलतकके गोत्रियोंकोभी यजमान क्षेत्र वाहन कृतान्न उदक स्त्री ये विभाग करनेके अयोग्य हैं, वह वचन ब्राह्मणसे पैदा हुए क्षत्रियापुत्रके विषयमें है, क्योंकि यह स्मृति है कि क्षत्रियाके पुत्रको प्रतिग्रहसे मिली भूमि न दे, यदि पिता क्षत्रियाके पुत्रको दे तोभी ब्राह्मणीका पुत्र पिताके मरनेपर छीन ले। याज्य पदसे यज्ञ करानेसे मिले धनको लेते हैं, पिताकी प्रसन्नतासे मिलेका तो अविभाग आगे कहेंगे। नियमके लघनसे जो मिले वहभी विभागके अयोग्य है इसका तो खण्डन कर आये, इससे यह बात स्थित हुई कि पिताके द्रव्यको खर्च करके जो संचित कियाहो वह विभागके योग्य है, परंतु उसमें इस वसिष्ठके वचनसे पैदा करनेवालेको दो भागभी मिलते हैं कि इन पुत्रोंके मध्यमें जिसने जो स्वय संचित कियाहो वह दो भागको प्राप्त होता है॥

भावार्थ–पिताका जो द्रव्य उसके विरोध (खर्च) विना जो धन स्वय संचित कियाहो वा मित्रसे मिलाहो वा विवाहमें मिलाहो वह भ्राता आदि दायादोंका नहीं होता। पिता आदिकी परंपरासे चले आये और हृत (मराहुआ) द्रव्यका जो उद्धार करै उसको और विद्यासे मिले धनको भ्राता आदि दायादोंको न दे॥ ११८॥ ११९॥

सामान्यार्थसमुत्थानेविभागस्तुसमःस्मृतः॥
अनेकपितृकाणांतुपितृतोभागकल्पना॥

पद–सामान्यार्थसमुत्थाने ७ विभागः १ तुऽ–समः १ स्मृतः १ अनेकपितृकाणाम् ६ तुऽ–पितृतःऽ–भागकल्पना १॥

योजना–सामान्यार्थसमुत्थाने सति विभागः समः स्मृतः तु पुनः अनेकपितृकाणां पुत्राणां भागकल्पना पितृतः भवति॥

तात्पर्यार्थ–इकट्ठे वसते हुए भाई साधारण धनका कृषि व्यापार आदिसे मिलकर वर्द्धन (बढाना) करै तो समानही विभाग होता है। बढानेवालेके दो भाग नहीं होते अब पिताके धनमें विभागको दिखाकर पितामहके धनमें विभागकी विशेषता कहते हैं, कि यद्यपि पितामहके धनमें पौत्रोंका स्वत्व पुत्रोंके तुल्य है तथापि उनका विभाग पितामहके द्रव्यमें पिताओंकी सख्याके अनुसार होता है अपने स्वरूप (सख्या) की अपेक्षासे नहीं होता, यहां यह बात कही हुई समझो कि विभक्त हुए भाई तो मरगये हों और एकके दो पुत्र हों, अन्यके तीन हों और अपरके चार पुत्र होंय तो इस प्रकार पुत्रोंकी विषमताके स्थल

१ क्षेम पूर्त योगमिष्टमित्याहुस्तत्त्वदर्शिनः। अविभाज्ये च ते प्रोक्ते शयनासनमेव च॥

२ अविभाज्य सगोत्राणामा सहस्त्रकुलादपि। याज्य क्षेत्रं च पत्रं च कृतान्नमुदकं स्त्रियः॥

३ न प्रतिग्रहभूर्देया क्षत्रियादिसुताय वै। यद्यप्येषां पिता दद्यान्मृते विप्रासुतो हरेत्॥

४ येन चैषां स्वयमुपार्जितं स द्व्यंशमेव लभेत।

(जगह) में दो पुत्रोंको तो अपने पिताका एक भाग मिलेगा, अन्य तीनभी अपने पिताके एक भागको प्राप्त होंगे, और इतर चारकोभी अपने पिताके एक भागकी ही प्राप्ति होगी, तैसेही कोई पुत्र जीतेहों और कोई पुत्रोंको पैदा करके मर गये हौंय तो यही विभागका न्याय समझना कि जीवते हुए पुत्र अपनेही भागको प्राप्त होंगे और मरेहुए पुत्रोंके जो पुत्र हैं वेभी अपने २ पिताके भागकोही प्राप्त होंगे, यह वचनसे स्थित व्यवस्था है ॥

भावार्थ-इकट्ठे वसते हुए भ्राताओंमेंसे कोई भ्राता साधारण धनको खेती व्यापार आदिसे बढाले तो उस बढाये धनका बरावरही विभाग होता है पैदा करनेवालेको दो भाग नहीं मिलते और पितामहके धनमें अनेक पितावाले पुत्रोंका विभाग पिताओंकी संख्याके अनुसार होता है पुत्रोंकी संख्याके अनुसार नहीं ॥ १२० ॥

भूर्यापितामहोपात्तानिबंधोद्रव्यमेवच[1]।
तत्रस्यात्सदृशंस्वाम्यंपितुःपुत्रस्यचैवहि ॥

पद-भूः १ या १ पितामहोपात्ता १ निबंधः १ द्रव्यम् १ एवऽ-चऽ-तत्रऽ-स्यात् क्रि- सदृशम् १ स्वाम्यम् १ पितुः ६ पुत्रस्य ६ चऽ-एवऽ-हिऽ-॥

योजना-पितामहोपात्ता या भूः निबंधः च पुनः द्रव्यं यत् अस्ति तत्र पितुः च पुनः पुत्रस्य सदृशं स्वाम्यं स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-पिता विभक्त हो अथवा उसका कोई भ्राता न होय तो पौत्रका पितामहके धनमें विभाग नहीं है क्योंकि यह कह आये हैं कि पिताके मरनेपर पिताके क्रमसे विभागकी कल्पना होती है, और विभाग होयभी तो अपने संचित धनके समान पिताकी इच्छाके अनुसार ही होगा अन्यथा नहीं इस शंकाके होनेपर यह वचन है कि शालिक्षेत्र आदिकी भूमि और नि-बंध अर्थात् एक पर्ण भारके इतने पर्ण होते हैं और एक क्रमुक (सुपारी) फलोंके भारके इतने क्रमुक होते हैं यह प्रवंध, और सुवर्ण रजत आदि द्रव्य, पितामहने जो प्रतिग्रह विजय आदिसे पैदा किया हो उसमें पिता और पुत्रका स्वामित्व लोकसे प्रसिद्ध सदृश (बराबर) है इससे विभाग नहीं हो सकता यह नहीं है और यहभी नहीं है कि पिताकी इच्छासेही विभाग होता है और पिताके दो भागभी उसमें नहीं होते इससे पिताके क्रमसे भागकी कल्पना होती है यह केवल वाचनिक (कथनमात्र) है और पिता विभाग करै तो अपनी इच्छाके अनु-सार करदे, यह वचन अपने संचित धनके विषयमें है, तैसेही विभाग करता हुआ पिता अपने दो अंशोंको ग्रहण करै, यह वचनभी अपने संचित धनके विषयमें है और वृद्ध अव-स्थाको प्राप्त हुआभी पुत्र, माता पिताके जीवते हुए अस्वतत्र होता है यह परतंत्रता (पराधी-नता) भी माता पिताके संचित धनमें ही है, तैसेही माता पिताके जीवते हुए पुत्र धनके स्वामी नहीं हैं यहभी पिताके संचित धनमें ही है, तैसेही माताके रजोधर्म होता है और लोभी वा कामी पिता विभागको न चाहता होय तोभी पितामहके द्रव्यका विभाग पुत्रकी इच्छासे होता है, तैसेही विभक्त हुआ पिता पितामहके द्रव्यको किसीको देना वा विक्रय करना चाहै तो पुत्रका निषेध करनेमेंभी अधिकार है और पिताके संचित किये धनमें तो निषेधका अधि-कार नहीं है क्योंकि उसमें पुत्र पिताके परतंत्र है । अनुमति तो पुत्रकोभी करनी योग्य है सोई

---

१ द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्नात्मनः पिता ।
२ जीवतोरस्वतंत्रः स्याज्जरयापि समन्वितः ।
३ अनीशास्ते हि जीवतोः ॥

दिखाते हैं। यद्यपि पिता और पितामहके धनमें जन्मसे ही स्वाम्य पुत्रका है तथापि पिताके धनमें पुत्र पिताके अधीन है और पिता अपने संचय किये धनमें प्रधान है। पिता अपने संचित किये धनको दिया चाहै तो पुत्रके सग संमति करले। पितामहके सचित धनमें तो पिता पुत्र दोनोंका स्वामित्व समान है इससे पुत्रको निपेधकाभी अधिकार है इतनाही विशेष है। मनुका (अ ९ श्लो. २०९) भी वचन है कि पिता नहीं मिले अपने पिताके जिस धनको प्राप्त हो उसको और अपने संचित धनको अपनी इच्छाके विना पुत्रोंके साथ विभाग न करै वहां जो जिसका पितामहने उद्धार (वसूल) न किया हो ऐसे हरे (छिनाये) हुए पितामहके संचित (इकट्ठे) किये हुए धनका पिता उद्धार यदि करले तो वह अपने सचय किये धनकी समान विना अपनी इच्छा पुत्रोंको न बांटे यह कहनेसे यह दिखाया कि पितामहका संचय किया धन यादि पिता न वांटना चाहै तोभी पुत्रोंकी इच्छासे पुत्रोंके संग विभाग करै॥

भावार्थ–पितामहकी संचय करी हुई भूमि निवन्ध सुवर्ण आदि द्रव्य इनमें पिता और पुत्रका स्वाम्य (स्वामित्व) बराबर होता है॥ १२१॥

विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्। दृश्याद्वातद्विभागः स्यादायव्ययविशोधिताव्॥ १२२॥

पद–विभक्तेपु ७ सुतः १ जातः १ सवर्णायाम् ७ विभागभाक् १ दृश्यात् ५ वाऽ–तद्विभागः १ स्यात् क्रि–आयव्ययविशोधितात् ५॥

योजना–विभक्तेषु पुत्रेषु सत्सु सवर्णायां जातः सुतः विभागभाक् स्यात्। वा आयव्ययविशोधितात् दृश्यात् तद्विभागः स्यात्॥

तात्पर्यार्थ–पुत्रोंको विभाग किये पीछे समान वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिताके विभाग (धम आदि) का भागी होता है अर्थात् माता पिताके मरे पीछे अंश (हिस्से) को प्राप्त होता है। यदि कन्या होय तो माताके अंशको प्राप्त होती है क्योंकि यह कह आये हैं कि माताके शेष धनको कन्या प्राप्त होती है। और यदि असवर्णा (समान वर्णकी जो न हो) से पैदा होय तो पिताके धनमेंसे अपने हिस्सेका और माताके सब धनका अधिकारी होता है। यहही मनुने (अ ९ श्लो.२१६) में कहा है कि विभाग किये पीछे उत्पन्न हुआ पुत्र पित्र्य धनको प्राप्त होता है। यहां माता पिताका जो हो उसे पित्र्य कहते हैं यह पित्र्य शब्दकी व्याख्या करनी क्योंकि यह वचन है कि विभक्त हुए माता पिताके विभागमें विभागसे पहिले पैदा हुआ पुत्र समर्थ नहीं है और विभागके अनतर पैदा हुआ भ्राताओंके विभागमें समर्थ नहीं है। तैसेही विभागके अनंतर जो कुछ धन पिताने संचित कियाहो वह उसकाही है, जो विभागके अनतर उत्पन्न हुआ है। क्योंकि यह स्मृति है कि पुत्रोंके संग विभाग करने पर जो धन पिताने स्वयं पैदा कियाहो वह सब विभागके पीछे पैदा हुए पुत्रका है। ज्येठे भाई उसके स्वामी (मालिक) नहीं हो सक्ते। और जो विभक्त हुए पुत्र पिताके सग संसृष्ट (मिलना) होगये हों पिताके मरण पीछे विभागके अनंतर पैदा

---

१ पैतृकं पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्। न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम्॥

१ ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम्।

२ अनीशः पूर्वजः पित्रोर्भ्रातुर्भागे विभक्तजः।

३ पुत्रैः सह विभक्तेन पित्रा यत्स्वयमर्जितम्। विभक्तजस्य तत्सर्वमनीशाः पूर्वजाः स्मृताः॥

हुआ पुत्र उनके संगही धनको बांट ले। सोई मनु (अ० ९ श्लो०) ने कहा है कि पिताके संग जो संसृष्ट हों वह उनके सगही विभाग करैं। अब पिताके मरनेपर पुत्रोंके विभाग किये पीछे जो पैदा हो उसके विभागकी रीति कहते हैं कि पिताके मरनेपर भ्राताओंके विभाग समयमें माताका गर्भ स्पष्ट न हो और विभाग किये पीछे जो पैदा हुआ उसका विभाग भ्राताओंने ग्रहण किये और आय और व्ययसे शोधन किये धनमेंसे होताहै। प्रतिदिन प्रतिमास और प्रतिवर्षमें जो पैदा हो उस धनको आय (आमदनी) कहते हैं। और पिताके किये ऋणके दूर करने आदिको व्यय कहते हैं। उन आयव्ययोंसे शोधित अर्थात् उसको घटाय बढायकर विभागके अनन्तर पैदा हुएके भागको सब भ्राता देदें। यह बात यहां कही हुई समझना कि पृथक् २ मिले हुए अपने भागोंमें पिताके भागसे पैदा हुए आयको उसमें मिलाकर और पिताके किये ऋणको दूर करके अपने २ भागोंमेंसे कुछ २ निकासकर विभागके नन्तर पैदा हुएका भागभी अपने २ भागोंके सब भ्राताओंको करना योग्य है। यही बात विभागके समय भ्राता संतानसे हीन हो और उसकी भार्याका गर्भ स्पष्ट (प्रगट) न होय और विभागके अनंतर जो भतीजा पैदा होय उसके विषयमें जाननी। यदि भार्याका गर्भ स्पष्ट होय तो प्रसूतिकी प्रतीक्षा करै तब विभाग करना सोई वसिष्ठने कहाहै कि भ्राता दायका विभाग करैं तो जो संतानहीन स्त्री हैं उनके पुत्रलाभकी प्रतीक्षा करके करैं और जिनके गर्भ है उनके प्रसवकी प्रतीक्षा करैं॥

१ संसृष्टास्तेन ये वास्युर्विभजेत स तैः सह।

२ अथ भ्रातॄणां दायविभागो याश्चानपत्याः स्त्रियः तासामापुत्रलाभात्।

भावार्थ-विभाग किये पीछे सवर्णा स्त्रीमें पैदा हुआभी पुत्र विभागका भागी होताहै। अथवा आय (आमदनी) और व्यय (खर्च) से शोधन किये हुए दृश्य (दीखते) धनमेंसे उसका विभाग होताहै॥ १२२॥

पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनंभवेत्।
पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत्॥

पद-पितृभ्याम् ३ यस्य ६ यत् १ दत्तम् १ तत् १ तस्य ६ एवऽ-धनम् १ भवेत् क्रि- पितुः ६ ऊर्ध्वम् २ विभजताम् ६ माता १ अपि ऽ- अंशम् २ समम् २ हरेत् क्रि-॥

योजना-यस्य पितृभ्यां यद्धनं दत्त तद्धन तस्य एव भवेत् पितुः ऊर्ध्वं विभजतां पुत्राणां मध्ये माता अपि समम् अंश हरेत्॥

तात्पर्यार्थ-विभाग किये पीछे पैदा हुआ पुत्र पिता और माताके सब धनको ग्रहण करताहै। यह कह आये वहां यदि विभक्त हुआ पिता वा माता विभक्त हुए पुत्रको स्नेहसे सब भूषण आदि देदे तो विभागके अनंतर पैदा हुआ देनेका निषेध न करै और न दिये हुएको छीने यह अब कहते हैं। विभक्त हुए मातापिताओंने जिस विभक्त पुत्रको जो भूषण आदि देदियाहो वा विभागसे पहिले जिसको दियाहो वह उसका ही होताहै विभागके अनंतर पैदा हुओंका नहीं। तैसेही विभागके अनतर पैदा हुआ पुत्र न हो और विभक्त माता पिताने जिस पुत्रको जो देदियाहो उनके मरे पीछे विभाग करते हुए पुत्रोंमें उसका ही धन होताहै अन्यका नहीं। पिताके जीवन समयमें पुत्रोंके समान अंश पत्नियोंका कह आये, पिताके मरे पीछेभी पत्नियोंका समान अंश कहते हैं कि पिताके मरे पीछे पुत्र विभाग करैं तो माताकाभी समान अंश होताहै। यदि उसको स्त्रीधन न दिया हो क्योंकि स्त्रीध-

न्के देनेमें आधे अंशका भाग माताका कहेंगे॥

भावार्थ–माता पिताने जिसको जो धन दे दियाहो वह उसका ही होताहै। पिताके मरे पीछे विभाग करनेवाले भ्राताओंमें माताभी समान भागको ग्रहण करे॥ १२३॥

असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम्॥

पद–असंस्कृताः १ तुऽ–संस्कार्याः १ भ्रातृभिः ३ पूर्वसंस्कृतैः ३ भगिन्यः १ चऽ–निजात् ५ अंशात् ५ दत्त्वाऽ–अंशम् १ तुऽ–तुरीयकम् २॥

योजना–असंस्कृताः भ्रातरः पूर्वसंस्कृतैः भ्रातृभिः संस्कार्याः च पुनः निजात् अंशात् तुरीयकम् अंशं दत्त्वा भगिन्यः तैः एव संस्कार्याः॥

तात्पर्यार्थ–पिताके जीवन समयमें जिन भ्राताओंका संस्कार (विवाह) न हुआहो पिताके मरणानंतर उनके संस्कारके अधिकारियोंको कहते हैं कि पिताके मरनेपर विभाग करते हुए भ्राता समुदायके द्रव्यमेंसे उन भ्राताओंका संस्कार करें जिनका संस्कार न हुआहो और संस्कारसे रहित भगिनियोंका संस्कारभी वेही भाई अपने अंशमेंसे चौथाई भाग देकर करें। इससे यह बात जानी गई कि पिताके मरनेपर दुहिता (पुत्री) भी अंशको प्राप्त होती हैं। उसमें अपने २ अंशमेंसे चौथाई भागको प्रत्येक भ्राता निकासकर भगिनियोंका संस्कार करें यह अर्थ नहीं करना किन्तु जिस जातिकी वह कन्या हो उसी जातिके पुत्रका जो भाग हो उससे चौथाई भाग उसको देदेना। यह बात कही समझना कि यदि वह कन्या ब्राह्मणी होय तो ब्राह्मणीके पुत्रका जितना अंश होताहै उससे चौथाई भाग उसको मिलना चाहिये। जैसे किसीके ब्राह्मणीही एक पत्नी हो और एक पुत्र और एकही कन्या हो वह पिताके संपूर्ण द्रव्यके दो भाग करके और उन दो भागोंमेंसे एक भागको चार भाग करके उनमेंसे एक भाग कन्याको देकर शेष सपूर्ण धन (७ भाग) को पुत्र ग्रहण करले। जब दो पुत्र और एक कन्या हों तब पिताके संपूर्ण धनको तीन भाग करके और एक भागके चार भाग करके उसका चौथाई कन्याको देकर शेष धनको दोनों पुत्र ग्रहण करलें। यदि एक पुत्र और दो कन्या होंय तो पिताके धनके तीन भाग करके और एक भागके चार भाग करके उनमेंसे दो भाग दोनों कन्याओंको देकर शेष संपूर्ण धनको पुत्र ग्रहण करे। इसी प्रकार सजातीय सम और विषम भाई और भगिनियोंमें समझना। जहां ब्राह्मणीका एक पुत्र हो और क्षत्रियाकी एक कन्या हो वहां पिताके धनके सात भाग करके और क्षत्रिया पुत्रके तीन भागोंके चार भाग करके चौथाई भागको कन्याको देकर शेष धनको ब्राह्मणीका पुत्र ग्रहण करे। जहां दो ब्राह्मणीके पुत्र हों और क्षत्रियाकी एक कन्या हो वहां पिताके सब धनके ग्यारह ११ भाग करके क्षत्रिया स्त्रीके पुत्रके तीन भागोंके चार भाग करके उनमेंसे चौथे भागको क्षत्रिया कन्याको देकर शेष सब धनको दोनों ब्राह्मणीके पुत्र विभाग करके ग्रहण करें। इसी प्रकार भिन्न २ जातिके भाई और भगिनीकी संख्या सम वा विषम होय तो विभागकी रीतिको समझना। कदाचित् कोई शंका करे कि अपने अंशमेंसे चौथाई भाग देकर यहां चौथाई भागकी अविवक्षासे यह अर्थ करना युक्त है कि विभागके योग्य धन भगिनीको देकर शेष धन भाई ग्रहण करें सो ठीक नहीं क्योंकि इस मनु (अ० ८ श्लो०

११२) वचनका विरोध है कि ब्राह्मण आदि भ्राता ब्राह्मणी आदि भगिनियोंको अपनी २ जातिमें शास्त्रोक्त अंशोंमेंसे चौथाई भाग कन्याओंको दें यदि न दें तो पतित होते हैं। कदाचित् कोई कहै कि अपने भागमेंसे निकासकर चौथाई भाग देना सो ठीक नहीं । किंतु अपनी जातिमें जो भाग कहाहो उस एक भागके चौथाई भागको पृथक् २ कन्याको दे इस प्रकार जाति और संख्याकी विषमतामें विभागकी रीति कह आये और जो न देना चाहै तो पतित होते हैं इस वचनसे कन्याओंके न देनेमें पापके सुननेसे देना अवश्य प्रतीत होता है। कदाचित् कोई शका करै यहांभी चार भाग देनेकी अविवक्षा है इससे विवाहके योग्यही कन्याको धन देना इष्ट है सो ठीक नहीं । क्योंकि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतियोंके वचनोंमें चतुर्थ भागके देनेकी अविवक्षामें कोई प्रमाणभी नहीं है और कन्याओंके न देनेमें पापकाभी श्रवण है। जो कोई यह कहते हैं कि यदि चतुर्थ भाग देनेकी विवक्षा करोगे तो जिस कन्याके बहुत भाई हों वह बहुधन होजायगी और जिसके बहुत भगिनी होगी वह भाई निर्धन होजायगा इसका उक्त रीतिसे समाधान कर आये कि कुछ अपने भागमेंसे चौथाई भाग निकासकर कन्याओंको देना नहीं कहा जिससे पूर्वोक्त दोष हो किन्तु अपनेको जितना अश मिले उतनेमेंसे चौथाई भाग भाई कन्याओंको दे यही कहाहै तिससे हमारे सहायक मेधातिथि आदिका यही अर्थ ठीक है भारुचिका नहीं। तिससे पिताके मरनेपर कन्याओंकोभी अश मिलता है और पिताके जीवन समयेंम तो जो कुछ पिता देदे वही मिलताहै क्योंकि कोई विशेष वचन नहीं इससे सब निर्दोष है ॥

भावार्थ-जिनका पिता मरनेसे पाहिले संस्कार न हुआहो उन भ्राताओंका सस्कार पाहिले संस्कार किये भ्राता करै और जिन भगिनियोंका विवाह न हुआ हो उन असंस्कृत भगिनीयोंके विवाहरूप संस्कारोंको भी वे भाई अपने अशका चौथाई भाग देकर करै ॥१२४॥

चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः। क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः ॥

पद-चतुस्त्रिद्व्येकभागाः १ स्युः क्रि-वर्णशः ऽ-ब्राह्मणात्मजाः १ क्षत्रजाः १ त्रिद्व्येकभागाः १ विड्जाः १ तुऽ- द्व्येकभागिनः १ ॥

योजना-ब्राह्मणात्मजाः वर्णशः चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युः क्षत्रजाः त्रिद्व्येकभागाः विड्जाः द्व्येकभागिनः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त प्रबधसे सजातीय भाइयोंका पिताके सग विभाग कहकर अब भिन्नजातिके पुत्रोंका विभाग कहते हैं। वर्णोंके क्रमसे ब्राह्मणकी चार, क्षत्रियकी तीन, वैश्यकी दो, शूद्रकी एक भार्या दिखाई है। उनमें ब्राह्मण आदि वर्णके क्रमसे अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णोंकी स्त्रियोंके अनुसार ब्राह्मणसे पैदा हुए पुत्र चार ४ तीन ३ दो २ एक १ भागोंको क्रमसे प्राप्त होते हैं। इस श्लोकके वर्णशः इस पदमें (सख्यैकवचनाच्च) इस सूत्रसे अधिकरणमें और वीप्सा (वर्णे वर्णे इति वर्णशः) में (शस्) प्रत्यय है । यहां बात कही हुई समझनी कि ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें पैदा हुए पुत्रोंके मध्यमें एक एक पुत्रको चार ४ भाग मिलते हैं। और ब्राह्मणसे क्षत्रियामें पैदा हुए पुत्रोंमें

१ स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् । स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भाग पतिताः स्युरदित्सवः ॥

एक एकको तीन २ भाग और वैश्यासे उत्पन्न हुओंको दो २ भाग और शूद्रासे पैदा हुए पुत्रोंको एक २ भाग मिलता है। क्षत्रियकी कन्यामें क्षत्रियसे पैदा हुए पुत्रोंको क्रमसे तीन दो एक भाग मिलते हैं अर्थात् क्षत्रियामें पैदा हुएको तीन २ वैश्यामें पैदा हुएको दो २ और शूद्रामें पैदा हुएको एक २ भाग मिलताहै। वैश्यसे वैश्यामें पैदा हुएको दो २ और शूद्रामें पैदा हुएको एक एक भाग मिलताहै। शूद्रकी भार्या एकही होतीहै शूद्रसे भिन्न-जातिका कोई पुत्र नहीं होता इससे शूद्रके पुत्रोंका पूर्वोक्तही विभाग होताहै। यद्यपि चार तीन दो एक भाग सामान्य रीतिसे कहेहैं तथापि वे भाग प्रतिग्रहसे मिली भूमिसे भिन्न विषयमें समझने। क्योंकि यह स्मृति है कि क्षत्रियाके पुत्रको प्रतिग्रहसे मिलीहुई भूमिको न दे। जो कुछ पिता उक्तभूमि क्षत्रियाके पुत्रको देदे तो पिताके मरनेपर ब्राह्मणीका पुत्र छीनले। प्रतिग्रहके कहनेसे मोल ली हुई भूमिको तो क्षत्रिया आदिके पुत्रोंकोभी देदे। और शूद्राके पुत्रोंको यह विशेप निषेधभी है कि द्विजातियोंसे शूद्रामें पैदा हुआ पुत्र भूमिके भागयोग्य नहींहै। यदि मोल लीहुई क्षत्रिय आदिके पुत्रोंको न मिलती तो शूद्रा पुत्रको विशेप निषेध ठीक न होता। और जो यह मनु (अं० ९ श्लो० १५९) वचन है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे पैदा हुआ शूद्रका पुत्र धनका भागी नहीं होता किन्तु पिता जो कुछ इसको देदे वही इसका धन होता है, वह वचनभी उस धनके विषयमें है जो कुछ धन जीवते हुए पिताने शूद्राके पुत्रको दिया हो। यदि पिताने प्रसन्नतासे कुछ न दिया होय तो एक अंशका भागी होताहै इसमें कुछ विरोध नहीं है॥

भावार्थ-ब्राह्मणसे ब्राह्मणी आदिमें पैदा हुए पुत्र वर्णके क्रमसे चार तीन दो एक भागको और क्षत्रिसे क्षत्रियाआदिमें पैदा हुए पुत्र तीन दो एक भागको और वैश्यसे वैश्या आदिमें पैदा हुए पुत्र दो एक भागको वर्णोंके क्रमसे प्राप्त होते हैं॥ १२५॥

अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्ते यत्तु दृश्यते।
तत्पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः॥

पद-अन्योन्यापहृतम् १ द्रव्यम् १ विभक्ते ७ यत् १ तु ऽ-दृश्यते क्रि-तत् १ पुनः ऽ-ते १ समैः ३ अंशैः ३ विभजेरन् क्रि-इति ऽ-स्थितिः १॥

योजना-विभक्ते यत् द्रव्यम् अन्योन्यापहृतं दृश्यते तत् द्रव्यं ते पुनः समैः अंशैः विभजेरन् इति स्थितिः (मर्यादा) अस्तीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-परस्पर हरा (चुराया) हुआ वा विभागके समयमें जाना हुआ जो समुदायका द्रव्य पिताके धनके विभाग किये पीछे दीखै तो उस धनको सब भाई समान भाग करके बांटलें वह शास्त्रकी मर्यादा है। यह समान भाग कहनेसे उद्धारविभागका निपेध समझना। और विभाग करलें इस कहनेसे यह दिखाया है कि जिसको दीखै वही न ले। इससेही यह वचन सार्थक है, कुछ समुदाय द्रव्यके चुरानेमें दोषके अभावका बोधक नहीं है। कदाचित् कोई शंका करै कि मनु (अ. ९ श्लो. २१३) ने ज्येष्ठकोही समुदायके द्रव्य

---

१ न प्रतिग्रहभूर्देया क्षत्रियादिसुताय वै॥ यद्यप्येषां पिता दद्यान्मृते विप्रासुतो हरेत्॥

२ शूद्रायां द्विजातिभिर्जातो न भूमेर्भागमर्हति।

३ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्। यदेवास्य पिता दद्यात् तदेवास्य धनं भवेत्॥

१ यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः। स ज्येष्ठः स्यादभागश्च नियंतव्यश्च राजभिः॥

चुरानेमें दोष दिखाया है । छोटे भ्राताओंको नहीं कि जो ज्येठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंका तिरस्कार करै अर्थात् उनके भागको न दे उस जेठेको भाग नहीं मिलता और राजदंडको प्राप्त होता है, सो ठीक नहीं । क्योंकि जब स्वतंत्रताको प्राप्त हुए पिताके स्थानमें बैठे ज्येष्ठकोही मनुने दोष कह दिया तो ज्येष्ठके अधीन पुत्रके समान छोटे भाइयोंको दंडापूपन्यायसे अवश्य दोष दिखायही दिया । दंडापूपन्याय यह है कि जहां दंड जायगा वहांही उससे बधे पूवे जांयगे । तैसेही अविशेषतासे इस गौतमके वचनमें दोष सुना जाता है कि जो मनुष्य जिस भोगके योग्यका भागसे निराकरण करता है अर्थात् उसके भागको नहीं देता, भागसे रहित हुआ वह उस भागसे रहित करनेवालेको नष्ट करता है अर्थात् दोषसे युक्त करता है । यदि उसको नष्ट न करै तो उसके पुत्रको वा पौत्रको नष्ट करता है । इस वचनमें ज्येष्ठ आदिके नामको न लेकरही अविशेषतासे साधारण द्रव्यके चुरानेमें दोष सुना जाता है । कदाचित् कोई कहै कि साधारण द्रव्यमें अपनाभी स्वत्व होता है इससे अपनी है इस बुद्धिसे ग्रहण करनेमें कुछ दोष न होगा, सो ठीक नहीं । क्योंकि अपना है इस बुद्धिसे ग्रहण करनेमें दूसरे भाईके वर्जने योग्य होनेसे पराया धनभी ग्रहण कियागया इस प्रकार निषेधके प्रवेशसे दोष (पाप) को अवश्य करैगा, जैसे मूंगका चरु जहां नष्ट होजाय और तुल्यतासे उडदोंके ग्रहण करनेमें उडद यज्ञके योग्य नहीं यह निषेध नहीं लगता है क्योंकि वे उडद मूंगकी बुद्धिसे ग्रहण किये हैं यह जब शंका करनेवालेने कहा तहां मूंगके अवयवोंके ग्रहण होनेमें वर्जनके अयोग्य होनेसे उडदोंके अवयवोंकाभी ग्रहण होहीगा इससे निषेध अवश्य लगता है, यह सिद्धांतीने कहा है । तिससे वचन और न्यायसे साधारण द्रव्यके चुरानेमें दोष अवश्य है यह सिद्ध भया ॥

भावार्थ-विभाग किये पीछे जो द्रव्य भ्राताओंमें परस्पर चुराया हुआ दीखजाय उस द्रव्यको वे सब समान अशोंसे फिर बांटले यह शास्त्रकी मार्यादा है ॥ १२६ ॥

अपुत्रेणपरक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः ।
उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचधर्मतः ॥

पद-अपुत्रेण ३ परक्षेत्रे ७ नियोगोत्पादितः १ सुतः १ उभयोः ६ अपिऽ-असौ १ रिक्थी १ पिंडदाता १ चऽ-धर्मतःऽ-॥

योजना-परक्षेत्रे अपुत्रेण नियोगोत्पादितः यः सुतः असौ उभयोः रिक्थी च पुनः धर्मतः उभयोः पिंडदाता भवति ॥

तात्पयार्थ-पुत्ररहित स्त्रीके संग गुरुकी आज्ञासे पुत्रके लिये देवर वा सपिंड वा सगोत्र मनुष्य घीको लपेटकर ऋतुके समय गमन करै और गर्भकी स्थिति पर्यंतही गमन करै और अन्यथा करनेसे पतित होता है इस विधिसे पैदा हुआ इस पहिले पतिकाही क्षेत्रज पुत्र होता है, इस पूर्वोक्त विधिसे पुत्ररहित देवर आदिके सकाशसे परायी स्त्रीमें गुरुकी आज्ञासे पैदा किया पुत्र वीज और क्षेत्रवाले दोनोंके रिक्थ (धन) को ग्रहण करनेवाला और धर्मसे दोनोंको पिंडका दाता होता है । जहां यह गुरुकी आज्ञासे नियुक्त देवर आदि स्वयमी पुत्ररहित हो और पुत्ररहितकीही स्त्रीमें अपने और पराये पुत्रके लिये प्रवृत्त होकर जिस पुत्रको पैदा

---

१ यो वै भागिनं भागान्नुदते चयते एवैनं स यदि नैनं न चयतेथ पुत्रमथ पौत्रं चयते ।

२ अयाज्ञिया वै माषाः ॥

करै उस दो पितावालेको द्व्यामुष्यायण कहते हैं। वह दोनोंके धनका भागी और पिंडका दाता होता है। और जहां नियुक्त देवर आदि पुत्रवान् हो केवल क्षेत्र (स्त्री) वालेकेही पुत्र-के लिये यत्न करै तो उससे पैदा हुआ पुत्र क्षेत्रवालेकाही होता है, वीजवालेका नहीं। वह नियमसे न वीजवालेके धनको लेसकता है न पिंड देसकता है। सोई मनु (अ०९श्लो०८३) ने कहा है कि इस स्त्रीमें पैदा हुआ पुत्र हम दोनोंका होगा इस सावित् (प्रतिज्ञा) के स्वी-कारसे क्षेत्रका स्वामी वीज वोनेके लिये जिस क्षेत्रको वीजवालेको दे उस क्षेत्रमें पैदा हुए पुत्रके वीजवाला और क्षेत्रवाला दोनों स्वामी महर्षियोंने देखे हैं। तैसेही मनुने (अ० ९ श्लो० ५२) कहाहै कि इस स्त्रीमें पैदा हुआ पुत्र दोनोंका होगा इस प्रतिज्ञाको न कहकर पराये क्षेत्रमें जो पुत्र पैदाहो वह क्षेत्रवालेकाही पुत्र होताहै। क्योंकि वीजसे योनिको प्रबल गौ अश्व आदिमें देखाहै। यहां भी नियोग वाग्दत्ता (जिसकी सगाई होचुकी हो) के विषयमेंही समझना। क्योंकि अन्य स्त्रीमें नियोग मनु (अ० ९ श्लो० ५९-६०) ने निषिद्ध किया है कि भली प्रकार नियुक्त की हुई स्त्री देवर वा सपिंडसे सतानके नाशको देखकर वांछित संता-नको प्राप्त होजाय। विधवामें नियुक्त मनुष्य घी-को लपेटकर और मौनको धारण करके रात्रिके विषय एक पुत्रको पैदा करै दूसरेको कदाचित् न करै इस प्रकार नियोगको कहकर स्वयंही निषेध किया है (अ०९श्लो०६४-६५-६६-६७-६८) कि द्विजाति अन्यके संग विधवास्त्री-का नियोग न करैं क्योंकि अन्य पुरुषके संग नियोग करनेवाले सनातन धर्मको नष्ट करतेहैं। विवाहके मंत्रोंमें कहींभी नियोग नहीं कहा और न विवाहकी विधिमें विधवाका पुनः विवाह कहा है। यह पशुओंका धर्म (नियोग) बुद्धिमान् द्विजोंने निंदित कहाहै। और वेन राजाके रा-ज्यमें मनुष्योंमेंभी चलाथा। वह राजर्षियोंमें श्रेष्ठ वेन पूर्वसमयमें सपूर्ण पृथिवीको भोगता हुआ और कामदेवसे नष्टबुद्धि होकर वर्णोंका सकर करता भया। उसके पीछे जो मनुष्य संता-नके लिये विधवा स्त्रीका नियोग करता है सा-धुजन उसकी निंदा करते हैं। कदाचित् कोई शंका करै कि मनुमें विधि और निषध दोनो हैं इससे विकल्प होगा। सो ठीक नहीं क्योंकि नियोग करनेवालोंकी निंदा शास्त्रमें सुनी है। और स्त्रीके धर्ममें व्यभिचार करनेमें बहुत दोष सुनतेहैं और सयम (इंद्रियोंको रोकना) की अत्यत प्रशसा है सोई मनुनेही (अ० ९ श्लो० १५७) में श्रेष्ठपुष्प मूल फलोंसे चाहे देहको नष्ट करदे परंतु पतिके मरे पीछे पर

१ क्रियाभ्युपगमात्क्षेत्रं वीजार्थं यत्प्रदीयते तस्येह भागिनौ दृष्टौ वीजी क्षेत्रिक एव च॥

२ फल त्वनभिसधाय क्षेत्रिणां वीजिनां तथा। प्रत्यक्ष क्षेत्रिणामर्थो वीजाद्योनिर्वलीयसी॥

३ देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रियासम्यङ्नियुक्तया। प्रजेप्सिताधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये॥ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि। एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीय कथंचन॥

१ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजा-तिभिः। अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सना-तनम्॥ नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्त विधवावेदन पुनः॥ अय द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः॥ मनु-ष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्य प्रशासति। स महीम-खिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा॥ वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥ ततः प्रभृति यो मोहात् प्रमीतपतिकां स्त्रियम्। नियोजयत्यपत्यार्थे गर्हन्ते तं हि साधवः॥

२ काम तु क्षपयेद्देह पुष्पमूलफलैः शुभैः। न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥

पुरुषका नामभी न ले इन वचनोंसे जीवनके लिये पर पुरुषके आश्रयका निषेध करके मनुने (अ० ५ श्लो० १५८-१५९-१६०-१६१) कहाहै कि मरणपर्यंत पतिव्रताओंके सर्वोत्तम धर्मकी आकांक्षा करतीहुई विधवा स्त्री नियमसे ब्रह्मचारिणी रहै । अनेक सहस्र कुमार अवस्थाके ब्रह्मचारी कुलमें संतानको पैदा किये विनाही स्वर्गमें गये । पतिके मरे पीछे साध्वी स्त्री पुत्रके विनाभी इस प्रकार स्वर्गमें पहुँचेगी जैसे वे ब्रह्मचारी गये जो स्त्री सतानके लोभसे अपने भर्ताका अवलंघन करतीहै वह इस लोकमें निंदाको प्राप्त होतीहै और परलोकसे पतित होतीहै इन वचनोंसे पुत्रके लियेभी दूसरे पुरुषका आश्रय मने कियाहै तिससे विधि और निषेध दोनोंके होनेसे विकल्प मानना युक्त नहीं । इस प्रकार जिसका विवाहरूप संस्कार होगयाहो उसका नियोग जब निषिद्ध है तो कौनसा धर्मका नियोग है इस लिये मनु (अ० ९ श्लो० ६९-७०) ने धर्मका नियोग कहा है कि जिस कन्याका वाग्दान किये पीछे पति मर जाय उस कन्याको इस विधिसे देवर विवाह ले और शुक्ल वस्त्रोंको धारती और शुद्ध व्रतवाली उसको विधिसे प्राप्त होकर परस्पर संतान होनेपर्यंत ऋतु ऋतुमें एकवार संग करे जिसके संग वाग्दान हुआहो वह प्रतिग्रहके विनाही उस कन्याका पति है यह बातभी इससेही जानी गई । यदि वह पति मरजाय तो उसका छोटा वा ज्येठा सोदर (सगा) देवर उस कन्याको विवाह ले। यथाविधि कहनेसे यह सूचित किया कि शास्त्रके अनुसार विवाह कर घीका अभ्यंग और मौन आदि नियमोंसे मन वाणी काया जिसके वशमें हो ऐसी कन्याको गर्भ धारण पर्यंत प्रत्येक ऋतुमें एक २ वार संग करै इस वचनसे सिद्ध विवाह घीके अभ्यग आदि नियमवाले नियुक्त देवरका स्त्रीके साथ गमनका अग है। उससे उस स्त्रीको देवरकी भार्याका बोधक नहीं हो सक्ता इससे उस स्त्रीमें पैदा हुआ पुत्र क्षेत्रके स्वामी (स्त्रीका पहिला पति) काही होता है देवरका नहीं । यदि दोनोंके होनेका नियम (प्रतिज्ञा) विवाहके समय होगया होय तो दोनोंका पुत्र होता है ॥

भावार्थ—पुत्रहीन मनुष्यने पराई स्त्रीमें नियोगसे पैदा किया जो पुत्र है वह दोनों पिताओंके धनका भागी और दोनोंको ही धर्मसे पिंडका दाता है ॥ १२७ ॥

औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स गोत्रेणेतरण वा१२८

पद—औरसः १ धर्मपत्नीजः १ तत्समः १ पुत्रिकासुतः १ क्षेत्रजः १ क्षत्रजातः १ तुऽ—सगोत्रेण ३ इतरेण ३ वाऽ— ॥

गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः॥

पद—गृहे ७ प्रच्छन्नः १ उत्पन्नः १ गूढजः१ तुऽ—सुतः १ स्मृतः १ कानीनः १ कन्यकाजातः १ मातामहसुतः १ मतः १ ॥

---

१ आसीतामरणात्क्षांता नियता ब्रह्मचारिणी । यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षती तमनुत्तमम् ॥ अनेकानि सहस्राणि कौमारब्रह्मचारिणाम् । दिवगतानि विप्राणामकृत्वा कुलसततिम् ॥ मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ अपत्यलोभाद्या तु स्त्रा भर्तारमतिवर्तते ॥ सेह निंदामावाप्नोति परलोकाच्च हियते ॥

२ यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्यकृते पतिः । तामनेन विधानेन निजा विंदेत देवरः ॥ यथाविध्यभिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम् । मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥

अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवःसुतः। दद्यान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत्

पद-अक्षतायाम् ७ क्षतायाम् ७ वाऽ-जातः १ पौनर्भवः १ सुतः १ दद्यात् क्रि-माता १ पिता १ वाऽ-यम् २ सः १ पुत्रः १ दत्तकः १ भवेत् क्रि- ॥

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात्स्वयंकृतः। दत्तात्मा तु स्वयंदत्तो गर्भे विन्नःसहोढजः॥ १३१ ॥

पद-क्रीतः १ चऽ-ताभ्याम् ३ विक्रीतः १ कृत्रिमः १ स्यात् क्रि-स्वयंकृतः १ दत्तात्मा १ तुऽ-स्वयंदत्तः १ गर्भे ७ विन्नः १ सहोढजः १ ॥

उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत्सुतः। पिंडदोंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः१३२॥

पद-उत्सृष्टः १ गृह्यते क्रि-यः १ तुऽ-सः १ अपविद्धः १ भवेत् क्रि-सुतः १ पिण्डदः १ अंशहरः १ चऽ-एषाम् ६ पूर्वाभावे ७ परः १ परः १ ॥

योजना-धर्मपत्नीजः औरसः, तत्समः पुत्रिकासुतः, सगोत्रेण वा इतरेण क्षेत्रजातः क्षेत्रजः, गृहे प्रच्छन्नः उत्पन्नः सुतः गूढजः स्मृतः, कन्यकाजातः कानीनः मातामहसुतः मतः, अक्षतायां वा क्षतायां जातः सुतः पौनर्भवः,माता वा पिता य दद्यात्,सः पुत्रः दत्तकः भवेत्, ताभ्यां विक्रीतः क्रीतः, स्वयकृतः कृत्रिमः स्यात्, तु पुनः स्वयंदत्तः दत्तात्मा, गर्भे विन्नः सहोढजः, तु पुनः यः उत्सृष्टः गृह्यते सः सुतः अपविद्धः भवेत्, एषां द्वादशानां मध्ये पूर्वाभावे परः परः पिंडदः च पुनः अंशहरः भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-सजातीय और विजातीय पुत्रोंके विभागको कहकर मुख्य और गौण पुत्रोंके स्वरूप और विभागको कहते हैं। धर्मविवाहसे विवाही हुई सवर्णा पत्नीसे उत्पन्न हुआ पुत्र औरस होता है। अपनी उर (छाती) के बलसे पैदा होनेसे यही सब पुत्रोंमें मुख्य है और पुत्रिकासुतभी औरसके समान (तुल्य) होता है। सोई वासिष्ठने कहा है कि भ्रातासे रहित इस अलंकार कीहुई कन्याको तुझे देताहूं इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्र होगा। अथवा पुत्रिकासुतपदका यह अर्थ है कि पुत्रिकाही जो सुत वह पुत्रिकासुत है वह पुत्रभी औरसके समान है क्योंकि उसमें पिताके अवयव अल्प हैं और माताके अवयव बहुत हैं सोई वसिष्ठने कहा है कि दूसरा पुत्र पुत्रिकाही है। द्व्यामुष्यायण तो औरस पुत्रसे कुछ कम जनक (पैदा करनेवाला) का पुत्र इस लिये होता कि अन्यके क्षेत्रमें पैदा हुआ है कि सगोत्र वा इतर (असपिंड) से वा देवरसे पैदा हुआ पुत्र क्षेत्रज होता है। भर्ताके घरमें जो प्रच्छन्न (अप्रकट) पैदा हो अर्थात् न्यून और अधिक जातिको छोडकर पुरुष विशेषसे पैदा होनेका चाहे निश्चय न हो परंतु सवर्णसे पैदा हुएका निश्चय हो ऐसा जो पुत्र वह गूढज पुत्र होता है पूर्वके समान सजातीयसे कन्यामें पैदा हुआ पुत्र कानीन होता है वह मातामह (नाना) का पुत्र होता है। यदि वह कन्या विना विवाही हो और पिताके घरमेंही रहतीहो। यदि विवाही हुई होय तो विवाह करनेवालेकाही पुत्र होता है। सोई मनु (अ. ९ श्लो. १७२) ने कहा है कि जो कन्या पिताके घर एकांतमें जिस पुत्रको पैदा करै उसे नामसे.

१ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति।

२ द्वितीयः पुत्रिकैव।

३ पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥

कानीन कहतेहैं । कन्यासे पैदा हुआ वह पुत्र वोढा (विवाहनेवाला) का होता है । क्षता (जिसको पतिका संग होचुकाहो) वा अक्षता (जिसको पतिका संग न हुआहो) पुनः (दुबारा) विवाही हुईमें जो सजातीयसे पैदा हो वह पौनर्भव पुत्र होता है । पतिके परदेश जानेपर वा मरनेपर भर्ताकी आज्ञासे माता वा पिता वा दोनों जिस पुत्रको अपने सजातीयको देदें वह पुत्र उस सवर्णका दत्तक पुत्र होता है । सोई मनु (अ. ९ श्लो. १६८) ने कहा है कि माता वा पिता जिस अपने सजातीय पुत्रको आपत्तिके समय प्रीतिसे दे वह पुत्र दत्तक जानना । आपत्तिके कहनेसे आपत्ति न होय तो दाता कभी न दे । तैसेही एक पुत्रकोभी न दे क्योंकि यह वसिष्ठकी स्मृति है कि एक पुत्रको न दे और न ले । तैसेही अनेक पुत्र होंय तो ज्येष्ठ पुत्रको न दे क्योंकि मनु (अ ९ श्लो. १०६) ने कहा है ज्येष्ठके पैदा होतेही मनुष्य पुत्रवाला होता है इससे पुत्रके कार्य (श्राद्ध आदि) करनेमें वही मुख्य है । पुत्रके लेनेका प्रकार यह वसिष्ठने कहा है कि पुत्रको ग्रहण करना चाहै तो बंधुओंको बुलाकर और राजाके यहां निवेदन (अर्जी देना) करके और गृह्यके मध्यमें होम करनेके अनंतर जो अपने बंधुओंमें समीप हो ऐसे पुत्रको अपने बंधुओंके मध्यमेंही बैठकर ग्रहण करै । बंधुओंमें समीप हो यह कहनेसे देश वा भाषासे विप्रकृष्ट (दूर) का निषेध है । इसी प्रकारको क्रीत स्वयंदत्त कृत्रिम पुत्रोंमेंभी समझना क्योंकि वेभी इसकेही समान हैं । माता पिता दोनोंने वा माताने वा पिताने जो विक्रीत (वेचदिया) कर दियाहो वह क्रीत पुत्र होताहै । इसमेंभी पूर्वके समान ज्येष्ठ और एक पुत्रको न वेचे और आपत्तिमें और सवर्णको ही बेचे । जो तो मनु (अ. ९ श्लो. १७४) ने कहा है कि संतानके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोलले वह सदृश हो वा असदृश क्रीत पुत्र होता है । उस मनुके वचनसे गुणोंमें सदृश वा असदृश यह अर्थ करना । जातिसे सदृश असदृश यह अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि अंतमें याज्ञवल्क्य ही यह कहेंगे कि यह विधि मैंने सजातीय पुत्रोंकी कही है । जिसको पुत्रके अभिलाषी मनुष्यने धन और क्षेत्र आदिके लोभको दिखाकर स्वयं पुत्र कर लियाहो वह कृत्रिम पुत्र होताहै । वहभी माता पितासे रहित हो क्योंकि उनके जीवते हुए पुत्र उनके परतंत्र होताहै । जो माता पितासे हीन हो वा उन दोनोंने त्याग दियाहो । मैं आपका पुत्र होताहूं ऐसे कहकर स्वयंदत्तभावको प्राप्त हो गया हो वह दत्तात्मा पुत्र होताहै । जो गर्भवती ही विवाही हो उसके संग गर्भमें स्थित बालकभी विवाहा गयाहो वह सहोढज पुत्र विवाहनेवालेका होताहै बीजवालेका नहीं । माता पिताने जिसको छोड दियाहो और उसको जिसने ग्रहण करलिया हो वह अपविद्ध नामका पुत्र ग्रहण करनेवालेका होता है । इन सब पुत्रोंमें सवर्ण (सजातीय) लेना अर्थात् सजातीय होसकते हैं अन्य नहीं हो सकते । इस प्रकार मुख्य और अमुख्य पुत्रोंको क्रमसे कहकर उनके दाय ग्रहण करनेमें क्रमको कहते हैं

---

१ माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि । सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ।

२ नत्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा ।

३ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ।

४ पुत्रं प्रतिगृहीष्यन्बंधूनाहूय राजनि चावेद्य निवेशनमध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा अदूरबांधवं बंधुसंनिकृष्ट एव प्रतिगृह्णीयात् ।

१ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोपि वा ॥

इन वारह प्रकारके पुत्रोंके मध्यमें पहिले २ के अभावमें परला २ पिंडका दाता और अंशका भागी होताहै; औरसपुत्र और पुत्रिकाका पुत्र ये दोनों हाँय तो औरसको ही धनका ग्रहण पाया इसमें मनु (अ० ९ श्लो० १३४) ने निषेध कियाहै कि पुत्रिका करनेके अनतर यदि पुत्र हो जाय तो वहां विभाग तुल्य होताहै स्त्रीको ज्येष्ठता नहीं होती। अन्य पुत्रोंमेंभी तिसी प्रकार पहिले २ पुत्रके होते पिछले २ पुत्रोंका चौथाई भाग वशिष्ठने कहाहै कि यदि दत्तक पुत्रके ग्रहण किये पीछे औरस पुत्र पैदा होजाय तो चौथाई भाग दत्तकको मिलताहै। यहां दत्तकका ग्रहण क्रीत और कृत्रिम आदि सबका बोधक है। सवमें पुत्रीकरण (अपुत्रको पुत्र करना) समान है, सोई कात्यायनने कहाहै कि औरस पुत्रके पैदा होनेपर सजातीय अन्य पुत्र चतुर्थ अशके भागी होते हैं और विजातियोंको तो भोजन वस्त्रही मिलताहै। यहां सवर्ण पदसे दत्तक क्षेत्रज आदि और असवर्णपदसे कानीन गूढोत्पन्न सहोढज पौनर्भव आदि लेने। इनमें सवर्णोको चौथाई भाग और असवर्णोको भोजन वस्त्रका अधिकार है। जो यह विष्णुका वचन है कि अप्रशस्त (निंदाके योग्य) जो कानीन गूढोत्पन्न सहोढज पौनर्भव हैं ये पिंड देने और धनके लेनेके भागी नहीं हैं। वह वचनभी औरसके होते चौथाई भागका निषेध करताहै। यदि औरस न हाँय तो कानीन आदिकोंकोभी पिताके सव धन ग्रहण करनेका अधिकार 'पूर्वाभावे परः परः' पहिले २ पुत्रके अभावमें परला २ धनका भागी होताहै इस वचनसे है। जो मनु (अ ९ श्लो. १६३) का वचन है कि एक औरस पुत्रही पिताके सव धनका स्वामी है क्रूरता (निंदा) होजाय इस लिये शेष पुत्रोंको जीवनके उपयोगी द्रव्यको दे, वहभी तव है जव दत्तक आदि औरस पुत्रके प्रतिकूल हो वा निर्गुण हों, उनमेंभी क्षेत्रजके लिये मनुने (अ ९ श्लो १६४) ही विशेष दिखायाहै कि दायका विभाग करता हुआ औरस पिताके धनमेंसे छठा वा पांचवां भाग क्षेत्रजको दे, उसमेंभी यह विवेक है कि प्रतिकूल और निर्गुणको छठा भाग और एकही होय तो पांचवां भाग दे, और जो मनुने छः छः पुत्रोंको लिखकर पहिले छःको दायके भागी और पिछले छःको दायके अभागी कहाहै (अ- ९ श्लो. १५९-१६०) कि औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध ये छः बांधव दायके भागी हैं, और कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र ये छः बांधव दायके भागी नहीं हैं, वहभी तव है जव अपने पिताके सपिंड और समानोदकोंमें समीपका कोई दायभागी न होय तो पहिले छः दायभागी हैं और पिछले छः नही हैं, सगोत्री वा सपिंड होनेसे जलदान आदि कार्य करनेके लिये बांधव तो दोनों वर्गोंको समानहै अर्थात् बारहके बारह

१ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते । समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ॥

२ तस्मिंश्चेत्प्रतिगृहीते औरस उत्पद्येत चतुर्थभागभागी स्याद्दत्तकः ।

३ उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे चतुर्थांशहराः सुताः । सवर्णा असवर्णास्तु ग्रासाच्छादनभाजनाः ॥

४ अप्रशस्तास्तु कानीनगूढोत्पन्नसहोढजाः । पौनर्भवश्च नैवैते पिण्डरिक्थांशभागिनः ॥

१ एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः । शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥

२ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात् । औरसो विभजन् दायं पित्र्यं पंचममेव वा ॥

३ औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च । गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बांधवाश्च षट् ॥ कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा । स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदाया दबांधवाः ।

जलदान आदिके अधिकारी हैं और मनु (अ० ९ श्लो० २४२) ने कहाहै दत्तक पुत्र पैदा करनेवाले गोत्र और धनका भागी नहीं गोत्र और धनके पीछे चलनेवाला पिंड और स्वधा ये दोनों देनेवालेके नष्ट हो जातेहैं, यहां पिंडशब्दसे और्ध्वदैहिक आदि श्राद्ध लेने यह मेधातिथि और कुल्लूकभट्ट आदि कहतेहैं और अन्य तो यह कहतेहैं कि पिंडशब्दसे सापिंडता और स्वधाशब्दसे और्ध्वदैहिक आदि श्राद्ध लेने, इस श्लोकमें दत्रिमका ग्रहण पुत्रके प्रतिनिधियोंके दिखानेके लिये है, पिताके धनका भागी तो पहिले २ के अभावमें परला २ होताहै यह सबके लिये समान है। मनु (अ० ९ श्लो० १८०) नेही भाई और पिता माता ये पिताके धनके भागी नहीं हैं किंतु पुत्र है इस वचनसे औरससे भिन्न सब पुत्रोंको धनका भागी कहाहै, औरसको तो मनु (अ० ९ श्लो० १६३) एक औरस पुत्रही पिताके धनका स्वामी है इस वचनसे धनका भागी कह आये और दायादशब्द दायादोंकोभी दिवावे इस वचनमें पुत्रके भिन्न धनके भागियोंमेंभी प्रसिद्ध है। वसिष्ठ आदिके वचनोंमें दोनों वर्गोंमें किसी पुत्रका व्यत्यय (उलटा पलटा) से जो पाठ है वह गुणी और निर्गुणीके विचारसे जानना। गौतमके वचनमें पुत्रिकाके पुत्रको जो दशवां पुत्र पढा है वह विजातीयके बिषयमें है, तिससे यह बात सिद्ध भई कि पूर्व २ के अभावमें पर २ अंशका भागी होता है, जो यह। (अ०९ श्लो० १८२) मनुवचन है कि एकसे पैदा हुए भ्राताओंमें एक पुत्रवान् होय तो उससे वे सब भाई पुत्रवाले होते हैं यह मनुने कहा है वहभी इसलिये है कि भ्राताका पुत्र पुत्र होसके तो अन्योंको पुत्र न करै, कुछ पुत्रत्व बोधनके लिये नहीं है, क्योंकि इस वचनके संग विरोध है कि भ्राताओंके पुत्र गोत्रज बधु आदि अपुत्रका जो धन उसके भागी हैं ॥

भावार्थ-धर्मपत्नी और अपने वर्णकीसे जो पैदा हो वह औरस और उसकेही तुल्य पुत्रिकासुत होता है, सगोत्र वा इतरसे जो अपने क्षेत्र (स्त्री) में पैदा हो वह क्षेत्रज, घरमें जो छिपकर (गुप्त) उत्पन्न हो वह गूढज पुत्र होता है, कन्यासे जो पैदाहो वह कानीन मातामहका पुत्र माना है, पुरुषके संबंधवाली वा पुरुषके संगसे रहित कन्यामें जो पैदा हो वह पौनर्भव पुत्र होता है, जिसको माता वा पिता देदे वह पुत्र दत्तक होता है और माता पिताने जो विक्रीत कर (वेचदिया) दिया हो वह क्रीत,और जो स्वयं पुत्र कर लियाहो वह कृत्रिम, जिसने अपनी आत्मा स्वयं देदीहो वह दत्तात्मा, और गर्भमेंही जो विवाहके समय मिलाहो वह सहोढज, और किसीने त्यागा हुआ जो ग्रहण करलियाहो वह अपविद्ध पुत्र होता है, इन बारह प्रकारके पुत्रोंके मध्यमें पहिले२ के अभावमें परला २ पिंडका दाता और धनका भागी होता है-॥ १२८ ॥ १२९॥१३०॥ १३१ ॥ १३२ ॥

सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।
जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत्।

पद-सजातीयेषु ७ अयम् १ प्रोक्तः १ तन-

---

१ गोत्ररिक्थे जनयितुर्नभजेद्दत्रिमः सुतः। गोत्ररिक्थानुगः पिंडो व्यपैति ददतः स्वधा ॥

२ न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।

३ एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।

४ दायादानपि दापयेत्।

१ भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥

२ तत्सुता गोत्रजा बंधुः शिष्यः स ब्रह्मचारिणः।

येषु ७ मया ३ विधिः १ जातः १ अपिऽ—दास्याम् ७ शूद्रेण ३ कामतःऽ—अंशहरः १ भवेत् क्रि— ॥

मृते पितरिकुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिकम्।
अभ्रातृको हरेत्सर्वं दुहितॄणां सुतादृते।१३४

पद—मृते ७ पितरि ७ कुर्युः क्रि—तम् २ भ्रातरः १ तुऽ—अर्द्धभागिकम् २ अभ्रातृकः १ हरेत् क्रि—सर्वम् २ दुहितॄणाम् ६ सुतात् ५ ऋतेऽ—॥

योजना—सजातीयेषु तनयेषु अयं विधिः मया प्रोक्तः शूद्रेण दास्याम् अपि जातः कामतः अंशहरः भवेत्। पितरि मृते सति भ्रातरः तम् अर्द्धभागिकम् कुर्युः अभ्रातृकः दुहितॄणां सुतात् ऋते सर्वं हरेत् ॥

तात्पर्यार्थ—पूर्व २ के अभावमें परला २ धनका भागी होता है यह विधि मैंने सजातीय पुत्रोंके विषयमें कही है विजातीय पुत्रोंमें नहीं। उन पुत्रोंमें कानीन गूढोत्पन्न सहोढ पौनर्भव इनको सवर्णता जनक (पिता) के द्वारा है स्वरूपसे नहीं। क्योंकि उनको वर्ण और जातिके लक्षणका अभाव कह आये। तैसेही मूर्द्धावसिक्त आदि अनुलोमजोंका औरस पुत्रोंमें अतर्भाव (आजाना) होनेसे उनके अभावमें ही क्षेत्रज आदिकोंको दायका भागी जानना। और शूद्रका पुत्र चाहै औरसभी हो तोभी अन्य पुत्रोंके अभावमें सपूर्ण धनको प्राप्त नहीं होता। सोई मनु (अ० ९ श्लोक १५४) ने कहा है कि चाहै द्विजातिके पुत्रको वा द्विजातिका कोई अन्य पुत्र न हो उसके मरनेपर क्षेत्रज आदि वा अन्य कोई असपिंड शूद्राके पुत्रको उस मरेके धनमेंसे दशवें भागसे अधिक न दें। इसही मनु वचनसे यह बात जानी गई की सवर्णा स्त्रीका कोई पुत्र न होय तो क्षत्रिया और वैश्याके पुत्र सब धनको ग्रहण करलें। अब शूद्रधनके विभागमें विशेष कहते हैं शूद्रके सकाशसे दासीमें पैदा हुआभी शूद्र पिताकी इच्छासे भागको प्राप्त होता है। पिताके मरे पीछे विवाही हुई स्त्रीके पुत्र होंय तो उस दासीके पुत्रको आधा भाग दे। और विवाही हुईके पुत्र न होंय तो सब धनको वह दासीका पुत्रहि ग्रहण करले। यदि विवाही हुईकी पुत्री और दौहित्र न हों तब वे होंय तो दासीका पुत्र आधे भागकाही अधिकारी होता है। और इस वचनमें शूद्र पदके ग्रहणसे द्विजातियोंके सकाशसे शूद्रामें पैदा हुआ पुत्र पिताकी इच्छासेभी और आधेभी भागको प्राप्त नहीं होता सपूर्ण तो दूर रहा। किंतु अनुकूल होय तो जीवनमात्र (भोजन वस्त्र) को प्राप्त होताहै ॥

भावार्थ—यह दायभागकी विधि मैंने सजातीय पुत्रोंमें कही है। शूद्रके सकाशसे दासीमें पैदा हुआभी पुत्र पिताकी इच्छासे दायका भागी होता है। पिताके मरनेपर भ्राता उसको आधा भाग दें। भ्राता कोई न हो और दुहिता और उनके पुत्र (दौहित्र) न होंय तो सब धनको दासीका पुत्रही ग्रहण करले ॥१३३॥१३४॥

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुता गोत्रजा बंधुःशिष्यः सब्रह्मचारिणः॥

पद—पत्नी १ दुहितरः १ चऽ—पितरौ १ भ्रातरः १ तथाऽ—तत्सुताः १ गोत्रजाः १ बंधुः १ शिष्यः १ सब्रह्मचारिणः १ ॥

एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयंविधिः१३६

---

१ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रो यद्यपुत्रोऽपि वा भवेत्। नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥

पद-एषाम् ६ अभावे ७ पूर्वस्य ६ धनभाक् १ उत्तरोत्तरः १ स्वर्यातस्य ६ हिऽ-अपुत्रस्य६ सर्ववर्णेषु ७ अयम् १ विधिः १ ॥

योजना-पत्नी, च पुनः दुहितरः, पितरौ, तथा भ्रातरः, तत्सुताः, गोत्रजाः, बंधुः, शिष्यः सब्रह्मचारिणः एषां मध्ये पूर्वस्य अभावे उत्तरोत्तरः धनभाक् भवति अपुत्रस्य स्वर्यातस्य (मृतस्य) सर्ववर्णेषु अयं विधिः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-मुख्य और गौण पुत्रोंके दायविभागके क्रमको निरूपण करके उन सबके अभावमें दायभागियोंके क्रमको कहते हैं। पूर्वोक्त बारह प्रकारके पुत्र जिसके न हों उसे अपुत्र कहते हैं वह अपुत्र जब स्वर्ग (परलोक) में चला जाय तो उसके धन ग्रहण करनेवाले जो पत्नी आदि क्रमसे पढे हैं उनके मध्यमें पूर्व २ के अभावमें उत्तर २ धनका भागी होताहै मूर्द्धावसिक्त आदि संपूर्ण अनुलोमज और प्रतिलोमजोंमें और ब्राह्मण आदि वर्णोंमें यही दायके ग्रहणकी विधि (क्रम) जानना उनमें सबसे प्रथम पत्नी धनभाक् होती है, पत्नीभी वह जो धर्मविवाहसे विवाही हो क्योंकि (पत्युर्नोयज्ञसंयोगे) इसपाणिनिके सूत्रसे पतिशब्दके इकारको नकार और ङीप् प्रत्यय करनेसे यज्ञ(विवाहका होम) संयोगमें पत्नी शब्द बनाहै यहां पत्नी यह एक वचन जातिके अभिप्रायसे है क्योंकि जातिवाचक शब्द अनेकका और व्यक्तिवाचक शब्द एककाही बोधक हुआ करताहै यह व्याकरणकी रीति है, इससे बहुत पत्नी होंय तो सजातीय बिजातीय वे सब धनको ग्रहण करती हैं, जैसे वृद्ध मनुने भी पत्नीकोही सब धनका ग्रहण कहा है कि पुत्रसे रहित पतिकी शय्याको पालती हुई व्रत (पातिव्रतधर्म) में टिकी हुई पत्नीही पतिको पिंड दे और पतिके सब धनको ग्रहण करै। वह विष्णुनेभी कहा है कि अपुत्रका धन पत्नीको प्राप्त होता है, पत्नी न होय तो पुत्रीको, पुत्री न होय तो पिताको, पिता न होय तो माताको मिलता है। कात्यायनकाभी वचन है कि जो व्यभिचारिणी न हो वह पत्नी पतिके धनको प्राप्त होतीहै। वह न होय तो वह पुत्री जो विवाही न हो, तैसेही वचन है कि अपुत्रके धनके स्वामी (मालिक) श्रेष्ठ कुलसे पैदा हुई पत्नी वा पुत्री होती है और वे न होंय, तो पिता माता भ्राता और भ्राताके पुत्र क्रमसे स्वामी कहे हैं। बृहस्पतिकाभी वचन है कि कुलके पिता भ्राता सहोदर भ्राता आदि विद्यमानभी होंय तो मरे हुए पुत्रसे हीनके धनकी हारिणी (लेनेवाली) पत्नीही होती है। इन वचनोंके विरोधीभी वचन दीखते हैं कि भ्राताओंके मध्यमें कोई भाई संतानसे हीन मरजाय वा सन्यासी होजाय वे शेष भ्राता स्त्रीधनको छोडकर उसके धनका विभाग करलें। और जो उसकी स्त्री पतिकी शय्याकी रक्षा करतीहों (पतिव्रता हो) उन

---

१ अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयती व्रते स्थिता। पत्न्येव दद्यात्तत्पिंडं कृत्स्नमंशं लभेत च।

१ अपुत्रधनं पत्न्यभिगामि तदभावे दुहितृगामि तदभावे पितृगामि तदभावे मातृगामि।

२ पत्नी पत्युर्धनहरी या स्यादव्यभिचारिणी। तदभावे तु दुहिता यद्यनूढा भवेत्तदा॥

३ अपुत्रस्यार्यकुलजा पत्नी दुहितरोऽपि वा। तदभावे पिता माता भ्राता पुत्राश्च कीर्तिताः॥

४ कुल्येषु विद्यमानेषु पितृभ्रातृसनाभिषु। असुतस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी॥

५ भ्रातॄणामप्रजाः प्रेयात् कश्चिच्चेत्प्रव्रजेत वा। विभजेरन् धनं तस्य शेपास्ते स्त्रीधनं विना॥ भरणं चास्य कुर्वीरन्स्त्रीणामाजीवनक्षयात्। रक्षंति शय्यां भर्तुश्चेदाच्छिद्युरितरासु च॥

स्त्रियोंका जीवनपर्यंत पालन करै, और इतरों-(व्यभिचारिणी) से छीन लें, इन वचनोंसे पत्नीके होतेभी भ्राताओंका धनका ग्रहण और स्त्रियोंकी रक्षा नारदमुनिने कही है। मनुने तो (अ० ९ श्लो० १८५) अपुत्रके धनको पिता वा भ्राता ग्रहण करै इस वचनसे पिता और भ्राताको अपुत्रके धनका ग्रहण कहा है, जैसेही (अ० ९ श्लो० २१७) मनुका वचन है कि संतानरहित पुत्रके धनको माता प्राप्त होती है और माताके मरनेपर 'पिताकी माता धनको ग्रहण करै इससे माता और पितामहीको धनका संबंध (लेना) दिखाया है। शंखनेभी मरे हुए अपुत्रका द्रव्य भ्राताको पहुंचता है उसके अभावमें माता पिताको वा ज्येठी पत्नीको प्राप्त होता है, इस वचनसे भ्राता माता पिता और ज्येठी पत्नीको क्रमसे धनका संबंध दिखाया है। कात्यायननेभी मरे हुए विभक्त (जुदे) भाईका द्रव्य पुत्रके अभावमें पिता ले, वा भ्राता माता पितामही धनको ग्रहण करैं। विरुद्ध है अर्थ जिनका ऐसे इन पूर्वोक्त आदि वचनोंकी व्यवस्था योगियोंके ईश्वर याज्ञवल्क्यने दिखाई है कि पत्नी धनको ग्रहण करती है यह वचनोंका समूह विभक्त भ्राताकी स्त्रीके विषयमें है। यदि वह स्त्री नियोगको चाहती हो, यह बात क्यों है कि नियोगकी अपेक्षासे ही पत्नीको धनकी प्राप्ति है स्वतंत्रको नहीं। क्योंकि अपुत्रके धनको पिता ले इत्यादि वचनोंके होनेसे पत्नीके धन लेनेमें व्यवस्थाका कारण कहना योग्य है और नियोगसे अन्य कोई दूसरा व्यवस्थाका कारण नहीं है। गौतमकाभी वचन है कि संतानरहितके धनको पिंडगोत्र ऋषि (प्रवर) योंके संबंधी ग्रहण करैं और देवर आदिसे बीजको चाहै तो स्त्री भी ग्रहण करै। मनु (अ० ९ श्लो० १४६) का वचन है कि जो भ्राता मरे हुए भ्राताके धनकी वा स्त्रीकी रक्षा करै वह भ्राताके पुत्रको पैदा करके उस पुत्रकोही धन देदे, इस वचनसे यह बात दिखाई कि विभक्तके धनमेंभी भ्राताके मरेपर पुत्रके द्वाराही पत्नीको धनका संबंध है अन्यथा नहीं है। तैसेही अविभक्त (इकट्ठे) धनमेंभी मनु (अ० ९ श्लो० १२०) का वचन है कि छोटा भाई ज्येठे भाईकी स्त्रीमें यदि पुत्रको पैदा करै तो वहां विभाग सम (बराबर) होता है यह धर्मकी व्यवस्था है। तैसेही वसिष्ठजीभी धनके लोभसे नियोग नहीं होता इस वचनसे धनके लोभसे नियोगका निषेध करते हुए यह दिखाते हैं कि नियोगके द्वाराही पत्नीको धनका संबंध है अन्यथा नहीं। नियोगके अभावमें तो इस नारदके वचनसे भरण (पालना) मात्रही मिलता है कि जीवन पर्यंत इसकी स्त्रियोंकी पालना करैं। योगीश्वर भी कहेंगे कि 'पुत्ररहित और साधु (पतिव्रता) इनकी स्त्रियोंकी

१ पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव वा।

२ अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्। मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम्॥

३ स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य भ्रातृगामि द्रव्यं तदभावे पितरौ हरेयातां ज्येष्ठा वा पत्नी।

४ विभक्ते संस्थिते द्रव्यं पुत्राभावे पिता हरेत्। भ्राता वा जननी वाथ माता वा तत्पितुः क्रमात्॥

१ पिंडगोत्रर्षिसंबंधी रिक्थं भजेरन् स्त्री वानपत्यस्य बीज लिप्सेत।

२ धन यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव वा। सोऽपत्य भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम्॥

३ कनीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि। समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥

४ रिक्थलोभान्नास्ति नियोगः।

५ भरणं चास्य कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात्।

६ अपुत्रा योषितश्चैषां भर्तव्याः साधुवृत्तयः। निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च॥

पालना करैं और व्यभिचारिणी और प्रतिकूलोंको निकासदे। और यहभी है कि द्विजातियोंका धन यज्ञके लिये है और स्त्रियोंको यज्ञमें अधिकार नहीं इससे स्त्रियोंको धनका ग्रहण अयुक्त है सोई किसीकी स्मृति है कि द्रव्य यज्ञके लिये पैदा हुआ है। यज्ञके जो अधिकारी नहीं हैं वे सब धनके भागी नहीं होते किंतु भोजन वस्त्रके भागी होते हैं। यज्ञके लिये इकट्ठा किया जो द्रव्य है उसको धर्मसे युक्त स्थानोंमें लगावे, स्त्री मूर्ख विधर्मियोंको न दे, यह सब पूर्वोक्त व्यवस्था ठीक नहीं है। क्योंकि पत्नीदुहितरः इस वचनमें नियोग प्रतीत नहीं होता और नियोगका प्रकरणभी नहीं है और यहां हमें यह वक्तव्य (कहने योग्य) है कि पत्नीके धन ग्रहण करनेमें नियोग निमित्त है वा नियोगसे पैदा हुआ पुत्र निमित्त है। उन दोनोंमें नियोगकोही निमित्त मानोगे तो जिसके पुत्र पैदा न हुआ हो उसकोभी धनका संबंध पावेगा और पैदा हुए पुत्रको धनका संबंध न पावेगा। जो कहो कि उसका अपत्य (पुत्र) ही निमित्त है तो पुत्रकोही धनका संबंध होगा, इससे पत्नीदुहितरः इस वचनका आरंभ (लिखना) न करना चाहिये। कदाचित् यह मानो कि स्त्रियोंको पतिके वा पुत्रके द्वाराही धनका संबंध है अन्यथा नहीं, सोभी ठीक नहीं क्योंकि इसमें मनु (अ० ९ श्लो० १९४) इत्यादि वचनोंका विरोध है कि अध्यग्नि अध्यावहनिक और प्रीतिके कर्म्ममें दिया और भ्राता माता पितासे जो मिला यह छः प्रकारका स्त्रीधन कहा है, और यहभी है कि सब प्रकारके पुत्रोंके अभावमें पत्नीदुहितरः यह वचन पढाहै उसमें जो नियोगवालीको धनका संबंध कहता है उसने क्षेत्रजकोही धनका संबंध कहा वह तो पहिलेही कह आये उससे अपुत्रके प्रकरणमें पत्नीदुहितरः इस वचनका आरंभ न करना चाहिये था। कदाचित् कहो कि पिंड गोत्रको ऋषियोंके संबंध अपत्यरहितके धनको ग्रहण करैं और बीजको चाहै तो स्त्रीकोभी धन प्राप्त होता है, इस पूर्वोक्त गौतमके वचनसे नियुक्ताकोही धनका संबंध है; सो भी ठीक नहीं, क्योंकि इस वचनसे यह अर्थ प्रतीत नहीं होता कि यदि बीजकी इच्छा करै तो स्त्री अपुत्रके धनको ग्रहण करै किंतु यह अर्थ प्रतीत होता है कि अनपत्यके धनको पिंड गोत्र ऋषियोंके संबंधी ग्रहण करैं वा स्त्री ग्रहण करै और चाहै वह स्त्री बीजकी इच्छा करै वा नियम संयमसे रहै। यह उस स्त्रीको धर्मांतर (दूसरा धर्म) का उपदेश है। पक्षांतरके वाचक वा शब्दसे यदि (जो) अर्थ प्रतीत नहीं हो सकता और यहभी है कि संयमवालीकोही धनका ग्रहण युक्त है। स्मृति और जगत्में निंदित नियुक्ताको नहीं। क्योंकि भर्ताकी शय्याका पालन करती हुई और व्रतमें स्थित पुत्ररहित पत्नीही पतिको पिंड दे और संपूर्ण अंशको प्राप्त होतीहै, इस वचनसे संयमवालीकोही धनका ग्रहण कहा है। तैसेही मनुने (अ० ९ श्लो० ६४) नियोगकी निंदाभी की है कि द्विजाति अन्य पुरुषके संग स्त्रीका नियोग न करै, जो अन्यमें नियोग करते हैं वे

---

१ यज्ञार्थं द्रव्यमुत्पन्नं तत्रानधिकृतास्तु ये। अरिक्थभाजस्ते सर्वे ग्रासाच्छादनभाजनाः ॥ यज्ञार्थं विहितं द्रव्यं तस्मात्तद्विनियोजयेत् । स्थानेषु धर्मजुष्टेषु न स्त्रीमूर्खविधर्मिषु ॥

२ अध्यग्न्यध्यावहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

१ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन्हि नियुंजाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥

सनातन धर्मको नष्ट करते हैं। जो पूर्वोक्त वसिष्ठका वचन है कि धनके लोभसे नियोग नहीं होता उस वचनका यह अर्थ करना कि अविभक्त (इकट्ठा) वा संसृष्टी (साझी) भाई मर जाय तो उसकी स्त्रीको धनका संबध नहीं है, वह स्त्री अपने पुत्रको धनसवंधके लिये नियोग न करै। और जो पूर्वोक्त नारदका वचन है कि जीवनपर्यंत अपुत्रकी स्त्रियोंकी पालना करैं। वहभी ससृष्टीका जो भाग है वह संसृष्टोंको ही इष्ट है इस[1] वचनमें संसृष्टोंका प्रकरण होनेसे उनकीही अपत्यरहित स्त्रियोंके मरणमात्रका बोधक है। कदाचित् कोई शका करै कि भ्राताओंमें जो प्रजाहीन मरजाय इस पूर्वोक्त वचनको ससृष्टोंके विषयमें होनेसे संसृष्टोंके भागको संसृष्ट ले इसके संग पुनः उक्ति (दो वार कहना) दोष है सो ठीक नहीं। जिससे पूर्वोक्त विवरण (अर्थ) से स्त्रीधनको विभागकी अयोग्यता और उसकी स्त्रियोंका पालन पोषणही विधान किया है। जो यह पूर्वोक्त वचन है कि पुत्रहीन इनकी स्त्रियोंका पालन करै, वहभी नपुंसक आदिकी स्त्रियोंके विषयमें है यह आगे कहेंगे। और जो यह कहा है कि द्विजातियोंका धन यज्ञके लिये है, स्त्रियोंको यज्ञका अधिकार नहीं इससे धनका ग्रहण अयुक्त है, वहभी ठीक नहीं। क्योंकि सपूर्ण द्रव्यको यज्ञार्थ मानोगे तो दान होम आदि न होसकेंगे। कदाचित् कहो कि यज्ञ शब्द, धर्ममात्रका बोधक है दान होम आदिभी धर्मार्थ हैं इससे यज्ञार्थ कहनेमें कुछ विरोध नहीं, ऐसे माननेमेंभी धनसे सिद्ध होनेवाले अर्थ कामोंकी सिद्धि न होगी और ऐसे माननेमें इन याज्ञवल्क्य गौतम मनुके वचनोंको विरोध होगा कि अपनी शक्तिके अनुसार[1] धर्म अर्थ कामको न त्यागे। धर्म अर्थ कामके विना पूर्वाह्ण मध्याह्न अपराह्ण इनको निष्फल न करै। विना सेवा इंद्रियोंका संयम नहीं करसकते। और धनको यज्ञार्थ मानोगे तो सुवर्णको[2] धारण करै इस वचनमें सुवर्णके समान धनको जो पुरुषार्थ कहा है वहभी न होसकेगा। और यज्ञशब्दको धर्मका उपलक्षण माननेमें स्त्रियोंकोभी पूर्व धर्मका अधिकार होनेसे धनका ग्रहण अत्यत युक्त है। जो ये परतंत्रताके बोधक वचन हैं कि स्त्री[3] स्वतन्त्रताके योग्य नहीं हैं वह परतंत्रता रहो धनके स्वीकारमें क्या विरोध है। फिर यज्ञके लिये पैदा हुआ द्रव्य इस वचनकी क्या गति होगी, इसकी गतिको कहते हैं कि, यज्ञके लियेही सचित किये द्रव्यको यज्ञमें ही पुत्र आदि लगावे इसका बोधक वह वचन है। क्योंकि यज्ञके[4] लिये मिले द्रव्यको जो नहीं देता वह भास वा काक होता है यह दोषका सुनना पुत्र आदिकोंमेंभी समान है। और जो यह कात्यायनने कहा है कि जो धन दायादोंसे रहित है अर्थात् जिसका कोई भागी न हो वह राजाका होता है। परंतु स्त्रियोंके भोजन वस्त्रोपयोगी और धनीके श्राद्धोपयोगी द्रव्यको छोडकर राजगामी होता है। इसकाभी यह अपवाद है कि श्रोत्रिय (वेदपाठी) का जो द्रव्य है वह श्रोत्रियकी स्त्रीका पालन और

---

१ संसृष्टानां तु यो भागः सतद्यानां स इष्यते ।

---

१ धर्ममर्थं च कामं च यथाशक्ति न हापयेत् । न पूर्वाह्णमध्यदिनापराह्णानफलान्कुर्याद्यथाशक्तिधर्मार्थकामेभ्यः । न तथैतानि शक्यते संनियंतुमसेवया ॥

२ हिरण्यं धार्यम् ।

३ न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ।

४ यज्ञार्थं लब्धमददद्भासः काकोपि वा भवेत् ।

५ अदायिकं राजगामि योषिद्भृत्यौर्ध्वदैहिकम् । अपास्य श्रोत्रियद्रव्य श्रोत्रियेभ्यस्तदर्पयेत् ॥

श्रोत्रियके और्ध्वदैहिक कर्मको छोडकर श्रोत्रियोंको दे राजा न ले यहभी उन स्त्रियोंके विषयमें है जो अवरुद्ध की (रोकमें) हों क्योंकि इस वचनमें योषित् पदका ग्रहण है । और नारदकाभी वचन है कि ब्राह्मणको छोडकर धर्ममें परायण राजा धनीकी स्त्रियोंको आजीवन (भोजन वस्त्र) दे। यह दायकी विधि कही है। यह वचन अवरुद्धकी स्त्रीके विषयमें है। क्योंकि इसमें स्त्रीशब्दका ग्रहण है । यहां तो पत्नीशब्दके ग्रहणसे विवाही और जितेंद्रिय उसको धनके ग्रहणमें कोई विरोध नहीं। तिससे विभक्त असंसृष्टी पुत्ररहित मनुष्यके मरनेपर सबसे प्रथम पत्नी धनको ग्रहण करती है इसमें कोई विरोध नहीं। विभागको कह आये और संसृष्टियोंको कहेंगे। इससे श्रीकर आदिकोंने इस वचनको अल्पधनके विषयमें जो कहा है वह निरस्त (खंडित) समझना । तैसेही औरस पुत्रोंके होतेभी पिताके जीवन वा मरण समयके विभागमें पत्नियोंको पुत्रोंके समान अंश कहे आये हैं। कि यदि पिता सम अंश करै तो पत्नियोंको भी समान अंश दे। पिताके मरने पर पुत्र विभाग करैं तो माताभी समान अंश ले। तिससे स्वर्गमें गये अपुत्र मनुष्यके धनको पत्नी भोजन वस्त्रसे अधिक नहीं लेसकती यह व्यामोह (भ्रम) मात्र है। कदाचित् यह कोई मानै कि पत्नियोंको समान अंश दे। माताभी समान अंश ले। इन पूर्वोक्त दोनों वचनोंमें जीवनके उपयोगी धनकोही स्त्री ग्रहण करती है, सो ठीक नहीं । क्योंकि अंशशब्द और समशब्द व्यर्थ होजांयगे । कदाचित् यह मानो कि बहुत धन होय तो जीवनके उपयोगी और अल्प धन होय तो पुत्रके समान अंशको ग्रहण करती है, सोभी ठीक नहीं। क्योंकि विधिकी विषमता होजायगी। विषमताकोही दिखाते हैं, कि पत्नियोंके समान अंश करै। माताभी समान अंश ले ये दोनों वचन बहुत धनमें जीवनके उपयोगीको लें इस दूसरे वाक्यकी अपेक्षासे जीवनमात्र धनको और अल्प धनमें पुत्रोंके समान अंशोंको प्रतिपादन (कहना) करेंगे। तैसेही चातुर्मास यज्ञोंमें दोनोंका प्रणयन (प्राप्त करना) करते हैं इस वाक्यमें पूर्वपक्षीने सोमयज्ञके प्रणयनके अतिदेशमें वैश्वदेवमें उत्तर वेदीपर उपकिरण (कुशा रखना) करते हैं शुनासीरियमें नहा यह उत्तर वेदीका प्रतिषेध हेतु दिखाया है। फिर सिद्धांतीके एकदेशीने यह कहा कि सोमयज्ञके प्रणयनके अतिदेशसे प्राप्त हुई उत्तर वेदीके प्रथम उत्तम पर्वोंका यह निषेध है। फिर पूर्वपक्षीने यह विषमता दिखाई कि कहे हुए (वपन करते हैं) इस प्रथम उत्तम पर्वोंके निषेधकी अपेक्षा एक पक्षकी उत्तर वेदीको प्राप्त करता है। और मध्यके दोमें तो नित्यके समान निरपेक्ष उत्तर वेदीको प्राप्त करता है। सिद्धांतमेंभी विधिकी विषमताके भयसे प्रथम उत्तर वेदीका प्रतिषेध नित्यका अनुवाद है । दोनोंमें प्रणयन करते हैं इस अर्थवादके पर्यालोचन (देखना) से कहा जो वपंति (वपन. करते हैं) मध्यके वरुण प्रघास शाकमेघ पर्वोंमेंही उत्तर वेदीको कहता है यह सिद्धांत दिखाया है । जो कोई यह मानते हैं कि अपुत्रके धनको पिता अथवा भ्राता ग्रहण करते हैं इस मनु (अ० ९ श्लो० १८५) वचनसे और तैसेही

१ अन्यत्र ब्राह्मणात्किंतु राजा धर्मपरायणः । तत्स्त्रीणां जीवनं दद्यादेष दायविधिः स्मृतः ॥

२ यदि कुर्यात्समानंशान्पत्न्यः कार्याः समांशिकाः। पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ॥

१ चातुर्मास्येषु द्वयोः प्रणयाति ।

२ पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव वा ।

अपुत्रके मरनेपर द्रव्य भ्राताको मिलता है वह न होय तो माता पिताको वा ज्येष्ठा पत्नीको मिलता है इस शंखके वचनसे अपुत्रका धन भ्राताको प्राप्त होता है यह पाया। और जीवन पर्यंत अपुत्रकी स्त्रियोंकी पालना करै इत्यादि वचनसे पालनके उपयोगीको पत्नी ग्रहण करै और शेष धनको भाई ग्रहण करैं। और जब पत्नीकी पालनाके उपयोगीही धन हो वा उससेभी न्यून हो तब पत्नीही ग्रहण करै वा भ्राताभी कुछ ग्रहण करैं इस विरोधमें पूर्व वचनके बलवान् बतानेके लिये पत्नीदुहितरः इस वचनका प्रारंभ किया है। इस पूर्वोक्त किसीके माननेकोभी भगवान् आचार्य नहीं सहते जिससे पूर्वोक्त मनु (अ० ९ श्लो० १८५) वचनमें अपुत्रके धनको पिता ग्रहण करै वा भ्राता इस विकल्पके स्मरणसे यह वचन क्रमका बोधक नहीं किंतु धनके ग्रहण करनेमें अधिकारी दिखानेके लिये है। अधिकारियोंका दिखाना तो पत्नी आदिका समुदाय न होय तोभी घट सकता है यह व्याख्या आचार्यने की है। शंखका पूर्वोक्त वचन भी संसृष्ट भ्राताओंके विषयमें है। और यह भी है कि अल्प धनके विषयमें पत्नी ले यह बात इस वचन वा प्रकरणसे प्रतीत नहीं होती। उत्तर २ धनका भागी है यह वाक्य पत्नीदुहितरः इन दोनों विषयोंमें वाक्यांतरकी अपेक्षासे अल्प धनके विषयमें है और पिता आदिमें संपूर्ण धनके विषयमें है। यह पूर्वोक्त विधिके विषयमें है। यह पूर्वोक्त विधिकी विषमता तदवस्थ (ज्योंकी त्यों) है इससे यह पूर्वोक्त कथन तुच्छ है। जो हारीतका वचन है कि जो यौवन अवस्थाकी कर्कशा विधवा स्त्री हो उसकोभी अवस्था बितानेके लिये भोजन दे वह वचनभी उस स्त्रीको संपूर्ण धनको निषेध करता है जिसके व्यभिचारकर्मकी शंका हो और इसी हारीतके वचनसे व्यभिचारकी शंकासे रहित स्त्रीको संपूर्ण धनका ग्रहण प्रतीत होता है। यही जानकर शंखने ज्येष्ठा वा पत्नी यह कहा है अर्थात् व्यभिचारकी शंकासे रहित जो गुणोंसे ज्येठी है वह सब धनको ग्रहण करके दूसरी कर्कशाकीभी माताके समान पालना करै। इससे सब पूर्वोक्त कथन निर्दोष है। तिससे विभक्त (जुदा) असंसृष्टी पुत्ररहित मनुष्यके मरनेपर जितेंद्रिय और विवाही हुई स्त्री संपूर्णही धनको ग्रहण करती है यह स्थित (सिद्धांत) हुआ। पत्नी न होय तो दुहिता (पुत्री) लेती हैं। दुहितरः यह बहुवचन इस लिये है कि सजातीय और विजातीय पुत्रियोंको सम विषम अंश मिलता है। सोई कात्यायनने कहा है कि जो व्यभिचारिणी न हो वह पत्नी पतिके धनको लेती है। उसके अभावमें बिना विवाही होय तो पुत्री लेती है। बृहस्पतिकोभी वचन है कि भर्ताके धनको पत्नी लेती है, उसके बिना दुहिता कही है अर्थात् पत्नी न होय तो दुहिता लेती है। मनुष्योंके अंग अंगसे पुत्रोंके समान दुहिता पैदा होती है तिससे अपुत्र पिताके धनको दुहितासे अन्य मनुष्य कैसे ग्रहण कर सकता है। उनमेंभी विवाही और बिना विवाहियोंके समुदायमें बिना विवाही ही लेती हैं क्योंकि पूर्वोक्त कात्यायनके वचनमें यह विशेष कहाहै कि बिना विवाही होय तो पत्नीके

१ स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य भ्रातृगामि द्रव्यं तदभावे पितरौ हरेयातां ज्येष्ठा वा पत्नी ॥

२ भरणं चास्य कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवनक्षयात् ।

३ विधवा यौवनस्था चेन्नारी भवति कर्कशा । आयुषः क्षपणार्थं तु दातव्यं जीवनं तदा ॥

१ पत्नी पत्युर्धनहरी या स्यादव्यभिचारिणी । तदभावे तु दुहिता यद्यनूढा भवेत्तदा ॥

२ भर्तुर्धनहरी पत्नी तां विना दुहिता स्मृता । अंगादंगात्संभवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम् ॥ तस्मात्पितृधनं त्वन्यः कथं गृह्णीत मानवः ॥

अभावमें दुहिता लेती है। तैसेही प्रतिष्ठिता और अप्रतिष्ठिता (निर्धन) समुदायमें अप्रतिष्ठिता लेती है, वह न होय तो प्रतिष्ठिता लेती है। क्योंकि इस गौतमके वचनकी पिताके धनमें भी प्रवृत्ति समान न्यायसे है कि विना विवाही और अप्रतिष्ठित दुहिताओंका स्त्रीधन होता है। सांप्रदायिक (सनातन रीतिके ज्ञाता) तो यह कहते हैं इस वचनमें स्त्रीधनपद पितृधनकाभी उपलक्षण है। कदाचित् कोई कहै कि यह वचन पुत्रिकाके विषयमें है सो ठीक नहीं, क्योंकि औरसके समान पुत्रिकासुत है इस वचनसे पुत्रिका और उसके पुत्रको औरसके तुल्य पुत्रके प्रकरणमें कह आये हैं। च शब्द (पत्नी दुहितरश्चैव) के पढनेसे दुहिताके अभावमें दौहित्र धनका भागी होता है। सोई विष्णुने कहा है कि मनुष्यको पुत्र पौत्र आदि संतान न होय तो दौहित्र धनको प्राप्त होते हैं। और पितरोंके स्वधा (श्राद्धतर्पण) करनेमें दौहित्रही पौत्र माने हैं। मनु (अ० ९ श्लो० १३६) काभी वचन है कि पुत्रिकाधर्मसे विना की हुई वा की हुई पुत्री सजातीय पतिसे जिस पुत्रको पैदा करै उससेही मातामह पौत्रवाला होता है। वही दौहित्र पिंड दे और धनको ले ॥

दुहिता और दौहित्रके अभावमें (*पितरौ) माता पिता धनके भागी होते हैं। यद्यपि युगपदधिकरणवचनता (एकवार अनेक अर्थोंको कहना) में द्वंद्व समास होताहै और एकशेष द्वंद्व समासका अपवाद है इससे (माता च पिता च पितरौ) इस एकशेषमें धनके ग्रहण करनेमें पिता माताका क्रम (कौन पहिले ले) प्रतीत नहीं होता। तथापि विग्रह (माता च पिता च वाक्यमें माता शब्दका पूर्व निपात है और जहां एकशेष नही वहां (मातापितरौ) माता शब्दके पूर्व सुननेसे पढनेके क्रमसेही अर्थका क्रम जाना जाताहै इससे धनके संबंधमेंभी क्रमकी अपेक्षामें प्रतीत हुए क्रमके अनुरोध-

* मयूखमें यह कहा है कि दौहित्रके अभावमें पिता और पिताके अभावमें माता धनको लेती है सोई कात्यायनने कहा है कि अपुत्रके धनको श्रेष्ठ कुलसे पैदा हुई पत्नी वा दुहिता उसके अभावमें पिता माता भ्राता भ्राताके पुत्र क्रमसे लें। विष्णुकाभी वचन है कि अपुत्रका धन पत्नीको पहुंचै है, वह न होय तो दुहिताको, वह न होय तो दौहित्रको, वह न होय तो पिताको, वह न होय तो माताको, वह न होय तो भ्राताको, वह न होय तो भ्राताके पुत्रोंको, वह न होय तो सकुल्योंको क्रमसे पहुचताहै। जो तो विज्ञानेश्वर (मिताक्षरा) ने द्वंद्वके अपवाद एकशेषमें (पितरौ) यद्यपि क्रम प्रतीत नहीं होता तोभी उसके अर्थके बोधक विग्रहवाक्यमें माताशब्दका पूर्वनिपात है। अपवाद किये द्वंद्व समासके क्रमके अनुसार पिता अन्य पुत्रोंमेंभी साधारण है और माता तो असाधारण है इससे पहिले माताको पीछे पिताको धनका ग्रहण कहाहै वहभी इस विष्णुवचनके विरोधसे अपास्त (खंडित)

१ स्त्रीधन दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाम्।

२ अपुत्रपौत्रसंताने दौहित्रा धनमाप्नुयुः पूर्वेषां स्वधाकारे पौत्रा दौहित्रका मताः ॥

३ अकृता वा कृता वापि यं विंदेत्सदृशात्सुतम्। पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् ॥

४ अपुत्रस्यार्यकुलजा पत्नी दुहितरोपि वा। तदभावे पिता माता भ्राता पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥

१ अपुत्रधनं पत्न्यभिगामि तदभावे दुहितृगामि तदभावे दौहित्रगामि तदभावे पितृगामि तदभावे मातृगामि तदभावे भ्रातृगामि तदभावे भ्रातृपुत्रगामि तदभावे सकुल्यगामि।

सेही पहिले माताही धनकी भागिनी होती है उसके अभावमें पिता धनका भागी होताहै यह प्रतीत होता है। और यहभी है कि पिता तो अन्य पुत्रोंमेंभी साधारण है और माता तो साधारणी नहीं है इस प्रत्यासत्ति (समीपता) की अधिकतासे, और सपिंडोंमें जो अनंतर (समीप) हैं उस २ का धन होता है इस वचनसे माताकोही प्रथम धनका ग्रहण करना युक्त है। यहभी इसी वचनसे जाना जाताहै कि सपिंडोंमेंही प्रत्यासत्तिका नियम नहीं किंतु समानोदकोंमेंभी अविशेषतासे (सबको) धनका ग्रहण पाया वहांभी प्रत्यासत्तिही नियम करती है, माता पिताके मध्यमें माताकी प्रत्यासत्ति अधिक है इससे माताकोही धनका ग्रहण करना अत्यंत युक्त है। माताके अभावमें पिता धनका भागी होता है॥

पिताके अभावमें भ्राता धनके भागी होते हैं सोई मनु (अ० ९ श्लोक १८५) का पूर्वोक्त वचन है कि अपुत्रके धनको पिता ग्रहण करै वा भ्राता। जो तो धारेश्वरने यह कहा है कि संतान रहित पुत्रके धनको माता प्राप्त होती है और माताके मरनेपर पिताकी माता धनको ग्रहण करै इस मनु (अ० ९ श्लो० २१७) के वचनसे पिताके जीवतेभी माताके मरनेपर पिताकी माता (पितामही) धनको ग्रहण करती है पिता नहीं। क्योंकि पिताका ग्रहण करा धन विजातीय पुत्रोंमेंभी पहुंचताहै। पितामहीका ग्रहण किया तो सजातीय पुत्रोंमेंही जाता है इससे पितामहीही ग्रहण करती है इसी धारेश्वरके कथनकोभी आचार्य नहीं मानते। क्योंकि चार तीन दो एक भाग वर्णोंके क्रमसे ब्राह्मणके पुत्रोंके होते हैं इस पूर्वोक्त वचनसे विजातीय पुत्रोंकोभी धनका ग्रहण कह आयेहैं और जो तो यह मनु (अ ९ श्लो १८९) का वचन है कि राजा ब्राह्मणके द्रव्यको कभी भी न ले, वह राजाके अभिप्रायसेहै पुत्रके अभिप्रायसे नहीं, * भ्राताओंमेंभी पहिले सोदर ले क्योंकि जो भिन्नोदरसे उत्पन्न हैं उनका दूसरी मातासे व्यवधान है। क्योंकि यह स्मृति है कि सपिंडोंमें जो अनंतर (समीपका) है उस २ का धन होताहै। सोदरभाई न होय तो भिन्नोदर धनके भागी होते हैं॥

भ्राताओंकेभी अभावमें भ्राताके पुत्र धनके भागी होते हैं। भ्राता और भ्राताके पुत्र दोनों हांय तो भ्राताके पुत्रोंका अधिकार नहीं होता। क्योंकि भ्राताके अभावमें भ्राताके पुत्रोंका अधिकार कहाहै। जब पुत्ररहित भ्राता मरजाय

भया और विग्रहके वाक्यमें माता शब्दका पूर्व निपात हो, द्वंद्व तो विकल्पसे होता है, एकशेष द्वंद्वका अपवाद है, उसमें साधारण और असाधारणको क्रममें नियामक होनेमें प्रमाणका अभाव है॥

* कोई तो यह कहते हैं कि सोदरोंके अभावमें भिन्नोदर और उनके अभावमें सोदरोंके पुत्रग्रहण करते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि भ्राता पदकी सोदरमें शक्ति और भिन्नोदरोंमें गौणी वृत्ति मानोगे तो वृत्ति माननेमें विरोध होगा। कोई तो वृत्ति यह कहतेहैं कि भ्रातर इस पदमें 'भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्यां' इस सूत्रसे स्वसा और दुहिताके संग उक्तिमें भ्राता पुत्रका क्रमसे शेष होताहै भ्रातरश्च स्वसारश्च भ्रातरः इस प्रकार विरूप शब्दोंके एकशेषसे भ्राताके अभावमें भगिनी धनकी भागिनी होतीहै सो ठीक नहीं क्योंकि विरूपी शब्दोंके एकशेषमें कोई प्रमाण नहीं है।

१ अनंतरः सपिंडाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत्।

२ अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्। मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माताहरेद्धनम्॥

१ अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति।

तो उसके भ्राताओंको अविशेषतासे धनका संबंध हुआ। और भ्राताके धन विभागसे पहिलेही यदि कोई भ्राता मरगया होय तो उसके पुत्रोंकोभी पिताके द्वारा धनका अधिकार पाया। वे भाईके पुत्र और भाई विभागसे धनको ग्रहण करैं पिताके क्रमसे भागकी कल्पना होती है इस पूर्वोक्त वचनके अनुसार विभाग करैं। अर्थात् मरे हुए भ्राताके पुत्रोंकोभी उनके पिताका भाग दें॥

भ्राताके पुत्रोंके अभावमें गोत्रज धनके भागी होते हैं अर्थात् पितामही सपिंड और समानोदक भागी होते हैं। उनमें पहिले पितामही धनकी भागिनी होती है। क्योंकि माताके मरनेपर पिताकी माता धनको लेती है इस पूर्वोक्त मनु (अ० ९ श्लो० २१७) के वचनसे माताके अनंतर पितामहीको धनका ग्रहण पाया पितासे लेकर भ्राताओंके पुत्र पर्यंतोंका जो क्रमसे पढना उनके मध्यमें प्रवेशके अभावसे पिताकी माता धनको ग्रहण करै इस वचनको धन ग्रहण करनेके अधिकारकी प्राप्तिका बोधक होनेसे उत्कर्ष (बढाई) में भ्राताके पुत्रोंके अनतर पितामही ग्रहण करती है इसमें कोई विरोध नहीं है। पितामहीके अभावमें समानगोत्र पितामह आदि धनके भागी होते हैं क्योंकि भिन्नगोत्री सपिंडोंका बधुशब्दसे ग्रहण है, उनमें पिताकी संतानके अभावमें पितामही, पितामह, पितृव्य, पितृव्योंके पुत्र क्रमसे धनके भागी होते हैं। पितामहकी संतानमें कोई न होय तो प्रपितामही, प्रपितामह, उसके पुत्र और उनकेभा पुत्र धनके भागी होते हैं। इस प्रकार सात पीढीपर्यंत समान गोत्री और सपिंडोंको धनका ग्रहण जानना। उनकेभी अभावमें समानोदकोंको धनका संबध होता है। वे सपिंडोंसे ऊपरके सात जानने वा जन्म नामके ज्ञानतक—अर्थात् जहांतक अपने बडोंका नामस्मरण हो वहांतक जानने। सोई बृहत् मनुने[1] कहा है कि सातवें पुरुषमें सपिंडता निवृत्त होती है, चौदहवी पीढी पर्यंत समानोदक भाव निवृत्त होजाता है और कोई जन्मनामके स्मरण पर्यंत समानोदक भाव कहते हैं उससे परे गोत्र कहाता है।

गोत्रजोंके अभावमें बंधु * धनके भागी हो धनके ग्रहण करनेमें प्रयोजक (हेतु) नहीं कही अर्थात् कहनी योग्य थी यह मयूखमें लिखा है॥

'* सपिंड न होय तो भगिनी धनभागिनी होतीहै क्योंकि मनुने इस पूर्वोक्त सपिंडोंमें अनतर (समीप)को धनका ग्रहण कहाहै(अ ९श्लो.१८७) बृहस्पतिकोभी वचन है कि[1] जहां बहुत ज्ञातिके सकुल्य वा बांधव हों उनमें जो समीपमें हो वही अनपत्यके धनको ले। इससे भगिनीभी भ्राताके गोत्रमें पैदा हुई है गोत्रजही है पर सगोत्र नहीं है और वह भगिनी यहां (मिताक्षरामें)

1 वहवो ज्ञातयो यत्र सकुल्या बांधवास्तथा। यस्त्वासन्नतरस्तेषां सोऽनपत्यधन हरेत्॥

* मनुस्मृतिमें उसके अभावमें सकुल्य आचार्य वा शिष्य लें[2] इस वचनमें सकुल्य शब्दसे सगोत्र समानोदक मातुल आदिका और तीनों बंधुओंका ग्रहण है। योगीश्वरके वचनमेंभी बंधु पदसे मातुलका ग्रहणहै अन्यथा मातुल आदिका ग्रहणही न होगा इससे इसके पुत्रोंको उनका अधिकारहै फिर समीपकोंका उनको अधिकार न

1 सपिंडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु निवर्तेताचतुर्दशात्॥ जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्पर गोत्रमुच्यते॥

२ तदभावे सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा॥

तेहैं वे बंधु तीन प्रकारके होते हैं अपने बंधु पिताके बंधु माताके बंधु सोई कहा है कि अपनी फूफीके पुत्र, अपनी माताकी भगिनीके पुत्र, अपने मामाके पुत्र ये तीन अपने बंधु जानने। पिताकी पितृष्वसा (फूफी) के पुत्र, पिताकी माताकी भगिनीके पुत्र; पिताके मामाके पुत्र ये तीन पिताके बंधु होते हैं। माताकी फूफीके पुत्र, माताकी भगिनीके पुत्र और माताके मामाके पुत्र ये तीन माताके बंधु जानने। इन तीनोंमें अंतरंग (समीप) होनेसे पहिले अपने बंधु, उनके अभावमें पिताके बंधु, उनके अभावमें माताके बंधु धनके भागी होते हैं यह क्रम - जानना। बंधुओंके अभा-

होगा तो यह बडा अनुचित होगा। यह वीरमित्रोदयमें लिखा है।

* कदाचित् कोई शंका करै पत्नी आदिक सबको जो धनका भाग है वह मृत (मरनेवाला) के संबधसे है, बांधवोंको भी धनका भाग वैसाहि क्यों न हो अर्थात् मरेके बंधुओंकोंही मिले। इससे पिता और माताके बंधुओंको धनका संबध कैसे। पिताकी फूफीके पुत्र इत्यादि वचन तो संज्ञा और संज्ञावालेके संबध जतानेके लिये हैं। कुछ धनसंबंधके लिये नहीं। इस शंकाका समाधान कहते हैं। कि इन वचनोंके विनाभी अपने पिता मातुल पितृव्य आदिमें जैसे संबंधका ज्ञान होता है ऐसेही पिताके बंधुओंमेंभी योगसेही उस शब्दकी शक्ति हो जायगी तो संज्ञा संज्ञिसंबंधका बताना अनर्थक हो जायगा। तिससे बंधुओंके लिये धन संबंधके कहनेमें पिता माताके बंधुओंके

वमें आचार्य और आचार्यके अभावमें शिष्य धनके भागी होते हैं[1]। क्योंकि यह आपस्तंबका वचन है कि पुत्रके अभावमें जो समीप हो वह सपिंड, उसके अभावमें आचार्य, आचार्यके अभावमें शिष्य धनका भागी होताहै। शिष्यके अभावमें सब्रह्मचारीधनका भागी होताहै। जिसके संग (सहपाठि आदि) आचार्यसे यज्ञोपवीत, वेदका पठन, वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्त हुए हों उसे सब्रह्मचारी कहते हैं।[2] उसके अभावमें ब्राह्मणके द्रव्यको कोई न कोई वेदपाठि ग्रहण करै। क्योंकि गौतमका वचन है कि अनपत्य ब्राह्मणके धनको श्रोत्रिय ग्रहण करै। उसके अभावमें सब ब्राह्मण लें। सोई मनु (अ० ९ श्लो० १८८) ने[3] कहा है कि सबके अभावमें वेदत्रयीके ज्ञाता, शुद्ध, इंद्रियोंके दमन करनेवाले ब्राह्मण धनके भागी होते हैं। ऐसा करनेसे धर्मकी हानि नहीं होती। ब्राह्मणके द्रव्यको राजा कदाचित् भी न ले क्योंकि यह पूर्वोक्त मनु (अ० ९ श्लो० १८९) का वचन है कि ब्राह्मणका द्रव्य राजाके ग्रहण करने[4] अयोग्य है। नारदनेभी कहा है कि ब्राह्मणके मरनेपर ब्राह्मणके धनका कोई दायभागी न होय तो राजा ब्राह्मणोंकोही दे, अन्यथा करै तो राजा अपराधी होता है। और क्षत्रिय आदिके धनको तो सब्रह्मचारिपर्यंतोंके अभावमें राजा ग्रहण करै ब्राह्मण

लेनेसेही वचन सफल हो सकता है। बंधुओंके लिये शौचमेंभी यही विधि है इति दिक्।

३ आत्मपितृष्वसुः पुत्राः आत्ममातृष्वसुः सुताः। आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया ह्यात्मबांधवः॥ पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितृमातृष्वसुः सुताः। पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबांधवाः॥ मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः। मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबांधवाः॥

१ पुत्राभावे यः प्रत्यासन्नः सपिंडस्तदभावे आचार्य आचार्याभावेऽन्तेवासी।

२ श्रोत्रिया ब्राह्मणस्यानपत्यस्य रिक्थं भजेरन्।

३ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः। त्रैविद्याः शुचयो दांतास्तथा धर्मो न हीयते॥

४ ब्राह्मणार्थस्य तन्नाशे दायादश्चेन्न कश्चन। ब्राह्मणस्यैव दातव्यमेनस्वी स्यान्नृपोऽन्यथा॥

न ले। सोई मनु (अ० ८ श्लो० १८९) ने कहा है कि इतर वर्णोंके धनको सबके अभावमें राजा ले। अर्थात् ब्राह्मणके धनमें राजा प्रभु नहीं है अन्यवर्णोंकेमें है।

यहां सुगमताके लिये अपुत्रधनके दायभागियोंके * क्रमको कहते हैं। पत्नी, दुहिता, दौहित्र, माता, पिता, भ्राता, भिन्नोदर भ्राता, भ्राताका पुत्र, गोत्रज, पितामही, पितामह, समानोदक, बंधु, शिष्य, सब्रह्मचारी ये क्रमसे धनके भागी मिताक्षराके मतसे होते हैं॥

भावार्थ-पत्नी, दुहिता, माता, पिता, भ्राता, भ्राताके पुत्र, गोत्रज, बधु, शिष्य, सब्रह्मचारी इनमें पूर्व २ के अभावमें परला २ धनका भागी होता है। पुत्ररहित मनुष्यके मरनेपर सब वर्णोंमें यही दायके विभागकी विधि है॥ १३५॥ १३६॥

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणांरिक्थभागिनः।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः॥

पद-वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणाम् ६ रिक्थभागिनः १ क्रमेण ३ आचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः १॥

---

* जीमूतवाहन दायभागकी टीकामें दिखाय क्रमको लिखते हैं-

मरे हुए पुरुषके धनके जो अधिकारी उनका यह क्रम है कि, पहिले पुत्र; उसके अभावमें पौत्र, उसके अभावमें प्रपौत्र धनका भागी होता है। क्योंकि जिसका पिता मरगया हो ऐसे पौत्रका और जिसके पिता पितामह दोनों मर गयेहों ऐसे प्रपौत्रका पुत्रके सग युगपत् (इकसा) अधिकार है। प्रपौत्र पर्यंत कोई न होय तो पत्नी लेती है। वह भर्ताके दायको प्राप्त होकर भर्ताके कुलके और उसके अभावमें पिताके कुलके आश्रय होकर शरीरकी रक्षाके लिये पतिके दायको भोगै। तैसेही भर्ताके उपकारार्थ यथाकथंचित् दान आदिकोभी करै। स्त्रीधनके समान स्वच्छंद (यथेच्छ) न लगावै। पत्नीके अभावमें दुहिता लेती है उनमें पहिले कुमारी, वह न होय तो वाग्दत्ता, वह न होय तो विवाही हुई, उनमें पुत्रवाली और जिसके पुत्र होनेकी सभावना हो इन दोनोंको तुल्य अधिकार है। वध्या विधवा और पुत्रहीनाको धनका अधिकार नहीं है। विवाही हुई पुत्रीके अभावमें दौहित्र, उसके अभावमें पिता, उसके अभावमें माता, उसके अभावमें भ्राता लेते हैं। उनमेंभी पहिले सोदर, उनके अभावमें वैमात्रेय (भिन्नोदर) लेता है। यदि मराहुआ भ्राता भ्राताओंमें संसृष्ट (साझी) होय तो पहिले संसृष्ट सोदरही अधिकारी है। वह न होय तो असंसृष्ट सोदर लेता है। ऐसेही सब वैमात्रेयोंमें पहिले संसृष्ट वैमात्रेय उसके अनंतर असंसृष्ट वैमात्रेय लेता है। जहां वैमात्रेय तो संसृष्ट हो और सोदर असंसृष्ट हो तब वे दोनों सग (इकसाथ) अधिकारी हैं। भ्राताओंके अभावमें भ्राताका पुत्र लेता है। उनमेंभी पहिले सोदर भाईका पुत्र, वह न होय तो वैमात्रेय भ्राताका पुत्र लेता है। संसृष्टियोंमें तो सोदर भाइयोंके सब पुत्रोंमें पहिले संसृष्ट सोदर भाईका पुत्र, वह न होय तो असंसृष्ट सोदर भाईका पुत्र लेता है। वैमात्रेय भ्राताओंके सब पुत्रोंमें पहिले संसृष्ट वैमात्रेय भ्राताका पुत्र, वह न होय तो असंसृष्ट वैमात्रेय भ्राताका पुत्र लेता है। जहां सोदर भ्राताका पुत्र असंसृष्ट हो और वैमात्रेय भ्राताका पुत्र संसृष्ट हो तब वे दोनों भ्राताके समान तुल्य (इकसे) अधिकारी है। भ्राताके पुत्र न होंय तो भ्राताके पौत्रोंका अधिकार है, उनमेंभी भ्राताओंका सोदर असोदरका क्रम और संसृष्टि असंसृष्टिका क्रम समझना। उनके अभावमें पिताका

योजना-वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणाम् आचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः क्रमेण रिक्थभागिनः। भवंतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-पुत्र पौत्र और उनके अभावमें पत्नी आदि दायके भागी कहे अब उन दोनोंका अपवाद कहते हैं। वानप्रस्थ सन्यासी ब्रह्मचारी इनके धनके भागी प्रतिलोम (उलटा) क्रमसे आचार्य, श्रेष्ठ शिष्य, धर्मभ्राता, एकतीर्थी होते हैं। यहां ब्रह्मचारी पदसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी (जो जीवनपर्यंत गुरुका सेवक हो) लेना। उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके धनको तो माता आदिही लेते हैं। नैष्ठिकके धनको तो उसका बाधक होकर आचार्यही ग्रहण करता है। यति (संन्यासी) के तो धनको श्रेष्ठ शिष्य लेता है। श्रेष्ठशिष्य वह होता है जो अध्यात्मशास्त्रके श्रवण, धारण, उसमें कहे कर्मोंके करनेमें समर्थ हो। दुराचारी आचार्य आदिभी भागके अयोग्य है। वानप्रस्थके धनको धर्मभ्राता एकतीर्थी लेता है। धर्मभ्राता प्रतिपन्न (मानाहुआ) भ्राताको कहते हैं। एकतीर्थी एकाश्रमवालेको कहते हैं। धर्मभ्राता जो एकतीर्थी उसे धर्मभ्रात्रेकतीर्थी कहते हैं। इन आचार्य आदिकोंके अभावमें पुत्र आदिकोंके होनेपरभी एकतीर्थी ही लेता है। कदाचित् कोई शंका करै कि अन्य आश्रमोंमें गये अंश (भाग) से हीन होते हैं इस वसिष्ठके

दौहित्र लेता है। वहभी सोदर भगिनीका पुत्र लेना वह न होय तो वैमात्रेय भगिनीका पुत्र लेता है। उसके अभावमें पिताका सहोदर, उसके अभावमें पिताका वैमात्रेय, उसके अभावमें पिताके सोदरोंके पुत्र, पिताके वैमात्रेयोंके पुत्र, पिताके सोदरोंके पौत्र, पिताके वैमात्रेयोंके पौत्र इनका क्रमसे अधिकार है। उसके अभावमें पितामहका दौहित्र, उनमें भी पिताकी सोदर भगिनीका पुत्र और वैमात्रेय भगिनीका पुत्र लेते हैं। वक्ष्यमाण (जो कहेंगे) प्रपितामहके दौहित्रके अधिकारमें भी ऐसेही समझना। उसके अभावमें पितामह, वह न होय तो पितामही लेती है, उसके अभावमें पितामहके सोदर भ्राता, वैमात्रेय भ्राता, उनके पुत्र और पौत्र और प्रपितामहके दौहित्रोंका क्रमसे अधिकार है। धनीके भोग्य, पिंडके दाता ये पूर्वोक्त न होंय तो धनी जिनको पिंड दे उन (नाना आदि) को पिंड देनेवाले मातुल आदिकोंका अधिकार है। उनके अभावमें धनीकी माताकी भगिनीके पुत्रका अधिकार है। उसके अभावमें मातुलके पुत्र पौत्रोंका क्रमसे अधिकार है। उनके अभावमें नीचेके उन सकुल्यों) प्रतिप्रणप्ता आदि तीन पुरुषोंका अधिकार है जो धनीके भोगने योग्य लेपभागके दाता हैं। उनके अभावमें फिर ऊपरके उन सकुल्योंका समीपताके क्रमसे अधिकार है। जो धनी जिनको देताथा उनको लेपभागके दाता वृद्ध प्रपितामहकी संतानमें है। उनके अभावमें समानोदकोंका, उनके अभावमें आचार्यका, उसके अभावमें शिष्यका, उसके अभावमें संग वेदके पाठी ब्रह्मचारीका अधिकार है। उसके अभावमें एक ग्राममें स्थित सगोत्र और एकप्रवरवालोंका क्रमसे अधिकार है। यहां तक धनीके संपूर्ण संबंधियोंमें कोई न होय तो ब्राह्मणके धनको छोडकर राजा ग्रहण करले। ब्राह्मणके धनको तो त्रैविद्य आदि गुणोंसे युक्त ब्राह्मण ग्रहण करैं। इसी प्रकार वानप्रस्थका धन भ्राताके तुल्य माना हुआ वा अन्य वानप्रस्थ एक तीर्थका वासी ले। तैसे ही यतिके धनको सच्छिष्य, नैष्ठिक ब्रह्मचारीके धनको आचार्य ले। उपकुर्वाण ब्रह्मचारीके धनको तो पिता आदि ग्रहण करैं इति संक्षेपः॥

वचनसे अन्य आश्रमोंमें गयोंको धनका सम्बन्धही नहीं होता तो उसका भाग कहांसे होगा। कदाचित् कहो कि नैष्ठिकको अपने संचित धनका संबंध है सोभी नहीं क्योंकि उसको प्रतिग्रहका निषेध है। गौतमका भी वचन है कि भिक्षु संचय न करै। इससे भिक्षुको भी अपने संचित धनका सम्बन्ध नहीं हो सकता। उस शंकाका समाधान कहते हैं कि वानप्रस्थको इस वचनसे धनका संबध है कि एक दिन, मास, छः मास वा वर्ष भरके लिये धनका सचय करै और सचित कियेको आश्विनमें त्याग दे। संन्यासीकोभी कौपीन आच्छादनके लिये वह वस्त्रोंको धारै और योगकी सामग्रियोंके भेद और खडाऊको धारण करै इत्यादि वचनसे वस्त्र और पुस्तकका संबंध है। नैष्ठिककोभी शरीरके निर्वाहार्थ वस्त्र आदिका सबध है ही इससे उनका विभाग कहना युक्त है॥

भावार्थ-वानप्रस्थ संन्यासी ब्रह्मचारी इनके धनके भागी प्रतिलोम क्रमसे आचार्य, श्रेष्ठ शिष्य, धर्मभ्राता, एकतीर्थी होते हैं अर्थात् ब्रह्मचारीके धनको आचार्य, सन्यासीके धनको श्रेष्ठ शिष्य, वानप्रस्थके धनको धर्मका भ्राता एकतीर्थी लेता है॥ १३७॥

संसृष्टिनस्तुसंसृष्टीसोदरस्यतुसोदरः।
दद्यादपहरेच्चांशंजातस्यचमृतस्यच १३८॥

पद-संसृष्टिनः ६ तु ऽ-संसृष्टी १ सोदरस्य ६ तुऽ-सोदरः १ दद्यात् क्रि-अपहरेत् क्रि-चऽ-अंशम् २ जातस्य ६ चऽ-मृतस्य ६ चऽ- ॥

योजना-जातस्य च पुनः मृतस्य संसृष्टिनः, अंशं संसृष्टी। सोदरस्य ससृष्टिनः जातस्य मृतस्य अंशं सोदरः दद्यात् च पुनः अपहरेत्॥

तात्पर्यार्थ-अब अपुत्रका धन पत्नी आदि ग्रहण करैं इसका अपवाद कहते हैं। विभाग किये हुए धनके फिर मिलानेको ससृष्ट*कहते हैं उसका जो स्वामी वह ससृष्टी कहाता है। संसृष्टभी जिस किसीके संग नहीं हो सकता किंतु पिता भ्राता पितृव्य इनके संग हो सकता है सोई बृहस्पतिने कहाहै कि जो विभक्त हुआ पुत्र

---

[१] अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः।
[२] अनिचयो भिक्षुः।
[३] अह्नो मासस्य षण्णां तथा सवत्सरस्य वा। अर्थस्य निचयं कुर्यात्कृतमाश्वयुजे त्यजेत्॥
[४] कौपीनाच्छादनार्थं वा वासोपि बिभृयाच्च सः। योगसभारभेदांश्च गृह्णीयात्पादुके तथा।

* मयूखमें लिखा है कि इस बृहस्पतिके वाक्यमें पिता भ्राता पितृव्यके संगही संसृष्ट हो सकता है अन्यके संग नहीं, क्योंकि वचनमें अन्य नहीं पढे यह मिताक्षरा आदिमें कहाहै। युक्त तो यह है कि विभागके जो करनेवाले पिता आदि हैं उन सबके संग संसर्ग हो सकता है। बृहस्पतिके वचनमें पिता आदिपद विभागके कर्ताओंके बोधक हैं जैसा। आधा वेदीके भीतर मापता है आधा वेदीके बाहिर यहां अन्यथा मानोगे तो वाक्यभेद होगा। तिससे पत्नी पितामह भ्राता पौत्र पितृव्य पुत्र आदिके संगभी संसर्ग होता है। विभक्त जो इकट्ठा रहै वह संसृष्ट यह विभाग कर्ताके सामानाधिकरण्य (जो विभक्त होसकै वही संसृष्ट) से विभक्त दो भाइयोंका पुत्र आदिके संग संसर्ग नहीं हो सकता है। विद्यमान वा होनेवाला धन हम दोनोंका पुनः विभाग पर्यंत साधारण (साझे) रहा ऐसी बुद्धि वा इच्छाको ससर्ग कहते हैं। यह वीरमित्रोदयमें लिखा है॥

---

[१] विभक्तो यः पुनः पित्रा भ्रात्रा वैकत्र संस्थितः। पितृव्येणाथ वा प्रीत्या स तत्संसृष्ट उच्यते॥

पिता भ्राता वा पितृव्य (चाचा) के संग एकत्र स्थित होजाय वह उनका संसृष्ट कहाताहै, मरे हुए, संसृष्टीके अंश (विभाग) को उस संसृष्टीके पुत्रको देदे जो विभागके समय जिसके गर्भका ज्ञान न हो ऐसी संसृष्टीकी भार्यासे पाछै पैदा हुआ हो, पुत्र न होय तो संसृष्टीही ग्रहण करै, पूर्वोक्त पत्नी आदिग्रहण न करै। अब ससृष्टीके धनको संसृष्टी ग्रहण करैं इसकाभी अपवाद कहतेहैं, इसमें संसृष्टीके धनको संसृष्टी (संसृष्टिनस्तु समृष्टी) इस पूर्ववाक्यकाभी संबंध है तिससे सोदर संसृष्टी मर जाय तो उसके अंशको सोदर संसृष्टी संसर्गसे पीछे पैदा हुए ससृष्टीके पुत्रको दे, पुत्र न होय तो ससृष्टी जो सोदर वही ग्रहण करै, इसी प्रकार सोदर और भिन्नोदरके संसर्गमें सोदर संसृष्टीके धनको सोदर संसृष्टीही ग्रहण करै, संसृष्टीभी भिन्नोदर होय तो ग्रहण न करै यह पूर्वोक्तका अपवाद है॥

भावार्थ-संसृष्टीके धनको संसृष्टीके मरनेपर पीछे पैदा हुए पुत्रको संसृष्टी देदे। वह न होय तो संसृष्टी ग्रहण करै। सोदर ससृष्टीके धनको तो सोदर संसृष्टी पूर्वोक्त संसृष्टीके पुत्रको दे। वह न होय तो सोदर संसृष्टीही ले, भिन्नोदर संसृष्टीभी होय तो न ले॥ १३८॥

अन्योदर्यस्तुसंसृष्टीनान्योदर्योधनं हरेत्।
असंसृष्ट्यपिवादद्यात्संसृष्टोनान्यमातृ ॥

पद-अन्योदर्यः१ तुऽ-संसृष्टी१ नऽ-अन्योदर्यः १ धनम् २ हरेत् क्रि-असंसृष्टी १ अपिऽ-वाऽ-आदद्यात् क्रि-संसृष्टः १ नऽ-अन्यमातृजः १॥

योजना-तु पुनः अन्योदर्यः संसृष्टी धनं हरेत्। अन्योदर्यः असंसृष्टी धनं न हरेत्। संसृष्टः (सोदरः) असमृष्टी अपि वा धनम् आदद्यात्, अन्य मातृजः न आदद्यात्॥

तात्पर्यार्थ-अब पुत्ररहित ससृष्टी मरजाय और भिन्नोदर तो ससृष्टी हो और सोदर असंसृष्टी होय तो दोनों विभागसे धनको ग्रहण करैं यह कहतेहैं। अन्योदर्य (सापत्नभाई) संसृष्टी होय तो धनको ग्रहण करै और अन्योदर्य असंसृष्टी होय तो धनको ग्रहण न करै, इन दोनों वाक्योंसे भिन्नोदरके धन ग्रहण करनेमें संसृष्टी होना अन्वय और व्यतिरेक (विधि निषेध) से कारणकहा असंसृष्टी पदका आगेभी संबंधहै कि असंसृष्टीभी संसृष्ट होय तो अर्थात् एक उदरमें संसृष्ट (संबंधवाला) सहोदर होय तो संसृष्टीके धनको ग्रहण करै इस वाक्यसे असंसृष्टीभी सोदरके धन ग्रहण करनेमें सोदर होना कारण कहा संसृष्ट इस पदका उत्तरपदके सगभी संबंध है और वहां संसृष्ट पदका संसृष्टी अर्थ है, नान्यमातृजः इसमें एव पदके (ही) अध्याहारसे अर्थ करना कि अन्य मातासे पैदा हुआही संसृष्टीके धनको ग्रहण न करै, किंतु सोदरकोभी दे इसी प्रकार असंसृष्ट्यपि वा दद्यात् इस अपि शब्दके सुननेसे और संसृष्टो नान्यमातृज एव इस अवधारणके निषेधसे सोदर तो असंसृष्टी हो और भिन्नोदर संसृष्टी होय तो दोनों सम विभागसे धनको ग्रहण करैं क्योंकि दोनोंमें सोदर होना और संसृष्टी होना एक एक धन ग्रहण करनेका कारण है, यही मनुने स्पष्ट कियाहै (अ. ९ श्लो. २१०) कि विभक्त हुए भ्राता संग रहते हुए यदि फिर विभाग करैं, इस प्रकार संसृष्टीके विभागको प्रारंभ करके (अ० ९ श्लो० २११-

---

१ विभक्ताः सहजीवंतो विभजेरन्पुनर्यदि।

२१२) कहा है कि जिन संसृष्ट भ्राताओंके मध्यमें ज्येष्ठ, कनिष्ठ वा मध्यम भ्राता अपने भागके लेनेसे भ्रष्ट होजाय अर्थात् अन्य आश्रममें होजाय वा ब्रह्महत्यारा होजाय, वा मरजाय तो उसके भागका नाश नहीं होता, इससे उसको पृथक् रखदे संसृष्टिही ग्रहण न करै, उसको सोदर असंसृष्टभी भाई इकट्ठे होकर बांट लें, और देशांतर (परदेश) में होंय तोभी आकर इकट्ठे होकर मिलकर सम विभागसे विभाग करलें न्यून अधिकसे नहीं, जो भिन्नोदर भ्राता संसृष्टहों वे और सहोदर भगिनी होंय तो सम विभाग करलें अर्थात् बराबर बांट कर ग्रहण करलें ॥

भावार्थ-भिन्न उदरमें पैदा हुआ भाई संसृष्टी होय तो धनको ग्रहण करै और भिन्नोदर असंसृष्टी होय तो धनको ग्रहण न करै, और असंसृष्टीभी सोदर धनको ले, अन्यमातासे पैदा हुआ संसृष्टीही संसृष्टीके धनको ग्रहण न करै किंतु सहोदरकोभी भाग दे ॥ १३९ ॥

क्लीबोथपतितस्तज्जः पंगुरुन्मत्तको जडः । अंधोचिकित्स्यरोगाद्या भर्तव्याः स्युर्निरंशकाः ॥ १४० ॥

पद-क्लीबः १ अथऽ-पतितः १ तज्जः १ पंगुः १ उन्मत्तकः १ जडः १ अंधः १ अचिकित्स्यरोगाद्याः १ भर्तव्याः १ स्युः क्रि-निरंशकाः १ ॥

योजना-क्लीबः अथ पतितः तज्जः पंगुः उन्मत्तकः जडः अधः अचिकित्स्यरोगाद्याः निरंशकाः एते भर्तव्याः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-अब पुत्र पत्नी आदिके दायग्रहण करनेमें अपवाद कहते हैं, क्लीब (नपुंसक) ब्रह्महत्यारा आदि पतित, और पतितसे उत्पन्न, पंगु (पैरोंसे लगडा), उन्मत्त अर्थात् जिसको वात पित्त कफ संनिपात ग्रहोंका आवेश (भूतोंका लिपटना) आदिसे असावधानी हो, जड जिसका अंतःकरण ठीक न हो अर्थात् अपने हित अहितको न जानै, अंधा जिसके नेत्र इंद्रिय न हों जिसकी चिकित्सा (इलाज) न होसकै ऐसे राजयक्ष्मा आदि रोगसे ग्रस्त, आद्य शब्दके पढनेसे अन्य आश्रमोंमें गये, पिताके वैरी, उपपातकी, बहिरे, गूंगे, इंद्रियोंसे रहित लेने, सोई वशिष्ठने कहा है कि अन्य आश्रमोंमें गये अंशोंसे रहित होते हैं, नारदनेभी कहाहै कि पिताका वैरी, पतित, नपुसक और उपपातकी* ये सभी अशको नहीं लेसकते क्षेत्रज तौ कैसे लेसकता है, मनु (अ० ९ श्लो० २०१) का भी वचन है कि नपुसक, पतित, जन्मांधबधिर उन्मत्त, जड, मूक और इंद्रियोंसे जो

* स्यादौपपातिकः के स्थानमें स्यादपयात्रितः यहभी पाठ कहाहै अपयात्रित वह होताहै राजाके द्रोह आदि अपराधसे घटस्फोट आदि करके बंधुओंने जिसे जाति बाहिर कियाहो, यह मदन कहते हैं, व्यवसायके लिये नाव आदिमें बैठकर जो द्वीपांतरमें जाय वह अपयात्रित होता है यह युक्त है, क्योंकि कलियुगमें उसके ससर्ग (मेल) का निषेध है कि जो द्विज समुद्रमें नावमें जाय शुद्ध कियेभी उसका संग्रह न करै और राजद्रोह आदिमें घटस्फोट जातिसे बाहिर करना नहीं कहे ॥

१ येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः । म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥ सोदर्या विभजेयुस्त समेत्य सहिताः समम् । भ्रातरो ये च संसृष्ट भगिन्यश्च सनाभयः ।

१ अनंशास्त्वाश्रमांतरगताः ।

२ पितृद्विट् पतितः षण्ढो यश्च स्यादौपपातिकः । औरसा अपि नैतेंश लभेरन् क्षेत्रजाः कुतः ।

३ अनशौ क्लीबपतितौ जात्यंधबधिरौ तथा । उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिंद्रियाः ।

४ द्विजस्याब्धौ तु नौयातुः शोधितस्याप्यसंग्रहः

रहित हैं। अर्थात् जिनकी रोगसे इंद्रिय नष्ट होगई हों ये सब नपुंसक आदि अंशके भागी नहीं होते केवल भोजन वस्त्रके देनेसे पालना और रक्षा करने योग्य होते हैं। पालना न करनेमें तो पतित होनेका दोष है। मनु (अ० ९ श्लो० २०२) बुद्धिमान् मनुष्य शक्तिके अनुसार जीवन पर्यंत भोजन व वस्त्र दे, न दे तो पतित होता है। इन सबको विभागसे प्रहिले दोष लगजाय तो भाग नहीं मिलता। और विभागके अनंतर नपुंसकता आदि दोष लगजांयतो उनके धनको कोई भाई आदि छीन नहीं सकता। और विभाग किये पीछेभी औषध आदिके करनेसे दोष दूर होजाय तो भाग मिलसकता है। क्योंकि यहभी इसके समानही बात है। कि विभाग हुए पीछे सवर्णा स्त्रीमें पैदा हुआ जो पुत्र है वहभी विभागका भागी होता है। और पतित आदिकोंमें पुल्लिंग (पतितः) अविवक्षित है अर्थात् पुरुषही पूर्वोक्त भागरहित नहीं होते। किंतु पत्नी दुहिता माता आदिमेंभी उक्त दोष होय तो भागसे रहित जानना।

भावार्थ–नपुंसक, पतित, पतितका पुत्र, पंगु, उन्मत्त, जड, अंध जिनके रोगकी चिकित्सा न होसके इत्यादि सब भागसे हीन होते हैं, किंतु पालना योग्य होते हैं ॥ १४० ॥

औरसाःक्षेत्रजास्त्वेषांनिर्दोषाभागहारिणः। सुताश्चैषांप्रभर्तव्यायावद्वैभर्तृसात्कृताः ॥

पद–औरसाः १ क्षेत्रजाः १ तुऽ–एषाम् ६ निर्दोषाः १ भागहारिणः १ सुताः १ चऽ–एषाम् ६ प्रभर्तव्याः १ यावत्ऽ–वैऽ–भर्तृसात्कृताः १ ॥

योजना–तु पुनः एषां निर्दोषाः औरसाः क्षेत्रजाः पुत्राः भागहारिणः भवंति–च पुनः एषां सुताः (पुत्र्यः) यावद्भर्तृसात्कृताः तावत् प्रभर्तव्याः (पालनीयाः) ॥

तात्पर्यार्थ–इन नपुंसक आदिकोंके औरस और क्षेत्रज पुत्र निर्दोष हैं अर्थात् जिनमें अंश ग्रहण करनेका विरोधी नपुंसकता आदि दोष नहीं हैं वे अंशके ग्रहण करनेवाले होते हैं। उनमें नपुंसकका क्षेत्रज पुत्र हो सकता है और अन्योंके पुत्र औरसभी होसकते हैं। यह और औरस और क्षेत्रजका ग्रहण इतर पुत्रोंके निषेधके लिये है। और पतियोंके आधीन होने (विवाह) पर्यंत इन नपुसक आदिकी पुत्रियोंकीभी पालना करै और चशब्द पढनेसे उनका संस्कार करै।

भावार्थ–इन नपुंसक आदिके निर्दोष औरस और क्षेत्रज पुत्रोंको भाग मिलता है और विवाह होनेतक इनकी कन्याओंकी पालना और उनका विवाह करै ॥ १४१ ॥

अपुत्रायोषितश्चैषांभर्तव्याः साधुवृत्तयः। निर्वास्याव्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैवच ॥

पद–अपुत्राः १ योषितः १ चऽ–एषाम् ६ भर्तव्याः १ साधुवृत्तयः १ निर्वास्याः १ व्यभिचारिण्यः १ प्रतिकूलाः १ तथाऽ–एवऽ–चऽ–॥

योजना–एषाम् अपुत्राः साधुवृत्तयः योषितः भर्तव्याः व्यभिचारिण्यः च पुनः तथैव प्रतिकूलाः निर्वास्याः। भवंतीति शेषः ॥

ता० भा०–इन नपुंसक आदिकोंकी जो पत्नियां साधुवृत्ति (सदाचार) हैं तो पालना करने योग्य हैं और जो व्यभिचारिणी हैं वे और जो प्रतिकूल (विरुद्धाचरण) हैं वे निकासने योग्य हैं। यदि वे व्यभिचारिणी न होंय तो

---

१ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा। ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥

२ विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्

पालना करने योग्य हैं, यह नहीं कि प्रतिकूल होनेसे उनका पालनभी न करै ॥ १४२ ॥

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।
आधिवेदनिकाद्यंच स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥

पद-पितृमातृपतिभ्रातृदत्तम् १ अध्यग्न्युपागतम् १ आधिवेदनिकाद्यम् १ चऽ-स्त्रीधनम् १ परिकीर्तितम् १ ॥

योजना-पितृमातृपतिभ्रातृदत्तम् अध्यग्न्युपागतम् च पुनः आधिवेदनिकाद्यं स्त्रीधनं बुधैः परिकीर्तितम् ॥

तात्पर्यार्थ-अब स्त्रीधनके विभागकी इच्छासे प्रथम स्त्रीधनका स्वरूप कहते हैं, पिता माता पति भ्राता इन्होंने जो दियाहो और जो विवाहके समय अध्यग्नि (अग्निहोत्रके समीप) मातुल आदिने दिया हो जो आधिवेदनिक धन हो अर्थात् पतिने दूसरा विवाह करनेके समय प्रसन्नताके अर्थ पहिली स्त्रीको जो धन दियाहो वह इस वचनसे कहेंगे कि जिस, स्त्रीको स्त्रधिन न मिला हो उसको दूसरे विवाहमें जितना द्रव्य लगै उतना द्रव्य दे स्त्रीधन दिया होय तो आधा धन दे, आद्य शब्दसे अंश, क्रय, विभाग, परिग्रह, अधिगमसे मिला लेना यह मनु आदिकोंने स्त्रधिन कहा है, स्त्रीधनशब्द यौगिक है अर्थात् जिसमें स्त्रीका धन यह अर्थ घटै वह है पारिभाषिक (संज्ञा) नहीं क्योंकि योगके संभवमें परिभाषा मानना अयुक्त है, जो मनु (अ० ९ श्लो० १९४) ने कहा है कि अध्यग्नि, अध्यावहनिक और प्रीतिसे मंगल कार्योंमें दिया- भ्राता माता पिता इनसे मिला यह छःप्रकार स्त्रीधन कहा है। वह न्यून संख्याके निषेधके लिये है अधिक संख्याके निषेधार्थ नहीं । अध्याग्नि आदिका स्वरूप कात्यायनने कहा है कि विवाहके समय अग्निके समीप जो स्त्रियोंको दिया जाता है वह सत्पुरुषोंने अध्याग्नि नामका स्त्रीधन कहाहै । और पिताके घरसे पतिके घर जानेके समय जो धन स्त्रीको मिलै वह अध्यावहनिक नामका स्त्रीधन कहाहै । जो कुछ सास श्वशुरोंने प्रीतिसे दिया हो वा चरणोंको नमस्कार करनेसे मिलाहो वह प्रीतिदत्त नामका स्त्रीधन कहाताहै। विवाही हुई कन्याको पतिके घरपर वा पिताके घरपर भ्राताके सकाशसे वा मातापिताके सकाशसे जो मिलै उसे सौदायिक कहते हैं ॥

भावार्थ-पिता माता पति भ्राता इन्होंने जो दिया, अग्निके समीप जो आया, आधिवेदनिक आदि मनु आदिकोंने स्त्रीधन कहा है ॥१४३॥

बंधुदत्तं तथाशुल्कमन्वाधेयकमेव च ।
अतीतायामप्रजसिबांधवास्तदवाप्नुयुः॥

पद-बन्धुदत्तम् १ तथाऽ-शुल्कम् १ अन्वाधेयकम् १ एवऽ-चऽ-अतीतायाम् ७ अप्रजसि ७ बांधवाः १ तत् २ अवाप्नुयुः क्रि-

योजना-बंधुदत्तं तथा शुल्कं च पुनः अन्वाधेयकं स्त्रीधनं परिकीर्तितम्, तत् पूर्वोक्त स्त्रीधनम् अप्रजसि अतीतायां सत्यां बांधवाः अवाप्नुयुः,

१ अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् । न दत्तं स्त्रीधनं यासां दत्तेत्वर्धं प्रकीर्तितम् ॥

२ अध्यग्न्यध्यावहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

१ विवाहकाले यत्स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ । तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ यत्पुनर्लभते नारी नीयमाना पितुर्गृहात् । अध्यावहनिक नाम स्त्रीधनं तदुदाहृतम् ॥ प्रीत्या दत्तं तु यत् किंचिच्छ्वश्र्वा वा श्वशुरेण वा । पादवंदनिकं चैव प्रीतिदत्तं तदुच्यते । ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेपि वा । भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ-कन्याकी माताके और पिताके बंधुओंने जो दिया हो, और जो वरसे धन लेकर कन्या दीजाय वह शुल्क, अन्वाधेयक जो विवाहके पीछे दियाजाय, सोई कात्यायनने कहाहै कि विवाहके पीछे जो धन पतिके कुलमेंसे स्त्रीको मिलै वा पिताके कुलसे मिलै वह धन अन्वाधेय कहाता है, यहभी स्त्रीधन कहा है। इस पूर्वोक्त स्त्रीधनको संतानसे हीन (दुहिता दौहित्र पुत्र पौत्रसे रहित) स्त्री मरजाय तो, वे भर्ता आदि बांधव ग्रहण करते हैं, जिनको आगे कहेंगे ॥

भावार्थ-बंधुओंका दिया, शुल्क (मोल), अन्वाधेयकभी स्त्रीधन कहा है। संतानसे रहित स्त्री मरजाय तो इस पूर्वोक्त स्त्रीधनको पति आदि बांधव ग्रहण करते हैं ॥ १४४ ॥

अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि।
दुहितॄणांप्रसूताचेच्छेषेषु पितृगामि तत् ॥

पद-अप्रजस्त्रीधनम् १ भर्तुः ६ ब्राह्मादिषु ७ चतुर्षु ७ अपि ऽ-दुहितॄणाम् ६ प्रसूता १ चेत् ऽ-शेषेषु ७ पितृगामि १ तत् १ ॥

योजना-ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि विवाहेषु अप्रजस्त्रीधनं भर्तुः भवति प्रसूता चेत् दुहितॄणां भवति शेषेषु विवाहेषु तत् धंन पितृगामि भवति ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्म दैव आर्ष प्राजापत्य इन * चार विवाहोंमें जो भार्या हुई हो ऐसी पूर्वोक्त प्रजारहित मरी हुई स्त्रीका जो पूर्वोक्त स्त्रीधन है वह सबसे पहिले भर्ताका होता है। उसके अभावमें पतिके समीपके जो सपिंड हैं उनका होता है, और आसुर गांधर्व राक्षस पैशाचरूप शेष विवाहोंमें जो भार्या हुई हो उस प्रजाहीन स्त्रीका धन माता पिताको प्राप्त होता है, यहां पितृगामि पदका यह अर्थ है (माता च पिता च पितरौ पितरौ गच्छतीति पितृगामि) अर्थात् माता पिताको जो प्राप्त हो एकशेषसे दिखाईभी माताको प्रथम (पितासे पहिले) धनका ग्रहण पहिलेही कह आये हैं। उसके अभावमें उसके समीपके सपिंडोंको धनका ग्रहण जानना। और सपूर्णभी विवाहोंमें प्रसूता (संतानवाली) होय तो वह धन दुहिताओंका होता है। यहां दुहितापदसे दुहिताकी दुहिता लेनी क्योंकि जो साक्षात् अपनी दुहिता है उनको धनका ग्रहण (ऋणसे शेष माताके धनको दुहिता ग्रहण) करें इस वचनसे पहिले कह आये। इससे माताके मरनेपर माताके धनको पहिले दुहिता लेती हैं, उनमेंभी विवाही और विना विवाहीके मध्यमें विना विवाही लेती है, वह न होय तो विवाही लेती है, उनमेंभी प्रतिष्ठिता और अप्रतिष्ठिताके मध्यमें अप्रतिष्ठिता (निर्धन वा सतानरहित) लेती है, उसके अभावमें प्रतिष्ठिता लेती है, सोई गौतमने कहा है

* आपि शब्दसे गांधर्व लेना अथवा ब्राह्म आदि हैं जिनमें इस अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसे ब्राह्म विवाहसे भिन्न दैव आर्ष प्राजापत्य गांधर्व चार लेने इनमें जो धन वह प्रजासे हीन स्त्रीके मरनेपर भर्ताका इष्ट है इसे मनुवचनके सग विसवाद (विरोध) होगा।

* भर्ताके अभावमें उसके समीपके सपिंडोंका और पिताके अभावमें पिताके समीपके सपिंडोंका धन होता है, उनमें भी स्त्रीके समीपके फिर उनके समीपके उनके द्वारा उनके कुलके समीपके समझने यह व्याख्या करनी ॥

१ विवाहात्परतो यच्च लब्धं भर्तृकुलात्स्त्रिया। अन्वाधेयं तु तद्द्रव्यं लब्धं पितृकुलात्तथा ॥

२ ब्राह्मदैवार्षगांधर्वप्राजापत्येषु यद्धनम्। अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥

१ मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः।

२ स्त्रीधनं दुहितॄणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च।

कि विना विवाही और अप्रतिष्ठिता दुहिताओंको स्त्रीधन मिलता है, इस गौतमके वचनमें चश-ब्दसे प्रतिष्ठिताओंकोभी समझना, यहभी शुल्क-को छोडकर समझना क्योंकि वह इस गौत-मके वचनसे सोदरोंका होता है कि माताके मर-नेपर भगिनीका शुल्क सोदर भाइयोंका होता है। सब प्रकारकी दुहिताओंके अभावमें दुहि-ताकी दुहिता ग्रहण करती है क्योंकि संतान-वाली होय तो दुहिताकी दुहिता ग्रहण करती है यह इसही वचनमें कहा है, यदि वे भिन्नोदर और विषम होंय तो माताओंकी सख्याके अनु-सार भागकी कल्पना करना क्योंकि यह गौत-मका वचन ह किंवा माता २ के प्रति अपने वर्गसे भाग विशेष होता है, दुहिता और दौहि-त्रियोंके मध्यमें दौहित्रियोंका अल्पही देने योग्य है सोई मनुने कहा है (अ० ९ श्लो० १९३) कि जो उन दुहिताओंकी दुहिता हों उनकोभी मातामहोके घनमेंसे प्रसन्नतासे देना। दौहित्रियोंके अभावमेंभी दौहित्र धनके भागी होते हैं। सोई नारदने कहा है कि माताकी दुहिता न होय तो दुहिताओंके अन्वय (वश) को मिलता है, तत् शब्द समीपकी दुहिताओंके ग्रहणार्थ है। दौहित्र न होंय तो पुत्र लेते हैं, क्योंकि दुहिता दौहित्र न होंय तो अन्वय लेता है यह कह आये हैं, मनुभी दुहिता और पुत्रोंको माताके धनका संबंध दिखाते हैं (अ० ९ श्लो० १९२) जननी मर जाय तो सब सहोदर भाई और सब सहोदर भगिनी धनको सम बांटले अर्थात् सहोदर भाई सम बांटले और भगिनी होंय तो वेभी सम बां-टलें, कुछ यह अर्थ नहीं कि भाई और भगिनी इकट्ठे होकर समान बांटकर लें क्योंकि द्वंद्व और एक शेषके अभावसे इतरेतरयोग प्रतीत नहीं होता, विभाग कर्ताओंके अन्वयसेभी चशब्द चरितार्थ हो जायगा। जैसे देवदत्त खेती करता है च पुनः यज्ञदत्त, यहां समपदका ग्रहण उद्धार विभागके निषेधार्थ है। सोदरका ग्रहण भिन्नोद-रोंकी निवृत्तिके लिये है। संतानरहित हीन जाति-की स्त्रीके धनको तो भिन्नोदर भी उत्तम जाति-की सपत्नीकी दुहिता ग्रहण करती है, वह न होय तो उसकी संतान लेती है। सोई मनु (अ० ९ श्लो० १९८) ने कहा है कि पिताका दिया हुआ जो स्त्रीका कुछ धन हो वह ब्राह्मणी कन्या ग्रहण करै वा उसके अपत्य (संतान) का होता है, इस वचनमें ब्राह्मणी पदका ग्रहण उत्तम जातिका बोधक है, इससे संतानरहित वै-श्याके धनको क्षत्रियाकी कन्या ग्रहण करती है। पुत्रोंके अभावमें पौत्र पितामहीके धनको लेते हैं, क्योंकि यह गौतमको वचन है कि जो धनके भागी हैं वे ऋणको दूर करैं, पुत्र पौत्र ऋणको दें इस वचनसे पौत्रोंकोभी पितामहीके ऋण दूर करनेमें अधिकार है। पौत्रोंकेभी अभावमें पूर्वोक्त भर्ता आदि, बांधव धनके ग्रहण करनेवाले होते हैं ॥

भावार्थ-ब्राह्म दैव आर्ष प्राजापत्य इन चार विवाहोंसे विवाही हुई संतानहीन स्त्रीका धन भर्ताका होता है, और संतानवाली होय तो दुहि-ताओंका होता है, और शेषः (आसुर गांधर्व

---

१ भगिनीशुल्क सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः ।

२ प्रतिमातृतो वा स्ववर्गेण भागविशेषः ।

३ यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः । मातामह्या धनात् किंचित् प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥

४ मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितॄणां तदन्वयः ।

५ जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः । भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥

१ स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन । ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥

२ रिक्थभाज ऋणं प्रतिकुर्युः ।

३ पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयम् ।

राक्षस पैशाच) विनाहोंमें वह धन पिताको पहुंचता है ॥ १४५ ॥

दत्त्वाकन्यां हरन्दंडयोव्ययं दद्याच्च सोदयम्।
मृतायां दत्तमादद्यात्परिशोध्योभयव्ययम् ॥

पद्-दत्त्वाऽ-कन्याम् २ हरन् १ दंड्यः १ व्ययम् २ दद्यात् क्रि-चऽ-सोदयम् २ मृतायाम् ७ दत्तम् २ आदद्यात् क्रि-परिशोध्यऽ-उभयव्ययम् २ ॥

योजना-कन्या दत्त्वा हरन् दंड्यः भवति राज्ञेति शेषः। च पुनः सोदयं (सवृद्धिम्) व्ययं दद्यात्। कन्यायां मृतायाम् उभयव्ययं परिशोध्य आदद्यात् (वरो गृह्णीयात्) ॥

तात्पर्यार्थ-अब वाग्दत्ताके विषयमें कुछ कहते हैं। वाणीसे कन्याको देकर (सगाई करके) जो हरै अर्थात् सगाई छुटाले, वह द्रव्यसंबंधके अनुसार राजाको दंड देने योग्य है। यहभी तव है जब हरने (छुटाने) में कोई कारण न हो। यदि कारण होय तो वाणीसे दी हुई कन्याकोभी दूसरा श्रेष्ठ वर आजाय तो हरले यह हरनेकी आज्ञा होनेसे दंड देने योग्य नहीं है। और जो वाग्दानके निमित्त वरने अपने और कन्याके संवधियोंके उपचार (खातिर) में धनव्यय (खर्च) कियाहो उस सवको वृद्धि (व्याज) सहित कन्याका दाता वरको दे। यदि वाग्दत्ता कन्या संस्कारसे पहिले मरजाय तो वरने जो अगूठी आदि वा शुल्क कन्याको दियाहो उसको अपने और कन्याके दाताके व्ययको शोधकर (काटकर) शेष धनको वर ग्रहण करले और मातामह आदिने जो शिरके भूषण आदि कन्याको दियेहों वा क्रमसे मिला जो धन हो उसको सोदर भाई ग्रहण करे। क्योंकि वौधायनकी यह स्मृति है कि मरी हुई कन्याके धनको सहोदर ग्रहण करें, उनके अभावमें माता और उसके अभावमें पिता ग्रहण करै ॥

भावार्थ-कन्याको देकर जो हरै वह (पिता आदि) वृद्धिसहित व्यय वरको दे। और कन्या मरजाय तो अपने और कन्याके पिताके व्यय (खर्च) को शोध (गिन) कर शेष धनको वर ग्रहण करै ॥ १४६ ॥

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।
गृहीतंस्त्रीधनंभर्तानस्त्रियैदातुमर्हति १४७॥

पद्-दुर्भिक्षे ७ धर्मकार्ये ७ चऽ-व्याधौ ७ संप्रतिरोधके ७ गृहीतम् २ स्त्रीधनम् २ भर्ता १ नऽ-स्त्रियै ४ दातुम्ऽ-अर्हति क्रि-॥

योजना-दुर्भिक्षे च पुनः धर्मकार्ये व्याधौ संप्रतिरोधके गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता स्त्रियै दातुं न अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-अब जीवती और प्रजावाली स्त्रीके धनकोभी किसी समयमें भर्ता ले सकता है यह कहते हैं। कुटुंबकी पालनाके लिये दुर्भिक्षमें, अवश्य करने योग्य धर्मके श्राद्ध आदि-कार्यमें, व्याधिमें और सप्रतिरोधक (बंदीग्रह वा कैद) में अन्य द्रव्यसे रहित भर्ता स्त्रीधनको ग्रहण करले तो फिर स्त्रीको देनेयोग्य नहीं है। अन्य प्रकारसे ले तो देदे। भर्ताके विना जीवती हुई स्त्रीके धनको कोई भी दायाद (हिस्सेदार) ग्रहण न करै। मनु (अ० ९ श्लो० २९) का वचन है कि जीवती हुई उन स्त्रियोंके धनको जो अपने बांधव ग्रहण करैं उनको धार्मिक पृथिवीका पति चौरके दंडसे

१ दत्तामपि हरेत् कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आव्रजेत्।

२ रिक्थं मृतायाः कन्याया गृह्णीयुः सोदरास्तदभावे मातुस्तदभावे पितुः।

* वाचस्पतिने तो 'संप्रतिरोधके' यह व्याधौका विशेषण कहा है अर्थात् ऐसी व्याधि हो जिसमें मनुष्य काम न करसके।

१ जीवतीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबांधवाः।
ताञ्छिष्याच्चौरदंडेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥

शिक्षा दे। तैसेही मनु (अ० ९ श्लो० २००) का वचन है कि पतिके जीवते हुए जिस अलंकारको स्त्रियोंने धारण कर लियाहो अर्थात् पति आदिने दियाहो और उसने धार लियाहो उसको दायाद् न बाँटैं, बाँटैं तो वे पतित होते हैं यह दोष सुनाहै ॥

भावार्थ-दुर्भिक्ष, धर्मका कार्य, व्याधि, संप्रतिरोध (कैद्) इनमें ग्रहण किये स्त्रीधनको भर्ता स्त्रीको देने योग्य नहीं है ॥ १४७ ॥

अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्।
नदत्तंस्त्रीधनंयस्यैदत्तेत्वर्द्धंप्रकीर्तितम् १४८

पद्-अधिविन्नस्त्रियै ४ दद्यात् क्रि-आधिवेदनिकम् २ समम्२ नऽ-दत्तम् २ स्त्रीधनम् २ यस्यै ४ दत्ते ७ तुऽ-अर्द्धम् १ प्रकीर्तितम् १ ॥

योजना-यस्यै स्त्रीधनं न दत्तं तस्यै अधिविन्नस्त्रियै समम् आधिवेदनिक दद्यात् स्त्रीधने दत्ते तु अर्द्धं प्रकीर्तितम् मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जिसके ऊपर दूसरा विवाह किया जाय वह पहिली स्त्री अधिविन्ना कहाती है उस अधिविन्न स्त्रीको सम आधिवेदनिक धन दे अर्थात् जितना द्रव्य दूसरे विवाहमें लगै उतनाही उस पहिली स्त्रीको दे, जिसको श्वशुर वा पतिने स्त्रीधन न दियाहो। स्त्रीधन दियाहो तो आधा देना कहा है, यहां अर्द्धशब्द समविभागका वाची नहीं है, इससे पूर्व दियाहुआ धन जितनेसे आधिवेदनिकके तुल्य होजाय उसका आधा देदे ॥

भावार्थ-जिसको श्वशुर वा पतिने स्त्रीधन न दियाहो उस अधिविन्न स्त्रीको आधिवेदनिक (दूसरे विवाहका खर्च) के समान धन पति दे। स्त्रीधन दिया होय तो आधिवेदनिकका आधा दे ॥ १४८ ॥

१ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत् । न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥

विभागनिह्नवे ज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः ।
विभागभावनाज्ञेयागृहक्षेत्रैश्च यौतकैः १४९

पद्-विभागनिह्नवे ७ ज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः ३ विभागभावना १ ज्ञेया १ गृहक्षेत्रैः ३ चऽ-यौतकैः ३ ॥

योजना-विभागनिह्नवे सति ज्ञातिबंधुसाक्ष्यभिलेखितैः च पुनः यौतकैः गृहक्षेत्रैः विभागभावना (निर्णयः) ज्ञेया ॥

तात्पर्यार्थ-अब विभागके संदेहमें निर्णय कहते हैं। विभागका निह्नव (अपलाप) मुकरना) होजाय तो ज्ञाति (सजातीय) पिता और माताके मातुल आदि बंधु और पूर्वोक्त है स्वरूप जिनका ऐसे साक्षी, और लेख्य (विभागका पत्र) इनसे विभागका निर्णय जानना। और पृथक् २ किये हुए घर और क्षेत्रोंसे भी विभागका निर्णय करना अर्थात् पृथक् २ कृषि आदि कार्योंको करना, और पृथक् २ ही पच महायज्ञ आदि करने, विभागका चिह्न नारदने कहा है कि, अविभक्त (इकट्ठे) भाइयोंका धर्म एकही प्रवृत्त होताहै। विभाग हुएपर वह उनका धर्मभी पृथक् २ होजाता है। तैसेही अन्य भी विभागके चिह्न नारदने ही कहे है कि साक्षी प्रतिभू (जामिन) दान, ग्रहण इनको विभक्त (जुदे) भाई करैं, अविभक्त कभीभी न करैं ॥

भावार्थ-विभागके निह्नव (अपलाप) में विभागका निर्णय जाति बंधु साक्षी लेख और पृथक् किये घर और क्षेत्रोंसे विभागका निर्णय जानना ॥ १४९ ॥

इति दायविभागप्रकरणम् ॥ ८ ॥

१ भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते । विभागे सति धर्मोपि भवेत्तेषां पृथक् पृथक् ॥

२ साक्षित्वं प्रातिभाव्य च दान ग्रहणमेव च। विभक्ता भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः कथचन ॥

अथ सीमाविवादप्रकरणम् ९.

सीम्नोर्विवादे क्षेत्रस्य सामंताःस्थविरादयः।
गोपाःसीमाकृषाणा ये सर्वे च वनगोचराः॥

पद्–सीम्नः ६ विवादे ७ क्षेत्रस्य ६ सामन्ताः १ स्थविरादयः १ गोपाः १ सीमाकृषाणाः १ १ सर्वे १ चऽ–वनगोचराः १ ॥

नयेयुरेते सीमानं स्थलांगारतुषद्रुमैः।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम्॥

पद्–नयेयुः क्रि–एते १ सीमानम् २ स्थलांगारतुषद्रुमैः ३ सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैः ३ उपलक्षिताम् २ ॥

योजना–क्षेत्रस्य सीम्नः विवादे स्थविरादयः सामन्ताः गोपाः ये सीमाकृषाणाः च पुनः सर्वे वनगोचराः एते स्थलांगारतुषद्रुमैः सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैः उपलक्षिताम् सीमानं नयेयुः (निश्चिनुयुः) ॥

तात्पर्यार्थ–दो ग्रामोंके क्षेत्रोंकी सीमाके विवादमें तैसेही एकग्रामके खेतोंकी मर्यादाके विवादमें सामंत (आसपासके) वृद्ध आदि और गोप (ग्वालिये) सीमाकृषाण (जो सीमाके आस पास जोतते हों) और संपूर्ण वनके वासी ये सब स्थल, अगार, तुष, वृक्ष, सेतु, वल्मीक (वामी), निम्न (नीचाई), अस्थि, चैत्य (चबूतरा वा ढोला) इन लक्षणोंसे अर्थात् पूर्व किसी समयमें किये हुए सीमाके चिह्नोंसे जानी हुई सीमाका निश्चय करैं। क्षेत्र आदिकी मर्यादाको सीमा कहते हैं वह चार प्रकारकी होती है जनपद (देश) की सीमा, ग्रामकी सीमा, क्षेत्रकी सीमा, गृहकी सीमा और उसके यथासंभव पांच लक्षण हैं सोई नारदने कहाहै कि[1] ध्वजिनी, मत्स्यिनी, नैधानी, भयवर्जिता और राजशासननीता यह पांच प्रकारकी सीमा कही है। ध्वजिनी वह होती है जिसमें वृक्ष आदिका चिह्न हो क्योंकि वृक्षप्रकाश होनेसे ध्वजाके तुल्य हैं। मत्स्यिनी वह होतीहै जिसमें जलका चिह्न हो क्योंकि मत्स्य शब्दसे उसका आधार जल लेते हैं। नैधानी वह होतीहै जिसमें तुष वा अंगार गडे हों उनको गडे हुए होनेसे निधान (खजाना) की तुल्यता है। भयवर्जिता वह होती है जिसको वादी और प्रतिवादी दोनों स्वीकार करलें। राजशासननीता वह होती है जिसके चिह्नोंका ज्ञान न हो और राजा अपनी इच्छासे सीमाका निर्णय करदे। ऐसी सीमामेंभी छः प्रकारका विवाद हो सकताहै सोई कात्यायनने कहाहै कि[1] अंशमें अधिकता और न्यूनता, अस्तिता (होना) और नास्तिता (न होना), भोगना और न भोगना और सीमा ये छः भूमिके विवादमें हेतु हैं। सोई दिखाते हैं कि यहां मेरी पांच निवर्तना–(मापका भेद) से अधिक भूमि है यह कोई कहै तो पांच निवर्तनाही है अधिक नहीं यह अधिकमें विवाद, पांच निवर्तना नहीं उससे न्यून है यह न्यूनतामें विवाद, पांच निवर्तना मेरा अंश है इस कहनेमें अंशही नहीं यह अस्तिता और नास्तिताका विवाद, मेरी यह भूमि इसने पहिले कभीभी न भोगीथी और अब यह भोगताहै यह कहनेपर सदासेही मैंने भोगी है यह अभोगभुक्तिका विवाद, यह मर्यादा है कि यह सीमा विवाद, यह छः प्रकारकाही विवाद हो सकता है। छः प्रकारकेभी भूमिके विवादमें श्रुति और अर्थसे सीमाकाभी-निर्णय होसक्ता है, इससे सीमानिर्णयके प्रकरणमें तिसका अंतर्भाव (पढना)

---

१ ध्वजिनी मत्स्यिनी चैव नैधानी भयवर्जिता। राजशासननीता च सीमा पचविधा स्मृता ॥

१ आधिक्यन्यूनता चांशे अस्तिनास्तित्वमेव च। अभोगभुक्तिः सीमा च षड्भूवादस्य हेतवः ॥

है। सामंत वे होते हैं जो समंततासे (चारों तरफके) चारों दिशाओंमें समीपके ग्राम आदि हैं वे सीमासीमापर स्थित हैं इससे सामत कहाते हैं। क्योंकि कात्यायनका वचन है कि ग्रामका सामंत ग्राम, क्षेत्रका क्षेत्र, घरका सामंत घर इससे कहाहै कि वह समंतता (चारों तरफ) से परिरंभण (मिलना) करके रहता है। यहां ग्राम आदि शब्दसे ग्राममें स्थित (रहनेवाले) पुरुष जानने जैसे ग्रामः पलायितः (ग्राम भाज गया) यहां-यहां सामंतका ग्रहणभी सामंतोंसे जो मिले हो उनके बोधनके लिये है। सोई कात्यायनने कहाहै कि जो मिले हुए हों वे सामंत और उनसे जो उत्तर वे सामंतसंसक्त (मिले) और उन सामंतोंके भी संसक्तोंके जो संसक्त वे सामंतसंसक्तसंसक्त कहाते हैं और वे पद्मके आकारके समान होते हैं। स्थविरपदसे वृद्ध लेने। आदिपदसे मौल और उद्धृत लेने। वृद्ध आदिका लक्षणभी कात्यायनने ही कहाहै कि होता हुआ कार्य उसी कार्यके करनेवाले जिह्नोंने देखा हो वे वृद्ध हों चाहै वृद्ध न हों वे वृद्ध कहाते हैं। जो वहां पहिले सामंत हों और पीछेसे परदेशमें चले गये हों वही देश उनका मूल (जड) है इससे वे ऋषियोंने मौल कहे हैं। सुनने और भोगने कार्यके कहनेका जिनमें चिह्न हो और सीमाका फिर उद्धार करदे इससे उद्भूत कहे हैं। गोपपदसे गौओंके चरानेवाले लेने। सीमाकृषाण वे होतेहैं जो सीमाके समीपके खेतको जोतते हों, और सब वनमें विचरनेवाले व्याधआदि। और वे मनुने कहे हैं कि (अ ८ श्लो १६०) व्याध, शाकुनिक (पक्षियोंके हतनेवाले), गोपाल, कैवर्त (भील वा धीवर), मूल (जड) के खोदनेवाले, सर्पोंके ग्रहण करनेवाले (सफेले), उञ्छवृत्ती अर्थात् कटे हुए खेतोंमेंसे एक २ दानोंको बीननेवाले, और अन्यभी वनके वासी, स्थल (ऊंचा भूमिका भाग), अंगार (कोले), तुष (धानकी त्वचा), द्रुम (वट आदि वृक्ष), सेतु (जलके प्रवाहका बंधन), चैत्य (पत्थर आदिका बध वा चबूतरा)। आदिशब्दसे वेणु और वालु (रेत) आदिका ग्रहण है। ये सबभी प्रकाश और अप्रकाशके भेदसे दो प्रकारक हैं। सोई मनुने कहे हैं(अ ८श्लो.२४६-४७-४८) कि वट, पीपल, ढाक, सेंभल, शाल, ताड और जिनमें दूध निकसे ऐसे गूलर आदि वृक्ष सीमापर निश्चयके लिये लगावे। गुल्म (गुच्छे), वेणु (बांस), शमी (छोंकर वा जांड), वल्ली (लता) और स्थल, शर (सरकंडे), कुंज इनके गुल्म ऐसे बनावे जिनसे सीमा नष्ट न हों। तलाव, उदपान (चौबच्चे), बावडी, प्रस्रवण (झरने) और देवताओंके मंदिर इनको सीमाकी

---

१ ग्रामो ग्रामस्य सामतः क्षेत्र क्षेत्रस्य कीर्तितम्। गृहं गृहस्य निर्दिष्टं समंतात्परिरभ्य हि॥

२ संसक्तकास्तु सामंतास्तत्संसक्तास्तथात्तराः। ससक्तसक्तसंसक्ताः पद्माकाराः प्रकीर्तिताः॥

३ निष्पाद्यमानं यैर्दृष्टं तत्कार्यं तद्गुणान्वितैः। वृद्धा वा यदि वाऽवृद्धास्ते तु वृद्धाः प्रकीर्तिताः॥ ये तत्र पूर्वं सामताः पश्चाद्देशांतरं गताः। तन्मूलत्वात्तु ते मौला ऋषिभिः परिकीर्तिताः॥ उपश्रवणसंभोगकार्याख्यानोपचिह्निताः। उद्धराति पुनर्यस्मादुद्धृतास्ते ततः स्मृताः॥

१ व्याधाञ्छाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान्मूलखातकान्। व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनगोचरान्॥

२ सीमावृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्। शाल्मलीशालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान्॥गुल्मान्वेणूंश्च विविधान् शमीवल्लीस्थलानि च। शरान्कुंजकगुल्मांश्च यथा सीमा न नश्यति॥ तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च। सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च॥

संधियों (मेल) में करै। ये सब तो प्रकाश (प्रकट) रूप हैं। (अ. ८ श्लो. २४९-५०-५१-५२) और सीमाके ज्ञानमें मनुष्योंका प्रतिदिन विपर्यय (कलह) देखकर अन्यभी प्रच्छन्न (छिपे हुए) सीमाके चिह्नोंको करवावे। पत्थर, अस्थि, गौओंके बाल, तुष, भस्म, कपाल, सूखा गोवर, ईंट, अंगार (कोले), शर्करा (कंकर), बालू इनको औरभी जो ऐसे हैं जिनको बहुत कालतक भूमि भक्षण न करै उन सबको सीमाकी संधियोंमें अप्रकाश रूपसे करै। विवाद करते हुए मनुष्योंकी सीमाका निर्णय इन प्रकाश और अप्रकाशरूप सामंत आदिके दिखाये लिंगोंसे राजा करै॥

भावार्थ-क्षेत्रकी सीमाके विवादमें वृद्ध आदि सामंत, गोप और सीमापर समीपके जोतनेवाले और संपूर्ण वनके वासी स्थल, अंगार, तुष, वृक्ष, सेतु, बामी, नीचा स्थल, अस्थि, चैत्य आदिसे जानी हुई सीमाके निर्णयको करैं॥ १५० ॥ १५१ ॥

सामंतावासमग्रामाश्चत्वारोष्टौदशापिवा।
रक्तस्रग्वसनाःसीमांनयेयुःक्षितिधारिणः॥

पद-सामंताः १ वाऽ-समग्रामाः १चत्वारः१ अष्टौ १ दश १ अपिऽ-वाऽ-रक्तस्रग्वसनाः १ सीमाम् २ नयेयुः क्रि-क्षितिधारिणः १॥

योजना-सामन्ताः वा चत्वारः अष्टा वा दश समग्रामाः रक्तस्रग्वसनाः क्षितिधारिणः सन्तः सीमां नयेयुः॥

तात्पर्यार्थ-जहां चिह्न न हों और हों भी तो ऐसे हों जिनका लिंग प्रतीत होनेसे संदिग्ध हों वहां सीमाके निर्णयको कहते हैं। पूर्व कहा है स्वरूप जिनका ऐसे सामंत, वा चार आठ दश सम सख्याके ग्राम अर्थात् समीपके ग्रामोंके वासी मनुष्य रक्तमाला और रक्तही वस्त्रोंको धारकर और अपने मस्तकपर भूमिका खंड (ढेला) रखकर सीमाके निर्णयको करें (दिखावें)। यहां सामत वा इस विकल्पका कहना अन्य स्मृतियोंमें कहे साक्षियोंके अभिप्रायसे है। सोई मनु (अ० ८ श्लो० २५३ -) ने कहाहै कि सीमाविवादके निर्णयमें साक्षीकी ही प्रतीति होती है। उसमें साक्षियोंसे निर्णय करना मुख्य है, वे न होंय तो सामंतोंसे। सोई कहाहै मनु (अ० ८ श्लो० २५८) कि साक्षियोंके अभावमें सीमाके समीप वसनेवाले चार ग्राम सावधान होकर राजाके समीप सीमाका निर्णय करैं। उनके अभावमें उन ग्रामोंसे जो संसक्त (मिले) हैं वे निर्णय करैं। सोई कात्यायनने कहाहै किसी अर्थके गौरवसे अपने प्रयोजनको दुष्टतासे सामंत न करसकैं तो उनके ससक्तोंसे सीमाका उद्धार (निर्णय) करना इसमें सशय नहीं। यदि संसक्तभी किसी दोषसे युक्त हो जांय तो धर्मको जानता हुआ राजा उनकेभी अदुष्ट संसक्तों (सामंतसंसक्तससक्त) को सीमाके निर्णयमें नियत करै, दुष्टोंको न करै। सामंत आदिके अभावमें मौल आदि ग्रहण करने। उनके अभावमें सामंतोंमें वृद्ध मौलोंमें वृद्ध उद्धृत आदि नियत करने। क्योंकि कात्यायनकी

१ उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारयेत्। सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्॥ अश्मनोस्थीनि गोवालांस्तुपान्भस्मकपालिकाः। करीषमिष्टकांगारशर्करावालुकास्तथा॥ यानि चैव प्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत्। तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत्॥ एतैर्लिंगैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः॥

१ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णये।

२ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सीमांतवासिनः। सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसन्निधौ॥

३ स्वार्थसिद्धौ प्रदुष्टेषु सामंतेष्वर्थगौरवात्। तत्संसक्तैस्तु कर्तव्य उद्धारो नात्र संशयः॥ ससक्ते सक्तदोषे तु तत्ससक्ताः प्रकीर्तिताः। कर्तव्या न प्रदुष्टास्तु राज्ञा धर्मं विजानता॥

यह स्मृति है कि छः प्रकारकेभी स्थावर धनके विवादमें विचार न करना यह क्रम कहा है। और ये सामंत आदि गुणोंकी अधिकतासे होते हैं। क्योंकि यह स्मृति है कि पहिला सीमाका साधन सामत हैं, उनमें जो गुणवान् हैं वे निर्दोष हैं, उनमें पिछले दूने समझने और उनसे भी अन्य तिगुने समझने और वे साक्षी और सामंत अपनी शपथों (कसम) से शापित किये सीमाका निर्णय करैं अर्थात् उनको शपथ देकर पूछें। क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २५६) की स्मृति है कि वे शिरपर पृथिवीको रखकर माला और रक्त वस्त्रोंको धारकर और अपने २ पुण्योंकी शपथ लेकर भली प्रकार सीमाका निर्णय करैं। यहां नयेयुः (निर्णय करैं) यह बहुवचन दोके निषेधार्थ है एकके नहीं। क्योंकि नारदने इस वचनसे एककी आज्ञा दी है कि एक मनुष्य सीमाका निर्णय करै तो उपवास रक्तमाला और रक्तवस्त्रोंका धारण और मस्तकपर भूमिको रखना इनको करके जो यह एकका निषेध है कि प्रतीति (विश्वास) वाला भी एक मनुष्य सीमाका निर्णय न करै। क्योंकि इस कार्यको गुरु होनेसे यह सीमाका निर्णय करना बहुत मनुष्योंमें स्थित है। वह दोनों वादी विवादियोंने स्वीकार किये धर्मज्ञसे भिन्नके विषयमें है इससे कोई विरोध नहीं। स्थल आदिका चिह्न होय तोभी साक्षी और सामंत आदिकोंको सीमाके ज्ञानमें उपाय विशेष नारदने कहाहै कि नदियोंने नष्ट की और छोडी हुई और जिनका चिह्न नष्ट होगया है उन भूमियोंमें उस प्राचीन प्रदेश (स्थान) के अनुमान और भोग (जोतना बोना) के दर्शन रूप प्रमाणसे अर्थात् ग्रामसे सहस्र दंडके प्रमाण पर इसका क्षेत्र पश्चिम भागमें है ऐसे प्रमाणसे अथवा प्रतिवादीके प्रत्यक्ष (सामने) विना विवादके ऐसा जो भोग जिसका स्मरण न हो उस भोगसे सीमाके निर्णयको पूर्वोक्त सामंत आदि करैं। बृहस्पतिने इसमें विशेष दिखाया है कि आगम, प्रमाण, भोगका समय, नाम, भूमिके भागका लक्षण इनको जाने वे सीमाके निर्णयमें साक्षी होते हैं। इन साक्षी सामंत आदिकोंको कुल आदिके समक्ष (सामने) राजा पूछे। सोई मनुने (अ० ८ श्लो० २५४) कहा है कि ग्रामके वासी और अच्छे कुलसे पैदा हुए मनुष्योंके समक्ष और उन वादी विवादियोंके समक्ष सीमाके विषय जो सीमाके लिंग उनकी साक्षियोंसे पूछे। पूछे हुए वे साक्षी एक संमति करके सपूर्ण (इकट्ठे) सीमाका निर्णय कहैं। उनकी निर्णय की हुई और उनके दिखाये संपूर्ण चिह्नोंसे युक्त और साक्षी आदिके नामसे युक्त सीमाका आविस्मरण (स्मरण) के लिये पत्रपर लिखवादे। सोई मनु (अ० ८श्लो० २६१) ने

---

१ तेषामभावे सामतमौलवृद्धोद्धृतादयः। स्थावरे षट्प्रकारेऽपि कार्या नात्र विचारणा॥

२ सामताः साधन पूर्वं निर्दोपाः स्युर्गुणान्विताः। द्विगुणास्तूत्तरा ज्ञेयास्ततोऽन्ये त्रिगुणा मताः॥

३ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः। सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समजसम्॥

४ एकश्चेदुन्नयेत्सीमां सोपवासः समुन्नयेत्। रक्तमाल्यांबरधरो भूमिमादाय मूर्द्धनि॥

५ नैकः समुन्नयेत्सीमां नरः प्रत्ययवानपि। गुरुत्वादस्य कार्यस्य क्रियैषा बहुषु स्थिता॥

१ निम्नगापहृतोत्सृष्टनष्टचिह्नासु भूमिषु। तत्प्रदेशानुमानाच्च प्रमाणाद्भोगदर्शनात्॥

२ आगम च प्रमाण च भोगकालं च नाम च। भूभागलक्षण चैव ये विदुस्तेऽत्र साक्षिणः॥

३ ग्रामेयककुलानां तु समक्षं सीम्नि साक्षिणः। प्रष्टव्याः सीमलिंगानि तयोश्चैव विवादिनोः॥

कैहाहै कि वे पूछे हुए सब जैसे सीमाके निर्णयको कहैं वैसेही सीमाका निबंध (पत्रपर) लेख करै और उन साक्षियोंके भी नाम पत्रपर लिखदे। इन साक्षी सामंत आदिके सीमामें भ्रमणके दिनसे तीन पक्षके भीतर राजा वा दैवसे कोई आपत्ति न आन पडै तो उन सामत आदिके कहनेसे सीमाका निर्णय समझना। यह राजा और दैवकी आपत्तिकी अवधि कात्यायनने कही है कि सीमामें भ्रमण, कोश, पादोंका स्पर्श इनमें क्रमसे तीन पक्ष, पक्ष, सात दिनतक दैव और राजाका व्यसन (दुःख) इष्ट है॥

भावार्थ–सामंत वा सम सख्याके चार आठ दश ग्राम रक्तमाला और रक्तवस्त्रोंको धार और मस्तकपर भूमिको रखकर सीमाके निर्णयको करैं॥ १५२॥

अनृते तु पृथग्दंड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्।
अभावे ज्ञातृचिह्नानांराजासीम्नःप्रवर्तिता॥

पद–अनृते ७ तु ऽ–पृथक्ऽ–दंड्याः १ राज्ञा ३ मध्यमसाहसम् १ अभावे ७ ज्ञातृचिह्नानाम् ६ राजा १ सीम्नः ६ प्रवर्तिता १॥

योजना–अनृते तु सति राज्ञा मध्यमसाहसं पृथक् २ सामंताः दड्याः। ज्ञातृचिह्नानाम् अभावे सीम्नः प्रवर्तिता राजा भवतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ–यदि तीन पक्षके भीतर साक्षियोंको रोग आदि हो जाय अथवा प्रतिवादीसे अधिक संख्या वा गुण दूसरे साक्षियोंसे विरुद्ध दिखादे तो उन मिथ्यावादी पहिले साक्षियोंको दंड कहतेहैं। अनृत मिथ्या कथन होय तो सब सामंतोंको प्रत्येक मध्यम साहस (पांच सौ चालीस पण) दंड राजा दे। यह वचन सामंतोंके विषयमें है, यह इससे प्रतीत होताहै कि साक्षी मौल आदिकोंको अन्य स्मृतियोंमें दंड कहाहै। सोई मनु (अ० ८ श्लो० ५७) ने कहाहै कि सीमाके निर्णयमें यथोक्त कहते हुए वे सत्य साक्षी विपरीत (अन्यथा) निर्णय करैं तो दो सौ पण दंड दे। नारदनेभी कहाहै कि सीमाके निर्णयमें सामंत झूठ कहें तो सबको मध्यम साहसका दंड राजा पृथक् २ दे, इससे सामंतोंको मध्यम साहसका दंड कहकर शेष जो भूमिके काममें नियुक्त किये हैं (सामतसंसक्त आदि) वे नीच अनृत कहें तो पृथक् २ पूर्व (प्रथम) साहस दंड देने योग्य हैं। इस प्रकार सामंतोंसे मिले आदिकोंमें नारदने दंड कहाहै, मौल आदिकोंकोभी वही दंड कहाहै कि मौल वृद्ध आदि जो अन्य हैं वेभी अनृतके कहनेपर दंडकी रीतिसे पृथक् २ प्रथम साहस दंड देने योग्य हैं, आदि शब्दसे गोप, शाकुनिक, व्याध वनवासियोंका ग्रहण है। यद्यपि शाकुनिक आदिकोंको पापमें तत्पर होनेसे चिह्नोंके दिखानेमें ही उनका उपयोग है, साक्षात् सीमाके निर्णयमें नहीं, तथापि चिह्नके दिखानेमेंही मिथ्यावादी हो सकतेहैं इससे दंडका कहना ठीक है। अनृतमें पृथक् २ दंड देने योग्य हैं यह दंडका कथन

---

१ ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निर्णयम्। निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः॥

२ सीमाचंक्रमणे कोशे पादस्पर्शे तथैव च। त्रिपक्षपक्षसप्ताहं दैवराजिकमिष्यते॥

---

१ यथोक्तेन नयतस्ते पूयते सत्यसाक्षिणः। विपरीतं नयतस्तु दाप्याः स्युर्द्विशत दमम्॥

२ अथ चेदनृत ब्रूयुः सामताः सीमनिर्णये। सर्वे पृथक् पृथक् दड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्॥

३ शेषाश्चेदनृतं ब्रूयुर्नियुक्ता भूमिकर्मणि। प्रत्येकं तु जघन्यास्ते विनेयाः पूर्वसाहसम्॥

४ मौलवृद्धादयस्त्वन्ये दंडगत्या पृथक् पृथक्। विनेयाः प्रथमेनैव साहसेनानृते स्थिताः॥

५ अनृते तु पृथग्दड्याः।

अज्ञानके विषयमें है क्योंकि कात्यायनने ज्ञानके विषयमें साक्षी आदिको यह अन्य दंड कहा है कि यदि बहुतसे ग्रहण किये हुए साक्षी भय वा लोभसे निर्णय न करै तो उत्तम साहसदण्ड देनेके योग्य है। तैसेही साक्षियोंके वचनके भेदमेंभी यही दंड कात्यायनने ही कहा है कि कहे हुए में भेद (फरक) होय तो उत्तम साहस दंड देने योग्य होते हैं। इस प्रकार अज्ञान आदिसे साक्षियोंको अनृत कहनेका दण्ड देकर फिर सीमाके विचारको प्रवृत्त करैं, यह कहकर कात्यायननेही निर्णयका प्रकार यह कहा है कि दुष्टसामंतोंको त्यागकर और मौल आदिकोंके संग अन्योंको मिलाकर सीमा को ठीक करै यह धर्मके ज्ञाता जानते हैं। जहां सामंत आदि ज्ञाता और चिह्न न होंय, वहां सीमाके निर्णयका उपाय कहते हैं। सामंत आदि सीमाके ज्ञाता और वृक्ष आदि चिह्न न होंय तो राजाही सीमाको प्रवृत्त करानेवाला होता है और दो ग्रामोंके मध्यकी जिस भूमिमें विवाद हो उसका सम (बराबर) विभाग करके यह भूमि इसकी है और यह इसकी इस प्रकार दोनोंको अर्पण करके उस भूमिके मध्यमें सीमाके लिंग राजा करा दे। जब उस भूमिमें किसी एकके उपकारकी अधिकता दीखै तो उस ग्रामके अर्पण सब भूमिको करदे, सोई मनुने (अ० ८ श्लो० २६९) कहा है कि यदि किसीको भूमि सहनेके अयोग्य हो तो धर्मका ज्ञाता राजा एकके‌ही उपकारके लिये भूमिको देदे यह मर्यादा है॥

भावार्थ-सामंत आदि मिथ्या कहैं तो पृथक् २ मध्यम साहस दण्ड देने योग्य हैं, और यदि सीमा जाननेवालोंका और चिह्नोंका अभाव होय तो राजाही सीमाको प्रवृत्त करै॥ १५३ ॥

आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु। एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहादिषु॥१५४॥

पद-आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु ७ एषः १ एव ऽ-विधिः १ ज्ञेयः १ वर्षाम्बुप्रवहादिषु ७॥

योजना-आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु वर्षाम्बुप्रवहादिषु एष एव विधिः ज्ञेयः॥

तात्पर्यार्थ-आराम (फूल फलकी वृद्धिके लिये भूमिका भाग), आयतन (निवेशन) अर्थात् पलाल आदि रखनेके लिये भूमिका भाग (खलियान), ग्राम, यहां ग्रामपद नगर आदिकाभी उपलक्षण (बोधक) है, निपान (जलका स्थान) बावडी कूप आदि, उद्यान (क्रीडाका वन), वेश्म (घर) इन पूर्वोक्त आराम आदिकोंमें यही सामंत साक्षी आदिसे निर्णयकी विधि जाननी। तैसेही वर्षासे हुए जलके प्रवाहोंमें इन दो घरोंके मध्यमे जलका प्रवाह बहता है अथवा इन दो घरोंके मध्यमें इस प्रकारके विवादमें और आदिपदके ग्रहणसे प्रासादों (मंदिर) मेंभी पूर्वोक्तही विधि जाननी। सोई कात्यायनने कहा है कि क्षेत्र, कूप, तलाव केदार, आराम, घर, प्रासाद, आवसथ (हवेली), राजा और देवताओंके मंदिर इनमेंभी यही सीमाके निर्णयकी विधि है॥

---

१ बहूनां तु गृहीतानां न सर्वे निर्णयं यदि। कुर्युर्भयाद्वा लोभाद्वा दण्ड्यास्तूत्तमसाहसम्॥

२ कीर्तिते यदि भेदः स्याद्दण्ड्यास्तूत्तमसाहसम्।

३ अज्ञानोक्तौ दण्डयित्वा पुनः सीमां विचारयेत्।

४ त्यक्त्वा दुष्टांस्तु सामंतानन्यान्मौलादीभिः सह। संमिश्र्य कारयेत्सीमामेव धर्मविदो विदुः॥

५ सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित्। प्रदिशेद् भूमिमेकेषामुपकारादिति स्थितिः॥

१ क्षेत्रकूपतडागानां केदारारामयोरपि। गृहप्रासादावसथनृपदेवगृहेषु च॥

भावार्थ-आराम (बाग), निवेश, ग्राम, निपान (जलस्थान), उद्यान (क्रीडाका वन), वेश्म (घर) इनमें और वर्षासे हुए जलके प्रवाहोंमें यही सीमाके निर्णयकी विधि (सामंत आदि) जाननी। अर्थात् सामत आदि जिसका कहैं उसकेही आराम आदि होते हैं ॥ १५४ ॥

मर्यादायाः प्रभेदे च सीमातिक्रमणे तथा। क्षेत्रस्य हरणे दंडा अधमोत्तममध्यमाः १५५

पद-मर्यादायाः ६ प्रभेदे ७ चऽ-सीमातिक्रमणे ७ तथाऽ-क्षेत्रस्य ६ हरणे ७ दंडाः १ अधमोत्तममध्यमाः १ ॥

योजना-मर्यादायाः प्रभेदे, तथा सीमातिक्रमणे, क्षेत्रस्य हरणे अधमोत्तममध्यमाः दंडाः क्रमेण भवंतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अनेक क्षेत्रोंकी जो व्यवच्छेदक (भेद जतानेवाली) भूमि उसे मर्यादा कहते हैं। उसके भली प्रकार (जडमूलसे) भेदनमें और सीमाको लंघकर क्षेत्रके जोतनेमें और भय आदिको दिखाकर क्षेत्रके हरण (छीनने) में क्रमसे अधम उत्तम मध्यम साहस दंड जानने। यहां क्षेत्रका ग्रहण गृह आराम आदिके उपलक्षणार्थ है। और जब अपनेकी भ्रांतिसे क्षेत्र आदिको हरता है तब दो सौ पणका दंड जानना। सोई मनु (अ० ८ श्लो० १६४) ने कहा है कि घर तलाव आराम क्षेत्र इनको जो भय दिखाकर हरै उसको पांच सौ पणका और अज्ञानसे हरै तो दो सौ पणका दंड दे और हरे हुए क्षेत्र आदिकी अधिकताको देखकर कदाचित् उत्तम साहस दंडभी देने योग्य है। इसीसे कहा है कि, मारना, सर्वस्वका हरना, पुरसे निकासना, अंक करना (दागना), उसके अंगका छेदन करना यह उत्तम साहस दंड कहा है ॥

भावार्थ-मर्यादाका भेदन, सीमाका अवलंघन और क्षेत्रके हरनेमें क्रमसे अधम उत्तम मध्यम साहस दंड होते हैं ॥ १५५ ॥

न निषेध्योल्पबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः। परभूमिं हरन्कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः १५६

पद-नऽ-निषेध्यः १ अल्पबाधः १ तुऽ-सेतुः १ कल्याणकारकः १ परभूमिम् २ हरन् १ कूपः १ स्वल्पक्षेत्रः १ बहूदकः १ ॥

योजना-परभूमिं हरन् सेतुः अल्पबाधः न निषेध्यः, स्वल्पक्षेत्रः बहूदकः कल्याणकारकः कूपः न निषेध्यः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पराये क्षेत्रमें प्रार्थना करके वा धन देकर सेतु वा कूपको स्वामीकी आज्ञासे बनाया चाहै उसके निषेधसे क्षेत्रके स्वामीकोही दंड कहते हैं। पराई भूमिको नष्ट करताभी सेतु (जलके प्रवाहका बध) क्षेत्रस्वामीके निषेध करने योग्य नहीं। यदि वह अल्पपीडा और अधिक उपकारका कर्ता हो और जो कूप अल्प क्षेत्रमें बननेसे अल्प बाधा करै और अधिक जलवान् होनेसे कल्याणका करताहो इससे बहूदक बह कूप भी निवारण करने योग्य नहीं। यहां कूपका ग्रहण बावडी और पुष्करिणीका उपलक्षण है। जहां यह कूप संपूर्ण क्षेत्रमें होनेसे अधिक बाधा करै वा नदी आदिके समीपके क्षेत्रमें होनेसे अल्प उपकार करै तब वह निषेध करनेके योग्य है यह बात अर्थात् कही समझनी। दो प्रकारका सेतु नारदने कहा

---

१ गृहं तडागमारामं क्षेत्र वा भीषया हरन्। शतानि पंच दंड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥

१ वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनांकने। तदंगच्छेद इत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे ॥

२ सेतुश्च द्विविधो ज्ञेयः खेयो बध्यस्तथैव च। तोयप्रवर्तनात् खेयः बंध्यः स्यात्तन्निवर्तनात् ॥

है कि खेय और वंध्य दो प्रकारका सेतु होता है। जिससे जलकी प्रवृत्ति हो वह खेय और जिससे जलकी प्रवृत्ति न हो वह वंध्य होताहै। जो अन्यके वनाये भेदन (फूटना) आदिसे नष्ट हुए सेतुको संस्कार करे तो पहिले स्वामी उसके वंशके मनुष्य वा राजाको पूछकरही संस्कार करै। सोई नारदने कहा है कि पहिले बने हुए और छोडे सेतुको स्वामीके पूछे विना जो कोई प्रवृत्त(जारी) करै वह उसके फलका भागी नहीं। स्वामी मरगया होय और उसके वंशका मनुष्यभी कोई न होय तो राजासे पूछकरके सेतुको प्रवृत्त करै ॥

भावार्थ-अल्प पीडाका कर्ता और अधिक उपकारी पराई भूमिका नाशक कूप और अल्प स्थानमें जो बनै और बहुत जलको जो दे वह कूप क्षेत्रके स्वामीके निषेध करनेके अयोग्य है ॥ १५६ ॥

स्वामिने यो निवेद्यैवं क्षेत्रे सेतुं प्रवर्तयेत्।
उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः॥

पद-स्वामिने ४ यः १ अनिवेद्यऽ-एवऽ-क्षेत्रे ७ सेतुम् २ प्रवर्तयेत् क्रि-उत्पन्ने ७ स्वामिनः ६ भोगः १ तदभावे ७ महीपतेः ६ ॥

योजना-यः स्वामिने अनिवेद्य एव क्षेत्रे सेतुं प्रवर्तयेत् उत्पन्ने (फले) भोगः स्वामिनः भवति तदभावे महीपतेः भोगः भवति ॥

ता० भा०-क्षेत्रके स्वामीके प्रति कहकर सेतु बनानेवालेको कहते हैं। क्षेत्रस्वामीके विना पूछे और उसके अभावमें राजाके विना पूछे जो पराये क्षेत्रमें सेतुको वनाले वह फलका भागी नहीं होता किंतु उससे पैदा हुए फलकोही क्षेत्रका स्वामी भोग सकता है और स्वामी न होय तो राजाको फल मिलता है। तिससे प्रार्थना और धन देकर क्षेत्रके स्वामी वा राजाको पूछकरही पराये क्षेत्रमें सेतुको वांधै ॥ १५७ ॥

फालाहतमपि क्षेत्रं न कुर्याद्यो न कारयेत्।
स प्रदाप्यःकष्टफलं क्षेत्रमन्येनकारयेत्१५८

पद-फालाहतम् २ अपिऽ-क्षेत्रम् २ नऽ-कुर्यात् क्रि-यः १ नऽ-कारयेत् क्रि-सः १ प्रदाप्यः १ कृष्टफलम् २ क्षेत्रम् १ अन्येन ३ कारयेत् क्रि-॥

योजना-फालाहतम् अपि क्षेत्रं यः न कुर्यात् न कारयेत् सः कृष्टफलं प्रदाप्य क्षेत्रम् अन्येन कारयेत् ॥

ता० भा०-जो मनुष्य क्षेत्रस्वामीके पास यह कहकर कि मैं इस खेतको जोतूंगा, पीछे छोडता है और अन्यसे भी न जुतवाता है, फालसे कुछ जुताभी वह क्षेत्र हलसे कुछ जुता होनेसे भली प्रकार वीज बोने योग्य न हो तोभी उसके जोतने बोनेसे जितना अन्न सामंत (जिमीदार)ने समझाहो उतना दंड उस कर्षक (किसान) को राजा दे और उस क्षेत्रको पहिले किसानसे छीनकर अन्यसे करवावे ॥

१ पूर्वप्रवृत्तमुत्सृष्टमपृष्ट्वा स्वामिनं तु यः। सेतुं प्रवर्तयेत्कश्चिन्न स तत्फलभाग्भवेत् ॥ मृते तु स्वामिनि पुनस्तद्वंश्ये वापि मानवे। राजानमामंत्र्य ततः कुर्यात्सेतुप्रवर्तनम् ॥

इति सीमाविवादप्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ स्वामिपालविवादप्रकरणम् १०.

माषानष्टौतुमहिषीसस्यघातस्यकारिणी।
दंडनीयातदर्द्धंतुगौस्तदर्द्धमजाविकम्१५९॥

पद-माषान् २ अष्टौ २ तुऽ-महिषी १सस्य-घातस्य ६ कारिणी १ दंडनीया १ तदर्धम् २ तुऽ-गौः १ तदर्धम् २ अजाविकम् २ ॥

योजना-सस्यघातस्य कारिणी महिषी अष्टौ माषान्,गौःतदर्धम् दडनीया अजाविकम् तदर्धम्।

तात्पर्यार्थ-पराये सस्यका नाश करनेवाली महिषी (भैंस) को आठ माषका और गौको चार माषका और अजा और मेषको दो माषका दंड राजा दे। यहां महिषी आदिके पास तो धन नहीं होता इससे उनके स्वामी पुरुषोंको दंड समझना। यहां माषपदसे तांबेके पणका बीसवां भाग जानना क्योंकि नारदका वचन है कि पणका बीसवां भाग माष कहा है। यह भी अज्ञान (विना जाने) के विषयमें है। जानकर तो अन्य स्मृतिमें कहा यह दंड जानना कि पणके दो पाद गौको, उससे दूने (चार पाद) महिषीको, तैसेही अजा भेड बच्छडोंको पणक एक पादका दंड कहा है और जो नारदने यह कहा है कि गौको एक माषका, महिषीको दो माषका और अजा भेड बच्छडोंको आधे माषका दंड होता है वह ऐसे भक्षणके विषयमें है जिसकी जड बचरही हों और बढनेके योग्य हो॥

भावार्थ-पराये खेतका नाश करनेवाली महिषीके स्वामीको आठ माषका और गौके स्वामीको चार माषका और बकरी भेडके स्वामीको दो माषका दंड दे॥ १५९॥

भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद्द्विगुणो दमः।
सममेषां विवीतेपि खरोष्ट्रंमहिषीसमम्१६०

पद-भक्षयित्वाऽ-उपविष्टानाम् ६ यथोक्तात् ५ द्विगुणः १ दमः १ समम् २ एषाम् ६ विवीते ७ अपिऽ-खरोष्ट्रम् २ महिषीसमम् २ ॥

योजना-भक्षयित्वा उपविष्टानां यथोक्तात् द्विगुणो दमः ज्ञेयः। एषां (महिष्यादीनाम्) विवीते (प्रचुरतृणकाष्ठवति रक्षिते) अपि समं दंडो भवति। खरोष्ट्र महिषीसमं ज्ञेयम्॥

तात्पर्यार्थ-अपराधकी अधिकतासे कहीं २ दूना दंड कहते हैं। यदि पशु पराये क्षेत्रको खाकर विना निकासे क्षेत्रमेंही सो रहें तब पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना। यदि अपने बच्छडों सहित बैठ जांय तो चौगुना दंड जानना। क्योंकि यह वचन है कि क्षेत्रमें पशु बसैं तो दूना और बच्चों सहित बसैं तो चौगुना दंड होता है। प्रचुर (अधिक) है तृण काष्ठ जिसमें ऐसा रक्ष्यमाण (राखाहुआ) जो देश उसे विवीत कहते हैं, उसके नष्ट करनेमेंभी अन्य क्षेत्रके दंडके तुल्यही दंड महिषी आदिकोंको है। और खर ऊंट ये सब महिषीके तुल्य हैं अर्थात् जहां महिषीको जो दंड दिया जाता है वही दंड खर ऊंट इनको भी प्रत्येक दे। खेतके नाश करनेमें खर और ऊंट प्रत्येक महिषीके तुल्य हैं और दंड अपराधके अनुसार होताहै इससे खरोष्ट्र (खर और ऊंट) यह समाहार (समूह) विवक्षित नहीं है अर्थात् दोनोंको मिलकर एक महिषीके समान दंड नहीं है॥

---

१ माषो विंशतिमो भागः पणस्य परिकीर्तितः।

२ पणस्य पादौ द्वौ गां तु तद्द्विगुणं महिषीं तथा। तथाजाविकवत्सानां पादो दडः प्रकीर्तितः॥

३ माषं गां दापयेद्दंडं द्वौ माषौ महिषी तथा। तथाजाविकवत्सानां दडः स्यादर्धमाषिकः॥

१ वसतां द्विगुणः प्रोक्तः सवत्सानां चतुर्गुणः॥

भावार्थ-भक्षण करके जो वहांही बैठ गये हौंय तो दूना दंड होता है और अधिक तृण काष्ठवाले देशमेंभी इन महिषी आदिकोंको सम (तुल्य) ही दंड है और खर और ऊंट महिषीके तुल्य दंडके योग्य होते हैं ॥

यावत्सस्यंविनश्येत्तुतावत्स्यात्क्षेत्रिणःफलम्। गोपस्ताड्यस्तु गोमी तु पूर्वोक्तं दंडमर्हति॥

पद-यावत्ऽ-सस्यम् १ विनश्येत् क्रि-तुऽ-तावत्ऽ-स्यात् क्रि-क्षेत्रिणः ६ फलम् १ गोपः १ ताड्यः १ तुऽ-गोमी १ तुऽ-पूर्वोक्तम् २ दंडम् २ अर्हति क्रि- ॥

योजना-यावत् सस्यं विनश्येत् तावत् फल क्षेत्रिणः स्यात् । तु पुनः गोपः ताड्यः गोमी तु पूर्वोक्त दंडम् अर्हति ॥

तात्पर्यार्थ-पराये सस्यके नाशमें गौके स्वामीको दंड कह आये अब क्षेत्रके स्वामीको फलभी दे यह कहते हैं । यहां सस्यका ग्रहण क्षेत्रकी वृद्धिका उपलक्षण है । जिस क्षेत्रमें जितना पलाल और धान्य आदि गौ आदिकोंने नष्ट कियाहो उतना क्षेत्रका फल गौवाला क्षेत्रके स्वामीको दे अर्थात् इतने क्षेत्रमें इतना अन्न भूसा हुआ करता है इस प्रकार सामंतोंके निश्चय किये अन्न आदिको देदे। और गोपको ताडनाही दे उससे फल न दिवावे । यदि पाल (गोप) के दोषसे सस्यका नाश हुआ होय तो गोपको[1] भी पूर्वोक्त धन दंडसहितही ताडना जाननी । क्योंकि यह वचन है कि जो नष्ट (बिछडी) हुई गो पालके दोषसे सस्योंको नष्ट करै, उसमें गौके स्वामियोंको दंड नहीं किंतु पालना करनेवाला उस दंडके योग्य होता है। यदि गौका स्वामीही अपने अपराधसे सस्यको नष्ट करै तो पूर्वोक्त दंडके योग्य होताहै ताडनाके नहीं । फलके देनेका अधिकार सर्वत्र गौके स्वामीकोही है । क्योंकि उस क्षेत्रके फलके पुष्ट महिषी आदिके दूधके भोग (पीना) के द्वारा गौका स्वामीही उस क्षेत्रके फलका भोगनेवालाहै और गौ आदिके भक्षणसे शेष (बचा) पलाल आदिको तो गौका स्वामीही ग्रहण करले । क्योंकि मध्यम मनुष्योंने कल्पित (ठहराया) मूल्यके देनेसे वह क्षेत्र उसका क्रीत (खरीदा)के समान है। इसीसे नारदने[1] कहा है कि गौओंके भक्षण किये सस्यको जो नर मांगै जो अन्न उस क्षेत्रमें बोयाहो उसका द्रव्य वा उतना अन्न जो सामत ठहरादे देदे । और उस खेतका पलाल गौके स्वामीको और अन्न कर्षक (किसान) को देदे॥

भावार्थ-जितना क्षेत्र नष्ट हुआ हो उतनाही फल क्षेत्रके स्वामीका होताहै और गोप तो ताडनाके योग्य है और गौओंका स्वामी पूर्वोक्त दंडके योग्य होता है ॥ १६१ ॥

पथि ग्रामविवीतांते क्षेत्रे दोषो न विद्यते । अकामतः कामचारे चौरवद्दंडमर्हति१६२॥

पद-पथि ७ ग्रामविवीतान्ते ७ क्षेत्रे ७ दोषः १ नऽ-विद्यते क्रि-अकामतःऽ-कामचारे ७ चौरवत्ऽ-दंडम् २ अर्हति क्रि- ॥

योजना-पथि ग्रामविवीतांते क्षेत्रे अकामतः नाशिते दोषः न विद्यते, कामचारे चौरवत् दंडम् अर्हति ॥

---

१ या नष्टा पालदोषेण गौस्तु सस्यानि नाशयेत् । न तत्र गोमिनां दंडः पालस्तं दंडमर्हति ॥

१ गोभिस्तु भक्षितं सस्यं यो नरः प्रतियाचते । सामन्तानुमतं देयं धान्यं यत्तत्र वापितम् ॥

तात्पर्यार्थ-मार्ग ग्राम और विवीत (जिसमें तृण वा काष्ठ रक्षाके लिये छोड रक्खेहों) इनके समीपका जो क्षेत्र है उसके रखवाले गोपके विना जाने गौ भक्षण करलें तो गोप और गौको स्वामी इन दोनोंको दोष (अपराध) नहीं। यहां दोषके अभावका कहना दंडके अभावार्थ है और नष्ट हुए सस्यके मोल देनेके निषेधार्थ है। यदि कामचार हो अर्थात् जानकर खेतमें गौ आदिको चुगावे तो जो दंड चौरको होताहै वैसेही दडके योग्य वहभी होताहै। यहभी उस क्षेत्रके विषयमें है जो अनावृत (विना बाड) हो क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २३८) ने यह दड-का अभाव अनावृत क्षेत्रके विषयमें ही कहाहै कि जहां विना बाडके खेतके धान्यको यदि पशु नष्ट करदें वहां राजा पशुओंके रखवालोंको दंड न दे और आवृत (बाडवाले) तो मार्ग आदि के क्षेत्रमेंभी दोष है ही, वृति (बाड) का कर-नाभी मनु (अ०८श्लो०२३९) ने ही कहाहै कि क्षेत्रकी ऐसी बाड करे जिसके करनेसे ऊंट क्षेत्रको न देखसके और उसमें ऐसे छिद्रभी न रहने दे जिनमें कुत्ते और सूकरोंका मुख जासके ॥

भावार्थ-मार्ग ग्राम विवीतके समीपका जो क्षेत्र उसको विना जाने गौ आदि नष्ट करदें तो कुछ दोष नहीं है। यदि जानकर चुगावे तो चौरके समान दंडके योग्य होताहै ॥ १६२ ॥

महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागंतुकादयः।
पालोयेषांनतेमोच्यादैवराजपरिप्लुताः॥

पद-महोक्षा १ उत्सृष्टपशवः १ सूतिकागंतुकादयः १ पालः १ येषाम् ६ न ऽ-ते १ मोच्याः १ दैवराजपरिप्लुताः १ ॥

योजना-महोक्षा उत्सृष्टपशवः सूतिकागंतुकादयः येषां पालः न अस्ति दैवराजपरिप्लुताः ते मोच्याः स्युः ॥

तात्पर्यार्थ-महान् जो उक्षा उसे महोक्ष (सांड) कहते हैं वह, और उत्सृष्ट पशु जो वृषोत्सर्ग आदिकी विधिसे वा देवताके निमित्तसे छोडे हों, और दश दिनके भीतरकी प्रसूता (ब्याई हुई) गौ आदि, आगतुक (जो अपने यूथसे भ्रष्ट होकर देशांतरसे आये हों) इतने पशु छोडने योग्य हैं अर्थात् ये पराये सस्यका भक्षण करने परभी दडके योग्य नहीं हैं, और जिनका पाल नहीं हों वेभी दैवराजोपहत (सस्यके नाशक) होंय तो दंडके योग्य नहीं होते। आदि पदके ग्रहणसे हस्ती अश्व आदि लेने वे उशनाने कहे हैं कि हाथी और अश्व दंडके योग्य नहीं हैं। क्योंकि ये प्रजाके पालक कहे हैं। काणे और कुबडे चिह्नवालेभी दंडके योग्य नही हैं। कहीं ऐसाभी पाठ है कि काणे और एक सींगके और दाग दिये बैल दंडके अयोग्य हैं। अकस्मात् (अचानक) आई, सूतिका अभिसारिणी (जो अपने यूथसे भ्रष्ट हुई फिर अपने यूथमें जाती हो), उत्सवकी और श्राद्धके समयमें आई इतनी गौ दंडके अयोग्य हैं। यहां उत्सृष्ट (छोडे हुए) पशुओंको दंडसे रहित होनेसे दृष्टांतके लिये उनका ग्रहण है अर्थात् जैसे उत्सृष्ट पशु दंडके अयोग्य हैं ऐसेंही महोक्षा आदिभी दडके अयोग्य हैं ॥

---

१ यत्रापरिवृतं धान्य विहिंस्युः पशवो यदि। न तत्र प्रणयेद्दड नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥

२ वृतिं च तत्र कुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्। छिद्रं निवारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥

१ अदंड्या हस्तिनो ह्यश्वाः प्रजापाला हि ते स्मृताः। अदंड्याः काणकुब्जा च ये शश्वत्कृतलक्षणाः ॥ अदडचागतुकी गौश्च सूतिका वाभिसारिणी। अदडचाश्चोत्सवे गावः श्राद्धकाले तथैव च ॥

भावार्थ-महोक्ष (सांड), पुण्यार्थ छोडे हुए पशु, सूतिका, अचानक आये पशु ये दंड देनेके अयोग्य हैं। और जिनका कोई पालक न हो दैव और राजासे उपहत (अपराधी) वेभी छोड देने योग्य हैं ॥ १६३ ॥

यथार्पितान्पशून्गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा । प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः१६४॥

पद-यथाऽ-अर्पितान् २ पशून् २ गोपः १ सायम्ऽ-प्रत्यर्पयेत् क्रि-तथाऽ-प्रमादमृतनष्टान् २ चऽ-प्रदाप्यः १ कृतवेतनः १ ॥

योजना-गोपः यथार्पितान् पशून तथा सायं प्रत्यर्पयेत् प्रमादमृतनष्टान् पशून् (ज्ञात्वा) कृतवेतनः गोपः प्रदाप्यः (दंडनीयः) ॥

तात्पर्यार्थ-गौओंके स्वामीने प्रातःकाल जिस प्रकार गिनकर पशु अर्पण किये हों वैसेही सायंकालके समय गिनकर गोप गौओंके स्वामीको प्रत्यर्पण करे (सौंपदे)। यदि अपने प्रमाद (अपराध) से पशु मरगये हों वा नष्ट हो गये हौंय तो वह गोप दडके योग्य है जिसका वेतन (नौकरी) नियत हो। वेतनकी कल्पना नारदने कही है कि सौ गौओंकी रक्षा करनेवाले गोपको एक वत्सतरी (बछिया) और दो सौ गौओंके रक्षकको एक धेनु, आठवें दिन दुहना वर्षदिनमें भृति (नोकरी) होती है। प्रमादसे नाशभी मनुने (अ० ८ श्लो० २३२) स्पष्ट कियो है कि नष्ट हुआ, और कृमि (कीडे) योंका खाया, कुत्तोंका मारा, विषम (ऊंचेसे गिरना आदि) में मरा, पुरुषार्थसे हीन, इतने प्रकारके पशुको पालही दे। और जो बलसे चोरोंने चुराये हौंय तो पाल दंड देने योग्य नहीं है। सोई मनु (अ० ८ श्लो० १३३) ने कहाहै कि, पराक्रमसे वा कहकर जो चोरोंने चुराया हो उसको पाल देने योग्य नहीं है। यदि देश और समयमें अपने स्वामीको कहदे। दैव और राजासे जो मरे हों उनके कान आदिको गोप दिखादे। क्योंकि मनुकी (अ०८श्लो २३४) स्मृति है कि कान, चाम, केश, बस्ति, स्नायु रोचना पशुओंके इन सबको स्वामीको दे और मरेपर पशुओंके अगोंको दिखादे ॥

भावार्थ-गौओंके स्वामीने प्रातःकालके समय जैसे पशु गोपके अर्पण (अधीन) किये हों उसी प्रकार गोपभी सायकालको गौओंके स्वामीको सौंपदे ॥ १६४ ॥

पालदोषविनाशे तुपालेदंडो विधीयते । अर्द्धत्रयोदशपणःस्वामिनो द्रव्यमेवच १६५

पद-पालदोषविनाशे ७ तुऽ-पाले ७ दडः १ विधीयते क्रि-अर्धत्रयोदशपणः १ स्वामिनः ६ द्रव्यम् २ एवऽ-चऽ-॥

योजना-तु पुनः पालदोषविनाशे सति पाले अर्धत्रयोदशपणः च पुनः स्वामिनः द्रव्यं दंडः विधीयते ॥

ता०भा०-यदि ग्वालियाके दोषसे पशु नष्ट हो जाय तो साढे * तेरह पण दड पालको

* कोई तो अर्द्ध त्रयोदश पणसे आधेसे रहित साढे बारह पण लेते हैं क्योंकि उत्तरपदलोपी कर्मधारय समास है (अर्द्धरहितस्त्रयोदशपणः अर्द्धत्रयोदशपणः) जो विज्ञा-

१ गवां शताद्वत्सतरी धेनुः स्याद्द्विशता द्भृतिः । प्रतिसंवत्सरं गोपे सदोहश्चाष्टमेऽहनि ॥

२ नष्टं जग्धं च कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् । हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥

१ विक्रम्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति । यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥

२ कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनां दद्यात् मृतेष्वंगानि दर्शयेत् ॥

और मध्यस्थ (सामंत) के निश्चय किये नष्ट हुए पशुओंका मूल्य स्वामीको ग्वालिया दे ॥ १६५॥

ग्रामेच्छया गोप्रचारो भूमी राजवशेनवा ।
द्विजस्तृणैधःपुष्पाणि सवतः सर्वदाहरेत् ॥

पद–ग्रामेच्छयां ३ गोप्रचारः १ भूमिः १ राजवशेन ३ वाऽ–द्विजः १ तृणैधःपुष्पाणि २ सर्वतःऽ–सर्वदाऽ–आहरेत् क्रि–॥

योजना–ग्रामेच्छया वा राजवशेन भूमिः गोप्रचारः (कर्तव्यः) । द्विजः तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः सर्वदा आहरेत् (गृह्णीयात्) ॥

तात्पर्यार्थ–ग्रामके मनुष्योंकी इच्छासे वा राजाके वश (इच्छा) से भूमि गौओंके प्रचार (चरने) को करनी अर्थात् ग्रामकी अल्प वा अधिक भूमिके अनुसार गौओंके चुगनेके लिये कुछ भूमका भाग विना जुता छोड देना । और ब्राह्मण तृण, काष्ठ, पुष्प इनको सब कालमें सब स्थानोंसे ऐसे ग्रहण करे जैसे अपनेको ग्रहण करते हैं । फल तो वेही ग्रहण करै जो अपरिवृत (विना बाड) हो, क्योंकि गौतमका वचन है कि गौ और अग्निके लिये तृण और काष्ठ, लता और वनस्पतियोंके पुष्प इनको तो अपनेके समान ग्रहण करै, और फल तो उनके ही ले जो बाड किये वृक्ष न हों । यहभी परिगृहीत (मिला) के विषयमें है । क्योंकि जो परिगृहीत नही उसमें तो ब्राह्मणसे भिन्न-काभी स्वत्व परिग्रहसेही सिद्ध है जैसे गौतम-नेही कहा है कि, अंश, क्रय, विभाग, परिग्रह, अधिगम इनसे स्वामी होता है और जो यह कहा है कि तृण वा काष्ठ, पुष्प वा फल इनको विना पूछे जो ग्रहण करै वह हाथ छेदनके योग्य होता है, वह वचन द्विजोंसे भिन्नोंके विषयमें है वा विना आपत्तिके विषयमें है, अथवा गौ आदिसे भिन्नके विषयमें है ॥

भावार्थ–ग्रामकी वा राजाकी इच्छासे गौओंके चुगनेके लिये विना जुती भूमि छोड देनी । ब्राह्मण तृण, काष्ठ, पुष्प इनको सब स्थानोंसे सब कालमें अपनेकी समान ग्रहण करै ॥ १६६ ॥

धनुःशतं परीणाहो ग्रामे क्षेत्रांतरं भवेत् ।
द्वे शते खर्वटस्यस्यान्नगरस्य चतुःशतम् १६७

पद–धनुःशतम् १ परीणाहः १ ग्रामे ७ क्षेत्रांतरम् १ भवेत् क्रिं–द्वे १ शते १ खर्वटस्य ६ स्यात् क्रि–नगरस्य ६ चतुःशतम् १ ॥

योजना–ग्रामे क्षेत्रान्तर धनुःशतम् परीणाहः भवेत्, खर्वटस्य द्वे शते, नगरस्य चतुःशतं परीणाहः स्यात् ॥

ता० भावार्थ–ग्राम और क्षेत्रका अंतर (बीच) सौ धनुष परीणाह (प्रमाण) का उत्तम चारों दिशाओंमे करै और खर्वट (जिसमें बहुत काटे हों) ग्रामका अतर दो सौ धनुष प्रमाणका होता है, जिसमें बहुत जन्न वसते हों ऐसे नगर (सहर) और क्षेत्रका अंतर चार सौ धनुष प्रमाणका करना ॥ १६७ ॥

नेश्वरने अर्द्ध अधिक त्रयोदशपणका दड कहा है वह त्यागने योग्य है । सार्द्धद्विमात्र आदिमें अर्द्धत्रिमात्रम् आदिका प्रयोग महाभाष्यकारने किया है ॥

१ गोग्यर्थं तृणमेधांसि वीरुद्वनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् ।

१ स्वामी रिक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ।

२ तृणं वा यदि वा काष्ठ पुष्प वा यदि वा फलम् । अनापृच्छन्हि गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति ॥

इति स्वामिपालविवादप्रकरणम् ॥ १० ॥

अथास्वामिविक्रयप्रकरणम् ११.

स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते। हीनाद्रहोहीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः १६८

पद्-स्वम् २ लभते क्रि-अन्याविक्रीतम् २ क्रेतुः ६ दोषः १ अप्रकाशिते ७ हीनात् ५ रहः ऽ-हीनमूल्ये ७ वेलाहीने ७ चऽ-तस्करः १ ॥.

योजना-अन्यविक्रीतं स्व स्वामी लभेत, अप्रकाशिते क्रेतुः दोषः भवति, हीनात् (द्रव्यागम रहितात्) रहः (एकांते) हीनमूल्ये च पुनः वेलाहीने (कुसमये) क्रेता तस्करः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अब अस्वामिविक्रय नाम प्रकरणका आरंभ कहते हैं। उसका लक्षण नारदने यह कहा है कि सौंपा हुआ, पराया द्रव्य, नष्ट हुआ मिला, वा चोरी किया जो सबके प्रत्यक्ष बेचा जाय उसको अस्वामिविक्रय कहते हैं, उसमें जो दंड होता है उसको कहते हैं। अपने द्रव्यको अन्य पुरुषके हाथसे विक्रीत (बेचा) देखै तो उसको ग्रहण कर पकडले क्योंकि विना स्वामीके जो विक्रय किया हो वह स्वत्वका हेतु नहीं होता। यहां विक्रीत (बेचा) का ग्रहण दिये और सौंपे हुएकेभी उपलक्षणके लिये है, क्योंकि वेभी अस्वामिविक्रीतसे तुल्य हैं। इसीलिये कहा है कि विना स्वामी विक्रय, दान आधि (गिरवी) इनको लौटादे अर्थात् सत्य न समझे, यदि क्रेता (लेनेवाला) अपने क्रय्य (खरीदना) को प्रकाश न करै तो क्रेताका अपराध होता है, तैसेही द्रव्यके आगमसे हीनके क्रयसे और एकांतमें और अल्प मोलसे और वेलासे हीन (कुसमय) कालमें अर्थात् रात्रि आदिमें क्रय करै (खरीदे) तो क्रेता (लेनेवाला) तस्कर (चोर) होता है, चोरके दंड योग्य होता है। सोई कहा है कि विना स्वामीके विक्रय किये द्रव्यको जो प्राप्त हो (ले) उस द्रव्यको स्वामी लेसकता है। सबको प्रकाश करके लेनेसे क्रेताकी शुद्धि होती है और एकांतमें खरीदनेसे चोरी होती है ॥

भावार्थ-अन्यके विक्रय किये अपने द्रव्यको स्वामी ग्रहण करले, क्रेता उसका प्रकाश न करे तो क्रेताका अपराध है, यदि वह द्रव्य सचयके उपायसे हीन हो वा एकांतमें लियाहो अथवा हीन (कम) मूल्यसे लिया हो वा समयसे हीन (रात्रि आदि) में लिया होय तो क्रेता (मोल लेनेवाला) तस्कर (चोर) होता है ॥ १६८ ॥

नष्टापहृतमासाद्य हर्तारं ग्राहयेन्नरम्। देशकालातिपत्तौ च गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ॥

पद्-नष्टापहृतम् २ आसाद्यऽ-हर्तारम् २ ग्राहयेत्। क्रि-नरम् २ देशकालातिपत्तौ ७ चऽ-गृहीत्वाऽ-स्वयम्ऽ-अर्पयेत् क्रि-॥

योजना-नष्टापहृतम् आसाद्य हर्तारं नरं ग्राहयेत्-च पुनः देशकालातिपत्तौ स्वयं गृहीत्वा अर्पयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-स्वामीने किया है अभियोग जिसपर ऐसा क्रेता यह करै कि नष्ट और चुराये हुए अन्यके द्रव्यको मोल लेकर क्रेता विक्रेता (बेचनेवाला) मनुष्यको चोरोंके पकडनेवालोंको पकडवादे, क्योंकि इससे अपनी शुद्धि और राजदंडका अभाव दोनो होंगे। यदि विक्रेता अज्ञात देशमें चला गयाहो वा कालांतरमें मरगया होय तो मूल (जड) के लानेमें असामर्थ्यसे विक्रे

---

१ निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वापहृत्य च। विक्रीयते समक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥

२ अस्वामिविक्रयं दानमाधिं च विनिवर्तयेत्।

१ द्रव्यमस्वामिविक्रीतं प्राप्य स्वामी तदाप्नुयात्। प्रकाशक्रयतः शुद्धिः क्रेतुः स्तेयं रहःक्रयात् ॥

ताके विना दिखायेही उस धनको स्वयंही नाष्टिक (जिसका द्रव्य नष्ट हुआ हो) के अर्पण करदे। इतनेसेही यह शुद्ध होता है। यह पूर्वोक्त संपूर्ण श्रीकराचार्यका अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि विक्रेताके दिखानेसे क्रेताकी शुद्धि होती है इस अग्रिम वचनके संग पुनरुक्ति (दुवारा कहना) दोष आवेगा। इससे इस वचनकी व्याख्या (अर्थ) अन्यथा करते हैं। कि नाष्टिक, प्रत्यय वा किसीके उपदेशसे नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको क्रेताके हाथमें देखकर उस हरन (क्रय) करनेवालेको स्थानपाल (चौकीदार) आदिको ग्रहण करादे (पकडवाय दे)। यदि देश वा कालका अतिपात्ति (अतिक्रम वा बीतना) होता जाने और स्थानपाल आदि समीपमें न होय तो और उनके विज्ञापन (जनाने) से पाहिले उस क्रेताके पलायन (भागने) की शंका होय तो आपही ग्रहण करके स्थानपाल आदिके अर्पण करदे॥

भावार्थ–नष्ट और चुराये अपने द्रव्यको देखकर क्रेता मनुष्यको स्थानपाल आदिको ग्रहण करादे। यदि देश वा कालका अतिक्रम होय तो स्वयही पकडकर अर्पण करदे॥१६९॥

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामीद्रव्यंनृपोदमम्। क्रेतामूल्यमवाप्नोति तस्माद्यस्तस्य विक्रयी॥

पद–विक्रेतुः ६ दर्शनात् ५ शुद्धिः १ स्वामी १ द्रव्यम् २ नृपः १ दमम् २ क्रेता १ मूल्यम् २ अवाप्नोति क्रि–तस्मात् ५ यः १ तस्य ६ विक्रयी १॥

योजना–विक्रेतुः दर्शनात् क्रेतुः शुद्धिः भवति। यः तस्य विक्रयी तस्मात् स्वामी द्रव्यं, नृपः दम, क्रेता मूल्यम् अवाप्नोति॥

तात्पर्यार्थ–चौरके पकडवाय देनेपर यह कहै कि यदि वह पकडा हुआ क्रेता यह कहै कि मैंने यह नहीं चुराया किंतु अन्यके सकाशसे क्रीत किया (खरीदा) है। वह यदि क्रेता विक्रय करनेवालेको दिखा दे तो उसकी शुद्धि होती है अर्थात् फिर वह अभियोग करनेके योग्य नहीं है। किंतु क्रेताके दिखाये उस विक्रेताके सग नाष्टिकका विवाद है। सोई बृहस्पतिने कहा है कि मूलके ला देनेपर कदाचित् भी अभियोग (दावा) न करै किंतु फिर नाष्टिकका विवाद मूलके सग होता है। यदि उस विवादमें विना स्वामीके बेचनेका निश्चय होजाय तो उस नष्ट वा चुराये हुए द्रव्यका जो विक्रेता है उसके सकाशसे स्वामी (नाष्टिक) अपने द्रव्यको और राजा अपराधके अनुसार दंडके धनको, और क्रेता अपने मूल्यको प्राप्त होता है। यदि देशांतर (परदेश) में गया होय तो उसके लानेके लिये योजनोंकी संख्यासे समय देदेना योग्य है। क्योंकि यह स्मृति है कि या तो प्रकाश करके क्रय करै (बेचे) वा मूल (जड) को अर्पण करदे और मार्गकी संख्यासे वहां मूलके लानेका समय देने योग्य है। यदि विना जाना देश होनेसे मूलको न ला सकै तो क्रय (खरीदना) को शोधन करकेही शुद्ध होता है। क्योंकि यह वचन है जिसका मूल न आसकै वहां क्रयकी ही शुद्धि करै अर्थात् यह प्रकट करदे कि इनके सामने मैंने खरीदा है। और जब साक्षी आदिसे वा दिव्य प्रमाणसे अपने क्रयको शुद्ध न करै और मूलकोभी न दिखावे तो वहीं दंडका

१ मूले समाहृते क्रेता नाभियोज्यः कथंचन। मूलेन सह वादस्तु नाष्टिकस्य विधीयते।

२ प्रकाश वा क्रय कुर्यान्मूलं वापि समर्पयेत्। मूलानयनकालश्च देयस्तत्राध्वसख्यया॥

३ असमाहार्यमूलस्तु क्रयमेव विशोधयेत्॥

भागी होताहै क्योंकि यह मनुका वचन है कि जो मूलको न लासके और न क्रयको शुद्ध करै तो अभियोगके अनुसार धनीको धन और राजाको दंड दे ॥

भावार्थ-विक्रेताके दिखानेसे क्रेताकी शुद्धि होती है। और जो उस द्रव्यका विक्रय करनेवाला है उसीसे स्वामी अपने नष्ट द्रव्यको और राजा दंडको और क्रेता मोलको प्राप्त होते हैं ॥ १७० ॥

आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोन्यथा ॥ पंचबंधो दमस्तस्यराज्ञे तेनाविभाविते१७१

पद-आगमेन ३ उपभोगेन ३ नष्टम् १ भाव्यम् १ अतः ऽ-अन्यथाऽ-पंचबधः१ दमः१ तस्य ६ राज्ञे ४ तेन ३ अविभाविते ७॥

योजना-स्वामिना आगमेन उपभोगेन नष्टं भाव्यम् (साध्यं) अतः अन्यथा तेन अविभाविते सति तस्य (धनस्य) पंचबंधः दमः राज्ञे देयः नाष्टिकेणेति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-आगम (रिक्थक्रय आदि) से उपभोगसे अर्थात् मेरा यह द्रव्य है वह इस प्रकार नष्ट हुआ वा चुराया है इनको धनका स्वामी सिद्ध करै। इससे अन्यथा अर्थात् वह धनका स्वामी सिद्ध न करसके तो नष्ट हुए द्रव्यका पांचवां भाग राजाको नाष्टिक दे। यहां यह क्रम समझना कि पहिला स्वामी नष्ट हुए द्रव्यको अपना सिद्ध करे। फिर क्रेता चोरीके दूर करनेके लिये और मोलके लाभार्थ विक्रेताको लावे। यदि न लासकै तो अपने दोषकी निवृत्तिके लिये क्रय (खरीदना) को शुद्ध करके उस द्रव्यको नाष्टिकके अर्पण करदे ॥

भावार्थ-धनका स्वामी आगम वा उपभोगसे नष्टको सिद्ध करै। यदि सिद्ध न कर सकै तो राजाको उस धनका पांचवां भाग दंड दे ॥ १७१ ॥

हृतंप्रनष्टंयो द्रव्यंपरहस्तादवाप्नुयात् । अनिवेद्य नृपे दंड्यः स तु षण्णवतिंपणान्

पद-हृतम् २ प्रनष्टम् २ यः १ द्रव्यम् २ परहस्तात् ५ अवाप्नुयात् क्रि-अनिवेद्यऽ-नृपे ७ दंड्यः १ सः १ तुऽ-षण्णवतिम् २ पणान् २ ॥

योजना-यः हृतं प्रनष्टं द्रव्यं नृपे अनिवेद्य परहस्तात् अवाप्नुयात् सः षण्णवतिं पणान् दंड्यः ॥

ता० भा०-जो मनुष्य चुराये वा नष्ट हुए अपने द्रव्यको इसने मेरा चुराया है यह राजाको निवेदन किये विना अभिमान आदिसे चौर आदिसे ग्रहण करता है वह छानवे (९६) पण दंड देनेके योग्य है क्योंकि यह चोरके छिपानेसे दुष्ट है ॥ १७२ ॥

शौल्किकैः स्थानपालैर्वानष्टापहृतमाहृतम् । अर्वाक्संवत्सरात्स्वामीहरेत परतोनृपः १७३

पद-शौल्किकैः ३ स्थानपालैः ३ वाऽ-नष्टापहृतम् २ आहृतम् २ अर्वाक् ऽ-संवत्सरात् ५ स्वामी १ हरेत क्रि-परतःऽ-नृपः १ ॥

योजना-शौल्किकैः वा स्थानपालैः आहृतं नष्टापहृतं धनं संवत्सरात् अर्वाक् स्वामी हरेत परतः नृपः हरेत ॥

तात्पर्यार्थ-अब राजपुरुषोंके लाये द्रव्यके विषयमें कहते हैं। जब शुल्क (महसूल) के अधिकारी वा स्थानके रखवाले नष्ट हुए वा चुराये द्रव्यको राजाके समीप लावें वे यदि वर्षदिनसे पहिले लाये होंय तो उस द्रव्यको नाष्टिक ही प्राप्त होता है। वर्षसे पीछे मिला होय तो राजा ग्रहण करै और अपने पुरुषोंके लाये द्रव्यको जनके समूहमें उद्घोषण (ढ-

---

१ अनुपस्थापयन्मूलं क्रयं वाप्यविशोधयन् । यथाभियोगं धनिने धनं दाप्यो दमं च सः ॥

भावार्थ–शुल्कवाले वा स्थानके पाल (चौकीदार) इनका लाया जो नष्ट और चुराया द्रव्य वर्ष दिनसे पहिले मिले उसको स्वामी ग्रहण करै और वर्षदिनके पीछे राजा ग्रहण करले ॥ १७३ ॥

पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पंच मानुषे। महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥

पद–पणान् २ एकशफे ७ दद्यात् क्रि–चतुरः २ पंच २ मानुषे ७ महिषोष्ट्रगवाम् ६ द्वौ २ द्वौ २ पादम् २ पादम् २ अजाविके ७ ॥

योजना–एकशफे चतुरः पणान् मानुषे पंच, महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ अजाविके पादं पादं दद्यात् ॥

ता०भा०–अश्व आदि एक शफ (खुर) वाले नष्ट हुए मिलें तो उनकी रक्षाके निमित्त राजाको चार पण दे। मनुष्य जातिका द्रव्य होय तो पांच पण, अजा और भेडके विषय प्रत्येक पणका पाद (चौथाई भाग) दे। महिष (भैंसा) ऊंट गौ होंय तो प्रत्येक दो दो पण रक्षाके निमित्त राजाको दे। यद्यपि यहां अजाविकं यह समासभी है तथापि पादं पाद इस वीप्सा (दो बार पढना) से केवल प्रत्येकमें संबंध जाना जाता है ॥ १७४ ॥

डोरेसे प्रसिद्धि) करके उस द्रव्यकी वर्षदिन-पर्यंत राजा रक्षा करै। सोई गौतमने कहा है कि नष्ट है स्वामी जिसका ऐसे धनको प्राप्त होकर राजाको निवेदन करै और राजा वर्ष दिनतक उसकी रक्षा करै। जो मनुने यह दूसरी विधि कही है कि (अ० ८ श्लोक ३०) नष्ट (अज्ञात) है स्वामी जिसका ऐसे द्रव्यको राजा तीन वर्षतक रक्खे तीन वर्षसे पहिले स्वामी आजाय तो वह ले और परे राजा ग्रहण करै, वह वेदपाठी और सदाचारी ब्राह्मणके धनमें है। और रक्षाके निमित्त छठे भागका ग्रहण करनाभी मनुमें ही कहा है (अ० ८ श्लोक ३३) कि नष्ट हुआ मिला जो द्रव्य है उसमेंसे सत्पुरुषोंके धर्मका ज्ञाता राजा छठा दशवां वा बारहवां भाग ग्रहण करै। इन भागोंको लेना राजाको क्रमसे तीसरे दूसरे पहिले वर्षमें समझना। इसको विस्तारसे पहिले कह आये ॥

१ प्रनष्टस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुर्विख्याप्य संवत्सरं राज्ञा रक्ष्यम्।

२ प्रनष्टस्वामिकं द्रव्यं राजा त्र्यब्दं निधापयेत्। अर्वाक्त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परतो नृपतिर्हरेत् ॥

३ आददीताथ षड्भागं प्रनष्टाधिगतान्नृपः। दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥

इत्यस्वामिविक्रयप्रकरणम् ॥ ११ ॥

अथ दत्ताप्रदानिकप्रकरणम् १२.

**स्वंकुटुंबाविरोधेन देयं दारसुतादृते ।
नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्॥**

पद-स्वम् १ कुटुंबाविरोधेन ३ देयम् १ दारसुतात् ५ ऋतेऽ-नऽ-अन्वये ७ सति ७ सर्वं स्वम् १ यत् १ चऽ-अन्यस्मै ४ प्रतिश्रुतम् १ ॥

योजना-कुटुंबाविरोधेन दारसुतात् ऋते स्वं देयम् । अन्वये सति सर्वस्वं च पुनः यत् अन्यस्मै प्रतिश्रुतम् तत् न देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-अब शास्त्रोक्त १ मार्गद्वयवाले दत्तानपाकर्म और दत्ताप्रदानिक नामके दानरूप व्यवहारके पदको कहते हैं । उसका स्वरूप नारदने कहा है कि जो असम्यक् (कुरीति) से द्रव्यको देकर फिर ग्रहण किया चाहै वह दत्ताप्रदानिक नाम व्यवहारका पद है अर्थात् शास्त्रोक्तसे भिन्न मार्गसे द्रव्यको देकर फिर ग्रहण करनेकी इच्छा जिस विवादके मध्यमें हो वह दिये हुएका है आप्रदान (फिर लौटाना) जिसमें दत्ताप्रदानिक व्यवहारका पद है । और उसका प्रतिपक्षी वह दत्तानपाकर्म व्यवहारका पद अर्थात् हुआ जो शास्त्रोक्त मार्गसे दिया हो और दिये हुएका पुनः आदान (ग्रहण) की इच्छा जिस विवादमें न हो वह दत्तानपाकर्म कहाता है और वह देय (देने योग्य) अदेय (देने अयोग्य) आदि भेदसे चार प्रकारका है । सोई नारदने कहा है कि देय, अदेय, दत्त, अदत्त यह चार प्रकारका दानमार्ग व्यवहारोंमें जानना उनमें देय वह है जो अनिषिद्ध दानक्रियाके योग्य हो । अदेय वह है जो अपना स्व (धन) न हो वा निषिद्ध होनेसे दानके अयोग्य हो । जो सावधानीमें दिया लौटानेके अयोग्य हो वह दत्त कहाता है । अदत्त वह है जो लौटानेके योग्य हो इन सबका सक्षेपस निरूपण करते हैं ।

अपना स्व (धन) कुटुंबके अविरोधसे अर्थात् कुटुंबके पालनसे शेष जितना हो वह देय (देने योग्य) है १ सोई मनु (अ०८ श्लो० ३५) में कुटुंबका पालन आवश्यक कहा है कि वृद्ध माता पिता, साध्वी भार्या, बालक पुत्र इनका सौभी अकार्य करके पालन करै अर्थात् निंदित कर्मसे भी आजीविका करके इनका पालन करै यह मनुने कहा है । कुटुम्बके विरोधको न करके इससे एक प्रकारका अदेय दिखाया और स्वं दद्यात् (अपने द्रव्यको दे) इससे जो अपने स्व नहीं ऐसे अन्वाहित याचित आधि साधारण निक्षेप इन पांचोंको व्यतिरेकसे अदेय दिखाया और जो नारदने आठ प्रकारका अदेय कहा है कि अन्वाहित, याचित, आधि, साधारण, निक्षेप, पुत्र, स्त्री, सर्वस्व कठिनभी आपत्तिमें वर्तमान देहधारीको ये सात और आठवां वह जो दूसरेको देना कर रक्खा हो । आचार्योंने ये आठ अदेय कहे हैं यह नारदका वचन सब अदेयोंकी गिनतीके अभिप्रायसे है, कुछ स्वत्वाभावके अभिप्रायसे नहीं । क्योंकि पुत्र स्त्री सर्वस्व और प्रतिश्रुत इनमें स्वत्व है अन्वा-

---

१ दत्त्वा द्रव्यमसम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति । दत्ताप्रदानिकं नाम व्यवहारपदं हि तत् ॥

२ अथ देयमदेयं च दत्तं वाऽदत्तमेव च । व्यवहारे विज्ञेयो दानमार्गश्चतुर्विधः ॥

१ वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥

२ अन्वाहितं याचितकमाधिः साधारण च यत् । निक्षेपः पुत्रदाराश्च सर्वस्वं चान्वये सति ॥ आपत्स्वपि च कष्टासु वर्तमानेन देहिना । अदेयान्याहुराचार्या यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥

हित आदिका स्वरूप पहिलेही विस्तारसे कह आये। स्वको दे इस पूर्वोक्त वचनसे स्त्री और पुत्रभी स्व हैं उनकाभी दान पाया उसका निषेध कहते हैं कि स्त्री और पुत्रके विना स्वको दे, स्त्री पुत्रको न दे। तैसेही पुत्र पौत्र वंशमें होय तो सर्वस्व (सब धन) को न दे। क्योंकि यह स्मृति है कि पुत्रोंकी उत्पत्ति और विवाह करके उनकी जीविकाका प्रबंध करै तैसेही अन्यको देनेकी प्रतिज्ञा किये हुए सुवर्ण आदि द्रव्यको अन्यको न दे ॥

भावार्थ-अपने कुटुंबकी पालनासे बचा धन स्त्री और पुत्रको छोडकर देने योग्य है अर्थात् स्त्री पुत्रको किसीको न दे और धन देने योग्य है। और अपना वंश होय तो सर्वस्वका दान न करै और अन्यको देनेकी प्रतिज्ञा किये धनको अन्यको न दे ॥ १७५ ॥

प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात्स्थावरस्य विशेषतः। देयं प्रतिश्रुतं चैव दत्त्वा नापहरेत्पुनः॥१७६॥

पद-प्रतिग्रहः १ प्रकाशः १ स्यात् क्रि- स्थावरस्य ६-विशेषतः- देयम् २ प्रतिश्रुतम् २ च-एव-दत्त्वा-न-अपहरेत् क्रि- पुनः-॥

योजना-सर्वस्य प्रतिग्रहः विशेषतः स्थावरस्य प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात् देयं च पुनः प्रतिश्रुतं दत्त्वा पुत्रः न अपहरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-स्त्री पुत्रसे भिन्न देयको कहकर प्रसंगसे अब यह कहते हैं कि अदेय धनका ग्रहण प्रतिग्रह करनेवाला प्रकाश (सबके सामने) करै। सब धनका प्रतिग्रह विवादकी निवृत्तिके लिये प्रकाश होकर और थावर धनका तो विशेषकर प्रकाशसेही प्रतिग्रह ले। क्योंकि अपनेपै आये स्थावर धनको सुवर्ण आदिके समान दिखाय नहीं सकता, और देने योग्य और प्रतिश्रुत अर्थात् धर्मके अर्थ जो द्रव्य जिसको देना कहाहो वह उसको देय (देने योग्य) ही है। यदि वह प्रतिग्रह लेनेवाला अपने धर्ममें स्थित रहै, यदि धर्मसे डिग जाय तो फिर न दे। क्योंकि गौतमकी यह स्मृति है कि प्रतिज्ञा करकेभी अधर्मसे युक्तको न दे, और न्यायके मार्गसे जो दिया हो उस सात प्रकारकेभी दिये धनका अपहरण (फिर लेना) न करै, किंतु वैसाही मानै। और जो अन्यायसे दिया हो उस सोलह प्रकारकेभी अदत्त धनको लौटा ले यह अर्थात् कहा गया। नारदने सात प्रकारके दत्त और सोलह प्रकारके अदत्तको कहकर दत्त और अदत्तका स्वरूप नारदमुनिने ही विवेचनासे कहा है कि, क्रीतका जो मोल दियाहो, जिसने अपना काम किया उसको भृति (नोकरी) देनी, तुष्टि (प्रसन्नता) से बंदीजन चारण आदिको जो दियाहो, स्नेहसे दुहिता पुत्र आदिको जो दियाहो, प्रत्युपकारसे अर्थात् अपने उपकारीको जो दियाहो, स्त्रीशुल्क अर्थात् विवाहके लिये कन्याकी ज्ञातिके मनुष्योंको जो दियाहो, जो अनुग्रह (अदृष्ट) के लिये दियाहो, सो यह सात प्रकारभी दत्त (दिया) धन लौटानेके योग्य

१ पुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्य वृत्तिं चैषां प्रकल्पयेत्।

१ प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात्।

२ दत्तं सप्तविधं प्रोक्तमदत्तं षोडशात्मकम्।

३ पण्यमूल्यं भृतिस्तुष्ट्या स्नेहात्प्रत्युपकारतः॥ स्त्रीशुल्कानुग्रहार्थं च दत्तं दानविदो विदुः॥ अदत्तं तु भयक्रोधशोकवेगरुगन्वितैः। तथोत्कोचपरीहासव्यत्यासच्छलयोगतः॥ बालमूढस्वतंत्रार्त्तमत्तोन्मत्तापवर्जितम्। कर्त्ता ममेदं कर्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत्॥ अपात्रे पात्रमित्युक्ते कार्ये वा धर्मसंयुते। यद्दत्तं स्यादविज्ञानाददत्तमिति तत् स्मृतम्॥

नहीं है, भयसे जो बदिग्राह आदिको दियाहो, क्रोधसे जो पुत्र आदिके संग वैरकी निवृत्तिके लिये अन्यको दियाहो, पुत्रवियोग आदि शोकके निमित्त जो दियाहो, उत्कोचसे कार्यमें प्रतिबंध (रोक) की निवृत्तिके लिये जो राज्यके अधिकारियोंको दियाहो, परिहास (हंसी) से जो दियाहो, एक अपने द्रव्यको अन्यको दे और अन्यभी अपना द्रव्य उसको दे इस प्रकार दानके व्यत्यास (बदला) से जो दिया हो, छलके योगसे जैसे सौ मुद्रिकाके दानकी प्रतिज्ञा करके और उन सौको सहस्र कहकर दे, बालक (सोलह वर्षसे कम) ने जो दियाहो, लोकवादके न जाननेवाले बालकने जो दिया हो, अस्वतन्त्र (पुत्र दास आदि) का दिया, आर्त (रोगी) का दिया, जो मत्तने दिया अर्थात् मदिरा आदि पदार्थ वा वातके उन्मादसे उन्मत्तने जो दियाहो, और प्रतिलाभ (यह मेरा काम करेगा) की इच्छासे जो दियाहो, चतुर्वेदी न हो और अपनेको चतुर्वेदी कहै उसको जो दियाहो, जो यज्ञ करूंगा यह कहकर धनको मांगकर द्यूत आदिमें लगावे उसको जो दियाहो, यह सोलह प्रकारकाभी दत्त अदत्त कहाता है क्योंकि यह सब प्रत्याहरण (लौटाना) के योग्य है। रोगीके दियेको जो अदत्त कहना है वह धर्मकार्यसे भिन्नके विषयमें है। क्योंकि यह कात्यायनकी स्मृति है कि स्वस्थ वा रोगीने धर्मके लिये जिसकी प्रतिज्ञा करली हो उसको विना दिये मरजाय तो उसके पुत्रसे राजा दिवावे इसमें संशय नहीं। तैसेही यह संक्षिप्त अर्थवाला वचन सब विवादोंमें साधारण है (मनु अ ८ श्लो. १६५) कि योग आधमन (गिरवी) विक्रीत (वेचा) योग दान प्रतिग्रह इनमें जिसकी उपाधि (सरत) देखै उस सबको निवृत्त करदे अर्थात् जिस उपाधिसे विक्रय दान प्रतिग्रह कियेहों उस उपाधिके वीतनेपर उन क्रय आदिको निवृत्त करदे (लौटादे)। जो मनुष्य सोलह प्रकारकेभी अदत्त धनको ग्रहण करता है और जो देता है उनको दंड नारदने कहा है कि जो लोभसे अदत्तको ग्रहण करता है और जो अदेयको देता है वह अदेयका दाता और प्रतिग्रह लेनेवाला दंड देने योग्य हैं ॥

भावार्थ-प्रतिग्रहको और विशेषकर स्थावरके प्रतिग्रहको प्रकाश (सबके सामने) रीतिसे ले, जो जिसको देना कियाहो वह उसको देना, और देकर फिर न हरै (न ले) ॥

१ स्वस्थेनार्तेन वा दत्तं श्रावितं धर्मकारणात्। अदत्त्वा तु मृते दाप्यस्तत्सुतो नात्र संशयः ॥

२ योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम्। यस्य चाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥

३ गृह्णात्यदत्तं यो लोभाद्यश्चादेयं प्रयच्छति। अदेयदायको दंड्यस्तथा दत्तप्रतीच्छकः ॥

इति दत्ताप्रदानिकं नाम प्रकरणम् ॥ १२ ॥

अथ क्रीतानुशयप्रकरणम् १३.

दशैकपंचसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम्। बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसांपरीक्षणम्॥

पद्–दशैकपंचसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम् १ बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुसाम् ६ परीक्षणम् १॥

योजना–बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां दशैकपचसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकं परीक्षणं ज्ञेयम्॥

तात्पर्यार्थ–इसके अनंतर क्रीतानुशयको कहते हैं। उसका स्वरूप नारदने कहा है कि क्रेता (लेनेवाला) मोलसे पण्य (बिकती वस्तु) को मोल लेकर स्वीकार न करे (न ले) वह क्रीतानुशय नाम विवादका पद कहाता है। उसमेंभी यह बात नारदनेही कही है जिस दिन जो पण्य मोल लियाहो वह उसी दिन ज्योंका त्यों फेरने योग्य है कि यदि लेनेवाला मोलसे पण्यको खरीदकर उसको वह बुरा क्रीत करा मानै तो उसी दिन विक्रय करनेवालेको ज्योंका त्यों देदे। द्वितीय आदि दिनके विषै लौटानेमें विशेष नारदनेही कहा है। यदि क्रेता दूसरे दिन देय तो मूलका तीसवां भाग विक्रेताको दे, और तीसरे दिन उससे दूना दे, उससे परे वस्तु क्रेताकी होती है अर्थात् नही लौटाई जाती अर्थात् तीसरे दिनसे पीछे अनुशय न करना। यहभी बीजसे भिन्न उपभोगकी नाश होने योग्य वस्तुके विषय समझना। बीज आदिके लेनेमें दूसरीही लौटानेकी विधि कहतेहैं व्रीहि आदि बीज, अय (लोहा), वाह्य (बैल आदि), रत्न (मोती मूंगा आदि), स्त्री (दासी), दोह्य (महिषी आदि), पुरुष इन बीज आदिका क्रमसे दश दिन, एक दिन, पांच दिन, सात दिन, मास, तीन दिन, अर्द्धमास (पक्ष) क्रमसे परीक्षाका काल जानना। यदि बीज आदिकी परीक्षा करनेसे दुष्टताका सदेह होय तो दश दिन आदिके विषयही क्रयकी निवृत्ति हो सक्ती है उससे परे नहीं, यही इस उपदेशताका प्रयोजन है। जो तो मनु (अ० ९ श्लो० २२२) का यह वचन है कि मोल लेकर वा देकर जिसको अनुशय (सदेह) होय वह दश दिनके भीतर उस द्रव्यको देदे और लेले। यह मनुका वचन पूर्वोक्त लोह आदिसे भिन्न भोगने योग्य और नाशमान घर खेत यान शय्या आसन आदिके विषयमें है। और यह पूर्वोक्त सब उसी वस्तुके विषयमें है जो परीक्षा करके न लीहो। जो वस्तु परीक्षा करके फिर न लौटाऊंगा यह प्रतिज्ञा करके लीहो वह विक्रेताको फिर न लौटानी। सोई कहा है कि पहिले क्रेता बिकती हुई वस्तुकी गुणदोषसे परीक्षा स्वयं करै, यदि परीक्षा करके मोल ली होय तो फिर विक्रेताकी नहीं होती॥

भावार्थ–बीजकी परीक्षाके दश, लोहेका एक, बैल आदिका पांच, और रत्नके सात दिन, दासीका एक मास, भैंसके तीन दिन, दासका एक पक्ष परीक्षा काल क्रमसे जानना॥ १७७॥

अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शते। अष्टौत्रपुणि सीसे च ताम्रेपंचदशायसि १७८

---

१ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं क्रेता न बहुमन्यते क्रीतानुशय इत्येतद्विवादपदमुच्यते॥

२ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी। विक्रेतुः प्रतिदेयं तत्तस्मिन्नेवाह्यविक्षतम्॥

३ द्वितीयेऽह्नि ददत्क्रेता मूल्यात्त्रिंशांशमावहेत्। द्विगुण तु तृतीयेह्नि परतः क्रेतुरेव तत्॥

१ क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् सोन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च॥

२ क्रेता पण्य परीक्षेत प्राक्स्वयं गुणदोषतः। परीक्ष्याभिमत क्रीत विक्रेतुर्न भवेत्पुनः।

पद्-अग्नौ ७ सुवर्णम् १ अक्षीणम् १ रजते ७ द्विपलम् १ शते ७ अष्टौ १ त्रपुणि ७ सीसे ७ चऽ-ताम्रे ७ पंच १ दश १ अयासि ७ ॥

योजना-अग्नौ सुवर्णम् अक्षीणं भवति रजते शते द्विपलं त्रपुणि च पुनः सीसे अष्टौ ताम्रे पंच अयासि दश पलानि क्षीयते ॥

तात्पर्यार्थ-दोह्य आदिकी परीक्षाके प्रसंगसे सुवर्ण आदिकी परीक्षा कहतेहैं। अग्निमें तपाया हुआ सुवर्ण क्षीण (कम) नहीं होता इससे कटक आदि भूषणोंके बनवानेके लिये जितना तोलकर सुनारको दिया होय उतनाही तौलकर वे लौटाकर दें, अन्यथा करैं तो उनसे राजा क्षीण हुए सुवर्णको दिवावे और दंड दे । सौ पल चांदीके तपानेमें दो पल और त्रपु और सीसेके सौ पल तपानेमें आठ पल, सौ पल तामेके तपानेमें पांच पल सौपल लोहेके तपानेमें दश पल क्षीण होतेहैं। कांसी त्रपु और तामेसे बनती है इससे उनके अनुसारही कांसीका क्षय समझना । इससे अधिक क्षय करनेवाले शिल्पी (कारी-गर) दण्ड देने योग्य हैं ॥

भावार्थ-अग्निमें तपाया सुवर्ण क्षीण नहीं होता, सौ पल चांदीमें दो पल, सौ पल त्रपु और सीसेमें आठ पल, सौ पल तामेमें पांच पल, सौ पल लोहेमें दश पल क्षीण हो जाते हैं१७८॥

शते दशपला वृद्धिरौर्णे कार्पाससौत्रिके।
मध्ये पंचपला वृद्धिः सूक्ष्मे तु त्रिपलामता॥

पद्-शते ७ दशपला १ वृद्धिः १ और्णे ७ कार्पाससौत्रिके ७ मध्ये ७ पंचपला १ वृद्धिः १ सूक्ष्मे ७ तुऽ-त्रिपला १ मता १ ॥

योजना-और्णे, कार्पाससूत्रनिर्मिते शते दशपला वृद्धिः भवति। मध्ये पंचपला तु पुनः सूक्ष्मे त्रिपला वृद्धिर्मता मन्वादिभिरिति शेषः॥

ता० भा०-स्थूल (मोटे) ऊनके सूतसे जो कंबल आदि बुना जाय उस सौ १०० पलकेमें दशपल वृद्धि जाननी। इसी प्रकार कपासके सूतसे बुने कपडे आदिमें समझना। जो कपडा मध्यम है अर्थात् न अति सूक्ष्म सूतसे न अति मोटे सूतसे बुनाहै उस सौ पलकेमें पांच पल वृद्धि होती है । सूक्ष्म (मिहीन) सूतसे जो बुना हो उस सौ पलकेमें तीन पलकी वृद्धि जाननी । यह भी अप्रक्षालित (विना धुला) वस्त्रके विषयमें समझना ॥ १७९ ॥

कार्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः॥
न क्षयो न च वृद्धिश्च कौशेयवल्कलेषु च१८०

पद्-कार्मिके ७ रोमबद्धे ७ चऽ-त्रिंशद्भागः १ क्षयः १ मतः १ नऽ-क्षयः १ नऽ-चऽ-वृद्धिः१चऽ-कौशेये ७ वल्कलेषु ७ चऽ-॥

योजना-कार्मिके च पुनः रोमबद्धे त्रिंशद्भागः क्षयः मतः। कौशेये च पुनः वल्कलेषु न क्षयः च पुनः न वृद्धिः भवति ॥

ता० भा०-कार्मिक (कर्मसे चित्र निकास-कर बनाया) अर्थात् जिस बनाये हुए वस्त्रमें अनेक रंगके चित्र बनाये जॉय उसे कार्मिक कहतेहैं । जिसके प्रावारों (दिसावड वा छोर) में रोम बांधे जॉय उसे रोमबद्ध कहतेहैं । इनमें तीसवां भाग क्षय (नाश) मानाहै । कौशेय (रेशमका) और वल्कलसे पैदा हुए (बुने) वस्त्रोंमें वृद्धि और हानि नहीं होती है । किंतु जितना बुननेके लिये दिया जाय उतनाही कुविंद (जुलाहा) आदिसे लेना न कम न अधिक ॥ १८० ॥

देशं कालं च भोगं च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम्।
द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यत्तद्दाप्यमसंशयम् ॥

पद–देशम् २ कालम् २ चऽ–भोगम् २ चऽ–ज्ञात्वाऽ–नष्टे ७ बलाबलम् २ द्रव्याणाम् ६ कुशलाः १ ब्रूयुः क्रि–यत् २ तत् १ दाप्यम् १ असंशयम्–२ ॥

योजना–नष्टे सति देशं च पुनः भोगं च पुनः द्रव्याणां बलाबलं ज्ञात्वा कुशलाः यत् ब्रूयुः तत् शिल्पिना असंशयं दाप्यम् ॥

ता० भा०–शण और रेशम आदिका द्रव्य नष्ट हो जाय तो द्रव्योंके वृद्धि और क्षयके ज्ञाता मनुष्य देश काल उपयोग और नष्ट हुए द्रव्यके बलाबल (सार असार) की परीक्षा करके जितनी हानिका निर्णय करदें उतनाही दंड शिल्पियोंसे राजा दिलावै ॥ १८१ ॥

इति क्रीतानुशयप्रकरणम् ॥ १३ ॥

अथाभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणम् १४.

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापिमुच्यते ।
स्वामिप्राणप्रदोभक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि ॥

पद-बलात् ५ दासीकृतः १ चौरैः ३ विक्रीतः १ चऽ-अपिऽ-मुच्यते क्रि-स्वामिप्राणप्रदः १ भक्तत्यागात् ५ तन्निष्क्रयात् ५ अपिऽ- ॥

योजना-बलात् दासीकृतः च पुनः चौरैः विक्रीतः मुच्यते स्वामिप्राणप्रदः भक्तत्यागात् तत् निष्क्रयादपि मुच्यते॥

तात्पर्यार्थ-अब अभ्युपेत्य अशुश्रूषा (स्वीकार करके सेवा न करना) नामका विवाद पद कहनेका प्रारभ करते हैं । उसका स्वरूप नारदने कहाहै । आज्ञा करनेको शुश्रूषा कहते हैं। उसको स्वीकार करके पीछेसे जो संपादन नहीं करता वह अभ्युपेत्य अशुश्रूषा नामक विवाद पद कहाता है। शुश्रूषा करनेवाला पांच प्रकारका होताहै शिष्य, अन्तेवासी, भृतक, अधिकर्मकृत्, दास उनमें पहिले चार कर्मकर कहाते हैं, और वे शुभकर्मके करनेवाले होते हैं । और गृहजात आदि दास १५ पंद्रह प्रकारके होते हैं और वे गृहका द्वार अशुद्धस्थान रथ्या (गली) अवस्कर (मलमूत्र) इनके शोधन आदि अशुभ कर्म करनेवाले होते हैं । सो यह सब नारदने स्पष्ट कहाहै, कि शिष्य, अतेवासी, भृतक, चौथा अधिकर्मकृत् ये कर्मकर जानने और गृहदास जात आदि दास कहाते हैं । बुद्धिमानोंने इन सबको सामान्य रीतिसे अस्वतन्त्रता कही है। और जातिकर्म करना कहा है और विशेषकर इनकी वृत्ति कर्मसेही कही है। शुभ और अशुभ भेदसे दो प्रकारका कर्म है। दासका कर्म अशुभ है और कर्मकरोंका शुभ कहा है। गृहका द्वार, अशुद्धस्थान, रथ्या, अवस्कर इनका शोधन, गुप्त अगका स्पर्श, उच्छिष्ट, विष्ठा, मूत्र इनका ग्रहण और फेंकना और स्वामीकी इच्छानुसार अगोंकी मन लगाकर सेवा करनी, यह सब अशुभ कर्म जानना । उनमें वेदविद्या पढनेवालोंको शिष्य और शिल्प विद्या पढनेवालेको अन्तेवासी कहते हैं। मोल लेकर जो कर्म करै उसे भृतक और कर्म करनेवालोंका जो अधिष्ठाता (जमादार) उसे अधिकर्मकृत् कहते हैं। उच्छिष्ट फेंकनेका जो गड्ढा उसे अशुचिस्थान और गृहके मार्जन आदिकी धूलि जहां फेंकी जाय उसे अवस्कर कहते हैं। त्यागको उज्जल कहते हैं। भृतक तीन प्रकारका होता है। सोई कहा है कि आयुधको जो धारै उसे उत्तम और खेतीका कर्ता मध्यम और भार ले जानेवाला अधम ऐसे तीन प्रकारका भृतक होता है। और दास १५ पंद्रह प्रकारका होता है । गृह, जात, क्रीत, लब्ध, दायागत, अनाकालभृत, आहित, ऋणमोक्षित, युद्ध प्राप्त, पणमें जीता, मैं तेरा हूं यह कहकर

---

१ अभ्युपेत्य तु शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते । अशुश्रूषाभ्युपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ।

२ शुश्रूषकः पचविधः शास्त्रे दृष्टो मनीषिभिः । चतुर्विधः कर्मकरस्तेषां दासास्त्रिपचकाः ॥ शिष्यान्तेवासिभृतकाश्चतुर्थस्त्वधिकर्मकृत् । एते कर्मकरा ज्ञेया दासास्तु गृहजातयः ॥ सामान्यमस्वतन्त्रत्वमेषामाहुर्मनीषिणः । जातिकर्मकरस्तूक्तो विशेषो वृत्तिरेव च ॥ कर्मापि द्विविधं ज्ञेयमशुभं शुभमेव च । अशुभ दासकर्मोक्तं शुभं कर्मकृतां स्मृतम् ॥ गृहद्वाराशुचिस्थानरथ्यावस्करशोधनम् । गुह्यांगस्पर्शनोच्छिष्टविण्मूत्रग्रहणोज्झनम् ॥ इच्छतः स्वामिनश्चांगैरुपस्थानमथांततः । अशुभं कर्म विज्ञेयं शुभमन्यदतः परम् ॥

१ उत्तमस्त्वायुधीयोऽत्र मध्यमस्तु कृषीवलः । अधमो भारवाही स्यादित्येवं त्रिविधो भृतः ।

२ गृहजातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागतः । अनाकालभृतस्तद्वदाहितः स्वामिना च यः ॥ मोक्षितो महतश्चर्णाद्युद्धप्राप्तः पणे जितः । तवाहमित्युपगतः प्रव्रज्यावसितः कृत॥ भक्तदासश्च विज्ञेयस्तथैव वडवाहृतः। विक्रेता चात्मनः शास्त्रे दासाः पचदश स्मृताः॥

आया, प्रव्रज्यावसित, कृत, भक्तदास, वडवाहृत, आत्मविक्रेता, इनमें गृहकी दासीमें जो पैदा होय उसे गृहजात, मोल लियेको क्रीत, प्रतिग्रहसे मिलेको लब्ध, दायसे मिले अर्थात् पिता आदिके दासको दायागत कहतेहैं, दुर्भिक्षमें दास वनानेके लिये मरनेसे जिसकी रक्षा की हो वह अकालभृत, स्वामीने धन देकर जिसे आधि कर लिया हो उसे आहित, ऋण देकर जो दासभावको प्राप्त किया हो वह ऋणदास, संग्राममें जो जीतकर ग्रहण हो वह युद्धप्राप्त, यदि इस विवादमें जो मैं पराजित होऊंगा तो तेरा दास वन जाऊंगा इस प्रतिज्ञा करके जो जूआमें जीता हो वह पणेजित, और मैं तेरा दास रहूंगा यह कहकर जो आया हो वह उपगत कहा है, संन्याससे जो पतित हो जाय उसे प्रव्रज्यावसित, इतने काल पर्यंत मैं दास रहूंगा यह स्वीकार करके जो रहा हो वह कृत, सव काल भोजनके लिये जो दास हुआ हो वह भक्तदास, वडवा गृहदासीको कहते हैं, लोभसे उसको विवाहकर जो दास बनाहो वह वडवाहृत, जो अपनी आत्माको बेंचदे वह आत्मविक्रेता होता है, इस प्रकार पंद्रह प्रकारके दास होते हैं। जो मनुने (अ० ८ श्लो० १३०) सात प्रकारके कहे हैं कि, ध्वजाहृत (युद्धमें जीता), भक्तदास, गृहजात, क्रीत, दत्रिम, पैत्रिक, दण्डदास ये सात दासयोनि कहाते हैं। वह वचन सातोंको दास कहनेके लिये है, कुछ गिनतीके लिये नहीं, उन शिष्य अन्तेवासी भृतक अधिकर्मकर दासोंके मध्यमें शिष्यकी वृत्ति पहिलेही यह कही है कि गुरुके बुलानेसे पढे और जो मिलै वह गुरुके निवेदन करै, और अधिकर्म भृत्योंकी वृत्ति वेतनादान प्रकरणमें कहैंगे कि जो जितना काम करै उतनाही उसको वेतन दे। बलके जोरसे जो दास किया हो और चौरोंने चुराकर जो बेचाहो और अपिशब्दसे आधि (गिरवी) किया और दत्त लेना इतने दास दासपनेसे छूट सकते हैं। यदि स्वामी न छोडे तो राजा छुडादे। सोई नारदने कहा है कि चोरोंने चुरा कर बेचा और बलसे दास जो बनायाहो, उनको राजा छुडादे, क्योंकि उनमें दासभाव नही होता। चौर और व्याघ्रोंने रोके स्वामीके प्राणोंकी जो रक्षा करै वहभी छुडाने योग्य हैं, यह दासनिवृत्तिका कारण सब दासोंके लिये समान है। क्योंकि नारदकी यह स्मृति है कि जो कोई इन दासोंमें स्वामीको प्राणसंशयसे छुटावे वह दासभावसे छूटता है और पुत्रके भागको प्राप्त होता है। भक्तदास आदिकोंका प्रातिस्विक (पृथक् २) भी मोक्षका कारण कहते हैं कि अकालमें पाला और भक्तदास ये दोनों भक्तके त्याग (देना) से अर्थात् दासभावसे लेकर जितना स्वामीका द्रव्य खायाहो उतना देकर छूटते हैं, और आहित और ऋणदास ये उसके निष्क्रय (मोल) देनेसे अर्थात् जितना धन लेकर स्वामीने आधि कियाहो और उत्तमर्णको जितना द्रव्य लेकर ऋणसे छुटायाहो वृद्धिसहित उतने द्रव्यके देनेसे छूटते हैं। नारदने विशेषभी कहा है कि अका-

१ ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ। पैत्रिको दंडदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥

२ आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।

१ यो यावत्कुरुते कर्म तावत्तस्य तु वेतनम्।

२ चौरापहृतविक्रीता ये च दासीकृता बलात्। राज्ञा मोचयितव्यास्ते दास्यं तेषु हि नेष्यते ॥

३ यो वैषां स्वामिनं कश्चिन्मोचयेत्प्राणसंशयात्। दासत्वात्स विमुच्येत पुत्रभागं लभेत च ॥

४ अनाकालभृतो दास्यान्मुच्यते गोयुगं ददत्। संभक्षितं यद्दुर्भिक्षे न तच्छुद्धेत कर्मणा ॥ भक्तस्योत्क्षेपणात्सद्यो भक्तदासः प्रमुच्यते। आहितोपि धनं दत्त्वा स्वामी यद्येनमुद्धरेत्॥ ऋणं तु सोदयं दत्त्वा ऋणी दास्यात्प्रमुच्यते ॥

क्षमें पाला दो गौ देकर छूटता है, और जो दुर्भिक्षमें खायाहो उसकी शुद्धि कर्म कर देनेसे नहीं होती, भक्त (भोजन किया) के देनेसे भक्तदास छूटता है, आहितभी स्वामी स्वीकार करै तो धन देकर छूटता है, और वृद्धि (सूद) सहित ऋणको देकर ऋणभी दासभावसे छूटता है, तैसेही मैं तेरा हूं यह कहकर आया, युद्धप्राप्त, पणेजित, कृत, वडवाहृत इनकेभी छूटनेका कारण पृथक् २ नारदनेही कहा है कि तवाहम् उपगत युद्धप्राप्त पणेजित ये तीनों अपने समान प्रतिशीर्ष (प्रतिनिधि) के देनेसे दासभावसे छूटते हैं, और जो काल (अवधि) दासभावका नियत हुआहो उसके बीतनेपर कृतक छूटता है और वडवा (दासी) के संग भोग (मैथुन) के रोकसे वडवाहृत छूटता है। तिससे यह सिद्ध भया कि गृहजात, क्रीत, लब्ध, दायप्राप्त, आत्मविक्रेता इनका स्वामीकी प्राणरक्षा करना जो सबका साधारण कारण है उसके किये विना दासभावसे छूटना नहीं होता, क्योंकि इनके छूटनेका विशेष कारण नहीं कहाहै, दासके छोडनेका यह प्रकार नारदनेही कहा है कि अपने दासको जो अदास किया चाहै वह प्रसन्नतासे दासके कधेपर रखे हुए जलसे भरे घटको फोडदे और अक्षत और पुष्पोंसहित जल दासके मस्तक पर छिडके और तीन बार अदास ३ इस पदको कहकर पूर्वको मुख कराकर दासको छोडदे ॥

भावार्थ-बलसे दास बनाया और चौरोंने चुराकर बेचा ये दासपनेसे छूटसकते हैं। स्वामीके प्राणोंके दाता सब और भोजन किये द्रव्यके देनेसे भक्तदास और अनाकालभृत ये दोनों और निश्चय (मोल) के देनेसे आहित नामका दास दासभावसे छूटसकते हैं ॥ १८२ ॥

प्रव्रज्यावसितोराज्ञोदासआमरणांतिकम् ।
वर्णानामानुलोम्येन दास्यंनप्रतिलोमतः ॥

पद-प्रव्रज्यावासितः १ राज्ञः ६ दासः १ आमरणांतिकम्ऽ-वर्णानाम् ६ आनुलोम्येन ३ दास्यम् १ नऽ-प्रतिलोमतःऽ-॥

योजना-प्रव्रज्यावसितः आमरणांतिकं राज्ञः दासः भवति। वर्णानाम् आनुलोम्येन दास्यं भवति प्रतिलोमतः न भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-अब यह कहते हैं कि संन्याससे भ्रष्ट हुएका दासपनेसे मोक्ष नहीं होता। प्रव्रज्या नाम संन्यासका है उससे जो पतित उसे प्रव्रज्यावसित कहते हैं, वह यदि प्रायश्चित्त न करना चाहै तो मरणपर्यंत राजाका ही दास होता है अन्यका नहीं अर्थात् उसके दासभाव छूटनेका अंत मरण ही है, अन्य कालमें मोक्ष उसका नहीं है। और ब्राह्मण आदि वर्णोंका अनुलोम क्रमसे दास्य होता अर्थात् ब्राह्मणके दास क्षत्रिय आदि तीन, क्षत्रियके वैश्य शूद्र, वैश्यका शूद्र और शूद्रका शूद्रही दास अनुलोम क्रमसे होसकता है, प्रतिलोम क्रमसे नहीं। अपने धर्मके त्यागी परिव्राजक (संन्यासी) का तो प्रतिलोम क्रमसेभी दासपना होना इष्ट ही है सोई नारदने कहा

---

१ तवाहमित्युपगतो युद्धप्राप्तः पणेजितः। प्रतिशीर्षप्रदानेन मुच्येरस्तुल्यकर्मणा ॥ कृतकालव्यपगमात्कृतकोपि विमुच्यते। निग्रहाद्वडवायास्तु मुच्यते वडवाहृतः॥

२ स्वंदासमिच्छेद्यः कर्तुमदासं प्रीतमानसः। स्कंधादादाय तस्यासौ भिंद्यात्कुंभं सहांभसा ॥ साक्षताभिः सपुष्पाभिर्मूर्द्धन्यद्भिरवाकिरेत्। अदास इत्यथोक्त्वा त्रिः प्राङ्मुखं तमवासृजेत् ॥

१ वर्णानां प्रातिलोम्येन दासत्वं न विधीयते। स्वधर्मत्यागिनोऽन्यत्र दारवद्दासता मता ।

है कि वर्णोंका प्रतिलोम क्रमसे अपने धर्मके त्यागीको छोडकर दासभाव नहीं कहाहै और दासभाव स्त्रीके समान होता है अर्थात् जैसे स्त्री अपने पतिकी आज्ञा करती है इसी प्रकार दासभी अपने स्वामीकी आज्ञा करै ॥

भावार्थ-संन्याससे पतित (भ्रष्ट) मरणपर्यंत राजाकाही दास होता है और चारों वर्ण अनुलोम क्रमसे दास होसकते हैं प्रतिलोम क्रमसे नहीं ॥ १८३ ॥

कृतशिल्पोपि निवसेत्कृतकालं गुरोर्गृहे । अंतेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः १८४

पद-कृतशिल्पः १ अपिऽ-निवसेत् क्रि-कृतकालम् २ गुरोः ६ गृहे ७ अन्तेवासी १ गुरुप्राप्तभोजनः १ तत्फलप्रदः १ ॥

योजना-कृतशिल्पः अपि अंतेवासी गुरुप्राप्तभोजनः तत्फलप्रदः सन् गुरोः गृहे कृतकाल निवसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अंतेवासी गुरुके घरमें कृतकाल वसै अर्थात् चार वर्षपर्यंत आयुर्वेद्की शिक्षाके अर्थ आपके घरमें वसूंगा इस प्रकार जितने कालकी अवधि करली हो उतनेही कालपर्यंत वसै । यदि चार वर्ष आदिकी अवधिसे पहिले ही अपेक्षित शिल्प विद्या आजाय तो गुरुके सकाशसे ही भोजन करै और अपनी शिल्पविद्यासे जो कुछ पैदा करै उसको गुरुकेही निवेदन करै इस प्रकार अपनी 'की हुई अवधिपर्यंत वसै यहां नारदने विशेषभी दिखाया है कि अपने शिल्पकी शिक्षाको जो मनुष्य ग्रहण किया चाहै वह अपने बांधवोकी आज्ञाके अनुसार आचार्यके समीप कालकी अवधिका निश्चय करके वसै । आचार्य इसको अपने घरसे भोजन देकर शिक्षा दे और अन्य कोई काम इसपर न करावे और पुत्रके समान आचरण करै (समझे) । भली प्रकार शिक्षा देते हुए आचार्यको जो त्यागता है वह वध (ताडना) और बधन और निकासनेके योग्य है । जो शिक्षित (पूर्ण) होकरभी अंतेवासी अपने समयको बितादे उस कालमें जो काम करै उसका फल (पैदावारी) आचार्यकी ही होता है । जब शिल्पविद्या आचुके तो उस समयमें आचार्यकी प्रदक्षिणा करके आचार्यको आज्ञा और शिक्षासे अंतेवासी निवृत्त (लौट) होसकता है । यहां वध शब्दसे ताडना इसलिये लेते हैं कि दोष अल्प है ॥

भावार्थ-शिल्पविद्याको सीखकरभी अंतेवासी अपने स्वीकार किये समयतक गुरुके घरमें वसै और गुरुके यहांही भोजन करै और शिल्पविद्यासे जो पैदा करै वह गुरुकोही निवेदन करै ॥ १८४ ॥

१ स्वशिल्पमिच्छन्नाहर्तुं बांधवानामनुज्ञया । आचार्यस्य वसेदंते कृत्वा काल सुनिश्चितम् ॥ आचार्यः शिक्षयेदेन स्वगृहे दत्तभोजनम् । न चान्यत्कारयेत् कर्म पुत्रवच्चैनमाचरेत् ॥ शिक्षयतमसदुष्टं य आचार्यं परित्यजेत् । बलाद्वासयितव्यः स्याद्वधबधौ च सोर्हति ॥ शिक्षितोपि कृत कालमतेवासी समाप्नुयात् । तत्र कर्म च यत्कुर्यादाचार्यस्यैव तत्फलम् ॥ गृहीतशिल्पः समये कृत्वाचार्यं प्रेदक्षिणम् । शिक्षितश्चानुमान्यैनमंतेवासी निवर्तते ॥

इति अभ्युपेत्याशुश्रूषाप्रकरणम् ॥ १४ ॥

अथ संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम् १९.

राजाकृत्वापुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्यतत्रतु।
त्रैविद्यंवृत्तिमद्ब्रूयात्स्वधर्मःपाल्यतामिति॥

पद्-राजा १ कृत्वाऽ-पुरे ७ स्थानम् २ ब्राह्मणान् २ न्यस्यऽ-तत्रऽ-तुऽ-त्रैविद्यम् २ वृत्तिमत् १ ब्रूयात् क्रि-स्वधर्मः १ पाल्यताम् क्रि-इतिऽ-॥

योजना-राजा पुरे स्थानं कृत्वा तु पुनः तत्र ब्राह्मणान् न्यस्य तद् ब्राह्मणव्रातं त्रैविद्य वृत्तिमत् कृत्वा, स्वधर्मः पाल्यताम् इति तान् प्रति ब्रूयात् (प्रार्थयेत्) ॥

तात्पर्यार्थ-अब संवित्के व्यतिक्रम (लंघन) को कहते हैं, उसका लक्षण नारदने निषेधके द्वारा दिखाया है कि पाखंडी (वेदमार्गके विरोधी व्यापारके कर्ता) नैगम (वेदके अनुकूल) आदिपदसे वेदत्रयीके ज्ञाता इनकी जो अपने २ स्वरूपमें स्थिति उसको समय कहते हैं, समयका जो अनपाकर्म (दूर न करना) वह विवादका पद कहाता है, इस प्रकार पारिभाषिक धर्मसे जो व्यवस्था उसको समय कहते हैं, उसके अनपाकर्म (न लंघना) अर्थात् समयकी पालना करना उससे जो डिगना वह विवादका पद होता है।[1]

राजा अपने दुर्ग आदि पुरमें धवल (सपेद) घर आदि स्थानको बनाकर और उस घरमें ब्राह्मणोंको नियत करके और उन ब्राह्मणोंके समूहको त्रैविद्य (तीन वेदोंसे युक्त) और वृत्तिमत् (बहुतसे सुवर्ण आदिकी जीविकासे युक्त) करके उनके प्रति यह प्रार्थना करै कि आप श्रुति और स्मृतिमें कहा वर्ण और आश्रमोंका जो धर्म उसका प्रचार करो ॥

भावार्थ-राजा अपने दुर्ग (किला) में स्थान बनाकर उसमें तीन वेदोंके ज्ञाता और जीविकासे युक्त ब्राह्मणोंको रखकर उनको यह कहै कि आप अपने धर्मको करैं ॥ १८५ ॥

निजधर्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत्।
सोपि यत्नेनसंरक्ष्योधर्मो राजकृतश्चयः १८६

पद्-निजधर्माविरोधेन ३ यः १ तुऽ-सामयिकः १ भवेत् क्रि-सः १ अपिऽ-यत्नेन ३ संरक्ष्यः १ धर्मः १ राजकृतः १ चऽ-यः १ ॥

योजना-तु पुनः यः निजधर्माविरोधेन सामयिकः भवेत् च पुनः राजकृतः यः धर्मः अस्ति सः अपि यत्नेन संरक्ष्यः ॥

ता० भावार्थ-इस प्रकार नियुक्त हुए ब्राह्मणोंक कर्मको कहते हैं। वेद और स्मृतिमें कहा धर्म जिससे नष्ट न हो ऐसा समयसे पैदा हुआ जो गोओंका चारण जल देवमंदिरकी रक्षारूप धर्म, और राजाका किया जो धर्म वहभी अपने धर्मके अविरोधसे अर्थात् पथिकको इतना भोजन (सदावर्त) देना हमारे पशुओंके मंडलमें घोडे आदि न भेजने इत्यादि जो राजाका कहा यत्नसे रक्षा करने योग्य है ॥ १८६ ॥

गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः।
सर्वस्वहरणंकृत्वा तंराष्ट्राद्विप्रवासयेत् १८७

पद्-गणद्रव्यम् २ हरेत् क्रि-यः १ तुऽ-संविदम् २ लंघयेत् क्रि-चऽ-यः १ सर्वस्वहरणम् २ कृत्वाऽ-तम् २ राष्ट्रात् ५ विप्रवासयेत् क्रि-॥

योजना-यः गणद्रव्यं हरेत् च पुनः यः संविदं लंघयेत् तं सर्वस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रात् विप्रवासयेत् ॥

---

[1] पाखंडिनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते। समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ–समयके धर्मकी पालनाको कह-कर उसके लघनेमें दोषको कहते हैं । जो मनुष्य ग्राम आदि समूहरूप गणके द्रव्यको चुराता है और जो संवित् अर्थात् समूहकी वा राजाकी नियत (थापी) की हुई मर्यादाका लंघन (न मानना) करता है उसके सब धनको अप-हरण (छीनना) करके अपने राष्ट्र (देश) मेंसे निकासदे । यह दंड अनुबंध (दावा) की अधिकतामें जानना । अनुबध अल्प होय तो मनु (अ० ८, श्लो० २१९–२२०) के कहे दंडोंमेंसे निकासना, चार सुवर्ण, छः निष्क, शतमान इन चारोंमें जाति और शक्तिकी अपेक्षासे दडकी कल्पना करलेनी कि जो मनुष्य ग्राम और देशके संघोंके सग सत्यसे संविद्को करके लोभसे विसंवाद झगडा करता है उसको देशसे निकासदे और इस समयके व्यभिचारीको निग्रह (कैद) करके चार सुवर्ण, छः निष्क और चांदीके शतमान (सौ रुपये) दड दे ॥

भावार्थ–जो मनुष्य समुदायके द्रव्यको चुराता है और संविद्को लघता है उसके सब धनको छीनकर अपने देशमेंसे निका-सदे ॥ १८७ ॥

कर्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिनाम् ।
यस्तत्र विपरीतःस्यात्सदाप्यःप्रथमं दमम्॥

पद्–कर्तव्यम् १ वचनम् १ सर्वैः ३. समूह-हितवादिनाम् ६ यः १ तत्रऽ–विपरीतः १ स्यात् क्रि–सः १ दाप्यः १ प्रथमम् २ दमम् २ ॥

योजना–समूहहितवादिनां वचनं सर्वैः कर्तव्य, तत्र यः विपरीतः स्यात् सः प्रथमं दमं दाप्यः भवेत् ॥

तात्प० भावार्थ–समूहवालोंके मध्यमें जो समूहके हितको कहैं उनके वचनको सब करैं अर्थात् समूहके अन्तर्गत मनुष्य उसकेही अनु-सार चलें, जो समूहके हितकारियोंके वचनका प्रतिबध (निषेध) करै राजा उसको प्रथम साहस दड दे ॥ १८८ ॥

समूहकार्यआयातान्कृतकार्यान्विसर्जयेत् ।
सदानमानसत्कारैःपूजयित्वा महीपतिः॥

पद्–समूहकार्ये ७ आयातान् २ कृतका-र्यान् २ विसर्जयेत् क्रि–सः १ दानमानसत्कारैः ३ पूजयित्वाऽ–महीपतिः १ ॥

योजना–सः महीपतिः समूहकार्ये आया-तान् कृतकार्यान् दानमानसत्कारैः पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥

तात्प० भावार्थ–समूहकी कार्यसिद्धिके लिये जो अपने समीप आयेहों और उन्होंने अपना कार्य किया होय तो दान मान सत्कार-से उनका पूजन करके वह राजा विसर्जन करै ॥ १८९ ॥

समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् ।
एकादशगुणंदाप्योयद्यस्मैनार्पयेत्स्वयम् ॥

पद्–समूहकार्यप्रहितः १ यत् २ लभेत क्रि–तत् २ अर्पयेत् क्रि–एकादशगुणम् २ दाप्यः १ यदिऽ–अस्मै ४ नऽ–अर्पयेत् क्रि–स्वयम्ऽ–॥

योजना–समूहकार्यप्रहितः यत् लभेत तत् अर्पयेत्, यदि असौ स्वयं न अर्पयेत् तर्हि एका-दशगुण दाप्यः (दडनीयः) राज्ञेति शेषः ॥

तात्प० भावार्थ–राजाके पास समूहके कार्यार्थ महाजनोंके भेजे हुएको जो सुवर्ण वस्त्र आदि राजासे मिलै, वह विनाही याच-

१ यो ग्रामदेशसघानां कृत्वा सत्येन संविदम् । विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ निगृह्य दापयेदेनं समयव्यभिचारिणम् । चतुःसुवर्णं षण्णिष्कं शतमानं च राजतम् ॥

नाके महाजनोंको स्वयं निवेदन करदे, निवेदन न करै तो राजा एकादश ११ गुना दंड उसको दे ॥ १९० ॥

धर्मज्ञाःशुचयोऽलुब्धाभवेयुःकार्यचिंतकाः ।
कर्तव्यं वचनंतेषांसमूहहितवादिनाम् १९१।

पद-धर्मज्ञाः १ शुचयः १ अलुब्धाः १ भवेयुः क्रि-कार्यचिंतकाः १ कर्तव्यम् १ वचनम् १ तेषाम् ६ समूहहितवादिनाम् ६ ॥

योजना-कार्यचिंतकाः धर्मज्ञाः शुचयः अलुब्धाः भवेयुः समूहहितवादिनां तेषां वचनं इतरैः कर्तव्यम् ॥

तात्प० भावार्थ-वेद और स्मृतिमें कहे धर्मके ज्ञाता, बाह्य और भीतरसे शुद्ध, धनके निर्लोभी जो हों वे कार्योंके विचार कर्ता करने। समूहके हितवादी जो हों उनका वचन आदरसे सब मनुष्य मानैं ॥ १९१ ॥

श्रेणिनैगमपाखंडिगणानामप्ययं विधिः ।
भेदं चैषां नृपोरक्षेत्पूर्ववृत्तिंचपालयेत्१९२॥

पद-श्रेणिनैगमपाखडिगणानाम् ६ अपिऽ-अयम् १ विधिः १ भेदम् २ चऽ-एषाम् ६ नृपः १ रक्षेत् क्रि-पूर्ववृत्तिम् २ चऽ-पालयेत् क्रिऽ ॥

योजना-श्रेणिनैगमपाखंडिगणानाम् अपि अयं विधिः ज्ञेयः च पुनः एषां भेदं नृपः रक्षेत् च पुनः पूर्ववृत्तिं पालयेत् ॥

ता० भा०-एक पण्य (व्यापार) से जो जीवें वे श्रेणी, और वेदको जो आप्त (यथार्थवादी) का बनाया होनेसे प्रमाण माने वे पाशुपत आदि नैगम, जो वेदको प्रमाण न मानें ऐसे नग्न सौगत आदि पाखंडी, और एक आयुधसे युद्ध आदि एक कर्मसे जो जीवें वे गण होते हैं उनकीभी यह पूर्वोक्तही विधि है और इन श्रेणी आदिके भेद व धर्मव्यवस्थाकी राजा रक्षा करै और पूर्वोक्त जीविकाको नियत करै ॥ १९२ ॥

इति संविद्व्यतिक्रमप्रकरणम् ॥ १९ ॥

अथ वेतनादानप्रकरणम् १६.

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् द्विगुणमावहेत्।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः॥

पद-गृहीतवेतनः १ कर्म २ त्यजन् १ द्विगुणम् २ आवहेत् क्रि-अगृहीते ७ समम् २ दाप्यः १ भृत्यैः ३ रक्ष्यः १ उपस्करः १ ॥

योजना-गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् सन् द्विगुणं (वेतनं) आवहेत्। वेतने अगृहीते सति समं दाप्यः भृत्यैः उपस्करः रक्ष्यः ॥

तात्पर्यार्थ-अब वेतनके अनपाकर्म व्यवहारपदका प्रस्ताव करते हैं। उसका स्वरूप नारदने कहा है कि भृत्योंके वेतनके देने और न देनेकी विधिका क्रम जिसमें हो वह वेतनका अनपाकर्म व्यवहारका पद कहाता है। उसका निर्णय कहते हैं। जो भृत्य वेतनको ग्रहण करके अपने अंगीकार लिये कर्मको न करै वह दूना वेतन स्वामीको दे और जो वेतनको न लेकर स्वीकार किये कर्मको त्यागदे वह उतनेही वेतनको दे जितना ठहरा हो दूना नहीं अथवा वलसे स्वीकार कीहुई भृति उसपर करावै। क्योंकि नारदका वचन है कि स्वीकार करके जो कर्म न करै उससे भृति (नौकरी) देकर वलसे कर्म करावै। भृतिभी नारदनेही कही है कि काम करानेवाला स्वामी भृत्यको आदि मध्य अंतमें वह कर्मका वेतन क्रमसे दे। जो भृत्य और स्वामीके वीचमें निश्चित होगया हो और वे भृत्य सव उपस्कर लांगल प्रग्रह (रस्से) योक्तृ (जूआ) आदिकी यथाशक्ति रक्षा करैं, क्योंकि न करैं तो कृषि आदि न होसकेंगे ॥

भावार्थ-वेतनको लेकर जो कर्म न करै वह दूनी भृति स्वामीको दे, यदि वेतन न लिया होय तो भृतिके समान द्रव्य दे और खेती आदिका जो उपस्कर उसकी रक्षा भृत्य करै॥१९३

दाप्यस्तुदशमंभागंवाणिज्यपशुसस्यतः।
अनिश्चित्यभृतिंयस्तुकारयेत्समहीक्षिता॥

पद-दाप्यः १ तुऽ-दशमम् २ भागम् २ वाणिज्यपशुसस्यतः ऽ-अनिश्चित्यऽ-भृतिम् २ यः १ तुऽ-कारयेत् क्रि-सः १ महीक्षिता ३ ॥

योजना-तु पुनः यः भृतिम् अनिश्चित्य भृत्यं कर्म कारयेत् सः महीक्षिता वाणिज्यपशुसस्यतः दशमं भागं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-जो स्वामी व्यापारी वा गोमी वा क्षेत्रिक वेतनका निश्चय न करके भृत्यसे काम करावै उस स्वामीसे व्यापार पशु और खेतसे जो पैदा हुआहो उसका दशवां भाग भृत्यको राजा दिलावै, यहभी अल्प परिश्रमके विषय समझना। यदि बहुत परिश्रम होय तो इस बृहस्पतिके वचनानुसार समझना हलके जोतनेवाला तीसरे वा पांचवें भागको ग्रहण करै। भोजन वा वस्त्रको जो ग्रहण करै वह सीरके पांचवें भागको ले और जो भोजन वस्त्र न ले वह पैदा हुए अन्नके तीसरे भागको ले। भोजन और वस्त्रके पानेवाले भृत्य अन्न और वस्त्रसे पोपण करने योग्य हैं ॥

भावार्थ-जो भृतिका निश्चय न करके

---

१ भृत्यानां वेतनस्योक्तो दानादानविधिक्रमः। वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥

२ कर्माकुर्वन् प्रतिश्रुत्य कार्यो दत्त्वा भृतिं वलात्।

३ भृत्याय वेतनं दद्यात् कर्मस्वामी यथाक्रमम् ॥ आदौ मध्येऽवसाने वा कर्मणो यद्विनिश्चितम् ॥

१ त्रिभाग पचभाग गृह्णीयात्सीरवाहकः। भक्ताच्छादभृतः सीराद्भाग गृह्णीत पचमम् ॥ जातसस्यात्त्रिभाग तु प्रगृह्णीयादथाभृतः। भक्ताच्छादभृता ह्यन्नवस्त्रदानेन पोपितः ॥

भृत्यसे कर्म करावै। उससे राजा व्यापार पशु और सस्यके पैदा हुए द्रव्यका दशवां भाग दिलावै॥ १९४ ॥

देशं कालं च योतीयाल्लाभंकुर्याच्च योन्यथा। तत्रस्यात्स्वामिनश्छंदोधिकं देयं कृतेधिके॥

पद-देशम् २ कालम् २ चऽ-यः १ अतीयात् क्रि-लाभम् २ कुर्यात् क्रि-चऽ-यः १ अन्यथाऽ-तत्रऽ-स्यात् क्रि-स्वामिनः ६ छदः १ अधिकम् १ देयम् १ कृते ७ अधिके ७ ॥

योजना-यः देशं च पुनः कालम् अतीयात् च पुनः लाभम् अन्यथा कुर्यात् तत्र स्वामिनः छंदः स्यात् अधिके कृते सति अधिकं देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-जो भृत्य विक्रय आदिके उचित देश वा कालमें पण्य वस्तुका विक्रय आदि नहीं करता अर्थात् अभिमान आदिसे अवलंघन करता है और जो उसी देश कालमें अन्यथा लाभ करता है अर्थात् अधिक व्ययसे अल्प लाभ करता है उस सेवकको भृति देनेमें स्वामीका छद (इच्छा) प्रमाण होता है अर्थात् जितनी स्वामीकी इच्छा हो उतनी भृति दे अधिक न दे। और जो भृत्य देशकालको जानकर अधिक लाभ करता है उस भृत्यको स्वामी नियत की हुई भृतिसेभी कुछ अधिक दे ॥

भावार्थ-जो भृत्य देश कालका अवलघन करै वा अन्यथा लाभ करै उस भृत्यको स्वामी इच्छाके अनुसार दे और जो भृत्य अधिक करै उसे अधिक दे ॥ १९५ ॥

यो यावत्कुरुते कर्मतावत्तस्य तु वेतनम्। उभयोरप्यसाध्यं चेत्साध्येकुर्याद्यथाश्रुतम्॥

पद-यः १ यावत् १ कुरुते क्रि-कर्म २ तावत्ऽ-तस्य ६ तुऽ-वेतनम् १ उभयोः ६ अपिऽ-असाध्यम् १ चेत्ऽ-साध्ये ७ कुर्यात् क्रि-यथाश्रुतम् २ ॥

योजना-यदा यत् कर्म उभयोः अपि असाध्यं स्यात् तदा यः यावत् कुरुते तावत् तस्य वेतन देय साध्येसति यथाश्रुत कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जब वेतनका निश्चय करके जिस एकही कर्मको दो मनुष्य करैं और वह कर्म व्याधि (रोग) आदिके कारणसे उन दोनोंसे वा बहुतसे मनुष्योंसे समाप्त न होय तो स्वामी जो भृत्य जितना कर्म करै उतनाही वेतन उनके किये कर्मके अनुसार जो मध्यस्थने कहदिया हो दे, सम न दे। और यह न समझना कि कर्मके अवयवोंका वेतन पूर्व भृत्योंसे स्वामीने नहीं नियत किया इससे न देना चाहिये और यदि उस कर्मको वे दोनों सिद्ध कर लें तो जितना पूर्व देना कह दियाहो उतनाही उन दोनोंको दे यह फिर न करै कि प्रत्येकका संपूर्ण वेतन दे दे वा कर्मके अनुसार विचार कर दे ॥

भावार्थ-जो कर्म दो मनुष्योंसे भृति ठहराकर करवाया हो वह कर्म यदि उन मनुष्योंसे सिद्ध न होय तो जिसने जितना कर्म कियाहो उतनाही उस भृत्यको दे और सिद्ध होजाय तो जितना ठहराहो उतना दे ॥ १९६ ॥

अराजदैविकं नष्टं भांडं दाप्यस्तु वाहकः। प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम्॥

पद-अराजदैविकम् २ नष्टम् २ भांडम् २ दाप्यः १ तुऽ-वाहकः १ प्रस्थानविघ्नकृत् १ चऽ-एवऽ-प्रदाप्यः १ द्विगुणाम् २ भृतिम् २ ॥

योजना-वाहकः अराजदैविकं नष्टं भांडं दाप्यः च पुनः प्रस्थानविघ्नकृत् द्विगुणां भृतिम् प्रदाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-राजा और देवताओंसे भिन्न भाण्ड (बर्त्तन) को यदि वाहक अज्ञानसे नष्ट करदे तो नाशके अनुसार उस भाण्डको दिवावै। सोई नारदने कहा है कि यदि वाह-

१ भाण्डो व्यसनमागच्छेद्यदि वाहकदोषतः। दाप्यो यत्तत्र नश्येत्तु दैवराजकृतादृते ॥

कके दोषसे पात्र फूटजाय तो दैव और राजाके पात्रको छोडकर वाहकसे दिवावे । और जो विवाह आदि मगलके दिन प्रस्थान करनेवालेके यात्राके उपयोगी कर्मको पहिले अंगीकार करके उसी समय यह कहता है कि मैं नहीं करूंगा अर्थात् प्रस्थानमें विघ्न करता है उससे दूनी भृति राजा दिवावे क्योंकि उसने अत्यत वडाईके कर्ममें विघ्न किया ॥

भावार्थ-राजा और दैवके पात्रको छोडकर वाहकसे पात्र फूटजाय तो उस पात्रको वाहकसे दिवावे ओर यात्रामें विघ्न करनेवालेको दूनी भृतिका दड दे ॥ १९७ ॥

सक्रांते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन्।
भृतिमर्द्धपथे सर्वांप्रदाप्यस्त्याजकोपि च ॥

पद-प्रकान्ते ७ सप्तमम् २ भागम् २ चतुर्थम् २ पथि ७ संत्यजन् १ भृतिम् २ अर्द्धपथे ७ सर्वाम् २ प्रदाप्यः १ त्याजकः १ अपिऽ-चऽ-॥

योजना-प्रकान्ते सत्यजम् सप्तम भागं पथि संत्यजन् चतुर्थम् अर्द्धपथे सत्यजन् सर्वां भृतिं भृत्यः प्रदाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-प्रस्थानके प्रक्रांत (निश्चय) समयमें अपने अंगीकार किये कर्मको जो त्यागै उससे सातवां भृतिका भाग स्वामीको राजा दिवावै । कदाचित् कोई शंका करै कि पहिले श्लोकमें प्रस्थानमें विघ्न कर्ताको दूनी भृतिका दंड कहा और यहां सातवां भाग कहते हो यह परस्पर विरोध है उसका समाधान कहते हैं कि जो भृत्य स्वामीको दूसरा भृत्य मिलनेकी संभावनामें अपने अंगीकार किये कर्मको त्यागै वह भृतिका सातवां भाग और प्रस्थान लग्नमेंही जो त्यागै वह स्वामीको दूनी भृति दे इसमें कुछ विरोध नहीं जो मार्गमें गमनके समय कर्मको त्यागै वह भृतिका चौथा भाग और जो आधे मार्गमें त्यागै वह संपूर्ण भृतिका दण्ड दे । और जो त्याजक हो अर्थात् अंगीकार किये कर्मको न त्यागते हुए मनुष्यसे कर्मका त्याग करावै उस स्वामीसेभी भृत्यको पूर्वोक्त प्रक्रांत आदि अवसरोंमें सातवां भाग आदि राजा दिवावै । यहभी उस विषयमें जानना जब भृत्यको कोई व्याधि आदि न हो । क्योंकि मनुका वचन है कि (अ० ८ श्लो० २१५) जो भृत्य रोगी न होकर स्वामीके कहे कर्मको न करै उसको आठ कृष्णलका दड दे और वेतन न दे और जब व्याधि चलीजाय और व्याधिक दिनोंकी संख्या जितनी हो उतने दिन कर्म करके स्वामीके कामको पूरा करदे तब तो भृत्य वेतनको प्राप्त होता है । क्योंकि मनु (अ०८श्लो० २१६) का वचन है कि रोगी मनुष्य स्वस्थ होकर स्वामीके कथनानुसार कर्मको करदे तो वह अपने बहुतकालकेभी सब वेतनको प्राप्त होताहै । और जो मनुष्य व्याधिके दूर होनेपरभी स्वस्थ हुआ आलस्यसे अपने आरभ किये किंचिन्न्यून कर्मको न स्वय करता है और न दूसरेसे कराता है उसको वेतन न दे । सोई मनु (अ०, ८ श्लो० २१७, ने कहाहै कि रोगी वा स्वस्थ मनुष्य जो यथोक्त कर्मको नहीं करता है उसको किंचिन्न्यून कर्मकाभी वेतन न दे ॥

भावार्थ-प्रस्थानके प्रारंभमें त्यागै तो सातवां भाग, मार्गमें त्यागै तो चौथा भाग, आधे मार्गमें त्यागै तो सपूर्ण भृति भृत्यसे स्वामीको इसी प्रकार कर्मको न त्यागते हुए भृत्यसे कर्म न कराते हुए स्वामीसे भृत्यको राजा दिलावै ॥ १९८ ॥

इति वेतनादानप्रकरणम् ॥ १६ ॥

---

१ भृत्यो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम्। स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं तस्य वेतनम् ॥

२ आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः । सदीर्घस्यापि कालस्य स्व लभेतैव वेतनम् ॥

३ यथोक्तमार्तः स्वस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् । न तस्य वेतन देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥

अथ द्यूतसमाह्वयप्रकरणम् १७.

ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु सभिकः पंचकं शतम् । गृह्णीयाद्धूर्तकितवादितराद्दशकं शतम् १९९

पद-ग्लहे ७ शतिकवृद्धेः ६ तुऽ-सभिकः १ पंचकम् २ शतम् २ गृह्णीयात् क्रि-धूर्तकितवात् ५ इतरात् ५ दशकम् २ शतम् २ ॥

योजना-सभिकः शतिकवृद्धेः धूर्तकितवात् ग्लहे पचक शत गृह्णीयात् इतरात् दशकं शत गृह्णीयात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब द्यूतसमाह्वयनामके विवादपदको कहते हैं। उसका स्वरूप नारदने यह कहा है कि अक्ष (फांसे), ब्रध्र (चर्मकी पट्टी), शलाका (हाथीदांतकी बनी लम्बी चौकोर सलाई), आद्यपदसे चतुरग क्रीडाके साधन हाथी अश्व रथ आदि लेने। उनमें प्राणी भिन्नोंसे जो पणपूर्वक द्यूतक्रिया की जाय उसे द्यूत और पारावत कुक्कुट आदि पक्षी और चकारसे मल्ल मेष महिप आदि प्राणियोंसे जो पणपूर्वक क्रीडा की जाय उसे समाह्वय विवादपद कहते हैं। सोई मनुने (अ० ९ श्लो०२२३) कहा है कि प्राणी भिन्नोंसे जो किया जाय उसे लोकमें द्यूत और प्राणियोंसे जो किया जाय उसे समाह्वय कहते हैं। उसमें द्यूतसमाह्वय सभाके अधिकारियोंकी वृत्तिको कहते हैं। परस्परकी संमतिसे कितव (खेलनेवाले) जिस पणकी कल्पना करलें उसे ग्लह कहते हैं। उसमें सौ रुपये जिसकी वृद्धि हो ऐसे धूर्त कितवसे पांच पण सभिक ग्रहण करै। अर्थात् जीते हुए ग्लहका बीसवां भाग सभापति ग्रहण करै। कितवोंके निवासके लिये सभा जिसके हो उसे सभिक कहते हैं। और कल्पना किये अक्ष आदि जो क्रीडाके सब उपकरण और उसके योग्य द्रव्य जिसके होय उसे सभापति कहते हैं और जिसकी शतिक वृद्धि पूरी न हुई हो उससे जीते हुए द्रव्यका दशवां भाग सभापति ग्रहण करै ॥

भावार्थ-सभापति पणके द्यूत और समाह्वयमें सौ रुपयोंकी वृद्धिपर धूर्त और कितवसे पांच ५ रुपये और सौ रुपयोंसे कमकी वृद्धिमें दशवां भाग ग्रहण करै ॥ १९९ ॥

ससम्यक्पालितोदद्याद्राज्ञेभागंयथाकृतम्। जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यंवचःक्षमी २००

पद-सः १ सम्यक्पालितः १ दद्यात् क्रि-राज्ञे ४ भागम् २ यथाकृतम् २ जितम् २ उद्ग्राहयेत् क्रि-जेत्रे ४ दद्यात् क्रि-ऽसत्यम् २ वचः २ क्षमी १ ॥

योजना-सः राज्ञा सम्यक् पालितः सन् राज्ञे यथाकृत भाग दद्यात् च पुनः जितं द्रव्यं जेत्रे उद्ग्राहयेत् च पुनः क्षमी सन् सत्यं वचः दद्यात्॥

ता० भा०-वह सभापति इस प्रकार राजासे पालित होय अर्थात् राजाने उसकी पूर्वोक्त वृत्ति नियत कर रक्खी होय तो राजा उसकी धूर्त कितवोंसे रक्षा करै और वह राजाको सप्रतिपन्न (ठहरा) किया हो वह अंश (भाग) दे। और जीते हुए द्रव्यको बधकके ग्रहणसे और आसेध (रोक) आदिसे पराजित मनुष्यके सकाशसे उद्धार करा दे (दिवादे) और उस धनका उद्धार करके सभापति जेताको दे दे। और क्षमाशील होकर द्यूत करनेवालोंके प्रति विश्वासके लिये सत्यवचन कहै सोई नारदने कहा है

---

१ अक्षब्रध्नशलाकाद्यैर्देवन जिह्मकारितम् । पणक्रीडावयोभिश्च पदं द्यूतसमाह्वयम् ॥

२ अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते । प्राणिभिः क्रियमाणश्च स विज्ञेयः समाह्वयः ॥

कि सभापति द्यूतको करावे और द्यूतमें जो देना कियाहो उसको दे ॥

भावार्थ–भली प्रकार रक्षा किया सभापति राजाके प्रति नियत किये भागको दे और जीतका द्रव्य जेताको दिवादे और क्षमासे सत्य वचन कहै ॥ २०० ॥

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्तमंडले ।
जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथानतु२०१

पद–प्राप्ते ७ नृपतिना ३ भागे ७ प्रसिद्धे ७ धूर्तमंडले ७ जितम् २ ससभिके ७ स्थाने ७ दापयेत् क्रि–अन्यथाऽ–नऽ–तुऽ–॥

योजना–ससभिके धूर्तमंडले राज्ञः स्थाने प्रसिद्धे प्राप्ते सति नृपतिना भागे गृहीते जितं यं राजा दापयेत् तु पुनः अन्यथा (अप्रच्छन्ने) प्राप्ते न दापयेत् ॥

ता०भा०–प्रसिद्ध (प्रकट) अर्थात् राजाके समक्ष सभापतिसहित कितवोंका समूह राजाके स्थानमें आवे और राजा अपने भागको लेले तो विवादसे रहित धूर्त और कितवोंसे जीते हुए पणको जेताको राजा दिवादे। अन्यथा न दिवावे अर्थात् प्रच्छन्न (छिपकर) राजाका भाग न देकर आवें तो जीता हुआ पण राजा न दिवावे ॥ २०१ ॥

द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्चत एव हि।
राज्ञासचिह्नंनिर्वास्याःकूटाक्षोपधिदेविनः ॥

पद–द्रष्टारः १ चऽ–व्यवहाराणाम् ६ साक्षिणः १ चऽ–ते १ एवऽ–हिऽ–राज्ञा ३ सचिह्नम् २ निर्वास्याः १ कूटाक्षोपधिदेविनः १ ॥

योजना–द्यूतव्यवहाराणां द्रष्टारः (सभ्याः) च पुनः साक्षिणः ते एव नियोक्तव्याः, कूटाक्षोपधिदेविनः राज्ञा सचिह्नं निर्वास्याः ॥

तात्पर्यार्थ–अब जयपराजयके विवादमें निर्णयका उपाय कहते हैं। द्यूतके. व्यवहारोंके द्रष्टा (सभासद) और साक्षी द्यूतमें द्यूत करनेवालेही राजा नियत करै इसमें वेदपाठी आदिका नियम नहीं और साक्षियोंमेंभी स्त्री बाल वृद्ध आदिका निषेध नहीं। और जो कूट अक्षों (कपटके पांसों) से वा उपाधि अर्थात् मतिके वंचक माणि मन्त्र औषध आदिसे जो देवन (खेलना) करैं उनको श्वपद आदिका चिह्न करके राजा अपने देशमेंसे निकासदे। नारदने निकासनेमें विशेष कहा है कि कूट अक्षोंसे जो देवन करें उनको राजा कंठमें अक्षमाला पहराकर अपने देशमेंसे निकास दे वही उनका विनय कहा है[1]। जो ये मनुके इत्यादि (अ० ९ श्लो० २२४)[2] वचन द्यूतके निषेधबोधक है कि जो द्यूत और समाह्वयको करै वा करावे, उनको और द्विजोंके चिह्नधारी शूद्रोंको राजा इन सबको मरवादे, ये सब वचन कूटाक्ष देवनके विषयमें होनेसे उस द्यूतके विषयमें समझने जो राजा अध्यक्ष सभापति इनके विना कियाजाय ॥

भावार्थ–द्यूतमें व्यवहारोंके द्रष्टा (सभापति) और साक्षी वेही कितव आदि नियत करने और कूट अक्षसे जो देवन करैं उनको राजा श्वपद आदिका चिह्न करके देशमेंसे निकासदे ॥ २०२ ॥

द्यूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात् ।
एष एव विधिर्ज्ञेयःप्राणिद्यूतेसमाह्वये२०३॥

पद–द्यूतम् १ एकमुखम्,१ कार्यम् १ तस्करज्ञानकारणात् ५ एषः १ एवऽ–विधिः १ ज्ञेयः १ प्राणिद्यूते ७ समाह्वये ७ ॥

१ सभिकः कारयेद्द्यूतं देयं दद्याच्च तत्कृतम् ।

१ कूटाक्षदेविनः पापान् राजा राष्ट्राद्विवासयेत् । कंठेऽक्षमालामासज्य स ह्येषां विनयः स्मृतः ॥

२ द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात् कारयेत वा । तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिंगिनः ॥

योजना-तस्करज्ञानकारणात् द्यूतम् एकमुखं कार्यम् । प्राणिद्यूते समाह्वये एषः एव विधिः ज्ञेयः २ ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्तद्यूत एक है मुख (प्रधान) जिसमें ऐसा और अध्यक्षोंसे अधिष्ठित (युक्त) राजा करावे क्योंकि तस्करोंका ज्ञान इसी प्रकार होताहै । बहुधा चोरीसे धनसचय करनेवाले ही कितव होते हैं इससे चोरोंके विज्ञान (पहचान) के अर्थ एकमुख ही द्यूतको राजा करावै । और प्राणियोंके द्यूतरूप समाह्वयमें यही पूर्वोक्त विधि जाननी अर्थात् उसमेंभी सौ रुपये पर पांच रुपये आदिको सभापति ग्रहण करै ॥

भावार्थ-चौरोंके ज्ञानार्थ द्यूतमें एकको प्रधान राजा रक्खे और यही पूर्वोक्त विधि प्राणियोंका द्यूत जो समाह्वय उसमेंभी जाननी ॥ २०३ ॥

इति द्यूतसमाह्वयप्रकरणम् ॥ १७ ॥

अथ वाक्पारुष्यप्रकरणम् १८.

सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैर्न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम्। क्षेपं करोति चेद्दंडयः पणानर्द्धत्रयोदशान् ॥ २०४ ॥

पद–सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः ३ न्यूनांगेंद्रियरोगिणाम् ६ क्षेपम् २ करोति क्रि–चेत्ऽ–दंड्यः १ पणान् २ अर्द्धत्रयोदशान् २ ॥

योजना–यः न्यूनांगेंद्रियरोगिणां सत्यासत्यान्यथास्तोत्रैः क्षेपं चेत् करोति सः अर्द्धत्रयोदशान् पणान् दंड्यः राज्ञेति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–अब वाक्पारुष्य प्रकरणका प्रस्ताव करतेहैं। उसका लक्षण नारदने कहाहै कि देश जाति कुल आदिका जो न्यग (दोष वा पाप) सहित आक्रोश (ऊंचे स्वरसे कठोर वचन कहना) और जो प्रतिकूल (उद्वेग) ताको पैदा करै उसका वाक्पारुष्य कहते हैं। उनमें गौडोंको कलह प्यारा होताहै यह देशका आक्रोश (निंदा) है ब्राह्मण नितांत (निश्चय) लोलुप (चंचल) होतेहैं यह जातिका आक्रोश है। विश्वामित्रोंका आचरण क्रूर होता है यह कुलका आक्रोश है। आदिपदके ग्रहणसे अपनी शिल्प आदि विद्याकी निंदासे विद्वान् और शिल्प आदि ग्रहण करने और उस आक्रोशके दंडतारतम्य (न्यून अधिक) के लिये निष्ठुर आदि भेदसे तीन प्रकारका कहकर उसका लक्षण नारदनेही कहाहै कि निष्ठुर अश्लील तीव्र इन भेदोंसे आक्रोश तीन प्रकारका कहाहै और उसके गौरवसे दंडभी क्रमसे गुरु होताहै उनमें मूर्ख और जालमको धिक्कार है ये जो आक्षेपसहित वचन वह निष्ठुर, भगिनी आदि गमनरूप न्यग (पाप) सहित जो आक्रोश उसको अश्लील, तू मदिरा पीता है इत्यादि महापातकोंका जो आक्रोश उसे तीव्र कहते हैं ॥

उन तीनोंमें सवर्णोंके विषे निष्ठुर आक्रोशका दंड कहते हैं। करचरण आदिसे जो विकल (रहित) वे न्यूनांग, नेत्र श्रोत्र आदिसे जो रहित वे न्यूनेंद्रियें, और जिनके देहकी त्वचा दुष्ट होय वे रोगी इनको जो सत्य, मिथ्या, वा निंदापूर्वक स्तुतिसे अर्थात् दोनों नेत्रोंसे हीनको यह अंधा है यह सत्यवचन और नेत्रवालोंको यह अंधा है यह असत्यवचन और विकृताकृतिको तू बडा दर्शनीय है यह कहना अन्यथा स्तोत्र इस प्रकार जो क्षेप (निर्भर्त्सन वा निंदा करै) उसको राजा साढेतेरह पण दंड दे। और जो यह मनु (अ० ८ श्लो० २७४) का वचन है कि काणे वा खंज (लगडे) वा ऐसेही अन्यको सत्यवचनसेभी काणा आदि कहै उसको कमसे कम कार्षापणका दंड दे यह वचन अत्यंत दुराचारी वर्णके विषयमें है। और जब पुत्र आदि माता आदिकोंका आक्रोश करैं तब सौका दंड मनु (अ० ८ श्लो० २७५) नेही कहा है कि माता पिता जाया भ्राता गुरु इनको जो आक्रोश करै और जो सन्मुख आते गुरुको मार्ग न दे उसको सौ पणका दंड राजा दे। यहभी तब जानना जब माता आदिका अपराध हो और जायाका अपराध न हो ॥

---

१ देशजातिकुलादीनामाक्रोशं न्यंगसंयुतम्। यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥

२ निष्ठुराश्लीलतीव्रत्वात्तदपि त्रिविधं मतम्। गौरवानुक्रमात्तस्य दंडोपि स्यात्क्रमाद्गुरुः ॥ साक्षेपं निष्ठुरं ज्ञेयमश्लीलं न्यंगसंयुतम्। पतनीयैरुपक्रोशैस्तीव्रमाहुर्मनीषिणः ॥

१ काणं वाप्यथवा खंजमन्यं वापि तथाविधम्। तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दंडं कार्षापणावरम् ॥

२ मातरं पितरं जायां भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्। आक्षारयन् शतं दाप्यः पंथानं चाददद्गुरोः ॥

भावार्थ-जिनके अंग वा इंद्रिय न्यून हों वा रोगी हों उनको जो सत्य मिथ्या वा निंदापूर्वक स्तुतिसे निंदा करै उसको साढे तेरह १३॥ पणका दंड राजा दे ॥ २०४ ॥

अभिगंतास्मि भगिनीं मातरं वा तवेति ह। शपंतं दापयेद्राजापंचविंशतिकंदमम्॥२०५॥

पद-अभिगंता १ अस्मि क्रि-भागिनीम् २ मातरम् २ वा ऽ तव६ इति ऽ-ह ऽ-शपंतम् २ दापयेत् क्रि-राजा १ पंचविंशतिकम् २ दमम् २॥

योजना-तव भागिनीं मातरम् अहम् अभिगतास्मि इति शपंतं जनं राजा पंचविंशतिकं दमं दापयेत् ॥

ता० भा०-तेरी भागिनी और मातासे गमन करूंगा ऐसे आक्रोश करते हुए मनुष्यको पच्चीस २५ पणका दंड राजा दे अर्थात् पच्चिस कार्षापण उससे राजा दंडके ले ॥ २०५ ॥

अर्द्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीषूत्तमेषु च। दंडप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरैः॥२०६॥

पद-अर्धः १ अधमेषु ७ द्विगुणः १ परस्त्रीषु ७ उत्तमेषु ७ च ऽ-दंडप्रणयनम् १ कार्यम् १ वर्णजात्युत्तराधरैः ३ ॥

योजना-अधमेषु अर्धः, परस्त्रीषु च पुनः उत्तमेषु द्विगुणः ज्ञेयः। वर्णजात्युत्तराधरैः दंडप्रणयनं (ऊहनम्) राज्ञा कार्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्त प्रकारसे समान गुणवाले वर्णोंमें दंडको कहकर विषम गुणवालोंमें दंडको कहते हैं। आक्षेप करनेवालेसे जो आचरण और गुणोंमें न्यून हैं उनमें पूर्वोक्त दंडसे आधा अर्थात् साढे बारह पणका दंड जानना। और पराई स्त्री और आक्रोश करनेवालेसे जो विद्या और आचरणमें उत्तम हैं उनमें पूर्वोक्त (पच्चिस पण) से दूना अर्थात् पचास पणका दंड जानना अब वर्ण और मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंके परस्पर आक्षेपमें दंडकी कल्पना कहते हैं। कि ब्राह्मण आदि वर्ण और मूर्द्धावसिक्त आदि जाति इनकी उत्तमता और न्यूनतामें परस्पर आक्षेप होय तो दंडकी कल्पना ऊह करना अर्थात् अपराधके अनुसार दंड समझलेना। वह दंडका प्रणयन (उत्तराधरैः) ऊंच नीच इस विशेष उपादानसे ऊंच नीचकी अपेक्षासे ही करना यह प्रतीत होता है, जैसे ब्राह्मणसे हीन और क्षत्रियसे उत्तम मूर्द्धावसिक्तका ब्राह्मण आक्रोश करै तो क्षत्रियके आक्षेपमें जो पचास पणका दंड है उससे कुछ अधिक पचहत्तर ७५ पणके दंड योग्य ब्राह्मण होता है। वैसे क्षत्रियहीभी इस मूर्द्धावसिक्तका आक्रोश करै तो ब्राह्मणके आक्षेपमें जो सौ पणका दंड है उससे कुछ कम पचहत्तर ७५ ही पणके दंडके योग्य समझना और मूर्धावसिक्तभी ब्राह्मण और क्षत्रियके आक्रोशमें इसही पचहत्तर पणके दंड योग्य होताहै। यदि मूर्द्धावसिक्त और अवष्ठ परस्परका आक्षेप करैं तो वही दंड समझना जो ब्राह्मण और क्षत्रियको परस्परके आक्रोशमें होता है इसी प्रकार अन्यत्रभी ऊह करना (समझना) ॥

भावार्थ-आक्रोश करनेवालेसे अधमके आक्रोशमें आधा, और पराई स्त्री और उत्तमोंमें दूना दंड जानना, और अन्यत्रभी वर्ण और जातिके ऊच नीच भावमें दंडका प्रणयन (ऊह वा कल्पना) राजा कर ले ॥ २०६ ॥

प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः। वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्द्धार्द्धहानितः॥

पद-प्रातिलोम्यापवादेषु ७ द्विगुणत्रिगुणाः १ दमाः १ वर्णानाम् ६ आनुलोम्येन ३ तस्मात् ५ अर्धार्धहानितः ऽ-॥

योजना-प्रातिलोम्यापवादेषु दमाः (दंडाः) द्विगुणात्रिगुणाः भवंति वर्णानाम् आनुलोम्येन आक्रोशेषु तस्मात् अर्धार्धहानितः दमाः ज्ञेयाः॥

तात्पर्यार्थ–इस प्रकार सवर्णोंमें दंडको कहकर वर्णोंके प्रतिलोम और अनुलोम क्रमसे आक्षेपमें दंडको कहते हैं। अपवाद नाम आक्रोशका है, प्रातिलोम्य जो अपवाद वे प्रातिलोम्यापवाद कहते हैं उनमें पूर्वोक्तसे दूने तिगुने दंड होते हैं। जैसे ब्राह्मणका आक्रोश क्षत्रिय और वैश्य करें तो पूर्व वाक्यमें जो .द्विगुण पदसे पचास पणका दंड कहा है उससे दूना (सौ पण) और तिगुना (डेढ सौ पण) क्रमसे दंड जानना। शूद्र यदि ब्राह्मणका आक्रोश करै तो ताडना वा जिह्वाका छेदन होता है सोई मनुने कहा है। (अ० ८ श्लो०२६७) कि ब्राह्मणका आक्रोश (गाली आदि देना) करके क्षत्रिय सौ पण दंडके योग्य होता है और वैश्य डेढ सौ वा दो सौ पण दंडके योग्य होता है। और शूद्र तो वधके योग्य होता है। और क्षत्रियसे अनतर वैश्य और एक वैश्य वर्ण है बीचमें जिसके ऐसा शूद्र इन दोनों वैश्य शूद्रोंकोभी तुल्य न्याय (रीति) से सौ पण और डेढ सौ पणका दंड क्षत्रियका आक्रोश करनेमें जानना। और वर्णोंके अनुलोम क्रमसे आक्रोशमें अर्थात् क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन निचले वर्णोंका ब्राह्मण आक्रोश करै तो क्षत्रियको ब्राह्मणके आक्रोशमें जो सौ पणका दंड है उससे प्रतिवर्ण आधे २ की हानि (कमी) करके पचास पण, पच्चीस पण, साढे बारह पण दंड क्रमसे ब्राह्मणको राजा दे। सोई मनु (अ० ८ श्लो० २६८) ने कहा है कि क्षत्रियके आक्रोशमें ब्राह्मण पचास पण, और वैश्यके आक्रोशमें पच्चीस पण, और शूद्रके आक्रोशमें द्वादश पण दंडके योग्य है। क्षत्रिय वैश्य वा शूद्रका आक्रोश करै तो क्रमसे पचास और पच्चीस पण दंड होता है, और वैश्य शूद्रका आक्रोश करै तो पचास पणका दंड वैश्यको होता है इस प्रकार दंडकी कल्पना करनी। क्योंकि यह गौतमकी स्मृति है कि ब्राह्मण और क्षत्रियके समान वैश्य और शूद्रको दंड समझना। और यह मनु (अ० ८ श्लो० २७७) कीभी स्मृति है कि विचार करनेसे अपनी २ जातिमें वैश्य और शूद्रको भी इसी प्रकार दंड होता है॥

भावार्थ–प्रतिलोमसे (नीचा वर्ण ऊंचका) अपवाद (आक्रोश) में दूना और तिगुना दंड कहा है, और वर्णोंके अनुलोम क्रमसे अपवाद होय तो क्रमसे पूर्वोक्त दण्डसे आधे आधेकी हानिसे दंड होता है॥ २०७॥

बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिक दमः।
शत्यस्तदर्द्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥

पद–बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे ७ वाचिके ७ दमः १ शत्यः १ तदर्धिकः १ पादनासाकर्णकरादिषु ७॥

योजना–वाचिके बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे शत्यः पादनासाकर्णकरादिषु विनाशे कथिते तदर्धिकः दमः वेदितव्यः॥

तात्प० भावार्थ–यदि कोई मनुष्य वाणीसे भुजा, ग्रीवा, नेत्र, सक्थि इनके विनाशको ऐसे कहे कि तेरी भुजाओंका छेदन करूंगा उसको सौ पणका और पैर, नाक, कर्ण, हाथ और आदि शब्दसे स्फिक् आदिका वाणीसे विनाश कहै तो उसका आधा पचास पण दंड जानना॥ २०८॥

---

१ शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दंडमर्हति। वैश्योऽप्यर्द्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति॥

२ पंचाशद्ब्राह्मणो दंड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने। वैश्यः स्यादर्धपंचाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥

१ ब्राह्मणराजन्यवत्क्षत्रियवैश्ययोः।

२ विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः।

अशक्तस्तु वदन्नेव दंडनीयः पणान्दश ।
तथा शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः क्षेमाय तस्य तु॥

पद्-अशक्तः १ तुऽ-वदन् १ एवऽ-दंडनीयः१ पणान् २ दश २ तथाऽ-शक्तः १ प्रतिभुवम् २ दाप्यः १ क्षेमाय ४ तस्य ६ तुऽ- ॥

योजना-तु पुनः अशक्तः एवं वदन् दश पणान् दण्डनीयः तथा तु पुनः तस्य क्षेमाय शक्तः प्रतिभुवं दाप्यः ॥

ता० भा०-जो मनुष्य ज्वर आदिसें अशक्त हुआ वाणीसे बाहु आदिके पूर्वोक्त विनाशको कहै उसको राजा दश पणका दंड दे । और जो शक्त (समर्थ) मनुष्य अशक्तका पूर्वोक्त प्रकारसे आक्रोश करै तो उसको पूर्व कहे हुए सौ पण दडके अनंतर अशक्त मनुष्यकी रक्षाके लिये प्रतिभूका दंड दे अर्थात् उसकी सेवाके लिये एक मनुष्य उसके पास छुडवावै ॥ २०८॥

पतनीयकृते क्षेपे दंडो मध्यमसाहसः ।
उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसम्२१०

पद्-पतनीयकृते ७ क्षेपे ७ दंडः १ मध्यमसाहसः १ उपपातकयुक्ते ७ तुऽ-दाप्यः १ प्रथमसाहसम् २ ॥

योजना-पतनीयकृते क्षेपे मध्यमसाहसो दंडो भवति तु पुनः उपपातकयुक्ते क्षेपे प्रथमसाहसं दंडं दाप्यः ॥

ता० भा०-पतितके कारण (' तू ब्रह्महत्यारा है) से वर्णोंका आक्रोश होय तो मध्यमसाहस दंड होता है और उपपातक (तू गोहत्यारा है) के योगमें प्रथम साहस दड देने योग्य होता है ॥ २१० ॥

त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः ।
मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥

पद्-त्रैविद्यनृपदेवानाम् ६ क्षेपे ७ उत्तमसाहसः १ मध्यमः १ जातिपूगानाम् ६ प्रथमः १ ग्रामदेशयोः ६ ॥

योजना-त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेपे उत्तमसाहसः जातिपूगानां क्षेपे मध्यमः ग्रामदेशयोः क्षेपे प्रथमः साहसो दडो ज्ञेयः ॥

ता० भा०-तीन वेदोंके ज्ञाता त्रैविद्य राजा और देवता इनके क्षेप (आक्रोश) में उत्तमसाहस दंड, ब्राह्मण और मूर्द्धावसिक्त आदि जातियोंका जो संघ उसकी निंदामें मध्यम साहस दण्ड, ग्राम और देशके प्रत्येक आक्षेपमें प्रथम साहस दण्ड जानना ॥ २११ ॥

इति वाक्पारुष्यदंडप्रकरणम् ॥ १८ ॥

अथ दंडपारुष्यप्रकरणम् १९.

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृतो भयात्॥

पद-असाक्षिकहते ७ चिह्नैः ३ युक्तिभिः ३ चऽ-आगमेन ३ चऽ-द्रष्टव्यः १ व्यवहारः १ तुऽ-कूटचिह्नकृतः ६ भयात् ५ ॥

योजना-असाक्षिकहते सति चिह्नैः च पुनः युक्तिभिः च पुनः आगमेन कूटचिह्नकृतः भयात् व्यवहारः द्रष्टव्यः ॥

तात्पर्यार्थ-अब दंडपारुष्यका प्रस्ताव करतेहैं। उसका स्वरूप नारदने कहाहै कि पराये स्थावर जंगम द्रव्य, गात्रोंमें हस्त, पाद, शस्त्र और ग्राव (पत्थर) आदिसे जो अभिद्रोह (हिंसा) अर्थात् दुःखको पैदा करना और तैसेही भस्म, रज, कीच, पुरीष आदिसे स्पर्श करके पराये मनमें दुःख पैदा करना इन दोनों प्रकारको दंडपारुष्य कहतेहैं। दंडपारुष्य शब्दका यह अर्थ है कि जिससे दंड दिया जाय वह देहदंड कहाताहै उस दंडसे जो जंगम आदि द्रव्यका विरुद्ध आचरण उसको दंडपारुष्य कहते हैं, और उसको अवगोरण आदि करणोंके भेदसे तीन प्रकारका कहकर हीन मध्यम उत्तम द्रव्यरूप कर्मके तीन भेदोंसे फिर तीन प्रकारका नारदने ही कहा है कि हीन मध्यम उत्तमके क्रमसे वह साहस तीन प्रकारका है। अवगोरण (गाली देना), निश्शंक होकर प्रहार, क्षत (घाव) का करनेसे देखा है और हीन मध्यम उत्तम द्रव्योंके अवलंघनसे तीन प्रकारकेही साहस केहैंह, उन साहसोंमेंही कंटकों (अपराधी) का शोधन राजा करै। ये साहससे किये तीन प्रकारके दंडपारुष्य होते हैं, तैसेही वाक्पारुष्य और दंडपारुष्य ये दोनों कलह जहां प्रवृत्त हो उनके मध्यमें जो क्षमा करै उसको केवल दंडका अभावही नहीं किंतु यह पूजाके योग्यभी हैं, तसहा जो पहिले कलहमें प्रवृत्त हो उसको दंडभी गुरु (अधिक) होता है, और कलहमें वही दंडका भागी है, जिसको बधे हुए वैरका अनुसंधान (स्मरण) रहै तैसे दोनोंके अपराध विशेषका ज्ञान न होय तो दोनोंको समान दंड होता है, तैसेही यदि श्वपच आदि आर्योंका अपराध कर दें तो दंड दिलानेके अधिकारी सज्जनही होते हैं। यदि वे दंड देनेको शक्य न हों अर्थात् श्वपचोंको दंड न देसकैं तो राजा श्वपचोंको मरवाही दे, उनसे धनको ग्रहण न करै। इस प्रकार पांच प्रकारकी विधिभी नारदने ही कही है कि इन दोनोंकी विधि पांच प्रकारकी कही है, क्रोधसे पारुष्य उत्पन्न हो और दोनों क्रोधियोंके मध्यमें वही मानता है जो क्षमा करता

१ परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः। भस्मादिभिश्चोपघातो दंडपारुष्य उच्यते ॥

२ तस्योपदिष्टं त्रैविध्यं हीनमध्योत्तमक्रमात्। अवगोरणनिःसंगपातनक्षतदर्शनैः ॥ हीनमध्योत्तमानां तु द्रव्याणां समतिक्रमात्। त्रीण्येव साहसान्याहुस्तत्र कंटकशोधनम् ॥

१ विधिः पंचविधस्तूक्त एतयोरुभयोरपि। पारुष्ये सति संरंभादुत्पन्ने क्रुद्धयोर्द्वयोः ॥ स मन्यते यः क्षमते दंडभाग्योऽतिवर्तते। पूर्वमाक्षारयेद्यस्तु नियतं स्यात्स दोषभाक् ॥ पश्चाद्यः सोप्यसत्कारी पूर्वे तु विनयो गुरुः। द्वयोरापन्नयोस्तुल्यमनुबध्नाति यः पुनः ॥ स तयोर्दंडमाप्नोति पूर्वो वा यदि वेतरः। पारुष्यदोषावृतयोर्युगपत्संप्रवृत्तयोः ॥ विशेषश्चेन्न लक्ष्येत विनयः स्यात्समस्तयोः। श्वपाकपंढचंडालव्यंगेषु वधवृत्तिषु ॥ हस्तिपव्रात्यदासेषु गुर्वाचार्यनृपेषु च। मर्यादातिक्रमे सद्यो घात एवानुशासनम् ॥ यमेव ह्यतिवर्तेरन्नेते सत जन नृपु। स एव विनयं कुर्यान्न तद्विनयभाङ्नृपः ॥ मला ह्येते मनुष्याणां धनमेषां मलात्मकम्। अतस्तान्घातयेद्राजा नार्थदंडेन दंडयेत् ॥

है जो लघन करता है वह दंडका भागी होताहै जो प्रथम आक्षारण (अपराध) करै वह नियमसे दंडका भागी होताहै, जो पीछे करै वहभी असत्कारके योग्य है, परतु पहलेको दंड गुरु होता है, यदि दोनों तुल्य आपत्तिवाले हों उनमें जो फिर अनुबंध (कलह वा दावा) करै वही उन दोनोंमें दंडको प्राप्त होता है, वह पहिला हो चाहै पिछला हो, यदि पारुष्यदोषवाले एक समयमें कलहमें प्रवृत्त हों और कुछ विशेष प्रतीत न होय तो दोनोंको समान दंड होता है। यदि श्वपाक, नपुसक; चांडाल, अंगसे हीन, हस्तिप (पीलवान्), व्रात्य, दास और हिंसासे जो जीवें ये सब गुरु, आचार्य, राजा इनके, विषय मर्यादाका अवलघन करैं तो इनकी शिक्षा मारनाही है, और ये मनुष्योंमें जिस सज्जनका अवलंघन करैं वही उसको दड दे राजा न दे, ये श्वपच आदि मनुष्योंमें मलरूप हैं इनका धनभी मलरूप है इससे राजा इनको मारदे, धनका दंड इनको न दे।

इस प्रकार दंड देना दडके पारुष्य निर्णयसे होता है, उसके स्वरूपके संदेह निवारणार्थ निर्णय कहते हैं, जब कोई मनुष्य राजाको यह निवेदन करै कि मुझे एकांतमें इसने ताडना दी है (मारा है) तहां साक्षी न होय तो वर्ण और स्वरूप आदिके चिह्नोंसे, युक्तिसे अर्थात् कारण और प्रयोजनके देखनेकी रीतिसे, आगम (जनोंका कथन) से और चशब्दके पढनेसे दिव्य प्रमाणसे इस लिये राजा परीक्षा करै कि इसमें कूट (मिथ्या) चिह्न करलेनेका भय होता है ॥

भावार्थ-यदि मारनेका कोई साक्षी न होय तो चिह्न युक्ति मनुष्योंका कथन इनसे राजा व्यवहारको कूट चिह्नोंके करनेके भयसे देखै२१२

भस्मपंकरजस्पर्शे दंडो दशपणः स्मृतः।
अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः॥

पद-भस्मपंकरजःस्पर्शे ७ दंडः १ दशपणः १ स्मृतः १ अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने ७ द्विगुणः १ स्मृतः १ ॥

समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च।
हीनेष्वर्धदमो मोहमदादिभिरदंडनम् २१४

पद-समेषु ७ एवम् ऽ-परस्त्रीषु ७ द्विगुणः १ तु ऽ-उत्तमेषु ७ च ऽ-हीनेषु ७ अर्धदमः १ मोहमदादिभिः ३ अदंडनम् १ ॥

योजना-भस्मपंकरजःस्पर्शे दशपणः दंडःस्मृतः, अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः दंडः स्मृतः एव दंडः समेषु ज्ञेयः, परस्त्रीषु च पुनः उत्तमेषु द्विगुणः दंडः बोध्यः, हीनेषु अर्धदमः भवति, मोहमदादिभिः स्पर्शने अदंडनम् भवति ॥

तात्पर्यार्थ-भस्म (राख), पंक (कीच, वा गारा), रज (रेणु) इनसे जो अन्यका स्पर्श करै उसको दश पण दंड दे और अमेध्य अर्थात् आंसू, कफ, और नख, केश, कानका मैल, दूषिका (नेत्रमल), भोजनका उच्छिष्ट, पार्ष्णि (चरणका पिछला भाग एडी), निष्ठ्यूत (थूक) इनसे दूसरेका स्पर्श करै तो पूर्वोक्त दश पणसे दूना (बीस पण) दंड कहा है, और पुरीष (विष्ठा) आदिके स्पर्शमें कात्यायनने विशेष कहा है कि छर्द, मूत्र, विष्ठा आदिका जो स्पर्श दूसरे मनुष्यके करै चौगुना वा छः गुना दंड कायाके मध्यमें स्पर्श करनेसे होता है, और मस्तकपर स्पर्श करै तो आठगुना दंड कहा है, आदि शब्दसे वसा शुक्र रुधिर मज्जा लेने। यह पूर्वोक्त दंड सवर्णके विषयमें जानना, और सब जाति-

१ छर्दिमूत्रपुरीषाद्यैरापाद्यः स चतुर्गुणः। षड्गुणः कायमध्ये स्यान्मूर्ध्नि त्वष्टगुणः स्मृतः॥

योंकी पराई स्त्री और उत्तम अर्थात् अपनेसे अधिक विद्या और आचरणवालोंके विषै पूर्वोक्त दशपण और वीस पणसे दूना दण्ड जानना, और जो अपनेसे विद्या और आचरणमें न्यून हैं उनमें पूर्वोक्तसे आधा (दश वीस पण) दंड होता है और मोह (चित्तकी वेकली), मद (मदिरा पीनेसे उन्मत्तता), आदि पदसे ग्रह (भूत) का प्रवेश इनसे युक्त मनुष्य भस्म आदिका स्पर्श करै तो दंड न करना॥

भावार्थ-भस्म और पंक रज इनके स्पर्शमें दश पण दंड कहा है और अपवित्र वस्तु, पार्ष्णि (एडी), थूक इनके स्पर्शमें दूना दंड कहा है। यह दंड सवर्णोंमें है और पराई स्त्री और अपनेसे उत्तमोंके स्पर्शमें दूना दंड और अपनेसे हीन गुणवालोंमें पूर्वोक्तसे आधा दंड होता है। मोह और मदवाला मनुष्य भस्म आदिका स्पर्श करै तो उसको दंडका अभाव होता है॥ २१३ ॥२१४॥

विप्रपीडाकरं च्छेद्यमंगमब्राह्मणस्य तु।
उद्गूर्णे प्रथमो दंडः संस्पर्शे तुतदर्द्धिकः २१५

पद-विप्रपीडाकरम् १ च्छेद्यम् १ अंगम् १ अब्राह्मणस्य ६ तु।-उद्गूर्णे ७ प्रथमः १ दंडः १ संस्पर्शे ७ तु।-तदर्धिकः १॥

योजना-विप्रपीडाकरम् अब्राह्मणस्य अंगं छेद्यम्। उद्गूर्णे प्रथमः दंडः तु पुनः संस्पर्शे तदर्धकः दंडः ज्ञेयः॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणोंको पीडा देनेवाला जो ब्राह्मणसे भिन्न (क्षत्रिय आदि) का अंग है (कर चरण आदि) वह छेदन करने योग्य है। और क्षत्रिय वा वैश्यको पीडा करनेवाले शूद्रकाभी अंग छेदनके योग्यही है। क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २७९) में[1] जिस किसी अंगसे निचला वर्ण उत्तमवर्णकी हिंसा करै तो वही २ इसका अंग छेदन करना यह मनुकी आज्ञा है। तीनों द्विजातियोंके अपराधमें शूद्रका अंग छेदन कहनेसे वैश्यभी क्षत्रियका अपकार करै तो यही दंड तुल्यन्यायसे समझना। यदि उद्गूर्ण (मारनेके लिये शस्त्र उठाना) करै तो प्रथम साहस दंड जानना और शूद्रको तो उद्गूर्णमें भी हस्तका छेदनही होता है क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० २८०) की स्मृति है[1] कि हाथ वा हाथसे दंड उठाकर हाथके छेदन करने योग्य होता है। और उद्गिरणके लिये शस्त्र आदिका स्पर्श करै तो उससे आधा अर्थात् प्रथम साहसका आधा दंड जाननां। और प्रतिलोमके अपवाद (अपराधों) में क्षत्रिय और वैश्यको दूने और तिगुने दंड वाक्पारुष्यके समान समझने। शूद्रको तो उसमें भी हस्तका छेदनही है क्योंकि मनुका वचन है (अ० ८ श्लोक २८२) कि[2] जो अभिमानसे किसीके ऊपर निष्ठीव (थूकै) करै तो दोनों ओष्ठोंका, और मूत्र करै तो लिंगका, और अधोवायु करै तो गुदा छेदन करै॥

भावार्थ-ब्राह्मणकी पीडा करनेवाले क्षत्रियके अंगका छेदन करै, मारनेके लिये शस्त्र उठानेमें प्रथम साहसका दंड, और मारनेके लिये शस्त्रके छूनेमें उससे आधा दंड होता है॥ २१५॥

उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ।
परस्परं तु सर्वेषां शस्त्रे मध्यमसाहसः२१६

पद-उद्गूर्णे ७ हस्तपादे ७ तु।-दश-

---

[1] येन केनचिदंगेन हिंस्याच्छ्रेयांसमत्यजः। छेत्तव्य तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्॥

[1] पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।

[2] अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः। अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्॥

विंशतिकौ १ दमौ १ परस्परम् २ तु ऽ-सर्वेषाम् ६ शस्त्रे ७ मध्यमसाहसः १ ॥

योजना-हस्तपादे उद्गूर्णे सति दशविंशतिकौ दमौ वेदितव्यौ, तु पुनः परस्परं शस्त्रे उद्गूर्णे सति मध्यमसाहसः दंडो दाप्यः ॥

ता० भा०-ताडनाके लिये हाथ वा पैर उठावै तो क्रमसे दश पण और बीस पण दंड जानना, यदि सपूर्ण वर्ण मारनेके लिये परस्पर शस्त्र उठावैं तो सबको मध्यम साहस दंड होता है ॥ २१६ ॥

पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषु पणान्दश ।
पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासेशतंदमः ॥

पद-पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषु ७ पणान् २ दश २ पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे ७ शतम् १ दमः १ ॥

योजना-पादकेशांशुककरोल्लुंचनेषु दशपणान् दण्डयः पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतं दमो भवति ॥

ता० भा०-चरण, केश, वस्त्र, हाथ इनको पकडकर जो शीघ्र खींचै वह दशपण दंड देने योग्य होता है, वस्त्रको लपेटकर और खींचकर जो कोई पैरको घिसै तो राजा उसे सौ पण दंड दे ॥ २१७ ॥

शोणितेन विनादुःखं कुर्वन्काष्ठादिभिर्नरः ।
द्वात्रिंशतं पणान्दंडयो द्विगुणं दर्शनेसृजः ॥

पद-शोणितेन ३ विना ऽ-दुःखम् २ कुर्वन् १ काष्ठादिभिः ३ नरः १ द्वात्रिंशतम् २ पणान् २ दण्डयः १ द्विगुणम् २ दर्शने ७ असृजः ६ ॥

योजना-शोणितेन विना काष्ठादिभिः दुःखं कुर्वन् नरः द्वात्रिंशतं पणान् दंडयः असृजः दर्शने द्विगुणं दण्डयः ॥

ता० भा०-जो मनुष्य काष्ठ आदिसे दूसरेको दुःख करै और रुधिर न दीखै तो बत्तीस ३२ पण दंड देने योग्य होता है और भारी ताडनासे रुधिर दीखजाय तो द्विगुण (६४) दंड देने योग्य होता है और त्वचा अस्थि मांसके भेदनेमें तो विशेष मनुने दिखाया है (अ० ८ श्लो० २८४) कि त्वचाके भेदके और लोहितके दिखानेवालेको सौ पणका दंड और मांसके दिखानेवालेको छः निष्कका दंड दे और जो अस्थि (हाड) को तोडै उसे देशसे निकास दे ॥ २१८ ॥

करपाददतो भंगे छेदने कर्णनासयोः ।
मध्यो दंडोव्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा॥२१९

पद-करपाददतः ६ भगे ७ छेदने ७ कर्णनासयोः ६ मध्यः १ दंडः १ व्रणोद्भेदे ७ मृतकल्पहते ७ तथा ऽ- ॥

योजना-करपाददतो भगे, कर्णनासयोः छेदने, व्रणोद्भेदे, तथा मृतकल्पहते मध्यमसाहसो दंडो भवति ॥

ता० भा०-हाथ, पैर, दांतका टूटना और कान नाकके छेदनमें और व्रण (घाव) के भेदनेमें और ऐसी ताडनामें जिससे मनुष्य मरेकी तुल्य होजाय तो मध्यम साहस दंड जानना । यहांभी अपराधके अनुसार दंडकी कल्पना करनी ॥ २१९ ॥

चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने ॥
कंधराबाहुसक्थ्नां च भंगे मध्यमसाहसः॥

पद-चेष्टाभोजनवाग्रोधे ७ नेत्रादिप्रतिभेदने ७ कन्धराबाहुसक्थ्नाम् ६ च ऽ-भगे ७ मध्यमसाहसः १ ॥

योजना-चेष्टाभोजनवाग्रोधे, नेत्रादिप्रतिभेदने च पुनः कन्धराबाहुसक्थ्नां भंगे मध्यमसाहसः दंडो भवति ॥

---

१ त्वग्भेदकः शतं दंडयो लोहितस्य च दर्शकः । मांसभेत्ता च षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः॥

ता० भा०–और गमन, भोजन, भाषण इनके रोकने और नेत्र जिह्वाके भेदन करने और कन्धरा (ग्रीवा), बाहु, सक्थि (जघा) इन प्रत्येकके भजनमें मध्यम साहस दंड जानना ॥

एकं घ्नतां बहूनां च यथोक्ताद्द्विगुणो दमः।
कलहापहृतंदेयंदंडश्चद्विगुणस्ततः ॥२२१॥

पद–एकम् २ घ्नताम् ६ बहूनाम् ६ चऽ–यथोक्तात् ५ द्विगुणः १ दमः १ कलहापहृतम्१ देयम् १ दण्डः १ चऽ–द्विगुणः १ ततःऽ– ॥

योजना–एकं घ्नतां बहूनां यथोक्तात् द्विगुणो दमो ज्ञेयः कलहापहृत देयं ततः द्विगुणो दंडः देयः ॥

तात्पर्यार्थ–जहां बहुतसे मनुष्य मिलकर एकके अंगभग आदिको करें वहां जिस २ अपराधमें जो ६ दड कहा है उससे प्रत्येकको दूना दंड जानना, क्योंकि ये अत्यत क्रूर हैं और प्रातिलोम और अनुलोमके अपराधोंमेंभी सवर्णके विषयमें कहे हुए इन पूर्वोक्त दडोंकी हानि और वृद्धिकी कल्पना दडपारुष्य प्रकरणमें कहे हुए क्रमसे समझनी, क्योंकि यह स्मृति है कि वाक्पारुष्य प्रकरणमें जो दड प्रतिलोम और अनुलोम क्रमसे वर्णोंको कहा है वही दंड दडपारुष्य प्रकरणमें राजा क्रमसे दे। जो मनुष्य कलहके समय जिस द्रव्यको हरले उसको लौटादे और उससे दूना द्रव्य चोरी करनेके अपराधसे दे॥

भावार्थ–बहुतसे मनुष्य एकको मारें उनको पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड होता है। कलहके समय जो द्रव्यको चुरावै वह उसको और उससे दूना दंड दे ॥ २२१ ॥

---

१ वाक्पारुष्ये य एवोक्तः प्रातिलोम्यानुलोमतः। स एव दंडपारुष्ये दाप्यो राज्ञा यथाक्रमम् ॥

दुःखमुत्पादयेद्यस्तुससमुत्थानजंव्ययम् ।
दाप्योदंडं च योयस्मिन्कलहे समुदाहृतः॥

पद–दुःखम् २ उत्पादयेत् क्रि–यः १ तुऽ–सः १ समुत्थानजम् २ व्ययम् २ दाप्यः १ दंडम् २ तुऽ–यः १ यस्मिन् ७ कलहे ७ समुदाहृतः १ ॥

योजना–तु पुनः यः यस्य दुःखम् उत्पादयेत् सः समुत्थानज व्यय च पुनः यस्मिन् कलहे यः दंडः समुदाहृतः त दंड दाप्यः ॥

ता० भा०–जो मनुष्य ताडनासे जिसके दुःख (व्रण आदि) को पैदा करै वह मनुष्य उसके घावके रोपण (भरना) आदिके लिये जो औषधी और पथ्यभोजन उनका व्यय (खर्च) और जिस कलहमें जो दड कहा है उस दंडके देने योग्य है, केवल उनके व्यय मात्रही नहीं ॥ २२२ ॥

अभिघाते यथा छेदे भेदे कुडयावपातने।
पणान्दाप्यःपंचदश विंशतिं तद्व्ययंतथा॥

पद–अभिघाते ७ तथाऽ–छेदे ७ भेदे ७ कुडयावपातने ७ पणान् २ दाप्यः १ पचदश२ विंशतिम् २ तद्व्ययम् २ तथाऽ–॥

योजना–अभिघाते तथा छेदे भेदे कुडयावपातने यथाक्रम पचदश विंशतिं पणान् दाप्यः तथा तद्व्ययं दाप्यः ॥

ता० भा०–पराई भींतके मुद्गर आदिसे फाडने और विदारण (छेदन) और भेदन करनेमें पांच दश बीस पणका दंड क्रमसे जानना और भींतके गिरानेमें तो ये सब दंड मिलाकर समझने और स्वामीको भींत बनानेके लिये व्यय (धन) भी दे ॥ २२३ ॥

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन्प्राणहरंतथा।
षोडशाद्यःपणान्दाप्यो द्वितीयोमध्यमंदमम्॥

पद–दुःखोत्पादि २ गृहे ७ द्रव्यम् २ क्षि-

पन् १ प्राणहरम् २ तथाऽ-षोडश २ आद्यः १ पणान् २ दाप्यः १ द्वितीयः १ मध्यमम् २ दमम् २॥

योजना-गृहे दुःखोत्पादि तथा प्राणहरं द्रव्यं क्षिपन् यो भवति तयोः मध्ये आद्यः षोडश पणान् द्वितीयः मध्यम दमं दाप्यः ॥

ता० भा०-दुःख पैदा करनेवाले कंटक आदि द्रव्यको पराये घरमें जो फेंके उसे सोलह पणका और प्राण हरनेवाले विष सर्प आदिको जो फेंके उसे मध्यम साहसका दंड राजा दे ॥ २२४ ॥

दुःखे च शोणितोत्पादे शाखांगच्छेदनेतथा दंडःक्षुद्रपशूनांतुद्विपणप्रभृतिःक्रमात् २२५

पद-दुःखे ७ चऽ-शोणितोत्पादे ७ शाखांगच्छेदने ७ तथाऽ-दंडः १ क्षुद्रपशूनाम् ६ तुऽ-द्विपणप्रभृतिः १ क्रमात् ५ ॥

योजना-तु पुनः क्षुद्रपशूनां दुःखे शोणितोत्पादे तथा शाखांगच्छेदने क्रमात् द्विपणप्रभृतिः दंडो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अजा अवि मृग आदि क्षुद्र पशुओंकी ताडनाके विषै दुःख करने रुधिर निकालने शाखा अर्थात् जिनमें प्राणोंका सञ्चार न हो ऐसे सींग आदि अंगोंके छेदन करनेमें दो पण आदि दंड समझना, अर्थात् जिस दंडमें दो पण हों उसे द्विपण कहते हैं। वह जिस दंडसमुदायकी आदिमें हो वह द्विपणप्रभृति कहाता है और वह दंडसमुदाय दो पण चार पण, छः पण, आठ पण समझना। और दो पण तीन पण, चार पण, पांच पण आदि न समझना। कदाचित् कोई शंका कर कि यह क्यों न समझना और वही क्यों समझना तो उसका समाधान कहते हैं कि अपराधकी अधिकतासे पहिले दंडसे ऊपरके तीन दंड अत्यंत अधिक जाने जातेहैं और उस दंडमें द्विपण शब्दमें विना सुनी त्रित्व ३ आदि संख्याके स्वीकारकी अपेक्षा सुनी हुई द्वित्व संख्याकेही अभ्यास (बारबार) स्वीकार (बढाने) से दंडकी अधिकताका संपादन करना श्रेष्ठ है इससे सब निर्दोष है ॥

भावार्थ-अजा आदि क्षुद्र पशुओंको दुःख देने रुधिर निकासने शींग काटने और अगके छेदनेमें द्विपण आदि क्रमसे दंड देने ॥२२५॥

लिंगस्यच्छेदनेमृत्यौ मध्यमोमूल्यमेव च । महापशूनामेतेषुस्थानेषुद्विगुणोदमः २२६॥

पद-लिंगस्य ६ छेदने ७ मृत्यौ ७ मध्यमः १ मूल्यम् १ एवऽ-चऽ-महापशूनाम् ६ एतेषु ७ स्थानेषु ७ द्विगुणः १ दमः १ ॥

योजना-तेषां लिंगस्य छेदने मृत्यौ मध्यमसाहसो दंडो भवति च पुनः तन्मूल्यं दातव्यं महापशूनाम् एतेषु स्थानेषु सत्सु द्विगुणो दमो दाप्यः ॥

ता० भा०-और उन क्षुद्र पशुओंके लिंग छेदन और मारनेमें मध्यम साहस दंड और स्वामीको मोलका देना होता है। यदि गौ हस्ती अश्व आदिका ताडन, रुधिर निकासना आदि किये जांय तो पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना ॥ २२६ ॥

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कंधसर्वविदारणे । उपजीव्यद्रुमाणांचविंशतेर्द्विगुणोदमः २२७

पद-प्ररोहिशाखिनाम् ६ शाखास्कंधसर्वविदारणे ७ उपजीव्यद्रुमाणाम् ६ चऽ-विंशतेः ६ द्विगुणः १ दमः १ ॥

योजना-प्ररोहिशाखिनाम् च पुनः उपजीव्यद्रुमाणां शाखास्कंधसर्वविदारणे विंशतेः द्विगुणः दमः यथाक्रमं ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-जिन वृक्षोंकी शाखा प्ररोह (अंकुर) वाली होती है अर्थात् काटकर लगानेसे जिनकी शाखा प्रतिकांड लगकर

हरी रहती हैं और फल फूल देती हैं ऐसी शाखावाले वृक्ष (वट आदि) प्ररोहि शाखी कहाते हैं। उनकी शाखाके छेदनमें, और जिससे मूल शाखा निकसती हैं उस स्कंध (गूदा) के छेदनमें, और समूलवृक्षके छेदनमें, और जिनसे जीविका होती है ऐसे आम्र आदि वृक्षोंकीभी शाखा आदिके छेदनमें क्रमसे बीस पणसे लेकर पूर्व २ से उत्तर २ दंड दूना जानना अर्थात् बीस पण, चालीस पण, अस्सी पण दंड शाखा, स्कंध सब वृक्षके छेदनमें क्रमसे जानना। और जो जीविकाके दाता नहीं हैं वा प्ररोहि शाखीभी नहीं हैं उनमें दंडकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करनी ॥

भावार्थ–जिनकी शाखा लगानेसे दूसरा वृक्ष होजाय, और जिनसे जीविका हो ऐसे वृक्षोंकी शाखा स्कंध और सब वृक्षके भेदनमें बीस, चालीस, अस्सी पण दंड क्रमसे जानना ॥ २२७ ॥

चैत्यश्मशानसीमासुपुण्यस्थाने सुरालये।
जातद्रुमाणांद्विगुणोदमोवृक्षेषुविश्रुते २२८॥

पद–चैत्यश्मशानसमिासु ७ पुण्यस्थाने ७ सुरालये ७ जातद्रुमाणाम् ६ द्विगुणः १ दमः १ वृक्षे ७ अथऽ–विश्रुते ७ ॥

योजना–चैत्यश्मशानसमिासु, पुण्यस्थाने, सुरालये, जातद्रुमाणाम्, अथ विश्रुते वृक्षे द्विगुणः दमः ज्ञेयः ॥

ता० भा०–चैत्य (चबूतरा), श्मशान, सीमा, पुण्य (पवित्र) इनमें उत्पन्न हुए स्थान देवमदिर और पीपल पलाश आदि प्रसिद्ध वृक्ष इनकी शाखा आदिके छेदनमें पूर्वोक्त दंडसे दूना दंड जानना ॥ २२८ ॥

गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम्।
पूर्वस्मृतादर्द्धदंडःस्थानेषूक्तेषुकर्तने ॥२२९॥

पद–गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवरुिधाम् ६ पूर्वस्मृतात् ५ अर्धदंडः १, स्थानेषु ७ उक्तेषु ७ कर्तने ७ ॥

योजना–गुल्मगुच्छक्षुपलताप्रतानौषधिवीरुधाम् उक्तेषु स्थानेषु कर्तने सति पूर्वस्मृतात् अर्धदंडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–जिनकी बहुत लंबी और सघन लता न हों ऐसे मालती आदि गुल्म, और जो वल्लीरूप न हों ऐसे प्रायः सरल न हों वे कुरंड आदि गुच्छ, और जो प्रायः सरल हों ऐसे करवीर आदि क्षुप, और दीर्घ (लंबी) चढनेवाली द्राक्षा आदि लता, और कांड प्ररोहसे रहित हों और सरल जांय वे सारिवा आदि प्रतान और फलके पकनेतक जो रहै वे व्रीहि आदि औषधि और जो छेदन करनेसेभी अनेक प्रकारसे जमजांय वे गिलोय आदि वीरुध कहाते हैं इनका पूर्वोक्त शाखा आदि स्थानोंमें छेदन करनेवाले मनुष्यको पूर्वोक्त दंडसे आधा दंड जानना ॥

भावार्थ–गुल्म, गुच्छ, क्षुप, लता, प्रतान, औषधि, वीरुध इनकी शाखा आदिके छेदन करनेमें पूर्वोक्त दंडसे आधा दंड जानना२२९॥

इति दण्डपारुष्यप्रकरणम् ॥ १९ ॥

अथ साहसप्रकरणम् २०.

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात्साहसं स्मृतम् ।
तन्मूल्याद्द्विगुणो दंडो निह्नवे तु चतुर्गुणः ॥

पद-सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् ५ साहसम् १ स्मृतम् १ तन्मूल्यात् ५ द्विगुणः १ दंडः १ निह्नवे ७ तुऽ-चतुर्गुणः १ ॥

योजना-सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् साहस स्मृतम् तन्मूल्यात् द्विगुणः दण्डः भवति । तु पुनः निह्नवे चतुर्गुणः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-अब साहस नाम विवादपदके व्याख्यान करनेकी इच्छासे प्रथम साहसका लक्षण कहते हैं । सामान्य (साधारण) द्रव्यके वा इच्छाके अनुसार दानके अयोग्य पराये द्रव्यके बलसे हरनेसे साहस कहा जाता है । यह बात कही समझो कि राजाका दंड और जनोंकी निंदा इनको लंघन कर राजपुरुषसे भिन्न जनोंके सामने जो कुछ मारण, पराई स्त्रीका प्रधर्षण (ग्रहण) आदि जो किया जाय वह सब साहस होता है, यह साहसका सामान्य लक्षण है । इससे साधारण धन परधन इनके भी बलसे हरणको करै तो साहस कहा जाता है । नारदने भी साहसके स्वरूपका विवरण किया है कि बलके अभिमानसे जो कुछ कर्म किया जाता है वह साहस कहा है[१] । क्योंकि साहसपदमें सहका अर्थ बल कहा है । सो यह साहस चोरी, वाक्पारुष्य, दंडपारुष्य, स्त्रीसंग्रहण इनमेंभी है तोभी बलके अभिमानरूप उपाधिसे भिन्न होता है, इससे दंडकी अधिकताके लिये पृथक् कहा है । उसके दंडोंकी विचित्रता कहनेके लिये प्रथम साहस आदि भेदसे तीन प्रकार कहकर उसका लक्षण नारदनेही स्पष्ट रीतिसे कहा है कि वह साहस फिर प्रथम मध्यम उत्तम भेदसे तीन प्रकारका जानना उनका लक्षण शास्त्रोंमें पृथक् २ कहा है[१] । फल मूल जल आदि और क्षेत्रकी सामग्री इनके भंग आक्षेप उपमर्दन (मल देना) आदि करनेमें प्रथम साहस होता है । और वस्त्र पशु अन्न पान घरकी सामग्री इनके भंग आदि करनेमें मध्यम साहस कहा है । और विष और शस्त्र आदिसे मारना, पराई स्त्रीका स्पर्श (संग) और जो अन्य प्राणोंका उपरोध (नाश) करनेवाला हो यह उत्तम साहस होता है । उस साहसका दंड यह है, कि प्रथम साहसका दंड कमसे कम सौ पण, और मध्यम साहसका पांच सौ पण, और उत्तम साहसका दंड कमसे कम सहस्र पण इष्ट है । और वध (फांसी) सर्वस्वका हरण, पुरसे निकासना, चिह्नका करना और अपराधीके अंगका छेदन यह दंड उत्तम साहसमें कहा है । यहां वध आदि अपराधके तारतम्य (न्यून-अधिक) से उत्तम साहसमें पृथक्२ वा समस्त देने योग्य हैं । चुराये हुए द्रव्यके मोलसे दूना दंड, और जो मनुष्य साहस करके निह्नव (छिपाना) कर कि मैंने साहस नहीं करा उसको मोलसे चौगुना दंड होता है इसी विशेष दंडके कहनेसे प्रथम

---

१ सहसा क्रियते कर्म यत्किंचिद्बलदर्पितैः । तत्साहसमिति प्रोक्तं सहो बलमिहोच्यते ॥

१ तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं प्रथमं मध्यमं तथा । उत्तमं चेति शास्त्रेषु तस्योक्तं लक्षणं पृथक् ॥ फलमूलोदकादीनां क्षेत्रोपकरणस्य च । भंगाक्षेपोपमर्दाद्यैः प्रथमं साहसं स्मृतम् ॥ वासःपश्वन्नपानानां गृहोपकरणस्य च । एतेनैव प्रकारेण मध्यमं साहसं स्मृतम् ॥ व्यापादो विषशस्त्राद्यैः परदाराभिमर्शनम् । प्राणोपरोधि यच्चान्यदुक्तमुत्तमसाहसम् ॥ तस्य दण्डः क्रियाक्षेपः प्रथमस्य शतावरः । मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पंचशतावरः ॥ उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते । वधः सर्वस्वहरणं पुरान्निर्वासनांकने ॥ तदंगच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे ॥

साहस आदिका जो दंड है वह चोरीसे भिन्नके विषयमें है यह जानागया ॥

भावार्थ-साधारण द्रव्यके बलसे चुरानेमें साहस कहा है। उस चुराये द्रव्यके मोलसे दूना दंड स्वीकार करनेमें, और चुराकर छिपानेमें अर्थात् न माननेमें मोलसे चौगुना दंड होता है ॥ २३० ॥

यःसाहसं कारयतिसदाप्यो द्विगुणं दमम्। यश्चैवमुक्त्वाहं दाता कारयेत्स चतुर्गुणम् ॥

पद-यः १ साहसम् २ कारयति क्रि-सः १ दाप्यः १ द्विगुणम् २ दमम् २ यः १ चऽ-एवम्ऽ-उक्त्वाऽ-अहम् १ दाता १ कारयेत् क्रि-सः १ चतुर्गुणम् २ ॥

योजना-यः साहसं कारयति सः द्विगुणं दमं, च पुनः यः अहं दास्यामि एवं उक्त्वा कारयेत् सः चतुर्गुणं दाप्यः (दण्ड्यः) ॥

ता०-भावार्थ-जो मनुष्य साहस कर ऐसे कहकर साहस कराता है वह साहससे दूना दंड देने योग्य होता है। और जो मैं तुझे धन दूंगा तू साहस कर ऐसे कहकर साहस कराता है वह साहससे चौगुने दंडके योग्य होता है, क्योंकि उसका अपराध अधिक है ॥ २३१ ॥

अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृभार्याप्रहारदः। संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकृत् २३२

पद-अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृत् १ भ्रातृभार्याप्रहारदः १ सदिष्टस्य ६ अप्रदाता १ चऽ-समुद्रगृहभेदकृत् १ ॥

सामंतकुलिकादीनामपकारस्य कारकः। पंचाशत्पणिको दंड एषामिति विनिश्चयः॥

पद-सामंतकुलिकादीनाम् ६ अपकारस्य ६ कारकः १ पंचाशत्पणिकः १ दंडः १ एषाम् ६ इतिऽ-विनिश्चयः १ ॥

योजना-अर्घ्याक्रोशातिक्रमकृत्, भ्रातृभार्याप्रहारदः, च पुनः सदिष्टस्य अप्रदाता, समुद्रगृहभेदकृत्, सामंतकुलिकादीनां अपकारस्य कारकः यः अस्ति एषां दंडः पचाशत्पणिकः भवति, इति विनिश्चयः ॥

ता० भावार्थ-पूजने योग्य आचार्य आदिका आक्रोश (निंदा) और आज्ञाका अवलंघन जो करै, और भ्राताकी स्त्रीको जो ताडना दे, और देनेकी प्रतिज्ञा किये धनको जो न दे, और जो मुद्रित (बंद) घरको खोले, और अपने घर खेत आदिसे मिले हुए घर और क्षेत्रके स्वामियोंका और अपने कुलके मनुष्योंका और आदिपदसे अपने ग्राम और देशके मनुष्योंका जो तिरस्कार करै इन सबको पचास पणका दंड होता है, यह निर्णय है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

स्वच्छंदं विधवागामी विक्रुष्टेनाभिधावकः। अकारणेचविक्रोष्टाचंडालश्चोत्तमान्स्पृशेत् ॥

पद-स्वच्छदम् २ विधवागामी १ विक्रुष्टे ७ नऽ-अभिधावकः १ अकारणे ७ चऽ-विक्रोष्टा१ चडालः१चऽ-उत्तमान्२स्पृशेत् क्रि-॥

शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः। अयुक्तं शपथं कुर्वन्नयोग्योयोग्यकर्मकृत् ॥

पद-शूद्रप्रव्रजितानाम् ६ चऽ-दैवे ७ पित्र्ये ७ चऽ-भोजकः १ अयुक्तम् २ शपथम् २ कुर्वन् १ अयोग्यः १ योग्यकर्मकृत् १ ॥

वृषक्षुद्रपशूनां च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत्। साधारणस्यापलापीदासीगर्भविनाशकृत् ॥

पद-वृषक्षुद्रपशूनाम् ६ चऽ-पुंस्त्वस्य ६ प्रतिघातकृत् १ साधारणस्य ६ अपलापी १ दासीगर्भविनाशकृत् १ ॥

पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः। एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदंडभाक् ॥

पद-पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः १ एषाम् ६ अपतितान्योन्यत्यागी १ च ऽ-शतदंडभाक् १ ॥

योजना-यः स्वच्छंदं विधवागामी, विक्रुष्टे सति न अभिधावकः च पुनः अकारणे विक्रोष्टा, च पुनः यः चण्डाल उत्तमान् स्पृशेत्, च पुनः शूद्रप्रव्रजितानां दैवे च पुनः पित्र्ये (कर्मणि) भोजकः, अयुक्तं शपथं कुर्वन्, यः अयोग्यः योग्यकर्मकृत्, च पुनः वृषक्षुद्रपशूनां पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत्, साधारणस्य अपलापी, दासीगर्भविनाशकृत्, च पुनः ये पितापुत्रस्वसृभ्रातृदंपत्याचार्यशिष्यकाः सन्ति एषाम् अपतितान्योन्यत्यागी सः शतदण्डभाक् भवतीति शेषः ॥

ता० भावार्थ-जो स्वच्छन्द होकर (नियोगके विना अपनी इच्छासे) विधवाके संग गमन करै, और जो चोरोंके भयसे कोई आक्रोश (बुलावे) करै और समर्थ होकर उसके समीप न दौडे, और जो वृथा (झूठा) आक्रोश करै, जो चांडाल ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णोंका स्पर्श करै, जो दिगंबर आदि शूद्र संन्यासियोंको देव और पितरोंके कर्मसे भोजन करावे, जो अयुक्त (मैं माताका गमन करूं इत्यादि) शपथ करै, और जो शूद्र आदि अयोग्य मनुष्य वेदपठन आदि योग्य कर्मको करै, और जो बैल क्षुद्रपशु (अज आदि) इनके पुंस्त्व (सन्तान पैदा करनेकी शक्ति) का नाश करै, जहां वृक्षक्षुद्रपशूनां यह पाठ है वहां यह अर्थ करना कि हिंगु आदि औषधके प्रयोगसे जो वृक्षोंके फल फूल गिरावे, जो साधारण द्रव्यका अपलाप करै (ठगै), और जो दासीके गर्भका पात करावे, और जो अपतितही पिता, पुत्र, भगिनी, भ्राता, स्त्री, पुरुष, आचार्य, शिष्य इनका परस्परका त्याग करै, ये सब एक २ के प्रति सौ २ पण दंडके योग्य होते हैं ॥ २३४ ॥ २३५ ॥ ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

इति साहसप्रकरणम् ॥ २० ॥

निर्णेजकादीनां दण्डकथनम् २१.

वसानस्त्रीन्पणान्दंड्यो नेजकस्तु परांशुकम्।
विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान्दश॥

पद–वसानः १ त्रीन् २ पणान् २ दंड्यः १ नेजकः १ तुऽ–परांशुकम् २ विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु ७ पणान् २ दश २॥

योजना–तु पुनः परांशुकं वसानः नेजकः त्रीन् पणान्, विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु कृतेषु दश पणान् दण्ड्यः भवतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ–साहसके प्रसंगसे साहसके तुल्य अपराधोंमें निर्णेजक आदिको दंड कहते हैं। नेजक (धोबी) यदि धोनेके लिये अर्पण किये पराये वस्त्रोंको स्वय आच्छादन करै (पहने) तो वह तीन पण दंड देने योग्य होता है और जो नेजक उन वस्त्रोंका विक्रय करै वा अवक्रय (भाडेपर) इस रीतिसे दे कि इतने काल पर्यंत उपभोगके लिये वस्त्रोंको देताहूं तू मुझे इतना धन दीजियो, अथवा जो नेजक वस्त्रोंको आधि (गिरवी) रखदे, और अपने मित्रोंको याचित (मांगे) देदे, उस धोबीको प्रति अपराध दश पणोंका दंड राजा दे। और नेजक उन वस्त्रोंको चिकने सेंभलके पट्टेपर धोवै, पाषाण पर न धोवै, और उनका व्यत्यास (बदलना) भी न करै, और न अपने घरपर रक्खै, इस पूर्वोक्तसे अन्यथा करै तो दंड देने योग्य है। क्योंकि मनु (अ० ८ श्लो० ३९६) का वचन है कि सेंभलके चिकने पट्टे पर धोबी वस्त्रोंको धोवै और दूसरेके वस्त्रोंमें वस्त्रोंको न मिलावै और न अपने घरमें रक्खै और जो धोबी प्रमादसे वस्त्रोंको नष्ट करता है उसको नारदका कहा दंड जानना। कि एक बार धोये वस्त्रका मूल्य आठवां भाग हीन (कम) होताहै। दो बार धोनेमें दो पाद, तीन बार धोनेमें तीन भाग, चार बार धोनेमें आधा नष्ट हो जाता है। आधे नाशसे पाछे एक २ वार धोनेमें क्रमसे एक २ पाद कम होजाता है। जब उसकी दशा (छोर) जीर्ण होगई होय तो वस्त्र जीर्ण कहाता है, जीर्णके क्षयका नियम नहीं है, तात्पर्य यह है कि आठ पणसे मोल लिया वस्त्र एक वार धोया जाय और उसको धोबी नष्ट करदे तो अष्टम भागसे हीन (सातपण) मूल्य धोबी दे। और दो बार धुला वस्त्र होय तो पादसे हीन, तीन बार धुला होय तो तीन भागसे हीन, चार बार धुलेका आधा भाग, अर्थात् चार पण दंड धोबी दे। तिससे परे प्रत्येक धुलाईमें शेष वस्त्रके मोलको एक २ पाद घटा २ करदे। इतने वह वस्त्र जीर्ण न हो और जीर्ण वस्त्रको नष्ट कर दे तो वहां अपनी इच्छासे मोल देनेकी कल्पना राजा करले॥

भावार्थ–धोबी पराये वस्त्रोंको धारण करै (पहने) तो तीन पण दंड, और बेचे वा भाडेपर दे अथवा गिरवी रक्खै और मांगे दे तो दश पण दंड देने योग्य होता है॥ २३८॥

पितापुत्रविरोधे तु साक्षिणां त्रिपणो दमः।
अंतरे च तयोर्यः स्यात्तस्याप्यष्टगुणो दमः॥

पद–पितापुत्रविरोधे ७ तुऽ–साक्षिणाम् ६ त्रिपणः १ दमः १ अन्तरे ७ चऽ–तयोः ६ यः १ स्यात् क्रि–तस्य ६ अपिऽ–अष्टगुणः १ दमः १॥

योजना–तु पुनः पितापुत्रविरोधे साक्षिणां त्रिपणः दमः भवति। च पुनः यः तयोः अन्तरे स्यात् तस्य अपि अष्टगुणः दमः ज्ञेयः॥

ता० भा०–पिता पुत्रके विरोधमें जो मनुष्य साक्षी होना स्वीकार करता है और उनके कलहका निवारण नहीं करता वह तीन पण

---

१ शाल्मले फलके श्लक्ष्णे निज्याद्वासांसि नेजकः। न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत्॥

२ मूल्याष्टभागो हीयेत सकृद्धौतस्य वाससः। द्विपादस्त्रिस्तृतीयांशश्चतुर्धौतेऽर्धमेव च॥ अर्धक्षयात्तु परतः पादांशापचयः क्रमात्। यावत्क्षीणदशं जीर्णं जीर्णस्यानियमः क्षयः॥

दंड, और जो उनके पणसहित विवादमें पण देवानेका प्रतिभू (जामिन) होता है और चकार पढनेसे जो उनके कलहको बढाता है वह तीन पणसे आठगुना (२४ पण) दंड देने योग्य होता है। स्त्री पुरुष आदिके विरोधमेंभी यही दंड समझना ॥ २३९ ॥

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च । एभिश्च व्यवहर्ता यः स दाप्यो दममुत्तमम्॥

पद-तुलाशासनमानानाम् ६ कूटकृत् १ नाणकस्य ६ चऽ-एभिः ३ चऽ-व्यवहर्ता १ यः १ सः १ दाप्यः १ दमम् २ उत्तमम् २ ॥

योजना-यः तुलाशासनमानानां च पुनः नाणकस्य कूटकृत्, च पुनः यः एभिः व्यवहर्ता अस्ति सः उत्तमं दमं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-तुला (तोलनेका दड) और पूर्वोक्त शासन (शिक्षा) प्रस्थ द्रोण आदि तोलनेकी वस्तु, और राजमुद्रासे अंकित द्रम्म निष्क आदि नाणक इन सबको जो कूट करता है अर्थात् देशमें प्रसिद्ध परिमाणसे न्यून वा अधिक रूपसे अन्यथा करता है, अथवा द्रव्य आदिकी ऐसी मुद्राको करे जो व्यवहारमें प्रचलित न हो वा द्रम्म आदिके गर्भमें तांबा आदि करता है, और जो मनुष्य जानकर कूट उन पूर्वोक्तोंसे व्यवहार करता है वे दोनों उत्तम साहस दड देने योग्य होते हैं ॥

भावार्थ-तोल, राजाका शासन मान (बाट आदि) नाणक इनको जो कूट करता है और जो कूटरूप इनसे व्यवहार करता है वे दोनों उत्तम साहस दंड देने योग्य होते हैं ॥ २४० ॥

अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् । सनाणकपरीक्षी तु दाप्य उत्तमसाहसम्॥

पद-अकूटम् २ कूटकम् २ ब्रूते क्रि-कूटम् २ यः १ चऽ-अपिऽ-अकूटकम् २ सः १ नाणकपरीक्षी १ तुऽ-दाप्यः १ उत्तमसाहसम् २ ॥

योजना-यः अकूट कूटक ब्रूते च पुनः कूटम् अपि अकूटक ब्रूते सः नाणकपरीक्षी उत्तमसाहसं दाप्यः (दंडनीयः)

ता० भावार्थ-जो नाणककी परीक्षा करनेवाला (जौहरी) तांबा मिले द्रम्म आदि कूट नाणकको अकूट (श्रेष्ठ) और श्रेष्ठको कूट (मिलावट) कहता है वह उत्तम साहस दंड देने योग्य होता है ॥ २४१ ॥

भिषङ्मिथ्याचरन्दंड्यस्तिर्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे मध्यमंराजपुरुषेषूत्तमंदमम्॥

पद-भिषक् १ मिथ्याऽ-आचरन् १ दण्ड्यः १ तिर्यक्षु ७ प्रथमम् २ दमम् २ मानुषे ७ मध्यमम् २ राजपुरुषेषु ७ उत्तमम् २ दमम् २ ॥

योजना-तिर्यक्षु मिथ्या आचरन् भिषक् प्रथम दम, मानुषे मध्यमं, राजपुरुषेषु उत्तमं दमं दण्ड्यः, भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-जो वैद्य आयुर्वेदको न जानकर जीविकाके लिये मैं चिकित्सा करना जानताहूं ऐसा समझकर तिर्यक् (पशु) मनुष्य और राजाके पुरुष इनकी चिकित्सा (इलाज) करता है वह क्रमसे प्रथम, मध्यम, उत्तम साहस दड देने योग्य होता है, इसमेंभी तिर्यक् आदिमें मोलके विशेषसे, मनुष्योंमें वर्णके विशेषसे और राजपुरुषोंमें राजाके समीपकी विशेषतासे दडकी न्यूनता और अधिकता जाननी ॥

भावार्थ-वैद्य तिरछी योनियोंमें और मनुष्योंमें और राजाके पुरुषोंमें मिथ्या चिकित्सा (झूठी हिकमत) करै तो क्रमसे प्रथम साहस, मध्यम साहस, उत्तम साहस दंड देने योग्य होता है ॥ २४२ ॥

अवध्यं यश्च बध्नाति बद्धं यश्च प्रमुंचति।
अप्राप्तव्यवहारं च सदाप्योदममुत्तमम् २४३

पद्-अवध्यम् २ यः १ चऽ-बध्नाति क्रि-बद्धम् २ यः १ चऽ-प्रमुचाति क्रि-अप्राप्तव्यवहारम् २ चऽ-सः १ दाप्यः १ दमम् २ उत्तमम् २॥

योजना-यः अवध्य बध्नाति च पुनः यः बद्ध च पुनः अप्राप्तव्यवहार प्रमुंचति सः उत्तम दम दाप्यः (दडयः) ॥

ता० भावार्थ-जो मनुष्य वधनके अयोग्यको बांधता है और वधे हुएको और जिसका व्यवहार समाप्त न हुआहो उसको छोडता है वह उत्तम साहस दड देने योग्य है ॥ २४३ ॥

मानेन तुलया वापि योंशमष्टमकंहरेत्।
दंडंसदाप्योद्विशतंवृद्धौ हानौचकल्पितम्॥

पद्-मानेन ३ तुलया ३ वाऽ-अपिऽ-यः १ अंशम् २ अष्टमकम् २ हरेत् क्रि-दंडम् २ सः १ दाप्यः १ द्विशतम् २ वृद्धौ ७ हानौ ७ चऽ-कल्पितम् २ ॥

योजना-यः मानेन वा तुलया अपि अष्टमकम् अंशं हरेत् सः द्विशतं दमं च पुनः वृद्धौ हानौ कल्पितं दम दाप्यः ॥

ता० भावार्थ-जो व्यापारी व्रीहि और कपास आदि पण्य (विकने योग्य) द्रव्यके अष्टम अंशको कूटमान (वाट आदि) वा कूट तुलासे वा किसी अन्य प्रकारसे हरता है अर्थात् कम देता है वह दो सौ पण दंड और चुराये द्रव्यकी वृद्धि वा हानिमें जो दंड कल्पित हो वह दंड देने योग्य होता है ॥ २४४ ॥

भेषजस्नेहलवणगंधधान्यगुडादिषु।
पण्येषु प्रक्षिपन्हीनंपणान्दाप्यस्तु षोडश॥

पद्-भेषजस्नेहलवणगधधान्यगुडादिषु ७ पण्येषु ७ प्रक्षिपन् १ हीनम् २ पणान् २ दाप्यः १ तुऽ-षोडश २ ॥

योजना-तु पुनः भेषजस्नेहलवणगधधान्यगुडादिषु पण्येषु हीनं प्रक्षिपन् वणिक् षोडश पणान् दाप्यः (दंडयः), ॥

ता० भा०-भेषज(औषध)घृत आदि स्नेह, लवण, उशीर, चंदन आदि गंध द्रव्य अन्न, गुड और आदि शब्दसे हींग मिरच आदि इन पण्य द्रव्योंमें जो हीन (असार) द्रव्य मिलाकर विक्रय करता है वह सोलह १६ पण दड देने योग्य होता है ॥ २४५ ॥

मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम्।
अजातौजातिकरणेविक्रेयाष्टगुणोदमः २४६

पद्-मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् ६ अजातौ ७ जातिकरणे ७ विक्रेयाष्टगुणः १ दमः १ ॥

योजना-मृच्चर्ममणिसूत्रायःकाष्ठवल्कलवाससाम् अजातौ जातिकरणे विक्रेयाष्टगुणः दमः (दंडः) ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-जिसकी बहुत मोलकी जाति न हो उस मिट्टी चर्म आदिको अजाति कहते हैं उस मिट्टी, चाम, मणि, सूत, लोहा, काठ, वक्कल, वस्त्रमें जातिको जो करै अर्थात् गधवर्ण और अन्य रसके सचार (मिलावन) से अधिक मोलकी जातिके सदृश करै, जैसे चमेलीकी सुगधको मिलाकर मिट्टीमें सुगध आंवला वताना, विलावके चर्ममें उत्तम वर्ण बनाकर व्याघ्रका चर्म वताना, स्फटिक मणिमें अन्यके रगको मिलाकर पद्मराग कहना, कपासके सूतमें गुणकी अधिकता बनाकर पट्टसूत (रेशम) वताना, काले लोहेमें उत्तम वर्ण करके चांदी वताना, वेलके काठमें चंदनकी सुगध मिलाकर

चंदन बताना, कंकोलको त्वचारूप लौंग बताना, कपासके वस्त्रमें श्रेष्ठ गुणका रंग मिलाकर कौशेय(रेशम) बताना इन सब अजातिके जाति करनेमें विक्रय करने (बेंचने) योग्य बनाये द्रव्यका आठ गुना दंड जानना अर्थात् उत्तमसे आठ गुना समझना ॥

भावार्थ-मिट्टी, चाम, मणि, सूत, लोहा, काठ, वक्कल, वस्त्र इन अजाति (अल्पमोल) केको जो जाति (अधिक मोलके) करै उसको विक्रयके योग्य द्रव्यके मोलसे आठगुना दंड होता है ॥ २४६ ॥

समुद्रपरिवर्तं च सारभांडं च कृत्रिमम् ।
आधानं विक्रयंवापिनयतोदंडकल्पना २४७

पद-समुद्रपरिवर्तम् १ चऽ-सारभांडम् २ चऽ-कृत्रिमम् २ आधानम् २ विक्रयम् २ वाऽ-अपिऽ-नयतः ६ दंडकल्पना १ ॥

भिन्ने पणे तु पंचाशत्पणे तु शतमुच्यते ।
द्विपणो द्विशतंदंडोमूल्यवृद्धाचवृद्धिमान्॥

पद-भिन्ने ७ पणे ७ तुऽ-पचाशत् १ पणे७ तुऽ-शतम् १ उच्यते क्रि-द्विपणे ७ द्विशतम्१ दण्डः १ मूल्यवृद्धौ ७ चऽ-वृद्धिमान् १ ॥

योजना-समुद्रपरिवर्त च पुनः कृत्रिमं सारभांडम् आधानं विक्रयं वा नयतः पुंसः इयं दंडकल्पना ज्ञेया पणे भिन्ने (न्यूनपणमूल्ये) सति पंचाशत्पणः पणे (पणमूल्ये) शतं द्विपणे द्विशतं दंडः एवं मल्यवृद्धौ वृद्धिमान् दडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-मुद्रनाम पिधान (ढकना) का है मुद्रसे जो युक्त हो उसे समुद्र कहते हैं। उसके परिवर्तको जो करै अर्थात् ढके हुए करंड (पिटारी) को मोतियोंसे पूर्णको दिखाकर अपने हाथके लाघव (चतुराई) से स्फटिकोंके भरे करंडका समर्पण करता है और जो सारभांड (कस्तूरी आदि) को कृत्रिम (बनी करके) आधि रखता है वा विक्रय करताहै उसके दंडकी कल्पना यह जाननी कि यदि कृत्रिम कस्तूरी आदिका मोल पणसे न्यून होय तो उसके विक्रय आदि करनेमें पचास पणका दंड होता है और यदि पणही मोल होय तो सौ पण दंड, दो पण मोल होय तो दो सौ पण दंड होता है इस प्रकार मोलकी वृद्धिमें दंडकी भी वृद्धि जाननी ॥

भावार्थ-जो मनुष्य ढकी हुई पिटारीको बदलकर देता है अर्थात् अन्य दिखाकर अन्यको देता है और जो कस्तूरी आदि सारभांड (उत्तमद्रव्य) को कृत्रिम बनाकर आधि वा विक्रय करता है उसका दंड यह है कि कस्तूरी आदिका मोल पणसे कम होय तो पचास पणका दंड, पण मोल होय तो सौ पण दंड, दो पण मोल होय तो दो सौ पण दंड होता है। इसी प्रकार मोलकी वृद्धिमें दंडकी वृद्धि जाननी ॥ २४७॥२४८ ॥

संभूयकुर्वतामर्घं सबाधं कारुशिल्पिनाम् ।
अर्घस्यह्रासंवृद्धिंवाजानतोदमउत्तमः२४९॥

पद-सम्भूयऽ-कुर्वताम्६ अर्घम् २ सबाधम् २ कारुशिल्पिनाम् ६ अर्घस्य६ह्रासम् २ वृद्धिम् २ वाऽ-जानताम् ६ दमः १ उत्तमः १ ॥

योजना-अर्घस्य ह्रासं वा वृद्धिं जानतां कारुशिल्पिनाम् अर्घं संभूय सबाध कुर्वतां उत्तमः दमः ज्ञेयः ॥

ता० भावार्थ-जो मनुष्य राजाके नियत किये अर्घ (भाव) की न्यूनता और आधिक्ताको जानते हुए व्यापारी मिलकर, रजक आदि कारु, और चित्रकार आदि शिल्पी इनकी पीडा करनेवाले अन्य अर्घको अपने लाभके लोभसे करते हैं वे उत्तम साहस दंड देने योग्य होते हैं ॥ २४९ ॥

संभूय वणिजांपण्यमनर्घेणोपरुंधताम् ।
विक्रीणतांवाविहितोदंडउत्तमसाहसः २५०

पद-संभूयऽ- वणिजाम् ६ पण्यम् २ अनर्घेण ३ उपरुधताम् ६ विक्रीणताम् ६ वाऽ-विहितः १ दंडः १ उत्तमसाहसः १ ॥

योजना-अनर्घेण पण्यं संभूय उपरुधतां, वा महार्घेण विक्रीणतां वणिजां उत्तमसाहसः दण्डः विहितः (मन्वादिभिरितिशेषः) ॥

ता॰ भा॰-जो वैश्य वा व्यापारी मिलकर देशांतरसे आये पण्य (बिकने योग्य) द्रव्यको चाहते हुए अनर्घ (अल्पमोल) कहकर विकनेसे रोकते हैं । अथवा महार्घ्य (महंगा) से वेंचते हैं उन सबको उत्तम साहस दंड मनु आदिकोंने कहा है ॥ २५० ॥

राजनिस्थाप्यते योर्घःप्रत्यहं तेन विक्रयः ।
क्रयोवानिस्रवस्तस्माद्वणिजांलाभकृत्स्मृतः

पद-राजनि ७ स्थाप्यते क्रि- यः १ अर्घः १ प्रत्यहम्ऽ-तेन ३ विक्रयः १ क्रयः १ वाऽ-निस्रवः १ तस्मात् ५ वणिजाम् ६ लाभकृत् १ स्मृतः १ ॥

योजना-राजनि संनिहिते सति यः तेन अर्घः स्थाप्यते तेन प्रत्यहं विक्रयः वा क्रयः कर्तव्यः तस्मात् निस्रवः वणिजां लाभकृत् स्मृतः ॥

तात्पर्यार्थ-राजाके समीप रहते जो अर्घ (भाव) राजा वा द्रव्यका स्वामी स्थापन करदें उसी अर्घसे प्रतिदिन क्रय (खरीदना) और विक्रय (बेचना) करै और उस अर्घ (भाव) से जो स्त्रव (बढना) हो अर्थात् राजाके किये अर्घसे जो बढे वही व्यापारियोंका लाभकारी होता है और अपनी इच्छासे नियत किये अर्घसे लाभ वैश्योंको नहीं कहा है । मनुने (अ० ८ श्लो० ४०२) तो अर्घ करनेमें विशेष दिखाया है कि पांचवें २ दिन वा पक्ष वा मास २ बीतनेपर राजा व्यापारियोंके समक्ष (रूबरू) अर्घका स्थापन करै[1] ॥

भावार्थ-राजा जिस अर्घ (भाव) का स्थापन करदे उसीसे प्रतिदिन विक्रय वा क्रय करै उससे जो निस्रव (बढै) वही धन व्यापारियोंका लाभकारी कहा है ॥ २५१ ॥

स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग्गृह्णीत पंचकम् ।
दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी ॥

पद-स्वदेशपण्ये ७ तुऽ-शतम् २ वणिक् १ गृह्णीत क्रि-पंचकम् २ दशकम् २ पारदेश्ये ७ तुऽ-यः १ सद्यःऽ-क्रयविक्रयी १ ॥

योजना-यः वणिक् सद्यः क्रयविक्रयी अस्ति सः स्वदेशपण्ये पचक शतं, तु पुनः पारदेश्ये दशकं शतं गृह्णीत ॥

तात्पर्यार्थ-जो व्यापारी अपने देशमें पैदा हुए पण्य द्रव्यको मोल लेकर शीघ्रही (उसी दिन) विक्रय करै वह सौ पण पर पांच पण लाभको ग्रहण करै । और जो द्रव्य परदेशसे आया हो उसके शत पण मूल्यके हिसाबसे दश पण लाभको ग्रहण करै । और जो व्यापारी कालांतरमें वेचै उसको कालकी अधिकताके अनुसार लाभकी अधिकता करनी । इससे उस रीतिसे अपने देशके पण्यका अर्घ राजा नियत करै जैसे सौ पणपर पांच पणका लाभ व्यापारियोंको होसकै ॥

भावार्थ-उस दिनके लिये पण्यको उसी दिन विक्रय करनेवाला व्यापारी अपने देश-

---

[1] पंचरात्रे पचरात्रे पक्षे मासे तथा गते । कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसस्थापन नृपः ।

-के पण्यमें सौ पणपर पांच पण और पर देशसे आये पण्यमें सौ पणपर दशपण लाभको ग्रहण करे ॥ २५२ ॥

पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवम्।
अर्घोनग्रहकृत्कार्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च२५३॥

पद-पण्यस्य ६ उपरिऽ-संस्थाप्यऽ-व्ययम् २ पण्यसमुद्भवम् २ अर्घः १ अनुग्रहकृत् १ कार्यः १ क्रेतुः ६ विक्रेतुः ६ एवऽ-चऽ-॥

योजना-पण्यसमुद्भव व्यय पण्यस्य उपरि संस्थाप्य क्रेतुः च पुनः विक्रेतुः अनुग्रहकृत् अर्घः राज्ञा कार्यः ॥

ता० भावार्थ-देशांतरसे आये पण्यमें देशांतरके आने जाने और भांडोंका ग्रहण और शुल्क आदि स्थानोंमें जो धन व्यय हुआ हो उतने धनका पण्यके मोलमें मिलाकर जैसे सौ पणमें दश पणका लाभ हो उस प्रकार क्रेता और विक्रेताके अनुग्रह करनेवाले अर्घका स्थापन राजा करै ॥ २५३ ॥

इति निर्णेजकादिदण्डकथनम् ॥

अथ विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम् २१.

गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति।
सोदयंतस्यदाप्योसौदिग्लाभंवादिगागते॥

पद-गृहीतमूल्यम् २ यः १ पण्यम् २ क्रेतुः ६ नऽ-एवऽ-प्रयच्छति क्रि-सोदयम् २ तस्य ६ दाप्यः १ असौ १ दिग्लाभम् २ वाऽ-दिगागते ७॥

योजना-यः पुरुषः गृहीतमूल्य पण्य क्रेतुः न प्रयच्छति असौ तस्य सोदयं मूल्यं वा दिगागते पण्ये दिग्लाभ दाप्यः राज्ञेति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-अब प्रसंगसे आये साहसके सदृश (तुल्य) अपराधोंके दंडका निरूपण करके विक्रीयासंप्रदानका प्रारभ करते हैं। उसका स्वरूप नारदने यह कहाहै कि मोलसे पण्यको वेचकर क्रेताको जो न दियाजाय वह विक्रीयासंप्रदान नाम विवादका पद कहाता है। उसमें भी विक्रेय (वेचने योग्य) द्रव्यके चर अचर दो भेद कर छः प्रकारका नारदने ही कहाहै कि इस लोकमें जगम और स्थावर रूप दो प्रकारका पण्यद्रव्य होता है। बुद्धिमानोंने उसके देने और लेनेकी विधि छः प्रकारकी कही है कि गणित, तुलित, मेय, क्रियासे रूपसे, लक्ष्मीसे अर्थात् क्रमुकके फल आदि गिनतीसे, सुवर्ण कस्तूरी आदि तोलसे, शाली आदि परिमाणसे वाहन दुहना आदि रूप क्रियासे अश्व भैंस आदि और रूपसे पण्य स्त्री (वेश्या) आदि लक्ष्मी (कांति) से मरकत पद्म राग आदि लिये दिये जाते है। इस छः प्रकारकेभी पण्यको विक्रय करके जो न दे उसके दंडको कहते हैं कि ग्रहण किया है मोल जिसका ऐसे पण्यको विक्रय करनेवाला यदि प्रार्थना करते हुए अपने देशके व्यापारी लेनेवालेको अर्पण नहीं करता है और वह द्रव्य क्रय (लेना) के समय बहुत मोलका हो और कालांतरमें अल्पमूल्यसे ही मिलसके तो अर्घके ह्रास (कमी) से किया जो उदय (वृद्धि) स्थावर जगमरूप पण्यद्रव्यकी उस वृद्धिसहित पण्यद्रव्यको विक्रेताको राजा दिवावे। और जहां मोलकी न्यूनताका किया पण्यका उदय न हो और क्रयके समयमें जितना मोलपण्यद्रव्यका निश्चित हुआहो, उतनेही उस पण्यद्रव्यको लेकर उसी देशमें विक्रय करते (बेंचते) हुए मनुष्यको जो लाभ (नफा) उस सहित वा पूर्वोक्त सौ रुपये पर दो तीन रुपये वृद्धि सहित मूल्यको क्रेताकी इच्छाके अनुसार बेंचनेवालेसे राजा दिवावे। सोई नारदने कहाहै कि अर्घहीन होजाय तो उदय (वृद्धि) सहित पण्यको दे। यह नियम एक स्थान वासियोंमें है। जो देशोंमें विचरते हैं उनको देश विचरनेका लाभभी दे और जब अर्घ (भाव) की आधिकता (तेजी) से पण्यकी न्यूनता हो तब उस गृह आदि पण्यको विक्रेतासे क्रेताको दिवावे। सोई नारदने कहा है कि जो मोलसे पण्यको बेंचकर क्रेताको नहीं देता वह स्थावर धनकी हानि और जगम धनकी क्रियाके फलका दंड देने योग्य है। विक्रय करनेवालेके

१ विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेतुर्यन्न प्रदीयते। विक्रीयासप्रदानं तद्विवादपदमुच्यते॥

२ लोकेऽस्मिन् द्विविध पण्यं जंगम स्थावरं तथा। षड्विधस्तस्य तु बुधैर्दानादानविधिः स्मृतः॥ गणितं तुलित मेय क्रियया रूपतः श्रिया॥

१ अर्घश्चेदवहीयेत सोदय पण्यमावहेत्। स्थानिनामेप नियमो दिग्लाभं दिग्विचारिणाम्॥

२ विक्रीय पण्यं मूल्येन यः क्रेतुर्न प्रयच्छति। स्थावरस्य क्षयं दाप्यो जंगमस्य क्रियाफलम्॥

उपभोगको क्षय कहते हैं क्योंकि उसमें जो क्षय (नाश) हुआ है वह क्रेताके द्रव्यका हुआ है कुछ भीतसे गिरना, सस्यका नाश आदि क्षय नहीं लेना, क्योंकि वह तो जो पण्य नष्ट होजाय, जलजाय, चुरायाजाय वह सब अनर्थ उस विक्रेताकाही होता है। जो विक्रय करके पण्यको नहीं देता इस[1] वचनसे ही कह आये। और जब यह क्रेता देशांतरसे पण्य लेनेके लिये आयाहो तब विक्रेतासे उतना द्रव्य क्रेताको दिवावे। जितना लाभ देशांतरमें बेंचनेसे उस पण्यसे हो उतनी वृद्धि और उस पण्यका मोल यह विक्रीत (बेंचा) पण्यके समर्पणका नियम अनुशय (ठहरना) के अभावमें जानना। और जहां अनुशय हो वहां तो वह मनुका कहा दंड जानना जो (क्रीत्वा विक्रीय वा किंचित्) इस वचनमें कहाहै कि (अ० ८ श्लो० २२२) जिस मनुष्यको किसी द्रव्यको खरीदकर वा बेचकर अनुशय हो (पछतावा) वह दश दिनके भीतर उस द्रव्यको देदे और लेले ॥

भावार्थ-जो व्यापारी मोलको लेकर पण्यद्रव्यको नहीं देता वह वृद्धिसहित पण्यके मूल्यको दे और अन्य देशसे आया द्रव्य होय तो अन्य देशके बेंचनेमें जो लाभ हो उसकोभी दे॥२५४॥

विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वक्रेतर्यगृह्णति।
हानिश्चेत्क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत्२५५

पद-विक्रीतम् २ अपिऽ-विक्रेयम् २ पूर्वक्रेतरि ७ अगृह्णति ७ हानिः १ चेत्ऽ-क्रेतृदोषेण ३ क्रेतुः ६ एवऽ-हिऽ-सा १ भवेत् क्रि-॥

योजना-विक्रीतम् अपि विक्रेय पूर्वक्रेतरि अगृह्णति सति चेत् (यदि) क्रेतृदोषेण हानिः भवेत् तर्हि सा हानिः क्रेतुः एव भवेत् न विक्रेतुः ॥

ता० भा०-यदि क्रेता संदेहको प्राप्त होकर पण्यको ग्रहण किया न चाहै तब विक्रीतभी पण्यको अन्यत्र विक्रय करदे (बेंचदे) और जहां विक्रेताके दिये हुए पण्यको क्रेता ग्रहण न करै और वह द्रव्य राजा दैव उपद्रवसे नष्ट होजाय तो वह हानि क्रेताकीही होती है क्योंकि वह द्रव्यका नाश पण्यके ग्रहण करनेरूप क्रेताके दोषसे हुआ है ॥ २५५ ॥

राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते।
हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः॥

पद-राजदैवोपघातेन ३ पण्ये ७ दोषम् २ उपागते ७ हानिः १ विक्रेतुः ६ एवऽ-असौ १ याचितस्य ६ अप्रयच्छतः ६ ॥

योजना-राजदैवोपघातेन पण्ये दोषम् उपागते सति याचितस्य अप्रच्छतः विक्रेतुः एव असौ हानिः भवतीति शेषः ॥

ता० भा०-और जब क्रेताकी प्रार्थनासे भी विक्रेता पण्यको न दे और अनुशय (संदेह) के न होनेपरभी वह द्रव्य राजा वा दैवसे नष्ट होजाय तो वह हानि विक्रेताकी ही होती है। इससे अन्य जो अदुष्ट पण्य है चाहे वह नष्टके सदृशभी हो तोभी क्रेताको देदे ॥ २५६ ॥

अन्यहस्ते च विक्रीतं दुष्टं वा दुष्टवद्यदि।
विक्रीणीते दमस्तत्र मूल्यात्तद्द्विगुणो भवेत्॥

पद-अन्यहस्ते ७ चऽ-विक्रीतम् २ दुष्टम् २ वाऽ-अदुष्टवत्ऽ-यदिऽ-विक्रीणीते क्रि-

---

[1] उपहन्येत वा पण्य दह्येतापह्रियेत वा। विक्रेतुरेव सोऽनर्थो विक्रीयासंप्रयच्छतः।
[2] क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत्। सोन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत च ॥

दमः १ तत्र ऽ–मूल्यात् ५ तु ऽ–द्विगुणः १ भवेत् क्रि–॥

योजना–यः अन्यहस्ते विक्रीतं वा दुष्टं अदुष्टवत् यदि विक्रीणीते तत्र मूल्यात् द्विगुणः दमः भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य पश्चात्तापके विनाही एकके हाथ विक्रय किये पण्यको फिर अन्यके हाथ विक्रय करता है, अथवा दोषवाले (बुरे) पण्यको दोषोंको छिपाकर अदुष्टके समान बेंचताहै तो वह मूल्यसे दूने दंडके योग्य होता है। नारदनेभी यहां विशेष दिखाया है कि अन्यके हाथ बेंचकर जो अन्यको देता है वह द्रव्यसे दूने दंडको और उतनेंही पण्यको देने योग्य है और जो निर्दोषको दिखाकर दोषसहितको देता है वह मूल्यसे दूने दंडको और उतनेही पण्यका दंड देने योग्य है। यह सब विधि उस पण्यमें जाननी जिसका मूल्य देदियाहो। और जिस पण्यका मूल्य न दियाहो केवल वाणीसेही क्रय किया (बेंचा) हो वहां क्रेता और विक्रेता निर्णय किये समयको छोडकर प्रवृत्ति वा निवृत्तिमें कोई दोष नहीं है। सोई नारदने कहा है कि दिया है मोल जिसका ऐसे पण्यकी यह विधि कही है, मोल न दिया होय तो समयको छोडकर विक्रेताका अविक्रय नहीं होता॥

भावार्थ–जो व्यापारी अन्यके हाथ बेंचकर अन्यको बेंचता है वा दुष्ट पदार्थको अदुष्टके समान बेंचता है वहां दंड मूल्यसे दूना होता है ॥ २५७ ॥

१ अन्यहस्ते च विक्रीय योऽन्यस्मै तत्प्रयच्छति । द्रव्य तद्द्विगुणं दाप्यो विनयस्तावदेव तु ॥ निर्दोषं दर्शयित्वा तु सदोषं यः प्रयच्छति । स मूल्याद्द्विगुणं दाप्यो विनयं तावदेव तु ॥

२ दत्तमूल्यस्य पण्यस्य विधिरेष प्रकीर्तितः । अदत्तेऽन्यत्र समयान्न विक्रेतुरविक्रयः ॥

क्षयं वृद्धिं च वणिजा पण्यानामविजानता । क्रीत्वानानुशयः कार्यः कुर्वन्षड्भागदंडभाक् ॥

पद–क्षयम् २ वृद्धिम् २ च ऽ–वणिजा ३ पण्यानाम् ६ अविजानता ३ क्रीत्वा ऽ–न ऽ–अनुशयः १ कार्यः १ कुर्वन् १ षड्भागदंडभाक् १ ॥

योजना–पण्यानां क्षयं च पुनः वृद्धिम् अविजानता वणिजा पण्य क्रीत्वा अनुशयः न कार्यः अनुशयं कुर्वन् वणिक् षड्भागदंडभाक् भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–परीक्षा करके क्रीत (खरीदे) पण्योंका क्रय करनेके अनतर क्रय कालके परिमाणसे अर्घ (भाव) से कीहुई वृद्धिको जो न जानसके वह क्रेता अनुशय न करै। इसी प्रकार विक्रेताभी महार्घ (महंगा) से हुए पण्यके क्षयको न जाने तो अनुशय न करै। क्योंकि वृद्धि क्षयके ज्ञानसेही क्रेता और विक्रेताको अनुशय होता है यह बात निषेधरूपसे कही समझनी। अनुशयके कालकी अवधि तो नारदने कही है कि यदि क्रेता मूल्यसे पण्यको खरीदकर दुष्क्रीत (बुरा खरीदा) मानै तो विक्रेताको उसी दिन अविक्षत (ज्योंका त्यों) लौटा दे। यदि क्रेता दूसरे दिन लौटावै तो तीसरा भाग विक्रेताको दे, और तीसरे दिन उससे दूना दे, इससे परे वह द्रव्य क्रेताकाही होता है और परीक्षा किये विना जो क्रय विक्रय है वह पण्यके वैगुण्य (दुष्टता) की अवधि दश, एक, पांच दिन, सप्ताह इत्यादि वचनसे दिखायहां आये हैं तिससे इस वाणीकी युक्तिके द्वारा वृद्धि और क्षयका परिज्ञान (जानना) अनुशयका कारण

१ क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी । विक्रेतुः प्रतिदेयं तत्तस्मिन्नेवाह्न्यविक्षतम् ॥ द्वितीयेह्नि ददेत् क्रेता मूल्यात्त्रिंशांशमात्रकम् ॥ द्विगुणं तु तृतीयेह्नि परतः क्रेतुरेव तत् ॥

जानागया तैसेही पण्यकी परीक्षाकी अवधिके बलसे पण्यके दोषकी अनुशयके कारण हैं। इससे पण्यका दोष और पण्यकी वृद्धि और क्षय ये तीनों कारण न होंय यो अनुशयके कालके मध्यमेंभी यदि अनुशय करै तो पण्यके छः भाग दंड देने योग्य होता है और अनुशयका कारण होय और अनुशयके कालके अनंतर अनुशय करै तो उसकोभी यही दंड होता है। जो पदार्थ उपभोगसे नष्ट नहीं होते और जिनका अर्घभी स्थिर रहता है उनमें अनुशयकालके बीतनेपर अनुशय करनेपर मनु (अ० ८ श्लो० २२३) का कहा दंड जानना, कि दश दिनसे परे न दे और न दिवावे। यदि ले और दे तो राजा छः सौ पणका दंड दोनोंको दे॥

भावार्थ-जो व्यापारी पण्यद्रव्यके क्षय और वृद्धिको न जाने वह क्रय करके अनुशय न करै। यदि करै तो छः भाग दंडका भागी होत है॥ २५८॥

इति विक्रीयासंप्रदानप्रकरणम्॥ २१॥

अथ संभूयसमुत्थानप्रकरणम् २२.

समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वताम्।
लाभालाभौयथाद्रव्यंयथावासंविदाकृतौ ॥

पद्–समवायेन ३ वणिजाम् ६ लाभार्थम् २ कर्म २ कुर्वताम् ६ लाभालाभौ १ यथाद्रव्यम् २ यथाऽ–वाऽसंविदा ३ कृतौ ७ ॥

योजना–समवायेन लाभार्थं कर्म कुर्वतां वणिजां लाभालाभौ यथाद्रव्यं वा संविदा यथा कृतौ तथा भवतः ॥

तात्पर्यार्थ–हम सब इस कामको मिलकर करें यह जो निश्चय उसे समवाय कहते हैं। उस समवायसे जो व्यापारी, नट, नर्तक आदि लाभकी इच्छासे कामको प्रतिस्विक (पृथक् २) रूपसे करते हैं उनको लाभ और अलाभ (नफा टोटा) यथा द्रव्य अर्थात् जिससे जितना द्रव्य पण्यके ग्रहणार्थ दियाहो उसकेही अनुसार जानने अथवा मुख्य और गौणभावको देखकर इसके दो भाग रहे इसका एक भाग रहा इस प्रकार जो संमति परस्पर करलीहो उसके अनुसार लाभ और अलाभ जानने ॥

भावार्थ–समूहसे जो व्यापारी कामको लाभके लिये करते हैं उनको लाभ और अलाभ धनके अनुसार होते हैं वा संमतिसे जो करलियाहो उसके अनुसार जानने ॥ २५९ ॥

प्रतिषिद्धमनादिष्टंप्रमादाद्यच्चनाशितम्।
सतद्दद्याद्विप्लवाच्चरक्षिताद्दशमांशभाक् ॥

पद्–प्रतिषिद्धम् १ अनादिष्टम् १ प्रमादात् ५ यत् १ चऽ–नाशितम् १ सः १ तत् २ दद्यात् क्रि– विप्लवात् ५ चऽ– रक्षितात् ५ दशमांशभाक् १ ॥

योजना–प्रतिषिद्धम् अनादिष्टम् च पुनः येन यत् प्रमादात् नाशितम् तत् द्रव्यं सः दद्यात्। च पुनः विप्लवात् रक्षितात् दशमांशभाक् भवति ॥

तात्पर्यार्थ–और उन समूहसे व्यापार करनेवालोंके मध्यमें जो मनुष्य इस पण्यका व्यवहार इस प्रकार न करना ऐसे निषेध कियेको करता है और व्यापार करते समय जो द्रव्य नष्ट कर दियाहो, वा अनादिष्ट (जिसकी आज्ञा न दीहो) कामको करै वा प्रमाद (मंदबुद्धि) से जो द्रव्य नष्ट कर दियाहो वही उस पण्यको व्यापारियोंको दे, और जो मनुष्य उन सबके मध्यमें चौर और राजाके उपद्रवसे पण्यकी रक्षा करै वह उस रक्षा किये द्रव्यमेंसे दशम भागको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ–जो मनुष्य निषेध किये विना कहे कामको करै वा प्रमादसे पण्यका नाश करै वहीं उस पण्यको दे, और जो चौर वा राजाके उपद्रवसे पण्यकी रक्षा करै वह दशवें भागको प्राप्त होता है ॥ २६० ॥

अर्घप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् ॥
व्यासिद्धं राजयोग्यंचविक्रीतंराजगामितत् ॥

पद्–अर्घप्रक्षेपणात् ५ विंशम् २ भागम् २ शुल्कम् २ नृपः १ हरेत् क्रि–व्यासिद्धम् १ राजयोग्यम् १ चऽ–विक्रीतम् १ राजगामि १ तत् १ ॥

योजना–नृपः अर्घप्रक्षेपणात् विंशं भागं शुल्कं हरेत्। व्यासिद्धं च पुनः राजयोग्यं यत् विक्रीतं तत् राजगामि भवतीति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–इतने पण्यका इतना मोल रहा इसको अर्घ कहते हैं उसका प्रक्षेपण (प्रचार वा निरूपण) राजासे होता है इस हेतुसे वह राजा मूल्यमेंसे वीसवां भाग अपना शुल्क (कर) ग्रहण करले और जो पण्य अन्यत्र न वेचना इस प्रकार राजाने निषेध करदियाहो वा जो मणि माणिक्य आदि राजाके योग्य हों

नहीं निषेध कियेभी उनको राजाके निवेदन किया विना लाभके लोभसे विक्रय करता है वह सब विना मूल्यके दियेही राजगामि होता है अर्थात् उन सब पण्योंको राजा ग्रहण करले और मोल न दे ॥

भावार्थ-अर्घ (भाव) के नियत करनेसे बीसवां भाग कर राजा ग्रहण करले और निषेध किये और राजाके योग्य पण्यको जो बेंचता है वह सब राजाका होता है ॥ २६१ ॥

मिथ्यावदन्परीमाणंशुल्कस्थानादपासरन् ।
दाप्यस्त्वष्टगुणंयश्चसव्याजक्रयविक्रयी ॥

पद-मिथ्याऽ-वदन् १ परीमाणम् २ शुल्कस्थानात् ५ अपासरन् १ दाप्यः १ तुऽ-अष्टगुणम् २ यः १ चऽ-सव्याजक्रयविक्रयी १ ॥

योजना-परीमाणं मिथ्या वदन् शुल्कस्थानात् अपासरन् च पुनः यः सव्याजक्रयविक्रयी अस्ति सः अष्टगुणं दाप्यः ॥

ता० भा०-जो मनुष्य व्यापारी होकर शुल्ककी वंचनाके लिये पण्यके परीमाण (तोल) को मिथ्या कहताहै वा शुल्कस्थान (पोनटोटी) से छिपकर जाता है और जो व्याज (बहाना) से अर्थात् यह इसका पण्य है वा इसका इस प्रकार विवादके योग्य पण्यको खरीदता है, वे सब पण्यसे आठगुने दंड देने योग्य होते हैं ॥ २६२ ॥

तरिकःस्थलजंशुल्कंगृह्णन्दाप्यःपणान्दश ।
ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमंत्रणे ॥

पद-तरिकः-१ स्थलजम् २ शुल्कम् २ गृह्णन् १ दाप्यः १ पणान् २ दश २ ब्राह्मणप्रातिवेश्यानाम् ६ एतत् १ एवऽ-अनिमंत्रणे ७ ॥

योजना-स्थलजं शुल्कं गृह्णन् तरिकः दश पणान् दाप्यः । ब्राह्मणप्रातिवेश्यानाम् अनिमंत्रणे एतत् एव दंडदानं ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-और शुल्क दो प्रकारका जल और स्थलके भेदसे होता है। उनमें स्थलका शुल्क अर्घको नियत करनेसे बीसवें भागको राजा लेले। इस वचनमें कह आये जलका शुल्क मनु (अ० ८ श्लो० ४०-४-५-७) न कहा है कि नावमें यानसे एक पण, मनुष्यसे आधा पण, पशु और स्त्रीसे चौथाई पण, और रिक्त (भाररहित) मनुष्यसे पणका आठवां भाग ले, और जो यान (गाडी आदि) भांडोंसे भरे हों उनमें जैसे द्रव्यसे भरे हों उसके अनुसार लें, और रिक्तभांड होय तो और पुरुषोंके पासभी कुछ सामग्री न होय तो उनसे यत्किंचित् द्रव्य लेले, और दो मास आदिकी गर्भवती स्त्री और संन्यासी मुनि और ब्रह्मचर्य आदि लिंगवाले ब्राह्मण इतने मनुष्योंसे नावकी उतराई न ले, और दोनों प्रकारके भी शुल्कोंमें यह औरभी विशेष कहाहै कि भिन्न (बने) सुवर्णपर शुल्क नहीं होता, और शिल्पसे जो जीविका करे, बालक, दूत, और जो भिक्षासे मिले, और चोरीका शेष हो और वेदपाठी, संन्यासी और यज्ञ इनमें शुल्क नहीं होता। जिससे तरजांय उस नाव आदिको तरि कहते हैं उसके शुल्कका जो अधिकारी वह तरिक कहाता है। यदि वह स्थलके शुल्कको ग्रहण करे तो दशपण दंड

---

१ पणं यानं तरेर्दाप्यः पुरुषोऽर्धपणं तरेः । पादंपशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ भांडपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः । रिक्तभांडानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥ गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिंगिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं नराः ॥

२ न भिन्नकार्षापणमस्ति शुल्कं न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न दूते । न भैक्षलब्धे न हृतावशेषे न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे ॥

देने योग्य होता है। वेशनाम वेश्म (घर) का है और वेशके संमुख वा समीपमें जो घर हों वे प्रतिवेश कहाते हैं उनमें जो वसें वे प्रातिवेश्य होते हैं। वेदपाठ और सदाचरणसे युक्त उन ब्राह्मणोंका यदि धनी होकर श्राद्ध आदिमें निमत्रण न दे तो यही दश पणका दंड उसकोभी जानना॥

भावार्थ–यदि नाववाला (मलाह) स्थलके शुल्कको ग्रहण करै तो दश पण दंड देने योग्य होता है। और जो अपने आसपास रहते श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमत्रण न दे उसकोभी यही दंड जानना॥ २६३॥

देशांतरगते प्रेते द्रव्यं दायादबांधवाः।
ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः॥

पद–देशांतरगते ७ प्रेते ७ द्रव्यम् २ दायादबांधवाः १ ज्ञातयः १ वाऽ–हरेयुः क्रि–तत् २ आगताः १ तैः ३ विनाऽ–नृपः १॥

योजना–देशांतरगते प्रेते सति आगताः दायादबांधवाः वा ज्ञातयः तत् द्रव्य हरेयुः तैः विना नृपः हरेत्॥

तात्पर्यार्थ–जब संभूय (इकट्ठे) होकर काम करनेवालोंके मध्यमें कोई मनुष्य देशांतरमें जाकर मरजाय तो उसके अंशको दायाद (पुत्र आदि संतान), वा बांधव (मातृपक्षके मातुल आदि), ज्ञाति (अपत्यवर्गसे भिन्न वा सपिंड) आनकर उस धनको ग्रहण करें अथवा देशांतरोंसे आये संभूयकारी लें। और वे दायाद आदि न हों तो राजा ग्रहण करै। इसी वचनमें पढे वाशब्दसे विकल्पसे अधिकारको दिखाते हैं। पूर्व कौन ले इसका नियम तो पत्नीदुहितरः इस वचनसे अपुत्र धनके विभागमें जो कह आये हैं वही यहांभी जानना। शिष्यसब्रह्मचारी ब्राह्मणका निषेध और व्यापारि (साझी) योंकोभी मिलना इस वचन बनानेका प्रयोजन है। व्यापारियोंके मध्यमें जो पिंड देने और ऋण देनेमें समर्थ हो वही धनको ग्रहण करै। यदि किसीमेंभी सामर्थ्यकी विशेषता न होय तो सब विभाग करके ग्रहण करलें। वेभी न हांय तो दश वर्ष पर्यंत दायादोंकी प्रतीक्षा (बाट देख) करके उनके न आनेपर राजा ग्रहण करले। सोई यह सब नारदने स्पष्ट कियां है कि एक मरजाय तो उसका दायाद धनको प्राप्त होता है, दायाद न होय तो कोई अन्यही ले, और सभी समर्थ हांय तो सबही ग्रहण करैं, वेभी न हांय तो राजा उस धनको दशवर्षतक गुप्त रक्खै। यदि दशवर्षतक स्थित किये धनका कोई दायाद और स्वामी न आवे तो राजा उस धनको अपने अधीन करले तो धर्ममें हानि नहीं होती॥

भावार्थ–अन्य देशमें जाकर कोई व्यापारी मरजाय तो उसके द्रव्यको दायाद बांधव वा ज्ञातिके मनुष्य आकर ग्रहण करैं वे न हांय तो राजा ग्रहण करै॥ २६४॥

जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोन्येन कारयेत्॥
अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम्॥

पद–जिह्मम् २ त्यजेयुः क्रि–निर्लाभम् २ अशक्तः १ अन्येन ३ कारयेत् क्रि–अनेन ३ विधिः १ आख्यातः १ ऋत्विक्कर्षककर्मिणाम् ६॥

योजना–जिह्मं निर्लाभं त्यजेयुः। अशक्तः अन्येन कारयेत्। ऋत्विक्कर्षककर्मिणां विधिः अनेन आख्यातः (कथितः)॥

तात्पर्यार्थ–और जो व्यापारी वंचक (छलिया) है उसको निर्लाभ (लाभको छीन-

---

१ एकस्य चेत्स्यान्मरणं दायादोऽस्य तदाप्नुयात्। अन्यो वाऽसति दायादे शक्ताश्चेत्सर्व एव ते॥ तदभावे तु गुप्तं तत्कारयेद्दश वत्सरान्। अस्वामिकमदायादं दशवर्षस्थितं ततः॥ राजा तदात्मसात्कुर्यादेवं धर्मो न हीयते॥

कर) करके त्यागदें, और जो व्यापारी अपने काम करनेमें अशक्त हो अर्थात् भांडोंका देखना आदि न कर सकै वह अपने कामको अन्य मनुष्यसे करादे, अर्थात् भांडोंके भारका वाहन (लेजाना) और आय और व्ययकी परीक्षा आदि किसी अन्यसे करादे। इसी वैश्योंके धर्मको ऋत्विज आदिमें कहते हैं। इसी मार्गसे अर्थात् द्रव्यके अनुसार लाभ होते हैं इस व्यापारियोंके धर्मकथनसे होता आदि सोलह ऋत्विज और कर्षक (किसान) और नट नर्तक तक्षा आदि शिल्प कर्मसे जीनेवालोंकी विधि (वर्ताव) कहा है। उनमें भी ऋत्विजोंके धनविभागमें विशेष मनुने दिखाया[1] है (अ० ८ श्लो० २१०) कि सबसे मुख्य आधे धनको और दूसरे उससे आधे धनको और तीसरे तीसरे भागको और चौथे चौथाई भागको ग्रहण करैं। इसका यह अर्थ है कि उस यजमानको सौ गौ लेकर ज्योतिष्टोम यज्ञ कराते हैं इस[2] वचनसे सौ गौ ऋत्विजोंकी दक्षिणा कर्ममें कही हैं, और होतासे आदि लेकर सोलह ऋत्विज होते हैं उन सौ गौओंमें किसका कितना भाग होता है इस अपेक्षामें यह मनुका वचन कहा है, कि सब होता आदि ऋत्विजोंके मध्यमें जो मुख्य चार (होता अध्वर्यु ब्रह्मा उद्गाता) हैं वे सौ गौओंका आधा भाग अर्थात् सबको भाग पूरा २ होजाय इसके वशसे अठतालीस ४८ गोरूप आधे भागको ग्रहण करैं। अपर जो चार (मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता) हैं वे मुख्योंके अंशके आधे (चौबीस २४) भागको लें, और जो तीसरे चार (अच्छावाक्, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता) हैं वे मुख्योंके तीसरे भाग (सोलह गौ) को ग्रहण करें, और जो चौथे चार (ग्रावस्तुत्, उन्नेता, पोता, सुब्रह्मण्य) हैं वे मुख्योंके भागके चौथे भाग (बारह गौ) को ग्रहण करैं। कदाचित् कोई शंका करै कि यह भागका नियम कैसे घट सकता है, यहां न कोई समय (संकेत) है न द्रव्यका समुदाय है, और न कोई वचन है जिसके बलसे यह पूर्वोक्त भागका नियम होजाय, इससे जहां कोई प्रमाण न सुनाजाय वहां सम[1] भाग होता है इस न्यायसे सब ऋत्विजोंको समान भाग वा कर्मके अनुसार अंशका भाग युक्त है, इस शंकाके समाधानको कहते हैं कि ज्योतिष्टोम है प्रकृति जिसकी ऐसे द्वादश यज्ञमें आधे तीसरे चौथाई भागवाले ऋत्विज होते हैं यह सिद्धके समान अनुवाद जबतक नहीं घट सकता यदि द्वादशाहकी प्रकृति ज्योतिष्टोम यज्ञमें आधा तीसरा चौथाई भाग मैत्रावरुण आदिकोंको न हो इससे वैदिक कर्मकी ऋद्धि (बढना) आदिकी समाख्या (कहना) के बलसे पूर्वोक्त अंशके नियमकी कल्पना की है अर्थात् सबको समान मिलनेमें वेदमें अधिक श्रम कोई न करैगा, इससे सब निर्दोष है॥

भावार्थ-जो व्यापारी वंचक है उसको लाभको न देकर त्यागदें, और जो व्यापारी अपने काम करनेमें असमर्थ है वह अपना काम अन्यसे करावे, यही विधि ऋत्विज, किसान, शिल्पी आदि कर्मियोंमें कही है॥२६५॥

१ सर्वेषामर्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥

२ ज्योतिष्टोमेन तं शतेन दक्षियांति ॥

१ समं स्यादश्रुतत्वात् ।

२ द्वादशाहेऽर्धिनस्तृतीयिनः पादिनः ।

इति संभूयसमुत्थानप्रकरणम् ॥ २२ ॥

अथ स्तेयप्रकरणम् २३.

ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा।
पूर्वकर्मापराधी च तथा चाशुद्धवासकः॥२६६॥

पद-ग्राहकैः ३ गृह्यते क्रि-चौरः १ लोप्त्रेण ३ अथऽ-पदेन ३ वाऽ-पूर्वकर्मापराधी १ चऽ-तथाऽ-चऽ-अशुद्धवासकः १ ॥

योजना-चौरः लोप्त्रेण अथवा पदेन च पुनः पूर्वकर्मापराधी तथा अशुद्धवासकः ग्राहकैः (राजपुरुषैः) गृह्यते ॥

तात्पर्यार्थ-अब स्तेयप्रकरणका प्रारंभ करते हैं। उसका लक्षण मनुने कहा है (अ० ८ श्लो० ३३२) कि जो किसी संबंधके द्वारा बलात्कारसे कर्म किया जाय वह साहस होता है। और जिसमें कोई संबंध न हो वा जो करके छिपाया जाय वह स्तेय (चोरी) होता है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्वय (संबंध) वाला जो हो अर्थात् द्रव्यका रक्षक राजाका अध्यक्ष आदिके समक्ष जो कर्म बलके अभिमानसे पराये धनका चुराना आदि किया जाय वह साहस होता है। स्तेय तो उससे विलक्षण है अर्थात् जो निरन्वय (संबंधके विना) द्रव्य स्वामीके असमक्ष (पीछे) ठगकर जो पराये धनका हरण किया जाय वह स्तेय कहाता है। और जो स्वामी आदिके समक्ष करके यह मैंने नहीं किया यह कहकर भयसे छिपाया जाय वहभी स्तेय होता है। नारदनेभी कहाहै कि नाना प्रकारके उपायोंसे जो छलकर भली प्रकार प्रमत्त और प्रमत्तोंसे धन आदिका लेना उसको बुद्धिमान् मनुष्य स्येय कहते हैं॥

---

१ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम्। निरन्वयं भवेत्स्तेयं कृत्वापह्नवते च यत्॥

२ उपायैर्विविधैरेषां छलयित्वापकर्षणम्। सुप्रमत्तः प्रमत्तेभ्यः स्तेयमाहुर्मनीषिणः॥

अब तस्कर (चौर) के ज्ञानका उपाय कहते हैं। जिसको मनुष्य ऐसे कहैं कि यह चौर है उसको राजाके पुरुष वा स्थानपाल आदि ग्राहक ग्रहण करलें (पकडलें) अथवा लोप्त्र अर्थात् चुराये हुए भाजन आदि चोरीके चिह्नसे, अथवा नाशके दिनसे लेकर चोरकें पदके अनुसरण (पैड) से, अथवा जो पूर्व कर्मका अपराधी (प्रसिद्ध चोर) हो वा जिसका वास अशुद्ध (बुरा) वा अज्ञात हो ऐसे मनुष्यको ग्राहक राजाके पुरुष ग्रहण करलें॥

भावार्थ-पकडनेवाले राजाके पुरुष चोरको लोप्त्र (मुद्रा) से और पदसे, और पूर्वकी चोरीके अपराधसे, और अशुद्ध स्थानके वसनेसे ग्रहण करलें (पकडलें)॥२६६॥

अन्येपि शंकयाग्राह्याजातिनामादिनिह्नवैः।
द्यूतस्त्रीपानसक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः॥

पद-अन्ये १ अपिऽ-शंकया ३ ग्राह्याः १ जातिनामादिनिह्नवैः ३ द्यूतस्त्रीपानसक्ताः १ चऽ-शुष्कभिन्नमुखस्वराः १ ॥

परद्रव्यगृहाणां च पृच्छका गूढचारिणः।
निरायाव्ययवंतश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः॥२६८

पद-परद्रव्यगृहाणाम् ६ चऽ-पृच्छकाः १ गूढचारिणः १ निरायाः १ व्ययवन्तः १ चऽ-विनष्टद्रव्यविक्रयाः १ ॥

योजना-अन्ये अपि शंकया जातिनामादिनिह्नवैः ग्राह्याः च पुनः द्यूतस्त्रीपानसक्ताः शुष्कभिन्नमुखस्वराः च पुनः परद्रव्यगृहाणां पृच्छकाः, गूढचारिणः, च पुनः निरायाः व्ययवन्तः, विनष्टद्रव्यविक्रयाः, एते अपि ग्राह्याः॥

तात्पर्यार्थ-और केवल पूर्वोक्तकोही ग्रहण न करें अन्यभी आगे वर्णन किये चिह्नोंसे शंकासे पकडने योग्य हैं। जातिके निह्नवसे

कि मैं शूद्र नहीं हूं, और नामका निह्नवसे कि मैं लपित्थ नहीं हूं आदि पदसे अपने देश ग्राम कुल आदिके अपलाप (छिपाना) से युक्तभी पकडने योग्य समझने, और द्यूत, वेश्या, मदिरा पीना आदि व्यसनोंमें जो अत्यंत आसक्त हों, और जिसको चोरोंके पकडनेवाले ऐसे पूछें कि तू कहां रहता है, यदि वह शुष्कमुख और भिन्नस्वर होजाय अर्थात् उसका मुख सूख जाय और गद्गद वाणीसे बोले तो वहभी पकडने योग्य है और शुष्कभिन्नमुखस्वराः इस बहुवचनसे जिनके मस्तकपर स्वेद आजाय उनकाभी ग्रहण है, तैसे जो मनुष्य विना कारण इसके कितना धन है वा इसका घर कौनसा है इस प्रकार पूछें और जो दूसरा वेष बदलकर अपने स्वरूपको छिपाकर विचरते हैं, और जो आय (प्राप्ति) के अभावमेंभी बहुत व्यय (खर्च) करते हैं, और जो विनष्टद्रव्य अर्थात् ऐसे जीर्णवस्त्र फूटे पात्र आदिको बेंचते हैं जिनके स्वामीकी प्रतीति न हो ये पूर्वोक्त सब चोरकी संभावनासे पकडने योग्य हैं। इस प्रकार नाना प्रकारके चिह्नोंसे पुरुषोंको पकडकर यह भली प्रकार परीक्षा करै कि ये चोर हैं वा साधु हैं। कुछ चिह्नके देखनेसेही चोरका निर्णय न करले, क्योंकि चोरसे भिन्नकेभी लोप्त्र आदिका चिह्न होसकता है सोई नारदने कहा है कि अन्यके हाथसे गिरे वा विनाही इच्छाके भूमिपर पडे वा चोरके गेरे लोभकी परीक्षा राजा यत्नसे करै । तैसेही कहा है कि असत्य सत्योंके समान और सत्य असत्योंके समान अनेक प्रकारके जीव होते हैं तिससे परीक्षा करनी कही है ॥

१ अन्यहस्तात्परिभ्रष्टमकामादुत्थितं भुवि । चौरेण वा परिक्षिप्तं लोप्त्रं यत्नात्परीक्षयेत् ॥

२ असत्याः सत्यसंकाशाः सत्याश्चासत्यसन्निभाः । दृश्यंते विविधाभावास्तस्मादुक्तं परीक्षणम् ॥

भावार्थ-अन्यभी शंका जाति और नामके छिपानेसे और द्यूत, स्त्री, मदिरापान इनमें आसक्त, और जिनका मुख शुष्क हो और स्वर (वाणी) का भेद हो, और जो पराये द्रव्य और गृहोंको पूछें, और छिपे हुए रूपसे विचरैं, और जो विना आयके अधिक व्यय करैं, और जो विनष्ट (निंदित वा फटे) द्रव्यका विक्रय करैं (बेचें) ये सब पकडने योग्य होते हैं ॥ २६७ ॥ २६८ ॥

गृहीतःशंकया चौर्येनात्मानं चेद्विशोधयेत् । दापयित्वागतं द्रव्यं चौरदंडेनदंडयेत् २६९

पद-गृहीतः १ शंकया ३ चौर्ये ७ नऽ-आत्मानम् २ चेत्ऽ-विशोधयेत् क्रि-दापयित्वाऽ-गतम् २ द्रव्यम् २ चौरदंडेन ३ दंडयेत् क्रि- ॥

योजना-शंकया चौर्ये गृहीतः पुरुषः चेत् (यदि) आत्मानं न विशोधयेत् तर्हि गतं द्रव्यं दापयित्वा चौरदंडेन राजा दंडयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि शंकासे चोरीमें पकडा हुआ मनुष्य उसके निस्तारके लिये अपने आत्माको शुद्ध न करै तो आगे वर्णन किये धन दिलाना वध आदि जो चोरके दंड हैं उनका दंड उसको राजा दे । इससे चोर अपनेको मानुष प्रमाण (साक्षी आदि) और वह न होय तो दिव्यसे शुद्ध करै । कदाचित् कोई शंका करै कि (नाहं चौरः) मैं चोर नहीं हूं इस मिथ्या उत्तरमें कैसे प्रमाण होसकता है क्योंकि वह अभावरूप है, इसका समाधान कहते हैं । दिव्यप्रमाण भाव अभाव रूपसे दो प्रकारका (रुच्या वान्यतरः कुर्यात्) इस वचनमें कह आये हैं । और मानुष प्रमाण यद्यपि शुद्ध मिथ्या उत्तरमें अभावरूप नहीं होसकता तथापि किसी कारणसे मिला है भावरूप जिसमें ऐसे

मिथ्याकारण साधनके द्वारा अभावको भी विषय करताही है, जैसे इसकी जब वस्तुका नाश वा चोरी हुईथी तब मैं देशांतरमें था इस प्रकार प्रामाणिक मनुष्योंसे जब देशांतरमें स्थितिको सिद्ध करदिया तब चोरीका अभाव अर्थात् सिद्ध हो गया इससे अपराधसे शुद्धि हो सकती है ॥

भावार्थ–चोरीमें शंकासे पकडा हुआ मनुष्य यदि अपने आत्माको शुद्ध न करै तो चोरीमें गये द्रव्यको दिवाकर चोरका दंड राजा उसको दे ॥ २६९ ॥

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वास्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥

पद–चौरम् २ प्रदाप्यऽ–अपहृतम् २ घातयेत् क्रि–विविधैः ३ वधैः ३ सचिह्नम् २ ब्राह्मणम्२ कृत्वाऽ–स्वराष्ट्रात् ५ विप्रवासयेत् क्रि–॥

योजना–चौरम् अपहृतं प्रदाप्य विविधैः वधैः घातयेत्। ब्राह्मणं सचिह्नं कृत्वा स्वराष्ट्रात् विप्रवासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य पूर्वोक्त परीक्षासे वा परीक्षाके विनाही चौर निश्चित होजाय उससे स्वामीको चुराया धन वा उसका मोल दिवाकर नाना प्रकारके वधों (हिंसा) से मरवायदे। यहभी उत्तम दंडकी प्राप्तिके योग्य उत्तम द्रव्यके विषयमें समझना। और पुष्प वस्त्र आदि क्षुद्र, मध्यम, द्रव्यकी चोरीके विषयमें नहीं है। क्योंकि इस[1] नारदके वचनसे वधरूप उत्तम साहसका दंड उत्तम द्रव्यके विषयमेंही कहाहै कि तीन साहसोंमें जो दंड बुद्धिमानोंने कहाहै वही दंड तीन प्रकारके द्रव्योंकी चोरीमें क्रमसे जानना। जो यह वृद्धमनुका वचन[1] है कि ये चोर अन्यायसे द्रव्यका संचय करते हैं इससे इनका धन मलरूप है इससे राजा चोरोंको मरवादे, धनका दंड न दे, वहभी महान् अपराधके विषयमें समझना, और ब्राह्मण चोरको तो महान् अपराधमेंभी न मरवावे किंतु मस्तकपर चिह्न करकर अपने देशसे निकासदे, और चिह्नभी श्वपदके आकारका करना। सोई मनु (अ० ९ श्लो० २३७) ने कहा[2] है कि गुरुकी स्त्रीके गमनमें भगका चिह्न, मदिराके पानमें सुराकी ध्वजाका, और चोरीमें श्वपदका, और ब्रह्महत्यारेके विना शिरके मनुष्यके चिह्नको करै यहभी उसको है जो दंडके पीछे प्रायश्चित्त न किया चाहै। सोई मनु (अ० ९ श्लो० २४०) ने कहा[3] है कि यथोचित प्रायश्चित्तको करतेहुए सब वर्णोंके मस्तकपर राजा चिह्न न करै किंतु उत्तम साहसका दंड दे ॥

भावार्थ–चोरसे चुराया धन स्वामीको दिवायकर अनेक प्रकारके वधोंसे मरवाय दे, और ब्राह्मण चोरको तो चिह्न करके अपने देशमेंसे निकास दे ॥ २७० ॥

घातितेपहृतेदोषो ग्रामभर्तुरनिर्गते।
विवीतभर्तुस्तु पथि चौरोद्धर्तुरवीतके २७१

पद–घातिते ७ अपहृते ७ दोषः १ ग्रामभर्तुः ६ अनिर्गते ७ विवीतभर्तुः ६ तुऽ–पथि ७ चौरोद्धर्तुः ६ अवीतके ७ ॥

---

[1] साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दंडो मनीषिभिः। स एव दंडः स्तेयेऽपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥

[1] अन्यथ्योपात्तवित्तत्वाद्धनमेषां मलात्मकम्। अतस्तान्घातयेद्राजा नार्थं दंडेन दंडयेत् ॥

[2] गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः। स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥

[3] प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम्। नांक्या राज्ञा ललाटे तु दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥

योजना-चौरपदे अनिर्गते सति घातिते अपहृते ग्रामभर्तुः दोषः तु पुनः पथि विवीत-भर्तुः अवीतके चौरोद्धर्तुः दोषः भवतीति शेषः॥

तात्पर्यार्थ-यदि ग्रामके मध्यमें मनुष्य आदि प्राणीका वध, वा धनकी चोरि होजाय तो उस समयमें ग्रामके भर्ता (जिमीदार) को चोरकी उपेक्षाका दोष है। यदि वह ग्रामसे निकसे चोरकी पद (पैड) को न दिखादे, और वह ग्रामका पति दोषके दूर करनेके लिये चोरको पकडकर राजाके अर्पण करदे, अर्पण न करसके तो चोरिका धन धनके स्वामीको दे, यदि चौरके पदको ग्रामका भर्ता दिखायदे तो जहां पदका प्रवेश हो उसी देशका अधिपति चोर और धनको अर्पण करै, सोई नारदने कहा है[1] कि, जिसके विषय (देश) में धनका लोप (नाश) हो वही चोरको पकडे और धन दे। यदि चोरका पद वहांसे न निकसाहो, और ग्रामसे निकसा पद यदि अन्यत्र न जाय तो सामंत मार्गके पालक और दिशाओंके पालकोंसे दिवावे, विवीत (ग्रामके समीप छूटी भूमि) में चोरी होय तो विवीतका जो स्वामी उसकाही अपराध है। और यदि मार्ग वा विवीतको छोडकर अन्य किसी क्षेत्रमें धनका नाश होय तो चोरोंका उद्धार (निकासना) करनेवाले मार्गपाल और दिशाओंके पालोंका दोष होता है॥

भावार्थ-ग्रामके मध्यमें प्राणीकी हत्या वा चोरि होजाय और चोरका पद ग्रामसे बाहिर न जाय तो ग्रामके स्वामीका दोष है, विवीतमें नष्ट होय तो विवीतके स्वामीका, और विवीतसे भिन्नमें वा मार्गमें नष्ट होय तो मार्गपाल आदि चोरोंके बतानेवालोंका दोष है॥ २७१॥

स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदंवायत्रगच्छति। पंचग्रामीबहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथवा पुनः॥

पद-स्वसीम्नि ७ दद्यात् क्रि-ग्रामः १ तुऽ-पदं १ वाऽ-यत्रऽ-गच्छति क्रि-पंचग्रामी १ बहिःऽ-क्रोशात् ५ दशग्रामी १ अथवाऽ-पुनःऽ-॥

योजना-तु पुनः स्वसीम्नि ग्रामः वा यत्र पदं गच्छति सः दद्यात् क्रोशात् बहिः पंचग्रामी अथवा पुनः दशग्रामी दद्यात्॥

तात्पर्यार्थ-और जब ग्रामसे बाहिर सीमापर्यंतके क्षेत्रमें चोरी आदि होय और सीमासे बाहिर चोरका पद न जाय तो ग्रामके वासीही चोरिके धनको दें, और ग्रामसे बाहिर निकसा चोरका पद जिस ग्राम आदिमें जाय वही चोरका और धनका अर्पण करें, और जब ग्रामसे बाहिर अनेक ग्रामोंके मध्यमें क्रोशके बाहिर देशमें घायल मनुष्य वा चोरी मिले और चौरका पद मनुष्योंके संमर्द (आना जाना) आदिसे नष्ट होगया हो तब पांच ग्रामोंका समूह वा दशग्रामोंका समूह चोर आदिको दें। यहां पांच वा दश ग्राम दें यह विकल्पका कथन तो इस लिये है कि जैसा २ ग्रामोंका समीप हों वैसे २ ही धनको लौटावें। जब राजा चुराये हुए धनको अन्यसे न दिवासके तो अपने कोशमेंसे दे। क्योंकि गौतमका वचन है[1] कि चोरके हरे द्रव्यको राजा जीतकर यथास्थान (जहांका तहां) पहुंचा दे अथवा अपने कोशमेंसे दे। यदि चुराये और विना चुरायेका संदेह होय तो मानुष वा दिव्य प्रमाणसे

---

[1] गोचरे यस्य लुप्येत तेन चोरः प्रयत्नतः। ग्राह्यो दाप्योऽथवा शेषं पदं यदि न निर्गतम्॥ निर्गते पुनरेतस्मान्न चदन्यत्र पातितम्। सामंतान्मार्गपालांश्च दिक्पालांश्चैव दापयेत्॥

[1] चौरहृतमवजित्य यथास्थानं गमयेत् स्वकोशाद्वा दद्यात्।

निर्णय करै, क्योंकि वृद्ध मनुका वचन है कि यदि दिवाने योग्य उस धनके मोष (चोरी) में संशय होयँ तो चोरसे शपथ ले अथवा उसके बंधुओंसे चोरीको सिद्ध करावै ॥

भावार्थ–अपनी सीमामें चोरी होय तो ग्राम दे, वा जहां चोरका पद जाय वह ग्राम दे, क्रोशसे बाहिर चोरी आदि होंय तो पांच ग्राम वा दशग्रामोंका समूह दे ॥ २७२ ॥

बंदिग्राहांस्तथा वाजिकुंजराणांचहारिणः ॥ प्रसह्यघातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान् २७३

पद–बंदिग्राहान् २ तथाऽ–वाजिकुंजराणाम् ६ चऽ–हारिणः २ प्रसह्यऽ–घातिनः २ चऽ–एवऽ–शूलान् २ आरोपयेत् क्रि–नरान् २ ॥

योजना–बंदिग्राहान् तथा वाजिकुंजराणां हारिणः च पुनः प्रसह्य घातिनः नरान् राजा शूलान् आरोपयेत् ॥

तात्प० भावार्थ–बंदिग्राह (जो कैदीको पकडें) और अश्व और हाथियोंके चोर, और जो बलात्कारसे घाती (हिंसक) हैं उनको शूलीपर चढावै, यह वधके प्रकारका उपदेश इस मनु (अ० ९ श्लो० ३८०) के वचनके अनुसार है कि कोठार आयुधका घर देवमंदिर इनके भेदकोंको और हाथी अश्व रथ इनके चुरानेवालोंको विना विचारेही मारदे ॥ २७३ ॥

उत्क्षेपकग्रंथिभेदौकरसंदंशहीनकौ । कार्यौद्वितीयापराधेकरपादैकहीनकौ२७४॥

पद–उत्क्षेपकग्रंथिभेदौ १ करसंदंशहीनकौ १ कार्यौ १ द्वितयापराधे७ करपादैकहीनकौ १॥

योजना–उत्क्षेपकग्रंथिभेदौ करसंदंशहीनकौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ कार्यौ ॥

तात्पर्यार्थ–और वस्त्र आदिका जो उत्क्षेपण (चुराना) करै वह उत्क्षेपक वस्त्र आदिमें बंधे सुवर्ण आदिको खींचकर वा काटकर जो चुरावै उसे ग्रंथिभेदक (गँठकटा) कहते हैं। दोनोंको प्रथम अपराधमें हस्त और संदश (संडासी) के समान तर्जनी और अंगूठासे हीन करै अर्थात् उत्क्षेपकके हाथको और ग्रंथिभेदकके तर्जनीऔर अंगूठेको क्रमसे छेदन करै, और दूसरे अपराधमें एक कर और एक पादसे हीन करै अर्थात् दोनोंके एक २ हाथ और एक २ पादको क्रमसे छेदन करै। यहभी उस द्रव्यकी चोरीमें समझना जो उत्तम साहस दंडकी प्राप्तिके योग्य है, क्योंकि नारदका वचन है कि उत्तम साहसमें दंड उसका अंगछेदन कहाहै, तीसरे अपराधमें तो वधही होता है सोई मनु (अ० ८ श्लो० २७७) ने कहा है, कि पहिले ग्रह (पकडना)में ग्रंथिभेदककी अंगुलियोंको और दूसरे ग्रहमें हाथ और चरणको छेदन करै और तीसरे ग्रहमें वधके योग्य होता है और जाति और द्रव्यके परिमाण और मोलके अनुसार दंडकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ–वस्त्र आदिके चौर और ग्रंथिभेदकके हाथको और तर्जनी अंगूठेको क्रमसे पहिले अपराधमें छेदन करै और दूसरे अपराधमें एक पाद और एक चरणको छेदन करै ॥ २७४ ॥

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः । देशकालवयःशक्तीः संचिंत्यं दंडकर्मणि ॥

पद–क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे ७ सारतःऽ–

---

१ यदि तस्मिन्दाप्यमाने भवेन्मोषे तु संशयः। मुषितः शपथं दाप्यो बंधुभिर्वापि दापयेत् ॥

२ कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्। हस्त्यश्वरथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥

१ तदंगच्छेद इत्युक्तो दंड उत्तमसाहसे।

२ अंगुलीर्ग्रंथिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे। द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥

दमः १ देशकालवयःशक्तीः १ संचिंत्यम् १ दंडकर्माणि ७ ॥

योजना–क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतः दमः चिंत्यः देशकालवयःशक्तीः दंडकर्मणि संचित्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–अब प्रत्येक द्रव्यकी जाति. और परिमाणका ज्ञान और अवस्था शक्तिदेशकालका ज्ञान आदि जो दंडकी अधिकता और न्यूनताके कारण हैं वे अनंत हैं इससे द्रव्य द्रव्यमें कहनेको शक्य नहीं, इससिये सामान्यसे दंड देनेका उपाय कहते हैं। क्षुद्र मध्य और उत्तम द्रव्योंके हरनेमें मूल्य आदिके अनुसार दंडकी कल्पना करनी। क्षुद्र आदि द्रव्योंका स्वरूप नारदने कहाहै कि मिट्टीके पात्र, आसन, खट्वा, अस्थि, चर्म,तृण आदि और श्यामाक अन्न और पका अन्न ये क्षुद्र द्रव्य कहे हैं, और रेशमसे भिन्न वस्त्र और गौसे भिन्न पशु, सुवर्णसे भिन्न लोहा, व्रीही और जौ ये मध्यम द्रव्य कहे हैं, और सुवर्ण, रत्न, रेशमका वस्त्र, स्त्री, पुरुष, गौ, हाथी, अश्व, देवता, ब्राह्मण, राजा इनका द्रव्य उत्तम द्रव्य कहाता है, तीन प्रकारकेभी इन द्रव्योंमें प्रथम मध्यम उत्तम साहसके दंडका स्वाभाविक नियम नारदने ही दिखोया है कि, बुद्धिमानोंने जो दंड तीनों साहसोंमें कहा है वही दंड क्षुद्र मध्यम उत्तम द्रव्योंकी चोरिमें समझना,मिट्टीके पात्र माणि और मल्लिका आदि, गौ अश्वसे भिन्न महिष भेड आदि पशु और ब्राह्मणके सुवर्ण अन्न आदि इनमें न्यूनाधिक भाव है इससे अधिक और न्यून दंडकी आकांक्षामें मूल्यके अनुसारसे दंडकी कल्पना करनी और उस दंडकी कल्पनामें दंडके कारण देशकाल अवस्था शक्तिकी भली प्रकार कल्पना करनी और यह जाति द्रव्य परिमाण परिग्रह आदिकाभी उपलक्षण है सोई दिखाते हैं कि शूद्रको चोरीका दंड अष्टपाद (अठगुना) होता है अर्थात् जिस द्रव्यकी चोरिमें जो दंड कहाहै यदि उस द्रव्यकी चोरी विद्वान् शूद्र करै तो अठगुना दंड देने योग्य है, यहां किल्बिष शब्दसे दंड लेते हैं, और वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण विद्वानोंको क्रमसे उत्तरोत्तर दूना दंड होता है अर्थात् वैश्यको सोलहगुना क्षत्रियको बत्तीसगुना और ब्राह्मणको चौसठगुना दंड होता है क्योंकि वर्ण २ के प्राति विद्वान्को धर्मके अवलंघनमें दंडकी अधिकता है, जिससे विद्वान् शूद्रको चोरिमें दंडकी अधिकता है इसीसे मनुने यह अर्थ दिखाया है कि (अ० ८ श्लो० ३३७--३३८) शूद्रको चोरीका दंड अठगुना और वैश्यको सोलहगुना और क्षत्रियको ३२ बत्तीसगुना और ब्राह्मणको चौंसठगुना वा सौगुना वा एकसौ अठाईसगुना होता है, क्योंकि वह ब्राह्मण उस चोरीके दोष और गुणके जाननेवाला है, तैसेही परिमाणसेभी दंडकी अधिकता देखते हैं, सोई मनुने कहा है (अ० ८–श्लो० ३२०) दशकुंभसे

१ मृद्भाण्डासनखट्वास्थिदारुचर्मतृणादि यत् । शमीधान्यं कृतान्नं च क्षुद्रं द्रव्यमुदाहृतम् ॥ वासः कौशेयवर्ज्यं च गोवर्ज्यं पशवस्तथा । हिरण्यवर्ज्यं लोहं च मध्यं व्रीहियवा अपि ॥ हिरण्यरत्नकौशेयं स्त्रीपुंगोगजवाजिनः । देवब्राह्मणराज्ञां च द्रव्यं विज्ञेयमुत्तमम् ॥

२ साहसेषु य एवोक्तस्त्रिषु दंडो मनीषिभीः । स एव : स्तेयेपि द्रव्येषु त्रिष्वनुक्रमात् ॥

१ अष्टपाद्यं स्तेयकिल्विषं शूद्रस्य द्विगुणोतराणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दण्डभूयस्त्वम् ॥

२ अष्टपाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवाति किल्विषम् । षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य तु ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् । द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणवेदिनः ॥

३ धान्यं दशभ्यः कुंभेभ्यो हरतोभ्याधिकं वधः । शेषेष्वेकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥

अधिक अन्नकी चोरी करै तो वधका दंड और शेष चोरियोंमें ग्यारहगुना दंड और स्वामीके धनको दे। जिसमें वीस २० द्रोण अन्न आवे उसे कुंभ कहते हैं। और चुराया द्रव्य और स्वामी इनके गुणकी अपेक्षासे सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदि कालकी अपेक्षासे चोरको ताडना, अंगछेदन, वध ये दण्ड देने योग्य हैं। तैसेही संख्याके विशेषसे दंडका विशेष रत्न आदिमें कहा है (अ० ८ श्लो० ३३२) मनुने कहा है कि सुवर्ण चांदी उत्तम वस्त्र और सम्पूर्ण रत्न इनके सौसे अधिक चुरानेमें वधके और पचाससे अधिकके चुरानेमें हाथका छेदन इष्ट है, और शेषकी चोरीमें मूल्यसे ग्यारहगुने दंडको दे। तैसेही द्रव्यके विशेषसेभी मनुने (अ० ८ श्लो० ३३३) दण्ड कहाहै कि कुलीन पुरुष और विशेषकर कुलीन स्त्री इनके चुरानेमें वधके योग्य होताहै। अकुलीनोंके हरनेमें तो यह दंड है, कि पुरुषकी चोरीमें उत्तम साहस दण्ड कहाहै। स्त्रीके अपराधके सर्वस्वका हरण और कन्याके चोरीके अपराधमें वध कहा है। और माषसे न्यून है मोल जिनका ऐसे जो क्षुद्र द्रव्य हैं उनकी चोरीमें मूल्यसे पांचगुना दंड है। क्योंकि यह नारदकी स्मृति है कि काष्ठके पात्र तृण आदि और मिट्टीकी वस्तु, बांस और बांसके पात्र और स्नायु (चरबी), अस्थि, चर्म, शाक और आर्द्र मूली, फल और मूल, गोरस ईखके विकार, लवण, तेल, पक्वान्न और कृतान्न, मत्स्य, मांस इन सबकी चोरीमें मूल्यसे पांचगुना दंड होता है; और जो क्षुद्र द्रव्योंमें कमसे कम सौ पण वा पचास पणतक प्रथम साहस कहाहै वह उसमें समझना जिसका माष वा माषसे अधिक मोल हो। और जो क्षुद्र द्रव्य के विषय मनुका वचन है कि मूल्यसे दूना दंड होता है वह उन शराव आदिमें है। जितना प्रयोजन अल्प है, तैसेही अपराधकी अधिकतासेभी दंडकी अधिकता होती है कि जो चोर रात्रिमें संधि (किवाड) को छेदन करके चोरी करते हैं उनके हाथोंका छेदन करके राजा तक्ष्णि (पैनी) शूलीपर आरोप (रखना) करै। इस प्रकार सब दंडके कारण अनंत हैं द्रव्य २ के प्रति नहीं कहे जासकते इससे जाति परिमाण आदि कारणोंसे दंडके गुरु लघुभावकी कल्पना करलेनी। यदि पाथिकोंका अल्प अपराध होय तो दंड नहीं है। सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३४१) ने कहा कि नहीं है जीविका जिसकी ऐसा मार्गमें चलनेवाला द्विज किसीके खेतमेंसे दो इक्षु (गांडे) दो मूली लेले तो दंड देने योग्य नहीं होता। तैसेही चणे व्रीहि गोधूम जो मूंग उडद इनकी एक मुट्ठीको वह पाथिक खेतमेंसे

१ सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम्। रत्नानां चैव सर्वेषां शतादभ्यधिके वधः॥ पंचाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते। शेषेष्वेकादशगुणं मूल्याद्दंडं प्रकल्पयेत्॥

२ पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां वा विशेषतः। रत्नानां चैव सर्वेषां हरणे वधमर्हति॥ पुरुषं हरतो दंड उक्त उत्तमसाहसः। स्त्र्यपराधे तु सर्वस्वं कन्यां तु हरतो वधः॥

३ काष्ठभांडतृणादीनां मृन्मयानां तथैव च। वणुवैणवभांडानां तथास्नाय्वस्थिचर्मणाम्॥ शाकानामार्द्रमूलानां हरणे फलमूलयोः। गोरसेक्षुविकाराणां तथा लवणतैलयोः॥ पक्वान्नानां कृतान्नानां मत्स्यानामामिषस्य च। सर्वेषां मूल्यभूतानां मूल्यात्पंचगुणो दमः॥

१ तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः।

२ संधिं छित्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वंति तस्कराः। तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत्॥

३ द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके। आददानः परक्षेत्रान्न दंडं दातुमर्हति॥ चणकव्रीहिगोधूमयवानां मुद्गमाषयोः। अनिषिद्धैर्गृहीतव्यो मुष्टिरेकः पथि स्थितैः॥ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता। अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः॥

लेले जिनको कोई निषेध न करै । तैसेही सातवें भोजनके समयतक जिसको सातों भोजन न मिलेहों अर्थात् तीन दिनका भूखा हो वह उसी समयके भोजनयोग्य हीनकर्मा (नीचजाति) सेभी भोजनके लिये प्रतिग्रहको लेले परंतु अगले दिनके लिये न ले ॥

भावार्थ-क्षुद्र, मध्यम, उत्तम, द्रव्यके चुरानेमें मोलके अनुसार दंड होता है । और दंडके कर्म (देने) में देश काल अवस्था शक्ति इनकी चिंता (विचार) करने योग्य है २७५

भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान् ।
दत्त्वा चौरस्य वाहंतुर्जानतोदमउत्तमः २७६

पद-भक्तावकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान् २ दत्त्वाऽ-चौरस्य ६ वाऽ-हंतुः ६ जानतः ६ दमः १ उत्तमः १ ॥

योजना-चौरस्य वा हंतुः भक्तविकाशाग्न्युदकमंत्रोपकरणव्ययान् दत्त्वा जानतः पुरुषस्य उत्तमः दमः भवति ॥

तात्पर्यार्थ भक्त (भोजन), अवकाश (निवासका स्थान) और शीतके दूर करनेके लिये अग्नि, और तृषा दूर करनेके लिये जल, मंत्र (चोरीका उपदेश) चोरीके साधनरूप उपकरण, और व्यय अर्थात् परदेशमें जाते हुए चोरको मार्गका खर्च इतनी वस्तुओंको जो चोर वा हंता (मारनेवाला) को देता है अर्थात् दुष्टताको जानकरभी देता है और जो चोरकी उपेक्षा (छोडना) करता है उसको उत्तमसाहस दंड होता है । क्योंकि यह नारदका वचन है कि जो समर्थ होकर चोरकी उपेक्षा करते हैं वेभी उसी दोषके भागी होते हैं ॥

भावार्थ-जो मनुष्य जानकर चोर वा हिंसकको भोजन, घर, अग्नि, जल, संमति, चोरीकी सामग्री और मार्गका व्यय (खर्च) देता है उसको उत्तम साहस दंड होता है ॥ २७६ ॥

शस्त्रावपाते गर्भस्यपातने चात्तमो दमः
उत्तमो वाधमोवापिपुरुषस्त्रीप्रमापणे २७७

पद-शस्त्रावपाते ७ गर्भस्य ६ पातने ७ चऽ-उत्तमः १ दमः १ उत्तमः १ वाऽ-अधमः १ वाऽ-अपिऽ-पुरुषस्त्रीप्रमापणे ७ ॥

योजना-शस्त्रावपाते च पुनः गर्भस्य पातने उत्तमः दमः । पुरुषस्त्रीप्रमाणे उत्तमः वा अधमः दमः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-और पराये गात्रमें शस्त्रका अवपात (मारना) और दासी और ब्राह्मणसे भिन्न गर्भके पातनमें उत्तम साहस दंड जानना दासीके गर्भपातमें तो 'दासीगर्भ विनाशकृत्' इत्यादि वचनसे सौ पणका दंड कह आये हैं । और ब्राह्मणके गर्भमें तो 'हत्वा गर्भमविज्ञातं' इस वचनमें ब्रह्महत्याका अतिदेश (मानना) कहेंगे । पुरुष और स्त्रीके प्रमापण (मारना) में शील और आचरणकी अपेक्षासे उत्तम वा अधम दंड व्यवस्थासे जानना ॥

भावार्थ-शस्त्रका मारना, गर्भका गिराना इनमें उत्तम साहसका दंड, और पुरुष और स्त्रीकी हिंसामें उत्तम वा अधम साहसका दंड होता है ॥ २७७ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषघ्नीमगर्भिणीम् ।
सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बद्ध्वाप्रवेशयेत् ॥

पद-विप्रदुष्टाम् २ स्त्रियम् २ चऽ-एवऽ-पुरुघ्नीम् २ अगर्भिणीम् २ सेतुभेदकरीम् २ चऽअप्सु ७ शिलाम् २ बद्ध्वाऽ-प्रवेशयेत् क्रि-॥

१ शक्ताश्च य उपेक्षंते तेऽपि तद्दोषभागिनः ।

योजना-विप्रदुष्टां पुरुषघ्नीं च पुनः सेतुभेदकरीम् अगर्भिणीं स्त्रियं शिलां बध्वा अप्सु प्रवेशयेत् ॥

ता० भा०-और विशेषकर प्रदुष्ट (भ्रूणहत्यारी वा स्वगर्भकी पातिनी) और पुरुषकी हंत्री (हत्यारी) और मर्यादाका भेदन करनेवाली ये स्त्री गर्भवती न होंय तो गलेमें शिला बांधकर जलमें प्रवेश करदे ॥ २७८ ॥

विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् ।
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वागोभिःप्रमापयेत् ॥

पद्-विषाग्निदाम् २.पतिगुरुनिजापत्यप्रमाणीम् २ विकर्णकरनासौष्ठीम् २ कृत्वाऽ-गोभिः ३ प्रमापयेत् क्रि-॥

योजना-विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम् स्त्रीं विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इस वचनमें पिछले वचनसे अगर्भिणीं पदकी अनुवृत्ति होती है। जो स्त्री अन्यके मारनेके लिये अन्न जल आदिमें विष दे; और जो दाहके लिये ग्राम आदिमें अग्निको दे, और जो अपने पति गुरु अपत्य इनको मारै, वह स्त्री गर्भिणी न होय तो उसके कान, हाथ, नाक, ओष्ठ इनको काटकर नहीं दमन किये बैलोंसे मरवाय दे। चोरीके प्रकरणमें जो यह साहसिकका दंड कहा है वह प्रसंगसे है, यह मानने योग्य है ॥

भावार्थ-विष और अग्नि देनेवाली, पति गुरु संतानके मारनेवाली स्त्री गर्भिणी न होय तो उसके कान हाथ नाक ओष्ठ काटकर बैलोंसे मरवाय दे ॥ २७८ ॥

अविज्ञातहतस्याशुकलहं सुतबांधवाः ।
प्रष्टव्या योषितश्चास्य परपुंसिरताःपृथक् ॥

पद्-अविज्ञातहतस्य ६ आशुऽ-कलहम् २ सुतबांधवाः १ प्रष्टव्याः १ योषितः १ चऽ-अस्य ६ परपुंसि ७ रताः १ पृथक्ऽ-॥

योजना-अविज्ञातहतस्य कलहं सुतबांधवाः च पुनः अस्य परपुंसि रताः योषितः पृथक् आशु (शीघ्रम्) प्रष्टव्याः ॥

ता० भावार्थ-अज्ञात पुरुषने जिसको मारा हो उसके संबंधी पुत्र और समीपके बांधव और उसके संबंधकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंसे राजा पूछै कि इसके संग किसका कलह (लडाई) हुईथी ॥ २८० ॥

स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामो वा केन वायं गतः सह।
मृत्युदेशसमासन्नं पृच्छेद्वापि जनं शनैः२८१

पद्-स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः १ वाऽ-केन ३ वाऽ-अयम् १ गतः १ सहऽ-मृत्युदेशसमासन्नम् २ पृच्छेत् क्रि-वाऽ-अपिऽ-जनम् २ शनैः ऽ-॥

योजना-अयं स्त्रीद्रव्यवृत्तिकामः वा केन सह गतः इति मृत्युदेशसमासन्नं जनं अपि शनैः पृच्छेत् ॥

तात्पर्यार्थ-क्या यह मनुष्य स्त्रीद्रव्य जीविका इनकी कामनासे और तैसेही किस स्त्रीमें इसकी प्रीति थी और कौनसे द्रव्यमें प्रीति थी और किससे जीविकाकी कामना थी और किसके संग देशांतरमें गयाथा इस रीति और नाना प्रकारोंसे पूर्वोक्त व्यभिचारिणी स्त्रियोंको पृथक्२ पूछै, और तैसेही मरनेके देशके निकट रहनेवाले जो गोप और वनके वासी आदिजनहैं उनकोभी विश्वास देकर पूर्वोक्त प्रकारसे शनैः २ पूछे, ऐसे अनेक प्रकारसे प्रश्नोंको करके और मारनेवालेका निश्चय करके उसको उचित दंडदे

भावार्थ-स्त्री द्रव्य जीविकाके लिये यह किसके संग गया था ऐसे मरनेके स्थानके समीप रहनेवाले मनुष्योंको शनैः २ पूछै॥२८१॥

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः ।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तुकटाग्निना

पद-क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः १ राजपत्न्यभिगामी १ चऽ-दग्धव्याः १ तुऽ-कटाग्निना ३ ॥

योजना-क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः च पुनःराजपत्न्यभिगामी कटाग्निना दग्धव्याः॥

ता० भावार्थ-पके फल और सस्यसे युक्त क्षेत्र, वेश्म (घर) वन, ग्राम और पूर्वोक्त विवीत, खलियान इनका दाह करनेवाले और राजपत्नीके संग गमनका कर्ता इन सबको कट (वीरण तृण) से लपेटकर दग्ध करदे । इन क्षेत्र आदिके दग्ध करनेवालोंके दंडका कथन मारण दंडके प्रसंगसे है ॥ २८२ ॥

इति स्तेयप्रकरणम् ॥ २३ ॥

अथ स्त्रीसंग्रहणप्रकरणम् २४.

पुमान्संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रियाः।
सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा॥

पद्–पुमान् १ संग्रहणे ७ ग्राह्यः १ केशाकेशिऽ–परस्त्रियाः ६ सद्यःऽ–वाऽ–कामजैः ३ चिह्नैः ३ प्रतिपत्तौ ७ द्वयोः ६ तथाऽ– ॥

योजना–परस्त्रियाः संग्रहणे प्रवृत्तः पुमान् केशाकेशि आदिभिः वा कामजैः चिह्नैः तथा द्वयोः संप्रतिपत्तौ सत्यां सद्यः ग्राह्यः ॥

तात्पर्यार्थ–अब स्त्रीसंग्रहण नाम विवादके पदकी व्याख्या करते हैं। प्रथम साहस आदि दंडकी प्राप्तिके लिये उसको तीन प्रकारका स्वरूप व्यासने कहाहै कि वह प्रथम मध्यम उत्तम भेदसे तीन प्रकारका है। भिन्न २ जो देश काल भाषा इनसे और निर्जन स्थानमें पराई स्त्रीके संग कटाक्षसे देखना, हंसना प्रथम साहस, और गंध माला भेजना, धूप भूषण वस्त्र और अन्न पानका लोभ देना मध्यम साहस, और एकांतमें संग बैठना, परस्परका आश्रय केशाकेशि ग्रहण यह सम्यक् संग्रह कहा है। स्त्री पुरुषके मैथुनको संग्रह कहते हैं। संग्रहणमें प्रवृत्त हुआ पुरुष केशाकेशि आदि चिह्नोंसे जानकर ग्रहण करने योग्य है। परस्पर केशोंको पकडकर जो क्रीडा उसे केशाकेशि कहते हैं। केशाकेशि पदमें 'तत्र तेनेदमितिसरूपे' इस सूत्रसे बहुव्रीहिसमास होता है। उस सूत्रका अर्थ यह है कि सप्तम्यंत और तृतीयांत समान रूप (आकार) के दोनों पद ग्रहण करने और प्रहार करने अर्थमें और इस युद्ध इस अर्थमें समासको प्राप्त हों फिर 'इच्कर्मव्यतिहारे' इस सूत्रसे केशाकेश समासके अंतमें इच् प्रत्यय होजाता है। और केशाकेशि शब्दको अव्यय होनेसे तृतीया (भिस्) विभक्तिका लुक् होजाताहै। तिससे यह अर्थ होजाताहै कि पराई भार्याके संग केशाकेशि क्रीडाकरके नखोंके नवीन हुए व्रणोंसे और प्रीतिसे किये चिह्न वा दोनोंकी परस्पर संमतिसे ग्रहणमें प्रवृत्त हुआ मनुष्य पकडने योग्य है। यहां परस्त्रीका ग्रहण नियुक्त और अवरुद्धा आदि स्त्रियोंके निषेधार्थ है ॥

भावार्थ–पराई स्त्रीके संग केशाकेशिसंग्रहणकरनेमें और तत्कालके गात्रमें नख आदिके छेद आदि चिह्नोंसे और स्त्री और पुरुष दोनोंकी संप्रतिपत्ति (सलाह) में पकडने योग्य है ॥ २८३ ॥

नीविस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम्।
अदेशकालसंभाषं सहैकासनमेव च ॥२८४

पद्–नीवीस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् २ अदेशकालसंभाषम् २ सहैकासनम् २ एवऽ–चऽ–॥

योजना–नीविस्तनप्रावरणसक्थिकेशावमर्शनम् अदेशकालसंभाषं च पुनः सह एकासन कुर्वाणः पुरुषः ग्राह्यः ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य पराई स्त्रीके परिधानवस्त्र (लहंगा) की ग्रंथिके स्थानका, कुचप्रावरण (चोली), जंघा और शिरके केशोंका स्पर्श अभिलाषासे करै, तैसेही निर्जन देश और जनोंका समूह और अंधकारसे युक्त देशमें पराई स्त्रीके संग संभाषण करै, और पराई भार्याके संग एक शय्या आदिपर रमण करनेकी इच्छासे बैठे स्त्री संग्रहणमें प्रवृत्त वहभी पुरुष ग्रहण करने

---

१ त्रिविधं तत्समाख्यातं प्रथमं मध्यमोत्तमम्। अदेशकालभाषाभिर्निर्जने च परस्त्रियाः ॥ कटाक्षावेक्षणं हास्यं प्रथमं साहसं स्मृतम्। प्रेषणं गंधमाल्यानां धूपभूषणवाससाम् ॥ प्रलोभनं चान्नपानैर्मध्यमं साहसं स्मृतम्। सहासनं विविक्तेषु परस्परमुपाश्रयः ॥ केशाकेशिग्रहं चैव सम्यक् संग्रहणं स्मृतम् ॥

योग्य है। यहभी उस पुरुषके विषयमें है जिसमें दोषकी शंका हो अन्य पुरुषको तो दोष नहीं है। सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३५५ ने कहाहै कि जो मनुष्य पहिला अपराधी न हो और किसी कारणसे परस्त्रीके संग वार्तालाप करै तो वह किंचित् भी दोषको प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसका किंचित्भी अपराध नहीं। जो मनुष्य पराई स्त्रीका स्पर्श करै और वह क्षमा करले तो वहभी पकडने योग्य है वहभी मनु (अ. ८ श्लो. ३५८) नेही कहा है जो मनुष्य गुप्त स्थानमें स्त्रीका स्पर्श करै वा स्त्रीके स्पर्शको सह ले यह सब परस्परकी सम्मतिमें संग्रहण कहाहै, और जो मनुष्य अपनी बडाईके लिये सर्पके समान क्रूरजनोंके सामने यह कहै कि इस चतुर स्त्रीके संग मैंने कईवार रमण किया है वहभी पकडने योग्य मनुने कहा है कि अभिमान वा मोह वा बडाईसे जो स्वय यह कहै कि यह स्त्री मैंने पहिले भोगी है वहभी संग्रहण कहाता है ॥

भावार्थ-नीवी, चोली, जंघा, केश इनका स्पर्श और कुदेश और कुसमयमें वार्तालाप और एकासनपर बैठना इनको जो पराई स्त्रीके संग करे वहभी पकडने योग्य है ॥ २८४ ॥

स्त्री निषेधे शतं दद्याद्विशतं दमं पुमान्। प्रतिषेधे तयोर्दंडो यथा संग्रहणे तथा २८५

पद-स्त्री १ निषेधे ७ शतम् २ दद्यात् क्रि द्विशतम् २ तु ऽ-दमम् २ पुमान् १ प्रतिषेधे ७ तयोः ६ दण्डः १ यथा ऽ-संग्रहणे ७ तथा ऽ- ॥

योजना-निषेधे स्त्री शतं तु पुनः पुमान् द्विशतं दमं दद्यात् प्रतिषेधे तयोः दण्डः यथा संग्रहणे तथा ज्ञेयः।

तात्पर्यार्थ-जिस मनुष्यके संग संभाषण आदि करनेका पति पिता आदि निषेध करदें उसके संग संभाषण करती हुई स्त्री सौ पण दंड दे, और इसी प्रकार निषेध करनेपर वार्तालाप आदि करता हुआ मनुष्य दोसौ पण दंड दे। और यदि निषेध करनेपर दोनों वार्तालाप आदिमें प्रवृत्त होंय तो उनको वही दंड होता है जो वर्णोंके अनुसार संग्रहण (भोग) में कहेंगे। यह भी चारण आदिको भार्याको छोडकर समझना। क्योंकि यह मनु (अ० ८ श्लो० ३६२) की स्मृति है कि यह विधि चारणोंकी स्त्री और जो अपने देहसे जीते हैं उनकी (मजर) स्त्री इनमें नहीं है क्योंकि वे अपनी स्त्रियोंको सजाते हैं और छिपाकर परपुरुषोंके समीप भेजते हैं ॥

भावार्थ-निषिद्ध कीहुई जो स्त्री परपुरुषके संग और निषिद्ध किया हुआ पुरुष पराई स्त्रीके संग संभाषण आदि करै तो स्त्री सौ पण दंड और पुरुष दो सौ पण दंड दे। यदि निषेध करनेपर दोनोंही वार्तालाप आदि करैं तो उनको वही दंड है जो पराई स्त्रीके भोगमें कहेंगे ॥ २८५ ॥

सजातावुत्तमो दंड आनुलोम्ये तु मध्यमः। प्रातिलोम्ये वधःपुंसो नार्याःकर्णादिकर्तनम्॥

पद-सजातौ ७ उत्तमः १ दंडः १ आनुलोम्ये ७ तु ऽ-मध्यमः १ प्रातिलोम्ये ७ वधः १ पुंसः ६ नार्याः ६ कर्णादिकर्तनम् १ ॥

योजना-सजातौ उत्तमः तु पुनः आनुलो-

---

१ यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात्। न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥

२ स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा॥ परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं मतम् ॥

दर्पाद्वा यदि वा मोहाच्छ्लाघया वा स्वयं वदेत्। पूर्वं मयेयं भुक्तेति तच्च संग्रहणं स्मृतम् ॥

१ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु। सज्जयंति हि ते नारीं निगूढाश्चारयंति च ॥

म्ये, मध्यमः दंडः भवति, प्रातिलोम्ये पुंसः वधः, नार्याः कर्णादिकर्तनम् दंडः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ–यदि चारों वर्ण बलात्कारसे अपनी सजातिय और गुप्त (परदेदार) पराई स्त्रीके संग गमन करें तो उत्तम दंड-(अस्सी ऊपर सहस्त्र पण) होता है, और जो आनुलोम्यसे अर्थात् उत्तमवर्ण नीचवर्णकी स्त्रीके संग गमन करे तो मध्यम दंड जानना, और अपने वर्णकी गुप्तसे भिन्न स्त्रीके और गुप्तभी नीच वर्णकी स्त्रीके संग गमन करे तो मनुने विशेष कहा है (अ० ८ श्लो० ३७८–३८३) कि यदि ब्राह्मण अगुप्त ब्राह्मणीके संग बलसे गमन करे तो सहस्त्रपण दंड, और चाहती हुई ब्राह्मणीके संग गमन करे तो पांच सौ पण दंड दे, और यदि गुप्त उन पूर्वोक्तोंके संग गमन करे तो सहस्त्रपण दंड दे, और क्षत्रिय और वैश्यकोभी शूद्राके गमनमें सहस्त्रपण दंड होता है, यहभी गुरु और मित्रकी भार्यासे भिन्नके विषयमें समझना, क्योंकि नारदका वचन है कि माता, माताकी वहिन, सास, मातुलकी स्त्री, पिताकी भगिनी, पितृव्य मित्र शिष्य इनकी स्त्री, भगिनी, भगिनीकी सखी, पुत्रवधू, पुत्री, आचार्यकी स्त्री, सगोत्रा, शरण आई, राणी, संन्यासिनी, धात्री (धाय), साध्वी, उत्तम वर्णकी इनमें अन्यतम (कोईसी) स्त्रीके संग गमन जो करे वह गुरुतल्पग कहाता है उसका दंड शिश्न (लिंग) काटनेसे अन्य नहीं है। और प्रतिलोममें उत्तम वर्णकी स्त्रीके गमनमें क्षत्रिय आदि वर्णोंमें पुरुषका वध होता है, यहभी गुप्त स्त्रीके विषयमें है। अन्यके गमनमें तो धनका दंड होता है, क्योंकि यह मनुकी स्मृति है (अ० ८ श्लो० ३७७–३७६) कि यदि वे दोनों क्षत्रिय वैश्य गुप्ता ब्राह्मणीके संग धर्मसे पतित हुए गमन करें तो शूद्रके समान दंड देने योग्य हैं वा कटाग्निसे दग्ध करने। यदि वैश्य और क्षत्रिय अगुप्ता ब्राह्मणीके संग गमन करें तो वैश्यको पांच सौ पणका और क्षत्रियको सहस्त्र पणका दंड दे और शूद्र अगुप्ता उत्कृष्ट वर्णकी स्त्रीके संग गमन करे त लिंग छेदन और सर्वस्वका हरना और गुप्ताके संग गमन करे तो वध और सर्वस्वका अपहार होता है, यह मनुनेही कहा है कि (अ० ८ श्लो० ३७४) यदि शूद्र, गुप्ता वा अगुप्ता द्विजाति स्त्रीके संग गमन करे तो अगुप्ताके गमनमें अंग और सर्वस्वसे हीन करे और गुप्ताके संग गमन करे तो सर्वस्वका हरण करे। यदि स्त्री हीन वर्णके पुरुषके संग गमन करे तो कर्ण और आदिपदसे नासिकाका छेदन करे और अनुलोमोंमें सजातीय पुरुषके संग गमन करनेवालीके दंडकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करनी। और वध आदिका उपदेश राजाकेही करने योग्य है, क्योंकि प्रजापालनका अधिकार राजा-

१ सहस्रं ब्राह्मणो दंड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् । शतानि पंच दंड्यः स्यादिच्छंत्या सह संगतः ॥ सहस्रं ब्राह्मणो दंडं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन् । शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रं तु भवेद्दमः ॥

२ माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा । पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा ॥ दुहिताचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता । राज्ञी प्रव्राजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दंडो विधीयते ॥

१ उभावपि हि तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह । विप्लुतौ शूद्रवद्दंड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु सेवेतां वैश्यपार्थिवौ । वैश्यं पंचशतं कुर्यात् क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥

२ शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् । अगुप्तमंगसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥

कोही है द्विजातिमात्रको नहीं है। क्योंकि उसमें यह निषेध है कि ब्राह्मण परीक्षाके लिये भी शस्त्रको ग्रहण न करै। और जहां राजाको निवेदन करनेमें कालका विलंब हो और कार्यके अतिपात (बिगाड) की शंका होय तो स्वयंही जार आदिको हत दे। (मनु अ० ८ श्लो० ३४८) का वचन है कि जहां धर्मका अवरोध (रोक वा नाश) हो वहां ब्राह्मणभी शस्त्रको ग्रहण करै। मनु (अ० ८ श्लो० ३५१) का वचन है कि आततायी (शस्त्रधारी) के मारनेमें मारनेवालेको कुछ दोष नहीं होता है, चाहै प्रकट वा अप्रकट मारे। क्योंकि क्रोधही क्रोधको नष्ट करता है इस वचनसे शस्त्रग्रहण करनेकी आज्ञा ब्राह्मणकोभी है। तैसे क्षत्रिय और वैश्य परस्परकी स्त्रीके संग गमन करै तौ क्रमसे सहस्रपण और सौ पण दंड जानने सोई मनु (अ० ८ श्लो० ३८२) ने कहा है कि वैश्य गुप्ता क्षत्रियाके संग और क्षत्रिय वैश्याके संग गमन करै तो वे दोनों उस दंडके योग्य होते हैं जो अगुप्ता ब्राह्मणीके गमनमें होता है॥

भावार्थ-सजातीय स्त्रीके गमनमें उत्तम और अनुलोम स्त्रीके गमनमें मध्यम दंड सब वर्णोंको होता है। और प्रतिलोम स्त्रीके गमनमें पुरुषका वध और स्त्रीका कान आदिका काटना होता है ॥ २८६ ॥

अलंकृतांहरेत्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम्।
दंडं दद्यात्सवर्णासुप्रातिलोम्येवधःस्मृतः ॥

पद-अलंकृताम् २ हरेत् क्रि-कन्याम् २ उत्तमम् २ हि ऽ-अन्यथा ऽ-अधमम् २ दण्डम् २ दद्यात् क्रि-सवर्णासु ७ प्रातिलोम्ये ७ वधः १ स्मृतः १ ॥

योजना-यः अलंकृतां कन्यां हरेत् तस्य उत्तमम् अन्यथा अधमं दंडं सवर्णासु दद्यात् प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः ॥

तात्प० भा०-विवाहके समय अलंकार की हुई कन्याको हरै तो उत्तम साहस और विना विवाहके समय हरै तो अधम साहस दंड होता है, और प्रतिलोम वर्णकी कन्याके हरनेवाले क्षत्रिय आदिका तो वध कहा है। यहां दंडके कहनेसे चुरानेवालेसे छीनकर वह कन्या अन्यको विवाह देनी यह बात अर्थसे जानी गई ॥२८७॥

सकामास्वनुलोमासुन दोषस्त्वन्यथादमः ।
दूषणेतुकरच्छेदउत्तमायांवधस्तथा ॥२८८॥

पद-सकामासु ७ अनुलोमासु ७ न ऽ-दोष १ तु ऽ-अन्यथा ऽ-दमः १ दूषणे ७ तु ऽ-करच्छेदः १ उत्तमायाम् ७ वधः १ तथा ऽ-॥

योजना-सकामासु अनुलोमासु गमने दोषः न भवति अन्यथा दमः भवति तु पुनः दूषणे करच्छेदः तथा उत्तमायां वधो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि अनुरागवाली हीनवर्णकी कन्याका अपहरण (चुराना) करै तो कुछ दोष नहीं, और विना इच्छावालीका अपहरण करै तो प्रथम साहसका दंड होता है और अनुलोम वर्णकी नहीं चाहती हुई कन्याको बलात्कारसे नखक्षत (घाव) आदिसे दूषित करै तो उसके हाथ छेदन करने योग्य हैं, और जो उसी पूर्वोक्त कन्याकी योनि अंगुलिके प्रक्षेपसे क्षत करके

---

१ ब्राह्मणः परीक्षार्थमपि शस्त्रं नाददीत।

२ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।

३ नाततायिवधे दोषो हंतुर्भवति कश्चन । प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥

४ वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्। यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दंडमर्हतः।

दूषण लगाता है तो उसको यह मनुका (अ० ८ श्लो० २६७) कहा हुआ दंड जानना, कि जो मनुष्य नहीं सहकर अभिमानसे कन्याको दूषित करता है उसकी शीघ्र अंगुलि काटने योग्य है और वह छःसौ ६०० पण दंड देने योग्य है। और यदि चाहती हुई कन्याको पूर्वोक्त प्रकारसे दूषित करै तो मनुने (अ० ८ श्लो० ३६८ यह विशेष कहा है यदि सजातीय वर्णकी चाहती हुई कन्याको दूषित करै तो अंगुलि छेदनेके योग्य नहीं होता है और पुनः संगकी निवृत्तिके लिये दो सौ पण दंड देने योग्य है और जब कन्याही, और वही स्त्री, कन्याको दूषित करै तो मनुनेही (अ० ८ श्लो० ३६९) यह कहा है कि जो कन्याही कन्याको दूषित करै तो दो सौ पण दंड, और बडी स्त्री करै तो शीघ्रही मूंडने योग्य और अंगुलियोंके छेदन और खर (गधा) पर चढाने योग्य है। यहां कन्याके दूषणसे योनिमें घाव लेना और जो उत्तम जातिकी चाहती वा विना चाहती हुई कन्यासे क्षत्रिय आदि गमन करता है उसका मारनाही दंड इस मनु (अ० ८ श्लो० ३६६) के वचनसे है, कि उत्तम वर्णकी कन्याके संग गमन करता हुआ हीन वर्ण वधके योग्य होता है, और जो चाहती हुई सवर्णा कन्यासे गमन करता है वह उस कन्याके पिताको दो गौ शुल्करूपसे देदे, यदि वह पिता चाहै पिता शुल्करूपसे न चाहता होय तो वे दोनों गौ राजाको देदे यदि नहीं चाहती हुई सवर्णाके संग गमन करै तो वधही कहा है। मनु (अ० ८ श्लो० ३६३--३६४) समान वर्णकी कन्याका सेवन करता हुआ मनुष्य पिता चाहै तो शुल्क दे और नहीं चाहती हुईके संग जो गमन करता है वह वधके योग्य होता है और चाहती हुई कन्याको दूषित करता हुआ तुल्य वर्णका मनुष्य वधको प्राप्त होता है॥

भावार्थ—इच्छावाली अनुलोम कन्याका गमन करता हुआ मनुष्य दोषभागी नहीं होता और न चाहती हुईके संग गमन करै तो दंड होता है और दूषित करनेमें हाथोंका छेदन और उत्तम वर्णकी कन्याको दूषित करै तो वधके योग्य होता है॥ २८८॥

शतं स्त्रीदूषणेदद्याद्द्वेतुमिथ्याभिशंसने।
पशून्गच्छञ्शतंदाप्योहीनांस्त्रींगांचमध्यमम्॥

पद—शतम् २ स्त्रीदूषणे ७ दद्यात् क्रि—द्वे २ तुऽ—मिथ्याभिशंसने ७ पशून् २ गच्छन् १ शतम् २ दाप्यः १ हीनाम् २ स्त्रीम् २ गाम् २ चऽ—मध्यमम् २॥

योजना—स्त्रीदूषणे शतं, मिथ्याभिशंसने द्वे शते दद्यात्, पशून् गच्छन् सन् शतं दाप्यः च पुनः हीनां स्त्रीं च पुनः गां गच्छन् सन् मध्यमं दाप्यः॥

ता० भा०—यहां स्त्रीशब्दसे प्रकरणके बलसे कन्या समझनी उस कन्याके विद्यमानही अपस्मार (मिर्गी) राजयक्ष्मा आदि बडे निंदित रोग और मैथुन आदिको प्रकट करके जो मनुष्य उसको यह अकन्या (मैथुनके अयोग्य) है इस प्रकार दूषित करता है वह सौ पण दंड देने योग्य है, और जो कन्यामें नहीं विद्य-

---

१ अविवाह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः। तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दंडं चार्हति षट्शतम्॥

२ सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमर्हति। द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये।

३ कन्यैव कन्यायां कुर्यात्तस्यास्तु द्विशतो दमः। या तु कन्यां प्रकुर्यात् स्त्री सा सद्योमौण्डयमर्हति॥

४ उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।

१ शुल्कं दद्यात्सेवमानः सममिच्छेत्पिता यदि। योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति॥ सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः॥

मान दोषोंको प्रकट करता है वह दो सौ पण देने योग्य है और जो गौसे भिन्न पशुका गमन करै वह सौ पण दंड देने योग्य है और जो मनुष्य सकाम वा निष्काम चाण्डालकी स्त्री वा गौके साथ गमन करता वह मध्यम साहस दंडके योग्य होता है ॥ २८९ ॥

अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च ।
गम्यास्वपिपुमान्दाप्यः पंचाशत्पणिकंदमम् ॥

पद-अवरुद्धासु ७ दासीषु ७ भुजिष्यासु ७ तथाऽ-एवऽ-चऽ-गम्यासु ७ अपिऽ-पुमान् १ दाप्यः १ पंचाशत्पणिकम् २ दमम् २ ॥

योजना-अवरुद्धासु दासीषु च पुनः तथैव भुजिष्यासु गम्यासु अपि आशु गच्छन् पुमान् पंचाशत्पणिकं दमं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ-इस वचनमें पिछले वचनमेंसे गच्छन् पद आता है, पूर्वोक्त है लक्षण जिनका ऐसी अपने वर्णकी जो स्त्री वे दासी कहाती हैं उनको यदि स्वामी अपनी शुश्रूषामें हानि न पडनेके लिये अपने घरमेंही अन्य पुरुषोंके संग भोगनिवृत्तिके अर्थ रोककर रक्खै तो वे अवरुद्धा दासी कहाती हैं, और पुरुषकी स्त्री बनकर जो रहैं वे भुजिष्या होती हैं। जो दासी अवरुद्धा और भुजिष्या होंय तो उनमें और चशब्दसे वेश्या और स्वैरिणी साधारण स्त्री जो भुजिष्या हैं उन सब साधारण मनुष्योंके गमन करने योग्य स्त्रियोंमें गमन करता हुआ मनुष्य पचास पण दंड देने योग्य है क्योंकि वे अन्यका परिग्रह होनेसे पराई स्त्रीके तुल्य हैं, यही नारदने स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मणीसे भिन्न स्वैरिणी, वेश्या, दासी, निष्कासिनी जो स्त्री हैं वे अनुलोम क्रमसे गमन करने योग्य हैं, प्रतिलोमसे नहीं। यदि वे भुजिष्या होंय तो पराई दाराके समान दोष है,गमन करने योग्यभी उनमें गमन न करे क्योंकि वे पराई परिग्रह (स्त्री) हैं। स्वामीकी नहीं रोकी जो दासी निष्कासिनी होती है। कदाचित् कोई शंका करे कि स्वैरिणी आदिको साधारण रूपसे गमन योग्य कहना अयोग्य है क्योंकि जाति वा शास्त्रसे कोईभी स्त्री जगत्में साधारण नहीं मिल सकती, सोई दिखाते हैं, कि स्वैरिणी और दासी वर्णकी ही स्त्री होती है, क्योंकि मनुका वचन है कि जो स्वैरिणी पतिको छोडकर अपने सवर्णके पुरुषका कामनासे आश्रय लेती है ऐसे वर्णोंके अनुलोमक्रमसे दासभाव होताहै, प्रतिलोमसे नहीं, और अपने वर्णकी स्त्रीको पतिके जीवते वा मरेपर अन्य पुरुषके संग भोग करनाभी नहीं घटता क्योंकि यह मनु (अ० ५ श्लो० १५४-१५७) निषेधका वचन है कि दुष्ट स्वभाव, यथेच्छाचारी, गुणोंसे हीनभी पतिकी साध्वी स्त्री देवताके समान परिचर्या करै चाहे पुष्प मूल फल इन श्रेष्ठोंसे देहको शुष्क करदे परंतु पतिके मरने पर अन्य पुरुषका नामभी न ले, और कन्या अवस्थमेंभी स्त्री साधारण नहीं हो सकती, क्योंकि उसी कन्याके दानका शास्त्रसे उपदेश है जिसकी पिताने रक्षा कर रक्खी हो और दाताके अभावमें भी वैसीहीको स्वयंवरका उपदेश

१ स्वैरिण्यब्राह्मणी वेश्या दासी निष्कासिनी च याः। गम्याः स्युरानुलोम्येन स्त्रियो न प्रातिलोमतः ॥ आस्वेव तु भुजिष्यासु दोषः स्यात्परदारवत् । गम्यास्वपि हि नोपेयाद्यत्ताः परपरिग्रहाः ॥

१ स्वैरिणी या पतिं हित्वा सवर्णं कामतः श्रयेत् । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥

२ दुःशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। परिचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः । न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥

है। और दासी होनेसे कुछ अपने धर्मसे पतित नहीं होती क्योंकि परतंत्र हो जाना दासभाव है, कुछ अपने धर्मका त्याग नहीं। वेश्याभी साधारणी नहीं है, अनुलोम वर्णोंको छोडकर गमनके योग्य अन्य कोई जाति नहीं है। और उनके ही मध्यमें मानोगे तो पूर्वके समानही गमनके अयोग्यता है। और प्रतिलोमोंमें तो भली प्रकारही गमनके अयोग्य होंगी। इससे अन्य पुरुषके संग भोगमें उनको निंदित कर्मके अभ्याससे पतित होना होता है और पतितका संसर्ग निषिद्ध है इससे सब पुरुषोंके भोगने योग्य नहीं हो सकती। यह शंका सत्य है, किंतु यहां स्वैरिणी आदिके उपभोगमें पिता आदि रक्षक, और राजदंड आदिका भय आदि दीखता हुआ दोषका अभाव है इससे गमन करने योग्य कहना युक्त है और वह गमन अवरुद्धा दासियोंमें दंडका अभाव है इससे नियमसे जो पुरुषोंका परिग्रहरूप उपाधिसे दंडका कहना है उस उपाधिसे जो रहित हैं, उनमें अर्थात् जाना जाता है अर्थात् वेही गमनके योग्य हैं। और स्वैरिणी आदिमें जो दंडका अभाव है वह दंडकी विधिके अभावसे है। और इस निषेधसेभी जाना जाता है कि उत्कृष्ट वर्णकी कन्याको जो भजे (सेवे) उसको कुछ दंड न दे[1], और अपने धर्मसे पतनका प्रायश्चित्त तो गमन करने योग्य स्त्री और गमन करनेवाले पुरुष इनको अविशेषसे होताही है। और जो वेश्याओंको भिन्न जातिके अभावसे वर्णोंके अंतःपातिनी (बीचमें) अनुमानसे कहा[2] है कि वेश्या वर्ण और अनुलोमोंके मध्यमें है। मनुष्य होनेसे ब्राह्मणोंके समान सो ठीक नहीं, वहां कुंडगोलक आदिमें होनेसे मनुष्यजात्याश्रयत्वात् यह हेतु अनैकांतिक है अर्थात् व्यभिचारी है। क्योंकि कुंडगोलकमें मनुष्यत्व है और वर्णोंके अंतःपातित्व (मध्यमें आना) उनमें नहीं हैं। इससे यह मानना योग्य है कि वेश्या नामकी कोई जाति अनादिसे है उसमें उत्तम जातिके वा समान जातिके पुरुषसे जो कन्या पैदा है उसकी जीविकाभी पुरुषके संभोगसे है और वह जाति ब्राह्मणत्वके समान लोक प्रसिद्ध है और यह प्रसिद्धि निर्मूलभी नहीं क्योंकि स्कंदपुराणमें कहाहै कि पंचचूडानाम किसी अप्सराके सकाशसे उसकी संतानमें पांचवीं[1] वेश्या जाति हुई, इससे वे नियमसे पुरुषके संग विवाहकी विधिसे शून्य हैं इससे समान और उत्कृष्ट जातिके पुरुषके संग गमनमें अदृष्ट दोष नहीं है और न दंड है, और उनमेंभी जो अवरुद्ध हैं उनके संग गमन करनेवाले पुरुषोंको यद्यपि दंड नहीं है तथापि अदृष्ट दोष (पाप) तो है ही क्योंकि यह नियम है कि अपनी स्त्रीमेंही सदैव रत रहै और यह प्रायश्चित्तभी है कि पशु और वेश्याके गमनमें प्राजापत्य व्रत कहा है[2], इससे सब निर्दोष है॥

भावार्थ–अवरुद्धा और भुजिष्या जो गमन करने योग्यभी हैं उनके संग गमन करनेवाले पुरुषको पचास पणका दंड होताहै॥ २९०॥

प्रसह्य दास्यभिगमे दंडो दशपणः स्मृतः।
बहूनां यद्यकामासौ चतुर्विंशतिकः पृथक्॥

पद–प्रसह्यऽ–दास्यभिगमे ७ दंडः १ दशपणः १ स्मृतः १ बहूनाम् ६ यदिऽ–अकामा १ असौ १ चतुर्विंशतिकः १ पृथक् १॥

---

१ कन्यां भजंतीमुत्कृष्टां न किंचिदपि दापयेत्।

२ वेश्यानुलोमांतःपातिन्यो मनुष्यजात्याश्रयत्वात्। ब्राह्मण्यादिवत्।

१ पंचचूडानामकाश्चानाप्सरसस्तत्संततिः वेश्याख्या पंचमी जातिः।

२ स्वदारनिरतः सदा। पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते॥

योजना-प्रसह्य दास्यभिगमे सति दशपणः दंडः स्मृतः। यदि असौ बहूनाम् अकामा भवेत् तदा चतुर्विंशतिकः पणः दंडः पृथक् २ ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्व दासी स्वैरिणी भुजिष्याके गमनमें दंड कहनेसे भुजिष्यासे भिन्नोंमें दंड नहीं यह अर्थात् कहा गया। अब उसकाभी अपवाद कहते हैं। पुरुषके संग भोगही है जीविका जिनकी ऐसी दासी स्वैरिणी आदिके संग शुल्क (मोल) दिये विना बलात्कारसे गमन करै उसको दश पणका दंड होताहै। यदि बहुतसे मनुष्य नहीं चाहती हुई एक वेश्याके संग बलसे गमन करैं तो प्रत्येक मनुष्यको चौबीस २ पण दंड होताहै। और जब वेश्याकी इच्छासे भाटि (भाडा) देकर वेश्याके न चाहनेपरभी गमन करैं तो उन पुरुषोंको दोष नहीं है, जो उस वेश्याको व्याधि न हो। क्योंकि नारदकी वचन है कि रोगिन, परिश्रमवाली, राजाके काममें लगी, वेश्या बुलाने पर न आवे तो दंड देने योग्य नहीं कही है ॥

भावार्थ-बलात्कारसे दासीके गमनमें दशपण दंड कहा है। यदि नहीं चाहती हुई स्त्रीके संग बहुतसे मनुष्य गमन करैं तो पृथक् २ चौबीस २ पण दंड दें॥ २९१ ॥

गृहीतवेतना वेश्या नेच्छंती द्विगुणं वहेत् । अगृहीते समं दाप्यः पुमानप्येवमेव च२९२

पद-गृहीतवेतना १ वेश्या १ नऽ-इच्छंती १ द्विगुणम् २ वहेत् क्रि-अगृहीते ७ समम् २ दाप्यः १ पुमान् १ अपिऽ-एवम्ऽ-एवऽ-चऽ-॥

योजना-भोगं न इच्छंती गृहीतवेतना वेश्या द्विगुणम् गृहीते वेतने समं वहेत् । च पुनः पुमान् अपि एवमेव दाप्यः ॥

१ व्याधीता सा श्रमव्यग्रा राजकर्मपरायणा । आमंत्रिता चेन्नागच्छेददंड्या बडवा स्मृता ।

तात्पर्यार्थ-जब शुल्कको लेकर स्वस्थभी वेश्या धनके स्वामीको न भजा चाहै तो दूना शुल्क दे और शुल्क देकर पुरुष गमन न कियाचाहै तो शुल्क न मिलेगा क्योंकि नारदने कहाहै कि शुल्कको लेकर भोगको न चाहती हुई स्त्री शुल्कको दूना दे और दिया है शुल्क जिसने ऐसा पुरुष भोग न किया चाहै तो शुल्ककी हानिको प्राप्त होता है। और शुल्क न ग्रहण किया होय तो ठहरानेपर वेश्या उतनाही शुल्क दे। तैसेही अन्यभी विशेष उसनेही दिखायाहै है यदि पुरुष स्त्रीको कहकर शुल्क न दे और दांत और नख आदिके द्वारा बलसे गमन करै और योनिसे भिन्न स्थानमें गमन करै वा बहुत पुरुषोंसे गमन करावै तो आठगुण शुल्क वेश्याको और उतनाही दंड राजाको दे। जो प्रधान वेश्या हैं और वेश्याके घरमें रहनेवाले कामी पुरुष हैं उनसेही निर्णय वेश्यासंबन्धिकार्योंमें होता है ॥

भावार्थ-वेतनको ग्रहण करके पुरुषका सम्बंध वेश्या न चाहै तो दूना शुल्क दे। वेतन न लिया होय तो समान ही दे, इसी प्रकार पुरुषभी दे ॥ २९२ ॥

अयोनौ गच्छतो योषां पुरुषं वापि मेहतः । चतुर्विंशतिकोदंडस्तथाप्रव्राजितागमे २९३

पद-अयोनौ ७ गच्छतः ६ योषाम् २ पुरुषम् २ वाऽ-अपिऽ-मेहतः ६ चतुर्विंशतिकः १ दंडः १ तथाऽ-प्रव्रजितागमे ७ ॥

१ शुल्कं गृहीत्वा पण्यस्त्री नेच्छती द्विगुणं वहेत् । अनिच्छन्दत्तशुल्कोपि शुल्कहानिमवाप्नुयात् ॥

२ अप्रयच्छंस्तथा शुल्कमनुभूय पुमान् स्त्रियम् । आक्रमेण च संगच्छन् घातदंतनखादीभिः ॥ अयोनौ वापि गच्छेद्यो बहुभिर्वापि वासयेत् । शुल्कमष्टगुणं दाप्यो विनयं तावदेव तु ॥ वेश्याप्रधाना यास्तत्र कामुकास्तद्गृहोषिताः । तत्समुत्थेषु कार्येषु निर्णयं संशये विदुः ॥

योजना–योषाम् अयोनौ गच्छतः वा पुरुषं प्रति मेहतः तथा प्रव्रजितागमे पुरुषस्य चतुर्विंशतिको दंडो भवति ॥

ता० भा०–जो मनुष्य अपनी स्त्रीके मुख आदिमें (गमन) वा संन्यासिनीके संग गमन करता है वह चौबीस पण दंड देने योग्य है ॥

अंत्याभिगमने त्वंक्यःकुबंधेन प्रवासयेत्।
शूद्रस्तथांत्य एव स्यादंत्यस्यार्यागमेवधः ॥

पद्–अन्त्याभिगमने ७ तुऽ–अक्यः १ कुबंधेन३ प्रवासयेत् क्रि– शूद्रः १तथाऽ–अंत्यः १ एवऽ–स्यात् क्रि–अंत्यस्य ६ आर्यागमे ७ वधः १ ॥

योजना–तु पुनः अंत्याभिगमने कुबन्धेन अंक्यः शूद्रः अंत्याभिगमने अंत्य एव स्यात् अंत्यस्य आर्याभिगमने वधः एव स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–अंत्या (चाण्डाली) के गमनमें यदि तीनों वर्णके मनुष्य प्रायाश्चित्त न करें तो इस मनुके वचनसे सौ पण देकर और निंदितबंधन (भगाकार) का चिह्न करके अपने देशसे राजा निकासदे कि अन्त्यज वर्णोंकी स्त्रीके गमनमें सहस्र पण दंड होता है और जो प्रायाश्चित्त करनेको उद्यत हों उनको पूर्वोक्तही दंड होता है। शूद्र तो चाण्डालीके गमनसे चाण्डालही होता है। यदि चाण्डाल उत्तम जातिकी स्त्रीके साथ गमन करै तो उसका वधही दंड है ॥

भावार्थ–चाण्डालीके गमनमें भगाकार चिह्न करके अपने देशसे निकासदे और शूद्र चाण्डालीके गमनमें चाण्डालही होता है। चाण्डाल उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ गमन करै तो वधको प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

१ सहस्रंत्वन्त्यजास्त्रियम्।

इति स्त्रीसंग्रहणप्रकरणम् ॥ २४ ॥

अथ प्रकीर्णकप्रकरणम् २९.

ऊनं वाऽभ्यधिकं वापि लिखेद्यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुंचतो दंडउत्तमः॥२९९॥

पद-ऊनम् २ वाऽ-आमिऽ-अधिकम् २ वाऽ-अपिऽ-लिखेत् क्रि-यः १ राजशासनम् २ परदारिकचौरम् २ वाऽ-मुञ्चतः ६ दण्डः १ उत्तमः १ ॥

योजना-ऊनं वा अधिकं वा यो राजशासनं लिखेत् तस्य वा पारदारिकचौरं मुञ्चतः पुरुषस्य उत्तमो दण्डो भवति ॥

तात्पर्यार्थ-व्यवहार प्रकरणके मध्यमें स्त्रीपुंयोग नामका अन्यभी विवादका पद मनु और नारदने कहा है उसमें नारदका वचन है कि जिसमें स्त्री और पुरुषके विवाहकी विधि कही जाय वह स्त्रीपुंयोग नाम विवादका पद कहाता है[1] । मनुनेभी कहा है (अ० ८ श्लो० २) कि अपने कुलके मनुष्य स्त्रियोंको रातदिन अपने वशमें रक्खै और विषयोंमें लगी हुई होंय तो अपने वशमें रक्खै[2] । यद्यपि स्त्री और पुरुषका परस्पर अर्थी और प्रत्यर्थीरूपसे राजाके सामने व्यवहार निषिद्ध है तथापि प्रत्यक्षसे वा कर्णपरम्परा (सुनकर) से उनका परस्पर अपचार (अपराध) देखकर राजा स्त्री और पुरुष दोनोंको अपने २ धर्ममार्गमें स्थापन करै, न करै तो राजा दोषका भागी होता है । यह सब व्यवहारप्रकरणमें ही राजधर्मके मध्यमें स्त्री पुरुषका धर्मसमूह कहा है और विवाह प्रकरणमें भी विस्तारपूर्वक कहा है इससे यहां पुनः (फिर) योगीश्वरने नहीं कहा है । अब प्रकीर्णक नामके व्यवहार पदका प्रस्ताव करते हैं । उसका लक्षण नारदने कहा है कि प्रकीर्णकमें भी राजाके आश्रयके व्यवहार जानने, राजाकी आज्ञाको न मानना, वा न माननेका कर्म करना, पुरः (नगरी) का दान, प्रकृति (राजाके सेवक) योंका भेदन, पाखंडी, नैगम श्रेणी गण इनके धर्मका विपर्यय, पिता पुत्रका विवाद, प्रायश्चित्त न करना, प्रतिग्रहका नाश, आश्रमवालोंका क्रोध, वर्णसंकरका दोष, उनकी जीविकाका नियम, और जो पिछले प्रकरणोंमें न दीखै वह सब प्रकीर्णकमें होता है[1] । प्रकीर्णक नामके विवादपदमें जो विवाद राजाका उल्लंघन, राजाकी आज्ञा करनेके विषयमें हैं वे सब राजाके अधीन होते हैं । राजाही उनमें धर्मशास्त्र और सदाचारके विरुद्ध जो वर्ताव करै उनका प्रतिकूल होकर व्यवहारोंका निर्णय करै । यह कहनेसे यह बात जानी गई कि राजाके अधीन जो व्यवहार वह प्रकीर्णक कहाता है ॥

राजाने भूमि वा निबंधका जो परिमाण दियाहो उससे न्यून वा अधिक जो प्रकाश करके लिखता है और पारदारिक (जार) वा चोरको पकडकर राजाके अर्पण किये विना जो छोडता है वे दोनों उत्तम साहस दंड देने योग्य होते हैं ॥

भावार्थ-जो मनुष्य न्यून वा अधिक राजाकी आज्ञाको लिखता है वा जार और

---

१ विवाहादिविधिः स्त्रीणां यत्र पुंसां च कीर्त्यते । स्त्रीपुंसयोगसंज्ञं तद्विवादपदमुच्यते ॥

२ अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् । विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे ॥

१ प्रकीर्णके पुनर्ज्ञेया व्यवहारा नृपाश्रयाः । राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्मकरणं तथा ॥ पुरःप्रदानं संभेदः प्रकृतीनां तथैव च । पाखंडिनैगमश्रेणिगणधर्मविपर्ययाः ॥ पितापुत्रविवादश्च प्रायश्चित्तव्यतिक्रमः । प्रतिग्रहविलोपश्च कोप आश्रमिणामपि ॥ वर्णसंकरदोषश्च तद्वृत्तिनियमस्तथा । न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वं तत्स्यात्प्रकीर्णके ॥

चोरको छोडता है वह उत्तम साहस दंड देने योग्य है ॥ २९५ ॥

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दंडउत्तमसाहसम्।
मध्यमंक्षत्रियंवैश्यंप्रथमंशूद्रमर्द्धिकम् २९६॥

पद्–अभक्ष्येण ३ द्विजम् २ दूष्यऽ–दंडः १ उत्तमसाहसम् १ मध्यमम् १ क्षत्रियम् २ वैश्यम् २ प्रथमम् १ शूद्रम् २ अर्धिकम् १ ॥

योजना–द्विजम् अभक्ष्येण दूष्य उत्तमसाहसं, क्षत्रियं दूष्य मध्यमं, वैश्यं दूष्य प्रथमं, शूद्रं दूष्य आर्धिकं दंड्यः भवति ॥

ता० भावार्थ–मूत्रपुरीष आदि अभक्ष्य पदार्थसे ब्राह्मणको दूषण लगाकर अर्थात् अन्न पान आदिमें मिलाकर भक्षण कराकर उत्तम साहस दंडके, और ऐसेही क्षत्रियको दूषित करके मध्यम साहस दंडके, और वैश्यको दूषित करके प्रथम साहस दंडके और शूद्रको दूषित करके प्रथम साहसके आधे दंडके योग्य होते हैं। और लशुन आदि अभक्ष्यसे दूषित करनेमें तो दोषके न्यून अधिक भावसे दंडकी न्यूनाधिकता जाननी ॥ २९६ ॥

कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी।
अंगहीनस्तु कर्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसम् ॥

पद्–कूटस्वर्णव्यवहारी १ विमांसस्य ६ चऽ–विक्रयी १ अंगहीनः १ तुऽ–कर्त्तव्यः १ दाप्यः १ चऽ–उत्तमसाहसम् २ ॥

योजना–कूटस्वर्णव्यवहारी च पुनः विमांसस्य विक्रयी अंगहीनः कर्तव्यः च पुनः उत्तमसाहसं दाप्यः ॥

तात्पर्यार्थ–रसवेध आदिसे किये हैं उत्तम वर्ण जिनके ऐसे कूट (बनावटके) सुवर्णोंसे व्यवहार करनेका स्वभाव जिसका ऐसे स्वर्णकारको और श्वा आदिसे मिले कुत्सित मांसका विक्रय करनेवाला जो शौनिक (हिंसक) आदि है उसको और चशब्दसे कूट चांदीके व्यवहारीको नासिका कर्ण और हाथसे हीन प्रत्येक २ को करै और उत्तम साहस दण्डदे जो मनुने यह कहा है (अ० ९ श्लो० २९२) कि सब कण्टकोंमें बडा पापी सुनार है। यदि वह अन्यायमें प्राप्त होय तो उसका देह तिल २ पर छुरीसे छेदन करै यह वचन देवता और ब्राह्मणके सुवर्णके विषयमें है।

भावार्थ–कूट स्वर्णके व्यवहारी कुत्सित मांसके वेचनेवालेका अंग छेदन करै और उत्तम साहस दंड दे ॥ २९७ ॥

चतुष्पादकृतो दोषो नापैहीति प्रजल्पतः।
काष्ठलोष्टेषु पाषाणबाहुयुग्यकृतस्तथा ॥

पद्–चतुष्पादकृतः १ दोषः १ नऽ–अपैहि क्रि–इतिऽ–प्रजल्पतः ६ काष्ठलोष्टेषु ७ पाषाण बाहुयुग्यकृतः १ तथाऽ– ॥

योजना–अपैहीति प्रजल्पतः स्वामिनः चतुष्पादकृतः तथा काष्ठलोष्टेषु पाषाणबाहुयुग्यकृतः दोषो न भवति ॥

तात्पर्यार्थ–अपसरण करो (हटो) इस प्रकार ऊंचे स्वरसे कहते हुए स्वामीको गौ गज आदि चतुष्पादोंके किये अपराधका दोष नहीं होता। तैसेही लकडी ढेला बाण पत्थर इनके फेंकनेसे भुजाका और युग (जूआ) लेजाते हुए अश्व आदिका किया, पूर्वोक्त अपराधका दोष उसको नहीं होता। जो काष्ठ आदिको फेंकताहो और अपने मुखसे हटजाओ ऐसा कहताहो वहां काष्ठ आदिके फेंकनेमें दोषका अभाव कहना दंडके अभाव कहनेके लिये है।

सर्वकण्टकसंपिष्टं हेमकारं तु पार्थिवः। प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥

अज्ञानसे किये पापका प्रायश्चित्त तो करनाही पडता है। यहां काष्ठ आदिका ग्रहण शक्ति और तोमरकाभी उपलक्षण है।

भावार्थ-हटो ऐसे कहते हुए स्वामीको चौपायोंका किया दोष और काष्ठ लोष्ट फेंकते हुए मनुष्यको पाषाण भुजा और अश्व आदिका दोष नहीं लगता ॥ २९८ ॥

छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना। पश्चाच्चैवापसरताहिंसनेस्वाम्यदोषभाक् ॥

पद-छिन्ननस्येन ३ यानेन ३ तथाऽ-भग्नयुगादिना ३ पश्चात्ऽ-चऽ-एवऽ-अपसरता ३ हिंसने ७ स्वामी १ अदोषभाक् १ ॥

योजना-छिन्ननस्येन यानेन तथा भग्नयुगादिना च पुनः पश्चात् अपसरता हिंसने सति स्वामी अदोषभाक् भवति ॥

तात्पर्यार्थ-नासिकाकी रज्जुको नस्य कहते है। वह शकट आदिमें जुते जिस बलीवर्दकी नष्ट होगई हो वा युग्यका भंग होगया हो और वह अक्ष और चक्र आदिके भंगसे पीछेको चलकर वा तिरछा चलकर वा आगेको चलकर किसी मनुष्य आदिकी हिंसा करदे तो स्वामी वा सारथी दोषके भागी नहीं होते। सोई मनुने (अ० ८ श्लो० २९१-९२) कहा है यदि यानके बैलका नस्य (नाथ) का छेदन, युगका भंग, अक्ष और चक्रका भंग, यंत्रोंका छेदन, रज्जुका छेदन आदि होजानेसे वह तिरछा और सन्मुख चलाजाय और स्वामी हटो २ ऐसा कहता रहै तो कुछ दण्ड नहीं ॥

भावार्थ-बैलोंकी नाथके छेदन, युग्यके भगसे पीछेको गमन करते हुए शकट आदिसे हिंसा होय तो कुछ स्वामीको दोष नहीं ॥२९९॥

शक्तोप्यमोक्षयन्स्वामी दंष्ट्रिणां शृंगिणां तथा। प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टेद्विगुणंतथा॥

पद-शक्तः १ अपिऽ- अमोक्षयन् १ स्वामी १ दंष्ट्रिणाम् ६ शृंगिणाम् ६ तथाऽ- प्रथमम् २ साहसम् २ दद्यात् क्रि-विक्रुष्टे ७ द्विगुणम् २ तथाऽ-॥

योजना-दंष्ट्रिणां च पुनः शृंगिणां शक्तः अपि स्वामी अमोक्षयन् सन् प्रथमं साहसं तथा विक्रुष्टे सति द्विगुणं दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि अप्रवीण (अनाडी) प्राजक (सारथि) की प्रेरणासे हाथी आदि दंष्ट्रावाले और गौ आदि सींगवाले पशुओंसे वधको प्राप्त हुए जीवको जो स्वामी नहीं छुटाता अर्थात् उपेक्षा करता है तो उस स्वामीको इस लिये प्रथम साहस दंड होता है कि, उसने अकुशल सारथी क्यों रक्खा। यदि मनुष्य ऐसे कहे कि मुझे मारता है फिर भी न छुटावे तो दुगुना दंड होता है। यदि कुशल सारथीको स्वामी प्रेरै तो सारथीकोही दंड होता है स्वामीको नहीं। सोई मनुने (अ० ८ श्लो० २८४) कहा है कि सारथी कुशल होय तो वही दंड योग्य होता है। प्राणीके भेदसेभी दंडका भेद समझना ऐसेही मनुने कहाहै (अ०८ श्लो० २९६-९७-९८-) कि मनुष्यके मरणमें शीघ्रही अपराधी होताहै और बडे२प्राणधारी

---

१ छिन्ननस्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते। अक्षभंगे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥ छेदने चैव यंत्राणां योक्तृरश्म्योस्तथैव च । आक्रन्दे सत्यपैहीति न दंडं मनुरब्रवीत् ॥

१ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दंडमर्हति।

२ मनुष्यमरणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषी भवेत् । प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥ क्षुद्राणां तु पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः पंचाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ गर्दभाजाविकानां तु दंडः स्यात्पंचमाषकः। माषकस्तु भवेद्दंडः श्वशूकरनिपातने ॥

गौ गज अश्व ऊंट आदिकी बडी हिंसामें आधा दंड, शूद्र पशु आदिकी हिंसामें दो सौ २०० पण दंड, शोभन मृग पक्षी आदिकी हिंसामें पचास पण दंड, गर्दभ अजा भेडकी हिंसामें पांच माष दंड होताहै और श्वा सूकर, इनकी हिंसामें एक माष दंड होता है ॥

भावार्थ–यदि समर्थ होकर स्वामी दंष्ट्रा और सींगवाले पशुसे न बचावै तो प्रथम साहस दंड और मनुष्यके मुझे मारता है ऐसे कहनेपर स्वामी न बचावै तो दूना दंड होता है ॥

जारं चौरेत्यभिवदन्दाप्यःपंचशतं दमम् । उपजीव्य धनं मुंचंस्तदेवाष्टगुणीकृतम्३०१

पद–जारम् २ चौर १ इतिऽ–अभिवदन् १ दाप्यः १ पंचशतम् २ दमम् २ उपजीव्यऽ– धनम् २ मुंचन् १ तत् २ एवऽ–अष्टगुणी- कृतम् २ ॥

योजना–जारं चौर इति अभिवदन् पुरुषः पंचशतं दमं दाप्यः धनम् उपजीव्य मुंचन् सत् अष्टगुणीकृतं तदेव दमं दाप्यः ॥

ता० भावार्थ–अपने वंशमें कलंक लगनेके भयसे पराई स्त्रीमें गमन करनेवाले जारको हे चोर तू निकस ऐसे जो कहता है वह पां- च सौ पण दंड देने योग्य है। जो मनुष्य जा- रके हाथसे धनको उत्कोच (कोड) रूपसे ग्रहण करके जारको छोडता है वह जितना धन ग्रहण किया हो उससे आठगुना दंड देने योग्य है ॥ ३०१ ॥

राज्ञोनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकारिणम् । तन्मंत्रस्य च भेत्तारंछित्त्वाजिह्वांप्रवासयेत्॥

पद–राज्ञः ६–अनिष्टप्रवक्तारम् २ तस्य ६ एवऽ–आक्रोशकारिणम् २ तन्मंत्रस्य ६ चऽ– भेत्तारम् २ छित्वाऽ–जिह्वाम् २ प्रवासयेत् क्रि–॥

योजना–राज्ञः अनिष्टप्रवक्तारं, तस्य एव आक्रोशकारिणम्, च पुनः तन्मंत्रस्य भेत्तारं जिह्वां छित्त्वा प्रवासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–और राजाके अनिष्ट (शत्रु की स्तुति आदि) को जो वारंवार कहै और राजाकीही जो निंदा करै और राजाका जो अपने राज्यकी वृद्धि पराये राज्यका नाश इनके लिये मंत्र हो उसका जो भेदन करै अर्थात् राजशत्रुओंके कानोंमें कहै उसकी जिह्वाका छेदन करके अपने राज्यमेंसे निकास दे। और जो कोश आदिका अपहरण (चोरी) करै तो उसका तो वधही होताहै क्योंकि मनुकी स्मृति है (अ० ९ श्लो० २७५) कि राजाके कोशके चोरोंको और राजाकी प्रतिकूलतामें स्थितों (टिके) को और राजशत्रुआक उपकारकर्ता- ओंको अनेक प्रकारके दंडोंसे मरवाय दे,अर्थात् सर्वस्वका हरण, अंगछेदन, वध आदिका दंड दे और सर्वस्वके हरनेमें भी चोरके जीवनकी सामग्री हो वह न छीन किंतु चोरीकीही सामग्री (कुद्दाल आदि) छीनले। सोई नारदने कहा है कि शस्त्रोंसे जीनेवालोंके शस्त्र और वाह्योंसे जीनेवालोंके वाह्य (बैल आदि) और वेश्या स्त्रियोंके भूषण और वाद्य तोद्य आदिसे जो जीवें उनके वाद्य और तोद्योंको और जिसका जो उपकरण (सामग्री) हो और जिससे कारुक (शिल्पी) जीवतं हों इन सबको सर्वस्वके हरनेमें भी राजा हरनेके योग्य नहीं है। और ब्राह्मणको शरीरका दंड नहीं

१ राज्ञः कोशापहर्तॄंश्च प्रतिकलेषु च स्थितान्। घात- येद्विविधैर्दंडैररीणां चोपकारकान् ॥

२ आयुधान्यायुधीयानां वाह्यादन्वािह्यजीविनाम्। वेश्यास्त्रीणामलंकारान्वाद्यतोद्यादि तद्विदाम् ॥ यच्च यस्योपकरणं येन जीवंति कारुकाः । सर्वस्वहरणेप्ये- तन्न राजा हर्तुमर्हति ॥

इस निषेधसे वधके स्थानमें शिरका मुंडन आदि करै क्योंकि मनुकी स्मृति है कि ब्राह्मणका वध मुंडनही है और मस्तकपर श्रेष्ठ अंक (दाग) और गर्धभपर गमन (चढाना) है ॥

भावार्थ–राजाके अनिष्टका वक्ता, राजाका निंदक, राजाके मंत्र (सलाह) का भेदक इनकी जिह्वा काटकर देशमेंसे निकास दे ॥

मृतांगलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताडयितुस्तथा ।
राजयानासनारोढुर्दंड उत्तमसाहसः ३०३॥

पद–मृतांगलग्नविक्रेतुः ६ गुरोः ६ ताडयितुः ६ तथा ऽ–राजयानासनारोढुः ६ दण्डः १ उत्तमसाहसः १ ॥

योजना–मृतांगलग्नविक्रेतुः तथा गुरोः ताडयितुः राजयानासनारोढुः उत्तमसाहसो दंडो भवति ॥

ता० भा०–मरे हुए शरीरके संबन्धी वस्त्र पुष्प आदिके बेचनेवाला और पिता आचार्य आदि गुरुको ताडना करनेवाला और जो राजाकी अनुमतिके विना राजाके अश्व गज आदि यान और सिंहासन आदि आसनपर बैठता है इन सबको उत्तम साहस दंड होता है ॥ ३०३ ॥

द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा ।
विप्रत्वेन च शूद्रस्यजीवतोष्टशतोदमः ३०४

पद–द्विनेत्रभेदिनः ६ राजद्विष्टादेशकृतः ६ तथाऽ–विप्रत्वेन ३ चऽ–शूद्रस्य ६ जीवतः ६ अष्टशतः १ दमः १॥

योजना–द्विनेत्रभेदिनः तथा राजद्विष्टादेशकृतः च पुनः विप्रत्वेन जीवतः शूद्रस्य अष्टशतो दमो भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य क्रोध आदिसे दूसरेके दोनों नेत्रोंको भेदन करता है और जो ज्योतिःशास्त्रको जाननेवाला हितकी इच्छा करनेवाले गुरु आदिसे भिन्न राजाको जो अनिष्ट उपदेश करता है कि तेरा राज्य इस वर्षके अन्तमें नष्ट होजायगा, और जो शूद्र भोजनके लिये यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणके चिह्नोंको दिखाता है इन सबको आठ सौ पण दंड देना । यहां स्मृत्यंतरमें कहा हुआ यह समझना कि जो शूद्र श्राद्धभोजनके लिये ब्राह्मणके वेषको धारण करै इसके शरीरमें तपाई हुई शलाकासे यज्ञोपवीतके समान चिह्न करदे । और जो वृत्ति (जीवन) के लिये यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणके चिह्नोंको धारण करै उसका वधही होता है क्योंकि यह वचन है कि द्विजके चिह्नोंको धारण किये हुए शूद्रोंको नष्ट करदे ॥

भावार्थ–दोनों नेत्रोंका भेदन करनेवाला और राजाको अनिष्ट उपदेश करनेवाला और ब्राह्मणके वेषको धारण करके जीवन करनेवाला शूद्र इनको आठ सौ पण दंड देना ॥ ३०४ ॥

दुर्दृष्टांस्तु पुनर्दृष्ट्वा व्यवहारान्नृपेण तु ।
सभ्याःसजयिनोदंड्याविवादाद्विगुणंदमम् ।

पद–दुर्दृष्टान् २ तुऽ–पुनःऽ–दृष्ट्वाऽ–व्यवहारान् २ नृपेण ३ तुऽ–सभ्याः १ सजयिनः १ दंड्याः १ विवादात् ५ द्विगुणम् २ दमम् २॥

योजना–तु पुनः नृपेण दुर्दृष्टान् व्यवहारान् दृष्ट्वा सजयिनः सभ्याः विवादात् द्विगुणं दमं दंड्याः ॥

तात्पर्यार्थ–धर्मशास्त्र और सदाचार धर्मके अवलंबनसे राग लोभके द्वारा भली

१ राज्ञः कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपकारकम् ॥

१ द्विजातिलिंगिनः शूद्रान् घातयेत् ।

प्रकार विना विचारे शंकासे युक्त व्यवहारोंको राजा पुनः स्वयं भली प्रकार विचार कर निश्चित है दोष जिनका ऐसे पहिले निर्णय करनेवाले उन सभासदोंको और जीत जिसकी हुई है उस जयीको विवादके पदमें जो दंड पराजितको है उससे दूना दंड प्रत्येकको दे। यह वचन उसको दंडका विधान करता है जिस जयके अयोग्यको जय हुआ हो इससे राग लोभसे धर्मशास्त्रके विरुद्ध करनेवालोंको पृथक् दंड दे इस पूर्वोक्त वचनसे पुनरुक्ति दोष नहीं है। और जहां साक्षियोंके दोषसे व्यवहारकी दुष्टता हो वहां साक्षीही दंड देने योग्य है, जयी और सभासद नहीं। और जब राजाकी अनुमतिसे व्यवहारकी दुष्टता होय तो राजा सहित संपूर्ण सभासद आदि दंड देने योग्य हैं। क्यों कि यह वचन है कि पापका एक पाद कर्ताको[1] एक पाद साक्षीको एक पाद सभासदोंको और एक पाद राजाको प्राप्त होता है। यह वचन प्रत्येक राजा आदिकोंको दोषका बोधक है। एक २ को पापके अपूर्वके विभागार्थ नहीं है। सोई कहा है[2] कि अपूर्व जो होता है वह कर्तामें समवाय संबंधसे रहनेवाले फलको पैदा करता है। पाप और पुण्यका जो फलजनक संस्कार वह अपूर्व कहाता है॥

भावार्थ-विशेष कर दुष्ट व्यवहारोंको देखकर और राजा पुनः स्वयं विचार कर सभासद और जीतनेवालेको विवादके धनसे दूना दंड दे॥ ३०९॥

योमन्येताजितोस्मीतिन्यायेनापिपराजितः तमायातंपुनर्जित्वादापयेद्विगुणंदमम् ३०६

पद-यः १ मन्येत क्रि-अजितः १ अस्मि क्रि-इतिऽ-न्यायेन ३ अपिऽ-पराजितः १ तम् २ आयांतम् २ पुनःऽ-जित्वाऽ-दापयेत् क्रि-द्विगुणम् २ दमम् २ ॥

योजना-न्यायेन पराजितः अपि यः अजितः अस्मि इति मन्येत-आयांतं तं पुनः जित्वा द्विगुणं दमं दापयेत्-

तात्पर्यार्थ-न्यायके मार्गसे पराजितभी जो मनुष्य उद्धत पनेसे अपनेको यह माने कि मैं पराजित नहीं हुआ यह कहकर कूट लेख आदिके उपन्याससे धर्माधिकारीके समीप फिर आवे तो उसका धर्मसे फिर पराजय करके दूना दंड दिवावे। नारदनेभी कहा है कि जो[1] पराजय किया वा शिक्षित किया मनुष्य अधर्मसे पराजय आदिको माने उसको दूना दंड देकर उसके कार्यका फिर उद्धार करे। इस वचनमें तीरित वह है जिसका साक्षी लेख हो चुकाहो और दंड जिसने न दियाहो और अनुशिष्ट उसको कहते हैं जिसने दंड दियाहो अर्थात् दंडपर्यंत दे चुकाहो और जो मनुका यह वचन है (अ० ९ श्लो० २३३) कि[2] जहां कहीं तीरित और अनुशिष्ट न हो उसको धर्मसे किया जाने, बुद्धिमान् मनुष्य उसको निवृत्त न करे। वह वचन इस लिये है कि अर्थी और प्रत्यर्थी इन दोनोंमें किसी एकके वचनसे अधर्मपूर्वक व्यवहार हो जानेकी शंका होनेपर फिर दूना दंड दे और प्रतिज्ञापूर्वक व्यवहारको पुनः प्रवृत्त करै और धर्मसे व्यवहार होनेके निश्चय होनेमें राजा लोभ आदिसे व्यवहारको प्रवृत्त न करै। और जो व्यवहार किसी अन्य

---

१ पादो गच्छाति कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छाति । पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छाति ॥

२ कर्तृसमवा यिफलजननस्वभावत्वादपूर्वस्य ।

१ तीरितं चानुशिष्टं वा यो मन्येत विधर्मतः । द्विगुणं दंडमास्थाय तत्कार्यं पुनरुद्धरेत् ॥

२ तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन विद्यते । कृतं तद्धर्मतो ज्ञेयं न तत्प्राज्ञो निवर्तयेत् ॥

राजाने न्यायसे हीन (अन्यायसे) कार्य कियाहो उसको भी भली प्रकार परीक्षा करके धर्ममार्गमें स्थापन करै। क्योंकि यह स्मृति है कि जो अन्य राजाने अज्ञानसे किया हो अन्यायसे किये उसको भी फिर न्यायमें प्रवेश करै।

भावार्थ-न्यायसे पराजितभी जो मनुष्य अपनेको पराजित न मानै, राज्यस्थानमें आये उसको फिर जीतकर दूना दंड दिवावे ॥ ३०६॥

राज्ञाऽन्यायेन यो दंडो गृहीतोवरुणायतम्।
निवेद्य दद्या द्विप्रेभ्यःस्वयंत्रिंशद्गुणीकृतम् ॥

पद-राज्ञा ३ अन्यायेन ३ यः १ दंडः १ गृहीतः १ वरुणाय ४ तम् २ निवेद्य दद्यात्ऽ-क्रि-विप्रेभ्यः ४ स्वयम्ऽ-त्रिंशद्गुणीकृतम् २ ॥

योजना-यः दंडः राज्ञा अन्यायेन गृहीतः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतं तं वरुणाय निवेद्य विप्रेभ्यः दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-जो दंड राजाने लोभसे ग्रहण कियाहो उसको तीस गुणा करके और वरुणको संकल्प कर निवेदन करके ब्राह्मणोंको स्वयं देदे, क्योंकि अन्यायसे दंड रूपसे जितना ग्रहण कियाहो उतना उसकोही दे जिससे लियाहो अन्यथा चोरीका दोष होगा, और अन्यायसे दंडके ग्रहणमें पहिले स्वामीके स्वत्वका नाशभी नहीं होता

भावार्थ-जो दंड राजाने अन्यायसे लियाहो उसको संकल्प कर वरुणके निवेदन करके और तीसगुने उस धनको संकल्प करके ब्राह्मणोंको राजा स्वयं दे ॥ ३०७ ॥

इति प्रकीर्णकप्रकरणम् २५.

इति श्रीयाज्ञवल्क्यीयधर्मशास्त्रविवृतेः श्रीपद्मनाभभट्टात्मजश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यविज्ञानेश्वरभट्टारककृतमिताक्षराया मिताक्षरार्थबोधिन्याः पं० रामरक्षात्मज पं० मिहिरचंद्रकृतायां श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजगुप्तकारितायां मिताक्षराप्रकाशव्रजभाषाविवृतौ व्यवहाराध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अब इस अध्यायकी अनुक्रमणिका कहतेहैं।

उत्तम है उपपद जिसके और आत्माके शिष्य विज्ञानेश्वरयोगीकी कृति (बनायी) यह धर्मशास्त्रकी विवृत्ति (व्याख्या) है १।

१ न्यायापेतं यदन्येन राज्ञा ज्ञानकृतं भवेत् । तदप्यन्यायविहितं पुनर्न्याये निवेशयेत् ॥

इति श्रीमिश्रोपाह्वपण्डितरामरक्षात्मजपण्डितमिहिरचन्द्रकृत-
मिताक्षराप्रकाशभाषाविवृतिसहितयाज्ञवल्क्यस्मृतौ
व्यवहाराध्यायः संपूर्णः ॥

अथ याज्ञवल्क्यस्मृतिः।

मिताक्षराप्रकाशसहिता।

प्रायश्चित्ताध्यायः ३.

अथाशौचप्रकरणम् १.

ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः।
आश्मशानादनुव्रज्य इतरोज्ञातिभिर्मृतः॥ १

पद–ऊनद्विवर्षम्२ निखनेत् क्रि–नऽ–कुर्यात् क्रि–उदकम् २ ततःऽ–आऽ–श्मशानात् ५ अनुव्रज्यः १ इतरः १ ज्ञातिभिः ३ मृतः १॥

यमसूक्तं तथागाथाजपद्भिर्लौकिकाग्निना।
सदग्धव्यउपेतश्चेदाहिताग्न्याद्यवृतार्थवत्॥ २

पद–यमसूक्तम् २ तथाऽ–गाथाः १ जपद्भिः ३ लौकिकाग्निना ३ सः १ दग्धव्यः १ उपेतः १ चेत्ऽ–आहिताग्न्यावृता ३ अर्थवत्ऽ॥

योजना–ऊनद्विवर्षं प्रेतं भूमौ निखनेत् ततः उदकं न कुर्यात् इतरः मृतः ज्ञातिभिः आश्मशानात् अनुव्रज्यो भवति उपेतश्चेत् यमसूक्तं तथा गाथाः जपद्भिः आहिताग्न्यावृता अर्थवत् सः लौकिकाग्निना दग्धव्यः॥

तात्पर्यार्थ–इससे पहिले दोनों अध्यायोंमें गृहस्थ और आश्रमवालोंके नित्य और नैमित्तिक धर्म कहे और अभिषेक आदि गुणसे युक्त गृहस्थ विशेष (राजा) के गुण और धर्म दिखाये, अब उसके अधिकारके संकोच करनेवाले अशौचके कथनद्वारा उनके निषेधका प्रतिपादन करते हैं। अशौच शब्द करके स्नान आदिसे दूर करने योग्य समय और पिण्ड जलदान विधि और पठन आदिके निषेधका निमित्तभूत पुरुषमें रहनेवाला कोई एक धर्मविशेष कहा जाता है। कुछ कर्मके अधिकारका अभाव ही नहीं क्योंकि अशुद्धा बांधवाः सर्वे इत्यादि वचनमें अशुद्धिही कही है। यहां अशुद्ध शब्दका व्यवहारमें अग्निहोत्रीसे भिन्न दीक्षित आदिमें सम्पूर्ण अधिकारियोंसे भिन्नमें प्रयोग नहीं है और वृद्धोंके व्यवहारकी व्युत्पत्तिसे भी यही शब्दार्थ प्रतीत होता है और जो अशौचवालोंको ज्ञान आदिका निषेध देखते हैं वहभी अयोग्यता रूप अशौच शब्दका अर्थ है और उसमें अनेकार्थ कल्पनाका दोष भी है इससे वह पक्ष त्यागने योग्य है॥

जो प्रेत दो वर्षकी अवस्थासे कम हो उसको भूमिमें गढा खोदके गाड दे, दाह न करै, एक वार उदक (जल) सींचै इसे आदि वचनोंसे विधान किया जो प्रेतके निमित्त जलदान आदि और्ध्वदेहिक कर्म वह न करै, और इसकोभी गन्ध पुष्प चन्दन आदिसे शोभित करके श्मशानसे भिन्न ऐसी शुद्ध भूमिमें ग्रामसे बाहिर गाडे जिसमें अस्थि न पडेहों, सोई मनुने कहा है कि (अ० ५ श्लो० ६८) दो वर्षसे कमके

१ सकृत्प्रासिंचन्त्युदेकम्।

२ ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः। अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते। नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो नास्य कार्योदकक्रिया। अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेव तु॥

प्रेतको शोभित करके ऐसी शुद्ध भूमिमें ग्रामसे बाहर बान्धव गाडैं, जहां अस्थियोंका संचय न हो। और इसको अग्निका दाह और जलदान न करैं और जैसे वनमें काष्ठको त्याग कर उदासीन रहते हैं इसी प्रकार उदासीन रहैं अर्थात् अशौच करैं, वनमें काष्ठके समान त्यागकर इसका यह अर्थ है कि जिस प्रकार वनमें काष्ठको त्यागकर उदासीन होते हैं इसी प्रकार दो वर्षसे कमके प्रेतकोभी खुदी हुई भूमिमें त्यागकर उस के निमित्त श्राद्ध आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंमें उदासीन रहैं, यह लोकाचारसे प्राप्त श्राद्ध आदिका अभाव इस दृष्टान्तसे सूचित किया और उस प्रेतको यमगाथा पढते हुए बांधव घी मलकर भूमिमें गाडैं, क्योंकि यमकी यह स्मृति है कि दो वर्षसे कमके प्रेतको घी मलकर यमगाथा और यमसूक्तको पढता हुआ ग्रामसे बाहिर गाडै, और उससे जो इतर अर्थात् पूरे दो वर्षका जो प्रेत होय उसके संग श्मशानपर्यंत सपिंड और समानोदक जातिके मनुष्य वडे बडोंको आगे करके चलैं इसी वचनसे यह बात सूचन भई कि दो वर्षसे कमके प्रेतके संग चलनेका नियम नहीं और उस पूरे दो वर्षके पीछे चलकर परेयिवांसम् 'इत्यादि यमसूक्त और यम है देवता जिनका ऐसी गाथाओंको पढते हुए बान्धव लौकिक (संस्काररहित) अग्निसे दाह करैं, अरणिसे मथी हुई अग्नि होय तो उससेही दाह करैं लौकिकसे न करैं, क्योंकि अरणिसे मथी हुई अग्निसे पैदा होनेवाले सब कार्योंके लिये पैदा होती है और लौकिक अग्निभी चाण्डालकी अग्नि आदिसे भिन्नही लेनी क्योंकि यह देवलका वचन है कि चाण्डालकी अग्नि, अपवित्र अग्नि, सूतिकाकी अग्नि, पतितकी अग्नि, चिताकी अग्नि ये शिष्टोंके ग्रहण करने योग्य नहीं, लौगाक्षिने तो यहां विशेष कहा है कि तूष्णीं (विनामंत्र) जलदान, और तूष्णीं संस्कार उन बालकोंका करै जिनका मुण्डन होचुकाहो और अन्य बालकोंके लिये भी इच्छासे इन दोनोंको करै इसका यह अर्थ है कि मुण्डन कर्मके पीछे अग्नि और जलदान नियमसे करै और नामकरणके पीछे अन्य बालकोंके हितके लिये मुण्डनसे पहिलेभी अग्नि और जलदान इन दोनोंको तूष्णीं करै यह विकल्प है। मनुनेभी यह विशेष दिखाया है कि (अ० ५ श्लो० ७०) जो बालक तीन वर्षका न हो उसके लिये बांधव जलदान न करैं अथवा जिसके दांत जम गये हों वा जिसका नामकरण हो चुकाहो उसके लिये तो जलदान करैं इस वचनमें जलदान अग्निसंस्कारकाभी उपलक्षण है इस पूर्वोक्त मनुके वचनसे कुलधर्मकी अपेक्षासे मुण्डन, अधिक कालमेंभी होय तो तीन वर्षसे पीछे अग्नि और जलदानका नियम जानाजाता है और लौगाक्षिके वचनसे तीन वर्षसे पहिलेभी जिसका मुण्डन हो चुकाहो उसको अग्नि और जलदानका, नियम है, यह विवेचन करने योग्य है। यदि बालकका यज्ञोपवीत हो चुका होय तो अपने गृह्यसूत्रमें प्रसिद्ध जो आहिताग्निकी अग्नि और जलदानकी प्रक्रिया

१ ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद्बहिः । यमगाथा गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन् ॥

१ चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित् । पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः ॥

२ तूष्णीमेवोदकं कुर्यात्तूष्णीं संस्कारमेव च । सर्वेषां त्वकृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥

३ न त्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बांधवैरुदकक्रिया । जातदंतस्य वा कुर्यान्नाम्नि वापि कृते सति ॥

उसके अनुसार लौकिक अग्निसे अर्थवत् (प्रयोजनवत्) दाह करने योग्य है। इसका यह अर्थ है कि यदि इसका कोई कार्यरूप प्रयोजन है अर्थात् भूमिका सेवन और प्रोक्षण आदिरूप वह ग्रहण करने योग्य है। और जिस पात्र योजन आदिका प्रयोजन न हो उसकी निवृत्ति जाननी। तैसेही लौकिक अग्निकी विधिसे यज्ञोपवीत हुए पीछे जो अग्निहोत्री न हो उसके दाहकी विधि गृह्याग्निसे है। इससे प्रयोजन आदि न होनेसे आहवनीय आदि अग्निकीभी निवृत्ति समझना। अन्य अग्निकी विधिभी वृद्ध याज्ञवल्क्यने कही है कि जो आग्निहोत्री हो उसका शास्त्रोक्त रीतिसे तीन अग्नियोंसे दाह करै और जो अग्निहोत्री न हो उसका एक अग्निसे करै और अन्यमनुष्योंका दाह लौकिक अग्निसे करै। और शूद्र श्मशानमें, काष्ठ और अग्नि द्विजोंके लिये न लेजाय क्योंकि यमका यह वचन है कि जिस द्विजके लिये शूद्र अग्नि काष्ठ हवि लेजाता है उसको सदा प्रेतत्व रहता है और वह शूद्रभी अधर्मसे लिप्त होताहै। और तैसेही दाहभी स्नानके अनंतर करा ना क्योंकि यह स्मृति है कि सुगंधजलोंसे स्नान कराकर और माला पहनाकर प्रेतका दाह करै। प्रचेताने भी कहा है कि पुत्र आदि प्रेतका स्नान और वस्त्र आदिसे पूजन करै और नग्न देहका दाह न करै और सबके वस्त्रोंमेंसे श्मशानवासी भूतोंके लिये एक वस्त्र त्यागदें। और प्रेतको श्मशानमें लेजानेमें विशेषभी मनु (अ० ५ श्लो० १०४) ने दिखाया है कि अपने कुलके मनुष्य होते हुए मरे हुए ब्राह्मणको शूद्रसे न लिवाजाय। शूद्रके स्पर्शसे दूषित हुई यह आहुति स्वर्ग देनेवाली नहीं होती। यहां अपने कुलके होते हुए यह अर्थ विवक्षित नहीं क्योंकि स्वर्गकी दाता नहीं होती इसके श्रवणसे सर्वथा स्वर्गकी दाता नहीं होती। मरे हुए शूद्रको पुरीके दक्षिण द्वारसे और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनको पश्चिम उत्तर पूर्वद्वारोंके क्रमसे लेजाय। तैसेही हारीतकाभी वचन है कि ग्रामके सन्मुख प्रेतको न ले जाय और जब परदेशमें मरे हुएका शरीर न मिले तो अस्थियोंकी प्रतिकृति (पुतला) बनाकर और अस्थि न मिले तो पर्णशरोंसे शौनक आदिके गृह्यसूत्रकी विधिसे प्रतिकृति बनाकर संस्कार करै, और इसका अशौच दश दिन आदि होता है। क्योंकि वसिष्ठकी यह स्मृति है कि यदि आग्निहोत्री परदेशमें मरजाय तो सबके समान अशौच होताहै और अग्निहोत्री न होय तो त्रिरात्र अशौच होताहै। क्योंकि यह वचन है कि जलसे मिले चूनको लपेटकर अग्निसे दाह यह स्वर्गलोकके लिये स्वाहा है यह कहकर बान्धव करैं। इस प्रकार पर्णशरको दग्ध करके तीन रात्र अशुद्ध होता है। तिससे यह सिद्धान्त हुआ कि नाम-

१ आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः। अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः॥

२ यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च। प्रेतत्वं हि सदा तस्य स चाधर्मेण लिप्यते॥

३ प्रेतं दहेच्छुभैर्गंधैः स्नापितं स्रग्विभूषितम्।

४ स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः। नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत्॥

१ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण हारयेत्। अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता॥

२ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः॥ न ग्रामाभिमुखं प्रेतं हरेयुः॥

३ आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियते पुनः संस्कारं शववदाशौचम्।

४ सुपिष्टैर्जलसंमिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबांधवैः॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।

करणसे पहिले गाडनाही है जल दान आदि नहीं। उससे पीछे तीन वर्षतक अन्न जलदान विकल्पसे होते हैं अर्थात् करै चाहै न करै। उससे परे यज्ञोपवीत पर्यंत विना मंत्र अग्नि और जलदानका नियम है। तीन वर्षसे पहिले भी जिसका मुण्डन हो चुका हो और यज्ञोपवीतसे पीछे आहिताग्निकी प्रक्रियासे दाह करके सब और्ध्वदेहिक कर्म करै। इतना तो विशेष है कि जिसका यज्ञोपवीत हुआ हो उसका लौकिक अग्निसे दाह करै और जो अग्निहोत्री न हो उसका गृह्याग्निसे दाह करै और पात्र भोजन आदिभी जितने मिलें उतनोंका करै अर्थात् गृह्याग्निके पात्र आदिभी चितामें रखदे॥

भावार्थ-दो वर्षसे कमके प्रेतको भूमिमें गाडदे जलदान न करै उससे भिन्न मरे हुए प्रेतके संग ज्ञातिके मनुष्य श्मशानतक गमन करै। यमसूक्त और यमकी गाथाका गान करते हुए दाह करैं। और बालकका यज्ञोपवीत हो चुका होय तो बालकको अग्निहोत्र प्रक्रियासे यथार्थ दाह करैं॥ २॥

सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयंत्यपः।
अपनःशोशुचदघमनेनपितृदिङ्मुखाः ३॥

पद-सप्तमात् ५ दशमात् ५ वाऽ-अपिऽ-ज्ञातयः १ अभ्युपयन्ति क्रि-अपः २ अपनःशोशुचदघमनेन ३ पितृदिङ्मुखाः १॥

योजना-सप्तमात् वा दशमात् पितृदिङ्मुखाः ज्ञातयः अपनःशोशुचदघमनेन अपः अभ्युपयन्ति॥

तात्पर्यार्थ-सातवें वा दशवें दिनसे पहिले सपिण्ड और समानोदक ज्ञातिके मनुष्य दक्षिणदिशाको मुख करके जल हमारे पापको दूर करो इस मंत्रको पढकर जल दान करैं इसी प्रकार मातामह और आचार्यकोभी जलदान करैं। यह जलदान अयुग्मतिथियोंमें करना क्योंकि यह स्मृति है कि पहिली तीसरी पांचवीं सातवीं तिथिमें जलदान करना[1]। यह जलदान स्नानके पीछे करना क्योंकि शातातपकी यह स्मृति है कि प्रेतके शरीरको अग्निमें दाह करके चिताको न देखते हुए जलके समीप जायँ अर्थात् स्नान करके जलदान करैं[2]। तैसेही प्रचेतानेभी यहां यह विशेष दिखाया है कि प्रेतके बांधव वृद्धोंके अनुसार जलमें प्रविष्ट होकर उदासीन रहैं और जलके समीप वस्त्र और यज्ञोपवीतको अपसव्य करके दक्षिणाभिमुख हुए जलदान करैं। ब्राह्मण उत्तरको मुख किये क्षत्रिय और वैश्य पूर्वको मुख किये जलदान करैं[3]। अन्यस्मृतिमें तो जितने अशौचके दिन हों उनमें प्रतिदिन जलदान करना कहाहै। सोई विष्णुने कहा है कि जितने दिन अशौच हो उतने दिन प्रेतको जल और पिण्डदान दे। तैसेही प्रचेतानेभी कहा है कि प्रेतके कारण दिन २ जलकी भरी अंजलि दे इतने पिण्ड समाप्त हों तवतक अंजलियोंकी वृद्धि करता जाय[4] अर्थात् दशवें पिण्डतक अंजलियोंको बढावें यद्यपि इन दोनों गुरु और लघु कल्पोंमें एक प्रकारके करनेसे शास्त्रका अर्थ सिद्ध है तथापि बहुत क्लेश देनेवाले गुरुतर कल्पमें किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती। परन्तु प्रेतका उपकार अधिक होता है यह कल्पना

---

१ प्रथमतृतीयपंचमसप्तमेषूदकक्रिया।

२ शरीरमग्नौ संयोज्यानवेक्ष्यमाणा आपोऽभ्युपयंति

३ प्रेतस्य बांधवाः यथावृद्धमुदकमवतीर्य नोद्धर्षयेयुरुदकान्ते प्रसिंचेयुरपसव्ययज्ञोपवीतवाससो दक्षिणाभिमुखा ब्राह्मणस्योदङ्मुखाः प्राङ्मुखाश्च राजन्यवैश्ययोः।

४ यावदाशौचन्तावत्प्रेतस्योदकं पिण्डं च दद्युः। दिनेदिनेऽञ्जलीन्पूर्णान्प्रदद्यात्प्रेतकारणात्। तावद्वृद्धिः प्रकर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते॥

करनी अर्थात् अधिक कल्पसे ही जलदान आदि करने अन्यथा गुरुकल्पके बोधक अनर्थकता होगी। वशिष्ठने भी विशेष दिखाया है कि अपसव्य हाथोंसे जलदान करैं ॥

भावार्थ–ज्ञातिके मनुष्य सातवें और दशवें दिनसे पहिले दक्षिणाभिमुख होकर जल हमारे पापको दूर करो इस मंत्रको पढते हुए जलदान करैं ॥ ३ ॥

एवंमातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया।
कामोदकंसखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम्॥

पद्–एवम्ऽ–मातामहाचार्यप्रेतानाम् ६ उदकक्रिया १ कामोदकम् १ सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ६ ॥

योजना–मातामहाचार्यप्रेतानाम् उदकक्रिया एवं कर्त्तव्या सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजां कामोदकं कर्त्तव्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–नामगोत्रसे दिये हुए जलदानका भिन्न गोत्र मातामह आदिकोंमें भी अतिदेश (करना) कहते हैं। जैसे सगोत्र सपिण्ड प्रेतोंको जलदान दियाजाता है इसी प्रकार मातामह और आचार्य प्रेतोंकोभी नित्य जलदान करना और मित्र, विवाही हुई कन्या, भगिनी आदि और भानजा, श्वशुर और ऋत्विज मरेहुए इनको कामोदक करना अर्थात् प्रेतकी गतिकी कामना होय तो जलदान करना न होय तो न करना, कुछ न करनेमें दोष नहीं ॥

भावार्थ–मातामह और आचार्य प्रेतोंको भी इसी प्रकार जलदान करै। मित्र, विवाही कन्या, भानजा, श्वशुर, ऋत्विज इनको जलदान करै चाहै न करै ॥ ४ ॥

सकृत्प्रसिंचंत्युदकं नामगोत्रेणवाग्यताः।
नब्रह्मचारिणःकुर्युरुदकंपतितास्तथा ॥ ५॥

पद्–सकृत्ऽ–प्रसिंचन्ति क्रि–उदकम् २ नामगोत्रेण ३ वाग्यताः १ नऽ–ब्रह्मचारिणः१ कुर्युः क्रि–उदकम् २ पतिताः १ तथाऽ–॥

योजना–वाग्यताः (सपिण्डाः) नामगोत्रेण सकृत् उदकं प्रसिंचन्ति ब्रह्मचारिणः तथा पतिताः उदकं न कुर्युः ॥

तात्पर्यार्थ–वह जलदान इस प्रकार करना कि सपिंड और समानोदक मौन हुए प्रेतके नामगोत्रका उच्चारण करके अर्थात् अमुक गोत्र और अमुक नामका प्रेत तृप्त हो यह कहकर एकवारही जलदान करैं अथवा तीन बार करैं। क्योंकि प्रचेताकी यह स्मृति है कि प्रेत तृप्त हो यह कहकर प्रत्येक मनुष्य तीन २ बार जलदान करैं। प्रतिदिन अंजलियोंकी वृद्धिको कह आयेहैं तैसेही यह विशेषभी उसनेही कहा है कि फिर नदीके तटपर जायकर और यथार्थ रीतिसे शुद्ध होकर प्रथम वस्त्रोंको धोवै और फिर स्नान करै फिर सचैल स्नान कर और पाषाणको लेकर उसके ऊपर ब्राह्मणको दश अंजलि, क्षत्रियको बारह, वैश्यको पंद्रह, शूद्रको तीस दे, फिर घरमें प्रवेश करै फिर स्नान करै और घरकी लेप आदिसे शुद्धि करै। अब सपिंडोंको मध्यमें किसी २ को जलदानका निषेध कहते हैं कि, ज्ञातिका मनुष्य होनेपर भी समावर्तनपर्यंत ब्रह्मचारी और जिनको द्विजातियोंके कर्मका अधिकार न हो वे पतित जल और पिण्डदान न करैं। और जो ब्रह्मचर्यके समयमें मरे हों

१ सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वीरन्।

१ त्रिः प्रत्येकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु।

२ नदीकूलं ततो गत्वा शौचं कृत्वा यथार्थवत्। वस्त्रं संशोधयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ सचैलस्तु ततः स्नात्वा शुचिः प्रयतमानसः। पाषाणं तत आदाय विप्रे दद्यादृशांजलीन् ॥ द्वादश क्षत्रिये दद्याद्वैश्ये पंचदश स्मृताः। त्रिंशच्छूद्राय दातव्या ततः संप्रविशेद् गृहम् ॥ ततः स्नानं पुनः कार्यं गृहशौचं च कारयेत् ॥

उनको जलदान और अशौच ब्रह्मचर्यके अनंतर अवश्य करै। सोई मनु (अ० ८ श्लो० ८८) ने कहा है कि जिस ब्रह्मचारीको ब्रह्मचारीके कर्मोंकी (अपोशान दिनमें न सोना आदिकी) आज्ञा है वह आदिष्टी ब्रह्मचारी जबतक व्रतकी समाप्ति हो तबतक जलदान न करै और व्रतकी समाप्ति होनेपर तो जल देकर तीन रात्र अशुद्ध होता है, यहभी पिता आदिसे भिन्नके विषय समझना यह आगे कहेंगे। आचार्य पिता उपाध्याय इस वचनमें आचार्य यह मानते हैं कि जिसने प्रायश्चित्तका प्रारंभ कररक्खा हो वहही आदिष्टी कहाता है, उसकोही यह जलदान आदिका निषेध है और प्रायश्चित्त रूप व्रतकी समाप्तिके अनंतर जलदान और अशौचकी विधिभी उसकोही है। तैसेही नपुंसक आदिकोंको जलदान निषिद्ध है, क्योंकि वृद्धमनुका यह वचन है कि नपुंसक आदि पुत्र, चौर, जिनका समयपर यज्ञोपवीत न हुआ हो वह व्रात्य, विधर्मी गर्भ और भर्ताका द्रोह करनेवाली और मदिरा पीनेवाली स्त्री ये सब जलदान न करैं ॥

भावार्थ-मौन धारै, एक वार नाम गोत्र लेकर जलदान करै, ब्रह्मचारी और पतित ये जलदान न करैं ॥ ५ ॥

पाखंड्यनाश्रिताःस्तेना भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः ॥ सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनाः ॥ ६ ॥

पद-पाखण्डी १ अनाश्रिताः १ स्तेनाः १ भर्तृघ्न्यः २ कामगादिकाः १ सुराप्यः १ आत्मत्यागिन्यः १ नऽ- आशौचोदकभागिनः १॥

योजना-पाखंडी अनाश्रिताः स्तेनाः भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः सुराप्यः आत्मत्यागिन्यः एते आशौचभागिनो न भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-मनुष्यका शिर और कपाल आदि वेदसे बाह्य चिह्नको जो धारण करैं वे पाखंडी, और अधिकार होनेपरभी जिन्होंने ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका ग्रहण न कियाहो वे अनाश्रित, सुवर्ण आदि उत्तम द्रव्योंको जो चुरावैं वे स्तेन, पतिकी हत्या करनेवाली और कुलटा अर्थात् जो विना प्रयोजन कुल २ में विचरै वे कामग स्त्री, और आदि पदके ग्रहणसे अपना गर्भ और ब्राह्मणके हत्यारी, और जिस जातिको जो मदिरा निषिद्ध हो उसके पीनेवाली सुरापी, और जो विष अग्नि जल और बंधनसे अपना घात करैं वे आत्मत्यागिनी ये पाखंडी आदि सब तीन रात्र वा दशरात्र जो आशौच कहेंगे उसके और जलदान आदि कोई दैहिक कर्मके अधिकारी नहीं होते, अर्थात् सपिंड आदिकों इनके मरनेमें अशौच आदि नहीं होता, इससे सपिंडभी जलदान आदि न करैं इसके लिये ये वचन है। यहां सुराप्य इत्यादिमें स्त्रीलिंग विवक्षित नहीं क्योंकि इस वचनमें लिंगको न मानने योग्योंमें पढा है कि लिंग, वचन, देश, काल, कर्मका फल इन पांचोंको मीमांसामें कुशलोंने मानने योग्य नहीं कहा। यहभी जानकर करनेमें समझना। सोई गौतमने कहा है कि प्रायः (महाप्रस्थान) अनशन (भोजनका त्याग) शस्त्र, अग्नि, विष, जल, इंधन, गिरिके शिखरसे गिरना इनसे जो मरना चाहैं वे अशौचके भागी नहीं होते इस वचनमें इच्छतः यह कहनेसे दोष

१ आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥

२ क्लीबाद्या नोदकं कुर्युः स्तेना व्रात्या विधर्मिणः। गर्भभर्तृद्रुहश्चैव सुराप्यश्चैव योषितः ॥

१ लिंगं च वचनं देशः कालोऽयं कर्मणः फलम्। मीमांसाकुशलाः प्राहुरनुपादेयपंचकम् ॥

२ प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम्।

नहीं यह जानना क्योंकि अंगिराकी स्मृतिहै कि जो कोई मनुष्य प्रमादसे अग्नि और जलसे मर जाय उसका अशौच और जलदान करै तैसेही विशेष मृत्युसेभी अशौच आदिका निषेध इसे वचनसे है कि चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विजली, डाढवाले और पशु इनसे पापी मनुष्य मरते हैं उन पापियोंको जो जल और पिंड दिया जाता है वह उनको नहीं मिलता किंतु आकाशमेंही नष्ट होजाता है, यह भी तब है जब जानकर आत्महत्या की हो, क्योंकि गौतमके वचनमें जानकर जो आत्महत्या की हो उसकोहि अशौचका निषेध कहा है। इस वचनमेंभी चाण्डाल जल और सर्प इनके साहचर्य देखनेसे जानकर ही मरनेके विषयमें यह वचन है। यह ही निश्चय है इससे अभिमान आदिसे जो चाण्डाल आदिके मारनेको गयाहो और उन्होंने मार दियाहो, उसको पिण्डदानका निषेध है, क्योंकि उसने सबसे अपनी आत्माकी रक्षा करै इसे शास्त्रकी विधिका अवलंघन किया, इसी प्रकार दुष्ट सर्प आदिके पकडनेके लिये अभिमान आदिसे सन्मुख गयाहो और मरजाय तो उसको यह पिण्डदान आदिका निषेध जानना। यह अशौचका निषेधभी दश दिनकेका है क्योंकि इसे वचनसे इनकी शीघ्रही शुद्धि कहेंगे कि, ब्राह्मण गौ राजासे जो मरे हों और जिन्होंने प्रत्यक्ष आत्महत्या की हो उनकी शुद्धि शीघ्रही होती है तैसेही इनका दाह आदिभी न करना, क्योंकि यमराजकी यह स्मृति है कि जो ब्राह्मणके दंडसे मरे हों उनका अशौच जलदान रोदन दाह आदि अन्त्येष्टि कर्म और कट (पींजरी) धारण न करे। कदाचित् कोई शंका करै कि अग्निहोत्रीको अग्नि और यज्ञपात्रोंसे दाह करै इसे श्रुतिसे कहीं अग्नि और यज्ञपात्र आदिकी प्रतिपत्तिका लोप होगा इससे यह स्मृतिमें कहा हुआ दाह आदिका निषेध ब्राह्मण आदिसे हतेकी अग्निके विषयमें न होगा। यह शंका ठीक नहीं क्योंकि चाण्डाल आदिसे हते हुए अग्निहोत्रीके जो अग्निपात्र हैं उनकी दूसरी विधि अन्य स्मृतिमें कही है कि यदि अग्निहोत्री वृथा मराहो वैतानपात्रको जलमें फेंके, आवसथ्यको चौराहेमें फेंके, पात्रोंको अग्निमें फूंक दे, तैसेही इनके शरीरकी भी दूसरी विधि कहीहै कि जो अपनी आत्माको त्यागै और पतित इनकी दाह आदि क्रिया करनी उचित नहीं, किंतु इनका गंगामें तिसी प्रकारके संस्थापन (फेंकना) ही हित है, तिससे विना विशेषके सबको दाह आदिका निषेध है इससे स्नेह आदिसे इस निषेधका कोई अवलंघन करै तो प्रायश्चित्त करना योग्य है। क्योंकि यह स्मृति है कि अग्निदाह, जलदान, स्नान, स्पर्श, श्मशानमें ले जाना, कथा, रज्जुका छेदन, रोदन इनको करके तप्त कृच्छ्रसे शुद्ध होताहै, यहभी चाण्डाल आदि प्रत्येकके लिये इनको जानकर करनेमें जानना, अज्ञानसे करनेमें तो यह संवर्तका कहा हुआ प्रायश्चित्त

१ अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः। तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया ॥

२ चांडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ उदकं पिंडदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते। नोपतिष्ठति तत्सर्वमंतरिक्षे विनश्यति॥

३ सर्वत एवात्मानं गोपायेत्।

४ हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम्।

१ नाशौचं नोदकं नाश्रु न दाहाद्यन्त्यकर्म च। ब्रह्मदंडहतानां च न कुर्यात्कटधारणम् ॥

२ आहिताग्निमग्निभिर्दहंति यज्ञपात्रैश्च।

३ वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे। पात्राणि तु दहेदग्नौ यजमाने वृथामृते ॥

४ आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया। तेषामपि तथा गंगातोये संस्थापनं हितम् ॥

५ कृत्वाग्निमुदकं स्नानं स्पर्शनं वहनं कथाम्। रज्जुच्छेदाश्रुपातं च तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥

समझना, इनमेंसे कोईसे प्रेतको जो ले जाता है वा दग्ध करता है और कट और जलदान करता है वह सान्तपन कृच्छ्र करै, और जो इस वचनसे उपवास कहाहै कि चाण्डाल आदि शवका स्पर्श वा अशुभ बात करै और पूर्वोक्त दाह आदि न भी करै तो एक रात्र न करै यह उपवास और तो सुमंतुने इस वचनसे भिक्षाका भोजन कहाहै वह कि कृच्छ्र करनेमें जो असमर्थ हो वा बंधन और छेदन करै वह एक मासतक त्रिकाल भिक्षाका भोजन करै ये दोनों वचन असमर्थके विषयमें हैं । इसी प्रकार अन्यभी इस विषयके स्मृतियोंके वचनोंकी व्यवस्था समझनी। यह दाह आदिका निषेधभी उस वानप्रस्थसे भिन्नके विषयमें है जो नित्यकर्मके अनुष्ठानमें असमर्थ और जीर्ण हो क्योंकि तिनकोभी शास्त्रकी आज्ञा देखते हैं, क्योंकि यह स्मृति है कि, वृद्ध जो शौच और स्मरणसे रहित हो और वैद्योंने जिसे त्याग दियाहो, यदि वह पर्वत अग्नि अनशन व्रत जल इनसे अपनी आत्माकी हत्या करै उसका त्रिरात्र अशौच होता है, दूसरे दिन अस्थिसंचय, तीसरे दिन जलदान और चौथे दिन श्राद्ध करै ॥

इसी प्रकार जिस जिस उपाधिसे आत्महत्या कही है उससे भिन्नमार्गसे जो आत्महत्या करैं उनका श्राद्ध आदि और्ध्वदैहिक कर्म निषिद्ध है तो उनके लिये क्या करना चाहिये इस अपेक्षाके होनेमें वृद्ध याज्ञवल्क्य और छागलेयने कहाहै कि लोकनिंदाके भयसे मनुष्य उनके लिये नारायणबलि करै अन्यथा उनकी शुद्धि नहीं होती यह यमने कहाहै, जिससे उनके निमित्त दक्षिणासहित अन्नदान करै, व्यासने भी कहाहै कि नारायणके निमित्त अथवा शिवके निमित्त जो दिया जाताहै वह प्रेतकी शुद्धिके लिये कर्म है अन्यथा शुद्धि नहीं होती । इस प्रकार नारायणबलि प्रेतकी शुद्धि करनेके द्वारा श्राद्ध आदिकी देनेकी योग्यताको पैदा करतीहै, इससे संपूर्ण और्ध्वदेहिकभी करना चाहिये इसीसेही यह त्रिंशत्के मतसे भी और्ध्वदेहिककी आज्ञा देखतेहैं कि गौ ब्राह्मणसे हते और पतित इनका वर्षदिनके अनंतर संपूर्ण और्ध्वदेहिक करै, इस प्रकार वर्षदिनसे पीछे नारायणबलि करके और्ध्वदेहिक करै। नारायणबलि इस प्रकार करनी चाहिये, किसी शुक्ल पक्षकी एकादशीको विष्णु वैवस्वत और यमका यथार्थ पूजन करकै और पिंडदान पर्यंत कर्मको करके पिण्डोंको जलमें फेंक दे, पत्नी आदिको न दे, फिर उसी रात्रिमें अयुग्म ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर उपवास करै प्रातःकाल होनेपर मध्याह्नके समय विष्णुका पूजन करके एकोद्दिष्ट विधिसे ब्राह्मणोंके पादोंके प्रक्षालन (धोना) आदि तृप्तिके प्रश्नपर्यंत कर्मको करके पिण्डपितृयज्ञकी विधिसे उल्लेखन आदि अवनेजन पर्यन्त कर्मको तूष्णीं (मौन करके विष्णु ब्रह्मा और परिवार सहित यमको पिण्ड देकर नाम गोत्रसहित प्रेतका स्मरण करके और विष्णुका नाम लेकर पांचवां पिण्ड दे । फिर आचमनके अनंतर ब्राह्मणोंको दक्षिणासे

---

१ एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा । कटोदकक्रियां कृत्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥

२ तच्छवं केवलं स्पृष्टमश्रु वा पातितं यदि । पूर्वोक्तानामकारी चेदेकरात्रमभोजनम् ॥

३ वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्याताभिषक्क्रियः । आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनाम्बुभिः ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः । तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥

१ नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः । तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यब्रवीद्यमः ॥ तस्मात्तेभ्योऽपि दातव्यमन्नमेव सदक्षिणम् ॥

२ नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते । तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नैतदन्यथा ॥

प्रसन्न करके उन ब्राह्मणोंके मध्यमें किसी श्रेष्ठ गुणवाले ब्राह्मणका प्रेतबुद्धिसे स्मरण करता हुआ गौ भूमि सुवर्ण आदिसे भली प्रकार उसको प्रसन्न करके पवित्र हैं हाथ जिनके ऐसे ब्राह्मणोंसे प्रेतके निमित्त तिलसहित जल दिवाकर अपने जनों सहित आपभी भोजन करावे। सर्पसे हतेमें तो यह विशेष है कि वर्षदिनतक पुराणोक्त विधिसे पंचमीको नागपूजा करके पूरा वर्ष होनेपर नारायणबलि करके सोनेका नाग और प्रत्यक्ष गौ दे फिर संपूर्ण और्ध्वदैहिक करै। नारायणबलिका स्वरूप वैष्णवने कहा है कि जैसे शुक्ल पक्षकी एकादशी आनेपर विष्णु और यम वैवस्वत देवका पूजन करै और घी मिले हुए और सहत और तिल मिले हुए दश पिण्डोंको दश कुशाओंपर दे दक्षिणाभिमुख होकर दे। विष्णुको बुद्धिमें रखकर नदीके जलमें पिण्डोंका स्थापन करै, नाम गोत्र ले पुष्पोंसे पूजन करै, भक्ष्य भोज्य दे, पांच ५ सात ७ नौ ९ ऐसे ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे, जो विद्या और तपसे वृद्ध हों, कुलीन और सावधान हों॥ दूसरा दिन आने पर मध्याह्नके समय उपवास करके विष्णुका पूजन करके उन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख ज्येष्ठ २ पितरोंका स्मरण करता हुआ बैठावे, फिर विष्णुमें मनको लगाकर संपूर्ण देवताओंका आवाहन आदि कर्म सावधान होकर करे। फिर ब्राह्मणोंको तृप्त हुए जानकर आप तृप्त हुए यह पूछे उसके अनंतर हविष्य और तिल इनके पांच पिण्ड बनाकर देवताके रूपका स्मरण करता हुआ इन वक्ष्यमाण देवताओंको दे। पहिला पिण्ड विष्णुको, दूसरा शिवको, तीसरा ब्रह्माको और चौथा पिण्ड अनुचरों सहित यमको दे। फिर गोत्रोच्चारणपूर्वक प्रेतका ध्यान और विष्णुका नाम लेकर पांचवां पिण्ड पूर्वकी समान प्रेतके निमित्त फेंकदे॥ फिर संपूर्ण ब्राह्मणोंकी दक्षिणासे और एक वृद्ध किसी उत्तम ब्राह्मणकी सुवर्ण गौ वस्त्र भूमि इनसे उस प्रेतको मनमें स्मरण करता हुआ पूजा करै। फिर वे ब्राह्मण हाथमें तिल जल कुशा लेकर उसके नामको बुद्धिमें विचारते हुए फकैं और हवि गंध द्रव्य तिल जल इनको सावधान होकर दें। फिर वह यजमान मौन होकर मित्र भृत्यजनोंसहित आप भोजन करै इस प्रकार वैष्णव मतमें स्थित होकर जो आत्मघातीके लिये देता है वह उसका शीघ्र ही उद्धार करताहै इसमें संशय नहीं। सर्पसे

१ एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षस्य वै तिथिम्। विष्णुं समर्चयेद्देवं यमं वैवस्वतं तथा॥ दशपिण्डान् घृताभ्यक्तान्दर्भेषु मधुसंयुतान्। तिलमिश्रान्प्रदद्याद्वै संयतो दक्षिणामुखः॥ विष्णुं बुद्धौ समासाद्य नद्यंभासि ततः क्षिपेत्। नामगोत्रग्रहं तत्र पुष्पैरभ्यर्चनं तथा॥ धूपदीपप्रदानं च भक्ष्यं भोज्यं तथा परम्। निमंत्रयेत विप्रान्वै पंच सप्त नवापि वा॥ विद्यातपःसमृद्धान्वै कुलोत्पन्नान् समाहितान्। अपरेऽहनि संप्राप्ते मध्याह्ने समुपोषितः॥ विष्णोरभ्यर्चनं कृत्वा विप्रांस्तानुपवासयेत्। उदङ्मुखान्यथाज्येष्ठं पितृरूपमनुस्मरन्॥ मनो निवेश्य विष्णौ वै सर्वं कुर्यादतन्द्रितः। आवाहनादि यत्प्रोक्तं देवपूर्वं तदाचरेत्॥ तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्तिं पृष्ट्वा यथाविधि। हविष्यव्यंजनेनैव तिलादिसहितेन च॥ पंच पिण्डान्प्रदद्याच्च देवरूपमनुस्मरन्। प्रथमं विष्णवे दद्याद्ब्रह्मणे च शिवाय च॥ यमाय सानुचराय चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत्। मृतं संकीर्त्य मनसा गोत्रपूर्वमतः परम्॥ विष्णोर्नाम गृहीत्वैवं पंचमं पूर्ववत्क्षिपेत्। विप्रानाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः समर्चयेत्॥ एकं वृद्धतमं विप्रं हिरण्येन समर्चयेत्। गवा वस्त्रेण भूम्या च प्रेतं तं मनसा स्मरन्॥ ततस्तिलाम्भो विप्रास्तु हस्तैर्दर्भसमन्वितैः। क्षिपेयुर्गोत्रपूर्वं तु नाम बुद्धौ निवेश्य च॥ हविर्गन्धतिलांभस्तु तस्मै दद्युः समाहिताः। मित्रभृत्यजनैः सार्द्धं पश्चाद्भुंजीत वाग्यतः॥ एवं विष्णुमते स्थित्वा यो दद्यादात्मघातिने। समुद्धरति तं क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा॥

डसे हुएके लिये तो सुमन्तुने इस भविष्यत्पुराणके वचनसे सुवर्णप्रतिमाको सर्पका दान कहा है कि भार (परिमाणविशेष) भर सुवर्णका सर्प और गौ इनका व्यासके लिये विधिवत् दान करके पिताके ऋणसे विमुक्त हो जाता है ॥

भावार्थ-पाखंडी, अनाश्रमी, चोर, पतिको मारनेवाली स्त्री, व्यभिचारिणी, मदिरा पीनेवाली, जल आदिसे आत्महत्यारी ये अशौच और जलकी भागिनी नहीं होता ॥ ६ ॥

कृतोदकान्समुत्तीर्णान्मृदुशाद्वलसंस्थितान्।
स्नातानपवदेयुस्तानितिहासैः पुरातनैः ७॥

पद-कृतोदकान् २-समुत्तीर्णान् २ मृदुशाद्वलसंस्थितान् २ स्नातान् २ अपवदेयुः क्रि-तान् २ इतिहासैः ३ पुरातनैः ३ ॥

योजना-कृतोदकान् समुत्तीर्णान् मृदुशाद्वलसंस्थितान् स्नातान् (पुत्रादीन्) कुलवृद्धाः पुरातनैः इतिहासैः अपवदेयुः ॥

ता० भा०-इस प्रकार अपवादसहित उदकका दान कहकर इसके अनन्तर क्या करना चाहिये इस अपेक्षासे कहते हैं, जिन्होंने जल दिया है ऐसे कृतोदक और स्नात और जो भली प्रकार जलसे निकले हों और जो नये कोमल तृणसे आवृत पृथ्वीपर बैठेहों ऐसे पुत्र आदिकोंको कुलमें वृद्ध मनुष्य वक्ष्यमाण पुरातन इतिहासों (पूर्वकथा) से शोकको दूर करावें अर्थात् शोकके दूर करनेवाले वचनोंसे उनको बोध करें ॥ ७ ॥

मानुष्येकदलीस्तंभनिःसारेसारमार्गणम् ।
करोतियः ससंमूढोजलबुद्बुदसंनिभे॥ ८ ॥

---

१ सुवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम् । व्यासाय दत्त्वा विधिवत्पितुरानृण्यमाप्नुयात् ॥

पद-मानुष्ये ७ कदलीस्तंभनिःसारे ७ सारमार्गणम् २ करोति क्रि-यः १ सः १ संमूढः १ जलबुद्बुदसन्निभे ७ ॥

योजना-कदलीस्तंभनिःसारे जलबुद्बुसंनिभे मानुष्ये यः सारमागर्णं करोति सः संमूढ भवति ॥

ता० भा०-यहां मनुष्य शब्दसे जरायुज अंडज आदि चार प्रकारका भूतोंका समुदाय लेते हैं, ऐसे कदलीस्तंभके समान भीतर साररहित और जलके बुद्बुद (बबूला) के समान शीघ्रही नष्ट होनेवाले संसारमें जो सार (स्थिरता) को ढूंढता है वह भली प्रकार मूढ है अर्थात् नष्टचित्त है । तिससे संसारके ऐसे सारके जाननेवाले तुमको शोक न करना चाहिय ॥ ८ ॥

पंचधासंभृतःकायोयदिपंचत्वमागत ॥
कर्मभिःस्वशरीरोत्थैस्तत्रकापरिदेवना ॥९॥

पद-पंचधाऽ-संभृतः १ कायः १ यदिऽ-पंचत्वम् २ आगतः १ कर्मभिः ३ स्वशरीरोत्थैः ३ तत्रऽ-का १ परिदेवना १ ॥

योजना-यदि स्वशरीरोत्थैः कर्मभिः पंचधा संभृतः कायः पंचत्वम् आगतः तत्र परिदेवना का न कापि इत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जन्मांतरमें अपने शरीरसे उत्पन्न हुए अपने कर्मबीजोंसे अपने फलोंके भोगार्थ पृथिवी आदि पांचभूतोंसे पांच प्रकार रची हुई काया यदि फलके भोगकी निवृत्ति होनेपर पंचत्वको प्राप्त हो जाय अर्थात् फिर पृथिवी आदि पांच भूतोंमें लीन होजाय उसमें आप लोगोंको शोक करना व्यर्थ है अर्थात् निष्प्रयोजन होनेसे शोक न करना चाहिये, क्योंकि जिस वस्तुकी स्थितिको कोई अवलंबन नहीं कर सक्ता वह वस्तुकी स्थिति ऐसीहि है ॥

भावार्थ–पांचभूतोंसे अपने शरीरके किये कर्मोंसे पैदा हुआ देह यदि पांचभूतोंमें मिल गया तो उसमें शोक करना वृथा है ॥ ९ ॥

गंत्री वसुमतीनाशमुदधिर्दैवतानि च । फेनप्रख्यः कथंनाशंमर्त्यलोकोनयास्यति ॥

पद–गन्त्री १ वसुमती १ नाशम् २ उदधिः १ दैवतानि १ चऽ–फेनप्रख्यः १ कथम्ऽ–नाशम् २ मर्त्यलोकः १ नऽ–यास्यति क्रि–॥

योजना–वसुमती नाशं गंत्री उदधिः च पुनः दैवतानि नाशं गंतृणि फेनप्रख्यः मर्त्यलोकः पुनः नाशं कथं न यास्यति ॥

तात्पर्यार्थ–और यह मरणे आश्चर्य नहीं है क्योंकि पृथिवी आदि बडे बडे भूत भी नष्ट होयंगे और जरा और मरणसे रहित समुद्र और देवताभी प्रलयके समय नाशको प्राप्त होयंगे । फेनके समान यह मर्त्यलोक अस्थिर होनेसे कैसे नाशको प्राप्त न होयगा अर्थात् अवश्य होयगा क्योंकि जिसका मरना धर्म है उसका जाना उचित है इससे शोकका करना उचित नहीं ॥

भावार्थ–पृथिवी समुद्र देवता येभी जब नाशको प्राप्त होयंगे तब फेनके समान यह देह नाशको प्राप्त क्यों नहीं होगा अर्थात् अवश्य होयगा ॥ १० ॥

श्लेष्माश्रुबांधवैर्मुक्तंप्रेतोभुंक्तेयतोवशः । अतोनरोदितव्यंहिक्रियाःकार्याःस्वशक्तितः ॥

पद–श्लेष्माश्रु २ बांधवैः ३ मुक्तम् २ प्रेतः १ भुंक्त क्रि–यतःऽ–अवशः १ अतःऽ–नऽ–रोदितव्यम् १ हिऽ–क्रियाः १ कार्याः १ स्वशक्तितःऽ–॥

योजना–यतः (यस्मात्) अवशः प्रेतः बांधवैः मुक्तं श्लेष्माश्रु भुङ्क्ते अतः युष्माभिः नहि रोदितव्यं किंतु स्वशक्तितः क्रियाः कार्याः॥

ता० भा०–जिससे शोक करते हुए बांधव मुख और नेत्रोंसे जो कफ और आंसू निकासते हैं उनको इच्छाके न होनेपरभी प्रेत खाता है तिससे प्रेतके हिताभिलाषियोंको रोना न चाहिये किन्तु अपनी शक्तिके अनुसार श्राद्ध आदि क्रिया करें ॥ ११ ॥

इतिसंश्रुत्यगच्छेयुर्गृहंबालपुरःसराः । विदश्यनिंबपत्राणिनियताद्वारिवेश्मनः॥१२॥

पद–इतिऽ–संश्रुत्यऽ–गच्छेयुः क्रि–गृहम् २ बालपुरःसरा १ विदश्यऽ–निम्बपत्राणि २ नियताः १ द्वारि ७ वेश्मनः ६ ॥

आचम्याग्न्यादिसलिलंगोमयंगौरसर्षपान् । प्रविशेयुःसमालभ्यकृत्वाश्मनिपदंशनैः ॥

पद–आचम्यऽ–अग्न्यादि २ सलिलम् २ गोमयम् २ गौरसर्षपान् २प्रविशेयुः क्रि–समालभ्यऽ–कृत्वाऽ–अश्मनि ७ पदम्२ शनैःऽ–॥

योजना–इति कुलवृद्धवचांसि संश्रुत्य बालपुरस्सराः गृहं गच्छेयुः वेश्मनः द्वारि नियताः निम्बपत्राणि संदश्य आचम्य अग्न्यादिसलिलं गोमयं गौरसर्षपान् समालभ्य अश्मनि शनैः पदं कृत्वा प्रविशेयुः गृहमिति शेषः ॥

ता० भावार्थ–इस प्रकार कुलवृद्धोंके वचनोंको सुनकर शोकको त्यागकर और बालकोंको आगे करके घरको जांय और वहां जाकर घरके द्वारपर बैठकर और मनको रोककर नीमके पत्तोंको चाबकर और उन पत्तोंका त्याग करके अग्नि जल गोमय सरसों इनका स्पर्श करके आदि पदके ग्रहणसे दूबके अंकुर

और बैलका स्पर्शभी लेना क्योंकि शंखने इस वचनमें वेभी दो पढे हैं फिर पत्थरके ऊपर पैर रक्खैं और शनैः २ गृहमें प्रवेश करैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

प्रवेशनादिकंकर्मप्रेतसंस्पर्शिनामपि ॥
इच्छतांतत्क्षणाच्छुद्धिःपरेषांस्नानसंयमात्॥

पद-प्रवेशनादिकम् २ कर्म २ प्रेतसंस्पर्शिनाम् ६ अपि ऽ-इच्छताम् ६ तत्क्षणात् ५ शुद्धिः १ परेषाम् ६ स्नानसंयमात् ५ ॥

योजना-प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनाम् अपि भवति। इच्छतां तत्क्षणात् शुद्धिः भवति परेषां स्नानसंयमात् भवति ॥

तात्पर्यार्थ-जो यह नीमके पत्ते चाबने आर गृहमें प्रवेश आदि कर्म हैं वह केवल ज्ञातिके मनुष्योंको नहीं किन्तु धर्मके लिये प्रेतका अलंकार और श्मशानमें लेजानेके लिये जो स्पर्श करते हैं उनके लिये भी हैं। यहां आदि शब्द मांगालिक होनेसे प्रतिलोम क्रमका बोधक है अनुलोमका नहीं। धर्मके लिये प्रेतके लेजानेमें प्रवृत्त हुए वे यदि उसी क्षणमें शुद्धि चाहैं तो सपिण्डोंसे भिन्न उनकी स्नान और प्राणायामोंसे शुद्धि होती है। सोई पराशरने कहा है कि जो द्विजाति अनाथ ब्राह्मण प्रेतको लेजाते हैं वे पद २ पर क्रमसे यज्ञके फलको प्राप्त होते हैं उन शुभकर्मवालोंको किंचित्भी अशुभ नहीं होता किंतु जलमें स्नान करनेसेही उनकी शीघ्र शुद्धि होजाती है। स्नेहसे प्रेतके लेजानेमें तो मनु (अ० ५ श्लो०१०१-१०२-) का कहाहुआ विशेष जानना कि असापिंड द्विज प्रेतको ब्राह्मण अपने बंधुके समान और माताके श्रेष्ठ बांधवोंको लेजाकर तीन रात्रमें शुद्ध होता है। यदि उनके अन्नको भक्षण करै तो दश रात्रमें शुद्ध होता है। यदि उनके अन्नको न खाय और उनके घरमें न वसै तो एक रात्रमें शुद्ध होताहै। यहां यह व्यवस्था है कि स्नेहसे प्रेतको श्मशानमें लेजाकर उसके अन्नको खाता है और उसके घरमें वसता है उसकी दश रात्रमें शुद्धि होती हैं और जो उसके घरमें वसता है और उसके अन्नको नहीं खाता उसकी त्रिरात्रमें शुद्धि होती है। और जो केवल प्रेतको लेजाता है न उसके अन्नको खाता है न घरमें वसता है उसकी एकारात्रमें शुद्धि होती है। यह भी सजातीयके विषयमें है विजातीयके विषयमें तो जिस जातिके प्रेतको लेजाता है उस जातिकेही अशौचका भागी हो जाता है। सोई गौतमने कहा है कि, यदि छोटा वर्ण पूर्वको वा पूर्ववर्ण छोटे वर्णको श्मशानमें लेजाय तो उस शवका जो आशौच वही उसको कहा है। ब्राह्मण शूद्रको लेजाय तो एक मासका और शूद्र ब्राह्मणको ले जाय तो दश रात्रका अशौच होता है इस प्रकार शवके समान आशौच करना ॥

भावार्थ-प्रेतके स्पर्श करनेवालोंको गृहमें प्रवेश आदि कर्म करना यदि वे चाहैं तो उसी क्षणमें शुद्धि होती है और सपिण्डोंकी स्नान करनेसेही शुद्धि होती है ॥ १४ ॥

आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापिव्रतीव्रती ।
सकटान्नंचनाश्नीयान्नचतैःसहसंवसेत्॥१५॥

---

१ दूर्वाप्रवालमग्निवृषभौ वा ।

२ अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः । पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं लभान्ति ते ॥

३ असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बंधुवत् । विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बांधवान् ॥ यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेन विशुध्यति । अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे बसेत् ॥

१ अवरश्चेद्वर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वाऽवरं तत्र तच्छवोक्तमाशौचम् ।

पद्–आचार्यपित्रुपाध्यायान् २ निर्हृत्यऽ–अपिऽ–व्रती १ व्रती १ सकटान्नम् २ चऽ–नऽ–अश्नीयात् क्रि–नऽ–चऽ–तैः ३ सहऽ–संवसेत् क्रि– ॥

योजना–व्रती आचार्यपित्रुपाध्यायान् निर्हृत्य अपि व्रती भवति सकटान्नं न अश्नीयात् च पुनः तैः सह न संवसेत् ॥

तात्पर्यार्थ–आचार्य, माता, पिता, उपाध्याय इनको श्मशानमें लेजाकर ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी ही रहता है उसका व्रत नष्ट नहीं होता। यहां कट शब्दसे अशौच लेते हैं, उसका जो अन्न उसे सकटान्न कहते हैं, उसको न खाय, न अशौचवालोंके साथ सोवे, यह कहनेसे यह बात अर्थात् कही गई कि आचार्य आदिसे भिन्नके लेजानेमें व्रत नष्ट होजाता है। इसीसे वसिष्ठने कहा है कि शवके कर्म करनेवाले ब्रह्मचारीकी व्रतसे निवृत्ति होती है माता और पिताके कर्मको करै तो व्रतसे निवृत्ति नहीं होती ॥

भावार्थ–आचार्य पिता उपाध्याय इनको श्मशानमें लेजाकर ब्रह्मचारीका व्रतभंग नहीं होता परंतु वह आशौचका अन्न न खाय और न अशौचवालोंके संग वसै ॥ १५ ॥

क्रीतलब्धाशनाभूमौस्वपेयुस्तेपृथक्पृथक ॥
पिंडयज्ञावृतादेयंप्रेतायान्नंदिनत्रयम् ॥ १६॥

पद्–क्रीतलब्धाशनाः १ भूमौ ७ स्वपेयुः क्रि–ते १ पृथक्ऽ–पृथक्ऽ–पिण्डयज्ञावृता ३ देयम् १ प्रेताय ४ अन्नम् १ दिनत्रयम् २ ॥

योजना–क्रीतलब्धाशनाः ते भूमौ पृथक् पृथक् स्वपेयुः पिण्डयज्ञावृता प्रेताय अन्नं दिनत्रयं देयम् ॥

तात्पर्यार्थ–वे अशौचवाले मोलका अयाचित वा अकस्मात् मिले भोजनको करै। यदि यह पूर्वोक्त भोजन न मिले तो अर्थात् अनशन व्रत करैं, इसीसे वसिष्ठने कहाहै कि घरमें जाकर भूमिके विस्तरपर तीन दिनतक विना भोजन किये बैठें अथवा मोलके अन्नका भक्षण करैं। अशौचवालोंके सोने वा बैठनेके लिये जो तृणोंका विस्तर उसे अधःप्रस्तर कहते हैं और वे सपिण्ड भूमिमेंही पृथक् २ सोवें खट्वा आदिपर नहीं। मनु (अ० ५ श्लो० ७३) ने भी यहां विशेष दिखाया है कि खारालवण जिसमें न हो ऐसे अन्नको भक्षण करते हुए वे तीन दिनतक स्नान करैं और मांसका भक्षण न करैं। तैसेही गौतमनेभी विशेष कहा है कि शवके कर्म करनेवाले भूमिपर सोवें और ब्रह्मचारी रहैं और पिण्डपितृयज्ञकी प्रक्रियासे अर्थात् अपसव्य होकर प्रेतके लिये पिण्डरूप अन्न तीन दिनतक मौन होकर भूमिपर दें। सोई मरीचिने कहा है कि दर्भ और मंत्रसे वर्जित प्रेतका पिण्डस्नान और सावधानीसे पूर्व और उत्तर दिशामें चरु बनाकर ग्रामसे बाहिर दे। यहां कुशा और मंत्रसे वर्जित कहना उसके लिये है जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो, क्योंकि प्रचेताकी यह स्मृति है कि जिनका संस्कार न हुआ हो उनका पिण्ड भूमिमें और जिनका संस्कार हो चुकाहो उनको कुशाओंपर दे। तैसेही

---

१ ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः।

१ गृहान् व्राजित्वाधः प्रस्तरे त्र्यहमनश्नन्तः आसीरन् क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन्।

२ अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम्। मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक्क्षितौ ॥

३ अधःशय्याशायिनो ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणः।

४ प्रेतपिंडं बहिर्दद्याद्दर्भमंत्रविवर्जितम्। प्रागुदीच्यां चरुं कृत्वा स्नातः प्रयतमानसः ॥

५ असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात्संस्कृतानां कुशेषु।

कर्ताका नियमभी गृह्यपरिशिष्टसे जानना कि असगोत्र हो वा सगोत्र हो स्त्री हो वा पुरुष हो पहिले दिन जो देवे सोही दशदिनतक कर्मकी समाप्ति करै। तैसेही द्रव्यका विनिमय (देना) शुनःपुच्छेने दिखाया है। साठी सत्तु वा शाक इनसे पिण्ड दे और पहिले दिन जिस द्रव्यसे पिण्ड दे उसी द्रव्यसे दशदिनतक पिण्ड दे। और सेचन, फूल, धूप, दीप इनको विना मंत्र दे। और पिण्डको पाषाणपर दे। माला पिण्ड जल इनको भूमिमें वा पत्थरपर दे यह शंखने कहा है। कदाचित् दद्युः (दें) इस बहुवचनसे जलदानके समान सब पिण्डदान करैं। यह शंका न करनी किंतु पुत्रही पिण्डदान करै। पुत्र न होय तो समीपके सपिण्डोंमेंसे कोई करै, वे भी न होंय तो माताके सपिंडोंमेंसे कोई करै। क्योंकि गौतमकी यह स्मृति है कि पुत्रके अभावमें सपिंड, माताके सपिंड, शिष्य, पिंडदान करैं, ये न होंय तो ऋत्विक् और आचार्य पिंडदान करैं और बहुत पुत्रोंके होनेपरभी ज्येठाही पिंडदान करै। क्योंकि मरीचिका वचन है कि सबकी अनुमतिसे जो जेठेने विभक्त द्रव्यसेभी किया वह सबका किया होता है। पिंडकी संख्याका नियम विष्णुने कहा है कि ब्राह्मणके दश पिण्ड, क्षत्रियके बारह पिण्ड अशौचके दिनकी संख्यासे होते हैं। जितना अशौच उतना जल और पिण्ड दें। तैसेही अन्यस्मृतिमें कहा है कि नौ ९ दिनोंमें नौ पिण्ड सावधानीसे दे। दशवें पिंडको देकर एक रात्रिमें शुद्ध होता है यह शुद्ध होनेका वचन अगले दिन श्राद्ध करनेके लिये और ब्राह्मणोंके निमंत्रणके लिये है। योगीश्वरने तो तीन पिंडका दान कहा है। उन दोनों गुरु लघु कल्पोंकीभी वही व्यवस्था जाननी जो जलदानके विषयमें कह आये हैं। यहां और भी विशेष शातातपने कहा है कि आशौचके अल्प होनेपरभी दशही पिण्ड दे। जिनको तीन रात्रका अशौच है उनको पारस्करने विशेष दिखाया है कि पहले दिन सावधान होकर तीन पिण्ड दें, दूसरे दिन चार पिंड और अस्थिसंचयन करैं। तीसरे दिन चार पिंड दें और वस्त्रोंको धोवैं॥

भावार्थ-मोल लिये भोजनको खाते हुए वे भूमिमें सोवैं और अपसव्य होकर तीन दिनतक प्रेतको पिंड दें॥ १६॥

जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये वैतानौपासनाः कार्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदनात्॥ १७॥

पद-जलम् १ एकाहम् २ आकाशे ७ स्थाप्यम् १ क्षीरम् १ चऽ-मृन्मये ७ वैतानौपासनाः १ कार्याः १ क्रियाः १ चऽ-श्रुतिचोदनात् ५॥

---

१ असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत्॥

२ शालिना सक्तुभिर्वापि शाकैर्वाप्यथ निर्वपेत्। प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाह्निकम्॥

३ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च दीपं धूपं तथैव च। भूमौ माल्यं पिंडं पानीयमुपले वा दद्युः॥

४ पुत्राभावे सपिंडा मातृसपिण्डाः शिष्याश्च तदभावे ऋत्विगाचार्यौ।

५ सर्वैरनुमतिं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्। द्रव्येण वाऽविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्॥

६ यावदाशौचं प्रेतस्योदकं पिण्डं च वा दद्युः।

१ नवभिर्दिवसैर्दद्यान्नवपिण्डान्समाहितः। दशमं पिण्डमुत्सृज्य रात्रिशेषे शुचिर्भवेत्॥

२ आशौचस्य तु ह्रासेऽपि पिण्डान्दद्याद्दशैव तु।

३ प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः। द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्तथा॥

योजना–जलं च पुनः क्षीरं मृन्मये पात्रे एकाहम् आकाशे स्थाप्यं श्रुतिचोदनात् वैतानोंपासनाः च पुनः क्रियाः कार्याः ॥

तात्पर्यार्थ–जल और क्षीर मिट्टीके दो पात्रोंमें शिक्य आदिमें रखकर प्रेतके निमित्त आकाशमें एक दिन दे, यहां विशेषके न कहने परभी एक दिन पहिला लेना है, प्रेत यहां स्नान कर इस वचनसे और इसका पान कर इस वचनसे दूधका स्थापन करै । तैसेही अस्थिसंचयनभी प्रथम आदि दिनोंमें करना सोई [1]संवर्तने कहा है कि पहिले तीसरे सातवें नौवें दिन सगोत्रियोंको साथ लेकर अस्थिसंचयन करैं, कहीं तो दूसरे दिन अस्थिसंचयन करै यह कहा[2] है । विष्णुपुराणमें तो कहा है कि चौथे दिन अस्थिसंचयन करै और उनको गंगाजलमें स्थापन कर दे । इससे इनमेंसे कोईसे दिन अपनी गृह्यसूत्रकी विधिसे अस्थिसंचयन करै । अंगि[3]राने यहां यह विशेष दिखाया है कि अस्थिसंचयनके दिन देवताओंका यज्ञ कहाहै । जो मनुष्य शुद्ध होकर उस दिन देवताओंका पूजन नहीं करता उसको देवता शाप देते हैं, यहां देवता श्मशानवासी लेने क्योंकि अंगिरानेही कहा है कि[4] पहिले दग्ध होनेवाले श्मशानमें वसनेवाले सबके देवता कहे हैं, इससे तत्काल मरे हुए प्रेतके निमित्त उन देवताओंका धूपदीप आदिसे पूजन करै। तैसेही दशवें दिन मुण्डन भी करना क्योंकि देवलने[1] यह कहा है कि दशमें दिनके आनेपर ग्रामसे बाहिर स्नान होता है उसी दिन वस्त्र केश, श्मश्रु और नख ये त्यागने योग्य हैं। तैसे ही अन्यस्मृ[2]तिमेंभी लिखा है कि दूसरे, तीसरे, पांचवें, सातवें दिन श्राद्ध देनेसे पहिले मुण्डन करावै। सिद्धान्त यह है कि एकादशाहके श्राद्ध देनेसे पहिले मुण्डन करानेका नियम नहीं, चाहे जिस दिन करै। मुण्डन करै इस आकांक्षामें आपस्तम्बने[3] कहा है कि अनुभावियोंका मुण्डन होता है इसका यह अर्थ है कि शवके दुःखको जो मानें उनको अनुभावी (सपिण्ड) कहते हैं, उन सपिण्डोंमें अविशेषसे सबका मुण्डन होता है अथवा छोटी अवस्थावालोंका इस अपेक्षामें भी यही वचन उपस्थित होताहै कि तब यह अर्थ है कि अनु (पीछे) उत्पन्न होंय उन्हें अनुभावी कहते हैं अर्थात् छोटी अवस्थावालोंका मुण्डन होता है, कोई पुत्रोंको ही अनुभावी जानते हैं। क्योंकि[4] यह नियम देखते हैं कि गंगा, भास्करक्षेत्र, माता, पिता, गुरुका मरण, आधान, सोमपान इन सातोंमें मुण्डन होता है ॥

अशौचकी अशुद्धिमें संपूर्ण वेद और स्मृतियोंके कर्मकी निवृत्ति पाई उनमें किसी कर्मकी आज्ञाके लिये कहते हैं, अग्नियोंके विस्तारको वितान कहते हैं उसमें जो होनेवाली क्रिय अर्थात् त्रेताग्निमें होनेवाली अग्निहोत्री दर्शपूर्ण-

---

१ प्रथमेह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह ॥

२ द्वितीये त्वास्थिसंचयः ।

३ अस्थिसंचयने यागो देवानां परिकीर्तितः । प्रेतीभूतं तमुद्दिश्य यः शुचिर्न करोति चेत् । देवतानां तु यजनं तं शपन्त्यथ देवताः ।

४ पूर्वदग्धाः श्मशानवासिनो देवाः शवानां परिकीर्तिताः ।

१ दशमेऽहानि संप्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत् । तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥

२ द्वितीयेऽहानि कर्तव्यं क्षुरकर्म प्रयत्नतः । तृतीये पंचमे वापि सप्तमे वा प्रदानतः ॥

३ अनुभाविनां च परिवापनम् ।

४ गंगायां भास्करे क्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ । आधानकाले सोमे च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥

श्रास आदि क्रियाको वैतान कहते हैं। प्रतिदिन जिसकी उपासना की जाय उस गृह्य अग्निको उपासन कहते हैं। उसमें करने योग्य सायंकाल प्रातःकालकी क्रियाको औपासन कहते हैं। उन वैतान औपासन नाम वेदोक्त कर्मोंको अशौचमें भी करै। कदाचित् कोई कहै कि ये वेदोक्त कैसे हैं इससे कहाहै कि (श्रुतिचो०) वेदमें कहनेसे सोई दिखाते हैं कि इतने जीवै अग्निहोत्र करै इत्यादि श्रुतियोंसे अग्निहोत्र आदिका वेदमें कहना स्पष्ट है तैसेही इस श्रुतिसे औपासनहोम भी कहा हैं कि प्रतिदिन स्वाहा करै अन्नके अभावमें काष्ठपर्यंत किसीसे करै, यहां श्रौत (वेदोक्त) विशेषणके देनेसे स्मृतियोंमें कही दान आदि क्रियाओंका न करना जाना गया, इसीसे वैयाघ्रपादने कहा है कि राहुके सूतकसे अन्यसूतकमें स्मृतिमें कहेहुए कर्मोंका त्याग होता है और वेदोक्त कर्मोंमें तो उसी कालमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है। यहां वेदोक्त कर्मोंका करना जो कहा है वह नित्य और नैमित्तिकके अभिप्रायसे है। सोई पैठीनसीने कहा है कि वैतान कर्मको छोडकर नित्य कर्मोंकी निवृत्ति होती है और कोई शालाग्निके कर्मोंकी निवृत्ति कहते हैं। नित्य कर्म निवृत्त होते हैं इस अविशेष कहनेसे आवश्यक नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी निवृत्ति पाई, इससे वैतान कर्मको छोडकर इस वचनसे तीन अग्नि साध्य अवश्य कर्मोंका निषेध कहा है। और कोई शालाग्निमें कहते हैं इस वचनसे गृह्याग्निमें होनेवाले आवश्यकोंकाभी निषेध कहा है, इससे उन पूर्वोक्त कर्मोंके विषै अशौच नहीं है। काम्यकर्मोंका तो शुद्धिके अभावसे न करनाही श्रेष्ठ है। मनुने भी इसी अभिप्रायसे कहा है (अ० ५ श्लो० ८४) कि अग्नियोंके कर्मको न करै। जो अग्नियोंमें नहीं होते उन पंचमहायज्ञ आदिकोंकी निवृत्ति होती है इसीसे संवर्तने कहा है कि मरण और जन्मके अशौचमें शुष्क अन्न वा फलोंसे होम करना और पंचमहायज्ञ न करने, वैश्वदेव कर्मको अग्निसे साध्यभी होने पर वचनसे निवृत्ति होती है क्योंकि तिसका ही यह वचन है कि ब्राह्मण दश दिनतक बलि वैश्वदेवसे रहित रहै, यद्यपि सूतकमें संध्या आदि कर्मोंका त्याग कहा है। इस वचनसे संध्याकी भी निवृति शास्त्रमें सुनी जाती है तथापि सूर्यके निमित्त अंजलिका प्रक्षेप करै क्योंकि पैठीनसीका वचन है कि सूतकोंमें गायत्रीसे अंजलि देकर और सूर्यकी प्रदक्षिणा करके ध्यान करता हुआ नमस्कार करै। यद्यपि वैतान उपासना क्रियाओंको करै यह सामान्यसे कहाहै तथापि औरसे करादे,क्योंकि पैठीनसीने यह कहाहै कि अन्य मनुष्य इन कर्मोंको करै, बृहस्पतिने भी

---

१ यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् ।

२ अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनचिदाकाष्ठात् ।

३ स्मार्त्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । श्रौते कर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

४ नित्यानि विनिवर्तेरन्वैतानवर्ज्यं शालाग्नौ चैके ।

---

१ प्रत्यूहेऽन्नाग्निषु क्रियाः ।

२ होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा । पंचयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥

३ विप्रो दशाहमासीत वैश्वदेवविवर्जितः ।

४ सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ।

५ सूतके सावित्र्या चाञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् ।

६ अन्ये एतानि कुर्युः ।

७ सूतके मृतके चैव अशक्तौ श्राद्धभोजने । प्रवासादिनिमित्तेषु हावयेन्न तु हापयेत् ॥

कहाहै कि सूतक, मरण, असामर्थ्य, श्राद्धभोजन,परदेश आदि निमित्तोंमें दूसरेसे होम करादे और त्याग न करै। तिसी प्रकार स्मृतिधर्मशास्त्रोक्त होनेपर भी पिण्डापितृयज्ञ, श्रावणीका कर्म, आश्वयुजी कर्म आदि, नित्यहोम अवश्य करना। क्योंकि जातूकर्ण्यका वचन है कि सूतकके होनेपर मार्तकर्मको किस प्रकार करना चाहिये ऐसी आकांक्षामें यह विधि है कि पिण्डपितृयज्ञ, चरु, होम ये अपने असगोत्रीसे करादे। यद्यपि अंगसहित कर्ममें कर्ता नहीं हो सकता तथापि अपने द्रव्यका दानरूप प्रधानकर्म स्वयं करै,क्योंकि उसको अन्य नहीं कर सकता। इसीसे पीछे कह आये हैं कि वेदोक्त कर्ममें स्नान करनेसे शुद्ध होताहै और जा यह होमका निषेध है कि दान, प्रतिग्रह, होम, वेदपाठ ये सूतकमें निवृत्त होतेहै वह निषेध काम्यकर्मके अभिप्रायसे है ऐसी व्यवस्था जाननी। तैसेही सूतकके अन्नकाभी भोजन न करै। क्योंकि यह यमका वचन है कि जन्म और मरण दोनों सूतकोंमें दशदिनतक कुलके अन्नको भोजन न करै। अर्थात् जिस कुलमें सूतक हो उस कुलके अन्नको असकुल्य न खाय और सकुल्योंको दोष नहीं। क्योंकि यमनेही कहाह कि सूतकमें कुलके अन्नका दोष नहीं। यह मनुने कहाहै यह निषेधभी तब जानना जब दाता और भोक्तामें कोईसेने जन्म और मरण जान लिया हो क्योंकि वह षट्त्रिंशत्के मतसे यह देखते हैं कि दोनोंको ज्ञान न होय तो सूतकका दोष नहीं और एकको ज्ञान होय तो भोक्ताकोही दोष होताहै। तैसेही विवाह आदिमें सूतक होनेसे पहिले ब्राह्मणोंके लिये पृथक् किया अन्न भोजन करने योग्य है। क्योंकि बृहस्पतिका वचन है कि विवाह उत्सव यज्ञ इनके बीचमें सूतक होजाय तो पूर्व संकल्प किये पदार्थमें दोष नहीं कहा। तैसे अन्यभी विशेष षट्त्रिंशत्के मतमें दिखाया है कि, विवाह उत्सव यज्ञ इनके मध्यमें मरण और सूतक हो जाय तो भिन्न गोत्री अन्नको दें और ब्राह्मण भोजन करै। ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समय मरण और सूतक होजाय तो अन्य गृहके जलसे आचमन करनेसे वे शुद्ध होजाते हैं। तैसेही अशौचके होनेपर भी किसी एक द्रव्योंमें दोषका अभाव है सोई मरीचिने कहाहै कि लवण, मधु, मांस, पुष्प, मूल, फल, शाक, काष्ठ, तृण, जल, दधि, घी, दूध, तिल, औषध, मृगछाला, मोदक आदि पक्क, और तण्डुल आदि अपक्व, और बेचनेकी सम्पूर्ण वस्तु इनमें मरण और जन्मके सूतकका दोष नहीं किंतु स्वामीकी आज्ञासे इनको स्वयंही ग्रहण करले। पक्क और अपक्क अन्न स्वामीकी आज्ञासे सत्रके विषयमें लेना। क्योंकि अंगिराका

१ सूतके तु समुत्पन्ने स्मार्तं कर्म कथं भवेत्। पिण्डयज्ञं चरुं होममसगोत्रेण कारयेत्॥

२ दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते।

३ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्येत।

४ सूतके तु कुलस्यान्नमदोषं मनुरब्रवीत्।

१ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। पूर्वसंकल्पितार्थेषु न दोषः परिकीर्तितः॥

२ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः॥ भुंजानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके। अन्यगेहोदकाचांताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥

३ लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च। शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयस्सु च॥ तिलौषधाजिने चैव पक्कापक्के स्वयं ग्रहः। पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके॥

४ अन्नसत्रप्रवृत्तानामाममन्नमगार्हितम्। भुक्त्वा पक्कान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु पयः पिबेत्॥

वचन है कि सत्रके अन्नमें जो प्रवृत्त हैं उनका आम (कच्चा) अन्न निन्दित नहीं है और इनके पक्वान्नको खाकर तीन रात्रतक दुग्धका पान करै। यहां पक्वान्न शब्दसे भक्ष्यसे भिन्न ओदन आदि लेना। शवके संसर्गसे हुए अशौचमें तो अंगिराने विशेष कहाहै कि जिस गृहस्थीको संसर्गसे अशौच होय उसके कर्मोंका लोप नहीं होता और उसके घरमें होनेवाले भार्या आदि और द्रव्योंको अशौच नहीं लगता किन्तु केवल उस गृहस्थकोही अशौच होता है। अशौचके बीतनेपरभी यही अर्थ अन्य स्मृतिमें दिखाया है कि दश दिनके बीतने पीछे गृहस्थीको अशौचका ज्ञान होय तो उसका तीन रात्र अशौच होता है, उसके द्रव्यको कदाचित् नहीं होता ॥

भावार्थ-एक दिन आकाशमें जल और दूध मिट्टीके पात्रमें रक्खे और श्रुतिकी आज्ञासे वैतान और औपासन कर्मोंको करै अर्थात् त्रेताग्निमें करने योग्य अग्निहोत्र आदि और गृह्याग्निमें करने योग्य सायंकाल प्रातःकालके होम आदिको करे ॥ १७ ॥

त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ।
ऊनद्विवर्षे उभयोः सूतकं मातुरेवहि ॥ १८

पद-त्रिरात्रम् २ दशरात्रम् २ वाऽ-शावम् २ आशौचम् २ इष्यते क्रि-ऊनद्विवर्षे ७ उभयोः ६ सूतकम् १ मातुः ६ एवऽ-हिऽ-॥

योजना-ऊनद्विवर्षे शावम् आशौचम् उभयोः त्रिरात्रं वा दशरात्रम् इष्यते सूतकं मातुः एव भवति ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार आशौचवालेके विधि और निषेधरूप धर्मको कहकर अब आशौचके निमित्त कालका नियम कहते हैं। शव है निमित्त जिसका उसे शाव कहते हैं। जन्मके वाची सूतक शब्दसे उसके निमित्त आशौच लेते हैं। ऐसे कहते हुए आचार्यने जन्म और मरणको अशौचका निमित्त कहा वह जन्म और मरण पैदा होनेपरभी जानकरही आशौचका निमित्त होता है। क्योंकि यह उसमें प्रमाण देखते हैं कि दश दिनके भीतर ज्ञातिका मरण और पुत्रका जन्म सुनकर आशौच होता है। तैसेही इस वाक्यके आरंभसेभी जन्म और मरणका ज्ञानही निमित्त है उत्पत्ति नहीं, कि परदेशमें ठिके हुएका जो दश दिनके भीतर मरना सुनै वह उतनेही कालतक अशुद्ध होता है जो दशरात्रका शेष हो। यदि उत्पत्तिकोही केवल अशौचका निमित्त मानोगे तो दशदिन आदि अशौचकालके नियम तिस २ सेही अवश्य होयंगे। दशदिनके भीतर ज्ञाति मरणके सुननेपर दशरात्रकाही अशौच अर्थात् सिद्ध होयगा। फिर दशरात्रका जो शेष इस वचनके आरंभका क्या प्रयोजन था, तिससे जाने हुए जन्म और मरणही अशौचके निमित्त हैं वे दोनों निमित्त हैं जिसके ऐसा अशौच तीन रात्र और दश रात्रही मनु आदिकोंने माना है। इस आशौच प्रकरणमें दिनका ग्रहण और रात्रिका ग्रहण अहोरात्रका बोधक है। मनु आदिकोंने दश रात्र और तीन रात्र अशौच माना है यह वचनभी मनु आदिकोंने कहे सपिण्ड और समानोदक रूप विषयभेद दिखानेके लिये है, सोई दिखाते हैं कि, मरणका अशौच सपिण्डोंमें

१ आशौचं यस्य संसर्गादापतेद्गृहमेधिनः। क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥

१ निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।

२ विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् । यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ।

३ दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। शवस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्याहात्तूदकदायिनः ॥

दशदिनतक कहा है। और जन्ममेंभी पूरी शुद्धि चाहते हुएको इतनाही अशौच होताहै। और जन्ममें समानोदकोंकी शुद्धि तीन रात्रमें होतीहै। शवका स्पर्श करनेवाले और समानोदक तीन रात्रमें शुद्ध होते हैं, इत्यादि वचनोंसे त्रिरात्र और दशरात्रकी समानोदक और सपिंडके विषयसे व्यवस्था की है। इससे सात पीढीतक सपिंडोंको अविशेषसे दश रात्र और समानोदकोंको त्रिरात्र अशौच होता है। और जो यह अन्यस्मृतिका[1] वचन है कि चौथी पीढीतक दशरात्र और पांचवींमें छः रात्र, छठीमें चार दिन और सातवींमें एक दिनमें शुद्धि होती है, वह वचन निन्दित होनेसे आदर करने योग्य नहीं। यद्यपि शास्त्रका वचन होनेसे निन्दित नहीं तथापि मधुपर्कमें गोहिंसाके समान जगत्में निंदित होनेसे करने योग्य नहीं। क्योंकि यह मनुका[2] वचन है कि स्वर्गके न देनेवाले जगत्में निंदित धर्मकाभी आचरण न करैं और यह युक्त नहीं कि सातवीं पीढीके समीप सापिंडोंको एक दिनका और विप्रकृष्ट (दूरके) अष्टम पीढी आदिके समानोदकोंमें तीन दिनका अशौच मानना। इस प्रकार अविशेषसे सापिण्डोंको आशौच पाया, कहीं एक नियमके लिये कहते हैं कि[3] दो वर्षसे कमका बालक मर जाय तो माता और पिताकोही दश रात्रको अशौच होताहै, सब सपिंडोंको नहीं। सपिण्डोंको[4] तो इस वचनसे दांत जमनेसे पहिले शीघ्रही शुद्धि कहेंगे सोई पैंग्यने[1] कहाहै कि गर्भमें बालक मरनेसे माताको दशदिनतक और जन्म कर मरनेमें माता पिता दोनोंको दशदिनतक और नाम रखनेके अनन्तर मरनेपर सोदर भाइयोंको दशदिनतक अशौच होताहै। अथवा यह अर्थ है कि दो वर्षसे कमका बालक मरनेपर स्पर्श न करनारूप अशौच मातापिताकोही होता है सापिंडोंको नहीं। सोई अन्यस्मृतिमें लिखा[2] है कि दो वर्षसे कमके बालकके मरनेपर मातापिताओंकोही अशौच है अन्योंको नहीं। इस वचनमें भी स्पर्श न करनाही लिया है। किसी कर्मको न करना रूप जो अन्य आशौच है वह सापिण्डोंमें दांत जमनेसे पहिले शीघ्र शुद्धि होतीहै इत्यादि वचनोंसे कहाहै[3]। इसमें दृष्टान्त है कि जैसे जन्म है निमित्त जिसमें ऐसा स्पर्श न करनारूप अशौच माताकोही होता है, ऐसेही दो वर्षसे कमके मरनेमें माताको पिताका स्पर्श न करनारूप अशौच होताहै। दो वर्षसे कमके मरनेमें स्पर्श न करनेका निषेध कहते हुए आचार्यने दो वर्षसे अधिकके मरनेमें स्पर्श न करनेकी आज्ञा अर्थात् दी है। सोई देवलने[4] कहा है कि अपने अशौचका जो समय उसके तीसरे भागमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनको शास्त्रके अनुसार स्पर्श करना कहाहै यह भी उस बालकके आतिक्रान्त अशौच और त्रिरात्रमें है। जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो और जिसका यज्ञोपवीत हो चुका हो उसके मरनेमें

---

१ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पंचमे। षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे त्वहरेव तु ॥

२ अस्वर्ग्यं लोकाविद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु।

३ ऊनद्विवर्षे संस्थिते उभयोरेव मातापित्रोर्दशरात्रमाशौचं न सर्वेषां सपिण्डानाम्।

४ तेषां तु वक्ष्यति आ दंतजननात्सद्यः।

१ गर्भस्थे प्रेते मातुर्दशाह जात उभयोः कृते नाम्नि सोदराणाम्।

२ ऊनद्विवर्षे प्रेते मातापित्रोरेव नेतरेषाम्।

३ सापिण्डेष्वपि आ दन्तजन्मनः सद्यः।

४ स्वाशौचकालाद्विज्ञेयं स्पर्शनं च त्रिभागतः। शूद्राविट्क्षत्रविप्राणां यथाशास्त्रं प्रचोदितम् ॥

तो देवलनेही यह कहाहै कि दशदिनतक आदि तीन भागमें अस्थिसंचयन किये हुए पीछे तत्त्वके देखनेवाले वर्णोंके अंगका स्पर्श चाहते हैं। तीन, चार, पांच, दशदिनमें ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रमसे स्पर्श करने योग्य हैं। और ब्राह्मणका अन्न दशदिनमें, क्षत्रियका बारह दिनमें और वैश्यका १३ दिनमें और शूद्रका १५ पंद्रह दिनमें भोजन करने योग्य होता है ॥

भावार्थ-तीन वा दश रात्र दो वर्षसे कमके शवका अशौच माता पिता दोनोंको इष्ट है और सूतक तो दोनोंको होता है ॥ १८ ॥

पित्रोस्तु सूतकं मातुस्तदसृग्दर्शनाद्ध्रुवम्। तदहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात्॥१९॥

पद-पित्रोः ६ तु ऽ-सूतकम् १ मातुः ६ तद्-असृग्दर्शनात् ५ ध्रुवम् २ तत् १ अहः १ न ऽ-प्रदुष्येत क्रि-पूर्वेषाम् ६ जन्मकारणात् ५ ॥

योजना-पित्रोः सूतकं भवति । तदसृग्दर्शनात् मातुः ध्रुवं सूतकं भवति। पूर्वेषां जन्मकारणात् तत् अहः न प्रदुष्येत ॥

तात्पर्यार्थ-जन्म है निमित्त जिसका ऐसा अस्पर्श करने रूप अशौच माता पिता दोनोंको होता है, सब सपिंडोंको नहीं। और वह स्पर्श न करना रूप माताको तो निश्चयसे होता है क्यों कि माताके शरीरमेंसे रुधिर निकलता है। इसीसे वशिष्ठने कहा है कि यदि स्पर्श न करै तो पिताको अशौच नहीं होता। जन्ममें रज अशुद्ध होता है वह रज पुरुषमें नहीं होता। पिताको अशौच ध्रुव नहीं होता किन्तु स्नान करनेसेही स्पर्शको अभाव निवृत्त हो जाता है। सोई संवर्तने कहा है कि पुत्रके होनेपर पिताको सचैल स्नान कहा है कि माता दश दिनमें शुद्ध होती है और पिता स्नानसे शुद्ध होताहै। माताकी दश दिनमें शुद्धिभी व्यवहारकी योग्यताके ही लिये है और धर्मार्थ कार्योंके लिये तो पैठीनसीने विशेष कहा है कि पुत्रवाली सूतिकापर दशदिनमें कार्य करावै और जिसके कन्या हुई हो उससे एक मासमें कार्य करावै। अंगिराने तो सपिंडोंको स्पर्श करना कहा है। सूतकमें सूतिकाको छोडकर अन्य मनुष्यके स्पर्श करनेका निषेध नहीं। सूतिकाका स्पर्श करले तो स्नानही कहा है। जिस दिन बालकका जन्म होय वह दिन दूषित नहीं होता अर्थात् उस दिनमें करने योग्य दान आदिका अधिकार बना रहता है। क्योंकि उस दिन पिता आदिही पुत्र रूपसे पैदा होते हैं सोई वृद्ध याज्ञवल्क्यने कहा है कि बालकके जन्म दिनमें ब्राह्मण सुवर्ण, भूमि, गौ, अश्व, बकरी, वस्त्र, शय्या, आसन आदिका प्रतिग्रह ले। इन सबका प्रतिग्रह तो ले परन्तु किये

१ दशाहादित्रिभागेन कृते संचयने क्रमात् । अंगस्पर्शनमिच्छंति वर्णानां तत्त्वदर्शिनः ॥ त्रिचतुःपंचदशभिः स्पृश्या वर्णाः क्रमेण तु । भोज्यान्नो दशभिर्विप्रः शेषा द्वित्रिषडुत्तरैः ॥

२ नाशौचं विद्यते पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥

१ जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥

२ सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेत् । मासेन स्त्रीजननीम् ।

३ सूतके सूतिकावर्ज्यं संस्पर्शो न निषिध्यते । संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते ॥

४ कुमारजन्मदिवसे विप्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासःशय्यासनादिषु ॥ तत्र सर्वं प्रतिग्राह्यं कृतान्नं न तु भक्षयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहाद्द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥

हुए अन्नका भक्षण न करैं। जो द्विज मोहसे भक्षण करता है वह चांद्रायण करै। व्यासनेभी यहां विशेष कहा है कि सूतिकाके गृहमें है स्थान जिसका ऐसी जन्मदा नाम देवता हैं उनकी पूजाके निमित्त जन्ममें शुद्धि कही है। पहिले, छठे, दशवें दिन पुत्रके जन्ममें सूतक न करैं। मार्कंडेयने भी कहा है कि सूतकमें छठी रात्रिकी विशेषसे रक्षा करै, रात्रिमें जागरण करै और जन्मदा नाम देवताको बलि दे। पुरुष हाथमें शस्त्र रक्खैं, और स्त्री नृत्य और गीतसे रात्रिमें जागरण करैं और ये सब कर्म दशवीं रात्रिमें दशवें दिन विशेषकर करैं॥

भावार्थ–माता पिताको सूतक होता है, और माताको तो उसके रुधिरके निकलनेसे अवश्यही सूतक होता है। वह दिन दान आदिके ग्रहण करनेमें दूषित नहीं, क्योंकि उसमें पूर्व (पिता) आदिही पुत्र रूपसे उत्पन्न होते हैं॥ १९॥

अंतरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्ध्यति। गर्भस्रावे मासतुल्या निशाःशुद्धेस्तुकारणम्

पद–अन्तराऽ–जन्ममरणे ७ शेषाहोभिः ३ विशुद्ध्यति क्रि–गर्भस्रावे ७ मासतुल्याः १ निशाः १ शुद्धेः ६ तुऽ–कारणम् १॥

योजना–अन्तरा जन्ममरणे सति शेषाहोभिः विशुद्ध्यति गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेः कारणं भवन्ति॥

तात्पर्यार्थ–वर्ण और अवस्थाकी अपेक्षासे जिसका जितने दिनका आशौच लिखा है उसके भीतर यदि उस आशौचके समान वा उसके न्यून (कम) कालवाले आशौचका निमित्त रूप जन्म वा मरण हो जाय तो उस पहिले आशौचके शेष दिनोंसे ही शुद्धि हो जाती है अर्थात् फिर उस पीछे उत्पन्न हुए बालकके जन्मका आशौच पृथक् २ (जुदा-जुदा) न करना। और जो वर्तमान आशौच अल्प (थोडे दिनका) हो उसके भीतर बहुत दिनका आशौच आन पडै तो पूर्व आशौचके शेष दिनोंसे शुद्धि नहीं होती सोई उशनाने कहा है कि अल्प आशौचके मध्यमें जो दीर्घ आशौच आनपडै तो उसकी शुद्धि स्वकाल (अपना नियतकाल) से होती है पूर्वाशौचके शेष दिनोंसे नहीं। यमनेभी कहा है कि दीर्घ कालिक आशौच अपने नियत दिनोंसेही निवृत्त होता है। यहां अन्तरा जन्म मरणे यह वचन अविशेषसे कहा है तथापि जन्म सूतकके भीतर मरे हुएका आशौच पूर्व शेषसे शुद्ध नहीं होता। यही अंगिराने कहा है कि सूतकमें मृत्यु हो जाय अथवा मृतकमें सूतक हो जाय तो वहां मृतक आशौचके शेष दिनोंसे सूतक आशौचकी शुद्धि होजाती है, सूतक आशौचसे मृतक आशौच नहीं। तैसेही षट्त्रिंशतके मतसेभी कहा है कि शाव आशौचके होनेपर सूतक हो जाय तो शावसे सूतीकी शुद्धि होजाती है, सूतिसे शावकी शुद्धि नहीं।

१ सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः। तासां यागनिमित्तं तु शुचिर्जन्मनि कीर्तिता॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा। त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि॥

२ रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः। रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः। रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके॥

१ स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि। न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव शुध्यति॥

२ अहोवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत्।

३ सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम्। तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम्॥

४ शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत्। शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी॥

तिससे सूतकके भीतर मरे हुए शाव आशौचकी शुद्धि पूर्वशेषसे नहीं होती किन्तु शाव आशौचके मध्यमें हुए सूतककी ही होती है। सजातीय शाव आशौचके मध्यमें हुए शावकी पूर्व शेषसे शुद्धिका अपवाद अन्यस्मृतिमें दिखाया है कि पहिले मरी हुई माताके आशौचमें यदि पिता मरजाय तो उस आशौचकी शुद्धि पिताके शेष आशौचसे होती है, माताकी पक्षिणी (दो दिन एक रात) करै इसका यह अर्थ है कि पूर्व मरी हुई मातासे उत्पन्न हुए आशौचमें यदि पिताका मरण होजाय तो पूर्वशेषसे शुद्धि नहीं होती, किन्तु उसकी शुद्धि पिताके मरण निमित्तक आशौचके शेष दिनोंसे करनी और इसी प्रकार पिताके मरण आशौचके मध्यमें माताका स्वर्गलोक (मरण) होजाय तोभी पूर्व शेषसे शुद्धि नहीं होती अर्थात् पिताके आशौचको समाप्त करके फिर माताकी पक्षिणी करै। आशौचके सान्निपात कालका विशेष अपवाद गौतमने कहा है कि रात्रि शेष रहनेपर दो दिनमें प्रातःकालके होनेपर तीन दिनमें शुद्धि होती है इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पहिले आशौचमें रात्रिमात्र शेष हो तब कोई अन्य अशौच आन पडै तो फिर उस आशौचकी समाप्ति हुए पीछे दो रात्रिमें शुद्धि होती है। प्रभातमें अथवा उस रात्रिको अन्तके प्रहरमें जो कोई जन्म आदिका आशौच हो जाय तो वह तीन रात्रमें शुद्धि है तच्छेष मात्रसे नहीं। शातातपनेभी कहा है कि रात्रिके शेषमें दो दिनमें प्रहरके शेषमें तीन दिनमें शुद्धि हो जाती है, पुनः सूतकके होनेपरभी प्रेत क्रिया निवृत्त नहीं होती। क्योंकि उसनेही कहा है कि जन्म होनेसे पीछे दश दिनके भीतर यदि मरण हो जाय तो प्रेतके निमित्त अपने बन्धु पिण्डदान करै। प्रेतक्रियाके प्रारंभ होनेपर मध्यमें जनन होजाय तोभी उसी प्रकार शेष पिण्डोंको करै। इसी प्रकार शाव आशौचके होनेपरभी प्रेत क्रिया करै तथा अन्य आशौचके होनेपर पुत्रजन्म निमित्तक जातकर्म आदि क्रियाकोभी करै। सोई प्रजापतिने कहा है कि आशौचके होनेपर पुत्रका जन्म होय तो कर्मकर्त्ताकी तात्कालिक शुद्धि हो जाती है। क्योंकि वह पूर्वाशौचसे शुद्ध होजाता है। प्रसव (उत्पत्ति) का काल और जानना। शौचको कहकर अब असमय गर्भके पतनका आशौच कहते हैं। यद्यपि लोकमें स्रवति धातुका प्रयोग वहां दिया जाता है जहां परिस्यन्द उस धातुकी क्रियाका कर्त्ता द्रव (बहती) द्रव्य होता है, तथापि यहां (गर्भस्रावे) स्रवति धातु द्रव और अद्रवरूप साधारण द्रव्यके अधःपतन (नीचे गिरनेमें) वर्तती है। क्योंकि जो द्रवद्रव्यके अधःपतनमेंही मानोगे तो मासतुल्याः निशाः यह बहुवचन न बनेगा। क्योंकि वह द्रवगर्भमें द्रवत्व (पतलापन) पहिलेही मासमें संभव होता है तो गर्भस्राव पहिलेही महीनेके गर्भके पतनका नाम होगा तो उसमें मास तुल्य निशा शुद्धिका हेतु है ऐसा कहनेसे वह एक मासही लिया जायगा तो फिर यह बहुवचन असंगत होगा। गर्भस्रावमें उतनी निशा आशौच मानना जितने महीने गर्भ

१ मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता। पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम्॥

२ रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां प्रभाते सति तिसृभिः।

३ रात्रिशेषे द्व्यहाच्छुद्धिः यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्।

१ अन्तर्दशाहे जन्मनःपश्चात् स्यान्मरणं यदि। प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं स्वबन्धुभिः॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत्। तथैवाशौचपिण्डास्तु शेषान् दद्याद्यथाविधि॥

२ आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति॥

धारण किये हुए हो यह स्त्रीकोही समझना क्यों कि वसिष्ठकी स्मृति है कि गर्भस्रावमें स्त्रीकी मासतुल्य रात्रिसे शुद्धि और पुरुषकी स्नान मात्रसे होती है। और जो गौतमने कहाहै कि त्र्यहं अर्थात् तीन रात्रमें शुद्धि होती है वह तीन माससे पूर्व गर्भस्रावके विषयमें समझना। क्योंकि ऐसा मरीचिका वचन है कि तीन माससे पूर्व गर्भस्राव होय तो ब्राह्मणकी तीन रात्र, क्षत्रियकी चार रात्र, वैश्यकी पांच और शूद्रकी आठ रात्रमें शुद्धि होती है, यह सब छः महीनेके भीतर गर्भस्रावके विषय समझनी। सप्तम आदि मासमें प्रसव आशौच परिपूर्ण करना, क्योंकि सप्तम मासमें परिपूर्ण अंगवाले गर्भका जीवसहित निर्गम होता है, इससे उसे लोकमें प्रसव कहते हैं, इसमें यह स्मृतिभी प्रमाण है कि छः मासके भीतर जब गर्भका स्राव हो उतने महीनोंकी सख्यावाले दिनोंसे शुद्धि होती है, इसके अनन्तर अपनी जातिमें कहा अशौच पूर्ण होता है और सपिण्डोंकी शुद्धि गर्भके पतनमें सद्यः (स्नानानन्तर) होती है, यह सपिंडोंको सद्यः शौच द्रव गर्भके पडनेके विषयमें समझना, और जो यह वसिष्ठका वचन है कि दो वर्षसे कम बालकके मरनेमें और गर्भके पतनमें सपिण्डोंको तीन रात्र आशौचहै वह वचन पांच और छठे महीनेमें पडे हुए कठिन गर्भके विषयमें समझना, क्योंकि मरीचिका वचन है कि चौथे महीनेकेको स्राव, पांचवें छठेको पात, इससे अनंतरकेको प्रसूति कहते हैं और दशदिनको सूतक कहते हैं। स्रावमें माताको तीन रात्र आशौच सपिण्डोंको नहीं, पातमें माताको मासके समान दिन, और पिता आदिको तीन दिन आशौच होता है, सप्तम आदि मासमें मराहुआ पैदा हो वा पैदा होतेही मरगया होय तो सपिण्डोंको जन्मनिमित्तक परिपूर्ण आशौच होता है, क्योंकि हारीतका वचन है कि पैदा होतेही मरगया हो वा मराहुआही पैदा हुआ होय तो सपिण्डोंको दशदिन आशौच होताहै। पारस्करने भी कहा है कि जन्मसे सूतिकाका उठना (दशदिन) तक सूतकके समान आशौच होता है। सूतकवत् इसका यह अर्थ है कि शिशुके मरण निमित्तक जलदान आदिसे रहित रहै। बृहन्मनुकाभी वचन है कि दशदिनका जो बालक मरगया होय तो उसका शावाशौच नहीं होता किंतु सूत्याशौच होता है। इसी प्रकार स्मृत्यन्तरमें भी लिखा है कि दशदिनके भीतर जो मरगया होय तो सूतकके दिनोंसेही आशौच होता है। इत्यादि वचनोंके देखनेसे सपिण्डोंको जन्म निमित्तक आशौच होता है यह बात

---

१ गर्भस्रावे मासतुल्या रात्रयः स्त्रीणां स्नानमात्रमेव पुरुषस्य।

२ त्र्यहं च।

३ गर्भस्रावे यथामासमचिरे तूत्तमे त्रयः। राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पंचाहमेव तु॥ अष्टाहेन तु शूद्रस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता॥

४ षण्मासाभ्यन्तरे यावद्गर्भस्रावो भवेद्यदा। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥ अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तं तासामाशौचमिष्यते। सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति॥

५ ऊनद्विवार्षिके प्रेते गर्भस्य पतने च सपिण्डानां त्रिरात्रम्।

१ आ चतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयोः। अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत्॥ स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात्सपिण्डाशौचवर्जनम्। पाते मातुर्यथामासं पित्रादीनां दिनत्रयम्॥

२ जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्।

३ अतः सूतके चेदुत्थानादाशौचं सूतकवत्।

४ दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः। शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते॥

५ अन्तर्दशाहोपरतस्य सूतकाहोभिरेवाशौचम्॥

प्रतीत होती है। जो कि बृहद्विष्णुका वचन है कि उत्पन्न होते मरजाय वा मराहुआही उत्पन्न हुआ हो तो कुलको सद्यः आशौच होता है उसको बालक मरण निमित्तक आशौचकी स्नानसे शुद्धि होती है इस बातके सूचनके विषयमें समझना कुछ प्रसवनिमित्तके विषयमें नहीं। सोई पारस्करने कहा है कि गर्भके विषयमें यदि विपत्ति होजाय तो दशदिन सूतक होता है, क्योंकि सपिंडोको जन्मका आशौच विद्यमान है इससे जीता हुआ उत्पन्न होकर यदि मरजाय तो सद्यः (स्नानसे) शुद्धि होजाती है यह वचन प्रेत अशौचके अभिप्रायसे है। सोई शंखने कहा है कि नामकरणसे पूर्व मरनेमें शीघ्रही शुद्ध होजाताहै। और जो कि यह कात्यायनका वचन है कि दशदिनके न व्यतीत होनेपर जो बालक पंचत्व (मरण) को प्राप्त होजाय तो सद्यः शुद्धि होती है उसे प्रेतके निमित्त उदक आदिका दान न करे, वह भी विष्णुके वचनके समान है, और जब कि (न प्रेतं नैव सूतकं) ऐसा पाठ है तब सूतक शब्दका यह अर्थ है कि पिता आदिको स्पर्श करनेका अभाव नहीं होता, अथवा यह अर्थ है कि दश दिनके भीतर जो बालक मर गया होय तो प्रेत आशौच नहीं होता, यदि उसमें किसी सपिंडके बालक उत्पन्न होजाय तो तन्निमित्तक आशौच भी नहीं करना, किन्तु पूर्वाशौचसे ही शुद्धि होजाती है, और जो कि यह बृहन्मनुका वचन है कि जीताही उत्पन्न हुआ हो फिर मरजाय तो माताको पूरा आशौच होता है और पिता आदिको तीन रातकाही होता है। और जो कि यह बृहत्प्रचेताका वचन है कि मुहूर्त्त जीकर बालक मरजाय तो माताकी दश दिनमें शुद्धि और सगोत्रियोंकी सद्यः शुद्धि होती है। यहां अब यह व्यवस्था है कि जननसे पश्चात् और नाल छेदनसे पूर्व मरजाय तो जनननिमित्तक आशौच तीन दिन पिता आदिकोंको होता है, और सद्यःशौच तो अग्निहोत्रके लिये कहाहै। क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अग्निहोत्रके लिये स्नानके करनेसे तत्काल शुद्धि होती है। नाल छेदनसे उत्तर कालमें शिशुके मरनेपर जनननिमित्तक समस्त अशौच सपिण्डोंको होताहै। क्योंकि जैमिनीका वचन है कि जबतक नाल छेदन न हो तबतकही सूतक नहीं होता नाल छेदनसे पीछे सब सपिण्डोंको सूतक होता है। मनु (अ० ५ श्लो० ६६) नेभी यही अर्थ दिखायाहै कि गर्भस्रावके होनेपर जितने महीनेमें गर्भस्राव हुआ हो उतनी रात्रमें शुद्धि होती है, और रजस्वला स्त्री रजः (स्त्रीका वीर्य) के निवृत्त हो जाने पीछे स्नानसे शुद्ध होती है, इस वचनके उत्तर भागका यह अर्थ है कि

---

१ जाते मृते मृतजाते कुलस्य सद्यः शौचम्।

२ गर्भे यदि विपत्तिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत्। जीवञ्जातो यदि म्रेयात्सद्य एव विशुद्ध्यति॥

३ प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्।

४ अनिवृत्ते दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति। सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नोदकक्रिया॥

---

१ जीवञ्जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकः॥

२ मुहूर्त्तं जीवतो बालः पंचत्वं यदि गच्छति। मातुः शुद्धिर्दशाहेन सद्यः शुद्धास्तु गोत्रिणः॥

३ अग्निहोत्रार्थं स्नानोपस्पर्शनात्तत्कालं शौचम्।

४ यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते॥

५ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति। रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला॥

निकलेनेसे जब रजकी निवृत्ति होजाय तब रजस्वला स्त्री साध्वी दैव आदि कर्मके योग्य होती है और स्पर्श आदिके योग्य तो चाहैं रज निवृत्त न हो तोभी चौथे दिन स्नानके करनेसे शुद्ध होजाती है। सोई वृद्ध मनुने लिखाहै कि स्पर्श आदि व्यवहारके लिये चौथे दिन स्त्री शुद्ध होजाती है। तिसी प्रकार स्मृत्यन्तरमें भी कहा है कि रजस्वला स्त्री पतिके लिये तो चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होजाती है और दैव पित्र्यकर्मके करनेके लिये तो पांचवें दिन शुद्ध होती है। पञ्चमेहानि यह वाक्य रजोनिवृत्तिं कालका उपलक्षण है अर्थात् जब रजकी निवृत्ति हो तबही शुद्ध होती है और जो रजोदर्शनसे लेकर सत्रह १७ दिनके भीतर फिर रजोदर्शन हो जाय तो फिर अशुद्धि नहीं होती। अठारह १८ वें दिन रजोदर्शन होय तो एक दिनमें शुद्धि, उन्नीसवें दिन दो दिनमें, फिर उससे पीछे तीन दिनमें शुद्धि होती है। सोई अत्रिने कहाहै कि जो रजस्वला स्त्री स्नान किये पीछे फिर रजस्वला अठारह दिनसे पूर्व हो जाय तो अशुद्ध नहीं होती। उन्नीसवें दिनसे पूर्व एक दिनमें, बीसवेंसे पूर्व दो दिनमें, फिर बीस दिनसे आगे होय तो तीन दिन अशुद्ध होती है। और किसी अन्य स्मृतिमें चौदहवें दिनसे पूर्व हो जाय तो अशुद्ध नहीं होती यह लिखा है उसमें स्नानसे पीछे चौदहवां दिन इष्ट है इससे विरोध नहीं। यह अशुचित्वका निषेध उसके विषयमें है कि जिस स्त्रीका रजोधर्म प्रायः बीस दिनके पीछे ही होता हो और जिसको चढतीहुई यौवनकी अवस्था हो उस स्त्रीका अठारह दिनसे पूर्वही बहुत रजका निकलना होता है, उसकी शुद्धि तो तीन रात्रमेंही होगी, उस स्त्रीको तीनरात्रतक स्नान आदिसे रहित होना चाहिये। क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि रजस्वला तीन रात्र अशुद्ध होती है वह न आंखोंमें अंजन लगावै, न शरीरसे उवटना करे, न जलोंमें स्नान करे, नीचे सोवै, दिनमें न सोवै, न सूर्य आदि ग्रहोंको देखै, न अग्निका स्पर्श करै, न अत्यंत भोजन करै, न रस्सी वँटै, न दन्तधावन करै, न हँसै, न कोई काम करै, अखर्व (बडा) पात्र वा अंजली (पसा) वा लोहेके पात्रसे जलको पीवै, अंगिराने भी विशेष दिखाया है, हाथमें वा मिट्टीके पात्रमें खीर खाय, पृथ्वीपर सोवै, ऐसी रजस्वला चौथे दिन स्नानसे शुद्ध होतीहै। पराशरनेभी विशेष कहाहै कि यदि स्त्रीको नैमित्तिक स्नान करना होय और रजस्वला होजाय तो पात्रान्तरित जलसे स्नान करके व्रत करै जलसे अपने गात्रका प्रोक्षण करके सांगोपांग

१ चतुर्थेहानि संशुद्धिर्भवति व्यावहारिकी।
२ शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। दैवे कर्माणि पित्र्ये च पंचमेहानि शुद्ध्यति॥

३ रजस्वला यदि स्नात्वा पुनरेव रजस्वला। अष्टादशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते॥ एकोनविंशतेरर्वागेकाहं स्यात्ततो द्व्यहम्। विंशत्प्रभृत्युत्तरेषु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।
४ चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते।

१ रजस्वला त्रिरात्रमशुचिर्भवति सा च नाञ्जीत नाभ्यंजीत नाप्सु स्नायादधः शयीत न दिवा स्वप्यात् न ग्रहान्वीक्षेत् नाग्निं स्पृशेन्नाश्नीयान्न रज्जुं सृजेत् न च दंतान्धावयेत् न हसेन्न च किंचिदाचरेत् अखर्वेण पात्रेण पिबेदंजलिना वा पात्रेण लोहितायसेन वेति विज्ञायते।

२ हस्तेश्नीयान्मृन्मये वा हविर्भुक् क्षितिशायिनी। रजस्वला चतुर्थेह्नि स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्॥

३ स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः सांगोपांगा कथंचन। न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत्॥

ऋ वस्त्रोंको निचोडे, न अन्य वस्त्रोंको धारण करे । उशनाने भी यहां विशेष दिखाया है कि जिस स्त्रीको ज्वर आता हो और रजस्वला हो जाय तो उसका शौच किस प्रकार होना चाहिये और उसका स्पर्श करके किस कर्मसे उसकी शुद्धि होय इस अपेक्षासे[1] कहते हैं कि जब चौथा दिन हो तब कोई स्त्री सचैल जलमें स्नान बारंबार करके पुनः स्पर्श करै और फिर दश वा द्वादशवार बारंबार आचमन करै, उसके अनंतर उन वस्त्रोंको त्यागदे इससे वह रजस्वला शुद्ध होती है । फिर शक्तिके अनुसार दान देकर पुण्याहवाचनसे शुद्ध होती है । यह स्नानविधि आतुरमात्रके विषय समझनी । क्योंकि पराशरने कहा[2] है कि आतुरको जब अवश्य स्नान करना होय तब अनातुर दशबार बारंबार स्नान करके स्पर्श करै, अर्थात् छूवे फिर स्नान करै इस तरह आतुर शुद्ध हो जाता है । जब रजस्वला वा सूतिका (जच्चा) स्त्री मर जाय तो वहां यह स्नानका प्रकार है कि[3] सूतिकाके मरने पर याज्ञिक इस प्रकार करै कि एक घटमें जल और पंचगव्य लेकर उस जलको पुण्याहवाचनकी ऋचासे अभिमंत्रित करके वाणीसे शुद्ध करै । फिर उस जलसे स्नान कराकर यथाविधि दाह करै और रजस्वला मरजाय तो पंचगव्यसे स्नान कराकर और किसी अन्य वस्त्रमें लपेटकर यथाविधि दाह करै, ये रजोदर्शन और पुत्रका जन्म आदि यदि सूर्योदयसे पश्चात् हुई होयँ तो उसी दिनसे लेकर अशौचके दिनरात्र गिनै, और जो रात्रिमें हुए हों तो यह व्यवस्था है कि यदि अर्द्ध रात्रिसे पूर्व हुएहों तो यद्यपि वह अशौच पूर्वदिनमेंभी है तोभी पहिले दिनसेही अशौचके दिन गिनै यह पूर्वकल्प है । और कोई यह मानते हैं और दूसरा यह कल्प है कि रात्रिके तीन भाग (हिस्से) करके पहिले दो भागोंमें जन्म आदि हुआ होय तो पहिले दिनसे और सूर्योदयसे पूर्व हुआ होय तो दूसरा दिन । सोई कश्यपने कहा है कि सूर्यके उदय होने पर स्त्रियोंका रजोदर्शन होय वा जन्म आदि हो वा विपत्ति होय तो उसके सूतकमें अर्द्ध रात्रिपर्यंत वहही दिन लिया जायगा जिसमें सूर्य उदय हुआहो । अथवा रात्रिके तीन भाग करके पहिले दो भाग पूर्वदिनमें समझने पिछला तीसरा भाग ऋतु सूतकमें दूसरे दिनमें समझना । और रजस्वला स्त्रीके मरनेके विषयमें यह है कि रात्रिके होनेपर जबतक सूर्य उदय न हो तबतक पहिलाही दिन समझना । इन सब

---

१ ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वास्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥ दशद्वादशकृत्वो वा आचमेच्च पुनः पुनः । अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेच्च सा ॥ दद्याच्छक्त्या ततो दानं पुण्याहेन विशुद्ध्यति ॥

२ आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः । स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ।

३ सूतिकायां मृतायां तु कथं कर्वीति याज्ञिकाः । कुंभे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च ॥ पुण्यर्ग्भिरभिमंत्र्यापो वाचा शुद्धिं लभेत्ततः । तेनैव स्नापयित्वा तु दाहं कुर्याद्यथाविधि ॥ पंचभिः स्नापयित्वा तु गव्यैः प्रेतां रजस्वलाम् । वस्त्रान्तरावृतां कृत्वा दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥

१ उदिते तु यदा सूर्ये नारीणां दृश्यते रजः । जननं वा विपत्तिर्वा यस्याहस्तस्य शर्वरी ॥ अर्धरात्रावधिः कालः सूतकादौ विधीयते । रात्रिं कुर्यात्त्रिभागां तु द्वा भागौ पूर्व एव तु ॥ उत्तरांशः प्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके । रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ॥ पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥

कल्पोंकी व्यवस्था देशाचारसे समझनी। यह आशौच अग्निहोत्रीके मरनेमें तो दाहके दिनसे अग्निहोत्रीके मरनेमें मरनेके दिनसे होता है और अस्थिसंचयन तो दोनोंका दाहके दिनसे ही होताहै यह जानना। सोई अंगिराने कहा है कि अनग्निहोत्रीका आशौच मरण दिनसे और अग्निहोत्रीका दाहके दिनसे गिना जाता है और संचयन दोनोंका दाहके दिनसे लिया जाता है और श्राद्ध करनेके लिये मरनेका दिन वही होता है जिस तिथिको माराहो। यहां 'साग्नेः संस्कारकर्मणः' इसके सुननेनसे यह अनुसंधान करना। यदि अग्निहोत्री पिता देशान्तरमें मरगया होय तो उसके पुत्र आदिको जबतक उसका दाह न हो तबतक संध्या आदि कर्मका लोप नहीं होता। सोई पैठीनसीने कहा है कि अनाग्निहोत्री द्विजका आशौच द्विजोंको मरण दिनसे होता है और परदेशमें मरे हुए अग्निहोत्रीका आशौच दाहसे होता है॥

भावार्थ–प्रथम आशौचके मध्यमें जन्म वा मरण हो जाय तो उस पहिले आशौचके शेष दिनोंसे शुद्धि होती है। गर्भस्राव होजाय तो मासतुल्य रात्रियोंसे शुद्धि होती है॥ २०॥

हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षंचात्मघातिनाम्।
प्रोषितेकालशेषःस्यात्पूर्णेदत्त्वोदकंशुचिः॥

पद–हतानाम् ६ नृपगोविप्रैः ३ अन्वक्षम्ऽ–चऽ–आत्मघातिनाम् ६ प्रोषिते ७ कालशेषः १ स्यात् क्रि–पूर्णे ७ दत्त्वाऽ–उदकम् २ शुचिः१॥

योजना–नृपगोविप्रैः हतानां च पुनः आत्मघातिनां शुद्धिः अन्वक्षं भवति। प्रोषिते कालशेषः शुद्धिः हेतुर्भवति। पूर्णे उदकं दत्त्वा शुचिर्भवति॥

तात्पर्यार्थ–जिसका अभिषेक आदि कर्म हुआ हो ऐसा क्षत्रिय आदि नृप सींग और डाढवाले गौआदि पशु, यहां विप्रशब्द शूद्रका भी उपलक्षण है, विप्र आदि इनसे जो मरे हों और जो विष (जहर) फाँसीसे अपने संबंधी सपिण्डोंको जो मारते हैं वे आत्मघाती, यहां आत्मघाती पद पाखण्ड्यनाश्रिता इस श्लोकमें कहे हुए सब पतितोंका उपलक्षण है, उनके संबंधियोंको सद्यः शौच होताहै, दशदिन आदि नहीं। सोई गौतमने कहा है कि गौ ब्राह्मणसे मरे हुए राजाके क्रोधसे मरे हों और युद्धके विनाही प्रायः नष्ट न करनेवाले शस्त्र, अग्नि, विष, जल, उद्बन्धन (फाँसी) और प्रपतन (ऊंचेसे पडना) इनसे मरनेकी इच्छावाले जो मनुष्य उनका सद्यः शौच होता है। यहां क्रोधका ग्रहण जो प्रमादसे मारा हो उसके निरास (निवृत्ति) के लिये है और अयुद्ध ग्रहण युद्धमें मरेका एक दिन आशौच होताहै इस बातके जतानेके लिये है। क्योंकि यह स्मृति है कि जो ब्राह्मणके लिये मरे हों, गौसे जो मरे हों, जो युद्धमें मारे गये हों उनका एकरात्र आशौच होता है। यह वचन युद्धके समयके क्षत (घाव) आदिसे जो कालान्तरमें मरा हो उसके लिये है। और संग्राममेंही मारा गयाहो उसका तो सद्यःशौच होता है सोई मनु (अ० ५ श्लो० ९८) ने कहा है कि युद्धके

१ अनग्निमत उत्क्रान्तेः साग्नेः संस्कारकर्मणः। शुद्धिः संचयनं दाहान्मृताहस्तु यथातिथि॥

२ अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचं हि द्विजातिषु। दाहादग्निमतो विद्याद्विदेशस्थे मृते सति॥

१ गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्चायुद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बंधनप्रपतनैश्चेच्छताम्।

२ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च। सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमिति स्थितिः॥

विषय उठाये हुए शस्त्रोंसे जो क्षत्रधर्मसे मराहो वहां यज्ञकी प्राप्ति और आशौच सद्यःकाल होताहै। अब यह दिखाते हैं कि ज्ञात (जाने हुए) जन्म आदिही आशौचमें हेतु हैं इससे जन्म होनेसे पीछे जो जाना है उसमें दशदिन आदि आशौचका अपवाद दिखाते हैं कि जिस देशान्तरमें स्थित हुए सपिण्डके पुत्र आदिका जन्म घरके सपिण्डने पहिलेही दिनमें न जाना होय तो उस सपिण्डको 'दशदिन' आदिके आशौचके जितने दिन शेष हों उतनेही दिनोंमें शुद्धि होतीहै और जो सब आशौच पूरा होने पर सुना जाय तो प्रेतको जल देकर शुद्धि होती है। उदकका दान स्नानपूर्वक होताहै। इससे स्नान और जल देकर शुद्ध होताहै। सोई मनु[1] (अ० ५ श्लो० ७७) ने कहाहै कि दशदिनके अनंतर ज्ञातिमरण वा पुत्रजन्म सुना जाय तो सचैल जलमें कूदकर मनुष्य शुद्ध होताहै। वहां 'पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः' इस पदसे यह जाना जाता है कि प्रेतको उदकदान सहित आशौचकाल शुद्धिका कारण है इससे सपिण्डोंको पुत्र जन्मका आशौच दशादिनके अनंतर सुननेसे नहीं होता। और पिताको तो दशदिनसे अनन्तर भी स्नान करना, क्योंकि यह वचन है कि पुत्रके जन्मको सुनकर स्नान करै। इस पदसे पुत्र शब्दका ग्रहण भी यही सूचन करता है कि जन्ममें अतिक्रान्ताशौच सपिंडोंको नहीं होता। अन्यथा ऐसाही कहना उचित था कि दशदिनके अनंतर ज्ञातिमरण और जन्मको सुनकर पूर्वोक्त करै। इससे[2] पुत्रका ग्रहण इसी लिये है कि जिसका पुत्र हो उसीको स्नानकी विधि है अन्यको नहीं सोई देवलने कहाहै कि[1] आशौचके दिनोंके बीतने पर प्रसव आशौच नहीं होता। तिससे यही मर्यादा है कि विपत्तिके विषयमेंही अतिक्रान्ताशौच होताहै जन्ममें नहीं। कोई इस 'हतानां नृपेत्यादि' श्लोकको अन्यथा पढते हैं कि प्रोषित मनुष्यके मरण आदिमें कालशेषसे शुद्धि है और जो शेष न होय तो तीन दिनमें शुद्धि होती है। और जो वर्षदिनके व्यतीत होने पर सुनाजाय तो प्रेतको जल देकर शुद्धि होती है। इसका अन्यभी अर्थ स्पष्टरीतिसे करते हैं कि, देशान्तरमें जो मरजाय तो सब ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्णोंकी शुद्धि अविशेषसे कालशेषसे होती है और जो अशेष अर्थात् दश आदि दिन व्यतीत हो गये होंय तो सब वर्णोंकी तीन दिनमें शुद्धि होती है। और वर्ष दिनके पूरे होनेपर परदेशीका मरण सुना जाय तो सब ब्राह्मण आदि वर्ण स्नान और जल देकर शुद्ध होते हैं। सोई मनुने[3] कहा है कि (अ०५-श्लो० ७६) वर्ष दिन पूरा होजाय तो जलकेही स्पर्शसे शुद्ध होता है वह तीन दिनमें शुद्धि, दश दिनसे ऊपर और तीन महीनोंसे पूर्व २ सुना जाय तो समझनी। पूर्वोक्त सद्यः शौच तो नौ महीनोंसे ऊपर और वर्ष दिनसे पूर्व २ समझना और जो कि यह वशिष्ठका[4] वचन है कि दश दिनसे ऊपर सुनकर एक रात्र अशौच होता है वह छः महीनोंसे ऊपर नौवें महीनोंसे पूर्व २ के विषयमें जानना। और जो गौतमका वचन[5] है

---

१ निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः॥

२ निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा जन्म च निर्दशम्।

---

१ नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि।

२ प्रोषिते कालशेषः स्यादशेषे त्र्यह एव तु। सर्वेषां वत्सरे पूर्णे प्रेते दत्त्वोदकं शुचिः॥

३ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति।

४ ऊर्ध्वं दशाहाच्छ्रुत्वा एकरात्रम्।

५ श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी।

कि दशवें दिनसे ऊपर पक्षिणी (एक रात्र दो दिन) आशौच होता है वह तीन माससे ऊपर छठे महीनेसे पूर्व २ समझना। सोई वृद्धवशिष्ठने कहा है कि तीन महीनेसे पूर्व तीन रात्र, और छः महीनेसे पूर्व २ पक्षिणी और नौ महीनेसे पूर्व २ एक दिन और इससे ऊपर स्नान मात्रसेही शुद्ध होता है, यह आशौच माता पितासे भिन्नके विषयमें समझना, क्योंकि यह पैठीनसीकी स्मृति है कि माता पिता मरगये हों पुत्र परदेशमें होय तो सुनकर दश दिन सूतकी होता है। और सोई स्मृत्यन्तरमें भी लिखा है कि महागुरु (पिता) के मरनेपर वर्ष दिन व्यतीत हो जाय तोभी आर्द्र वस्त्र और व्रती होकर विधिपूर्वक प्रेतक्रियाको करै अर्थात् आशौच, जलदानको करै, उसमें स्नान मात्रसे शुद्धि नहीं होती। मातासे भिन्न पिताकी स्त्रीमें विशेष स्मृत्यंतरमें दिखाया है कि मातासे भिन्न पिताकी स्त्रीके मरनेमें वर्ष व्यतीत होजाय तोभी ब्राह्मण तीन रात अशुद्ध होता है, और जो कि सपिंड नदी आदिसे व्यवहित देशांतरमें मरा होय तो सपिण्डोंको दश दिनके पीछे और तीन माससे पूर्वभी सद्यः शौच होता है, क्योंकि यह वचनं है कि देशान्तरमें जो हो, नपुंसक, वैखानस (वानप्रस्थ) और यति इनके मरनेको सुनकर और गर्भस्रावमें सगोत्री मनुष्य स्नानसे शुद्ध होता है। देशांतरका लक्षण बृहस्पतिने यह कहा है कि जिसमें गंगा आदि महानदीका व्यवधान हो और जहां पर्वतका व्यवधान हो और जहां वाणीका भेद (बोलीमें फर्क) होजाय उसे देशान्तर कहते हैं, और कोई साठ योजनपर देशान्तर कहते हैं, कोई चालीस और कोई तीस योजन पर देशान्तर कहते हैं, यह अतिक्रान्ताशौच उपनीतिके मरनेके विषय समझना, अवस्था विशेष विषयके जो आशौच उनके विषयमें न समझना। सोई व्याघ्रपादने कहाहै कि सब वर्णोंकी अवस्था निमित्तक आशौच और अतिक्रान्ताशौच समान होता है और वह आशौच उपनीतिके विषयमें विषम होता है और तिसीके विषयमें अतिक्रान्ताशौच होता है, इसका यह अर्थ है कि तीन वर्ष आदि अवस्थाके विषय जो दांत जमने पर्यंत सद्यः शौच होता है इत्यादि वाक्योंसे आशौच कहा है वह सब ब्राह्मण आदि वर्णोंको समान है, और दश दिन आदिके व्यतीत होने पर जो तीन दिन आदिका आशौच कहा है वह भी सब-वर्णोंमें समान है, परन्तु उपनीत मरनेसे दश बारह पंद्रह और तीस दिन क्रमसे ब्राह्मण आदिकोंको होता है इत्यादि वाक्यसे विषम आशौच ब्राह्मण आदि वर्णोंको होता है, और अतिक्रान्त आशौच भी इसी उपनीतके मरनेके विषयमें समझना, उस तीन वर्ष आदि के बालकके मरनेमें नहीं समझना॥

---

१ मासत्रये त्रिरात्रं स्यात्षण्मासे पक्षिणी तथा। अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति॥

२ पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥

३ महागुरुनिपाते तु आर्द्रवस्त्रोपवासिना। अतीतेऽब्देपि कर्तव्यं प्रेतकार्यं यथाविधि॥

पितृपत्न्यामपेतायां मातृवर्ज्यं द्विजोत्तमः। संवत्सरे व्यतीतेऽपि त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥

५ देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ। मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः॥

---

१ महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः। वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशांतरमुच्यते॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम्। चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च॥

२ तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च। उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजे॥

भावार्थ-राजा गौ ब्राह्मण इनसे मरेहुए और आत्मघाती इनका सद्यःशौच होता है, और परदेशके मरनेमें आशौचके शेष दिनोंमें और पूर्ण होनेपर स्नानपूर्वक जलदानसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥

क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशःपंचदशैव तु ॥ त्रिंशद्दिनानिशूद्रस्यतदर्धंन्यायवर्तिनः ॥२२॥

पद-क्षत्रस्य ६ द्वादशाहानि १ विशः६ पंचदश १ एवऽ- तुऽ-त्रिंशद्दिनानि १ शूद्रस्य ६ तदर्द्धम् १ न्यायवर्त्तिनः ६ ॥

योजना-क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पंचदश अहानि तु पुनः शूद्रस्य त्रिंशत् दिनानि । न्यायवर्तिनः (शूद्रस्य राज्ञः) तदर्द्धम् आशौचं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनको सपिंडके मरने और पैदा होनेमें क्रमसे द्वादश १२ पंद्रह १५ और तीस ३० दिन आशौच होता है, और पाक यज्ञ द्विजकी शुश्रूषाके विषय जो तत्पर हो ऐसे न्यायवर्ती शूद्रको महीनेका अर्द्ध अर्थात् पंद्रह दिन आशौच होता है, इससे त्रिरात्रं वा इत्यादि कहा दश रात्रका आशौच, परिशेषसे ब्राह्मणके विषयमें समझना, अन्य स्मृतियोंमें तो क्षत्रिय आदिकोंको दश दिन आदिका भी आशौच दिखाया है । सोई पराशरने[1] कहा है कि अपने कर्ममें तत्पर और शुद्ध क्षत्रिय दश दिनमें और वैश्य बारह दिनमें शुद्धिको प्राप्त होता है । शातातपनेभी[2] कहा है कि मरण सूतकके विषय क्षत्रिय ग्यारह दिन, वैश्य बारह दिन और शूद्र बीस रात्रिमें शुद्ध होता है। और वसिष्ठ[1] तो यह कहते हैं कि पंद्रह रात्रिमें क्षत्रिय और बीस रात्रिमें वैश्य शुद्ध होता है। और अंगिरा यह कहते हैं कि शातातपने[2] यह कहाहै कि सब वर्णोंकी शुद्धि मृत सूतकके विषय दश दिनमें होजाती है, इस प्रकार अनेक थोडे और बहुत दिनोंके आशौच कल्प दिखाये हैं परन्तु उनका आचार लोकमें न होनेसे बहुत व्यवस्था दिखाना उपयोगी नहीं है इससे उनकी व्यवस्था अब नहीं दिखाते । जब कि ब्राह्मण आदिके क्षत्रिय आदि सपिण्ड होंय तो यह हारीत आदिका कहाहुआ आशौच समझना कि[3] यदि ब्राह्मण सजातीय सपिण्डके मरनेमें दश दिनमें शुद्धि और क्षत्रिय वा वैश्य अथवा शूद्र सपिण्ड होय तो उनके मरण और जन्ममें क्रमसे छः तीन और एक रात्रमें शुद्धि होती है। विष्णुने[4]भी कहा है कि क्षत्रियकी वैश्य शूद्र सपिंडके मरनेपर क्रमसे छः रात और तीन रातमें, वैश्यकी शूद्र सपिण्डके मरनेमें छः रातमें, हीन वर्णकी अपनेसे उत्कृष्ट सपिण्डके मरनेमें वा जन्ममें जब आशौच निवृत्त होजाय तब शुद्धि होती है । बौधायनने[5] अविशेषसे सबकी दश दिनमें शुद्धि कही है कि जो क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये ब्राह्मणके बांधव होंय तो इनके आ-

१ क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

२ एकादशाहाद्राजन्यः वैश्यो द्वादशभिस्तथा । शूद्रो विंशतिरात्रेण शुद्धयेत मृतसूतके ॥

१ पंचदशरात्रेण राजन्यो विंशतिरात्रेण वैश्यः ।

२ सर्वेषामेव वर्णानां मृतके सूतके तथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

३ दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥

४ क्षत्रियस्य विट्शूद्रेषु सपिण्डेषु षड्रात्रत्रिरात्राभ्यां वैश्यस्य शूद्रे सपिण्डे षड्रात्रेण शुद्धिर्हीनवर्णानां तूत्कृष्टेषु सपिंडेषु जातेषु मृतेषु वा तदाशौचव्यपगमे शुद्धिः ।

५ क्षत्रविट्शूद्रजातीया ये स्युर्विप्रस्य बांधवाः । तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥

शौचमें ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होता है। इन दोनों पक्षोंकी व्यवस्था आपत्ति और अनापत्तिके विषयसे है। दासी आदिको स्वामीके आशौचकी निवृत्ति होनेपर स्पर्शकी योग्यता तो होजाती है। परन्तु मासपर्यंत कर्म करनेका अधिकार नहीं होता सोई अंगिराने कहा है कि दासी वा दास जिस वर्णके हों उस वर्णको उनके मरनेमें सद्यः शौच होता है और दासीको उस वर्णके मरनेमें एक मास सूतक रहता है। और प्रतिलोमोंका तो आशौच नहीं होता है क्योंकि यह स्मृति है कि प्रतिलोम धर्मसे हीन होते हैं उनके जन्म और मरणमें केवल मूत्र और पुरीष (विष्ठा) के शौचकी समान उस मलके निवृत्त करनेके लिये शौचही होता है॥

भावार्थ–क्षत्रियको वारह दिन, वैश्यको पंद्रह दिन, शूद्रको तीस दिन और धर्मात्मा शूद्रको पंद्रह दिन आशौच होता है॥ २२॥

आदंतजन्मनःसद्यआचूडान्नैशिकीस्मृता॥
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतःपरम्॥२३॥

पद–आदन्तजन्मनः ५ सद्यःऽ–आचूडात् ५ नैशिकी १ स्मृता १ त्रिरात्रम् १ आऽ–व्रतादेशात् ५ दशरात्रम् १ अतःऽ–परम् १॥

योजना–आदन्तजन्मनः सद्यः शुद्धिः आचूडात् नैशिकी शुद्धिः आव्रतोद्देशात् त्रिरात्रम् अतः परं दशरात्रं शुद्धेः कारणं भवति॥

तात्पर्यार्थ–आयुः और अवस्थाविशेषसेभी दश दिन आदि आशौचका अपवाद कहते हैं कि जितने कालमें दांत उपजें तिस कालमें मरेहुए बालकोंके सपिंडोंको सद्यःशौच और मुण्डनसे पूर्व मरेहुएका एक रात्र दिन यज्ञोपवीत होनेसे पूर्व और मुंडनसे पीछे मरेहुएका तीन रात आशौच होता है। यद्यपि दन्तजमनेसे पूर्व सद्यः शौच होता है यह वचन अविशेषसे कहा है तथापि यह आशौच अग्निसंस्कार (दाह) न हुआ होय तो समझना। क्योंकि इस विष्णुके[1] वचनसे अग्निसंस्कारसे रहितकोही सद्यःशौच कहा है कि जिसके दांत न निकलेहों ऐसे बालकके मरनेमें सद्यःशौच होता है और इसका अग्निमें दाह और जलदान आदि क्रिया न करनी। यदि अग्निसंस्कार होजाय तो बालक और जिनका वाग्दान (सगाई) न कियाहो ऐसी कन्याओंका एक दिनका आशौच इस[2] वक्ष्यमाण वचनसे होता है। सोई यमने[3] कहा है कि जिनके दांत न निकलेहों ऐसे बालकके मरनेमें और गर्भस्रावमें सब सपिंडोंको दिनरातका आशौच होता है। नामकरणसे पूर्व तो नियमसे सद्यःशौचही होता है। क्योंकि ये शंखकी स्मृति[4] है कि, नामकरणसे पूर्व सद्यः शौच होता है। चूडाकर्म इस स्मृतिसे पहिले वा तीसरे वर्षमें[5] होता है, कि सब द्विजातियोंको श्रुतिकी प्रेरणासे चूडाकर्म पहिले वा तीसरे वर्षमें करना। तिससे दांत जमनेके अनंतर प्रथम वार्षिक चूडाकर्म पर्यंत एक दिनका आशौच है और जो दंत जम जांय और चूडाकर्म न हाये तोभी

---

१ दासी दासश्च सर्वो वै यस्य वर्णस्य यो भवेत्। तद्वर्णस्य भवेच्छौचं दास्यां मासस्तु सूतकम्॥

---

१ अदन्तजाते बाले प्रेते सद्य एव नास्याग्निसंस्कारो नोदकक्रिया।

२ अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम्।

३ अदंतजाते तनये शिशौ गर्भच्युते तथा। सपिंडानां तु सर्वेषामहोरात्रमशौचकम्॥

४ प्राङ्नामकरणात्सद्यः शौचम्।

५ चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥

तीन वर्षतक एक दिनकाही आशौच रहैगा। सोई विष्णुने कहाहै कि दांत जम आये हों और चूडाकर्म न हुआ होय तो अहोरात्रसे शुद्धि है। तिसके अनंतर उपनयनसे पूर्व तीन दिनमें शुद्धि होती है। और जो कि यह मनु (अ० ५ श्लो० ६७) का वचन है कि जिनका मुंडन न हुआ हो उनकी शुद्धि अहोरात्रमें और जिनका होगया हो उनकी तीन रात्रमें शुद्धि होतीहै, उसका तो यह (पूर्वोक्त) ही विषय है। परन्तु फिर जो दोष वर्षसे कमके बालकके उद्देशसे मनु (अ० ५ श्लो० ६९) ने कहा है कि वनमें काष्ठकी समान गेरकर तीन दिन उसका अशौच करै। और जो यह वशिष्ठने कहा है कि दो वर्षसे कम बालकके मरनेमें और गर्भके पडनेमें सपिंडोंको तीन रात्र अशौच होता है सो यह कथन वर्षदिनमें चूडाकर्मके अभिप्रायसे है। अर्थात् यह शंका है कि जब तीसरे वर्षतक चूडाकर्मकी मर्यादा है तो वर्षसे पूर्व अकृतचूड होनेसे अहोरात्रका अशौच प्राप्त था इससे फिर दो वर्षसे कमको तीन रात्रका आशौच जो दिखाया है वह मुंडनरहित प्रथम वर्षतक है, इस अभिप्रायसे है इससे विरोध नहीं। जो कि यह अंगिराको वचन है कि यद्यपि मुण्डन न हुआ हो और दांत निकलनेसे अनंतर मरगया होय तोभी इसको अग्निमें दग्ध करके तीनरात अशौच करै, वहभी कुलधर्मकी अपेक्षासे जो तीन वर्षसे ऊपर मुण्डन होय तो उसके विषयमें समझना। क्योंकि उसनेही फिर यह कहा है कि तीन वर्षसे कम ब्राह्मण मरजाय तो अहोरात्रमें शुद्धि होती है। कदाचित् कोई यहां यह शंका करै कि यह एक दिनका आशौच जिसके दांत न निकले हों उसके विषयभी मानना पडैगा सो ठीक नहीं, क्योंकि तीन वर्षसे कमके बालकके दांत न निकले ऐसी बातही संभव नहीं होसक्ती। और दांत निकल आयेहों मुंडन न हुआ होय तो एक दिनका आशौच होता है इस विष्णुके वचनसे साथ जो विरोध है उसका भी परिहार न होसकेगा। इससे विरोध आदिके होनेसे पूर्व की हुई जो व्याख्या (कुलधर्मकी अपेक्षा इत्यादि) नहीं श्रेष्ठ है। जो कि यह कश्यपको वचन है जिनके दांत न पैदा हुएहों उनका तीन रात आशौच होताहै वह माता पिताके विषयमें समझना। क्योंकि इस वचनसे तीन रात्रके आशौचमें जन्यजनकभावसंबन्धरूप उपाधिहि नियामक है कि मनुष्य वीर्यको स्खलन (गेरा) करके स्पर्शसे शुद्ध होता है और बैजिक संबन्ध अर्थात् परपूर्वा स्त्रीके विषय सन्ततिको पैदा करके तीनरात अशुद्ध होता है। इससे यहां यह व्यवस्था समझनी कि नामकरणसे पूर्व मरे तो सद्यः शौच, उसके अनंतर दांत जमनेसे पूर्व मरै और अग्नि संस्कार होगया होय तो एक दिन आशौच, अन्यथा सद्यःशौच होता है। दांत निकलनेके अनंतर और प्रथम वार्षिक मुंडनसे पूर्व मरा होय तो एक दिन, प्रथम वर्षसे पिछे तीन

१ दन्तजातेप्यकृतचूडेऽहोरात्रेण शुद्धिः।

२ नृणामकृतचूडानामशुद्धिर्नैशिकी स्मृता। निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते॥

३ अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षिपेयुस्त्र्यहमेव तु।

२ ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सापिण्डानां त्रिरात्रम्।

५ यद्यप्यकृतचूडो वै जातदंतश्च संस्थितः। तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्॥

१ विप्रे न्यूनत्रिवर्षे तु मृते शुद्धिस्तु नैशिकी।

२ बालानामदंतजातानां त्रिरात्रेण शुद्धिः।

३ निरस्य तु पुमाञ्छुक्रमुपस्पर्शाद्विशुध्यति। बैजिकादभिसंबंधादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम्॥

वर्षसे पूर्व मुंडन होगया होय तो तीन दिन आशौच, अन्यथा एक दिनका आशौच होता है, तीन वर्षसे ऊपर जो मुंडन न हुआ होय तोभी तीन दिनका आशौच होता है। यज्ञोपवीतके अनंतर सब ब्राह्मण आदिकोंको दशरात्र आदिका आशौच होता है ॥

भावार्थ–दांतोंके पैदा होनेतक सद्यः आशौच और मुंडन पर्यंत अहोरात्र, और यज्ञोपवीत पर्यंत तीन रात्र और इससे परे दशरात्रका आशौच होता है ॥ २३ ॥

अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वंतेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषुच ॥२४॥

पद–अहः १ तु ऽ–अदत्तकन्यासु ७ बालेषु ७ च ऽ–विशोधनम् १ गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु ७ च ऽ–॥

योजना–अदत्तकन्यासु च पुनः बालेषु च पुनः गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु अहोरात्रं विशोधनं भवति ॥

तात्पर्यार्थ–जिनका विवाह न हुआ हो ऐसी कन्याओंका आशौच सपिंडोंको मुंडन होनेके अनन्तर और वाग्दानसे पूर्व अहोरात्र होताहै। कन्याओंका सापिंड्य तीन पुरुष पर्यंत इस वसिष्ठकी स्मृतिसे होता है कि, अदत्त कन्याओंका सापिंड्य तीन पुरुष पर्यंत शिष्टजन कहते हैं। जिनके दांत न निकलेहों ऐसे बालकोंका आशौच अग्निसंस्कार होनेपर अहोरात्र होता है। और जिनका मुंडन न हुआ हो ऐसी कन्याओंका सद्यः शौच होता है। क्योंकि आपस्तम्बका वचन है कि जिनका चूडाकर्म न हुआहो ऐसी कन्याओंका सद्यः शौच होता है, और वाग्दानके अनन्तर विवाह होनेसे पूर्व, पितृपक्ष (कुल) और पतिपक्षमें तीनरात्रका आशौच होता है। सोई मनु (अ०५ श्लो०७२) ने कहा है कि जिनका संस्कार न हुआहो ऐसी कन्याओंके मरनेमें बान्धव (पतिपक्ष) तीन रात्रमें और सनाभि (सपिंड) अर्थात् पितापक्षके मनुष्य निवृत्तचूडकानां इत्यादि श्लोकसे कहा जो तीन रात्रका आशौच उससे शुद्ध होते हैं, दशरात्रसे नहीं। क्योंकि विवाह होनेसे पूर्व उसकी प्राप्ति नहीं, इससे ही मरीचिने कहा है कि वाग्दान की हुई कन्या जो जल आदान (संकल्प) पूर्वक जो न दी हो वह असंस्कृत होती है उसका आशौच दोनों पक्षोंमें तीन रात्र होता है। विवाहमें पीछे तो यह विष्णुने विशेष दिखाया है कि विवाही हुई कन्याका आशौच पितृपक्षमें नहीं होता। यदि उसके पुत्र आदिका प्रसव अथवा मरण पिताके घर होय तो पितृपक्षमें तीन रात वा एक रात्र आशौच होता है। तिसमें भी प्रसवमें एक रात और मरणमें तीनरात आशौच होता है यह व्यवस्था है। यह वयोवस्था आशौच सब वर्णोंको साधारण है। क्योंकि तत्तद्वर्णका असाधारण आशौश क्षत्रियको बारह दिनका आशौच होता है, इत्यादि वचनसे तिस तिस वर्णको पृथक् २ कह कह दिखाया है, इससे यह तीन रात आदिका आशौच अविशेषसे सब वर्णोंको समान है। इसीसे मनुनेभी चारों वर्णोंका अधिकार (प्रकरणसे उत्तरोत्तर संबंध)

---

१ अप्रत्तानां तु स्त्रीणां त्रिपुरुषी विज्ञायते ।
२ अकृतचूडायां तु कन्यायां सद्यः शौचं विधीयते।

१ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बांधवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ॥

२ वारिपूर्वं प्रदत्ता तु या नैव प्रतिपादिता । असंस्कृता तु सा ज्ञेया त्रिरात्रमुभयोः स्मृतम् ॥

३ संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे तत्प्रसवमरणे चेत्पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं वा ।

होनेपरभी (चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः) इस अपने श्लोकमें चतुर्णां वर्णानां जो लिखा है वह इसी बातके जतानेके लिये है कि जिसमें वर्ण विशेषका उपादान नहीं किया ऐसी आशौचकी विधि सब वर्णोंमें साधारण है । सोई अंगिराने कहा है कि संस्कारसे पूर्व अविशेषसे सब वर्णोंकी तीन रातमें शुद्धि और कन्याके मरनेमें एक दिनमें शुद्धि होती है । अवस्था निमित्तका आशौच सब वर्णोंको तुल्य होता है इत्यादि व्याघ्रपादका वचन तो पूर्व दिखाय आये । जैसे पिंडयज्ञावृता देयं इत्यादि वचनसे कही हुई पिंडदान और जलदानकी विधि और अन्तरा जन्ममरणे इत्यादि सन्निपाताशौचकी विधि और गर्भस्त्रावे मासतुल्यानिशा इत्यादि स्त्रावाशौचकी विधि और प्रोषिते कालशेषःस्यादशेषे ञ्यहमेव तु इत्यादि विदेशस्थ आशौचके विधि, और जैसे गुरु आदिके आशौचकी विधि, सब वर्णोंको साधारण है । तिसी प्रकार वयोवस्था निमित्तक आशौचभी सब वर्णोंको साधारण होनाही उचित है, इसीसे तीन वर्षसे ऊपर चूडाकर्मके होनेपर क्षत्रियको छः दिनका आशौच, वैश्यको नौ दिनका और शूद्रको बारह दिनका आशौच होता है । तैसेही जिसमें ब्राह्मणोंको तीन रातका आशौच दिखाया है उसमें शूद्रको बारह दिनका और क्षत्रियको छः दिनका और वैश्यको नौ दिनका आशौच होता है । इत्यादि धारेश्वर, विश्वरूप और मेधातिथि आचार्योंने इस साधारण पक्षको स्वीकार किया है और इन ऋष्यशृंग आदिके कहे हुए वचनोंका तिरस्कार विगीत (निंदित) जानकर किया है और जो वचन अविगीत (यथार्थ) हैं व आर्त (रोगी) और अनार्त क्षत्रिय आदिके विषयमें व्याख्येय (समझने) हैं । जो पढावे वह गुरु, अन्तेवासी (शिष्य), व्याकरण आदि वेदोंके अंगके कहनेवाला अनूचान और मातुल शब्दसे अपने बन्धु माताके बन्धु और पिताके बन्धु योनिसंबन्ध पत्नीदुहितर इत्यादि वचनमें कहे हुए समझने वे, और एक शाखाका पढनेवाला श्रोत्रिय, क्योंकि बौधायनकी स्मृति है कि एक शाखाको जो पढे वह श्रोत्रिय होता है इनके मरनेपर अहोरात्र आशौच होता है । और जो कि मुख्य गुरु पिता है उसको दशदिनका आशौच होता । और जो पुत्रको पैदा करके संस्कार और वेदको पढावे और वेदके अर्थको बताकर वृत्ति (आजीवन) कराता है वह महागुरु है उसके मरनेमें इस आश्वलायनका कहा हुआ आशौच समझना कि महागुरुके मरनेमें बारह रात्र दान और अध्ययनको वर्ज दे । आचार्यके मरनेमें तो तीन रात्रही आशौच होता है । सोई मनु (अ० ५ श्लो० ८०) ने कहा है कि आचार्यके मरनेमें तीन रात्रका और उसके पुत्र वा स्त्रीके मरनेमें अहोरात्रका आशौच होता है । और जो शिष्य आचार्य आदिका अन्त्येष्टि (प्रेतकर्म) कर्म करे तो दशरात्र आशौच होता है । क्योंकि मनु (अ० ५ श्लो० ६५) नेभी कहा है कि मरे

---

१ अविशेषेण वर्णानामर्वाक् संस्कारकर्मणः । त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्ना विधीयते ॥

२ क्षत्रे षड्भिः कृते चौले वैश्ये नवभिरुच्यते । ऊर्ध्वं त्रिवर्षाच्छूद्रे तु द्वादशाहो विधीयते ॥ यत्र त्रिरात्रमाशौचं विप्राणां च प्रदर्श्यते । तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्णव क्षत्रवैश्ययोः ॥

१ द्वादशरात्रं वा दानाध्ययने वर्जयेत् ।

२ त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति । तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥

३ गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैः समं तत्र दशाहेन विशुध्यति ॥

हुए गुरुकी जो शिष्य प्रेतक्रिया करे तो प्रेतके लेजानेवालोंके समान दशदिनमें शुद्ध होता है। एक गाममें बसनेवाले श्रोत्रियके मरनेमें तो एक दिन आशौच इस आश्वलायनके वचनसे होता है कि, जिसने एक आचार्यसे उपनयन करायाहो वह सब ब्रह्मचारी और श्रोत्रिय इनके मरनेमें एक दिन आशौच होता है, यह दूर मरे होंय तो समझना, और जो समीप मरे होंय तो तीन रात्रकाही आशौच होता है। सोई मनु (अ० ५ श्लो० ८१) ने कहा है कि श्रोत्रियके मरनेमें तीन रात्र, मामाके मरनेमें पाक्षिणी (दो दिन एक रात) और शिष्य ऋत्विज और बांधव इनके मरनेमें पाक्षिणी आशौच होता है। उपसंपन्न शब्दसे मैत्री, समीप रहना आदि जिसके साथ संबन्ध हो, और वा जो शीलयुक्त हो, मातुलशब्दसे मौसी आदिभी समझनी और बांधवशब्दसे अपने बंधु माताके बंधु और पिताके बंधु समझने। बृहस्पतिनेभी कहा है कि भ्राता आचार्य और श्रोत्रिय इनके मरनेमें तीन रात्र अशुद्ध होता है। सोई प्रचेतोंने कहा है कि ऋत्विज और याज्य इनके मरनेमें तीनि रातमें शुद्ध होता है। वसिष्ठनेभी कहा है कि दौहित्र (धेवता) और भानजेके मरनेमें पाक्षिणी रात्रि और जो संस्कृत होंय तो तीन रात्र आशौच होता है ये धर्मकी व्यवस्था है। माता पिताके मरनेमें विवाही कन्याओंको किस तरह आशौच होता है इसमें यमने कहा है कि तीनरात्रमें शुद्धि होती है। और इसी प्रकार सास, श्वशुर, भागिनी, भाई, मामा और माता पिताकी बहन इनके मरनेमें पाक्षिणी आशौच होता है। और यहभी वचन है कि मामा, श्वशुर, मित्र, गुरु, गुरुकी स्त्री और नानी इनके मरनेमें पाक्षिणी आशौच होता है। सोई गौतमने कहा है कि जो सापिण्ड न हों ऐसे योनिसंबंध और सहाध्यायी इनके मरनेमें पाक्षिणी आशौच होता है। योनिसंबंध मामा, मौसीका पुत्र, और बूआका पुत्र ये होते हैं। जाबालिनेभी कहा है कि समानोदकोंका तीन दिन, सगोत्रियोंका एक दिन, माताके बन्धु, गुरु, मित्र, राजा इनके मरनेमें एक दिन आशौच होता है। विष्णुनेभी कहा है कि जो सपिण्ड अपने घर मर जाय तो एक दिन आशौच होता है। तैसेही वृद्धवसिष्ठने कहा है कि विवाही हुई बहन, असंस्कृत भाई, मित्र, जामाता, दौहित्र, भानजा, शाला, शालेका पुत्र इनके मरनेमें स्नानमात्रसे सद्यः शुद्धि होती है और ग्रामका अधिपति, कुलका पति, श्रोत्रिय, तपस्वी, शिष्य इनके मरनेमें सायंकालको

१ एकाहं सब्रह्मचारिणि समानग्रामीणे च श्रोत्रिये।

२ श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। मातुले पाक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बांधवेषु च॥

३ त्र्यहं मातामहाचार्यश्रोत्रियेष्वशुचिर्भवेत्।

४ मृते चर्त्विजि याज्ये च त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति।

५ संस्थिते पाक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते। संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥

६ पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत्। त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान्यमः॥ श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले। पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पाक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्॥

१ मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वंगनासु च। आशौचं पाक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि॥

२ पक्षिणीमसपिण्डे योनिसंबंधे सहाध्यायिनि च॥

३ एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम्॥ मातृबंधौ गुरौ मित्रे मंडलाधिपतौ तथा॥

४ असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम्।

५ भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते। मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते॥ श्यालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुध्यति। ग्रामेश्वरे कुलपतौ श्रोत्रिये च तपस्विनि॥ शिष्ये पंचत्वमापन्ने शुचिर्नक्षत्रदर्शनात्। ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित्॥ ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्॥

नक्षत्र (तारे) के देखनेसे शुद्धि होती है । ग्रामके बीचमें जबतक शव (मुर्दा) रहे तब-तक ग्रामको आशौच है उसके निकलनेपर ग्राम शुद्ध होता है, इत्यादि विशेष आशौचके प्रतिपादक स्मृतियोंके वचन स्मृतियोंमें देखने ग्रन्थके बढनेके भयसे इसमें नहीं लिखते । इन वचनोंमें जो ऐसे वचन हैं कि एकके विषयमेंही गुरु (बडा) और लघु (छोटा) और शौचके प्रतिपादन करनेस परस्पर जिनमें विरोध आता है उनकी व्यवस्था समीप और परदेशकी अपेक्षासे समझनी अर्थात् जो समीप होय तो गुरु आशौच और परदेशमें होय तो लघु आशौच करना ॥

भावार्थ-जो कन्या न विवाही हो और बालक इनके मरनेमें एक दिन आशौच तथा गुरु, अन्तेवासी, अनूचान, मामा, श्रोत्रिय इनके मरनेमें एक दिन रात आशौच होता है॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च । निवासराजनि प्रेते तदहःशुद्धिकारणम् २५

पद-अनौरसेषु ७ पुत्रेषु ७ भार्यासु ७ अन्यगतासु ७ चऽ-निवासराजनि ७ प्रेते ७ तत् १ अहः १ शुद्धिकारणम् १ ॥

योजना-अनौरसेषु पुत्रेषु, च पुनः अन्य-गतासु भार्यासु मृतासु, निवासराजनि प्रेते सति, तत् (यस्मिन्मृतः) अहः शुद्धिकारणं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-क्षेत्रज दत्तक आदि अनौरस पुत्र उनके उत्पन्न होने और मरनेमें और अपनी विवाही स्त्री प्रतिलोमसे भिन्नके आश्रय जो होजाय उसके मरनेमें अहोरात्र आशौच होता है, यद्यपि ये सपिंड हैं तोभी दश रात्रका नहीं होता और जो कि प्रतिलोमके आश्रय स्त्री हैं उनके मरनेमें तो पाखंडचनाश्रिता इत्यादि श्लोकसे आशौचका अभावही है । ये भार्या और पुत्रशब्दसंबन्धी शब्द हैं इससे जिसकी अपेक्षासे जिन स्त्री और पुत्रोंमें भार्यात्व और पुत्रत्व हो अर्थात् जिसके स्त्री और पुत्र हों उसकोही आशौच है, अन्य सपिंडोंको नहीं इसीसे प्रजापतिने कहा है कि जो अन्यके आश्रय स्त्री और जो अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्न हुए पुत्र हैं उनके मरनेमें और पैदा होनेमें सगोत्री स्नानसे और पिता तीन रातमें शुद्ध होता है । और जो स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) आदि जिस-के आश्रय है उसकोभी तीन रात्रका आशौच होता है । सोई विष्णुने कहा है कि अनौरस पुत्रोंके पैदा होने और मरनेमें और परपूर्वा स्त्रीके सन्तति होने वा मरनेमें तीन रात्र आशौच होता है । इन तीन रात और एक रात्रकी समीप और परदेशकी अपेक्षासे व्यवस्था है । जब पिताको तीन रातका आशौच हो तो सपि-ण्डोंको एक रातका आशौच होता है सोई मरीचिने कहा है कि परपूर्वा स्त्री, और उनके पुत्रोंके पैदा होने और मरनेमें तीन रात आशौच होता है । जिसमें पिताको तीन रातका आशौच हो उसमें सपिण्डोंको एक दिनका होता है, अपने देशका अधिपति जिस दिन मरे वह दिन और रात शुद्धिमें कारणहै, और रात्रिमें मरा होय तो रातभरमें सूतक निवृत्त हो जाताहै।इसीसे मनु (अ० ५ श्लो० ८२) ने कहा है कि राजाके मरनेमें सज्योतिः आशौच होता है अर्थात्

---

१ अन्याश्रितेषु दारेषु परपत्नीसुतेषु च । गोत्रिणः स्नानशुद्धाः स्युस्त्रिरात्रेणैव तत्पिता ॥

२ अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च । परपूर्वासु भार्यासु प्रसूतासु मृतासु च ॥

३ सूतके मृतके चैव त्रिरात्रं परपूर्वयोः । एकाहस्तु सपिण्डानां त्रिरात्रं यत्र वै पितुः ॥

४ प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।

दिनमें मरा होय तो जबतक सूर्य दीखै तबतक रात्रिमें मरा हो तो जबतक तारागण दीखें तबतक आशौच होता है ॥

भावार्थ-अनौरस पुत्र और अन्य पुरुषमें आसक्त स्त्री और अपने देशका राजा इनके मरनेमें अहोरात्रसे शुद्धि होती है ॥ २९ ॥

ब्राह्मणेनानुगंतव्योनशूद्रो नाद्विजःक्वचित् ।
अनुगम्यांभसिस्नात्वास्पृष्ट्वाग्निंघृतभुक्शुचिः॥

पद-ब्राह्मणेन ३ अनुगन्तव्यः १ नऽ-शूद्रः १ नऽ-द्विजः १ क्वचित्ऽ-अनुगम्यऽ-अम्भसि ७ स्नात्वाऽ-स्पृष्ट्वाऽ-अग्निम् २ घृतभुक् १ शुचिः १ ॥

योजना-ब्राह्मणेन शूद्रः वा द्विजः क्वचित् न अनुगंतव्यः, अनुगम्य पुनः अंभसि स्नात्वा अग्निं स्पृष्ट्वा तथा घृतभुक् सन् शुचिर्भवति ॥

तात्पर्यार्थ-असपिण्ड ब्राह्मण विप्र आदि द्विज और शूद्र इन प्रेतोंके संग अनुगमन न करै अर्थात् इन मरे हुओंके साथ न जाय । यदि स्नेह आदिसे इनके संग चला जाय तो तडाग आदिके जलमें स्नान, अग्निका स्पर्श और घृतका भोजन करके शुद्ध होता है। उस दिन भोजन करनेमें इस घृत प्राशनकाही विधान है अर्थात् घृतकोही खाय और कुछ न खाय ऐसी कल्पनामें कोई प्रमाण नहीं इससे भोजन करनेका प्रतिषेध नहीं। यह प्रायश्चित्त समान और उत्कृष्ट जातिके विषयमें समझना। सोई मनु (अ० ५ श्लो० १०३) ने लिखा है कि सजातीय वा विजातीय प्रेतके साथ इच्छासे गमन करके सचैल स्नान, अग्निका स्पर्श और घृत खाकर शुद्ध होता है। ज्ञाति शब्दसे माताके सपिण्ड लेने। अन्योंके संग गमनको शास्त्रविहित होनेसे दोष नहीं । अपनेसे निकृष्ट (नीच) जातिके संग गमन करनेमें तो यह स्मृत्यंतरमें कहा हुआ देखना तहां शूद्रके संग गमन करनेमें तो यह पाराशरने कहा है कि जो ज्ञानसे दुर्बल ब्राह्मण मरे हुए शूद्रके संग गमन करता है वह तीन रात्रमें शुद्ध होता है। जब तीन रात्र व्यतीत होजांय तब समुद्रमें जिसका प्रवाह पडे ऐसी नदीपर जाकर सौ प्राणायाम और घी खाकर शुद्ध होता है। ब्राह्मणको क्षत्रियके संग अनुगमन करनेमें यह वसिष्ठको कहा अहोरात्रका आशौच समझना कि मनुष्यकी स्निग्ध हड्डीको छूकर तीन रात और मनुष्यकी अस्निग्ध (सूखी) हड्डीको छूकर अहोरात्र और शव (मुर्देके) संग अनुगमन करनेसे एक रातदिन आशौच होताहै। वैश्यके संग जानेमें पक्षिणी अशौच ब्राह्मणको इस वचनसे होता है। और क्षत्रियको अनंतर (अव्यवहित) वैश्यके संग जानेमें अहोरात्र एकान्तर अर्थात् एक वैश्य है मध्यमें जिसके ऐसे शूद्रके संग जानेमें पक्षिणी अशौच और वैश्यको शूद्रके संग जानेमें एक दिनका आशौच होताहै यह बात विचार लेनी। तैसेही रोनेमें भी पारस्करने यह कहाहै कि बांधवोंसहित मरेहुए मनुष्यका रोदन और शोक आदिको करै उस दिनरात दान और श्राद्ध आदि कर्मको वर्ज दे । तैसेही

१ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च । स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

१ प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुध्यति ॥ त्रिरात्रे तु ततश्चीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

२ मानुषास्थि स्निग्धं स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाशौचम् । अस्निग्धे त्वहोरात्रं शवानुगमने चैकम् ।

३ मृतस्य बांधवैः सार्द्धं कृत्वा तु परिदेवनम् । वर्जयेत्तदहोरात्रं दानं श्राद्धादिकर्म च ।

प्रेतका अलंकार (शृंगार) भी न करै, क्योंकि करनेमें यह प्रायश्चित्त शंखने दिखाया है कि असपिण्ड प्रेतके शृंगार करनेमें पादकृच्छ्रव्रत करै और जो अज्ञानसे किया होय तो उपवास करै और जो शक्ति न होय तो स्नान करै ॥

भावार्थ-ब्राह्मण असपिण्ड द्विजके और शूद्रके संग कदाचित् गमन न करै जो कोई करै तो जलमें स्नान अग्निका स्पर्श और घी खाकर शुद्ध होता है ॥ २६ ॥

महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युतातथा ।
गोब्राह्मणार्थे संग्रामेयस्यचेच्छतिभूमिपः ॥

पद-महीपतीनाम् ६ नऽ- आशौचम् १ हतानाम् ६ विद्युता ३ तथाऽ-गोब्राह्मणार्थे ७ संग्रामे ७ यस्य ६ चऽ-इच्छति क्रि-भूमिपः१॥

योजना-महीपतीनां तथा विद्युता हतानां गोब्राह्मणार्थे हतानां यस्य आशौचाभावं भूमिपः इच्छति तस्य च आशाचं न कार्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि मही शब्द संपूर्ण भूगोलका वाची है तथापि उसका एक देशरूप मण्डल लेते हैं, क्योंकि संपूर्ण पृथ्वीका एक पति नहीं होसक्ता और एक पतिकोही मानो तो महीपतीनां यह बहुवचन असंगत होगा इससे इस बहुवचनके अनुरोधसे मण्डलही लेतेहैं । उसके पालन करनेमें नियुक्त और जिनका अभिषेक हुआ है ऐसे क्षत्रिय आदिको आशौच नहीं अर्थात् सपिण्डके मरनेमें उनको आशौच नहीं करना । और जो बिजलीसे वा गौ ब्राह्मणके लिये मरे हैं उनका सपिण्डोंको तथा जिन मंत्री पुरोहित आदिको जो राजा इस अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कि इनके बिना मंत्र अग्निहोत्र और अभिचार आदि कर्म अन्यसे नहीं होसक्ता जो आशौचके अभावकी इच्छा करता हो उन मंत्री पुरोहित आदिको आशौच नहीं होता । यहां जो राजाके असाधारण (जिनको और कोई न करसकै) प्रजा पालन स्वकर्म है वह जिस दान, मान, सत्कार और व्यवहारका दर्शन आदि कर्मके बिना न होसके उसी कर्मके करनेमें राजाओंको आशौचका अभाव है, कुछ पंचमहायज्ञ आदिके विषय नहीं । सोई मनु (अ० ५ श्लो०९४) ने कहाहै कि राज्यपदके विषय वर्तमान राजाको सद्यः शौच होता है, इस आशौचाभावमें अन्नदान शान्ति होम आदिसे जो प्रजाकी रक्षाके लिये राज्यासन पर बैठना वोही कारण है । गौतमने भी कहा है कि राजाओंको कार्यका नाश न हो इस लिये आशौच नहीं होता । राजाके भृत्योंको भी आशौच नहीं होता । सोई प्रचेताने कहा है कि, कारु (सूपकार आदि), चित्रके बनानेवाले, वस्त्रोंके धोनेवाले, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, राजा और राजाके भृत्य इनको सद्यः शौच होता है । यह आशौचाभाव किस कर्मके विषय हैं इस अपेक्षामें यही बात बुद्धिमें आती है कि कर्म है निमित्त जिनमें ऐसे शिल्पी आदि शब्दसे जो आशौचाभाव दिखाया है वह उसी असाधारण कर्मके विषयमें है, जिसको निमित्त मानकर जो नाम है जैसे शिल्प कर्मके करनेसे शिल्पी, इससे उसी कर्मके विषय समझना । इसीसे विष्णुने राजकर्ममें राजा-

---

१ कृच्छ्रपादो सपिण्डस्य प्रेतालंकरणे कृते । अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते ॥

१ राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते । प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥

२ राज्ञां च कार्यविघातार्थम् ।

३ कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥

४ न राज्ञां राजकर्माणि न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे न कारूणां कारुकर्मणि ।

ओंको, व्रतके विषय व्रतियोंको, यज्ञके विषय याज्ञिकोंको, कारुकर्ममें कारुको आशौच नहीं होता। ऐसा कहनेसे जिनका जो नियत कर्म है उसीमें आशौचका अभाव दिखाया है। शातातपकी स्मृतिमेंभी कहा है कि मूल्य कर्म (नोकरीके) करनेवाले शूद्र, दासी, दास ये स्नान, शरीरसंस्कार और गृहका कर्म (लेपन आदि) इनके करनेमें दूषित नहीं होते। यह दास आदिकी शुद्धि जिसका परिहार न होसके अर्थात् जिसको अन्य कोई न करसके ऐसे प्राप्त स्पर्शके विषयमें है यह बात समझनी। इसीसे स्मृत्यंतरमें लिखा है कि गर्भदास (जो अपनी दासीमें पैदा हो) सद्यःस्पर्श करने योग्य और भक्तदास (जो अपना भोजन खाता हो) तीन दिनमें शुद्धिके योग्य होता है। तैसेही यह वचन है कि जो चिकित्सक (वैद्य) जिसे कर्मको करता है उसको अन्य नहीं कर सक्ता इससे चिकित्सक नित्यस्पर्श करनेके लिये शुद्ध होता है॥

भावार्थ–महीपाति, विजलीसे वा गौ ब्राह्मणके लिये जो मरेहैं उनके सपिंडोंको और जिसके अशौचाभावकी राजा इच्छा करै उन मंत्री आदिकोंको आशौच नहीं होता॥ २७॥

ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्मकुर्वताम्। सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदांतथा॥२८॥

पद–ऋत्विजाम् ६ दीक्षितानाम् ६ चऽ–यज्ञियम् २ कर्म २ कुर्वताम् ६ सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदाम् ६ तथाऽ–॥

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे। आपद्यपिहि कष्टायांसद्यःशौचं विधीयते२९॥

पद–दाने ७ विवाहे ७ यज्ञे ७ चऽ–संग्रामे ७ देशविप्लवे ७ आपदि ७ अपिऽ–हिऽ–कष्टायां ७ सद्यः १ शौचं १ विधीयते क्रि–॥

योजना–ऋत्विजां, दीक्षितानां, च पुनः यज्ञियं कर्म कुर्वतां, सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां, च पुनः दाने, विवाहे, यज्ञे, संग्रामे, देशविप्लवे (एषां विषये) हि (निश्चयेन) कष्टायां आपदि सत्यां अपि सद्यः शौचं विधीयते॥

तात्पर्यार्थ–जिनका वरण होगया हो ऐसे यज्ञमें होम करनेवाले ऋत्विज, जिनको यज्ञमें दीक्षा दी हो ऐसे दीक्षित, यज्ञके कर्म करनेवाले इनको सद्यः शौच होता है। यद्यपि यहां वैतानोपासनाः कार्याः इस वचनसे दीक्षितको अधिकार सिद्ध था तथापि पुनः दीक्षित शब्दका ग्रहण यज्ञ करानेवालोंमें स्वयंकर्तृत्वका विधान (खुद करना) और सद्यःस्नानकी अविधि (अभाव) के लिये है। सत्रि शब्दसे अन्नसत्रमें जो प्रवृत्त उनका सन्ततानुष्ठान (निरंतर करना) के समान ग्रहण है। मुख्य सत्रियोंको तो आशौचका अभाव दीक्षितके ग्रहणसे ही सिद्ध है। यहां व्रती शब्दसे कृच्छ्र चांद्रायण स्नातकव्रत और प्रायश्चित्त तथा ब्रह्मचर्य व्रत इनके करनेवाले और श्राद्धके कर्त्ता और भोक्ता लिये जाते हैं। सोई स्मृत्यंतरमें लिखा है कि नित्य अन्नका देनेवाला, कृच्छ्र-चांद्रायणको करनेवाला, कृच्छ्र होम आदिमें प्रवृत्त, भोजनमें प्रवृत्त ब्राह्मण आदि, ब्रह्मचर्य

---

१ मूल्यकर्मकराः शूद्रा दासी दासास्तथैव च। स्नाने शरीरसंस्कारे गृहकर्मण्यदूषिताः॥

२ चिकित्सको यत्कुरुते तदन्येन न शक्यते। तस्माच्चिकित्सकस्पर्शे शुद्धो भवति नित्यशः॥

१ नित्यमन्नप्रदस्यापि कृच्छ्रचांद्रायणादिषु। निवृत्ते कृच्छ्रहोमादौ ब्राह्मणादिषु भोजने॥ गृहीतनियमस्यापि तस्मादन्यस्य कस्यचित्। निमंत्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि॥ निमंत्रितस्य विप्रस्य स्वाध्यायाद्विरतस्य च। गेहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्॥ प्रायश्चित्तप्रवृत्तानां दातृब्रह्मविदां तथा॥

आदि नियमवाला, निमंत्रित ब्राह्मण, श्राद्ध कर्मका आरंभ जिसने किया हो, और उसमें निमंत्रित ब्राह्मण, वेदके अध्ययनसे जो निवृत्त हुआ हो, जिसके घर पितर बैठे हों, प्रायश्चित्तके करनेवाले, और दाता और श्रोत्रिय इनको कदाचित् आशौच नहीं होता। सत्री और व्रतियोंकी शुद्धि सत्र और व्रतकेही विषयमें है कुछ अन्य समस्त कर्म वा व्यवहारके विषयमें नहीं। सोई विष्णुने कहा है कि व्रतियोंको व्रतमें और सत्रियोंको सत्रमें आशौच नहीं होता। ब्रह्मचारी, उपकुर्वाणक और नैष्ठिक दोनों प्रकारके समझने। और दाता शब्दसे उसीका ग्रहण है कि जो नित्य दाताही हो प्रतिग्रह न लेता हो ऐसा, वैखानस (वानप्रस्थ), ब्रह्म (वेद) को जाननेवाला, यति (संन्यासी) इन तीनों आश्रमियोंकी सब कर्ममें शुद्धि है, विशेष कर्मके विषय कोई प्रमाण नहीं। पूर्व जिसका संकल्प करलिया हो ऐसे द्रव्यके देनेमें आशौच नहीं होता। क्योंकि क्रतुकी स्मृति है कि पूर्व-संकल्प किया द्रव्य दिया जाय तो दोष नहीं। स्मृत्यंतरमें तो यहां विशेष कहा है कि विवाह, उत्सव और वृषोत्सर्ग आदि यज्ञके विषे जो अन्तरा (भोजनके) मध्य जो मृत्यु वा सूतक होजाय तो उस शेष (ब्राह्मणोच्छिष्ट) अन्नको अन्य मनुष्योंसे दिवावे। दाता (स्वामी) और भोजन करनेवालोंका स्पर्श न करै। विवाह और यज्ञ शब्दसे जिसकी पूर्व भोजन आदि सामग्री इकट्ठी कर ली हो वह विवाह और यज्ञ लेना। सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि जिसकी सामग्री इकट्ठी करली हो ऐसा यज्ञ और विवाह श्राद्धकर्म इनमें सद्यःशौच होता है। विवाहका ग्रहण पूर्व प्रारंभ किये, चूडा, यज्ञोपवीत आदि संस्कारकाभी उपलक्षण है। और यज्ञ ग्रहण, पूर्व प्रारंभ किये, कि देव प्रतिष्ठा, आराम (बाग) आदिका उत्सव इनका उपलक्षण है। क्योंकि यह विष्णुकी स्मृति है कि, देवप्रतिष्ठा, उत्सर्ग, विवाह, देशका उपद्रव, अत्यन्तकष्ट, आपत्तिमें आशौच नहीं होता। संग्रामके विषय आशौच नहीं होता अर्थात् संग्रामके विषय राजाको सन्नद्ध करै इस आश्वलायन आदिकी कही सन्नहन (तैयारी) विधिके विषय प्रस्थानके समय जो शान्तिहोम आदि किये जाते हैं उनमें सद्यःशुद्धि होती है। देशमें विस्फोट (शीतला) आदि उपसर्ग वा राजाके भयसे जो उपद्रव हो उसकी शान्तिके लिये जो शान्तिकर्म किये जाते हैं उनमेंभी शुद्धि सद्यः होती है। विप्लवके अभावमेंभी कहीं देश विशेषसे पैठीनसीने कहाहै कि विवाह यज्ञ किला यात्रा और तीर्थ इनमें सूतक नहीं होता इनमें यज्ञ आदि कर्मको करै। व्याधि आदिके जोरसे जो मरनेकी अवस्था प्राप्त होगई हो इसमें, जो पापकी शान्तिके लिये दान किया जाय, धन आदिसे संकुचित वृत्ति (कंजूस) होनेसे जो माता पिता पिता आदि कुटुम्ब क्षुधासे अत्यंत व्याकुल होजाय तो उनके उदरपोषणके निमित्त जो प्रतिग्रह लियाजाय इनमें सद्यःशौच होता है। यह सद्यःशौच जिसकी सद्यःशौचके

१ न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे।

२ पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति।

३ विवाहोत्सवयज्ञादिष्वन्तरा मृतसूतके। शेषमन्नं परैर्देयं दातॄन् भोक्तॄंश्च न स्पृशेत्॥

१ यज्ञे संभृतसंभारे विवाहे श्राद्धकर्मणि।

२ न देवप्रतिष्ठोत्सर्गविवाहेषु न देशविभ्रमे नापद्यपि च कष्टायामाशौचम्।

३ विवाहदुर्गयज्ञेषु यात्रायां तीर्थकर्मणि। न तत्र सूतकं तद्वत्कर्म यज्ञादि कारयेत्॥

विना क्षुधा आदि पीडाकी शान्ति नहीं हो ऐसे अश्वस्तनिक (जो एक दिनके निर्वाह मात्र अन्नसंग्रह करै) के विषयमें है । जिसके एक दिनको उदर पूर्णके लिये संचित धन हो उसको एक दिनका, तीन दिनके लिये होय तो तीन दिनका, चार दिनके लिये हो उसको चार दिनका, और कुसूलधान्यको दश दिनका आशौच होता है । इस प्रकार जिसके. जितने काल क्षुधा आदि पीडाका अभाव रहै तिसको उतने कालतक आशौच रहता है । क्योंकि आशौचके संकोचमें आपत्ति उपाधि (कारण) है । इसीसे मनुने (अ० ४ श्लो० ७) कुसूलधान्यक और कुंभीधान्यक, त्र्यैहिक और अश्वस्तनिक गृहस्थी हो इस श्लोकसे गृहस्थीको चार प्रकारका कहकर इसी अभिप्रायसे सपिण्डोंको दश दिनका आशौच अथवा अस्थिसंचयतक वा तीन दिनका वा एक दिनका आशौच होता है यह चार कल्प आशौचके प्रतिपादन करे हैं । और जो किसी स्मृतिमें समानोदकोंको यह तीन प्रकारका जो संकुचित आशौचका कल्प दिखाया है कि पक्षिणी (दो दिन एक रात) एकदिन, वा सद्यःशौच समानोदकोंको है वहभी इसी वृत्तिके संकोचसे समझना । यह आशौचका संकोच (कम करना) जिस प्रतिग्रह आदिके विना आर्ति हो उसके विषय है अन्य कर्ममें नहीं कदाचित् कोई शंका करै कि अभ्याधान और वेद करके युक्त ब्राह्मण एक दिनमें और केवल वेदका पढनेवाला तीन दिनमें और इन दोनोंसे रहित दशदिनमें शुद्ध होता है इत्यादि अन्यस्मृतियोंके देखनेसे वेदाध्ययन अभ्याधान आदिके करनेवाले ब्राह्मणकी एक दिन आदिसे शुद्धि कम सामान्यमें प्रतीत होती है । इस कर्म सामान्यमें शुद्धि तुम इष्ट क्यों नहीं मानते उसका यह समाधान करते हैं कि, शाव आशौच सपिंडोंको दश दिन होता है इस वाक्यसे जो दश दिनका आशौच सामान्यसे प्राप्त था उसको बाध करता हुआ ब्राह्मण एक दिनमें शुद्ध होता है यह वाक्य विशेष आशौचका विधायक है । बाधक होनेमें अनुपपत्ति अर्थात् समस्त अपने विषयमें सामान्य वाक्यकी प्रवृत्ति होनेसे अपने विषयमें चरितार्थ न होना कारण है इससे जितने विषयमें बाध्यको विना बाधे अनुपपत्तिका क्षय न हो उतने विषयमें बाध्य बाधा जाता है । इससे अब यह अपेक्षा हुई कि यह (एकाहाद्ब्राह्मणः शुध्येत्) वाक्य कितने विषयमें बाध्यको बाधकर चरितार्थ होगा तो इसी वाक्यमें अग्नि और वेदसे युक्त ब्राह्मण दशादिनमें शुद्ध होता है इस विशेषके देखनेसे अग्निहोत्र कर्म और स्वाध्याय इन दोनों विषयोंमेंही बाध्यको बाधकर इसकी चरितार्थताकी अवस्थिति प्रतीत होती है । इससे यह वाक्य अग्निहोत्र और स्वाध्याय इन विशेष कर्मोंमेंही एक दिनके आशौचका विधायक है, अन्य दान आदि कर्मके विषयमें नहीं । क्योंकि अपने विषयमें चरितार्थ हुए पीछे अचरितार्थतारूप जो अनुपपत्ति थी उसका क्षय होगया तो फिर अन्य विषयमें बाध्यकी प्रवृत्तिको यह वचन नहीं हटासक्ता, इस बातके सिद्ध हुए पीछे अग्निवेद समन्वित इस पदमें अग्नि और वेद पदका एक दिन आशौचरूप जो कार्य है उसमें अन्वय है अर्थात् अग्नि आदि कर्ममें एक दिनका आशौच है यह अर्थ सिद्ध हुआ, अन्यथा जिसने अग्निसाध्य कर्म कियाहो उसकी एक दिनमें शुद्धि होती है इस पुरुषविशेषका उप-

---

१ कुसूलधान्यको वास्यात्कुंभीधान्यक एव वा । त्र्यहैहिकोवापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । अर्वाक् संचयनादस्थ्नांत्र्यहमेकाहमेव वा ॥

लक्षण अग्नि और वेद होजाता। जो कि विरोध आदिके होनेसे त्याज्य है। जब कि अग्नि और वेदपद कार्यान्वयी हुए तो इस वाक्यकी इन मनुके वाक्योंसे एकवाक्यता सिद्ध हुई कि अग्नियोंमें होम आदि अनुष्ठानको करै और वेदमें कही हुई वैतान अग्निकी उपासना करै, तथा ब्राह्मणको स्वाध्यायकी निवृत्तिके अर्थ सद्यःशौच होता है। और इन दश दिन पर्यंत भोजन आदिके प्रतिषेध करते हुए यम आदिके वचनोंके संग विरोधका परिहार भी सिद्ध हुआ कि दोनों आशौचोंमें दश दिनतक कुलके अन्नको न खाय। इससे यह आशौचके संकोचका विधान किसी कर्म विशेषमें है, सब व्यवहारोंके विषयमें नहीं। अब हम इस प्रपंचको समाप्त करते हैं। यह सद्यःशौचका विधान बहुत वेदके पढनेवालेकी वेदके त्यागनेसे उत्पन्न हुई पीडाके विषयमें समझना अन्यको तो यह प्रतिषेधही है कि दान प्रतिग्रह होम और स्वाध्याय निवृत्त हो जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण आदिके मध्यमें जिसको जितने कालका आशौच कहा है वह उस कालके अनंतर इन स्नान आदिसे शुद्ध होता है केवल कालकेही व्यतीत होनेसे नहीं। जैसे कि मनु (अ० ५ श्लो० ९९) ने कहा है[2] कि प्रेतक्रियाके किये पीछे स्नान करके हाथसे जलका स्पर्श करके शुद्ध होता है। क्षत्रिय अपने वाहन (घोडा आदि) और अस्त्रोंको छूकर। वैश्य रथकी रस्सी वा प्रतोद (कोडा) को छूकर और शूद्र यष्टिकाको छूकर शुद्ध होता है। यह स्पृष्ट्वा इस पदसे स्पर्शही लेते हैं, स्नान और आचमन नहीं। क्योंकि इसी पदका वाहन आदिमें अन्वय होता है अथवा क्रियाको कृतक्रिय अर्थात् आशौचकालतक उदक आदि कर्मको करके पीछे ब्राह्मण आदि जल आदिका स्पर्श करके शुद्ध होता है। यह स्पर्श आशौच कालके अनंतर जो स्नान होता है उसका प्रतिनिधि समझना ॥

भावार्थ-ऋत्विज, दीक्षित, यज्ञके कर्मके करनेवाले, सत्री, व्रती, ब्रह्मचारी, दाता, श्रोत्रिय इनको और दान, विवाह, यज्ञ, संग्राम, देशोपद्रव, और अत्यंतकष्ट इनमें सद्यःशौच होता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

उदक्याशुचिभिः स्नायात्संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत्। अब्लिंगानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसासकृत् ॥ ३० ॥

पद-उदक्याशुचिभिः ३ स्नायात् क्रि-संस्पृष्टः १ तैः ३ उपस्पृशेत् क्रि-अब्लिंगानि २ जपेत् क्रि-चऽ-एवऽ-गायत्रीम् २ मनसा ३ सकृत्ऽ- ॥

योजना-उदक्याशुचिभिः संस्पृष्टः सन् स्नायात् तैः (संस्पृष्टैः) संस्पृष्टः सन् उपस्पृशेत् च पुनः अब्लिंगानि मंत्राणि तथा मनसा गायत्रीं सकृत् जपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-उदक्या (रजस्वला) और शव (मुर्दा), चाण्डाल (भंगी), पतित (कलंकी आदि), सूतकी तथा शावाशौची (मृतकसूतकी) इनको छूकर स्नान करै और इन रजस्वला आदिके संग भिटे हुएको छूकर आचमन करै, आचमन किये पीछे आपोहिष्ठामयोभुवः इत्यादि[1] तीन ऋचाओंको जपै, तीनके बोध करनेसे बहुवचन चरितार्थ हो लिया इससे तीनऋचाओंका ग्रहण है। तथा मनसे एकवार गायत्रीको जपै। यहां कोई यह शंका करै कि उदक्या संस्पृष्टः स्नायात् यहां संस्पृष्टः जो यह एक

---

१ दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते।

२ विप्रःशुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्। वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥

१ अपोहिष्ठामयो भुवः। तानऊर्जे दधातनः। महेरणाय चक्षसे।

वचनके बोधन किया है उसका (तैः) इस बहु वचनसे परामर्श कैसा किया, तो इसका यह उत्तर है कि जो रजस्वला आदिसे स्पर्श किये गये हैं उनसे भिन्न जो स्नानके योग्य हैं उन सबोंके साथ स्पर्श करनेमेंभी आचमन करना इससे यह (तैः) बहुवचनका निर्देश है इससे विरोध नहीं, वे स्नानके योग्य अन्य स्मृतियोंसे समझने । पराशरने जैसे कहा है कि दुष्ट स्वप्नके देखनेमें, मैथुन, वमन, विरेचन और क्षौर कर्मके करानेमें तथा चिति (चिता यूप) (प्रेतकास्तंभ) और श्मशान इनमें स्थित मनुष्यके साथ स्पर्श करनेमें स्नान करै सोई मनु (अ० ५ श्लो० १४४) ने कहा है कि वमन और रेचन जिसने किया हो वह मनुष्य स्नान करके घीको खाय और अन्नको खाकर आचमन करै, तथा जिसने मैथुन किया हो वह स्नान करै, मैथुन करनेवालेको स्नान ऋतुकालके विषयमें है, क्योंकि यह बृहस्पतिकी स्मृति है कि ऋतुसे भिन्न समयमें गमन करनेवालेको मूत्र विष्ठाके समान शौच करना । अनृतु (ऋतुसे भिन्न) मेंभी कालविशेषसे स्नान स्मृत्यन्तरमें कहाहै कि अष्टमी चतुर्दशी दिन और पर्व इनमें मैथुन करके सचैल स्नान करै,वारुणी ऋचाओंसे मार्जन करै, सोई यमने कहाहै कि अजीर्ण, अभ्युदय, वमन इनमें, सूर्यके अस्त होनेके समय खोटे स्वप्नके देखनेमें, दुर्जनके साथ स्पर्श करनेमें स्नानमात्रको करै, तिसी प्रकार बृहस्पतिनेभी कहा है कि मैथुन और कट (चिता) के धुएके लगनेमें सद्यः स्नान करै, सो यह स्नानमात्रका विधान जो वस्त्र न पहिनेहो ऐसे मनुष्यके साथ स्पर्शके विषयमें है, और सचैल चितिस्थ आदिके साथ स्पर्श होजानेमें तो सचैलही स्नानका विधान है । सोई च्यवनने कहा है कि, श्वान, चाण्डाल, चिताका धूम्र, ब्राह्मण आदिके दानके लिये जो द्रव्य है उससे जीवे, ग्रामयाजी, सोमविक्रयी, यूपचिति (प्रेतके स्तंभका चबूतरा),चिताका काष्ठ, मदिरा,मदिराका पात्र, स्नेहयुक्त मनुष्यकी अस्थि, मुर्देसे भिटाहुआ, रजस्वला, महापातकी (कलंकी आदि) और शव (मुर्दा) इनको छूकर वस्त्रोंसहित जलमें गोता लगावै, फिर निकलकर अग्निका स्पर्श करके आठ वार गायत्री जपै, घीको खाकर फिर स्नानको करकर तीन वार आचमन करै, यह प्रायश्चित्त जानकर स्पर्शके विषयमें है । अज्ञानसे तो स्नान मात्रसे शुद्धि हो जातीहै । क्योंकि बृहस्पतिकी स्मृतिहै कि शवसे स्पर्श किया हुआ दिवाकीर्ति (दिनका आशौच) चितियूप और रजस्वला इनको विना जाने छूकर स्नानसे ब्राह्मण शुद्ध होता है, इसी प्रकार वक्ष्यमाण वचनोंमेंभी विषयोंकी समानता

---

१ दुःस्वप्ने मैथुने वान्ते विरिक्ते क्षुरकर्मणि। चितियूपश्मशानस्थस्पर्शने स्नानमाचरेत् ॥

२ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् । आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥

३ अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ।

४ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् । कृत्वा सचैलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत् ॥

५ अजीर्णेऽभ्युदिते वान्ते तथाप्यस्तमिते रवौ। दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥

१ मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते ।

२ श्वानं स्वपाकं प्रेतधूम्रं देवद्रव्योपजीविनं ग्रामयाजिनं सोमविक्रयिणं यूपचितिं चितिकाष्ठं मद्यं मद्यभाण्डं सस्नेहं मानुषास्थि शवस्पृष्टं रजस्वलां महापातकिनं शवं स्पृष्ट्वा सचैलमंभोवगाह्योत्तीर्याग्निमुपस्पृश्य गायत्रीमष्टवारं जपेत् घृतं प्राश्य पुनः स्नात्वा त्रिराचामेत् ।

३ शवस्पृष्टं दिवाकीर्तिं चितिं यूपं रजस्वलाम् । स्पृष्ट्वा त्वकामतो विप्रः स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥

समझनी, सोई कश्यपने कहा है कि उदय और सूर्यास्तके समय वीर्यस्खलन करके अक्षिस्पंदन (आंख फेरना), कर्णाक्रोशन (कानमें शब्द करना), चित्यारोहण (चितापर चढ़ना) और यूप (प्रेतका स्तंभ) के स्पर्श करनेमें सचैल स्नानको करके पुनर्मामं इत्यादि ऋचाको जपै, फिर महाव्याहृति (ओंभूः स्वाहा इत्यादि) योंसे सात घीकी आहुतियोंसे होम करै। सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि देवलकको छूकर वस्त्रोंसहित जलमें कूदे। देवलक वह होता है जो तीन वर्ष धनके निमित्त देवताकी पूजामें तत्पर रहे, वह सब देवकर्म और पितृकर्ममें निंदित है तैसेही ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि शैव पाशुपत लोकायतिक तथा नास्तिक विरुद्धकर्मके करनेवाले द्विज और शूद्र इनको छूकर सचैल जलमें प्रवेश करै। शूद्रके स्पर्शमें निषेध विधायक यहभी प्रमाण है कि शूद्रके स्पर्शसे दूषित हुई शवरूपी आहुति स्वर्गदायक नहीं होती तिसी प्रकार अंगिरानेभी कहाहै कि, जो ब्राह्मण चाण्डालकी छायामें बैठे तो स्नान और घृतप्राशनसे शुद्ध होता है। व्याघ्रपादनेभी कहा है कि चाण्डाल और पतित इनको दूरसेही वर्जे दे, और गौके चवरके पवन लगनेसे पहिले वस्त्रोंसहित जलमें प्रवेश करै, अर्थात् गौके वालोंका स्पर्श होजाय तो उनसेही शुद्धि हो सकती है, यहभी अत्यंत संकटमें समझना अन्यत्र तो बृहस्पतिने कहाहै कि चांडाल, सूतिका, उदक्या, पतित इनके स्पर्शमें एक, दो, तीन, चार, युगांतक क्रमसे नरक होता है, तिसी प्रकार पैठीनसिनेभी कहा है कि काक और उल्लूके स्पर्श करनेमें सचैल स्नान और जलके विना मूत्र और पुरीषके करनेमें सचैल स्नान और महाव्याहृतियोंसे होम करै। विना जलके मूत्र आदि करना यह वचन जो मनुष्य चिर (बहुत) कालतक मूत्र वा दिशा जाकर आशौच न करै उसके विषयमें है। अंगिरानेभी कहा है कि उल्लू, काक, बिलाव, गधा, ऊंट, कुत्ता और सूकर और अमेध्य द्रव्यको छूकर सचैल जलके वीचमें प्रवेश करै। मार्जारके स्पर्शका स्नान उच्छिष्टके समय वा अनुष्ठानके समयके विषयमें समझना, क्योंकि वह घरमें बेरोक फिरता रहता है। अन्यसमयके विषय तो इस वचनसे स्नानका अभावही है कि मार्जार, कडछी और पवन ये सदा शुद्ध रहते हैं। कुत्ताके स्पर्शमें नाभि (टूंडी) से ऊपर यदि स्पर्श होय तो स्नान समझना, यदि नाभिसे नीचे स्पर्श करले तो जल छिडकनेसे शुद्ध होजाता है। क्योंकि उसीने कहा है कि नाभिसे ऊपर यदि हाथोंसे अतिरिक्त

---

१ उदयास्तमययोः स्कंदयित्वा अक्षिस्पंदने कर्णाक्रोशने चित्यारोहणे यूपस्पर्शने च सचैलं स्नानं पुनर्मामं इति जपेत् महाव्याहृतिभिः सप्ताज्याहुतीर्जुहुयात्। स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्। देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थे वत्सरत्रयम् ॥ असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ॥

२ शैवान् पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान्। विकर्मस्थान् द्विजाञ्छूद्रान् सवासा जलमाविशेत् ॥

३ अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंपर्कदूषिता।

४ यस्तु छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणो ह्यधिरोहति। तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

५ चाण्डालं पतितं चैव दूरतः परिवर्जयेत्। गोवालव्यजनादर्वाक् सवासा जलमाविशेत् ॥

१ युगं च द्वियुगं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम्। चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ॥

२ काकोलूकस्पर्शने सचैलं स्नानमनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलं स्नानं महाव्याहृतिहोमश्च।

३ भासवायसमार्जारखरोष्ट्रं च श्वशूकरान्। अमेध्यानि च संस्पृश्य सचैलं जलमाविशेत् ॥

४ मार्जारश्चैव दर्वी च मारुतश्च सदा शुचिः।

अंगको कुत्ता छूले तो स्नान करनेसे और नीचे छूवे तो उस अंगको जलसे धोकर और आचमन करै तो शुद्ध होता है। तैसेही पक्षीके स्पर्शके विषय विशेष जातूकर्ण्यने कहा है कि नाभिसे ऊपर हाथोंसे व्यतिरिक्त अंगको यदि पक्षी छूवे तो स्नान, अन्य शेष अंगके छूनेमें धोनेसे शुद्धि होती है। अमेध्यके संग स्पर्श होनेमेंभी विशेष विष्णुने दिखाया है कि नाभिसे नीचे और कोनीतक अंग जिस मनुष्यके शरीरका विष्ठा आदि मलसे अथवा मदिरासे लिप्त हो जाय तो उस अंगको मिट्टी और जलसे धोकर आचमन करै तो शुद्ध होता है। यदि अन्य अंग लिप्त होय तो मिट्टी जलसे धोकर स्नान करै। यदि उस मल आदिसे चक्षु आदि इंद्रिय लिप्त होजाय तो उपवास करके स्नान करनेसे और जो होठ लिप्त होजांय तो उपवासपूर्वक पंचगव्यसे शुद्धि होती है। यह प्रायश्चित्त दूसरे पुरुषके मलके स्पर्शके विषय समझना, अपने मलका स्पर्श यदि नाभिसे ऊपरभी हो जाय तोभी प्रक्षालन मात्रसेही शुद्धि होती है। सोई देवलने कहाहै कि मनुष्यकी अस्थि (हड्डी) वसा, विष्ठा, ऋतुकालका वीर्य, मूत्र, वीर्य, मज्जा और रुधिर ये अन्य मनुष्यके होंय तो इनके स्पर्श करनेमें स्नान करै और जो लेप होजाय तो उसे धोवै फिर आचमन करके शुद्ध होताहै। और यदि अपने होयँ तो मार्जन करनेसे शुद्धि होजाती है। तैसेही शंखने कहा है कि रथ्या (कूंचा) की कीचके जलसे वा ष्ठीवन (थूक) से जिस मनुष्यका नाभिसे ऊपरका अंग छूजाय तो तत्काल स्नानसे शुद्धि होती है। यमनेभी यहां विशेष कहा है कि वर्षाऋतुमें जिसमें कीच हो और ग्रामके जलका प्रवाह जिसमें पडता हो ऐसे तलावमें प्रवेश करके मिट्टीसे तीन वार जंघाओंको और छः दफे मिट्टीसे पाओंको धोवै। जो कीच पवनसे सूख गई हो उसमें दोष नहीं होता। क्योंकि पूर्व कह आये हैं कि रथ्याकी कीच और जल इनको जो भंगी, कुत्ता, वा काक छूलें जो ये पकी ईटोंसे चुनेहों तो पवनसेही शुद्ध होजाते हैं। अस्थिके स्पर्शमें मनु (अ० ५ श्लो० ८७) ने विशेष कहा है कि स्नेहसहित मनुष्यकी हड्डीको छूकर ब्राह्मण स्नानसे और स्नेह रहितके छूनेमें गौका स्पर्श और सूर्यके दर्शनसे शुद्ध होता है। यह वचन द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) की हड्डीके स्पर्शके विषयमें है। अन्यकी अस्थिके विषय तो यह वसिष्ठने कहा है कि, मनुष्यकी स्निग्ध हड्डीके स्पर्शमें

---

१ ऊर्ध्वं नाभेः करौ मुक्त्वा यदंगं संस्पृशेत् खगः। स्नानं तत्र प्रकुर्वीत शेषं प्रक्षाल्य शुद्ध्यति॥

२ नाभेरधस्तात्प्रबाहुषु च कायिकैर्मलैः सुराभिर्मद्यैर्वोपहतो मृत्तोयैस्तदंगं प्रक्षाल्याचान्तः शुद्ध्येत्। अन्यत्रापहतो मृत्तोयैस्तदंगं प्रक्षाल्य स्नानैरिंद्रियेषूपहतस्तूपोष्य स्नात्वा पंचगव्येन दशनच्छदोपहतश्च।

३ मानुषास्थिवसां विष्ठामार्तवं मूत्ररेतसी। मज्जानं शोणितं वापि परस्य यदि संस्पृशेत्॥ स्नात्वा प्रमृज्य लेपादीनाचम्य स शुचिर्भवेत्। तान्येव स्वानि संस्पृश्य पूतः स्यात्परिमार्जनात्॥

---

१ रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येन वा तथा। नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति॥

२ सकर्दमं तु वर्षासु प्रविश्य ग्रामसंकरम्। जंघयोर्मृत्तिकास्तिस्रः पादयोर्द्विगुणास्ततः।

३ रथ्याकर्दमतोयानि स्पृष्टान्यन्त्यश्ववायसैः। मारुतेनैव शुद्ध्यंति पक्वेष्टकचितानि च॥

४ नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति। आचम्यैव तु निःस्नेहं गां स्पृष्ट्वा वीक्ष्य वा रविम्॥

५ मानुषास्थिस्निग्धे स्पृष्ट्वा त्रिरात्रमाशौचमस्निग्धे त्वहोरात्रम्।

तीन रात्र और अस्निग्धके स्पर्शमें अहोरात्र आशौच होता है। मनुष्यसे भिन्नकी हड्डीके स्पर्शमें तो विष्णुने कहा है कि जो भक्ष्य नहीं है ऐसे पांच नखवाले मरे जीवको वा उसकी स्नेहसहित हड्डीको छूकर स्नान करै और पहिले वस्त्रोंको धोकर पहरै। इसी प्रकार अन्यभी स्नानार्ह स्मृत्यन्तरसे समझने इस प्रकार स्नानोंके बहुत होनेसे उनके अभिप्रायसे जो (तैः) यह वचन श्लोकमें लिखा है उसमें विरोध नहीं है। 'उदक्याशुचिभिः स्नायात्' यह वचन चाण्डाल आदि अचेतनव्यवधान (शवका साक्षात् स्पर्श न हो) के स्पर्शमें समझना। चेतन व्यवधानमें तो मनु (अ० ५ श्लो०८५) ने यह कहा है कि दिवाकीर्त्ति, रजस्वला, पतित, मुर्दा इनको वा उनके छूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होता है। तृतीय (चाण्डालसे भिडेहुए मनुष्यका जो स्पर्श करै उसको छूनेवाला) की आचमन मात्रसे ही शुद्धि होती है, क्योंकि संवर्तका वचन है कि पतित आदिसे भिडेहुएकाही जो स्पर्श करै उसकोही स्नान फिर आचमन, और द्रव्योंका प्रोक्षण (छिडकना) इनकी विधि है. यह अज्ञानपूर्वक स्पर्शके विषयमें है और जो जानके छूवे तो स्नानही करना। जैसे कि गौतमने कहा है कि पतित, चांडाल, सूतिका, रजस्वला, शव इनके स्पर्श करनेवाला, और इनसे स्पृष्टका स्पर्श करनेवाला मनुष्य सचैल जलमें स्नानसे शुद्ध होता है। और चौथे मनुष्यकी तो आचमनसे शुद्धि है क्योंकि देवलका वचन है कि अशुद्धसे स्पर्श कियेहुए तीसरे मनुष्यका स्पर्श करके मनुष्य जलसे हाथ पाओंको धोकर आचमनसे शुद्ध होता है। अशुद्धके साथ जो रजस्वला आदि स्पर्श करै तो उसमें विशेष देवलने कहा है कि चांडाल, पतित, व्यंग (जिसका अंग बिगड गयाहो), उन्मत्त, शवके लेजानेवाला, सूतिका, जिसके सन्तति हुई हो वह साविका, रजस्वला, ग्रामके कुत्ता, मुर्गा, शूकर इनको छूकर मनुष्य वस्त्रोंसहित शिरतक स्नान करनेसे उसी समय शुद्ध होजाता है। और स्वयं अपि अशुद्ध मनुष्य इन अशुद्धोंका यदि स्पर्श करै तो उपवास वा कृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। यहां कृच्छ्रव्रत श्वपाक आदिके स्पर्शमें है। और कुत्ता आदिसे स्पर्श करै तो उपवासही करना यह व्यवस्था है॥

भावार्थ–रजस्वला और अशुद्ध पतित आदिसे स्पर्श करै तो स्नान और स्पर्श किये हुएको जो छूवे वह आचमन, आपोहिष्ठा इत्यादि ऋचा, और मनसे एकवार गायत्रीका जप करै ॥ ३० ॥

कालोऽग्निःकर्ममृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपोजलम्।
पश्चात्तापोनिराहारःसर्वेऽमीशुद्धिहेतवः ३१॥

पद–कालः १ अग्निः १ कर्म १ मृत् १ वायुः १ मनः १ ज्ञानम् १ तपः १ बलम् १ पश्चात्तापः १ निराहारः १ सर्वे १ अमी १ शुद्धिहेतवः १ ॥

---

१ दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा। शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥

२ तमेव तु स्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते। ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥

३ पतितचाण्डालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्स्पृष्टयुपस्पर्शने सचैलमुदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् ॥

१ उपस्पृश्याशुचिस्पृष्टं तृतीयं वापि मानवः। हस्तौ पादौ च तोयेन प्रक्षाल्याचम्य शुद्ध्यति ॥

२ श्वपाकं पतितं व्यंगमुन्मत्तं शवहारकम्। सूतिकां साविकां नारीं रजसा च परिप्लुताम् ॥ श्वकुक्कुटवराहांश्च ग्रामान् संस्पृश्य मानवः। सचैलः सशिरः स्नात्वा तदानीमेव शुद्ध्यति ॥ अशुद्धान् स्वयमप्येतानशुद्धस्तु यदि स्पृशेत्। विशुद्ध्यत्युपवासेन तथा कृच्छ्रेण वा पुनः ॥

योजना–कालः अग्निः कर्म मृत् वायुः मनः ज्ञानं तपः वलं पश्चात्तापः निराहारः अमी सर्वे शुद्धिहेतवो भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–जैसे ये सब अग्नि आदि अपने विषयमें शुद्धिके कारण हैं तिसी प्रकार दशरात्र आदि आशौचकाल भी शुद्धिका हेतु है। शुद्धिकी कारणता शास्त्रसे जानी जाती है इससे उसीको दिखाते हैं। अग्नि जिस प्रकार शुद्धिका हेतु है वह पुनः पाकान्महीमयं अर्थात् मिट्टीका पात्र फिर पकानेसे शुद्ध होता है इत्यादि पूर्व कह आये कर्म जैसे शुद्धिका हेतु है वह अश्वमेधावभृथस्नानात् अर्थात् अश्वमेधके यज्ञांतस्नानसे शुद्ध होता है इत्यादिसे कहेंगे। मिट्टीको भी शुद्धिमें कारण इत्यादि वचन दिखाय आये कि शुद्धिके लिये भस्म और मिट्टी इनसे मांजकर जलसे धोवे। वायु जैसे शुद्धिका हेतु है वह भी मारुतेनैव शुध्यन्ति अर्थात् पवनसेही शुद्ध होते हैं इत्यादि वचनसे पूर्व कह आये। मन भी वाणीकी शुद्धिमें जिस प्रकार हेतु है वह भी मनसा वा इषिता वाग्वदति इत्यादिसे कह आये। आध्यात्मिक ज्ञान जैसे बुद्धिकी शुद्धिमें आदि कारण है वह क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानात् इत्यादि वचनसे आगे कहेंगे। कृच्छ्र आदि तप जैसे हेतु है वह भी 'प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं समो वा गुरुतल्पगः' इत्यादि वचनसे आगे दिखावेंगे। जैसे जल भी शरीर आदिकी शुद्धिमें हेतु है वह भी वर्ष्मणो जलं इत्यादिसे दिखावेंगे। पश्चात्ताप जैसे शुद्धिका हेतु है वह ख्यापनेनानुतापेन अर्थात् पापके प्रकट करनेसे और पश्चात्तापसे शुद्ध होता है इत्यादिसे कह आये। निराहार जैसे शुद्धिका कारण है वह आगे तीन रात्र उपवास करके जप करै इत्यादिसे कहेंगे ॥

१ सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये।

भावार्थ–काल, अग्नि, कर्म, मिट्टी, पवन, मन, ज्ञान, तप, जल, पश्चात्ताप, निराहार ये सब शुद्धिमें कारण होते हैं ॥ ३१ ॥

अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत्।
शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासो वै द्विजन्मनाम्॥

पद–अकार्यकारिणाम् ६ दानम् १ वेगः १ नद्याः ६ चऽ–शुद्धिकृत् १ शोध्यस्य ६ मृत् १ चऽ–तोयम् १ चऽ–संन्यासः १ वैऽ–द्विजन्मनाम् ६ ॥

तपो वेदविदां क्षांतिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम्।
जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते॥३३॥

पद–तपः १ वेदविदाम् ६ क्षांतिः १ विदुषाम् ६ वर्ष्मणः ६ जलम् १ जपः १ प्रच्छन्नपापानाम् ६ मनसः ६ सत्यम् १ उच्यते क्रि–॥

भूतात्मनस्तपोविद्ये बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनम्।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता॥३४॥

पद–भूतात्मनः ६ तपोविद्ये १ बुद्धेः ६ ज्ञानम् १ विशोधनम् १ क्षेत्रज्ञस्य ६ ईश्वरज्ञानात् ५ विशुद्धिः १ परमा १ मता १ ॥

योजना–अकार्यकारिणां दानं, नद्याः वेगः, च पुनः शोध्यस्य मृत्, तोयं वै इति निश्चयेन द्विजन्मनां संन्यासः शुद्धिकृत्। तथा वेदविदां तपः, विदुषां क्षान्तिः, वर्ष्मणः जलं, प्रच्छन्नपापानां जपः, मनसः सत्यं शुद्धिकृत् उच्यते। भूतात्मनः तपोविद्ये विशोधने स्तः। बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनं भवति। क्षेत्रज्ञस्य (जीवस्य) ईश्वरज्ञानात् परमा विशुद्धिः मता ॥

तात्पर्यार्थ–अकार्यकारी अर्थात् निषिद्धके सेवन करनेवाले मनुष्योंका दानही मुख्य शुद्धिका हेतु है जैसे कि पात्रको पूर्ण धन देकर कहेंगे इत्यादिसे आगे ग्रीष्म आदि ऋतुमें अल्प जलके होनेसे जिसके तीरपर अमेध्य

वस्तुका संसर्ग होगयाहो ऐसी नदीका वेग अर्थात् कूलको तोडनेवाला जो जलका प्रवाह है वह शुद्धिका हेतु है । शोध्य द्रव्यका मिट्टी और जल शुद्धि करनेवाला है जैसे कि यह कहा है अमेध्यसे संसृष्ट द्रव्यकी मिट्टी और जलसे जब उसकी गंध निकलजाय तब शुद्धि होती है । संन्यास द्विजोंके मानसकर्मका शुद्धि करनेवाला है । तप अर्थात् वेदाभ्यास वेदके ज्ञाताओंका शुद्ध करनेवाला है; कृच्छ्र आदि सबकी शुद्धिमें कारण है, केवल वेदके जानने-वालोंकी नहीं । वेदके अर्थके जाननेवालोंकी क्षमा शोधक है । वर्ष्म अर्थात् शरीरका जल शोधक है । जिन्होंने अपने पापको प्रकट नहीं किया है ऐसे प्रच्छन्न पापोंको अघमर्षण आदि सूक्तका जप शुद्धिका साधन है । सत् (श्रेष्ठ) असत् (दुष्ट) कर्मोंका संकल्परूप जो मन है वह असत् संकल्पके करनेसे अशुद्ध होजाता है उसका सत्य अर्थात् सत्य संकल्प-ही शुद्धिका हेतु है । भूत शब्दसे यहां उसके विकार देह इंद्रियोंका संबंध लेते हैं । उस देह और इंद्रियोंसे संबंध करके जो यह आत्मा इस अभिमानसे वर्तता है कि मैं स्थूल हूं, मैं कृश हूं, मैं काणा हूं, मैं बधिर हूं अर्थात् उन स्थूल कृश आदि शरीर और इंद्रियोंके धर्मोंको अपने धर्म मानता है वह भूतात्मा (जीव) तप और विद्या (ज्ञान) से शुद्ध होता है। यहां तपशब्दसे अनेक जन्मोंमें अथवा एक जन्ममें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें आत्माका तो अन्वय (होना) और शरीर आदिका व्यतिरेक (न होना) वह कहते हैं । जैसे तपसे ब्रह्मके जाननेकी इच्छा कर इस पंचकोशसे भिन्न आत्माके बोधक वाक्यमें पूर्वोक्त आत्माका अन्वय व्यतिरेक लेते हैं । विद्याश-ब्दसे त्वंपदार्थका निरूपण है विषय जिसका ऐसे उपनिषद्के वाक्यसे उत्पन्न हुआ जो यह आत्मा न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न ह्रस्व है, न किसीसे संबंध रखता है, इस प्रकारका ज्ञान वह लेते हैं, इन दोनोंसे इस शरीरकी शुद्धि होतीहै। शरीर आदिका व्यतिरेक बुद्धि जो संशयविपर्य-यरूप होनेसे अशुद्ध हुई उसका प्रमाणरूप ज्ञान शुद्धिका कारण है । तप और विद्यासे शुद्ध हुआ त्वं इस पदका अर्थरूप जो क्षेत्रज्ञ है उसकी तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यसे उत्पन्न हुआ समानाकाररूप ईश्वरका ज्ञान (जीवब्रह्मका अभेद ज्ञान) उससे मुक्तिरूप अत्युत्तम आत्मा-की शुद्धि होती है । भूतात्मा आदिकी शुद्धिका अभिधान इस प्रशंसाके लिये किया है कि जैसे यह शुद्धि परमपुरुषार्थ रूप है इसी प्रकार काल-शुद्धि भी अत्यंत युक्त है ॥

भावार्थ-निषिद्धसेवियोंका दान, नदीका वेग शोध्यके मिट्टी और जल,द्विजोंका संन्यास, वेद-विदोंका तप, विद्वानोंकी क्षान्ति, शरीरका जल, प्रच्छन्न पापोंका जप, मनका सत्य, भूतात्माका तप और विद्या, बुद्धिका ज्ञान और क्षेत्रज्ञका ईश्वरज्ञान परमशुद्धिका कारण है३२॥३३॥३४॥

१ अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैः शुद्धिर्गंधापकर्षणात् ।

१ तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व ।

इत्याशौचप्रकरणम् ॥ १ ॥

अथापद्धर्मप्रकरणम् २.

क्षात्रेणकर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदिद्विजः।
निस्तीर्यतामथात्मानंपावयित्वा न्यसेत्पथि।

पद–क्षात्रेण ३ कर्मणा ३ जीवेत् क्रि–विशां ६ वाऽ–अपिऽ–आपदि ७ द्विजः १ निस्तीर्यऽ–ताम् २ अथऽ–आत्मानम् २ पावयित्वाऽ–न्यसेत् क्रि–पथि ७ ॥

योजना–द्विजः आपदि अपि क्षात्रेण वा विशां कर्मणा जीवेत्। अथ तां निस्तीर्य आत्मानं पावयित्वा पथि न्यसेत् ॥

तात्पर्यार्थ–मुख्य आशौचोंके कल्पोंका अनुष्ठान न होसके तो आपत्तिकालमें सद्यः। शौच होता है इत्यादि वचनसे सद्यःशौच आदि कल्पको पूर्व दिखाया अब उसके प्रसंगसे यह कहते हैं कि आपत्तिकालमें प्रतिग्रहोऽधिकोविप्रे याजनाध्यापने तथा इत्यादि वचनसे कहीहुई मुख्यवृत्ति नहोसके तो अन्यवृत्तिसे आजीवन करै।

द्विज अर्थात् विप्र बहुत कुटुम्ब होनेसे अपना वृत्तिसे जो आजीवन करनेको न समर्थ होय तो क्षत्रियसंबंधी जो शस्त्र धारण आदि कर्म हैं उनसे आपत्तिकालमें जीवै, और उस कर्मसेभी जो जीवनेको न समर्थ होय तो वैश्यके वाणिज्य आदि कर्मसे जीवै, परंतु शूद्रकी वृत्तिसे आजीवन न करै। सोई मनु (अ० १० श्लो० ८२) ने कहा है कि यदि दोनों वृत्तियोंसे न जी सके तो कैसे करै इस अपेक्षासे कहा है कि कृषि वा गोरक्षारूपी कर्मको करके वैश्यकी वृत्तिसे जीवे, तिसी प्रकार आपत्तिकालमेंभी हीन वर्ण ब्राह्मणकी वृत्तिको कदाचित् स्वीकार न करै,किंतु ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्ति क्षात्रिय वैश्य वृत्ति और वैश्य शूद्रवृत्तिको इन अपने वर्णसे अनन्तर हीन वर्णकी वृत्तिकोही स्वीकार करै, क्योंकि वसिष्ठकी स्मृतिहै कि अपने धर्मसे न जीते हुए ब्राह्मण आदि अनन्तर हीनवर्णकी वृत्तिसे जीवन करै अपनेसे उत्तम जातिकी वृत्तिसे कदाचित् भी न जीवै। यहां ज्यायसी वृत्तिसे ब्राह्मणकी वृत्ति लेते हैं। सोई स्मृत्यन्तरमें लिखाहै कि शूद्रको उत्कृष्ट अर्थात् ब्राह्मण कर्मसे और ब्राह्मणके अपकृष्ट अर्थात् शूद्रके कर्मसे आजीविन न करना। अन्य क्षत्रिय और वैश्यके कर्म आपत्ति कालमें सब वर्णोंको साधारण हैं। शूद्र आपत्ति कालमें वैश्यकी वृत्ति अथवा शिल्पकर्म (कारीगरी) से जीवै, क्योंकि यह पूर्व कह आये हैं शूद्र द्विजोंकी शुश्रूषा (सेवा) करै यदि उससे न जीसके तो द्विजातियोंके हितको करता हुआ वैश्यकर्म वा अनेक प्रकारकी कारीगरीसे जीवे। मनु (अ० १० श्लो० १००) ने यहां विशेष दिखाया है कि जिन किये हुए कर्मोंसे द्विजातियोंकी शुश्रूषा होती है उन कारुकर्म और शिल्प कर्मोंको शूद्र करै, इसी प्रकार अनुलोमोंसे जो उत्पन्न भये हैं वेभी अपनी जातिसे अनंतर वर्णकी वृत्तिसे जीवै यहभी समझना। इस प्रकार अनन्तर हीन वर्णकी वृत्तिसे जीवै आपत्तिको व्यतीत करके फिर प्रायश्चित्त करनेसे आत्माको पवित्र करै और पथि अर्थात् अपनी वृत्तिमें स्थापन करै, अथवा पथि न्यसेत् इस वाक्यका यह अर्थ है कि निंदितवृत्तिसे इकट्ठे किये धनको त्यागदे।

१ उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथंस्यादितिचेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥

१ अजीवन्तः स्वधर्मेणानन्तरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन् न कदाचिज्ज्यायसीम्।

२ उत्कृष्टं वापकृष्टं वा तयोःकर्म न विद्यते। मध्यमे कर्मणी हित्वा सर्वसाधारणे हिते ॥

३ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः। तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥

सोई मनु (अ० १० श्लो० १११) ने कहा है कि याजन और अध्यापनसे किये पापको जप और होमसे और प्रतिग्रहसे किये पापको त्याग वा तपसे दूर करे ॥

भावार्थ-द्विज आपत्तिकालमें क्षत्रिय वा वैश्य-के कर्मसे जीवे, फिर उस आपत्तिको व्यतीत करके प्रायश्चित्तसे आत्माको पवित्र करै और अपने धर्म मार्गमें स्थापित करै ॥ ३९ ॥

फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः ।
तिलौदनरसक्षारान्दधिक्षीरंघृतंजलम्॥३६॥

पद्-फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः २ तिलौदनरसक्षारान् २ दधि २ क्षीरम् २ घृतम् २ जलम् २ ॥

शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधुलाक्षांचबर्हिषः ।
मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीः ॥३७॥

पद्-शस्त्रासवमधूच्छिष्टम् २ मधु २ लाक्षां २ चऽ-बर्हिषः २ मृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविष-क्षितीः २ ॥

कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान् ।
शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधांस्तथैवच॥१॥

पद्-कौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान् २ शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधान् २ तथाऽ-एवऽ-चऽ- ॥

योजना-फलोपलक्षौमसोममनुष्यापूपवीरुधः तिलौदनरसक्षारान् दधि क्षीरं घृतं जलं, शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधु लाक्षां च पुनः बर्हिषःमृच्चर्मपुष्पकुतुपकेशतक्रविषक्षितीःकौशेयनीललवणमांसैकशफसीसकान्शाकार्द्रौषधिपिण्याकपशुगंधान्-द्विजो न विक्रीणीत ॥

तात्पर्यार्थ-यहां फल शब्दसे बदर (बेर) और इंगुदके (गौंदी)फलोंको छोडकर अन्य कदलीफल (-केलाकी गैर) आदि लेते है, जैसे कि नारदने कहा है कि अपने आप वृक्षसे शीर्ण (झडे) हुए पत्ते और फलोंमें बेर और इंगुद (गौंदी) रस्सी और जो विकृत न हुआ हो ऐसा कपासका सूत्र इनको न बेचै उपल शब्द-से माणिक्य (मुंगेर) आदि सब पत्थर लेते हैं, क्षौम अर्थात् भेडकी उनका वस्त्र क्षौम ग्रहण सब तांतव आदिका उपलक्षण है जैसे कि मनु (अ० १० श्लो० ८७) ने कहा है कि रंगेहुए सब तांतव (वस्त्र) और शण क्षुमा (भेडकी ऊन)और बकरीको ऊनके विनारंगे वस्त्र तथा मूल, फल और औषधि इनको न बेचे, सोम, मनुष्य पदसे सामान्य स्त्री पुरुष नपुंसक लेतेहैं, अपूप शब्दसे मण्डक (मांड)आदि सब भक्ष्य पदार्थ, वीरुध अर्थात् बेत अमृतलता तिल, ओदन शब्दसे संपूर्ण भोज्य पदार्थ समझने, गुड ईखका रस शर्करा आदि रस, तैसेही मनु (अ० १० श्लो० ८८) ने लिखा है कि क्षीर सहित दही, घी, तेल, मधु, गुड, कुशा इनको न बेचे यवक्षार (जवाखार) आदि क्षार, दधि क्षीरका ग्रहण, दही दूधके विकार जो मस्तु (मथादही) पिण्डाकिलाट (नोनी) और कूर्चिका (लपसी) आदि ह. उन सबका उपलक्षण है, जैसे कि गौतमने कहा है कि दूध और उसके विकारोंको न बेचै, घृत शब्द तैल आदि सब स्नेहोंका उपलक्षण है, जल, खड्ग आदि शस्त्र, आसव अर्थात्

१ जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव तु ।

१ स्वयं शीर्णानि पर्णानि फलानां बदरेंगुदे । रज्जुः कार्पासिकं सूत्रं तच्चेदविकृतं भवेत् ॥

२ सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥

३ क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ।

४ क्षीरं सविकारम् ।

सब प्रकारकी मद्य, मधुच्छिष्ठ (मोम), मधु (सहत), लाक्षा (लाख), वर्हि (कुशा), मिट्टी, चर्म (मृगचर्म), पुष्प, बकरीकी लोमका कम्बल, कुप्या, चमरी गौ आदिके वाल, तक्र (मठा); विष (शंख आदि), क्षिति शब्दसे भूमि लेते हैं, जैसे कि सुमंतने कहाहै कि भूमि, धान, जौ, वकरी, भेड, घोडा, बैल, धेनु और अनड्वान् इनको न वेचै। कोई ऐसे कहते हैं, कि कौशेय (रेशमी वस्त्र), नील, लवण शब्दसे विड, सौवर्चल, सैन्धव, सामुद्र, सोमक और कृत्रिम ये सब तरहके नोन लेते हैं, मांस, एक शर्फ (घोडा आदि), सीसा शब्दसे सब प्रकारके लोहे समझने, सब शाक, औषधि, जौ, फलके पकनेतक रहती है वे गेहूं जौ आदि, इसमें आर्द्रौषधि इस विशेषके कहनेसे शुष्क औषधियोंमें दोष नहीं, पिण्याक, पशुशब्दसे वनके पशु लेते हैं, क्योंकि मनु (अ० १०श्लो०८९) ने कहा है कि वनके पशु, डाढवाले जीव और पक्षी इनको न वेचै। चन्दन कस्तूरी आदि गन्ध इन सव पदार्थोंको वैश्य वृत्तिसे जीता हुआ ब्राह्मण कदाचित्भी न वेचे। क्षत्रिय आदिको तो इनके वेचनेमें दोष नहीं। इसीसे नारदने इस वचनमें ब्राह्मणपदका ग्रहण किया है कि वैश्यवृत्तिमें ब्राह्मण दूध दहीको न वेचै॥

भावार्थ–फल, पत्थर, कंवल, सोम, मनुष्य, अपूप, वीरुध, तिल, भात, रस, यवक्षार, दही, दूध, घी, जल, शस्त्र, मदिरा, मधूच्छिष्ट सहत, लाख, कुशा, मिट्टी, मृगचर्म, फूल, कुप्या, बाल, मठा, पृथ्वी, रेशमीवस्त्र, नील, नोन, मांस, घोडा आदि एक खुरवाले, सीसा, शाक, गीली औषधि, पिण्याक, पशु और गन्ध इनको ब्राह्मण न वेचै॥ ३६॥ ३७॥ ३८॥

वैश्यवृत्त्यापिजीवन्नोविक्रीणीतकदाचन। धमार्थविक्रयंनेयास्तिलाधान्येनतत्समाः॥३९॥

पद–वैश्यवृत्त्या ३ अपिऽ–जीवन् १ नोऽ–विक्रीणीत क्रि–कदाचनऽ–धर्मार्थम् २ विक्रयम् २ नेयाः १ तिलाः १ धान्येन ३ तत्समाः १॥

योजना–वैश्यवृत्त्या अपि जीवन् ब्राह्मणः कदाचित् इमान् नो विक्रीणीत। धर्मार्थं तिलाः धान्येन तत्समाः विक्रयं नेयाः॥

तात्पर्यार्थ–यदि पाकयज्ञ आदि आवश्यक कर्म, उसके साधनभूत व्रीहि आदि धान्यके विना न होसके तो धान्यसे तिलोंको सम (वरावर) करके वेचै, अर्थात् द्रोणभर नाजसे द्रोणभर तिल दे। सोई मनु (अ० १० श्लो० ९०) ने कहा है कि किशानके कर्मको करता हुआ यथेच्छ खेतीको पैदा करके शुद्ध और जो बहुत दिनके न हों ऐसे तिलोंको धर्मकी सिद्धि (पाकयज्ञ) के लिये वेंचै। यहां धर्म ग्रहण अन्य आवश्यक भेषज (औषधि) आदिकाभी उपलक्षण है। इसीसे नारदने कहा है कि अशक्तिमें, भेषजके निमित्त और यज्ञके लिये यादि तिल अवश्यही वेंचने होंय तो धान्यसे वरावर करके वेचदे। यदि अन्यथा (अन्य कर्मके लिये) वेचै तो यह मनु (अ० १० श्लो० ९१) का कहा दोष है

१ नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके।

२ आरण्यांश्च पशून् सर्वान् दंष्ट्रिणश्च वयांसि च।

३ वैश्यवृत्तावविक्रेयं ब्राह्मणस्य पयो दधि।

१ काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः। विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरं स्थितान्॥

२ अशक्तौ भेषजस्यार्थे यज्ञहेतोस्तथैव च। यद्यवश्यं तु विक्रेयास्तिला धान्येन तत्समाः॥

कि भोजन, अभ्यञ्जन और दान इनसे अन्यके लिये जो तिलोंको बेंचता है वह उस पापसे पितरोंसहित कीडा होकर कुत्तेकी विष्ठामें प्राप्त होता है। सजातीयके साथ तो विनिमय (अदला बदला) करनेमें दोष नहीं। सोई मनु[2] (अ० १० श्लो०९४) ने कहा है कि रसोंको रसोंके साथ बदलले परन्तु रसोंसे लवणको न बदले। पक्वान्नको पक्वान्नसे और बराबर कर करके तिलोंको धान्यसे बदलले जब कि कृतान्नं चाकृतान्नेन ऐसा पाठ है तब यह अर्थ है कि पक्व अन्नको अपक्व तण्डुल (चावल) आदिसे बदल ले॥

भावार्थ-इन पूर्वोक्त फल आदिको वैश्यवृत्तिसे जीता हुआ ब्राह्मण न बेंचै परन्तु धर्मके निमित्त धान्यसे बराबरके तिलोंको बेंचै तो दोष नहीं॥ ३९॥

लाक्षालवणमांसानिपतनीयानि विक्रये।
पयोदधिचमद्यंचहीनवर्णकराणितु॥ ४०॥

पद-लाक्षालवणमांसानि १ पतनीयानि १ विक्रये ७ पयः १ दधि १ चऽ-मद्यम् १ चऽ-हीनवर्णकराणि १ तुऽ-॥

योजना-लाक्षालवणमांसानि विक्रये पतनीयानि स्युः तथा पयः दधि च पुनः मद्यं हीनवर्णकराणि स्युः॥

तात्पर्यार्थ-लाख, नोन और मांस यदि इनको ब्राह्मण बेंचै तो सद्यः ही सब द्विजकर्मोंसे पतित होजाता है। और दुग्ध आदिको बेंचै तो शूद्रकी तुल्यताको प्राप्त होता है। और इनसे भिन्न अविक्रेयवस्तुके बेंचनेमें वैश्यकी तुल्यताको प्राप्त होताहै। जैसे मनु[1] (अ० १० श्लो० ९२-९३) ने कहा है कि लाख, नोन, मांस इनके बेंचनेसे शीघ्रही पतित होता है और दूधके बेंचनेसे तीन दिनमें विप्र शूद्र होजाताहै। अन्य अपण्य वस्तुओंको इच्छासे बेचनेसे सात रातमें वैश्य भावको प्राप्त हो जाता है॥

भावार्थ-लाख नोनके और मांसके बेचनेसे पतित, दधि दूधके बेचनेसे हीन वर्णत्वको ब्राह्मण प्राप्त होता है॥ ४०॥

आपद्गतःसंप्रगृह्णन्भुंजानोवायतस्ततः॥
नलिप्येतैनसाविप्रोज्वलनार्कसमोहिसः॥४१

पद-आपद्गतः १ संप्रगृह्णन् १ भुंजानः १ वाऽ-यतःऽ-ततःऽ-नऽ-लिप्येत क्रि-एनसा ३ विप्रः १ ज्वलनार्कसमः १ हिऽ-सः १॥

योजना-आपद्गतः विप्रः यतः ततः संप्रगृह्णन् वा तदन्नं भुंजानः अपि एनसा न लिप्येत, हि यतः सः ज्वलनार्कसमो भवति॥

तात्पर्यार्थ-जो निर्धन अत्यंत कुटुम्बके होनेसे आपत्तिकोभी प्राप्त होकर क्षत्रिय वा वैश्यकी वृत्तिमें प्रवेश नहीं करना चाहता है और इतस्ततः हीनसे हीनपरसे प्रतिग्रह लेता हुआ वा उसके अन्नको खाता हुआ पापसे लिप्त नहीं होता। क्योंकि उस ब्राह्मणको उस आपत्तिकालमें दूषितभी प्रतिग्रह लेनेका अधिकार है इससे अग्नि और सूर्यकी समान है अर्थात् जैसे अग्नि दूषित वस्तुके संसर्गसे दूषित नहीं होती तिसी प्रकार आपत्तिकालमें दूषित प्रतिग्रहके लेनेसे ब्राह्मणभी दूषित नहीं। येही अग्निकी

---

१ भोजनाभ्यंजनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः। कृमिर्भूत्वा श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति॥

२ रसा रसैर्निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः। कृतान्नं च कृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः॥

१ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्॥ इतरेषामपण्यानां विक्रयादिह कामतः। ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यंभावं निगच्छति॥

समानता है । ऐसे कहनेसे यह वात सूचित (जाहिर) हुई कि आपत्तिको प्राप्त हुए मनुष्यको दूसरेके धर्मसेवनसे अपने धर्मका अनुष्ठान दूषितभी मुख्य (अच्छा) होताहै । सोई मनु (अ० १० श्लो० ९७) ने कहाहै कि अपना विगुणभी धर्म कल्याणकारक होताहै और पराया अच्छाभी धर्म श्रेयस्कर नहीं होताहै क्योंकि दूसरेके धर्मके सेवनसे विप्रजातिसे पतित हो जाता है ॥

भावार्थ–आपत्तिको प्राप्त हुआ ब्राह्मण हीनजातिसे प्रतिग्रह और उसके अन्नको खाकर पापसे लिप्त नहीं होता क्योंकि वह अग्नि और सूर्यके समान होता है ॥ ४१ ॥

कृषिःशिल्पंभृतिर्विद्याकुसीदंशकटंगिरिः ।
सेवानूपंनृपोभैक्ष्यमापत्तौजीवनानितु४२ ॥

पद–कृषिः १ शिल्पम् १ भृतिः १ विद्या १ कुसीदम् १ शकटम् १ गिरिः १ सेवा १ अनूपम् १ नृपः १ भैक्ष्यम् १ आपत्तौ ७ जीवनानि १ तुऽ– ॥

योजना–एतानि आपत्तौ जीवनानि भवंति कृषिः शिल्पं भृतिः विद्या कुसीदं शकटं गिरिः सेवानूपं नृपः भैक्ष्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–आपत्तौ जीवनानि इस विशेषणसे यह वचन इस वातको जनाता है कि इन कृषि आदि वृत्तियोंमें जिस वृत्तिका जिसको अनापत् कालमें प्रतिषेध लिखा है उस मनुष्यको आपत्तिकालमें उस प्रतिषिद्ध वस्तुसे आजिवन करना । जैसे कि आपत्तिकालमें ब्राह्मण और क्षत्रियको वैश्य वृत्ति जो कृषि कर्म है उसकी स्वयं करनेकी आज्ञा है । इसी प्रकार वैश्यको शिल्प आदि, सूपकरण आदि शिल्प, भृति (नोकरी), विद्या अर्थात् नोकर होकर पढाना, कुसीद अर्थात् ब्याजके लिये द्रव्य देना इनको स्वयं करनेकी शास्त्रकी आज्ञा है । शकट जो कि भाडेसे दूसरेकी द्रव्यको ले जाताहै । जिसको छकडा वा गाडी कहते हैं । गिरि अर्थात् उसके तृण वा इन्धनसे जो जीवन, सेवा अर्थात् दूसरेके चित्तके अनुसार चलना, अनूप जिसमें बहुत तृण वृक्ष हों और जहां थोडा जल हो ऐसा प्रदेश, तथा नृपसे याचनारूप भिक्षा, यह आपत्तिकालमें स्नातकके भी जीवन है । सोई मनु (अ० १० श्लो० ११६) ने कहा है कि विद्या, शिल्प, भृति, सेवा, गोरक्षा, दुकान, खेती, पर्वतकी वस्तु, भिक्षा, ब्याज ये दश जीवनके हेतु हैं अर्थात् इन दशसे आजीवन करै ॥

भावार्थ–कृषि, कारिगरी, नोकरी, विद्या, व्याज, छकडा, पर्वत, शुश्रूषा, अनूप, राजा, भिक्षा ये आपत्तिकालमें जीवनके हेतु हैं ॥४२॥

बुभुक्षितस्त्र्यहंस्थित्वाधान्यमब्राह्मणाद्धरेत् ।
प्रतिगृह्यतदाख्येयमभियुक्तेनधर्मतः ४३ ॥

पद–बुभुक्षितः १ त्र्यहम् २ स्थित्वाऽ–धान्यम् २ अब्राह्मणात् ५ हरेत् क्रि–प्रतिगृह्यऽ–तत् १ आख्येयम् १ अभियुक्तेन ३ धर्मतःऽ–॥

योजना–बुभुक्षितः त्र्यहं स्थित्वा अब्राह्मणात् धान्यम् आहरेत् प्रतिगृह्य अभियुक्तेन धर्मतः तत्तथा आख्येयम् ॥

तात्पर्यार्थ–धान्यके अभावसे तीन रात भूखा रहकर अब्राह्मण अर्थात् शूद्रसे उसके अभावमें वैश्यसे और उसकेभी अभावमें क्षत्रियसे एक दिनतकके लिये धान्यको लावे । जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो०) ने कहा है कि छः

१ वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः । परधर्माश्रयाद्विप्रः सद्यः पतति जातितः ॥

१ विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपाणिः कृषिः । गिरिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दशजीवनहेतवः ॥

२ तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥

भक्त भोजन न करता हुआ सप्तम भक्तमें अपनेसे हीनकर्म करनेवालेसे अश्वस्तन (जो कि दूसरे दिनको न रहै) विधि करके धान्यको लावै । जब लेनेके अनंतर यदि नाष्टिक (जिसका धन नष्ट होता है) स्वामी ऐसा कहै कि क्या आप मेरा धान्य ले गये हो तो जो लिया हो उसे धर्मसे वृत्तांतसहित यथावत् कहदे। जैसे कि मनुने कहा है कि खल (पैर) वा खेत वा घरसे जितने धान्यको ले उसको यदि उसका स्वामी पूछे तो उससे यथावत् कहदे ॥

भावार्थ-तीन दिन भूखा रहकर ब्राह्मणसे अन्य वर्णसे धान्यको लावै यदि उसको कोई पूछे तो उसे यथावत् कहदे ॥ ४३ ॥

तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतमध्ययनं तपः । ज्ञात्वा राजा कुटुंबं च धर्म्यांवृत्तिंप्रकल्पयेत्

पद-तस्य ६ वृत्तम् २ कुलम् २ शीलम् २ श्रुतम् २ अध्ययनम् २ तपः २ ज्ञात्वाऽ-राजा १ कुटुंबम् २ चऽ- धर्म्याम् २ वृत्तिम् २ प्रकल्पयेत् क्रि- ॥

योजना-राजा तस्य वृत्तं कुलं शीलं श्रुतम् अध्ययनं तपः ज्ञात्वा च पुनः कुटुंबं ज्ञात्वा धर्म्यां वृत्तिं प्रकल्पयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य क्षुधासे व्याकुल होकर दुःखी हो उसके आचार और कुल आत्माका स्वभाव शास्त्रश्रवण अध्ययन और कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत इनकी परीक्षा करके राजा धर्मके अनुकूल उसकी वृत्तिकी कल्पना करे, यदि न करै तो राजाको दोष होता है। जैसे कि मनु (अ० ७ श्लो० १३४) ने कहाहै कि जिस राजाके देशमें वेदपाठी ब्राह्मण क्षुधासे व्याकुल रहता है उस राजका देश दुर्भिक्ष (अकाल) और व्याधि (विषूचिका आदि) से सदैव पीडित रहता है ।

भावार्थ-राजा वेदपाठी ब्राह्मणके आचार कुल शील शास्त्र वेदाध्ययन और कुटुंबको जानकर उसकी उत्तम वृत्तीसे पालना करै ॥ ४४ ॥

१ खलात् क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते । आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥

१ यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदाति क्षुधा। तस्य सीदाति तद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥

इत्यापद्धर्मप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ वानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ३.

सुतविन्यस्तपत्नीकस्तयावानुगतोवनम्।
वानप्रस्थोब्रह्मचारीसाग्निःसोपासनोव्रजेत्॥

पद्-सुतविन्यस्तपत्नीकः १ तया ३ वाऽ- अनुगतः १ वनम् २ वानप्रस्थः १ ब्रह्मचारी १ साग्निः १ सोपासनः १ व्रजेत् क्रि-॥

योजना-सुतविन्यस्तपत्नीकः अथवा तया अनुगतः ब्रह्मचारी साग्निः सोपासनः वानप्रस्थः सन् वनं व्रजेत् ॥

तात्पर्यार्थ-वनमें जो नियमसे टिके वेहि वानप्रस्थ अर्थात् वक्ष्यमाण वृत्तिको ग्रहण करके जो वनमें जानेकी इच्छा करै। वह वानप्रस्थ अपनी स्त्रीको तू इसका यथावत् पोषण करियो इस प्रकार पुत्रको सौंप दे। यदि वह स्त्री भी पतिकी परिचर्याकी अभिलाषासे आप भी वन जानेकी इच्छा करती होय तो उसको भी साथ लेले। और ब्रह्मचारी अर्थात् ऊर्ध्वरेता होकर वैतान अग्नि और उपासना अग्निको लेकर वनको गमन करै। स्त्रीको तो पुत्रको सौंप दे (सुतविन्यस्तपत्नीकः) इस पदसे यह दिखाया कि गृहस्थाश्रमको जिसने भोग लिया हो उसीको वानप्रस्थका वनवास करनेका अधिकार है यह बात आश्रमोंके समुच्चयपक्षको स्वीकार करके कही है। अन्य पक्षमें तो जिसका ब्रह्मचर्य भ्रष्ट न हो वह जिस आश्रमकी इच्छा करै उसमें वसै इत्यादि वचनसे जो गृहस्थाश्रममें नहीं आया वह भी वनवास करनेमें अधिकारी है ही। यह वनमें प्रवेश जिसका जरा अवस्थासे शरीर जर्जर होगयाहो वा जिसके पौत्र उत्पन्न हो गया हो उसको है। जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो०२) ने कहा है कि गृहस्थी जब अपने वालोंको पलित (पीले) देखे और पुत्रके पुत्रको देखले तब वनमें जाकर वसै। यह पुत्रोंको स्त्रीका सौंपना जिसकी स्त्री विद्यमान हो उसको है। क्योंकि आपस्तम्ब आदिने जिसकी स्त्री मरगई हो उसको भी वनवास कहा है। इससे (सुतविन्यस्तपत्नीकः) इस पदसे यह संशय न करना कि जिसकी स्त्री विद्यमान हो उसकोही अधिकार है, मृतभार्यको नहीं इससे अग्निहोत्रसे दाह करके पुनः अग्न्याधान करै इत्यादिसे जो पुनः अग्न्याधानका विधान है वह जिसके कषायोंका परिपाक न हुआ हो उसके विषय है। और श्रौत और गृह्याग्निको साथ लेकर जाय यहां भी जो अर्धाधान (श्रौत स्मार्त अग्नियोंका पृथक्करण) किया होय तो श्रौत और गृह्य अग्नियोंको साथ लेकर जाय और सर्वाधान किया हो तो केवल श्रौत अग्नियोंकोही संग लेकर गमन करै। यदि किसी प्रकार ज्येष्ठ भाईको अनाहिताग्नि होनेसे जो श्रौताग्निका आधान न किया होय तो उपासन अग्निकोही लेकर गमन करै यह बात समझनी। यह अग्निका लेजाना उसमें करने योग्य अग्निहोत्र आदि कर्मकी सिद्धिके लिये है। इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ९) ने कहा है कि वितान अग्निमें अग्निहोत्रको यथाविधि करै और अमावास्या पूर्णमासी और पर्व इनमें शक्तिसे श्राद्ध करै। यहां कोई शंका करै कि स्त्रीको साथ लेकर होम करै इस वचनसे स्त्रीको साथ लेकरही होम करनेका अधिकार है तो फिर जिसने पुत्रको स्त्री सौंपदी है वा स्त्रीसे रहित है उस वानप्रस्थको अग्निहोत्र आदि कर्मका अनुष्ठान किस तरह बन सकता है

---

१ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥

१ वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि। दर्शमस्कंदयन्पर्वं पौर्णमासं च शक्तितः ॥

२ पत्न्यासह यष्टव्यम्।

सो यह उस वादीकी शंका सत्य है परन्तु यहां पुत्रपर स्त्रीको सौंपनेकी जो विधि है उससेही यह बात जानी जाती है कि वानप्रस्थको स्त्रीके विना भी अग्निहोत्र करनेका अधिकार है। इसमें दृष्टांत है कि जैसे रजस्वला स्त्रीके विषे इस अवरोधकी विधिके बलसे उसकी अग्निहोत्र आदिमें अपेक्षा नहीं कि जिस मनुष्यकी स्त्री व्रतके दिन रजस्वला होजाय तो उसका अवरोध (रोक) करके यज्ञ करै। तिसी प्रकार यहांभी समझना। अथवा कुछ विरोध नहीं क्योंकि वनको जातेहुए पतिको स्त्री अनुमति देती है। कदाचित् कोई फिर शंका करै कि जैसे ब्रह्मचारी और स्त्रीसे रहित वानप्रस्थको अग्निहोत्र आदि कर्मका अभाव है इसी प्रकार जिसने स्त्रीको सौंपदी हो उसको अग्निहोत्रका अभाव है सो ठीक नहीं; क्योंकि ये अग्न्याधान अपाक्षिक रूप अर्थात् जो पुत्रको सौंपजाय उसको और जो साथ लेजाय उसको भी अग्निका लेजाना सामान्यसे पूर्व श्लोक (सुतविन्यस्त इत्यादि) में सुना जाता है इससे स्त्रीको छोडकर जानेवालेको अग्निहोत्रका अभाव नहीं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी और विधुर (स्त्रीरहित) को भी अग्निसाध्य अग्निहोत्र आदि कर्मके करनेमें अधिकारका अभाव नहीं है। क्योंकि पांच महीनेसे पीछे जब श्रावणिक अग्निका आधान किया जाता है उसमें उन दोनोंको भी अग्निहोत्र कर्म करनेका अधिकार इस वसिष्ठकी स्मृतिसे देखा जाता है कि वानप्रस्थ जटाओंको धारण करै चीर और मृगचर्मको ओढै। जिसमें हल चलै उस क्षेत्रमें निवास न करै। जो हलकर्मसे न उत्पन्न हुए हों उन पत्र और मूल फल इनको इकट्ठा करै। ऊर्ध्वरेता रहै, पृथ्वीपर सोवै, दान दे, प्रतिग्रह न ले, पांच महीनेसे पीछे श्रावणिक अग्निका आधान करके आहिताग्नि हो उसके द्वारा पितर और मनुष्य देवता इनको मूल फल दे वह अनन्त स्वर्गको प्राप्त होता है। यहां श्रावणिकका यह अर्थ है कि वैदिक मार्गसे अग्न्याधान करै लौकिकसे नहीं॥

भावार्थ-वनमें प्रस्थानकी इच्छा करनेवाला अपनी स्त्रीको पुत्रको सौंपकर अथवा उस करके सहित औपासन और वैतानाग्निको साथ लेकर ब्रह्मचारी होकर वनमें जाय॥ ४५॥

अफालकृष्टेनाग्नींश्च पितॄन्देवातिथीनपि।
भृत्यांश्चतर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमभृदात्मवान्॥

पद-अफालकृष्टेन १ अग्नीन् २ चऽ-पितॄन् २ देवातिथीन् २ अपिऽ-भृत्यान् २ चऽ-तर्पयेत् क्रि-श्मश्रुजटालोमभृत् १ आत्मवान् १॥

योजना-श्मश्रुजटालोमभृत् तथा आत्मवान् सन् वानप्रस्थः अफालकृष्टेन अग्नीन् च पुनः पितॄन् देवातिथीन् तथा भृत्यान् तर्पयेत्॥

तात्पर्यार्थ-फालग्रहण कर्षण (पृथ्वीका खनन) के साधन समस्त हल आदिका उपलक्षण है। जो कर्षण न कियाजाय ऐसे क्षेत्रमें उत्पन्न हुए नीवार (समाके चावल) वेणु-श्यामाक आदिसे अग्निसाध्यकर्म (अग्निहोत्र आदि) च शब्दसे भिक्षादान पितर, देवता अतिथि और अपिशब्दसे भृत इनकी तृप्तिको करै। और चकारसे आश्रममें आये हुए भृत्योंको भी तृप्त करै। सोई मनुने (अ० ६ श्लो० ७) ने कहा है कि जो भक्ष्य नी-

१ वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा न फालकृष्टमाधितिष्ठेत् अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयो दद्यादेवं न प्रतिगृह्णीयादूर्ध्वं पंचभ्यो मासेभ्यः श्रावणिकेनाग्निमाधायाहिताग्निर्वृक्षमूलको दद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत् स्वर्गमानंत्यम्।

१ यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः। अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान्॥

वार आदि हो उससेही वलि वैश्वदेव और शक्त्यनुसार भिक्षादान करै। और आश्रममें आये हुओंको जल, मूल, फल इनसे सत्कार करै। इसी प्रकार पंचमहायज्ञोंको करके आपभी उससे शेष अन्नको खाय। क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० १२) ने कहा है कि वनमें उत्पन्न हुए मेध्य हविसे देवताओंका होम (वलि वैश्वदेव) करके शेष हविको आप खाय और स्वयंकृत लवणको खाय। यहां स्वयंकृत शब्दसे ऊखर (रण) से उत्पन्न हुआ नोन लेते हैं। भोजन और याग आदिमें मुनियोंके अन्नके नियमसे ग्रामके गोधूम आदिका परित्याग अर्थात् सिद्ध है। इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ३) ने कहा है कि ग्रामके सब आहार और परिच्छद (खट्वा आसन आदिको) छोडकर वनवास करै। यहां कोई यह शंका करै कि अमावास्या और पूर्णमासीके होम आदि तो ग्रामके व्रीहि (धान) आदिसे सिद्ध होते हैं और उसके लिये ये उपयोगी हैं तो फिर इनका परित्याग कैसे कहते हो, कदाचित् कोई यहां कहने लगै कि जिसमें हल न चलै ऐसे क्षेत्रमें उत्पन्न हुए अन्नसे अग्निमें होम करै इस विशेष वचन (अफालकृष्टेनाग्नींस्तर्पयेत्) की सामर्थ्यसे वानप्रस्थको अग्निमें व्रीहि आदिसे होम करनेका वाध (अभाव) है सो ठीक नहीं क्योंकि कैसाही विशेष कर्मका बोध न करनेवाला स्मृतिका वचन हो उससे श्रुति (वेद) विहित कर्मका वाध अन्याय्य है अर्थात् उचित नहीं है और वास्तवमें वाधभी नहीं हो सक्ता क्योंकि वाध तब होता है कि जब अपने विषयमें वाधक सर्वथा चरितार्थ न हो यहां अफालकृष्टसे अग्निमें होम स्मार्त अग्निके विषयमें चरितार्थ है इससे वाधकभी नहीं होसक्ता। वह शंका ठीक है परन्तु व्रीहि आदि अफालकृष्ट अर्थात् विना जोते खेतमेंभी पैदा होतेहैं इससे ग्रामके व्रीहि आदिके परित्यागमें श्रुति विरोध नहीं इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ११) ने कहा है कि वसंत और शरदृतुमें उत्पन्न हुए मेध्य मुनिअन्नोंको स्वयं लाकर उनके पुरोडाश और चरु बनाकर पृथक् २ होम करै। यहां नीवार आदि मुनि अन्न जो स्वयं उत्पन्न हुए उनको यद्यपि स्वतः मेध्यत्व सिद्ध था तथापि फिर मेध्यशब्दका लिखना यज्ञके योग्य व्रीहि आदिकीभी प्राप्तिके लियेहै। क्योंकि मेध्य शब्दका यह अर्थ है कि मेध नाम यज्ञ उसक जो योग्य हो उसे मेध्य कहते हैं। तिसी प्रकार मश्श्रु (डाढी मूछ) जटारूप शिरके बाल और कक्ष (बगल) के बालोंको धारण करै। रोमशब्द नखोंकाभी उपलक्षण है। सोई मनुने कहा ह कि जटा, श्मश्रु, लोम, नख इनको सदा धारण करैं। तिसी प्रकार आत्माकी उपासनामें तत्पर रहै॥

भावार्थ-विना जोते खेतमें पैदा हुए अन्नसे अग्नि पितर देवता अतिथि भृत्य इनको तृप्त करै। और जटा, श्मश्रु, लोम, नख इनको सदैव धारण करै। और आत्माकी उपासनामें तत्पर रहै॥ ४६॥

अह्नोमासस्यषण्णां वा तथा संवत्सरस्य वा॥ अर्थस्य संचयं कुर्यात्कृतमाश्वयुजेत्यजेत्॥

पद-अह्नः ६ मासस्य ६ षण्णाम् ६ वाऽ-तथाऽ-संवत्सरस्य ६ चऽ-अर्थस्य ६ संच-

१ देवताभ्यश्च तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः। शेषमात्मनि युंजीत लवणं च स्वयं कृतम्॥

२ संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।

१ वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः। पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक्॥

२ जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखांस्तथा।

र्थम् २ कुर्यात् क्रि-कृतम् २ आश्वयुजे ७ त्यजेत् क्रि-॥

योजना-अह्नः मासस्य षण्णां वा मासानां तथा संवत्सरस्य उपयोगि अर्थस्य संचयं कुर्यात् कृतम् आश्वयुजे त्यजेत् ॥

ता० भा०-जिसमें एक दिनके भोजन यज्ञ आदि दृष्ट अदृष्ट कर्म होजाय उतने धनका अथवा महीना वा छः महीने वा वर्ष दिनके संबंधि कर्म जितनेमें होजांय उतने धनका संचय करै और इस तरह करनेपर भी यदि अधिक होजांय तो उस अधिक धनको आश्विनके महीनेमें त्यागदे ॥ ४७ ॥

दांतस्त्रिषवणस्नायीनिवृत्तश्चप्रतिग्रहात् ।
स्वाध्यायवान्दानशीलःसर्वसत्त्वहितेरतः ॥

पद-दान्तः १ त्रिषवणस्नायी १ निवृत्तः १ चऽ-प्रतिग्रहात् ५ स्वाध्यायवान् १ दानशीलः १ सर्वसत्वहिते ७ रतः १ ॥

योजना-दान्तः त्रिषवणस्नायी तथा प्रतिग्रहात् निवृत्तः स्वाध्यायवान् दानशीलः सर्वसत्त्वहिते रतः स्यात् ॥

ता० भा०-वानप्रस्थ सदैव अभिमानसे रहित प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल इन तीनों कालोंमें स्नानयुक्त प्रतिग्रह और याजनसे पराङ्मुख, स्वाध्यायमें और वेदाभ्यासमें और फलमूलकी भिक्षा आदिके दान करनेमें और सम्पूर्ण प्राणियोंके हित करनेमें तत्पर रहै ॥ ४८ ॥

दंतोलूखलिकः कालपक्वाशीवाश्मकुट्टकः ।
श्रौतंस्मार्तंफलस्नेहैःकर्मकुर्यात्तथाक्रियाः ॥

पद-दन्तोलूखलिकः १ कालपक्वाशी १ वाऽ-अश्मकुट्टकः १ श्रौतम् २ स्मार्तम् २ फलस्नेहैः ३ कर्म २ कुर्यात् क्रि-तथाऽ-क्रियाः २ ॥

योजना-दन्तोलूखलिकः कालपक्वाशी, वा अश्मकुट्टकः सन् फलस्नेहैः श्रौतं स्मार्तं कर्म तथा क्रियाः कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-वह वानप्रस्थ अपने दांतोंको ही उलूखल (जिसमें कूटनेसे अन्नका तुष दूर होजाता है वह ओखली) बनावै समयपर पके हुए समाके चावल, वेणु श्यामाक आदि अन्न और बेर इंगुद आदि फल इनके खानेका स्वभाव रक्खै । श्लोकमें वा शब्द अग्निमें पके हुएको अथवा समयपर पके हुएको खाय क्योंकि इस मनुके[1] वाक्यमें जो अग्निमें पक्व अन्नका भोजन है वह उसीके अभिप्रायसे है अथवा पत्थरसे कूटकर खाय तथा और श्रौतस्मार्तकर्म और जिनका फल प्रत्यक्ष देखा जाता है वे भोजन आदि क्रिया इनको मधूक (महुआ) आदि मेध्य वृक्षोंके फलसे उत्पन्न हुए स्नेह द्रव्योंसे करै घृत आदिसे नहीं । सोई मनु (अ० ६ श्लो० १३) ने लिखा है कि मेध्यवृक्ष और फलोंसे उत्पन्न हुए स्नेहको खाय ॥

भावार्थ-दांतोंकोही जिसने ओखली बनाया है । समयपर पकेहुए द्रव्योंको खानेवाला वा पत्थरसे कुचलकर खानेवाला वानप्रस्थ फलोंके स्नेहसे श्रौत स्मार्त कर्म और भोजन आदि क्रियाको करै ॥ ४९ ॥

चान्द्रायणैर्नयेत्कालंकृच्छ्रैर्वावर्तयेत्सदा ।
पक्षेगतेवाप्यश्नीयान्मासेवाहनिवागते॥ ५०

पद-चांद्रायणैः ३ नयेत् क्रि-कालम् २ कृच्छ्रैः ३ वाऽ-वर्तयेत् क्रि-सदाऽ-पक्षे ७ गते ७ वाऽ-अपिऽ-अश्नीयात् क्रि-मासे ७ वाऽ-अहनि ७ वाऽ-गते ७ ॥

योजना-चांद्रायणैः कालं नयेत् वा सदा कृच्छ्रैः वर्तयेत्, पक्षे गते सति वा मासे

---

१ अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ।
२ मेध्यवृक्षोद्भवानद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ।

गते सति अथवा अहनि गते सति अश्नीयात् ॥

तात्पर्यार्थ–जो आगे कहे जांयगे उन चांद्रायण व्रतोंसे समयको व्यतीत करै अथवा कृच्छ्र वा प्राजापत्य आदि व्रतोंसे समयको वितावै। अथवा पक्ष (१५ दिन) के वीतनेपर वा महीनेके व्यतीत होनेपर अथवा दिनके व्यतीत होनेपर अर्थात् रात्रिमें भोजन करे। अपिशब्दसे चतुर्थकाल आदिमें भोजन करे। जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० १९) ने कहा है कि रात्रमें भोजन करै वा दिनके चौथे कालमें अथवा अष्टमकालमें शक्तिके अनुसार भोजन करै। इन कालोंके नियमका अपनी शक्तिकी अपेक्षासे विकल्प है ॥

भावार्थ–चांद्रायण वा कृच्छ्र प्राजापत्य आदि व्रतोंसे अपने कालको वितावै पंद्रह दिन वा महीना वा दिनके वीतनेपर भोजन करै ॥ ५० ॥

स्वप्याद्भूमौशुचीरात्रौदिवासंप्रपदैर्नयेत्। स्थानासनविहारैर्वायोगाभ्यासेनवातथा ॥

पद–स्वप्यात् क्रि–भूमौ ७ शुचिः १ रात्रौ ७ दिवाऽ–संप्रपदैः ३ नयेत् क्रि–स्थानासनविहारैः ३ वाऽ–योगाभ्यासेन ३ वाऽ–तथाऽ–॥

योजना–शुचिः सन् रात्रौ भूमौ स्वप्यात्, दिवा (दिवसं) संप्रपदैः नयेत् अथवा स्थानासनविहारैः वा योगाभ्यासेन नयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–आहार और विहारके समयको छोडकर सावधानीसे रात्रिके विषय सोवे, न तो वैठे और न खडा रहै। रात्रिमें सोवे यह वचन दिनके सोनेकी निवृत्तिके लिये नहीं है। क्योंकि दिनके सोनेका निषेध तो पुरुष मात्रके लिये कहनेसेही सिद्ध था इससे यह वानप्रस्थको रात्रिमें बैठने और खडे होनेकी निवृत्तिके लिये है और भूमिमेंही सोवे अर्थात् भूमिपर न कुछ चटाई आदि विछाकर सोवे, न पलंग विछाकर सोवै और दिनको संप्रपद अर्थात् इधर उधर फिरकर अथवा स्नान आसनरूप विहार कि कुछ थोडी देर खडा रहना कुछ देर बैठना इससे व्यतीत करै। अथवा योगाभ्याससे व्यतीत करै। सोई मनु (अ० ६ श्लो० २९) ने कहा है कि ब्रह्मकी प्राप्तिके निमित्त नानाप्रकारकी उपनिषद्की श्रुतियोंको पढै उनके अर्थका अभ्यास करै। तिसी प्रकार पृथ्वीपर लोटनेसे व्यतीत करै क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० २२) ने कहा है कि पृथ्वीपर लोटै वा खडा रहै अथवा पाओंके अग्रभागसे बैठा रहै ॥

भावार्थ–रात्रिमें भूमिपर प्रयत्नसे सोवै, दिनको भ्रमण खडा रहने वा बैठने वा योगाभ्याससे व्यतीत करै ॥ ५१ ॥

ग्रीष्मेपंचाग्निमध्यस्थोवर्षासुस्थंडिलेशयः। आर्द्रवासास्तुहेमंतेशक्त्यावापितपश्चरेत् ॥

पद–ग्रीष्मे ७ पंचाग्निमध्यस्थः १ वर्षासु ७ स्थंडिलेशयः १ आर्द्रवासाः १ तुऽ–हेमन्ते ७ शक्त्या ३ वाऽ–अपिऽ–तपः २ चरेत् क्रि– ॥

योजना–ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थः वर्षासु स्थण्डिलेशयः हेमन्ते आर्द्रवासाः अथवा शक्त्या तपः चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त इनके देखनेसे तीन ऋतुओंका वर्ष रोज होता है उनमें ग्रीष्म ऋतुके जो चैत्र आदि चार मास

१ नक्तं वान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः। चतुर्थकालिको वा स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥

१ विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः।
२ भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्।

हैं उनमें चार अग्नि चारों दिशाओंमें पांचवां ऊपर सूर्य इन पांच अग्नियोंके बीचमें बैठे। और वर्षाऋतुके जो श्रावण आदि चार मास हैं उनमें स्थण्डिल अर्थात् जिसमें वर्षाकी धाराओंके रोकनेवाला कोई आवरण न हो ऐसी भूमिपर निवास करे। और हेमन्त ऋतुके जो मार्गशीर्ष आदि चार मास हैं उनमें गीले वस्त्रोंको ओढे। यदि इस प्रकारके तप करनेमें समर्थ न होय तो अपनी शक्तिके अनुसार तपको करै। और जिस प्रकार यह शरीर सूखै उसी प्रकार यत्न करै। क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० २४) में लिखा है कि अत्यंत उग्र तपको करताहुआ अपने शरीरको सुखावै[1] ॥

भावार्थ-ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्यमें बैठे, वर्षा ऋतुमें स्थण्डिल पर सोवै, हेमन्त ऋतुमें गीले वस्त्रोंको ओढे, अथवा अपनी शक्तिके अनुसार तप करै ॥ ५२ ॥

यः कंटकैर्वितुदति चंदनैर्यश्च लिंपति। अक्रुद्धोपरितुष्टश्चसमस्तस्यचतस्यच ॥५३॥

पद-यः १ कण्टकैः ३ वितुदति क्रि-चंदनैः ३ यः १ च ऽ-लिंपति क्रि-अक्रुद्धः १ अपरितुष्टः १ च ऽ-समः १ तस्य ६ च ऽ-तस्य ६ च ऽ- ॥

योजना-यः कण्टकैः वितुदति च पुनः यः चंदनैः लिम्पति, तस्य तस्य उपरि अक्रुद्धः अपरितुष्टः सन् समो भवेत् ॥

ता० भा०-जो कांटे आदिसे अपने अंगको पीडा दे उसके ऊपर क्रोध न करै और जो अपने शरीरको चंदन आदिके लगानेसे सुख दे उसके ऊपर प्रसन्न न हो अर्थात् उन दोनोंके ऊपर सम (उदासीन रहै ॥ ५३ ॥

[1] तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ।

अग्नीन्वाप्यात्मसात्कृत्वावृक्षावासोमिताशनः। वानप्रस्थगृहेष्वेवयात्रार्थभैक्ष्यमाचरेत्॥

पद-अग्नीन् २ वा ऽ-अपि ऽ-आत्मसात् ऽ-कृत्वा ऽ-वृक्षावासः १ मिताशनः १ वानप्रस्थगृहेषु ७ एव ऽ-यात्रार्थम् २ भैक्ष्यम् २ आचरेत् क्रि-॥

योजना-अथवा अग्नीन् अपि आत्मसात् कृत्वा वृक्षावासो मिताशनः सन् वानप्रस्थगृहेषु एव यात्रार्थं भैक्ष्यम् आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब अग्निकी परिचर्या करनेमें जो असमर्थ हो उसके प्रति कहते हैं। अग्नियोंको आत्मामें समारोप करके वृक्षको ही कुटी बनावै और थोडा भोजन करै और अपि शब्दसे फल मूल इनका भोजन करै जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० २५) ने कहा है कि वैतान अग्नियोंका भस्मपान आदिसे विधिपूर्वक आत्मामें समारोपण करके अग्नि और गृहसे रहित होकर मौन व्रतको धारण कर मूलफलोंको खाय और मूल फलभी न मिलैं तो जितनेमें प्राणोंकी धारणा हो उतनी भिक्षाको वानप्रस्थोंके गृहोंसे लावै[1] ॥

भावार्थ-अग्नियोंका भस्मपान आदिसे आत्मामें आरोप करके वृक्षोंके नीचे बसै थोडा आहार करै प्राणोंकी धारणाके लिये वानप्रस्थोंके गृहोंसे भिक्षाको लावै ॥ ५४ ॥

ग्रामादाहृत्यवाग्रासानष्टौभुंजितवाग्यतः। वायुभक्षःप्रागुदीचींगच्छेद्वावर्ष्मसंक्षयात् ॥

[1] अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि । अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥

पद–ग्रामात् ५ आहृत्यऽ–वाऽ–ग्रासान् २ अष्टौ २ भुंजीत क्रि–वाग्यतः १ वायुभक्षः १ प्रागुदीचीम् २ गच्छेत् क्रि–वाऽ–आऽ–वर्ष्मसंक्षयात् ५॥

योजना–अथवा ग्रामात् आहृत्य वाग्यतः सन् अष्टौ ग्रासान् भुंजीत, वायुभक्षः सन् आवर्ष्मसंक्षयात् प्रागुदीचीं दिशं गच्छेत्॥

तात्पर्यार्थ–जब भिक्षा आदि न मिलै वा शरीरमें व्याधि आदि होजाय फिर क्या करै उसमें कहते हैं कि अथवा ग्रामसे भिक्षाको लाकर मौनी होकर आठ ग्रासोंको खाय। ग्रामकी भिक्षाके विधानसे मुन्यन्न नीवार आदिके नियमका लोप अर्थात् सिद्ध है। जब कि आठ ग्रासोंसेभी प्राणोंकी धारणा न हो सके तो यह स्मृत्यंतरमें कही हुई विधि समझनी कि मुनि आठ ग्रासकी भिक्षा और वानप्रस्थ सोलह ग्रासकी भिक्षा करै। अथवा वायुको खाता हुआ शरीरके निपात (मरण) पर्यंत ईशान दिशाको अकुटिल गतिसे गमन करै। जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० ३१) ने कहाहै कि ईशान दिशामें प्राप्त होकरे अकुटिल गतिसे गमन करै। यदि इस प्रस्थानमेंभी समर्थ न होय तो भृगु (पर्वतकी शिखर) से पतन आदि करै क्योंकि यह वचन है कि वानप्रस्थ महाध्वा (ईशान दिशाको मरण पर्यंत गमन) में प्रवेश वा अग्नि और जलमें प्रवेश वा भृगुसे पतन करै ब्रह्मचर्यप्रकरण आदिमें कहेहुए जो स्नान आचमन आदि विरोधी धर्म हैं उनकाभी वानप्रस्थको अधिकार होता है। क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि ये धर्म जो अविरोधी हैं वे अग्रिम आश्रमियोंके भी होते हैं। इस प्रकार पूर्व कहे हुए चांद्रायण आदिकी दीक्षासे महाप्रस्थान पर्यंत जो कर्म हैं उनको शरीरके त्याग पर्यंत करता हुआ ब्रह्मलोकमें पूज्यताको प्राप्त होता है। जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० ३२) ने कहा है कि इन महर्षियोंके चर्याओंमेंसे किसी चर्यासे ब्राह्मण शरीरको त्यागकर शोक भयसे छूटकर ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै। ब्रह्मलोक शब्दसे यहां स्थान विशेष लेते हैं नित्य ब्रह्म नहीं। क्योंकि उसमें लोकशब्दके प्रयोगका अभाव है और चतुर्थ आश्रमके विना उसमें मुक्तिकाभी स्वीकार नहीं है। कदाचित् कोई शंका करै कि वानप्रस्थ आश्रममें यदि मुक्तिका स्वीकार न करोगे तो अथवा योगाभ्याससे कालको व्यतीत करै इस वचनसे जो वानप्रस्थको ब्रह्मकी उपासना कही है उसकी अनुपपत्ति (निष्फल) होगी, ठीक नहीं। क्योंकि वह ब्रह्मकी उपासना वानप्रस्थके सालोक्य आदि फलकी प्राप्तिमें कारण है इससे अनुपपत्ति नहीं। इसीसे वेदमें तीन धर्मके स्कन्ध हैं यह प्रारंभ करके इस प्रकार गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ्य और नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके स्वरूप कहकर कि धर्मका प्रथम स्कन्ध यज्ञ, अध्ययन और दान है तथा तप यह द्वितीय स्कन्ध और मरणपर्यन्त गुरुके कुलमें वसना यह धर्मका तृतीय स्कन्ध है। फिर सब ये पुण्यलोकको

१ अष्टौ ग्रासा मुनेर्भैक्ष्यं वानप्रस्थस्य षोडश।

२ अपराजितां वास्थाय गच्छेद्दिशमजिह्मगः।

३ वानप्रस्थो वीराध्वानं ज्वलनाम्बुप्रवेशनं भृगुपतनं वानुतिष्ठेत्।

१ उत्तरेषां चैतदविरोधि।

२ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्। वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते॥

३ यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः तप एवेति द्वितीयः ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासीति तृतीयः अत्यंतमाचार्यकुल एवमात्मानमवसादयन्।

प्राप्त होते हैं इस वचनसे इन तीन आश्रमियोंको पुण्यलोककी प्राप्ति कही है । इस प्रकार आश्रमोंका स्वरूप और उन आश्रमियोंको पुण्यलोककी प्राप्तिको कहकर ब्रह्ममें है निष्ठा जिसकी ऐसा आश्रमी मोक्षको प्राप्त होता है इस वचनमें परिशेषसे ब्रह्मसंस्थ परिव्राजक (संन्यासी) को ही मुक्तिरूप अमृतकी प्राप्ति कही है । सत्यवादी श्राद्धके करनेवाला गृहस्थी मोक्षको प्राप्त होता है इस वचनसे जो गृहस्थीको मोक्षका प्रतिपादन किया है वह जिसने अन्य जन्ममें संन्यस्त धर्मको धारण किया हो उस गृहस्थीके विषयमें समझना ॥

भावार्थ--ग्रामसे भिक्षाको लाकर मौनी होकर आठ ग्रासोंको खाय अथवा वायुको खाताहुआ मरणपर्यंत ईशानदिशाको गमन करै ॥ ५५ ॥

१ सर्वे एते पुण्यलोका भवन्ति ।
२ ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ।

१ श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोपि विमुच्यते ।

इति वानप्रस्थधर्मप्रकरणम् ॥ ३ ॥

अथ यतिधर्मप्रकरणम् ४.

वनाद्गृहाद्वाकृत्वेष्टिंसार्ववेदसदक्षिणाम्।
प्राजापत्यांतदंतेतानग्नीनारोप्यचात्मनि ॥

पद-वनात् ५ गृहात् ५ वाऽ-कृत्वाऽ-इष्टिम् २ सार्ववेदसदक्षिणाम् २ प्राजापत्याम् २ तदन्ते ७ तान् २ अग्नीन् २ आरोप्यऽ-चऽ-आत्मनि ७ ॥

अधीतवेदोजपकृत्पुत्रवानन्नदोग्निमान्।
शक्त्याचयज्ञकृन्मोक्षेमनःकुर्यात्तुनान्यथा ॥

पद-अधीतवेदः १ जपकृत् १ पुत्रवान् १ अन्नदः १ अग्निमान् १ शक्त्या ३ चऽ-यज्ञकृत् १ मोक्षे ७ मनः २ कुर्यात् क्रि-तुऽ-नऽ-अन्यथाऽ-॥

योजना-वनात् अथवा गृहात् अनंतरं सार्ववेदसदक्षिणां प्राजापत्याम् इष्टिं कृत्वा तदन्ते तान् अग्नीन् आत्मनि समारोप्य अधीतवेदः जपकृत् अन्नदः अग्निमान् च पुनः शक्त्या यज्ञकृत् सन् मोक्षे मनः कुर्यात् अन्यथा न कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-बडे तीक्ष्ण तपके करनेसे जिसने अपने शरीरको सुखा दिया है ऐसे वानप्रस्थका जितने कालमें विषयोंका परिपाक होजाय और फिर मदसे उत्पन्न हुई आशंका (भय) न हो तबतक वनमें वसकर उसके पीछे मोक्षमें मनको लगावै, यहां वन और गृह शब्दसे उनके सम्बन्धी आश्रम (वानप्रस्थ गृहस्थ) लेते हैं और मोक्ष शब्दसे मोक्षही है मुख्य फल जिसका ऐसा चतुर्थ आश्रम लेते हैं, इस वचनके कहनेसे यह बात सूचन करी कि आश्रमोंका समुच्चयपक्ष अर्थात् चारों आश्रमोंको भोगना, जो पूर्व कहाहै उसमें विकल्पहै सोई जाबालकी श्रुतिमें देखा जाता है कि ब्रह्मचर्य आश्रमको समाप्त करके गृहस्थी होय और गृहस्थीको समाप्त करके वानप्रस्थ होय, और वानप्रस्थके अनंतर परिव्राजक होय, अथवा ब्रह्मचर्यसेही संन्यासी हो, अथवा गृहस्थाश्रमके बीतनेपर हो अथवा वानप्रस्थके अनन्तर हो, तिसी प्रकार गृहस्थाश्रमके पीछे अन्य आश्रमका अभाव गौतमने दिखाया है कि अथवा एक गृहस्थही आश्रमको रक्खै क्योंकि गृहस्थकी विधि प्रत्यक्ष है, इन सब समुच्चय, विकल्प और बाधपक्षोंका श्रुतिसिद्ध होनेसे अपनी इच्छासे विकल्प है अर्थात् जो ब्रह्मचर्यके अनन्तर संन्यास लेनेकी इच्छा होय तो संन्यास लेले, न होय तो गृहस्थाश्रममें आजाय इत्यादि इससे अपनेको पण्डित माननेवालोंमें जो कहाहै कि नैष्ठिकब्रह्मचर्य आदि स्मृतिविहित है इससे उनका वेदविहित गृहस्थाश्रमसे बाध है अर्थात् जो गृहस्थाश्रमके योग्य हो वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदिको ग्रहण न करै अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य आदि उनके विषयमें है जो गृहस्थाश्रमके अधिकारी नहीं हैं ऐसे अन्धे लूले नपुंसक आदि जो हैं, सो इस उन पण्डितमन्योंके कथनमें वेदाध्ययनकी शून्यता कारण है, अर्थात् वे वेदको नहीं जानते इससे उनका कथन सर्वथा त्यागने योग्य है जैसे कि श्रौत कर्म (यज्ञ आदि) के विषय पंगु अंधे आदिका अधिकार इस लिये नहीं है कि वे विष्णुकी परिक्रमा और घृतका अवेक्षण (देखना) आदि नहीं करसक्ते तिसी प्रकार स्मार्त कर्म (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) आदिमेंभी

---

१ ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेद्गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वनाद्वा।

२ ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्गार्हस्थ्यस्य।

वे जलसे भरे घडेको लाना, भिक्षाके अर्थ जाना इत्यादि कर्मके करनेमें वे समर्थ नहींहैं तो फिर किस प्रकार नैष्ठिक आदिको उन पंगु आदि-के विषय माननेसे चरितार्थ मानते हो, इस चतुर्थ आश्रमके विषै ब्राह्मणकोही अधिकार है सोई मनु (अ० ६ श्लो० २५) ने कहा है कि आत्मामें अग्नियोंका आरोप करके ब्राह्मण संन्यासको ले, तैसेही मनु (अ० ६ श्लो०९७) ने कहाहै कि, हे ऋषीश्वरो! इस प्रकार ब्राह्मणके चार प्रकारके धर्म तुमको बताये इस प्रकार प्रारंभ और समाप्तिके वचनोंसे मनुने ब्राह्मणको ही अधिकार सूचन कियाहै, इससे और ब्राह्मण परिव्राजक हो इस श्रुतिसे ब्राह्मणको ही अधिकार है द्विजाति मात्रको नहीं और अन्य तो त्रैवर्णिकानां इसको अधिकारसे और वेदाध्ययनपूर्वक चारों आश्रम तीनों वर्णोंको होते हैं उस सूत्रकारके वचनसे द्विजाति मात्रको संन्यासका अधिकार कहते हैं, जब गृहस्थ वा वानप्रस्थसे संन्यास लेना चाहैं तब सम्पूर्ण वेदकी जिसमें दक्षिणा है प्रजापति जिसका देवता है ऐसे यज्ञको करै उससे पीछे वैतान अग्नियोंको वेदविहित बिधिसे आत्मामें आरोपण करै, और चशब्दसे पूर्णमासीके दिन पूर्व पुरश्चरण करके शरीरको शुद्ध करै आठ वा बारह श्राद्धोंको करै इस बौधायनके कहे पुरश्चरणको करै, जप करनेमें युक्त पुत्र जब होजाय, और दीन अंधे कृपण इनको धनका अर्पण करके, यथाशक्ति अन्नको देकर, और अपनेसे ज्येष्ठ भाईने अग्न्याधान न किया होय तो आप अग्न्याधान न करै, इस प्रतिबन्धके न होनेपर अग्न्याधानको करके उसमें नित्य नैमित्तिक यज्ञको करके मोक्षमें मनको करै, अर्थात् चतुर्थ आश्रममें प्रविष्ट होय अन्यथा न हो, इस वचनसे जिसने तीनों ऋण निवृत्त न किये हों उसको संन्यासका अधिकार नहीं यह बात सूचन करी, जैसे कि मनु (अ० ६ श्लो० ३५) ने कहा है कि तीन ऋणोंको निवृत्त करके मनको मोक्षमें लगावे, और ऋणोंको विना निवृत्त किये जो संन्यासका सेवन करता है वह नरकमें पडता है, जो कि ब्रह्मचर्यसे पीछे संन्यासी होना चाहै उसको सन्तानकी उत्पत्ति करनेका नियम नहीं, क्योंकि पुत्रके उत्पादन आदिमें जिसने दारपरिग्रह (विवाह) न किया हो उसको अधिकार नहीं, और विवाहमें राग निमित्त है इससे दारपरिग्रह नित्य नहीं, कदाचित् कोई शंका करै कि तीनों ऋणोंके दूर करनेकी विधिसेही दाराओंका आक्षेप होता है क्योंकि विवाहके किये विना ऋण निवृत्त नहीं होसक्ता, वह ऋणकी निवारणविधि दारपरिग्रहके नियम करनेवाली है सो ठीक नहीं, क्योंकि विद्या और धनके अर्जन(इकठ्ठा करना) के नियमके समान यह ऋणनिवारक विधिभी स्त्रीके परिग्रहका आक्षेप नहीं करती क्योंकि वह विधि जिसने स्त्रीका परिग्रह किया है उसके विषय चरितार्थ है, कदाचित् कोई यह कहने लगै कि उत्पन्न (पैदा) होतेही सम्पूर्ण ब्राह्मण तीन ऋणोंके साथ जन्म लेते हैं इससे ब्रह्मचर्य आश्रमसे ऋषियोंके ऋणको और यज्ञसे देवताओंके ऋणको और प्रजा (संतान) से पितरोंके ऋणको निवृत्त करै

१ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्
२ एष वोभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ।
३ ब्राह्मणाः प्रव्रजन्ति ।
४ त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः ।
५ पौर्णमास्यां पुरश्चरणमादौ कृत्वा शुद्धेन कायेनाष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् द्वादश वा ।

१ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥

इस वचनसे ब्राह्मण मात्रको प्रजाका उत्पादन आदि आवश्यक है यह दिखाया है, सो ठीक नहीं। क्योंकि इस वचनका यह अर्थ है कि जिसने दारा और अग्निका परिग्रह न किया हो उस ब्राह्मण मात्रको यज्ञ आदि कर्ममें अधिकार नहीं, इससे अधिकारीही जायमान ब्राह्मण आदि यज्ञ आदि कर्मको करै इससे जिसका यज्ञोपवीत होगया हो उसको वेदाध्ययन ही आवश्यक कर्म है, अन्य नहीं। और जिसने स्त्री और अग्निको ग्रहण किया हो प्रजाका उत्पादन भी आवश्यक कर्म है, इससे सब निर्दोष है॥

भावार्थ–वानप्रस्थ वा गृहस्थाश्रमके अनन्तर सब वेदोंकी जिसमें दक्षिणा है, प्रजापति जिसका देवता है ऐसे यज्ञको करके और उसके पीछे वैतान अग्नियोंका आत्मामें आरोप करै, जिसने वेद पढलिया हो, जप करनेवाला हो, जिसके पुत्र उत्पन्न हो लिया हो, वह अन्नदान और आधान की हुई अग्निमें शक्तिके अनुसार यज्ञको करके मोक्षमें मनको लगावै, अर्थात् चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करै अन्यथा न करै॥ ५६॥ ५७॥

सर्वभूतहितःशांतस्त्रिदंडीसकमंडलुः।
एकारामःपरिव्रज्यभिक्षार्थीग्राममाश्रयेत्॥

पद–सर्वभूतहितः १ शान्तः १ त्रिदण्डी १ सकमण्डलुः १ एकारामः १ परिव्रज्यऽ–भिक्षार्थी १ ग्रामम् २ आश्रयेत् क्रि– ॥

योजना–परिव्रज्य (संन्यासी भूत्वा) सर्वभूतहितः शान्तः त्रिदण्डी सकमण्डलुः एकारामः भवेत्। भिक्षार्थी सन् ग्रामं आश्रयेत्॥

तात्पर्यार्थ–प्रिय (हर्ष करनेवाले) और अप्रिय (दुःख) करनेवाले सब प्राणियोंका हित करै अर्थात् हर्षके देनेवालेसे अत्यंत हित और दुःख देनेवालेसे उदासीनता न करै, क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि हिंसा और अनुग्रहको न करै,[1] वा हित और अन्तःकरणमें शान्त (रागद्वेषरहित) रहै, तीन दण्डवालेको त्रिदंडी कहते हैं, वे दंड वेणु (वांस) के समझने, उनको ग्रहण करै, क्योंकि ऐसा स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि प्राजापत्य यज्ञके अनंतर मस्तकतक जो लम्बे हों ऐसे तीन बांसके दण्डोंको दाहिने हाथसे धारण करै और वामहाथमें जलसहित कमण्डलुको धारण करै,[2] अथवा एक दण्डकोही धारण करै क्योंकि बौधायनकी स्मृति है[3] कि एक दंडवाला हो अथवा तीन दंडवाला त्रिदंडी हो और चतुर्विंशतिके मतमेंभी यह लिखाहै कि[4] सब संगोंसे रहित होकर एक दंड वा तीन दंडको धारण करके ब्रह्मविद्यामें तत्पर ब्राह्मणचतुर्थ आश्रममें प्राप्त होय, तिसी प्रकार शिखाका धारण करनाभी वैकल्पिक (धारण करना न वा करना) है क्योंकि गौतमकी स्मृति[5] है कि मुण्डन करादे अथवा शिखाको धारण करै, वशिष्ठनेभी[6] कहा है कि मुण्डन करादे, ममतासे रहित रहै, क्रोध और परिग्रह इनको भी त्यागदे यज्ञोपवीतके धारणमें भी विकल्प है क्योंकि काठककी श्रुतिमें[7] यह लिखा है कि

१ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः।

१ हिंसानुग्रहयोरनारम्भी।

२ प्राजापत्येष्ट्यनन्तरं त्रीन्वैणवान्दंडान् मूर्धप्रमाणान्दक्षिणेन पाणिना धारयेत् सव्येन सोदकं कमण्डलुम्।

३ एकदण्डी त्रिदण्डी वा।

४ चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्रह्मविद्यापरायणः। एकदण्डी त्रिदण्डी वा सर्वसंगविवर्जितः॥

५ मुण्डः शिखी वा।

६ मुण्डोऽममोऽक्रोधोऽपरिग्रहः।

७ सशिखान्केशान्निकृन्त्य विसृज्य यज्ञोपवीतम्।

शिखासहित केशोंको कटवाकर और यज्ञोपवीतको त्यागकर संन्यस्त हो। और बाष्कलकी श्रुतिमें यह लिखा है कि कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, सम्पूर्ण वेदांग, केश और यज्ञोपवीत इनको त्यागकर मौन व्रतको धारण करके गुप्त विचरे। और परिशिष्टकी स्मृतिमें लिखा है कि जलोंमें यज्ञोपवीतको भूः स्वाहा इस मंत्रसे हवन करै और हे सखे! मेरी रक्षा करियो ऐसा कहकर दण्डको धारण करै। यदि सामर्थ्य न होय तो कंथा (गुदड़ी) को भी ग्रहण करै। क्योंकि देवलकी स्मृति है कि गेरूसे रंगे हुए वस्त्र, कमण्डलु, पवित्र आसन, खडाऊँ, तीन दण्ड, कन्था इनको धारण करै। मुण्डन कराये हुए रहै, शौच आदिके निमित्त कमण्डलुसहित रहै। एकाराम अर्थात् दूसरा संन्यासी अथवा जिन्होंने संन्यास लेलिया है ऐसी स्त्री इनके साथ न रहै। क्योंकि स्त्रियोंकोभी कोई संन्यास कहते हैं इस वचन बौधायनने स्त्रियोंकोभी संन्यास कहा है। सोई दक्षनेभी कहा है कि एक संन्यासीको भिक्षु और दोको मिथुन और तीन संन्यासियोंको ग्राम और इससे ऊपर संन्यासियोंका समुदाय नगरके समान होजाता है। क्योंकि उनके समीप रहनेसे आपसमें राजाओंकी वार्ता वा भिक्षाकी वार्त्ता होती है और परस्पर पिशुनता और मत्सरता भी प्रायः बढ जाती है, इसमें संशय नहीं। परिव्रज्य इसका यह अर्थ है कि इसमें परि उपसर्ग पूर्वक व्रज धातुका त्याग अर्थ है इससे अहंकार, और यह मेरा है ऐसी ममता, और इस ममतासे किया हुआ लौकिक कर्मोंका संचय और नित्य काम्यरूपी वैदिक कर्मोंका परित्याग करै। सोई मनु (अ० १२ श्लो० ८८।८९।९२) ने लिखा है कि सुख और अभ्युदयका देनेवाला और निःश्रेयस (मोक्ष) का देनेवाला प्रवृत्त और निवृत्तरूपी दो प्रकारका वैदिककर्म होता है। प्रवृत्तकर्म उसे कहते हैं कि जो इस लोक और परलोककी कामनाओंसे किया जाता है और निवृत्तकर्म वह होता है कि ज्ञानपूर्वक कामनासे रहित होकर जो किया जाता है, इन निवृत्त और प्रवृत्तरूप पूर्व कहे हुए कर्मोंको त्यागकर ब्राह्मण आत्मज्ञान, शान्ति और वेदका अभ्यास इनमें सदैव यत्न रक्खै। यहां वेदाभ्यास शब्दसे ॐकारका अभ्यास लेते हैं। संन्यासी भिक्षाके निमित्त ग्राममें जाय, सुखसे निवास करनेके निमित्त न जाय। वर्षाकालमें ग्राममें निवास करै तो दोष नहीं। क्योंकि शंखकी स्मृति है कि वर्षाके दो महीनोंसे पीछे एक स्थानपर कदाचित् भी न वसै। यदि परिभ्रमणका सामर्थ्य

---

१ कुटुम्बपुत्रदारांश्च वेदांगानि च सर्वशः। केशान् यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढश्चरेन्मुनिः॥

२ यज्ञोपवीतमप्सु जुहोति भूः स्वाहेति अथ दण्डमादत्ते सखे मां गोपाय॥

३ काषायी मुण्डस्त्रिदण्डीकमण्डलुपवित्रपादुकासनकन्थामात्रः॥

४ स्त्रीणां चैके।

५ एको भिक्षुर्यथोक्तश्च द्वावेव मिथुनं स्मृतम्। त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते॥ राजवार्तादि तेषां तु भिक्षावार्ता परस्परम्। अपि पैशून्यमात्सर्यं सन्निकर्षान्न संशयः॥

---

१ सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च। प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥ इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते। निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते॥ यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः। आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्॥

२ ऊर्ध्वं वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां नैकस्थानवासी।

न होय तो चार महीनोंपर्यंत भी एक स्थानपर स्थित रहै । वर्षाकालको छोडकर एक स्थानपर बहुतकालतक न वसै क्योंकि देवलकी स्मृति है कि वर्षालक्षण इननेही कहा है श्रावण आदि चार महीने वर्षाकाल होता है । कण्वऋषिनेभी कहा है कि ग्राममें एकरात्र और नगरमें पांच रात्र और वर्षाऋतुमें किसी स्थानपर चार महीने निवास करै ॥

भावार्थ–सब कर्मोंका परित्याग करके सब भूतोंपर हित रक्खै, शान्त रहै, तीन दण्ड और कमण्डलुको धारण करै, अकेला रहै, भिक्षाके निमित्त ग्राममें प्रवेश करै ॥ ५८ ॥

अप्रमत्तश्चरेद्भैक्षं सायाह्नेऽनभिलक्षितः ॥
रहितेभिक्षुकैर्ग्रामेयात्रामात्रमलोलुपः ॥५९॥

पद–अप्रमत्तः १ चरेत् क्रि–भैक्षम् २ सायाह्ने ७ अनभिलक्षितः १ रहिते ७ भिक्षुकैः ३ ग्रामे ७ यात्रामात्रम् २ अलोलुपः १ ॥

योजना–संन्यासी अप्रमत्तः अनभिलक्षितः तथा अलोलुपः सन् सायाह्ने भिक्षुकैः रहिते ग्रामे यात्रामात्रं भैक्ष्यं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अप्रमत्त अर्थात् वाणी और नेत्र आदिकी चपलतासे रहित होकर भिक्षाको मांगे । वसिष्ठने यहां विशेष दिखाया है कि जो संकल्पित (मनमें विचारे) न हों ऐसे सात घर भिक्षा मांगे । सायाह्न शब्दसे दिनका पांचवां भाग समझना । तिसी प्रकार मनु (अ० ६ श्लो० ५६) ने कहाहै कि जिस समय धूआं न रहै, मुसलका शब्द न होताहो, मनुष्य सब भोजन कर चुके हों, शराव (सराई) भी फेंकदीहो, उस समय याति सदा भिक्षा करै (मांगे) । तैसेही यहभी कहाहै कि एक समय भिक्षाको लावै । भिक्षाके अत्यंत-विस्तारमें आसक्त न हो क्योंकि बहुतसी भिक्षामें आसक्त हुआ याति विषयोंमेंभी आसक्त होजाता है । अनभिलक्षित रहै अर्थात् ज्योतिषविद्याके प्रश्न, मुहूर्त्त आदिक बताना रूप चिह्नको न रक्खै । सोई मनु (अ० ६ श्लो० ५०) ने कहा है कि उत्पात, मुहूर्त्त आदिका बताना, क्षत्रियकी विद्याका उपदेश, उत्तम शिक्षा और वाद इन कारणोंसे संन्यासी भिक्षाकी कदाचित् भी लेनेकी इच्छा न करै । जो कि फिर वसिष्ठने यह कहा है कि ब्राह्मणके कुलमें जो कुछ मिले उसकोही मांसके विना सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करै । सो वह वचन असमर्थके विषयमें है । भिक्षा मांगनेका जिनका स्वभाव है ऐसे पाखण्डी आदिसे रहित ग्राममें भिक्षा करै । मनु (अ० ६ श्लो० ५१) ने यहां यह विशेष दिखाया है कि जो गृह तपस्वी ब्राह्मण पक्षी कुत्ता और अन्य भिक्षक इनसे आकीर्ण (व्याप्त) न हो उसमें भिक्षाकी याचना करै । जितने अन्नसे प्राणोंकी यात्रा हो उतनीही भिक्षा करै । सोई संवर्तने कहा है कि संन्यासी आठ सात

१ न चिरमेकत्र वसेदन्यत्र वर्षाकालात् ।

२ श्रावणादयश्चत्वारो मासा वर्षाकालः ।

३ एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे रात्रिपंचकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांस्तु चतुरो वसेत् ॥

४ सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्षम् ।

५ विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥

१ एककालं चरेद्भिक्षां प्रसज्जेन्नतु विस्तरे । भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥

२ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥

३ ब्राह्मणकले वा यल्लभेत् तद्भुंजीत सायंप्रातर्मांसवर्ज्यम् ।

४ न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः । आकीर्णं भिक्षुकैरन्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥

५ अष्टौ भिक्षाः समादाय मुनिः सप्त च पंच वा । अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्नीयाच्च वाग्यतः ।

चा पांच भिक्षाको लाकर और उन सबोंको जलमें धोकर मौन होकर खाय अलोलुप अर्थात् मिष्टान्न और उत्तम व्यंजनोंमें आसक्त न हो ॥

भावार्थ-अप्रमत्त अनभिलक्षित (ज्योतिष्को जानते हैं ऐसा किसीको प्रतीत न होना) और अलोलुप होकर सायंकालके समय भिक्षुकोंसे रहित ग्राममें प्राणयात्रामात्र अन्नकी भिक्षा करे ॥ ५९ ॥

यतिपात्राणिमृद्वेणुदार्वलाबुमयानिच ।
सलिलंशुद्धिरेतेषांगोवालैश्चावघर्षणम् ६०॥

पद-यतिपात्राणि १ मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि १-चऽ-सलिलम् १ शुद्धिः १ एतेषाम् ६ गोवालैः ३ चऽ-अवघर्षणम् १ ॥

योजना-यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि भवंति। च पुनः एतेषां पात्राणां शुद्धिः (शुद्धेः कारणम्) सलिलं च पुनः गोवालैः अवघर्षणं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-मिट्टी बांस काठ तुंबा आदिसे बनाये हुए यतियोंके पात्र होते हैं और उनकी शुद्धिका साधन जल और गौके बालोंसे घिसना ये होते हैं। यह शुद्धि भिक्षाको जानेमें और देनेमें किसीका स्पर्श आदि हो जाय उसके विषय है, अमेध्य (विष्ठा आदि) आदिसे जो उपहत होजाय उसके विषयमें नहीं है। अमेध्य आदिसे उपघात (स्पर्श) होनेमें तो द्रव्यशुद्धि प्रकरणमें कहीहुई शुद्धि समझनी। इसीसे मनु (अ० ६ श्लो० ५३) ने कहा है कि जो चांदी आदिके न हों उन व्रण (छिद्र) से रहित अतैजस पात्रोंकी शुद्धि यज्ञके पात्रोंकी समान जलसे होती है। चमसके दृष्टान्तको दिखानेसे प्रायोगिकी (भिक्षा आदिके लेजानेको किसी अन्यको देदियाजाय) शुद्धि दिखाई है। यदि अन्यपात्र न होंय तो भोजन भी उसी पात्रमें करले। क्योंकि देवलने कहाहै उस भिक्षाको लेकर एकान्तमें उसी पात्र वा अन्यपात्रसे तूष्णीं होकर परिमित भोजन करे ॥

भावार्थ-मिट्टी, वेणु, काष्ठ, तुम्बी इनके बने हुए यतियोंके पात्र होते हैं और उनकी जलसे और गौके बालोंके घिसनेसे शुद्धि होती है ॥ ६० ॥

सन्निरुध्येंद्रियग्रामंरागद्वेषौप्रहायच ।
भयंहित्वाचभूतानाममृतीभवतिद्विजः ६१॥

पद-संनिरुध्यऽ-इन्द्रियग्रामम् २ रागद्वेषौ २ प्रहायऽ-चऽ-भयम् २ हित्वाऽ-चऽ-भूतानाम् ६ अमृती १ भवति क्रि-द्विजः १ ॥

योजना-इन्द्रियग्रामं संनिरुध्य च पुनः रागद्वेषौ प्रहाय च पुनः भूतानां भयं हित्वा द्विजः अमृती भवति ॥

तात्पर्यार्थ-चक्षु आदि इंद्रियोंके समूहको रूप रस गंध आदि विषयोंसे निवृत्त करके और राग द्वेषको और चशब्दसे ईर्ष्या आदिको छोडकर और भूतोंके अपकारसे भयको न करके शुद्ध अन्तःकरणसे अद्वैतका साक्षात्कार करके संन्यासी ब्राह्मण मुक्तिको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-इंद्रियोंको जीतकर राग द्वेषको निवृत्त करके प्राणियोंको भयके न देनेसे द्विज मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

कर्तव्याशयशुद्धिस्तुभिक्षुकेणविशेषतः ।
ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातंत्र्यकरणायच ॥

पद-कर्त्तव्या १ आशयशुद्धिः १ तुऽ-भिक्षु-

---

१ अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च । तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥

१ तद्भैक्ष्यं गृहीत्वैकान्ते तेन पात्रेणान्येन वा तूष्णीं मात्रया भुंजीत ॥

केण ३ विशेषः८-ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात् ९ स्वातंत्र्यकरणाय ४ च८- ॥

योजना-भिक्षुकेण ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात् च पुनः स्वातंत्र्यकरणाय आशयशुद्धिः कर्तव्या ॥

तात्पर्यार्थ-विषयोंकी अभिलाषा और द्वेष इनसे उत्पन्न हुए दोषोंसे मलीन हुए अन्तःकरणके पापोंका क्षयरूप शुद्धि प्राणायामोंसे करनी। क्योंकि वह शुद्धि आत्माका अद्वैतसाक्षात्काररूप जो ज्ञान है उसमें हेतु है। और विषयोंमें आसक्त होनेसे जो आत्मज्ञानमें प्रतिबन्धक दोष पैदा हुआ है उसके नाश होनेपर आत्माका ध्यान और धारण इनमेंभी स्वतन्त्र होजाता है इस कारणसे भिक्षुक इस दोषकी शुद्धिको विशेषकर करै। क्योंकि उस संन्यासीका मोक्षका प्रधान (हेतु) है और वह मोक्ष अन्तःकरणकी शुद्धिके विना हो नहीं सक्ता। क्योंकि मनु (अ० ६ श्लो० ७१) ने कहा है कि अग्निमें तपाई हुई सुवर्ण आदि धातुके मल जैसे दग्ध होजाते हैं उसी प्रकार प्राणोंके निग्रहसे इन्द्रियोंके दोषभी दग्ध होजाते हैं ॥

भावार्थ-भिक्षुक विशेषसे अन्तःकरणकी शुद्धिको करै क्योंकि वह ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है और आत्मज्ञानमें स्वतन्त्र करनेवाली है ॥ ६२ ॥

अवेक्ष्यागर्भवासाश्चकर्मजागतयस्तथा। आधयोव्याधयःक्लेशाजरारूपविपर्ययः ॥

पद-अवेक्ष्याः १ गर्भवासाः १ च८-कर्मजाः १ गतयः १ तथा८-आधयः १ व्याधयः १ क्लेशाः १ जरा १ रूपविपर्ययः १ ॥

भवोजातिसहस्रेषुप्रियाप्रियविपर्ययः। ध्यानयोगेनसंपश्येत्सूक्ष्मआत्मात्मानिस्थितः ॥

पद-भवः १ जातिसहस्रेषु ७ प्रियाप्रियविपर्ययः १ ध्यानयोगेन ३ संपश्येत् क्रि-सूक्ष्मः १ आत्मा १ आत्मनि ७ स्थितः १ ॥

योजना-गर्भवासाः कर्मजाः गतयः तथा आधयः व्याधयः क्लेशाः जरारूपविपर्ययः जातिसहस्रेषु भवः प्रियाप्रियविपर्ययः एते आवेक्ष्याः सूक्ष्म आत्मा आत्मनि स्थितः इति ध्यानयोगेन संपश्येत् ॥

तात्पर्यार्थ-वैराग्यकी सिद्धिके लिये मूत्र और विष्ठा आदिसे भरेहुए नाना प्रकारके गर्भमें वासकी पर्यालोचना (विचार) करै अर्थात् इस संसारमें ऐसे कुत्सित विष्ठासे भरे गर्भमें वसना पडता है इत्यादि। और निषिद्धकर्मोंसे पैदाहुई जो महारौरव आदि नरकोंमें पतनरूप गति, मनकी पीडा, ज्वर, अतीसार आदि शरीरके रोग, अविद्या, स्मित, राग, द्वेष, अभिनिवेशरूप पांच क्लेश, शरीरमें वलि, मांस आदि जिसमें शुष्क होजाते हैं ऐसी जरा अवस्था, पूर्व रूपका कुंजा, कुबडा आदि रूपसे अन्यथा होजानारूप, रूपविपर्यय, कुत्ता, सूकर, गधा, सर्प आदि अनेक जातियोंमें उत्पत्ति और इष्ट (स्वाभिलषित) की अप्राप्ति और अनिष्ट (जिसकी चाह न हो) की प्राप्ति इत्यादि अनेक क्लेशोंको प्राप्त करनेवाले यह संसारका स्वरूप है इस प्रकार विचार कर उस संसारके परिहारके लिये आत्मज्ञानके उपायरूप इंद्रियोंका जीतना उसमें यत्न करै। चित्तकी वृत्तिके रोकनेकी योग और आत्माकी एकाग्रता और बाह्यरूप आदि विषयोंसे निवृत्तिको ध्यान कहते हैं। निदिध्यासन है दूसरा नाम जिसका ऐसे इन ध्यान और योगोंसे सूक्ष्म शरीर और प्राण आदिसे पृथक् क्षेत्रज्ञ जिसका नाम

---

१ दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेंद्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

है और ब्रह्मके बीचमें अवस्थित है इस प्रकार तत्त्व और पदार्थोंकी ऐक्यताको भली प्रकार देखै। इसीसे इस श्रुतिमें आत्मा देखने योग्य है इस वाक्यसे आत्माको साक्षात्काररूप दर्शनको कहकर उसके साधनरूप इस वाक्यसे श्रवण, मनन और निदिध्यासनको कहा है ॥

भावार्थ-गर्भमें निवास, कर्मसे पैदा हुई गति, आधि, व्याधि, क्लेश, जरा, रूपविपर्यय, अनेक जातियोंके विषय जन्म, प्रिय (इष्ट) अप्रियका विपर्यय इनको विचारपूर्वक देखै। आत्मामें स्थित सूक्ष्म आत्मा है इस प्रकार ध्यानयोगसे आत्माके स्वरूपको विचारै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

नाश्रमःकारणंधर्मेक्रियमाणोभवेद्धिसः।
अतोयदात्मनोपथ्यंपरेषांनतदाचरेत् ६५ ॥

पद्-नऽ-आश्रमः १ कारणम् १ धर्मे ७ क्रियमाणः १ भवेत् क्रि-हिऽ-सः १ अतःऽ-यत् १ आत्मनः ६ अपथ्यम् १ परेषाम् ६ नऽ-तत् १ आचरेत् क्रि- ॥

योजना-आश्रमः धर्मे कारणं नास्ति हि यस्मात् सः क्रियमाणा भवेत् तस्मात् यत् आत्मनः अपथ्यं तत् परेषां न आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वश्लोकमें कहा जो आत्माकी उपासनारूप धर्म है उसमें आश्रम अर्थात् दण्ड कमण्डलु आदिका धारण कारण नहीं है, क्योंकि वह कियाजाय तो अत्यंत दुष्कर नहीं तिससे जो आत्मामें उद्वेग करनेवाले कठोर भाषण आदि हैं उनको पराये निमित्त न करै। इस वचनसे आश्रमका निराकरण ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणरूप अन्तःकरणकी शुद्धिके पैदा करनेमें राग द्वेषका परित्याग अन्तरंगरूपसे प्रधान (मुख्य कारण) है इस रागद्वेषकी प्रशंसाके लिये है, कुछ आश्रमके परित्यागके लिये नहीं, क्योंकि वह स्मृतिसे विदित है। सोई मनु (अ० ६ श्लो० ६६) ने कहा है दूषितभी मनुष्य जिस किसी आश्रममें वसता हुआ धर्मको करै, सब प्राणियोंके ऊपर सम रहै, क्योंकि केवल लिंग कमण्डलु आदि धर्ममें कारण नहीं ॥

भावार्थ-आश्रम धर्मके विषय कारण नहीं, क्योंकि वह करनेमें अत्यंत दुष्कर नहीं है। इससे जो आत्माके उद्वेग करनेवाले कठोर वचन आदि हैं उनको दूसरेके निमित्त न करै ॥ ६५ ॥

सत्यमस्तेयमक्रोधोह्रीःशौचंधीर्धृतिर्दमः।
संयतेंद्रियताविद्याधर्मःसर्वउदाहृतः ६६ ॥

पद्-सत्यम् १ अस्तेयम् १ अक्रोधः १ ह्रीः १ शौचम् १ धीः १ धृतिः १ दमः १ संयतेन्द्रियता १ विद्या १ धर्मः १ सर्वः १ उदाहृतः १ ॥

योजना-सत्यम् अस्तेयम् अक्रोधः ह्रीः शौचं धीः धृतिः दमः संयतेन्द्रियता विद्या एषः सर्वः धर्मः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ-यथार्थ और प्रियवचनका उच्चारणरूप, और दूसरेके द्रव्यको न चुराना वह अस्तेय, और अपना जो तिरस्कार करै उसके ऊपरभी क्रोध नहीं करना वह अक्रोध, ह्री (लज्जा), आहार आदिकी शुद्धिरूप शौच, हित और अहितको जो विचारना रूप धी, इष्ट वस्तुके वियोग होनेपर और अनिष्ट (दुःख) वस्तुकी प्राप्ति होनेपर

१ आत्मावारे द्रष्टव्यः।
२ श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

१ दूषितोपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे वसन्। समः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम्॥

जो चित्तमें हलचलता पैदाहो उस चित्तको जो पूर्वकी समान स्थिर करना वह धृति, मदका जो त्याग वह दम, जिनका प्रतिषेध नहीं है ऐसे विषयोंपर भी चित्तका जो न लगाना वह संयतेन्द्रियता, आत्माका जो ज्ञान वह विद्या, इन सब सत्य आदिके करनेसे सम्पूर्ण धर्मका अनुष्ठान यथावत् हो जाता है । इस श्लोकसे दण्ड कमण्डलु आदि जो बाह्यचिह्न हैं उनसे सत्य आदि आत्माके गुणोंको अन्तरंगता (श्रेष्ठता वा आवश्यकता) द्योतन की ॥

भावार्थ–सत्य, चोरी न करना, क्रोधसे रहित होनाँ, लज्जा, शौच, बुद्धि, धैर्य, दम, इन्द्रियोंको जीतना और आत्मज्ञान ये सम्पूर्ण धर्मका स्वरूप है ॥ ६६ ॥

निःसरंतियथालोहपिंडात्तप्तात्स्फुलिंगकाः । सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानःप्रभवंतिहि ॥

पद–निःसरन्ति क्रि–यथाऽ–लोहपिंडात् ५ तप्तात् ५ स्फुलिंगकाः १ सकाशात् ५ आत्मनः ६ तद्वत्ऽ–आत्मानः १ प्रभवंति क्रि–हिऽ–॥

योजना–यथा तप्तात् लोहपिंडात् स्फुलिंगकाः निःसरन्ति तद्वत् आत्मनः सकाशात् आत्मानः प्रभवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ–यद्यपि जीव और परमात्मामें पारमार्थिक कोई भेद नहीं है तथापि परमात्माके सकाशसे अविद्यारूप उपाधिभेदसे भिन्न जीवात्मा उत्पन्न होते हैं, इससे जीव और परमात्मामें भेदका व्यपदेश (व्यवहार) किया जाता है । जैसे अग्निमें तैयार हुए लोहेके गोलेमेंसे स्फुलिंग (अग्निके कण) निकलते हैं और उनको जगत्में . स्फुलिंग इस नामान्तरसे उच्चारण करते हैं । इससे उपपन्न (स्थित हुआ) आत्माको आत्माके विषय स्थित देखना । अथवा इसका यह दूसरा उत्थानिकापूर्वक अर्थ करते हैं कि जब सब क्षेत्रज्ञ सुषुप्ति और प्रलयकालके समय ब्रह्ममें लीन (अन्तर्धान) होजाते हैं तब आत्माकी उपासनाविधि किस क्षेत्रज्ञके विषय है । इससे यह निःसरन्ति आदि श्लोकसे उत्तर कहते हैं कि यद्यपि प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपसे सब क्षेत्रज्ञ लीन होजाते हैं तथापि फिर उसी ब्रह्मके सकाशसे अविद्यारूप उपाधिके भेदसे भिन्नरूप जीवात्मा उत्पन्न होते हैं और कर्मके वशसे स्थूल शरीरके अभिमानी (कि मैं स्थूल हूं, कृश हूं) होजाते हैं । तिससे आत्माकी उपासनाविधिमें विरोध नहीं । लोहपिण्डका दृष्टान्त इस समताको सूचन करनेको दिया है जैसे लोहपिण्डकी अग्निसे उत्पन्न हुए अग्निके कण भिन्न प्रतीत होते हैं इसी प्रकार परमात्मासे उत्पन्न हुए जीव पृथक् हैं, परमार्थतः कुछ भेद नहीं ॥

भावार्थ–जैसे तपाये हुए लोहेके गोलेमेंसे स्फुलिंग निकलते हैं इसी प्रकार आत्माके सकाशसे आत्मा (जीव) उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥

तत्रात्मा हि स्वयं किंचित्कर्म किंचित्स्वभावतः । करोति किंचिदभ्यासाद्धर्माधर्मोभयात्मकम् ॥ ६८ ॥

पद–तत्रऽ–आत्मा १ हिऽ–स्वयम्ऽ–किंचित्ऽ–कर्म २ किंचित्ऽ–स्वभावतःऽ–करोति क्रि–किंचित्ऽ–अभ्यासात् ५ धर्माधर्मोभयात्मकम् २ ॥

योजना–हि (निश्चयेन) तत्र आत्मा किंचित् धर्माधर्मोभयात्मकं कर्म स्वयं करोति किंचित् स्वभावतः किंचित् अभ्यासात् करोति ॥

तात्पर्यार्थ–यद्यपि तिस प्रलयरूप अवस्थामें परिस्पन्द (हलनचलन) रूप क्रिया

नहीं होती तथापि धर्म और अधर्मका अध्यवसायरूप मानसकर्म होता है और उस कर्मकोही विशिष्ट (जरायुज) शरीर आदिके ग्रहणमें कारणता है। क्योंकि मनु (अ० १२ श्लो० ९) ने लिखाहै कि वाणीसे किये कर्मोंसे पक्षी और मृगकी योनिको और मनसे किये कर्मोंसे चाण्डालयोनिको प्राप्त होता है। इस प्रकार मानसकर्मसे शरीरको ग्रहण करके स्वयंही अर्थात् इस अन्वयव्यतिरेककी अपेक्षाके विनाही स्तनसे उत्पन्न हुए दूधके पीनेपर तृप्ति होती है और उसके न पीनेपर तृप्ति नहीं होती। और पूर्वजन्मके अनुभव (ज्ञान) का संस्कार जो है उसको किसी अदृष्टके बलसे उद्बुद्ध (खुलना) होनेसे जिसको पूर्वजन्ममें किये हुए हित अहित कार्योंका स्मरण होजाता है वह किंचित् दुग्धपान आदि कर्मोंको करता है। और किसी प्रयोजन आदिके विनाही पिपीलिका (चींटी) आदिके भक्षण रूप कर्मको यदृच्छासे करता है। और किसी धर्म अधर्मरूप कर्मकी जन्मान्तरके अभ्यासके बलसे करता है। सोई स्मृत्यन्तरमें लिखा है कि जो जन्म जन्ममें दान वा अध्ययन वा तप अभ्यास (अतिशयसे) किया है। उसी अभ्यासके बलसे फिरभी उसी दान आदिका अभ्यास करता है। इस प्रकार यह बात युक्त हुई कि जीवोंको कर्मोंकी विचित्रतासे जरायुज आदि देहकी विचित्रता प्राप्त होती है।

भावार्थ-ऐसी अवस्थामें यह आत्मा किसी कर्मको स्वयं करता है, किसीको स्वभावसे करता है और किसी धर्म और अधर्म रूप कर्मको पूर्व जन्मके अभ्यासके बलसे करताहै ॥

निमित्तमक्षरःकर्ताबोद्धाब्रह्मगुणीवशी।
अजःशरीरग्रहणात्सजातइतिकीर्त्यते ६९॥

पद-निमित्तम् १ अक्षरः १ कर्ता १ बोद्धा १ ब्रह्म १ गुणी १ वशी १ अजः १ शरीरग्रहणात् ५ सः १ जातः १ इतिऽ-कीर्त्यते क्रि-॥

योजना-निमित्तम् अक्षरः कर्ता बोद्धा ब्रह्म गुणी वशी अजः सः शरीरग्रहणात् जातः इति कीर्त्यते ॥

तात्पर्यार्थ-वह सत्य आत्मा इस संपूर्ण जगत्के प्रपंचको प्रकट होनेपर अविद्याके समावेशसे स्वयंही समवायी, असमवायी और निमित्तरूप तीनि प्रकारका कारणही है। कार्यकोटिमें प्रविष्ट नहीं है। क्योंकि वह अक्षर अर्थात् नाशसे रहित है। कदाचित् कोई शंका करै कि इस कार्यरूप जगत्में सुख दुःख और मोहरूप सत्त्व आदि गुणके विकार देखे जाते हैं, तो उस गुणवाली प्रकृतिकोही जगत्का कर्ता मानना उचित है, उन गुणोंसे रहित ब्रह्मको नहीं। सो ठीक नहीं। क्योंकि जीवोंको भोगने योग्य जो सुख और दुःख हैं उनका कारणरूप जो अदृष्ट (धर्म अधर्म) हैं उसका देखनेवाला ब्रह्मही है, इससे आत्माही कर्ता है प्रकृति नहीं। और यह प्रकृति अचेतन है इससे नाम और रूपोंसे नाना प्रकारके जो भोक्ताओंके समूह हैं उनके भोगके अनुकूल भोग्य (उत्तम पदार्थ) और भोगायतन (शरीर आदि) जिसमें रचे जाते हैं ऐसे इस जगत्की रचनाभी उसके विषय युक्त नहीं है। इससे यह धर्म और अधर्मका साक्षी चेतन ब्रह्मही कारण है, और वही ब्रह्म अर्थात् इस जगत्का विस्तार करनेवाला

१ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।
२ प्रतिजन्म यदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः। तेनैवाभ्यासयोगेन तदेवाभ्यसते पुनः॥

है, और यह ब्रह्म निर्गुण भी नहीं है, क्योंकि प्रकृति प्रधान है दूसरा नाम जिसका ऐसी अविद्यारूप जो तीनों गुणोंकी शक्ति जिसमें विद्यमान है। इससे यद्यपि आप निर्गुण भी है तो भी उस अविद्यारूप शक्तिके द्वारा सत्त्व आदि गुणोंका सम्बन्धी कहा जाता है। इस इतनी बातसेही प्रकृतिको कारणता नहीं है, क्योंकि वह आत्मा वशी अर्थात् स्वतंत्र है और प्रकृति परतंत्र है। यदि आत्माके समान प्रकृतिहीको जगत् करनेमें स्वतंत्र अन्य पदार्थ है ऐसा विचारो सो भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रकृतिको उस प्रकारकी माननेमें कोई प्रमाण नहीं, इससे आत्माही जगत्का तीन प्रकारका कारण है। तथा अज अर्थात् उत्पत्तिसे रहित है इससे उसकी साक्षात् उत्पत्ति नहीं है तथापि शरीरके ग्रहण करनेसे जात (उत्पन्न) ऐसा कहा जाता है। क्योंकि वह अन्य अवस्थाके संबन्धसे उत्पन्न होता है। जैसे गृहस्थाश्रमके सम्बन्धसे, गृहस्थोऽयं जातः ऐसा कहते हैं ॥

भावार्थ–वह आत्मा कारण अविनाशी जगत्का कर्ता, बोद्धा, ब्रह्म, सत्त्व आदि गुणवाला, वशी (स्वतंत्र), अज अर्थात् उत्पत्तिसे रहित है और वह केवल शरीरके ग्रहण करनेसे जात (पैदा हुआ) कहा जाता है ॥ ६९ ॥

सर्गादौ सयथाकाशंवायुंज्योतिर्जलंमहीम्। सृजत्येकोत्तरगुणांस्तथादत्तेभवन्नपि॥७० ॥

पद–सर्गादौ ७ सः १ यथाऽ–आकाशम् २ वायुम् २ ज्योतिः २ जलम् २ महीम् २ सृजति क्रि–एकोत्तरगुणान् २ तथाऽ–आदत्ते क्रि–भवन् १ अपिऽ–॥

योजना–सः सर्गादौ यथा आकाशं वायुं ज्योतिः जलम् महीम् एकोत्तरगुणान् सृजति, तथा भवन् अपि आदत्ते ॥

तात्पर्यार्थ–सृष्टिके रचनेके समय जिस प्रकार परमात्मा, शब्द है एक गुण जिसका ऐसे आकाशको और शब्द, स्पर्श ये दो हैं गुण जिसमें ऐसे वायुको और शब्द, स्पर्श, रूप ये तीन हैं गुण जिसमें ऐसे तेजको, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस ये चार गुण हैं जिसमें ऐसे जलको, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच गुण हैं जिसमें ऐसी पृथ्वीको, इस प्रकार पूर्वसे २ एक २ गुण है अधिक जिनमें ऐसे इनको रचता है तिसी प्रकार आत्मा भी, जीवभावको प्राप्त होकर उत्पन्न हुआ अपने शरीरके आरंभक रूपसे उनको ग्रहण करता है ॥

भावार्थ–सर्ग आदिमें जैसे परमात्मा एक २ गुण जिनमें पूर्वसे अधिक है ऐसे इन आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी इनको रचता है उसी प्रकार आपभी जीवनभावको प्राप्त होकर उनको शरीर रूपसे ग्रहण करता है ॥ ७० ॥

आहुत्याप्यायतेसूर्यःसूर्याद्वृष्टिस्तथौषधिः। तदन्नंरसरूपेणशुक्रत्वमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

पद–आहुत्या ३ आप्यायते क्रि–सूर्यः १ सूर्यात् ५ वृष्टिः १ तथाऽ–औषधिः १ तदन्नम् १ रसरूपेण ३ शुक्रत्वम् २ अधिगच्छति क्रि–॥

योजना–आहुत्या सूर्यः आप्यायते। सूर्यात् वृष्टिः, तथा वृष्टेः ओषधिः, ओषध्या अन्नं जायते, तत् अन्नं रसरूपेण शुक्रत्वम् अधिगच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ–यजमान जो पुरोडाश आदि आहुतिको अग्निमें गेरता है उसके रससे सूर्य वृद्धिको प्राप्त होता है और जिसमें कालके वश घृत आदि हविका रस परिपाकको प्राप्त होजाता है ऐसे सूर्यसे वर्षा होती है और उस वर्षासे व्रीहि (धान) आदि ओषधिरूप अन्न पैदा होताहै

और वह अन्न भक्षण किया हुआ रससे रुधिर इत्यादि क्रमसे वीर्य और शोणितरूपको प्राप्त होताहै ॥

भावार्थ-आहुतिके देनेसे सूर्य वृद्धिको प्राप्त होता है, और उस सूर्यसे वर्षा होती है और उस वर्षासे औषधि रूप अन्न उत्पन्न होता है, वह अन्न रसरूपसे शुक्र शोणित रूपको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

स्त्रीपुंसयोस्तुसंयोगे विशुद्धे शुक्रशोणिते ।
पंचधातून्स्वयंषष्ठआदत्तेयुगपत्प्रभुः ॥ ७२॥

पद--स्त्रीपुंसयोः ६ तुऽ--संयोगे ७ विशुद्धे७ शुक्रशोणिते ७ पंचधातून् २ स्वयम्ऽ-षष्ठः १ आदत्ते क्रि-युगपत्ऽ-प्रभुः १ ॥

योजना-स्त्रीपुंसयोः संयोगे सति विशुद्धे शुक्रशोणिते स्थित्वा पंचधातून् स्वयं षष्ठः प्रभुः युगपत् आदत्ते (गृह्णाति)

तात्पर्यार्थ-ऋतुकालके समय स्त्री और पुरुषका संयोग होनेपर जो स्त्रीका और पुरुषका वीर्य और शोणित, इस स्मृत्यंतरमें कहे हुए दोषोंसे रहित अर्थात् वात पित्त कफ दुष्ट ग्रंथि पूय क्षीणमूत्र पुरीष गंध वीर्य इन सब बीजोंसे हीन, परस्पर मिलते रहै उसमें स्थित होकर पृथिवी आदि पंच भूतरूप जो पांच धातु हैं उनको यह प्रभु अर्थात् शरीरके बनानेमें अधर्मधर्मरूपी कर्मके संबन्धसे समर्थ छठा आप चेतन स्वरूप आत्मा एक कालमें ग्रहण करता है अर्थात् उसको भोगका आयतन (जिसमें भोग भोगा जाय) बनाता है, सोई शारीरिकमें लिखा है कि स्त्री और पुरुषके मिलनेपर जो यह वीर्य योनिमें जाकर स्त्रीके रजसे मिलता है उस समय उसी क्षणमें भूतात्मा और सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन गुणों सहित वायु प्रेरणासे गर्भाशयमें स्थित होता है ॥

भावार्थ-स्त्री और पुरुषके संयोग होनेपर दोषसे रहित शुक्र और शोणितमें स्थित होकर वह भूतात्मा पृथिवी आदि पांच भूत और छठा आप एक कालमेंही ग्रहण करता है. ॥ ७२ ॥

इंद्रियाणिमनःप्राणोज्ञानमायुः सुखंधृतिः ।
धारणाप्रेरणंदुःखमिच्छाहंकारएवच ॥७३॥

पद-इन्द्रियाणि १ मनः १ प्राणम् १ आयुः १ सुखम् १ धृतिः १ धारणा १ प्रेरणम् १ दुःखम् १ इच्छा १ अहंकारः १ एवऽ-चऽ-॥

प्रयत्नआकृतिर्वर्णः स्वरद्वेषौभवाभवौ ।
तस्यैतदात्मजंसर्वमनादेरादिमिच्छतः ७४॥

पद-प्रयत्नः १ आकृतिः १ वर्णः १ स्वरद्वेषौ १ भवाभवौ १ तस्य ६ एतत् १ आत्मजम् १ सर्वम् १ अनादेः ६ आदिम् २ इच्छतः ६ ॥

योजना-इन्द्रियाणि मनः प्राणः ज्ञानम् आयुः सुखम् धृतिः धारणा प्रेरणम् दुःखम्, इच्छा च पुनः अहंकारः प्रयत्नः आकृतिः वर्णः स्वरद्वेषौ भवाभवौ एतत् सर्वम् आदिमिच्छतः अनादेः तस्य आत्मनः आत्मजम् आत्मजन्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-जो आगे कहेंगे वे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय और मन, आश्रयके भेदसे जो भिन्न कहे जाते हैं ऐसे प्राण, अपान, व्यान-उदान और समान ये शरीरकी वायु, रूप, प्राण, ज्ञान, शतवर्ष आदितक जीवनरूप

---

१ वातपित्तश्लेष्मदुष्टग्रंथिपूयक्षीणमूत्रपुरीषगंधरेतांस्यबीजानि ।

२ स्त्रीपुंसयोः संयोगे योनौ रजसाभिसंसृष्टं शुक्रं तत्क्षणमेव सह भूतात्मना गुणैश्च सत्त्वरजस्तमोभिः सह वायुना प्रेर्यमाणं गर्भाशये तिष्ठति ।

आयु, सुख, धृति (चित्तकी स्थिरता) और प्रज्ञा और मेधारूप धारण और ज्ञानेंद्रिय, और कर्मेंद्रियोंका अधिष्ठातृत्वरूप, प्रेरण, दुःख (चित्तका उद्वेग), इच्छा, अहंकार, प्रयत्न (उद्यम), आकार, गौर कृष्ण आदि वर्ण, षड्ज गांधार आदि स्वर, वैर, पुत्र और पशु आदिका विभवरूप भव और इनका न होना रूप अभव वे सब शरीरके ग्रहण करनेकी इच्छावाला जो अनादि नित्य ब्रह्म है, उससे उत्पन्न होते हैं अर्थात् वह आत्मा जो पूर्व जन्ममें कर्म करता है उसीके अनुकूल ये सब पैदा होते हैं ॥

भावार्थ–इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान, अवस्था, सुख, धैर्य, बुद्धि, प्रेरण, दुःख, इच्छा, अहंकार, प्रयत्न, आकार, वर्ण, स्वर, द्वेष, भव, अभव ये सब शरीरकी इच्छावाले नित्य आत्मा (भूतात्मा) से उत्पन्न होते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

प्रथमेमासिसंक्लेदभूतोधातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदंद्वितीयेतुतृतीयेंगेंद्रियैर्युतः ॥ ७५॥

पद्–प्रथमे ७ मासि ७ संक्लेदभूतः १ धातुविमूर्च्छितः १ मासि ७ अर्बुदम् १ द्वितीये ७ तुऽ–तृतीये ७ अंगेन्द्रियैः ३ युतः १ ॥

योजना–प्रथमे मासि धातुविमूर्च्छितः संक्लेदभूतो भवति द्वितीये मासि अर्बुदरूपो भवति तु पुनः तृतीये मासि अंगेंद्रियैः युतो भवति ॥

तात्पर्यार्थ–यह चेतन आत्मा पृथिवी आदि धातुओंके विषै जल और दूधके समान एक होकर प्रथम मासमें द्रव (पतला) रूप रहताहै, करडा नहीं होता और दूसरे महीनेमें कुछ २ करडा मांसके पिण्ड (लोंदा) केसा आकार होता है । यहां यह अभिप्राय है कि गर्भाशयकी पवन और पेटकी पाचनअग्नि इन दोनोंसे कुछ २ सूखता २ वह वीर्यके संबन्धसे पतला जो पृथिवी आदिका समूह है सो तीस दिनमें जाकर करडापनको प्राप्त होता है । सोई सुश्रुतमें लिखा है कि कुछ ठंढी और गरम वायु और जठराग्निसे परिपाकको प्राप्त हुआ पृथिवी आदिका समूह करडा होजाता है और वह तीसरे महीनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है ॥

भावार्थ–यह भूतात्मा पृथिवी आदिके साथ मिलाहुआ पहिले महीनेमें पतला होता है, और दूसरे महीनेमें कुछ २ मांसके लोंदेकेसा आकार करडा होजाता है और तीसरे महीनेमें इंद्रियोंसे युक्त होता है ॥ ७५ ॥

आकाशाल्लाघवंसौक्ष्म्यंशब्दंश्रोत्रंबलादिकं ।
वायोश्चस्पर्शनंचेष्टांव्यूहनंरौक्ष्यमेवच ॥७६॥

पद्–आकाशात् ५ लाघवम् २ सौक्ष्म्यम् २ शब्दम् २ श्रोत्रम् २ बलादिकम् २ वायोः ५ चऽ–स्पर्शनम् २ चेष्टाम् २ व्यूहनम् २ रौक्ष्यम् २ एवऽ–चऽ ॥

पित्तात्तुदर्शनंपक्तिमौष्ण्यंरूपंप्रकाशिताम् ।
रसात्तुरसनंशैत्यंस्नेहंक्लेदंसमार्दवम् ॥ ७७॥

पद्–पित्तात् ५ तुऽ–दर्शनम् २ पक्तिम् २ औष्ण्यम् २ रूपम् २ प्रकाशिताम् २ रसात् ५ तुऽ–रसनम् २ शैत्यम् २ स्नेहम् २ क्लेदम् २ समार्दवम् २ ॥

भूमेर्गंधंतथाघ्राणंगौरवंमूर्तिमेवच ।
आत्मागृह्णात्यजः सर्वंतृतीयेस्पंदतेततः ७८

पद्–भूमेः ५ गन्धम् २ तथाऽ–घ्राणम् २ गौरवम् २ मूर्त्तिम् २ एवऽ–चऽ–आत्मा १ गृह्णा-

---

१ द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिपच्यमानो भूतसंघातो घनो जायते ।

ति क्रि–अजः १ सर्वम् २ तृतीये ७ स्पन्दते क्रि–ततः८– ॥

योजना–आत्मा आकाशात् लघिमानं सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रम् बलादिकम् वायोः सकाशात् स्पर्शनम् चेष्टाव्यूहनं रौक्ष्यम् च पुनः पित्तात् (तेजसः) दर्शनम् पक्तिम् औष्ण्यम् रूपम् प्रकाशिताम् तु पुनः रसात् रसनम् शैत्यम् स्नेहम् समार्दवम् क्लेदं भूमेः सकाशात् गन्धम् तथा घ्राणम् गौरवं च पुनः मूर्तिम् गृह्णाति ततः (तदनन्तरम्) स्पन्दते ॥

तात्पर्यार्थ–यहां आत्मा गृह्णाति इस पदका सबके साथ संबंध होता है। वह भूतात्मा आकाशसे लंघनरूप क्रियामें उपयोग करनेवाली लघुता, सौक्ष्म्य (सूक्ष्मता), शब्द श्रवणेंद्रिय और दृढतारूपी बल और आदिपदसे छिद्र और मुख आदि अवकाश इनको ग्रहण करता है। क्योंकि गर्भोपनिषद्में यह देखा जाता है कि आत्मा आकाशसे शब्द, श्रोत्र,[1] अवकाश और सम्पूर्ण छिद्र इनको प्राप्त होताहै। और पवनसे स्पर्शके ज्ञानवाली त्वचारूप इंद्रिय, गमन आगमन (जाना आना) आदि चेष्टा हस्त चरण आदि अंगोंका अनेक प्रकारसे जो फैलाना वह व्यूहन, कर्कशता (थकावट) और चशब्दसे स्पर्श इनको प्राप्त होता है। और तेजसे दर्शन (देखना), चक्षुरूप इंद्रिय, खाये हुए अन्नका जो पचजाना, वह पक्ति, उष्ण, स्पर्श, श्याम आदिरूप, प्रकाशिता (मुख आदि अंगकी तेजी) और तिसी प्रकार संताप (चित्तकी तीक्ष्णता) और सहनशीलता इनको प्राप्त होता है। क्योंकि गर्भोपनिषद्में लिखा है कि शूरवीरता, असहन, तीक्ष्णता, अन्नका पचना, शरीरमें गरमाई, मुखपर तेजी (दमदमाहट), संताप, वर्ण और रूपके ग्रहण करनेवाली इंद्रिय ये तेजसे पैदा होते हैं। इसी प्रकार जलसे रसके ग्रहण करनेवाली जिह्वा, शरीरमें ठंढापन, चिकनाई, कोमलता और आर्द्रता (गीलापन) और पृथिवीसे गंधके ग्रहण करनेवाली घ्राण इंद्रिय, भारीपन, शरीरका आकार इनको ग्रहण करता है। इस प्रकार यद्यपि आत्मा वास्तवमें जन्मसे रहित है तथापि इन सबको तीसरे मासमें ग्रहण करताहै। फिर चौथे मासमें इधर उधर चलने लगता है। सोई शारीरकमें लिखा है कि तिससे चलने आदिमें चौथे मासके विषय यत्न करता है ॥

भावार्थ–आत्मा वास्तवमें उत्पत्तिसे रहित है तथापि गर्भमें स्थित होकर तीसरे मासमें आकाशसे लघुता, सूक्ष्मता, शब्द, कर्ण इंद्रिय, बल आदि और वायुसे स्पर्श इंद्रिय, चेष्टा, अंगोंका फैलाना, कर्कशता और तेजसे देखना, पचना, गरमाई, रूप, तेजी और जलसे जिह्वा, ठंढापन, शरीरपर चिकनाई, कोमलता. गीलापन और पृथिवीसे गन्धके ग्रहण करनेवाली नासिका इंद्रिय, भारीपन और शरीरका आकार इनको ग्रहण करता है, फिर चौथे महीनेमें चलने लगता है ॥ ७६॥ ७७॥ ७८ ॥

द्वौहृदस्याप्रदानेनगर्भोदोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यंवरणंवापितस्मात्कार्यंप्रियंस्त्रियाः ॥

पद–द्वौहृदस्य ६ अप्रदानेन ३ गर्भः १ दोषम् २ अवाप्नुयात् क्रि–वैरूप्यम् २ मरणम् २ वा८–अपि८–तस्मात् ५ कार्यम् १ प्रियम् २ स्त्रियाः ६ ॥

---

[1] आकाशाच्छब्दं श्रोत्रं विविक्ततां सर्वछिद्रसमूहांश्च ।

[2] शौर्यामर्षतैक्ष्ण्यपक्त्यौष्ण्यभ्राजिष्णुतासंतापवर्णरूपेन्द्रियाणि ।

[1] तस्माच्चतुर्थे मासि चलनादावभिप्रायं करोति ।

योजना–गर्भो दौहृदस्य अप्रदानेन दोषं वैरूप्यम् अथवा मरणम् अपि अवाप्नुयात् तस्मात् स्त्रियाः प्रियं कार्यम् ॥

तात्पर्यार्थ–एक गर्भका हृदय और दूसरा गर्भिणी स्त्रीका हृदय इस प्रकार दो हृदयवाली स्त्रीका जो मनोरथ होता है उसे दौहृद कहते हैं। उसके न देनेसे अर्थात् पूरण न करनेसे गर्भ कुत्सित रूप वा मरणरूप दोषको प्राप्त हो जाता है, इससे उस दोषके परिहारके लिये गर्भिणी स्त्रीको जो अच्छा लगै उस मनोरथको अवश्यही सिद्ध करना। सोई सुश्रुतमें लिखा है कि दोहृदयवाली स्त्रीको द्विहृदया कहते हैं उसके मनोरथको सिद्ध किया जाय तो वह अत्यंत पराक्रमी और बहुत कालतक जीनेवाले पुत्रको पैदा करती है। वह स्त्री तिसी प्रकार गर्भ ग्रहणसे लेकर व्यायाम (कसरतका काम) आदिकोभी छोडदे। क्योंकि सुश्रुतमेंही दिखाया है कि व्यायाम, वा मैथुन, अति भोजन, दिनमें सोना, रातमें जागना, शोक, डर, सवारीमें बैठना, भागकर चलना, मुर्गेकी तरह बैठना, और रुधिरका छोडाना इनको गर्भिणी स्त्री वर्जे दे। इस स्त्रीको गर्भ है यह बात श्रम आदि चिह्नोंसे जानना क्योंकि सुश्रुतमें ही लिखा है कि, जिसने सद्यः ही गर्भका ग्रहण किया हो उस स्त्रीको श्रम, जी मिचलाना, प्यासका लगना, सक्थि (गोडे) योंमें दर्द होना, वीर्य और शोणित इन दोनोंकी गांठ बंधनी, और योनिका स्फुरण ये होते हैं ॥

भावार्थ–दौहृदके न देनेसे गर्भ कुत्सितरूप अथवा मरणको प्राप्त हो जाता है इससे स्त्रीको इष्ट वस्तुकी सिद्धि अवश्यही करनी चाहिये ॥ ७९ ॥

स्थैर्यंचतुर्थेत्वंगानांपंचमेशोणितोद्भवः ।
षष्ठेबलस्यवर्णस्यनखरोम्णांचसंभवः ॥८०॥

पद–स्थैर्यम् १ चतुर्थे ७ तुऽ–अंगानाम् ६ पंचमे ७ शोणितोद्भवः १ षष्ठे ७ बलस्य ६ वर्णस्य ६ नखरोम्णाम् ६ चऽ–संभवः १ ॥

योजना–तु पुनः चतुर्थे मासि अंगानां स्थैर्यं भवति पंचमे मासि शोणितोद्भवः षष्ठे मासि बलस्य वर्णस्य च पुनः नखरोम्णां संभवो भवति ॥

ता०भा०–तीसरे मासमें प्रगट हुए अंगोंकी स्थिरता चौथे महीनेमें होती है और पांचवें मासमें रुधिरकी उत्पत्ति और छठे महीनेमें बल और वर्ण और नख और शरीरके रोमोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ८० ॥

मनश्चैतन्ययुक्तोऽसौनाडीस्नायुशिरायुतः ।
सप्तमेचाष्टमेचैवत्वङ्मांसस्मृतिमानपि ॥८१॥

पद–मनश्चैतन्ययुक्तः १ असौ १ नाडीस्नायुशिरायुतः १ सप्तमे ७ चऽ–अष्टमे ७ चऽ–एवऽ–त्वङ्मांसस्मृतिमान् १ अपि ऽ–॥

योजना–असौ गर्भः सप्तमे मासे मनश्चैतन्ययुक्तः नाडीस्नायुशिरोयुतो भवति च पुनः अष्टमे मासि त्वङ्मांसस्मृतिमान् भवति ॥

ता०भा०–यह पूर्वोक्त गर्भ सातवें महीनेमें मन, चेतना, सब शरीरमें प्राणवायुको ले जानेवाली नाडी अस्थि (हड्डी) योंको बांधनेवाली स्नायु, और वात, पित्त, श्लेष्म इनको शरीरमें प्राप्त करनेवाली शिरा, इनसे युक्त हो जाता

---

१ द्विहृदयां नारीं दौहृदिनीमाचक्षते । तदभिलषितं दद्याद्वीर्यवन्तं चिरायुषं पुत्रं जनयति ॥

२ ततः प्रभृति व्यायामव्यवायातितर्पणदिवास्वप्नरात्रिजागरणशोकभययानारोहणवेगधारणकुक्कुटासनशोणितमोक्षणानि परिहरेत् ।

३ सद्योगृहीतगर्भायाः श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसीदनम् । शुक्रशोणितयोरेव बन्धः स्फुरणं च योनेः ।

है और आठवें महीनेमें त्वचा, मांस और स्मृति इनसे युक्त होताहै ॥ ८१ ॥

पुनर्धात्रींपुनर्गर्भमोजस्तस्यप्रधावति ।
अष्टमेमास्यतोगर्भोजातःप्राणैर्वियुज्यते ॥

पद्–पुनः ऽ–धात्रीम् २ पुनः ऽ– गर्भम् २ ओजः १ तस्य ६ प्रधावति क्रि–अष्टमे ७ मासि ७ अतः ऽ–गर्भः १ जातः १ प्राणैः ३ वियुज्यते क्रि– ॥

योजना–तस्य (अष्टममासिकस्य) गर्भस्य ओजः धात्रीं गर्भं पुनः पुनः धावति अतः अष्टमे मासि जातो गर्भः प्राणैः वियुज्यते ॥

तात्पर्यार्थ–उस आठ महीनेके गर्भका ओज जिसका नाम है ऐसा कोई गुण तेजरूप होताहै, वह धात्री और गर्भके प्रति वाँरवार अत्यंत चंचलतासे चलायमान रहताहै, इससे आठवें महीनेमें जो गर्भ पैदा होताहै वह प्राणोंसे रहित हो जाता है इससे यह बात दिखाई कि उस ओजकी स्थितिही जीवनमें कारण है । ओजका रूप स्मृत्यन्तरमें यह दिखाया है कि जो हृदयके बीचमें निर्मल और कुछ गरम पित्तकरके सहित स्थित रहता है उसको शरीरमें ओज कहते हैं । वह शरीर उस ओजके नाश होनेपर नाशको प्राप्त हो जाता है ॥

भावार्थ–तिस आठ महीनेके गर्भका ओज कभी धात्रीमें और कभी गर्भमें इस प्रकार बडी चंचलतासे दौडता रहता है इससे आंठवें महीनेमें उत्पन्न हुआ गर्भ प्राणोंसे रहित हो जाता है ॥ ८२ ॥

नवमे दशमे वापि प्रबलैः सूतिमारुतैः ।
निःसार्यतेबाणइवयंत्रच्छिद्रेणसज्वरः ८३ ॥

पद्–नवमे ७ दशमे ७ वाऽ–अपिऽ–प्रबलैः ३ सूतिमारुतैः ३ निःसार्यते क्रि–बाणः १ इवऽ–यन्त्रच्छिद्रेण ३ सज्वरः १ ॥

योजना–नवमे वा दशमे अपि मासि प्रबलैः सूतिमारुतैः गर्भः सज्वरः यंत्रच्छिद्रेण बाण इव निःसार्यते ॥

तात्पर्यार्थ–जब गर्भ चक्षु आदि इंद्रिय और हस्त चरण आदि अंगोंसे परिपूर्ण हो जाता है तब उत्पन्न करनेमें प्रबल कारण जो वायु है वह उस गर्भको दशवें वा नौवें महीनेमें और अपि शब्दसे सप्तम और आठवें मासमें, स्नायु और हड्डी चर्म आदिसे बनाया हुआ जो यन्त्र है उसके छिद्रके द्वारा बडे भारी दुःखोंसे पीडित करती हुई इस प्रकार निकालती है जैसे धनुषधारी पुरुष धनुषके यन्त्रसे अत्यंत वेगसे बाणको निकाल देता है । निकलनेके अनंतर जब उसके शरीरसे बाहिरकी पवनका स्पर्श होताहै तब उसको उसी समय पूर्व जन्मका स्मरण सब नष्ट होजाताहै क्योंकि निरुक्तके अठारहवें अध्यायमें यह लिखा है कि उत्पन्न होनेके समय जब उससे वायुका स्पर्श होता है तब पूर्व जन्मके जन्म, मरण, शुभ और अशुभ कर्म इनका स्मरण जाता रहता है ।

भावार्थ–नौवें वा दशवें महीनेमें उस गर्भको पवन योनिके छिद्रद्वारा इस प्रकार शीघ्र निकालती है जैसे धनुष्यसे बाण निकलता है ॥ ८३ ॥

तस्यषोढाशरीराणिषट्त्वचोधारयंतिच ।
षडंगानितथास्थ्नांचसहषष्ट्याशतत्रयम् ८४

पद्–तस्य ६ षोढाऽ–शरीराणि १ षट् २ त्वचः २ धारयन्ति क्रि–चऽ–षट् २ अंगानि २ तथाऽ–अस्थ्नाम् ६ चऽ–सहऽ–षष्ट्या ३ शतत्रयम् २ ॥

१ हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषदुष्णं सपित्तकम् । ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छति ॥

१ जातः स वायुना स्पृष्टो न स्मरति पूर्वजन्म णरमं कर्म च शुभाशुभम् ।

योजना-तस्य षोढा शरीराणि षट् त्वचः धारयन्ति च पुनः षट् अंगानि तथा अस्थ्नां षष्ट्या सह शतत्रयं धारयन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-उस आत्माके जो जरायुज, अण्डज रूप शरीर हैं वे रुधिर आदि छः धातुओंके परिपाक करनेवाली जो छः अग्नि हैं उनके स्थानके संबन्धसे छः प्रकारके होते हैं । सोई कहते हैं कि जब अन्नका रस जठर (पेट) की अग्निसे परिपाकको प्राप्त होताहै तब वह रुधिर रूप होजाता है । और जब वह रुधिर अपने कोश (स्थान) की अग्निसे पकता है तब मांस हो जाता है । वह मांस अपने कोशकी अग्निद्वारा पकनेसे मेदरूप होजाता है । वह मेद भी अपने कोशकी अग्निसे पचनेमें हड्डीरूप होता है । और वह अस्थि अपने कोशकी अग्निसे पकनेसे मज्जारूप हो जाता है और वह मज्जाभी अपने कोशकी अग्निसे चरम धातुरूप (वीर्य) से परिणाम (रूपान्तर) को प्राप्त होताहै । वह चरम धातु परिणामको नहीं प्राप्त होता । वह चरम धातुही आत्माका प्रथम कोश है, इस प्रकार छः कोशकी अग्निके सम्बन्ध होनेसे शरीर छः प्रकारके हैं । और अन्न रसरूपी जो प्रथम धातुहै उसकी स्थितिका नियम न होनेसे उसकी अपेक्षाको लेकर शरीरका छः प्रकारसे अन्य प्रकार नहीं है । और वे शरीर छः त्वचाओंको धारण करते हैं । अर्थात् रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र ये जिनके नाम हैं तैसी ये छः धातु केलाके स्तम्भकी त्वचा (बक्कल) के समान बाह्य और आभ्यन्तररूपसे स्थित हुए त्वचा (छाल) की समान आच्छादक होनेसे छः त्वचाओंको धारण करते हैं । सो यह बात आयुर्वेदमें प्रसिद्ध है । तिसी प्रकार दो हाथ, दो चरण, एक मुख और एक गात्र इन छः अंगोंको और जो आगेके छः श्लोकोंसे कहेंगे वे ३६० तीन सौ साठ हड्डी इनको ग्रहण करता है ॥

भावार्थ-उसका छः प्रकारका शरीर छः त्वचाओंको और छः अंगोंको और तीन सौ साठ हड्डियोंको ग्रहण करता है ॥ ८४ ॥

स्थालैःसहचतुःषष्टिर्दन्तावैविंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्चतेषांस्थानचतुष्टयम् ॥

पद-स्थालैः ३ सह-चतुःषष्टिदन्ताः १ वैऽ-विंशतिः १ नखाः १ पाणिपादशलाकाः १ चऽ-तेषाम् ६ स्थानचतुष्टयम् १ ॥

योजना-स्थालैः सह चतुःषष्टि (६४) दन्ताः विंशतिः नखाः च पुनः पाणिपादशलाकाः भवन्ति तेषां स्थानचतुष्टयं विज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-दांतोंके मूलके बत्तीस अस्थियोंको स्थाल (जड) कहते हैं उन करके सहित चौंसठ दांत होते हैं । और नख और हाथ और चरणोंकी शलाका अर्थात् शलाईके आकारकी हड्डी जो मणिबन्धके ऊपर अंगुलियोंके मूलमें रहती हैं, वे बीस होती हैं । इन बीस २ नख और शलाकाओंके स्थान चार होते हैं अर्थात् दो चरण दो हाथ इस प्रकार एक सौ चार १०४ अस्थि होते हैं ॥

भावार्थ-मूलके अस्थियों सहित चौंसठ दांत और बीस २ नख और हाथ पैरोंकी शलाका होती हैं जिनके दो हाथ दो पैर ये चार स्थान हैं ॥ ८५ ॥

षष्ट्यंगुलीनांद्वेपाष्ण्योर्गुल्फेषुचचतुष्टयम् ।
चत्वार्यरत्निकास्थीनिजंघयोस्तावदेवतु ८६

पद-षष्टिः १ अंगुलीनाम् ६ द्वे १ पाष्ण्योः ६ गुल्फेषु ७ तुऽ-चतुष्टयम् १ चत्वारि १ अरत्निकास्थीनि १ जंघयोः ६ तावत् १ एवऽ- तुऽ-॥

योजना-अंगुलीनां षष्टिः पाष्ण्योः द्वे गु-

ल्फेषु चतुष्टयम् तु पुनः अरत्निकास्थीनि च-त्वारि तु पुनः जंघयोः तावत् अस्थिसमूहो भवति ॥

तात्पर्यार्थ–और प्रत्येक बीस अंगुलियोंमें तीन ३ अस्थि होनेसे साठ अस्थि होते हैं, और चरणोंके पश्चिम भागको पार्ष्णि (एडी) कहते हैं उनके दो अस्थि होते हैं, और एक २ पादमें दो दो गुल्फ (टकने) होते हैं, और उनके चार अस्थि होते हैं, अरत्नि है प्रमाण जिनका ऐसे चार अस्थि भुजाओंमें और चार अस्थि जंघाओंमें होते हैं, इस प्रकार चौहत्तर ७४ अस्थि होते हैं ॥

भावार्थ–अंगुलियोंमें साठ और एडीमें दो गुल्फोंमें चार और जंघोंमें अरत्नि कितना जिनका प्रमाण है ऐसे चार अस्थि होते हैं ॥ ८६ ॥

द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे ।
अक्षतालूषकश्रोणीफलकेचविनिर्दिशेत्॥८७

पद–द्वे १ द्वे १ जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे ७ अक्षतालूषकश्रोणिफलके ७ चऽ–विनिर्दिशेत् क्रि–॥

योजना–जानुकपोलोरुफलकांससमुद्भवे च पुनः अक्षतालूषकश्रोणिफलके द्वे अस्थनी विनिर्दिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ–जानु अर्थात् जंघा और उसकी संधि (गोडा), कपोल (गाल), ऊरु (सक्थि) का फलक, अंस (कंधा) अर्थात् भुजाका शिर, अक्ष अर्थात् कर्ण और नेत्रके मध्यमें शंखका अधोभाग, तालूषक (तालवा वा काकुद), श्रोणि (ककुझती) का फलक इन सातोंमें प्रत्येक दो २ अस्थि होते हैं, इस प्रकार चौदह अस्थि हुए ॥

भावार्थ–जानु, कपोल, ऊरुका फलक, अंस, अक्ष, तालु और श्रोणिका फलक इनमें दो २ अस्थि होते हैं ॥ ८७ ॥

भगास्थ्येकंतथापृष्ठेचत्वारिंशच्चपंचच ।
ग्रीवापंचदशास्थीस्याज्जत्र्वेकैकंतथाहनुः ॥

पद–भगास्थि १ एकम् १ तथाऽ–पृष्ठे ७ चत्वारिंशत् १ चऽ–पंच १ चऽ–ग्रीवा १ पंचदशास्थी १ स्यात् क्रि–जत्रु १ एकैकम् २ तथाऽ–हनुः १ ॥

योजना–भगास्थि एकम् तथा पृष्ठे पंच च पुनः चत्वारिंशत् अस्थीनि ४५ भवन्ति ग्रीवा पंचदशास्थी स्यात् जत्रुणी एकैकं अस्थि तथा हनुः एकास्थि भवति ॥

ता०भा०–भग (गुह्य) का अस्थि एक होता है और पृष्ठ (पश्चिम भाग) में ४५ पैंतालसि और ग्रीवा (कंधरा) में १५ पंद्रह अस्थि होते हैं और जत्रु अर्थात् वक्षस्थल और कांधेकी सन्धि उन दोनोंमें एक २ अस्थि होता है। और हनु (ठोडी) में एक अस्थि होता है इस प्रकार ६४ चौंसठ अस्थि हुए ॥ ८८ ॥.

तन्मूलेद्वेललाटाक्षिगंडेनासाघनास्थिका ।
पार्श्वकाःस्थालकैःसार्द्धमर्बुदैश्चद्विसप्ततिः ।

पद–तन्मूले ७ द्वे १ ललाटाक्षिगण्डे ७ नासा १ घनास्थिका १ पार्श्वकाः १ स्थालकैः ३ सार्द्धऽ–अर्बुदैः ३ चऽ–द्विसप्ततिः १ ॥

योजना–तन्मूले ललाटाक्षिगण्डे द्वे अस्थिनी भवतः नासा घनास्थिका भवति स्थालकैः च पुनः अर्बुदैः सार्द्ध पार्श्वकाः द्विसप्ततिः भवंति ॥

तात्पर्यार्थ–उस हनूके मूलमें और ललाट नेत्र और गण्ड (कपोल नेत्रोंका मध्यमाग) इनमें दो २ अस्थि होते हैं और नासिकामें घन नामका एक अस्थि होता है, और कक्षके निचले प्रदेशमें जो अस्थि उन्हें पार्श्व

कहते हैं। वे उनके आधारभूत स्थालक और अर्बुद नामके अस्थियोंसहित बहत्तर ७२ पार्श्वक होते हैं। पूर्वोक्त नौ अस्थियोंके मिलानेसे ये इकासी अस्थि होते हैं॥

भावार्थ–हनुका, मस्तक, नेत्र, गंडस्थल इनमें दो २ अस्थि होते हैं। नासिकामें घन नामका एक अस्थि होताहै और कक्षके अधःप्रदेशके अस्थि स्थालक और अर्बुदोंसहित बहत्तर होतेहैं ॥८९॥

द्वौशंखकौकपालानिचत्वारिशिरसस्तथा । उरःसप्तदशास्थीनिपुरुषस्यास्थिसंग्रहः ९०॥

पद–द्वौ १ शंखकौ १ कपालानि १ चत्वारि १ शिरसः ६ तथाऽ–उरः १ सप्तदशास्थीनि १ पुरुषस्य ६ अस्थिसंग्रहः १ ॥

योजना–शंखकौ द्वौ तथा चत्वारि कपालानि उरः सप्तदशास्थीनि भवन्ति अयं पुरुषस्य अस्थि-संग्रहः उक्तः ॥

ता० भा०–भ्रुकुटी और कर्णके मध्यप्रदेशके जो अस्थि उन्हें शंख कहते हैं। वे दो होते हैं। और शिरके कपाल चार होते हैं। उर (छाती) के अस्थि सत्रह होते हैं। इस प्रकार २३ तेईस अस्थि होते हैं ! पूर्वोक्त सब अस्थियोंके मिला-नेसे ३६० तीन सौ साठ अस्थि हुए, इस प्रकार पुरुषके अस्थियोंका वर्णन किया ॥ ९० ॥

गंधरूपरसस्पर्शशब्दाश्चविषयाःस्मृताः । नासिकालोचनेजिह्वात्वक्श्रोत्रंचेंद्रियाणिच

पद–गंधरूपरसस्पर्शशब्दाः१ चऽ–विषयाः१ स्मृताः १ नासिका १ लोचने १ जिह्वा १ त्वक् १ श्रोत्रम् १ चऽ–इंद्रियाणि १ चऽ– ॥

योजना–च पुनः गंधरूपरसस्पर्शशब्दाः विषयाः स्मृताः च पुनः नासिका लोचने जिह्वा त्वक् श्रोत्रं च इंद्रियाणि भवंति ॥

ता० भा०–गंधरूप रस स्पर्श शब्द ये पुरुषके बन्धनमें हेतु होनेसे विषय कहे हैं, क्योंकि विषय शब्द षिञ् बन्धने धातुका रूप है। और गंध आदि पांचों विषयोंका ज्ञान जिनसे होवे नासिका, नेत्र, जिह्वा, त्वचा, श्रोत्र रूप पांच ज्ञानेन्द्रिय होती हैं ॥ ९१ ॥

हस्तौपायुरुपस्थंचजिह्वापादौचपंचवै । कर्मेंद्रियाणिजानीयान्मनश्चैवोभयात्मकम्

पद–हस्तौ १ पायुः १ उपस्थम् १ चऽ–जिह्वा १ पादौ १ चऽ–पंच १ वैऽ–कर्मेंद्रि-याणि २ जानीयात् क्रि–मनः २ चऽ–एवऽ–उभयात्मकम् २ ॥

योजना–हस्तौ पायुः उपस्थं च पुनः जिह्वा पादौ एतानि पंचकर्मेंद्रियाणि जानीयात् च पुनः मनः उभयात्मकं जानीयात् ॥

तात्पर्यार्थ–हस्त, पायु (गुदा), उपस्थ (लिंग), जिह्वा, पाद ये हस्त आदि पांच कर्मेंद्रिय जाननी। अर्थात् इनसे ग्रहण, मलका त्याग, विषयका आनन्द, बोलना, गमन ये पांच कर्म होते हैं। और एककालमें दो आदि ज्ञानके न होनेसे जानने योग्य जो मन वह ज्ञान और कर्मेन्द्रिय दोनोंका सहकारी होनेसे उभ-यरूप जानना ॥

भावार्थ–हाथ, गुदा, लिंग, जिह्वा, पाद ये पांच कर्मेन्द्रिय जाननी और मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय उभयरूप जानना ॥ ९२ ॥

नाभिरोजोगुदंशुक्रंशोणितंशंखकौतथा । मूर्द्धासकंठहृदयप्राणास्यायतनानि च ९३॥

पद–नाभिः १ ओजः १ गुदम् १ शुक्रम् १ शोणितम् १ शंखकौ १ तथाऽ–मूर्द्धासकंठहृद-यम् १ प्राणस्य ६ आयतनानि १ चऽ–॥

योजना-नाभिः ओजः गुदं शुक्रं शोणितं तथा शंखकौ मूर्द्धासकंठहृदयं प्राणस्य आयतनानि एतानि भवन्ति ॥

ता० भा०-नाभि, ओज (बल), गुदा, शुक्र, शोणित, दोनों शंख, मस्तक, कांधे, कण्ठ, हृदय ये प्राणके दश स्थान होते हैं। यद्यपि समान नामका पवन सम्पूर्ण अंगमें विचरता है तथापि नाभि आदि स्थान विशेषोंका कहना अधिकताके अभिप्रायसे है अर्थात् अन्यस्थानोंकी अपेक्षा इनमें समान वायु अधिक रहता है ॥ ९३ ॥

वपावसावहननंनाभिःक्लोमायकृत्प्लिहा ।
क्षुद्रांत्रंवृक्ककौवस्तिःपुरीषाधानमेवच ९४ ॥

पद्-वपा १ वसा १ अवहननम् १ नाभिः १ क्लोमा १ यकृत् १ प्लिहा १ क्षुद्रांत्रम् १ वृक्ककौ १ बस्तिः १ पुरीषाधानम् १ एवऽ-चऽ-

आमाशयोथहृदयंस्थूलांत्रंगुदएवच ।
उदरंचगुदौकोष्ठ्यौविस्तारोयमुदाहृतः ९५

पद्-आमाशयः १ अथऽ-हृदयम् १ स्थूलान्त्रम् १ गुदः १ एवऽ-चऽ-उदरम् १ चऽ-गुदौ १ कोष्ठ्यौ १ विस्तारः १ अयम् १ उदाहृतः १ ॥

योजना-वपा वसा अवहननम् नाभि क्लोमा यकृत् प्लिहा क्षुद्रान्त्र वृक्ककौ बस्तिः पुरीषाधानम् च पुनः आमाशयः हृदयम् स्थूलान्त्रं च पुनः गुदः उदरं गुदौ कोष्ठ्यौ-अयं प्राणायतनस्य विस्तारः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ-वपा वसा, (मांसका स्नेह), नाभि, अवहनन-(फुप्फुस), क्लोमा, यकृत्, प्लिहा (तापतिल्ली), क्षुद्रान्त्र (छोटी २ आंत) जो हृदयमें रहती हैं, इनमें अवहनन और प्लिहा मांसपिण्डाकार वाम कुक्षिमें होतेहैं। और कालिकाको यकृत् और मांसपिण्डोंको क्लोमा कहते हैं। और वृक्कक अर्थात् हृदयके समीपमें स्थितमांसके पिण्ड, बस्ति (मूत्रस्थान), पुरीषाधान (मलाशय), आमाशय (अपक्क अन्नका स्थान), हृदय, स्थूल आंत, गुदा, उदर और बाहिरके गुद वलयसे भीतरके जो दो गुदाके वलय उन्हें कोष्ठ कहते हैं। वे नाभिके नीचले प्रदेशमें होते हैं। यह प्राणके स्थानोंका विस्तार कहा। पहिले श्लोकमें तो संक्षेप कहाथा इसीसे पहिले श्लोकमें कहे हुओंके मध्यमें किसी किसीका यहां फिर पाठ पढा है ॥

भावार्थ-वपा, वसा, अवहनन, नाभि, क्लोमा, यकृत्, प्लिहा, क्षुद्रान्त्र, वृक्कक, बस्ति, मलाशय, आमाशय, हृदय स्थूलान्त्र, गुदा, उदर और गुदाके भितरके दो कोष्ठ ये प्राणोंके स्थानोंका विस्तार कहा है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कनीनिकेचाक्षिकूटेशष्कुलीकर्णपत्रकौ ।
कर्णौशंखौभ्रुवौदंतवेष्टावोष्ठौककुंदरे ९६ ॥

पद्-कनीनिके १ चऽ-अक्षिकूटे १ शष्कुली १ कर्णपत्रकौ १ कर्णौ १ शंखौ १ भ्रुवौ १ दन्तवेष्टौ १ ओष्ठौ १ ककुंदरे १ ॥

वंक्षणौवृषणौवृक्कौश्लेष्मसंघातजौस्तनौ ।
उपजिह्वास्फिजौबाहूजंघोरुषुचपिंडिका ॥

पद्-वंक्षणौ १ वृषणौ १ वृक्कौ १ श्लेष्मसंघातजौ १ स्तनौ १ उपजिह्वा १ स्फिजौ १ बाहू १ जंघोरुषु ७ चऽ-पिण्डिका १ ॥

तालूदरंबस्तिशीर्षंचिबुकेगलशुंडिके ।
अवटश्चैवमेतानिस्थानान्यत्रशरीरके ॥ ९८ ॥

पद्-तालूदरम् १ बस्तिशीर्षम् १ चिबुके १ गलशुण्डिके १ अवटः १ चऽ-एवम्ऽ-एतानि १ स्थानानि १ अत्रऽ-शरीरके ७ ॥

अक्षिवर्णचतुष्कंचपद्धस्तहृदयानिच ।
नवच्छिद्राणितान्येवप्राणस्यायतनानितु ॥

पद–अक्षिवर्णचतुष्कम् १ चऽ–पद्भस्तहृद्यानि १ चऽ–नव १ छिद्राणि १ तानि १ एवऽ–प्राणस्य ६ आयतनानि १ तुऽ–॥

योजना–कनीनिके, च पुनः अक्षिकूटे, शष्कुली, कर्णपत्रकौ, कर्णौ, शंखौ, भ्रुवौ, दंतवेष्टौ, ओष्ठौ, ककुंदरे, वंक्षणौ, वृषणौ, वृक्कौ, श्लेष्मसंघातजौ स्तनौ, उपजिह्वा, स्फिजौ, बाहू, जंघोरुषु पिण्डिकाः, तालूदरं, वस्तिशीर्षं, चिबुके, गलशुण्डिके, च पुनः अवटः एतानि अत्र शरीरके प्राणस्य स्थानानि भवन्ति । अक्षिवर्णचतुष्कं च पुनः पद्भस्तहृद्यानि तान्येव नवछिद्राणि प्राणस्य आयतानानि भवन्ति ॥

ता० भा०–कनीनिका (नेत्रोंके तारे), अक्षिकूट (नेत्र और नासिकाकी सन्धि), शष्कुली (कर्णछिद्र), कर्णपत्र (कर्णपाली), कर्ण, दन्तवेष्ट (दन्तवाली); ओष्ठ, ककुंदर, (जघनके कूप), वंक्षण (जघन और उनकी संधि) और पूर्वोक्त वृक्क, श्लेष्मके संघातसे पैदा हुए स्तन, उपजिह्वा (घंटिका), स्फिज (कटिका प्रोथ), बाहु, जंघा और ऊरुकी पिण्डिका अर्थात् मांसल प्रदेश, गलशुण्डिका अर्थात् हनुका मूल और गलेकी संन्धि, अवट (शरीरमें निम्नभाग) ये इस शरीरमें प्राणके स्थान होते हैं और नेत्र कनीनिकाके समीपके चार वर्ण जो श्वेत होते हैं, चरण हाथ हृदय वेही पूर्वोक्त नव छिद्र अर्थात् दो नासिका, दो नेत्र, दो कान, मुख, पायु, उपस्थ ये प्राणके आयतन (रहनेके स्थान) होते हैं ॥ ९६ ॥ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

शिराःशतानिसप्तैवनवस्नायुशतानिच ।
धमनीनांशतेद्वेतुपंचपेशिशतानिच १०० ॥

पद–शिराः १ शतानि १ सप्त १ एवऽ–नव १ स्नायुशतानि १ चऽ–धमनीनाम् ६ शते १ द्वे १ तुऽ–पंच १–पेशीशतानि १ चऽ– ॥

योजना–सप्तशतानि शिराः च पुनः स्नायुशतानि नव धमनीनां द्वे शते पेशीशतानि पंच भवन्ति ॥

तात्पयार्थ–नाभिसे मिली वात पित्त श्लेष्मको वहनेवाली चालीस शिरा होती हैं, सकल शरीर व्यापिनी वे नाना शाखावाली सात सौ होती हैं । तैसेही अंग और प्रत्यंगकी सन्धियोंके बन्धन (स्नायु) नौ सौ होते हैं । नाभिसे उत्पन्न हुई चौबीस धमनी प्राण आदि वायुओंका प्रेरणेवाली शाखाके भेदसे २०० दो सौ होती हैं । और पेशी अर्थात् मांसल है आकार जिनका और ऊरु पिण्डिका आदि अंग प्रत्यंगकी सन्धिरूप पेशी पांच सौ होती हैं ॥

भावार्थ–सात सौ शिरा, नौ सौ स्नायु, दो सौ धमनी, पांच सौ पेशी शरीरमें होती हैं ॥ १०० ॥

एकोनत्रिंशल्लक्षाणितथानवशतानिच ।
षट्पंचाशच्चजानीतशिराधमनिसंज्ञिताः ॥

पद–एकोनत्रिंशल्लक्षाणि १ तथाऽ–नवशतानि १ चऽ–षट्पञ्चाशत् १ चऽ–जानीत क्रि–शिराः १ धमनिसंज्ञिताः १ ॥

योजना–शिराः धमनिसंज्ञिता एकोनत्रिंशल्लक्षाणि तथा नवशतानि च पुनः षट्पञ्चाशत् यूयं जानीत ॥

ता०भा०–शिरा और धमनी ये दोनों मिलकर शाखाके भेदसे उनतीस लाख नौ सौ छप्पन (२९००९५६) होती हैं । हे सामश्रवा आदि मुनियो ! यह तुम जानो ॥ १०१ ॥

त्रयोलक्षास्तुविज्ञेयाःश्मश्रुकेशाःशरीरिणां ।
सप्तोत्तरंमर्मशतंद्वेचसंधिशतेतथा ॥१०२॥

पद–त्रयः १ लक्षाः १ तुऽ–विज्ञेयाः १ श्मश्रुकेशाः १ शरीरिणाम् ६ सप्तोत्तरम् २ मर्मशतम् १ द्वे १ चऽ–सन्धिशते १ तथाऽ– ॥

योजना-शरीरिणां श्मश्रुकेशाः त्रयो लक्षाः विज्ञेयाः । सप्तोत्तरं मर्मशतं विज्ञेयं तथा द्वे सन्धिशते विज्ञेये ॥

ता० भा०-शरीरधारियोंके श्मश्रु और केश मिलकर तीन लाख होते हैं। मरण और क्लेश करनेवाले मर्मस्थान १०७ एक सौ सात होते हैं और अस्थियोंकी सन्धि दो सौ होती हैं। स्नायु और शिराओंकी सन्धि तो अनन्त हैं ॥ १०२ ॥

रोम्णांकोव्यस्तुपंचाशच्चतस्रःकोट्यएवच । सप्तषष्टिस्तथालक्षाःसार्द्धाःस्वेदायनैःसह ॥

पद-रोम्णाम् ६ कोट्यः १ तुऽ-पंचाशत् १ चतस्रः १ कोट्यः १ एवऽ-चऽ-सप्तषष्टिः १ तथाऽ-लक्षाः १ सार्द्धाः १ स्वेदायनैः ३ सहऽ-॥

वायवीयैर्विगण्यंतेविभक्ताःपरमाणवः ॥ यद्प्येकोऽनुवेत्त्येषांभावानांचैवसंस्थितिम् ॥

पद-वायवीयैः ३ विगण्यन्ते क्रि-विभक्ताः १ परमाणवः १ यदपिऽ-एकः १ अनुवेत्ति क्रि-एषाम् ६ भावानाम् ६ चऽ-एवऽ-संस्थितिम् २ ॥

योजना-रोम्णां परमाणवः वायवीयैः स्वेदायनैः सह विभक्ताः पंचाशत् कोट्यः च पुनः चतस्रः कोट्यः तथा सार्द्धाः सप्तषष्टिलक्षाः विगण्यन्ते । हे मुनयः यदपि एषां भावानां संस्थितिम् यः अनुवेत्ति सः एकः मुख्य इति यावत् ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्वोक्तशिरा और केशोंसहित रोमोंके परमाणु स्वेद झरनेके सुषिरोंसहित सूक्ष्मसे अत्यंत सूक्ष्मभाग चौवन किरोड साडे सडसठ लाख पवनके परमाणसे पृथक् कर गिने जाते हैं। यह बात शास्त्र दृष्टिसे कही है क्योंकि चक्षु आदि इंद्रियोंके द्वारा यह विषय जाननेके अयोग्य है। इस शिरा आदि भावोंकी स्थितिके अत्यन्त कठिन अर्थको हे मुनियो ! जो कोई जानता है वह एकही है अर्थात् प्रधान है। इससे तुम्हारे मध्यमें इसको जो कोई जाने वहभी तुम्हारे मध्यमें मुख्य है। इससे बुद्धिमान् मनुष्य भावोंकी स्थितिको यत्नसे जानै ॥

भावार्थ-रोमोंके परमाणु स्वेदके वहनेवाले वायुके परमाणुसे पृथक् किये हुए चौवन किरोड साडे सडसठ लाख होते हैं इन भावोंकी स्थितिको जो जानता है वह मुख्य है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

रसस्यनवविज्ञेयाजलस्यांजलयोदश। सप्तैवतुपुरीषस्यरक्तस्याष्टौप्रकीर्तिताः ॥

पद-रसस्य ६ नव १ विज्ञेयाः १ जलस्य ६ अंजलयः १ दश १ सप्त १ एवऽ-तुऽ-पुरीषस्य ६ रक्तस्य ६ अष्टौ १ प्रकीर्तिताः १ ॥

षट्श्लेष्मापंचपित्तंचचत्वारोमूत्रमेवच । वसात्रयोद्वौतुमेदोमज्जैकोर्धतुमस्तके १०६

पद- षट् १ श्लेष्मा १ पंच १ पित्तम् १ चऽ-चत्वारः १ मूत्रम् १ एवऽ-चऽ-वसा १ त्रयः १ द्वौ १ तुऽ-मेदः १ मज्जा १ एकः १ अर्द्धम् १ तुऽ-मस्तके ७ ॥

श्लेष्मौजसस्तावदेवरेतसस्तावदेवतु। इत्येतदस्थिरंवर्ष्मयस्यमोक्षायकृत्यसौ ॥

पद-श्लेष्मौजसः ६ तावत् १ एवऽ-रेतसः ६ तावत् १ एवऽ-तुऽ-इतिऽ-एतत् १ अस्थिरम् १ वर्ष्म १ यस्य ६ मोक्षाय ४ कृती १ असौ १ ॥

योजना-रसस्य नव अंजलयः जलस्य दश अंजलयः पुरीषस्य सप्त अंजलयः रक्तस्य अष्टौ अंजलयः प्रकीर्तिताः श्लेष्मा षट् पित्तं पंच च पुनः मूत्रं चत्वारः वसाः त्रयः मेदः द्वौ मज्जा एकः मस्तके अर्द्धं श्लेष्मौजसः तावत् (अर्द्धं) तु पुनः रेतसः तावत् अंजलय प्रकीर्तिताः यस्य एतत्

चर्म अस्थिरम् इति बुद्धिः असौ मोक्षाय कृती भवति। मोक्षाधिकार्यस्ति इत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ–भली प्रकार परिणामको प्राप्त हुआ जो भोजन उसका जो सार उसे रस कहते हैं। उसका प्रमाण शरीरमें नौ अंजलि होती हैं। पृथ्वीके परमाणुका संयोग है निमित्त जिसमें ऐसे जलकी दश अंजलि जाननी और पुरीष (मल) की सात। जठराग्निके परिपाकसे रक्त हुआ जो अन्नका रस उसे रक्त वा रुधिर कहते हैं, उसकी आठ अंजलि होती हैं। कफकी छः, पित्तकी पांच, मूत्रकी चार, वसा (मांसका स्नेह) की तीन, मेदा (मांसका रस) की दो, मज्जा अर्थात् अस्थियोंमें रहनेवाला जो सुषिर उसमें स्थित रसविशेष उसकी एक अंजलि होती है। मस्तकमें आधी अंजलि कफ और वीर्यके सारकी भी आधी अंजलि होती है। यह कथन भी उस अभिप्रायसे है जिसकी संपूर्ण धातु समान भावसे रहती हों और जिसकी धातु विषम हों उसका नियम नहीं। क्योंकि आयुर्वेदमें यह लिखा है कि शरीरोंके अस्थायी और विलक्षणता होनेसे दोष धातु मल इनका कोई परिमाण नहीं है। इस प्रकार ऐसा अस्थि और स्नायु आदिसे रचा हुआ यह देह अस्थिर है यह जिस पुरुषकी बुद्धि है वह मनुष्य मोक्षके लिये कृती अर्थात् समर्थ है। क्योंकि वैराग्य और नित्य अनित्य वस्तुका विवेकही मोक्षका हेतु है, इसीसे व्यासने लिखा है, कि सब प्रकार अशुद्धताका निधान, कृतघ्न, विनाशी जो शरीर उसके निमित्त भी मूढ मनुष्य पापोंको करते हैं। जो इस देहका रूप भीतर (रुधिर आदि) है, यदि वह बाहिर होजाय तो यह लोक दण्डको लेकर कुत्ते और काकोंको निवारण करै। तिससे ऐसे निन्दित शरीरकी आत्यन्तिक (सर्वथा) निवृत्तिके लिये आत्माकी उपासनामें यत्न करै ॥

भावार्थ–रसकी नौ अंजलि, जलकी दश, मलकी सात, रुधिरकी आठ, कफकी छः, पित्तकी पांच, मूत्रकी चार, वसाकी तीन, मेदाकी दो अंजलि होती हैं। मज्जाकी एक मस्तकमें आधी अंजलि कफ और वीर्यकी आधी अंजलि होती है। यह शरीर अस्थिर है यह जिसकी बुद्धि है, वह मनुष्य मोक्षको समर्थ होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिःसृताः। हिताहितानामनाड्यस्तासां मध्येशशिप्रभम् ॥ १०८ ॥

पद–द्वासप्ततिसहस्राणि १ हृदयात् ५ अभिनिःसृताः १ हिताहिताः १ नामऽ–नाड्यः १ तासाम् ६ मध्ये ७ शशिप्रभम् १ ॥

मंडलंतस्यमध्यस्थआत्मादीपइवाचलः। सज्ञेयस्तंविदित्वेहपुनराजायतेनतु ॥१०९॥

पद–मण्डलम् १ तस्य ६ मध्यस्थः १ आत्मा १ दीपः १ इवऽ–अचलः १ सः १ ज्ञेयः १ तम् २ विदित्वाऽ–इहऽ–पुनःऽ–आजायते क्रि–नऽ–तुऽ–॥

योजना–हृदयात् अभिनिःसृता द्वासप्ततिसहस्राणि हिताहिता नाम नाड्यः भवन्ति तासां मध्ये शशिप्रभं मण्डलं भवति तस्य मध्यस्थः यः दीपः इव अचलः सः आत्मा ज्ञेयः तं विदित्वा इह संसारे पुनः न आजायते ॥

तात्पर्यार्थ–हृदयके स्थानसे निकसी हुई कदम्बके पुष्पकी केशरके समान चारों

---

१ वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च। दोषधातुमलानां च परिमाणं न विद्यते ॥

२ सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः। शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ॥ यदि नामास्य कायस्य यदन्तस्तद्बहिर्भवेत्। दण्डमादाय लोकोयं शुनः काकांश्च कारयेत् ॥

तरफको फैली हुई और हित अहितके करनेसे हित अहित है नाम जिनका ऐसी नाडी ७२००० बहत्तर सहस्र (हजार) होती हैं। और अन्य तीन नाडी होती हैं उनमें इडा और पिंगला दो नाडी वाम और दक्षिण पार्श्वमें होती हैं और वे हृदयमें विपर्यस्त (उलटी) हुई नासिकाके छिद्रमें मिली प्राण और अपान वायुका स्थान होती हैं। सुषुम्ना नामकी तीसरी नाडी दण्डके समान मध्यमें रहती है और ब्रह्मरंध्रतक गई है। इन नाडियोंके मध्यमें जो चंद्रमाके समान प्रकाशमान मण्डल है वह निर्वात स्थानमें टिके हुए दीपकी समान अचल और प्रकाशमान होता है, वह आत्मा इसी प्रकार जानने योग्य है। उसके साक्षात् (प्रत्यक्ष) करनेसे मनुष्य इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता अर्थात् मोक्षको प्राप्त हो जाता है ॥

भावार्थ-हित अहित नामकी बहत्तर सहस्र नाडी हृदयसे निकली हैं, उनके मध्यमें चन्द्रमाके समान प्रकाशमान जो मण्डल उसके मध्यमें स्थित दीपके समान अचल आत्मा जानना, उसको जानकर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

ज्ञेयंचारण्यकमहंयदादित्यादवाप्तवान् ।
योगशास्त्रंचमत्प्रोक्तंज्ञेयंयोगमभीप्सता ॥

पद-ज्ञेयम् १ चऽ-आरण्यकम् १ अहम् १ यत् १ आदित्यात् ५ अवाप्तवान् १ योगशास्त्रम् १ चऽ-मत्प्रोक्तम् १ ज्ञेयम् १ योगम् २ अभीप्सता ३ ॥

योजना-यत् अहम् आदित्यात् अवाप्तवान् तत् आरण्यकं ज्ञेयं च पुनः योगम् अभीप्सता पुरुषेण मत्प्रोक्तं योगशास्त्रं ज्ञेयम् ॥

ता० भा०-चित्तवृत्तिका अन्य विषयोंसे तिरस्कार करके आत्माके विषय जो स्थिरता उसे योग कहते हैं। उसकी प्राप्तिके लिये जो मुझे सूर्यनारायणसे प्राप्त हुआ वह बृहदारण्यक और मेरा कहा हुआ योगशास्त्र जानने योग्य है ॥ ११० ॥

अनन्यविषयंकृत्वामनोबुद्धिस्मृतींद्रियम् ।
ध्येयआत्मास्थितोयोसौहृदयेदीपवत्प्रभुः ॥

पद-अनन्याविषयम् २ कृत्वाऽ-मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् २ ध्येयः १ आत्मा १ स्थितः १ यः १-असौ १ हृदये ७ दीपवत्ऽ-प्रभुः १ ॥

योजना-मनोबुद्धिस्मृतीन्द्रियम् अनन्यविषयं कृत्वा यः असौ प्रभु हृदये दीपवत् स्थितः असौ आत्मा ध्येयः ॥

ता० भा०-मन और बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियोंको आत्मासे भिन्न विषयोंमेंसे हटाकर केवल आत्मामें लगाकर वह आत्मा ध्यान करनेके योग्य है। जो प्रभु आत्मा निर्वात दीपकके समान निःकंप हुआ हृदयमें टिक रहा है यही उसका ध्यान है। जो बाह्य विषयोंके आभासको तिरस्कार करके चित्तकी वृत्ति आत्मामें प्रवण (झुकी) रहै इस प्रकार हो जाय जैसे शरावके सम्पुटमें रुका है प्रभाओंका विस्तार जिसका ऐसा प्रदीप होता है ॥ १११ ॥

यथाविधानेनपठन्सामगायमविच्युतम् ।
सावधानस्तदभ्यासात्परंब्रह्माधिगच्छति ॥

पद-यथाविधानेन ३ पठन् १ सामगायम् २ अविच्युतम् २ सावधानः १ तदभ्यासात् ५ परम् २ ब्रह्म २ अधिगच्छति क्रि-॥

योजना-अविच्युतं सामगायं यथाविधानेन पठन् पुरुषः तदभ्यासात् सावधानः परं ब्रह्म अधिगच्छति ॥

तात्पर्यार्थ-स्वाध्याय (पठन पाठन) के क्रमसे जाने हुए मार्गके अनुसार सामगानको अविच्युत (यथार्थ) सावधान होकर पढता हुआ मनुष्य उसके अभ्याससे पर-

ब्रह्मको प्राप्त होता है अर्थात् सामवेदके शब्दमें लगी है चित्तकी एकाग्र वृत्ति जिसकी ऐसा पुरुष सामके गानमें कुशल हुआ शब्दाकार शून्यकी उपासनासे परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। सोई कहाहै[1] कि जो शब्द ब्रह्ममें कुशल है वह परब्रह्मको प्राप्त होता है यह शब्द ब्रह्मकी उपासना उसके लिये है जिसकी चित्तवृत्ति निराकारालंबन रूपसे समाधिमें न लगै ॥

भावार्थ—विधिपूर्वक सावधानीसे सामवेद पढताहुआ मनुष्य उसके अभ्याससे परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ ११२ ॥

अपरांतकमुल्लोप्यंमद्रकंमकरीं तथा ॥
औवेणकंसरोबिंदुमुत्तरंगीतकानिच ॥११३॥

पद—अपरान्तकम् १ उल्लोप्यम् १ मद्रकम् १ मकरीम् १ तथाऽ—औवेणकम् १ सरोबिन्दुम् १ उत्तरम् १ गीतकानि १ चऽ—॥

ऋग्गाथापाणिकादक्षविहिताब्रह्मगीतिका।
गेयमेतत्तदभ्यासकरणान्मोक्षसंज्ञितम् ॥

पद—ऋग्गाथा १ पाणिका १ दक्षविहिता १ ब्रह्मगीतिका १ गेयम् १ एतत् १ तदभ्यासकरणात् ५ मोक्षसंज्ञितम् १ ॥

योजना—अपरान्तकम् उल्लोप्यं मद्रकं तथा मकरीम्, औवेणकं, सरोबिंदुम्, उत्तरम्, एतानि गीतकानि, ऋग्गाथा, पाणिका, दक्षविहिता, ब्रह्मगीतिका एतज्ज्ञेयं भवंति तदभ्यासकरणात् मोक्षसंज्ञितम् भवतीति शेषः ॥

ता० भा०—अपरान्तक, उल्लोप्य, मद्रक, मकरी, औवेणक, सरोबिंदु, उत्तर ये सात गीत होते हैं और चकारके पढनेसे आसारित वर्द्धमानक आदि महागीत लेने। और ऋग्गाथा, पाणिका, दक्षविहिता, ब्रह्मगीतिका ये चार गीतिका होतीहैं। यह अपरांतक आदि गीतोंका समूह मानाहै। आत्माका भाव जिसमें ऐसा और मोक्षका हेतु होनेसे मोक्ष संज्ञित मानने योग्य है अर्थात् इनके गानेसे मोक्ष होताहै। क्योंकि इसका अभ्यास एकाग्रताका संपादक होनेसे आत्माके संग जीवकी एकताका कारण है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

वीणावादनतत्त्वज्ञःश्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेनमोक्षमार्गंनियच्छति ॥

पद—वीणावादनतत्त्वज्ञः १ श्रुतिजातिविशारदः १ तालज्ञः १ चऽ—अप्रयासेन ३ मोक्षमार्गम् २ नियच्छति क्रि—॥

योजना—वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः च पुनः तालज्ञः पुरुषः अप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ—भरत आदि मुनियोंके कहे हुए वीणावादनके तत्त्वका ज्ञाता और जो श्रवण की जाय वह श्रुति जो सातों स्वरोंमें बाईस २२ प्रकारकी होती हैं कि षड्ज मध्यम धैवत ये तीनों प्रत्येक चार २ श्रुतिवाले होते हैं और ऋषभ और धैवतमें प्रत्येक तीन २ श्रुति होतीहैं गांधार निषादमें प्रत्येक दो २ श्रुति होती हैं। और स्वरोंकी जाति तो शुद्धरूप षड्ज आदि सात और संकर जाति ग्यारह इस प्रकार अठारह प्रकारकी हैं उनमें प्रवीण और ताल (गीतका परिमाण) के स्वरूपका ज्ञाता पुरुष उन स्वरोंमें अनुविद्ध (व्याप्त) ब्रह्मकी उपासनासे थोडेही परिश्रमसे मोक्षके मार्गको प्राप्त होताहै। क्योंकि गानेमें ताल आदिके भंगके भयसे चित्तकी वृत्ति आत्मामें अनायाससे हो जाती है ॥

भावार्थ—वीणा बजानेके तत्त्वका ज्ञाता श्रुतियोंकी जातिमें चतुर और तालका ज्ञाता

१ शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

पुरुष विना परिश्रमही मोक्षमार्गको प्राप्त हो जाता है ॥ ११५ ॥

गीतज्ञोयदियोगेननाप्नोति परमं पदम् ।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वातेनैवसहमोदते ॥११६॥

पद्-गीतज्ञः १ यदि ऽ-योगेन ३ नऽ-आप्नोति क्रि-परमम् २ पदम् २ रुद्रस्य ६ अनुचरः १ भूत्वाऽ-तेन ३ एवऽ-सहऽ-मोदते क्रि-॥

योजना-यदि गीतज्ञः पुरुषः योगेन परमं पदं न आप्नोति तर्हि रुद्रस्य अनुचरः भूत्वा तेन एव सह मोदते ॥

ता० भा०-चित्तके विक्षेप आदि विघ्नसे हते हुएकोभी अन्यफल कहते हैं कि, यदि गतिका ज्ञाता किसी प्रकारसे योगके द्वारा परम पदको प्राप्त न होय तो रुद्रका मंत्री अगिले जन्ममें होकर रुद्रके संगही क्रीडा करता है ॥ ११६ ॥

अनादिरात्माकथितस्तस्यादिस्तुशरीरकम् ।
आत्मनस्तुजगत्सर्वंजगतश्चात्मसंभवः ११७

पद्-अनादिः १ आत्मा १ कथितः १ तस्य ६ आदिः १ तुऽ-शरीरकम् १ आत्मनः ६ तुऽ-जगत् १ सर्वम् १ जगतः ५ चऽ-आत्मसंभवः १ ॥

योजना-आत्मा अनादिः कथितः तस्य आदिः शरीरकं भवति सर्वं जगत् आत्मनः सकाशात् भवति च पुनः जगतः आत्मसंभवः भवतीति शेषः ॥

ता० भा०-पूर्वोक्त रीतिसे आत्मा (क्षेत्रज्ञ वा जीव) अनादि कहाहै और शरीरका ग्रहण करनाही उसकी आदि (जन्म) कहा है ऐसे सब जगत् आत्मासे होता है और उत्पन्न हुए उस पृथिवी आदि भूतोंके समूहसे स्थूल शरीर रूपसे आत्माका संभव (जन्म) सर्ग आदिमें कहा है कि वह आत्मा आकाश आदिके अनुसार है ॥ ११७ ॥

कथमेतद्विमुह्यामःसदेवासुरमानवम् ।
जगदुद्भूतमात्माचकथंतस्मिन्वदस्वनः ॥

पद्-कथम्ऽ-एतत् १ विमुह्यामः क्रि-सदेवासुरमानवम् १ जगत् १ उद्भूतम् १ आत्मा १ चऽ-कथम्ऽ-तस्मिन् ७ वदस्व क्रि-नः ६ ॥

योजना-सदेवासुरमानवम् एतत् जगत् कथम् उद्भूतं च पुनः तस्मिन् आत्मा कथं उद्भूतः एतस्मिन् वयं विमुह्यामः नः (अस्माकम्) त्वं विस्तरेण वदस्व ॥

ता० भा०-जो यह देवता असुर मनुष्यसहित संपूर्ण जगत् है वह आत्माके सकाशसे कैसे उत्पन्न हुआ और उस जगत्में आत्मा कैसे तिरछी योनि मनुष्य सर्प आदि शरीरधारी होता है, इस विषयमें हम मोहको प्राप्त होतेहैं इससे मोह दूर करनेके लिये हमारे प्रति विस्तारसे कहो ॥ ११८ ॥

मोहजालमपास्येहपुरुषोदृश्यतेहियः ।
सहस्रकरपन्नेत्रःसूर्यवर्चाःसहस्रकः ॥११९॥

पद्-मोहजालम् २ अपास्यऽ-इहऽ-पुरुषः १ दृश्यते क्रि-हिऽ-यः १ सहस्रकरपन्नेत्रः १ सूर्यवर्चाः १ सहस्रकः १ ॥

सआत्माचैवयज्ञश्चविश्वरूपःप्रजापतिः ।
विराजःसोन्नरूपेणयज्ञत्वमुपगच्छति॥१२०॥

पद्-सः १ आत्मा १ चऽ-एवऽ-यज्ञः १ चऽ-विश्वरूपः १ प्रजापतिः १ विराजः १ सः १ अन्नरूपेण ३ यज्ञत्वम् २ उपगच्छति क्रि-॥

योजना-मोहजालम् अपास्य इह यः पुरुषः सहस्रकरपन्नेत्रः सूर्यवर्चाः सह-

---

१ स यथाकाशम् ।

स्त्रकः दृश्यते स आत्मा च पुनः यज्ञः विश्वरूपः प्रजापतिः विराजः अस्ति स आत्मा अन्नरूपेण यज्ञत्वम् उपगच्छति (प्राप्नोति)॥

तात्पर्यार्थ–इस जगत्में जो यह स्थूल शरीर आदि आत्मासे भिन्नमें आत्माका अभिमानरूप मोहजाल है उसको दूर करके और उससे भिन्न जो अनेक चरण हाथ नेत्रवाला और सूर्यके समान तेजधारी अनंत किरण और अनेक शिरवाला दीखता है वह आत्मा है, यह इससे कहा है कि तिस २ पदार्थकी शक्तिका आधार वह आत्मा है क्योंकि उस आत्माको साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) आदिके संबंधका अभाव है और यज्ञ प्रजापति है क्योंकि वह विश्वरूप (सर्वरूप) है, क्योंकि वह विराज है, इससे पुरोडाश आदि अन्न रूपसे यज्ञके रूपको प्राप्त होता है और यज्ञसे वृष्टि आदिके द्वारा प्रजाकी रचना होती है इस प्रकार आत्मा विश्वरूप है॥

भावार्थ–मोहके जालको दूर करके जो पुरुष अनेक करचरणनेत्रधारी सूर्यके समान तेजस्वी और अनेक शिरधारी दीखता है वह आत्मा है, और वही यज्ञ प्रजापति विश्वरूप है। क्योंकि वह विराजरूप अन्यरूपसे यज्ञ रूपको प्राप्त होता है॥ १२०॥

योद्रव्यदेवतात्यागसंभूतो रस उत्तमः।
देवान्संतर्प्यसरसोयजमानंफलेनच॥१२१॥

पद–यः १ द्रव्यदेवतात्यागसंभूतः १ रसः १ उत्तमः १ देवान् २ संतर्प्यऽ–सः १ रसः १ यजमानम् २ फलेन ३ चऽ–॥

संयोज्यवायुनासोमंनीयतेरश्मिभिस्ततः।
ऋग्यजुःसामविहितंसौरंधामोपनीयते॥

पद–संयोज्यऽ–वायुना ३ सोमम् २ नीयते क्रि–रश्मिभिः ३ ततःऽ–ऋग्युजुःसामविहितम् २ सौरम् २ धाम २ उपनीयते क्रि–॥

स्वमंडलादसौसूर्यःसृजत्यमृतमुत्तमम्॥
यज्जन्मसर्वभूतानामशनानशनात्मनाम्॥

पद–स्वमण्डलात् ५ असौ १ सूर्यः १ सृजति क्रि–अमृतम् २ उत्तमम् २ यत् १ जन्म १ सर्वभूतानाम् ६ अशनानशनात्मनाम् ६॥

तस्मादन्नात्पुनर्यज्ञःपुनरन्नंपुनःक्रतुः।
एवमेतदनाद्यंतंचक्रंसंपरिवर्तते॥ १२४॥

पद–तस्मात् ५ पुनःऽ–यज्ञः १ पुनःऽ–अन्नम् १ पुनःऽ–क्रतुः १ एवम्ऽ–एतत् १ अनाद्यन्तम् १ चक्रम् १ सम्परिवर्तते क्रि–॥

योजना–द्रव्यदेवतात्यागसंभूतः यः उत्तमः रसः सः रसः देवान् संतर्प्य च पुनः यजमानं फलेन संयोज्य वायुना सोमं नीयते ततः रश्मिभिः ऋग्यजुःसामविहितं सौरं धाम उपनीयते असौ सूर्यः स्वमण्डलात् तत् उत्तमम् अमृतं सृजाति अशनानशनात्मनां सर्वभूतानां जन्म तस्मात् अन्नात् पुनः यज्ञः अन्नं पुनः क्रतुः भवाति एवम् एतत् अनाद्यन्तं चक्रं संपरिवर्तते॥

तात्पर्यार्थ–चरु पुरोडाश आदि द्रव्यका जो देवताके निमित्त त्याग उससे जो आत्माका परिणामान्तर अदृष्टरूप और संपूर्ण जगत्का बीज होनेसे अत्यन्त उत्तम जो रस पैदा होता है वह रस संप्रदान कारकरूप देवताओंको भली प्रकार तृप्त करके और यजमानको वांछित फलसे युक्त करके पवनकी प्रेरणासे चंद्रमण्डलके प्रति प्राप्त किया जाता है, फिर चंद्रमण्डलसे किरणोंके द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदरूप सूर्यमण्डलके प्रति प्राप्त किया जाता है वह सूर्य अपने मण्डलसे उस वृष्टिरूप उत्तम रसको रचता है, जो चर अचर संपूर्ण भूतोंके निमित्त होता है। वृष्टिसे पैदा हुए और प्रजाकी उत्प-

तृप्तिके हेतुरूप उस अन्नसे फिर यज्ञ होताहै, और पूर्वोक्त रीतिके अनुसार यज्ञसे फिर अन्न होता है। इस प्रकार अनादि और अनंत इस संसारका संपूर्ण चक्र प्रवाह रूपसे उत्पत्ति और विनाशरहित भली प्रकार संपरिवर्तन (हेरफेर) होता है, इस क्रमसे इस आत्माके सकाशसे अखिलजगत्की उत्पत्ति और आत्माका देहके साथ संबंध होता है ॥

भावार्थ-देवताके निमित्त जो द्रव्यके त्यागसे उत्तम रस उत्पन्न होता है वह देवताओंको तृप्त और यजमानको फलसे युक्त करके वायुके द्वारा चंद्रमण्डलमें पहुंचता है और फिर वहांसे किरणोंके द्वारा ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदरूप सूर्यके धामको प्राप्त होता है। क्योंकि इस श्रुतिमें सूर्यको तीन वेदरूप कहाहै कि वह सूर्यरूप देवता वेदत्रयीरूप तपती है, वह सूर्य उस मण्डलसे उस उत्तम अमृत (अन्न) को रचता है जिससे चराचर सब भूतोंका जन्म होता है, इस अन्नसे फिर यज्ञ फिर अन्न फिर ऋतु फिर अन्न इस प्रकार यह अनादि चक्र वर्तता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥१२३॥ १२४॥

अनादिरात्मासंभूतिर्विद्यतेनांतरात्मनः ॥
समवायीतुपुरुषोमोहेच्छाद्वेषकर्मजः १२५॥

पद-अनादिः १ आत्मा १ संभूतिः १ विद्यते क्रि-नऽ-अन्तरात्मनः ६ समवायी१तुऽ-पुरुषः १ मोहेच्छाद्वेषकर्मजः १ ॥

योजना-आत्मा अनादि अस्ति अन्तरात्मनः संभूतिः न विद्यते तु पुनः मोहेच्छाद्वेषकर्मजः पुरुषः समवायी भवति ॥

तात्पर्यार्थ-यद्यपि आत्माको संसार अनादि और अनन्त रूपसे है तो मुक्तिका अभाव होगया इससे कहते हैं कि, आत्मा अनादि है इस अंतरात्माका जन्म नहीं है, क्योंकि वह संपूर्ण शरीरमें व्यापक है, तोभी पुरुष शरीरके संग समवायी होता है अर्थात् भोगके स्थान शरीरमें अपने सुखदुःखरूप भोगको भोगता है। इस प्रकारके सम्बन्धसे आत्मा संबंधी होता है और वह संबंध मोह इच्छा द्वेषसे पैदा हुए कर्मोंसे होता है, कुछ आत्माका स्वभाव नहीं। तिससे वह सबन्ध कार्यरूप होनेसे नष्ट हो सकता है इससे आत्माकी मुक्ति हो सकती है ॥

भावार्थ-आत्माको अनादि होनेसे उस अन्तरात्माका जन्म नहीं है और वह पुरुष मोह इच्छा द्वेष और कर्मके अनुसार देहका सम्बन्धी होता है ॥ १२५ ॥

सहस्रात्मामयायोवआदिदेवउदाहृतः ॥
मुखबाहूरुपज्जाःस्युस्तस्यवर्णायथाक्रमम् ॥

पद-सहस्रात्मा १ मया ३ यः १ वः ६ आदिदेवः १ उदाहृतः १ मुखबाहूरुपज्जाः १ स्युः क्रि-तस्य ६ वर्णाः १ यथाक्रमम्ऽ- ॥

पृथिवीपादतस्तस्यशिरसोद्यौरजायत ।
नस्तःप्राणादिशः श्रोत्रात्स्पर्शाद्वायुर्मुखाच्छिखी ॥ १२७ ॥

पद-पृथिवी १ पादतःऽ- तस्य ६ शिरसः ५ द्यौः १ अजायत क्रि-नस्तःऽ-प्राणाः १ दिशः १ श्रोत्रात् ५ स्पर्शात् ५ वायुः१ मुखात्५ शिखी १ ॥

मनसश्चंद्रमाजातश्चक्षुषश्चदिवाकरः ।
जघनादंतरिक्षंचजगच्चसचराचरम् ॥१२८॥

पद-मनसः ५ चंद्रमाः १ जातः १ चक्षुषः५ तुऽ-दिवाकरः १ जघनात् ५ अंतरिक्षम् १ चऽ-जगत् १ चऽ-सचराचरम् १ ॥

योजना-यः सहस्रात्मा आदिदेवः वः (यु-

ष्माकम्) मया उदाहृतः तस्य मुखबाहूरुपज्जाः यथाक्रमं वर्णाः स्युः तस्य पादतः पृथिवी शिरसः द्यौः नस्तः प्राणाः श्रोत्रात् दिशः स्पर्शात् वायुः मुखात् शिखी अजायत मनसः चंद्रमा तु पुनः चक्षुषः दिवाकरः जघनात् अंतरिक्षं च पुनः सचराचरं जगत् जातम् ॥

तात्पर्यार्थ भा०–जो सकल जीव और प्रपंचरूप होनेसे अनेक रूप और आदिदेव मैंने तुमको कहा, उसके मुख, भुजा, जंघा और पदसे चारों वर्ण क्रमसे पैदा होते हैं, उसके चरणसे पृथिवी, शिरसे आकाश, नासिकासे प्राण, श्रोत्रसे दिशा, स्पर्शसे वायु और मुखसे अग्नि पैदा होता है और मनसे चंद्रमा, नेत्रोंसे सूर्य और जंघाओंसे आकाश और चरअचररूप जगत् पैदा होता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

यद्येवंसकथंब्रह्मन्पापयोनिषुजायते ।
ईश्वरःसकथंभावैरनिष्टैःसंप्रयुज्यते ॥१२९॥

पद–यदि॒ऽ–एवम्ऽ–सः १ कथम्ऽ–ब्रह्मन् १ पापयोनिषु ७ जायते क्रि–ईश्वरः १ सः १ कथम्ऽ–भावैः ३ अनिष्टैः ३ सम्प्रयुज्यते क्रि–॥

योजना–हे ब्रह्मन्! स यदि एवं पुनः पापयोनिषु कथं जायते सः ईश्वरः अनिष्टैः भावैः कथं संप्रयुज्यते ॥

ता० भा०–हे ब्रह्मन् योगीश्वर! यदि आत्माही जीव आदि भावको प्राप्त होता है तो वह मृग आदि पापयोनियोंमें कैसे उत्पन्न होता है और वह ईश्वर है इससे मोह राग द्वेष आदिसेभी उसका जन्म नहीं कह सक्ते और वह मोह राग आदि अनिष्ट भावोंसे युक्त कैसा होता है ॥ १२९ ॥

करणेनान्वितस्यापिपूर्वज्ञानंकथंचन ।
वेत्तिसर्वगतांकस्मात्सर्वगोपिनवेदनाम् ॥

पद–करणेन ३ अन्वितस्य ६ अपिऽ–पूर्वम् २ ज्ञानम् २ कथम्ऽ–चऽ–नऽ–वेत्ति क्रि–सर्वगताम् २ कस्मात् ५ सर्वगः १ अपिऽ–नऽ–वेदनाम् २ ॥

योजना–करणेन अन्वितस्य अपि तस्य पूर्वं ज्ञानं कथं न भवति सर्वगः अपि सः सर्वगतां वेदनां कथ न वेत्ति ॥

तात्पर्यार्थ–और तैसेही यहभी यहां दूषण है कि ज्ञानके उपाय मन आदि इंद्रियोंसे युक्त उस आत्माको पूर्व जन्मके विषयोंका ज्ञान क्यों नहीं होता और तैसेही सर्वव्यापीभी वह आत्मा सब प्राणियोंके सुख दुःख रूपी वेदनाको क्यों नहीं जानता तिससे आत्माही ईश्वर जीव आदि भावको प्राप्त होता है यह बात अयुक्त है ॥

भावार्थ–इंद्रियोंसे युक्तभी उस आत्माको पूर्व जन्मका ज्ञान क्यों नहीं होता और सब भूतोंमें व्यापकभी उसको सबकी वेदना (दुःख) का ज्ञान क्यों नहीं होता ॥ १३० ॥

अंत्यपक्षिस्थावरतांमनोवाक्कायकर्मजैः ।
दोषैः प्रयातिजीवोऽयंभवयोनिशतेषुच१३१

पद–अन्त्यपक्षिस्थावरताम् २ मनोवाक्कायकर्मजैः ३ दोषैः ३ प्रयाति क्रि–जीवः१ अयम् १ भवयोनिशतेषु ७ चऽ–॥

योजना–अयं जीवः मनोवाक्कायकर्मजैः दोषैः भवयोनिशतेषु अन्त्यपक्षिस्थावरतां प्रयाति ॥

तात्पर्यार्थ–सामश्रव आदि मुनियोंके पूर्वोक्त दोनों प्रश्नोंमें पहिले प्रश्नका उत्तर कहते हैं। यद्यपि आत्मा स्वरूपसे सत्य ज्ञान आनन्दरूप है तथापि अविद्याके समावेश वशसे मोह राग आदि भावोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुआ अनेक योनियोंमें जन्मके साधक मानस आदि

तीन प्रकारके कर्मको करता है तिससे मन वाणी कायाके दोषोंसे संसारकी सहस्रों योनियोंमें चाण्डाल आदि अन्त्यज और काक आदि पक्षी और वृक्ष आदि स्थावर रूपको प्राप्त होता है, तिससे अविद्याके सम्बंधसेही आत्माका जन्म है स्वरूपसे नहीं ॥

भावार्थ-यह जीव मन वाणी काया कर्मोंसे किये हुए दोषोंसे अन्त्यज और पक्षी और स्थावर भावको प्राप्त होता है ॥ १३१ ॥

अनंताश्चयथाभावाःशरीरेषुशरीरिणाम् । रूपाण्यपितथैवेहसर्वयोनिषुदेहिनाम् १३२

पद्-अनंताः १ चऽ-यथाऽ-भावाः १ शरीरेषु ७ शरीरिणाम् ६ रूपाणि १ चऽ-तथाऽ-एवऽ-इहऽ-सर्वयोनिषु ७ देहिनाम् ६॥

योजना-शरीरिणां शरीरेषु यथा भावाः अनन्ता भवन्ति तथा देहिनां सर्वयोनिषु रूपाणि भवन्ति ॥

ता० भा०-जैसे शरीरोंके विषय जीवोंके भाव (अभिप्राय) सत्त्व आदि गुणोंकी अधिकताके तारतम्यसे अनन्त होते हैं तैसेही देहधारियोंके कुब्ज वामन आदि रूपभी अनन्त होते हैं ॥ १३२ ॥

विपाकःकर्मणांप्रेत्यकेषांचिदिहजायते । इहवामुत्रवैकेषांभावस्तत्रप्रयोजनम् १३३॥

पद्-विपाकः १ कर्मणाम् ६ प्रेत्यऽ-केषांचित्ऽ-इहऽ-जायते क्रि-इहऽ-वाऽ-अमुत्रऽ-वैऽ-केषाम् ६ भावः१ तत्रऽ-प्रयोजनम् १॥

योजना-कर्मणां विपाकः प्रेत्यऽ-केषांचित् इह जायते केषांचित् इह वा अमुत्र जायते तत्र प्रयोजनं भावः अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ-यदि कुब्ज आदिरूप कर्मोंसे पैदा होते हैं तो कर्मके पीछेही तत्काल होने चाहिये इसलिये कहते हैं कि, किन्हीं २ कर्मोंका (ज्योतिष्टोम आदि) विपाक (फल) प्रेत्य (अन्य देह) में होताहै और किसी २ कारीरी यज्ञ आदिकमका फल (वृष्टि आदि) यहां ही होता है और किसी २ चित्र आदिका फल पशु आदि इस देहमें वा अन्य देहमें अनियमसे होताहै कुछ शास्त्रका यह तात्पर्य नहीं है कि कर्मके अनंतरही कर्मका फल हो जाय और यहां कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी जनकतामें सत्व आदि भावही प्रयोजक है क्योंकि फलोंका तारतम्य उसकेही अधीन है ॥

भावार्थ-किसी कर्मका फल अन्य जन्ममें और किसीका फल इस जन्ममें और किसीका फल इस जन्ममें वा अन्य जन्ममें होता है उसमें प्रयोजक सत्व आदि भाव होता है॥१३३ ॥

परद्रव्याण्यभिध्यायंस्तथानिष्टानिचिंतयन् । वितथाभिनिवेशीचजायतेंत्यासुयोनिषु ॥

पद्-परद्रव्याणि २ अभिध्यायन् १ तथाऽ-अनिष्टानि २ चिंतयन् १ वितथाभिनिवेशी १ चऽ-जायते क्रि-अंत्यासु ७ योनिषु ७ ॥

योजना-परद्रव्याणि अभिध्यायन् तथा अनिष्टानि चिंतयन् च पुनः वितथाभिनिवेशी पुरुषः अंत्यासु योनिषु जायते ॥

तात्पर्य भावार्थ-पराये द्रव्योंको कैसे चुराऊं यह अभिमुख होकर ध्यान करता हुआ और हिंसा आदि अनिष्टोंकी चिंता करता हुआ और झूठी वस्तुमें आग्रह करता हुआ मनुष्य चांडाल आदि अंत्य योनियोंमें उत्पन्न होता है॥१३४॥

पुरुषोनृतवादीचपिशुनःपरुषस्तथा । अनिबद्धप्रलापीचमृगपक्षिषुजायते १३५॥

पद्-पुरुषः १ अनृतवादी १ चऽ-पिशुनः१ परुषः १ तथाऽ-अनिबद्धप्रलापी १ चऽ-मृगपक्षिषु ७ जायते क्रि-॥

योजना-अनृतवादी च पुनः पिशुनः तथा परुषः च पुनः अनिबद्धप्रलापी पुरुषः मृगपक्षिषु जायते ॥

ता०भा०-झूठ बोलनेवाला और पिशुन (चुगलखोर) और परुष (कठोर) जिसकी वाणीसे दूसरा डरै और अनिबद्धप्रलापी अर्थात् प्रकरणके असंगत अर्थका कहनेवाला पुरुष जानकर वा विना जाने वृत्तिके तारतम्यसे हीन और उत्तम मृगपक्षियोंमें अपनी वृत्तिके अनुसार पैदा होता है ॥ १३५ ॥

अदत्तादाननिरतः परदारोपसेवकः।
हिंसकश्चाविधानेनस्थावरेष्वभिजायते ॥

पद्-अदत्तादाननिरतः १ परदारोपसेवकः १ हिंसकः १ चऽ-अविधानेन ३ स्थावरेषु ७ अभिजायते क्रि-॥

योजना-अदत्तादाननिरतः परदारोपसेवकः च पुनः अविधानेन हिंसकः पुरुषः स्थावरेषु अभिजायते ॥

ता० भा०-विना दिये पदार्थके ग्रहण करनेमें तत्पर (चोर), पराई स्त्रीमें आसक्त और शास्त्रोक्त विधिके विना प्राणियोंका हिंसक मनुष्य दोषके गुरु लघु भावके अनुसार वृक्षलताप्रतान आदि स्थावरोंमें उत्पन्न होता है॥१३६॥

आत्मज्ञः शौचवान्दांतस्तपस्वीविजितेंद्रियः
धर्मकृद्वेदविद्याविस्सात्त्विकोदेवयोनिताम्॥

पद्-आत्मज्ञः १ शौचवान् १ दांतः १ तपस्वी १ विजितेंद्रियः १ धर्मकृत् १ वेदविद्यावित् १ सात्त्विकः १ देवयोनिताम् २ ॥

योजना-आत्मज्ञः शौचवान् दांतः तपस्वी विजितेंद्रियः धर्मकृत् वेदविद्यावित् सात्त्विकः पुरुषः देवयोनिताम् प्राप्नोति ॥

ता० भा०-आत्मज्ञानी अर्थात् विद्या धन अभिजन आदिके अभिमानसे रहित और बाह्य (देहका) और आभ्यंतरके शौचसे युक्त, दांत अर्थात् शांतचित्त और तपस्वी (कृच्छ्रआदि तपसे युक्त) और इंद्रियोंकी विषयोंमें आसक्तिसे रहित और नित्य नैमित्तिक कर्मोंके करनेमें तत्पर और वेदके अर्थका ज्ञाता जो सात्त्विक (सत्त्वगुणी) मनुष्य सत्त्वगुणके तारतम्यसे उत्तम और अत्यंत उत्तम देवयोनियोंमें उत्पन्न होता है ॥ १३७ ॥

असत्कार्यरतोधीरआरंभीविषयी च यः।
सराजसोमनुष्येषुमृतोजन्माधिगच्छति ॥

पद्-असत्कार्यरतः १ अधीरः १ आरंभी १ विषयी १ चऽ-यः १ सः १ राजसः १ मनुष्येषु ७ मृतः १ जन्म २ अधिगच्छति क्रि- ॥

योजना-असत्कार्यरतः आरंभी च पुनः विषयी यः अस्ति सः राजसः पुरुषः मृतः सन् मनुष्येषु जन्म अधिगच्छति (प्राप्नोति) ॥

ता० भा०-तूर्य वादित्र नृत्य आदि असत्कर्मोंमें रत और अधीर (व्यग्रचित्त) आरंभी अर्थात् सदैव कार्योंमें व्याकुल और विषयोंमें अत्यंत आसक्त जो पुरुष है वह रजोगुणी मनुष्य मरकर रजोगुणके न्यूनअधिक भावके अनुसार हीन और उत्तम मनुष्य जातियोंमें जन्मको प्राप्त होता है ॥ १३८ ॥

निद्रालुः क्रूरकृल्लुब्धोनास्तिकोयाचकस्तथा। प्रमादवान्भिन्नवृत्तोभवेत्तिर्यक्षुतामसः॥

पद्-निद्रालुः१ क्रूरकृत् १ लुब्धः १ नास्तिकः १ याचकः १ तथाऽ-प्रमादवान् १ भिन्नवृत्तः १ भवेत् क्रि-तिर्यक्षु ७ तामसः १ ॥

योजना-निद्रालुः क्रूरकृत् लब्धः नास्तिकः तथा याचकः प्रमादवान् भिन्नवृत्तः तामसः पुरुषः तिर्यक्षु योनिषु भवेत् ॥

ता० भा०—अत्यंत निद्राशील, प्राणियोंको पीडा देनेवाला, क्रूर, लोभी और नास्तिक (धर्म आदिका निंदक), याचक और प्रमादी अर्थात् कार्य और अकार्यके विवेकसे शून्य, विरुद्धाचारी, तमोगुणी मनुष्य तमोगुणके न्यूनअधिक भावसे हीन और अत्यंतहीन पशु आदियोंमें उत्पन्न होता है ॥ १३९ ॥

रजसा तमसा चैवं समाविष्टोभ्रमन्निह ।
भावैरनिष्टैः संयुक्तः संसारंप्रतिपद्यते ॥१४०

पद्—रजसा ३ तमसा ३ चऽ—एवम्ऽ—समाविष्टः १ भ्रमन् १ इहऽ—भावैः ३ अनिष्टैः ३ संयुक्तः १ संसारम् २ प्रतिपद्यते क्रि— ॥

योजना—रजसा च पुनः तमसा समाविष्टः अनिष्टैः भावैः संयुक्तः पुरुषः इह भ्रमन् सन् संसारं प्रतिपद्यते (प्राप्नोति) ॥

ता० भा०—इस प्रकार अविद्यासे विंधा यह आत्मा रजोगुण और तमोगुणसे भली प्रकार संयुक्त होकर और नाना प्रकारके दुःखोंके देनेवाले भावोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुआ इस संसारमें भ्रमता हुआ पुनः पुनः देहको ग्रहण करता है इससे वह ईश्वर कैसे संसारको प्राप्त होता है इस पूर्वोक्त शंकाका अवकाश नहीं है ॥१४०॥

मलिनोहियथादर्शोरूपालोकस्यनक्षमः ॥
तथाविपक्ककरणआत्मज्ञानस्यनक्षमः ॥१४१

पद्—मलिनः १ हिऽ-यथाऽ-आदर्शः १ रूपालोकस्य ६ नऽ—क्षमः १ तथाऽ—अविपक्ककरणः १ आत्मज्ञानस्य ६ नऽ—क्षमः १ ॥

योजना—यथा मलिनः आदर्शः रूपालोकस्य क्षमः न भवति तथा अविपक्ककरणः आत्मज्ञानस्य क्षमो न भवति ॥

ता० भा०—यद्यपि आत्मा ज्ञानके साधन जो अंतःकरण आदि हैं उनसे युक्त है तथापि जन्मांतरमें देखे हुए पदार्थके ज्ञानमें राग आदि मलोंसे आक्रांतचित्त होनेसे इस प्रकार आत्मज्ञान (अपना ज्ञान) में समर्थ नहीं होता जैसे मलीन आदर्श (सीसा) रूपके देखनेमें समर्थ नहीं होता ॥ १४१ ॥

कट्वेर्वारौयथापक्केमधुरः सन्रसोपिन ॥
प्राप्यतेह्यात्मनितथानापक्ककरणेज्ञता १४२॥

पद्— कट्वेर्वारौ ७ यथाऽ—अपक्के ७ मधुरः १ सन् १ रसः १ अपिऽ—नऽ—प्राप्यते क्रि—हिऽ—आत्मनि ७ तथाऽ—नऽ—अपक्ककरणे ७ ज्ञता १॥

योजना—यथा अपक्के कट्वेर्वारौ सन् अपि मधुरः रसः न प्राप्यते तथा अपक्ककरणे आत्मनि हि (अपि) ज्ञता न प्राप्यते ॥

ता० भा०—कदाचित् कहो कि पूर्वोक्त ज्ञानका प्रकाशकभी आत्माही है और वह स्वतः सिद्ध है इससे उसका न जानना युक्त नहीं सो ठीक नहीं कि, जैसे कटु एर्वारु (ककडी) में विद्यमानभी मधुर रस प्रतीत नहीं होता इसी प्रकार अपक्वकरण (मलसे आक्रांत चित्त) आत्मामें ज्ञता (ज्ञातृता) प्राप्त नहीं होती अर्थात् पूर्व जन्ममें जाने हुए पदार्थोंको नहीं जान सकता ॥१४२॥

सर्वाश्रयांनिजेदेहेदेहीविंदतिवेदनाम् ॥
योगीमुक्तश्चसर्वासांयोगमाप्नोतिवेदनाम् ॥

पद्—सर्वाश्रयाम् २ निजे ७ देहे ७ देही १ विंदति क्रि—वेदनाम् २ योगी १ मुक्तः १ चऽ—सर्वासाम् ६ योगम् २ आप्नोति क्रि—वेदनाम्२॥

योजना—देही सर्वाश्रयां वेदनाम् निजे देहे आप्नोति योगी च पुनः मुक्तः सर्वासां वेदनां योगम् आप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ—जो देही है अर्थात् देहाभिमानसे युक्त है वह आध्यात्मिक आदि बहुरूप वेदना (ज्ञान) को अपने कर्मोंसे

प्राप्त हुए देहके विषयही प्राप्त होता है अन्य देहके विषय भोगोंका आयतन (स्थान) बनानेवाले अदृष्टकी विलक्षणतासे प्राप्त नहीं होता। और जो योगी और अहंकार आदिसे मुक्त हैं। वह सब देहधारियोंकी संविदा (ज्ञान) ओंको और योगको निर्मल अंतःकरणके बलसे प्राप्त होता है॥ १४३॥

आकाशमेकंहियथाघटादिषुपृथग्भवेत्।
तथात्मैकोह्यनेकश्चजलाधारेष्विवांशुमान्॥

पद–आकाशम् १ एकम् १ हिऽ–यथाऽ–घटादिषु ७ पृथक्ऽ–भवेत् क्रि–तथाऽ–आत्मा१ एकः १ हिऽ–अनेकः १ चऽ–जलाधारेषु ७ इवऽ–अंशुमान् १॥

योजना–यथा एकम् आकाशं घटादिषु पृथक् भवेत् तथा जलाधारेषु अंशुमान् इव आत्मा एकः च पुन अनेकः भवेत्॥

तात्प० भावार्थ–जैसे एकही आकाश कूप और घट आदिके भेदसे नाना प्रकारका प्रतीत होता है और जैसे एक भी सूर्य भिन्न २ जलके पात्रोंमें और करकमणि मल्लिका आदिमें अनेक प्रकारका दीखता है तैसेही एक भी आत्मा अंतःकरणरूप उपाधिके भेदसे नाना प्रतीत होता है। दूसरा सूर्यका दृष्टांत इस लिये दिया है कि आत्माका भेद पारमार्थिक नहीं है इससे एकही आत्मामें देवता और मनुष्य आदि देहोंके विषय भेदसे प्रतीति घटसकती है॥ १४४॥

ब्रह्मखानिलतेजांसिजलंभूश्चेति धातवः।
इमेलोकाएषचात्मातस्माच्चसचराचरम्॥

पद–ब्रह्मखानिलतेजांसि १ जलम् १ भूः १ चऽ–इतिऽ–धातवः १ इमे १ लोकाः १ एषः १ चऽ–आत्मा १ अस्मात् ५ चऽ–सचराचरम् १॥

योजना–ब्रह्मखानिलतेजांसि जलं च पुनः भूः इति धातवः संति इमे लोकाः च पुनः एष आत्मा तस्मात् सचराचरं जगत् उत्पद्यते॥

तात्प० भावार्थ–स्वयं छठा आत्मा पांच धातुओंको ग्रहण एक वार करता है इसकी समाप्ति करते हैं। ब्रह्म (आत्मा) आकाश वायु अग्नि जल और भूमि ये पवन आदि धातु होते हैं अर्थात् शरीरको व्याप्त होकर धारण करनेसे धातु कहाती हैं उनमें आकाश आदि पंच धातु लोक कहाती हैं अर्थात् देखी जानेसे जडरूप हैं और चेतनरूप धातु आत्मा इस जड अजडरूप समुदायसे स्थावरजंगमरूप जगत् पैदा होता है॥ १४५॥

मृद्दंडचक्रसंयोगात्कुंभकारोयथाघटम्।
करोतितृणमृत्काष्ठैर्गृहंवागृहकारकः १४६॥

पद–मृद्दंडचक्रसंयोगात् ५ कुंभकारः १ यथाऽ–घटम् २ करोति क्रि–तृणमृत्काष्ठैः ३ गृहम् २ वाऽ–गृहकारकः १॥

हेममात्रमुपादाय रूपं वा हेमकारकः।
निजलालासमायोगात्कोशंवाकोशकारकः॥

पद–हेममात्रम् २ उपादायऽ–रूपम् २ वाऽ–हेमकारकः १ निजलालासमायोगात् ५ कोशम् २ वाऽ–कोशकारकः १॥

कारणान्येवमादायतासुतास्विहयोनिषु।
सृजत्यात्मानमात्माचसंभूयकरणानिच॥

पद–कारणानि २ एवम्ऽ–आदायऽ–तासु ७ तासु ७ इहऽ–योनिषु ७ सृजति क्रि–आत्मानम् २ आत्मा १ चऽ–संभूयऽ–करणानि २ चऽ–॥

योजना–कुम्भकारः मृद्दंडचक्रसंयोगात् यथा घटं वा तृणमृत्काष्ठैः गृहकारकः गृहं करोति हेमकारकः हेममात्रम् उपादाय रूपं वा कोशकारकः निजलालासमायोगात् कोशं करोति एवं कारणानि उपादाय तासु तासु योनिषु च पुनः करणानि संभूय उपादाय आत्मा इह आत्मानं सृजाति॥

ता॰भा॰-आत्माके रचनेका प्रकार कहते हैं जैसे कुलाल मिट्टी चक्र चीवर आदिके संयोग (लेना) से घट करके शराव नाना प्रकारके कार्यसमूहको और गृहकारक (वर्द्धकि) अर्थात् राजतृण मिट्टी काष्ठ जो परस्पर सापेक्ष हैं उनसे एक गृह (घर) रूप कार्यको करता है। और जैसे हेमकारक (सुनार) केवल सुवर्णको लेकर सुवर्णके अनुरूप कडे, मुकुट, कुंडल आदि कार्यको उत्पन्न करता है। और जैसे कोशकारक (कीटविशेष अंजनहारी नामसे प्रसिद्ध) अपनी लालाके संयोगसे अपने बन्धनरूप कोशको रचता है। तिसी प्रकार आत्माभी पृथिवी आदि परस्पर सापेक्षकारणों (साधन) को और श्रोत्र आदि करणोंको ग्रहण करके इस संसारके विषय तिस २ देव आदि योनियोंमें आपही अपने बन्धन रूप शरीरको रचता है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

महाभूतानिसत्यानियथात्मापितथैवहि ।
कोन्यथैकेननेत्रेणदृष्टमन्येनपश्यति ॥१४९॥

पद-महाभूतानि १ सत्यानि १ यथाऽ-आत्मा १ अपिऽ-तथाऽ-एवऽ-हिऽ-कः १ अन्यथाऽ-एकेन ३ नेत्रेण ३ दृष्टम् २ अन्येन ३ पश्यति क्रि-॥

योजना-यथा महाभूतानि सत्यानि तथा एव आत्मा अपि सत्यः अन्यथा एकेन नेत्रेण दृष्टम् अन्येन कः पश्यति (जानाति) ॥

ता॰ भा॰-अब विषयोंके जाननेवाली ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्माके होनेमें प्रमाण कहते हैं। जैसे पृथिवी आदि महाभूत प्रमाणोंसे जानने योग्य होनेसे सत्य है तिसी प्रकार आत्माभी सत्य है। अन्यथा (सत्य न मानोगे तो) अर्थात् ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न ज्ञाता ध्रुव (नित्य) न होगा तो एक चक्षु इंद्रियसे देखी हुई वस्तुको अन्य स्पर्श (त्वचा) इंद्रियसे कौन जानेगा कि जिसको मैं देखा उसकाही मैं स्पर्श करताहूं ॥ १४९ ॥

वाचंवाकोविजानातिपुनःसंश्रुत्यसंश्रुताम् ।
अतीतार्थस्मृतिःकस्यकोवास्वप्नस्यकारकः ॥

पद-वाचम् २ वाऽ-कः १ विजानाति क्रि-पुनःऽ-सश्रुत्यऽ-संश्रुताम् २ अतीतार्थस्मृतिः १ कस्य ६ कः १ वाऽ-स्वप्नस्य ६ कारकः १ ॥

जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिरहंकृतः ।
शब्दादिविषयोद्योगंकर्मणामनसागिरा ॥

पद-जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिः ३ अहंकृतः १ शब्दादिविषयोद्योगम् २ कर्मणा ३ मनसा ३ गिरा ३ ॥

योजना-संश्रुत्य संश्रुतां वाचं पुनः कः वा विजानाति। अतीतार्थस्मृतिः कस्य भवेत् वा स्वप्नस्य कारकः कः भवेत्। जातिरूपवयोवृत्तविद्यादिभिः अहंकृतः कः भवेत्। कर्मणा मनसा गिरा शब्दादिविषयोद्योगं कः कुर्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-तैसेही किसी पुरुषकी वाणीको पहिले सुनकर उस सुनी हुई वाणीको यह उसकी वाणी है यह कौन जानेगा, तिससे ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्मा है यह सिद्ध हुआ और जो आत्मा नित्य न होता तो पहिले देखे (जाने) हुए पदार्थका स्मरण जो पूर्व अनुभवसे उत्पन्न हुए संस्कारके उद्बोधसे होता है वह किसको होगा। क्योंकि अन्यकी देखी हुई वस्तुका स्मरण अन्यको नहीं होसकता तैसेही स्वप्नका करनेवाला कौन होगा शांत हुआ है व्यापार जिनका ऐसी इन्द्रिय उस स्वप्नके करनेवाली नहीं हो सकती, तैसे मैंही जातिरूप अवस्था आचरण विद्या आदिसे संपन्न हूं इस अनुसन्धानकी प्रतीति स्थिर आत्मासे भिन्न किसको होगी, तैसेही शब्द स्पर्श आदि विष-

योंके भोगनेके लिये मन काया वाणीसे उद्योगको न करेगा तिससे ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्मा स्थित भया ॥

भावार्थ–पहिले सुनी वाणीको उसकी यह वाणी है यह कौन जानेगा, बीतेहुए पदार्थकी स्मृति और स्वप्न किसको होगा, और जाति रूप अवस्था आचरण विद्या आदिसे अहंकार किसको होगा, और कर्म मन वाणीसे शब्द आदि विषयोंका उद्योग कौन करेगा, यदि ज्ञानेंद्रियोंसे भिन्न आत्माको न मानोगे तिससे आत्मा इंद्रियोंसे भिन्न है ॥ १५० ॥१५१॥

ससंदिग्धमतिःकर्मफलमस्तिनवेतिवा ॥
विप्लुतःसिद्धमात्मानमसिद्धोपिहिमन्यते ॥

पद–सः १ संदिग्धमतिः १ कर्मफलम् १ अस्ति क्रि–नऽ–वाऽ–इतिऽ–वाऽ–विप्लुतः १ सिद्धम् २ आत्मानम् २ असिद्धः १ अपिऽ–हिऽ–मन्यते क्रि– ॥

योजना–यः आत्मा विप्लुतः सः कर्मफल अस्ति न वा इति संदिग्धमतिः भवति असिद्धः अपि आत्मानं सिद्धं मन्यते ॥

ता० भा०–उपासना विशेषकी सिद्धिके लिये संसारके स्वरूपका विवरण करते हैं जो यह पूर्वोक्त आत्मा विप्लुत अर्थात् अहंकारसे दूषित है यह सब कर्मोंमें फल है वा नहीं है इस प्रकार संदिग्ध बुद्धि होजाती है और तैसेही असिद्ध (अकृतार्थ) भी अपने आत्माको सिद्ध (कृतार्थ) मानता है ॥ १५२ ॥

ममदाराः सुतामात्याअहमेषामितिस्थितिः
हिताहितेषुभावेषुविपरीतमतिःसदा।१५३॥

पद–मम ६ दाराः १ सुतामात्याः १ अहम् १ एषाम् ६ इतिऽ–स्थितिः १ हिताहितेषु ७ भावेषु ७ विपरीतमतिः १ सदाऽ–॥

योजना–मम दाराः सुतामात्याः संति एषाम् अहं स्वामी अस्मि इति तस्य स्थितिः भवति सदा हिताहितेषु भावेषु विपरीतमतिः भवति ॥

ता० भा०–और तिस नष्ट बुद्धिकी दारा (स्त्री) पुत्र मंत्री मेरे हैं और मैं इनका स्वामी हूं इस प्रकार अत्यंत ममतासे व्याकुल स्थिति होती है और तैसेही हित अहितकारी कार्यके समूहमें सदैव विपरीत मति रहती है अर्थात् हितको अहित और अहितको हित समझता है ॥ १५३ ॥

ज्ञेयज्ञेप्रकृतौचैवविकारेवाविशेषवान्।
अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी ॥१५४

पद–ज्ञेयज्ञे ७ प्रकृतौ ७ चऽ–एवऽ–विकारे ७ वाऽ–अविशेषवान् १ अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी १ ॥

एवंवृत्तोविनीतात्मावितथाभिनिवेशवान्।
कर्मणाद्वेषमोहाभ्यामिच्छयाचैवबद्धयते ॥

पद–एवंवृत्तः १ अविनीतात्मा १ वितथाभिनिवेशवान् १ कर्मणा ३ द्वेषमोहाभ्याम् ३ इच्छया ३ चऽ–एवऽ–बुद्धयते क्रि– ॥

योजना–ज्ञेयज्ञे च पुनः प्रकृतौ वा विकारे अविशेषवान् भवति अनाशकानलापातजलप्रपतनोद्यमी भवेत् एवंवृत्तः अविनीतात्मा वितथाभिनिवेशवान् सन् कर्मणा द्वेषमोहाभ्यां च पुनः इच्छया बद्धयते ॥

ता० भा०–ज्ञेयके जाननेवाले आत्मामें आत्माके तीनों गुणोंकी साम्यअवस्थारूप प्रकृतिमें और अहंकार आदि विकारोंमें विवेकका ज्ञान नष्टबुद्धिको नहीं होता, और तैसेही अनशन (भोजनका त्याग) अग्नि और जलमें प्रवेश इनमें उद्यम करता है इस प्रकार नानाप्रकारके अनर्थोंमें प्रवृत्त हुआ नहीं वशीभूत मन जिसके ऐसा असत्कर्मके आग्रहसे युक्त मनुष्य

उस आग्रहसे किये कर्मोंसे और रागद्वेष औ मोहसे बंधनको प्राप्त होता है॥१५४-१५५॥

आचार्योपासनंवेदशास्त्रार्थेषुविवेकिता।
तत्कर्मणामनुष्ठानंसंगःसद्भिर्गिरःशुभाः॥

पद-आचार्योपासनम् १ वेदशास्त्रार्थेषु ७ विवेकिता १ तत्कर्मणाम् ६ अनुष्ठानम् १ संगः १ सद्भिः ३ गिरः १ शुभाः १॥

स्त्र्यालोकालंभविगमःसर्वभूतात्मदर्शनम्॥
त्यागःपरिग्रहाणांचजीर्णकाषायधारणम्॥

पद-स्त्र्यालोकालंभविगमः १ सर्वभूतात्मदर्शनम् १ त्यागः १ परिग्रहाणाम् ६ च ऽ-जीर्णकाषायधारणम् १॥

विषयेंद्रियसंरोधस्तंद्रालस्यविवर्जनम्॥
शरीरपरिसंख्यानंप्रवृत्तिष्वघदर्शनम्॥

पद-विषयेन्द्रियसंरोधः १ तंद्रालस्यविवर्जनम् १ शरीरपरिसंख्यानम् १ प्रवृत्तिषु ७ अघदर्शनम् १॥

नीरजस्तमसासत्त्वशुद्धिर्निःस्पृहताशमः।
एतैरुपायैःसंशुद्धःसत्त्वयोग्यमृतीभवेत्॥

पद-नीरजस्तमसा ३ सत्त्वशुद्धिः १ निःस्पृहता १ शमः १ एतैः ३ उपायैः ३ संशुद्धः १ सत्त्वयोगी १ अमृती १ भवेत् क्रि-॥

योजना-आचार्योपासनं वेदशास्त्रार्थेषु विवेकिता तत्कर्मणाम् अनुष्ठानं सद्भिः संगः शुभः गिरः स्त्र्यालोकालंभविगमः सर्वभूतात्मदर्शनम् च पुनः परिग्रहाणां त्यागः जीर्णकाषायधारणं विषयेंद्रियसंरोधः तंद्रालस्यविवर्जनम् शरीरपरिसंख्यानम् च पुनः प्रवृत्तिषु अघदर्शनम् नीरजस्तमसा सत्त्वशुद्धिः निस्पृहता शमः एतैः उपायैः संशुद्धः सत्त्वयोगी अमृती भवेत्॥

तात्पर्यार्थ-विद्याके लिये आचार्यकी सेवा वेदान्त और पातंजल आदि शास्त्रोंका विवेक और उनमें कहे हुए ज्ञान और धर्मोंका करना, सत्पुरुषोंका संग प्रिय और हित वचन कहना, स्त्रियोंके दर्शन और स्पर्शका त्याग, सब भूतोंमें आत्माके समान देखना और पुत्र क्षेत्र कलत्र आदि परिग्रहोंका त्याग, जीर्ण काषाय वस्त्रोंको धारना और शब्द स्पर्श विषयोंमें श्रोत्र आदि इंद्रियोंकी प्रवृत्तिको रोकना, तंद्रा और आलस्यका त्याग और शरीरकी अशुद्ध आदि अवस्थाका स्मरण और संपूर्ण गमन आदि प्रवृत्तियोंमें सूक्ष्म २ प्राणियोंके वधको देखना, रजोगुण और तमोगुणरहित प्राणायाम आदिसे अन्तःकरणकी शुद्धि, विषयोंकी इच्छाका त्याग, बाह्य इंद्रिय और अंतःकरणको रोकना, इन आचार्य आदिकी सेवा आदि उपायोंसे शुद्ध हुआ मनुष्य ब्रह्मकी उपासनासे मुक्त होता है ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सत्त्वयोगात्परिक्षयात्।
कर्मणांसन्निकर्षाच्चसतांयोगः प्रवर्तते१६०॥

पद-तत्त्वस्मृतेः ६ उपस्थानात् ५ सत्त्वयोगात् ५ परिक्षयात् ५ कर्मणाम् ६ सन्निकर्षात् ५ च ऽ-सताम् ६ योगः १ प्रवर्तते क्रि-॥

योजना-तत्त्वस्मृतेः उपस्थानात् सत्त्वयोगात् कर्मणां परिक्षयात् च पुनः सतां सन्निकर्षात् योगः प्रवर्तते॥

ता०भा०-आत्मरूप तत्त्वकी निश्चल स्थितिसे और सत्त्व शुद्धिके योगसे और कर्मबीजोंके नाशसे और सत्त्वपुरुषोंके संगसे आत्मयोगकी प्रवृत्ति होती है ॥ १६० ॥

शरीरसंक्षयेयस्यमनः सत्त्वस्थमीश्वरम्॥
अविप्लुतमतिःसम्यग्जातिसंस्मरतामियात्॥

पद्–शरीरसंक्षये ७ यस्य ६ मनः १ सत्त्वस्थम् २ ईश्वरम् २ अविप्लुतमातिः १ सम्यक्ऽ–जातिसंस्मरताम् २ इयात् क्रि–॥

योजना–यस्य शरीरसंक्षये मनः सत्त्वस्थम् ईश्वरं प्राति व्याप्रियते सः अविप्लुतमातिः सम्यक् जातिसंस्मरताम् इयात् ॥

तात्पर्यार्थ–नहीं नष्ट है बुद्धि जिसकी ऐसे जिस योगीका सत्त्वगुणसे युक्त मन मरणके समय ईश्वरमें लगता है, वह यद्यपि उपासनाके प्रयोगमें अप्रवीण होनेसे आत्मज्ञानको प्राप्त नहीं होता तथापि उत्तम संस्कारकी श्रेष्ठताके वशसे जन्मांतरमें देखे हुए जो कृमि कीट आदि नाना गर्भवासोंके दुःख उनके स्मरणको प्राप्त होताहै अर्थात् उसे पूर्वजन्मके दुःखोंका ज्ञान हो जाता है और उन दुःखोंके स्मरणसे पैदा हुआ है उद्वेग जिसको ऐसा वह उस दुःखोंके नाशक मोक्षमें प्रवृत्त हो जाता है ॥

भावार्थ–जिस योगीका सत्त्वगुणी मन मरणके समय ईश्वरमें लगता है, भली प्रकार स्थिरबुद्धि वह पूर्व जन्मके स्मरणको प्राप्त होता है ॥ १६१ ॥

यथाहिभरतोवर्णैर्वर्णयत्यात्मनस्तनुम् ।
नानारूपाणिकुर्वाणस्तथात्माकर्मजास्तनूः॥

पद्–यथाऽ–हिऽ–भरतः १ वर्णैः ३ वर्णयाति क्रि–आत्मनः ६ तनुम् २ नानाऽ–रूपाणि २ कुर्वाणः १ तथाऽ–आत्मा १ कर्मजाः २ तनूः २ ॥

योजना–नाना रूपाणि कुर्वाणः भरतः (नटः) यथा आत्मनः तनुं वर्णैः वर्णयति तथा आत्मा आत्मनः कर्मजाः तनूः वर्णयति ॥

ता०भा०–जैसे राम रावण आदि नाना रूपोंको करता हुआ नट शुक्ल पीत कृष्ण आदि वर्णोंसे अपने शरीरको रचता है तैसेही आत्मा तिस २ कर्मके भोगार्थ कर्मोंसे पैदा हुए कुब्ज वामन रूप नाना प्रकारोंसे कलेवरोंको पैदा करता है ॥ १६२ ॥

कालकर्मात्मबीजानांदोषैर्मातुस्तथैवच ॥
गर्भस्यवैकृतंदृष्टमंगहीनादिजन्मतः १६३॥

पद्–कालकर्मात्मबीजानाम् ६ दोषैः ३ मातुः ६ तथाऽ–एवऽ–चऽ–गर्भस्य ६ वैकृतम् १ दृष्टम् १ अंगहीनादि १ जन्मतःऽ– ॥

योजना–कालकर्मात्मबीजानां दोषैः तथैव मातुः दोषैः अंगहीनादि गर्भस्य वैकृतं जन्मतः दृष्टम् ॥

ता०भा०–केवल कर्मही कुब्ज वामन आदिमें निमित्त नहीं किन्तु काल कर्म पिताका वीर्य माताका दोष येभी सहकारि कारण हैं । इस अदृष्टरूप कारणके समूहसे गर्भका अंगहीन आदि विकार जन्मसे देखा है ॥ १६३ ॥

अहंकारेणमनसागत्याकर्मफलेनच ।
शरीरेणचनात्मायंमुक्तपूर्वः कथंचन १६४॥

पद्–अहंकारेण ३ मनसा ३ गत्या ३ कर्मफलेन ३ चऽ–शरीरेण ३ चऽ–नऽ–आत्मा १ अयम् १ मुक्तपूर्वः १ कथंचनऽ– ॥

योजना–अहंकारेण, मनसा, गत्या च पुनः कर्मफलेन शरीरेण अयं आत्मा कथंचन मुक्तपूर्वो न भवति ॥

ता०भा०–कदाचित् कोई शंका करै कि प्राकृतिक प्रलयके समय महत्तत्त्व आदि अखिल विकारोंके नाश होनेपर कर्मके अधीन प्रथम देहका ग्रहण कैसे हो सकता है इससे लिखते हैं कि अहंकार मन गति अर्थात् संसारका हेतु दोषोंकी राशि और धर्म अधर्मरूप कर्मोंका फल और लिंग शरीर इन अहंकार आदिसे तबतक यह आत्मा छूट नहीं सक्ता जबतक मोक्ष नहीं होता ॥ १६४ ॥

वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथादीपस्यसंस्थितिः ।
विक्रियापिचदृष्टैवमकालेप्राणसंक्षयः १६५॥

पद-वर्त्याधारस्नेहयोगात् ५ यथा ऽ-दीपस्य ६ संस्थितिः १ विक्रिया १ अपि ऽ-च ऽ-दृष्टा १ एवम् ऽ-अकाले ७ प्राणसंक्षयः १ ॥

योजना-वर्त्याधारस्नेहयोगात् यथा दीपस्य संस्थितिः च पुनः विक्रिया दृष्टा एवम् अकाले प्राणसंक्षयः दृष्टः ॥

तात्पर्यार्थ-कदाचित् कहो कि पृथक् पृथक् कर्मवाले जीवोंका पृथक् २ मरणही युक्त है एक वार संग्राम आदिमें अकालमृत्यु कैसे होती है, सो ठीक नहीं कि जैसे तेलसे भिगोई अनेक प्रकारकी ज्वालावाली अनेक बत्ती दीपक और तेल इनके योगसे दीपककी स्थिति, और अत्यंत चलते हुए पवनकी ताडनारूप विपत्तिके होनेसे एकवार नाशरूप विकार होता है तिसी प्रकार संग्रामके समय अकालमें रथी सारथि वाजी कुंजर आदि जीवोंका युद्धरूप उपरतिका हेतु होनेसे एकवार अकालमें प्राणों-का नाश अनुपपन्न नहीं इससे यह बात कही गई कि पृथक् २ कालमें विपत्ति (मरण) का हेतु जो जीवोंका अदृष्ट था, उसका उससे वि-रुद्धरूप कार्य करनेवाला जो संग्रामरूप दृष्ट हेतु उसके होनेसे प्रतिबंध होता है ॥

भावार्थ-बत्ती आधार और स्नेह इनके योगसे जैसे दीपकमें स्थिति और विकार देखा है इसी प्रकार अकालमें प्राणोंका संक्षय होता है ॥ १६५ ॥

अनंतारश्मयस्तस्यदीपवद्यःस्थितोहृदि ।
सितासिताःकर्बुरूपाःकपिलानीललोहिताः॥

पद-अनंताः १ रश्मयः १ तस्य ६ दीप-वत् ऽ-यः १ स्थितः १ हृदि ७ सितासिताः १ कर्बुरूपाः १ कपिलाः १ नीललोहिताः १ ॥

ऊर्ध्वमेकःस्थितस्तेषांयोभित्त्वासूर्यमंडलम् ।
ब्रह्मलोकमतिक्रम्यतेनयातिपरांगतिम् ॥

पद-ऊर्ध्वम् ऽ-एकः १ स्थितः १ तेषाम् ६ यः १ भित्त्वा ऽ-सूर्यमण्डलम् २ ब्रह्मलोकम् २ अतिक्रम्य ऽ-तेन ३ याति क्रि-पराम् २ गतिम् २॥

योजना-यः दीपवत् हृदि स्थितः तस्य अनंताः रश्मयः सितासिताः कर्बुरूपाः कपिलाः नीललोहिताः सन्ति यः एकः तेषां मध्ये सूर्य-मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकम् अतिक्रम्य ऊर्ध्वं स्थितः तेन परां गतिं याति ॥

ता०भा०-जो यह जीव हृदयमें दीपकके समान स्थित है उसकी शुक्ल कृष्ण कबरी नी-ली लाल अनन्त रश्मि (पूर्वोक्त बहत्तर सहस्र नाडी) हैं उनके मध्यमें जो एक रश्मि सूर्य-मण्डलको भेदन करके और ब्रह्मलोकका अति-क्रमण करके ऊपरको स्थित है उससे वह जीव परम गतिको प्राप्त होता है ॥ १६६ ॥१६७ ॥

यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेवव्यवस्थितम् ।
तेनदेवशरीराणिसधामानिप्रपद्यते ॥१६८॥

पद-यत् १ अस्य १ अन्यत् १ रश्मिश-तम् १ ऊर्ध्वम् ऽ-एव ऽ-व्यवस्थितम् १ तेन ३ दे-वशरीराणि २ सधामानि २ प्रपद्यते क्रि-॥

योजना-अस्य यत् अन्यत् रश्मिशतम् ऊर्ध्वम् एव व्यवस्थितम् अस्ति तेन सधामानि देवशरीराणि प्रपद्यते (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-इस आत्माकी मुक्तिका मार्ग जो रश्मि है उससे अन्य ऊपरको सैकडों रश्मि स्थित हैं उनसे देवताओंके तैजस शरीर जो केवल सुख भोगके साधन होते हैं और सुवर्ण रजत रत्नोंसे रचित देवताओंके पुर उनको प्राप्त होता है ॥ १६८ ॥

येनैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयश्चमृदुप्रभाः ॥
इहकर्मोपभोगायतैः संसरतिसोऽवशः१६९

पद-ये १ नैकरूपाः १ चऽ-अधस्तात्ऽ-रश्मयः १ चऽ-मृदुप्रभाः १ इहऽ-कर्मोपभोगाय ४ तैः ३ संसरति क्रि-सः १ अवशः १॥

योजना-ये नैकरूपाः मृदुप्रभाः रश्मयः अधस्तात् स्थिताः तैः अवशः इह कर्मोपभोगाय संसरति ॥

तात्प०भावार्थ-और जो अनेक रूप कोमल कांतिवाली रश्मि नीचेको स्थित हैं उनसे कर्मफलोंके भोगार्थ उन कर्मोंके अधीन हुआ संसारमें जन्म लेता है ॥ १६९ ॥

वेदैःशास्त्रैःसविज्ञानैर्जन्मनामरणेनच ।
आर्त्यागत्यातथागत्यासत्येनह्यनृतेनच ॥

पद-वेदैः ३ शास्त्रैः ३ सविज्ञानैः ३ जन्मना ३ मरणेन ३ चऽ-आर्त्या ३ गत्या ३ तथाऽ-अगत्या ३ सत्येन ३ हिऽ-अनृतेन ३ चऽ-॥

श्रेयसासुखदुःखाभ्यांकर्मभिश्चशुभाशुभैः ।
निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैःफलैः ॥

पद-श्रेयसा ३ सुखदुःखाभ्याम् ३ कर्मभिः ३ चऽ- शुभाशुभैः ३ निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः ३ फलैः ३ ॥

तारानक्षत्रसंचारैर्जागरैःस्वप्नजैरपि ।
आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैस्तथा ॥

पद-तारानक्षत्रसंचारैः ३ जागरैः ३ स्वप्नजैः ३ अपिऽ- आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैः ३ तथाऽ-॥

मन्वंतरैर्युगप्राप्त्यामंत्रौषधिफलैरपि ।
वित्तात्मानंवेद्यमानंकारणंजगतस्तथा १७३

पद-मन्वंतरैः ३ युगप्राप्त्या ३ मंत्रौषधिफलैः ३ अपिऽ-वित्त क्रि-आत्मानम् २ वेद्यमानम् २ कारणम् २ जगतः ६ तथाऽ- ॥

योजना-वेदैः सविज्ञानैः शास्त्रैः जन्मना च पुनः मरणेन आर्त्या गत्या तथा अगत्या सत्येन च पुनः अनृतेन श्रेयसा सुखदुःखाभ्यां च पुनः शुभाशुभैः कर्मभिः निमित्तशाकुनज्ञानग्रहसंयोगजैः फलैः तारानक्षत्रसंचारैः जागरैः स्वप्नजैः आकाशपवनज्योतिर्जलभूतिमिरैः मन्वंतरैः युगप्राप्त्या मंत्रौषधिफलैः अपि वेद्यमानं तथा जगतः कारणम् आत्मानं यूयं वित्त ॥

तात्पर्यार्थ-अब भूतोंको जो चैतन्य मानता है उसके पक्षका निराकरण करते हैं कि, वह यह नेतिनेतिसे जानने योग्य अस्थूल अनणु अह्रस्व अपाणिपाद अर्थात् स्थूल अणु ह्रस्व कर चरणवालेसे भिन्न आत्मा है इत्यादि वेदोंसे और मीमांसा आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रोंसे और मेरा यह शरीर है इत्यादि आत्मासे भिन्न ज्ञानोंसे और जन्मांतरमें किये अधर्म धर्मके अधीन जन्म मरणोंसे देहसे भिन्न आत्माका अनुमान करौ और जन्मांतरमें किये कर्मोंके कर्ताको नियमसे होनेवाले दुःखसे और ज्ञान इच्छा प्रयत्नवालेसे, जो होते हैं उन गमन और अगमनोंसे भौतिक देहसे आत्माका अनुमान करौ क्योंकि इससे देह चैतन्य नहीं हो सक्ता जिससे कारण गुणोंके क्रमसे कार्य द्रव्यमें वैशेषिक गुणोंका आरंभ देखा है और पार्थिव देहके कारण पार्थिव परमाणुओंमें चैतन्यका समवाय नहीं हो सक्ता क्योंकि परमाणुसे बने स्तंभ कुंभ आदिकोंमें चैतन्यको नहीं देखते कदाचित् कोई शंका करै कि मदशक्तिके समान जल आदि द्रव्यान्तरके संयोगसे चैतन्य हो जाता है सो ठीक नहीं क्योंकि शक्ति एक साधारण गुण है इससे भौतिक देहसे भिन्न चैतन्य आदिका समवायी अंगीकार करना सत्य और झूठसे श्रेय (हितप्राप्ति) से परलोकके सुख

---

१ स एष नेतिनेत्यात्मेति अस्थूलमनण्वह्रस्वमपाणिपादम् ।

और दुःखोंसे तैसेही शुभ कर्मके करने और अशुभ कर्मके परित्यागसे ज्ञानवान्में नियमसे रहनेवाले इनसे भी देहसे भिन्न आत्माका अनुमान करो। भूकम्प और पिंगल आदिसे शकुनोंका ज्ञान अर्थात् पक्षियोंकी चेष्टासे शुभ अशुभ जानना, सूर्य आदि ग्रहोंके संयोगका फल अश्विनी आदिसे भिन्न ज्योतिवाले तारे और अश्विनी आदि नक्षत्र इनके संचारसे शुभ अशुभ फलके जतानेवाले जाग्रत् अवस्थाके छिद्र सहित सूर्य आदिके दर्शनोंसे और तैसेही खर वाराहसे युक्त रथमें बैठना आदि स्वप्नके ज्ञानसे तैसेही जीवके उपभोगार्थ रचेहुए आकाश पवन ज्योति जल भूतिमिरोंसे और युगांतरकी प्राप्ति जो देहमें नहीं हो सक्ती उससे और ज्ञान बुद्धिसे किये हुए मंत्र और ओषधि आदि क्षुद्र २ कर्मोंसे इन सबसे साक्षात् वा परंपरासे जानने योग्य आत्माको हे मुनियो! तुम जानो ॥

भावार्थ—विज्ञानसहित वेद शास्त्र, जन्म मरण, आर्ति, गमन अगमन, सत्य झूठ श्रेय सुख दुःख, शुभ और अशुभ कर्म भूकम्प आदि शाकुनज्ञान, सूर्य आदिके संयोगका फल, अश्विनी आदि नक्षत्रोंका संचार, जागर स्वप्न आदिका ज्ञान, आकाश पवन ज्योति जल पृथिवी अंधकार मन्वन्तर युगोंकी प्राप्ति और मंत्र ओषधियोंका फल इनसे जानने योग्य और जगत्के कारण आत्माको तुम जानो॥१७०-१७३

अहंकारःस्मृतिर्मेधाद्वेषोबुद्धिःसुखंधृतिः।
इंद्रियांतरसंचारइच्छाधारणजीविते १७४॥

पद—अहंकारः १ स्मृतिः १ मेधा १ द्वेषः १ बुद्धिः १ सुखम् १ धृतिः १ इंद्रियांतरसंचारः १ इच्छा १ धारणजीविते १ ॥

स्वर्गःस्वप्नश्चभावानांप्रेरणंमनसोगतिः।
निमेषश्चेतनायत्नआदानंपाञ्चभौतिकम् ॥

पद—स्वर्गः १ स्वप्नः १ च ऽ-भावानाम् ६ प्रेरणम् १ मनसः ६ गतिः १ निमेषः १ चेतना १ यत्नः १ आदानम् १ पांचभौतिकम् १ ॥

यतएतानिदृश्यंतेलिंगानिपरमात्मनः।
तस्मादस्तिपरोदेहादात्मासर्वगईश्वरः १७६

पद—यतःऽ-एतानि १ दृश्यंते क्रि-लिंगानि १ परमात्मनः ६ तस्मात् ५ अस्ति क्रि-परः १ देहात् ५ आत्मा १ सर्वगः १ ईश्वरः १ ॥

योजना—अहंकारः स्मृतिः मेधा द्वेषः बुद्धिः सुखं धृतिः इंद्रियान्तरसंचारः इच्छा धारणजीविते, स्वर्गः च पुनः स्वप्नः भावानां प्रेरणम्, मनसः गतिः, निमेषः चेतना यत्नः पांचभौतिकम् आदानं, यतः एतानि परमात्मनः लिंगानि दृश्यंते तस्मात् देहात्परः (भिन्नः) सर्वगः ईश्वरः आत्मा अस्ति ॥

तात्पर्यार्थ—अहंकार पूर्व जन्मके अनुभवसे उत्पन्न हुआ जो आत्मामें संस्कार उसके उद्बोधसे होनेवाली बालकके दूध पीने आदिकी स्मृति, इस लोकका सुख, धीरता अन्य इंद्रियके देखे हुए पदार्थमें अन्य इंद्रियका संचार जैसे जिसको मैंने देखा उसका ही मैं स्पर्श करता हूं, यह अनुसंधान रूप इंद्रियांतर संचार, इस प्रकरणमें इच्छा प्रयत्न चैतन्य स्वरूपसे लिंग है और पहिले श्लोकमें गमन सत्य वचन आदिका हेतु होनेसे आर्थिक लिंग (प्रमाण) है इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है। शरीरका धारण और जीवित (प्राणधारण), अनियमसे देहांतरमें भोगने योग्य सुख विशेष रूप स्वर्ग, स्वप्न, पहिले श्लोकमें शुभ फलके द्योतनार्थ स्वप्न लिंग है यहां स्वरूपसे इससे पुनरुक्ति दोष नहीं है। तैसेही भावों (इंद्रिय) का विषयोंमें प्रेरण, चेतनके अधिष्ठानसे मनकी गति, निमेष, तैसेही पंचभूतोंका उपादान (ग्रहण) जिससे भूतोंमें न होनेवाले साक्षात्

वा परंपरासे परमात्माके द्योतक ये लिंग (हेतु) दीखतेहैं, तिससे सर्वव्यापी ईश्वर आत्मा देहसे भिन्न है ॥

भावार्थ–अहंकार, स्मरण, मेधा, द्वेष, बुद्धि, सुख, धैर्य, इंद्रियांतरसंचार, इच्छा, शरीर और प्राणोंका धारण, स्वर्ग, स्वप्न, इन्द्रियोंका प्रेरण, मनकी गति, निमेष, चेतना, यत्न, पंच भूतोंका ग्रहण, जिससे परमात्माके ये लिंग दीखते हैं तिससे सर्व व्यापक ईश्वर आत्मा देहसे भिन्न है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

बुद्धींद्रियाणिसार्थानिमनःकर्मेंद्रियाणिच । अहंकारश्चबुद्धिश्चपृथिव्यादीनिचैवहि १७७

पद–बुद्धीन्द्रियाणि १ सार्थानि १ मनः १ कर्मेन्द्रियाणि १ चऽ–अहंकारः १ चऽ–बुद्धिः १ चऽ–पृथिव्यादीनि १ चऽ–एवऽ–हिऽ– ॥

अव्यक्तमात्माक्षेत्रज्ञःक्षेत्रमस्यनिगद्यते । ईश्वरःसर्वभूतस्थःसन्नसन्सदसच्चयः॥ १७८॥

पद–अव्यक्तम् १ आत्मा १ क्षेत्रज्ञः १ क्षेत्रम् १ अस्य ६ निगद्यते क्रि–ईश्वरः १ सर्वभूतस्थः १ सन् १ असन् १ सदसत् १ चऽ–यः १ ॥

योजना–सार्थानि बुद्धीन्द्रियाणि, मनः च पुनः कर्मेन्द्रियाणि, अहंकारः बुद्धिः, च पुनः पृथिव्यादीनि–अव्यक्तम् (प्रकृतिः) एतत् अस्य क्षेत्रं, यः असौ ईश्वरः सर्वभूतस्थः सन् असन् सदसद्रूपः आत्मा अस्ति सः क्षेत्रज्ञः निगद्यते ॥

तात्प० भावार्थ–श्रोत्र आदि ज्ञानेंद्रिय और उनके शब्द आदि विषय, मन और कर्मेन्द्रिय, अहंकार बुद्धि और पृथिवी आदि भूत, अव्यक्त (प्रकृति) यह उस परमात्माका क्षेत्र कहाता है और जो ईश्वर सब भूतोंमें स्थित और प्रमाणांतरसे जाननेके अयोग्य होनेसे सद्रूप और स्पष्ट प्रतीत न होनेसे असत् रूप और सदसत् रूप आत्मा है वह क्षेत्रज्ञ कहाता है ॥ १७७ ॥ १७८॥

बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्तात्ततोऽहंकारसंभवः । तन्मात्रादीन्यहंकारादेकोत्तरगुणानिच ॥

पद–बुद्धेः ६ उत्पत्तिः १ अव्यक्तात् ५ ततःऽ–अहंकारसंभवः १ तन्मात्रादीनि १ अहंकारात् ५ एकोत्तरगुणानि १ चऽ– ॥

योजना–अव्यक्तात् बुद्धेः उत्पत्तिः ततः अहंकारसंभवः अहंकारात् एकोत्तरगुणानि तन्मात्रादीनि उत्पद्यंते ॥

तात्प०–सत्त्व आदि गुणोंकी साम्यावस्थाको अव्यक्त कहते हैं । उससे सत्त्व रज तमोगुणमयी तीन प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न होती है । उस बुद्धिसे वैकारिक तैजस तामस रूप तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न होता है । उनमें तामस भूतादि नामके अहंकारसे भूतोंकी शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध रूप मात्रा और आकाश आदि भूत उत्पन्न होते हैं और वे मात्रा एकोत्तर गुणी होती हैं अर्थात् भूतोंके क्रमसे एक २ मात्रा बढती जाती है और चशब्दके पढनेसे वैकारिक और तैजस अहंकारसे ज्ञान और कर्मेद्रियोंकी उत्पत्ति समझनी ॥

भावार्थ–अव्यक्तसे बुद्धिकी उत्पत्ति और बुद्धिसे अहंकारकी और अहंकारसे एकोत्तर गुणी शब्द आदि मात्राओंकी उत्पत्ति होती है ॥ १७९ ॥

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगंधश्चतद्गुणाः । योयस्मान्निसृतश्चैषांसतस्मिन्नेवलीयते ॥

पद–शब्दः १ स्पर्शः १ चऽ–रूपम् १ चऽ–रसः १ गन्धः १ चऽ–तद्गुणाः १ यः १ यस्मात् ५ निसृतः १ चऽ–एषाम् ६ सः १ तस्मिन् ७ एवऽ–लीयते क्रि–॥

योजना–शब्दः स्पर्शः रूपं रसः च पुनः

गन्धः इमे तद्गुणाः ज्ञेयाः एषां मध्ये यः यस्मात् निसृतः सः तस्मिन् एव लीयते ॥

ता०भा०-उन आकाश आदि पांच भूतोंके एक २ की वृद्धिसे शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच गुण जानने। इन पूर्वोक्त वृद्धि आदि विकारोंके मध्यमें जो जिससे उत्पन्न हुआ है वह उसी प्रकृति आदिमें प्रलयके समय सूक्ष्म रूपसे लीन होजाताहै ॥ १८० ॥

यथात्मानंसृजत्यात्मातथावःकथितोमया ।
विपाकात्त्रिप्रकाराणांकर्मणामीश्वरोपिसन् ॥

पद-यथाऽ-आत्मानम् २ सृजति क्रि-आत्मा १ तथाऽ-वः ६ कथितः १ मया ३ विपाकात् ५ त्रिप्रकाराणाम् ६ कर्मणाम् ६ ईश्वरः १ अपिऽ-सन् १ ॥

सत्त्वंरजस्तमश्चैवगुणास्तस्यैवकीर्तिताः ।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यतेह्यसौ ॥

पद-सत्त्वम् १ रजः १ तमः १ चऽ-एवऽ-गुणाः १ तस्य ६ एवऽ-कीर्तिताः १ रजस्तमोभ्याम् ३ आविष्टः १ चक्रवत्ऽ-भ्राम्यते क्रि-हिऽ-असौ १ ॥

अनादिरादिमांश्चैव स एव पुरुषः परः ।
लिंगेंद्रियग्राह्यरूपः सविकार उदाहृतः ॥

पद-अनादिः १ आदिमान् १ चऽ-एवऽ-सः १ एवऽ-पुरुषः १ परः १ लिंगेंद्रियग्राह्यरूपः १ सविकारः १ उदाहृतः १ ॥

योजना-आत्मा त्रिप्रकाराणां कर्मणां विपाकात् ईश्वरोपि सन् यथा आत्मानं सृजति तथा मया वः युष्माकं कथितः च पुनः सत्त्वं रजः तमः गुणाः तस्य एव कीर्तिताः रजस्तमोभ्याम् आविष्टः सन् असौ चक्रवत् भ्राम्यते स एव परः पुरुषः अनादिः आदिमान् लिंगेंद्रियग्राह्यरूपः सविकारः उदाहृतः ॥

ता० भा०-मानस आदि तीन प्रकारके कर्मके विपाकसे ईश्वर हुआभी वह आत्मा जिस प्रकार आत्माको रचता है वह प्रकार आपको कहा और सत्त्व आदि गुणभी उसकेही कहे और रजोगुण तमोगुणसे आविष्ट (युक्त) वह इस संसारके विषय चक्रके समान भ्रमता है यहभी कहा और वही अनादि परम पुरुष शरीरके ग्रहण करनेसे आदिमान् और कुब्ज वामन आदि विकारोंसहित और स्थूल आकारके परिमाणसे लिंग और इंद्रियोंसे ग्रहण करने योग्य कहा ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

पितृयानोजवीथ्याश्चयदगस्त्यस्यचान्तरम् ।
तेनाग्निहोत्रिणोयांतिस्वर्गकामादिवंप्रति ॥

पद-पितृयानः १ अजवीथ्याः ६ चऽ-यत् १ अगस्त्यस्य ६ चऽ-अन्तरम् १ तेन ३ अग्निहोत्रिणः ६ यान्ति क्रि-स्वर्गकामाः १ दिवम् २ प्रतिऽ-॥

योजना-अजवीथ्याः च पुनः अगस्त्यस्य यत् अंतरम् असौ पितृयानः तेन स्वर्गकामाः अग्निहोत्रिणः दिवं प्रति यान्ति ॥

ता०भा०-अजवीथी. (देवमार्ग) और अगस्त्यमुनि इनका जो मध्य उसे पितृयान कहते हैं स्वर्गकी कामनावाले अग्निहोत्री उस मार्गसे स्वर्गमें प्राप्त होते हैं ॥ १८४ ॥

येचदानपराःसम्यगष्टाभिश्चगुणैर्युताः ।
तेपितेनैवमार्गेणसत्यव्रतपरायणाः ॥ १८५ ॥

पद-ये १ चऽ-दानपराः १ सम्यक्ऽ-अष्टाभिः ३ चऽ-गुणैः ३ युताः १ ते १ अपिऽ-तेन ३ एवऽ-मार्गेण ३ सत्यव्रतपरायणाः १ ॥

योजना-सम्यक् दानपराः च पुनः अष्टाभिः गुणैः युताः च पुनः सत्यव्रतपरायणाः तेपि तेन एव मार्गेण दिवं यान्ति ॥

ता० भा०-जो मनुष्य दंभको छोडकर

दान आदि स्मार्त कर्ममें तत्पर हैं और गौतम आदि मुनियोंके कहे हुए इन दया क्षमा अनसूया शौच अनायास मंगल अकार्पण्य अस्पृहा आठ आत्माके गुणोंसे युक्त हैं और जो सत्य वचनमें रत हैं वेभी उसी पितृयानसे स्वर्गमें प्राप्त होते हैं ॥ १८५ ॥

तत्राष्टाशीतिसाहस्रमुनयोगृहमेधिनः ।
पुनरावर्तिनोबीजभूताधर्मप्रवर्तकाः १८६ ॥

पद–तत्रऽ–अष्टाशीतिसाहस्रमुनयः १ गृहमेधिनः १ पुनरावर्त्तिनः १ बीजभूताः १ धर्मप्रवर्तकाः १ ॥

योजना–गृहमेधिनः पुनरावर्त्तिनः बीजभूताः धर्मप्रवर्तकाः तत्र अष्टाशीतिसाहस्रमुनयः सन्ति ॥

ता०भा०–उस पितृयानमें अठासी सहस्र मुनि गृहस्थी और पुनः आवृत्ति धर्मवाले और स्वर्गकी आदिमें वेदका उपदेशक होनेसे वेदरूप वृक्षके बीजरूप हुए अग्निहोत्र आदिके प्रवर्तक हैं। इससे नैमित्तिक प्रलयके समयमें सब अध्यापकोंका प्रलय होनेसे अग्निहोत्र आदि कर्मोंका प्रचार कैसे होगा यह दोष नहीं ॥ १८६ ॥

सप्तर्षिनागवीथ्यन्तर्देवलोकंसमाश्रिताः ।
तावंतएवमुनयःसर्वारंभविवर्जिताः॥१८७॥

पद–सप्तर्षिनागवीथ्यन्तःऽ–देवलोकम् २ समाश्रिताः १ तावन्तः १ एवऽ–मुनयः १ सर्वारंभ विवर्जिताः १ ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण संगत्यागेन मेधया ।
तत्रगत्वावतिष्ठंतेयावदाभूतसंप्लवम्॥१८८॥

पद–तपसा ३ ब्रह्मचर्येण ३ संगत्यागेन ३ मेधया ३ तत्रऽ–गत्वाऽ–अवतिष्ठंते क्रि–यावत्ऽ–आभूतसंप्लवम् १ ॥

योजना–तावन्तः एव सर्वारंभविवर्जिताः मुनयः सप्तर्षिनागवीथ्यन्तः देवलोकं समाश्रिताः सन्ति। तपसा ब्रह्मचर्येण संगत्यागेन मेधया युक्ताः तत्र गत्वा यावत् आभूतसंप्लवं तावत् अवतिष्ठंते ॥

ता० भा०–सप्तऋषि और नागवीथी (ऐरावतमार्ग) इनके मध्यमें उतनेही अठासी सहस्र मुनि सब आरंभोंसे रहित केवल ज्ञानमें तत्पर तप ब्रह्मचर्य और संगका त्याग और बुद्धिसे युक्त देवलोकमें रहनेवाले वहां जाकर तबतक टिकते हैं। जबतक सब भूतोंका प्रलय होय और वहां बैठे हुए आध्यात्मिक आदि धर्मोंका सृष्टिके आदिमें उपदेश करते हैं॥१८७॥१८८॥

यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषद-स्तथा। श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्च किंचन वाङ्मयम् ॥ १८९ ॥

पद–यतःऽ–वेदाः १ पुराणानि १ विद्या १ उपनिषदः १ तथाऽ–श्लोकाः १ सूत्राणि १ भाष्याणि१यत्१चऽ–किंचनऽ–वाङ्मयम् १ ॥

योजना–यतः वेदाः पुराणानि विद्या उपनिषदः तथा श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि च पुनः यत् किंचन वाङ्मयं प्रवृत्तम् ॥

तात्पर्यार्थ–उसी दो प्रकारके मुनियोंके समूहसे चारों वेद, पुराण, अंगविद्या और उपनिषद् नित्यभूतभी ये पठन पाठनकी परम्परासे प्रवृत्त हुए। तिसी प्रकार इतिहासरूपी श्लोक, शब्दशास्त्र और मीमांसाके सूत्र और सूत्रोंकी व्याख्यारूप भाष्य और जो आयुर्वेद आदि वाङ्मय (शास्त्र) है वहभी उनसे ही प्रवृत्त हुआ ऐसे वे मुनि धर्मके प्रवर्तक हैं। इस रीतिसे वेदको अनित्यताका दोष नहीं ॥

भावार्थ–उनसे ही वेद, पुराण, विद्या, उप-

१ दया क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहा।

निषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य और संपूर्ण वाङ्मय शास्त्र प्रवृत्त हुआ ॥ १८९ ॥

वेदानुवचनं यज्ञोब्रह्मचर्यं तपो दमः ।
श्रद्धोपवासःस्वातंत्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः ॥

पद-वेदानुवचनम् १ यज्ञः १ ब्रह्मचर्यम् १ तपः १ दमः १ श्रद्धा १ उपवासः १ स्वातन्त्र्यम् १ आत्मानः ६ ज्ञानहेतवः १ ॥

योजना-वेदानुवचनं यज्ञः ब्रह्मचर्यं तपः दमः श्रद्धा उपवासः स्वातन्त्र्यम् एते आत्मनः ज्ञानहेतवः सन्ति ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-वेदपाठ, यज्ञ, ब्रह्मचर्य, तप, दम, श्रद्धा, उपवास, स्वातंत्र्य ये अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा आत्माके ज्ञानमें हेतु हैं ॥ १९० ॥

सह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यःसमस्तैरेवमेवतु ।
द्रष्टव्यस्त्वथमंतव्यःश्रोतव्यश्चद्विजातिभिः॥

पद-स १ हिऽ-आश्रमैः ३ विजिज्ञास्यः १ समस्तैः ३ एवम्ऽ-एवऽ-तुऽ-द्रष्टव्यः १ तुऽ-अथऽ-मन्तव्यः १ श्रोतव्यः १ चऽ-द्विजातिभिः ३ ॥

यएनमेवंविंदंतियेचारण्यकमाश्रिताः ।
उपासतेद्विजाःसत्यंश्रद्धयापरयायुताः ॥

पद-ये १ एनम् २ एवम्ऽ-विंदन्ति क्रि-ये १ चऽ-आरण्यकम् २ आश्रिताः १ उपासते क्रि-द्विजाः १ सत्यम् २ श्रद्धया ३ परया ३ युताः १ ॥

योजना-हि अत सः समस्तैः आश्रमैः द्विजातिभिः विजिज्ञास्यः द्रष्टव्यः तु पुनः मन्तव्यः श्रोतव्यः । ये द्विजातयः एवम् आत्मानं परया श्रद्धया युताः च पुनः ये आरण्यकम् आश्रिताः उपासते ते एनं सत्यं विंदन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-जिससे नित्य होनेसे आत्मामें प्रमाणरूप वेद है, तिसमें वेदोक्त मार्गके द्वारा वह परमेश्वर संपूर्ण आश्रमवालोंको नानाप्रकारसे जानने योग्य है, उसी प्रकारको दिखातेहैं । द्विजातियोंको द्रष्टव्य है अर्थात् प्रत्यक्ष करने योग्य है, उसमें उपाय दिखाते हैं कि, श्रोतव्य और मंतव्य है अर्थात् प्रथम वेदान्तके श्रवणसे निर्णय करने योग्य है और फिर युक्तियोंसे विचार करने योग्य है, इस प्रकार करनेसे यह आत्मा ध्यानसे प्रत्यक्ष होता है । जो द्विजाति अत्यंत श्रद्धासे युक्त होकर निर्जन देशमें बैठेहुए पूर्वोक्त मार्गसे इस परमार्थभूत सत्य आत्माकी उपासना करते हैं वे आत्माको प्राप्त होते हैं ॥

भावार्थ-सब आश्रमवाले द्विजातियोंको वह आत्मा जानने और देखने और सुनने योग्य है । जो द्विज वनमें बैठे और उत्तम श्रद्धासे युक्त इस सत्य आत्माकी उपासना करते हैं, वे आत्माको प्राप्त होते हैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

क्रमात्तेसंभवंत्यर्चिरहःशुक्लंतथोत्तरम् ॥
अयनंदेवलोकंचसवितारंसवैद्युतम् ॥१९३॥

पद-क्रमात् ५ ते १ संभवन्ति क्रि-अर्चिः २ अहः २ शुक्लम् २ तथाऽ-उत्तरम् २ अयनम् २ देवलोकम् २ चऽ-सवितारम् २ सवैद्युतम् २ ॥

ततस्तान्पुरुषोभ्येत्यमानसोब्रह्मलौकिकान्।
करोतिपुनरावृत्तिस्तेषामिहनविद्यते॥१९४॥

पद-ततःऽ-तान् २ पुरुषः १ अभ्येत्यऽ-मानसः १ ब्रह्मलौकिकान् २ करोति क्रि-पुनःऽ-आवृत्तिः १ तेषाम् ६ इहऽ-नऽ-विद्यते क्रि-॥

योजना-ते विदितात्मानः अर्चिः अहः शुक्लं तथा उत्तरम् अयनं देवलोकं च पुनः सवैद्युतं सवितारं क्रमात् प्राप्य अर्चिः आदि संभवन्ति । ततः मानसः पुरुषः तान् अ-

भ्येत्य ब्रह्मलौकिकान् करोति। इह तेषाम् आवृत्तिः पुनः न विद्यते ॥

तात्पर्यार्थ-वे विजितात्मा अग्नि आदि अभिमानी देवताओंके स्थान जो मुक्तिके मार्ग हैं उनमें विश्राम करके परमपदको प्राप्त होते हैं, अर्थात् अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्य, वैद्युत (तेज) इनमें क्रमसे जाकर ब्रह्मलोकमें प्राप्त होते हैं कि फिर अग्नि आदिके स्थानोंमें प्राप्त हुए उनको मानस पुरुष आकर ब्रह्मलोकमें वासी करता है, इस संसारमें उनकी आवृत्ति (जन्म) नहीं होती, किंतु प्राकृतप्रलयके समय लिंग शरीरको छोडकर परमात्मामें एक हो जाते हैं ॥

भावार्थ-फिर वे क्रमसे अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, देवलोक, सूर्य और तेजरूप हो जाते हैं, फिर मानस पुरुष उसको आनकर ब्रह्मलोकमें पहुंचाताहै फिर उनका इस लोकमें जन्म नहीं होता ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

यज्ञेनतपसादानैर्येहिस्वर्गजितोनराः ॥
धूमंनिशांकृष्णपक्षंदक्षिणायनमेवच १९५ ॥

पद-यज्ञेन ३ तपसा ३ दानैः ३ ये १ हिऽ-स्वर्गजितः १ नराः १ धूमं २ निशाम् २ कृष्णपक्षम् २ दक्षिणायनम् २ एवऽ-चऽ-॥

पितृलोकंचंद्रमसंवायुंवृष्टिंजलंमहीम् ।
क्रमात्तेसंभवंतीहपुनरेवव्रजंतिच ॥१९६ ॥

पद-पितृलोकम् २ चंद्रमसम् २ वायुम् २ वृष्टिम् २ जलम् २ महीम् २ क्रमात् ५ ते १ संभवंति क्रि-इहऽ-पुनःऽ-एवऽ-व्रजंति क्रि-चऽ-॥

एतद्योनविजानातिमार्गद्वितयमात्मवान् ॥
दंदशूकःपतंगोवाभवेत्कीटोथवाकृमिः १९७

पद-एतत् २ यः १ नऽ-विजानाति क्रि-मार्गद्वितयम् २आत्मवान् १ दंदशूकः १पतंगः १ वाऽ-भवेत् क्रि-कीटः १अथवाऽ-कृमिः १॥

योजना-ये नराः यज्ञेन तपसा दानैः स्वर्गजितः संति ते धूमं निशां कृष्णपक्षं च पुनः दक्षिणायनं पितृलोकं चंद्रमसं वायुं वृष्टिं जलं महीं क्रमात् प्राप्य इह संभवंति च पुनः पुनः एव व्रजंति यः आत्मवान् एतत् मार्गद्वितयं न विजानाति सः दंदशूकः वा पतंगः कीटः अथवा कृमिः भवेत् ॥

तात्प० भावार्थ-जो मनुष्य शास्त्रोक्त यज्ञ दान तपसे स्वर्गफलको भोगते हैं, वे क्रमसे धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक और चंद्रलोकको प्राप्त होकर फिर वायु वृष्टि जल भूमिको प्राप्त होकर अर्थात् व्रीहि आदि अन्यरूपसे शुक्र होकर इस लोकमें संसारी होते हैं और पुनः स्वर्ग आदिमें जाते हैं जो आत्मज्ञानी इन दो मार्गोंको नहीं जानता अर्थात् दोनों मार्गोंके हेतु धर्मको नहीं करता वह सर्प पतंग (पक्षी) कृमि वा कीट होता है ॥ १९५-१९७ ॥

ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्येन्यस्योत्तरंकरम् ।
उत्तानंकिंचिदुन्नाम्यमुखंविष्टभ्यचोरसा ॥

पद-ऊरुस्थोत्तानचरणः१ सव्ये ७ न्यस्यऽ-उत्तरम् २ करम् २ उत्तानम् २ किंचित्ऽ-उन्नाम्यऽ-मुखम् २ विष्टभ्यऽ-चऽ-उरसा ३॥

निमीलिताक्षःसत्त्वस्थोदंतैर्दंतानसंस्पृशन् ।
तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः ॥

पद-निमीलिताक्षः १ सत्त्वस्थः १ दंतैः ३ दंतान् २ असंस्पृशन् १ तालुस्थाचलजिह्वः १ चऽ-संवृतास्यः १ सुनिश्चलः १ ॥

सन्निरुध्येंद्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः ।
द्विगुणंत्रिगुणंवापिप्राणायाममुपक्रमेत् ॥

पद-संनिरुध्यऽ-इंद्रियग्रामम् २ नातिनी-

चोच्छ्रितासनः१ द्विगुणम् २ त्रिगुणम् २ वाऽ– अपिऽ–प्राणायामम् २ उपक्रमेत् क्रि–॥

ततोध्येयःस्थितोयोसौहृदयेदीपवत्प्रभुः ।
धारयेत्तत्रचात्मानंधारणांधारयन्बुधः ॥

पद–ततःऽ–ध्येयः १ स्थितः १ यः १ असौ१ हृदये ७ दीपवत्ऽ–प्रभुः १ धारयेत् क्रि–तत्रऽ–चऽ–आत्मानम्२ धारणाम्२ धारयन् १ बुधः१॥

योजना–ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्ये उत्तानं उत्तरं करं न्यस्य, मुखं किंचित् उन्नाम्य च पुनः उरसा विष्टभ्य निमीलिताक्षः सत्त्वस्थः दंतैः दंतान् अस्पृशन् तालुस्थाचलजिह्वः संवृतास्यः सुनिश्चलः नातिनीचोच्छ्रितासनः पुरुषः इंद्रियग्रामं संनिरुद्ध्य द्विगुणं वा त्रिगुणं अपि प्राणायामं उपक्रमेत् ततः यः असौ प्रभुः हृदये दीपवत् स्थितः सः ध्येयः च पुनः धारणां धारयन् बुधः तत्र आत्मानं धारयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–ऊरुओंपर स्थित हैं उत्तान चरण जिसके अर्थात् पद्मासन बांधकर और उत्तान (सीधे) वाम हाथपर सीधा दक्षिण हाथ रखकर और मुखको यत्किंचित् उठाकर और उर (छाती) से थामकर मिचे हैं नेत्र जिसके सत्त्व गुणमें स्थित अर्थात् काम क्रोध आदिसे रहित और दांतोंसे दांतोंका स्पर्श न करता हुआ और तालुपर स्थित है निश्चल जिह्वा जिसकी संवृत (बुचा) है मुख जिसका और भली प्रकार निश्चल अर्थात् कंपरहित और न अत्यंत नीचा और न अत्यंत ऊंचा है आसन जिसका ऐसा चित्तके विक्षेपसे रहित पुरुष इंद्रियोंके समूहको विषयोंसे रोककर दुगुने वा तिगुने प्राणायामके अभ्यासका प्रारंभ करै, फिर प्राणरूप पवनको वशमें होनेसे जो प्रभु हृदयके विषय दीपकके समान प्रकाश रूप स्थित है वह ध्यान करने योग्य है अर्थात् उसका ध्यान करै और उस हृदयमें मनसे आत्माको धारै अर्थात् धारणसे आत्मामें मन लगावै, धारणाका स्वरूप यह है कि जानुके ऊपर करके अग्रभागको भ्रमाकर छोटिका (चुटिया) के टकी देनेका जो समय उसे मात्रा कहते हैं, उन पंद्रह मात्राओंसे जो प्राणायाम वह अधम, तीस मात्राओंसे मध्यम, पैंतालीस मात्राओंसे उत्तम होता है, इस प्रकार तीन प्राणायामोंकी एक धारणा होती है उन तीन धारणाओंको योग कहते हैं और उनही तीन धारणाओंको धारण करै सोई अन्ययोगोंके ग्रंथोंमें कहाहै कि कराग्रसे जानुमंडलको प्रदक्षिणा कर छोटिका (चुटकी) दे वह काल एक मात्रा कहाती है, पंद्रह मात्राओंसे अधम प्राणायाम कहा है इससे दूना मध्यम और तिगुना श्रेष्ठ कहाहै, तीन तीन प्राणायामोंसे एक २ धारणा और तीन धारणाओंको योग कहते हैं अर्थात् उन पूर्वोक्त धारणाओंसे योग सिद्ध होता है ॥

भावार्थ–ऊरुपर सीधे चरणको रक्खै और सीधे वाम हाथ पर सीधे दक्षिण हाथको रक्खै और मुखको किंचित् उठाकर और छातीसे थामकर, नेत्रोंकोभी मीचकर और काम क्रोधसे रहित और दांतोंसे दांतोंका स्पर्श न करता हुआ तालुपर जिह्वाको लगाकर मुखको मीचकर और भली प्रकार निश्चल और इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर और नहीं है अत्यन्त नीचा वा ऊंचा आसन जिसका ऐसा पुरुष दुगुने वा तिगुने प्राणायामका अभ्यास करै, फिर जो यह

---

१ संभ्रम्य च्छोटिकां दद्यात्कराग्रं जानुमंडले। मात्राभिः पंचदशभिः प्राणायामोऽधमः स्मृतः ॥ मध्यमो द्विगुणः प्रोक्तस्त्रिगुणो धारणा तथा।त्रीभिस्त्रीभिः स्सतैकैका ताभिर्योगस्तथैव च ॥

प्रभु हृदयमें दीपकके समान स्थित है उसका ध्यान करे और उसीमें मनको धारणा करता हुआ बुद्धिमान् मनुष्य धारे ॥ १९८-२०१ ॥

अंतर्धानंस्मृतिःकांतिर्दृष्टिःश्रोत्रज्ञतातथा ॥
निजंशरीरमुत्सृज्यपरकायप्रवेशनम् २०२॥

पद-अंतर्धानम् १ स्मृतिः १ कांतिः १ दृष्टिः १ श्रोत्रज्ञता १ तथाऽ-निजम् २ शरीरम् २ उत्सृज्यऽ-परकायप्रवेशनम् १॥

अर्थानांछंदतःसृष्टिर्योगसिद्धेर्हिलक्षणम् ।
सिद्धेयोगेत्यजन्देहममृतत्वायकल्पते ॥

पद-अर्थानाम् ६ छंदतःऽ-सृष्टिः १ योगसिद्धेः ६ हिऽ-लक्षणम् १ सिद्धे ७ योगे ७ त्यजन् १ देहम् २ अमृतत्वाय ४ कल्पते क्रि-॥

योजना-अंतर्धानं स्मृतिः कांतिः दृष्टिः तथा श्रोत्रज्ञता निजं शरीरम् उत्सृज्य परकायप्रवेशनम् अर्थानां छंदतः सृष्टिः एतत् योगसिद्धेः लक्षणम् भवति । योगे सिद्धे सति देहं त्यजन् सन् अमृतत्वाय कल्पते मुक्तो भवतीत्यर्थः ।

तात्पर्यार्थ-अब धारणारूप योगाभ्यासके प्रयोजनको कहते हैं कि अणिमा रूप सिद्धिकी प्राप्तिसे अन्य मनुष्योंको जो न दीखना उसे अंतर्धान (छिपना) कहते हैं वह अंतर्धान और अतींद्रिय (जानने अयोग्य) भी विषयोंका मनुष्य आदिके समान स्मरणकांति (कोमलता) भूत और भविष्यत् अर्थोंको देखना और अत्यन्त दूरभी देशमें होनेवाले अर्थात् जहां श्रोत्र इंद्रिय न पहुंचसकै ऐसे शब्दोंका ज्ञान अपने शरीरको त्यागकर परायी कायामें प्रवेश अपनी वांछाके अनुसार साधनोंके विनाही पदार्थोंकी रचना ये योगसिद्धिके लक्षण होते हैं । कुछ ये ही योगसिद्धिके प्रयोजन नहीं किंतु योगसिद्धिके अनंतर जो देहको त्यागता है वह ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-अंतर्धान (छिपना) स्मृति कोमलता दृष्टि दूरसे श्रवण और अपने शरीरको छोडकर परायी कायामें प्रवेश इच्छाके अनुसार पदार्थोंकी रचना ये योगसिद्धिके लक्षण हैं योगके सिद्ध होनेपर जो योगी देहको त्यागता है वह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥२०२॥ २०३॥

अथवाप्यभ्यसन्वेदंन्यस्तकर्मावनेवसन् ।
अयाचिताशीमितभुक्परांसिद्धिमवाप्नुयात् ।

पद-अथवाऽ-अपिऽ-अभ्यसन् १ वेदम् २ न्यस्तकर्मा १ वने ७ वसन् १ अयाचिताशी १ मितभुक् १ पराम् २ सिद्धिम् २ अवाप्नुयात् क्रि-॥

योजना-अथवा न्यस्तकर्मा वेदम् अपि अभ्यसन् वने वसन् अयाचिताशी मितभुक् पुरुषः परां सिद्धिम् अवाप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-अथवा कामनाओंको त्यागकर एकान्त वनमें वसता हुआ और विना याचनासे मिले प्रमित (थोडा) अन्नके भक्षण करनेसे शुद्ध है अंतःकरण जिसका ऐसा योगी आत्माकी उपासनासे मुक्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २०४ ॥

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।
श्राद्धकृत्सत्यवादीचगृहस्थोपिहिमुच्यते ॥

पद-न्यायागतधनः १ तत्त्वज्ञाननिष्ठः १ अतिथिप्रियः १ श्राद्धकृत् १ सत्यवादी १ चऽ-गृहस्थः १ अपिऽ-मुच्यते क्रि- ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-श्रेष्ठप्रतिग्रह आदिसे किया है धनसंचय जिसने तत्त्वज्ञानमें है निष्ठा जिसकी, अतिथियोंकी पूजामें तत्पर और नित्य नैमित्तिक श्राद्धोंका कर्त्ता और सत्यवादी ऐसा गृहस्थीभी जिससे मुक्तिको प्राप्त होता है तिससे केवल संन्यासका ग्रहणही मुक्तिका साधन नहीं ॥ २०५ ॥

इति यतिधर्मप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ प्रायश्चित्तप्रकरणम् ५.

महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्यदारुणान् ॥ कर्मक्षयात्प्रजायंतेमहापातकिनस्त्विह२०६

पद-महापातकजान् २ घोरान् २ नरकान् २ प्राप्य- दारुणान् २ कर्मक्षयात् ५ प्रजायंते क्रि-महापातकिनः १ तुऽ-इहऽ-॥

योजना-महापातकजान् घरान् दारुणान् नरकान् प्राप्य कर्मक्षयात् महापातकिनः इह प्रजायंते (उत्पद्यन्ते) ॥

तात्पर्यार्थ-वर्ण और आश्रमोंके संपूर्ण धर्मोंको हमारे प्रति कहो इस[1] वचनमें प्रतिपादन (कथन) करनेके लिये प्रतिज्ञा किये छः प्रकारके धर्मोंमेंसे पांच प्रकारके धर्मको कहकर अब शेष रहे नैमित्तिक धर्मके समूह (प्रायश्चित्त) का प्रारंभ करते हुए पहिले उसकी रुचिके और अधिकारियोंके दिखानेके लिये अर्थवादरूप कर्मविपाक (कर्मोंका फल) को कहते हैं: कि-

ब्रह्महत्या आदि पांचोंकी महापातक संज्ञा ब्रह्महा मद्यपः इस वचनमें कहेंगे उसके कर्त्ताको महापातकी कहते हैं। वे महापातकसे पैदा हुए अपने २ पापोंके अनुसार तामिस्र आदि घोर अर्थात् अत्यन्त तीव्र वेदना (दुःख) के देनेसे भयंकर और दारुण अर्थात् केवल दुःखके स्थान नरकोंको प्राप्त होकर कर्मके क्षयसे अर्थात् कर्मसे मिले नरकोंको दुःख भोगके अनंतर कर्मशेषसे फिर इस संसारमें अत्यन्त दुःखवाली कुत्ता सृगाल आदि योनियोंमें वारंवार जन्म लेते हैं। यहां महापातकियोंका भी वोधक है और उनकोभी तिरछी योनिकी प्राप्ति कहेंगे ॥

[1] वर्णाश्रमेतराणां नो ब्रूहि धर्मानविशेषतः ।

भावार्थ-महापातकी महापातकसे पैदा हुए घोर और दारुण नरकोंको प्राप्त होकर कर्मके क्षय होनेपर इस संसारमें जन्म लेते हैं ॥ २०६ ॥

मृगाश्वसूकरोष्ट्राणांब्रह्महायोनिमृच्छति । खरपुल्कसवेनानांसुरापोनात्रसंशयः २०७॥

पद-मृगाश्वसूकरोष्ट्राणाम् ६ ब्रह्महा १ योनिम् २ ऋच्छति क्रि-खरपुल्कसवेनानाम् ६ सुरापः १.नऽ-अत्रऽ-संशयः १ ॥

कृमिकीटपतंगत्वंस्वर्णहारीसमाप्नुयात् । तृणगुल्मलतात्वंचक्रमशोगुरुतल्पगः २०८

पद-कृमिकीटपतंगत्वम् २ स्वर्णहारी १ समाप्नुयात् क्रि-तृणगुल्मलतात्वम् २ चऽ-क्रमशःऽ-गुरुतल्पगः १ ॥

योजना-ब्रह्महा मृगाश्वसूकरोष्ट्राणां सुरापः खरपुल्कसवेनानां योनिम् ऋच्छति अत्र संशयः न अस्ति । स्वर्णहारी कृमिकीटपतंगत्वं, च पुनः गुरुतल्पगः तृणगुल्मलतात्वं क्रमशः समाप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्रह्महत्यारा मृग कुत्ता सूकर ऊंट इनकी योनियोंको अपने कर्मके शेषसे प्राप्त होता है। मदिरा पीनेवाला खर (गर्दभ) पुल्कस (जो प्रतिलोमज निषादसे शूद्रीमें उत्पन्न हो), वेन (जो वेदेहिकसे अंबष्ठीमें त्पन्न हो) इनकी योनिको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है। ब्राह्मणके सुवर्णका चोर कृमि (जो सजातीयके संभोग विना मांस विष्ठा गोमयमें उत्पन्न हों) और उनसे कुछ बडे पक्षके अस्थियोंसे रहित पिपीलिका आदि कीट पतंग (शलभ) इनकी योनियोंको प्राप्त होता है, और गुरुतल्पग (गुरुकी स्त्रीके संग भोग करनेवाला काश आदि तृण गुल्म और लता इनकी जातिकी योनिको क्रमसे प्राप्त होता है। यहभी अज्ञा-

नसे कियेके विषयमें समझना, जानकर पूर्वोक्त पाप करनेसे तो दुःख हैं वहुत जिनमें ऐसी अन्य योनियोंमें भी जन्मते हैं, सोई मनुने (अ० १२ श्लो० ५५-५८) कहा है कि ब्रह्महत्यारा, कुत्ता, सूकर, खर, ऊंट, गौ, अश्व, मृग, पक्षी, चंडाल, पुल्कस इनकी योनिको प्राप्त होता है, और मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण कृमि, कीट, पतंग और विष्ठा खानेवाले पक्षी और हिंसा करनेवाले जीव इनकी योनिको प्राप्त होता है और चोर ब्राह्मण, लूता (ऊर्णनाभि) सर्प, सरट (कृकलास) और जलमें विचरनेवाले तिरच्छी योनि, हिंसक और पिशाच इनकी योनिको सहस्रों जन्मतक प्राप्त होते हैं और गुरुकी शय्यापर गमनका कर्ता तृण गुल्म लता, और मांसभक्षक और दंष्ट्री (जो दांतसे काटें) और क्रूर कर्म करनेवाले इनकी सैकडों योनिको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-मृग, कुत्ता, सूकर, ऊंट इनकी योनिको ब्रह्महत्यारा और खर पुल्कस, वेन इनकी योनिको मद्यप प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं, कृमि कीट पतंग इनकी योनिको सुवर्णका चोर और तृण गुल्म लता इनकी योनिको गुरुकी शय्यापर गमनका कर्ता क्रमसे प्राप्त होता है ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

ब्रह्महाक्षयरोगीस्यात्सुरापःश्यावदंतकः।
हेमहारीतुकुनखीदुश्चर्मागुरुतल्पगः २०९॥

पद-ब्रह्महा १ क्षयरोगी १ स्यात् क्रि-सुरापः १ श्यावन्तकः १ हेमहारी १ तुऽ-कुनखी १ दुश्चर्मा १ गुरुतल्पगः १॥

योयेनसंवसत्येषांसतल्लिंगोभिजायते।
अन्नहर्तामयावीस्यान्मूकोवागपहारकः॥

पद-यः १ येन ३ संवसति क्रि-एषाम् ६ सः १ तल्लिंगः १ अभिजायते क्रि-अन्नहर्ता १ आमयावी १ स्यात् क्रि-मूकः १ वागपहारकः १॥

धान्यमिश्रोतिरिक्तांगःपिशुनःपूतिनासिकः।
तैलहृत्तैलपायीस्यात्पूतिवक्त्रस्तुसूचकः॥

पद-धान्यमिश्रः १ अतिरिक्तांगः १ पिशुनः १ तैलहृत् १ तैलपायी १ स्यात् क्रि-पूतिवक्त्रः १ तुऽ-सूचकः १॥

योजना-ब्रह्महा क्षयरोगी, सुरापः श्यावदन्तकः तु पुनः हेमहारी कुनखी च पुनः गुरुतल्पगः दुश्चर्मा स्यात्। यः एषां मध्ये येन सह भवति सः तल्लिंगः अभिजायते अन्नहर्ता आमयावी वागपहारकः मूकः स्यात् धान्यमिश्रः अतिरिक्तांगः पिशुनः पूतिनासिकः तैलहृत् तैलपायी तु पुनः सूचकः पूतिवक्त्रः स्यात्॥

तात्पर्यार्थ-अब तिर्यग् योनिके अनंतर ब्रह्महत्यारे आदिके मनुष्यके लक्षण कहते हैं। इस प्रकार रौरव आदि नरकोंमें और श्वा सूकर खर आदि योनियोंमें दारुण दुःख भोगके अनंतर पापके शेषसे जन्मके समयही क्षयरोग आदि लक्षणोंसे युक्त अनेक मानव शरीरोंमें उत्पन्न होते हैं कि, ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी अर्थात् राजयक्ष्मी होता है और निषिद्ध सुरापानका कर्ता स्वभावसे कृष्णदंत होता है। ब्राह्मणके सुवर्णका हर्ता निन्दित नखवाला होता है। गुरुकी स्त्रीका गामी दुश्चर्मा (कुष्ठी) होता है। इन ब्रह्महत्यारा आदिके मध्यमें जिसके संग जो मेल करता है वहभी उसकेही चिह्नवाला होता है और अन्नका चोर आमयावी

---

१ श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोवाजिमृगपक्षिणाम्। चंडालपुल्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ कृमिकीटपतंगानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम्। हिंस्राणां चैव सत्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥ लूताहिसरटानां च तिरश्चां चांबुचारिणाम्। हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि। क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥

(अजीर्णान्न) होता है। वागपहारक अर्थात् विना आज्ञासे पढनेवाला वा पुस्तकोंका चौर मूक अर्थात् वाणी इन्द्रियसे रहित होता है। धान्यमिश्र (पराये अन्नका मिलानेवाला) के छः अंगुलि आदि अधिक अंग होता है। और पिशुन जो विद्यमान पराये दोषोंको कहै उसकी नासिकामें दुर्गंध आती है। तैलका चौर तेल पीनेवाला कीट होताहै। वृथा पराये दोषोंको कहनेवाले सूचकके मुखमें दुर्गंध आती है यह भी तिर्यग् योनिके प्राप्तिके अनंतर जानना क्योंकि मनु (अ० १२ श्लो० ६८) का यह वचन है कि जैसे तैसे पराये द्रव्यको बलसे हरकर और विना होमकी हविको भक्षण कर मनुष्य तिरछी योनिको अवश्य प्राप्त होता है॥

भावार्थ-ब्रह्महा क्षयरोगी और मद्यप कृष्णदंत होता है। सुवर्णका चौर कुनखी और गुरुकी स्त्रीका गामी कुष्ठी होता है और इन ब्रह्महा आदिके मध्यमें जो जिसके साथ बसै उसकाभी वही चिह्न होता है जो उस पतितका होता है। अन्नका चौर आमयावी और वाणीका चौर मूक होता है। धान्य मिलानेवालेके अधिक अंग और पिशुनकी नासिकामें दुर्गंध आती है। तैलका चौर तैल पीनेवाला जीव होता है और सूचकके मुखमें दुर्गंध आती है॥ २०९॥ २१०॥ २११॥

परस्ययोषितंहृत्वाब्रह्मस्वमपहृत्यच ॥
अरण्येनिर्जलेदेशेभवतिब्रह्मराक्षसः ॥२१२॥

पद्-परस्य ६ योषितम् २ हृत्वाऽ-ब्रह्मस्वम् २ अपहृत्यऽ-चऽ-अरण्ये ७ निर्जले ७ देशे ७ भवति क्रि-ब्रह्मराक्षसः॥ १॥

योजना-परस्य योषितं हृत्वा च पुनः ब्रह्मस्वम् अपहृत्य अरण्ये निर्जले देशे ब्रह्मराक्षसो भवति॥

ता० भा० पराई स्त्री और सुवर्णसे भिन्न ब्राह्मणके धनको हरकर अरण्य (वन) निर्जल देशमें ब्रह्मराक्षस होता है॥ २१२॥

हीनजातौप्रजायेतपररत्नापहारकः ।
पत्रशाकंशिखीहृत्वागंधाञ्छुच्छुंदरीशुभान्॥

पद्-हीनजातौ ७ प्रजायेत क्रि-पररत्नापहारकः १ पत्रशाकम् २ शिखी १ हृत्वाऽ-गंधान् २ छुच्छुंदरी १ शुभान् २॥

योजना-पररत्नापहारकः हीनजातौ प्रजायेत पत्रशाकं हृत्वा शिखी भवति शुभान् गंधान् हृत्वा छुच्छुंदरी भवति॥

ता० भा०-पराये रत्नोका चौर सुनार वा पक्षियोंकी योनिमें प्राप्त होता है सोई मनु (अ० १२ श्लो० ६१) ने कहा है कि मणि, मोती, मूंगा इनको और अनेक रत्नोंको चुराकर सुनारोंमें जन्म लेता है पत्तोंके शाकको हरकर मोर और श्रेष्ठ गंधोंको हरकर चुछुंदरी अर्थात् राजदुहिता नामकी मूषिका होती है॥ २१३॥

मूषकोधान्यहारीस्याद्यानमुष्ट्रःकपिःफलम् ।
जलंप्लवःपयःकाकोगृहकारीह्युपस्करम् ॥

पद्-मूषकः १ धान्यहारी १ स्यात् क्रि-यानम् २ उष्ट्रः १ कपिः १ फलम् २ जलम् २ प्लवः १ पयः २ काकः १ गृहकारी १ हिऽ-उपस्करम् २॥

मधु दंशःपलंगृध्रोगांगोधाग्निंबकस्तथा ।
श्वित्रीवस्त्रंश्वारसंतुचीरीलवणहारकः २१५॥

पद्-मधु २ दंशः १ पलम् २ गृध्रः १ गाम् २ गोधा १ अग्निम् २ बकः १ तथाऽ-श्वित्री १ वस्त्रम् २ श्वा १ रसम् २ तुऽ-चीरी १ लवणहारकः १॥

---

१ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः। अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः॥

१ मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः। विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु।

योजना-धान्यहारी मूषकः स्यात् यानं हृत्वा उष्ट्रः-फलं हृत्वा कपिः जलं हृत्वा प्लवः पयः हृत्वा काकः उपस्करं हृत्वा गृहकारी मधु हृत्वा दंशः पलं हृत्वा गृध्रः गां हृत्वा गोधा तथा अग्निं हृत्वा बकः वस्त्रं हृत्वा श्वित्री-तु पुनः रसं हृत्वा श्वा लवणहारकः चीरी स्यात् ॥

ता० भा०-धान्यका चौर मूसा होता है। यानको चुराकर ऊंट, फलको चुराकर वानर, जलको चुराकर जलमुरगा, दूधको चुराकर काक, और उपस्कर (मुसल आदि गृहसामग्री) को चुराकर गृहकारी (चिडिया), मधुको चुराकर दंश, मांसको चुराकर गीध, गौको चुराकर गोधा, अग्निको चुराकर बगला, वस्त्रको चुराकर श्वित्रीः (श्वेतकुष्ठि) ईख आदिके रसको चुराकर कुत्ता, लवणको चुराकर चीरी (झींझर) होता है ॥ २१४-२१५ ॥

प्रदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तंस्तेयकर्मणि ॥
द्रव्यप्रकाराहियथातथैवप्राणिजातयः ॥

पद-प्रदर्शनार्थम् २ एतत् १ तुऽ-मया ३ उक्तम् १ स्तेयकर्मणि ७ द्रव्यप्रकाराः१ हिऽ-यथाऽ-तथाऽ-एवऽ-प्राणिजातयः १ ॥

योजना-एतत् मया स्तेयकर्माणि प्रदर्शनार्थम् उक्तं हि अतः यथा द्रव्यप्रकाराः भवन्ति तथा एव प्राणिजातयो भवंति ॥

तात्पर्यार्थ-चोरीके कर्ममें मैंने ये फल प्रदर्शनार्थ कहे चुराने योग्य द्रव्यके भेद जैसे २ हैं वैसे वैसेही प्राणियोंके भेद होते हैं । जैसे कांसीका चुराने वाला हंस होता है अथवा जिस फलके साधन द्रव्यको चुराते हैं उसी साधनसे रहित होता है।अश्वके चुरानेवाला पंगु । शंखने तो कहीं २ विशेष भी दिखाया है कि ब्रह्महत्यारा कुष्ठी, तेजका चौर मण्डली, देव और ब्राह्मणोंका निंदक खलति (गंजा), विष और अग्निके दाता उन्मत्त गुरुके प्रति हननेवाला अपस्मारी, गोहत्यारा अंधा, धर्मपत्नीको छोड कर अन्य स्त्रीका भोगी, शब्दभेदी, भगका भक्षण करनेवाला कुंडाशी, देव ब्राह्मणके धनका चोर पाण्डुरोगी, न्यास (धरोहर) का चौर काणा, स्त्रीके व्यापारसे जो जीवै वह षण्ढ (नपुंसक), कुमार अवस्थामें स्त्रीका त्यागी दुर्भागी, स्वच्छ एक मनुष्यके घरका अन्न खानेवाला वातगुल्मी, अभक्ष्यका भक्षक गण्डमाली, ब्राह्मणीका गामी, वीर्यरहित और क्रूर कर्मका कर्ता, वामन, वस्त्रका चौर पक्षी, शय्याका चौर क्षपणक, शंख और शुक्तिका चौर कपाली, दीपकका चौर कौशिक, मित्रका द्रोही क्षयरोगी, मातापिताकी निंदा करनेवाला, खण्डकार होता है। गौतमने भी कोई विशेष कहा है कि झूठ बोलनेवाला उलबल (जिसकी वारंवार वाणी लगै),स्त्रीका त्यागी जलोदर, झूठा साक्षी श्लीपदी जिसके जंघा और चरण मोटे होजाय, विवाहमें विघ्नकर्ता छिन्नोष्ठ, अवगुरणी (झिडकनेवाला) के हाथ छिन्न होते हैं। माताका हंता अंधा, पुत्र वधूका गामी, वातवृषण, चौराहेमें विष्ठा और मूत्रका त्यागी, मूत्रकृच्छ्री, कन्याको दूषण लगानेवाला नपुंसक, ईर्ष्या करनेवाला मच्छर, पिताके संग विवादी अपस्मारी, न्यासका चौर संतानहीन, रत्नोंका चौर अत्यंत दरिद्री, विद्याका विक्रेता मृग, वेदका विक्रेता गेंडा, बहुतोंको यज्ञकरानेवाला जलमुर्गा, यज्ञके करानेके अयोग्योंको यज्ञ करानेवाला वराह, विना निमंत्रण भोजन करानेवाला काक, स्वच्छ एकाही भोजन जो करै वह वानर जहां तहां भोजनका कर्ता मार्जार, तृण और वनको जलानेवाला खद्योत (पटबीजना), स्त्रीका आचार्य मुखमें दुर्गंध वाला, पर्युषित (वासी) भोजी कृमि, विना दिये पदार्थको

ग्रहण करनेवाला बैल, मत्सरी (पराई बडाईको न सहै) भ्रमर, अग्निका नाशक मण्डलकुष्ठी, शूद्रोंका आचार्य, काक, गौका हर्ता, सर्प-स्नेहका चौर क्षयरोगी, अन्नका चौर, अजीर्णी, ज्ञानका चौर मूक, चाण्डाली और पुल्कसीके गमनमें अजगर, संन्यासिनीके गमनमें मारवाडका पिशाच, शूद्रीके गमनमें दीर्घकीट, सवर्ण स्त्रीके गमनमें दरिद्री, जलका चौर मत्स्य, दूधका चौर बगला, वार्धषिक (ब्याज लेनेवाला) अंगसे हीन, बेचनेके अयोग्योंको बेचनेवाला गीध, राजाकी स्त्रीका गामी नपुंसक, राजाका निंदक गर्दभ, गौकागामी मेंडक, अनध्यायमें पढनेवाला शृगाल, परद्रव्यका चौर पराया सेवक मत्स्यका हंता गर्भवासी होताहै । ये सब अनूर्ध्व गमन हैं अर्थात् इनकी ऊर्ध्वगति नहीं होती । स्त्रीभी इन पूर्वोक्त पापोंके करनेसे पूर्वोक्त जातियोंमें स्त्रीयोनिको प्राप्त होती है । सोई मनु (अ० १२ श्लो० ६९) ने कहा है कि स्त्रीभी इसी प्रकार वस्तुओंको हरकर इन्हीं जीवोंकी भार्या होती हैं । और यह क्षयी आदि लक्षणोंका कहना प्रायश्चित्त आदि करनेको उद्यत जो ब्रह्महा आदि हैं उनको उद्वेगके लिये है कुछ क्षय आदिरोग वालोंको द्वादश वर्षके व्रतकी प्राप्तिके लिये और उनके संसर्गकी निवृत्तिके लिये नहीं । सोई दिखाते हैं कि प्रायश्चित्त पाप क्षयके लिये होता है प्रारब्धका फल पापका अपूर्व जब नष्ट होचुका तो प्रायश्चित्त करनेका कुछ प्रयोजन नहीं । क्योंकि धनुषसे छूटा हुआ बाण लक्ष्यके बीधनेमें वा उसकी और उसके व्यापारकी सत्ताकी फिर अपेक्षा नहीं करता । और उसके आरंभ किये हुए फलोंके नाशार्थभी अपूर्वका नाश ढूंढने योग्य नहीं है क्योंकि घटके कारण जो चक्रचीवर आदि उनके नाशसे उनसे बने हुए घटका नाश नहीं होता और स्वाभाविक (जन्मसे हुये) कुनख आदि फिर अच्छे नहीं हो सकते । और नरक और तिरछी योनि आदिके दुःखोंकी परंपराको भोगकर उसके कुनख आदि विकार चरमफल (अन्त्यके कार्य) होते हैं । वह उत्पन्न होतेही अपने कारणरूप अपूर्वके नाशको पैदा कर देते हैं जैसे मथनसे पैदा हुई अग्नि अरणिको नष्ट करदेती है । तिससे पापके नाशार्थ व्रतोंका करना नहीं है और न उसके संग व्यवहारके अर्थ है । क्योंकि शिष्ट कुनखी आदिके संग संसर्गको त्याग देते हैं । पूर्वजन्मके क्षयरोगसे पापका नाश होनेपर सम्यक् व्यवहारभी सिद्ध हो जायगा इससे व्रत करनेका कोई प्रयोजन नहीं । जो वसिष्ठने कहा है कि कुनखी और कृष्णदंत द्वादशरात्रका कृच्छ्र करें वे क्षामत्व (दुर्बलता) आदिके समान नैमित्तिक मात्र हैं पापके क्षय और भली प्रकार व्यवहारके लिये नहीं यह मानने योग्य है ॥

भावार्थ-चोरीके कर्मके ये पूर्वोक्त फल मैंने दिखानेके लिये कहे हैं क्योंकि जैसे २ चोरीके द्रव्योंके भेद होते हैं वैसी २ ही प्राणियोंकी जाति होती हैं ॥ २१६ ॥

यथाकर्मफलंप्राप्यतिर्यक्त्वंकालपर्ययात् ।
जायंतेलक्षणभ्रष्टादरिद्राःपुरुषाधमाः ॥ २१७॥

पद-यथाकर्मऽ-फलम् २ प्राप्यऽ-तिर्यक्त्वम् २ कालपर्ययात् ५ जायंते क्रि-लक्षणभ्रष्टाः १ दरिद्राः १ पुरुषाधमाः १ ॥

योजना-यथाकर्म फलं तिर्यक्त्वं प्राप्य कालपर्ययात् लक्षणभ्रष्टाः पुरुषाधमाः दरिद्राः जायन्ते ॥

---

१ स्त्रियोप्येतेन कल्पेन हत्वा दोषमवाप्नुयुः । एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ।

१ कुनखी श्यावदंतश्च कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ।

तात्प० भावार्थ–अपने किये पाप कर्मके अनुसार नरक आदि फल और तिरछी योनियोंको प्राप्त होकर कालके क्रमसे कर्म क्षीण होनेपर दुष्ट लक्षणी दरिद्री पुरुषोंमें अधम (नीच) होते हैं ॥ २१७ ॥

ततोनिष्कल्मषीभूताःकुलेमहतिभोगिनः। जायंतेविद्ययोपेताधनधान्यसमन्विताः ॥

पद–ततः ऽ– निष्कल्मषीभूताः १ कुले ७ महति ७ भोगिनः १ जायंते क्रि–विद्यया ३ उपेताः १ धनधान्यसमन्विताः १ ॥

योजना–निष्कल्मषीभूताः विद्यया उपेताः धनधान्यसमन्विताः महति कुले भोगिनः जायंते ॥

तात्प० भावार्थ–फिर दुष्ट लक्षण मनुष्यजन्मके अनंतर निष्पाप होकर अर्थात् नरक आदिके भोगसे क्षीण पाप हुए पूर्वजन्मके शेषपुण्यसे महान् कुलमें भोग विद्या और धन धान्यसे युक्त उत्पन्न होते हैं ॥ २१८ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्निंदितस्यचसेवनात् ॥ अनिग्रहाच्चेंद्रियाणांनरः पतनमृच्छति २१९

पद–विहितस्य ६ अननुष्ठानात् ५ निंदितस्य ६ चऽ–सेवनात् ५ अनिग्रहात् ५ चऽ–इंद्रियाणाम् ६ नरः १ पतनम् २ ऋच्छति क्रि–॥

तस्मात्तेनेहकर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ एवमस्यांतरात्माचलोकश्चैवप्रसीदति२२०॥

पद–तस्मात् ५ तेन ३ इहऽ–कर्तव्यम् ऽ– प्रायश्चित्तम् १ विशुद्धये ४ एवम्ऽ–अस्य ६ अंतरात्मा १ चऽ– लोकः १ चऽ–एवऽ–प्रसीदति क्रि– ॥

योजना–विहितस्य अननुष्ठानात् च पुनः निंदितस्य सेवनात् च पुनः इंद्रियाणाम् अनिग्रहात् नरः पतनम् ऋच्छति तस्मात् तेन इह विशुद्धये प्रायश्चित्तं कर्तव्यम् एवं कृते सति अस्य अंतरात्मा च पुनः लोकः प्रसीदति ॥

तात्पर्यार्थ–विहित कर्म अर्थात् जो आवश्यक संध्योपासन अग्निहोत्र आदि नित्य और अशुद्धके स्पर्शमें कहे हुए स्नान आदि नैमित्तिक, वे दोनों विहित (शास्त्रोक्त) कहाते हैं, उनके न करनेसे और निंदित (निषिद्ध) सुरापान आदिके सेवनसे और विषयोंसे इंद्रियोंके न रोकनेसे नर पतन (नरक वा दुःख) को प्राप्त होता है अर्थात् पापी होजाता है। कदाचित् कोई शंका करे कि सम्पूर्ण इंद्रियोंके विषयोंमें जानकर आसक्त न हो इस वचनसे[1] इंद्रियोंमें प्रसक्ति भी निषिद्ध है इससे निंदित कहनेसे वहभी आजाती, इन्द्रियोंके अनिग्रहसे यह पृथक् क्यों कहा इसका समाधान कहते हैं, क्योंकि इंद्रियोंमें प्रसंगका निषेध एकांतसे (निश्चयसे) निषेध रूप नहीं, क्योंकि यह स्नातकके व्रतोंमें पढा है और वहां यह अधिकार है कि इन व्रतोंको धारण करे[2], इससे यहां नञ्के सुननेसे इंद्रियोंमें प्रसक्ति करनेवाला संकल्प विधान किया जाता है, वह संकल्प उभय रूप होता है, इससे पृथक् पढा है। कदाचित् कोई शंका करे कि विहितके न करनेसे प्रत्यवायी (पापी) होता है यह किससे निश्चय किया, क्योंकि अग्निहोत्र आदिकी जो चोदना (विधि) है वह पुरुषकी अप्रवृत्तिरूप अननुष्ठान (न करना) को प्रत्यवायका हेतु बोधन नहीं करती, विषय (कार्य) अनुष्ठान (करने) को पुरुषार्थ मात्र बोधन करती हुई हिंसा, उतनेसेही प्रवृत्तिके होनेसे फिर न करनेको प्रत्यवायका हेतु न कहेगी। क्योंकि क्षीण शक्ति होनेसे उसकाभी बोधन नहीं हो सकता।

[1] इंद्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः ।
[2] व्रतानीमानि धारयेत् ।

कदाचित् अनुपपत्तिके उपशम (न होना) संभी प्रवृत्तिकी सिद्धिके लिये अर्थान्तरकी कल्पना करोगे तो निषेधके योग्य प्रत्यवायके निवारणार्थही उसके वर्जनेको पुरुषार्थ सिद्धिमेंभी अन्य फलकी कल्पना की जायगी और यह किसीकोभी संमत नहीं है। कदाचित् कोई शंका करे कि जैसे निषिद्ध पदार्थोंमें अर्थवादसे जाने हुए प्रत्यवायके निवारण रूपसेही पुरुषार्थत्व है, तैसेही विहितों (शास्त्रोक्त) मेंभी अर्थवादसे जाने करनेसे जन्में प्रत्यवायकी निवारकता क्यों न होजाय ऐसे मत कहो, क्योंकि सर्वत्र अग्निहोत्र आदिमें तैसे अर्थवाद नहीं है। कदाचित् कहो विहितके न करनेसे मनुष्य पतित होता है यह स्मृतिही वाक्य शेषके स्थानमें है अर्थात् अर्थवाद रूप है यह ठीक है, परन्तु यहभी ठीक नहीं, क्योंकि अन्य वाक्यसे बोधन किये कार्यमें वाक्यांतरसे अर्थवाद नहीं होता, अथवा कथंचित् (किसी प्रकारसे) एक वाक्यतासे अर्थवाद हो तोभी अभावरूप विहितका न करना कार्यांतरके पैदा करानेको समर्थ नहीं हो सकता, कदाचित् शंका करो कि ज्वर और अतीसारमें लंघन परम औषध है इस आयुर्वेदके वचनसे भोजनका अभावरूप लंघन जैसे ज्वर शांतिको करता है तैसेही यहांभी क्यों न हो ऐसे मत कहो जिससे यहांभी लंघनसे ज्वरकी शांति नहीं है, किंतु ज्वरके नाशका प्रतिबंधक जो भोजन उसका अभाव होनेपर जठराग्निके परिपाक वश धातुओंकी साम्यतासे ज्वर शांत होता है यह मानने योग्य है, तिससे विहितके न करनेसे मनुष्य पतित होता है इस स्मृतिकी कसे गति होगी इसका समाधान कहते हैं कि अग्निहोत्रके अधिकारकी असिद्धि रूप प्रत्यवायके अभिप्रायसे गति होगी इससे कुछ दोष नहीं। कदाचित् शंका करो कि विहितके न करनेमें प्रत्यवायके बोधक ये मनु (अ० १२ श्लो० ७१-७२) के वचन कैसे घटेंगे कि अपने धर्मसे पतित ब्राह्मण वांताशी उल्कामुख प्रेत होता है और क्षत्रिय अमेध्य कुणपाशी कटपूतन होता है और वैश्य पूयका भोक्ता मैत्राक्ष ज्योतिक प्रेत होता है और अपने धर्मसे पतित शूद्र चैलाशक प्रेत होता है। इसका समाधान कहते हैं कि जैसे वमनको खानेवाले (वांताशी) को उल्कासे दग्ध मुख होनेसे दुःख होता है तैसे विहितके न करनेसे इसको होता है, इससे पुरुषके पुरुषार्थकी असिद्धि होनेसे न करनेकी निंदा करनेमें रुचिके लिये है इससे कुछ विरोध नहीं। अथवा पूर्वजन्मके निषिद्ध आचरणसे अनुमान किया और विहितके करनेका विरोधी राग आलस्य आदिसे पैदा हुआ वांताशी और उल्कामुख प्रेत होता है इससे कहींभी अभाव कारण नहीं यह मानने योग्य है। कदाचित् शंका करो कि व्यभिचारिणीका गमन वानर वा खरकी दृष्टि और मिथ्याभिशाप आदिमें कोईभी विहितका न करना आदि नहीं तो प्रत्यवाय कैसे बन सकता है और प्रत्यवायके न होनेसे प्रायश्चित्त क्यों कहा? इसका समाधान कहते हैं कि इसीसे पापके क्षयार्थ प्रायश्चित्तका विधान है तिससे जन्मांतरमें किये निषिद्ध सेवा आदिसे पैदा हुए पापके अपूर्व मिथ्या अभिशाप आदिका आक्षेप होता है, उसके निमित्त प्रायश्चित्तसे दूर

१ विहितस्याननुष्ठानान्नरः पतनमृच्छति।
२ ज्वरे चवातिसारे च लंघनं परमौषधम्।

१ वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः। अमेध्यकुणपाशी तु क्षत्रियः कटपूतनः॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक्। चैलाशकस्तु भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः॥

करने योग्य कर्म करनेकी कल्पना करते हैं। पुरुषको प्रयत्नकी अपेक्षाके विना कार्यरूप पापकी उत्पत्ति नहीं हो सक्ती और व्यभिचारिणी आदिके प्रयत्नसे अन्यपुरुषमें पापकी उत्पत्ति नहीं हो सक्ती। क्योंकि धर्म अधर्म ये दोनों कर्त्ताके समवायी होते हैं अर्थात् इनका फल कर्त्ताकोही होता है तिससे पूर्वोक्त तीनों निमित्तोंकी प्रायश्चित्तमें पूर्वगणना युक्त है। सोई मनु (अ० ११ श्लो० ४४) ने कहा है कि शास्त्रोक्त कर्मके न करने और निन्दितके करने और इन्द्रियोंके विषयमें लगनेसे नर प्रायश्चित्त करने योग्य होता है। इस वचनमें नरका ग्रहण प्रतिलोम जातियोंको भी प्रायश्चित्तकी प्राप्तिके लिये है, क्योंकि उनकोभी अहिंसा आदि साधारण धर्मका व्यतिक्रम (न करना) हो सक्ताहै। जिससे इस प्रकार निषिद्धाचरण आदिसे प्रत्यवायी पापी होताहै। तिससे की है निषिद्ध सेवा आदि जिसने ऐसा वह मनुष्य इस लोक और परलोकके लिये प्रायश्चित्त करै, यह प्रायश्चित्त शब्द पापक्षयके लिये नैमित्तिक कर्म विशेषमें रूढ है इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेसे इस मनुष्यका अंतरात्माभी प्रसन्न होता है और जगत्भी उसके संग व्यवहार करनेके लिये प्रसन्न होताहै यह कहते हुए याज्ञवल्क्यने यह दिखाया कि यह प्रायश्चित्ताधिकार नैमित्तिक है और उसमें अर्थवाद गत दुरितका क्षयभी जातेष्टिन्यायसे स्वीकार कियाहै, इससे पापके क्षयकी इच्छावालाही उसे करै इतनेसे कामाधिकारकी शंका न करनी जिससे इस मनु (अ० ११ श्लो० ५३) वचनमें न करनेमें दोष सुननेसे प्रायश्चित्तकी आवश्यकता जानी जाती है कि, इससे विशुद्धिके लिये नित्य प्रायश्चित्त करै क्योंकि जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किया वे निन्दित लक्षणोंसे युक्त संसारमें जन्मते हैं॥

भावार्थ–शास्त्रोक्त न करनेसे और निन्दितके करनेसे और इंद्रियोंको विषयोंसे न रोकनेसे नर पतित होता है तिससे वह जगत्में विशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करै, इस प्रकार इसका आत्मा और जगत् दोनों प्रसन्न होते हैं॥२२०॥

प्रायश्चित्तमकुर्वाणाःपापेषुनिरतानराः।
अपश्चात्तापिनःकष्टान्नरकान्यांतिदारुणान्॥

पद–प्रायश्चित्तम् २ अकुर्वाणाः १ पापेषु ७ निरताः १ नराः १ अपश्चात्तापिनः १ कष्टान् २ नरकान् २ यान्ति क्रि–दारुणान् २॥

योजना–प्रायश्चित्तम् अकुर्वाणाः पापेषु निरताः अपश्चात्तापिनः नराः कष्टान् दारुणान् नरकान् यान्ति॥

तात्पर्यार्थ–भावार्थ–शास्त्रोक्तके व्यतिक्रमसे पैदा हुए तापोंमें प्रसक्त और पश्चात्ताप न करते हुए अर्थात् मैंने पाप किया इस प्रकार उद्वेगसे रहित और प्रायश्चित्त न करते हुए मनुष्य दुःसह नरकोंको प्राप्त होते हैं अर्थात् महान् २ दुखोंको भोगते हैं॥ २२१॥

तामिस्रंलोहशंकुंचमहानिरयशाल्मली।
रौरवंकुड्मलंपूतिमृत्तिकंकालसूत्रकम् २२२

पद–तामिस्रम् २ लोहशंकुम् २ च८–महानिरयशाल्मली २ रौरवम् २ कुड्मलम् २ पूतिमृत्तिकम् २ कालसूत्रकम् २॥

संघातंलोहितोदंचसविषंसंप्रपातनम्॥
महानरककाकोलंसंजीवनमहापथम् २२३

पद–संघातम् २ लोहितोदम् २ च८–सविषम्

---

१ अकुर्वन् विहितं कर्म निंदितं च समाचरन्। प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः॥

२ चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये। निंद्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्ते निष्कृतैनसः॥

२ संप्रपातनम् २ महानरककाकोलम् २ संजीवनमहापथम् २ ॥

अवीचिमंधतामिस्रंकुंभीपाकंतथैवच ॥
असिपत्रवनंचैवतापनंचैकविंशकम् २२४ ॥

पद-अवीचिम् २ अंधतामिस्रम् २ कुंभीपाकम् २ तथाऽ-एवऽ-चऽ-असिपत्रवनम् २ चऽ-एवऽ-तापनम् २ चऽ-एकविंशकम् २ ॥

महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैस्तथा ।
अन्वितायांत्यचरितप्रायश्चित्तानराधमाः ॥

पद-महापातकजैः ३ घोरैः ३ उपपातकजैः ३ तथाऽ-अन्विताः १ यान्ति क्रि-अचरितप्रायश्चित्ताः १ नराधमाः १ ॥

योजना-महापातकजैः घोरैः तथा उपपातकजैः घोरैः अन्विताः अचरितप्रायश्चित्ता नराः तामिस्रं च पुनः लोहशंकुं महानिरयशाल्मली रौरवं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकं संघातं च पुनः लोहितोदं सविषं संप्रपातनं महानरककाकोलं संजीवनमहापथं अवीचि अंधतामिस्रं च पुनः कुंभीपाकम् असिपत्रवनं च पुनः एकविंशकं तापनं यान्ति ॥

ता०भा०-ब्रह्महत्या आदि महापातक और उपपातकोंसे उत्पन्न हुए भयंकर पापोंसे युक्त मनुष्य जो प्रायश्चित्तको नहीं करते वे नराधम जैसे २ दुःखके देनेवाले हैं वैसेही नामसे जो भिन्न २ हैं ऐसे इन इक्कीस २१ नरकोंमें प्राप्त होते हैं कि, तामिस्र १, लोहशंकु२, महानिरय३, शाल्मलि ४, रौरव ५, कुड्मल ६, पूतिमृत्तिक७, कालसूत्र ८, संघात९, लोहितोद १०, सविष११, संप्रपातन १२, महानरक १३, काकोल १४, संजीवन १५, महापथ १६, अवीचि १७, अंधतामिस्र १८, कुंभीपाक १९, असिपत्रवन २० और इक्कीसवाँ तापन २१ ॥ २२२-२२५॥

प्रायश्चित्तैरपैत्येनोयदज्ञानकृतंभवेत् ॥
कामतोव्यवहार्यस्तुवचनादिहजायते २२६

पद-प्रायश्चित्तैः ३ अपैति क्रि-एनः २ यत् १ अज्ञानकृतम् १ भवेत् क्रि-कामतःऽ-व्यवहार्यः १ तुऽ-वचनात् ५ इहऽ-जायते क्रि-॥

योजना-यत् एनः अज्ञानकृतं भवेत् तत् प्रायश्चित्तैः अपैति (नश्यति) जनः इह संसारे कामतः कृते एनसि व्यवहार्यः जायते एनस्तु न नश्यतीत्यर्थः ॥

तात्पर्यार्थ-जो पाप अज्ञानसे किया हो वह पाप वक्ष्यमाण प्रायश्चित्तोंसे दूर होताहै और ज्ञानसे किया पाप दूर नहीं होता किंतु प्रायश्चित्तके बोधक वचनोंके बलसे वह मनुष्य व्यवहार (सम्बंध) के योग्य होता है । इस वचनमें अज्ञानकृत पाप प्रायश्चित्तोंसे दूर होता है उस अज्ञानका प्रतियोगी ज्ञानतः (ज्ञानसे) ऐसा कहना था जो कामतः यह कहाहै वह ज्ञान और काम इन दोनोंको तुल्यता दिखानेके लिये है। सोई दिखाते हैं कि अज्ञानियोंको पाप कहा है वह ज्ञानसे दूना होताहै तैसेही अज्ञानसे किये कर्ममें आधा प्रायश्चित्त है, तैसेही यदि कथंचित् म्लेच्छ शूद्राके संग गमन करै तो तीन कृच्छ्र करै और जानकर करै तो द्विगुण प्रायश्चित्त करै, इत्यादि वचनोंसे[१] ज्ञान और काममें तुल्य प्रायश्चित्तके दिखानेसे तुल्य फल है और विषय (पदार्थ) के ज्ञान और कामनासे पुरुषकी स्वतंत्र प्रवृत्ति नियमसे है उनमें एकके न होनेसे प्रवृत्तिका असंभव है इससे कामतः यह कहो अथवा ज्ञानाज्ञानतः यह कहो तो काम आजाता है क्योंकि

---

१ विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं भवेत् । तथा अबुद्धिपूर्वक्रियायामर्द्धं प्रायश्चित्तं । तथा म्लेच्छेनाधिगता शूद्रा त्वज्ञानात्तु कथंचन । कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ज्ञानात्तु द्विगुणं भवेत् ॥

कामके विना अज्ञान नहीं होसक्ता अभावके ज्ञानमें प्रतियोगीका ज्ञान कारण होता है। कदाचित् कोई कहै कि चोर आदि जिसे बलसे प्रवृत्त करदें उसे विषयका ज्ञान है भी काम-नाका अभाव होनेसे अविनाभाव नहीं, सो ठीक नहीं। जिससे यहां विद्यमान भी ज्ञान प्रवृ-त्तिका हेतु न होनेसे असत्के समान है। जो किसीने कहा कि शुष्क स्थलमें भी गिरनेवाले मनुष्यका भ्रान्तिसे कीचमें पतन होता है, यहां भी वास्तव ज्ञानके अभावसे उस ज्ञानकी काम-नाका अभावही है इसी प्रकार अज्ञान और कामका भी व्यभिचार नहीं है। कदाचित् कोई शंका करै कि प्रायश्चित्तोंसे पाप दूर होता है यह युक्त नहीं क्योंकि कर्मका नाश फलसे होता है सो ठीक नहीं। क्योंकि जैसे पापकी उत्पत्ति शास्त्रसे जानी जाती है इसी प्रकार पापका नाश भी शास्त्रसे जाना जाता है इसमें दूसरा प्रमाण नहीं चल सक्ता, इसीसे गौतमने पूर्वोत्तर पक्षकी रीतिसे यही बात दिखाई है कि प्रायश्चित्त करै वा न करै यह विचार करते हैं। कोई यह कहते हैं कि न करै क्योंकि किया हुआ कर्म नष्ट नहीं होता और कोई कहते हैं कि करै क्योंकि फिर स्तोम यज्ञ करके फिर सवनमें आते हैं अर्थात् सवनसे होनेवाले ज्यो-तिष्टोम आदि द्विजातियोंके जो कर्म उनके योग्य होते हैं। कदाचित् शंका करो कि यह अर्थवादही है सो ठीक नहीं क्योंकि रात्रिमें सत्रके न्यायसे अधिकारीके विशेषणकी आ-कांक्षा होने पर अर्थवादके फलकी कल्पनाही न्याय्य (उचित) है केवल अर्थवादकी नहीं। इससे यह युक्त है कि प्रायश्चित्तोंसे पाप दूर होता है। कदाचित् शंका करो कि जानकर किये कर्ममें प्रायश्चित्तका अभाव है इससे वह व्यव-हारके योग्य कैसे होता है और व्यवहार योग्य न होना इस वसिष्ठके और मनुके वचनसे जानते हैं कि अनभिसंधि (अज्ञान) से किये अपरा-धमें प्रायश्चित्तहै अज्ञानसे ब्राह्मणके मारनेकी यह शुद्धि कही। जानकर ब्राह्मणके वधमें निष्कृति (प्रायश्चित्त) नहीं है यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि जो मनुष्य किसी प्रकार महापाप करै उसका प्रायश्चित्त पर्वतसे और अग्निमें पडनेसे अन्य नहीं है। जो प्रायश्चित्त अज्ञानियोंको कहा है ज्ञानसे करनेमें वह दूना होता है इन वच-नोंसे जानकर करनेमें भी प्रायश्चित्त देखते हैं। जो तो वसिष्ठका वचन है उसका भी यह अभिप्राय है कि अज्ञानसे किये अपराधमें प्राय-श्चित्त शुद्धिको करता है। कुछ यह अभिप्राय नहीं है कि जानकर किये पापमें प्रायश्चित्तका अभाव है और जो पूर्वोक्त मनुका वचन है कि अज्ञानसे ब्राह्मणके मारनेकी वह शुद्धि कही जानकर ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त नहीं है उस-का भी यह तात्पर्य है कि इयं (यह) इस सर्व-नामसे परामर्श की बारह वर्षकी व्रतचर्या-काही उस वचनसे जानकर ब्राह्मणके वधमें निषेध है कुछ प्रायश्चित्त मात्र (सब) का निषेध नहीं है, क्योंकि मरणांतिक आदि प्राय-श्चित्त देखते हैं। कदाचित् शंका करो कि जो जानकर कियेमें भी प्रायश्चित्त है तो अविशेष पापका नाश भी क्यों न हो, यदि पापका क्षय भी

१ तेऽत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसन्ते न कुर्यादित्याहुर्नहि कर्म क्षीयते इति, कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्ट्वा पुनः सवनमायान्तीति विज्ञायते व्रात्यः स्तोमेनेष्ट्वा ब्रह्मचर्यं चेरदुपनयनतः इति सर्वं पाप्मानं तरति भ्रूणहत्यां योऽश्वमेधेन यजते इति पुनः सवन-मायान्ति।

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम्। कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते।

२ न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा भृग्वग्निपतनादृते। तथा। विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं भवेत्॥

नहीं होय तो व्यवहार करनेकी योग्यता भी कैसे होती है इसका समाधान कहते हैं कि दोनोंके प्रायश्चित्तोंमें कुछ विशेष भी नहीं तो भी शास्त्रसे फल विशेष जाना जाता है। अज्ञानसे किये कर्मोंमें तो सर्वत्र पापका क्षय होता है और जहां ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, गुरुतल्पग, माता पिताकी योनिमें जिसके अंगका संबंध हो, चोर, नास्तिक, निंदित कर्मका अभ्यासी, पतितका अत्यागी और अपतितका त्यागी पतित और पातकके प्रेरक ये व्यवहारके अयोग्य हैं इन गौतमके कहे महापातक आदिमें व्यवहारका भी पातकीके संग निषेध है उसी पतन करने योग्य कर्ममें कामसे करनेपर व्यवहार करने योग्य मात्र है, पापका नाश नहीं है। कदाचित् शंका करो कि पापक्षयके अभावमें व्यवहारकी योग्यता भी अनुपपन्न (नहीं हो सकती) है, सो ठीक नहीं, क्योंकि पापकी दो शक्ति हैं एक नरक उत्पन्न करनेवाली, दूसरी व्यवहार रोकनेवाली। उनमें नरक पैदा करनेवाली शक्तिका नाश न भी हो तो व्यवहार रोकनेवाली शक्तिका नाश अनुपपन्न नहीं अर्थात् अवश्य होगा। तिसमें पाप न भी जाय तो भी व्यवहार करने योग्य होना अनुपपन्न नहीं। जो यह मनु (अ० ११ श्लो० ४५) का वचन है कि अज्ञानसे किये पापमें बुद्धिमानोंने प्रायश्चित्त कहा है जानकर किये पापमें श्रुतिमें देखनेसे कोई पाप कहते हैं, वह वचन भी कामनासे कियेमें भी प्रायश्चित्तकी प्राप्तिके लिये है कुछ पापके क्षयका प्रतिपादक नहीं है। और जो कर्म पतन करनेका हेतु नहीं और जानकर किया जाता है उसमें प्रायश्चित्तसे पापका क्षय अवश्य होगा। क्योंकि यह मनु (अ० ११ श्लो० ४६) ने कहा है कि अकामसे किया पाप वेदके अभ्याससे करनेसे नष्ट होता है और मोहसे कामनासे किया पाप पृथक् २ किये प्रायश्चित्तोंसे नष्ट होता है। पतन करनेके कर्ममें इच्छासे करनेपर मरणांतिक प्रायश्चित्तोंसे पापका क्षय अवश्य होगा। क्योंकि अन्य फलका अभाव है, क्योंकि आपस्तंबका वचन है कि इसकी अन्य लोकमें प्रत्यापत्ति (बदला) नहीं है, पापका तो नाश होता ही है॥

भावार्थ-अज्ञानसे किया पाप जो होता है वह प्रायश्चित्तोंसे नष्ट हो जाता है और वचनके बलसे कामनासे किये पापोंमें इस लोकके विषय प्रायश्चित्तोंसे व्यवहार करनेके योग्य हो जाता है॥ २२६॥

ब्रह्महामद्यपःस्तेनस्तथैवगुरुतल्पगः॥
एतेमहापातकिनोयश्चतैःसहसंवसेत्॥२२७॥

पद-ब्रह्महा १ मद्यपः १ स्तेनः १ तथाऽ-एवऽ-गुरुतल्पगः १ एते १ महापातकिनः १ यः १ चऽ-तैः ३ सहऽ-संवसेत् क्रि-॥

योजना-ब्रह्महा मद्यपः स्तेनः तथा एव गुरुतल्पगः च पुनः यः तैः सह संवसेत् एते पंच महापातकिनः भवंति॥

तात्पर्यार्थ-यहां ब्रह्महा पदमें जो हन् धातु है वह प्राण वियोग करनेवाले व्यापारमें रूढ है अर्थात् जिस व्यापारके होते ही वा कालांतरमें अन्य कारणकी अपेक्षाके

---

१ ब्रह्महा सुरापो गुरुतल्पगो मातृपितृयोनिसंबद्धागस्तेन नास्तिकनिंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च।

२ अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः। कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात्॥

१ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति। कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः॥

२ नास्यास्मिँल्लोके प्रत्यापत्तिर्विद्यते।

विना प्राणका वियोग (नाश) हो जाय वह हन् धातुका अर्थ है। ब्राह्मणको जो हते वह ब्रह्महा, मद्यप अर्थात् निषिद्ध मदिरा पीनेवाला, स्तेन (ब्राह्मणके सुवर्णका चौर), क्योंकि ब्राह्मणके सुवर्णका हरना महापातक होता है यह आपस्तंबका वचन है, गुरुतल्पग (अर्थात् गुरुभार्याका गामी), यहां शय्या शब्दके साहचर्यसे तल्पशब्दसे भार्या लखी जाती है। ये ब्रह्महा आदि चार महापातकी हैं। अर्थात् नरकोंमें पातन करनेवाले ब्रह्महत्या आदि पातक जिनके विद्यमान हों वे पातकी और महत् शब्द लगानेसे इनकी गुरुता कही गई। वे महापातक जिनमें हों वे महापातकी कहाते हैं। इससे लाघवके लिये महापातकी संज्ञाका करना है। और उन ब्रह्महा आदिके साथ जो वसे वहभी महापातकी है। क्योंकि आगे यह कहेंगे कि इनके संग वर्षदिनतक जो वसै वहभी उसके समान होता है। इस वचनमें तथा शब्द प्रकारवाची है उससे अनुग्राहक और प्रयोजक आदिके कर्ताओंका संग्रह होता है। अनुग्राहक वह होता है जो पलायमान (भाजता) शत्रुको रोककर और अन्य किसीसे मारनेवालेकी रक्षा करके फिर उस मारनेवालेका दृढता करके उपकार करे। इसीसे मनुने अनुग्राहकको हिंसाके फलका संबंध दिखाया है कि एक कार्यको करते हुए बहुतसे शस्त्रधारियोंके मध्यमें यदि एक शत्रुको मारे तो वे सब घातक कहे हैं। तैसेही प्रयोजक आदिकोंको भी हिंसाका फल कहा है कि प्रयोजक, अनुमंता और कर्ता, और स्वर्ग नरकरूप फल जिसके ऐसे कर्मोंमें जो वारंवार आरंभ करता है उसको फल विशेष होता है। उनमें नहीं प्रवृत्त हुए मनुष्यको जो प्रवृत्त करै वह प्रयोजक कहाता है, और वह तीन प्रकारका है आज्ञापयिता, अभ्यर्थयमान, उपदेष्टा। उन तीनोंमें आज्ञापयिता आज्ञा देनेवाला वह होता है, जो आप ऊंचा होकर नीच भृत्य आदिको प्रेरै कि मेरे शत्रु आदिको मार, अभ्यर्थयमान वह होता है जो आप असमर्थ होकर मेरे शत्रुको मार ऐसे अपनेसे ऊंचेकी प्रार्थना करै, ये दोनों अपने अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयोजक होते हैं। उपदेष्टा वह होता है कि तू इस प्रकार शत्रुको मार ऐसे मर्मके उद्घाटन (खोलना) के उपदेशको करके प्रेरणा करै। इसमें हिंसाका फल प्रयोज्यको होता है, प्रयोजकको नहीं। जो प्रवृत्त हुए मनुष्यको प्रवृत्त करै वह अनुमंता होता है, उसके दो भेद हैं, एक स्वार्थका सिद्धिके लिये, दूसरा परार्थ सिद्धिके लिये। कदाचित् कोई शंका करै कि अनुमति देना हिंसाका हेतु कैसे है, प्राणवियोगको करनेसे तो नहीं कह सक्ते, क्योंकि प्राणवियोग साक्षात्कर्ताके व्यापारसे होता है और प्रयोजकके समान साक्षात्कर्ताकी प्रवृत्तिके पैदा करनेके द्वाराभी प्राणवियोग करनेसे नहीं कह सक्ते, क्योंकि अनुमंता प्रवृत्त हुएका प्रवर्तक है। कदाचित् शंका करो कि तूने अच्छा निश्चय किया इस प्रकार प्रवृत्तकोही अनुमंता अनुमति देता है सो ठीक नहीं क्योंकि ऐसी अनुमति हिंसाके प्रति हेतु नहीं और हिंसाभी व्यर्थ है, अब समाधानको कहते हैं कि जहां राजा आदिकी अधीनीसे आप प्रवृत्त हुआभी पुरुष प्रवृत्तिके हटना (हटना) के भयसे वा आगे होनेवाले दण्डके भयसे अपने प्रयत्नको शिथिल कर रहा हो और राजा आदिकी अनुमतिको चाहताहो वहां अनुमति मारनेवालेकी प्रवृत्तिको बल देते

१ ब्राह्मणसुवर्णापहरणं महापातकम्।

२ एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोपि तत्समः।

३ बहूनामेककार्याणां सर्वेषां शस्त्रधारिणाम्। यद्येको घातयेत्तत्र सर्वे ते घातकाः स्मृताः॥

हो इससे हिंसाके फलमें हेतु हो सक्ती है। तिसी प्रकार अन्यभी झिडकना, ताडना, धनको हरने आदिसे अन्योंको क्रोध करावै वहभी मरणका हेतु क्रोधकी उत्पत्तिके द्वारा हिंसाका हेतु हो सक्ता है। इसीसे विष्णुने कहा है कि [1]झिडकने तोडने वा धन छीननेसे जो मनुष्य जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्याग दे वह भी ब्रह्मघातक कहाता है। तैसेही ज्ञाति मित्र स्त्री सुहृद् क्षेत्र इनके अर्थ जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्यागै उसको भी ब्रह्मघातक कहते हैं। कदाचित् कहो कि आक्रोश (निंदा वा झिडकना) करने परभी किसी २ मनुष्यको क्रोधकी उत्पत्ति नहीं देखते इससे झिडकना आदि हिंसाके कारण नहीं हो सक्ते सो ठीक नहीं, क्योंकि पुरुषोंके स्वभावकी विचित्रतासे जिनको थोडेभी झिडकने पर क्रोध आजाताहै उनसे व्यभिचार नहीं इससे कारण हो सक्ता है और इन अनुग्राहक और प्रयोजक आदिकोंसे प्रत्यासत्ति और व्यवधान (तुरन्त बाहरमें) की अपेक्षासे और व्यापारके गौरव और लाघवकी अपेक्षासे हिंसाका फल और प्रायश्चित्तका गौरव और लाघव जानना क्यों कि यह वचन है कि [2]जो वारंवार आरंभ करताहै उसको विशेष फल होताहै तैसेही स्वयं हिंसामें प्रवृत्त हुए अनुग्राहकको स्वतन्त्र कर्तृत्वभी है तोभी साक्षात् प्राण वियोग है फल जिसका ऐसे खड्ग प्रहार आदि व्यापारवाला न होनेसे साक्षात्कर्ताके समान वारंवार हिंसाका फल न होनेसे अल्प फल और प्रायश्चित्त अल्प होता है। प्रयोजक स्वतन्त्र कर्ताकी प्रवृत्तिका जनक है इससे व्यवधान होनेसे उसको अल्प फल होता है, प्रयोजकोंके मध्यमें पराये अर्थ प्रवृत्त हुए उपदेष्टाको हिंसाका फल अल्प होताहै। कदाचित् कोई शंका करै कि प्रयोजक प्रयोजकके हाथके समान है उसको फलका संबंध युक्त नहीं, यदि परकी प्रेरणासे प्रवृत्त हुएकोभी हिंसाके फलका संबंध होय तो स्थपति (स्वामी) के तलावमें खनिता (खोदनेवाला) आदि जो मूल्यसे प्रवृत्त होते हैं उनकोभी स्वर्ग आदि फलका संबंध हो जायगा, इस शंकाका समाधान कहते हैं कि शास्त्रका फल प्रयोजकको होता है इस न्यायसे अधिकारी जो कर्ता उसको फल देनेवाले देवमंदिर कूप तलाव इनके रचने आदि होते हैं और स्थपति तलावके कर्ता आदि देवता कूप तलाव करने आदिमें अधिकारी नहीं हैं क्यों कि वे स्वर्गके कामी हैं और यह परायी प्रेरणासे प्रवृत्त हुए भी हिंसामें अधिकारी हैं इससे उनको हिंसाका दोष हो सक्ताहै। अनुमंताको प्रयोजकसे इसलिये अल्पफल होता है कि वह प्रयोजकके व्यापारसे वहिरंग है और अनुमति भी लघु अपराध है, और निमित्तकर्ताको अनुमंताके सकाशसे इसलिये अल्पफल है कि उसका जो आक्रोशन (निंदा) करना आदि है प्रवृत्तिके हेतु क्रोधजनक होनेसे व्यवहित (दूर) है और वह मरनेके अनुसंधान विनाही प्रवृत्त है अर्थात् वह यह न जानता था कि मेरे आक्रोश करनेपर यह मरजायगा। कदाचित् शंका करो कि व्यवहित मनुष्यको भी हिंसा आदिका यदि कारण मानोगे तो हिंसा करनेवालेके पैदा करनेवाले माता पिता भी हननके कर्ता हो जांयगे सो ठीक नहीं, क्यों कि कुछ जो पूर्व भावी हो वही २ कारण नहीं होता क्योंकि

---

1 आक्रुष्टस्ताडितो वापि धनैर्वा विप्रयोजितः । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ज्ञातिमित्रकलत्रार्थं सुहृत्क्षेत्रार्थमेव च । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

2 यो भूय आरभते तस्मिन्फलविशेषः ।

कारण होनेसेही पूर्वभावी हो सकताहै। वही कारण होता है जो कार्यके पूर्व नियमसे रहै यह निश्चय है कि जो कार्यके स्वरूपसे भिन्न कार्यकी उत्पत्तिके अनुगुण व्यापारवाला होता है वही कारण होता है, जो रथंतरसामा सोम होय तो ऐंद्रवायवाग्र ग्रहोंको ग्रहण करसकता है इस वचनसे रथंतरकी सामताही क्रतु (यज्ञ) की ऐंद्रवायवाग्रतामें कारण है वहां सोमयज्ञरूपसे कारण नहीं, क्योंकि उसमें व्यभिचार है। ऐसे ही मातापिताकोभी पूर्वोक्त लक्षणका योग नहीं है इससे कुछ दोष नहीं है, और आक्रोश आदिके समान कूप खननमें खोदनेके निमित्त मरना नहीं है कि इसने कूप खुदवाया इससे मैं अपने देहका व्यापादन (नाश) करूंगा इससे कूपका कर्ता भी कारण है, हिंसाका हेतु नहीं, इससे माता पिताके तुल्यही है। तैसेही कहीं २ हिंसाका निमित्त योगके होनेपरभी परोपकारके लिये प्रवृत्त होनेवालेको वचनसे दोषका अभाव होता है सोई संवर्तने कहा है कि चिकित्साके लिये गौके बांधनेमें और गूढगर्भके मोचन (निकालना) में यत्न करनेपर मरण होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं है। औषध स्नेह भोजन इनको गौ ब्राह्मण आदिको देने पर मरण होजाय तो वह देनेवाला पापसे लिप्त नहीं होता। दाहका छेदन शिराका भेद (फस्त) इन यत्नोंसे जो प्राणोंकी रक्षाके लिये उपकार करते हैं उनकोभी मरनेपर प्रायश्चित्त नहीं है यह भी उस वैद्यके विषयमें है। जो आदान और निदानमें निपुत्र हो उससे भिन्नको तो मिथ्या आचरण करता हुआ वैद्य दंड देने योग्य है, इस वचनसे दोष दिखा आये हैं। और जो मनुष्य क्रोधके निमित्त आक्रोश आदि न करनेवालेका भी नाम लेकर उन्माद आदिसे अपने आत्माको नष्ट करदे वहांभी दोष नहीं। क्योंकि यह स्मृति है कि जो कोई द्विज विना कारण प्राणोंको त्याग दे वहां उसको ही दोष है जिसका नाम ले उसको नहीं। जैसे जहां आक्रोश आदिसे पैदा हुए क्रोधसे अपने देहमें खड्ग आदिका प्रहार करै और मरणसे पहिले उसका आक्रोश करनेवाला धन आदिसे संतोष करदे और वह बहुतसे मनुष्योंके समक्ष (आगे) ऊंचे स्वरसे सुनादे कि मैं प्रसन्न हूं इसमें आक्रोश कर्ताका अपराध नहीं वहांभी वचनसे दोष नहीं। सोई विष्णुने कहा है कि यदि किसी उद्देशसे क्रोध हुआ अपने देहमें मारै और संतुष्ट हुआ फिर सुना दे कि इसका दोष नहीं उसके मरनेपर दोनोंके ऊंचे स्वरसे कहनेसे दोष नहीं है। और इन प्रयोजक आदिकोंके दोषके गुरु लघु भावको देखकर प्रायश्चित्तका विशेष कहेंगे॥

भावार्थ–ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, और गुरुस्त्रीका गामी और जो इनके संग संवास करै ये पांच महापातकी होते हैं॥ २२७॥

गुरूणामध्यधिक्षेपोवेदनिंदासुहृद्वधः॥
ब्रह्महत्यासमंज्ञेयमधीतस्यचनाशनम्॥ २२८

---

१ यदि रथन्तरसामा सोमः स्यादैन्द्रवायवाग्रान् ग्रहान् गृह्णीयात्।

२ बंधने गोचिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने। यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ औषधं स्नेहमाहारं ददद्गोब्राह्मणादिषु। दीयमाने विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते॥ दाहच्छेदशिराभेदप्रयत्नैरुपकुर्वताम्। प्राणसंत्राणसिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

१ भिषङ् मिथ्याचरन् दाप्यः।

२ अकारणं तु यः कश्चिद्द्विजः प्राणान् परित्यजेत्। तस्यैव तत्र दोषः स्यान्नतु यम्परिकीर्तयेत्॥

३ उद्दिश्य कुपितो हत्वा तोषितः श्रावयेत्पुनः। तस्मिन्मृते न दोषोऽस्ति द्वयोरुच्छ्रावणे कृते॥

सो इससे हिंसाके फलमें हेतु हो सक्ती है। तिसी प्रकार अन्यभी झिडकना, ताडना, धनको हरने आदिसे अन्योंको क्रोध करावै वहभी मरणका हेतु क्रोधकी उत्पत्तिके द्वारा हिंसाका हेतु हो सक्ता है। इसीसे विष्णुने कहा है कि झिडकने तोडने वा धन छीननेसे जो मनुष्य जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्याग दे वह भी ब्रह्मघातक कहाता है। तैसेही ज्ञाति मित्र स्त्री सुहृद् क्षेत्र इनके अर्थ जिसके उद्देशसे प्राणोंको त्यागै उसको भी ब्रह्मघातक कहते हैं। कदाचित् कहो कि आक्रोश (निंदा वा झिडकना) करने परभी किसी २ मनुष्यको क्रोधकी उत्पत्ति नहीं देखते इससे झिडकना आदि हिंसाके कारण नहीं हो सक्ते सो ठीक नहीं, क्योंकि पुरुषोंके स्वभावकी विचित्रतासे जिनको थोडेभी झिडकने पर क्रोध आजाताहै उनसे व्यभिचार नहीं इससे कारण हो सक्ता है और इन अनुग्राहक और प्रयोजक आदिकोंसे प्रत्यासत्ति और व्यवधान (तुरन्त बाहरमें) की अपेक्षासे और व्यापारके गौरव और लाघवकी अपेक्षासे हिंसाका फल और प्रायश्चित्तका गौरव और लाघव जानना क्यों कि यह वचन है कि जो वारंवार आरंभ करताहै उसको विशेष फल होताहै तैसेही स्वयं हिंसामें प्रवृत्त हुए अनुग्राहकको स्वतन्त्र कर्तृत्वभी है तोभी साक्षात् प्राण वियोग है फल जिसका ऐसे खड्ग प्रहर आदि व्यापारवाला न होनेसे साक्षात्कर्ताके समान वारंवार हिंसाका फल न होनेसे अल्प फल और प्रायश्चित्त अल्प होता है। प्रयोजक स्वतन्त्र कर्ताकी प्रवृत्तिका जनक है इससे व्यवधान होनेसे उसको अल्प फल होता है, प्रयोजकोंके मध्यमें पराये अर्थ प्रवृत्त हुए उपदेष्टाको हिंसाका फल अल्प होताहै। कदाचित् कोई शंका करै कि प्रयोजक प्रयोजकके हाथके समान है उसको फलका संबंध युक्त नहीं, यदि परकी प्रेरणासे प्रवृत्त हुएकोभी हिंसाके फलका संबंध होय तो स्थपति (स्वामी) के तलावमें खनिता (खोदनेवाला) आदि जो मूल्यसे प्रवृत्त होते हैं उनकोभी स्वर्ग आदि फलका संबंध हो जायगा, इस शंकाका समाधान कहते हैं कि शास्त्रका फल प्रयोजकको होता है इस न्यायसे अधिकारी जो कर्ता उसको फल देनेवाले देवमंदिर कूप तलाव इनके रचने आदि होते हैं और स्थपति तलावके कर्ता आदि देवता कूप तलाव करने आदिमें अधिकारी नहीं हैं क्यों कि वे स्वर्गके कामी हैं और यह परायी प्रेरणासे प्रवृत्त हुए भी हिंसामें अधिकारी हैं इससे उनको हिंसाका दोष हो सक्ताहै। अनुमंताको प्रयोजकसे इसलिये अल्पफल होता है कि वह प्रयोजकके व्यापारसे वहिरंग है और अनुमति भी लघु अपराध है, और निमित्तकर्ताको अनुमंताके सकाशसे इसलिये अल्पफल है कि उसका जो आक्रोशन (निंदा) करना आदि है प्रवृत्तिके हेतु क्रोधजनक होनेसे व्यवहित (दूर) है और वह मरनेके अनुसंधान विनाही प्रवृत्त है अर्थात् वह यह न जानता था कि मेरे आक्रोश करनेपर यह मरजायगा। कदाचित् शंका करो कि व्यवहित मनुष्यको भी हिंसा आदिका यदि कारण मानोगे तो हिंसा करनेवालेके पैदा करनेवाले माता पिता भी हननके कर्ता हो जांयगे सो ठीक नहीं; क्यों कि कुछ जो पूर्व भावी हो वही २ कारण नहीं होता क्योंकि

---

१ आक्रुष्टस्ताडितो वापि धनैर्वा विप्रयोजितः । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ज्ञातिमित्रकलत्रार्थं सुहृत्क्षेत्रार्थमेव च । यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

२ यो भूय आरभते तस्मिन्फलविशेषः ।

कारण होनेसेही पूर्वभावी हो सक्ताहै। वही कारण होता है जो कार्यके पूर्व नियमसे रहै यह निश्चय है कि जो कार्यके स्वरूपसे भिन्न कार्यकी उत्पत्तिके अनुगुण व्यापारवाला होता है वही कारण होता है, जो रथंतरसामा सोम होय तो ऐंद्रवायवाग्र ग्रहोंको ग्रहण करसकता है इस वचनसे रथंतरकी सामताही क्रतु (यज्ञ) की ऐंद्रवायवाग्रतामें कारण है वहां सोमयज्ञरूपसे कारण नहीं, क्योंकि उसमें व्यभिचार है। ऐसे ही मातापिताकोभी पूर्वोक्त लक्षणका योग नहीं है इससे कुछ दोष नहीं है, और आक्रोश आदिके समान कूप खननमें खोदनेके निमित्त भरना नहीं है कि इसने कूप खुदवाया इससे मैं अपने देहका व्यापादन (नाश) करूंगा इससे कूपका कर्ता भी कारण है, हिंसाका हेतु नहीं, इससे माता पिताके तुल्यही है। तैसेही कहीं २ हिंसाका निमित्त योगके होनेपरभी परोपकारके लिये प्रवृत्त होनेवालेको वचनसे दोषका अभाव होता है सोई संवर्तने कहा है कि चिकित्साके लिये गौके बांधनेमें और गूढगर्भके मोचन (निकालना) में यत्न करनेपर मरण होजाय तो प्रायश्चित्त नहीं है। औषध स्नेह भोजन इनको गौ ब्राह्मण आदिको देने पर मरण होजाय तो वह देनेवाला पापसे लिप्त नहीं होता। दाहका छेदन शिराका भेद (फस्त) इन यत्नोंसे जो प्राणोंकी रक्षाके लिये उपकार करते हैं उनकोभी मरनेपर प्रायश्चित्त नहीं है यह भी उस वैद्यके विषयमें है। जो आदान और निदानमें निपुत्र हो उससे भिन्नको तो मिथ्या आचरण करता हुआ वैद्य दंड देने योग्य है, इस वचनसे दोष दिखा आये हैं। और जो मनुष्य क्रोधके निमित्त आक्रोश आदि न करनेवालेका भी नाम लेकर उन्माद आदिसे अपने आत्माको नष्ट करदे वहांभी दोष नहीं। क्योंकि यह स्मृति है कि जो कोई द्विज विना कारण प्राणोंको त्याग दे वहां उसको ही दोष है जिसका नाम ले उसको नहीं। जैसे जहां आक्रोश आदिसे पैदा हुए क्रोधसे अपने देहमें खड्ग आदिका प्रहार करै और मरणसे पहिले उसका आक्रोश करनेवाला धन आदिसे संतोष करदे और वह बहुतसे मनुष्योंके समक्ष (आगे) ऊंचे स्वरसे सुनादे कि मैं प्रसन्न हूं इसमें आक्रोश कर्ताका अपराध नहीं वहांभी वचनसे दोष नहीं। सोई विष्णुने कहा है कि यदि किसी उद्देशसे क्रोध हुआ अपने देहमें मारै और संतुष्ट हुआ फिर सुना दे कि इसका दोष नहीं उसके मरनेपर दोनोंके ऊंचे स्वरसे कहनेसे दोष नहीं है। और इन प्रयोजक आदिकोंके दोषके गुरु लघु भावको देखकर प्रायश्चित्तका विशेष कहेंगे॥

भावार्थ–ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, और गुरुस्त्रीका गामी और जो इनके संग संवास करै ये पांच महापातकी होते हैं॥ २२७॥

गुरूणामध्यधिक्षेपोवेदनिंदासुहृद्वधः॥
ब्रह्महत्यासमंज्ञेयमधीतस्यचनाशनम्॥ २२८

---

१ यदि रथन्तरसामा सोमः स्यादैन्द्रवायवाग्रान् ग्रहान् गृह्णीयात्।

२ बंधने गोचिकित्सार्थे गूढगर्भविमोचने। यत्ने कृते विपत्तिश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ औषधं स्नेहमाहार दददोब्राह्मणादिषु। दीयमाने विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते॥ दाहच्छेदशिराभेदप्रयत्नैरुपकुर्वताम्। प्राणसंत्राणसिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥

१ भिषङ् मिथ्याचरन् दाप्यः।

२ अकारणं तु यः कश्चिद्द्विजः प्राणान् परित्यजेत्। तस्यैव तत्र दोषः स्यान्नतु यम्परिकीर्तयेत्॥

३ उद्दिश्य कुपितो. हत्वा तोषितः श्रावयेत्पुनः। तस्मिन्मृते न दोषोऽस्ति द्वयोरुच्छ्रावणे कृते॥

पद्-गुरूणाम् ६ अध्यधिक्षेपः १ वेदनिंदा १ सुहृद्वधः १ ब्रह्महत्यासमम् १ ज्ञेयम् १ अधीतस्य ६ चऽ-नाशनम् १ ॥

योजना-गुरूणाम् अध्यधिक्षेपः वेदनिंदा सुहृद्वधः च पुनः अधीतस्य नाशनम् एतत् ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयम् ॥

तात्पर्यार्थ-गुरुओंका अधिकतासे अधिक्षेप (झूठी निंदा), क्योंकि गौतमका वचन है कि गुरुकी झूठी निंदा महापातकके समान है यहभी उस दोषकी निंदाके विषयमें है जो जगत्में अविदित हो क्योंकि आपस्तंबकी स्मृति है कि दोषको जानकर पूर्व जो श्रेष्ठ है उनके दोषको न कहै और व्यवहारमें इसको त्याग दे और नास्तिक होनेके आग्रहसे वेदकी निंदा, ब्राह्मणसे भिन्नभी मित्रका वध और पढे हुए वेदका असत् (बुरे) शास्त्रके विनोदसे वा आलस्य आदिसे नाशन (विस्मरण) अर्थात् भूलना ये सब प्रत्येक ब्रह्महत्याके समान हैं, और जो वेद अग्नि पुत्र इनका त्याग उपपातक है। इस वचनमें अधीत (पढा वेद) के त्यागको उपपातकोंके मध्यमें गिना है वह उस विस्मरणमें जानना जो कष्टसे कुटुंबके पोषणकी व्याकुलता और असत्शास्त्रके श्रवणकी व्यग्रतासे होता है ॥

भावार्थ-गुरुओंकी अधिक निंदा, मित्रका वध और पढे हुए वेदका नाश ये ब्रह्महत्याके समान जानने ॥ २२८ ॥

निषिद्धभक्षणंजैह्म्यमुत्कर्षेचवचोऽनृतम् ।
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानितु ॥

पद्-निषिद्धभक्षणम् १ जैह्म्यम् १ उत्कर्षे ७ चऽ-वचः १ अनृतं १ रजस्वलामुखास्वादः १ सुरापानसमानि १ तुऽ-॥

योजना-निषिद्धभक्षणं जैह्म्यं च पुनः उत्कर्षे अनृतं वचः रजस्वलामुखास्वादः एतानि सुरापानसमानि भवन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-निषिद्ध लशुन आदिका जानकर भक्षण, इसीसे मनु (अ० ५ श्लो० १९) ने कहा है कि छत्राक, विष्ठाका भक्षक सूकर, लहसन, ग्रामका कुक्कुट (मुर्गा), पलाण्डु (सलगम) गाजर इनको जानकर खानेसे मनुष्य पतित होता है और अज्ञानसे भक्षणमें तो प्रायश्चित्त मनु (अ० ५ श्लो० ३०) नेही कहा है कि अज्ञानसे इन छःको खाकर सान्तपन कृच्छ्र और यतिचांद्रायण व्रतको करै और शेष पापोंमें एक दिन उपवास करै। जैह्म्य (कुटिलता) अर्थात् अन्यकी प्रतिज्ञा करके अन्य कहना वा अन्य करना। यद्यपि यहां सामान्यसे कुटिलता कही है तथापि प्रायश्चित्तके गौरवसे कुटिलतारूप निमित्तभी गुरुही लेना अर्थात् अधिक कुटिलतामें यह प्रायश्चित्त समझना और नैमित्तिक (कार्य) के देखनेसे निमित्तकी विशेषताका ज्ञान देखते हैं जैसे जिस पुरुषकी दोनों अग्नि अनुगत हों और वे नष्ट हो जांय तो वहां पुनः आधानही प्रायश्चित्त है इस वचनमें उभौ यह निमित्तका विशेषण है, इससे दोनों हवियोंके समान अविवक्षितभी है तोभी दोनों अग्निके उत्पादक पुनः आधेयमें नैमित्तिक विधिके बलसे दोनों अग्नियोंकीही निमित्त रूपसे कल्पना करते

१ गुरोरनृताभिशासनम् इति महापातकसमानि ।
२ दोषं बुद्ध्वा न पूर्वःपरेषां समाख्याता स्यात्संव्यवहारे चैनं परिहरेत् ।

१ छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् । पलाण्डुं गृंजनं चैव मत्या जग्ध्वा पतन्नरः ।
२ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् । यतिचांद्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ।
३ यस्योभावग्नी अनुगतौ स्यातामभिनिम्लोचेद्वा पुनराधेयं तत्र प्रायश्चित्तिः ।

है, तैसेही यहांभी निमित्तके गौरवकी कल्पना युक्त है और अपनी वडाईके निमित्त राजकुल आदिमें चतुर्वेदी न होनेपरभी मैं चतुर्वेदी हूं ऐसे झूठ बोलना, और कामके वशीभूत न होकर रजस्वलाके मुखका सेवन ये पांच ५ सुरापानके समान हैं ॥

भावार्थ–निषिद्ध लहसन आदिका भक्षण, कपटका करना, उत्तम होनेके लिये झूठ बोलना, रजस्वला स्त्रीके मुखका चूमना ये पांच मदिरापानके समान होते हैं ॥ २२९ ॥

अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा ॥
निक्षेपस्यचसर्वंहिसुवर्णस्तेयसंमितम् २३०

पद–अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणम् १ तथाऽ–निक्षेपस्य ६ चऽ–सर्वम् १ हिऽ–सुवर्णस्तेयसंमितम् १ ॥

योजना–अश्वरत्नमनुष्यस्त्रीभूधेनुहरणं तथा निक्षेपस्य हरणं तत् सर्वं सुवर्णस्तेयसंमितं भवति॥

ता० भावार्थ–ब्राह्मणके अश्व, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भू, धेनु इनका और सुवर्णसे भिन्न निक्षेप (धरोहर) का हरना, ये सब सुवर्णकी चोरीके समान जानने ॥ २३० ॥

सखिभार्याकुमारीषुस्वयोनिष्वंत्यजासुच ॥
सगोत्रासुसुतस्त्रीषुगुरुतल्पसमंस्मृतम् २३१

पद–सखिभार्याकुमारीषु ७ स्वयोनिषु ७ अंत्यजासु ७ चऽ–सगोत्रासु ७ सुतस्त्रीषु ७ गुरुतल्पसमम् १ स्मृतम् १ ॥

योजना–सखिभार्याकुमारीषु, स्वयोनिषु च पुनः अंत्यजासु, सगोत्रासु, सुतस्त्रीषु गमने गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ–सखा (मित्र) की भार्या और उत्तम जातिकी कुमारी (कन्या) इनमें गमन करना गुरुतल्पकी समान कहा है क्योंकि इच्छा करती हुई अनुलोम जातियोंमें दोष नहीं, अन्यथा गमन करे तो दण्ड है और दूषण लगानेमें हाथोंका छेदन और उत्तम वर्णकी कन्याको दूषण लगावै तो वध कहा है इस वचनसे वहांही दंड विशेषके कहनेसे प्रायश्चित्तका गौरव युक्त है और स्वयोनि (भगिनी), अन्त्यजा (चाण्डाली), सगोत्रा, पुत्रकी स्त्री, इन प्रत्येकका गमनभी गुरुतल्पके समान है । यहभी वीर्य सींचनके अनंतर जानना, सींचनेसे पूर्व निवृत्त हो जाय तो गुरुतल्पके समान नहीं किन्तु अल्पही प्रायश्चित्त है । क्योंकि मनु (अ० ११श्लो० ५८) ने इस श्लोकमें रेतःसेक (वीर्य सींचना) यह विशेषण दिया है कि अपनी भगिनी,कुमारी, अन्त्यजा, मित्र और पुत्रकी स्त्री इनमें वीर्यका सींचना गुरुतल्पके समान समझना, सगोत्राके ग्रहणसेही पुत्रकी स्त्रीका ग्रहण सिद्ध था पुनः कहना प्रायश्चित्तकी गौरवता कहनेके लिये है, और गुरुकी निंदा आदिको जो. ब्रह्महत्याके समान कहना है वह ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्त बोधन करनेके लिये है । कदाचित् शंका करो कि, वेदनिंदा आदिमें दोष लघु है, इससे ब्रह्महत्या आदि गुरु प्रायश्चित्त युक्त नहीं है सो ठीक नहीं क्योंकि गुरु प्रायश्चित्तके दोष बलसेही दोषका गौरव जाना जाता है और प्रायश्चित्तके कहनेके लियेहि यह वचन नहीं किंतु दोषके गौरवकाही प्रतिपादक है, यह शंकाभी ठीक नहीं, क्योंकि वल दोष गौरवकाही प्रतिपादक वचन होता तो यह ब्रह्महत्याके समान है यह गुरुतल्पके समान है इत्यादि भेदसे कहना सिद्ध नहीं होता और सम शब्दसे कहा हुआ वह प्रायश्चित्त ब्रह्महत्या आदि प्रायश्चि-

१ सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः । दूषणे तु करच्छेद उत्तमाया वधस्तथा ॥

२ रेतःसेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ।

तौ कुछ न्यूनही कहा है क्योंकि जगद्में राजाके समान मन्त्री है इत्यादि वचनमें किंचित् न्यूनमेंभी सम शब्दका प्रयोग देखते हैं, बडा महान् पातक और अल्प पातककी तुल्यता युक्त नहीं, इससे याज्ञवल्क्यने ब्रह्महत्याके समान कहे हुए वेदका त्याग, वेदकी निंदा, मित्रका वध, इनको जो मनु (अ० ११ श्लो० ५६) ने सुरापानके समान कहा है वह प्रायश्चित्तके विकल्पार्थ कि ब्रह्म (वेद) का त्याग, ब्रह्मकी निंदा, झूठी साक्षी, मित्रका वध, निंदित अन्न और क्षीका भक्षण ये सुरापानकी समान हैं, इसी प्रकार अन्य वचनोंमेंभी विरोधका परिहार करना और जो वसिष्ठने लघु प्रायश्चित्त कहा है कि गुरुको झूठा दोष लगावै तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके गुरुके प्रसादसे पवित्र होता है, वह अज्ञानेसे करने वा एक वार करनेमें जानना ॥

भावार्थ--मित्रकी भार्या, कुमारी, भगिनी, चाण्डाली और सगोत्रा, पुत्रकी स्त्री इनके गमनेमें गुरुतल्पके समान प्रायश्चित्त होताहै २३१

पितुःस्वसारंमातुश्चमातुलानींस्नुषामपि ।
मातुःसपत्नींभगिनीमाचार्यतनयांतथा ॥

पद–पितुः ६ स्वसारम् २ मातुः ६ चऽ--मातुलानीम् २ स्नुषाम् २ अपिऽ–मातुः६ सपत्नीम् २ भगिनीम् २ आचार्यतनयाम् २ तथाऽ–॥

आचार्यपत्नींस्वसुतांगच्छंस्तुगुरुतल्पगः ।
लिंगंछित्त्वावधस्तत्रसकामायाःस्त्रियाअपि॥

पद–आचार्यपत्नीम् २ स्वसुताम् २ गच्छन् १ तुऽ–गुरुतल्पगः १ लिंगम् २ छित्त्वाऽ–वधः १ तत्रऽ–सकामायाः ६ स्त्रियाः ६ अपिऽ–॥

योजना–पितुः च पुनः मातुः स्वसारं मातुलानीं स्नुषां, मातुः सपत्नीं, भगिनीं तथा आचार्यतनयाम् आचार्यपत्नीं तु पुनः स्वसुतां गच्छन् गुरुतल्पगो भवति तत्र सकामायाः स्त्रियाः अपि लिंगं छित्त्वा वधः प्रायश्चित्तं भवति ॥

तात्पर्यार्थ–पिता और माताकी भगिनी (बूआ मौसी), मातुलानी (मामी), पुत्रकी वधू, माताकी सपत्नी (सौत), भगिनी, आचार्यकी पुत्री और आचार्यकी पत्नी, अपनी पुत्री इनमें गमन करता हुआ गुरुकी शय्यापर गमन करनेवालेके समान होता है उसका और कामनासे पुरुषोंके संग भोग करनेवाली स्त्रियोंका लिंगको छेदन करके राजा वध करै। यहां वधही दण्ड और प्रायश्चित्त है और चशब्दसे राणी संन्यासिनी आदिकोंका ग्रहण है, सोई नारदने कहा है कि माता, माताकी भगिनी, सास, मातुलानी, बूआ, चाचा, मित्र और शिष्य इनकी स्त्री और अपनी भगिनी और भगिनीकी सखी, पुत्रकी वधू, पुत्री और आचार्यकी भार्या, सगोत्रा, शरणागत, राणी, संन्यासिनी, धाय, साध्वी, उत्तमवर्णकी इनमें अन्यतम (कोईसी) स्त्रीके संग गमन करता हुआ पुरुष गुरुस्त्रीगामी कहाता है, उसमें लिंग छेदनसे अन्य कोई दण्ड नहीं कहा। यहां राज्ञी पदसे राज्य करनेवालेकी भार्या लेनी, क्षत्रियकी नहीं, क्योंकि क्षत्रियकी स्त्रीके गमनमें अन्य प्रायश्चित्त कहा है, और धात्री पदसे मातासे भिन्न वह लेनी जो स्तन्यदान आदिसे पोष-

१ ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् ॥

२ गुरोरलीकनिर्बंधे कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चीरत्वा सचेलः स्नातो गुरुप्रसादात्पूतो भवति ।

१ माता मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा। पितृव्यसखिशिष्यस्त्रीभगिनीतत्सखीस्नुषा ॥ दुहिता चार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता । राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या ॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दंडो विधीयते ॥

ण करै । साध्वी पदसे व्रत करनेवाली और वर्णोत्तमा पदसे ब्राह्मणी लेना और यहां मातापदका ग्रहण दृष्टांतके लिये है और यह लिंग छेदन और वधरूप दंड ब्राह्मणसे अन्यको समझना । क्योंकि सब पापोंमें टिके भी ब्राह्मणकी हत्या न करै इस वचनसे ब्राह्मणके वधका निषेध है । और यहां वधही प्रायश्चित्तरूप है । इसका विषय गुरुतल्पप्रकरणमें विस्तारसे कहैंगे । इस श्लोकमें कहे हुए गुरुतल्पके समान पुत्रवधू और भगिनीका जो पुनः ग्रहण है वह प्रायश्चित्त विकल्पार्थ है । और यदि ये स्त्रीभी जानकर पुरुषोंको वश करके भोगें तो उनकाभी पुरुषोंके समान वधही प्रायश्चित्त है । और ये जो गुरुकी निंदासे लेकर पुत्रीके गमन पर्यंत हैं वे शीघ्रही पतनका हेतु होनेसे महापातकके अतिदेशके विषय हैं इससे पातक कहाते हैं । सोई यमने कहा है कि माताकी भगिनी, माताकी सखी, पुत्री, बुआ, मांई, अपनी बहन, सास इनके संग गमन करके मनुष्य शीघ्रही पतित होता है । गौतमने तो औरभी पातक कहे हैं कि माता पिताकी योनिके संग संबद्ध है अंग जिसको वह, चौर, नास्तिक, वारंवार निंदितकर्मी, पतितका अत्यागी, और अपतितका त्यागी, और पतित और पातकके संयोजक (प्रेरक) ये पातकी कहाते हैं । इनका पातक और उपपातकोंके मध्यमें पाठसे ये महापातकसे न्यून और उपपातकसे गुरु जानने । सोई कहा है कि जो पाप महापातकके तुल्य कहे हैं उनकी पातक संज्ञा है और उनसे न्यून उपपातक होता है । सोई आंगिरानें कहा है कि पातकोंमें सहस्र वर्षतक महापातकोंमें द्विगुण उपपातकोंमें चौथाई वर्षोंकी संख्यासे नरक होता है ॥

भावार्थ–माता और पिताकी भगिनी, माई, पुत्रवधू, माताकी सपत्नी, अपनी भगिनी, आचार्यकी पुत्री और पत्नी, और अपनी पुत्री इनमें गमन करनेवाला गुरुतल्पग कहाता है । उसका और जानकर पुरुषोंको भोगनेवाली स्त्रीका लिंग छेदन करके वधही दंड और प्रायश्चित्त है ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

गोवधोव्रात्यतास्तेयमृणानांचानपक्रिया ।
अनाहिताग्नितापण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥

पद–गोवधः १ व्रात्यता १ स्तेयम् १ ऋणानाम् ६ चऽ–अनपक्रिया १ अनाहिताग्निता १ अपण्यविक्रयः १ परिवेदनम् १॥

भृताद्ध्ययनादानंभृतकाध्यापनंतथा ॥
पारदार्यपारिवित्त्यंवार्धुष्यंलवणक्रिया २३९

पद–भृतात् ५ अध्ययनादानम् १ भृतकाध्यापनम् १ तथाऽ–पारदार्यम् १ पारिवित्यम् १ वार्धुष्यम् १ लवणक्रिया १ ॥

स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधोनिंदितार्थोपजीवनम् ।
नास्तिक्यंव्रतलोपश्चसुतानांचैवविक्रयः ॥

पद–स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः १ निंदितार्थोपजीवनम् १ नास्तिक्यम् १ व्रतलोपः १ चऽ–सुतानां ६ चऽ–एवऽ–विक्रयः १ ॥

धान्यकुप्यपशुस्तेयमयाज्यानांचयाजनम् ।
पितृमातृसुतत्यागस्तडागारामविक्रयः ॥

---

१ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्ववस्थितम् ।

२ मातृष्वसा मातृसखी दुहिता च पितृष्वसा । मातुलानी स्वसा श्वश्रूर्गत्वा सद्यः पतेन्नरः ॥

३ मातृपितृयोनिसंबद्धांगस्तेननास्तिकानिंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः पातकसंयोजकाश्च ।

१ महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु । तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यूनमुपपातकम् ॥

२ पातकेषु सहस्रं स्यान्महत्सु द्विगुणं तथा । उपपापे तुरीयं स्यान्नरकं वर्षसंख्यया ॥

पद्-धान्यकुप्यपशुस्तेयम् १ अयाज्यानाम् ६ चऽ-याजनम् १ पितृमातृसुतत्यागः १ तडागारामविक्रयः १॥

कन्यासंदूषणं चैव परिविंदकयाजनम् ॥
कन्याप्रदानंतस्यैवकौटिल्यंव्रतलोपनम् ॥

पद्-कन्यासंदूषणम् १ चऽ-एवऽ-परिविंदकयाजनम् १ कन्याप्रदानम् १ तस्य ६ एवऽ-कौटिल्यम् १ व्रतलोपनम् १॥

आत्मनोर्थेक्रियारंभोमद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागोबांधवत्यागएवच ॥

पद्-आत्मनः ६ अर्थे ७ क्रियारंभः १ मद्यपस्त्रीनिषेवणम् १ स्वाध्यायाग्निसुतत्यागः १ बांधवत्यागः १ एवऽ-चऽ-॥

इंधनार्थंद्रुमच्छेदः स्त्रीहिंसौषधजीवनम् ॥
हिंस्रयंत्रविधानंचव्यसनान्यात्मविक्रयः ॥

पद्-इन्धनार्थम् २ द्रुमच्छेदः १ स्त्रीहिंसा १ औषधजीवनम् १ हिंस्रयन्त्रविधानम् १ चऽ-व्यसनानि १ आत्मविक्रयः १॥

शूद्रप्रेष्यंहीनसख्यंहीनयोनिनिषेवणम् ॥
तथैवानाश्रमेवासःपरान्नपरिपुष्टता॥२४१॥

पद्-शूद्रप्रेष्यम् १ हीनसख्यम् १ हीनयोनिनिषेवणम् १ तथाऽ-एवऽ-अनाश्रमे ७ वासः १ परान्नपरिपुष्टता १॥

असच्छास्त्राधिगमनमाकरेष्वधिकारिता ॥
भार्यायाविक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम् ॥

पद्-असच्छास्त्राधिगमनम् १ आकरेषु ७ अधिकारिता १ भार्यायाः ६ विक्रयः १ चऽ-एषाम् ६ एकैकम् १ उपपातकम् १॥

योजना-गोवधः व्रात्यता स्तेयं, च पुनः ऋणानाम् अनपक्रिया, अनाहिताग्निता, अपण्यविक्रयः, परिवेदनम्, भृतात् अध्ययनादानं, तथा पारदार्यं, पारिवित्त्यं, वार्धुष्यं, लवणक्रिया, स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधः, निंदितार्थोपजीवनम्, नास्तिक्यं, व्रतलोपः, च पुनः सुतानां विक्रयः, धान्यकुप्यपशुस्तेयं, च पुनः अयाज्यानां याजनं पितृमातृसुतत्यागः, तडागारामविक्रयः च पुनः कन्यासंदूषणम्, परिविंदकयाजनं, तस्य एव कन्याप्रदानं, कौटिल्यं, व्रतलोपनम्, आत्मनः अर्थे क्रियारंभः, मद्यपस्त्रीनिषेवणं, स्वाध्यायाग्निसुतत्यागः, च पुनः बांधवत्यागः, इंधनार्थं द्रुमच्छेदः, स्त्रीहिंसा, औषधजीवनं, हिंस्रयंत्रविधानं च पुनः व्यसनानि, आत्मविक्रयः, शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यं हीनयोनिनिषेवणं, तथा अनाश्रमे वासः परान्नपरिपुष्टता-असच्छास्त्राधिगमनम्, आकरेषु अधिकारिता, भार्यायाः विक्रयः एषां मध्ये एकैकम् उपपातकं भवति ॥

तात्पर्यार्थ-महापातक और उनके समानोंको कहकर उपपातकोंको कहते हैं । गोवध अर्थात् गौके देहका पातन, और शास्त्रोक्त समयमें यज्ञोपवीत न होना, रूप व्रात्यता, और ब्राह्मण वा ब्राह्मणके समानसे भिन्नके सुवर्णको चुराना रूप स्तेय, और ग्रहण किये सुवर्ण आदिका अनपाकरण (न देना) रूप ऋणानपाकरण, तैसेही देव ऋषि पितर इनके ऋणका अनपाकरण लेना, अधिकार होनेपर आहिताग्नी न होना, कदाचित् कोई शंका करै कि ज्योतिष्टोम[1] आदि कामनाओंका श्रवण अपने अंगभूत अग्निकी सिद्धिके लिये आधानको प्रयुक्त करता है इस मीमांसकोंकी प्रसिद्धिसे जिसका अग्नियोंसे प्रयोजन सिद्ध होता है उसकीही उसके उपायरूप आधानमें प्रवृत्ति होती है, जैसे व्रीहियोंके अर्थीकी धनके संचयमें और जिसका अग्नियोंसे प्रयोजन नहीं तिसकी प्रवृत्ति नहीं होती इससे

---

१ ज्योतिष्टोमादिकामश्रुतयः स्वांगभूताग्निनिष्पत्त्यर्थमाधानं प्रयुंजते ।

अग्निका आधान न करना दोष कैसे है इसका समाधान कहते हैं कि, इसीसे आधानको आवश्यकता कहनेसे नित्य श्रुति भी अधिकारियोंके अविशेषसे आधानकी प्रयोजक है। यह अभिप्राय स्मृतिकारोंका लखा जाता है इससे कुछ दोष नहीं है। तैसेही बेंचनेके अयोग्य लवण आदिका विक्रय, अपण्य विक्रय, सहोदर ज्येष्ठ भाईके विद्यमान रहते छोटे भाईको स्त्री और अग्निका ग्रहणरूप परिवेदन, पण (सरत) पूर्वक अध्यापक (गुरु) से पढना, पणपूर्वाध्यापन, गुरु और गुरुके समानसे भिन्न पराई दाराका सेवन, छोटे भाईके विवाह होने पर बडे भाईका विवाह न होना पारिवित्त्य, वार्धुष्य अर्थात् निषिद्ध वृद्धि (व्याज) से जीविका, लवणको उत्पन्न करना, आत्रेयीसे भिन्न ब्राह्मणीभी स्त्रीका वध, शूद्रवध, अदीक्षित वैश्य क्षत्रियका वध, निंदितार्थोपजीवन अर्थात् राजासे भिन्न स्थापन किये धनसे जीविका करना, नास्तिक्य अर्थात् परलोक नहीं है यह आग्रह, व्रतका लोप यह ब्रह्मचारिको समझना, स्त्रीका प्रसंग, और सुतों (अपत्य) का विक्रय, व्रीहि आदि धान्य और तुच्छ द्रव्य कुप्य (लाख सीसा आदि) गो आदि पशु इनकी चोरी पूर्व कहे हुऐ स्तेयके ग्रहण सेही सिद्ध था फिर धान्य कुप्य आदि स्तेयका ग्रहण नित्यके लिये है, इससे धान्यसे भिन्न द्रव्यकी चोरीमें अवश्य यही प्रायश्चित्त नहीं है किन्तु उससे न्यून भी हो सकता है इससे यह भी व्याख्यात हुआ कि बांधवके त्यागके ग्रहणसेही सिद्ध था पुनः पित्रादिका ग्रहण न्यून प्रायश्चित्तके लिये है। जाति वा कर्मसे दुष्ट जो शूद्र व्रात्य आदि अयाज्य उनको यज्ञ कराना, अपतित जो पिता माता सुत हैं उनको घरसे निकासना, तलाव बाग उद्यान उपवन इनका बेचना, कन्याकी अंगुलि आदिसे योनिका विदारण (छेदन) लेना. भोग नहीं, उसको सखाकी भार्या और कुमारीका गमन गुरुतल्पके समान है, इस पूर्वोक्त वचनसे कह आये हैं, परिविंदकका योजन और उसको कन्याका दान, गुरुको छोडकर कौटिल्य गुरुके विषय कुटिलताको तो सुरापानके समान कहा है, और पुनः व्रतलोपका ग्रहण तो उपदेश न किये और अनिषिद्ध जो व्रत ऐसे हैं कि हरिचरणकमलोंके देखनेसे पहिले तांबूल भक्षण न करूंगा, उनकी प्राप्तिके लिये हैं, स्नातकव्रतकी प्राप्तिके लिये नहीं, क्योंकि उसमें मनुने (अ० ११ श्लो० २०३) स्नातकके व्रत लोपमें अभोजन प्रायश्चित्त लघु प्रायश्चित्त कहा है तैसेही अपने लिये पाकरूप क्रियाका आरंभ, उसका मनुन (अ० ३ श्लो० ११८) वह केवल पापको खाता है जो अपने लिये पकाता है है इस वचनसे निषेध किया है, क्रियामात्र (सव क्रिया) के विषयमें मानेगे तो निषेधकी कल्पनासे गौरव हो जायगा, मदिरा पीनेवाली जाया वा स्त्रीका निषेवण (भोग) स्वाध्याय (वेद) का त्याग श्रौत वा स्मार्त अग्नियोंका त्याग, पुत्रका त्याग अर्थात् संस्कार आदि न करना, पितृव्य मातुल आदि बांधवोंका त्याग अर्थात् रक्षा करनेके सामर्थ्यमें रक्षा न करना, पाक आदि दृष्ट फलके लिये वृक्षोंका छेदन, आहवनीय अग्निकी रक्षाके लिये नहीं, स्त्रीहिंसा, औषधसे जीवन, उनमें स्त्री जीवन यह है कि भार्याको पण्यभावमें (वेश्यापना) लगाकर उससे मिले द्रव्यसे जीवन वा स्त्रीके धनसेजीवस्त्रीन, प्राणियोंके वधसे जो जीवन वह हिंसया जीवन, वशीकरण आदिसे औषध जीवन,

१ स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम्।

२ अघं स केवलं भुंके यः पचत्यात्मकारणात्।

हिंस्रयंत्रका प्रवर्तन (तिल ईख पीडनेका कोल्हू बनाना) और मृगया आदि अठारह प्रकारके व्यसन सोई मनुने (अ०७ श्लो०४७-५३) कहे हैं कि मृगया, जूआ, दिनमें सोना, निंदा, स्त्री, मद, तौर्यत्रिक, वृथागमन ये दश कामसे पैदा होते हैं। चुगली, साहस, द्रोह ईर्ष्या, असूया, अर्थमें दूषण लगाना, कठोर वाणी, कठोर दंड ये आठ क्रोधसे उत्पन्न हैं। इन दोनोंका कविजन जिसे मूल जानते हैं उस लोभको यत्नसे जीते। क्योंकि ये दोनों गण क्रोधसे पैदा होते हैं। मदिरापान, अक्ष (जूआ) स्त्री, मृगया इन चारोंको क्रमसे कामजगणमें अतीव कष्टदायक जाने। दंडका देना, कठोर वाणी, पदार्थमें दूषण, क्रोधसे उत्पन्न गणमें इन तीनोंको दुःखदायी जाने। सर्वत्र है संबंध जिसका ऐसे इस सात वर्गके मध्यमें पहिले २ व्यसनको आत्मज्ञानी अत्यंत गुरु जाने। व्यसन और मृत्यु इन दोनोंके मध्यमें व्यसन दुःखदायी कहा है, क्योंकि मरकर व्यसनी नरकमें और अव्यसनी स्वर्गमें जाता है और आत्मविक्रय (द्रव्य लेकर पराई सेवा करनी), शूद्रकी सेवा, हीनो (नीच) में मित्रता करनी, नहीं विवाही है सवर्णा दारा जिसने वह हीन वर्णकी दाराको विवाहै और साधारण स्त्रीका भोग, अधिकार होनेपर आश्रमको ग्रहण न करना, पराये अन्नसे पुष्टता (पर पाकमें प्रीति), चार्वाक आदि असत् शास्त्रका ज्ञान, सुवर्ण आदिकी उत्पत्तिके स्थानोंमें राजाकी आज्ञासे अधिकार भार्याका विक्रय, च शब्दसे मनु आदिके कहे अभिचार (शत्रुमारण) और अज्ञानसे लशुन आदिका भक्षण लेना, इन गोवध आदिकी प्रत्येक उपपातक संज्ञा जाननी, मनुने और भी निमित्त जातिभ्रंशकर, संकरीकरण, अपात्रीकरण, मलिनीकरण नामके गिने हैं (अ० ११ श्लो० ६७-७०) ब्राह्मणको पीडा करना, सूंघने अयोग्य और मदिराको सूंघना, जैह्म्य (कपट) और पुरुषमें मैथुन ये जातिभ्रष्टकर कहेहैं, गधा, अश्व, ऊंट, मृग, हाथी, बकरी, भेड इनका वध, मीन, सर्प, भैंसा इनका वध संकरीकरण जानना, निंदितोंसे धनका ग्रहण, व्यापार, शूद्रकी सेवा और झूठ बोलना ये अपात्रीकरण जानने, कृमि कीट पक्षी इनकी हत्या, मदिरा सहित भोजन, फल इंधन पुष्प इनकी चोरी, अधीरता ये मलावह (मलिनीकारण) जानने, इससे अन्य जो निमित्तोंका समूह है वह प्रकीर्णक कहाता है। वृहद्विष्णुने तो संपूर्ण प्रायश्चित्तके निमित्त उत्तर उत्तर लघु पृथक् २ संज्ञाके भेदसे भिन्न २ दिखाये हैं कि ब्रह्महत्या सुरापान ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी, गुरुदाराका गमन और इन चारोंका

१ मृगयाक्षा दिवास्वापः परिवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दंडजं च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोष्टकः॥ द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः। तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥ पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्। एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ दंडस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे। क्रोधजेपि गणे विद्यात्कष्टमेतत् त्रिकं सदा॥ सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषंगिणः। पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान्॥ व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते। व्यसन्यधोधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥

१ ब्राह्मणस्य रुजःकृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः। जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्॥ खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा। संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च॥ निंदितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्। अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम्। फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम्॥

संयोग ये पांच महापातक हैं। माता और पुत्री पुत्रकी वधूका गमन ये अतिपातक हैं। यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यका वध, रजस्वला, गर्भवती, अत्रिगोत्रा इनके अज्ञात गर्भका और शरणागतका मारना ये ब्रह्महत्याके समान हैं। कूट (झूठी) साक्षी, मित्रका वध ये सुरापानके तुल्य हैं। ब्राह्मणकी भूमिका हरना सुवर्णकी चोरीके समान है। चाचा मातामह मामा राजा इनकी पत्नीका गमन गुरुदाराके संग गमन तुल्य है। पिता माताकी भगिनी, वेदपाठी ऋत्विज उपाध्याय और मित्रकी पत्नी, भागनीकी सखी, सगोत्रा और उत्तम वर्णकी स्त्री, रजस्वला, शरण आई, संन्यासिनी, निक्षिप्त (रोकी) इन सब स्त्रियोंका गमन अनुपातक है। झूठ बोलना, अपना उत्कर्ष होनेसे राजाकी चुगली, गुरुके झूठे दोषोंका कथन, वेदकी निंदा, पढे हुए वेदका त्याग, और अग्नि पिता माता पुत्र दारा इनका त्याग, खानेके अयोग्य अन्नका भक्षण, परधनका हरना, पराई दाराका गमन, अयाज्योंको यज्ञ कराना, व्रात्य होना, भृतक (नोकरी) होकर पढाना और पढना, सब आकरोंमें अधिकार, महायन्त्र (कोलू) की प्रवृत्ति, वृक्ष गुल्म लता वल्ली औषध इनकी हिंसासे जीवन, अभिचार (मृत्यु) के मूल जो कर्म उनमें प्रवृत्ति, अपने लिये क्रिया (पाक) का आरम्भ, आहिताग्नि न होना, देवता ऋषि पितर इनके ऋणको दूर न करना, निंदित शास्त्र पढना, नास्तिक होना, निंदित स्वभाव, मदिरा पीनेवाली स्त्रीकी सेवा ये सब उपपातक हैं। और ब्राह्मणको दुःख देना, सूंघनेके अयोग्य और मदिराको सूंघना, कपटता, पशु और पुरुषमें मैथुन करना ये सब जातिभ्रंशकरण हैं। ग्राम वा वनके पशुओंकी हिंसा संकरीकरण है। निंदितोंसे धनका ग्रहण, वाणिज्य (व्यापार), कुसीद (ब्याज) से जीवन, झूठ बोलना, शूद्रकी सेवा ये अपात्रीकरण हैं। पक्षी, जलचारी और जलमें उत्पन्न इनको मारना, कृमि कीटोंको मारना, जिसमें मदिरा मिलाहो ऐसा भोजन ये मलावह (मलिनकिरण) हैं। जो पाप नहीं कहा है वह प्रकीर्णक हैं। कात्यायनने तो महापातकोंके समान जो उपपातक विष्णुने कहे हैं उनकी पातक संज्ञा दिखायी है कि[1] महापाप अतिपाप और पातक प्रासंगिक इस प्रकार पापके पांच गण हैं। कदाचित् शंका करो कि उपपातक आदि कैसे पातक हो सकते हैं, क्योंकि पतनके हेतु नहीं हो सकते। यदि वेभी पतनके हेतु हैं तो माता पिताकी योनिमें संबद्ध है अंग जिसका इत्यादिकोंकी गिनती व्यर्थ है। कदाचित् ऐसे कहो कि महापातक और उनके तुल्य पापोंके समान ये सद्यःपतनके हेतु नहीं हैं, तोभी अभ्यासकी अपेक्षासे पतित होनेके हेतु माननेमें कोई विरोध नहीं, क्योंकि निंदित कर्मका अभ्यासी पतित है ऐसा गौतमका वचन है। ऐसा मत कहो, क्योंकि अभ्यासका रूप कह नहीं सकते दो वार वा सौ वारको अभ्यास कहोगे उसमेंभी अविशेषसे मानोगे तो जो मनुष्य दिनमें दो वार सोताहै और जो सौवार गोवध करताहै इन दोनोंके पतित होनेमें विशेष न होगा। यहां यह कहते हैं, कि जहां अर्थवादमें प्रत्यवाय (पाप) की विशेषता सुनी जाय वा जिसमें अधिक प्रायश्चित्त हो तिस निंदित कर्मके जितना अभ्यास करनेमें महापातककी तुल्यता हो उतना अभ्यास पातित्यका हेतु है। दिनमें सोना तो सहस्रवार अभ्यास करनेपरभी महापातकके तुल्य नहीं हो सकता

1 महापापं चातिपापं तथा पातकमेव च। प्रासंगिकं चोपपापमित्येवं पंचको गणः॥

इससे उसके करनेसे पतित नहीं हो सकता इससे यह बात युक्त है कि उपपातक आदि अभ्यासकी अपेक्षा पतनके हेतु हैं ॥

भावार्थ-गोवधसे लेकर भार्याके विक्रय पर्यंतोंमें एक एक उपपातक कहाताहै उनके नाम तात्पर्यार्थमें दिखाय आये हैं इससे पुनः नहीं लिखे ॥ २३४-२४२ ॥

शिरःकपालीध्वजवान्भिक्षाशीकर्मवेदयन् । ब्रह्महाद्वादशाब्दानिमितभुक्शुद्धिमाप्नुयात्

पद-शिरःकपाली १ ध्वजवान् १ भिक्षाशी १ कर्म २ वेदयन् १ ब्रह्महा १ द्वादशाब्दानि २ मितभुक् १ शुद्धिम् २ आप्नुयात् क्रि-॥

योजना-ब्रह्महा शिरःकपाली ध्वजवान् भिक्षाशी द्वादशाब्दानि कर्म आवेदयन् सन् मितभुक् शुद्धिम् आप्नुयात् ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार व्यवहारके लिये नामके लिये भेदोंसहित प्रायश्चित्तके निमित्तोंको गिनकर नैमित्तिकोंको दिखाते हैं । ब्रह्महा शिरके कपालको धारण किये और ध्वजा लिये क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ७२) ने कहा है कि शवके शिरकी ध्वजाको करके फिरै और अन्य शिरके कपालको दंडके आगे रक्खे जो ध्वजारूप उनको ग्रहण करै और वह कपाल अपने मारे हुए ब्राह्मणके शिरका लेना क्योंकि शातातपकी यह स्मृति है कि ब्राह्मण ब्राह्मणको मारकर उसकेही शिरके कपालको लेकर तीर्थोंमें विचरै वह कपाल न मिलै तो अन्य ब्राह्मणकाही कपाल लेना ये दोनों हाथमेंही लेने क्यों कि गौतमकी स्मृति है कि खट्वांग कपालको हाथमें ले । यहां खट्वांगशब्दसे दंडमें लगा शिरका कपालरूप ध्वज लेते हैं, कुछ खट्वांगका एक देश नहीं । तिसकी महोक्ष (बडा बैल) खट्वांगपरशु इत्यादि व्यवहारोंमें जो है उसमें ही खट्वांग शब्दकी प्रसिद्धि है । यह कपालका धारण चिह्नके लिये है और भोजन और भिक्षाके लिये नहीं, क्यों कि गौतमकी स्मृति है कि मिट्टीके कपालको हाथमें लिये भिक्षार्थ ग्राममें प्रवेश करे, तिससे वह ब्रह्महा वनका वासी हो, क्यों कि मनु (अ० ११ श्लो० ७२) ने कहाहै कि कुटी बनाकर बारह वर्षतक वनमें बसै वा ग्रामके समीप बसै, क्यों कि मनु (अ० ११ श्लो०७८) काही कथन है कि मुंडन कराकर ग्रामके समीप वा गौओंके व्रजमें आश्रम वा वृक्षकी जडमें सब भूतोंमें रत हुआ बसै वा मुंडन कराकर इस विकल्पके कहनेसे यह बात जानी गई कि जटाको धारे । इसीसे संवर्तने कहा है कि ब्रह्महा बारह वर्षतक बालोंके वस्त्रोंको धारण कर जटा ध्वजाको धारण करे, तैसेही भिक्षाके भोजनमें शील रक्खे और भिक्षाभी लाल मिट्टीके खंड शरावसे ग्रहण करनी । क्यों कि आपस्तंबका वचन है कि लाल फूटे शरावसे भिक्षाके लिये ग्राममें प्रवेश करै, सात घरोंमेंही जिनमें स्वच्छ मिले और जो पहिले संकेत न किये हों उनमेंसे ग्रहण करै

---

१ कृत्वा शवशिरोध्वजम् ।

२ ब्राह्मणो ब्राह्मणं घातयित्वा तस्यैव शिरःकपालमादाय तीर्थान्यनुसंचरेत् ।

१ खट्वांगकपालपाणिः ।

२ मृन्मयकपालपाणिर्भिक्षार्थे ग्रामं प्रविशेत् ।

३ ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत् ।

४ कृतवापनो वा निवसेत् ग्रामांते गोव्रजेपि वा । आश्रमे वृक्षमूले वा सर्वभूतहिते : ॥

५ ब्रह्महा द्वादशाब्दानि बालवासा जटी ध्वजी ।

६ लोहितकेन खंडशरावेण ग्रामं भिक्षार्थं प्रविशेत् ।

क्योंकि वसिष्ठका वचन है कि असंकल्पित सात घरोंमें भिक्षाके लिये प्रवेश करके भिक्षाका आचरण करै और सायंकालमें ही भिक्षा ग्रहण करनी। क्योंकि वसिष्ठनेही एककाल भोजन कहा है। वह भिक्षा ब्राह्मण आदि चार वर्णोंमें ही करनी। क्योंकि संवर्तकी स्मृति है कि खट्वांग धारै और मनको रोककर चार वर्णोंमें भिक्षा मांगे, तैसेही ब्रह्महा हूं ऐसे अपने कर्मको विख्यात करता हुआ द्वारपर स्थित होकर भिक्षा मांगे क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि भिक्षाका अर्थी ब्रह्मघातक मैं घरके द्वारपर खडा हूं और वह भिक्षाके भोजनका नियम वनके फलोंसे जीवन न हो सके तब जानना। क्योंकि संवर्तकी स्मृति है कि वनके फलोंसे न जीवै तो भिक्षाके लिये ग्राममें प्रवेश करै, तिसी प्रकार वह ब्रह्मचर्य आदिसे युक्त रहै। क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि खट्वांगको हाथमें लेकर बारह १२ वर्षतक ब्रह्मचारी हुआ भिक्षाके लिये कर्मको कहता हुआ ग्राममें प्रवेश करै और सज्जनोंके दर्शनके लिये गमन करै। स्थान और आसनसे विहार करै और त्रिकाल आचमन करके शुद्ध होता है। इस गौतमके वचनमें ब्रह्मचारीका ग्रहण इस लिये है कि ब्रह्मचारी प्रकरणमें कहे हुए जो ब्रह्मचारीके धर्म कि मधु, मांस, गंध, माल्य, दिनमें सोना, अंजन, उबटना, उपानह, छत्र, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, नृत्य, गीत, निंदा, भय इनको वर्जदे। इनके अनुकूल धर्मकी प्राप्तिके लिये है। इसीसे शंखने कहा है कि वह ब्रह्महा स्थान और वीरासनको धारे हुए, मौन, मौंजी, मेखला, दंड, कमंडलु, दीक्षाका आचरण, अग्निहोत्र, कूष्मांडी ऋचाओंसे सदा जप करै। इस ब्रह्महाको सेवन (संध्या वा यज्ञ) आचमनके और स्नानके कहनेसे उसके अंग मंत्र आदिका उच्चारणभी जाना जाता है तैसेही शुद्ध होकर कर्म करै। यह सब कर्मोंमें साधारण स्मृति है कि व्रतचर्याके अंग शौचके लिये जो स्नान उसके समान संध्योपासनभी वह करै। क्योंकि संध्याभी शुद्धि करनेके द्वारा सब कर्मोंका शेष है सोई दक्षने कहा है कि जो संध्यासे हीन है वह सदैव अशुद्ध और सब कर्मोंमें अशुद्ध है, जो कुछ कर्म करता है उसके फलका भागी नहीं होता। कदाचित् शंका करो कि द्विजातिकर्मोंसे हानिकोही पतन कहते हैं। इस वचनसे द्विजातिका कर्म होनेसे संध्योपासनाकी प्राप्ति ब्रह्महाको न होगी सो ठीक नहीं, क्योंकि पतितकोही व्रतचर्याका उपदेश किया है! व्रतोंका अंग होनेसे संध्योपासनादिकी प्राप्ति है, इससे द्विजातियोंके जो पढना, यज्ञ, दान और ब्राह्मणके जो अधिक पढाना, यज्ञ कराना प्रतिग्रह है इत्यादि व्रतचर्याके अंग द्विजातियोंके कर्म हैं उनकी ही पतितको हानि है सब कर्मोंकी नहीं। क्योंकि उनकेही बाध कर हानिका वचन चरितार्थ है। यह जो द्वादश वर्षकी व्रतचर्या मनु, याज्ञव-

१ भिक्षार्थं प्रविशेत्सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम्। एककालाहारः।

२ चातुर्वर्ण्ये चरेद्भैक्षं खट्वांगी संयतात्मवान्।

३ वेश्मनो द्वारि तिष्ठामि भीक्षार्थी ब्रह्मघातकः।

४ भिक्षार्थं प्रविशेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति।

५ खट्वांगपाणिर्द्वादशवत्सरान् ब्रह्मचारी भिक्षार्थं ग्रामं प्रविशेत् कर्माचक्षाणः यथोपक्रामेत्स संदर्शनादार्यस्य स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूदकोपस्पर्शी शुद्ध्येत्।

१ स्थानवीरासनो मौनी मौंजी दंडकमंडलुः। भिक्षाचर्याऽग्निकार्यं च कूश्मांडीभिः सदा जपः।

२ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यत्किंचित्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।

३ द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनम्।

ल्क्य, गौतम आदिने कही है वह एकही है, और परस्पर सापेक्ष और अविरोध होनेसे भिन्न २ नहीं । सोई दिखाते हैं । याज्ञवल्क्यने भिक्षाका भोजन कर्मको कहता हुआ करै उसमें कौन भिक्षापात्र, कितने वा किनके घरोंमें भिक्षाको मांगे यह आकांक्षा होतीही है। उस आकांक्षाको लाल फूटे शरावसे भिक्षा मांगे इस आपस्तंबके वचनसे पूर्ण करना विरुद्ध नहीं । इससे सबने एक कल्पकाही उपदेशसे किसीने कहा है कि मनु, गौतम आदिकी कही हुई इतिकर्तव्यता परस्पर सापेक्षभी है तोभी विकल्प है । वह उनका कथन यथार्थ निरूपण करके नहीं यह मानने योग्य है। इस प्रकार बारह वर्षतक व्रतचर्याको करके ब्रह्महा शुद्ध होता है यहभी जानकर किये ब्राह्मणके वध विषयमें समझना। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ८९) की स्मृति है कि यह शुद्धि अज्ञानसे ब्राह्मणको मारनेमें कही जानकर ब्राह्मणके मारनेमें तो प्रायश्चित्तही नहीं कहा । यहां यह विचारने योग्य है कि क्या द्विज और ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तका तन्त्र है वा आवृत्ति है, उसमें कोई यह मानते हैं कि ब्रह्महा बारह वर्षतक यहां ब्रह्मशब्द एक दो बहुतसे ब्राह्मणोंके बोधन करनेमें साधारण है । एक ब्राह्मणके वधमें जो प्रायश्चित्त है वही दूसरे और तीसरेमें है । वहां एक ब्राह्मणवधके निमित्त एक प्रायाश्चित्त करनेपर यह प्रायश्चित्त किया, और यह न किया यह नहीं कहसक्के और प्रयोगके संबंधी देश, काल, कर्ता एक है इससे अविशेषसे तंत्रके अनुष्ठानसे ही पापक्षयरूप कार्यकी सिद्धियुक्त है । जैसे आग्नेय आदि कर्मोंमें तंत्रसे करे हुए प्रयाज आदिकोंके तंत्रसेही अनेक उपकार रूप कार्यकी उत्पत्ति होती है, और ऐसे नहीं कहना कि, द्विज ब्राह्मणके वधमें पाप गुरु होता है, इससे गुरुपापमें गुरु और लघुमें लघु प्रायश्चित्त होते हैं । इस गौतमके वचनसे आवृत्तिसेही प्रायश्चित्तका करना युक्त है, सो ठीक नहीं, क्योंकि विलक्षण दो कार्योंकी सिद्धि तंत्रसे हो सकती है। जिससे यह वचन आवृत्तिबोधक नहीं किंतु कहे हुए गुरु लघु कल्पों (प्रकार) की व्यवस्थाका प्रतिपादक है और दूसरे ब्राह्मणके वधमें प्रमाणके अभावसे पाप गुरुभी नहीं होसक्ता और जो मनु देवलोंने यह कहा है कि पहिली विधिसे दूसरे दुगुना और तीसरेमें तिगुना और चौथेमें प्रायश्चित्त नहीं वहभी प्रतिनिमित्त नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति होती है इस न्यायसे द्विज ब्राह्मणके वधमें नैमित्तिक शास्त्रकी आवृत्तिके अनुवादसे चौथेमें आवृत्तिके अभावका बोधक है, कुछ दूसरे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तकी द्विगुणताका बोधक नहीं, अन्यथा वाक्यभेद हो जायगा । तिससे द्विज ब्राह्मणके वधमेंभी बारह वर्षका प्रायश्चित्तही युक्त है । जैसे कामनावान् अग्निके निमित्त अष्टाकपाल पुरोडाशको इत्यादि वचनोंसे गृहदाह आदि निमित्तोंमें कहे जो क्षामवती आदि उनका एक वारही गृहदान आदिमें अनुष्ठान है आवृत्ति नहीं । इसमें हम यह कहते हैं कि वचनके विरोधमें न्याय समर्थ नहीं होता । अर्थात् वचनको नहीं बाध सक्ता, वचन पहिली विधिसे दूसरीमें दुगुना तीसरीमें तिगुना और चौथीमें प्रायश्चित्तके अभावका बोधक होनेसे प्रा-

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥

१ द्विजब्राह्मणवधे पापस्य गुरुत्वादेनासि गुरूणि गुरूणि लघूनि लघूनि ।

२ विधेः प्राथमिकादस्माद् द्वितीये द्विगुणं भवेत् । तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः ।

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते ।

४ अग्नये कामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् ।

यश्चित्तकी आवृत्तिको कहता है। ऐसा होनेपर न्यायसे प्राप्त हुए तंत्रानुष्ठानको बाधकर आवृत्ति विशेषका कर्ता होगा। ऐसे न मानोगे तो शास्त्रसे पाई प्राप्तिका अनुवादक होनेसे वचन अनर्थक होजायगा। कदाचित् कहो वाक्यभेद है, सो ठीक नहीं, क्योंकि चतुर्थ आदि ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्तके निषेधसे और तीनतक प्रायश्चित्तकी आवृत्तिके विधानसे वचनका एक अर्थ है। और चौथेमें प्रायश्चित्त नहीं इस प्रमाणके देखनेसे हते हुए ब्राह्मणकी संख्याकी अधिकतामें दोषकी अधिकता जानी जाती है। तैसेही देवल आदिका वचन है कि जो विना विचारे पाप कर्म एक वार किया है उसीका यह प्रायश्चित्त धर्मके ज्ञाता बुद्धिमानोंने देखा है। और विलक्षण गुरु लघुदोषोंका नाश तंत्रसे होभी नहीं सक्ता। इससे ब्रह्महत्या आदि पापोंमें दोषकी गुरुता और कर्मकी विलक्षणतासे प्रतिनिमित्त नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति युक्त है। क्षामवती आदिमें तो कार्य विलक्षण नहीं; इससे वहां तंत्रका अभाव युक्त है। अब विस्तारसे अलम् (पूर्ण) होते हैं और यह वचन है कि चौथेमें प्रायश्चित्त नहीं वहभी महा पातकके विषयमें है, क्योंकि पापके अतिगुरु होनेसे प्रायश्चित्तके अभावकाही प्रतिपादक है। इससे शूद्रान्न भोजन आदिका बहुत वार अभ्यास किया होय तो उसके अनुकूल प्रायश्चित्तकी आवृत्तिही कल्पना करने योग्य है, कुछ वहां प्रायश्चित्तका अभाव नहीं। इसीसे मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० १४०) कि जिनमें अस्थि नहीं हो ऐसे हने हुए जीवोंसे गाडी भर जाय तो शूद्रहत्याका व्रत करै और यह बारह वर्षका व्रत ब्रह्महा पदसे साक्षात् हंतनेवालेकोही समझना, अनुग्राहक और प्रयोजक आदिको तो दोषके अनुसार न्यून वा अधिक प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। उसमें आनुग्राहक जिस प्रायश्चित्तके भागी पुरुषपर अनुग्रह करै वह उस प्रायश्चित्तको पादोन (पौने) करै इससे उसको द्वादश वर्षका प्रायश्चित्त पादोन नौ वर्षका और प्रयोजकको अर्द्धोन प्रायश्चित्त ६ छः वर्षका है। अनुमंता सार्द्धपाद साडे ४ ॥ चार वर्षका और निमित्ती एकपाद ३ वर्षका प्रायश्चित्त करै। इसीसे सुमंतुने कहा है कि तिरस्कार किया हुआ निर्गुण ब्राह्मण अपने देहमें मारकर साहस वा क्रोधसे घर क्षेत्र आदिके कारण मरजाय तो उस पापकी शुद्धिके लिये ३ तीन वर्षका व्रत करै और सरस्वती नदीपर प्राची दिशाको गमन करै। अत्यन्त निर्गुणी ब्राह्मण अत्यन्त निर्गुणके ऊपर विना झिडके क्रोधसे मरजाय तो शुद्धिके अर्थ तीन वर्षतक कृच्छ्र व्रत करै और जहां निमित्तवाले अत्यंत गुणवानके ऊपर अत्यंत निर्गुण मनुष्य आत्महत्या करै तो एक वर्षही ब्रह्महत्या व्रत करै। क्योंकि सुमन्तुने ही यह कहा है कि केश श्मश्रु नख आदिका मुण्डन कराकर वनमें ब्राह्मण एक वर्षमें शुद्ध होता है। इसी मार्गसे अनुग्राहक और प्रयोजक आदिके जो अनुग्राहक

१ यत्स्यादनभिसंधाय पापं कर्म सकृत्कृतम्। तस्येयं निष्कृतिर्दृष्टा धर्मविद्भिर्मनीषिभिः॥

२ पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।

१ तिरस्कृतो यदा विप्रो हत्वात्मानं मृतो यदि। निर्गुणः साहसात्क्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् ॥ त्रैवार्षिकं व्रतं कुर्यात्प्रतिलोमां सरस्वतीम्। गच्छेद्वापि विशुद्ध्यर्थं तत्पापस्येति निश्चितम् ॥ अत्यर्थं निर्गुणो विप्रो ह्यत्यर्थं निर्गुणोपरि। क्रोधाद्वै म्रियते यस्तु निर्निमित्तं तु भर्त्सितः ॥ वत्सरत्रितयं कुर्यान्नरः कृच्छ्रं विशुद्धये ॥

२ केशश्मश्रुनखादीनां कृत्वा तु वपनं वने। ब्रह्मचर्यं चरन्विप्रो वर्षेणैकेन शुद्ध्यति ॥

प्रयोजक हैं उनकेभी प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और इन कल्पनामें यह आपस्तम्बका वचन मूल है कि प्रयोजक अनुमन्ता कर्ता ये स्वर्ग नरक देनेवाले कर्मोंके फलभागी होतेहैं । जो वारंवार करता है उसको फलका विशेष होता है तैसेही प्रोत्साहक (उत्साह देनेवाला) आदिकोभी दंड और प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी । सोई पैठीनसीने कहा है हंता, अनुमंता, उपदेशका कर्ता, संप्रतिपादक, प्रोत्साहक, सहायक, तैसेही मार्गका उपदेशक, आश्रय और शस्त्रका दाता, भोजनका दाता और समर्थ होकर विकर्मियोंका उपेक्षक, दोषोंको जो कहे अनुमोदक ये सब अकार्य करनेवाले हैं । इनके प्रायश्चित्तकी और शक्तिके अनुसार इनके दंडकी कल्पना करै । तैसेही बालक और वृद्धोंको पापका कर्ता होने परभी आधेही दंडकी कल्पना करै । क्योंकि अंगिराकी स्मृति है कि जिसके अस्सी वर्ष हों और जो सोलहसे न्यून वर्षका बालक हो और स्त्री रोगी ये सब आधे प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं । तैसेही बारह वर्षसे पहिले और अस्सीवर्षके पीछे पुरुषोंका आधा और स्त्रियोंको चौथाई प्रायश्चित्त होता है । तैसेही अनुपनीत बालककोभी चौथाई ही प्रायश्चित्त है क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि स्त्री वृद्ध रोगी इनको आधा, बालकोंको पाद प्रायश्चित्त दे । यह सब पापोंमें मर्यादा है । इससे जो शंखने ग्यारह वर्षसे न्यून और पांच वर्षसे परे प्रायश्चित्तको भ्राता वा अन्य कोई मित्रजन करैं, यह कहकर कहा है इससे अत्यंत बालक इसका न अपराध है, न पातक है, न प्रायश्चित्त है, न राजदंड है । वह शंखका कथनभी संपूर्ण प्रायश्चित्तके अभावका बोधक है, कुछ सर्वथा प्रायश्चित्तके अभावका बोधक नहीं । आश्रमविशेषकी अपेक्षाको छोडकर श्रवण किये जो ब्राह्मणको न मारै, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य मदिरा पान न करैं इत्यादि वचनोंमें अवस्था विशेषकी अपेक्षाको छोडकर प्रायश्चित्त (पाप) कहा है । इससे उसके प्रायश्चित्तको पिता आदि करै । क्योंकि पुत्रोंको पैदाकर उनका संस्कार वेद पढाकर उनकी जीविकाका प्रबंध करै, इस वचनसे पिताही पुत्रके हिताचरणका अधिकारी है, और जहां कहीं एक ब्राह्मणके वधमें प्रयोजक हो और दूसरे ब्राह्मणके वधका साक्षात्कर्ता होजाय वहां गुरु लघु प्रायश्चित्तके संनिपात (मेल) में बारह वर्षका जो गुरु प्रायश्चित्तके अंतर्गत (मध्य) का प्रयोजकका लघु प्रायश्चित्त है उसकी प्रसंगसे सिद्धि हो जाती है । कदाचित् शंका करो कि इसी

१ प्रयोजयितानुमंता कर्ता चेति स्वर्गनरकफलेषु कर्मसु भागिनो भूय आरभेत तस्मिन्फलविशेषः ।

२ हंता मंतोपदेष्टा च तथा संप्रतिपादकः । प्रोत्साहकः सहायश्च तथा मार्गानुदेशकः ॥ आश्रयः शस्त्रदाता च भक्तदाता विकर्मिणाम् । उपेक्षकः शक्तिमांश्चेद्दोषवक्तानुमोदकः ॥ अकार्यकारिणस्त्वेषां प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् । यथाशक्त्यनुरूपं च दण्डं चैषां प्रकल्पयेत् ॥

३ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमर्हंति स्त्रियो रोगिण एवच ॥ तथा अर्वाक्तु द्वादशाद्वर्षादशीतेरूर्ध्वमेव वा । अर्धमेव भवेत्पुंसां तुरीयं तत्र योषिताम् ॥

१ स्त्रीणामर्धं प्रदातव्यं वृद्धानां रोगिणां तथा । पादो बालेषु दातव्यः सर्वपापेष्वयं विधिः ॥

२ ऊनैकादशवर्षस्य पंचवर्षात्परस्य च । प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वान्यः सुहृज्जनः ॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम् । राजदंडो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

३ ब्राह्मणो न हंतव्यस्तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च सुरां न पिबेत् ।

४ पुत्रानुत्पाद्य संस्कृत्य वेदमध्याप्य वृत्तिं विदध्यात् ।

प्रकार लघु कल्पसे बडे प्रायश्चित्तकी भी सिद्धि हो जायगी सो ठीक नहीं। क्योंकि यहां तो महान्के मध्यमें छोटेके आजानेसे उसके करनेमें विशेषता नहीं जाती इससे प्रसंगसे कार्यसिद्धि जानी जाती है और लघुके मध्यमें महान् आ नहीं सकता इससे प्रसंगकी आशंका कहां। कदाचित् शंका करो कि चैत्रके वधसे पैदा हुए पापकी निवृत्तिके लिये किये प्रायश्चित्तसे विष्णुमित्रके वधसे पैदा हुए पापकी निवृत्ति कैसे होगी सो ठीक नहीं। चैत्रका उद्देश (नाम) को अतंत्रता है इससे जैसे काम्य नियोगकी सिद्धिके लिये स्वर्गार्थ किये आग्नेय आदिसे नित्य नियोगकी सिद्धि होती है, उसी प्रकार लघु प्रायश्चित्तके भी कार्यकी सिद्धि हो जायगी और जो मध्यम अंगिराका वचन है कि सहस्र गौ सुपात्र ब्राह्मणोंको विधिसे दान करै तो ब्रह्महा सब पापोंसे छूटता है वह वचन सवनमें टिके गुणवाले ब्राह्मणके विषयमें है। और यह भी सवनमें टिके ब्राह्मणको दूना व्रत कहे इस वाक्यसे विधान किया जो द्वादश वर्षकी व्रतचर्यासे दूना प्रायश्चित्त उसके करनेमें असमर्थको जानना। क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यंत गुरु है और आवृत्तिसे न किये बारह वर्षके विषयमें नहीं है। क्योंकि वहां बारह दिनोंमें एक २ प्राजापत्य होता है इस गिनतीसे तीन सौ साठ प्राजापत्य होते हैं। यद्यपि प्राजापत्य व्रतके अंतमें तीन दिन उपवास अधिक है, तथापि यहां वनका वास जटाका धारण वनफलोंका भोजन आदि विशेष तपसे युक्तको उपवासके अभावमें भी एक एक द्वादशाह व्रतको प्राजापत्यकी तुल्यता है। तिससे प्राजापत्य क्रियामें जो अशक्त है वह बुद्धिमान् गोदान करै और गौओंके अभावमें उनका मूल्य दे, इसमें संशय नहीं। इस न्यायसे प्रत्येक प्राजापत्यमें एक २ धेनु दी जायगी तो धेनु भी तीन सौ साठ होंगी। और सहस्र न होंगी इससे पूर्वोक्त विषयही युक्त है। और जो शंखका वचन है कि पूर्वके समान अज्ञानसे चारों वर्णोंमें ब्राह्मणको मारकर बारह वर्ष, छः, तीन, डेढ वर्ष व्रतोंको बतावे, और उनके अंतमें सहस्र, पांच सौ, अढाई सौ सवा सौ गौ वर्णोंके क्रमसे दे। बारह वर्ष और सहस्र गौके समुच्चयका बोधक है। वह आचार्य आदिकी हत्याके विषयमें देखने योग्य है। क्योंकि प्रायश्चित्त अत्यंत गुरु है। सोई दक्षने यह कहा ब्राह्मणसे भिन्नको देना समान है। ब्राह्मणब्रुव (नाममात्र ब्राह्मण) को देनेका फल दूना है, आचार्यको लक्षगुना और वेदपाठीको देनेका फल अक्षय होता है। सम दूना सहस्रगुना अनन्त फल दानमें और हिंसामें होता है। तैसेही आपस्तंबने द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तको कह कर इसी विषयमें कहा है कि गुरु और श्रोत्रियको हतकर यही व्रत उत्तम उत्साहसे करै। उसमें जीवन पर्यंत व्रतकी आवृत्ति करनेसे जब तिगुने वा चौगुनेकी संभावना हो तहां समर्थ और बहुत धनवान्का यह दान और

१ गवां सहस्रं विधिवत्पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत् । ब्रह्महा विप्रमुच्येत सर्वपापेभ्य एव च ॥

२ द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमादिशेत् ।

४ प्राजापत्यक्रियाशक्तो धेनुं दद्याद्विचक्षणः । गवामभावे दातव्यं तन्मूल्यं वा न संशयः ॥

२ पूर्ववदमतिपूर्वे चतुर्षु वर्णेषु विप्रं प्रमाप्य द्वादशवत्सरान् षट् त्रीन् सार्द्धसंवत्सरं च व्रतान्यादिशेत्तेषामंते गोसहस्रं तदर्धं तस्यार्धं तदर्धं दद्यात्सर्वेषां वर्णानामानुपूर्व्येण ।

३ सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे । आचार्ये शतसाहस्रं श्रोत्रिये दत्तमक्षयम् ॥ समं द्विगुणसाहस्रमानंत्यं च यथाक्रमम् । दाने फलविशेषः स्याद्धिंसायां तद्वदेव हि ॥

४ गुरुं हत्वा श्रोत्रियं वा एतदेव व्रतमुत्तमोत्तमादुच्छ्वासाच्चरेत् ।

च्चयका समुच्चय जानना। बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे जो भिन्न सुमंतु और पराशर आदिने कहे हैं उनकी व्यवस्था आगे कहेंगे। कदाचित् शंका करो कि बारह वर्षके प्रायश्चित्त आदिकी व्यवस्थाका निश्चय कहांसे किया प्रथम तो यह युक्त है. कि बारह वर्षके प्रायश्चित्तविधायक वचनोंसे जानी। यह वहां प्रतीत नहीं होता। कदाचित् कहो कि प्रमाणोंसे जाने गुरु लघु कल्पोंका बाध न हो इससे व्यवस्थाकी कल्पना करते हैं। सो भी ठीक नहीं। क्योंकि विकल्प समुच्चय इनके अंगांगिभावमें एकके माननेसे भी बाधका निवारण हो सकता है, इसमें समाधान कहते हैं, कि कुछ बारह वर्षके सेतुबंधके दर्शन आदि जो विषम (कठिन) कल्प हैं उनके विकल्पकी कल्पना नहीं करते, क्योंकि विकल्पके आश्रयणमें गुरु कल्पोंके अनुष्ठान (करना) के असंभवसे वचन व्यर्थ होजायगे। कदाचित् कहो कि षोडशीके ग्रहण अग्रहणके समान अर्थात् अतिरात्रमें षोडशीको ग्रहण करै वा न करै इसके तुल्य विषमोंका भी विकल्प हो सकता है, सो ठीक नहीं, जिससे वहां भी संभव होय तो ग्रहणकी ही कल्पना युक्त है अथवा षोडशी ग्रहणका है अनुग्रह (होना) जिसमें ऐसे अतिरात्रसे शीघ्र वा उत्तम स्वर्गकी सिद्धि होती है यह कल्पना करने योग्य है। अन्यथा षोडशीके ग्रहणकी विधि अनर्थक हो जायगी और समुच्चय भी नहीं। उपदेशके दिये विना समुच्चय नहीं हो सकता। उपदेशसे निरपेक्षा जानी जाय उसके बाधका प्रसंग हो जायगा, अंगांगिभाव भी नहीं कह सकते, श्रुति आदि विनियोजक (प्रेरक) का अभाव है क्योंकि विनियोजक[1] ये हैं कि श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्यान, इससे परस्पर उपमर्द (नाश) के निवारणार्थ विषय व्यवस्था की कल्पना उचित है। वह जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे कल्पना करनी। क्योंकि देवलकी स्मृति[1] है जाति शक्ति गुणकी अपेक्षासे एक वार जानकर पाप किया है उसके सम्बन्ध आदिको जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै॥

भावार्थ-ब्रह्महा शिरका कपाल ध्वजाको लेकर भिक्षाका परिमित भोजन करै और अपने कर्मको कहता हुआ द्वादश १२ वर्षतक विचरै॥ २४३॥

ब्राह्मणस्यपरित्राणाद्गवांद्वादशकस्यच॥
तथाश्वमेधावभृथस्नानाद्वाशुद्धिमाप्नुयात्॥

पद-ब्राह्मणस्य ६ परित्राणात् ५ गवाम् ६ द्वादशकस्य ६ चऽ-तथाऽ-अश्वमेधावभृथस्नानात् ५ वाऽ-शुद्धिम् २ आप्नुयात् क्रि-॥

योजना-ब्राह्मणस्य च पुनः गवां द्वादशकस्य परित्राणात् वा तथा अश्वमेधावभृथस्नानात् ब्रह्महा शुद्धिम् आप्नुयात्॥

तात्पयार्थ-जो चोर व्याघ्र आदिसे नष्ट होते हुए एक भी ब्राह्मणकी प्राण रक्षा अपने प्राणोंको गौण समझकर करता है और जो बारह गौओंकी रक्षा करता है वह बारह वर्षसे पहिले भी शुद्ध होता है और यदि प्राण रक्षामें प्रवृत्त हुआ प्राण रक्षा करनेसे पहिलेही मरजाय तो भी शुद्ध होजाता है। इसीसे मनु (अ० ११ श्लो० ७९) ने ब्राह्मण और गौओंकी रक्षाके लिये शीघ्रही प्राणोंको त्यागदे[2]। गौ और ब्राह्मणोंका रक्षक ब्रह्महत्यासे छूटता है। ब्राह्मणकी रक्षा और उसके लिये मरण पृथक् २ कहे हैं। और तैसेही पराई अश्वमेधके अवभृथ स्नानके समय

---

[1] श्रुतिलिंगवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानानि विनियोजकानि।

[1] जातिशक्तिक्षणापेक्षं सकृद्बुद्धिकृतं तथा। अनुबंधादि विज्ञाय प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्॥

[2] ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च॥

स्वयंभी स्नान करके ब्रह्महत्यासे शुद्धिको प्राप्त होता है। और स्नानभी अपने पापको विदित करके करै। क्योंकि मनु (अ०११श्लो०८२) ने कहा है कि भूमिदेव (ब्राह्मण) ऋत्विज उनके और राजा नरदेवके समुदायमें अपने पापको विदित करके अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है, यदि वे ब्राह्मण आज्ञा देदें। क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अश्वमेधके अवभृथमें जाकर और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे स्नान करके शीघ्रही पवित्र होता है। यहां अश्वमेधके अवभृथका ग्रहण अग्निष्टोमके मध्यके पंचदशरात्र आदि जो अन्य यज्ञ हैं और अग्निष्टोमकी समाप्ति करनेवाले जो सर्वमेध आदि हैं उनकाभी उपलक्षण है। क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि अश्वमेधके अवभृथमें वा अग्निष्टोमके अंतर्गत अन्ययज्ञमें स्नानसे शुद्ध होता है। यह अवभृथस्नान उस ब्रह्महाके व्रत समाप्तिकी अवधि कही है; जिसने द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तका प्रारंभ कररक्खाहो और यथा कथंचित् जो ब्राह्मणोंके प्राणोंकी रक्षा कर रहाहो। जैसे— सारस्वत सत्रमें पिलखनका प्रस्रवण (स्रुवा) प्राणोंकी रक्षा, एक बैल, सौ गौ, सहस्र गौओंके न होनेपर दे। वा गृहपति (स्वामी) के मरनेमें सर्वस्वको दे, यहां कुछ स्वतंत्र दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। सोई शंखने कहा है कि बारह वर्षमें शुद्धिको प्राप्त होता है वा ब्राह्मण बारह गौओंके प्राणोंकी रक्षा करनेसे बीचमें ही और अश्वमेधके अवभृथस्नानसे शीघ्रही शुद्ध होता है। इसीसे मनु (अ० ११ श्लो० ७८।७९।८१) ने बारह वर्षके प्रायश्चित्तकी गुणविधि प्रकरणमें ब्राह्मणकी रक्षा आदिको कहकर बारह वर्षके प्रायश्चित्तकाही उपसंहार (समाप्ति) किया है कि मुंडन कराकर वनमें बसै। ब्राह्मण और गौके लिये शीघ्र प्राणोंको त्यागै वा गौ ब्राह्मणकी रक्षा करै तो शीघ्र ब्रह्महत्यासे छूटता है। इस प्रकार सदैव दृढ है व्रत जिसका ऐसा ब्रह्मचारी बारह वर्षकी समाप्तिपर ब्रह्महत्याको नष्ट करता है। कदाचित् कोई शंका करै कि ब्रह्महत्यासे शुद्धिको प्राप्त होता है यह फल ब्राह्मणकी रक्षा और बारह वर्षके प्रायश्चित्तका एकही है। इससे दोनोंकी स्वतंत्रता युक्त है अंग नहीं, और प्रधानका विरोधी होनेसेभी अंग नहीं कह सक्ते, क्योंकि प्रधानका अनुग्राहक अंग होता है, और यह प्रारंभ किये हुए बारह वर्षके प्रायश्चित्तका विधान नहीं, जिससे उसके कार्यमें विधान जाना जाय। जैसे सत्र (समाज) को अवगुरण (नष्ट) करके विश्वजित् यज्ञ करै इस वाक्यमें सत्रके प्रयोगमें प्रवृत्त हुए उस मनुष्यको जो सत्रकी समाप्ति करनेमें असमर्थ है विश्वजित्का विधान है। इससे अग्निप्रवेश लक्ष्यभाव आदिके समान स्वतंत्रताही युक्त है। कदाचित् शंका करो कि वेभी बारह वर्षके प्रायश्चित्त और उपसंहारके मध्यमें पढे हैं इससे उसके अंग हैं सो ठीक नहीं। जिससे मध्यमें

---

१ शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे। स्वमेनोवभृथे स्नात्वा हयमेधे विमुच्यते ॥

२ अश्वमेधावभृथं गत्वा तत्रानुज्ञातः स्नातः सद्यः पूतो भवति।

३ अश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेप्यग्निष्टुदन्तश्च।

४ द्वादशे वर्षे शुद्धिं प्राप्नोत्यंतरा वा ब्राह्मणं मोचयित्वा गवां वा द्वादशानां परित्राणात्सद्य एवाश्वमेधावभृथस्नानाद्वा पूतो भवति।

१ कृतवापनो वा निवसेत्। ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः। समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

२ सत्रायावगुर्य विश्वजिता यजेत।

पाठ होनेपरभी प्रयोजनका ज्ञान होनेसे प्रयोजनकी आकांक्षाका अभाव है, इससे परस्पर अंगांगिभाव युक्त नहीं। जैसे सामिधेनी प्रकरणके मध्यमें वर्तमान जो अग्निके ज्ञाता हैं उनको अग्निके भली प्रकार ज्वलनके प्रकाश होनेसे और सामधेनीके साथ एक कार्यके कारक होनेसे सामधेनीके अंग नहीं। और अग्निप्रवेश आदि निश्चयसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके मध्यमें पढेभी नहीं। क्योंकि वसिष्ठ गौतम आदिकोंने ये सब बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे पूर्वही पढे हैं। यही स्वातंत्र्य प्रकट करनेको मनुने वाक्य २ में वा शब्द पढा है (अ० ११ श्लो० ७३) कि वा शस्त्रधारीका लक्ष्य होय वा अपने देहको अग्निमें डाल दे। तैसेही मनु (अ० ११ श्लो० ८६) ने प्रायश्चित्तकाही उपसंहार किया है कि इनमें कोईसी विधिमें टिककर सावधान हुआ विप्र ब्रह्मज्ञानी होकर ब्रह्महत्याके पापको दूर करता है। इसीसे अग्निप्रवेश आदिकी स्वतन्त्रताही युक्त है। इससे ब्राह्मणकी रक्षा आदिके अंग होनेसे एक फल नहीं इस शंकाका समाधान करते हैं कि इसका परिहार यह है ब्राह्मणको मृत्युसे छुटाकर बीचमेंही छूटता है इत्यादि पूर्वोक्त शंखवचनसे अंगता प्रतीत होती है। विद्यमान अंगकोही प्रधानके द्वारा फलका संबंध होता है। कदाचित् कहो प्रधानका विरोध है सोभी नहीं जिससे ब्राह्मणकी रक्षापर्यंत व्रतका करना फलका साधन विधान किया है, इससे विरोध नहीं ॥

भावार्थ-ब्राह्मण और बारह गौओंको रक्षा और अश्वमेधके अवभृथ स्नानसे ब्रह्महत्यारा शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४४ ॥

१ लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्यात्प्रास्येदात्मानमग्नौ वा।
२ अतोन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः। ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥

दीर्घतीव्रामयग्रस्तंब्राह्मणंगामथापिवा ॥
दृष्ट्वापथिनिरातंकंकृत्वातुब्रह्महाशुचिः२४५॥

पद-दीर्घतीव्रामयग्रस्तम् २ ब्राह्मणम् २ गाम् २ अथऽ-अपिऽ-वाऽ-दृष्ट्वाऽ-पथि ७ निरातंकम् २ कृत्वाऽ-तुऽ-ब्रह्महा १ शुचिः १ ॥

योजना-दीर्घतीव्रामयग्रस्तं ब्राह्मणम् अथ गां दृष्ट्वा तु पुनः पथि निरातंकं कृत्वा ब्रह्महा-शुचिः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-दीर्घ अर्थात् बहुत दिनतक देहमें व्यापक और दुःसह जो कुष्ठ आदि व्याधि उससे ग्रस्त (पीडित) वा उसी प्रकारकी गौको मार्गमें देखकर और उसके रोगको दूर करके ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है। कदाचित् शंका करो कि ब्राह्मणकी रक्षासे शुद्ध होता है यहां कही हुई ब्राह्मणकी रक्षाको यहां फिर क्यों कहते हैं कि ब्राह्मण और गौकी रक्षासे शुद्ध होता है, यह बात सत्य है पिछले वचनमें अपने प्राणोंके त्यागसे ब्राह्मणकी रक्षा कही और अब औषध आदिसे कही यह विशेष है। इसी अभिप्रायसे मनु (अ० ११ श्लो० ८०) ने कहा है कि ब्राह्मण वा ब्राह्मणके निमित्त प्राणोंकी रक्षासे शुद्ध होता है ॥

भावार्थ-दीर्घ और महाकठिन रोगसे ग्रसे हुए ब्राह्मण और गौको देखकर उनको अच्छा करके ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है ॥ २४५ ॥

आनीयविप्रसर्वस्वंहृतंघातितएववा।
तन्निमित्तंक्षतःशस्त्रैर्जीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥

पद-आनीयऽ-विप्रसर्वस्वम् २ हृतम् २ घातितः १ एवऽ-वाऽ-तन्निमित्तम् २ क्षतः १ शस्त्रैः ३ जीवन् १ अपिऽ-विशुध्यति क्रि- ॥

योजना-हृतं विप्रसर्वस्वम् आनीय चोरैः

१ विप्रस्य सतन्निमित्ते या प्राणालाभे विमुच्यते।

घातितः वा तन्निमित्तं शस्त्रैः क्षतः पुरुषः जीवन् अपि विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ–सर्वस्वकी चोरीसे दुःखी हुए ब्राह्मणके भू सुवर्ण आदि चुराये हुए संपूर्ण द्रव्यको लाकर जो रक्षा करता है वह शुद्ध होता है । अथवा धनके लानेमें प्रवृत्त हुआ चौरोंने मार दिया हो वा ब्राह्मणोंके सर्वस्व लानेके लिये चोरोंसे युद्ध करता हुआ अस्त्रोंसे क्षत (मृतककी तुल्य) होजाय तो जीता हुआभी शुद्ध होता है । यहां शस्त्रैः यह बहुवचन बहुत क्षत (घाव) की प्राप्तिके लिये है इसीसे मनुने (अ० ११ श्लो० ८०) तीन वार पद ग्रहण किया है कि तीनवार रोकनेवाला वा सर्वस्वको जीतकर शुद्ध होता है । इन दो श्लोकोंमें जो ये पांच कल्प कहे हैं वे ब्राह्मणकी रक्षा रूप हैं । इससे ब्राह्मणको छुटाकर बीचमें ही शुद्ध होता है इस शंखवचनके संग कोडीकरण (मेल) होनेसे बारह वर्षकी अवधिमें विनियोग होनेसे स्वतंत्रता नहीं है ॥

भावार्थ–चुराये हुए ब्राह्मणके सर्व धनको लाकर वा लौटानेके समय चौरोंके सकाशसे मरनेसे, वा धनके लौटानेके निमित्त शस्त्रोंके अनेक घाव होनेसे बारह वर्षके मध्यमेंभी पवित्र होता है ॥ २४६ ॥

लोमभ्यःस्वाहेत्येवंहिलोमप्रभृतिवैतनुम् ।
मज्जांतांजुहुयाद्वापिमन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥

पद–लोमभ्यः ४ स्वाहाऽ–इतिऽ–एवम्ऽ–हिऽ–लोमप्रभृतिऽ–वैऽ–तनुम् २ मज्जांताम् २ जुहुयात् क्रि–वाऽ–अपिऽ–मंत्रैः ३ एभिः ३ यथाक्रमम्ऽ–॥

योजना–लोमभ्यः स्वाहा इत्येवं लोमप्रभृति मज्जांतां तनुम् एभिः मंत्रैः यथाक्रमं जुहुयात् ॥

तात्पर्यार्थ–लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे लोमोंसे लेकर मज्जापर्यंत अपने देहका होम करै । इस वचनमें इति शब्द करणत्व दिखानेके लिये है और एवं शब्द प्रकारके सूचनार्थ है और हि शब्द अन्य स्मृतियोंमें प्रसिद्ध त्वचा आदिका जो प्रभृति शब्दसे लिये हैं उनके द्योतन (जताना) के लिये है । फिर वे लोम आदि होमके द्रव्य चतुर्थी विभक्तिसे दिखाये हैं, स्वाहाको अंतमें पढकर उन मंत्रोंसे होम करै और वे होम करनेके द्रव्य जो लोम त्वचा लोहित मांस मेदा स्नायु अस्थि मज्जा आठ हैं इससे आठही मंत्र होते हैं । सोई वसिष्ठने कहा है कि ब्रह्महा वा भ्रूणहा अग्निका स्थापन करके होम करै कि लोमोंके संग मृत्युके निमित्त होमता हूं और लोमोंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह प्रथम आहुति है १, त्वचाको मृत्युके लिये होमताहूं त्वचाके संग मृत्युको मिलाता हूं यह दूसरी २, लोहितको मृत्युके निमित्त होमताहूं लोहितके संग मृत्युको मिलाताहूं यह तीसरी ३, मांसको मृत्युके निमित्त होमताहूं मांसके संग मृत्युको मिलाताहूं यह चौथी ४, मेदाको मृत्युके निमित्त होमताहूं मेदाके संग मृत्युको

१ त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
२ अंतरा वा ब्राह्मणं मोचयित्वा ।

१ ब्रह्महाग्निमुपसमाधाय जुहुयाल्लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति प्रथमाम् १, त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयाम् २, लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयाम् ३, मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युं वासय इति चतुर्थीम् ४, मेदोमृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय इति पंचमीम् ५, स्नायूनि मृत्योर्जुहोमि स्नायुभिर्मृत्युं वासय इति षष्ठीम् ६, अस्थीनि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमीम् ७, मज्जां मृत्योर्जुहोमि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इत्यष्टमीम् ८ ।

मिलाताहूं यह पांचवीं ५, स्नायुओंको मृत्युके निमित्त होमताहूं स्नायुओंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह छठी ६, अस्थियोंको मृत्युके निमित्त होमताहूं अस्थियोंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह सातवीं ७, मज्जाको मृत्युके निमित्त होमताहूं मज्जाओंके संग मृत्युको मिलाताहूं यह आठवीं ८ आहुती है। यहां लोम आदि देहका होम करै यह कहनेसे लोम आदि हामक द्रव्य जाने गये। लोमभ्यः स्वाहा यह चतुर्थीका निर्देश होने परभी लोम आदिकोंको देवताओंकी कल्पना नहीं करते हैं क्योंकि द्रव्यके नाम लेनेसेही मंत्र होमके साधन हो सकते हैं। किंतु लोमभिर्मृत्युं वाशये इत्यादि वसिष्ठके मंत्रोंके देखनेसे मृत्युकोही हविःका संबंध प्रतीत होता है इससे मृत्युकोही देवताकी कल्पना करते हैं। इससे लोम आदिकोंको सामर्थ्यसे अपने खड्गसे काटकर मृत्युके निमित्त आठ आहुतियोंसे होम करके अंतमें देहको अग्निमें फेंकदे। इससे जो किसीने कहा है कि[1] जहां हविः नहीं कहा वहां होम घीकी हविसे होते हैं वह विना विचारे कहा इससे त्यागने योग्य है। जुहुयात् (होम करै) इससे अग्नि आजाता, भ्रूणहा अग्निका स्थापन करके यहां जो पुनः अग्निका ग्रहण है वह लौकिक अग्निकी प्राप्तिके लिये है और यह युक्तभी है, क्योंकि पतितोंकी अग्निकी प्रतिपत्ति (गति) कही है, क्योंकि उशनाकी स्मृति है कि जो आहिताग्नि ब्राह्मण[2] महापातकी हो जाय और प्रायश्चित्तोंसे शुद्ध न होय तो उसकी अग्नियोंकी क्या गति करै। बुद्धिमान् मनुष्य वैतानको जलमें फेंक दे और अग्निको शांत कर दे। तैसेही कात्यायनकी स्मृति है कि यदि दैवसे अग्निहोत्री[1] महापातकी हो जाय तो उसके पापोंके नाशतक युक्त होकर पुत्र आदि अग्नियोंकी रक्षा करै। जो प्रायश्चित्त न करै वा करता हुआ मर जाय तो गृह्याग्निको शांत करदे और सामग्री सहित श्रौताग्निको जलमें फेंकदे। और देहका अग्निमें फेंकना तो तीन वार उठ २ कर नीचेको मुखकरके करना सोई मनु (अ० ११ श्लो० ७३) ने कहा है[2] अथवा अपने देहको तीन वार नीचेको शिर किये जलती अग्निमें फेंकदे। गौतमने भी यहां विशेष दिखाया है[3] तीन वार भोजनके अभावसे कृश है देह जिसका ऐसे ब्रह्महाका अग्निमें गिरनाही प्रायश्चित्त है। सोई काठक श्रुति है कि भोजनके[4] त्यागसे कृश ब्रह्महा अग्निमें प्रवेश करै, यह मरणांत प्रायश्चित्त जानकर करनेके विषयमें है। सोई मध्यम अंगिराने कहा है कि बुद्धिमानोंने[5] जो प्राणांत प्रायश्चित्त कहा है वह जानकर करनेमें जानना इसमें संशय नहीं। तैसे ही जो मनुष्य किसी प्रकार जानकर महापाप करै उसकी शुद्धि पर्वतसे और अग्निमें पडनेके विना नहीं देखी। यह प्रायश्चित्त स्वतंत्र है। ब्राह्मणकी रक्षा आदिके समान बारह ब-

---

१ अनादिष्टद्रव्यत्वादाज्यहविष्का होमाः।

२ आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकभाग्भवेत् प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्येत तदग्नीनां तु का गतिः। वैतानं प्रक्षिपेत्तोये शालाग्निं शमयेद्बुधः॥

---

१ महापातकसंयुक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि। पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्तश्चादोषसंक्षयात्॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि। गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम्॥

२ प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः।

३ प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवस्थातस्य।

४ अनशनेन कर्शितोऽग्निमारोहेत्।

५ प्राणांतिकं च यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः। तत्कामकारविषयं विज्ञेयं नात्र संशयः॥ यः कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथंचन। न तस्य शुद्धिर्निर्दिष्टा भृग्वग्निपतनादृते॥

र्षके प्रायश्चित्तके अंतर्गत नहीं यह पहिले कह-आये ॥

भावार्थ–लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे लोम आदि मज्जा पर्यंत अपने देहको क्रमसे अग्निमें होम करै ॥ २४७ ॥

संग्राममेवाहतालक्ष्यभूतःशुद्धिमवाप्नुयात् ।
मृतकल्पःमहारार्तोजीवन्नपिविशुद्धयति ॥

पद–संग्रामे ७ वाऽ–हतः १ लक्ष्यभूतः १ शुद्धिम् २ अवाप्नुयात् क्रि–मृतकल्पः १ प्रहारार्तः १ जीवन् १ अपिऽ–विशुद्धयति क्रि ॥

योजना–वा संग्रामे शस्त्रभृतां लक्ष्यभूतः हतः सन् शुद्धिम् अवाप्नुयात् । प्रहारार्तः मृतकल्पः जीवन् अपि विशुद्धयति ॥

तात्पर्यार्थ–संग्राम (युद्धभूमि) में दोनों दलोंने प्रेरे हुए वाणोंके पडनेका लक्ष्य (निशाना) होकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है, अथवा बडी भारी वेदना (दुःख) मर्मके प्रहारसे जिससे ऐसा मृतकके तुल्य मूर्च्छित होकर जीवता हुआ शुद्धिको प्राप्त होता है, और लक्ष्य होनाभी मैं प्रायश्चित्ती हूं यह कहकर बुद्धिमान् धनुष विद्याके जाननेवालोंके संग्राममें अपनी इच्छासे करना राजा अपने बलसे लक्ष्य उसको न बनावे । सोई मनु (अ० ११ श्लो० १७) ने कहाहै कि वा अपनी इच्छासे बुद्धिमान् शस्त्रधारियोंका लक्ष्य हो जाय, यहभी मरणांतिक होनेसे साक्षात् महापापके कर्ताको जानकर करनेके विषयमें है, अपि शब्दके देनेसे अश्वमेध आदिसे भी शुद्ध होताहै । सोई मनु (अ० ११ श्लो० ७४) ने कहा है कि वा अश्वमेध स्वर्जित, गोसव, अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत्, अग्निष्टुत् इन यज्ञोंसे यजन (पूजन) करै । अश्वमेध यज्ञका करना सार्वभौम (चक्रवर्ती) क्षत्रियको है, क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि महीपति क्षत्रिय अश्वमेध यज्ञ करै और असार्वभौम उक्त यज्ञको न करै, इस वचनमें सार्वभौमसे भिन्नको अश्वमेध करनेका निषेधभी है, और सार्वभौमको अश्वमेधका करना जानकर करनेमें मरणांतिकके स्थानमें जानना, क्योंकि इस वचनसे यमने मरणकालमें अग्निप्रवेशके तुल्य महाक्रतु अश्वमेधको दिखायाहै कि महापातकके कर्ता चार जानकर अग्निमें प्रवेश करके वा महाक्रतुमें स्थित होकर शुद्ध होते हैं, और स्वर्जित आदि यज्ञोंका जिसने प्रथम यज्ञ किया और जो अग्निहोत्री हो, उस त्रैवर्णिक (द्विज) के लिये विकल्प हो दश वर्षके प्रायश्चित्त करै चाहै स्वर्जित आदि यज्ञ करै, और वह स्वर्जित आदिके लिये आधान वा प्रथम यज्ञको न करै क्योंकि पतितका द्विजातियोंके कर्मोंमें अधिकार नहीं है । कदाचित् कहो कि संध्योपासनके समान कुछ विरोध नहीं यह युक्त नहीं है क्योंकि आधान आदि उत्तर क्रतुके शेष नहीं हैं, वे आधान आदि दक्षिणाको न्यूनता वा अधिकताके आश्रयणसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके योग्य जो साक्षात् मारनेवाले हैं उनके लिये समझने योग्य हैं ॥

भावार्थ–अथवा संग्राममें शस्त्रधारियोंका लक्ष्य होकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है और शस्त्रोंके प्रहारोंसे दुःखी हुआ मृतकके समान मूर्च्छित होनेसे जीवता हुआभी शुद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २४८ ॥

---

१ लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ।

२ यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन च । अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ।

१ यजेत वाश्वमेधेन क्षत्रियस्तु महीपतिः ।

२ नासार्वभौमो यजेत ।

३ महापातककर्तारश्चत्वारो मतिपूर्वकम् । अग्निं प्रविश्य शुद्धयंति स्थित्वा वा महति क्रतौ ॥

अरण्येनियतोजप्त्वात्रिर्वैवेदस्यसंहिताम् । शुद्ध्येतवामिताशीत्वाप्रतिस्रोतःसरस्वतीम्

पद्-अरण्ये ७ नियतः १ जप्त्वाऽ-त्रिःऽ-वैऽ-वेदस्य ६ संहिताम् २ शुद्ध्येत क्रि-वाऽ-मिताशी १ इत्वाऽ-प्रतिस्रोतःऽ-सरस्वतीम् २॥

योजना-अरण्ये नियतः वेदस्य संहिताम् त्रिः जप्त्वा वा प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् मिताशी सन् इत्वा शुद्ध्येत ॥

तात्पर्यार्थ-अरण्य (निर्जन प्रदेश) में नियत भोजन करता हुआ तीन बार मन्त्र ब्राह्मण-वेदकी संहिताका पाठ करके ब्रह्महा शुद्ध होता है क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ७७) ने कहा है कि नियताहार होकर जपै, यहां संहिताका ग्रहण पद क्रमके निषेधार्थ है अथवा परिमित भोजन करता हुआ प्लाक्ष प्रस्रवण (झरना) से लेकर पश्चिमके समुद्रतक स्रोत स्रोतके प्रति सरस्वती नदीमें गमन करनेसे शुद्ध होता है और भोजनभी हविष्यका करै क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ७७) की स्मृति है कि हविष्यका भोजन करता हुआ प्रतिस्रोत सरस्वती नदीमें विचरे। यह वेदका जप मारनेवाले विद्वान्को और निर्धन अत्यंतगुणवान्को प्रमादसे निर्गुणके मारनेमें जानना और सरस्वतीका गमन तो पूर्वोक्त विषयमें विद्यासे रहितको समझना । निमित्तीके लिये तो यह सुमंतुके वचनसे दिखा आये हैं कि तिरस्कार करनेसे निर्गुण ब्राह्मण मरजाय तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै और जो मनु (अ० ११ श्लो० ७५) का वचन है कि अन्यतम वेदको जपकर सौ योजन गमन करै वहभी वनमें नियत होकर इस वचनमें उक्तके करनेमें जो असमर्थ है उसको करनेका बोधक है ॥

भावार्थ-वनमें प्रमित भोजन करता हुआ तीन वार वेदकी संहिताको जपकर वा परिमित भोजी सरस्वती नदीमें प्रतिस्रोत गमन करके ब्रह्महा शुद्ध होता है ॥ २४९ ॥

पात्रेधनंवापर्याप्तंदत्त्वाशुद्धिमवाप्नुयात् । आदातुश्चविशुद्ध्यर्थमिष्टिर्वैश्वानरीतथा ॥

पद्-पात्रे ७ धनम् २ वाऽ-पर्याप्तम् २ दत्त्वाऽ-शुद्धिम् २ अवाप्नुयात् क्रि-आदातुः ६ चऽ-विशुद्ध्यर्थम् २ इष्टिः १ वैश्वानरी १ तथाऽ- ॥

योजना-पात्रे पर्याप्तं धनं दत्त्वा शुद्धिम् अवाप्नुयात् च पुनः आदातुः विशुद्ध्यर्थं वैश्वानरी इष्टिः कथिता । प्रायश्चित्तं भवतीति शेषः।

तात्पर्यार्थ-विद्या और आचरणसे युक्त पूर्वोक्त लक्षणवाले सुपात्रको गौ भूमि सुवर्ण आदि जीविकाके लिये पूर्ण धन देकर ब्रह्महा शुद्धिको प्राप्त होताहै और जो उस धनका प्रतिग्रह लेता है वह वैश्वानर देवताके निमित्त यज्ञ करनेसे शुद्ध होता है । यहभी आहिताग्नि (अग्निहोत्री) के विषयमें समझना और अनाहिताग्निको उसी देवताके निमित्त चरु होताहै । आहिताग्निका जो धर्म है वही औपासन अग्निवालेका है वा शब्दके कहनेसे सर्वस्व वा सामग्रीसहित घरका दान करै । सोई मनु (अ० ११ श्लो० ७६) ने कहा है कि वेदके ज्ञाता ब्राह्मणको सब धन वा सामग्रीसहित घर दे और यह पात्रको धनका दान उसको है जो निर्गुण धनवान्ने निर्गुणको माराहो और ऐसेही विषयमें जिसके संग कुछ संबंध न हो उसको सर्वस्वका दान और जिसके संग संबंध हो उसको सामग्रीसहित घरका

---

१ जपेद्वा नियताहारः ।

२ हविष्यभुग्वानुचरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् ।

३ जपित्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ।

१ सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् । धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥

दान दे यह व्यवस्था है। जो पराशरने[1] कहा है कि चार विद्याओंसे युक्त ब्राह्मण विधिपूर्वक ब्रह्महत्यारेको समुद्रसेतुका गमन और प्रायश्चित्त बतावे। सेतुबंधके मार्गमें चार वर्णोंसे भिक्षाको मांगे और विकर्मियोंको वर्ज दे और छत्र उपानहको त्याग दे और यह कहै कि मैं निंदित कर्मा महापातकी भिक्षाके लिये द्वारपर खडा हूं। और गोकुल गोष्ठ ग्राम नगर तपोवन तीर्थ नदियोंके झरने इनमें अपने पापोंको प्रकट करै, फिर वह ब्रह्महा सागरमें जाकर और स्नान करके पातकसे छूटता है। फिर पवित्र हुआ घर आनकर ब्राह्मण भोजन और वस्त्रोंका दान और पवित्र मंत्रोंके जपसे पवित्र हुआ गृहमें प्रवेश करै। चार विद्यावाले ब्राह्मणको सौ गौ दक्षिणा दे ऐसे चातुर्विद्यकी अनुमतिसे शुद्धिको प्राप्त होता है। वहै पराशरका कथन भी पात्रको पर्याप्त धन देकर इसके ही विषयमें है और जो यह सुमन्तुका[2] वचन है कि ब्रह्महा वर्ष दिनतक कृच्छ्र करै, नीचे सोवै, तीन वार स्नान करै, और अपने कर्मको कहै भिक्षाका भोजन करै, दिव्य नदियोंके संगम, तट, आश्रम, गोष्ठ, पर्वत, झरने, तपोवन इनमें विचर, स्थानपर वीरासनसे बैठे, ऐसे वर्षदिनके पूर्ण होनेपर स्वर्ण, मणि, गौ, अन्न, तिल, भूमि, घी ब्राह्मणोंको देकर पवित्र होताहै। यह वचनभी मूर्ख धनवाले हन्ताको जानना। जो यह वसिष्ठका[1] वचन है कि बारह दिन जलका भक्षण और बारह दिन उपवास करै वहभी उसके लिये है जिसके मनमें ब्रह्महत्याका निश्चय हुआ हो और मारनेकी इच्छाकी निवृत्ति हो। और जो यह षड्त्रिंशत्का[2] वचन है कि नपुंसक ब्राह्मणको मारकर शूद्रहत्याका व्रत करै वा चांद्रायण वा दो पराक व्रत करै। वहभी उस नपुंसकके विषयमें जानना जिसका पुंस्त्व फिर न लौटसकै और जो जानकर मारा हो। और इसी विषयमें अज्ञानसे मारनेमें बृहस्पतिने[3] कहा है कि जगत्में विख्यात अरुणा और सरस्वतीके संगममें तीन काल स्नान और तीन कालके उपवाससे शुद्ध होता है। इसी प्रकार अन्यभी स्मृतियोंके वचनको ढूंढकर विषयकी व्यवस्था जाननी। और समान वचनोंका तो विकल्प समझना। और द्वादश वर्षके प्रायश्चित्तसे धन धान्य पर्यंत प्रायश्चित्त ब्राह्मणके लियेही है। क्षत्रिय आदिको तो द्विगुण आदिक है। सोई अंगिराने[4] कहा है कि जो ब्राह्मणोंका प्रायश्चित्त है वह क्षत्रियोंको दुगुना और वैश्योंको तिगुना और पर्षत्के समान

---

१ चातुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके। समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाहरेत्। वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानद्विवर्जितः ॥ अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः। गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥ गोकुलेषु च गोष्ठेषु ग्रामेषु नगरेषु च। तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥ एतेषु ख्यापयेदेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम्। ब्रह्महा विप्रमुच्येत स्नात्वा तस्मिन्महोदधौ ॥ ततः पूतो गृहं प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणभोजनम्। दत्त्वा वस्त्रं पवित्राणि पूतात्मा प्रविशेद्गृहम् ॥ गवां चापि शतं दद्याच्चातुर्विद्यस्य दक्षिणाम्। एवं शुद्धिमवाप्नोति चातुर्विद्यानुमोदितः ॥

२ ब्रह्महा संवत्सरं कृच्छ्रं चरेदधःशायी त्रिषवणी कर्मावेदको भैक्षाहारो दिव्यनदीपुलिनसंगमाश्रमगोष्ठपर्वतप्रस्रवणतपोवनविहारी स्यात्स्थानवीरासनी संवत्सरे पूर्णे हिरण्यमणिगोधान्यतिलभूमिसर्पींषि ब्राह्मणेभ्यो ददत्पूतो भवति।

१ द्वादशरात्रमब्भक्षो द्वादशरात्रमुपवसेत्।

२ षण्ढं तु ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत्। चांद्रायणं वा कुर्वीत पराकद्वयमेव च ॥

३ अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते। शुद्धेे त्रिषवणस्नायी त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ॥

४ पर्षद्या ब्राह्मणानां तु सा एषां द्विगुणा मता। वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्षद्वच्च व्रतं स्मृतम् ॥

व्रत कहाहै अर्थात् ब्राह्मणकी सभाके अनुसार व्रत करै। इससे मारने और मारनेवालेके गुण विशेषसे ब्राह्मणोंको जो प्रायश्चित्त कहाहै वही उस गुणसे युक्त क्षत्रियको दुगुना तिगुना जानना। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य आदिकोंमेंभी हीनसे उत्तमके वधसे दोषके गौरवसे प्रायश्चित्तकी द्विगुणता आदिकी कल्पना करनी और दोषका गौरव दण्डके गौरवसे जाना जाताहै। सोई कहा है कि प्रतिलोम अपवादोंमें दूना तिगुना दंड, और वर्णोंके अनुलोमसे उससे आधे २ की हानिसे दंड होताहै। और जो चतुर्विंशतिके वचन हैं कि जो बुद्धिमानोंने ब्राह्मणको प्रायश्चित्त कहा है उसका पादोन क्षत्रिय और आधा वैश्य और एक पाद शूद्र सब पापोंमें करै। वहभी प्रतिलोम वर्णोंके किये चार प्रकारके साहसोंसे भिन्न विषयोंके विषयमें है। तैसेही अनुलोमसे पैदा हुए मूर्द्धाभिषिक्तोंका प्रायश्चित्त कल्पना करने योग्य है और दण्डका न्यूनाधिक भाव वर्ण और जातिके ऊंच नीचसे दण्डका दान करै इस वचनसे कह आये हैं। तिससे मूर्द्धाभिषिक्तको ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणसे अधिक और क्षत्रियसे न्यून आधा अधिक बारह (१८) वर्षका प्रायश्चित्त होताहै। इसी रीतिसे प्रतिलोमसे पैदा हुओंके प्रायश्चित्तके गौरवकी कल्पना करनी। तैसेही आश्रमियोंका अंगिराने विशेष दिखायाहै कि, यदि आश्रमवाले गृहस्थोंको उक्त पापोंको करैं तो ब्रह्मज्ञानसे पहिले शौचके समान प्रायश्चित्तको करै। जैसे गृहस्थियोंके शौचसे दूना ब्रह्मचारियोंको, तिगुना वानप्रस्थोंको और चौगुना संन्यासियोंको, इस वचनसे दुगुने आदि क्रमसे शौचकी वृद्धि होती है इसी प्रकार प्रायश्चित्तकी वृद्धि होती है। ब्रह्मचारीको तो दुगुना प्रायश्चित्त सोलह वर्षसे पूर्व २ समझना। क्योंकि सोलह वर्षसे न्यून बालकको आधा प्रायश्चित्त इस वचनसे कह आये हैं। कदाचित् शंका करो कि बारह वर्षके प्रायश्चित्तको चौगुना होनेपर मध्यमें विपत्तिकी शंकासे समाप्ति न होगी और इसमें किसीको प्रवृत्ति ही न होगी सो ठीक नहीं। क्योंकि प्रायश्चित्तके प्रारंभ कर्ताको मध्यमें भी पापका नाश होताही है। सोई हारीतने कहा है कि प्रायश्चित्तके निश्चयपर जिस दिन कर्ता मरजाय उसी दिन इस लोक और परलोकमें पवित्र होताहै। व्यासने भी कहाहै कि धर्मके लिये यत्न करता हुआ मनुष्य यदि न कर सकै तो वह उसके पुण्यको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥

भावार्थ-सुपात्रको पूर्ण धन देकर पातकी शुद्धिको प्राप्त होता है और धनके लेनेवाला शुद्धिके लिये वैश्वानरी यज्ञ करै ॥ २९० ॥

यागस्थक्षत्रविड्घातीचरेद्ब्रह्महणिव्रतम् ।
गर्भहाचयथावर्णतथात्रेयीनिषूदकः २९१॥

पद-यागस्थक्षत्रविड्घाती १ चरेत् क्रि- ब्रह्महणि ७ व्रतम् २ गर्भहा १ चऽ-यथाऽ- वर्णम् २ तथाऽ-आत्रेयीनिषूदकः १ ॥

योजना-यागस्थक्षत्रविड्घाती ब्रह्महणि

१ प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणात्रिगुणो दमः। वर्णानामानुलोम्ये तु तस्मादर्द्धार्द्धहानितः ॥

२ प्रायश्चित्तं यदाम्नातं ब्राह्मणस्य महर्षिभिः। पादोनं क्षत्रियः कुर्यादर्द्धं वैश्यः समाचरेत् ॥ शूद्रः समाचरेत्पादमशेषेष्वपि पाप्मसु ॥

३ गृहस्थोक्तानि पापानि कुर्वन्त्याश्रमिणो यदि। शौचवच्छोधनं कुर्युर्वाग् ब्रह्मनिदर्शनात् ॥

१ एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्। त्रिगुणं वानप्रस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

२ प्रायश्चित्ते व्यवसिते कर्ता यदि विपद्यते। पूतस्तदहरेवासाविह लोके परत्र च ॥

३ धर्मार्थं यतमानस्तु न चेच्छक्नोति मानवः। प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र वै नास्ति संशयः ॥

व्रतं चरेत् च पुनः गर्भहा तथा आत्रेयीनिषूदकः यथावर्णं व्रतं चरेत् ॥

तात्पार्यार्थ–दीक्षणीय और उदवसानीय पर्यंत सोमयाग करनेमें वर्तमान क्षत्रिय वैश्यको जो मारे वह उस व्रतको करे जो ब्रह्महा पुरुषको बारह वर्षका कहा है। यद्यपि याग शब्द सामान्य यागका वाची है, तथापि यहां सोम यागको कहता है। क्योंकि सवनमें गत क्षत्रिय वैश्यको मारे इस वचनमें वासिष्ठने तीन सवनोंसे उत्पन्न सोमयागकोही दिखाया है। यहां गुरु और लघु जो द्वादश वर्ष आदि ब्रह्महत्याके व्रत हैं उनकी व्यवस्था जाति और गुरु आदिकी अपेक्षासे पूर्वके समान जाननी, इसी प्रकार गर्भवध आदिमेंभी समझना। मरणांतिक प्रायश्चित्तका तो उपदेश व्रतके ग्रहणसे नहीं है। इससे जानकर यज्ञ आदिमें स्थित क्षत्रिय आदिके वधमें दूना व्रत होता है, और यह व्रत संपूर्णही करना। पहिले दोनों वर्णोंमें वेदपाठीको मारकर इस प्रकरणमें बारह वर्षकाही व्रत कहा है। और विनाही स्त्रियोंके गर्भको हतकर वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करे अर्थात् जिस वर्णके पुरुषके वधमें जो प्रायाश्चित्त कहा है उस वर्णकेही गर्भवधमें वही प्रायाश्चित्त करे। यहभी उस गर्भमें है जिसके स्त्री पुरुष नपुंसकके चिह्न प्रतीत न हुए हों। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ८७) ने अविज्ञात गर्भको हतकर यह विशेष दिखाया है कि, यहां यद्यपि ब्राह्मणका गर्भ ब्राह्मणही होगा, इससे ब्राह्मणके वधनिमित्त वधकीही प्राप्ति है तथापि गर्भमें स्त्रीभी हो सक्ती है और स्त्री, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय इनका वध उपपातक होता है, इससेभी उसकी प्राप्ति हो जायगी। इससे स्त्री, पुरुष, नपुंसकरूपसे विना जानेमें ब्राह्मणके गर्भमात्रसे पाये ब्रह्महत्याके व्रतको करे, इससे यह उपदेशका वचन सार्थक है और स्त्री पुरुष आदिके चिह्न प्रगट होनेपर ही यथायोग्य प्रायाश्चित्त होता है, और जो आत्रेयी (रजस्वला) का वध करे तो वहभी आत्रेयीके वर्णानुकूल प्रायाश्चित्तव्रत करे, और रजस्वला ऋतुस्नाताको आत्रेयी कहते हैं। क्योंकि अत्रएतत् अपत्यं भवति (इसमें यह संतान होती है) यह वसिष्ठकी स्मृति है कि और अत्रिगोत्रकी स्त्रीकोभी आत्रेयी कहते हैं, क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि अथवा अत्रिगोत्रा नारीको हतकर पूर्वोक्त व्रतको करे यहां यह युक्त समझो कि ब्राह्मणके गर्भ वा ब्राह्मण आत्रेयीके वधमें ब्रह्महत्याका व्रत क्षत्रिया आत्रेयीके वधमें क्षत्रियहत्याका व्रत करे, इसी प्रकार अन्यत्रभी समझना। चकारसे साक्षीमें झूठ बोलनेमेंभी यही व्रत समझना। सोई मनु (अ० ११ श्लो० ८८) ने कहा है कि झूठी साक्षी कहकर और गुरुके प्रति क्रोध होकर और निक्षेपको चुराकर स्त्री और मित्रको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करे। यहभी वहां समझना जिस वचनमें झूठ बोलनेसे प्राणियोंका वध हो। क्योंकि प्रायाश्चित्त अत्यन्त गुरु है। यहां निक्षेप ब्राह्मणका लेना और स्त्रीभी आहिताग्निकी भार्या वह लेनी जो पतिव्रता हो और अथवा जो यज्ञमें स्थित हो सोई अंगिरा और पराशरका वचन है कि, आहिताग्नि ब्राह्मणकी पतिव्रता

१ सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ।

२ हत्वा गर्भमविज्ञातम्।

१ अत्रिगोत्रां वा नारीम्।

२ उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरभ्य गुरुं तथा। अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम्॥

३ आहिताग्नेर्द्विजाग्र्यस्य हत्वा पत्नीमनिन्दिताम्। ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यादात्रेयीघ्नस्तथैव च॥ सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्॥

पत्नीको और आत्रेयीको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करै । सवनमें स्थित स्त्रीको मारकर ब्रह्महत्याका व्रत करै इससे सवनमें स्थित अग्निहोत्रिणी आत्रेयी इनके वधमें ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्त कहनेसे इनसे भिन्न स्त्रियोंके वधका "स्त्री शूद्र-विट्-क्षत्र-वधो इन उपपातकोंके मध्यमें पाठ होनेसे उपपातकका प्रायश्चित्त है । कदाचित् कोई शंका करै कि ब्राह्मणो न हन्तव्यः अर्थात् ब्राह्मणको न मारै इस वचनमें लिंग और वचन नहीं पढे और ब्राह्मणको जाति स्त्री पुरुष दोनोंमें है, उन दोनोंके अपराधके निमित्त प्रायश्चित्त ब्रह्महा द्वादशाब्दानि अर्थात् ब्रह्महा ब्यारह वर्षके व्रतसे शुद्ध होता है । यह वचन दोनोंमें प्राप्त है तो किस लिये तथात्रेयीनिषूदकः यह अतिदेशका वचन किया । इसका समाधान कहते हैं कि आत्रेयी ब्राह्मणी रहो तोभी अनात्रेयीके वधमें जो महापातकका प्रायश्चित्त है उसकाही अतिदेश (विधान) है, पातित्य (पतितपना) का नहीं । इससे पतितका त्याग आदि जो कार्य है वह यहां नहीं होता ॥

भावार्थ-यज्ञमें स्थित क्षत्रिय वैश्यका घाती ब्रह्महत्याके व्रतको करै । गर्भ और आत्रेयीका घाती वर्णके अनुसार प्रायश्चित्तको करै ॥ २९१ ॥

चरेद्व्रतमहत्वापिघातार्थंचेत्समागतः ।
द्विगुणंसवनस्थेतुब्राह्मणेव्रतमादिशेत्२९२॥

पद-चरेत् क्रि-व्रतम् २ अहत्वाऽ-अपिऽ-घातार्थम् २ चेत्ऽ-समागतः १ द्विगुणम् २ सवनस्थे ७ तुऽ-ब्राह्मणे ७ व्रतम् २ आदिशेत् क्रि- ॥

योजना-चेत् यदि घातार्थं समागतः तर्हि अहत्वा अपि व्रतं चरेत् । सवनस्थे ब्राह्मणे सति द्विगुणं व्रतम् आदिशेत् ॥

तात्पर्यार्थ-इसमेंभी यथावर्णका संबंध है । ब्राह्मण आदिके मारनेमें निश्चय करके मारनेके लिये आया मनुष्य और शस्त्र आदिके प्रहार करनेपरभी किसी प्रकार प्रतिघात आदिके प्रतिबंधवश वह ब्राह्मण न मरा होय तो भी वर्णके अनुसार ब्रह्महत्या आदि व्रतको करै । सोई गौतमने कहा है कि ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त विना मारेभी प्रायश्चित्त करै । कदाचित् कोई शंका करै कि, मारने और उसके अभावमें एक प्रायश्चित्त युक्त नहीं । यह बात सत्य है इसीसे औपदेशिकों (प्रधान) से न्यून होनेसे अतिदेशिकों (जो तुल्य मानेहों) में पादोनही ब्रह्महत्यादि द्वादश वार्षिक व्रत होते हैं । इसका विस्तार पहिले कह आये, और जो सवनसे होनेवाले सोमयाग करते हुए ब्राह्मणको नष्ट करै उसको द्वादशवार्षिक आदित दूना उपदेश करै । और उन गुरु लघु व्रतोंकी जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे सवनमें स्थित आदि विशेषक एकरूप होनेपर भी पूर्वके समान ही व्यवस्था जाननी । ब्रह्महत्याके समान जो गुरुकी निंदा आदि हैं उनको आतिदेशिकोंसे भी न्यून होनेसे आधा न्यून द्वादशवार्षिक आदि प्रायश्चित है यह कह आये हैं ॥

भावार्थ-मारनेके लिये आया हुआ मनुष्य विना मारे भी पूर्वोक्त व्रतको करै और सवनमें स्थित ब्राह्मणके मारनेमें दूने व्रतका उपदेश करै ॥ २९२ ॥ इति ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसंनिभम् ।
सुरापोन्यतमंपीत्वामरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥

पद-सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसाम् ६ अग्नि-

---

१ दृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधेऽहत्वापि ।

सन्निभम् २ सुरापः १ अन्यतमम् २ पीत्वाऽ-
मरणात् ५ शुद्धिम् २ ऋच्छाते क्रि- ॥

योजना–सुरापः सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसाम् अन्यतमम् अग्निसंनिभं पीत्वा मरणात् शुद्धिम् ऋच्छति (प्राप्नोति) ॥

तात्पर्यार्थ–अब क्रमसे प्राप्त सुरापानके प्रायश्चित्तका प्रारंभ करते हैं। सुरा, जल, घी, गोमूत्र, दूध इनमें अन्यतम (कोईसा) अग्निके तुल्य दाह करनेवालेको पीकर सुरा पीनेवाला मरकर शुद्धिको प्राप्त होता है। यहां गोमूत्रके साहचर्यसे गौकेही घी दूध लेने और घी दूधके साहचर्यसे स्त्रीलिंग गौकाही गोमूत्र लेना बैलका नहीं। और यह गोमूत्रका पानभी गीले वस्त्रको पहनकर करना। क्योंकि पैठीनेसिकी स्मृति है कि गीले वस्त्र पहनकर सुरा पीनेवाला अग्निवर्ण सुराको पीवै। तैसेही लोहेके पात्रमें पीवै। क्योंकि प्रचेताकी स्मृति है कि सुरा पीनेवाला लोहे वा तांबेके पात्रसे अग्निवर्ण सुराको पीवै। यह प्रायश्चित्तभी एकवार यदि-राके पानमें है क्योंकि अंगिराकी स्मृति है कि एकवार सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवै। जो यह वसिष्ठका वचन है कि सुराके अभ्यासमें द्विज अग्निवर्ण सुराको पीवै वह सुरासे भिन्न मद्यपानके विषयमें समझना। यहभी जानकर सुरापानके विषयमें समझना। क्योंकि बृहस्पतिका वचन है कि जानकर किये सुरापानमें जलती हुई सुराको मुखमें गेरकर उससे मुख जलकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है। जो द्विज मोहसे सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवै यह मनु (अ० ११ श्लो० ९०) ने मोहका ग्रहण किया है, वह शास्त्रके तात्पर्यको न जानकर है। यहां यह चिंता (विचार) करने योग्य है कि क्या सुराशब्द मद्यमात्रमें रूढ है वा गौडी माध्वी पैष्टी इन तीनोंमें अथवा केवल पैष्टीमें। उसमें कोई मद्यमात्रमें रूढ वर्णन करते हैं। क्योंकि सुराके अभ्यासमें इस पूर्वोक्त वसिष्ठके वचनमें पैष्टी आदि तीनोंसे भिन्नमेंभी सुराशब्दका प्रयोग देखते हैं। कदाचित् कहो यह गौण उपयोग है सो ठीक नहीं, क्योंकि मदके पैदा करनेवाली शक्तिरूप उपाधि होनेसे सबको मुख्यता होसक्ती है, इससे गौणकी कल्पना अन्याय्य है, यह अयुक्त है अर्थात् किसीका कहना ठीक नहीं। क्योंकि पुलस्त्यने सुराको इन वचनोंसे मद्य विशेष कहा है कि पानस, द्राक्ष, माधूक, खार्जूर, ताल, ऐक्षव, मधूत्थ, सैर, आरिष्ट, मैरेय, नालिकेरज इन ग्यारह मदिराओंको समान जाने और बारहवीं जो सुरा मद्य है वह सबसे अधम कही है। इससे मद्यमात्रमें सुराशब्दका प्रयोग गौण है और अन्य तो पैष्टी आदि तीनोंमें सुराशब्दको रूढ मानते हैं। सोई दिखाते हैं कि यद्यपि अनेकोंमें सुराशब्दका प्रयोग देखते हैं तथापि किसमें अनादि प्रयोग है यह संदेह होनेपर गौडी माध्वी पैष्टी तीन प्रकारकी सुरा जाननी, इस वचनसे गुड पिष्ट मधुके विका-

१ सुराप आर्द्रवासाश्च अग्निवर्णां सुरां पिवेत्।

२. तथा लैहेन पात्रेण सुरापोऽग्निवर्णां सुरामायसेन पात्रेण ताम्रेण वा पिवेत्।

३ सुरापानं सकृत्कृत्वाप्यग्निवर्णां सुरां पिवेत्।

४ अभ्यासे तु सुरायाश्च त्वग्निवर्णां सुरां पिवेत्। द्विजः।

५ सुरापाने कामकृते ज्वलन्तीं तां विनिक्षिपेत्। मुखे तया विनिर्दग्धे मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥

१ सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिवेत्।

२ पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम्। मधूत्थं सैरमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम् ॥ समानानि विजानीयान्मद्यान्येकादशैव तु। द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥

३ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।

रोंमेंही अनादि प्रयोगका निश्चय मनुने कहा है, इससे उन्हींमें मुख्यता युक्त है। कदाचित् कहो कि अनेकोंमें शक्तिकी कल्पना करनीही दोष है, सो ठीक नहीं, क्योंकि उसका परिहार मद शक्तिको उपाधि मानकर होसक्ता है। कदाचित् कहो कि उपाधि ताल आदिके रसमेंभी विद्यमान है इससे दोष होगा। पंकज आदिके समान योगरूढ मानकर कुछ दोष नहीं जैसे पंकसे पैदा बहुत होते हैं परंतु पंकज शब्द कमलमें रूढ है। इससे जैसी एक तैसी सब है इससे द्विजोत्तमोंके पीने योग्य नहीं, यह वचन तीनों सुराओंके समान दोषके कहनेका बोधक नहीं, कुछ गौडी माध्वी सुराओंको पैष्टी सुराके समानता बोधक करनेके लिये नहीं, द्विजोत्तमका ग्रहण द्विजातिके ग्रहणका उपलक्षण है, यह अन्योंका कथनभी अयुक्त है। क्योंकि बारहवीं सुरारूप मद्य सबसे अधम है इस पूर्वोक्त पुलस्त्यके वचनमें गौडी और माध्वीसे भिन्नभी सुरा रूप मद्य दिखाई है। तैसेही सुरा अन्नोंका मल है और पापको मल कहते हैं। इस मनुके वचन (अ० ११ श्लो० ९३) में अन्नके विकरोंमेंभी सुरा दिखाई है और अन्नशब्दका प्रयोगभी ब्रीहि आदि विकारमेंही देखते हैं, और गुड और मधुरस रूप है। तैसेही सौत्रामणीग्रहमें अन्नके विकारमेंही सुरा शब्दके ग्रहणको सुनते हैं, तिससे पैष्टीही सुरा मुख्य कही है, गौडी और माध्वीमें तो सुराशब्द गौण है। जो किसीने कहा है कि गौडी माध्वी इस पूर्वोक्त मनुवचनसे तीनोंमें ही स्वाभाविक मनुवचनका निश्चय है सोभी युक्त नहीं, जिससे यह मनुका वचन व्याकरणके समान शब्द और अर्थके संबंधका बोधक नहीं किन्तु कार्यका बोधक है। इससे गुरु प्रायाश्चित्तका निमित्त होनेसे गौडी और माध्वीमें सुरा शब्द गौण है। इससे अनेक शक्तिकी कल्पनारूप दोष नहीं, और उपाधिरूपका आश्रयणभी नहीं। और न यहां द्विजोत्तम ग्रहण द्विजातिका उपलक्षण है। इससे सुरा अन्नोंका मल है, पापको मल कहते हैं, इस पूर्वोक्त मनुके कहनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सुराको न पीवै। इस वचनसे पैष्टीकाही तीनों वर्णोंको निषेध है। गौडी, माध्वी मदिराका निषेध तो ब्राह्मणको है, क्षत्रिय वैश्यको नहीं। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ९९) के इस वचनमें ब्राह्मणेन यह विशेष पद पढा है कि यक्ष राक्षस पिशाचोंका अन्न जो मद्य मांस सुरासव है उनको देवताके हविका भोजी ब्राह्मण न खाय। वृहद्विष्णुने भी ब्राह्मणकोही मद्यका निषेध दिखायाहै कि माधूक, ऐक्षव, सैर, ताल, खार्जूर, पानस, मधूत्थ, माध्वीक, मैरेय, नालिकेरज ये दशों मद्य ब्राह्मणके लिये अपवित्र हैं। बृहद्याज्ञवल्क्यने भी क्षत्रिय और वैश्यको दोषका अभाव दिखाया है कि क्षत्रिय, वैश्य, कथंचित् जानकरभी मदिराको पीकर दोषको प्राप्त नहीं होते। व्यासनेभी क्षत्रिय, वैश्यको माध्वीके पानकी आज्ञा दी है। कि केशव और अर्जुन दोनों मैंने मध्वासवसे उन्मत्त चंदनसे चर्चित एक शय्यापर बैठे देखे इस प्र-

१ सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।

१ यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्। तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः॥

२ माधूकमैक्षवं सैरं तालं खार्जूरपानसम्। मधूत्थं चैव माध्वीकं मैरेयं नालिकेरजम्॥ अमेध्यानि दशैतानि मद्यानि ब्राह्मणस्य तु॥

३ कामादपि हि राजन्यो वैश्यो वापि कथंचन। मद्यमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्रतिपद्यते।

४ उभौ मध्वासवक्षीबौ उभौ चन्दनचर्चितौ। एकपर्यंकरथिनौ दृष्टौ मे केशवार्जुनौ॥

कार ब्राह्मणकी ही मद्यमात्रका निषेध होनेपरभी मनु (अ० ११ श्लो० ९४) ने गौडी माध्वी पैष्टी जैसे एक तैसी सब इससे जो द्विजातियोंको न पीनी, गौडी और माध्वीका पृथक् २ निषेध कहाहै वह दोषको गुरु होनेसे सुराकी समानताका प्रतिपादक है। और यह सुराका निषेध अनुपनीत बालक और विना विवाही कन्याकोभी है। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ९३) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये मदिराको न पीवें इस वचनसे जातिमात्रकोही निषेध कहा है, इससे द्विज मोहसे सुराको पीकर अग्निवर्ण सुराको पीवे, इस प्रायश्चित्तके वाक्यमें जो मनुने द्विज ग्रहण कियाहै वह तीनों वर्णोंके उपलक्षणार्थ है। क्योंकि कार्यको विधानीनिमित्त जो निषेध उसकी अपेक्षा करता है और निषेधमें वर्णमात्र (सब वर्ण) का ग्रहण है, जैसे जिसके निमित्त हवि दिया है वह चंद्रमा सन्मुख उदय होताहै। इसे निमित्त वाक्यमें संपूर्ण हवि अभ्युदयका निमित्त जानी गयी उसके सापेक्ष जो तीन वार तंडुलोंका विभाग करे यह नैमित्तिक वाक्य है, उसमें श्रूयमाण जो तंडुलका ग्रहण वह तंडुल आदि स्वरूप हविमात्र (सब) का उपलक्षण है। इतना तो विशेष है कि बालकोंको पाद प्रायश्चित्त बताना यह सब पापोंमें विधि है, इस वचनसे जानकर करनेमेंभी मरणान्त प्रायश्चित्त नहीं, किन्तु पाद (चौथाई) कोही दूना करके छः वर्षका प्रायश्चित्त बालकोंसे कराना क्योंकि अंगिराका वचन है कि जो अज्ञानियोंका प्रायश्चित्त कहा है वह ज्ञानसे करनेमें दूना हो जाता है, इसी प्रकार वृद्ध आतुर आदिमेंभी समझना। तैसेही देवताओंकी हवि खाता हुआ ब्राह्मण उस मदिराको न पीवे। इसे मनु (अ० ११ श्लो० ९९) के वचनसे सब जातियोंको मद्यका निषेध होनेसे जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वहभी न पीवे। कदाचित् कोई शंका करे कि अनुपनीतको किस प्रकार दोष है क्योंकि गौतमका वचन है कि यज्ञोपवीतसे पहिले बालकोंको आचरण, बोलना और भक्षण ये इच्छाके अनुसार होते हैं अर्थात् इनके अन्यथा करनेमें कुछ दोष नहीं होता। तैसेही यह कुमारका वचन है कि मदिरा मूत्र पुरीष इनके भक्षणमें पांचवर्षसे पहिले दोष नहीं उसके अनंतर माता पिता वा गुरु ये प्रायश्चित्त करें। इन दोनों वचनोंसे बालकोंको दोषका अभाव प्रतीत होता है। इस शंकाका समाधान कहते हैं कि सुरा और मदिराके निषेधके वचनमें जातिमात्रके पढनेसे निषेधकी प्रवृत्ति नहीं हट सकती। इसीसे अन्य स्मृतिमें निषेधका वचन है कि सुरा पीनेका निषेध जातिके आश्रयसे है, यह मर्यादा है इससे बालकोंको पाद प्रायश्चित्त सब पापोंमें देना यह विधि है। इस पूर्वोक्त वचनसे सुराके पीनेमें पादही प्रायश्चित्त है। तैसेही जातूकर्ण्यने मद्य पीनेका प्रायश्चित्त कहा है, कि जो अनुपनीत बालक मोहसे मद्यको पीवे उसके

१ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा। यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥

२ तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुराम्पिबेत्।

३ यस्य हविर्निरुप्तं पुरस्ताच्चंद्रमा अभ्युदेति।

४ त्रेधा तंडुलान् विभजेत्।

५ पादो बालेषु दातव्यः सर्वपापेष्वयं विधिः।

१ विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं चरेत्।

२ तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः।

३ प्रागुपनयनात् कामचारकामवादकामभक्षाः।

४ मद्यमूत्रपुरीषाणां भक्षणे नास्ति कश्चन। दोषस्त्वापंचमादूर्ध्वं पित्रोः सुहृद्गुरोः॥

५ सुरापाननिषेधस्तु जात्याश्रय इति स्थितिः।

६ अनुपेतस्तु यो बालो मद्यं मोहात्पिबेद्यदि। तस्य कृच्छ्रत्रयं कुर्यात् माता भ्राता तथा पिता॥

निमित्त तीन कृच्छ्र माता भ्राता पिता करैं । इससे पूर्वोक्त गौतमका वचन सुरा आदिसे भिन्न शुक्त पर्युषित आदिके विषयमें है और कुमारका वचन तो स्वल्प दोषका बोधक है । इसीसे मनुने (अ० २ श्लो० २७) उपनयनसे पूर्व किये दोषका प्रायश्चित्त उपनयनही कहा है कि गर्भके समयके और जातकर्म मुंडन उपनयनके होमोंसे बीज और गर्भका जो पाप है वह द्विजोंका दूर होजाता है वहां यह अर्थ है कि तीनों वर्णोंको जन्मसे लेकर पैष्टीका निषेध है और ब्राह्मणको तो जन्मसे लकर मद्यमात्रका निषेध है । और क्षत्रिय और वैश्यको तो कदाचित्भी गौडीका प्रतिषेध नहीं है और शूद्रको तो न सुराका निषेध है न मद्यमात्रका निषेध है ॥

भावार्थ–सुरा पीनेवाला सुरा जल घी गोमूत्र दूध इनमेंसे किसीको अग्निके समान तपाकर पीकर मरनेसे शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ २५३ ॥

वालवासाजटीवापिब्रह्महत्याव्रतंचरेत् ॥
पिण्याकंवाकणान्वापिभक्षयेत्त्रिसमानिशि ॥

पद–वालवासाः १ जटी १ वाऽ–अपिऽ–ब्रह्महत्याव्रतम् २ चरेत् क्रि–पिण्याकम् २वाऽ–कणान् २ वाऽ–अपिऽ–भक्षयेत् क्रि–त्रिसमाः२ निशि ७ ॥

योजना–सुरापः वालवासाः जटी सन् ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् वा पिण्याकं वा कणान् त्रिसमाः निशी भक्षयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–गौ वा बकरीके वालोंसे बुने हुए वस्त्रको धारकर वा जटाओंको धारण किये सुरा पीनेवाला ब्रह्महत्याके व्रतको करै यहां वालोंका वस्त्र चीर और वल्कलकाभी उपलक्षण है । क्योंकि प्रचेताकी स्मृति है कि सुरा पीनेवाला और गुरुतल्पका गामी चीर और वक्कलोंको धारकर ब्रह्महत्याका व्रत करे । और जटाओंका धारण मुंडत्वके निराकरणार्थ है । ब्रह्महत्याके व्रतको करै इतनाहीकहनेसे सिद्ध था वालोंके वस्त्र आदिका जो ग्रहण है वह अन्यत्र (हत्यामें) संभव होनेपर स्वयं धारण किये शिरःकपाल आदिकी निवृत्तिके लिये है । यहभी उसके विषयमें है जो अज्ञानसे जलकी बुद्धिसे सुराको पीवै । क्योंकि पूर्वोक्त (अ० ११ श्लो० ८९) मनुके (यह शुद्धि अज्ञानसे द्विजके मारनेकी कही) वचनमें अज्ञानकी उपाधिसे विधान किये बारह वर्षके प्रायश्चित्तका ही अतिदेश (बोधक) है । और यहां सुरापानको महापातक होनेसे अतिदेश (माना हुआ) से प्राप्तभी पादोन है तौभी बारह वर्षकाही प्रायश्चित्त करै । पादोन न करै । इसीसे वृद्ध हारीतने कहा है, कि महापातकी बारह वर्षमें पवित्र होते हैं । अथवा पिण्याक (पिंडित वा खल) वा कण (कणकी) को तीन वर्षपर्यंत रात्रिमें भक्षण करै । यह भक्षणभी एकवारही करै क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ९२) की स्मृति है कि कण वा पिण्याकको वर्षदिन पर्यंत रात्रिमें एकवार भक्षण कर और यह पिण्याक आदिका भक्षण भोजनके कार्यमें कहा है इससे अन्य भोजनको त्यागदे। यहभी जलकी बुद्धिसे सुरा पीनेमें छर्दके उत्तर (पीछे)

१ गार्भैर्होमैर्जातकर्मचूडामौंजीनिबंधनैः । बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

१ सुरापगुरुतल्पगौ चीरवल्कलवाससौ ब्रह्महत्याव्रतं चरेयाताम् ।

२ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।

३ द्वादशभिर्वर्षैर्महापातकिनः पूयंते ।

४ कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।

समझना, क्योंकि व्यासका वचन है कि छर्दके करनेपर मद्य पीनेवाला इसी व्रतको करै और उसकी कायाका शोधन प्रतिदिन पंचगव्यका पीना कहा है और उस जलके पीनेमें नहीं, जो सुराके पात्रकी सुगंधवाला हो, क्योंकि संसर्गमेंभी सुरापना दूर नहीं होता जैसे आज्य (घी) पना पृषदाज्यमें रहता है, इसीसे न्यायके ज्ञाताओंने यह कहा है कि आज्य पीनेवाले ऐसे निगम करने और पृषदाज्यपा ऐसे न करने अर्थात् घीको पीवे ऐसे कहना पृषत् (सदधि) घीको पीवे ऐसे न कहना, और जो तो यह आपस्तंबका वचन है कि चोरी, सुरापान, गुरुस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या इनको करके चौथे समयमें नियमसे भोजन करता हुआ सवनानुकल्प यज्ञमें जाय और पूर्वोक्त स्थान और आसनसे विचरता हुआ तीन वर्षोंमें पापको नष्ट करता है। जो तो अंगिराका वचन है कि महापातकोंसे संयुक्त, तीन वर्षोंमें पवित्र होते हैं, ये दोनों वचन उसी विषयमें हैं जो पिण्याक वा कणोंको भक्षण करै इस वचनका विषय है। और जो यमने दो प्रायश्चित्त कहे हैं कि सुरा पीनेवाला ब्राह्मण बृहस्पतिसव नामके यज्ञको करके फिर ब्राह्मणके समान होता है यह वेदकी श्रुति है। जो द्विजोंमें उत्तम सुरा पीकर भूमिका दान करै और फिर सुरापान न करै वह संस्कार करके शुद्ध होता है, वेभी दानों पूर्व वचनके ही विषयमें है, अथवा अन्य दक्षिणाके कल्प (प्रकार) के माननेसे बारह वर्षके प्रायश्चित्तके संग इन दोनों प्रायश्चित्तोंका विकल्प है। यहांभी बालवृद्ध आदिकोंको डेढ वर्ष प्रायश्चित्तकी और अनुपनीतोंको तो नौ मासके प्रायाश्चित्तकी कल्पना करना। जो तो मनु (अ० ११ श्लो० ९२) का पूर्वोक्त वचन है कि बालोंके वस्त्र और जटा ध्वजाओंको धारकर सुरापानके दोष निवारणार्थ कणोंको वा पिण्याकको एकवार रात्रिमें वर्ष दिनतक भक्षण करै वहभी उस सुराके पीनेमें जानना जिसका अज्ञानसे तालुमें संयोग हो गया हो। कदाचित् कोई शंका करै कि द्रव (वहता) द्रव्यके भोजनको पान कहते हैं और कण्ठसे नीचे गमनको भोजन कहते हैं, तालु आदिके संयोग मात्रको नहीं, इसस वहां कैसे पानका प्रायाश्चित्त होगा इसका समाधान कहते हैं कि जिस तालु आदिके संयोगके विना पानक्रियाकी निवृत्ति न हो उसकाभी पान क्रियाके निषेधसे निषेध है इससे यद्यपि मुख्य पान नहीं होनेस महापातक नहीं है, तथापि उसके निषेधसे उसका अंग जो आवश्यक तालु आदिमें मदिराका संयोग उसकाभी निषेध होनेसे दोष विद्यमान है इससे प्रायाश्चित्त हो सक्ता है, जैसे यहां कि मारनेके लिये जो आया हो वह विना मारेभी ब्रह्मह-

---

१ एतदेव व्रतं कुर्यान्मद्यपश्छर्दने कृते । पंचगव्यं तु तस्योक्तं प्रत्यहं कायशोधनम् ॥

२ आज्यपा इति निगमाः कार्याः न पृषदाज्यपाः ।

३ स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा गुरुदारान् गत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा चतुर्थे कालं मितभोजनो योऽभ्युपेयात्सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिभिर्वर्षैः पापं व्यपनुदाति।

४ महापातकसंयुक्ता वर्षैः शुध्यंति ते त्रिभिः ।

५ बृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः । समत्वं ब्राह्मणैर्गच्छेदित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ भूमिप्रदानं यः कुर्यात्सुरां पीत्वा द्विजोत्तमः । पुनर्न च पिबेत्तां तु संस्कृतः स विशुद्ध्यति ॥

---

१ कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥

२ चरेद्व्रतमहत्वापि घातार्थं चेत्समागतः ।

त्याका व्रत करै, हत्याके निषेधसे उसके अंगरूप मारनेके निश्चयके भी निषेधसे प्रायश्चित्त कहा है; जो बौधायन यम बृहस्पतिके ये वचन हैं कि तीन मासतक विना जाने सुरापान करनेमें कृच्छ्राब्दका चौथाई प्रायश्चित्त करके फिर उपनयन करै, सुरा पीकर, ब्राह्मणको मारकर, ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकर, और पतितोंके संग संयोग करके द्विज चांद्रायण करै, और द्विज गौडी माध्वी पैष्टी सुराको पीकर क्रमसे तप्तकृच्छ्र पराक और चांद्रायण करै। ये तीनों वचन उस सुरा पीनेके विषयमें जानने जो ऐसी व्याधिमें पी हो जो रोग किसी औषधसे न गया हो, क्योंकि यह प्रायश्चित्त अल्प है और जो सुरारसके मिले सूखे अन्नको भक्षण करै तो फिर उपनयन करै सोई मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० १५०) कि अज्ञानसे विष्ठा मूत्र और सुरा मिले अन्नको खाकर तीनों द्विजाति वर्ण फिर संस्कारके योग्य होते हैं और जो सुराके सूखे पात्रमें रक्खे हुए जलको पीवै तो शातातपके कहे छर्द घृतभक्षण और अहोरात्र उपवासको करै, जो बोधायनका वचन है कि जो मनुष्य सुरा पीनेवालेके पात्रमें वासी जलको पीवे वह शंखपुष्पीमें पकाये दूध और घीको तीन दिनतक पीवै, वह प्रायश्चित्त वासी जलके पीनेसे अधिक है अज्ञानसे पीनेमें तो मनु (अ० ११ श्लो० १४७) ने यह प्रायश्चित्त कहा है कि सुरा और मद्यके भांडेमें स्थित जलोंको पीकर पांचरात्रतक शंखपुष्पीमें पकाये दूधको पीवे। जो विष्णुने कहा है कि सुराके पात्रमें स्थित जलको पीकर सात रात्रतक शंखपुष्पीसे पकाये दूधको पीवे यह जानकर पीनेमें समझना। जानकर पीनेमें तो बृहत् यमने कहा है कि सुराके भांडेमें स्थित जलको जो द्विज पीले तो वह बारह दिनतक दूधके संग ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवे, सुरा पीनेवालेके मुखकी गन्धके सूंघनेमें तो मनु (अ० ११ श्लो० १४९) ने कहा है कि सुरा पीनेवाले ब्राह्मणके मुखकी गन्धको सूंघकर सोमको पीनेवाला जलोंमें तीन प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है, यह प्रायश्चित्त सोमयज्ञ करनेवालेकोही अज्ञानसे पीनेमें है और जानकर पीनेमें तो दूना और जिसने सोम न पीया हो उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। जो साक्षात्सुराके गन्धको सूंघता है उसको तो सूंघनेके अयोग्यका और मदिराका सूंघना जातिभ्रंशकर है, इससे यह मनु (अ० ११ श्लो० १२४) का कहा प्रायश्चित्त समझना कि जातिभ्रंशकर

१ त्रैमासिकममत्या सुरापाने कृच्छ्राब्दपादं चरित्वा पुनरुपनयनं—सुरां पीत्वा द्विजं हत्वा रुक्मं हृत्वा द्विजन्मनः। संयोगं पतितैर्गत्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ गौडीं माध्वीं सुरां पैष्टीं पीत्वा विप्रः समाचरेत्। तप्तकृच्छ्रं पराकं च चान्द्रायणमनुक्रमात् ॥

२ अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रसुरासंसृष्टमेव च। पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥

३ सुराभाण्डोदकपाने छर्दनं घृतप्राशनमहोरात्रोपवासश्च।

४ सुरापानस्य यो भाण्डेष्वपः पर्युषिताः पिबेत्। शंखपुष्पीविपक्वं तु क्षीरं सर्पिः पिबेत्त्र्यहम् ॥

१ अपः सुराभाजनस्था मद्यभांडस्थितास्तथा। पंचरात्रं पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पीशृतं पयः।

२ अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा सप्तरात्रं शंखपुष्पीशृतं पयः पिबेत्।

३ सुराभांडस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः। स द्वादशाहं क्षीरेण पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥

४ ब्राह्मणस्य सुरापस्य गंधमाघ्राय सोमपः। प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

५ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया। चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥

कोईसे कर्मको जानकर करके सांतपन कृच्छ्र करे और अज्ञानसे करे तो प्राजापत्य करे ॥

भावार्थ-वालोंका वस्त्र जटा इनको धारकर ब्रह्महत्याके व्रतको करे वा पिण्याक और कणोंको तीन वर्षतक रात्रिमें भक्षण करे २५४॥

अज्ञानात्तुसुरांपीत्वारेतोविण्मूत्रमेव च।
पुनःसंस्कारमर्हंतित्रयोवर्णाद्विजातयः ॥

पद-अज्ञानात् ५ तुऽ-सुराम् २ पीत्वाऽ-विण्मूत्रम् २ एवऽ-चऽ-पुनःऽ-संस्कारम् २ अर्हंति क्रि-त्रयः १ वर्णाः १ द्विजातयः १॥

योजना-द्विजातयः त्रयः वर्णाः अज्ञानात् सुरां च पुनः रेतः विण्मूत्रं पीत्वा पुनः संस्कारम् अर्हन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-अब मद्यपानका प्रायश्चित्त कहते हैं जो ब्राह्मण अज्ञानसे जलकी बुद्धिसे मद्यरूप सुराको पीवे। जो ब्राह्मण आदि वीर्य विष्ठा मूत्र इनका भक्षण करें वे तीनों भी द्विजाति वर्ण तप्तकृच्छ्रको करके फिर उपनयनरूप प्रायश्चित्तके योग्य होते हैं। यहां मद्यपानमें जो पुनः संस्कार है वह ब्राह्मणको ही है। क्षत्रिय और वैश्यको तो द्यकी आज्ञा दिखाय आये हैं। यहां सुरा शब्द भी मद्यका बोधक है क्योंक प्रायश्चित्त अत्यन्त लघु है और अज्ञानसे मुख्य सुराके पीनेमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौतमेने यहां मद्य शब्दका प्रयोग दिया है कि अज्ञानसे मद्यके पीनेमें प्राति तीन दिन दूध, घी, जल, वायु इनको तपाकर पीवै, वही तप्त कृच्छ्र कहाता है। फिर इसका संस्कार करै और मूत्र विष्ठा मांस इनके भक्षणमें भी यही प्रायश्चित्त है। और जो इसी विषयमें मनु (अ० ११ श्लो० १४७) में कहा है कि अज्ञानसे वारुणीको पीकर संस्कारसे शुद्ध होता है वह भी तप्तकृच्छ्रके अनन्तर करना। क्योंकि उसमें गौतमका वचन अनुकूल है और पुनः संस्कारसे उपनयन लेना और वह भी आश्वलायन आदिके कहे क्रमसे करना। सोई कहा है कि जिसका उपनयन हो चुका हो उसके किये और न किये मुण्डन और मेधाजनन नहीं कहे, परिदान और काल (मुहूर्त) भी नहीं और उसको तत्सवितुर्वृणीमहे इस गायत्रीका उपदेश कहा है। जानकर मद्यके पीनेमें तो वसिष्ठका कहा हुआ प्रायश्चित्त जानना कि जानकर मद्यके पीनेमें और सुराके भिन्न वा सुराके अज्ञानसे पीनेमें कृच्छ्र अतिकृच्छ्र घृतभक्षण और पुनः संस्कार प्रायश्चित्त है। अथवा शंखका कहा चान्द्रायण है कि सुरासे भिन्न मद्यका पीनेवाला चांद्रायण करै। मद्यके मुखमें प्रवेशगात्रमें भी आपस्तंबका कहा षड्रात्र प्रायश्चित्त है कि भक्षण पान चाटना इनके अयोग्य वीर्य मूत्र विष्ठाओंके भक्षणमें प्रायश्चित्त कैसे हो। पद्म, गूलर, बेल, ढाक, कुशा इनके जलको पीकर छः रात्रमें शुद्ध होताहै, यह भी ताल आदिकी

१ अमत्या मद्यपाने पयोघृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तानि पिबेत्स तप्तकृच्छ्रस्ततोऽस्य संस्कारो मूत्रपुरीषरेतसां प्राशने च।

१ अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेण विशुद्ध्यति।

२ अथोपेतपूर्वस्य कृताकृतं केशवपनं मेधाजननं चानिरुक्तं परिदानं कालश्च तत्सवितुर्वृणीमह इति सावित्रीम्।

३ मत्या मद्यपाने त्वसुरायाः सुरायाश्चाज्ञाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ घृतप्राशनं पुनः संस्कारश्च।

४ असुरामद्यपायी चांद्रायणं चरेत्।

५ अभक्ष्याणामपेयानामलेह्यानां च भक्षणे। रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत्॥ पद्मोदुंबरविल्वानां पलाशस्य कुशस्य च। एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ॥

मद्यके विषय समझना । गौडी और माध्वीके अज्ञानसे पीनेमें तो वसिष्ठका कहा हुआ पूर्वोक्त कृच्छ्र अतिकृच्छ्र पुनः संस्कार और घृतभक्षण प्रायश्चित्त जानना और उनके जानकर पीनेमें तो खल और कणोंको भक्षण करके पूर्वोक्त तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना । और जानकर उनके पानके अभ्यासमें तो अग्निवर्ण सुराको पीकर मरणसे पवित्र होता है यह वसिष्ठका कहा मरणांतिक प्रायश्चित्त जानना । यहां सुरा शब्द पैष्टीके अभिप्रायसे नहीं क्योंकि उसके एकवार पीनेमें मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाय आये। मदिराकी सुगंधिवाले सूखे पात्रके जलको अज्ञानसे पीनेमें बृहत् यमने कहा है कि यादि कोई द्विज मदिराके भाण्डमें स्थित जलको पीवै तो कुशाकी जडसे पके हुए दूधसे तीन दिन व्यतीत करे। और अज्ञानसे अभ्यासमें तो वसिष्ठने कहा है कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको यादि कोई द्विज पीवै तो पद्म, गूलर, बेल, ढाक, कुशा इनके जलको पीकर तीन रात्रमें शुद्ध होता है। जानकर पीनेमें तो विष्णुने कहा है कि मदिराके भाण्डमें स्थित जलको पकिर पांच रात्र तक शंखपुष्पोंसे पकाये दूधको पीवै ज्ञानसे अभ्यासमें तो शंखने कहाहै कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको पीकर सात रात्रतक गोमूत्र और जौको पीकर रहै । अत्यन्त अभ्यासमें तो हारीतने कहाहै कि मदिराके पात्रमें स्थित जलको यादि कोई द्विज पीवै तो बारह दिनतक दूधके संग ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवै। इन पूर्वोक्त वचनोंमें द्विजका ग्रहण ब्राह्मणके अभिप्रायसे है । क्योंकि क्षत्री और वैश्यको निषेध नहीं यह पहिले दिखाय आये । यह गौडी और माध्वीके पात्रके जल पीनेमें समझना । क्योंकि प्रायश्चित्त गुरु है ताल आदि मदिराके पात्रके जल पीनेमें तो प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ-अज्ञानसे सुराको पीकर और वीर्य विष्ठा मूत्र इनको भक्षण करके तीनों द्विजाति वर्ण फिर संस्कारके योग्य होते हैं ॥

पतिलोकंनसायातिब्राह्मणीयासुरांपिबेत् ॥
इहैवसाशुनीगृध्रीसूकरीचोपजायते॥२५६॥

पद-पतिलोकम् २ नऽ-सा १ याति क्रि-ब्राह्मणी १ या १ सुराम् २ पिबेत् क्रि-इहऽ-एवऽ-सा १ शुनी १ गृध्री १ सूकरा १ चऽ-उपजायते क्रि- ॥

योजना-या ब्राह्मणी सुरां पिबेत् सा पतिलोकं न याति इह एव सा शुनी गृध्री च पुनः सूकरी उपजायते ॥

तात्पर्यार्थ-जो ब्राह्मणी अर्थात् द्विजातियोंकी भार्या सुराको पीवै वह पुण्य करनेपर भी पतिलोकमें नहीं जाती, किन्तु इस लोकमेंही कुत्ती, गीधनी, सूकरी इन तिरछी योनियोंको क्रमसे प्राप्त होती है । यहां ब्राह्मणीका ग्रहण जिस द्विजातिकी जितनी भार्या हों उन सबका उपलक्षण है और वे भार्या ब्राह्मणको वर्णके क्रमसे तीन कह आये हैं

---

१ अभ्यासे तु सुराया अग्निवर्णां सुरां पिबेन्मरणात्पूतो भवात ।

२ मद्यभाण्डास्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । कुशमूलविपक्केन त्र्यहं क्षीरेण वर्त्तयेत् ॥

३ मद्यभाण्डस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । पद्मोदुम्बरबिल्वानां पलाशस्य कुशस्य च ॥ एतेषामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥

४ मद्यभाण्डस्थितं तोयं पीत्वा पंचरात्रं शंखपुष्पीश्रृतं पयः पिबेत् ।

५ मद्यभाण्डास्थितं तोयं पीत्वा सप्तरात्रं गोमूत्रं यवकं पिबेत् ।

१ मद्यभाण्डस्थितं तोयं यदि कश्चित्पिबेद्द्विजः । द्वादशाहं तु पयसा पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥

इसीसे मनुने कहाहै जिसकी भार्या सुराको पीवे उसका आधा शरीर पतित हो जाता है। पति है आधा शरीर जिसका ऐसे उसकी निष्कृति (गति) नहीं कहीं, क्योंकि धर्म, अर्थ, कामोंमें स्त्री पुरुषको संग अधिकार होनेसे दोनोंका एक शरीर होता है, इससे जिस द्विजातिकी भार्या सुराको पीवे उसका भार्यारूप आधा शरीर पतित होजाता है, फिर उसकी गति नहीं होती, तिससे ब्राह्मणी आदि द्विजातियोंकी भार्या सुराको न पीवे। तिससे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुराको न पीवैं इस पूर्वोक्त निषेधकी विधिमें पुँल्लिंगको अविवक्षित होनेसे तीनों वर्णोंकी भार्याओंको निषेध सिद्ध था, पुनः वचन इसलिये है कि शूद्राभी द्विजातियोंकी भार्या सुराको न पीवे। इससे द्विजातियोंकी भार्या सुरा पीनेमें आधा प्रायश्चित्त करै। शूद्रकी भार्या जो शूद्रा है उसको तो शूद्रके समान सुरा पीनेका निषेध नहीं है। सुरापानके तुल्य जो निषिद्ध भक्षण आदि हैं उनमें सुरापानका आधा प्रायश्चित्त पहले कह आये हैं॥

भावार्थ–जो ब्राह्मणी सुराको पीवै वह पतिलोकको नहीं जाती किंतु इसी लोकमें कुत्ती गीधनी और सूकरी उत्पन्न होती है॥२५६॥

इति सुरापानप्रायश्चित्तप्रकरणम्।

ब्राह्मणस्वर्णहारीतुराज्ञेमुशलमर्पयेत्।
स्वकर्मख्यापयंस्तेनहतोमुक्तोपिवाशुचिः॥

पद–ब्राह्मणस्वर्णहारी १ तु॰–राज्ञे ४ मुशलम् २ अर्पयेत् क्रि–स्वकर्म २ ख्यापयन् १ तेन ३ हतः १ मुक्तः, अपि॰–वा॰–शुचिः १॥

योजना–ब्राह्मणस्वर्णहारी स्वकर्म ख्यापयन् सन् राज्ञे मुशलं अर्पयेत् तेन हतः वा मुक्तः अपि शुचिर्भवति॥

तात्पर्यार्थ–जो ब्राह्मणके सुवर्णको चुराता है वह सुवर्णकी चोरी मैंने की ऐसे अपने कर्मको प्रसिद्ध करता हुआ राजाको मुसलका अर्पण करै। मुसलका अर्पण करना दृष्ट अर्थके लिये होनेसे उस मुसलसे राजा उसको हते। उससे मरनेसे वा बचनेसे शुद्ध होताहै। यहां हरण शब्दसे प्रत्यक्ष वा परोक्ष बलसे वा चोरीसे खलके हेतु क्रय आदिके विना ब्राह्मणके सुवर्णका ग्रहण लेना। यद्यपि मुसलका अर्पण करै यह सामान्यसे कहा है तोभी उस मुसलको मारनेके लिये होनेसे मारनेमें समर्थ लोहे आदिका मुसल लेना। इसीसे मनु (अ॰ ८ श्लो॰ ३१५) ने कहा है कि, कांधेपर मुसलको वा खैरके लकुट (लट्ठ) को वा दोनों तरफसे पैने खड्ग वा बरछी वा लोहेके दंडको लेकर राजाके समीप जाय। शंखनेभी यहां विशेष कहा है कि सुवर्णका चोर केशोंको खोलकर गीले वस्त्र पहिने लोहेका मुसल लेकर जाय और कहै कि मैंने यह पाप किया है इस मुसलसे मुझे मारो। फिर वह राजाकी शिक्षा देनेसे पवित्र होता है। यहां मारनाभी मुसलसे वारंवार शास्त्रमें नहीं कहा इससे एकवारही करना इसीसे मनु (अ॰ ११ श्लो॰ १००) ने कहा है कि राजा मुसल लेकर उसे एक वार स्वयं मारे। एकवारकी ताडनासे मरजाय तो शुद्ध होता है और मरनेसे बचजाय तो जीताहुआभी

१ पतत्यर्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत्। पतितार्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥

२ ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।

१ स्कंधेनादाय मुसलं लकुटं वापि खादिरम्। आर्से चोभयतस्तीक्ष्णमायसं दंडमेव वा।

२ सुवर्णस्तेनः प्रकीर्णकेश आर्द्रवासा आयसं मुशलमादाय राजानमुपतिष्ठेदिदं मया पापं कृतमनेन मुसलेन मां घातयस्वेति स राज्ञा शिष्टः सन्पूतो भवति।

३ ततो मुशलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।

शुद्ध होता है। सोई संवर्तने कहा है कि फिर राजा मुसल लेकर उसे स्वयं हते। यदि वह चोर जीजाय तो वह चोरीके दोषसे शुद्ध होता है। सोई ब्रह्मवधमें कहा है कि प्रहारोंकी ताडनासे मृतककी तुल्य होनेपर जीता हुआभी शुद्ध होता है। कदाचित् कोई शंका करे कि ताडनाके विनाभी राजाका छोडा हुआ चोर शुद्ध होता है यह अर्थ क्यों नहीं मानते। इसका समाधान कहते हैं कि न मारनेसे राजा पापी होता है! इस गौतमके वचनमें ताडना न करते हुए राजाको दोष कहा है। कदाचित् कहो कि राजाको दोष रहो शास्त्रके निषेधको न मानकर राजा स्नेह आदिसे छोडदे तो चोरकी शुद्धि कैसे न होगी। इसका समाधान कहते हैं कि ऐसा मानोगे तो विना कारण शुद्धि हो जायगी कदाचित् कहो कि छोडनेके पीछे बारह वर्षका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्धि मानी है. इससे विनाकारण शुद्धि नहीं वहभी सुंदर नहीं। क्योंकि (मुक्तः शुचिः) यह कहनेसे छोडनाही शुद्धिका हेतु कहा है इससे पहिलाही अर्थ ठीक है। यह मरणांतिक प्रायश्चित्त सब वर्णके चोरका है केवल ब्राह्मणके ही चोरको नहीं। क्योंकि (ब्राह्मणस्वर्णहारी) इस नैमित्तिक वचनमें सुवर्णका चोर यह सामान्यसे पढा है और क्षत्री आदिभी महापातकी होसकते हैं, उनका दूसरा प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं कहा। जो तो मनुके वचन(अ०११ श्लो० ९९) में कहा है कि सुवर्ण का चोर विप्र (ब्राह्मण) पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै, उसमें विप्रका ग्रहण नरमात्रका उपलक्षण है। क्योंकि(प्रायश्चित्तीयते नरः) नरमात्रका ही उपलक्षण है। और मनुके (अ० ११ श्लो० ५४) ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी और गुरुस्त्रीगमन ये चार महापातक हैं इस निमित्तवाक्यमें विशेषका ग्रहण नहीं किया उसकी है अपेक्षा जिसको ऐसे (सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः) इस नैमित्तिक वाक्यमें सुने हुए विप्रपदकोभी उपलक्षण मानना युक्त है। जैसे अभ्युदित इष्टि (यज्ञ) में जिसकी हवि तंडुल है इस वाक्यमें तंडुलका ग्रहण संपूर्ण हविका उपलक्षण है और यह राजाका मारना ब्राह्मण भिन्नके विषयमें समझना। क्योंकि सब पापोंमें टिकेभी ब्राह्मणको न मारै इस वचनसे मनुने ब्राह्मणके वधका निषेध किया है (अ० ८ श्लो० ३८०) यदि किसी प्रकार निषेधका न मानकर राजा ब्राह्मणको हते तोभी पवित्र होता है। क्योंकि चोर ब्राह्मण वधसे वा तपसे शुद्ध होता है, इस वचनमें मनु (अ०११ श्लो०१००) ने ब्राह्मणकी भी वधसे शुद्धि कही है, कदाचित् कहो (तपसैव वा) इस एव पदसे वधका निषेध है सो ठीक नहीं, क्योंकि वह केवल तपसेभी शुद्धिका बोधक है। यदि वधका निषेध है तो वा तपसे शुद्ध होता है यह विकल्पका कहना सिद्ध न होता। कदाचित् कहो कि विकल्पका कहना दंडके लिये है सोभी ठीक नहीं क्योंकि वचनमें दंड नहीं दिखाया, और उनका ही विकल्प होता है जिनका एक अर्थ हो, इस न्यायसे व्रीहि और यवके समान एकार्थोंकाही विकल्प होता है। दण्ड और तप ये दोनों एकार्थ नहीं, क्योंकि दण्ड दमन

१ ततो मुसलमादाय सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्। यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विशुद्ध्यते॥

२ मृतकल्पः प्रहारार्त्तो जीवन्नपि विशुद्ध्यति।

३ अघ्नन्नेनस्वी राजा।

४ सुवर्णस्तेयकृद्विप्रः प्रायश्चित्तीयते नरः।

१ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।

२ अभ्युदितेष्ट्यां यस्य हविः।

३ न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।

४ वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा।

५ एकार्थास्तु विकल्पेरन्।

करनेके लिये, और तप पापक्षयके लिये होताहै। कदाचित् शंका करो कि चोर वधसे शुद्ध होता है इस सामान्य विषयक वधके संग ब्राह्मण तपसे ही शुद्ध होता है इस विशिष्ट विषयक तपका विकल्प हो जायगा सो ठीक नहीं। क्योंकि ब्राह्मणोंको दधि दो और कौंडिन्यको तक्र दो ऐसे विषयमें विकल्प नहीं होता तिससे दोनोंका सामान्य विषय माननाही युक्त है। अथवा क्षत्रियकोभी निषेध नहीं क्योंकि मनुने सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण यह कहकर राजा मूसलको लेकर उसको एकवार स्वयं मारै इस वचनमें (अ० ११ श्लो० १००) ते इस सर्वनामसे इस प्रकरणमें पढे ब्राह्मणकाही हनन कहा है कि ब्राह्मणको कदाचित् न मारे यह पूर्वोक्त वचन प्रायश्चित्तसे भिन्न दण्डरूप हननके विषयमें चरितार्थ होजायगा और यह मरणांतिक प्रायश्चित्त जानकर सुवर्णकी चोरीमें समझना। क्योंकि मध्यम अंगिराका वचन है कि बुद्धिमानोंने जो मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा है वह जानकर किये पापमें समझना इसमें संशय नहीं और यहां सुवर्ण शब्द सुवर्णरूप तोलसे तुले सुवर्णका वाची है, जातिमात्रका वाचक नहीं, क्योंकि इन वचनोंसे सोलह मासे सोनेमें सुवर्ण शब्दको कहा है कि झरोखेमें सूर्यकी किरणोंमें टिके हुए रजको त्रसरेणु कहते हैं, आठ त्रसरेणुओंकी एक लिक्षा, और तीन लिक्षाओंकी एक राई, तीन राइयोंका एक गौर सर्षप, छः गौरसर्षपोंका एक मध्ययव, तीन मध्ययवोंका एक कृष्णल, पांच कृष्णलोंका एक मासा होता है और सोलह मासेका एक सुवर्ण कहाता है इससे ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी महापातक होती है इत्यादि प्रयोगोंमें किया हुआ है परिमाण जिसका ऐसे सुवर्णकाही ग्रहण युक्त है, परिमाण (तोल) का करना दृष्टके लिये है, अदृष्ट (परलोक) के लिये नहीं और न लोकव्यवहारके लिये है। क्योंकि इनके लिये स्मृतिकारोंकी प्रवृत्ति नहीं हुआ करती इसीसे न्यायके ज्ञाताओंने कहा है कि कार्यके समयमें संज्ञा और परिभाषाओंकी उपस्थिति होती है। तैसे ही नामभी गुण और फलके सम्बन्धमें काममें आता है। पंचदश (१५) याज्य यहां तो दण्डमात्रके उपयोगी परिमाणका स्मरण नहीं है, उतनाही अर्थ माननेमें प्रमाण नहीं, इससे विशेषके अभावसे सबका शेष माननाही युक्त है। किंच (और) दण्ड दमनके लिये है, दमन परिमाण विशेषके विना भी हो सकता है, इससे परिमाण विशेषका अत्यन्त उपयोग नहीं, केवल शब्दसे जाने हुए महापातकी आदिकोंमें निश्चयसे परिमाणके स्मरणका उपयोग है। इससे सोलह मासेभर सुवर्णके हरनेमेंही महापातकी होता है और उसके निमित्त मरणांतिक प्रायश्चित्तका विधानभी उसमेंही है और दो तीन मासे आदि सुवर्णकी चोरी तो क्षत्री आदिका जो सुवर्ण उसकी चोरीके समान उपपातकही है और सुवर्णसे न्यून सोनेकी चोरीमें तो अन्य प्रायश्चित्त कहा है, इसमें सुवर्ण भर सोनेके हरणमें मरणान्तिक प्रायश्चित्तही

१ ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौंडिन्याय वा।

२ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।

३ मरणांतिकं हि यत्प्रोक्तं प्रायश्चित्तं मनीषिभिः। तत्तु कामकृते पापे विधेयं नात्र संशयः।

४ जालसूर्यमरीचिस्थं त्रसरेणू रजः स्मृतम्। तेऽष्टौ लिक्षा तु तास्तिस्रो राजसर्षप उच्यते॥ गौरस्तु ते त्रयः षड्भिर्यवो मध्यस्तु ते त्रयः। कृष्णलः पंच ते माषास्ते सुवर्णस्तु षोडश॥

युक्त है। सोई षट्त्रिंशत्‌के मतमें कहा है कि बालके अग्रभागभर सोनेकी चोरीमें एक प्राणायाम करै, लिक्षामात्रकी चोरीमें तीन प्राणायाम, राई भरकी चोरीमें चार प्राणायाम करै और पापकी शुद्धिके लिये आठ सहस्र गायत्री जपै और गौरसर्षप (सरसों) भरकी चोरीमें दिनभर सावित्री जपै, जौभर सोनेको चुराकर दो दिन प्रायश्चित्त करै, कृष्णलभर सोनेको चुराकर द्विजोंमें उत्तम उस पापकी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करै, सुवर्णकी चोरीमें वर्ष दिनतक जौ पीवे, इसके ऊपर मरणांतिक प्रायश्चित्त वा ब्रह्महत्याका व्रत भी प्रायश्चित्त जानना, और यह वर्ष दिनतक जौका भोजन कुछ कम सुवर्णभर सोनेकी चोरीमें जानना, क्योंकि सुवर्णभरकी चोरीमें मनु आदि बडी बडी स्मृतियोंमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है। जो यह वचन है कि जो मनुष्य जानकर पण्य धनको बलसे ग्रहण करते हैं उन बलसे हरनेवालोंको प्राणांतिक प्रायश्चित्त कहा है यह प्रायश्चित्त सुवर्णसे न्यूनमें भी समझना और यह चोरीका प्रायश्चित्त चुराये धनको स्वामीको देकरही करना क्योंकि यह स्मृति है कि ब्राह्मणके सुवर्ण आदिको चुराकर चुरानेवाला ग्यारह अधिक सुवर्ण धनके स्वामीको दे। तैसेही मनुका (अ० ११ श्लो० १६४) वचन है कि उस धनको देकर अपनी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करै दण्डके प्रकरणमें भी कहा है कि शेषपापोंमें ग्यारह गुना दण्ड दे और स्वामीको धन दिवादे और जब राजा अशक्तिसे न मारसके तो वसिष्ठका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि चोर केशोंको खोले राजाकी याचना करै, फिर राजा उसको तांबेका शस्त्र दे उससे अपनी आत्माको हते तो मरणसे पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं। और जो उसने दूसरा प्रायश्चित्त कहा है कि विना समयके भी गौके घीको देहमें मलकर गोमयकी अग्निसे पादसे लेकर अपने देहको मारकर पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं। वह प्रायश्चित्तभी गुरु वेदपाठी यज्ञमें स्थित ब्राह्मणके द्रव्य चुरानेमें वा क्षत्रिय आदि चोरके विषयमें समझना और निष्कालक पदसे केश श्मश्रु लोम इनका मुण्डन कहा है। तैसेही अश्वमेधके करनेसे शुद्धि होती है। क्योंकि प्रचेताने मरणांतिक प्रायश्चित्तको कहकर कहा है कि अश्वमेध वा गोसव यज्ञको करके शुद्ध होता है यहभी वैश्य और क्षत्री चोरको समझना ॥

---

१ बालाग्रमात्रेऽपहृते प्राणायामं समाचरेत् । लिक्षामात्रेऽपि च तथा प्राणायामत्रयं बुधः ॥ राजसर्षपमात्रे तु प्राणायामचतुष्टयम् । गायत्र्यष्टसहस्रं च जपेत्पापविशुद्धये ॥ गौरसर्षपमात्रे च सावित्रीं वै दिनं जपेत् । यवमात्रे सुवर्णस्य प्रायश्चित्तं दिनद्वयम् ॥ सुवर्णकृष्णलं ह्येकमपहृत्य द्विजोत्तमः । कुर्यात्सांतपनं कृच्छ्रं तत्पापस्यापनुत्तये ॥ अपहृत्य सुवर्णस्य माषमात्रं द्विजोत्तमः । गोमूत्रयावकाहारस्त्रिभिर्मासैर्विशुद्ध्यति ॥ सुवर्णस्यापहरणे वत्सरं यावकी भवेत् ॥ ऊर्ध्वं प्राणान्तिकं ज्ञेयमथवा ब्रह्महव्रतम् ॥

२ बलाद्ये कामकारेण गृह्णंति स्वं नराधमाः । तेषां तु बलहर्तॄणां प्राणांतिकमिहोच्यते ।

१ स्तेये ब्रह्मस्वभूतस्य सुवर्णादिः कृते पुनः । स्वामिनेऽपहृतं देयं हर्त्रा त्वेकादशाधिकम् ॥

२ चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्मशुद्धये । शेषेष्वेकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥

३ स्तेनः प्रकीर्णकेशो राजानमभियाचयेत् ततस्तस्मै राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेत् मरणात्पूतो भवति इति विज्ञायते ॥

४ निष्कालको गोघृताक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानं प्रमापयेन्मरणात्पूतो भवति इति विज्ञायते ।

५ इष्ट्वा वाश्वमेधेन गोसवेन वा विशुद्ध्येत् ।

भावार्थ–ब्राह्मणके सुवर्णका चोर अपने कर्म (अपराध) को कहता हुआ राजाको मुसल दे उससे मरने वा वचनेसे शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥

अनिवेद्य नृपे शुद्ध्येत्सुरापव्रतमाचरन् ।
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दद्याद्वा विप्रतुष्टिकृत् ॥

पद–अनिवेद्यऽ–नृपे ७ शुद्ध्येत् क्रि–सुरापव्रतम् २ आचरन् १ आत्मतुल्यम् २ सुवर्णम् २ वाऽ–दद्यात् क्रि–वाऽ–विप्रतुष्टिकृत् १ ॥

योजना–नृपे अनिवेद्य सुरापव्रतं आचरन् शुद्ध्येत् आत्मतुल्यं सुवर्णं वा विप्रतुष्टिकृत् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–अपनी चोरीको राजाके यहां निवेदन न करके वारह वर्षके सुरापव्रतको करता हुआ शुद्ध होता है। यहां सुरापव्रतका कथन शवके शिरकी ध्वजा और कपाल इनके धारणके निषेधार्थ है, यहभी अज्ञानसे करनेके विषयमें है। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ८९) ने अज्ञानसे विधान किये वारह वर्षके प्रायश्चित्तकाही अतिदेश कियाहै कि अज्ञानसे द्विजको मारनेवालेकीही यह शुद्धि कही है। कदाचित् शंका करो कि अज्ञानसे चोरी ही नहीं होसकती इससे उसका विषय कैसे हो सकता है इसका समाधान कहते हैं कि जब वस्त्रके प्रान्तमें वंधे हुए सुवर्ण आदिको अज्ञानसे चुरावै अथवा रजत आदिकी वुद्धिसे चुरावै और चुरानेके अनंतरही किसी अन्यको देदे वा नष्ट करदे और स्वामीके प्रति फिर न दे तो अपहार हो सकता है और जो ताम्र आदि धातु रसवेध आदिसे सुवर्णके रंगकी हो उसके अपहार (चोरी) में यह प्रायश्चित्त नहीं, क्योंकि उसमें मुख्य जातिका संबंध नहीं है और मुख्यकी तुल्यता मात्रसे गौणमें मुख्यके धर्म नहीं होसक्ते। यद्यपि सुवर्णके सदृश सुवर्ण भिन्न द्रव्यकी भ्रांतिसे चुराता है तोभी यह प्रायश्चित्त नहीं होता, क्योंकि सुवर्णसे भिन्नका चोर है। कदाचित् कहो ब्राह्मणके वधमें प्रवृत्त हुआ विना मारेभी प्रायश्चित्त करै इसके समान यहांभी दोष है सो ठीक नहीं, क्योंकि सुवर्णसे भिन्नमें प्रवृत्त होनेसेही पूर्वोक्त वचनका यह विषय नहीं, जो यह वचन[1] है कि मनसे पापका ध्यान करके ओंकारपूर्वक व्याहृति मनसे जपे और तीन प्राणायाम करके आचमन करै। पापमें प्रवृत्त होजाय तो द्वादशरात्रका कृच्छ्र करै वहभी यथार्थ धनकी प्रवृत्तिके विषयमें है इससे ऐसा सुवर्णका अपहार प्रायश्चित्तका निमित्त नहीं होसकता किंतु पूर्वोक्त रजत बुद्धिसे सुवर्णका अपहारही हो सकता है। यदि पूर्वोक्त सुवर्णका चोर अत्यंत महा धनी होय तो अपने देहकी तुल्य सुवर्ण दे। यदि उतना धन न हो और तपकोभी न करसकै तो ब्राह्मणके संतोषकारी अर्थात् जीवनभर कुटुंब पालनके योग्य धनको दे। यदि निर्गुण स्वामीके द्रव्यको चुरावे तो इसी व्रतको वह चोर पादसे न्यून करै[2] इस व्यासके वचनसे कहा नव वर्षका प्रायश्चित्त जानना और जब पूर्वोक्तही द्रव्यको क्षुधासे दुखी कुटुंबकी रक्षाके लिये चुरावे तो अत्रिके

१ इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् ।

१ मनसा पापं ध्यात्वा प्रणवपूर्वकं व्याहृतीर्मनसा जपेत् व्याहृत्य प्राणायामं त्रिराचमेत् प्रवृत्तौ कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् ।

२ एतदेव व्रतं स्तेनः पादन्यूनं समाचरेत् ।

३ षडब्दं वा चरेत् कृच्छ्रं यजेद्वा क्रतुना द्विजः । तीर्थानि वा भ्रमन्विद्वांस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥

कहे छः वर्षके प्रायाश्चित्त स्वर्जित आदि यज्ञ और तीर्थयात्राको करै कि द्विज छः वर्षका कृच्छ्र प्रायश्चित्त वा यज्ञ करै वा तीर्थोंमें भ्रमता हुआ विद्वान् चोरीसे छूटता है । यदि चुरानेके अनन्तरही मैंने वडा कष्ट किया यह पश्चात्ताप करके स्वामीको देदे वा त्याग दे तो आपस्तंबके कहे चौथे कालमें प्रमित भोजनसे तीन वर्षका प्रायश्चित्त, अथवा अंगिराका कहा वज्र नामका तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना । कदाचित् कोई शंका करै कि स्वामीको लौटाने वा त्यागनेमें अपहार हो चुका तो अल्प प्रायश्चित्त कैसे होसकता है । यदि अपहार नहीं हुआ तो प्रायश्चित्तका अभावही होगा, प्रायश्चित्तकी न्यूनता न होगी ऐसा मत कहो, क्योंकि अपहार उपभोग आदि फल पर्यंत होता है इससे उपभोगसे पहिले निवृत्त होनेमें पुष्कल (पूरा) अपहारके अर्थका अभाव है इससे प्रायश्चित्तकी न्यूनता इस प्रकार युक्त है जैसे पीनेके अयोग्य द्रव्यको पीकर वमनमें होती है अर्थात् मरण आदि फल नहीं होता कदाचित् शंका करो कि चोरके हाथसे वलसे छीनकर ग्रहण करनेमेंभी उपभोग (वर्तना) रूप फलका अभाव है वहांभी अल्प प्रायश्चित्तहो जायगा सो ठीक नहीं, क्योंकि चोरकी उसके त्यागमें स्वयं प्रवृत्ति नहीं है और फलपर्यंत स्वयं प्रवृत्ति है और जो रजत ताम्र आदिसे मिले सुवर्णका अपहार है उसमें यह लघु प्रायाश्चित्त नहीं क्योंकि संसर्गमेंभी सुवर्ण इस प्रकार दूर नहीं हो सकता जैसे पृषदाज्यमें आज्य, इससे वहां वारह वर्षका प्रायाश्चित्तही युक्त है । कदाचित् कहो कि वह सुवर्णके सदृश दूसराही द्रव्य है इससे लघु प्रायश्चित्त कहाहै सो ठीक नहीं । क्योंकि वहां तीन वर्ष आदि लघु प्रायश्चित्तका विषय सुवर्णसे भिन्न होनेसे नहीं किंतु उपपातकके प्रायश्चित्तकाही विषय है । और जो आपस्तंवने अन्य कुछ कहाहै कि चोरी और मदिराको पीकर सांवत्सर कृच्छ्र करै वह सुवर्णसे कम और माससे अधिक परिमाणके द्रव्यमें समझना जो तो सुमंतुने कहाहै कि सुवर्णका चोर मासतक आठ सहस्र गायत्रीसे घीकी आहुति प्रतिदिन दे, तीन रात्र उपवास और तप्तकृच्छ्रसे पवित्र होता है उसका पूर्वोक्त मासभर सुवर्णकी चोरीका जो प्रायश्चित्त उसके संग विकल्प समझना, और जो उसीने अन्य कहाहै कि सुवर्णका चोर वारह दिनतक वायुके भक्षणसे पवित्र होताहै, वहभी उसको समझना जो मनसे चोरीमें प्रवृत्त हुआ हो और स्वतःही हट गया हो यहांभी वालवृद्ध आदिकोंको आधा प्रायश्चित्त जानना और सुवर्णकी चोरीके समान कही जो अश्व, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भूमि, धेनु इनकी चोरी हैं, उनमेंभी आधाही प्रायाश्चित्त करना और जो चतुर्विंशति मतका वर्चन है कि द्विज अज्ञानसे चांदीको चुराकर चान्द्रायण व्रत करै, दश गद्याणकसे आगे और सौ तक दूना और सहस्र

---

१ स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा कृच्छ्रं सांवत्सरं चरेत् ।

१ सुवर्णस्तेयी मासं सावित्र्याष्टसहस्रमाज्याहुतीर्जुहुयात् । प्रत्यहं त्रिरात्रमुपवासं तप्तकृच्छ्रेण च पूतो भवात ।

३ सुवर्णस्तेयी द्वादशरात्रं वायुभक्षः पूतो भवति ।

४ रूप्यं हृत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणव्रतम् । गद्याणदशकादूर्ध्वमा शताद्द्विगुणं चरेत् ॥ आसहस्रात्तु त्रिगुणमूर्ध्वं हेमाविधिः स्मृतः । सर्वेषां धातुलोहानां षराकं तु समाचरेत् ॥ धान्यानां हरणे कृच्छ्रं तिलानामैन्दवं स्मृतम् । रत्नानां हरणे विप्रश्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥

तक तिगुना प्रायश्चित्त करै उससे आगे सुवर्णकी चोरीका प्रायश्चित्त कहा है । संपूर्ण धातु और लोहेकी चोरीमें पराक व्रत करै । धान्योंकी चोरीमें कृच्छ्र और तिलोंकी चोरीमें ऐंदव कहा है और रत्नोंकी चोरीमें ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करै । वहभी सहस्र गद्याणकसे अधिक चांदीकी चोरीमें सुवर्णकी चोरीके समान प्रायश्चित्त कहनेके लिये है । कुछ प्रायश्चित्तकी निवृत्तिके लिये नहीं । और जो रत्नोंकी चोरीमें चान्द्रायण कहा है वहभी सहस्र गद्याणकसे हीन मूल्यके रत्नकी चोरीमें जानना । उसके आगे सुवर्णकी चोरीके समान प्रायश्चित्त है ॥

भावार्थ—अपनी चोरी राजाके यहां न कहकर पुण्य व्रत (१२ वर्ष) को करता हुआ शुद्ध होता है अथवा अपने देहके तुल्य सुवर्ण वा ब्राह्मणके संतोष योग्य धनका दान करै ॥ २५८ ॥

इति सुवर्णस्तेयप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

तप्तेयःशयनेसार्धमायस्यायोषितास्वपेत् । गृहीत्वोत्कृत्यवृषणौनैर्ऋत्यांचोत्सृजेत्तनुम् ॥

पद—तप्ते ७ अयःशयने ७ सार्द्धम्ऽ—आयस्या ३ योषिता ३ स्वपेत् क्रि—गृहीत्वाऽ—उत्कृत्यऽ—वृषणौ २ नैर्ऋत्याम् ७ चऽ—उत्सृजेत् क्रि—तनुम् २॥

योजना—गुरुतल्पगः आयस्या योषिता सार्द्धं तप्ते अयःशयने स्वपेत् च पुनः वृषणौ उत्कृत्य गृहीत्वा नैर्ऋत्यां तनुम् उत्सृजेत् ॥

तात्पर्यार्थ—अब गुरुतल्पगमनका प्रायश्चित्त कहते हैं । (समा वा गुरुतल्पगः) इस आग्रिम श्लोकके गुरुतल्पग पदका यहां संबंध होता है । गुरुकी स्त्रीका गामी तपाई हुई लोहेकी स्त्रीकी प्रतिमाके संग तपाई हुई लोहेकी ऐसी शय्यापर सोवै कि जिसपर सोनेसे मरजाय इस प्रकार शयन करके देहको त्यागदे अर्थात् मरजाय और शयन भी मैंने गुरुकी स्त्रीके संग गमन किया ऐसे अपने कर्मको विदित करके करना । क्योंकि मनुकी स्मृतिमें गुरुतल्पग (अ० ११ श्लो० १०३) को पापको कहकरही यह प्रायश्चित्त कहा है । तैसेही स्त्रीका आलिंगन करके शयन करै । क्योंकि वृद्धहारीतकी स्मृति है कि गुरुतल्पग मिट्टी वा लोहेकी प्रतिमाको अग्निके समान तपाकर लोहेकी उस प्रतिमाके संग स्पर्श करके पवित्र होता है । तैसेही लोम और केशोंका मुंडन और देहमें घीको मलकर यह प्रायश्चित्त करै, क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि मुंडन और घीको मलकर तपाई हुई लोहेकी वा मिट्टीकी स्त्रीके संग स्पर्श करके मरनेसे पवित्र होता है । कदाचित् कोई शंका करै कि गुरुतल्पका गामी अपने पापको कहकर तपाई हुई लोहेकी शय्यापर सोवै अथवा जलती हुई प्रतिमाका स्पर्श करके मरनेपर वह शुद्ध होताहै । इस मनु (अ०११ श्लो०१०३) वाक्यके अनुरोधसे तपाये लोहेपर शयन और तपाई स्त्रीके संग स्पर्श ये दोनों पृथक् पृथक् प्रायश्चित्त हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि लोहेकी स्त्रीके संग सोवै, कहां सोवे इस आकांक्षापर तपाई हुई लोहेकी शय्यापर सोवै इस वचनसे आकांक्षा पूर्ण होती है इससे परस्पर सापेक्ष

---

१ गुरुतल्प्यभिभाष्यैनः ।

२ गुरुतल्पगो मृन्मयीमायसीं वा स्त्रियः प्रतिकृतिमग्निवर्णां कृत्वा कार्ष्णायसशयने अयोमय्या स्त्रीप्रतिकृत्यासमालिंग्य पूता भवति ।

३ निष्कालको घृताभ्यक्तस्तप्तां तां सूर्मीं मृन्मयीं वा परिष्वज्य मरणात्पूतो भवतीति विज्ञायते ।

४ गुरुतल्पोभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये । सूर्मीं ज्वलंतीं वाश्लिष्य मृत्युना स विशुध्यति ॥

होनेसे एकही प्रायश्चित्त है निरपेक्ष दो नहीं यह युक्त है, अथवा लिंगसहित वृषणोंको अपने हाथसे काटकर और अंजलिमें लेकर दक्षिण और पश्चिमके मध्यकी नैर्ऋति दिशामें मरणपर्यंत सीधी गतिसे गमन करके देहको त्यागदे। सोई मनु (अ० ११ श्लो० १०४) ने कहा है कि स्वयं लिंग और वृषणोंको काटकर अञ्जलिमें मरणपर्यंत सीधी गतिसे गमन करै और गमनभी पीछेको न देखकर करै । क्योंकि शंखलिखितकी स्मृति है कि छुरीसे लिंग और वृषणोंको काटकर न देखता हुआ गमन करै। इस प्रकार गमन करते हुएको जहां कुडच (भीत) आदिका प्रतिबंध (रोक) हो जाय तो मरणपर्यंत वहांही टिका रहै· क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि वृषण और लिंगको काटकर और अञ्जलीमें लेकर दक्षिण दिशाको गमन करै और जहां रुक जाय वहां ही मरणपर्यंत टिका रहै। सोई नारदने कहा है कि इनमें किसी स्त्रीके संग गमन करता हुआ गुरुतल्पग कहाता है और लिंगके काटनेसे अन्य उसमें दंड नहीं कहा है, इस प्रकार दंडके लिये कियाभी लिंगका छेदन पाप नाशके लियेभी होता है। इसी मरणांतिक दण्डके अभिप्रायसे मनुने कहा है (अ० ११ श्लो० ३१८) कि राजाओंने दिया है दण्ड जिनको ऐसे मनुष्य पापोंको करकेभी निर्मल हुए स्वर्गको उस प्रकार जाते हैं जैसे पुण्यात्मा संतजन। धनके दंडसेभी प्रायश्चित्त होता है क्योंकि मनुने ही कहा है (अ० ९ श्लो० २४०) कि शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तको करते हुए मनुष्योंके मस्तकपर राजा चिह्न (दाग) न करै किंतु उत्तम साहस दण्ड दे। इन दोनों मरणांतिक प्रायश्चित्तोंके मध्यमें एकभी प्रायश्चित्तके करनेसे गुरुतल्पग शुद्ध होता है। यहां गुरु शब्द मुख्य वृत्तिसे पितामें वर्तता है क्योंकि निषेक (वीर्यका सेचन) आदि कर्मोंको जो विधिसे करै और अन्नसे पालना करै वह ब्राह्मण गुरु कहाता है। मनु (अ० २ श्लो० १४२) के इस गुरुत्वके बोधक वाक्यमें निषेक आदिका कर्ता जनक (पिता) ही गुरु कहा है और योगीश्वर (याज्ञवल्क्य) ने निषेक आदि कर्मके अभिप्रायसे कहा है कि जो कर्मको करके इसको वेद पढावे वह गुरु होता है। कदाचित् कोई शंका करै कि गुरुशब्दका प्रयोग अन्यत्रभी देखते हैं। गुरु शिष्यका उपनयन कराकर इस वचनसे आचार्यमें थोडा वा बहुत वेदका जो उपकार करै उसकोभी गुरु जाने। इस मनु (अ० २ श्लो० १४९) के वचनमें उपाध्यायमें प्रयोग देखते हैं। व्यासनेभी अन्यत्र गुरुशब्दका

---

१ स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चांजलौ । नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥

२ क्षुरेण शिश्नवृषणावुत्कृत्यानवेक्षमाणो व्रजेत् ।

३ सवृषणं शिश्नमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्यत्रैव प्रतिहतस्तत्रैव तिष्ठेदा प्रलयात् ।

४ आसामन्यतमां गच्छन्गुरुतल्पग उच्यते । शिश्नस्योत्कर्त्तनात्तत्र नान्यो दण्डो विधीयते ॥

५ राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति संतः सुकृतिनो यथा ॥

१ प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् । नांक्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥

२ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥

३ स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।

४ उपनीय गुरुः शिष्यम् ।

५ स्वल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः । तमपीह गुरुं विद्यात् ॥

६ गुरवो मातृपितृपत्याचार्यविद्यादातृज्येष्ठभ्रातृऋत्विजो भयत्रातान्नदाता च ॥

प्रयोग दिखायाहै कि माता, पिता, पति, आचार्य, विद्याका दाता, ज्येष्ठभ्राता, ऋत्विज, भयसे त्राता और अन्नका दाता ये सब गुरु होते हैं। कदाचित् कोई शंका करै कि गुरु शब्दके अनेक अर्थकी कल्पनारूप दोष होगा सो ठीक नहीं, क्योंकि गुरु शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त पूजाकी योग्यता सबमें विद्यमान है और पूजाकी योग्यताको योगीश्वरने प्रवृत्तिनिमित्त दिखाया है कि ये पूर्व २ क्रमसे मान्य हैं और इन सबसे माता श्रेष्ठ है अर्थात् मान्य है, यह प्रारम्भ करके माता अत्यंत श्रेष्ठ है यह उपसंहार (समाप्ति) करकें सबको पूजाके योग्य कहा है। कदाचित् कोई शंका करै कि उपाध्यायसे दशगुना आचार्य और आचार्यसे सौगुना पिता होता है इस मनु (अ० २ श्लो० १४५) ने उपाध्यायसे अधिक आचार्यको और आचार्यसे अधिक पिताको ही अत्यंत श्रेष्ठ कहनेसे वही मुख्य गुरु है सो ठीक नहीं क्योंकि पैदा करनेवाले और वेद देनेवाले पिताओंमें ब्रह्म (वेद) देनेवाला पिता अत्यंत श्रेष्ठ है इस वचनसे मनु (अ० २ श्लो० १४६) ने आचार्यकोभी अत्यंत श्रेष्ठ कहा है। गौतमनेभी कहा है कि गुरुओंमें आचार्य श्रेष्ठ होता है और अत्यंत श्रेष्ठ मात्रसेही मुख्यता कहोगे तो सहस्र गुना कहनेसे माताकोही गुरुत्व होगा, तिससे यही युक्त है कि सब गुरु हैं और उनकी पत्नीके गमनकोही गुरुतल्पगमन कहते हैं। इस शंकाका समाधान कहते हैं कि (निषेकादीनि) यह पूर्वोक्त मनुका वचन निषेक आदिके कर्त्ता जनककोही गुरुत्वका बोधक है क्योंकि वहां अन्यका बोधक गुरु शब्द नहीं हो सकता। और जो व्यासका वचन है यह सेवा और पूजाकी विधिसे स्तुतिके लिये अन्य माता आदिका बोधक है। इससे गुरुके प्रतिपादनमें तत्पर (निषेकादि) इस मनुके वचनसे पिताकोही मुख्य गुरुत्व स्थित भया इसीसे वसिष्ठने आचार्य पुत्र शिष्य इनकी भार्याओंमें भी ऐसेही करै इस वचनसे आचार्य आदिकोंकी स्त्रियोंमेंभी अतिदेशसे गुरुतल्प प्रायश्चित्त कहाहै। तैसेही जातूकर्ण्य आदिकोंनेभी आचार्य आदिकोंकी भार्याओंके गमनमें गुरुतल्पव्रत करना कहाहै। यदि आचार्य आदि मुख्य गुरु होते तो गुरुके कहनेसेही व्रतकी प्राप्ति हो जाती अतिदेश मानना अनर्थक हो जाता और संवर्त्तने तो स्पष्टही पितृदार पद पढाहै कि पिताकी दारा जो मातासे भिन्न हैं उनके संग गमन करके उक्त प्रायश्चित्त करै। षट्त्रिंशत्के मतमें भी जानकर पिताकी सवर्णाके संग जो गमन करै वह उक्त प्रायश्चित्त करै यह कहाहै, इन वचनोंसेभी निषेक आदिका कर्त्ता पिताही मुख्य गुरु है और वह गुरुत्व चारों वर्णोंमें समान है। क्योंकि चारों वर्ण निषेक आदिके कर्त्ता हो सकते हैं इससे उस विप्रको गुरु कहते हैं। इस वचनमें विप्रपद उपलक्षण है इससे पिताकी पत्नीका गमनही महापातक है और गमन (भोग) भी वीर्यके त्याग पर्यंत कहता है, उससे पहिले निवृत्तिमें तो महापातकी नहीं होता उसमें तपाई लोहेकी शय्यापर और तपाई लोहेकी प्रतिमाके संग सोवै ये जो मरणांतिक दो प्रायश्चित्त हैं वे

१ एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी।
२ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
३ उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता।
४ आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणाम्।

१ आचार्यपुत्रशिष्यभार्यासु चैवम्।
२ आचार्यादेस्तु भार्यासु गुरुतल्पव्रतं चरेत्।
३ पितृदारान् समारुह्य मातृवर्ज्यं नराधमः।
४ पितृभार्यां तु विज्ञाय सवर्णां योऽधिगच्छति।
५ स विप्रो गुरुरुच्यते।

दानों अज्ञानसे जननीके गमनमें और जननीकी सवर्णा और उत्तम वर्ण जो सपत्नी (सौत) है ज्ञानसे उसके गमनमें जानने । क्योंकि षट्त्रिंशन्मतमें यह कहाहै कि जो मनुष्य ज्ञानसे पिताकी सवर्णा स्त्रीके संग और अज्ञानसे जननीके संग गमन करताहै वह विना मरे शुद्ध नहीं होता।जानकर जननीके गमनमें तो वसिष्ठने कहाहै कि मुण्डन और घीका उवटना करके गोमयकी अग्निमें चरणोंसे लेकर देहको दग्ध कर दे । कदाचित् कोई शंका करे कि माताकी सपत्नी और भगिनी और आचार्यकी पत्नी और पुत्री और अपनी पुत्री इनके संग गमनका कर्त्ता गुरुतल्पग कहाताहै । इस वचनमें अतिदेशके कहनेसे माताकी सपत्नीके गमनमें औपदेशिक (मुख्य) प्रायश्चित्त कहना युक्त है । इसका समाधान कहते हैं कि (पितृभार्यां सवर्णां) यहां सवर्णाके ग्रहणसे हीनवर्ण पिताकी सपत्नीके विषयमें यह अतिदेशका वचन है इससे कुछ विरोध नहीं । यह प्रायश्चित्तभी मुख्य पुत्रकोही है, अन्य पुत्र तो पुत्रके कार्यकारी हैं मुख्य नहीं । सोई मनु (अ०९ श्लो०१८०) ने कहाहै कि क्षेत्रज आदि क्रमसे कहे ग्यारह ये पुत्र बुद्धिमानोंने क्रियाके लोपसे पुत्रके प्रतिनिधि कहेहैं । उसमें दोनोंकी इच्छासे गमन (भोग) में प्रवृत्ति होय तो तपाई हुई लोहेकी शय्याका शयन रूप पहिला प्रायश्चित्त करै । यदि पुत्र स्वयं प्रोत्साहन (फुसलाना) करके गमन करै तो स्वयं वृषणोंको काट और अंजलीमें लेकर यह दूसरा प्रायश्चित्त करे । क्योंकि संबंधकी अधिकतासे प्रायश्चित्त गुरु कहाहै । यदि माताही पुत्रको प्रोत्साहन करै तो तपाई हुई लोहेकी शय्यामें शयन और जलती हुई लोहेकी स्त्रीकी प्रतिमाका स्पर्श इन दोनोंमें कोईसा प्रायश्चित्त जानना । जो तो शंखने वारह वर्षका प्रायश्चित्त कहाहै कि सुवर्णका चोर सुराप ब्रह्महा गुरुतल्पग ये महापातकी भूमिपर सोना जटा धारण पत्ते मूल फलका एक काल भोजन करैं इस प्रकार वारह वर्षके व्रतसे शुद्ध होते हैं । यह शंखका प्रायश्चित्त सजातीय वा उत्तम वर्णकी दाराके गमनमें वा अज्ञानसे गमनमें जानना और वहांही जानकर प्रवृत्ति और वीर्य सींचनेसे पहिले छः वर्षका और अज्ञानसे प्रवृत्तिमें तीन वर्षका प्रायश्चित्त जानना और जननीमें जानकर प्रवृत्ति और वीर्य सींचनेसे पहिले निवृत्तिमें वारह वर्षका और अज्ञानसे प्रवृत्तिमें छः वर्षका प्रायश्चित्त कल्पना करना । और जो संवर्त्तने (पितृदारान्) इस पूर्वोक्त वचनसे पिताकी भार्याकी शय्यापर चढने मात्रसे तप्तकृच्छ्र कहाहै वह हीनवर्ण गुरुकी दाराओंमें वीर्य सींचनेसे पहिले जानना ॥

भावार्थ-गुरुकी स्त्रीका गामी तपाई हुई लोहेकी शय्यापर तपाई हुई लोहेकी स्त्रीके संग सोवै अथवा लिंग और वृषणोंको काटकर और अंजलीमें लेकर नैर्ऋति दिशामें गमन करके देहको त्याग दे ॥ २५९ ॥

---

१ पितृभार्यां तु विज्ञाय सवर्णां योधिगच्छति । जननीं चाप्यविज्ञाय नाभृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥

२ निष्कालको घृताभ्यक्तो गोमयाग्निना पादप्रभृत्यात्मानमवदाहयेत् ।

३ मातुः सपत्नीं भगिनीं आचार्यतनयां तथा । आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः ॥

४ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥

१ अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः । एककालं समश्नीत वर्षे तु द्वादशे गते ॥ रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । व्रतेनैतेन शुध्यन्ति महापातकिनस्त्विमे ॥

प्राजापत्यंचरेत्कृच्छ्रंसमावागुरुतल्पगः ।
चांद्रायणंवात्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम्॥

पद-प्राजापत्यम् २ चरेत् क्रि-कृच्छ्रम् २ समाः १ वाऽ-गुरुतल्पगः १ चांद्रायणम् २ वाऽ-त्रीन् २ मासान् २ अभ्यसेत् क्रि-वेदसंहिताम् २ ॥

योजना-गुरुतल्पगः प्राजापत्यं कृच्छ्रं समाः चरेत् वा चांद्रायणं-वेदसंहितां त्रीन्मासान् अभ्यसेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अथवा आगे जो कहेंगे उस प्राजापत्य कृच्छ्रको तीन वर्षतक गुरुतल्पग करै। यहभी ब्राह्मणीके पुत्रको शूद्र जातिकी गुरुभार्याके जानकर गमनमें समझना। और जब व्यभिचारिणी (वेश्या) गुरुपत्नीके संग अज्ञानसे गमन करे तब तो वेदसंहिताके जपसहित तीन चांद्रायण करै और उसके संग जानकर गमन करै तो उशनोके कहे इस प्रायश्चित्तको करै कि गुरुतल्पका गामी संवत्सरतक ब्रह्महाका व्रत वा छः मासतक तप्तकृच्छ्र करै। और जानकर क्षत्रियाके गमनमें तो याज्ञवल्क्यका कहा नव वर्षका प्रायश्चित्त करे। क्योंकि माताकी सपत्नी और आचार्यकी पुत्रीके गमनमें गुरुतल्पवत करनेका ही अतिदेश है। और यह अतिदेशका प्रायश्चित्त सवर्णा गुरुभार्याके गमनमें नहीं होता, क्योंकि वहां जानकर मरणांतिक और अज्ञानसे वारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है। इससे क्षत्रियाके विषयमें मानना ही युक्त है। उसकेही जानकर अभ्यासमें तो मरणांतिक प्रायश्चित्त है। क्योंकि कण्वकी स्मृति है कि क्षत्रिया गुरुकी भार्याके संग जानकर गमन करके द्विज अंडकोशोंके विना लिंगको काटकर मरनेसे शुद्ध होता है। इसी विषयमें यदि वह प्रायश्चित्त न करना चाहै तो प्रायश्चित्तके स्थानमें याज्ञवल्क्यक कहा यह वधका दंडही जानना कि उसका और कामनासहित स्त्रीको लिंगका छेदन करके वध करै। और वैश्य जातिकी गुरुभार्याके संग जानकर गमनमें छः वर्षका प्रायश्चित्त है। इसीसे अन्य स्मृतिका वचन है कि ब्राह्मणीका पुत्र क्षत्रिया माताके संग गमनमें एक पादसे न्यून वारह वर्ष (९ वर्ष) का प्रायश्चित्त करै, इसी प्रकार अन्य वर्णोंमें जानना। अर्थात् यदि वही ब्राह्मणीका पुत्र माताकी सपत्नी वैश्यामें गमन करै तो छः वर्षका और शूद्रामें गमन करै तो तीन वर्षका प्रायश्चित्त करै। इसी प्रकार क्षत्रियाके पुत्रको वैश्या माताके गमनमें नौ वर्षका और शूद्रामें छः वर्षका प्रायश्चित्त है इसी प्रकार वैश्याके पुत्रकोभी समझना और वैश्यामें जानकर गमनके अभ्यासमें तो मरणांतिकही प्रायश्चित्त है। क्योंकि लौगाक्षिकी स्मृति है कि जो मनुष्य गुरुकी भार्या वैश्याके संग जानकर वारंवार गमन करै वह लिंगके अग्रभागको छेदन करके पापसे शुद्ध होता है। और शूद्रामें जानकर अभ्यास करनेमें तो वारह वर्षका प्रायश्चित्त है। क्योंकि उपमन्युकी स्मृति है कि यदि विप्र सावधानीमें गुरुकी शूद्रा भार्याके संग जानकर गमन

---

१ गुरुतल्पाभिगामी संवत्सरं ब्रह्महव्रतं षण्मासान्वा तप्तकृच्छ्रं चरेत् ।

२ मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा ।

३ मत्वा गत्वा पुनर्भार्यां गुरोः क्षत्रसुतां द्विजः । अंडाभ्यां रहितं लिंगमुत्कृत्य स मृतः शुचिः ॥

१ छित्त्वा लिंगं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा ।

२ ब्राह्मणी पुत्रस्य क्षत्रियायां मातरि गमने पादहान्या द्वादशवार्षिकमेवमन्यवर्णास्वपि ।

३ गुरोर्भार्यां तु यो वैश्यां मत्या गच्छेत्पुनःपुनः । लिंगाग्रं छेदयित्वा तु ततः शुद्ध्येत्स किल्बिषात् ॥

४ शूद्रायां तु कामतोऽभ्यासे द्वादशवार्षिकम् । पुनः शूद्रां गुरोर्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाहितः ॥ ब्रह्मचर्यमदुष्टात्मा संचरेद्द्वादशाब्दिकम् ॥

करै तो शुद्ध मनसे बारह वर्षका ब्रह्मचर्य रूप प्रायश्चित्त करै और क्षत्रिया गुरुभार्याके अज्ञानसे गमनमें यमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि आठवें कालमें भोजन ब्रह्मचर्य और व्रतको स्थान और आसनसे विहार और दिनमें तीन वार जलपान और भूमिमें शयन करता हुआ तीन वर्षमें उस पातकको दूर करता है। और क्षत्रियामें गमनके अभ्यासमें जातूकर्ण्यने कहा है कि गुरुकी क्षत्रिया भार्यामें अज्ञानसे गमन करनेसे अण्डमात्रको काटकर जीनेसे वा मरनेसे शुद्ध होता है और वैश्यामें तो अज्ञानसे करनेमें याज्ञवल्क्यका कहा प्राजापत्य कृच्छ्र कहा है। सोई वृद्धमनुने कहा है कि अज्ञानसे गुरुकी और पिताकी भार्याके गमनमें तीन वर्षतक कृच्छ्र करै उसीके अभ्यासमें हारीतने कहा है कि अज्ञानसे मोहित हुआ ब्राह्मण गुरुकी वैश्या भार्यामें अभ्याससे गमन करके जीवन पर्यंत षडंग ब्रह्मचर्य करे। शूद्रा गुरुभार्याके अज्ञानसे गमन करनेमें मनु (अ० ११ श्लो० १०५) के वा सुमंतुके कहे प्रायश्चित्तको करै कि खट्वांग धारै और चीर वस्त्र और श्मश्रु दाढी मूछ धारण किये विजन वनमें एक वर्षतक सावधानीसे प्राजापत्य कृच्छ्र करै। अथवा गुरुदाराका गामी कंटकी वृक्षकी शाखाका स्पर्श, भूमिमें शयन, त्रिकाल स्नान, भिक्षाका भोजन करता हुआ पवित्र होताहै। उसकेही अभ्यासमें मनुने (अ० ११ श्लो० १०६) कहा है कि अभ्यास करके इंद्रियोंको वशमें करके तीन मासतक चान्द्रायण करै और क्षत्रियामें जानकर प्रवृत्त हुआ जो मनुष्य वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्ति हुआ होय तो व्याघ्रके कहे इस प्रायश्चित्तको करै कि ब्राह्मण गुरुकी क्षत्रियास्त्रीके संग गमनमें तीन मासतक कृच्छ्र अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करै। यहां यह व्यवस्था है कि स्त्रीने प्रोत्साहन किया होय तो तीन मासतक प्राजापत्य करै, दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तीन मासतक अतिकृच्छ्र करै और स्वयं गुरुपत्नीका प्रोत्साहन करा होय तो तीन मासतक कृच्छ्रातिकृच्छ्र करै। और उसीमें जानकर प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें कण्वका कहा प्रायश्चित्त जानना कि एकबार क्षत्रिया गुरुकी भार्याके अज्ञानसे गमनमें द्विज चांद्रायण तप्तकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करै॥ स्त्रीने प्रोत्साहन किया होय तो अतिकृच्छ्र और दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्ति हुई होय तो तप्तकृच्छ्र और स्वयं पुत्रने प्रोत्साहन किया होय तो चांद्रायण करै और वैश्यामें जानकर प्रवृत्ति और वीर्य

---

१ कालेऽष्टमे वा भुंजानो ब्रह्मचारी सदा व्रती । स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ॥ अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तदपोहेत पातकम् ॥

२ गुरोः क्षत्रसुतां भार्यां पुनर्गत्वा त्वकामतः। अण्डमात्रं समुत्कृत्य शुद्ध्येज्जीवन्मृतोऽपि वा ॥

३ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रम् ।

४ गमने गुरुभार्यायाः पितृभार्यागमे तथा । अब्दत्रयमकामात्तु कृच्छ्रं नित्यं समाचरेत् ॥

५ अभ्यस्य विप्रो वैश्यायां गुरोरज्ञानमोहितः । षडंगं ब्रह्मचर्यं च संचरेद्यावदायुषम् ॥

६ खट्वांगी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥

७ गुरुदाराभिगामी संवत्सरं कण्टकिनीं शाखां परिष्वज्याधःशायी त्रिषवणी भैक्षाहारः पूतो भवति ।

१ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्य नियतेन्द्रियः ।

२ कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रं च तथा कृच्छ्रातिकृच्छ्रकम् । चरेन्मासत्रयं विप्रः क्षत्रियागमने गुरोः ॥

३ चांद्रायणं तप्तकृच्छ्रमतिकृच्छ्रं तथैव च । सकृद्गत्वा गुरोर्भार्यामज्ञानात्क्षत्रियां द्विजः ।

सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें कण्वका कहा यह प्रायश्चित्त है कि गुरुकी वैश्या भार्यामें जानकर एकवार गमन करनेमें तप्तकृच्छ्र, पराक और सांतपन कृच्छ्र एक मासतक द्विज करै। यहांभी दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तप्तकृच्छ्र स्वयं प्रोत्साहन करनेमें पराक और गुरुकी भार्याने प्रोत्साहन किया होय तो सांतपन करना। इसीमें अज्ञानसे प्रवृत्त हुआ होय तो प्रजापतिने कहा है कि द्विज अज्ञानसे एकवार गुरुकी वैश्या भार्यामें गमन करके पांच सात वा आठ दिनतक भोजन न करे। स्त्रीने प्रोत्साहन किया होय तो पांच रात, दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें सात रात, स्वयं प्रोत्साहन किया होय तो आठ राततक भोजन न करै। शूद्रामें जानकर प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें जावालिने कहा है कि ब्राह्मण गुरुकी शूद्रा भार्यामें जानकर एकवार गमन करके अतिकृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र और पराक व्रतको करै। स्त्रीने प्रोत्साहन किया होय तो अतिकृच्छ्र, दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें तप्तकृच्छ्र और स्वयं प्रोत्साहन करनेमें पराक करै। और उसीमें अज्ञानसे प्रवृत्तिमें दीर्घतमाने कहा है गुरुकी शूद्राभार्यामें सावधानीसे एकवार गमन करके प्राजापत्य सांतपन और सात रात्रतक उपवास करै। स्त्रीने प्रोत्साहन किया होय तो प्राजापत्य, दोनोंकी इच्छासे प्रवृत्तिमें सांतपन और स्वयं प्रोत्साहन करनेपर सात रात्रका उपवास करै इति। इसी मार्गसे अन्यभी स्मृतियोंके वचनोंकी विषयव्यवस्था कल्पना करनी। पुरुषोंके समान स्त्रियोंकोभी यहां महापातकता अविशेषसे है सोई कात्यायनने कहा है कि यह दोष और शुद्धि पतितोंकी जो कही प्रसक्त स्त्रियोंकी भी यही विधि कही है। इससे उसकीभी जानकर प्रवृत्तिमें अविशेषसे मरणांतिक प्रायश्चित्त है। इसीसे पुरुषको मरणांतिक प्रायश्चित्त कहकर स्त्रीकोभी योगीश्वरने लिंगका छेदन करके पुरुषका और सकाम स्त्रीका वधरूप मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाया है। और अकामसे तो मनु (अ० ११ श्लो० १८८) का कहा जो पतित स्त्रीभी यही व्रत करै, बारह वर्षका प्रायश्चित्त है वही आधा कल्पना करके करना। और जो मित्रकी भार्या, सजातीय कुमारी, अन्त्यज, सगोत्रा, पुत्रकी स्त्री इनका गमन गुरुतल्पके समान है इस वचनसे गुरुतल्पके समान पाप है और जो इस वचनसे अतिदेशके विषय कहे हैं कि पिता और माताकी भगिनी, मातुलकी स्त्री, पुत्रकी वधू, माताकी सपत्नी और अपनी भगिनी, आचार्यकी पुत्री और स्त्री और अपनी पुत्री इनमें गमनका कर्त्ता गुरुतल्पग कहाताहै। इनमें एक रात्रसे आगे जानकर अभ्यास किया होय तो क्रमसे छः वर्षका और नव वर्षका प्रायश्चित्त जानना। इसी विषयमें

१ तप्तकृच्छ्रं पराकं च तथा सांतपनं गुरोः। भार्यां वैश्यां सकृद्गत्वा बुद्ध्या मासं चरेद्द्विजः॥

२ पंचरात्रं तु नाश्नीयात्सप्ताष्टौ वा तथैव च। वैश्यां भार्यां गुरोर्गत्वा सकृदज्ञानतो द्विजः॥

३ अतिकृच्छ्रं तप्तकृच्छ्रं पराकं वा तथैव च। गुरोः शूद्रां सकृद्गत्वा बुद्ध्या विप्रः समाचरेत्॥

४ प्राजापत्यं सांतपनं सप्तरात्रोपवासकम्। गुरोः शूद्रां सकृद्गत्वा चरेद्विप्रः समाहितः॥

१ एष दोषश्च शुद्धिश्च पतितानामुदाहृता। स्त्रीणामपि प्रसक्तानामेष एव विधिः स्मृतः॥

२ छित्त्वा लिंगं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा।

३ एतदेव व्रतं कार्यं योषित्सु पतितास्वपि॥

४ सखिभार्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च। सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम्॥

५ पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि। मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा॥ आचार्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः॥

जानकर अभ्यासमें मरणांतिक प्रायश्चित्त है। सोई बृहत् यमने कहा है कि सजातीय कुमारी और अंत्यजा, सपिण्डकी स्त्री और पुत्रकी स्त्री इनमें वीर्यको सींचकर प्राणोंका त्याग करै। यहां अंत्यज मध्यम अंगिराके कहे ये जानने कि चाण्डाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहिक, आयोगव ये सात अंत्यावसायी होते हैं, रजक और चर्मकार आदि नहीं, क्योंकि उनमें लघु प्रायश्चित्त कहा है। तैसेही मनुं (अ० ११ श्लो० १७९) ने चाण्डाल, अंत्यज इनकी स्त्रियोंमें गमन और इनका भोजन और इनका प्रतिग्रह अज्ञानसे करे तो पतित होता है और ज्ञानसे करनेमें इनकी तुल्य हो जाता है। इस वचनसे चाण्डाल आदिकी तुल्यता कहकर जानकर अत्यंत अभ्यासमें मरणांतिक प्रायश्चित्त दिखाया है अर्थात् अज्ञानसे चांडालीगमनके अभ्याससे पतित होता है इससे पतितको कहा द्वादश प्रायश्चित्त करै और जानकर अत्यंत अभ्यास करै जो चाण्डालोंके तुल्य होजाता है, इससे बारह वर्षसे अधिक मरणांतिक प्रायश्चित्त करै। यह भी बहुत कालके अभ्यासमें है। एक रात्रके अभ्यासमें तो तीन वर्षका प्रायश्चित्त है। सोई मनुं (अ० ११ श्लो० १७८) ने कहाहै कि एकरात्रभर वृषलीके सेवनसे जो पाप द्विज करता है उस पापको भिक्षाका भोजन और जप इनको करता हुआ तीन वर्षमें नष्ट करता है। यहां वृषली शब्द चाण्डालीको कहता है। क्योंकि अन्य स्मृतिमें वृषलीशब्दका प्रयोग इनमें देखा है कि चाण्डाली, बन्धकी, वेश्या, रजस्वला कन्या और विवाही हुई सगोत्रा ये पांच वृषली कही हैं। बन्धकी स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) को कहते हैं। कदाचित् शंका करो कि यह अभ्यासका ज्ञान कैसे होगा इसका समाधान कहते हैं कि (यत्करोत्येकरात्रेण) इस पूर्वोक्त मनुके वचनमें एकरात्रेण यह अत्यंतसंयोगमें तृतीया है, अत्यंत संयोग गमनके अभ्यास विना नहीं हो सकता इससे गमनका अभ्यास जाना जाता है। इसीसे एक रात्रसे अधिक कालके अभ्यासमें पूर्वोक्त बारह वर्ष आदिका गुरुतल्प व्रत और अतिदेशसे पाया मरणांतिक प्रायश्चित्त जानना। और यदि चाण्डाली आदि स्त्रियोंके संग ज्ञानसे एकवार गमन करै तो यम आदिका कहा वर्ष दिनतक कृच्छ्र करै और अज्ञानसे दो चांद्रायण करै कि चाण्डाल और पुल्कस इनका भोजन और इनकी स्त्रियोंसे गमन जानकर करनेसे कृच्छ्राब्द और अज्ञानसे दो चांद्रायण करै। और (स्वयोनिष्वंत्यजासु च) इस एक वाक्यके समभिव्याहार (कथन) से यही व्यवस्था जाननी। मरणांतिक अग्नि प्रवेशको कहते हैं क्योंकि कात्यायनकी स्मृति है कि जननी, भगिनी, अपनी पुत्री, पुत्रकी वधू इनका गमन अतिपातक जानना। ये अतिपातकी अग्निमें प्रवेश करै यहां जननीके संग

१ रेतः सिक्त्वा कुमारीषु स्वयोनिष्वंत्यजासु च। सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते ॥

२ चाण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहिकस्तथा। मागधायोगवौ चैव सप्तैतेऽत्यावसायिनः ॥

२ चांडालांत्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च। पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥

४ यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः। तद्भैक्ष्यभुक् जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥

१ चाण्डाली बन्धकी वेश्या रजस्था या च कन्यका। ऊढा या च सगोत्रा स्याद्वृषल्यः पंच कीर्तिताः ॥

२ चाण्डालपुल्कसानां तु भुक्त्वा गत्वा च योषितम्। कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥

३ जनन्यां च भगिन्यां च स्वसुतायां तथैव च। स्नुषायां गमनं चैव विज्ञेयमतिपातकम् ॥ अतिपातकिनस्त्वेते प्रविशेयुर्हुताशनम् ॥

एकवार गमनमें और भगिनी आदिके संग वारंवार गमनमें अग्निमें प्रवेश जानना । क्योंकि जननीका गमन महापातक है और भगिनी आदिका गमन महापातकके अतिदेशका विषय अतिपातक है, उन दोनोंकी तुल्यता नहीं हो सकती । और जो वृहत् यमने कहा है कि चाण्डाली, पुल्कसी, म्लेच्छी, पुत्रकी वधू, भगिनी, सखी, मातापिताकी भगिनी, निक्षिप्त (सौंपीहुई) शरणागत, मातुलानी, संन्यासिनी, अपने गोत्रकी और राजा शिष्य और गुरु इनकी स्त्री इनके संग गमन करके चान्द्रायण करै । और जो अंगिराका वचन है कि पतित और अंत्यजोंकी स्त्रीके संग गमन और भोजन और प्रतिग्रह लेकर मासोपवास वा चान्द्रायण करै । वृहद्यम और अंगिराके यह दोनों वचन गुरुतल्पके अतिदेश (तुल्य) के विषयोंमें जानकर जो प्रवृत्त हुआ हो उसकी वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिमें जानने । और जो यह संवर्तका वचन है, भगिनी माताकी वहिन और अन्य मातासे पैदा हुई भगिनी इन स्त्रियोंके संग मोहसे गमन करके तप्तकृच्छ्र करै, वह वचन भी पूर्वोक्त विषयमें अज्ञानसे प्रवृत्त हुआ हो और वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्ति होगई हो वहां ही जानना । जो अत्यन्त व्यभिचारिणी इन (पूर्वोक्त) के संग जानकर वा अज्ञानसे गमन करै तो भी येही चांद्रायण तप्तकृच्छ्र रूप प्रायश्चित्त क्रमसे जानने । और गुरुकी भोगी हुई भी साधारण स्त्रियोंके गमनमें गुरुतल्पत्वका दोष नहीं है। क्योंकि व्याघ्रकी स्मृति है कि जातिमें कहा और पराई दाराका भोगरूप पारदार्य और कन्याका दूषण और गुरुतल्पगमनका दोष ये सब साधारण स्त्रियोंमें नहीं होते । इसी प्रकार अन्य भी छोटे वडे प्रायश्चित्तोंके वचनोंको ढूंढकर उनकी विषयव्यवस्था समझनी । हम ग्रंथके विस्तारभयसे नहीं लिखते ॥

भावार्थ–गुरुतल्पग वर्ष दिनतक प्राजापत्य कृच्छ्र करै वा चांद्रायण और वेदकी संहिताका तीन मासतक अभ्यास करै ॥ २६० ॥

इति गुरुतल्पप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

एभिस्तुसंवसेद्योवैवत्सरंसोपितत्समः ।
कन्यांसमुद्वहेदेषांसोपवासामकिंचनाम् ॥

पद–एभिः ३ तुऽ–संवसेत् क्रि–यः १ वैऽ–वत्सरम् २ सः १ अपिऽ–तत्समः १ कन्याम् २ समुद्वहेत् क्रि–एषाम् ६ सोपवासाम् २ अकिंचनाम् २ ॥

योजना–एभिः (महापातकिभिः) सह यः वत्सरं संवसेत् सः अपि तत्समः भवति एषाम् (महापातकिनाम्) सोपवासाम् अकिंचनां कन्यां समुद्वहेत् ॥

तात्पर्यार्थ–अब संसर्गीके प्रायश्चित्तको कहते है। इन पूर्वोक्त ब्रह्महा आदिकोंके संग जो मनुष्य वर्ष दिनतक अत्यन्त संवास (संग आचरण) करै वह भी उनकेही समान हो जाता है अर्थात् जो जिसके संग आचरण करै वह उसकेही प्रायश्चित्तको करै ऐसे उसके प्रायश्चित्तके

---

१ चाण्डालीं पुल्कसीं म्लेच्छीं स्नुषां च भगिनीं सखीम् । मातापित्रोः स्वसारं च निक्षिप्तां शरणागताम् ॥ मातुलानीं प्रव्रजितां स्वगोत्रां नृपयोषितम् । शिष्यभार्यां गुरोर्भार्यां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।

२ पतितान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । मासोपवासं कुर्वीत चान्द्रायणमथापि वा ।

३ भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् । एता गत्वा स्त्रियो मोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

१ जात्युक्तं पारदार्यं च कन्यादूषणमेव च । साधारणस्त्रियो नास्ति गुरुतल्पत्वमेव च ॥

अतिदेशके लियेही तत्सम पदका ग्रहण किया है कुछ पातकके अतिदेशार्थ नहीं। क्योंकि वह तो जो उनके संग संवास करै इतने कहनेसेही सिद्ध था। यहां यद्यपि अतिदेश है तो भी संपूर्णही बारह वर्षका प्रायश्चित्त करै क्योंकि संसर्गी साक्षात् महापातकी है। अपि शब्दसे यह दिखाया कि केवल महापातकीका संयोगीही उसके समान नहीं होता किंतु अतिपातकी, पातकी, उपपातकी आदिकोंके मध्यमें जो जिसके संग संसर्ग करै वह भी उसके समान होनेसे उसके ही प्रायाश्चित्तको करै, इसीसे संपूर्ण प्रायश्चित्तको कहकर मनु (अ० ११ श्लो० २८१) ने कहा है कि जो मनुष्य इनके मध्यमें जिस पतितके संग संसर्ग करै वह संसर्गके पापकी शुद्धिके लिये उसके ही व्रतको करै। विष्णुने भी सामान्यसे उपपातकी आदि पापियोंके संसर्गमें उसकेही प्रायश्चित्तका भागी दिखाया है कि जिस पापात्माके संग संसर्ग करै वह उसके ही व्रतको करै। इसीसे मनु (अ० ११ श्लो० १८९) ने सामान्यसे सब पापियोंका निषेध किया है कि पापियोंके संग प्रायश्चित्त करनेसे पहिले किसी अर्थको न करै और पापी भी प्रायश्चित्त किये विना सज्जनोंका संसर्ग न करै, यह भी बारह वर्षतक जो पतित हैं उनकेही जानकर संसर्गके विषयमें है। क्योंकि देवलकी स्मृति है कि जानता हुआ नर पतितके संग वर्ष दिनतक वसकर उसके मेलसे वह भी वर्षके अंतमें पतित होता है, अज्ञानसे संसर्गमें तो वसिष्ठने कहाहै कि ब्राह्म (पठनपाठन), यौन (विवाह आदि), स्रौव(होम आदि) से पतितके संग जो व्यवहार किया होय तो पतितोंसे जो धन मिला हो उसको त्यागदे और उनके संग न वसै और उत्तर दिशामें जाकर भोजनका त्याग और संहिताका पाठ करता हुआ पवित्र होता है यह शास्त्रसे जानते हैं। तैसेही वचन है कि ब्रह्महा, मद्यप, चोर और गुरुतल्पग और जो उनके संग वसै ये महापातकी होते हैं इससे सब निर्दोष है। (तैः) इस तृतीयात सर्वनामसे परामर्श(जाने) किये ब्रह्महा आदि चारका संसर्गीही महापातकी कहा है उस संसर्गीका जो संसर्गी है वह महापातकी नहीं होता, कदाचित् कोई शंका करै कि महा पातकीका संसर्गही महापातकी होनेमें हेतु है कुछ ब्रह्महा आदि विशेषोंका संसर्ग महापातकी होनेमें हेतु नहीं है, क्योंकि उनके संसर्गमें एक न एकका व्यभिचार है इससे यहां ब्रह्महा आदिका जो संसर्गीका संसर्गी उसको भी महापातकीका संसर्ग हैही, उसकोभी महापाताकत्व हो जायगा, क्योंकि न होनेमें निषेध कोई नहीं है, इस शंकाका समाधान कहते हैं कि यह बात होजाय यदि अन्य प्रमाणसे महापातकित्व होजाय और शब्दसेही महापातकित्व मानोगे तो तिस शब्दसे ऐसे महापातकित्व नहीं हो सकता, क्योंकि तैः इस प्रकृत (प्रकरणके) विशेषोंके बोधक सर्वनामसे ब्रह्महा आदि विशेषोंके संसर्गकोही महापातकित्वके हेतुत्वकी

---

१ यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः। स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥

२ पापात्मना येन सह संयुज्येत स तस्यैव व्रतं कुर्यात्।

३ एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं कंचित्समाचरेत्।

४ पतितेन सहोषित्वा जानन्संवत्सरं नरः। मिश्रितस्तेनसोऽब्दांते स्वयं च पतितो भवेत् ॥

१ पतितसंप्रयोगे तु ब्राह्मेण यौनेन वा स्रौवेण वा यास्तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदुदीचीं दिशं गत्वाऽनश्नन्संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते।

२ ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः। एते महापातकिनः यश्च तैः सह संवसेत् ॥

प्रतीति हुई है इसीसे प्राप्तिके अभावसेही प्रतिषेधका अभावभी हेतु नहीं है इससे संसर्गीके संसर्गियोंको द्विजातिके कर्मोंसे हानि नहीं होती, प्रायश्चित्त तो होताही है । कदाचित् कहो कि संसर्गीका संसर्गी पतित नहीं तो प्रायश्चित्त कैसा, सो ठीक नहीं क्योंकि प्रायश्चित्त करनेसे पहिले किसी पापीके संग व्यवहार न करै इस पूर्वोक्त मनु (अ० ११ श्लो० १८९) वचनमें सामान्यसे पापी मात्रके निषेधसे महापातकीके संसर्गीका संसर्गभी निषिद्ध है, इससे पतित न भी हो तोभी पादहीन (कम) प्रायश्चित्त युक्तही है । क्योंकि व्यासका वचन है कि जो मनुष्य जिनके संग वर्ष दिनतक वसै वहभी उसके तुल्य हो जाता है और वहभी तिस २ पापीके व्रतको पादहीन करै । इसी प्रकार चौथे और पांचवेंको भी जानकर संसर्गमें आधा और चौथाई प्रायश्चित्त जानना । इससे यह सिद्ध भया कि साक्षात् ब्रह्महा आदिके संसर्गीहीको ब्रह्महा आदिके प्रायश्चित्तकी प्राप्ति है, संसर्गीके संसर्गीको नहीं । यहां यद्यपि जानकर करनेमें ब्रह्महा आदिकोंको मरणांतिक प्रायश्चित्त कहा है तोभी संसर्गीको उसका अतिदेश नहीं है । क्योंकि वह उसकेही व्रतको करै इस पूर्वोक्त वचनसे व्रतकाही अतिदेश है और मरण व्रतरूप नहीं है । इससे यहां जानकर कियेभी संसर्गमें बारह वर्षका और अज्ञानसे किये संसर्गमें उसका आधा प्रायश्चित्त है और संसर्ग अपने निबंधन कर्मोंके भेदसे अनेक प्रकारका होता है । सोई वृद्ध बृहस्पतिने कहा है कि एक शय्यापर बैठना, पंक्ति, भांड, पाक, अन्नमिश्रण, याजन, अध्यापन, यौन, सहभोजन यह नव ९ प्रकारका संकर कहाहै, वह अधर्मोंके संग न करना । देवलनेभी कहा है कि संलाप, स्पर्श, निश्वास, संग, यान, आसन और अशन (भोजन), याजन, अध्यापन, योनि इनके करनेसे मनुष्योंको पापका संक्रम (प्राप्ति) होता है । अर्थात् एक शय्यापर बैठने, एक पक्तिमें भोजन, एक पात्रमें पाक, अन्नका मिश्रण (संसर्ग उसके अन्नका भोजन), पतितको वा पतितसे यज्ञ कराना, पतितको पढाना वा पतितसे पढना, यौन पतितको कन्या देना वा पतितसे कन्या लेना, सह भोजन (एक पात्रमें भोजन), संलाप (भाषण), देहका स्पर्श, निःश्वास (पतितके मुखकी वायुका स्पर्श), सहयान (एक अश्व आदि पर चढना) इन सबके मध्यमें जिस किसी कर्मसे कितने कालमें पतित होता है वह तो वृद्धविष्णुने कहा है कि पतितके संग एकयान, भोजन, आसन, शयन इनको करै तो वर्षदिनमें और योन, स्रौव, मुख्य कर्मोंसे सद्यः (उसी समयमें) पतित होता है । यहां एक भोजनसे एक पंक्तिमें भोजन लेना । क्योंकि एक पात्रमें भोजन तो सद्यःही पतित करता है । क्योंकि देवलकी स्मृति है कि याजन, योनिसंबंध, स्वाध्याय (पढना), सह भोजन इनको पतितके संग करके सद्यःही पतित होता है और स्रौव शब्दसे याजन और मुख्य शब्दसे अध्यापन लेना । यद्यपि (यौनस्रौवमुख्यैः)

१ यो येन संवसेद्वर्षं सोपि तत्समतामियात् । पादहीनं चरेत्सोपि तस्यतस्य व्रतं द्विजः ॥

२ एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डपंक्त्यन्नमिश्रणम् । याजनाध्यापने योनिस्तथा च सहभोजनम् ॥ नवधा संकरः प्रोक्तो न कर्तव्योऽधमैः सह ॥

१ संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् । याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥

२ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् । एकयानभोजनासनशयनैर्यौनस्रौवमुख्यैस्तु संबंधैः सद्य एव॥

३ याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः ॥

-यह द्वंद्व समासका निर्देश है तोभी वे पृथक् २ ही सद्यःपतनके हेतु हैं। क्योंकि सुमंतुकी स्मृति है कि पतितोंके संग यौन स्रौव मुख्य संबंधोंके मध्यमें अन्यतम (कोईसा) संबंधको जो करै उसकोभी वही प्रायश्चित्त है। एक यान आदि तो चारों मिलकरही पतनके हेतु हैं। क्योंकि (एकयानभोजनासनशयनैः) यह इतरेतरयोग द्वंद्व समासका निर्देश है। प्रत्येकका करना पतनका हेतु तो नहीं तोभी दोषका हेतु तो है ही। क्योंकि इस पराशरके वचनसे निरपेक्षभी पापके हेतु कहेहैं। कि आसन, शयन, यान, संभाषण, सहभोजन इनसे इस प्रकार पाप लगते हैं जैसे जलमें तेलकी बूंद। संलाप, स्पर्श, निश्वास ये तीनों यान आदि चारोंमें प्रसंगसे होतेहैं अर्थात् संग बैठेगा तो संभाषण होहीगा। इससे समुच्चित (मिले हुए सब) ही पापके हेतु हैं पृथक् २ नहीं। क्योंकि ये सब अल्प दोष हैं और पापके हेतु तो हैंही। क्योंकि (संलापस्पर्शनिःश्वास) यह देवलका वचन दिखाय आये हैं, इससे संलाप आदिके विना सहयान आदि चारोंके करनेमें पंचम भागसे कम बारह वर्षका प्रायश्चित्त करै और संलाप भी करै तो पूर्ण प्रायश्चित्त करै ऐसे कहनेसे इनके संग वर्ष दिन-तक जो वसे वहभी उनकी तुल्य होता है इस योगीश्वरके वचनमें भी सहयान आदि चारही लेने युक्त हैं। इससे संलाप आदि पृथक् पतित करनेके हेतु नहीं हैं। इससे मनु (अ० ११ श्लो १८०) ने यान आदि चारही पतितके हेतु कहे हैं कि पतितके संग वर्ष दिनतक यान आसन भोजन करता हुआ वर्ष दिनमें पतित होता है और याजन अध्यापन यौनसे वर्ष दिनमें पतित नहीं होता किंतु शीघ्रही पतित होता है। यहां आसनका ग्रहण शयनका भी उपलक्षण है और यहां पूर्वोक्त विष्णुवचनके अनुरोधसे और तैसेही इस वचनसे (यानासनाशनात्) इस व्यवहित (चौथा) पदके संग पहिले दो पदोंका संबंध है और तीसरे पदके संग नहीं। पतितके संग सदैव वर्ष दिनतक भोजन आसन शय्या आदि करता हुआ एक वर्षमें पतित होता है। कदाचित् कहो कि मनुके वचनमें अनन्वय दोष होगा अर्थात् (यानासनाशनात्) यह पंचमी (पतितेन सहाचरन्) इसके संग नहीं घटसकती सो ठीक नहीं क्योंकि यान आसन और अशन आदिके हेतु आचरन् नाम आचार करता हुआ पतित होता है ऐसे भेदकी विवक्षासे संबंध होजायगा। जैसे इस आधेय संमतिसे यज्ञ करके इस श्रुतिमें तृतीयाका अन्वय होता है अथवा आचरन् इस शतृ प्रत्ययसे हेतुका अर्थ प्रतीत है इससे (यानासनाशनात्) यह पंचमी द्वितीयाके अर्थमें है और याजन अध्यापन यौनसे तो वर्ष दिनमें पतित नहीं होता किंतु शीघ्र होता है यह अर्थभी पूर्वोक्त वचनोंके अनुरोधसेही जानना। इससे यौन आदि चारोंके करनेसे शीघ्रही पतित होता है और यान आदि चारोंके अभ्यासको वर्ष दिनतक निरंतर करनेसे पतित होता है यह युक्त है। और (वत्सरं सोपि तत्समः) इस श्लोकमें वत्सरं यह अत्यंत संयोगमें द्वितीया देखतेहैं इससे

१ यः पतितैः सह यौनमुख्यस्रौवानां संबंधानामन्यतमं संबंधं कुर्यात्तस्याप्येतदेव प्रायश्चित्तम्।

आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात्। संक्रामंति हि पापानि तैलबिंदुरिवांभसि॥

३ एभिस्तु संवसेद्यो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः।

४ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्। याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात्॥

१ एतया पुनराधेयसंमितयेष्ट्वा।

व्यवहित दिनोंकी गिनती करनी जब तीन सौ साठ ३६० दिन संसर्गके पूरे होजाय तो पातितका प्रायश्चित्त होता है और उससे न्यूनमें तो अन्यही प्रायश्चित्त है। सोई पराशरने कहा है कि अज्ञानसे पतित आदिकोंका संग पांच दिन दश वा वारह दिन मासार्द्ध एक मास वा तीन मास आधा वर्ष वा एक वर्ष करे तो पहिले पक्षमें त्रिरात्र, दूसरेमें कृच्छ्र, तीसरेमें सांतपन कृच्छ्र, चौथेमें दशरात्र, पांचवेंमें पराक, छठेमें एक चान्द्रायण, सातवेंमें दो चान्द्रायण और आठवें पक्षमें छः मासतक कृच्छ्र करे । और वर्ष दिनसे अधिक संसर्गमें तो उनके समान होता है। जानकर संसर्गमें तो विशेषकर अन्य स्मृतिमें कहा है। सुमंतुका वचन है कि पांच दिनके संसर्गमें कृच्छ्र, दशदिनके संसर्गमें तप्त कृच्छ्र, आधे मासमें पराक और एक मासके संसर्गमें चान्द्रायण करे, तीन मासके संसर्गमें कृच्छ्र और चांद्रायण करे, छः मासके संसर्गमें षाण्मासिक कृच्छ्र करे, वर्ष दिनके संसर्गमें मनुष्य वर्ष दिनतक चान्द्रायण करे। यहां वर्ष दिनका संसर्ग कुछ न्यून (कम) लेना क्योंकि पूरे वर्षके संसर्गमें मनुआदिकोंने वारह वर्षका प्रायश्चित्त कहा है। जो बृहस्पतिका वचन है कि याजन अध्यापन आदिसे एक आसन और शय्यासे पतितके संग छः मासतक संसर्ग करे तो आधा प्रायश्चित्त करे । याजन अध्यापन यौन एक पात्र भोजनोंको छः मासमें पतित करनेके हेतु कहता है, यह वचन अज्ञानसे अत्यंत आपत्ति पंचमहायज्ञ आदिका याजन और व्याकरण आदि अंगोंका पढाना और दुहिता और भगिनीके संग संबंधसे भिन्न संबंधमें जानना। क्योंकि उत्तम २ याजन आदिकोंसे तो शीघ्रही पतित होना कह आये हैं। इसी प्रकार पुत्री भगिनी पुत्रवधू उनके गामी जो अतिपातकी हैं उनके संसर्गियोंको ज्ञानसे नव वर्षकी और अज्ञानसे साढे चार वर्षकी कल्पना करनी। सखी पितृव्यदारा (चाची) आदिकोंके गामी जो पातकी हैं उनके संसर्गियोंको जानकर छः वर्षका और अज्ञानसे तीन वर्षका और उपपातकी आदिके संसर्गियोंकोभी जानकर तीन मासके और अज्ञानसे डेढ मासके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। पुरुषोंके समान स्त्रीभी महापातकी आदिकोंके संसर्गसे पतित होती हैं। सोई शौनकने कहा है कि जो पुरुषोंके पतनके निमित्त हैं वही स्त्रियोंके भी हैं और ब्राह्मणी हीन वर्णकी सेवामें अधिक पतित होती है। इससे स्त्रियोंको भी जिन महापातकी आदिकोंके मध्यमें जिसके संग संसर्ग हो उसकेही प्रायश्चित्तको आधा करके करावे। इसी प्रकार वालक वृद्ध और आतुरोंको जानकर आधा और अज्ञानसे चौथाई तैसेही अनुपनीत

---

१ संसर्गमाचरन्विप्रः पतितादिष्वकामतः । पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ मासार्द्धं मासमेकं वा मासत्रयमथापि वा । अब्दार्द्धमेकमब्दं वा भवेदूर्ध्वं तु तत्समः ॥ त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरत् । चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तृतीये पक्ष एव तु ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे ततः । षष्ठे चान्द्रायणं कुर्यात्सप्तमे चैन्दवद्वयम् ॥ अष्टमे च तथा पक्षे षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ॥

२ पक्षाहे तु चरेत्कृच्छ्रं दशाहे तप्तकृच्छ्रकम् । पराकस्त्वर्धमासे स्यान्मासे चान्द्रायणं चरेत् ॥ मासत्रये प्रकुर्वीत कृच्छ्रं चान्द्रायणोत्तरम् । षाण्मासिके तु संसर्गे कृच्छ्रं त्वब्दार्धमाचरेत् ॥ संसर्गे त्वाब्दिके कुर्यादब्दं चान्द्रायणं नरः ॥

१ षाण्मासिके तु संसर्गे याजनाध्यापनादिना । एकत्रासनशय्याभिः प्रायश्चित्तार्धमाचरेत् ॥

२ पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतति ।

बालकोंको जानकर चौथाई अज्ञानसे उसका आधा प्रायश्चित्त जानना। इति दिक्, अर्थात् यही मार्ग है। अब पतितके संसर्गके निषेधसे निषिद्ध जो यौन संबंध उसका कहीं २ प्रतिप्रसव (विधि) कहते हैं। इन पतितोंकी पतित अवस्थामें उत्पन्न जो कन्या, वह यदि सोपवास हो अर्थात् संसर्गकालका उचित प्रायश्चित्त करचुकी हो और अकिंचन हो अर्थात् जिसने वस्त्र अलंकार आदि पिताका धन ग्रहण न कियाहो उसेभी भली प्रकारसे विवाह ले। कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह सूचित किया है कि त्यागा है पतितका संसर्ग जिसने ऐसी कन्याको स्वयंही विवाहै, पतितके हाथसे ग्रहण न करै। ऐसे होनेसे पतितके संग यौन संबंधके निषेधका विरोध भी होगा। यही अर्थ वृद्ध हारीतने स्पष्ट किया है कि पतितकी ऐसी कुमारीको तीर्थमें वा अपने घरमें विवाह ले जो वस्त्रोंसे रहित हो, जिसने अहोरात्र उपवास किया हो और जिसको प्रातःकालके समय शुक्ल नवीन वस्त्र धारण कराये हों, और जिसने ऊंचे स्वरसे तीन वार यह कह दिया हो कि न मैं इनकी हूं और न ये मेरे हैं। तैसेही इनकी कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह दिखाया कि कन्यासे भिन्न इन पतितोंकी संतान संसर्गके अयोग्य है। इसीसे वसिष्ठने कहा है कि स्त्रीको छोडकर पतितसे उत्पन्न पतित होता है। क्योंकि वह स्त्री परगामिनी (परघर जानेवाली) है, अरिक्था (जो पतितका धन न हो) है उसको विवाह ले॥

भावार्थ-इन पतितोंके संग वर्ष दिनतक जो वसै वहभी पतितोंके तुल्य होता है, और किया है उपवास जिसने ऐसी इनकी अकिंचन कन्याको विवाह ले॥ २६१॥

इति संसर्गप्रायश्चित्तप्रकरणम्।

चांद्रायणंचरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्यतु। शूद्रोधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्ध्यति॥

पद-चांद्रायणम् २ चरेत् क्रि-सर्वान् २ अवकृष्टान् २ निहत्यऽ-तुऽ-शूद्रः १ अधिकारहीनः १ अपिऽ-कालेन ३ अनेन ३ शुद्ध्यति क्रि-॥

योजना-सर्वान् अवकृष्टान् निहत्य चांद्रायणं चरेत्, अधिकारहीनः अपि शूद्रः अनेन कालेन शुद्ध्यति॥

तात्पर्यार्थ-अब प्रतिलोमोंके वधका प्रायश्चित्त कहते हैं। प्रतिलोमसे उत्पन्न सूत मागध आदि प्रत्येकको हतकर चांद्रायण करै। सोई शंखने कहा है कि संपूर्ण अवकृष्टोंके प्रत्येकके वधमें चांद्रायण करै, अथवा अंगिराके कहे पराकको करै, कि संपूर्ण अत्यंजोंके गमन भोजन संप्रमापण (मारना) में पराकसे शुद्धि होती है यह अंगिराका कथन है, उसमेंभी जानकर सूत आदिके वधमें चांद्रायण और अज्ञानसे सूतके वधमें पराक, वैदेहिकके वधमें पादोन पराक, चांडालके वधमें द्विपाद पराक, मागधके वधमें पादोन पराक, क्षत्ताके वधमें द्विपाद पराक, आयोगवके वधमें दोपाद पराक करै, इसी प्रकार चांद्रायणकेभी तारतम्य (न्यून अधिक) की कल्पना करनी। जो ब्रह्मगर्भका वचन है कि प्रतिलोमसे पैदा

१ पतितस्य तु कुमारीं विवस्त्रामहोरात्रोपोषितां प्रातःशुक्लेनाहतेन वाससाच्छादितां नाहमेतेषां न ममैते इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत्।

२ पतितेनोत्पन्नः पतितो भवति अन्यत्र स्त्रियाः सा हि परगामिनी तामरिक्थामुद्वहेत्।

१ सर्वेषामवकृष्टानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणम्।

२ सर्वांत्यजानां गमने भोजने संप्रमापणे। पराकेण विशुद्धिः स्यादित्यांगिरसभाषितम्॥

३ प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधिः स्मृतः। अंतरप्रभवानां च सूतादीनां चतुर्द्विपद्।

हुई स्त्रियोंको मासकी अवधि कही है और अंतरमें उत्पन्न सूत आदिकी चार दो छः मास प्रायश्चित्तकी अवधि कही है। वह वचन आवृत्ति (वारंवार) के विषयमें है। उसमें सूतके वधमें छः मास, वैदेहिकके वधमें चार मास, चांडालके वधमें दो मास होते हैं, इस प्रकार योग्यतासे अन्वय समझना। तैसेही मागधके वधमें चार मास, क्षत्ताके वधमें दो मास, आयोगवके वधमें तीन मासका प्रायश्चित्त जानना, यह व्यवस्था है। अब आधे श्लोकसे शूद्रोंकी शुद्धिको कहते हैं। यद्यपि शूद्र जप आदि संस्कारसे हीन हैं तथापि बारह वर्षके समयका जो प्रायश्चित्त रूप व्रत उससे शुद्ध होता है। यहां शूद्रका ग्रहण स्त्री और प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकाभी उपलक्षण हैं। यद्यपि शूद्रको गायत्रीके जपका असंभव है तथापि नमस्कार मंत्रका जप होता है। इसीसे स्मृत्यंतरमें कहा है कि शूद्रको उच्छिष्ट भोजन और नमस्कार मंत्रकी आज्ञा शास्त्रकारोंकी है। अथवा वचनके बलसे जप आदिसे रहित ही व्रतको करै। क्योंकि अंगिराकी तिससे शूद्रको प्राप्त (देख) होकर धर्मका ज्ञाता धर्म मार्गमें स्थित शूद्रको जप और होमसे विवर्जित प्रायश्चित्त दे (बतावे)। तैसे औरभी अंगिराने ही कहाहै कि जो और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर शूद्र काल (१२) वर्षसे वा दान देनेसे वा उपवासोंसे अथवा द्विजोंकी सेवासे शुद्ध होता है। जो मनु (अ० ४ श्लो० ८०) का वचन कि शूद्रको न धर्मका उपदेश करै और न व्रत करनेको कहै। शूद्रको व्रतके निषेधका बोधक है वह उस शूद्रके विषयमें है जो शरण न आया हो। और जो स्मृत्यंतरका वचन है कि इन कृच्छ्रोंको सदैव तीन वर्षमें करै, और इन कृच्छ्रोंमें शूद्रका अधिकार नहीं कहाहै। वह वचन उन कृच्छ्रोंके विषयमें है जो कामनाके लिये किये हो। इससे स्त्री और शूद्रोंको और प्रतिलोमजोंको तीन वर्षके समान व्रतका अधिकार है यह सिद्ध भया। जो गौतमको वचन है कि प्रतिलोम धर्मसे हीन होते हैं, वह उपनयन आदि विशिष्ट धर्मके अभिप्रायसे है॥

भावार्थ–संपूर्ण प्रतिलोमोंको मारकर चांद्रायण करै। और अधिकारसे हीनभी शूद्र इसी बारह वर्षतक कालसे शुद्ध होता है॥ २६२॥

इति पंचमहापातकप्रायश्चित्तप्रकरणम्।

पंचगव्यंपिबेद्गोघ्नोमासमासीतसंयमः।
गोष्ठेशयोगोनुगामीगोप्रदानेनशुद्ध्यति॥

पद–पंचगव्यम् २ पिबेत् क्रि–गोघ्नः १ मासम् २ आसीत क्रि–संयमः १ गोष्ठेशयः १ गोनुगामी १ गोप्रदानेन ३ शुद्ध्यति क्रि– ॥

कृच्छ्रंचैवातिकृच्छ्रंचचरेद्वापिसमाहितः।
दद्यात्त्रिरात्रंचोपोष्यवृषभैकादशास्तुगाः॥

पद–कृच्छ्रम् २ चऽ–एवऽ–अतिकृच्छ्रम् २ चऽ–चरेत् क्रि–वाऽ–अपिऽ–समाहितः १ दद्यात् क्रि–त्रिरात्रम् २ चऽ–उपोष्यऽ–वृषभैकादशा २ तुऽ–गाः २ ॥

योजना–गोघ्नः पंचगव्यं पिबेत् संयमः सन् मासम् आसीत–गोष्ठेशयः गोऽनुगामी सः गोप्रदानेन शुध्यति–च पुनः समाहितः

---

१ उच्छिष्टं चास्य भोजनमनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः।

२ तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम्। प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम्॥

३ शूद्रः कालेन शुद्ध्येत गोब्राह्मणहिते रतः। दानैर्वाप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषया तथा॥

४ न शूद्रायोपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्।

१ कृच्छ्राण्येतानि कार्याणि सदा वर्षत्रयेण तु॥ कृच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते॥

२ प्रतिलोमा धर्महीनाः।

बालकोंको जानकर चौथाई अज्ञानसे उसका आधा प्रायश्चित्त जानना। इति दिक्, अर्थात् यही मार्ग है। अब पतितके संसर्गके निषेधसे निषिद्ध जो यौन संबंध उसका कहीं २ प्रतिप्रसव (विधि) कहते हैं। इन पतितोंकी पतित अवस्थामें उत्पन्न जो कन्या, वह यदि सोपवास हो अर्थात् संसर्गकालका उचित प्रायश्चित्त करचुकी हो और अकिंचन हो अर्थात् जिसने वस्त्र अलंकार आदि पिताका धन ग्रहण न कियाहो उसेभी भली प्रकारसे विवाह ले। कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह सूचित किया है कि त्यागा है पतितका संसर्ग जिसने ऐसी कन्याको स्वयंही विवाहै, पतितके हाथसे ग्रहण न करै। ऐसे होनेसे पतितके संग यौन संबंधके निषेधका विरोध भी होगा। यही अर्थ वृद्ध हारीतने स्पष्ट किया है कि, पतितकी ऐसी कुमारीको तीर्थमें वा अपने घरमें विवाह ले जो वस्त्रोंसे रहित हो, जिसने अहोरात्र उपवास किया हो और जिसको प्रातःकालके समय शुक्ल नवीन वस्त्र धारण कराये हों, और जिसने ऊंचे स्वरसे तीन वार यह कह दिया हो कि न मैं इनकी हूं और न ये मेरे हैं। तैसेही इनकी कन्याको विवाह ले यह कहनेसे यह दिखाया कि कन्यासे भिन्न इन पतितोंकी संतान संसर्गके अयोग्य है। इसीसे वसिष्ठने कहा है कि स्त्रीको छोडकर पतितसे उत्पन्न पतित होता है। क्योंकि वह स्त्री परगामिनी (परघर जानेवाली) है, अरिक्था (जो पतितका धन न हो) है उसको विवाह ले ॥

भावार्थ–इन पतितोंके संग वर्ष दिनतक जो वसै वहभी पतितोंके तुल्य होता है, और किया है उपवास जिसने ऐसी इनकी आकिंचन कन्याको विवाह ले ॥ २६१ ॥

इति संसर्गप्रायश्चित्तप्रकरणम्।

चांद्रायणंचरेत्सर्वानवकृष्टान्निहत्यतु।
शूद्रोधिकारहीनोपिकालेनानेनशुद्ध्यति ॥

पद–चांद्रायणम् २ चरेत् क्रि–सर्वान् २ अवकृष्टान् २ निहत्यऽ–तुऽ–शूद्रः १ अधिकारहीनः १ अपिऽ–कालेन ३ अनेन ३ शुद्ध्यति क्रि–॥

योजना–सर्वान् अवकृष्टान् निहत्य चांद्रायणं चरेत्, अधिकारहीनः अपि शूद्रः अनेन कालेन शुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ–अब प्रतिलोमोंके वधका प्रायश्चित्त कहते हैं। प्रतिलोमसे उत्पन्न सूत मागध आदि प्रत्येकको हतकर चांद्रायण करै। सोई शंखने कहा है कि संपूर्ण अवकृष्टोंके प्रत्येकके वधमें चांद्रायण करै, अथवा अंगिराके कहे पराकको करै, कि संपूर्ण अत्यंजोंके गमन भोजन संप्रमापण (मारना) में पराकसे शुद्धि होती है यह अंगिराका कथन है, उसमेंभी जानकर सूत आदिके वधमें चांद्रायण और अज्ञानसे सूतके वधमें पराक, वैदेहिकके वधमें पादोन पराक, चांडालके वधमें द्विपाद पराक, मागधके वधमें पादोन पराक, क्षत्ताके वधमें द्विपाद पराक, आयोगवके वधमें दोपाद पराक करै, इसी प्रकार चांद्रायणकेभी तारतम्य (न्यून अधिक) की कल्पना करनी। जो ब्रह्मगर्भका वचन है कि प्रतिलोमसे पैदा

१ पतितस्य तु कुमारीं विवस्त्रामहोरात्रोपोषितां प्रातःशुक्लेनाहतेन वाससाच्छादितां नाहमेतेषां न ममैते इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत्।

२ पतितेनोत्पन्नः पतितो भवति अन्यत्र स्त्रियाः सा हि परगामिनी तामरिक्थामुद्वहेत्।

१ सर्वेषामवकृष्टानां वधे प्रत्येकं चांद्रायणम्।

२ सर्वांत्यजानां गमने भोजने संप्रमापणे। पराकेण विशुद्धिः स्यादित्यांगिरसभाषितम् ॥

३ प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधिः स्मृतः। अतरप्रभवानां च सूतादीनां चतुर्द्विपद्।

हुई स्त्रियोंको मासकी अवधि कही है और अंतरमें उत्पन्न सूत आदिकी चार दो छः मास प्रायश्चित्तकी अवधि कही है। वह वचन आवृत्ति (वारंवार) के विषयमें है । उसमें सूतके वधमें छः मास, वैदेहिकके वधमें चार मास, चांडालके वधमें दो मास होते हैं, इस प्रकार योग्यतासे अन्वय समझना । तैसेही मागधके वधमें चार मास, क्षत्ताके वधमें दो मास, आयोगवके वधमें तीन मासका प्रायश्चित्त जानना, यह व्यवस्था है। अब आधे श्लोकसे शूद्रोंकी शुद्धिको कहते हैं । यद्यपि शूद्र जप आदि संस्कारसे हीन हैं तथापि बारह वर्षके समयका जो प्रायश्चित रूप व्रत उससे शुद्ध होता है। यहां शूद्रका ग्रहण स्त्री और प्रतिलोमसे उत्पन्नोंकाभी उपलक्षण हैं । यद्यपि शूद्रको गायत्रीके जपका असंभव है तथापि नमस्कार मंत्रका जप होता है । इसीसे स्मृत्यंतरमें कहा है कि शूद्रको उच्छिष्ट भोजन और नमस्कार मंत्रकी आज्ञा शास्त्रकारोंकी है । अथवा वचनके बलसे जप आदिसे रहित ही व्रतको करै। क्योंकि अंगिराकी तिससे शूद्रको प्राप्त (देख) होकर धर्मका ज्ञाता धर्म मार्गमें स्थित शूद्रको जप और होमसे विवर्जित प्रायश्चित्त दे (बतावे) । तैसे औरभी अंगिराने ही कहाहै कि जो और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर शूद्र काल (१२) वर्षसे वा दान देनेसे वा उपवासोंसे अथवा द्विजोंकी सेवासे शुद्ध होता है । जो मनु (अ० ४ श्लो० ८०) का वचन कि शूद्रको न धर्मका उपदेश करै और न व्रत करनेको कहै । शूद्रको व्रतके निषेधका बोधक है वह उस शूद्रके विषयमें है जो शरण न आया हो । और जो स्मृत्यंतरका वचन है कि इन कृच्छ्रोंको सदैव तीन वर्षमें करै, और इन कृच्छ्रोंमें शूद्रका अधिकार नहीं कहाहै । वह वचन उन कृच्छ्रोंके विषयमें है जो कामनाके लिये किये हो । इससे स्त्री और शूद्रोंको और प्रतिलोमजोंको तीन वर्षके समान व्रतका अधिकार है यह सिद्ध भया । जो गौतमका वचन है कि प्रतिलोम धर्मसे हीन होते हैं, वह उपनयन आदि विशिष्ट धर्मके अभिप्रायसे है ॥

भावार्थ–संपूर्ण प्रतिलोमोंको मारकर चांद्रायण करै। और अधिकारसे हीनभी शूद्र इसी बारह वर्षतक कालसे शुद्ध होता है ॥ २६२ ॥

इति पंचमहापातकप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

पंचगव्यंपिबेद्गोघ्नोमासमासीतसंयमः ।
गोष्ठेशयोगोनुगामीगोप्रदानेनशुद्ध्यति ॥

पद–पंचगव्यम् २ पिबेत् क्रि–गोघ्नः १ मासम् २ आसीत क्रि–संयमः १ गोष्ठेशयः १ गोनुगामी १ गोप्रदानेन ३ शुद्ध्यति क्रि– ॥

कृच्छ्रंचैवातिकृच्छ्रंचचरेद्वापिसमाहितः ।
दद्यात्त्रिरात्रंचोपोष्यवृषभैकादशास्तुगाः ॥

पद–कृच्छ्रम् २ चऽ–एवऽ–अतिकृच्छ्रम् २ चऽ–चरेत् क्रि–वाऽ–अपिऽ–समाहितः १ दद्यात् क्रि–त्रिरात्रम् २ चऽ–उपोष्यऽ–वृषभैकादशा २ तुऽ–गाः २ ॥

योजना–गोघ्नः पंचगव्यं पिबेत् संयमः सन् मासम् आसीत–गोष्ठेशयः गोऽनुगामी सः गोप्रदानेन शुध्यति–च पुनः समाहितः

१ उच्छिष्टं चास्य भोजनमनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः ।

२ तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम् । प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ॥

३ शूद्रः कालेन शुद्ध्येत गोब्राह्मणहिते रतः । दानैर्वाप्युपवासैर्वा द्विजशुश्रूषया तथा ॥

४ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ।

१ कृच्छ्राण्येतानि कार्याणि सदा वर्षत्रयेण तु ॥ कृच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते ॥

२ प्रतिलोमा धर्महीनाः ।

सन् कृच्छ्रं च पुनः अतिकृच्छ्रं चरेत् । च पुनः त्रिरात्रम् उपोष्य वृषभैकादशाः गाः दद्यात् ॥

तात्पयार्थ—अब उपपातकोंमें प्रथम गोवधके प्रायश्चित्तको कहते हैं। गौको जो हते उसे गोघ्न कहते हैं। यहां 'हन् हिंसायां' इस धातुसे 'मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिकसे क प्रत्यय होता है। वह गोघ्न मास भर सावधानीसे बैठा रहै क्या करता हुआ इस अपेक्षामें कहते हैं, पंचगव्यको अर्थात् गौके जो गोमूत्र गोमय दधि दूध घृत पांच हैं उनको शास्त्रोक्त विधिसे मिलाकर पीवै। अन्य भोजनके त्यागसे भोजनके कार्यमें उनकाही विधान है। गोष्ठेशय रहै प्राप्त हुए शयनके अनुवादसे गोष्ठकी विधिसे और दिनमें शयनको निषेध है इससे रात्रिमें गोशालामें सोवै। और गोनुगामी गौओंके जो अनु (पीछे) गमन करै उसे गोनुगामी कहते हैं। अर्थात् गौओंके पीछे गमन करना ही जिसका व्रत है। यहां 'व्रते' इस सूत्रसे णिनि प्रत्यय होता है। इससे जिन गौओंके गोष्ठमें सोवै, प्रातःकाल वनमें जाती हुई उन्हीं गौओंके पीछे गमन करै। (अनुगच्छेत्) अनुकूल गमन करै यह कहनेसे जब वे गो चलैं तभी पीछे २ आप चल दे, जब वे खडी हो जांय तब चलै तो पीछे गमन नहीं हो सकता इससे आपभी खडा होजाय यह अर्थात् जानागया। और अनुगमनके विधानसेही जब सायंकालको वे गोष्ठमें चले तब उनके संग पीछे २ गोष्ठमें प्रवेश करै यह भी अर्थात् सिद्ध है। ऐसे करता हुआ मासके अंतमें एक गौके दान करनेसे शुद्ध होता है अर्थात् गोहत्याका दोष निवृत्त हो जाता है। यहां तक एक व्रत हुआ। गोष्ठमें शयन और गौओंका अनुगमन यहां भी (दुसरे व्रतमें) लेते हैं और कृच्छ्रकी विधिसे पंचगव्यके आहार (भोजन) की तो निवृत्ति होती है इससे मासभर निरंतर सावधान होकर कृच्छ्र करै और गोष्ठमें सोवै और गौओंका अनुगमन करै। यह दूसरा व्रतहै। इसीसे जाबालेने मासभर प्राजापत्य पृथक् प्रायश्चित्त कहा है, कि अज्ञानसे गौको हते तो मासभर प्राजापत्य करै और गौओंका हितकारी और गौओंका अनुगामी वह गोदान करनेसे शुद्ध होताहै। अथवा तिसी प्रकार अतिकृच्छ्र करै। यह तीसरा व्रत है। कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रका लक्षण आगे कहेंगे। अथवा तीन रात्र उपवास करके वृषभ (बैल) है ग्यारहवां जिनमें ऐसी दश गौ दे। यह चौथा व्रत है। यह चार व्रत हैं उनमें अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणकी गौका वध करै तो उपवास करके एक वृषभ दश गौओंका दान तीन रात्र उपवास जानना। क्योंकि श्रेष्ठ स्वामीकी और उत्तम गुणवाली गौके वधमें गुरु प्रायश्चित्त आगे कहेंगे। क्षत्रियकी गौके उसी प्रकार वधमें मास भर पंचगव्यका भोजनरूप प्रथम प्रायश्चित्त है। यहां मास भर पंचगव्यका भोजन अत्यंत स्वल्प है, इससे मासोपवासके तुल्य है, तिससे छः छः उपवासोंसे एक एक प्राजापत्यकी कल्पना करने पर पांच कृच्छ्रोंके प्रत्याम्नायसे पांच गौ और एक गोदान मासके अंतमें इस प्रकार छः गौ होती हैं। और पूर्वोक्त ब्राह्मणकी गौके वधमें एक बैल दश गौ और तीन रात्रका उपवास है, इससे यह प्रायश्चित्त उससे लघु है। कदाचित् कहो कि ब्राह्मणकी गौओंको गुरुत्व कैसे है, इसका उत्तर यह है कि नारदने देवता, ब्राह्मण, राजा इनका द्रव्य उत्तम जानना इस वचनसे ब्राह्मणके द्रव्यको उत्तम कहाहै और (गोषु-

---

१ प्राजापत्यं चरेन्मासं गोहंता चेदकामतः। गोहितो गोनुगामी स्याद्गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥

२ देवब्राह्मणराज्ञां तु विज्ञेयं द्रव्यमुत्तमम्।

ब्राह्मणसंस्थासु) इस वचनसे दंडभी अधिक दिखाय आये हैं और वैश्यकी उसी प्रकार गौके वधमें मासभर अतिकृच्छ्र करै । पहिले आद्य अतिकृच्छ्रमें नव दिनतक पाणिपूरान्न (अंजलिभर) भोजन कहा है, अन्तके कृच्छ्रमें तीन रात्र उपवास कहा है, इस प्रकार अतिकृच्छ्रके धर्म्मसे मास व्रत करनेपर छः रात्र उपवास होता है और चौवीस दिन पाणिपूर अन्नका भोजन तिससे कृच्छ्रके प्रत्याम्नाय (बदला) की कल्पनासे किंचित् न्यून पांच गौ होती हैं । इससे पहिले दोनों व्रतोंसे यह लघु है तिससे वैश्यकी गौके वधमें यही व्रत युक्त है । उसी प्रकार शूद्रकी गोहत्यामें मासभर दूसरा प्राजापत्य व्रत है, वहां सार्द्ध दो प्राजापत्य (अढाई) के प्रत्याम्नायसे किंचित् अधिक दो गौ होती हैं । इससे इसको पहिले तीनोंसे अत्यंत लघु होनेसे शूद्रकी गोहत्याके विषयमें मानना उचित है, और ये चारों प्रायश्चित्त साक्षात् तो वधकर्ताके अनुग्राहक, प्रयोजक, अनुमंताओंमें गुरु लघु भावके तारतम्यकी अपेक्षासे पूर्वोक्त विषयमें ही युक्त करने । जो विष्णुने तीन व्रत कहे हैं कि गोघ्न (गौका हंता) मासभरतक तीन पल पंचगव्य भक्षण करै अथवा पराक व्रतको करै वा चान्द्रायण करै । और जो कश्यपका वचन है कि गौको मारके उसके चर्मको ओढे हुए गोष्ठमें सोवे, त्रिकाल स्नान और नित्य पंचगव्यका भोजन करै । और जो शातातपका वचन है कि मासभर पंचगव्यका भोजन करै । ये पांचों प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्यके कहे पंचगव्य भोजनके समान विषयमें समझने । और जो शंख और प्रचेताओंने कहा है कि गौका हंता पंचगव्यका भोजन और पच्चीस रात्रतक उपवास करै और शिखासहित मुण्डन करके गौके चर्मको धारण करै और गौओंका अनुगमन करै, गोष्ठमें सोवे और एक गोदान करै यह प्रायश्चित्त याज्ञवल्क्यके कहे मासातिकृच्छ्र व्रतके विषयमें समझना । और पूर्वोक्त तीन रात्र उपवास करके एक बैल दश गौ देना अत्यंत गुणवाले हंताको जानना । इसी विषयमें जो पंचगव्य पीनेको असमर्थ है उसको कश्यपका कहा हुआ दूसरा प्रायश्चित्त जानना कि छठे कालमें दूधको पीवे, गमन करती हुई गौओंके पीछे गमन करै और वे सुखसे बैठी होंय तो बैठ जाय और अत्यंत कूदकर न चले और न अत्यंत विषम (कठिन) भूमिमें उतारै, अल्पजल जिसमें होय वहां जल न पिलावै, अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराके तिलधेनु दे । और इसमेंभी जो असमर्थ है उसको पैठीनसीका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि गौका हंता मासतक अंजली भर तण्डुलोंकी पकाई यवागू (लपसी) का भोजन और गौओंको प्यार करता हुआ शुद्ध होता है । जो सुमंतुका वचन है कि गोहंताको गौका दान गोष्ठमें

१ गोघ्नस्य पंचगव्येन मासमेकं पलत्रयम् । प्रत्यहं स्यात्पराको वा चान्द्रायणमथापि वा ॥

२ गां हत्वा तच्चर्मणा प्रावृतो मासं गोष्ठेशयस्त्रिषवणस्नायी नित्यं पंचगव्याहारः ।

३ मास पंचगव्याहारः ।

१ गोघ्नः पंचगव्याहारः पंचविंशतिरात्रमुपवसेत्सशिखं वपनं कृत्वा गोचर्मणा प्रावृतो गाश्चानुगच्छन् गोष्ठेशयो गां च दद्यात् ।

२ मासं पंचगव्येनेति षष्ठे काले पयोभक्षो वा गच्छन्तीष्वनुगच्छेत्तासु सुखोपविष्टासु चोपविशेन्नातिप्लुतं गच्छेन्नातिविषमेणावतारयेन्नाल्पोदके पाययेदन्ते ब्राह्मणान्भोजयित्वा तिलधेनुं दद्यात् ।

३ गोघ्नो मासं यवागूं प्रसृतितन्दुलशृतां भुंजानो गोभ्यः प्रियं कुर्वन् शुद्ध्यति ।

४ गोघ्नस्य गोप्रदानं गोष्ठे शयनं द्वादशरात्रं पंचगव्यप्राशनं गवानुगमनं च ।

ओना द्वादश रात्र पंचगव्य भोजन और गौ-ओंका अनुगमन प्रायश्चित्त है। और जो संवे-[1] र्तने कहा है कि सक्तु यावक भिक्षाका अन्न दूध दही घी इनको एकवार क्रमसे आधे मास-भर तक सावधान होकर भोजन करै, फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपनी शुद्धिके लिये गोदान करै। जो बृहस्पतिने[2] कहा है कि द्वादश रात्रतक पंचगव्य भोजन करै ये तीनों प्राय-श्चित्तभी याज्ञवल्क्यके कहे मासभर प्राजाप-त्यके विषयमें वा मृतकतुल्य गोहत्याके विष-यमें वा विषम देशके दुःखसे पैदा हुई व्याधिसे जो मरी हो उसके विषयमें जानने। यह पूर्वोक्त संपूर्ण प्रायश्चित्त अज्ञानके विषयमें जानना और जब ऐसीही तुच्छ ब्राह्मणकी तुच्छ गौको मारै तो मनु[3] (अ० ११ श्लो० १०९ से ११६) ने मासभर यवागूका पीना दो मासतक चौथे कालमें हार्विष्यका भोजन, तीन मासतक शाक आदिका भोजन, एक बैल और दश गौओंका दान करे, ये तीन व्रत कहे हैं कि उपपातकसे युक्त गौका हंता मासभर जौको पीवे, मुंडन क-रके गोष्ठमें वसै, गीले चर्मसे ढका रहै और चौथे कालमें खारे और लवणको छोडकर प्रमित भोजन करै, और इंद्रियोंको वशमें करके दो मासतक गोमूत्रसे स्नान करै और दिनमें उन गौओंके पीछे चले, ऊर्ध्व (सीधा) खडा हुआ रजको पीवै और गौओंकी सेवा और नमस्कार करके रात्रिमें वीरासनसे वसै, और गौओंके खडे होनेपर खडा होजाय और चलती हुइयोंके पीछे चले और जब बैठें तब बैठ-जाय औरं सावधान रहै और मत्सरको त्यागदे और आतुर और अभिशस्त (हिंसित) चोर व्याघ्र आदिके भयसे पतित वा पंकमें धसीको संपूर्ण उपायोंसे छुटावे और उष्ण-काल, वर्षा, शीत, अत्यंत पवनके चलनेपर यथाशक्ति गौकी रक्षा विना किये अपनी रक्षा न करै और अपनी अथवा अन्यकी गृह, खेत, खलियानमें भक्षण करती गौको न बतावे और न पीते हुए वत्सको बतावे। इस विधिसे जो मनुष्य गौओंका अनुगमन करता है वह गोहत्याके पापको तीन मासमें नष्ट क-रता है और भली प्रकार इस व्रतको करके एक बैल दश गौ दे। गौ न होंय तो वेदके ज्ञाता-ओंको सर्वस्वका दान करै। ये तीनों व्रत याज्ञ-वल्क्यके कहे मासभर प्राजापत्य, मासभर पं-चगव्यका भक्षण और एक बैल दश गौओंके दान सहित तीन रात्र उपवास इन तीनों व्रतोंके विषयमें क्रमसे जानने। और जो अंगिराने[1] मनुके कहे कर्तव्य सहित

---

[1] सक्तुयावकभैक्षाशी पयोदधिघृतं सकृत्। एता-न्वि क्रमशोऽश्नीयान्मासार्द्धं च समाहितः॥ ब्राह्मणान्भो-जयित्वा तु गां दद्यादात्मशुद्धये॥

[2] द्वादशरात्रं पंचगव्याहारः।

[3] उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्। कृ-तवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणार्द्रेण संवृतः॥ चतुर्थकालमश्नी-यादक्षारलवणं मितम्। गोमूत्रेण चरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः॥ दिवानुगच्छेत्ता गास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत्। शुश्रूषित्वा नमस्कृत्वा रात्रौ वीरासनं वसेत्॥ तिष्ठंतीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्। आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः॥ आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः। पतितां पंकलग्नां वा सर्वो-पायैर्विमोचयेत्॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः॥ आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेथ वा खले। भक्षयंतीं न कथयेत्पिबंतं चैव वत्सकम्॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गा अनुगच्छति। स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मा-सैर्व्यपोहति॥ वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्॥

[1] अक्षारलवणं रूक्षं षष्ठे कालेस्य भोजनम्। गो-मतीं वा जपेद्विद्यामोंकारं वेदमेव च॥ व्रतवद्धारये-द्दंडं समंत्रां चैव मेखलाम्॥

तीन मासके व्रतको कहकर अधिक कहा है कि खारा और लवण जिसमें न हो ऐसा रूखा अन्न भोजन छठे कालमें करै, वा गोमती विद्या, ओंकार, वेद इनका जप करै और यज्ञोपवीतके समान दंड और मंत्रों सहित मेखलाको धारण करै । यह वचन मनुके कहे विषयमें जानना । इसी प्रकार पुष्ट तरुण आदि किंचित् विशेष गुणोंसे युक्त गौकी हत्यामें प्रायश्चित्त जानना । क्योंकि पुष्ट और तरुणसे भिन्न गौमें आधा प्रायश्चित्त इस वचनसे देखते हैं कि अत्यन्त बालक, अत्यन्त कृश, अत्यन्त वृद्ध, रोगिन, गौको मारकर पूर्व विधिसे द्विज आधे व्रतको करै और जब याज्ञवल्क्यके कहे मास अतिकृच्छ्र व्रत जिससे करना पडै ऐसी तुच्छ स्वामीकी जातिमात्र (नामकी) गौको जानकर नष्ट करता है, तब जो अज्ञानियोंको कहा है वह ज्ञानसे दूना करै, इस न्यायसे अज्ञानियोंको कहा पूर्वोक्त ही मासातिकृच्छ्र व्रत द्विगुण करै और जो हारीतने गोचर्मके धारणको और मनुके कहे कर्तव्यको कहकर कहा है कि एक बैल दश गौ देकर तेरहवें १३ मासमें पवित्र होता है वह वचन सवनमें स्थित जो वेदपाठी उसकी गौके अज्ञानसे वधमें जानना । और जो वासिष्ठने षाण्मासिक कृच्छ्र तप्तकृच्छ्र करना कहा है कि गौको हते तो उसके गीले चर्मको ओढकर छः मासतक कृच्छ्र तप्तकृच्छ्र करै । वृषभ और वेहत् (जिसके गर्भ न रहे) गौका दान करै । और जो देवलने कहा है कि गोघ्नपुरुष छः मासतक गौके चर्मसे आच्छादित रहै, गोव्रजमें निवास करै, गौओंके संग विचरै तो पापसे छूटता है । ये दोनों प्रायश्चित्त हारीतके कहे प्रायश्चित्तके विषयमें हैं । यदि वही जानकर किया होय तो कात्यायनका कहा त्रैवार्षिक प्रायश्चित्त जानना कि गोघ्न (गोहत्यारा) गौके चर्मको ओढकर गोष्ठमें वसै और निरन्तर गौओंका अनुगमन करै और मौन धारै, धीर आसन आदिसे वर्षा, शीत, धूप, क्लेश, अग्नि, भय, पंक इनसे पीडित गौओंको सब प्रकारके यत्नोंसे छुडावै । ऐसे करनेसे तीन वर्षमें पवित्र होता है । और जो शंखने त्रैवार्षिक कहा है कि शूद्रहत्या, रजस्वलाका गमन इनमें पाद (चौथाई) प्रायश्चित्त करै, वह भी कात्यायनके कहे विषयके समान विषयमें है । और जो यमने अंगिराके कहे कर्तव्यको कहकर सहस्र गोदान शत गोदान युक्त दो मासके दो व्रत कहे हैं कि भली प्रकार किया है व्रत जिसने ऐसा गोघ्न सहस्र गौ वा सौ गौ दे । गौ न होंय तो वेदपाठियोंको सर्वस्वका निवेदन (दान) करदे । उन दोनों प्रायश्चित्तोंमें जब सवनमें स्थित वेदपाठी अत्यन्त दुर्गति, बहुत कुटुम्बी ब्राह्मणकी कपिला कर्म (होम आदि) के योग्य, गर्भिणी, बहुत दूधवाली तरुण आदि गुणवाली गौको

---

१ अतिबालामतिकृशामतिवृद्धां च रोगिणीम् । हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्द्धं व्रतं द्विजः ॥

२ विहितं यदकामानां कामात्तद्द्विगुणं चरेत् ।

३ वृषभैकादशाश्च गा दत्त्वा त्रयोदशे मासे पूतो भवति ।

४ गां चेद्धन्यात्तस्याश्चर्मणार्द्रेण परिवेष्टितः षण्मासान् कृच्छ्रतप्तकृच्छ्रावातिष्ठेद्वृषभवेहतौ दद्यात् ।

१ गोघ्नः षण्मासांस्तच्चर्मपरिवृतो गोव्रजनिवासी गोभिरेव सहचरन् प्रमुच्यते ।

२ गोघ्नस्तच्चर्मसंवीतो वसेद्गोष्ठेऽथवा पुनः । गाश्चानुगच्छेत्सततं मौनी वीरासनादिभिः ॥ वर्षशीतातपक्लेशवह्निपंकभयार्दिताः । मोक्षयेत्सर्वयत्नेन पूयते वत्सरैस्त्रिभिः ॥

३ पादं तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा । गोवधे च तथा कुर्यात् परस्त्रीगमने तथा ॥

४ गोसहस्रं शतं वापि दद्यात्सुचरितव्रतः । अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥

निर्गुण धनवान् मनुष्य बडे यत्नसे खङ्ग आदि मारै तब तो सहस्र गोदान युक्त दो मासके व्रतको करै। क्योंकि बृहस्पतिके इस वचनसे विशिष्ट गौमें विशेषही प्रायश्चित्त देखाहै कि गर्भवती, कपिला, दूध देती, होमधेनु, सुशीलु गौको जो खङ्ग आदिसे मारै वह द्विगुण व्रतको करै। इसीसे प्रचेतोंने ऐसेही गोवधके विषयमें ब्रह्महत्याका व्रत कहा है कि गर्भिणी स्त्री, और गर्भिणी गौ, बालक, वृद्ध इनके वधमें भ्रूणहा होता है। दूसरा तो यमका कहा सौ गौदानसे युक्त दो मासका व्रत कात्यायनके कहे व्रतके विषयमें धनवान्को जानना। और जो गौतमने एक बैल सौ गौओंके दान सहित तीन वर्षके पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यको वैश्यके वधमें कहकर उसकाही अतिदेश (मानना) गोवधमें किया है कि गौको भी मारकर वैश्यकी हत्याके प्रायश्चित्त करै। यह व्रत तीन वर्षके व्रतका प्रत्याम्नाय जो नव्वे ९० धेनु, उन सहित एक बैल सौ गौ- एकसौ इकानवे (१९१) होती हैं इससे सहस्र गोदानसे युक्त दो मासके व्रतसे न्यून (कम) होनेसे पूर्वोक्त विषयमें जानकर किये गोवधमें समझना। अथवा पूर्व विषयमें गर्भरहित गौके जानकर वधमें समझना और वैसीही गर्भरहित गौके अज्ञानसे हतनेमें भी कात्यायनका कहा तीन वर्षका प्रायश्चित्त कल्पना करना। और जो यमने कहा है कि काठ, ढेला, पत्थर, वा शस्त्रोंसे गोहत्या की होय तो शस्त्र शस्त्रका प्रायश्चित्त कैसे करना कहाहै। काठसे मारै तो सांतपन करै, लोष्ठसे मारै तो प्राजापत्य करै, पत्थरसे मारै तो तप्तकृच्छ्र, शस्त्रसे मारै तो अतिकृच्छ्र करै। प्रायश्चित्त करनेपर ब्राह्मण भोजन करावे और उनको तीस ३० गौ एक बैल दक्षिणा दे। वह यमका वचन पूर्वोक्त सहस्र वा शतगोदान और त्रैवार्षिक व्रतके विषयोंमें काठ ही आदि विशेष साधन (कारण) से उत्पन्न वधके लिये इस अर्थ है कि सांतपन आदिको करकेही करै उनके विना न करे। क्योंकि प्रायश्चित्त लघु है, तिससे जो विशेषतासे प्रायश्चित्तांविशेष कहा है कि अतिवृद्ध, अतिकृश, अतिबाला, रोगिणी ऐसी गौको हतकर पूर्वोक्त विधिसे आधा प्रायश्चित्त द्विज करै। शक्तिसे ब्राह्मणोंको जिमावे, सुवर्ण और तिल दान करै। नीरोग गौके वधमें जो कहाहै उसका आधा प्रायश्चित्त करे। बृहत्प्रचेतोंने भी यहां विशेष कहाहै कि एक वर्षके वत्सको हता होय तो कृच्छ्रका पाद कहा है, अज्ञानसे दो वर्षके वत्समें दो पादकृच्छ्र, तीन वर्षकेमें तीन पादकृच्छ्र करै, इससे परे प्राजापत्य होता है। तैसेही गर्भिणी गौके वधमें यदि गर्भभी नष्ट होजाय तो निमित्त २ के प्रति नैमित्तिक कर्मकी आवृत्ति होती है इस न्यायसे द्वि-

---

१ गर्भिणीं कपिलां दोग्ध्रीं होमधेनुं च सुव्रताम्। खड्गादिना घातयित्वा द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥

२ स्त्रीगर्भिणीगोगर्भिणीबालवृद्धवधेषु भ्रूणहा भवाति।

३ गां च हत्वा वैश्यवत्।

४ काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि। प्रायश्चित्तं कथं तत्र शस्त्रे शस्त्रे विधीयते ॥ काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके। तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्। त्रिंशद्वा वृषभं चैकं दद्यात्तेभ्यश्च दाक्षिणाम् ॥

---

१ अतिवृद्धामतिकृशामतिबालां च रोगिणीम्। हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्द्धव्रतं द्विजः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेमतिलांस्तथा ॥

२ एकवर्षे हते वत्से कृच्छ्रपादो विधीयते। अबुद्धिपूर्वं पुंसः स्याद्द्विपादस्तु द्विहायने ॥ त्रिहायने त्रिपादः स्यात्प्राजापत्यमतः परम् ॥

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते।

गुण व्रत पाया इसमें षट्त्रिंशत्के मतमें विशेष कहा है कि उत्पन्नमात्र गर्भके हतनेमें पाद, दृढताको प्राप्त हुए गर्भके हतनेमें दो पाद, अचेतन गर्भको हतकर पादोन व्रत करना कहा है। अंग प्रत्यंगसे पूर्ण चेतनता युक्त गर्भके हतनेमें दूना व्रत कहा है; यह गोघ्नका प्रायश्चित्त है। बहुत मनुष्योंने गोहत्या की होय तो संवर्त और आपस्तंबने विशेष कहा है कि यदि एक गौ दैवगतिसे बहुत मनुष्योंने हती होय तो वे पृथक् २ हत्याका पाद २ प्रायश्चित्त करें अर्थात् जैसी गौकी हत्यामें जो व्रत शास्त्रमें कहा है उसका चौथाई प्रायश्चित्त प्रत्येक करें। यहां एक गौ कहना उपलक्षण है इससे बहुत मनुष्योंने दो वा बहुत गौ मारी होंय तो प्रतिपुरुष दोपाद वा पादोन प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और वहभी दैव इस विशेषणके देनेसे अज्ञानसे गोवधमें जानना। जानकर तो बहुत मनुष्योंकोभी प्रत्येक संपूर्ण दोषके संबंधसे संपूर्ण व्रत करनाही युक्त है। क्योंकि यत्नकर्त्ताओंके समान पुरुष २ के प्रतिही संपूर्ण व्यापारका संबंध है और बहुतोंने एकको मारा होय तो शास्त्रोक्तसे दूना दंड राजा दे इस वचनसे प्रत्येकको दंड भी दूना देखते हैं और जो एकनेही बंधन आदि व्यापारसे बहुत गौ मारी होंय तो संवर्त्त और आपस्तंबने विशेष कहा है कि रोकने, वा बांधने वा वैद्यकी उलटी चिकित्सासे बहुत गौ मरजांय तो दूना गोव्रत करे अर्थात् बहुतोंके मरनेपर निमित्त २ के प्रति नैमित्तिक (गोव्रत) न करें और न तंत्रसे करै किंतु वचनके बलसे दूना ही करै, तैसेही वैद्यभी अज्ञानसे विरुद्ध औषध देकर एक गौको मारै तो दूना गोव्रत करे। वैद्यसे भिन्न जो उपकारके लिये प्रवृत्त हुआ हो और अज्ञान विरुद्ध औषध दीगई होय तो व्यासने कहा है कि औषध लवण और पुण्यार्थ भोजन यह अधिक न दे, किंतु समयको देखकर स्वल्पही दे। अधिक देनेसे मरजाय तो कृच्छ्र पाद प्रायश्चित्त कहा है। जो आपस्तंबने कहा है कि रोकनेमें एक पाद, बांधनेमें दोपाद और योजन (संयोग) में त्रिपाद और मारनेमें संपूर्ण कृच्छ्र करे, वह प्रायश्चित्त दूरके व्यापारी निमित कर्ताको जानना साक्षात् कर्त्ताको नहीं। साक्षात् कर्त्ता और निमित्तकर्ताका भेद आपस्तंबने ही दिखाया है कि पत्थर लकुडी शस्त्रसे वा अन्यसे जो मनुष्य बलात्कारसे गौको मारते हैं वे संपूर्ण व्रतको करें। तैसेही बाहु जंघा ऊरु पार्श्व चरण इनको जो तोडें वेभी संपूर्ण प्रायश्चित्त करैं। यह कहा समझो कि पाषाण और खड्ग आदिसे जो ग्रीवा आदिको मोडकर गौके अंगोंको गिराते हैं वे साक्षात् हंता हैं और इनको ही संपूर्ण प्रायश्चित्त हैं और जो

---

१ पाद उत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ दृढतां गते। पादोनव्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम्॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णे गर्भे चेतःसमन्विते। द्विगुणं गोव्रतं कुर्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः॥

२ एका चेद्बहुभिः काचिद्दैवाद्व्यापादिता क्वचित्। पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक्॥

३ एकं घ्नतां बहूनां तु यथोक्ताद्द्विगुणो दमः।

४ व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बन्धने तथा। भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतं चरेत्॥

१ औषधं लवणं चैव पुण्यार्थमपि भोजनम्। अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत्॥ अतिरिक्ते विपत्तिश्चेत्कृच्छ्रपादो विधीयते॥

२ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्। योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने॥

३ पाषाणैर्लकुटैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात्। निपातयंति ये गास्तु कृत्स्नं कुर्युर्व्रतं हि ते॥ तथैव बाहुजंघोरुपार्श्वग्रीवांघ्रिमोटनैः॥

दूरके रोकने बंधन आदि व्यापारका योग करते हैं वे मिमित्ती हैं उनको संपूर्ण व्रतका संबंध नहीं किंतु कृच्छ्रके पाद और द्विपाद आदिका संबंध है, उसने भी रोकने आदि संपूर्ण अविशेषसे यद्यपि दूरके व्यापार हैं तो भी वचनसे कहीं पाद कहीं द्विपाद, और कहीं पादोन प्रायश्चित्त करना युक्त है। यहां पराशरने यह कहा है कि गौओंके बांधने वा संयोग करनेसे अज्ञानसे मृत्यु होजाय तो अज्ञानसे किये पापके लिये प्राजापत्य बतावे और प्रायश्चित्त करनेपर ब्राह्मणभोजन करावै और ब्राह्मणको बैल सहित गौकी दक्षिणा दे। और यह प्राजापत्य उसको जानना जो रोकने आदिको करके रोकने आदिसे पैदाहुए प्रमादके परिहारकी बाट देखता हो, क्योंकि अज्ञानसे किये पापका यह विशेषण श्लोकमें पढा है और यदि प्रमादका अनुसरण करै तब अंगिराके कहे त्रैमासिकका पाद वा कुछ अधिक, वा वीस दिनका गोवध व्रत करै कि रोकनेमें एक पाद, बांधनेमें दो पाद, योजनमें तीन पाद, गिरानेमें संपूर्ण व्रत करै। आपस्तंबने भी विशेष कहा है कि अत्यंत दुहने, अत्यंत वाहन, नासिकाका छेदन, नदी और पर्वतमें रोकनेसे गौ मरजाय तो पादोन प्रायश्चित्त करै, और लक्षण मात्रके उपयोगी दाह (दाग) में दोष नहीं, क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि अंकन और लक्षणको छोडकर वाहन और मोचनमें और रक्षाके लिये सायंकालके रोकने और बांधनेमें दोष नहीं। स्थिर चिह्नको अंकन कहते हैं और तत्कालके चिह्नको लक्षण, और वाहन भी शास्त्रोक्त मार्गसे लेना और रक्षाके लिये भी नालिकेर आदिसे बांधनेमें दोष होता है। क्योंकि व्यासकी स्मृति है कि नारियल, सण, वाल, मूंज, बांधनेकी सांकल इनसे गौओंको न बांधे और गौओंको बांधकर रक्षार्थ फरसा लिये खडा रहै और कुश और कासोंसे ऐसे स्थानमें बांधे जहां कुछ भय न हो। तैसेही अन्यभी विशेष व्यासने ही कहा है कि घंटाभारके दोषसे गौ मरजाय तो कृच्छ्रार्द्ध प्रायश्चित्त होता है। क्योंकि वह भूषणके लिये कहा है। अति दुहने, अत्यंत दमन, समूहमें योजन, शृंखल और पाशोंसे बांधनेमें गौ मर जाय तो पादोन कृच्छ्र करै। और रक्षा करने आदिकी उपेक्षामें व्यासनेही कहीं प्रायश्चित्तका विशेष कहा है कि जलका है वेग जिसमें ऐसे पल्वल (छोटा तलाव) में

१ गवां बंधनयोक्त्रैस्तु भवेन्मृत्युरकामतः। अकामकृतपापस्य प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम्। अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥

२ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्। योजने पादहीनं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥

३ अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकाछेदने तथा। नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥

१ अन्यत्राऽङ्कनलक्षाभ्यां वाहने मोचने तथा। सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबंधने ॥

२ न नालिकेरेण न शाणवालैर्नचापि मौंजेन न बन्धशृंखलैः। एतैस्तु गावो न निबन्धनीया बद्ध्वा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ कुशैः काशैश्च बध्नीयात्स्थाने दोषविवर्जिते ॥

३ घण्टाभरणदोषेण विपत्तिर्यत्र गोर्भवेत्। गोकृच्छ्रार्धं भवेत्तत्र भूषणार्थं हि तत्स्मृतम् ॥ अतिदोहातिदमने संघाते चैव योजने। बद्धा शृंखलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ।

४ जलौघपल्वले मग्ना मेघविद्युद्धतापि वा। श्वभ्रे वा पतिता कस्माच्छ्वापदेनापि भक्षिता ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोस्वामी व्रतमुत्तमम्। शीतवाताहता वा स्यादुद्बंधनहतापि वा ॥ शून्यागार उपेक्षायां प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥

डूबी और मेघ और बिजलीसे हती और अकस्मात् गड्ढेमें पडी और अकस्मात् श्वापद (भेडिया) ने भक्षण की ऐसी गौके मरनेमें गौका स्वामी प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करै । और शीतपवन धूप इनसे मरी हो वा उद्बंधन (बांधना) से हती हो, शून्यघरमें उपेक्षासे (बेखबरी) से मरी होय तो प्राजापत्य करै, यहभी कार्यांतरकी व्यग्रता (लगना) के अभावसे उपेक्षामें जानना । और अन्य कार्यमें व्यग्रता होय तो आधा प्रायश्चित्त करै, क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि पल्वलका वेग, मृग, व्याघ्र, श्वापद आदिसे मरनेमें, गड्ढेमें गिरना सर्प आदिसे मरनेमें आधा कृच्छ्र करै । पाल (ग्वाळ) न होय और शून्य घरमें मरजाय तो कृच्छ्र प्रायाश्चित्त होताहै । और पूर्वोक्त मरण होभी जाय तोभी कहीं २ वचनसे दोषका अभाव है । सोई संवर्तने कहाहै कि चिकित्साके लिये गौके यंत्रण और मरे गर्भके निंकासनेमें यत्न करनेपर गौ मरजाय तो वह मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता । व्याधिके दूर करणार्थ तीक्ष्ण अंकुश आदिके प्रवेशको यंत्रण कहते हैं । तैसेही वचन³ है कि औषध घी भोजन इनको गौ ब्राह्मणोंको द्विज देता हो और देनेसे मरण होजाय तो वह पापसे लिप्त नहीं होता । ग्रामके घात (दुःख वा मरण) बाणोंसे मरण हुआ हो, घरके भंग (गिरना) से मरनेमें और गौओंके हितार्थ दाहका छेदन शिराका भेद (फस्त) आदि प्रयोगोंसे गौओंका उपकार करते हुए द्विजोंको प्रायश्चित्त नहीं है । यहां पराशरने भी कहाहै कि अतिवृष्टिसे हती हुई गौओंका और धर्मार्थ कूपके खोदनेमें, घरके दाहमें, ग्रामके दाहमें और घोर उपद्रवमें जो गौ मरी हो तो प्रायश्चित्त नहीं है । यह वचन तो उस विषयमें है जहां बंधनरहित (खुला) पशु घरके दाह आदिसे मरगया हो । ऐसा न होय तो आपस्तंबने कहा है कि वन, दुर्ग (किला), घरका दाह, खल इनमें गौका मरण होजाय तो एक पाद प्रायश्चित्त कहा है । तैसेही अस्थि आदिका भंग होनेपर मरणके अभावमेंभी कहीं प्रायश्चित्त कहाहै कि गौओंका अस्थिभंग और लांगूलका छेदन, दांत और सींगोंका तोडना इनको करके मासतक जौको पीवै । जो तो अंगिराका वचन है कि सींग दांत अस्थि इनके भंग, चर्मके निर्मोचन (छुटाना) में यदि गौ स्वस्थभी हो जाय तोभी दशरात्रतक वज्रको पीवै । वज्र शब्दसे क्षीर आदिका वर्तना कहा है । वह व्रत अशक्तके विषयमें है । यह प्रायश्चित्तभी तब करना जब मृतक गौके समान गौ गौके स्वामीको देदी हो । सोई पराशरने कहा है कि प्राणधारियोंके मार-

१ पल्वलौघमृगव्याधश्वापदादिनिपातने । श्वभ्रप्रपातसर्पाद्यैर्मृते कृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥ अपालत्वात्तु कृच्छ्रं स्याच्छून्यागार उपप्लवे ॥

२ यंत्रेण गोचिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने । यत्ने कृते विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥

३ औषधं स्नेहमाहारं ददद्गोब्राह्मणे द्विजः । दीयमाने विपत्तिश्चेन्न स पापेन लिप्यते ॥ ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभंगनिपातने । दाहच्छेदशिराभेदप्रयोगैरुपकुर्वताम् ॥ द्विजानां गोहितार्थं च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

१ अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते । कूपखाते च धर्मार्थे गृहदाहे च या मृता ॥ ग्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

१ कांतारेष्वथ दुर्गेषु गृहदाहे खलेषु च । यदि तत्र विपत्तिः स्यात्पाद एको विधीयते ॥

३ अस्थिभंगं गवां कृत्वा लांगूलच्छेदनं तथा । पाटनं दंतशृंगाणां मासार्द्धं तु यवान्पिबेत् ॥

४ शृंगदंतास्थिभंगे वा चर्मनिर्मोचनेऽपि वा । दशरात्रं पिबेद्वज्रं स्वस्थापि यदि गौर्भवेत् ॥

५ प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् । तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीद्यमः ॥

नेमें उसका प्रतिरूप (बदला) दे वा उसका मूल्य दे यह यमने कहा है। मनु (अ० ८ श्लो० २८८) नेभी कहाहै कि जानकर वा बिना जाने जो जिसके द्रव्योंकी हिंसा करै वह उसका संतोष करै और उसके समान राजाको दे। यह पूर्वोक्त संपूर्ण प्रायश्चित्त मारनेवाले ब्राह्मणकोही जानना। क्षत्रिय आदि मारनेवालेको तो बृहद्विष्णुने विशेष कहाहै कि, ब्राह्मणको संपूर्ण प्रायश्चित्त देना, क्षत्रियको पादोन, वैश्यको आधा और शूद्र जातियोंमें पाद (चौथाई) श्रेष्ठ कहाहै। और जो अंगिराका वचन है कि जो ब्राह्मणोंकी सभा है वह क्षत्रियोंकी दूनी, वैश्योंकी तिगुनी और पर्षद् (सभा) के उक्त समान व्रत कहा है, वह प्रतिलोम रीतिसे कठोर वाणी और कठोर दंडके विषयमें जानना। तैसेही स्त्री वृद्ध बाल आदिकोंको आधा और अनुपनीत बालकको भी पूर्वोक्त आधा समझना। स्त्रियोंको पराशरने विशेष कहाहै कि स्त्रियोंका मुंडन, अनुगमन, जप आदि, गोष्ठमें शयन और गोचर्मका धारण नहीं होता और संपूर्ण केशोंके ऊपरको दो अंगुल छेदन करै, सब कर्मोंमें स्त्रियोंका यही मुंडन कहा है। पुरुषोंमें विशेष संवर्तने कहा है, कि पाद प्रायश्चित्तमें अंगके रोमोंका मुंडन, द्विपादमें श्मश्रुकाभी और त्रिपादमें शिखाको छोडकर और मारनेमें शिखासहित मुंडन कहाहै अर्थात् पादप्रायश्चित्तके योग्यके कंठसे नीचे अंगके रोमोंका मुंडन करना, आधे प्रायश्चित्तके योग्यके श्मश्रुसहित पूर्वोक्त अंगरोमोंका और पादोन प्रायश्चित्तके योग्यका शिखाको छोडकर चारों पाद प्रायश्चित्तके जो योग्य हैं उसके शिखासहित संपूर्ण केशोंका मुंडन करावै। इसी मार्ग (रीति) को स्वीकार करके स्मृतिके वचनोंका विषय निरूपण करना (कहना) ॥

भावार्थ-गौका हत्यारा पंचगव्यको पीवै और मासभर संयमसे बैठा रहै, गोष्ठमें सोवै और गौओंका अनुगमन करै और गौके दान करनेसे शुद्ध होता है और सावधानीसे कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै और तीन रात्र उपवास करके एक बल दश गौओंका दान करै ॥२६३॥२६४॥

इति गोवधप्रायश्चित्तप्रकरणम् ।

उपपातकशुद्धिःस्यादेवंचांद्रायणेनवा ॥
पयसावापिमासेनपराकेणाथवापुनः ॥२६५॥

पद-उपपातकशुद्धिः १ स्यात् क्रि-एवम्ऽ-चांद्रायणेन ३ वाऽ-पयसा ३ वाऽ-अपिऽ-मासेन ३ पराकेण ३ अथवाऽ-पुनःऽ- ॥

योजना-एवं वा चांद्रायणेन वा मासेन पयसा अथवा पराकेण उपपातकशुद्धिः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब अन्य उपपातकोंका प्रायश्चित्त कहते हैं। इसी प्रकार उक्त रीतिसे गोवधके मासभर पंचगव्य भक्षण आदि व्रतसे अन्यभी व्रात्यता आदि उपपातकोंकी शुद्धि होतीहै अथवा चांद्रायण (जो आगे कहेंगे)

१ यो यस्य हिंस्याद्द्रव्याणि ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा। स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥

२ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम्। वैश्येऽर्द्धं पाद एकस्तु शस्यते शूद्रजातिषु ॥

३ पर्षद्या ब्राह्मणानां तु स राज्ञां द्विगुणा मता। वैश्यानां त्रिगुणा प्रोक्ता पर्षद्वच्च व्रतं स्मृतम् ॥

४ वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम्। न गोष्ठे शयनं तासां न वसीरन् गवाजिनम् ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम्। सर्वत्रैव हि नारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥

५ पादेंगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोपि च। त्रिपादे तु शिखावर्ज्यं सशिखं तु निपातने ॥

वा मासभर पयो (दूध) व्रतसे वा पराक व्रतसे शुद्धि होती है। यहां अतिदेश (तुल्यता) के सामर्थ्यसे गोचर्म धारण, गौकी सेवा आदि जो गोवधमें असाधारण व्रत हैं उनमें कतिपय (कितनेक) व्रतोंकी न्यूनता जानी जाती है। ये इसी वचनमें कहे चारों व्रत अज्ञानसे किये पापमें शक्तिकी अपेक्षासे विकल्पसे जानने। जानकर करनेमें तो यह मनु (अ० ११ श्लो० ११७) का कहा तीन मासका व्रत जानना कि उपपातकी द्विज इसी व्रतको करै अथवा अवकीर्णीको छोडकर चांद्रायण करै। इसी वचनसे यह प्रायश्चित्तका अतिदेश उपपातकगणमें पढे हुए सबको चाहै प्रायश्चित्त उनका कहा हो वा न कहा हो अवकीर्णीको छोडकर अविशेषसे जानना। अवकीर्णीको तो प्रतिपदोक्त (जुदा) ही प्रायश्चित्त है। कदाचित् कोई शंका करै कि उनकाही अतिदेश युक्त है जिनका प्रायश्चित्त न कहा हो। ऐसे न मानोगे तो प्रतिपदोक्त प्रायश्चित्तके बाधकी अपेक्षाका प्रसंग हो जायगा। ऐसा मत कहो क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त प्रायश्चित्तोंका पाठ उपपातकगणमें अनर्थक हो जायगा। यदि उपपातकके मध्यमें सामान्यसे पढे हुएकाभी अन्य प्रायश्चित्त अन्यही विशेषकर कहते हैं (जैसे अयाज्योंको यज्ञ करावे तो तीन कृच्छ्र करै और व्रात्योंका याजक और अभिचारके कर्ताभी यही करै) वेही नियम केवल न्यून होगा और विशेषसे पठितका अन्यत्रभी जहां विशेषही प्रायश्चित्त कहा है वहभी न्यून न होगा। जैसे यह कि इंधनके लिये वृक्षोंका छेदन, वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुत् इनके छेदनमें सौ ऋचाओंका जो जप उसके समान है, इससे व्रात्यता आदिमें इस शास्त्रमें देखे जो प्रायश्चित्त उन प्रायश्चित्तोंके संग उपपातककी शुद्धि इस पूर्वोक्त प्रकारसे होती है इस श्लोकमें पढे (स्यादेवं) इत्यादिसे कहे चार व्रतोंका तुल्य और विषयकी कल्पनासे विकल्प वा विषयविभाग मानना, वे अन्य स्मृतियोंमें कहे प्रायश्चित्त व्रात्य आदिकोंमें पाठके क्रमसे हम युक्त करैंगे। उनमें व्रात्य होने पर मनुने यह कहा है (अ० ११ श्लो० १९१) कि जिन द्विजोंका विधिसे गायत्रीका उपदेश न हुआ होय तो उनसे तीन कृच्छ्र कराकर विधिसे यज्ञोपवीत करावै, और जो यमने कहाहै कि जिसकी गायत्री पन्द्रह वर्षतक पतित होजाय वह शिखासहित मुण्डन कराकर सवधानीसे व्रत करै। इक्कीस दिनतक अंजलीभर जौ पीवे और सात वा पांच ब्राह्मण हविष्य अन्नसे जिमावे फिर जो शुद्ध हुए उसका यज्ञोपवीत करावै ये दोनों व्रत याज्ञवल्क्यके कहे मासभर पयोव्रतके विषयमें समझने। और जो वसिष्ठने कहा है कि जिसकी सावित्री

१ एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः। अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चांद्रायणमथापि वा ॥

२ अयाज्यानां च याजनम्। त्रीन्कृच्छ्रानाचरेत् व्रात्ययाजकोऽभिचरन्नपि ॥

१ इंधनार्थं द्रुमच्छेदः वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम्।

२ येषां द्विजानां सावित्री नानुच्येत यथाविधि। तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान् यथाविध्युपनाययेत् ॥

३ सावित्री पतिता यस्य दशवर्षाणि पंच च। सशिखं वपनं कृत्वा व्रतं कुर्यात्समाहितः ॥ एकविंशतिरात्रं च पिबेत्प्रसृतियावकम्। हविषा भोजयेच्चैव ब्राह्मणान्सप्तपंच च ॥ ततो यावकशुद्धस्य तस्योपनयनं स्मृतम् ॥

४ पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् द्वौ मासौ यावकेन वर्त्तयेन्मासं पयसा पक्षमामिक्षयाऽष्टरात्रं घृतेन षड्रात्रमयाचितेन त्रिरात्रमब्भक्षोऽहोरात्रमुपवसेदश्वमेधावभृथं गच्छेद्व्रात्यस्तोमेन वा यजेत।

पतित हो गई हो वह उद्दालक व्रत करै कि दो मासतक जौको भक्षण करै, एक मास दधसे, एक पक्ष आमिक्षा (सिकरन) से, आठ रात्र घीसे, छः रात्र अयाचितसे, तीन रात्र जलके भक्षणसे बितावै, अहोरात्र उपवास करै, अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करै अथवा व्रात्यस्तोम यज्ञ करै। यहां यह व्यवस्था है कि जिसके यज्ञोपवीतका समय उपनयन करानेवालेके अभावसे बीत गया होय तो वह याज्ञवल्क्यके कहे व्रतोंमेंसे कोईसे व्रतको शक्तिके अनुसार करै। विना आपत्तिके समय बीतगया होय तो मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करै और विना आपत्तिके पंद्रह वर्षसे अधिकभी कुछ काल बीत जाय तो उद्दालक व्रत वा व्रात्यस्तोम यज्ञ करै। और जिनके पिता आदि अनुपनीत होंय तो उनको आपस्तंबका कहा ब्रह्मचर्य है कि जिसके पिता पितामह दोनों अनुपनीत होंय उसको वर्ष दिनतक त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य करना और जिसके प्रपितामह आदिके यज्ञोपवीतका स्मरण न होय उसको उपनयन करावै और वह बारह वर्षका त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य करै। तैसेही चोरीसेंभी साधारण उपपातकमें प्राप्त चार व्रतोंका अपवादरूप प्रायश्चित्त मनुने कहा है। (अ० ११ श्लो० १६२) कि धान्य, अन्न, धन इनकी चोरी सजातीय घरसे जानकर करै तो आधा कृच्छ्रव्रत करै। द्विजोत्तमका सजातीय ब्राह्मण ही होता है इससे ब्राह्मणकी चोरीमें ब्राह्मण चोरको ही यह प्रायश्चित्त है, क्षत्रिय आदिको तो अल्प प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी, क्यों कि इस वचनमें क्षत्रिय आदि चोरको अल्पदंड देखते हैं कि चोरीका पाप शूद्रको अष्टापाद्य (आठ पाद) होता है और इतर वर्णोंको क्रमसे दूना होता है और विद्वानको तो अतिक्रम (चोरी आदि) में प्रतिवर्ण अधिक दंड होता है। तैसेही पादहानि (कमी) से प्रायश्चित्त इस वचनसे देखते हैं कि ब्राह्मणको पूरा, क्षत्रियको पादोन प्रायश्चित्त कहा है। तैसेही क्षत्रिय आदिकी चोरीमेंभी दंडके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। इससे क्षत्रियकी चोरीमें छः मासतक, वैश्यकी चोरीमें तीन मासतक गोवध व्रत करै और शूद्रकी चोरीमें चांद्रायणकी कल्पना करै। इसी प्रकार आगेभी समझना, यहभी दश कुंभ धान्यकी चोरीमें है। अधिकमें तो इस वचनसे वध देखते हैं कि दश कुंभ धान्यकी जो चोरी करै उसको उत्तम साहस दंड होता है और सहस्र पलसे अधिक चुरावे तो वध दंड दे। पांच सहस्र पलको कुंभ कहते हैं। धान्यके साहचर्यसे अन्न और धनभी इतने ही परिमाणके जानने। अन्न शब्दसे तंडुल आदि और धन शब्दसे ताम्र रजत आदि कहते हैं। यह प्रायश्चित्तभी जानकर करनेके विषयमें समझने। अज्ञानसे करनेमें तो तीन मासका गोवध व्रत प्रायश्चित्त है। तैसेही मनुष्य स्त्री क्षेत्र घर कूप और वापीका जल,

---

१ यस्य पितापितामहावनुपनीतौ स्यातां तस्य संवत्सरं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यम्। यस्य प्रपितामहादेर्नानुस्मर्यंते तस्य उपनयनं तस्य द्वादश वर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यम्।

२ धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः। सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति॥

१ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषां प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे दंडभूयस्त्वम्।

२ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम्।

३ धान्यं दशभ्यः कुंभेभ्यो हरतो दम उत्तमः। पलसहस्रादाधिके वधः।

इनके हरनेमें चांद्रायणसे शुद्धि होती है[1] यह चांद्रायण अढाईसौ २५० पण द्रव्य जिससे पैदा हो ऐसे जलकी चोरीमें प्राप्तभी था तोभी अन्य जो गोवधके व्रत हैं उनकी निवृत्तिके लिये कहाहै, और अढाई सौ पण है मूल्य जिसका ऐसे जलकी चोरीमें तो पानी और तृणकी चोरीमें उसके मूल्यसे दूना दंड होताहै, इस वचनसे[2] चांद्रायणके विषयमें पांच सौ ५०० पण दंडके विधानसे उक्त परिमाणका दंड और चांद्रायण इन दोनोंको गोवध आदिमें सहचरित होनेसे तैसेही कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और ऐंदव (चांद्रायण) इनमेंभी पांचसौ पण दंड है, इस[3] वचनसे चांद्रायणके विषयमें पांच सौ पण दंडका विधान है। इससे पूर्वोक्त प्रायश्चित्त अज्ञानसे करनेमें है यह ठीक है, और यह क्षत्रिय आदिके द्रव्यकी चोरीमें जानना। ब्राह्मणके द्रव्यकी चोरीमें तो यह मनु[4] (अ० ११ श्लो० ५७) का कहा प्रायश्चित्त जानना कि निक्षेप (धरोहर) नर, अश्व, चांदी, भूमि, वज्र, मणि इनकी चोरीमें सुवर्णकी चोरीके समान दंड कहाहै। तैसेही मनु[5] (अ० ११ श्लो० १९४) के इस वचनसे कि पराये घरसे अल्पसार (तुच्छ) द्रव्योंकी चोरी करै तो उनको लौटाकर अपनी शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करै। अल्प प्रयोजनवाले त्रपु सीस आदि द्रव्योंकी चोरीमें उपपातकरूप सामान्य चोरीका जो प्रायश्चित्त उसका अपवाद है, और यह प्रायश्चित्त चान्द्रायणका निमित्त जो द्रव्य उससे आधे तीन सौ है मोल जिसका उससे पंद्रहवें अंशसे आधे त्रपु सीस आदिकी चोरीमें जानना। क्योंकि वह चान्द्रायणके पन्द्रहवें भाग रूप है, तैसेही द्रव्यविशेषमें सामान्य उपपातकोंमें पाये व्रतका अपवाद है। मनु[1] (अ० ११ श्लो० १६५) ने कहा है कि भक्ष्य, भोज्य, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल, फल, इनकी चोरीमें पंचगव्य पीनेसे शुद्धि होती है, यहभी एक वार भोजनके योग्य भक्ष्य भोज्यकी चोरीमें समझना, दो तीन वारके भोजनकी चोरीमें तो त्रिरात्र उपवास है, सोई पैठीनसीने कहाहै कि उदरके[2] भरनेपर भक्ष्य, भोज्य, अन्नकी चोरीमें तीन रात्र वा एक रात्र उपवास और पंचगव्यका भोजन प्रायश्चित्त है और भक्ष्य भोज्यके साहचर्यसे इतने ही मोलके यान आदिकी चोरीमें यह पूर्वोक्त प्रायश्चित्त समझना, सब जगह चोरीके द्रव्यके न्यून अधिक भावसे गुरु और लघु प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। तैसे ही मनु[3] (अ० ११ श्लो० १६६) का वचन है कि तृण, काठ, वृक्ष, शुष्क अन्न, गुड, तेल, चर्म, मांस इनकी चोरीमें तीन रात्र भोजन न करै। इन तृण आदिकी चोरीमें भक्ष्य आदिसे तिगुने त्रिरात्र प्रायश्चित्तके दखनेसे उनसे तिगुने मोलके तृण आदिकी चोरीमें ही यह प्रायश्चित्त जानना। तैसेही मनु[4] (अ० ११ श्लो० १६७) ने कहाहै

१ मनुष्याणां च हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च। कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥

२ पानीयस्य तृणस्य च तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्ड इति पंचशतं तथा।

३ कृच्छ्रातिकृच्छ्रैन्दवयोः पणपंचशतं तथा।

४ निक्षेपस्यापहरणे नराश्वरजतस्य च। भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् ॥

५ द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मनः। चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥

१ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च। पुष्पमूलफलानां च पंचगव्यं विशोधनम् ॥

२ भक्ष्यभोज्यान्नस्योदरपूरणमात्रहरणे त्रिरात्रमेकरात्रं वा पंचगव्याहारश्च।

३ तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च। तैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥

४ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च। अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कदन्नता ॥

कि मणि, मोती, मूंगा, तांबा, चांदी, लोहा, कांसी, पत्थर इनकी चोरीमें बारह दिनतक कुत्सित अन्न भक्षण करै। यहांभी भक्ष्य आदिके समान बारह गुना प्रायश्चित्त देखनेसे उनके मूल्यसे बारह गुना मूल्य है जिनका ऐसे मणि, मोती आदिकी चोरीमें यही प्रायश्चित्त जानना। तैसेही मनु (अ० ११ श्लो० १६८) ने कहा है कि कपास, रेसम, ऊन, दो और एक खुरवाले पशु, पक्षी, गंध, ओषधि, रस्सी इनकी चोरीमें तीन दिनतक दूध पीवै। यहांभी भक्ष्य आदिसे तिगुना प्रायश्चित्त देखनेसे तिगुने मोलके कपास आदिकी चोरीमें यह प्रायश्चित्त जानना। चुराये हुए द्रव्यके न्यून अधिक भावसे अल्प और महान् प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी योग्य है। यह चोरीका प्रायश्चित्त चुराये द्रव्यके पीछे दिये भी जानना। सोई विष्णुने कहा है कि चुराया हुआ द्रव्य स्वामीको देकर व्रत करै, ऋणका दूर करना पुत्र पौत्र ऋणको दें इस वचनसे पुत्र पौत्रोंको कहा है, उसके न दूर करनेमें, तैसेही उत्पन्न होता ही ब्राह्मण तीन ऋणवाला होताहै इस वाक्यसे स्तुति की है जिनकी ऐसे वेदोक्त यज्ञादिके न करनेमेंही (उपपातकशुद्धिः स्यादेवं) इस वचनसे सब उपपातकोंमें कहे जो चार व्रत वे शक्तिकी अपेक्षासे समझने, क्यों कि ऋणका दूर न करना भी उपपातक है। इस विषयमें मनु (अ० ११ श्लो० २७) ने कहा है कि पशु और सोमयज्ञ न किये होंय तो उनके प्रायश्चित्तके लिये वर्षदिनके अंतमें वैश्वानरी यज्ञ करै, तिसी प्रकार यज्ञका अधिकारी अग्निहोत्री न होय तो भी येही चारों व्रत वर्षादिनके अनंतर आपत्तिके समय शक्तिके अनुसार करने। आपत्ति न होय तो मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करावै और वर्षदिनसे पहिले तो कार्ष्णाजिनिने विशेष कहा है कि ब्राह्मण अग्निका आधान करके कर्मोंको विधिपूर्वक समयपर करै, उनको न करै तो मास मासमें त्रिरात्र व्रतसे शुद्ध होता है। यदि पिता अग्निहोत्री न होय और पुत्र यज्ञ कियाचाहै तो वह प्रायश्चित्तके लिये व्रात्यपशु यज्ञ करै। एकाग्निके लिये विशेष उसनेही कहा है कि जो गृहस्थी ज्येष्ठ होकर घरमें उपासन अग्निका आधान न करै वह वर्षभर चान्द्रायण करै, अथवा प्रतिमास एक उपवास करै, तैसेही विक्रय करनेके अयोग्यके विक्रय करनेमें प्रायश्चित्तका विशेष अन्यस्मृतिमें कहा है सोई हारीतने कहा है कि गुड, तिल, पुष्प,

१ कार्पासकीटजोर्णानां द्विखुरैकखुरस्य च। पक्षिगंधौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥

२ दत्त्वैवापहृतं द्रव्यं स्वामिनो व्रतमाचरेत्।

३ पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयम्।

४ जायमानो वै ब्राह्मणः।

५ इष्टिं वैश्वानरीं चैव निर्वपेदब्दपर्यये। क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभव इति ॥

१ काले स्वाधाय कर्माणि कुर्याद्विप्रो विधानतः। ततः कुर्वन् त्रिरात्रेण मासि मासि विशुध्यति ॥ अनाहिताग्नौ पित्रादौ यक्ष्यमाणः सुतो यदि। स हि व्रात्येन पशुना यजेत्तन्निष्क्रयाय तु ॥

२ कृतदारो गृहे ज्येष्ठो योनादध्यादुपासनम्। चान्द्रायणं चरेद्वर्षं प्रतिमासमहोपि वा ॥

३ गुडतिलपुष्पमूलफलपक्वान्नविक्रये सोमपानं सौम्यः कृच्छ्रः। लाक्षालवणमधुमांसतैलक्षारदधिघृतगंधतक्रचर्मवाससामन्यतमविक्रये चांद्रायणम्। ऊर्णाकेशकेशरीभूधेनुवेश्याश्मशस्त्रविक्रये च भक्ष्यमांसलाव्वस्थिशृंगनखशुक्तिविक्रये तप्तकृच्छ्रः। हिंगुगुग्गुलहरितालमनःशिलांजनगैरिकक्षारलवणमणिमुक्ताप्रवालवैणववेणुमृन्मयेषु च तप्तकृच्छ्रः। आरामतडागोदपानपुष्करिणिसुकृतविक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी चतुर्थकालाहारो दशसहस्रं जपन् संवत्सरेण पूतो भवति हीनमानोन्मानसंकरसंकीर्णविक्रये च।

मूल, फल, पक्कान्न इनको बेचकर सोमपान और सौम्यकृच्छ्र करै । और लाख, लवण, मधु, मांस, तैल, दूध, दही, घृत, गन्ध, मठा, चर्म, वस्त्र इनमें अन्यतम (कोईसा) के वेचनेमें चांद्रायण करै। तैसेही ऊन, केश, केशरी, भू, धेनू, घर, पत्थर, शस्त्र, भक्ष्य, मांस, स्नायु, अस्थि, शृंग, नख, शुक्ति (सींप) इनके विक्रयमें तप्तकृच्छ्र करै । और हींग, गुग्गुल, हरिताल, मनसिल, अंजन, गेरु, खारा, लवण, मणि, मोती, मूंगा, बांसकी वस्तु, बांस, मिट्टीके पात्र इनके वेचनेमें तप्तकृच्छ्र करै और आराम (बाग), तलाव, उद्पान (चोबच्चा आदि), पुष्करिणी, पुण्य इनके विक्रयमें त्रिकाल स्नान, भूमिमें शयन, चौथे काल भोजन, दश सहस्र जप करता हुआ वर्षदिनमें पवित्र होता है और जिनका तोल कम हो और संकर संकीर्ण (मिलावटी) इनके वेचनेमें भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तही करै । इसी प्रकार अन्यभी शंख विष्णु आदिके वचनोंमें जहां प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा वहां उपपातकोंमें साधारण मनुका कहा त्रैमासिक व्रत आपत्ति न होय तो करै । और आपत्तिमें तो याज्ञवल्क्यके कहे चारों व्रत शक्तिके अनुसार करने । तैसेही परिवेत्तामें वसिष्ठने प्रायश्चित्त विशेष कहा है कि परिवेत्ता कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके और ज्येष्ठ भ्राताको वही विवाही हुई कन्या देकर फिर गृहस्थमें प्रवेश और अपनी विवाही हुई उसी कन्याको जो ज्येष्ठ भ्राताको निवेदन की थी ज्येष्ठ भ्राताकी आज्ञासे विवाहले। यहां ज्येष्ठको उसका दान भोगके लिये नहीं समझना किंतु ब्रह्मचर्यमें मांगी हुई भिक्षाके समान इसलिये निवेदन है कि ज्येष्ठ भ्राता क्रुद्ध न रहैं कि इसने हमसे पहिले विवाह क्यों किया । परिवेत्ताका लक्षण पहिले कह आये हैं । और जो हारीतने कहा है कि ज्येष्ठके निवेश (विवाह) किये विना छोटा भ्राता निवेश करै तो परिवेत्ता होता है और ज्येष्ठ भ्राता परिवित्ति और कन्या परिवेदिनी, कन्याका दाता परिदायी और याजक परियष्टा होता है । ये सब पतित होते हैं और वर्ष दिनके कृच्छ्रसे पवित्र होते हैं । और जो शंखने कहा है कि परिवेत्ता और परिवित्ति वर्ष दिनतक ब्राह्मणोंके घरोंमें भिक्षाटन करैं । ये पूर्वोक्त दोनों वचन ज्ञानसे और कन्याके पिताकी आज्ञाके विना विवाहके विषयमें समझने । क्योंकि प्रायश्चित्त गुरु (भारी) है । और जब जानकर पिता आदिकी दी हुई कन्याको विवाहै तब मनुका कहा त्रैमासिक व्रत करै । और पूर्वोक्त कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और याज्ञवल्क्यके कहे चारों व्रत अज्ञानके विषयमें समझने । यमने भी यहां विशेष कहा है कि परिवेद्यमें दोनोंको कृच्छ्र और कन्याको भी कृच्छ्र है, और दाता अतिकृच्छ्र करै और होता चांद्रायण करै । यह प्रायश्चित्त पर्याहिताग्नि (जिसने ज्येष्ठ भ्रातासे पहिले अग्निहोत्र ग्रहण कियाहो) आदिकोंकोभी एक योगमें पढनेसे समान है । सोई गौतमने कहा है कि परिवित्ति, परिवेत्ता, पर्याहित, पर्याधाता, अग्रेदिधिषू, दिधिषूपति ये

१ परिविविदानः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्त्वा पुनर्निविशेत तां चैवोपयच्छेत ।

१ ज्येष्ठेऽनिविष्टे कनीयान्निविशमानः परिवेत्ता भवति परिवेत्तिर्ज्येष्ठः परिवेदिनी कन्या परिदायी दाता परियष्टा याजकस्ते सर्वे पतिताः संवत्सरं प्राजापत्येन कृच्छ्रेण पावयेयुः ।

२ परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेषु भैक्ष्यं चरेयाताम् ।

३ कृच्छ्रौ द्वयोः परिवेद्ये कन्यायाः कृच्छ्र एव च । अतिकृच्छ्रं चरेद्दाता होता चांद्रायणं चरेत् ॥

४ परिवित्तिपरिवेतृपर्याहितपर्याधात्रग्रेदिधिषूदिधिषूपतीनां संवत्सरं प्राकृतं ब्रह्मचर्यम् ।

संवत्सरतक प्राकृत ब्रह्मचर्य करैं इसीसे वसिष्ठने अग्रेदिधिषूपति आदिकोंको यही प्रायश्चित्त[1] कहा है कि अग्रेदिधिषूका पति द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करै और उसीको विवाह ले। दिधिषूका पति कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके उसीको दी हुई दिधिषूको फिर विवाहले। अग्रेदिधिषू आदिका लक्षण अन्य स्मृतिमें[2] कहा है कि जेठी कन्याका विवाह न होनेपर छोटी कन्या जो विवाही जाय वह अग्रेदिधिषू और जेठी दिधिषू होतीहै। उनमें अग्रेदिधिषूका पति प्राजापत्य व्रतको करके उसी जेठीको तब विवाहै जब उसका अपने विवाहसे पीछे किसी अन्य पुरुषके संग विवाह (संबंध) हो चुका हो और दिधिषूका पति कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करके अपनी विवाही जेठी कन्याको छोटी कन्याके पतिको देकर किसी अन्य कन्याके संग विवाह करले। इति परिवेदनम्। तैसेही भृतकाध्यापक और भृतकाध्यापित इन दोनोंको दूधसे सुवर्चलाको पीवै इस अधिकारमें विष्णुने कहा है[3] कि भृतक (नौकरी) से अध्यापन (पढाना) करके और भृतकसे पढके अनुयोगके प्रदानसे तीन पक्षतक नियमसे दूधके संग ब्रह्म सुवर्चलाको पीवै। चडाईके लिये पढते हुए तैंने नाश किया ऐसे कथनको अनुयोग प्रदान कहते हैं। इसीसे अन्यस्मृतिमें पढनेवालेको जिन अध्यापकोंने अनुयोग दिया है उनको मनुने[1] पतित कहा है यह कथन है। यहांभी पूर्वोक्त व्रतोंके संग शक्तिकी अपेक्षासे इसका विकल्प समझना। तैसेही पराई दाराके गमनमें सब उपपातकोंमें प्राप्त मनुके कहे त्रैमासिक व्रतका और याज्ञवल्क्यके कहे पूर्वोक्त चारों व्रतोंका गुरुकी स्त्रीमें अपवाद (निषेध) कहा है, तिसी प्रकार अन्य ग्रन्थोंमेंभी गौतम आदिकोंने किसी २ परदाराके गमनमें अपवाद कहा है, सोई गौतमने[2] कहा है कि परदारामें दो वर्ष और वेदपाठीकी दारामें तीन वर्ष ब्रह्मचर्य है। तैसेही वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्यके प्रस्तावमें गौतमनेही[3] कहा है कि उपपातकोंमेंभी ऐसेही समझना। उनकी यह व्यवस्था है कि ऋतुकालमें जानकर जातिमात्र ब्राह्मणीके गमनमें वर्षभर प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है और ऋतुकालमेंही कार्यके साधक गुणवाली ब्राह्मणीके गमनमें दो वर्षतक प्राकृत ब्रह्मचर्य करै और वैसीही वेदपाठीकी भार्याके गमनमें तीन वर्षतक प्राकृत ब्रह्मचर्य करै अथवा यह व्यवस्था है कि वेदपाठीकी गुणावती ब्राह्मणी पत्नीमें तीन वर्षका और वैसीही क्षत्रिया पत्नीमें दो वर्षका और वैसीही वैश्या पत्नीमें एक वर्षका ब्रह्मचर्य करै। इसी रीतिसे शूद्रामें छः मासके प्राकृत ब्रह्मचर्यकी कल्पना करनी। इसीसे शंखने[4] वर्णके क्रमसे प्रायश्चित्तकी न्यूनता दिखाई है कि वैश्यामें अवकीर्ण

---

१ अग्रेदिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत तां चैवोपयच्छेत् दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा तस्मै दत्तां पुनर्निविशेत्।

२ ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा। या साऽग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्मृता॥

३ भृतकाध्यापनं कृत्वा भृतकाध्यापितस्तथा। अनुयोगप्रदानेन त्रीन्पक्षान्नियतः पिबेत्॥

१ दत्तानुयोगानध्येतुः पतितान्मनुरब्रवीत्।

२ द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य।

३ उपपातकेषु चैवम्।

४ वैश्यामवकीर्णः संवत्सरं ब्रह्मचर्यं त्रिषवणं चानुतिष्ठेत् क्षत्रियायां द्वे वर्षे त्रीणि ब्राह्मण्यां वैश्यायां शूद्रायां ब्राह्मणपरिणीतायाम्।

(वीर्यसेचन करनेवाला) होय तो वर्ष दिन ब्रह्मचर्य और त्रिकाल स्नान करै, क्षत्रियामें दो वर्ष, ब्राह्मणीमें तीन वर्ष करै. वैश्या और शूद्रा ब्राह्मणकी विवाही होय तो उक्त प्रायश्चित्त समझना। इसी प्रकार क्षत्रियको भी क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें दो वर्षका, एक वर्षका, छः मासका ब्रह्मचर्य पूर्वोक्तही विषयमें समझना और वैश्यको वैश्या और शूद्राके गमनमें एक वर्षका और छः मासका प्रायश्चित्त करै। और शूद्र पराई शूद्राके गमनमें छः मासका ब्रह्मचर्य करै। और जो आपस्तंबका वचन है जिसने अन्यका संग न किया हो ऐसी सवर्णा स्त्रीके गमनमें पाद प्रायश्चित्त कहा है। अभ्यासमें पतित होता है। और चौथे गमनमें संपूर्ण प्रायश्चित्त होता है, यह वचन गौतमके कहे तीन वर्षके प्रायश्चित्तका जो विषय उसमें समझना। जिसका अन्य पुरुषके संग संयोग न हुआ हो उस स्त्रीके चार बार अभ्यासमें बारह वर्षका प्रायश्चित्त कहाहै। इससे एक स्त्रीके विषय गमनके अभ्यासमें यह प्रायश्चित्त नहीं किन्तु गमन १ के प्रति एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। यह सब प्रायश्चित ज्ञानसे करनेमें समझना, अज्ञानसे करनेमें तो यह प्रायश्चित्त पूर्वोक्त विषयमें आधा समझना। ऋतुसे भिन्न कालमें तो ज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणीके गमनमें मनुका कहा त्रैमासिक व्रत है। और क्षत्रिया आदि जाति मात्र स्त्रियोंके पूर्वोक्त समयके ज्ञानसे गमनमें उनको कहेही दो मासका चान्द्रायण और मासिक व्रत समझने और क्षत्रिय आदिकोंको तो क्षत्रिया आदि स्त्रियोंमें द्वैमासिक आदि व्रत समझने। और अज्ञानसे

१ सवर्णायामनन्यपूर्वायां सकृत्संनिपाते पादः पतत्येवमभ्यासे पादः पादश्चतुर्थे सर्वम्।

इनके गमनमें तीन वर्षका जो प्रायश्चित्त उसके स्थानमें याज्ञवल्क्यकी कहा जो एक बैल दश गौओंका दान, मासभर प्राजापत्यका करना क्रमसे जानना। शूद्राके गमनमें तो ज्ञानसे गमनमें कहा जो मासव्रत वही आधा समझना। इसीसे संवर्तने कहा है कि मास वा आधे मासतक ब्राह्मण शूद्राका गमन करके गोमूत्र और जौको पीकर उस पापकी मुक्तिके अर्थ टिका रहै। इस वचनमें अज्ञानसे गमनमें आधा मास समझना। और यदि ब्राह्मण जानकर ब्राह्मणकी दाराओंके संग गमन करै तो जिसका धर्म कर्म निवृत्त हो चुकाहो वह कृच्छ्र और जो धर्म कर्ममें निष्ठ हो वह अतिकृच्छ्र करै। ये वचन ब्राह्मणकी भार्या जो शूद्रा उसमें समझने अथवा दो तीन वार किया है व्यभिचार जिन्होंने ऐसी ब्राह्मणकी विवाही हुई द्विजाति स्त्रियोंमें अज्ञानसे गमनमें समझने। सोई संवर्तने कहाहै कि नहीं है स्वजन (पति) जिसके ऐसी ब्राह्मणीके संग गमन करके प्राजापत्य करै। ज्ञानसे करै तो यह यमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि राणी, संन्यासिनी, धात्री (धाय), साध्वी और उत्तम वर्णकी और सगोत्रा इनका गमन करके दो कृच्छ्र करैं। यदि व्यभिचारका चारसे अधिक अभ्यास होजाय तो शंखका कहा यह प्राय-

१ शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा। गोमूत्रयावकाहारस्तिष्ठेत्तत्पापमुक्तये॥

२ विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्।

३ राज्ञीं प्रव्रजितां साध्वीं धात्रीं वर्णोत्तमामिति। कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च॥

४ स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्णः सचैलस्नात उदकुंभं दद्याद् ब्राह्मणाय वैश्यायां च चतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेद्यवसभारं च गोभ्यो दद्यात् क्षत्रियायां त्रिरात्रोपोषितो घृतपात्रं दद्यात् ब्राह्मण्यां षड्रात्रोपोषितो गां दद्यात् गोष्ववकीर्णः प्राजापत्यं चरेत् अनूढायामवकीर्णः पलालभारं सीसमाषकं च दद्यात्।

श्चित्त जानना कि व्यभिचारिणी शूद्रामें गमन करै तो सचैलस्नान करके जलका घट ब्राह्मणको दे। और वैश्यामें करै तो चौथे काल भोजन करै, ब्राह्मणोंको जिमावै। भूसका भार गौओंको दे। क्षत्रियामें करै तो तीन रात्र उपवास करके घीका पात्र दे। और ब्राह्मणीमें गमन करै तो छः रात्र उपवास करके गोदान करै। गौओंका गमन (भोग) करै तो प्राजापत्य करै। विना विवाही कन्याके संग गमन करै तो पलालका भार और मासे भर सीसा दे। यह भी चार आदि अभ्यासके विषयमें इससे जानना कि चौथे व्यभिचारमें स्वैरिणी और पांचवेंमें बंधकी मानीहै यह अन्य वचनमें कहाहै। इस विषयमें षट्त्रिंशत्के मतमें भी कहाहै कि बंधकी ब्राह्मणीके संग गमन करके ब्राह्मणको कुछ दे, क्षत्रियामें गमन करके धनुष दे, वैश्याके गमनमें वस्त्र दे, शूद्राके गमनमें ब्राह्मण ब्राह्मणको जलका घट दे, वा एक दिन उपवास करके ब्राह्मणको भोजन दे। अनुलोमके व्यवाय (भोग) में गर्भ रहजाय तो दूना प्रायाश्चित्त तभी होताहै यदि वह स्त्री अतिदूषित न हो और प्रतिलोम (नीचवर्ण) के संग उसने गमन न किया हो। अन्य जातिके गमनमें दूना प्रायाश्चित्त होताहै। प्रतिलोम गमनसे दूषित, अंत्यावसायी और चांडालीके गर्भ रहनेमें गुरुतल्पके समान व्रत समझना। तैसेही किंचित् न्यून तारतम्यकी कल्पना करनी। चांडालीके गमनमें वार्षिक और गर्भ रहने पर गुरुतल्पव्रत जानना। यह प्रायश्चित्तका समूह गर्भकी उत्पत्तिसे प्रथम जानना गर्भकी उत्पत्ति होजाय तो जिस विषयमें जो प्रायश्चित्त कहा है वही वहां दूना करना। क्योंकि उशनाकी स्मृति है कि गमनमें जो व्रत होता है वह गर्भमें दूना करै[१]। शूद्रामें गर्भाधान करते हुए पुरुषको चतुर्विंशतिके मतमें विशेष कहा है कि शूद्रामें गर्भाधान करै तो तीन वर्षतक चौथे समय भोजन करै[२] और जो मनुका वचन है (अ० ३ श्लो० १७) कि शूद्राको शय्यापर बैठाकर ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है और उसमें पुत्रको उत्पन्न करके ब्राह्मणही नहीं रहता,[३] वह वचन पापकी अधिकता जतानेके लिये है। और प्रतिलोम (ऊंचे वर्णकी स्त्री) गमनमें तो सब जगह पुरुषका वधही प्रायश्चित्त है। क्योंकि यह वचन है कि प्रतिलोममें पुरुषका वध और स्त्रीके कान आदिका छेदन कहा है[४] और जो वृद्धप्रचेताका वचन है कि मोहसे ब्राह्मणीका गमन करते और शुद्धि चाहते हुए शूद्रको यह व्रत दे। क्योंकि वह उसकी माता है और अन्य वर्णकी स्त्रियोंमें गमन करते हुए शूद्रको एक २ पादसे न्यून व्रत वर्णोंके क्रमसे दे[५]। यह बारह वर्षका अतिदेशका वचन अपनी भार्याकी भ्रांतिसे गमनके कर्त्ताको जानना। क्योंकि वचनमें मोहसे यह विशेषण दिया है।

१ चतुर्थे स्वैरिणी प्रोक्ता पंचमे बंधकी मता।

२ ब्राह्मणीं बंधकीं गत्वा किंचिद्दद्याद्द्विजातये। राजन्यां चेद्धनुर्दद्याद्वैश्यां गत्वा तु चैलकम्॥ शूद्रां गत्वा तु वै विप्र उदकुंभं द्विजातये। दिवसोपोषितो वा स्याद्दद्याद्विप्राय भोजनम्॥

१ गमने तु व्रतं यत्स्याद्गर्भे तद्द्विगुणं चरेत्॥

२ वृषल्यामभिजातस्तु त्रीणि वर्षाणि चतुर्थकालसमये नक्तं भुंजीत।

३ शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्। जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥

४ प्रातिलोम्ये पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम्॥

५ शूद्रस्य ब्राह्मणीं मोहाद्गच्छतः शुद्धिमिच्छतः। पूर्णमेतद् व्रतं देयं माता यस्माद्धि तस्य सा॥ पादह्रान्यान्यवर्णासु गच्छतः सार्ववर्णिकम्॥

और जो संवर्तका वचन है कि क्षत्रिय वा वैश्य कथंचित् ब्राह्मणीसे गमन करै तो शुद्धिके लिये सांतपन कृच्छ्र करै। और कामसे मोहित शूद्र ब्राह्मणीके संग गमन करै तो गोमूत्र और जौको खाता हुआ एक मासमें शुद्ध होता है, वह अत्यन्त व्यभिचारिणी ब्राह्मणीके विषयमें जानना। अंत्यजाके गमनमें प्रायश्चित्त वृहत्संवर्त्तने कहा है कि रजक व्याध शैलूष (नट) और जो बांस और चर्मसे जीवैं इनकी स्त्रियोंके संग गमन करके ब्राह्मण दो चान्द्रायण करै, वह भी ब्राह्मणको जानकर एक वार गमनके विषयमें समझना और क्षत्रिय आदिको तो क्रमसे पाद २ न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। इसी विषयमें आपस्तंवने कहा है कि म्लेच्छी, नटी, चर्मकारी, रजकी, बुरुडी इनमें गमन करके दो चान्द्रायण करै। अंत्यज भी आपस्तंवने ये दिखाये हैं कि रजक, चर्मकार, नट, बुरुड, कैवर्त्त, भेद, भील ये सात अंत्यज कहे हैं और जो चाण्डाल आदि अंत्यावसायी हैं, उनकी स्त्रियोंके गमनमें महान् प्रायश्चित्त गुरुतल्पप्रकरणमें दिखाय आये। इन अंत्यजोंकी स्त्रियोंके मध्यमें एकके गमनमें जो प्रायश्चित्त कहा है वह सबके गमनमें होता है। क्योंकि वे सब तुल्य हैं। सोई उशनाने कहा है कि एक धर्मवाले बहुतोंके मध्यमें जो एकको कहा हो वह कार्य सबको होता है क्योंकि वे एक रूप कहे हैं। अज्ञानसे गमनमें तो यह आपस्तंवका कहा जानना कि चाण्डाल, भेद, श्वपच, कपाल व्रतके कर्त्ता अज्ञानसे इनकी स्त्रियोंमें गमन करके पराक व्रत करै। और जो संवर्त्तका वचन है कि रजक, व्याध, शैलूष, बांस और चर्मसे जो जीवैं इनकी स्त्रियोंके संग ब्राह्मण गमन करै तो कृच्छ्र चान्द्रायण करै, यह भी अज्ञानके विषयमें समझना। और जो शातातपने कहा है कि कैवर्त्ती रजकी बांस और चर्मसे जीनेवाली इनके गमनमें प्राजापत्य कृच्छ्रसे शुद्ध होता है, वह भी वीर्य सींचनेसे पूर्व निवृत्तिके विषयमें समझना। और जो उशनाने कहा है कि कापालिकोंके अन्नके भोक्ता और उनकी स्त्रियोंके गामी जो हैं उनको ज्ञानसे वर्षभर कृच्छ्र और अज्ञानसे चान्द्रायण कहा है वे भी अभ्यासके विषयमें समझना और जब चाण्डाली आदिके गमनसे गर्भ होजाय तब चाण्डालीमें गर्भ धारण करके गुरुतल्पव्रत करै यह उशनाका कहा बारह वर्षका प्रायश्चित्त जानना और आपस्तंबका यह

१ कथंचिद्ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियो वैश्य एव वा। कृच्छ्रं सांतपनं वा स्यात्प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कथंचित्काममोहितः। गोमूत्रयावकाहारो मासेनकन शुध्यति ॥

२ रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्। एता तु ब्राह्मणो गत्वा चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥

३ म्लेच्छी नटी चर्मकारी रजकी बुरुडी तथा। एतासु ब्राह्मणो गत्वा चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥

४ रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च। कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः ॥

१ बहूनामेकधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते। सर्वेषां तद्भवेत्कार्यमेकरूपा हि ते स्मृताः ॥

२ चंडालभेदश्वपचकपालव्रतचारिणाम्। अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकव्रतमाचरेत् ॥

३ रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम्। स्त्रियो विप्रो यदा गच्छेत्कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥

४ कैवर्ती रजकीं चैव वेणुचर्मोपजीविनीम्। प्राजापत्यविधानेन कृच्छ्रेणैकेन शुद्ध्यति ॥

५ कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा। ज्ञानात्कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैन्दवं स्मृतम् ॥

६ चांडाल्यां गर्भमारोप्य गुरुतल्पव्रतं चरेत्।

७ अंत्यजायां प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते। निर्वासनं कृतांकस्य तस्य कार्यमसंशयम् ॥

वचन है कि, अंत्यजामें जो पैदा हुआ उसका प्रायश्चित्त नहीं, उसको अंकित करके देशसे निकाल दे इसमें संशय नहीं, वह भी जानकर करनेमें समझना। स्त्रियोंको भी सवर्ण और अनुलोमके गमनमें वही प्रायश्चित्त होता है। क्योंकि मनुकी स्मृति है (अ० ११ श्लो० १७६) कि परदाराके गमनमें जो पुरुषको है वही व्रत स्त्रीसे करावै। प्रतिलोमके गमनमें तो स्त्री और पुरुषको प्रायश्चित्तका भेद है। सोई वसिष्ठने कहा है कि यदि शूद्र ब्राह्मणीमें गमन करै तो वीरणों (तृण) से लपेटकर शूद्रको अग्निमें फेंकदे और ब्राह्मणीके शिरका मुंडन करकर और घीमें डुबा नंगी कर सफेद खरपर चढाकर महापथ (सडक) में गमन करावे तो पवित्र होती है। यदि वैश्य ब्राह्मणीके संग गमन करै तो लालकुशाओंसे लपेटकर वैश्यको अग्निमें फेंकदे और ब्राह्मणी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त (मुंडन आदि) से शुद्ध होती है। यदि क्षत्रिय ब्राह्मणीमें गमन करै तो शरके पत्ते लपेटकर क्षीत्रयको फेंकदे। और ब्राह्मणी मुंडन आदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्तसे शुद्ध होतीहै। यह शास्त्रसे जानते हैं। इसी प्रकार वैश्य क्षत्रियामें और शूद्र क्षत्रिया वैश्यामें गमन करै तो प्रायश्चित्त जानना। पवित्र होती यह कहनेसे यह दिखाया है कि राजमार्गका गमनही दंडरूप अन्य प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षाको छोडकर शुद्धिका कारण है। ब्राह्मणीके प्रतिलोम द्विजातियोंके संग भोग करनेमें अन्य प्रायश्चित्त भी संवर्त्तने कहा है कि ब्राह्मणी अज्ञानसे क्षत्रिय और वैश्यके संग गमन करै तो गोमूत्र और जौका भक्षण करनेसे एक मास और अर्ध मासमें क्रमसे शुद्ध होती है। जानकर गमनमें तो दूना प्रायश्चित्त इस वचनसे होता है। षट्त्रिंशतके मतमें भी कहा है कि क्षत्रिय और वैश्यकी सेवा (भोग) में ब्राह्मणी अतिकृच्छ्र और कृच्छ्रातिकृच्छ्र क्रमसे करै। क्षत्रिया ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें कृच्छ्रका अर्ध प्राजापत्य, अतिकृच्छ्र क्रमसे करै। वैश्या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें कृच्छ्रपाद, कृच्छ्रार्ध, प्राजापत्य क्रमसे करै। शूद्राशूद्रके भोगमें प्राजापत्य करै। और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनके भोगमें तो क्रमसे अहोरात्र, त्रिरात्र, कृच्छ्रार्ध करै। शूद्रकी सेवामें तो विशेष बृहत्प्रचेताने कहा है कि ब्राह्मणी शूद्रकी सेवामें यदि

१ यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम्।

२ शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्वीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येत् ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वेष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्य ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूता भवतीति। राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वपनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नग्नां गौरखरमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत्पूताभवतीति विज्ञायते।

१ ब्राह्मण्यकामा गच्छेच्चेत्क्षत्रियं वैश्यमेव वा। गोमूत्रयावकैर्मासात्तदर्धाच्च विशुद्ध्यति॥

२ कामात्तद्द्विगुणं भवेत्।

३ ब्राह्मणी क्षत्रियवैश्यसेवायामातिकृच्छ्रं कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरेत्। क्षत्रिययोषित् ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रार्द्धं प्राजापत्यमतिकृच्छ्रं वैश्ययोषित् ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां कृच्छ्रपादं कृच्छ्रार्धं प्राजापत्यं शूद्रायाः शूद्रसेवने प्राजापत्यं ब्राह्मणराजन्यवैश्यसेवायां त्वहोरात्रं त्रिरात्रं कृच्छ्रार्द्धम्।

४ विप्रा शूद्रेण संपृक्ता न चेत्तस्मात्प्रसूयते। प्रायश्चित्तं स्मृतं तस्याः कृच्छ्रं चांद्रायणत्रयम्॥ चांद्रायणे द्वे कृच्छ्रश्च विप्राया वैश्यसेवने। कृच्छ्रचांद्रायणे स्यातां तस्याः क्षत्रियसंगमे॥ क्षत्रिया शूद्रसंपर्के कृच्छ्रचांद्रायणद्वयम्। चान्द्रायणं सकृच्छ्रं तु चरेद्वैश्येन संगता॥ शूद्रं गत्वा चरेद्वैश्या कृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरम्। आनुलोम्ये प्रकुर्वीत कृच्छ्रं पादावरोपितम्॥

प्रसूता न होय तो उसका प्रायश्चित्त तीन चांद्रायण कृच्छ्र कहाहै। यह प्रायश्चित्त इच्छाके अभावमें वा अपने पतिके भ्रमसे गमनमें जानने । और वैश्यकी सेवामें ब्राह्मणीको चांद्रायण और दो कृच्छ्र हैं। और ब्राह्मणीको क्षत्रियके संगममें कृच्छ्र और चांद्रायण हैं। और क्षत्रियाको शूद्रके संसर्गमें कृच्छ्र और दो चांद्रायण हैं। और क्षत्रियाको वैश्यके संगममें कृच्छ्र और चांद्रायण करै। और वैश्या शूद्रका संगम करके चांद्रायण और कृच्छ्र करै। और अनुलोम गमनमें एक २ पाद अधिक कृच्छ्र क्रमसे करै। और प्रसूताको तो चतुर्विंशतिके मतमें विशेष कहाहै कि अज्ञानसे ब्राह्मणके गर्भमें पराक, क्षत्रियके गर्भमें ऐंदव (चांद्रायण) और वैश्यके गर्भमें ऐंदव और पराक और शूद्रके गर्भमें त्याग होता है। क्योंकि वह चाण्डाल होता है और धातुओंके दोषोंसे गर्भका स्राव हो जाय तो तीन चांद्रायण करै। अज्ञानसे यह विशेषण देनेसे पराक आदि व्रत द्विगुण करै और जब गर्भके न गिरने पर दश मासतक स्थित रहनेसे बालक होय तो प्रायश्चित्तका अभाव है। क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी भार्या शूद्रका संगम करैं तो बालकके जन्मसे पहिलेही प्रायश्चित्तसे शुद्ध होती हैं अन्य नहीं। और यदि गर्भ रहनेके पीछे शूद्र आदिके संग व्यभिचार करै तो तब गर्भपात होनेकी शंकासे प्रसवके अनंतरही प्रायश्चित्त करै। क्योंकि यह अन्य स्मृतिमें देखतेहैं कि जो गर्भवती नारी बलात्कारसे किसी कामी पुरुषका संग करै तो वह गर्भ निकसनेसे पहिले प्रायश्चित्त न करै, बालक पैदा होने पर मासतक यावक व्रत करै, उसको गर्भका दोष नहीं। उस बालकका विधिसे संस्कार करै और जो उद्धत हुई प्रायश्चित्त न करै तो नारीके पूर्वोक्त कान आदिका छेदन करै। अंत्यज आदिके गमनमेंभी स्त्रियोंका प्रायश्चित्त अन्य स्मृतिमें दिखाया है कि रजक, व्याध, नट, बांस और चर्मसे जो जीवें इनके संग अज्ञानसे ब्राह्मणी गमन करै तो तीन ऐंदव व्रत करै, तैसेही चांडाल आदि अंत्यजोंके गमनमें भी यहै है कि चांडाल, पुल्कस, म्लेच्छ, श्वपाक और पतित इनके संग अज्ञानसे गमन करके ब्राह्मणी चार चांद्रायण करै। अज्ञानसे यह कहनेसे जानकर गमनमें दूने प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। तैसेही [4]वचन है कि चांडालके संग किसी

---

१ विप्रगर्भे पराकः स्यात्क्षत्रियस्य तथैंदवम् । ऐंदवश्च पराकश्च वैश्यस्याकामकारतः ॥ शूद्रगर्भे भवेत्त्यागश्चांडालो जायते यतः । गर्भस्रावे धातुदोषैश्चरेच्चांद्रायणत्रयम् ॥

२ ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः। अप्रजाता विशुद्ध्यंति प्रायश्चित्तेन नेतराः ॥

३ अंतर्वत्नी तु या नारी समेताक्रम्य कामिना । प्रायश्चित्तं न कुर्यात्सा यावद्गर्भो न निःसृतः ॥ गर्भे जाते व्रतं पश्चात्कुर्यान्मासं तु यावकम् । न गर्भदोषस्तस्यास्ति संस्कार्यः स यथाविधि ॥

२ रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥ ब्राह्मण्येतान्यदागच्छेदकामादैंदवत्रयम् ॥

३ चांडालं पुल्कसं म्लेच्छं श्वपाकं पतितं तथा । ब्राह्मण्यकामतो गत्वा चांद्रायणचतुष्टयम् ॥

४ चांडालेन तु संपर्कं यदि गच्छेत्कथंचन । सशिखं वपनं कुर्याद्भुंजीयाद्यावकौदनम् ॥ त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् । आत्मना संमिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥ तत्र स्थित्वा निराहारा सा त्रिरात्रं ततः क्षिपेत् । शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥ क्षीरे सुवर्णसंमिश्रं क्काथयित्वा ततः पिबेत् । एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥ बहिस्तावच्च निवसेद्यावच्चराति तद्व्रतम् । प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्ध्यै स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥

प्रकार गमन करै तो शिखासहित मुंडन करावे और जौ ओदनको भक्षण करै, तीनरात्र उपवास करै, एकरात्र जलमें वसै और अपने तुल्य कूपमें, गोमयके जलके कीचमें निराहार टिककर तीन रात्र बितावै, फिर शंखपुष्पीलताका मूल, पत्र, फूल, फल इनको दूधमें सुवर्णको मिलाकर पकाकर पीवै, फिर जबतक पुष्पवती हो, एक समय भोजन करै और इतने उस व्रतको करै, घरसे वाहिर रहै और प्रायश्चित्त करनेके अनंतर ब्राह्मणोंको जिमावे और दो गौ दक्षिणा शुद्धिके लिये दे यह स्वायंभुव मनुने कहाहै। यहभी अज्ञानके विषयमेंही समझना। क्योंकि किसी प्रकार गमन करै यह वचनमें कहा है। ऋष्यशृंगने भी अंत्यजाके मैथुनमें अन्य प्रायश्चित्त कहा है कि जो अंत्यजोंके संग संपर्क करै वह स्त्री कृच्छ्राब्द करै, यह जानकर एकवार गमनमें समझना। और यदि गर्भवतीकाही पीछेसे चांडाल आदिके संग संगम हो जाय तो उसनेही विशेष कहा है कि गर्भवती युवती अंत्ययोनीके संग संपर्क करै तो वह गर्भके निकसने तक प्रायश्चित्त न करै और घरमें भी न फिरै और न अपने अंगोंका प्रसाधन करै, न भर्ताके संग सोवै, न बांधवोंके संग भोजन करै और गर्भके पैदा होनेपर कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करै, सुवर्ण वा गौ ब्राह्मणको दक्षिणा दे और जब जानकर अत्यन्त संपर्क करै तो उशनाका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि अंत्यजके संग मैथुन संपर्क भोजन करै तो जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके वह मृत्युसे शुद्ध होती है और यदि उक्त प्रायश्चित्त न करै तो स्त्रीके देहमें पुरुषका चिह्न करदे वा वंध्या होजाय। क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि जिस स्त्रीको हीनवर्णने भोगी हो उसके चिह्न करदे अथवा वह वंध्या होजाय। तैसेही परिवित्तिके प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था भी परिवेत्ताके प्रायश्चित्तोंके समान जाननी। इतना तो विशेष है कि, परिवेत्ताको जिस विषयमें कृच्छ्र अतिकृच्छ्र है उसमें परिवित्तिको प्राजापत्य होता है। क्योंकि यह वासिष्ठकी स्मृति है कि परिवित्ति द्वादश रात्र कृच्छ्र कर फिर निवेश करै और उसकोही विवाहले। वार्धुष्य (व्याज लेना), लवणका विक्रय इन दोनोंमें तो मनु और योगीश्वरने कहे जो सामान्य उपपातकोंके प्रायश्चित्त वेही जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे युक्त करने (समझने) ॥

भावार्थ-इसी पूर्वोक्त प्रकारसे उपपातककी शुद्धि होती है वा चांद्रायणसे वा मासभर दूध पीनेसे अथवा पराक व्रतसे सब उपपातकोंकी शुद्धि होती है ॥ २६५ ॥

ऋषभैकसहस्रागादद्यात्क्षत्रवधेपुमान्। ब्रह्महत्याव्रतंवापिवत्सरात्रितयंचरेत् २६६

पद-ऋषभैसहस्राः २ गाः २ दद्यात् क्रि-क्षत्रवधे ७ पुमान् १ ब्रह्महत्याव्रतम् २ वाऽ-अपिऽ-वत्सरत्रियम् २ चरेत् क्रि-॥

वैश्यहाब्दंचरेदेतद्दद्याद्वैकशतंगवाम्। षण्मासाच्छूद्रहाप्येतद्धेनूर्दद्याद्दशाथवा ॥

१ संपृक्ता स्यादथांत्यैर्या सा कृच्छ्राब्दं समाचरेत्।

२ अंतर्वत्नी तु युवतिः संपृक्ता चांत्ययोनिना। प्रायश्चित्तं न सा कुर्याद्यावद्गर्भो न निःसृतः ॥ न प्रचारं गृहे कुर्यान्न चांगेषु प्रसाधनम्। न शयीत समं भर्त्रा न वा भुंजीत बांधवैः ॥ प्रायश्चित्तं गते गर्भे त्रिविधं कृच्छ्राब्दिकं चरेत्। हिरण्यमथवा धेनुं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥

३ अंत्यजेन तु संपर्के भोजने मैथुने कृते। प्रविश्यसंप्रदीप्तेग्नौ मृत्युना सा विशुद्ध्यति ॥

१ हीनवर्णोपभुक्ता या सांक्या वंध्याथवा भवेत्।

२ परिवित्तिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्निविंशेत तां चैवोपयच्छेत्।

पद-वैश्यहा १ अब्दम् २ चरेत् क्रि-एतत् २ दद्यात् क्रि-वाऽ-एकशतम् २ गवाम् ६ षण्मासान् २ शूद्रहा १ अपिऽ-एतत् २ धेनूः २ दद्यात् क्रि-दश २ अथवाऽ-॥

योजना-पुमान् क्षत्रवधे ऋषभैकसहस्रा गा दद्यात् वा वत्सरत्रितयं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । वैश्यहा एतत् अब्दं चरेत् वा गवाम् एकशतं दद्यात् । शूद्रहा अपि एतत् षण्मासान् चरेत् अथवा दश धेनूः दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-ऋषभ (बैल) है एक अधिक जिनमें ऐसी सहस्र गौ क्षत्रियके वधको करके पुरुष दे, अथवा बडा प्रायश्चित्तरूप ब्रह्महत्याका व्रत तीन वर्षतक करै । वैश्यका घाती इस ब्रह्महत्याके व्रतको एक वर्षतक करै और ऋषभ है एक जिनमें ऐसी सौ गौ दान करै । और शूद्रका घाती तो छः मासतक ब्रह्महत्याका व्रत करै । वा तत्काल प्रसूता और सवत्सा दश गौओंका दान करै । यह प्रायश्चित्त अज्ञानसे जातिमात्र क्षत्रिय आदिके वधमें समझना । कि अज्ञानसे राजाको मारकर इस प्रकरणमें येही प्रायश्चित्त मनुने कहे हैं और दान और तपकी व्यवस्था शक्तिकी अपेक्षासे जाननी । अल्पवृत्तमें स्थित वैश्य और शूद्रके विषयमें तो यह मनु (अ० ११ श्लो० १२६) का कहा जानना कि ब्रह्महत्याका चौथा भाग क्षत्रियके वधमें कहा है और वैश्यके वधमें आठवां भाग और शूद्रकी हत्यामें सोलहवां भाग जानना और सदाचारी क्षत्रियके वधमें तो साढेचार वर्षके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी । यहां वृत्त शब्दसे गुण आदि लेने क्योंकि मनुकी स्मृति है कि गुरुपूजा, घृणा, शौच, सत्य, इन्द्रियोंका रोकना, हित करना यह सब वृत्त कहाता है । और जो वृद्ध हारीतका वचन है कि ब्राह्मण क्षत्रियको मारकर छः वर्ष व्रत करै, और द्विज वैश्यको मारकर इसी व्रतको तीन वर्षतक करै, वैश्यको मारकर वर्षभर व्रतको करै और एक वृषभ दश गौओंका दान करै, यह ज्ञानसे करनेमें समझना । वेदपाठी क्षत्रिय आदिके वधमें तो यह वृद्धहारीतका कहा जानना कि क्षत्रियके वधमें एकपाद न्यून ब्रह्महत्याका व्रत करै । वैश्यके वधमें आधा और शूद्रके वधमें चौथाई करै । और जो वसिष्ठका वचन है कि ब्राह्मण क्षत्रियको मारकर आठ वर्ष व्रत करै, वैश्यको हतकर छः वर्ष, और शूद्रको मारकर तीन वर्ष व्रत करै, वहभी हारीतके कहे विषयमें ही समझना । और ईषतन्यून गुणवाले क्षत्रियमें तो इतना विशेष है कि जब क्षत्रिय वेदपाठी और वृत्तमें स्थित हो तब तो पूर्वके दोनों वर्णोंमें वेदपाठीको मारकर यह आपस्तंबका कहा बारह वर्षका प्रायश्चित्त जानना । जिसने यज्ञका प्रारंभ कर रक्खा हो ऐसे वेदपाठीसे भिन्न क्षत्रिय आदिके मारनेमें तो यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यका घाती ब्रह्महत्याका व्रत करै । यह व्रत जानना । और यज्ञमें स्थित वेदपाठी क्षत्रिय आदिमें ब्राह्मण क्षत्रियका वध करै तो छः व-

---

१ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥

२ गुरुपूजा घृणा शौचं सत्यमिंद्रियनिग्रहः । प्रवर्तनं हितानां च तत्सर्वं वृत्तमुच्यते ॥

१ ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा षड्वर्षाणि व्रतं चरेत् । वैश्यं हत्वा चरेदेतं व्रतं त्रैवार्षिकं द्विजः ॥ शूद्रं हत्वा चरेद्वर्षं वृषभैकादशाश्च गाः ॥

२ तुरीयोनं क्षत्रियस्य वधे ब्रह्महणि व्रतम् । अर्द्धं वैश्यवधे कुर्यात्तुरीयं वृषलस्य तु ॥

३ ब्राह्मणो राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि व्रतं चरेत् षड् वैश्यं त्रीणि शूद्रम् ।

४ पूर्वयोर्वर्णयोर्वेदाध्यायिनं हत्वा द्वादशवार्षिकं चरेत् ।

र्षका प्राकृत ब्रह्मचर्य करै और एक बैल सहस्र गौ दे। वैश्यके वधमें तीन वर्ष ब्रह्मचर्य एक बैल सौ गौ दे। शूद्रके वधमें वर्षदिनका ब्रह्मचर्य करै, एक बैल दश गौ दे, यह गौतमका कहा दान और तपका समुच्चय जानना, यहभी अज्ञानके विषयमें जानना, क्योंकि शंखकी स्मृति है कि अज्ञानसे चारों वर्णोंको मारकर बारह छः तीन एक वर्षतक ब्रह्मचर्य करै और उनके अंतमें सहस्र, पांच सौ, अढाई सौ, सवासौ गौ वर्णोंके क्रमसे दे। यह बारह वर्षका व्रतभी गौतमके ही कहे विषयमें है, किंचित् न्यून गुणवाले क्षत्रियमें और अधिक गुणवाले वैश्य और शूद्रमेंभी जानना। क्योंकि (स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधे) स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्री इनके वधमें इस वचनमें विशेष कर उपपातकके मध्यमें पढनेसे उत्सर्ग अपवादन्यायका विषय नहीं, इससे सामान्य उपपातकोंके प्रायश्चित्तभी यहां समझने। उनमें दुराचारी क्षत्रिय आदिके जानकर वधमें मनुका कहा तीन मास तीन वर्ष और दो मास व्रत और चान्द्रायण वर्णके क्रमसे जानना और अज्ञानसे तो योगीश्वरका कहा तीन रात्र उपवास सहित एक बैल दश गोदान, मासभर पंचगव्य भोजन और मासभर तक पयोव्रत क्रमसे जानना। यह पूर्वोक्त व्रतोंका समूह ब्राह्मणके किये क्षत्रिय आदिके वधमें जानना। क्योंकि इन मनु गौतम हारीतके वचनोंमें ब्राह्मणका ग्रहण है (अ० ११ श्लो० १२७) कि ब्राह्मण अज्ञानसे क्षत्रियको मारकर ब्राह्मण और क्षत्रियके वधमें ब्राह्मण क्षत्रीको मारकर पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै। और क्षत्रिय आदिके किये क्षत्रिय आदिके वधमें तो एक पाद न्यून प्रायश्चित्त है। क्योंकि वृद्धविष्णुकी स्मृति है ब्राह्मणको संपूर्ण प्रायश्चित्त देना, क्षत्रियको एकपादन्यून, वैश्यको आधा, शूद्रको एक पाद कहा है। और जो पूर्वोक्त अंगिराका यह वचन है कि जो ब्राह्मणोंकी पर्षद् (सभा) है वह क्षत्रियोंका दूना, वैश्योंका तिगुना कहा है और पर्षद्के समान कहा है वह वचन कठोर वाणी और कठोर दंडके विषयमें समझना। यह गोवध प्रकरणमें कह आये। मूर्द्धावसिक्त आदिके वधमें यह प्रायश्चित्तका समूह नहीं होता। क्योंकि वे क्षत्रिय आदि नहीं हैं इससे इनके वधमें दंडके अनुसारही पूर्वोक्त व्रतोंकी वृद्धि और न्यूनता कल्पना करनी। वह दंडकी वृद्धि और न्यूनता वर्ण और जातिके ऊंच नीचके अनुसार दंड देना इस वचनमें दिखाय आये हैं॥

भावार्थ-मनुष्य क्षत्रीके वधमें एक बैल, सौ गौ दे वा तीन वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करै। वैश्यका हत्यारा एक वर्षतक ब्रह्महत्याका व्रत करै और एक सौ एक गौ दे। शूद्रका हत्यारा भी छः मासतक ब्रह्महत्याका व्रत करै और दूध देती हुई सवत्सा दश गौ दे ॥ २६६ ॥ २६७ ॥

इति क्षत्रियादिवधप्रायश्चितप्रकरणम् ॥

१ ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृषभकैसहस्राश्च गा दद्याद्वैश्यवधे त्रिवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात्। शूद्रवधे सांवत्सरिकमृषभैकादशाश्च गा दद्यात्।

२ पूर्ववदमतिपूर्वं चतुर्षु वर्णेषु प्रमाप्य द्वादश षट् त्रीन् संवत्सरं च व्रतान्यादिशेत्। तेषामन्ते गोसहस्रं च ततोऽर्धं तस्यार्धमर्धं दद्यात् सर्वेषामानुपूर्व्येण।

१ अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः। तथा ब्राह्मणराजन्यवधे षड्वार्षिकं तथा॥ ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा॥

२ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम्। वैश्येऽर्धमेकपादस्तु शूद्रजातिषु शस्यते॥

३ दंडप्रणयनं कार्यं वर्णजात्युत्तराधरे।

दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाःप्रमाप्यतु।
दृतिंधनुर्बस्तमविंक्रमाद्दद्याद्विशुद्धये २६८॥

पद्-दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः २ प्रमाप्यऽ-तुऽ-दृतिम् २ धनुः २ बस्तम् २ अविम् २ क्रमात् ५ दद्यात् क्रि-विशुद्धये ४ ॥

योजना-दुर्वृत्तब्रह्मविट्क्षत्रशूद्रयोषाः प्रमाप्य दृतिं धनुः बस्तम्, अविम् विशुद्धये क्रमात् दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-अब स्त्रीके वधका प्रायश्चित्त कहते हैं दुर्वृत्त (व्यभिचारिणी) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी स्त्रियोंको मारकर क्रमसे दृति अर्थात् जलाधार चर्मकोश (मसक), धनुष, बस्त (बकरा), अवि (भेड) इनको क्रमसे शुद्धिके लिये दे। यह प्रायश्चित्त प्रतिलोम क्रमसे अंत्यजातिसे पैदा हुई ब्राह्मणी आदिके अज्ञानसे वधमें समझना, ज्ञानसे वधमें तो ब्रह्मगर्भने यह कहा है कि प्रतिलोमसे पैदा हुई स्त्रियोंके वधमें एक मासकी अवधि कही है। और जो अंतरप्रभव सूत आदि हैं इनकी अवधि चार दो छः मासकी है। यहां योग्यतासे यह अन्वय समझना कि ब्राह्मणीके वधमें छः मास, क्षत्रियाके वधमें चार और वैश्याके वधमें दो और जब वैश्यके कर्मसे जीविका करती हुईको मारे तब कुछ दान करे। क्योंकि गौतमकी कही स्मृति है कि वैशिक (वैश्यका कर्म) से जीविका करती हुईको मारे तो किंचित्ही दे और वह किंचित् जल लेना। क्योंकि अंगिराकी यह स्मृति है कि ब्राह्मणीके वधमें ब्राह्मणको कोश और कूपका दान करे और क्षत्रियाके वधमें धेनु, वैश्याके वधमें बस्त और शूद्राके वधमें अवि दे, यदि वह वैश्यवृत्ति करती होय तो मनुष्य जल दे। यदि प्रतिलोम क्रमसे क्षत्रिय आदिके संग व्यभिचार करती हुई ब्राह्मणी आदिको मारे तो गोवधके प्रायश्चित्तही तथा योग्य समझने ॥

भावार्थ-दुष्टाचारिणी जो ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्रकी स्त्री हैं उनको मारकर क्रमसे दृति (मसक), धनुष, बस्त (बकरा), अवि (भेड) इनको शुद्धिके लिये दे ॥ २६८ ॥

अप्रदुष्टांस्त्रियंहत्वाशूद्रहत्याव्रतंचरेत्॥
अस्थिमतांसहस्रंतुतथानस्थिमतामनः॥

पद्-अप्रदुष्टाम् २ स्त्रियम् २ हत्वाऽ-शूद्रहत्याव्रतम् २ चरेत् क्रि-अस्थिमताम् ६ सहस्रम् २ तुऽ-तथाऽ-अनस्थिमताम् ६ अनः २ ॥

योजना-अप्रदुष्टां स्त्रियं तु पुनः अस्थिमतां सहस्रं तथा अनस्थिमताम् अनः (शकटम्) हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-यदि अत्यंत दुष्ट न हों और किंचित् व्यभिचारिणी हों ऐसी ब्राह्मणी आदिकोंको नष्ट करे तो शूद्रहत्याका षाण्मासिक व्रत करे अथवा दशधेनु दे। यह छः मासका व्रत अज्ञानसे ब्राह्मणीके वधमें और जानकर किये क्षात्रियाके वधमें जानना। और जानकर वैश्याके वधमें दशधेनु दे। और जानकर शूद्राके वधमें तो सब उपपातकोंमें साधारण जो मासभर पंचगव्यका भक्षण उसको करे। यदि जानकर ब्राह्मणीको मारे तो द्वादशमासिक व्रत करे। और क्षत्रिया आदिके तो अज्ञानसे मारनेमें त्रैमासिक, डेढमास, साढे बाईस

१ प्रतिलोमप्रसूतानां स्त्रीणां मासावधिः स्मृतः। अंतरप्रभवाणां च सूतादीनां चतुर्द्विषट् ॥
२ वैशिकेन किंचित्।
३ कोशं कूपं च विप्रे वा ब्राह्मण्याः प्रतिपादयेत्- वधे धेनुः क्षत्रियाया बस्तो वैश्यावधे स्मृतः॥ शूद्रायामाविकं वश्यां हत्वा दद्याज्जलं नरः॥

दिन व्रत करै। सोई प्रचेताने कहा है कि जिसके ऋतु न हो ऐसी ब्राह्मणीको मारकर वर्षभर वा छः मासतक कृच्छ्र करै। क्षत्रियाको मारकर छः मास वा तीन मासतक, वैश्याको मारकर तीन मास वा डेढ मासतक और शूद्राको मारकर डेढमास वा साढे बाईस दिनतक कृच्छ्र करै। और जो हारीतने[2] छः वर्ष क्षत्रियमें प्राकृत ब्रह्मचर्य और तीन वर्ष वैश्यमें और डेढवर्ष शूद्रमें है यह कहकर कहा है कि क्षत्रियके समान ब्राह्मणीमें, और वैश्यके समान क्षत्रियामें, और शूद्रके समान वैश्यामें है और शूद्राको हतकर नवमास ब्रह्मचर्य है। वहभी उन स्त्रियोंके मारनेमें जानना जो कर्मके साधन गुणोंसे युक्त हों। अज्ञानसे तो सब जगह आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। रजस्वलाके विषयमें तो पहिले कह आये॥

इति स्त्रीवधप्रायश्चित्तप्रकरणम्।

अस्थि है जिनमें ऐसे कृकलास (करकंटा) आदि उन प्राणियोंके मध्यमें जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा सहस्रको मारकर और जिनमें अस्थि नहीं ऐसे यूका मत्कुण दंश मशक आदियोंका शकट (गाडा) अर्थात् जितनेमें शकट भरे उतने मारकर शूद्र हत्याका व्रत (छः मासका ब्रह्मचर्य) करै वा दश धेनु दे। यहां सहस्र इस नियमसे सहस्रसे अधिकके वधमें अन्य प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और उससे पूर्व २ प्रत्येकके वधमें तो अस्थिवालोंके वधमें किंचित् दे[3]। और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें प्राणायाम करै यह आगे कहेंगे। तैसेही अनस्थिवालोंका अनः (गाडा) यह वचनभी क्षुद्रजंतुओंके विषयमें है। स्थूल और अनस्थि घुण आदि जीवोंके वधमें तो कृमिकीट पक्षी इनकी हत्या मलिनीकरण है और मलिनीकरणोंमें तप्तयावक (तपाये जौं) तीन दिनतक होताहै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना॥

भावार्थ-जो अत्यंत दुष्ट न हो ऐसी स्त्रीके और अस्थिवाले सहस्र जीवोंको और जिनमें अस्थि न हो ऐसी शकट (गाडा) भर जीवोंको मारकर शूद्रहत्याके व्रत अर्थात् षाण्मासिक प्राकृत ब्रह्मचर्य करै॥ २६९॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्चपतत्रिणः॥
हत्वात्र्यहंपिबेत्क्षीरंकृच्छ्रंवापादिकंचरेत्॥

पद-मार्जारगोधानकुलमंडूकान् २. च८-पतत्रिणः २ हत्वा८-त्र्यहम् २ पिबेत् क्रि-क्षीरम् २ कृच्छ्रम् २ वा८-पादिकम् २ चरेत् क्रि-॥

योजना-मार्जारगोधानकुलमंडूकान् च पुनः पतत्रिणः हत्वा त्र्यहं क्षीरं पिबेत् वा पादिकं कृच्छ्रं चरेत्॥

तात्पर्यार्थ-मार्जार, नकुल, गोह, मेंडक, और पतत्रि (पक्षी) इनको मारकर तीन रात्रतक दूध पीवे वा पादकृच्छ्र करै और वा शब्दके पढनेमे योजन गमन आदिको करै। सोई मनु[3] (अ० ११ श्लो० १३२) ने कहा है कि तीन रात्र दूध पीवे वा एक योजन मार्गमें गमन करै वा बहती नदीमें जलका स्पर्श (स्नान) करै वा जल है देवता जिनको

१ अनृतुमतीं ब्राह्मणीं हत्वा कृच्छ्राब्दं षण्मासान्वेति। क्षत्रियां हत्वा षण्मासान्मासत्रयं वेति॥ वैश्यां हत्वा मासत्रयं सार्धमासं वेति शूद्रां हत्वा सार्धमासं सार्द्धद्वाविंशत्यहानि वा।

२ षड्वर्षाणि राजन्ये प्राकृतं ब्रह्मचर्यं त्रीणि वैश्ये सार्द्धं शूद्रे। क्षत्रियवद्ब्राह्मणीषु वैश्यवत् क्षत्रियायां शूद्रां हत्वा नवमासान्।

३ किंचित्सास्थिवधे देयं प्राणायामस्त्वनास्थिके।

१ कृमिकीटवयोहत्या। मलिनीकरणीयेषु ततः स्याद्यावकस्त्र्यहम्।

२ पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत्। उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपे॥

ऐसे मंत्रोंको जपै। यहभी प्रत्येकके वधमें है, समुदाय (इकट्ठे) के वधमें तो यह मनु (अ० ११ श्लो० १३१) का कहा षाण्मासिक व्रत जानना कि मार्जार, नकुलको और चाष, मेंडक, कुत्ता, गोह, उलूक, काक इनको मारकर शूद्रहत्याका व्रत करै और जो वसिष्ठने कहा है कि कुत्ता, मार्जार, नौला, मेंडक, सर्प, दहर (छोटा मूसा वा छुछुंदरी), मूसा इनको मारकर द्वादशरात्र कृच्छ्र करै और कुछ दान करै वह जानकर अभ्यासके विषयमें जानना ॥

भावार्थ–मार्जार, गोह, नौला, मेंडक और काक आदि पक्षी इनको मारकर तीन दिन दूध पीवै वा पादकृच्छ्र करै ॥ २७० ॥

गजेनीलवृषाः पंचशुकेवत्सोद्विहायनः।
खराजमेषेषुवृषोदेयःक्रौंचेत्रिहायनः २७१॥

पद–गजे ७ नीलवृषाः १ पंच १ शुके ७ वत्सः १ द्विहायनः १ खराजमेषेषु ७ वृषः १ देयः १ क्रौंचे ७ त्रिहायनः १ ॥

योजना–गजे हते सति पंच नीलवृषा देयाः शुके हते द्विहायनः वत्सः खराजमेषेषु हतेषु वृषः देयः क्रौञ्चे हते त्रिहायनः वत्सः देयः ॥

ता० भावार्थ–हाथीको मारै तो पांच नील वृष दे, शुक (तोता) पक्षीको मारै तो दो वर्षका वछडा दे। खर, बकरी, भेड इन प्रत्येककी हत्यामें एक बैल दे। मनुनेभी यहां (अ० ११ श्लो० १३६) विशेष कहा है कि अश्वको मारकर वस्त्र दे, हाथीको मारकर पांच नीले बैल दे। बकरी, भेड, खर, बैल इनको मारकर एक वर्षका वछडा दे ॥ २७१ ॥

हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिनः।
भासंचहत्वादद्याद्गामक्रव्यादस्तुवत्सिकाम्॥

पद–हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिः २ न भासम् २ च–हत्वा–दद्यात् क्रि०–गाम् २ अक्रव्यादः २ तु०–वत्सिकाम् २ ॥

योजना–हंसश्येनकपिक्रव्याज्जलस्थलशिखंडिनः च पुनः भासं हत्वा गां दद्यात् तु पुनः अक्रव्यादः हत्वा वत्सिकां दद्यात् ॥

तात्पर्यार्थ–हंस, श्येन (शिकरा), कपि (वानर), क्रव्यात् अर्थात् कच्चे मांसके खानेवाले व्याघ्र शृगाल आदि, मृगविशेष वानरके साहचर्यसे लेना, तैसेही हंस और श्येनके साहचर्यसे कंक और गृध्र आदि पक्षी विशेषभी क्रव्यात् पदसे लेने और जल शब्दसे बगला आदि जलचर और स्थल शब्दसे (कबूतर आदि) स्थलचर लेने, शिखंडी (मोर) और भास (पक्षिविशेष) इन प्रत्येकके वधमें एक गौका दान करै। और अक्रव्याद अर्थात् कच्चे मांसके न खानेवाले हरिण आदि मृग और खंजर आदि पक्षियोंको मारकर एक वछियाका दान करै। सोई मनुने कहाहै (अ० ११ श्लो० १३५–१३७) कि हंस, बलाका, बक, मोर, वानर, श्येन, भास इनको मारकर ब्राह्मणको गौ दे। कच्चे मांसके भक्षक मृगोंको मारकर दूध देती गौ दे और जो कच्चे मांसको नहीं खाते उनको मारकर वछिया दे, ऊंटको मारकर कृष्णल दे ॥

---

१ मार्जारनकुलौ हत्वा चापं मंडूकमेव च। श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

२ श्वमार्जारनकुलमंडूकसर्पदहरमूषिकान् हत्वा कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् किंचिद्दद्यात्।

३ वासो दद्याद्धयं हत्वा पंचनीलान्वृषान्गजम्। अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् ॥

१ हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च। वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् ॥ क्रव्यादस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्। अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥

भावार्थ-हंस, शिकरा, वानर, कच्चे मांसके भक्षक, जलस्थलके जीव, मोर, भास इनको मारकर गौ दे। जो कच्चे मांसके भक्षक नहीं उनको मारकर बछिया दे ॥ २७२ ॥

उरगेष्वयसोदंडोपंडकेत्रपुसीसकम् ॥
कोलेघृतघटोदेयउष्ट्रेगुंजाहयेंशुकम् ॥२७३॥

पद-उरगेषु ७ अयसः ६ दण्डः १ पण्डके ७ त्रपु १ सीसकम् १ कोले ७ घृतघटः १ देयः १ उष्ट्रे ७ हये ७ अंशुकम् २ ॥

योजना-उरगेषु हतेषु अयसः दंडः, पंडके हते त्रपुसीसकं कोले घृतघटः देयः उष्ट्रे हते गुंजा, हये हते अंशुकं देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-सर्पोंको मारै तो तीक्ष्ण है धार जिसकी ऐसा लोहेका दंड दे, पण्डक (नपुंसक) को हते तो मासेभर त्रपु वा सीसा अथवा पलालका भार दे। क्योंकि अन्य स्मृतिमें यह कहा है कि पण्डकको मारकर पलालका भार त्रपु वा सीसा दे। यद्यपि लिंगसे हीन पण्डक होता है और वह संस्कारके योग्य नहीं होता, इस देवलके वचनसे सामान्यरूपसे रहित पंडक दिखाया है, तथापि यहां गौ ब्राह्मण रूप पण्डककी विवक्षा नहीं, क्योंकि गौ और ब्राह्मणके वधका निषेध जातिमात्रके विषयमें है और लिंगसे रहित पंडकमेंभी वह जाति है उससेही लघु प्रायश्चित्त कहा है, तिससे यहां मृग और पक्षीही पंडक लेने और मृग और पक्षियोंका सहचार होनेसेभी पक्षिरूप पण्डकका लेनाही उचित है। और कोल (शूकर) को हतकर घृतसे भरा घट दे, ऊंटको हतकर गुंजाओंको दे, अश्वको हतकर वस्त्र दे। सोई मनु (अ० ११ श्लो० १३३) ने कहा है कि ब्राह्मण सर्पको मारकर काले लोहेका शस्त्र दे और नपुंसकको मारकर पलालका भार और मासेभर सीसा दे ॥

भावार्थ-सर्पोंको मारकर लोहेका दंड, नपुंसकको मारकर त्रपु और सीसा दे और शूकरको मारकर घीका घडा, ऊंटको मारकर गुंजा और घोडेको मारकर वस्त्र दे ॥ २७३ ॥

तित्तिरौतुतिलद्रोणंगजादीनामशक्नुवन् ॥
दानंदातुंचरेत्कृच्छ्रमेकैकस्यविशुद्धये २७४॥

पद-तित्तिरौ ७ तु ऽ-तिलद्रोणम् २ गजादीनाम् ६ अशक्नुवन् १ दानम् २ दातुम् ऽ-चरेत् क्रि-कृच्छ्रम् २ एकैकस्य ६ विशुद्धये ४ ॥

योजना-तित्तिरौ हते तिलद्रोणं दद्यात् गजादीनां दानं दातुं अशक्नुवन् पुरुषः एकैकस्य विशुद्धये कृच्छ्रं चरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-तित्तिर पक्षीके मारनेमें तिलोंका द्रोण दे। यहां द्रोणशब्दसे वह परिणाम लेते हैं जो इस वचनमें कहा है कि आठ मुष्टिभर अन्नको किंचित् और आठ किंचितोंका एक पुष्कल, चार पुष्कलोंका एक आढक और चार आढकोंका एक द्रोण होता है यह मानका लक्षण है। यदि पूर्वोक्त गज आदिके मारनेमें निर्धन होनेसे पांच नीलवृष आदिका दान करनेको मनुष्य असमर्थ होय तो शुद्धिके लिये प्रत्येकके वधमें कृच्छ्र करै। यहां कृच्छ्र शब्द लक्षणासे क्लेशसे होनेवाले तपमा-

१ पण्डकं हत्वा पलालभारं त्रपु सीसकं वा दद्यात्। २ पण्डको लिंगहीनः स्यात्संस्काराहश्च नैव सः।

१ अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः। पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैव माषकम् ॥

२ अष्टमुष्टि भवेत्किंचित्किंचिदष्टौ तु पुष्कलम्। पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्तितः ॥ चतुराढको भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ॥

त्रका बोधक जानना । वे तप गौतमने दिखाये हैं कि एक वर्ष छः चार तीन दो एक मास, चौवीस बारह छः तीन दिन और अहोरात्र यह तपका काल है, जहां प्रायश्चित्त नहीं कहा वहां येही विकल्पसे गुरुपापमें गुरु और लघु पापमें लघु किये जाते हैं । यदि कृच्छ्र शब्दसे मुख्य अर्थ लेते तो गज और शुककी हत्यामें विशेष कर प्राजापत्यही होता, वह युक्त नहीं, और जब कृच्छ्र शब्द तपमात्रका बोधक है, तब तो दानके गुरु और लघु भावको देखकर तपकाभी गुरु और लघुभाव युक्त होजाता है तिससे गजकी हत्यामें दो मासतक जौका भोजन और शुककी हत्यामें उपवास करना, इसी प्रकार अन्यत्रभी दानके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ–तित्तरकी हत्यामें तिलोंका द्रोण दे और गजादिकोंकी हत्यामें दान देनेको असमर्थ मनुष्य एक २ की शुद्धिके लिये कृच्छ्र करै ॥ २७४ ॥

फलपुष्पान्नरसजसत्त्वघातेघृताशनम् ।
किंचित्सास्थिवधेदेयंप्राणायामस्त्वनास्थिके

पद–फलपुष्पान्नरसजसत्त्वघाते ७ घृताशनम् १ किंचित्ऽ–सास्थिवधे ७ देयम् १ प्राणायामः १ तुऽ–अनास्थिके ॥ ७ ॥

योजना–फलपुष्पान्नरसजसत्त्वघाते घृताशनं शुद्धिसाधनं भवति सास्थिके किंचित् देयं तु पुनः अनास्थिके हते सति प्राणायामः कर्त्तव्यः॥

तात्पर्यार्थ–गूलर आदिका फल मधूक आदिका पुष्प और चिरकालके भात और सत्तु आदि अन्न और गुड आदि रस इनमें जो जीव पैदा होता है उनकी हत्यामें घृतका भक्षण साधन है और यह घृतका भक्षण भोजनके कार्यमें कहा है, क्योंकि प्रायश्चित्त तपरूप होता है और वह प्रायश्चित्तका तप रूप आंगिरसने प्रायश्चित्त पदके अर्थके बहानेसे दिखाया है कि प्रायः नाम तप कहाता है उसके निश्चयको चित्त कहते हैं । तप और निश्चयसे जो युक्त उसे प्रायश्चित्त कहते हैं । अब सामान्यसे प्रायश्चित्त कहते हैं । कृकलास (करकंटा) आदि अस्थिवाले प्राणियोंमें सहस्रसे न्यून प्रत्येकके मारनेमें अत्यल्पही धान्य हिरण्य आदि दे, और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें तो एक प्राणायाम करै, उसमें जब किंचित् सुवर्ण दिया जाय तब पणभर सुवर्ण दे, क्योंकि सुमंतुकी स्मृति है कि अस्थिवालोंके वधमें पणभर सुवर्ण देना और जब धान्य दे तो आठ मुष्टि दे, क्योंकि यह स्मृति है कि अष्टमुष्टि किंचित् होता है, यहभी उन प्राणियोंके वधमें समझना जिनके वधमें प्रायश्चित्त नहीं कहा और जहां विशेष प्रायश्चित्त सुना जाता है वहां तो वही होता है, सोई पराशरने कहा है कि हंस, सा-

१ संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहः षडहस्त्र्यहोहोरात्र इति कालः एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्नेनासि गुरूणि गुरूणि लघुनि लघूनि ।

१ प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तं तदुच्यते ॥

२ अस्थिमतां वधे पणो देयः ।

३ अष्टमुष्टि भवेत् किंचित् ।

४ हंससारसचक्राह्वक्रौंचकुक्कुटघातकः । मयूरमेषौ हत्वा च एकभक्तेन शुद्ध्यति ॥ मद्गुं च टिट्टिभं चैव शुकं पारावतं तथा । आडिकं च बकं हत्वा शुद्ध्येद्वै नक्तभोजनात् ॥ चाषकाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः । अंतर्जलउभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति॥ गृध्रश्येनविहंगानामुलूकस्य च घातकः । अपक्वाशी दिनं तिष्ठेद्‌द्वौ कालौ मारुताशनः ॥ हत्वा मूषिकमार्जारसर्पाजगरडुंडुभान् । प्रत्येकं भोजयेद्विप्रान् लोहदंडश्च दक्षिणा ॥ सेधाकच्छपगोधानां शशशल्लकघातकः । वृंताकफलगुंजाशी अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ मृगरोहिवराहाणामविकावस्तघातने । वृकजंबूकऋक्षाणां तरक्षूणां च घातकः ॥ तिलप्रस्थं त्वसौ दद्याद् वायुभक्षो दिनत्रयम् । गजमेषतुरंगोष्ट्रगवयानां निपातने ॥ प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यं चावगाहनम् । खरवानरसिंहानां चित्रकव्याघ्रघातकः ॥ शुद्धिमेति त्रिरात्रेण ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥

रस, चक्रवाक, क्रौंच, कुक्कुट, मोर, मेड इनको मारकर एकभक्तसे शुद्ध होता है, मद्गु, टिट्टिभ, तोता, कबूतर, आडि, बक इनको मारकर नक्तभोजनसे शुद्ध होता है। चाष, काक, कपोत, सारि, तित्तिर इनका घातक दोनों संध्याओंके समय जलके मध्यमें प्राणायामसे शुद्ध होता है। गृध्र, श्येन, विहंग (पक्षी), उल्लू इनका घातक अपक्क (फल आदि) का भोजन वा मारुत (पवन) का भोजन करके एक दिन टिके। मूसा, मार्जार, सर्प, अजगर, डुंडुभ इन प्रत्येकके वधमें ब्राह्मणोंको जिमावे और लोहका दंड दक्षिणा दे। सेह, कछुआ, गोह, शशा, शल्लक इनका घाती बैंगन गुंजा इनका भक्षण करके अहोरात्रमें शुद्ध होता है। मृग, रोही, वराह, भेड, बकरा, वृक, जंबूक (गीदड), ऋक्ष, तरक्षु इनका घातक तीन दिन वायुका भक्षण करके प्रस्थभर तिल दे। हाथी, मेष, अश्व, ऊंट, गवय (नीलगाय) इनके मारनेमें त्रिकालस्नान और अहोरात्र प्रायश्चित्त होता है। खर, वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र इनका घातक तीन रात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन कराकर शुद्ध होता है, इसी प्रकार अन्यभी स्मृतियोंके वचनोंकी देशकाल आदिकी अपेक्षासे विषयव्यवस्था कल्पना करनी ॥

भावार्थ-फल पुष्प अन्न रस इनमें उत्पन्न हुए जीवोंकी हत्यामें घृतकाही भक्षण करै, और अस्थिवाले जीवोंके वधमें किंचित् ही दे, और जिनमें अस्थि नहीं उनके वधमें प्राणायाम करै ॥ २७९ ॥

इति हिंसाप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदनेजप्यमृक्शतम् ॥
स्यादोषधिवृथाच्छेदेक्षीराशीगोनुगोदिनम्॥

पद-वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने ७ जप्यम् १ ऋक्शतम् १ स्यात् क्रि-ओषधिवृथाच्छेदे ७ क्षीराशी १ गोनुगः १ दिनम् २ ॥

योजना-वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने ऋक्शतं जप्यं स्यात्। ओषधिवृथाच्छेदे क्षीराशी सन् दिनं गोनुगः स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-फल देनेवाले आम्र पनस आदि वृक्ष और गुल्म आदि इनका यज्ञ आदि अदृष्ट अर्थके विना छेदन करके गायत्री आदि सौ ऋचाओंका जप करै, और ग्राम और वनकी ओषधियोंकी प्रयोजनके विना वृथा छेदन करै तो दिनभर गौओंका अनुगमन करके दूध पीवे, अन्य कुछ भोजन न करै, पंच यज्ञके लिये तो दोष नहीं, यह प्रायश्चित्त उनमें जानना जो वृक्ष फल आदिके द्वारा उपयोगी हैं। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० ४२) की स्मृति है कि फल देनेवाले वृक्षोंके छेदनमें सौ ऋचाओंको जपै और गुल्मलता वल्ली और पुष्पवाले वीरुध इनके छेदनेमें भी पूर्वोक्त जप करै। दृष्टार्थ (लोकमें प्रयोजन) मेंभी-कृषिके अंग हल आदिके अर्थ दोष नहीं, क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि फलपुष्पवाले वृक्षोंकी हिंसा न करै, कर्षण (खेती) आदिके लिये तो हिंसा करै और जहां स्थानकी विशेषतासे दंडकी अधिकता है, वहां प्रायश्चित्तकीभी अधिकता कल्पना करनी सोई कहा है कि चैत्य (चबूतरा), श्मशान, सीमा, पवित्रस्थान, देवालय इनमें उत्पन्न और प्रसिद्ध वृक्षोंके छेदनमें दूना दंड होता है, और यह सौ ऋचाओंका

१ फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥

२ फलपुष्पोपगान्पादपान्न हिंस्यात्कर्षणकरणार्थे चोपहन्यात् ।

३ चैत्यश्मशानसीमासु पुण्यस्थाने सुरालये। जातद्रुमाणां द्विगुणो दमो वृक्षेथ विश्रुते ॥

जप द्विजातियोंके विषयमें है, शूद्र आदिके विषयमें नहीं, क्योंकि उनका जपमें अधिकार नहीं, इससे उनको दंडके अनुसार द्विरात्र आदि प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी, उपपातकोंके मध्यमें पढे हुएकी अनर्थकता दूर करनेके लिये उपपातकोंका जो साधारण प्रायश्चित्त है वहभी यहां होता है, यह प्रायश्चित्तभी गुरु होनेसे अभ्यासके विषयमें समझना ॥

भावार्थ–वृक्ष गुल्म लता वीरुध इनके छेदनमें गायत्री आदि सौ ऋचाओंको जपै। औषधियोंके वृथा छेदनमें दिनभर गौकाअनुगमन करके दूध पीवै ॥ २७६ ॥

पुंश्चलीवानरखरैर्दष्टश्चोष्ट्रादिवायसैः ।
प्राणायामंजलेकृत्वाघृतंप्राश्यविशुद्ध्यति ॥

पद–पुंश्चलीवानरखरैः ३ दष्टः १ चऽ–उष्ट्रादिवायसैः ३ प्राणायामम् २ जले ७ कृत्वाऽ–घृतम् २ प्राश्यऽ–विशुद्ध्यति क्रि– ॥

योजना–पुंश्चलीवानरखरैः उष्ट्रादिवायसैः दष्टः पुरुषः जले प्राणायामं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ–पुंश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री), वानर, खर, ऊंट आदि, वायस (काक) इन्होंने जो डसा हो वह जलमें प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होताहै । यहां आदिपदसे सृगाल आदिका ग्रहण है, सोई मनु (अ० ११ श्लो० १९९) ने कहा है कि कुत्ता, सृगाल, खर, ग्रामके और कच्चे मांसके भक्षक जीव, नर, अश्व, ऊंट, वराह इनका डसा मनुष्य प्राणायामसे शुद्ध होताहै, यहां घृतका भक्षण भोजनके स्थानमें समझना, क्योंकि तपरूप प्रायश्चित्त शरीरके संतापके अर्थ होते हैं, यहभी अशक्तके विषयमें समझना और कुत्ता, सृगाल, मृग, भैंसा, बकरी, भेड, खर, करभ (हाथीका बच्चा), नौला, मार्जार, मूसा, प्लव (मुरगा), बगला, काक, पुरुष इनका जो डसा हो वह आपोहिष्ठा० इत्यादि मंत्रोंसे स्नान और तीन प्राणायाम करै, यह सुमंतुका वचन नाभिसे नीचे अल्प डसनेके विषयमें समझना और जो अंगिराका वचन है कि ब्रह्मचारीको कुत्ता डस ले तो तीन दिन सायंकालके समय दूध पीवै, गृहस्थोंको डसै तो दो रात्र और अग्निहोत्रीको डसै तो एक दिन दूध पीवै । नाभिसे ऊपर डसै तो वही व्रत दूना होजाता है और मुखमें तिगुना और मस्तकमें डसै तो चतुर्गुण (चौगुना) होता है, वह वचन अधिक डसनेमें समझना । क्षत्रिय और वैश्यको तो एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी और शूद्रको तो बृहत् अंगिराका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि शूद्रोंकी उपवास वा दानसे शुद्धि होतीहै, अथवा शुद्धिके लिये एक गौ और एक बैल ब्राह्मणको दे और जो वसिष्ठका वचन है कि कुत्तेका डसा ब्राह्मण समुद्रमें जानेवाली नदीमें जाकर सौ प्राणायाम और घृतका भक्षण करके

---

१ श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च । नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

१ श्वसृगालमृगमहिषाजाविकखरकरभनकुलमार्जारमूषिकाप्लवबककाकपुरुषदष्टानामापोहिष्ठेत्यादीभिः स्नानं प्राणायामत्रयं च ।

२ ब्रह्मचारी शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पिबेत्पयः । गृहस्थश्चेत्त्रिरात्रं तु एकाहं योऽग्निहोत्रवान् ॥ नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत् । स्यादेतत्त्रिगुणं वक्त्रे मस्तके तु चतुर्गुणम् ॥

३ शूद्राणां चोपवासेन शुद्धिर्दानेन वा पुनः । गां वा दद्याद्वृषं चैकं ब्राह्मणाय विशुद्धये ॥

४ ब्राह्मणस्तु शुना दष्टो नदीं गत्वा समुद्रगाम् । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

शुद्ध होताहै, यह वचन उत्तम अंगमें डसनेके विषय समझना। स्त्रियोंका तो यह पराशरका कहा प्रायश्चित्त जानना कि ब्राह्मणीको कुत्ता, जंबुक, वृक (भेडिया) ये डस लें तो उदय हुए ग्रह और नक्षत्रोंको देखकर शीघ्रही शुद्ध होतीहै, और जो स्त्री कृच्छ्र आदि व्रतको करती हो उसके लिये उसनेही विशेष दिखाया है कि यदि व्रतवाली स्त्रीको कुत्ता डसै तो तीन रात्र उपवास करै और घीसहित जौको खाकर शेष व्रतको समाप्त करै। रजस्वलाके लियेभी विशेष पुलस्त्यने दिखाया है कि रजस्वलाको कुत्ता, जंबुक, रासभ (गधा) डसे तो पांच रात्र निराहार रहकर पंचगव्यसे शुद्ध होती है और नाभिसे ऊंपर डसै तो दुगुना, मुखमें डसै तो तिगुना, और मस्तकपर डसै तो चौगुना, यही प्रायश्चित्त होता है और रजस्वलासे भिन्न अवस्थामें डसै तो स्नानमात्रसेही शुद्ध होती है और जिस मनुष्यको कुत्ता आदि सूंघले उसको शातातपने विशेष कहा है कि कुत्ता जिसको सूंघले वा चाटले वा नखोंसे खोद दे तो जलोंसे प्रक्षालन (धोना) और अग्निसे उपकूलन (तपाना) करै और जो कुत्ते आदिके डसने और शस्त्रके लगनेसे पैदा हुए घावमें कृमि (कीट) होजांय तो मनुने विशेष कहा है कि ब्राह्मणके व्रणमें पूय और शोणितके संभवसे कीट पैदा हो जांय तो प्रायश्चित्त कैसे हो, गौओंके गोबर और गोमूत्रसे त्रिकाल स्नान करै और त्रिकाल पंचगव्यका भोजन करै तो नाभिसे नीचेके व्रणकी शुद्धि होती है और नाभि और कण्ठके मध्यके व्रणमें कृमि होंय तो छः रात्र वा तीन दिन पंचगव्यका भक्षण करना कहा है, और कुत्ते आदिके दंशका व्रण होय तो डसनेका प्रायश्चित्त करके यही प्रायश्चित्त करना और शस्त्र आदिके घावमें तो यही तीन दिन तक पंचगव्यका भक्षण आदि प्रायश्चित्त है, क्षत्रिय आदिकोंमें तो वर्ण २ के प्रति एक २ पाद न्यून प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी ॥

भावार्थ-व्यभिचारिणी स्त्री, वानर, खर, ऊंट, काक इनके डसने पर जलमें प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होताहै ॥ २७७ ॥

यन्मेऽद्यरेतइत्याभ्यांस्कन्नंरेतोभिमंत्रयेत् ।
स्तनांतरंभ्रुवोर्मध्यंतेनानामिकयास्पृशेत्८॥

पद-यन्मेद्यरेत इतिऽ-आभ्याम् ३ स्कन्नम् २ रेतः २ अभिमंत्रयेत् क्रि-स्तनांतरम् २ भ्रुवोः ६ मध्यम् २ तेन ३ अनामिकया ३ स्पृशेत् क्रि-॥

योजना-स्कन्नं रेतः यन्मे रेत० इति आभ्यां मंत्राभ्याम् अभिमंत्रयेत् तेन (रेतसा) अनामिकया स्तनांतरं भ्रुवोः मध्यं स्पृशेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब वीर्यके स्कंदन (पडना) का प्रायश्चित्त कहते हैं, यदि किसी प्रकार

---

१ ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा । उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥

२ त्रिरात्रमेवोपवसेच्छुना दष्टा तु सुव्रता । सघृतं यावकं भुक्त्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥

३ रजस्वला यदा दष्टा शुना जम्बूकरासभैः । पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ऊर्ध्वं तु द्विगुणं नाभेर्वक्त्रे तु त्रिगुणं तथा । चतुर्गुणं स्मृतं मूर्ध्नि दष्टेऽन्यत्राप्लुतिर्भवेत् ॥

शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च । अद्भिः प्रक्षालनं शौचमग्निना चोपकूलनम् ॥

१ ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे । कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ गवां मूत्रपुरीषेण त्रिसंध्यं स्नानमाचरेत् । त्रिरात्रं पंचगव्याशी त्वधोनाभ्यां विशुद्ध्यति ॥ नाभिकण्ठान्तरोद्भूते व्रणेचोत्पद्यते कृमिः । षड्रात्रं तु त्र्यहं पंचगव्याशनमिति स्मृतम् ॥

स्त्रीके संयोग विनाभी हठसे वीर्यरूप चरमधातु निकस जाय तो उस निकसे हुए रेत (वीर्य) को लेकर यन्मेरेतः पृथिवीं० पुनर्मा मैत्विंद्रियं० इन दो मंत्रोंसे अभिमंत्रित करै अर्थात् ये दो मंत्र पढै, और उस अभिमंत्रित वीर्यका अनामिका अंगुलिसे स्तन और भ्रुकुटीके मध्य स्पर्श करै। अन्य तो यह कहते हैं कि निकासा हुआ वीर्य अशुद्ध है इससे स्पर्शके अयोग्य होनेसे तेन (तिससे) इस पदसे अनामिका पदके साहचर्यसे अपनी बुद्धिमें स्थित अंगुष्ठ लेते हैं तिससे अंगूठा और अनामिकासे स्पर्श करै। और श्लोकमें अंगुष्ठ पद पढते तो छंदका भंग होता, वह उनका कहना ठीक नहीं, क्यों कि अंगुष्ठ बुद्धिमें स्थित नहीं है और शब्दकी संनिधि (समीपता) को छोडकर अर्थात् बुद्धिमें स्थितका अन्वयभी युक्त नहीं, सोई कहा है कि गम्यमान (प्रतीत हुए) अर्थका विशेषण शब्दांतर विभक्तिसे, यह धूम जलता है (प्रकाशित है) इसके समान कहीं नहीं देखा। और वीर्यको अशुद्ध होनेसे स्पर्शकी अयोग्यताभी नहीं, क्योंकि विधिसेही प्रायश्चित्तके लिये जो स्पर्श उसमें ऐसे योग्यता जानी जाती है, जैसे प्रायश्चित्तके लिये मदिरा पीनेकी। और यह प्रायश्चित्त गृहस्थको ही अज्ञानसे वीर्यके पातमें है, क्योंकि ब्रह्मचारीको तो स्वप्न और जागरण अवस्थामें गुरु प्रायश्चित्त देखते हैं। और तो मनुका वचन है कि गृहस्थ जानकर वीर्यका पात भूमिमें करै तो तीन प्राणायामों सहित एक सहस्र गायत्री जपै, यह वचन जानकर वीर्यके पातमें है॥

भावार्थ–यन्मेरेत० पुनर्मा० इन दो ऋचाओंसे स्कन्न (गिरा हुआ) वीर्यका अभिमंत्रण करै और मंत्र पढे हुए उस वीर्यसे अनामिका अंगुलिसे स्तन और भ्रुकुटीके मध्यका स्पर्श करै॥ २७८॥

मयितेजइतिच्छायांस्वांदृष्ट्वाम्बुगतांजपेत्॥ सावित्रीमशुचौदृष्टेचापल्येचानृतेपिच २७९

पद–मयि ७ तेजः १ इतिऽ–च्छायाम् २ स्वाम् २ दृष्ट्वाऽ–अंबुगताम् २ जपेत् क्रि–सावित्रीम् २ अशुचौ ७ दृष्टे ७ चापल्ये ७ चऽ–अनृते ७ अपिऽ–चऽ–॥

योजना–अंबुगतां स्वां छायां दृष्ट्वा मयितेजः० इति मंत्रं जपेत् अशुचौ दृष्टे चापल्ये च पुनः अनृते अपि सावित्रीं (गायत्रीम्) जपेत्॥

तात्पर्यार्थ–यदि अपनी छायाको जलमें देखले तो मयितेजः० इस मंत्रको जपै, और अशुद्ध द्रव्यक देखने, वाणी हाथ चरण इनकी चपलता करने, और झूठ बोलनेमें सावित्री (गायत्री) का जप करै, यहभी जानकर करनेमें जानना, अज्ञानसे करनेमें तो मनुका कहाहुआ आचमन जानना कि शयन, भोजन, छींकना, थूकना, झूठ बोलना, जल पीना और पढना इनमें सावधान होकर आचमन करै, और जो संवर्त्तका वचन है कि छींकना, थूकना, दांतोंमें अन्नका लगना, झूठ बोलना, पतितोंके संग बोलना इनमें दक्षिण कानका स्पर्श करै, वह वचन अल्पप्रयोजन वा अभावमें जानना। स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्री इनके वधके अनन्तर उपपातकोंमें निन्दित धनस जीविका

---

१ गम्यमानस्य चार्थस्य नत्र दृष्टं विशेषणम्। शब्दांतरैर्विभक्त्या वा धूमोयं ज्वलतीतिवत्॥

२ गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्कंदनं भुवि। सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह॥

१ सुप्त्वा भुक्त्वा च क्षुत्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च। पीत्वापोध्येष्यमाणश्च आचामत्प्रयतोऽपि सन्॥

२ क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तश्लिष्टे तथानृते। पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥

करनी पढी है। उसमें मनु और योगीश्वरने कहे जो उपपातकोंके प्रायश्चित्त वेही जाति शक्ति और गुण आदिके अनुसार जानने। और नास्तिकतासेभी वेही प्रायश्चित्त वैसेही समझने। और नास्तिकतासे वेदकी निन्दा लेते हैं उन दोनोंमें वसिष्ठने अन्य प्रायश्चित्तभी कहा है कि नास्तिक द्वादश रात्रतक कृच्छ्र करके नास्तिकताको छोड दे। और नास्तिकसे जिसकी जीविका हो वह अतिकृच्छ्र करै, यह भी एकवार करनेमें समझना। क्योंकि उपपातकोंके प्रायश्चित्त अभ्यासके विषयमें है और जो शंखने कहा है कि नास्तिक और नास्तिकसे जिसकी जीविका होय वह, कृतघ्न, झूठा व्यवहारी, मिथ्या दोष लगानेवाला ये पांचों वर्ष दिनतक ब्राह्मणके घरमें भिक्षा मांगैं और जो हारीतने नास्तिक वृत्ति यह कहकर कहा है कि ग्रीष्म वर्षा और हेमंतऋतुओंमें क्रमसे पंचाग्नि तपना, वर्षामें नग्न खडा रहना, जलमें सोना इनको करै ये दोनों वचन अत्यंत आग्रहसे बहुत कालके अभ्यासमें समझने ॥

भावार्थ-जलमें अपनी छायाको देखकर मार्यितेजः० इस ऋचाको जपै और अशुद्ध पदार्थके देखने, चपलता करने, और झूठ बोलनेमें गायत्रीको जपै ॥ २७९ ॥

अवकीर्णीभवेद्गत्वाब्रह्मचारीतुयोषितम् ।
गर्दभंपशुमालभ्यनैर्ऋतंसविशुद्ध्यति २८०

पद-अवकीर्णी १ भवेत् क्रि-गत्वाऽ-ब्रह्मचारी १ तुऽ-योषितम् २ गर्दभम् २ पशुम् २ आलभ्यऽ-नैर्ऋतम् २ सः १ विशुद्ध्यति क्रि-॥

योजना-ब्रह्मचारी योषितं गत्वा अवकीर्णी भवेत् स नैर्ऋतं गर्दभं पशुम् आलभ्य विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ-अब अवकीर्णीका लक्षण और उसका प्रायश्चित्त कहते हैं। उपकुर्वाणक और नैष्ठिक ये दोनों ब्रह्मचारी स्त्रीका संग करके अवकीर्णी होजाते हैं। चरम धातु (वीर्य) के विसर्ग (गिरना) को अवकीर्ण कहते हैं, वह जिसके हो वह अवकीर्णी कहाताहै, वह ब्रह्मचारी निर्ऋति है देवता जिसका ऐसे गर्दभपशुसे यज्ञ करके शुद्ध होता है, यद्यपि गर्दभको पशुत्व सिद्ध था तोभी पुनः पशुग्रहण (अथ पशुकल्पः) अब पशुके कल्प (प्रतिनिधि) कहतेहैं, इस आश्वलायन आदि गृह्यसूत्रमें कहे पशुधर्मकी प्राप्तिके लिये पशुपदका ग्रहण है। यह यज्ञ वनके विषय, चौराहेमें, लौकिक अग्निमें करना, क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि ब्रह्मचारी स्त्रीका संग करै तो वनके विषय चौराहेमें लौकिक अग्निमें, रक्षस् है देवता जिसका ऐसे गर्दभ पशुका आलंभन करै अर्थात् यज्ञ करै। और तैसेही काणे गर्दभसे रात्रिमें करै। सोई मनुने कहाहै (अ० ११ श्लो० ११८) कि अवकीर्णी काणे रासभसे चौराहेमें पाक यज्ञकी विधिसे रात्रिमें निर्ऋतिके निमित्त यज्ञ करै। पशु न मिले तौ चरुसे यज्ञ करै।

---

१ नास्तिकः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा विरमेन्नास्तिक्यान्नास्तिकवृत्तिस्त्वतिकृच्छ्रम् ।

२ नास्तिको नास्तिकवृत्तिः कृतघ्नः कूटव्यवहारी मिथ्याभिशंसी इत्येते पंचसंवत्सरं ब्राह्मणगृहे भैक्षं चरेयुः ।

३ नास्तिको नास्तिकवृत्तिरिति प्रक्रम्य पंचतापोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुरिति ग्रीष्मवर्षाहेमंतेषु ।

१ ब्रह्मचारी चेत्स्त्रियमुपेयादरण्ये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवतं गर्दभपशुमालभेत ।

२ अवकीर्णी तु काणेन रासभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥

क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि निर्ऋतिपशु वा चरुको दे। और उसका होम इन मन्त्रोंसे करै काम, कामकाम, निर्ऋति, रक्षोदेवता इनके निमित्त स्वाहा है। यहभी असमर्थके विषयमें है। समर्थको तो यह गौतमका कहा वार्षिक तपसहित पशुयज्ञ वा चरु जानना कि अवकीर्णी निर्ऋतिका चौराहेमें यज्ञ करै और ऊपरको हैं बाल जिसके ऐसे उसके चर्मको ओढकर अपने कर्मको कहता हुआ लोहित (रक्त) पात्रमें सात घरोंसे भिक्षा मांगे तो वर्षदिनमें शुद्ध होताहै। तैसेही त्रिकाल स्नान और एककाल भोजन जानना। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० १२२-१२३) की स्मृति है कि इस पापके करनेपर गधेके चर्मको धारण कर अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंसे भिक्षा मांगे, उनसे मिली हुई भिक्षासे एक काल भोजन करै और त्रिकाल स्नान करै तो एक वर्षमें शुद्ध होता है। और यह वार्षिक प्रायश्चित्त वेदपाठीसे भिन्न ब्राह्मणकी पत्नीमें वा वेदपाठीकी वैश्या पत्नीमें जानना और यदि गुणवाली ब्राह्मणी और क्षत्रिया जो वेदपाठीकी पत्नी है उनमें वीर्य डारे तो क्रमसे तीन वर्षका वा दो वर्षका प्रायश्चित्त जानना। सोई शंख और लिखितने कहा है कि वैश्यामें अवकीर्ण होय तो एक वर्षतक त्रिकाल स्नान करै। और क्षत्रियामें दो वर्षतक और ब्राह्मणीमें तीन वर्षतक त्रिकाल स्नान करै। और जो अंगिराका वचन है कि अवकीर्णिके निमित्त ब्रह्महत्याका व्रत करै और छः मासतक चीर (जो मार्गमें पडे और फटे मिलें) वस्त्रोंको धारण करै तो पापसे छूटता है वह अज्ञानसे किये और मनुके कहे वार्षिक प्रायश्चित्तके विषयमें अथवा अल्प व्यभिचारिणीके विषयमें समझना और जो अत्यंत व्यभिचारिणी हैं उनमें तो शंख लिखितके कहे यह प्रायश्चित्त जानने कि व्यभिचारिणी शूद्रामें गमन करै तो सचैल स्नान करके जलका घट ब्राह्मणको दे, और वैश्यामें करै तो चौथे काल भोजन करै, ब्राह्मणोंको जिमावै, भूसका भार गौओंको दे। क्षत्रियामें करै तो तीन रात्र उपवास करके घीका पात्र दे। और ब्राह्मणीमें गमन करै तो छः रात्र उपवास करके गोदान करै। गौओंका गमन (भोग) करै तो प्राजापत्य करै। नपुंसकीके संग गमन करै तो पलालका भार और मासे भर सीसा दे। यह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त तीनों वर्णोंके ब्रह्मचारियोंको समान है। क्योंकि शांडिल्यकी स्मृति है कि अवकीर्णी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये खरपशु यज्ञ करके भिक्षाका भोजन सावधा-

---

१ नैर्ऋतिं वा चरुं निर्वपेत् तस्य जुहुयात्।

२ कामाय स्वाहा कामकामाय स्वाहा निर्ऋत्यै स्वाहा रक्षोदेवताभ्यः स्वाहा।

३ गर्दभेनावकीर्णी निर्ऋतिं चतुष्पथे यजेत् तस्याजिनमूर्द्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्ध्यति।

४ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम्। सप्तागारं चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन्॥ तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम्। उपस्पृशंस्त्रिषवणमब्देन स विशुद्ध्यति॥

५ गुप्तायां वैश्यायामवकीर्णः संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेत् क्षत्रियायां तु द्वे वर्षे ब्राह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि।

१ अवकीर्णनिमित्तं तु ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्। चीरवासास्तु षण्मासांस्तथा मुच्येत किल्बिषात्॥

२ स्वैरिण्यां वृषल्यामवकीर्णो सचैलं स्नात उदकुम्भं दद्याद् ब्राह्मणाय। वैश्यायां चतुर्थकालाहारो ब्राह्मणान्भोजयेत् यवसभारं च गोभ्यो दद्यात्। क्षत्रियायां त्रिरात्रमुपोषितो घृतपात्रं दद्यात्। ब्राह्मण्यां षड्रात्रमुपोषितो गां च दद्यात् गोष्ववकीर्णः प्राजापत्यं चरेत्। षण्ढायामवकीर्णः पलालभारं सीसमाषकं च दद्यात्।

३ अवकीर्णी द्विजो राजा वैश्यश्चापि खरेण तु। इष्ट्वा भैक्षाशिनो नित्यं शुद्ध्यन्त्यब्दात्समाहिताः।

वीसे करते हुए वर्ष दिनमें शुद्ध होते हैं और जब स्त्रीके भोग विना जानकर वीर्यका त्याग करै, दिनमें वा स्वप्नमें करै तब नैर्ऋतिके निमित्त यज्ञमात्रही प्रायश्चित्त जानना। क्योंकि वसिष्ठने यत्नसे वीर्यके दिन वा स्वप्नमें त्यागनेमें यही गर्दभयज्ञमात्र प्रायश्चित कहा है और कृच्छ्रचांद्रायण आदि जो ऐसे व्रत हैं जिनमें ब्रह्मचर्य रखना पडता है उनमेंभी इस वचनसे वोही यज्ञमात्र प्रायश्चित्त कहा है। स्वप्नमें वीर्यके त्यागनेमें तो मनुका कहा प्रायश्चित्त(अ० २ श्लो० १८१) जानना कि ब्रह्मचारी द्विज स्वप्नमें वीर्यको सींचकर स्नान और सूर्यका पूजन करके तीन वार पुनर्मां०इस ऋचाका जपै, और वानप्रस्थ आदिकोंकोभी ब्रह्मचर्यके खण्डनमें यही अवकीर्णी व्रत तीन कृच्छ्र अधिक होता है। क्योंकि शांडिल्यकी स्मृति है कि वानप्रस्थ और संन्यासी जानकर वीर्यका पात करैं तो तीन पराक सहित अवकीर्णी व्रत करैं और जब फिर गृहस्थी होकर संन्याससे पतित होजाय अर्थात् संन्याससे फिर गृहस्थमें आजाय तब संवर्तका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जो कोई दुर्मति संन्यास लेकर लौट आवै वह विश्रामको छोडकर छः मास कृच्छ्र करै। यहां लौटना गृहस्थका स्वीकार लेना इसीसे वसिष्ठने कहा है कि जो संन्यासी होकर फिर मैथुनको सेवै वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें कृमि होता है। सोई पराशरने कहा है कि जो संन्यासी ब्राह्मण संन्याससे वा अनशन व्रतसे निवृत्त होकर गृहस्थकी इच्छा करै तो तीन कृच्छ्र और तीन चांद्रायण करै और वह जातकर्म आदि संस्कार करनेसे शुद्ध होता है। उसमें ब्राह्मणको छः मासका कृच्छ्र और फिर संस्कार, क्षत्रियको तीन चांद्रायण, और वैश्यको तीन कृच्छ्र, यह व्यवस्था है अथवा शक्ति, एक वार और अभ्यास आदिकी अपेक्षासे ब्राह्मणकोही यह तीनों प्रायश्चित्त जानने। तेसेही मरण संन्यासियोंकोभी यमने प्रायश्चित्त कहा है कि संन्यस्तके नाशसे और जल, अग्नि, वंधनसे और विष पर्वत आदिसे पतन इनसे जो नष्ट हुएहैं ये सब जगत्से बहिष्कृत संन्यासी नहीं है, और वे चान्द्रायण वा दो तप्तकृच्छ्रोंसे शुद्ध होते हैं। ये चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र रूप दोनों प्रायश्चित्त शक्ति आदिकी अपेक्षासे व्यवस्थित जानने और जब (शस्त्रघातहताः) यह पाठ है तब देहका त्याग आदि अशास्त्रोक्त मरणके निमित्त उस संन्यासीके पुत्र आदिको उपदेश जानना और जो वसिष्ठने कहा है कि जीता हुआ जो देहको त्यागे वह द्वादशरात्र कृच्छ्र और त्रिरात्र उपवास करै। वह वचनभी उसके लिये जानना।

१ एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्ने च ।

२ व्रतान्तरेषु चैवम् ।

३ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिःपुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥

४ वानप्रस्थो यतिश्चैव स्कंदने सति कामतः । पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णव्रतं चरेत् ॥

५ संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित्प्रत्यापत्तिं व्रजेद्यदि । स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतः षण्मासान्प्रत्यनंतरम् ॥

६ यस्तु प्रव्रजितो भत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥

१ यः प्रत्यवसितो विप्रो प्रव्रज्यातो विनिर्गतः । अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति ॥ स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि च । जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥

२ जलाग्न्युद्बंधनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः । विषप्रपतनप्रायःशस्त्रघातच्युताश्च ये ॥ नैव ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः । चान्द्रायणेन शुद्ध्यंति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥

३ जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् त्रिरात्रं चोपवसेत् ।

कि जिसने अशास्त्रीय मरणका निश्चय कर लिया हो और जीवनकी शक्ति हो, अथवा यह व्यवस्था जाननी कि मरणके निश्चय करनेमें त्रिरात्र और शस्त्र आदिके घाव लगनेमें द्वादशरात्र जानना, और यह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त गुरुकी स्त्री उसके समान स्त्रियोंसे भिन्न जो गमन करनेके अयोग्य स्त्री हैं उनमें जानना, क्योंकि गुरुपत्नी आदिकोंमें गुरु प्रायश्चित्त देखते हैं और लघु अवकीर्णी व्रत बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे दूर करने योग्य महापातकके दोषको दूर भी नहीं कर सकता। कदाचित् कहो कि ब्रह्मचारी होनेसे लघु प्रायश्चित्तकी विधि युक्त है सो ठीक नहीं क्योंकि गृहस्थसे भिन्न आश्रमोंको दूने प्रायश्चित्तकी विधि ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दिखाय आये हैं और यहां गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके गमनका प्रायश्चित्त भी पृथक् न करना। क्योंकि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषय ब्रह्मचर्यका स्खलन अगम्यागमन तुल्य है। इससे जिस निमित्तमें जो दूसरा निमित्त सम वा न्यून होय तो [1]अवश्य होनेवाले उसमें वह दूसरे प्रायश्चित्तका प्रयोजक नहीं होते। जैसे मनुके इस वचनमें (अ० ११ श्लो० २०८) कि शस्त्रको उठाकर कृच्छ्र गिरानेमें अतिकृच्छ्र और रुधिरके गिरनेमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र और चर्मके भीतर रुधिर रहनेमें कृच्छ्र करै। रुधिरकी उत्पत्तिके निमित्तमें शस्त्र उठाना और गिराना ये दोनों अवश्य होयंगे तो भी अपने कृच्छ्र अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्तके प्रयोजक नहीं होते। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना और जहां निमित्तोंके अंतर्भाव (बीचमें आना) का नियम नहीं वहां नैमित्तिक प्रायश्चित्त पृथक् २ होते हैं, वे निमित्त ऐसे हैं कि जब पर्वमें परभार्या, रजस्वला इनके संग तैल लगाकर दिनमें और जलमें गमन करै तो अवकीर्णी होता है। कदाचित् कोई शंका करै कि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषयमें जो ब्रह्मचर्यको स्खलन है वह अगम्यामें गमन रूप नहीं, क्योंकि पुत्रीके गमनमें अगम्यागमनका दोष नहीं। सोई दिखाते हैं कि पुत्रिकाकी योनिके क्षत होनेसे कन्या नहीं, और दानका अभाव होनेसे परभार्या नहीं, और व्यभिचारसे जीविका न करनेसे वेश्या भी नहीं और पतिके न मरनेसे विधवा भी नहीं इससे पुत्रिकाका किसीमें अंतर्भाव न होनेसे निषेध भी नहीं उसमें जो वीर्यपात करै उसकोही केवल अवकीर्णीका व्रत है और अन्यमें जो वीर्यपात करै उसमें तो अन्य भी निमित्त मिल सक्ते हैं इससे अवकीर्णिव्रत और तिस २ का अन्य भी प्रायश्चित्त करने वह किसीकी शंका ठीक नहीं, क्योंकि पुत्रिकाका भी पराई भार्यामें अंतर्भाव है अर्थात् वह पराई स्त्री है और दानका अभाव भी होय तो उसका विवाह संस्कार तो हुआ है, जैसे गांधर्वविवाहसे विवाही स्त्री पराई होती है। कदाचित् कोई शंका करै कि जिस [1]कन्याके भ्राता न होय और पिता न होय बुद्धिमान् पुरुष पुत्रिकाधर्मसे उसे न विवाहै इस निषेधसे पुत्रिकामें इस प्रकार भार्यात्व पैदा नहीं होता जैसे सगोत्रामें, सो ठीक नहीं। क्योंकि वह निषेध दृष्ट अर्थके लिये ऐसे है जैसे व्यंजनासे जाने व्यंगीका होता है और उसको दृष्टार्थ होना, पुत्रिका धर्मकी शंकासे, इस हेतुके कहनेसे है। कदाचित् कहो कि केवल पुत्रके लियेही विवाह नहीं अपितु धर्मार्थ भी है इससे जिसके पुत्र हो और भार्या मरगई हो वह धर्मके लिये विवाह करै तो क्या विरोध

[1] अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने। कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥

[1] यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥

...से करते हुए वर्ष दिनमें शुद्ध होते हैं और जब स्त्रीके भोग बिना जानकर वीर्यका त्याग करै, दिनमें वा स्वप्नमें करै तब नैर्ऋतिके निमित्त यज्ञमात्रही प्रायश्चित्त जानना। क्योंकि वसिष्ठने यत्नसे वीर्यके दिन वा स्वप्नमें त्यागमें यही गर्दभयज्ञमात्र प्रायश्चित कहा है और कृच्छ्रचांद्रायण आदि जो ऐसे व्रत हैं जिनमें ब्रह्मचर्य रखना पडता है उनमेंभी इस वचनसे यही यज्ञमात्र प्रायश्चित्त कहा है। स्वप्नमें वीर्यके त्यागनेमें तो मनुका कहा प्रायश्चित्त (अ० २ श्लो० १८१) जानना कि ब्रह्मचारी द्विज स्वप्नमें वीर्यको सींचकर स्नान और सूर्यका पूजन करके तीन बार पुनर्मा० इस ऋचाका जपै, और वानप्रस्थ आदिकोंकोभी ब्रह्मचर्यके खण्डनमें यही अवकीर्णी व्रत तीन कृच्छ्र अधिक होता है। क्योंकि शांडिल्यकी स्मृति है कि वानप्रस्थ और संन्यासी जानकर वीर्यका पात करैं तो तीन पराक सहित अवकीर्णी व्रत करैं और जब फिर गृहस्थी होकर संन्याससे पतित होजाय अर्थात् संन्याससे फिर गृहस्थमें आजाय तब संवर्तका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जो कोई दुर्मति संन्यास लेकर लौट आवै वह विश्रामको छोडकर छः मासतक कृच्छ्र करै। यहां लौटना गृहस्थका स्वीकार लेना इसीसे वसिष्ठने कहा है कि जो संन्यासी होकर फिर मैथुनको सेवै वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें कृमि होता है। सोई पराशरने कहा है कि जो संन्यासी ब्राह्मण संन्याससे वा अनशन व्रतसे निवृत्त होकर गृहस्थकी इच्छा करै तो तीन कृच्छ्र और तीन चांद्रायण करै और वह जातकर्म आदि संस्कार करनेसे शुद्ध होता है। उसमें ब्राह्मणको छः मासका कृच्छ्र और फिर संस्कार, क्षत्रियको तीन चांद्रायण, और वैश्यको तीन कृच्छ्र, यह व्यवस्था है अथवा शक्ति, एक वार और अभ्यास आदिकी अपेक्षासे ब्राह्मणकोही यह तीनों प्रायश्चित्त जानने। तैसेही मरण संन्यासियोंकोभी यमने प्रायश्चित्त कहा है कि संन्यस्तके नाशसे और जल, अग्नि, बंधनसे और विष पर्वत आदिसे पतन इनसे जो नष्ट हुएहैं ये सब जगत्से बहिष्कृत संन्यासी नहीं है, और वे चान्द्रायण वा दो तप्तकृच्छ्रोंसे शुद्ध होते हैं। ये चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र रूप दोनों प्रायश्चित्त शक्ति आदिकी अपेक्षासे व्यवस्थित जानने और जब (शस्त्रघातहताः) यह पाठ है तब देहका त्याग आदि अशास्त्रोक्त मरणके निमित्त उस संन्यासीके पुत्र आदिको उपदेश जानना और जो वसिष्ठने कहा है कि जीता हुआ जो देहको त्यागे वह द्वादशरात्र कृच्छ्र और त्रिरात्र उपवास करै। वह वचनभी उसके लिये जानना।

१ एतदेव रेतसः प्रयत्नोत्सर्गे दिवा स्वप्ने च।

२ व्रतान्तरेषु चैवम्।

३ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः। स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिःपुनर्मामित्यृचं जपेत्॥

४ वानप्रस्थो यतिश्चैव स्कंदने सति कामतः। पराकत्रयसंयुक्तमवकीर्णव्रतं चरेत्॥

५ संन्यस्य दुर्मतिः कश्चित्प्रत्यापत्तिं व्रजेद्यदि। स कुर्यात्कृच्छ्रमश्रांतः षण्मासान्प्रत्यनंतरम्॥

६ यस्तु प्रव्रजितो भत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥

१ यः प्रत्यवसितो विप्रो प्रव्रज्यातो विनिर्गतः। अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति॥ स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि च। जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात्॥

२ जलाग्न्युद्बंधनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः। विषप्रपतनप्रायःशस्त्रघातच्युताश्च ये॥ नैव ते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः। चान्द्रायणेन शुद्ध्यंति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा॥

३ जीवन्नात्मत्यागी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरेत् त्रिरात्रं चोपवसेत्।

कि जिसने अशास्त्रीय मरणका निश्चय कर लिया हो और जीवनकी शक्ति हो, अथवा यह व्यवस्था जाननी कि मरणके निश्चय करनेमें त्रिरात्र और शस्त्र आदिके घाव लगनेमें द्वादशरात्र जानना, और यह अवकीर्णीका प्रायश्चित्त गुरुकी स्त्री उसके समान स्त्रियोंसे भिन्न जो गमन करनेके अयोग्य स्त्री हैं उनमें जानना, क्योंकि गुरुपत्नी आदिकोंमें गुरु प्रायश्चित्त देखते हैं और लघु अवकीर्णी व्रत बारह वर्षके प्रायश्चित्तसे दूर करने योग्य महापातकके दोषको दूर भी नहीं कर सकता। कदाचित् कहो कि ब्रह्मचारी होनेसे लघु प्रायश्चित्तकी विधि युक्त है सो ठीक नहीं क्योंकि गृहस्थसे भिन्न आश्रमोंको दूने प्रायश्चित्तकी विधि ब्रह्महत्याके प्रकरणमें दिखाय आये हैं और यहां गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके गमनका प्रायश्चित्त भी पृथक् न करना। क्योंकि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषय ब्रह्मचर्यका स्खलन अगम्यागमन तुल्य है। इससे जिस निमित्तमें जो दूसरा निमित्त सम वा न्यून होय तो अवश्य होनेवाले उसमें वह दूसरे प्रायश्चित्तका प्रयोजक नहीं होते। जैसे मनुके इस वचनमें (अ० ११ श्लो० २०८) कि शस्त्रको उठाकर कृच्छ्र गिरानेमें अतिकृच्छ्र और रुधिरके गिरनेमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र और चर्मके भीतर रुधिर रहनेमें कृच्छ्र करै। रुधिरकी उत्पत्तिके निमित्तमें शस्त्र उठाना और गिराना ये दोनों अवश्य होयंगे तो भी अपने कृच्छ्र अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्तके प्रयोजक नहीं होते। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना और जहां निमित्तोंके अंतर्भाव (बीचमें आना) का नियम नहीं वहां नैमित्तिक प्रायश्चित्त पृथक् २ होते हैं, वे निमित्त ऐसे हैं कि जब पर्वमें परभार्या, रजस्वला इनके संग तेल लगाकर दिनमें और जलमें गमन करै तो अवकीर्णी होता है। कदाचित् कोई शंका करै कि ब्रह्मचारीको स्त्रीके विषयमें जो ब्रह्मचर्यको स्खलन है वह अगम्यामें गमन रूप नहीं, क्योंकि पुत्रीके गमनमें अगम्यागमनका दोष नहीं। सोई दिखाते हैं कि पुत्रिकाकी योनिके क्षत होनेसे कन्या नहीं, और दानका अभाव होनेसे परभार्या नहीं, और व्यभिचारसे जीविका न करनेसे वेश्या भी नहीं और पतिके न मरनेसे विधवा भी नहीं इससे पुत्रिकाका किसीमें अंतर्भाव न होनेसे निषेध भी नहीं उसमें जो वीर्यपात करै उसकोही केवल अवकीर्णीका व्रत है और अन्यमें जो वीर्यपात करै उसमें तो अन्य भी निमित्त मिल सक्ते हैं इससे अवकीर्णिव्रत और तिस २ का अन्य भी प्रायश्चित्त करने वह किसीकी शंका ठीक नहीं, क्योंकि पुत्रिकाका भी पराई भार्यामें अंतर्भाव है अर्थात् वह पराई स्त्री है और दानका अभाव भी होय तो उसका विवाह संस्कार तो हुआ है, जैसे गांधर्वविवाहसे विवाही स्त्री पराई होती है। कदाचित् कोई शंका करै कि जिस कन्याके भ्राता न होय और पिता न होय बुद्धिमान् पुरुष पुत्रिकाधर्मसे उसे न विवाहै इस निषेधसे पुत्रिकामें इस प्रकार भार्यात्व पैदा नहीं होता जैसे सगोत्रामें, सो ठीक नहीं। क्योंकि वह निषेध दृष्ट अर्थके लिये ऐसे है जैसे व्यंजनासे जाने व्यंगीका होता है और उसको दृष्टार्थ होना, पुत्रिका धर्मकी शंकासे, इस हेतुके कहनेसे है। कदाचित् कहो कि केवल पुत्रके लियेही विवाह नहीं अपितु धर्मार्थ भी है इससे जिसके पुत्र हो और भार्या मरगई हो वह धर्मके लिये विवाह करै तो क्या विरोध

१ अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने। कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते॥

१ यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया॥

है। इसको विस्तारसे पहिले कह आये। अब अत्यन्त प्रसंगके कथनसे अलं हुए तिससे ब्रह्मचारिको स्त्रीके विषय जो ब्रह्मचर्यका स्खलन (वीर्यका पात) वह अगम्याका जो गमनरूप नहीं इससे पृथक् प्रायश्चित्तका प्रयोजक नहीं यह ठीक कहा ॥

भावार्थ-ब्रह्मचारी स्त्रीका संगम करके अवकीर्णी होता है वह गर्दभ पशुका आलंभ (मारकर यज्ञ) निर्ऋति देवताके लिये करके शुद्ध होता है ॥ २८० ॥

भैक्षाग्निकार्येत्यक्त्वातुसप्तरात्रमनातुरः ।
कामावकीर्णइत्याभ्यांजुहुयादाहुतिद्वयम् ॥

पद-भैक्षाग्निकार्ये २ त्यक्त्वाऽ-तुऽ-सप्तरात्रम्ऽ-अनातुरः १ कामावकीर्णः १ इत्याभ्याम् ३ जुहुयात् क्रि-आहुतिद्वयम् २ ॥

उपस्थानंततःकुर्यात्समासिंचंत्वनेनतु ।
मधुमांसाशनेकार्यःकृच्छ्रःशेषव्रतानिच ॥

पद-उपस्थानम् २ ततःऽ-कुर्यात् क्रि-समासिंचन्तु क्रि-अनेन ३ तुऽ-मधुमांसाशने ७ कार्यः १ कृच्छ्रः १ शेषव्रतानि २ चऽ-॥

योजना-अनातुरः ब्रह्मचारी सप्तरात्रं भैक्षाग्निकार्ये त्यक्त्वा कामावकीर्ण०इति आभ्याम् ऋग्भ्याम् आहुतिद्वयं जुहुयात् ततः समासिंचंतु० अनेन मंत्रेण उपस्थानं कुर्यात् मधुमांसाशने कृते सति कृच्छ्रः कार्यः च पुनः शेषव्रतानि कार्याणि ॥

तात्पर्यार्थ-अब ब्रह्मचारीके प्रसंगसे अन्यभी उपपातकका प्रायश्चित्त कहते हैं। जो ब्रह्मचारी अनातुर (विना रोग) अवस्थामें निरन्तर सात रात्रतक भिक्षा वा अग्निके कार्यको त्याग दे वह कामावकीर्णः इन दो मंत्रोंसे दो आहुति देकर समासिंचंतु० इस मंत्रसे अग्निका उपस्थान करे। यह प्रायश्चित्त भी तब जानना जब गुरुसेवा आदि गुरु (बडे) कार्यमें व्यग्र होकर भिक्षा और अग्निका कार्य न किया हो। और जब अव्यग्र होकरही भिक्षा और अग्निकार्य दोनोंको त्यागता है तब मनुका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि भिक्षाटन और अग्निका प्रज्वलन इनको सात दिन न करके अनातुर ब्रह्मचारी अवकीर्णीके व्रतको करे। यज्ञोपवीतके नाशमें तो हारीतने यह प्रायश्चित्त कहा है कि मनोव्रतपतीभि० ऋचाओंसे चार घीकी आहुति देकर फिर यथार्थ यज्ञोपवीतमें कहे मार्गसे मंत्रसहित यज्ञोपवीतको धारण करे। मनोव्रत पती ऋचा वे होती हैं जिनमें मनका चिह्न वा व्रतका चिह्न हो जैसे मनोज्योतिः० यह और त्वमग्ने व्रतपा असि० यह है। और निन्दित भिक्षाके भोजन, अभ्युदित और अभिनिर्मुक्त अर्थात् सूर्योदयपर सोना और सूर्यके छूटे सूर्यके समयमें पढनेमें, वमन, दिनमें सोना, नग्न स्त्रीका देखना, नग्न होकर सोना, श्मशानमें जाना, अश्व पर चढना, पूजाके योग्य पिता आदिका अवलंघन, इनमें भी प्रज्वलित अग्निमें इन्हीं मंत्रोंसे होम करे और स्थावर और सर्प आदिके

१ कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामकामायस्वाहा कामावपन्नोऽस्म्यवपन्नोऽस्मि कामकामायस्वाहा ।

१ समासिंचंतु मरुतः समिंद्रः संबृहस्पतिः । समायमग्निः सिंचंतां यशसा ब्रह्मवर्चसेन च ॥

२ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥

३ मनोव्रतपतीभिश्चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा पुनर्यथार्थं प्रतीयादसद्भैक्षभोजनेऽभ्युदितेऽभिनिर्मुक्ते वांते दिवास्वप्ने नग्नस्त्रीदर्शने नग्नस्वापे श्मशानमाक्रम्य हयादीनारुह्य पूज्यातिक्रमे चैताभिरेव जुहुयादग्निसामिंधनेस्थावरसरीसृपादीनां वधे यद्देवादेवहेडनामीति कूष्मांडीभिराज्यं जुहुयात् मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेत् ।

ग्रथमें यद्देवादेवहेडनम् इत्यादि कूष्मांडी ऋचाओंसे होम करै और मणि वस्त्र गौ आदिके प्रतिग्रहमें आठ सहस्र गायत्री जपै। और यज्ञोपवीतके विना भोजन आदिके करनेमें तो यह मरीचिका कहा प्रायश्चित्त जानना कि यज्ञोपवीतके विना भोजन करै वा मल मूत्रको त्यागै तो आठ सहस्र गायत्रीके जप और प्राणायामसे शुद्ध होता है। और ब्रह्मचारी अज्ञानसे मधु मांसका भक्षण करले तो कृच्छ्र करै, फिर शेष अपने व्रतोंको समाप्त करै। यहभी शिष्टोंके भोजनयोग्य शश आदिके मांसके भक्षणमें समझना। क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि ब्रह्मचारी शिष्टोंके भोजनयोग्य मांसका भक्षण करै तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके शेष व्रतको समाप्त करै। यहां द्वादशरात्र पदका ग्रहण जानकर और अभ्यासकी अपेक्षासे अतिकृच्छ्र और पराक आदिकी प्राप्तिके लिये है। और जब ऐसीही व्याधिसे अभिभूत (तिरस्कृत) हो जो मांसभक्षणसेही निवृत्त होय तो गुरुके उच्छिष्ट मांसका भक्षण करै क्योंकि वसिष्ठनेही कहा है कि जो ब्रह्मचारी रोगी होय तो औषधिके लिये गुरुकी उच्छिष्ट सब वस्तुओंको इच्छाके अनुसार भक्षण करै। यहां सर्वका ग्रहण मांस लशुन आदि संपूर्ण अभक्ष्योंके ग्रहणके लिये है और जब मांसके भक्षणसे व्याधि दूर हो जाय तब सूर्यकी स्तुति करै। सोई बौधायननें कहा है कि जिससे चिकित्सा करनेकी इच्छा करै उससे जब रोगसे रहित हो जाय तब हंसः शुचिषत्० इस मंत्रसे खडा होकर सूर्यकी स्तुति करै। मधु (सहत वा मदिरा) कामी अज्ञानसे भक्षण हो जाय तो दोष नहीं क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि अज्ञानसे मिला मधु वाजसनेयी संहितामें दूषित नहीं है। अन्य जो सूतकके अन्न आदिका भक्षण है उसका प्रायश्चित्त अभक्ष्य प्रायश्चित्तके प्रकरणमें कहेंगे॥

भावार्थ–विना रोग सात रात्रतक भिक्षा और अग्निकार्यको त्यागकर कामावकीर्ण० इन दो ऋचाओंसे दो आहुतियोंसे होम करै फिर समासिंचंतु० इस मंत्रसे अग्निकी स्तुति करै। और मधु मांसका भक्षण ब्रह्मचारी करै तो कृच्छ्र करके शेष व्रतोंको समाप्त करै॥ २८१॥ १८२॥

प्रतिकूलंगुरोःकृत्वाप्रसाद्यैवविशुद्ध्यति। कृच्छ्रत्रयंगुरुःकुर्यान्म्रियतेप्रहितोयदि॥

पद–प्रतिकूलम् २ गुरोः ६–कृत्वाऽ–साद्यऽ–एवऽ–विशुद्ध्यति क्रि–कृच्छ्रत्रयम् २ गुरुः १ कुर्यात् क्रि–म्रियते क्रि–प्रहितः १ यदिऽ–॥

योजना–गुरोः प्रतिकूलं कृत्वा प्रसाद्य एव विशुद्ध्यति। यदि गुरुणा प्रहितः शिष्यः म्रियते तदा गुरुः कृच्छ्रत्रयं कुर्यात्॥

तात्पर्यार्थ–गुरुकी आज्ञाके प्रतिघात (न मानना) आदिसे गुरुके प्रतिकूल (विरुद्ध) आचरण करै तो चरणोंमें प्रणिपात (दंडवत) आदिसे गुरुकी प्रसन्नता करके शुद्ध होता है अर्थात् अन्य प्रायश्चित्तकी अपेक्षा नहीं है। जो गुरु चोर सर्प व्याघ्र आदिके भयसे आकुल (युक्त) देशमें और सघन अंधकार है जिसमें ऐसे अर्द्धरात्रके अवसर (समय) में

१ ब्रह्मसूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा। गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति॥

२ ब्रह्मचारी चेन्मांसमश्नीयाच्छिष्टभोजनीयं कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा व्रतशेषं समापयेत्।

३ स चेद् व्याधितः कामं गुरोरुच्छिष्टं भैषज्यार्थं सर्वं प्राश्नीयात्।

४ येनेच्छेत्तु चिकित्सितुं स यदाऽगदो भवति तदोत्थायादित्यमुपतिष्ठेत् हंसःशुचिषदिति।

१ अकामोपनतं मधु वाजसनेयकेन दुष्यति।

कार्यके लिये शिष्यको प्रेरै (भेजै) और गुरुका प्रेरा हुआ वह शिष्य दैवसे मरजाय तो वह गुरु प्राजापत्य आदि तीन २ कृच्छ्र करै। और यह अर्थ नहीं कि तीन प्राजापत्य कृच्छ्र करै ऐसा मानोगे तो पृथक् निवेश (योग) वाली संख्या (त्रित्व ३) की उपपत्ति न होगी अर्थात् जितने कृच्छ्र हैं उन सबमें उक्त संख्या का अन्वय न होगा। कदाचित् कोई शंका करै कि एकादश (ग्यारह) प्रयाजोंसे यज्ञ करता है इसके समान आवृत्तिकी अपेक्षासे संख्याका अन्वय हो जायगा अर्थात् त्रय पदकी आवृत्ति करके प्रत्येकमें त्रित्वसंख्याका अन्वय हो जायगा यह ठीक है, सोभी यथार्थ नहीं क्योंकि जब स्वरूपसेही पृथक्त्व (भिन्नता) प्रतीत होय तो आवृत्तिकी अपेक्षा अन्याय है। और जो यह संख्या उत्पन्नमें स्थित होती तो कथंचित् आवृत्तिकी अपेक्षा होभी जाती सो है नहीं किंतु यह संख्या उत्पत्तिमें स्थित है; इससे तीन घीकी आहुति होमता है इसके समान स्वरूपके पृथक्त्वकी अपेक्षासेही त्रित्व संख्याकी घटना युक्त है- ॥

भावार्थ-गुरुके प्रतिकूल आचरण करै तो गुरुकी प्रसन्नता करके शुद्ध होता है। गुरुका प्रेरा हुआ शिष्य मरजाय तो गुरु तीन२ कृच्छ्र (प्राजापत्य) आदि) करै ॥ २८३ ॥

क्रियमाणोपकारेतुमृतेविप्रेनपातकम् ।
मिथ्याभिशंसिनोदोषोद्विःसमोभूतवादिनः
मिथ्याभिशस्तदोषंचसमादत्तेमृषावदन् ।

पद-क्रियमाणोपकारे ७ तु ऽ-मृते ७ विप्रे ७ न ऽ-पातकम् १ मिथ्याभिशंसिनः ६ दोषः १ द्विः ऽ-समः १ भूतवादिनः ६ मिथ्याभिशस्तदोषम् २ च ऽ-समादत्ते क्रि-मृषा ऽ-वदन् १ ॥

योजना-क्रियमाणोपकारे विप्रे मृते सति पातकं न भवति मिथ्याभिशंसिनः दोषः द्विः (द्विगुणः) भूतवादिनः समः भवति च पुनः मृषावदन् पुरुषः मिथ्याभिशस्तदोषं समादत्ते ॥

तात्पर्यार्थ-आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) के अनुसार औषध पथ्य देने आदि चिकित्सा करनेसे किया है उपकार जिसका ऐसा ब्राह्मण कथंचित् दैवसे मरजाय तो पातक नहीं होता। यहां ब्राह्मणका ग्रहण सब प्राणियोंका उपलक्षण है इसीसे संवर्त्त आदिकोंने यह कहा है कि चिकित्साके लिये गौके बांधने, और भीतर रहें गर्भके निकासनेमें यत्न करनेपर गौ मर जाय तो वह वैद्य पापसे लिप्त नहीं होता। इसका विस्तार पहिले कह आये। जो मनुष्य पराई बडाईकी ईर्ष्यासे पैदा हुए क्रोधसे मलीन अंतःकरण होकर संपूर्ण जनोंके सन्मुख मिथ्याभिशापका आरोप करता है अर्थात् इसने ब्रह्महत्या की, यह वृथा कहता है, उस कहनेवालेको ब्रह्महत्याका दोष दूना होता है और जो भूतवादी है अर्थात् जगत्में विदित न हुए विद्यमानही दोषको जनोंके सन्मुख प्रकाश करता है उसकोभी पातकीके समान दोष होता है। सोई आपस्तंबने कहा है कि दोषको जानकर अन्यको पतितके दोषोंको न कहै और जो कहै उसे धर्मोंसे त्याग दे। और वह मिथ्याभिशंसी केवल दूने दोषका भागी नहीं होता किंतु जिसे मिथ्याभिशाप दिया है उसका जो अन्यभी पापोंका समूह है उसकोभी प्राप्त होता है। यह वचन जो आगे प्रायश्चित्त कहेंगे उसका अर्थवाद है।

१ एकादशप्रयाजान्यजाति ।
२ तिस्रआज्याहुतीर्जुहोति ।

१ यत्ने कृते विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ।
२ दोषं बुद्धा न पूर्वः परेभ्यः पतितस्य समाख्याता स्यात्परिहरेच्चैनं धर्मेषु ।

यहां कुछ दूने पापका कहना विवक्षित नहीं। क्योंकि निमित्त (दोष) लघु है और उसका लघु प्रायश्चित्त कहेंगे, अन्यथा कियेका नाश और न कियेका आगमन हो जायगा अर्थात् जिसने किया उसको दोष न होगा और जिसने न किया उसको होगा॥

भावार्थ–उपकार करनेपर ब्राह्मण मरजाय तो पातक नहीं होता। मिथ्या दोष लगानेवालेको दोष दूना और यथार्थ कहनेवालेको तुल्य होता है और मिथ्या दोषोंको कहता हुआ पुरुष जिसे मिथ्या दोष लगायो हो उसके किये अन्यभी पापको प्राप्त होता है॥ २८४॥

महापापोपपापाभ्यांयोभिशंसेन्मृषापरम्।
अब्भक्षोमासमासीतसजापीनियतेंद्रियः॥

पद–महापापोपपापाभ्याम् ३ यः १ अभिशंसेत् क्रि–मृषाऽ–परम् २ अब्भक्षः१ मासम्२ आसीत क्रि–सः १ जापी १ नियतेन्द्रियः १॥

योजना–यः महापापोपपापाभ्यां परं मृषा अभिशंसेत् सः अब्भक्षः जापी नियतेन्द्रियः सन् मासम् आसीत्॥

तात्पर्यार्थ–जो मनुष्य ब्रह्महत्यादि महापाप और गोवधादि उपपापोंसे वृथाही अन्य पुरुषको दोष लगावै वह मास भर जलका भक्षण और जप करै और जितेन्द्रिय रहै और जपभी शुद्धवती ऋचाओंका करै। क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि ब्राह्मणको झूठा पातक वा उपपातक दोष लगावै तो मास भर जलका भक्षण करै, शुद्धवती ऋचाओंका पाठ करै अथवा अश्वमेधके अवभृथमें स्नान करै। महापाप और उपपापोंका ग्रहण अन्यभी अतिपातक आदिकोंका उपलक्षण है। यह प्रायश्चित्त भी ब्राह्मणको ब्राह्मणकेही दोष लगानेमें जानना। यदि ब्राह्मण क्षत्रिय आदिको दोष लगावै वा क्षत्रिय आदि ब्राह्मणको दोष लगावै तो प्रतिलोम निन्दाओंमें दूना और तिगुना दंड होता है और वर्णोंकी अनुलोम निन्दाओंमें उससे आधा २ न्यून दंड होता है। इस दंडके अनुसार प्रायश्चित्तकी भी वृद्धि और न्यूनताकी कल्पना करनी। छोटा वर्ण बडे वर्णकी निंदा करे तो प्रतिलोम और बडा छोटे वर्णकी निंदा करे तो अनुलोम क्रम होता है और यथार्थ दोषके वक्ताको तो पूर्वोक्त अर्थवादके और दंडके अनुसार उससे आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। तैसेही अतिपातक दोष लगानेवालेको यही व्रत पादोन और पातकका दोष लगानेवालेको आधा और उपपातकको दोष लगानेवालेको चौथाई करना। क्योंकि मनुके इस वचनमें (अ० ११ श्लो० १२६) उपपातकरूप क्षत्रियके वधमें महापातकका चौथाई प्रायश्चित्त देखते हैं कि ब्रह्महत्याका चौथाई भाग कहाहै। इसी प्रकार प्रकीर्णका दोष लगानेवालेको भी उपपातकसे न्यूनप्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। क्योंकि शक्ति और पापको देखकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करै यह स्मृति है और जो शंखलिखितने गुरु प्रायश्चित्त कहाहै वह अभ्यासके न्यून अधिककी अपेक्षासे समझना कि नास्तिक, कृतघ्न कपटसे व्यवहारी

१ ब्राह्मणमनृतेनाभिशस्य पतनीयेनोपपातकेन वा मासमब्भक्षः शुद्धवतीरावर्त्तयेदश्वमेधावभृथं वा गच्छेत्।

१ प्रतिलोमापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणो दमः। वर्णानामानुलोम्येन तस्मादर्धार्धहानितः॥

२ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः।

३ शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।

४ नास्तिकः कृतघ्नः कूटव्यवहारी ब्राह्मणवृत्तिघ्नो मिथ्याभिशंसी चेत्येते पञ्चवर्षाणि ब्राह्मणगृहेषु भैक्षं चरेयुः संवत्सरं धौतभैक्षमश्नीयुः षण्मासान्वा न अनुगच्छेयुः।

ब्राह्मणकी जीविकाका नाशक मिथ्या दोष लगानेवाला ये छः वर्षतक ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षाटन करैं और वर्षदिन तक धोई हुई भिक्षाका भोजन करैं वा छः मासतक गौओंका अनुगमन करैं ॥

भावार्थ-जो किसी अन्यको महापाप और उपपापका झूठा दोष लगावै वह जितेन्द्रिय होकर मासभर जलका भक्षण और जप करै ॥ २८५ ॥

अभिशस्तोमृषाकृच्छ्रं चरेदाग्नेयमेववा ।
निर्वपेत्तुपुरोडाशंवायव्यंपशुमेववा ॥२८६॥

पद-अभिशस्तः १ मृषाऽ-कृच्छ्रम् २ चरेत् क्रि-आग्नेयम् १ एवऽ-वाऽ-निर्वपेत् क्रि-तुऽ-पुरोडाशम् २ वायव्यम् २ पशुम् २ एवऽ-वाऽ-॥

योजना-मृषा अभिशस्तः कृच्छ्रं चरेत् वा आग्नेयं वायव्यं पुरोडाशं वा पशुम् एव निर्वपेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जिसको मिथ्या दोष लगाया है वह प्राजापत्य कृच्छ्र करे अथवा अग्नि है देवता जिसका ऐसे वा वायु है देवता जिसका ऐसे पुरोडाशसे अथवा वायु है देवता जिसका ऐसे पशुसे यज्ञ करै इन सब पक्षोंकी व्यवस्था शक्ति और संभवकी अपेक्षासे जाननी और जो वसिष्ठने मासभर जलका भक्षण यही प्रायश्चित अभिशस्तको समझना इस वचनसे कहा है वह उस अभिशस्तको है कि जिसने कुछ कालतक प्रायश्चित न कियाहो । क्योंकि वर्ष दिनके अभिशस्त दुष्टको दूना दंड होता है इस वचनसे अधिक दंड देखते हैं और जो पैठीनसीने कहा है कि जिसे झूठका दोष लगा हो वह पातकोंमें मासतक और महापातकोंमें दो मासतक कृच्छ्र करै, वह वसिष्ठके कहे विषयमेंही समझना और बौधायनने कहा है कि पातकका दोष लगावै तो कृच्छ्र करै और जिसे लगावै वह आधा कृच्छ्र करै, वह वचनभी उपपातकके विषयमें वा अशक्तके विषयमें समझना । इसी प्रकार अभिशस्तके विषयमें जो अन्यभी छोटे बडे प्रायश्चित्त हैं उनकी व्यवस्था काल और शक्तिकी अपेक्षासे जाननी । सोई मनुने कहीं है (अ० ११ श्लो० २७७) कि जो अपांक्त (पंक्तिमें भोजन करनेके अयोग्य) हैं उनका शोधन छठे कालमें भोजन वा मासभर संहिताका जप और शाकलशाखामें इस सूक्तसे कहे मासभर तक होम होते हैं और अभिशस्त आदि अपांक्तोंके मध्यमें पढे हैं । यद्यपि जिसे झूठा दोष लगाया होय उस अभिशस्तका कोई निषिद्धाचरण नहीं दीखता तथापि मिथ्याभिशाप (दोष) लगने रूप लिंगसे पूर्वजन्मके निषिद्ध आचरणका अनुमान होता है उसके लिये यह प्रायश्चित्तका अनुमान होता है, उसके लिये यह प्रायश्चित्त उस प्रकार जानना जैसे कृमि (कीट) से डसे मनुष्यको होता है इससे कुछ विरोध नहीं ॥

भावार्थ-जिसको मिथ्यादोष लगाया होय वह कृच्छ्र करै अथवा अग्नि और वायु है देवता जिसका एसे पुरोडाशसे वा वायु है देवता जिसका ऐसे पशुसे यज्ञ करै ॥ २८६ ॥

अनियुक्तोभ्रातृजायांगच्छंश्चान्द्रायणंचरेत् ।
त्रिरात्रांतेघृतंप्राश्यगत्वोदक्यांविशुद्ध्यति ॥

पद-अनियुक्तः १ भ्रातृजायाम् २ ग-

१ एतेनैवाभिशस्तो व्याख्यातः ।
२ संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
३ अनृतेनाभिशस्यमानः कृच्छ्रं चरेन्मासं पातकेषु महापातकेषु द्विमासम् ।

१ पातकाभिशंसिने कृच्छ्रस्तदर्धमभिशस्तस्य ।
२ षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा । होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम् ॥
३ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसीत्यादिकम् ।

च्छन् १ चांद्रायणम् २ चरेत् क्रि-त्रिरात्रांते ७ घृतम् २ प्राश्य-गत्वाऽ-उदक्याम् ७ विशुद्ध्यति क्रि- ॥

योजना-अनियुक्तः पुरुषः भ्रातृजायां गच्छन् सन् चांद्रायणं चरेत्, उदक्यां गत्वा त्रिरात्रांते घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य नियोगके विना जेठे वा कनिष्ठ भ्राताकी वधूके संग मैथुन करता है वह चांद्रायण करै। यहभी अज्ञानसे एकवार गमनके विषयमें जानना। और जो शंखका वचन है कि परिवित्ति और परिवेत्ता वर्ष दिन-तक ब्राह्मणोंके घरोंमें भिक्षा मांगें और जेठे वा छोटे भाईकी भार्यामें नियोगके विना गमन करनेवालाभी यही प्रायश्चित्त करै वह वचन जानकर गमनमें समझना। और जो उदक्या (रजस्वला) हुई अपनी भार्यामेंभी गमन करता है वह तीन रात्र उपवास करके और अन्तमें घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है। यह अज्ञानसे एक वार गमनके विषयमें है। उसमेंही गमनके अभ्यासमें रजस्वलाके गमनमें सात रात्र उपवास करै यह शातातपका कहा प्रायश्चित्त जानना। जानकर एकवार गमनमेंभी यही प्रायश्चित्त है। और जो बृहत्संवर्तने कहा है कि जो रजस्वला, गर्भिणी, पतित इनमें गमन करता है उसके पापकी शुद्धिके लिये अतिकृच्छ्रही शोधन है। वह वचनभी जानकर अभ्यासके विषयमें है और जो शंखने तीन वर्षका प्रायश्चित्त कहा है कि शूद्रहत्या और रजस्वलाके गमनमें ब्रह्महत्याका पाद प्रायश्चित्त होता है। वहभी जानकर निरंतर अभ्यासके विषयमें समझना। और रजस्वलाको रजस्वला आदिके स्पर्शमें अन्यस्मृतिमें कहा प्रायश्चित्त जानना। सोई बृहद्वसिष्ठने कहा है कि एक है भर्ता जिनका ऐसी सवर्णा रजस्वला जानकर वा अज्ञानसे परस्पर स्पर्श करलें तो शीघ्रही स्नानसे शुद्ध होती हैं और असपत्नी सवर्णाओंके अज्ञानसे स्पर्शमें तो स्नानमात्र है। क्योंकि मार्कंडेयकी स्मृति है कि सवर्णा रजस्वलाको सवर्णा रजस्वला स्पर्श करले तो उसी दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है, इसमें संशय नहीं। जो कि कश्यपका यह वचन है कि यदि रजस्वला ब्राह्मणी रजस्वलाही ब्राह्मणीसे स्पर्श करले तो एक दिन निराहार रहकर पंचगव्य पीवे तब शुद्ध होती है। वह वचन काम (ज्ञान) से किये स्पर्शके विषयमें है। असवर्ण रजस्वलाके स्पर्शमें तो बृहद्वसिष्ठने विशेष दिखाया है कि रजस्वला ब्राह्मणी और शूद्रकी कन्या ये यदि परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी कृच्छ्रव्रतसे और शूद्रा दानसे शुद्ध होती है। यहां दानेन इस पदका यह अर्थ है कि पादकृच्छ्रका प्रतिनिधिरूप जो निष्क सुवर्णका चतुर्थांश (चौथा हिस्सा) उससे शुद्ध होती है। येभी उसी

---

१ परिवित्तिः परिवेत्ता च संवत्सरं ब्राह्मणगृहेषु भैक्ष्यं चरेयातां ज्येष्ठभार्यामनियुक्तो गच्छंस्तदेव कनिष्ठभार्यां च ।

२ रजस्वलागमने सप्तरात्रम् ।

३ रजस्वलां तु यो गच्छेद्गर्भिणीं पतितां तथा । तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विशोधनम् ।

४ पादस्तु शूद्रहत्यायामुदक्यागमने तथा ।

---

१ स्पृष्टे रजस्वलेऽन्योन्यं सवर्णे स्वेकभर्तृके । कामादकामतो वापि सद्यः स्नानेन शुद्ध्यतः ॥

२ उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत्स्यादुदक्यया । तस्मिन्नेवाहनि स्नात्वा शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥

३ रजस्वला तु संस्पृष्टा ब्राह्मण्या ब्राह्मणी यदि । एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

४ स्पृष्टा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजापि च । कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥

स्मृतिके वचन हैं कि ब्राह्मणी और शूद्रा ये परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी पादहीन (तीन हिस्से) कृच्छ्रव्रतको करै और शूद्रा एकपाद कृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होती है। तिसी प्रकार रजस्वला ब्राह्मणी और क्षत्रिया ये परस्पर स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी आधे कृच्छ्र और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्रसे शुद्ध होती है। और रजस्वला क्षत्रिया और शूद्रकी कन्या परस्पर स्पर्श करैं तो क्षत्रिया तीन उपवास और शूद्रकी कन्या अहोरात्रके व्रतसे शुद्ध होती है। और क्षत्रिय और वैश्यकी कन्या यदि परस्पर स्पर्श करलें तो क्षत्रिया तीन रात्रका उपवास और वैश्यकी कन्या दो दिनका उपवास करै तो शुद्ध होती है। और रजस्वला वैश्यकी कन्या और शूद्रा ये यदि परस्पर स्पर्श करैं तो वैश्या तीन रात्र और शूद्रा दो दिनमें शुद्ध होती है। इस प्रकार इच्छासे स्पर्श करनेमें वर्णोंकी सनातनी (सदैव) शुद्धि समझनी। और जो अकामसे स्पर्श किया हो उसमें तो बृहद्विष्णुने स्नान मात्रही कहा है कि यदि रजस्वलाको हीनवर्णकी रजस्वला स्पर्श करले तो शुद्ध होनेतक भोजन न करै और सवर्णा वा अधिक वर्णाका स्पर्श करके स्नान करनेसे सद्यः (शीघ्र) शुद्धि होती है। चाण्डाल आदिके स्पर्शमें तो बृहद्वसिष्ठने विशेष दिखाया है कि पतित अंत्यज श्वपाक ये रजस्वलाका स्पर्श करलें तो उन रजोधर्मके दिनोंको बितायकर प्रायश्चित्त करे। पहिले दिनके स्पर्शमें त्रिरात्र, दूसरे दिनके स्पर्शमें दोदिन, और तीसरे दिनके स्पर्शमें अहोरात्र, और उससे परे नक्त व्रतको करै और उच्छिष्ट शूद्रा और श्वान रजस्वलाका स्पर्श करले तो दो दिन उपवास करै। और यहां उन दिनोंका बिताना अनाशक (भोजनका त्याग) व्रतसे समझना। यहभी जानकर स्पर्शके विषयमें है अज्ञानसे स्पर्शमें तो यह बौधायनका कहा जानना कि रजस्वलाका स्पर्श चांडाल, अंत्यज, कुत्ता, काक करलें तो इतने निराहार रहै जबतक रजोधर्मकी शुद्धि हो। और जो उसनेही कहा है कि ग्रामके मुरगे सूकर कुत्ता रजस्वलाका स्पर्श करलें तो चन्द्रमाके दर्शनतक स्नान करके बैठी रहै। वह वचन अशक्तके विषयमें है। और जब भोजन करती हुईको कुत्ता आदिका स्पर्श होजाय तो अन्यस्मृतिमें विशेष कहा है कि यदि भोजन करती हुई रजस्वला कुत्ता अंत्यज आदिका स्पर्श करले तो गोमूत्र और जौका भोजन करके छः रात्रमें शुद्ध

---

१ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजापि च। पादहीनं चरेत्पूर्वा पादकृच्छ्रं तथोत्तरा ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा। कृच्छ्राद्धांच्छुद्ध्यते पूर्वा तूत्तरा च तदर्धतः ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं क्षत्रिया शूद्रजापि च। उपवासैस्त्रिभिः पूर्वा त्वहोरात्रेण चोत्तरा ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं क्षत्रिया वैश्यजापि च। त्रिरात्राच्छुध्यते पूर्वा त्वहोरात्रेण चोत्तरा ॥ स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं वैश्या शूद्री तथैव च। त्रिरात्राच्छुद्ध्यते पूर्वा तूत्तरा च दिनद्वयात् ॥ वर्णानां कामतः स्पर्शे शुद्धिरेषा पुरातनी ॥

२ रजस्वला हीनवर्णां रजस्वला स्पृष्ट्वा न तावदश्नीयाद्यावन्न शुद्धा स्यात् सवर्णामधिकवर्णां वा स्पृष्ट्वा सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति।

१ पतितांत्यश्वपाकेन संस्पृष्टा चेद्रजस्वला। तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ प्रथमेह्नि त्रिरात्रं स्याद्द्वितीये द्व्यहमेव तु। अहोरात्रं तृतीये तु परतो नक्तमाचरेत् ॥ शूद्रयोच्छिष्टया स्पृष्टा शुना चेद्द्व्यहमाचरेत्।

२ रजस्वला तु संस्पृष्टा चांडालांत्यश्ववायसैः। तावत्तिष्ठेन्निराहारा यावत्कालेन शुद्ध्यति ॥

३ रजस्वला तु संस्पृष्टा ग्रामकुक्कुटसूकरैः। श्वभिः स्नात्वा क्षिपेत्तावद्यावच्चंद्रस्य दर्शनम् ॥

४ रजस्वला तु भुंजाना श्वांत्यजादीन्स्पृशेद्यदि। गोमूत्रयावकाहारा षड्रात्रेण विशुध्यति ॥ अशक्तौ कांचनं दद्याद्विप्रेभ्यो वापि भोजनम् ॥

होती है और असमर्थ होय तो ब्राह्मणोंको सुवर्ण व भोजन दे, और जब दोनों उच्छिष्टोंका परस्पर स्पर्श होय तो अत्रिका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि उच्छिष्ट रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट रजस्वलाको स्पर्श करले तो पहिली कृच्छ्रसे शुद्ध होती है और दूसरी शूद्रा दान और उपवाससे शुद्धिको प्राप्त होती है। और जब उच्छिष्ट द्विजोंका स्पर्श रजस्वला करले तो मार्कंडेयका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि रजस्वला स्त्री उच्छिष्ट ब्राह्मणोंको किसी प्रकार छूले तो नाभिसे नीचेके स्पर्शमें अहोरात्र और ऊपरके स्पर्शमें तीन दिन निराहर रहकर व्यतीत करे। इस प्रकार अवकीर्णीके प्रसंगसे कोई २ उपपातकका प्रायश्चित्त भी कहकर अब प्रकरणके विषयमें कहते हैं। वहां अवकीर्णके पीछे-(सुतानां चैव विक्रयः) संतानका बेंचना यह कहा है। उसमें मनु और योगीश्वरके कहे त्रैमासिक आदिही प्रायश्चित्त ज्ञान, अज्ञान, शक्ति आदिकी अपेक्षासे पूर्वके समान व्यवस्थासे समझने और जो शंखका वचन है कि देवताका घर, प्रतिश्रय (आश्रय), उद्यान, आराम, सभा, प्रपा (प्याऊ), तलाव, पुण्य, पुल, पुत्र इनको बेंचकर तप्तकृच्छ्र करै और जो पराशरने कहा है कि कन्या और गौको बेंचकर सांतपन कृच्छ्र करै, वे दोनों भी वचन आपत्कालमें अज्ञानके विषयमें समझने और जानकर तो यह चतुर्विंशति मतमें कहा जानना कि नारीका विक्रय करके चांद्रायण करै और पुरुषको बेंचकर दूना व्रत बुद्धिमानोंने कहा है, और जो पैठीनसिने कहा है कि आराम (बाग), तलाव, उदपान (चौबच्चा), पुष्करिणी (तलैय्या), पुण्य, पुत्र इनके विक्रयमें त्रिकाल स्नान, भूमिपर शयन, चौथे काल भोजन करता हुआ वर्षदिनमें पवित्र होता है, वह वचन एक पुत्रके विषयमें समझना। उसके पीछे (धान्यकुप्यपशुस्तेयम्) अन्न धन पशु इनकी चोरी उपपातक कहा है उसके प्रायश्चित्त चोरीके प्रकरणमें विस्तारसे कह आये ॥

भावार्थ-नियोगके विना भ्राताकी पत्नीमें जो गमन करै वह चांद्रायण करै, और रजस्वलामें गमन करके त्रिरात्र उपवासके अनंतर केवल घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है ॥ २८७ ॥ २८८ ॥

त्रीन्कृच्छ्रानाचरेद्व्रात्ययाजकोऽभिचरन्नपि।
वेदप्लावी यवाश्यब्दं त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥

पद-त्रीन् २ कृच्छ्रान् २ आचरेत् क्रि-व्रात्ययाजकः १ अभिचरन् १ अपिऽ-वेदप्लावी १ यवाशी १ अब्दम् २ त्यक्त्वाऽ-चऽ-शरणागतम् २ ॥

योजना-व्रात्ययाजकः अभिचरन् अपि द्विजः त्रीन् कृच्छ्रान् आचरेत् वेदप्लावी च पुनः शरणागतं त्यक्त्वा अब्दं यवाशी भवेत् ॥

तात्पर्यार्थ-अब अयाज्योंके याजनका प्रायश्चित्त कहते हैं। जो मनुष्य सावित्री (गायत्री) से पतितोंको यज्ञ कराता है वह प्राजापत्य आदि

---

१ उच्छिष्टोच्छिष्टया स्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला। कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानैरुपोषिता ॥

२ द्विजान्कथंचिदुच्छिष्टान् रजस्या यदि संस्पृशेत्। अधोच्छिष्टे त्वहोरात्रमूर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत् ॥

३ देवगृहप्रतिश्रयोद्यानारामसभाप्रपातडागपुण्यसेतुसुतविक्रयं कृत्वा तप्तकृच्छ्रं चरेत्।

४ विक्रीय कन्यकां गां च कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्।

१ नारीणां विक्रयं कृत्वा चरेच्चांद्रायणव्रतम्। द्विगुणं पुरुषस्यैव व्रतमाहुर्मनीषिणः।

२ आरामतडागोदपानपुष्करिणीसुकृतसुतविक्रये त्रिषवणस्नाय्यधःशायी, चतुर्थकालाहारः संवत्सरेण पूतो भवति।

तीन कृच्छ्रोंको करै और उन गुरु लघुभूत तीन कृच्छ्रोंकी कल्पना निमित्त (पाप) के गुरुलघुभावसे करनी, तैसेही अभिचार (शत्रुका मारण) करता हुआभी यही प्रायश्चित्त करै। यहभी अग्नि लगानेवाले आदि आततायीसे भिन्नमें समझना क्योंकि छओंमें अभिचार करता हुआ पतित नहीं होता यह वसिष्ठकी स्मृति है। अपिशब्द हीनके याजक और अंत्येष्टिके याजकोंके परिग्रहके लिये है। इसीसे मनु (अ० ११ श्लो०१९७) ने कहा है कि व्रात्योंका याजन और अन्योंका अंत्यकर्म और अभिचार अहीन इनको करके तीन कृच्छ्रोंसे दोषको करता है, और अन्योंका अंत्यकर्म यह अत्यंत अभ्यासके विषयमें वा शूद्रके अंत्यकर्ममें समझना, क्योंकि प्रायश्चित्त गुरु है। अहीन दोरात्रसे बारह रात्रपर्यंत दिनोंके यज्ञको कहते हैं। जो शातातपने कहा है कि जिनको सावित्रीका उपदेश नहीं हुआ उनको यज्ञोपवीत न दे न पढावै जो यज्ञोपवीत दे वा पढावै वा यज्ञ करावै वह उद्दालकव्रत करै, वह जानकर करनेमें हैं। उद्दालक व्रत पहिले दिखाय आये। ये तीनों कृच्छ्र साधारण उपपातकोंका जो प्रायश्चित्त उसका अपवाद है, इससे उपपातकोंका साधारण प्रायश्चित्त शूद्र आदि जो अयाज्य उनके यज्ञ करानेमें समझनों, उसमेंभी जानकर त्रैमासिक और अज्ञानसे योगीश्वरके कहे मास व्रत समझने, और जो शूद्रयाजकादिकोंको बढकर प्रचेताने कहा है कि पंचाग्नि तपना, वर्षामें खडा रहना, जलमें सोना इनको ग्रीष्म, वर्षा, हेमंत ऋतुमें क्रमसे करैं, और मासभर गोमूत्र जौको भोजन करै, वह जानकर अभ्यासके विषयमें है। और जो यमने कहा है कि जो ब्राह्मण शूद्रका पुरोहित होता है, अर्थात् स्नेह वा धनके लोभसे शूद्रको यज्ञ कराता है उसकी कृच्छ्रसे शुद्धि होती है, वहभी अशक्तके विषयमें है, और जो पैठीनसिने कहा है कि शूद्रका याजक सब द्रव्यके त्यागनेसे और दश सहस्र १०००० प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है, वह भी अज्ञानसे अभ्यासके विषयमें है। जो गौतमने कहाहै कि निषिद्ध (पतित आदि) को यज्ञ कराने और पढानेरूप मंत्र प्रयोग आदिका बहुत दिनतक अभ्यास करें तो सहस्र वाक् (सरस्वती) की स्तुति करै। यह प्राकृत ब्रह्मचर्यका उपदेश भी जानकर अभ्यासके विषयमें है, जो अपने वेदका विप्लव करै, अर्थात् पर्वमें चाण्डालको सुनाकर और अनध्यायोंमें जो पढे उसको और जो शिष्य बडाईके लिये पढे और उसको गुरु, तुम क्या पढता है तुझने नाश किया ऐसे पर्यनुयोग देदे उसको विप्लव कहते हैं, और जो रक्षा करनेमें समर्थ भी चौरसे भिन्न शरणागतकी उपेक्षा करै वह भी वर्ष दिनतक जौ ओदनको भोजन करके शुद्ध होता है, इसीसे

१ षट्स्वभिचरन्न पतति ।

२ व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामंत्यकर्म च । अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥

३ पतितसावित्रीकान्नोपनयेत्, नाध्यापयेत् । य एतानुपनयेदध्यापयेद्वा स उद्दालकव्रतं चरेत् ।

१ एते पंचतपोऽभ्रावकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुः क्रमेण ग्रीष्मवर्षाहेमन्तेषु मासं गोमूत्रयावकमश्नीयुः ।

२ पुरोधाः शूद्रवर्णस्य ब्राह्मणो यः प्रवर्तते स्नेहादर्थप्रसंगाद्वा तस्य कृच्छ्रो विशोधनम् ॥

३ शूद्रयाजकः सर्वद्रव्यपरित्यागात्पूतो भवति प्राणायामसहस्रेषु दशकृत्वोऽभ्यस्तेषु ।

४ निषिद्धमंत्रप्रयोगे सहस्रवागुपतिष्ठेत् ।

अन्यस्मृतिमें कहा है कि जिनको अनुयोग दिया हो वे मनुने पतित कहे हैं, और जो वसिष्ठने कहा है कि पतित चांडाल शव इनको वेद सुनाकर त्रिरात्र मौन रहैं, भोजन न करैं, सहस्रबार गायत्रीका अभ्यास करके पवित्र होते हैं यह शास्त्रसे जानते हैं, यही प्रायश्चित्त निंदितोंके अध्यापक और याजकोंका है और दक्षिणाके त्यागसेभी पवित्र होते हैं, यहभी अज्ञानसे करनेमें समझना और जो षट्त्रिंशतके मतमें कहा है कि चाण्डालके कर्णके समीप श्रुति वा स्मृतिको पढै तो एक रात्र भोजन करै, वहभी अज्ञानके विषयमें है और जब सर्प आदि गुरु और शिष्यके बीचमें निकल जांय वहां फिर न पढै और उसका प्रायश्चित्त यमने कहा है कि सर्प, नकुल, अजा, मार्जार, ऊंट, मेंडक, पुरुष, भेड, कुत्ता, अश्व, खर इनके मध्यमें गमनका शीघ्र यह प्रायश्चित्त सुनो। तीन दिन तक उपवास अभिषेक करै अथवा जानु टेक टेक दूसरे ग्राममें चलाजाय और पिता माता पुत्र इनका त्याग, तडाग आराम इनका विक्रय इनमें मनु और योगीश्वरके कहे जो उपपातकोंके साधारण प्रायश्चित्त हैं, वेही पूर्वके समान जाति शक्ति गुण आदिकी अपेक्षासे समझने। उनमें माता पिताके त्यागी इस वचनसे अपांक्तों (पंक्तिबाह्य) में पढेहैं कि विनाकारण माता पिता गुरु इनके त्यागी अपांक्त होते हैं उसका भी प्रायश्चित्त उसको होताहै, सोई मनु (अ० ११ श्लो० २००) ने कहाहै कि छठे काल भोजन, मासभर संहिताका जप और शाकल मंत्रोंसे होम, यह अपांक्तोंका शोधन है, और वे अपांक्त श्राद्धकाण्डमें स्तेन, पतित, क्लीब इत्यादि वचनसे दिखाये हैं, तडाग, आराम इनके विक्रयमें कितनेक विशेष प्रायश्चित्त उनके विषय सुतविक्रयके प्रायश्चित्तके समयमें कह आये, उसके आगे कन्याका दूषण कहा है, उसमें त्रैमासिक, द्वैमासिक, चांद्रायण आदि सब वर्णोंको सवर्णा कन्याके विषयमें समझने, और अनुलोमोंमें तो दूधका भक्षण वा प्राजापत्य समझना, क्योंकि सकाम अनुलोम कन्याओंमें दोष नहीं अन्यथा दण्ड है इस वचनसे अल्प दण्ड दिखा आये हैं और जो शंखने कहा है कि कन्याका दोषी, सोमका विक्रयी, अभक्षण कृच्छ्र करैं और जो हारीतका वचन है कि कन्यादूषक, सोमका विक्रयी, वृषलीपति, बालक दारा इनका त्यागी, सुरा और

१ दत्तानुयोगानध्येतुः पतितान्मनुरब्रवीत्।

२ पतितचांडालशवश्रावणे त्रिरात्रं वाग्यता अनश्नन्त आसीरन् सहस्रपरमं वा तदभ्यस्यंतः पूता भवंति इति विज्ञायते।

३ चाण्डालश्रोत्रावकाशे श्रुतिस्मृतिपाठे एकरात्रमभोजनम्।

४ सर्पस्य नकुलस्याथ अजमार्जारयोस्तथा। मूषकस्य तयोष्ट्रस्य मण्डूकस्य च योषितः॥ पुरुषस्यैडकस्यापि शुनोऽश्वस्य खरस्य च। अंतरा गमने सद्यः प्रायश्चित्तमिदं शृणु॥ त्रिरात्रमुपवासश्च त्रिरह्नश्चाभिषेचनम्। ग्रामांतरं वा गंतव्यं जानुभ्यां नात्र संशयः॥

१ अकारणे परित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा।

२ षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा। होमाश्च शाकला नित्यमपांक्तानां विशोधनम्॥

३ ये स्तेनपतितक्लीबाः।

४ सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः।

५ कन्यादोषी सोमविक्रयी च कृच्छ्रमभक्षं चरेयाताम्।

६ कन्यादूषी सोमविक्रयी वृषलीपतिः कौमारदारत्यागी सुरामद्यपः शूद्रयाजको गुरोः प्रतिहन्ता नास्तिको नास्तिकवृत्तिः कृतघ्नः कूटव्यवहारी मित्रध्रुक् शरणागतघाती प्रतिरूपकवृत्तिरित्येते पंच तपोऽवकाशजलशयनान्यनुतिष्ठेयुर्ग्रीष्मवर्षाहेमंतेषु मासं गोमूत्रयावकमश्नीयुः।

मद्यका पीनेवाला, शूद्रयाजक, गुरुका प्रतिहंता, नास्तिक, नास्तिकवृत्ति, कृतघ्न, कपटव्यवहारी, मित्रका द्रोही, शरणागतका घाती, प्रतिरूपक वृत्ति (विरूपिया) ये सब पंचाग्नि ताप, वर्षामें स्थिति, जलशयन इनको ग्रीष्म, वर्षा, हेमंतोंमें करैं और मास भर गोमूत्र और जौका भक्षण करैं ये पूर्वोक्त दोनोंभी वचन क्षत्रिय और वैश्यको प्रतिलोम वर्णकी कन्याके दूषणमें समझने और शूद्रका तो वध ही है। क्योंकि इस वचनसे वधकोही देखते हैं कि कन्याके दूषणमें करका छेदन, और उत्तम वर्णकी कन्याके दूषणमें शूद्रका वध करै, परिविंदकको यज्ञ कराना और कन्या देना, कुटिलता, और शिष्टोंने जिसका निषेध कियाहो उसका लोप, अपने लिये पाकक्रियाका प्रारंभ, मद्यपकी स्त्रीका सेवन इन सबमें पूर्वके समान धारण उपपातकका प्रायश्चित्त समझना। और पहिले दोनोंमें तो विशेष प्रायश्चित्त परिवेदन और अयाज्ययाजनके प्रायश्चित्त कथनके प्रस्तावमें दिखाय आये, उसके आगे स्वाध्यायका त्याग कहा है, उसमें व्यसनासक्त होकर त्यागनेंमें तो " अधीतस्य च नाशनम् " अधीतका नाश इस वचनसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त कह आये। यदि शास्त्रश्रवण आदिमें व्याकुल होकर स्वाध्यायको त्यागै तो त्रैमासिक आदि उपपातकके प्रायश्चित्त जाति और शक्तिकी अपेक्षासे समझने। और जो वसिष्ठने[2] कहा है कि वेदका त्यागी द्वादश रात्र कृच्छ्र करके फिर आचार्यसे वेदको पढै वह अत्यंत आपत्तिके विषयमें समझना। अग्निके त्यागमें तो उसनेही विशेष दिखाया है कि जो अग्नियोंको त्याग देवै वह द्वादशरात्र कृच्छ्र करके फिर अग्न्याधान करै। यहां द्वादश रात्रका ग्रहण त्यागके समयकी अपेक्षासे प्राजापत्य आदि गुरु लघु कृच्छ्रोंकी प्राप्तिके लिये है, उनमें दो मासके त्यागमें प्राजापत्य, चार मासके त्यागमें अतिकृच्छ्र, और छः मासके त्यागमें पराक करैं और छः मासके अनंतर योगीश्वरके कहे उपपातकके सामान्य प्रायश्चित्त काल आदिकी अपेक्षासे समझने। वर्ष दिनके पीछे तो मनुका कहा त्रैमासिक और द्वैमासिक समझना, येभी नास्तिकतासे त्यागमें समझना, सोई व्याघ्रने कहा है कि जो द्विज नास्तिकतासे अग्निको त्यागे वह द्विज प्राजापत्य करै और जब प्रमादसे त्यागे तब भारद्वाज गृह्यमें विशेष कहा है कि तीन रात्रके त्यागमें सौ १०० प्राणायाम बीस २० रात्रतक उपवास, उससे आगे साठ रात्रतक तीनरात्र उपवास, उससे आगे वर्ष दिन तकके त्यागमें प्राजापत्य करै, उससे आगे अधिक कालके त्यागमें दोषभी अधिक होता है। यदि आलस्य आदिसे त्यागे तो उसनेही विशेष कहा है कि बारह दिनके त्यागमें तीन दिन उपवास, मासके त्यागमें बारह दिन उपवास और वर्ष दिनके त्यागमें मासभर उपवास वा दूधका भक्षण करै, सं-

---

१ दूषणे तु करच्छेद उत्तमायां वधस्तथा।

२ ब्रह्मोज्झः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपयुंजीत वेदमाचार्यात्।

१ योऽग्नीनपविध्येत्स कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनराधेयं कारयेत।

२ योऽग्निं त्यजति नास्तिक्यात्प्राजापत्यं चरेद्द्विजः।

३ प्राणायामशतमात्रिरात्रादुपवासः स्यादाविंशतिरात्रात् अत ऊर्ध्वमाषष्टिरात्रात् तिस्रो रात्रीरुपवसेदत ऊर्ध्वमासंवत्सरात् प्राजापत्यं चरेत्, अतऊर्ध्वं कालबहुत्वे दोषगुरुत्वम्।

४ द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासो मासातिक्रमे द्वादशाहमुपवासः संवत्सरातिक्रमे मासोपवासः पयोभक्षणं च।

वत्सरके आगे तो वृद्ध हारीतने विशेष कहा है कि संवत्सर तक अग्निहोत्रके त्यागमें चांद्रायण करके फिर आधान करै, दो वर्षके त्यागमें चांद्रायण और सोमायन करै, तीन वर्षके त्यागमें संवत्सरका कृच्छ्र करके फिर आधान करै। सोमायनको कृच्छ्रकाण्डमें कहेंगे। शंखनेभी विशेष कहा है कि अग्निका त्यागी संवत्सरका प्राजापत्य और गोदान करै। सुत और बंधुके जानकर त्यागमें त्रैमासिक गोवधका व्रत करै। अज्ञानसे त्यागमें तो योगीश्वरके कहे चारों व्रत शक्ति आदिकी अपेक्षासे समझने। वृक्षके छेदनका प्रायश्चित्त पहिले कह आये और स्त्री और प्राणियोंका वध और वशीकरण आदिसे जीवन, तिल और ईखके यंत्र (कोलू) का प्रवर्त्तन, इनमेंभी वेही प्रायश्चित्त तिसी प्रकार समझने। और द्यूत, मृगया आदि व्यसनोंमेंभी वेही प्रायश्चित्त तिसी प्रकार समझने। और जो बौधायनने कहा है कि अब अशुद्ध करनेवाले कर्म कहते हैं। द्यूत, अभिचार, अनाहिताग्निकी उंछवृत्ति, समावृत्त (गृहस्थी) का भिक्षाटन और उसकाही गुरुकुलमें वास, चार माससे अधिक उसको पढाना, और नक्षत्रका सूचन ये कर्म अशुचि करनेवाले हैं, इनमें क्रमसे बारह मास, छः मास, बारह दिन, बारह दिन, छः दिन, बारह दिन, तीन दिन, तीन दिन, एक दिनका व्रत करै इस वचनसे द्यूतमें वार्षिक व्रत कहा है वह अभ्यासके विषयमें समझना और जो प्रचेतोंने कहा है कि मिथ्यावादी, तस्कर, राजाका भृत्य, वृक्षोंके लगानेसे जो जीवै, विष और अग्निका दाता, अश्व, रथ और हाथी इनपर चढकर जो जीवै और रंगोपजीवी, श्वागणिक (जो बहुतसे कुत्ते रक्खे), शूद्रका उपाध्याय, वृषलीका पति, भाण्डिक अर्थात् बंदीजनोंसे भिन्न राजाओंको तूरी आदिकोंके शब्दोंसे जो जगावै, नक्षत्रोपजीवी अर्थात् पत्रेमें नक्षत्र बताकर जो जीवे, कुत्तोंसे जो जीवे, अथवा श्ववृत्ति (सेवक), ब्रह्मजीवी मूल्य लेकर ब्राह्मणका सेवक, चिकित्सक (वैद्य), देवलक (मूल्यसे देवताका पूजारी), पुरोहित, कितव (कपटी), मदिरा पीनेवाला, कूट (छल) का कर्ता, अपत्य (सन्तान) का विक्रयी, मनुष्य और पशुओंका विक्रेता इन पातकियोंका उद्धार इकट्ठा होकर न्यायसे वा ब्राह्मणोंकी व्यवस्थासे करै, सब द्रव्यके त्यागसे चौथे काल भोजन करते हुए वर्ष दिनतक त्रिकाल स्नान करै, उसके पीछे देवता पितरोंका तर्पण और गौओंको आह्निक (भोजन व घास) दें, इस प्रकार व्यवहार करनेको योग्य हैं, वहभी बौधायनके वचनका जो विषय है उसमेंही है,

---

१ संवत्सरोत्सन्नेऽग्निहोत्रे चांद्रायणं कृत्वा पुनरादध्यात् द्विवर्षोत्सन्ने चांद्रायणं सोमायनं च कुर्यात् त्रिवर्षोत्सन्ने संवत्सरं कृच्छ्रमभ्यस्य पुनरादध्यात्।

२ अग्न्युत्सादी संवत्सरं, प्राजापत्यं चरेद्गां च दद्यात्।

३ अथाशुचिकारीणि द्यूतमभिचारोऽनाहिताग्नेरुञ्छवृत्तिः समावृत्तस्य भैक्षचर्या तस्य च गुरुकुले वास ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो यश्च तमध्यापयति नक्षत्रनिर्देशनं चेति द्वादश मासान्द्वादशार्धमासान्द्वादशाहान्द्वादशषडाहान्द्वादशत्र्यहांश्च त्र्यहमेकाहमित्यशुचिनिर्देशः।

१ अनृतवाक् तस्करो राजभृत्यो वृक्षारोपकवृत्तिः गरदोऽग्निदोऽश्वरथगजारोहणवृत्ती रंगोपजीवीश्वागणिकः शूद्रोपाध्यायो वृषलीपतिर्भांडिको नक्षत्रोपजीवी श्ववृत्तिः ब्रह्मजीवी चिकित्सको देवलकः पुरोहितः कितवो मद्यपः कूटकारकोऽपत्यविक्रयी मनुष्यपशुविक्रेता चेति तानुद्धरेत्समेत्य न्यायतो ब्राह्मणव्यवस्थया सर्वद्रव्यत्यागे चतुर्थकालाहाराः संवत्सरं त्रिषवणमुपस्पृशेयुस्तस्यान्ते देवपितृतर्पणं गवाह्निकं चेत्येते व्यवहार्याः।

मनुके कहे मासभर छठे कालमें भोजन आदि अपांक्तेयों (पंक्तिसे बाह्य) के प्रायश्चित्त जाति आदिकी अपेक्षासे समझने। क्योंकि मनुके कहे अपांक्तेयोंके मध्यमेंभी कितव आदि पढे हैं। आत्म (अपना) विक्रय और शूद्रकी सेवामें पूर्वके समानही सामान्य प्रायश्चित्त समझने, और जो बौधायनने कहा है कि समुद्रका गमन, ब्राह्मणके न्यास (धरोहर) का हरना, संपूर्ण अपण्यों (बेचनेके अयोग्य) का व्यवहार, भूमिके निमित्त अनृत (झूठ) बोलना, शूद्रकी सेवा और जो शूद्रामें पैदा हो उसकी सन्तान, और उनका निर्देश (आज्ञा करना) इनके कर्ता सब चौथे काल प्रमित भोजन और जलोंसे आचमन करैं, त्रिकाल स्नान और स्थान आसनसे विहार इस प्रकार करते हुए तीन वर्षसे उस पापको नष्ट करते हैं, वह वचन बहुत कालकी सेवाके विषयमें समझना। हीन जातिके संग मित्रतामें तो उपपातकोंके सामान्य प्रायश्चित्तही समझने। और जो प्रचेतोंने कहा है कि मित्रके भेदको करके अहोरात्र भोजनको न करके होम करै और दूध पीवे वह उत्तमकी मित्रताके भेदमें समझना। हीनयोनिकी सेवामेंभी उपपातकके जो सामान्य प्रायश्चित्त वेही समझने और जो शातातपने कहा कि ब्राह्मण पहिले क्षत्रियकी कन्याको विवाहै तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करै अर्थात् कृच्छ्रके अनंतर सवर्णाको विवाहै और अनंतर उस क्षत्रियाकोभी विवाह ले, वैश्याको पहिले विवाहै तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करै, शूद्राको पहिले विवाहै तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र करै। और क्षत्रिय वैश्याकोही पहिले विवाहै तो द्वादश रात्र कृच्छ्र करके निवेश करै और उस वैश्याकोही पुनः विवाहले और शूद्राको पहिले विवाहै तो अतिकृच्छ्र करै और वैश्य शूद्राको पहिले विवाहै तो बारह दिनका अतिकृच्छ्र करके उस शूद्राको पुनः विवाहले। यहां यह अर्थ है कि निवेश करै और उसको विवाहले यह कहनेसे कृच्छ्र करनेके अनंतर सवर्णा कन्याके विवाह करनेके अनंतर उस क्षत्रिया आदिकी कन्याकोभी विवाहले यहभी अज्ञानके विषयमें है, और जानकर तो उपपातक सामान्यका प्रायश्चित्त हैही, यह जानना, साधारण स्त्रीकी सेवामें हीन योनिका सेवन (भोग) कहा है, उसमेंभी पशु वेश्याके गमनमें प्राजापत्य कहा है। यह संवर्तका कहा प्रायश्चित्त अज्ञानसे करनेमें समझना, जानकर करनेमें तो यमका कहा जानना कि वेश्यागमनसे पैदा हुए पापको द्विजाति सातरात्र तक एक २ वार तपाये कुशाओंके जलको पीकर नष्ट करते हैं, और उपपातक सामान्योंके जो प्रायश्चित्त हैं वे ज्ञानसे अज्ञानसे और अभ्यासकी अपेक्षासे समझने। उसमें जानकर अभ्यासमें निमित्त २ के प्रति नैमित्तिककी आवृत्ति होती है इस न्यायसे निमित्त २ के प्रति नै-

१ समुद्रयानं ब्राह्मणस्य न्यासापहरणं सर्वापण्यैर्व्यवहरणं भूम्यनृतम् शूद्रसेवा यश्च शूद्रायामभिजायते तदपत्यं च भवति तेषां तु निर्देशश्चतुर्थकालं मितभोजिनः स्युरपोभ्युपेयुः सवनानुकल्पं स्थानासनाभ्यां विहरंतस्त्रिभिर्वर्षैस्तदपघ्नंति पापम्।

२ मित्रभेदकरणादहोरात्रमनश्नन् हुत्वा पयः पिबेत्।

३ ब्राह्मणो राजकन्यापूर्वी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तां तु चोपयच्छेत, वैश्यापूर्वी कृच्छ्रातिकृच्छ्रं, शूद्रापूर्वी तु कृच्छ्रातिकृच्छ्रं, राजन्यश्चेद्वैश्यापूर्वी कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निविशेत्तां चोपयच्छेत् शूद्रापूर्वी त्वतिकृच्छ्रं, वैश्यश्चेच्छूद्रापूर्वी त्वतिकृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा तां चोपयच्छेत्।

१ पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते।

२ वेश्यागमनजं पापं व्यपोहंति द्विजातयः। पीत्वा सकृत्सकृत्तप्तं सप्तरात्रं कुशोदकम्॥

३ प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्तते।

मित्तिककी आवृत्ति पाई, परन्तु लौगाक्षिने विशेष कहा है कि माससे पूर्व २ के अभ्यासमें दिनोंको दुगुने आदि करके वृद्धि होती है। फिर वर्षदिनतक अभ्यासमें मासगुनी, फिर जबतक पाप करै वर्षगुनी वृद्धि होती है। यह भी जानकर विषयमें है। अज्ञानसे करनेमें तो चतुर्विंशतिके मतमें विशेष कहा है कि एकवार करनेमें जो पाप है वह तीन दिनमें तिगुना, मासभरमें पंचगुना, छः मासमें दशगुना, वर्षदिनमें पन्द्रहगुना, तीन वर्षमें बीसगुना होता है। उसके आगे भी शातातपके वचनानुसार इसी प्रकार कल्पना करनी। और जो यह वचन प्रति निमित्त आवृत्तिका विधायक है कि पहिली आवृत्तिसे दूसरीमें दुगुना करै, वह महापातकके विषयमें है, यह पहिले कह आये। और जो यमने साधारणी (वेश्या) गमनके अधिकारमें गुरुतल्पव्रतका अतिदेश किया है कि कोई गुरुतल्प व्रतको और कोई चांद्रायणको, कोई गोहत्याके व्रतको और कोई अवकीर्णीके व्रतको कहते हैं। यह वचन जन्मसे लेकर प्रतिज्ञासे निरन्तर अभ्यासके विषयमें है। उसके आगे तैसेही आश्रमके विना वसना (रहना) कहा है। उसमें हारीतने विशेष कहा है कि वर्ष दिनतक अनाश्रमी अर्थात् जो गृहस्थ आदि किसी आश्रममें न हो वह प्राजापत्य कृच्छ्र करके आश्रममें आवे। दूसरे वर्षमें अतिकृच्छ्र, तीसरे वर्षमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र करै, उसके आगे चांद्रायण करना कहा है। यह भी असंभवके विषयमें है। संभवमें तो सामान्यसे उपपातकोंके प्रायश्चित्त ज्ञान और अज्ञानकी व्यवस्थासे समझने। परपाकमें रुचि, निषिद्ध शास्त्रको पढना, आकर (खजाना) का अधिकार, भार्याका विक्रय इनमें मनु और योगीश्वरके कहे उपपातक सामान्यके प्रायश्चित्त जाति, शक्ति आदिकी व्यवस्थासे समझना ॥

१ अभ्यासेऽहर्गुणा वृद्धिर्मासादर्वाग्विधीयते। ततो मासगुणा वृद्धिर्यावत्संवत्सरं भवेत् ॥ ततः संवत्सरगुणा यावत्पापं समाचरेत् ॥

२ सकृत्कृते तु यत्प्रोक्तं त्रिगुणं तत्त्रिभिर्दिनैः। मासात्पंचगुणं प्रोक्तं षण्मासाद्दशधा भवेत् ॥ संवत्सरात्पंचदशं त्र्यब्दाद्विंशगुणं भवेत्। ततोप्येवं प्र कल्प्यं स्याच्छातातपवचो यथा ॥

३ विधेः प्राथमिकादस्माद्द्वितीये द्विगुणं चरेत्।

४ गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिच्चांद्रायणव्रतम्। गोघ्नस्येच्छन्ति केचिच्च केचिदेवावकीर्णिनः ॥

५ अनाश्रमी संवत्सरं प्राजापत्यं कृच्छ्रं चरित्वाश्रममुपेयात् द्वितीयेऽतिकृच्छ्रं तृतीये कृच्छ्रातिकृच्छ्रमत ऊर्ध्वं चांद्रायणम्।

भावार्थ–व्रात्योंका यज्ञ करानेवाला और अभिचारका कर्त्ता तिन कृच्छ्रोंको करै। वेदका नाशक और शरणागतका त्यागी वर्षभर जौको भक्षण करै ॥ २८९ ॥

गोष्ठेवसन्ब्रह्मचारीमासमेकंपयोव्रतः।
गायत्रीजाप्यनिरतःशुध्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥

पद–गोष्ठे ७ वसन् १ ब्रह्मचारी १ मासम् २ एकम् २ पयोव्रतः १ गायत्रीजाप्यनिरतः १ शुद्ध्यते क्रि–असत्प्रतिग्रहात् ५ ॥

योजना–ब्रह्मचारी गोष्ठे वसन् एकं मासं पयोव्रतः गायत्रीजाप्यनिरतः सन् असत्प्रतिग्रहात् शुद्ध्यते ॥

तात्पर्यार्थ–अब निंदित प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त कहते हैं। जो ब्रह्मचारी निंदित प्रतिग्रह करता (लेता) है वह गोशालामें वसता और गायत्री जपता हुआ एक मासतक पयोव्रत (दूध पीना) से शुद्ध होता है, और दाताकी जाति और कर्मसे प्रतिग्रह निषिद्ध होता है, जैसे चाण्डाल और पतितका प्रतिग्रह, तैसेही देश और कालसे भी प्रतिग्रह निषिद्ध होताहै, जैसे कुरुक्षेत्र और ग्रहणमें, तैसेही प्रतिग्रहके योग्य द्रव्यसे भी प्रतिग्रह निषिद्ध होता है, जैसे

छुरा, भेड, मृतककी शय्या और उभयतोमुखी (अर्थात् जब ब्यानेके समय बच्चेका मुख योनिमें हो) गौ इनका प्रतिग्रह। और जब पतित आदिसे भेड आदिका प्रतिग्रह ले तब यह प्रायश्चित्त गुरु समझना। क्योंकि दो व्यतिक्रमके देखनेसे अर्थात् दाता और द्रव्य इन दोनोंको निषिद्ध होनेसे निमित्त (दोष) भी गुरु है। वहां जपमें मनुने संख्याकी विशेषता कही है (अ० ११ श्लो० १९४) कि मासभर तीन सहस्र गायत्रीको गोशालामें जपकर और दूध पीकर निषिद्ध प्रतिग्रहके दोषसे छूटता है। यहां प्रतिदिन तीन सहस्र जप जानना। क्योंकि (मासं) इस अत्यन्त संयोगमें द्वितीयासे तीन सहस्र जप प्रतिदिन व्यापक प्रतीत होता है और जब न्यायवर्त्ती ब्राह्मण आदिके सकाशसे निषिद्ध मेष आदिको ग्रहण करता है अथवा पतित आदिके सकाशसे अनिषिद्ध भूमि आदिका प्रतिग्रह लेता है तब षट्त्रिंशन्मतका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि पवित्र यज्ञके करनेसे सब घोर प्रतिग्रह शुद्ध होते हैं और ऐंदव, मृगारेष्टि, मित्रविंदा, गायत्रीका लक्ष जप इनके करनेसे दुष्टप्रतिग्रहोंकी शुद्धि होती है। और जो वृद्धहारीतका वचन है कि राजाका प्रतिग्रह लेकर मासभर सदैव जलमें बसै, छठे कालमें दूधको पीकर और ब्राह्मणोंकी कामनाको पूर्ण करै, इस प्रकार निरन्तर व्रत करके पूरा मास होने पर शुद्ध होता है वह वचन पूर्वोक्त विषयके अभ्यासमें समझना। अथवा पतित आदिसे कुरुक्षेत्रके ग्रहण आदिमें काले मृगचर्मके प्रतिग्रह आदिमें समझना। तैसेही प्रतिग्रह द्रव्यकी अल्पतासे भी अल्प प्रायश्चित्त होता है। सोई हारीतने कहा है कि मणि, वस्त्र, गौ आदिके प्रतिग्रहमें आठ सहस्र गायत्री जपै। तैसेही षट्त्रिंशन्मतमें कहा है कि भिक्षामात्रको लेकर पुण्यमंत्रको पढे, सब प्रतिग्रहोंमें छठा अंश दान करदे, यह संपूर्ण प्रायश्चित्तका समूह द्रव्य त्यागनेके अनन्तर समझना। क्योंकि मनुकी स्मृति है कि (अ० ११ श्लो० १९३) जो ब्राह्मण निंदित कर्मसे धनका संचय करते हैं वे उसके त्यागसे और जपतपसे शुद्ध होते हैं। इस प्रकार अन्य स्मृतियोंके वचनोंकी भी द्रव्यका सार अल्पता और अधिकतासे सब विषयोंमें व्यवस्था समझना॥

इति उपपातकप्रायश्चित्तप्रकरणम्॥

जाति और आश्रय आदिके दोषसे और निंदित अन्न आदिके शब्दसे योगीन्द्र (याज्ञवल्क्य) ने जो व्रतोंका समूह कहा है अब उसको विस्तारसे कहते हैं। उसमें जातिसे दुष्ट पलांडु (सलगम) आदिका भक्षण जानकर एकबार करै तो इस वचनसे चांद्रायण कहा है और जानकर अभ्यासमें तो इस वचनसे सुरापानके समान प्रायश्चित्त कहा है। और अज्ञानसे एकबार भक्षणमें सांतपन और अज्ञानसे अभ्यासमें

१ जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः। मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात्॥

२ पवित्रेष्ट्या विशुद्ध्यन्ति सर्वे घोराः प्रतिग्रहाः। ऐंदवेन मृगारेष्ट्या कदाचिन्मित्रविंदया॥ देव्या लक्षजपेनैव शुद्ध्यंते दुष्प्रतिग्रहात्॥

३ राज्ञः प्रतिग्रहं कृत्वा मासमप्सु सदा वसेत्। षष्ठे काले पयोभक्षः पूर्णे मासे विशुद्ध्यति॥ तर्पयित्वा द्विजान्कामैः सततं नियतव्रतः॥

१ मणिवासोगवादीनां प्रतिग्रहे सावित्र्यष्टसहस्रं जपेत्।

२ भिक्षामात्रं गृहीत्वा तु पुण्यं मंत्रमुदीरयेत्। प्रतिग्रहेषु सर्वेषु षष्ठमंशं प्रकल्पयेत्॥

३ यद्गर्हितेनार्जयंति ब्राह्मणाः कर्मणा धनम्। तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यंति जप्येन तपसैव च॥

४ पलाण्डुं विड्वराहं च।

५ निषिद्धभक्षणे जैह्म्ये।

यतिचान्द्रायण करै। क्योंकि मनुका वचन[1] है (अ० ५ श्लो० २०) कि अज्ञानसे इन छः का भक्षण करके सांतपन कृच्छ्र वा यतिचांद्रायण करै और शेष निषिद्धोंके भक्षणमें एक दिन उपवास करै। और जो बृहद्यमने[2] कहा है कि खट्व (पक्षी वा कुसुंभ), बेंगन, कुंभी (तरबुज), काटनेसे पैदा हुए गोंद, भूतृण, शिग्रू, खुखंड, कवक (राईके शाक) इनका भक्षण करके प्राजापत्य करै, वह वचन जानकर अभ्यासके विषयमें समझना। क्योंकि मत्स्योंको जानकर भक्षण करके भोजनके विना तीन दिन व्यतीत करै अर्थात् उपवास करै इस वचनसे[3] योगीश्वरने ज्ञानसे एकवार भक्षणमें तीन दिन कहे हैं। यहां खट्व पदसे पक्षी वा कुसुंभ, कवक पदसे राई और खुखंड पदसे राईका भेद लेना। वह गोवलीवर्द न्यायसे पृथक् लिखा है और शिग्रुपदसे सोहंजना लेना। और जो यमने[4] कहा है कि तंदुलीयक (चौराईका शाक), कुंभीक (तरबूज), व्रश्चन (काटना) से उत्पन्न (गोंद), नालिका (नरसल), नालिकेरी शाकका भेद, श्लेष्मातकका फल (भोंकर), भूतृण, शिग्रू, खट्वपक्षी, कवक इनका भक्षण करके प्राजापत्य व्रत करै, वहभी जानकर अभ्यासके विषयमें है। अज्ञानसे एकवार भक्षणमें तो शेष पापोंमें एकदिन उपवास करै यह मनुको[5] कहा प्रायश्चित्त जानना। और अज्ञानसेभी अभ्यास होजाय तो प्रायश्चित्तकीभी आवृत्ति कल्पना करनी और अत्यंत अभ्यासमें तो यह प्रचेताका[1] कहा जानना कि संसर्गसे वा अज्ञानसे क्रियासे वा स्वभावसे दुष्ट जो अन्न है उसका भक्षण करके तप्तकृच्छ्र करै। नीलके तो अज्ञानसे एकवार भक्षणमें चांद्रायण करै। क्यों कि आपस्तंबका[2] वचन है कि यदि ब्राह्मण प्रमाद (अज्ञान) से कदाचित् नीलका भक्षण करै तो चांद्रायणसे शुद्धि होती है यह आपस्तंब मुनिने कहा है। जानकर अभ्यासमें तो आवृत्तिकी कल्पना करनी। और जो षट्त्रिंशत्के[3] मतमें कहा है कि शणका पुष्प, शाल्मली (सेंमल), हाथसे मथी दधि, वेदिसे बाहिर पुरोडाश इनको भक्षण करके एक रात्रिदिन भोजन न करै, वहभी अज्ञानके विषयमें है। और जो सुमंतुने[4] कहा है कि लहसुन, पलांडु, गाजर, कवक इनके भक्षणमें आठ सहस्र गायत्रीको जपकरै मस्तकपर जलको डारै, वह नहीं चाहतेहुएको बलात्कारसे भक्षणके विषयमें है। अथवा ऐसे रोगकी निवृत्तिके लिये भक्षणमें है, जो इनकेही भक्षणसे निवृत्त होता हो, इसीसे उससे आगे उसनेही कहा है कि येही पदार्थ[5]

१ अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्। यतिचांद्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः॥

२ खट्वावार्त्ताककुंभीकव्रश्चनप्रभवाणि च भूतृणं शिग्रुकं चैव खुखंडं कवकानि च॥ एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद्द्विजः॥

३ मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं क्षिपेत्।

४ तंदुलीयककुंभीकव्रश्चनप्रभवांस्तथा॥ नालिकां नालिकेरीं च श्लेष्मातकफलानि च। भूतृणं शिग्रुकं चैव खट्वाख्यं कवकं तथा॥ एतेषां भक्षणं कृत्वा प्राजापत्यं व्रतं चरेत्॥

५ शेषेषूपवसेदहः।

१ संसर्गदुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टमकामतः। भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥

२ भक्षयेद्यदि नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित्। चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तम्बोऽब्रवीन्मुनिः॥

३ शणपुष्पं शाल्मलं च करनिर्मथितं दधि। बहिर्वेदिपुरोडाशं जग्ध्वा नाद्यादहर्निशम्॥

४ लशुनपलांडुगृंजनकवकभक्षणे सावित्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि संपातान्नयेत्।

५ एतान्येव व्याधितस्य भिषक्क्रियायामप्रतिषिद्धानि भवंति यानि चैवं प्रकाराणि तेष्वपि न दोषः॥

रोगीको वैद्यकी क्रियामें निषिद्ध नहीं है और भी जो ऐसे हैं उनके भक्षणमेंभी दोष नहीं है। अब जातिसे दुष्ट संधिनी आदिके दूधका जो भक्षण उसका प्रायश्चित्त कहते हैं । तहां अकामसे एकबार संधिनीका दूध पीया होय तो यह मनुका कहा समझना कि (अ० ९ श्लो० ८-१०) जिसको प्रसवसे दश दिन न व्यतीत हुए हों ऐसी गौका और उष्ट्र एकशफ (अश्व आदि), अवि (भेड), संधिनी (जो गाभन दूध देती हो), जिसका बछडा न हो ऐसी गौ और सब वनके जीव इनका दूध और सब शुक्त विकारसे (खट्टे हों) इनको भोजनमें वर्ज दे। और शुक्तोंमेंभी दधि और दधिसे पैदा हुए तक्र आदि पदार्थ ये भक्ष्य हैं। उनसे अन्य सब अभक्ष्य पदार्थोंमें इस वचनसे मनुका कहा उपवास करना। कामसे करनेसे तो यह योगीश्वरका कहा तीन रात्रका उपवास समझना जो कि पैठीनासन यह कहा है कि अवि, खर, उष्ट्र और स्त्री इनके दूधके पीनेमें तप्तकृच्छ्र और फिर उपनयन कर्म करावे और अनिर्दशाह (ब्यानेके पीछे दश दिनके बीतने विना) गौ और भैंसके दूध पीनेमें छः रात्रि भोजन न करै। समस्त दो स्तनवालियोंके दूध पीनेमेंभी अजाको छोडकर यही प्रायश्चित्त समझना। और जो शंखने यह यावकव्रत कहा है कि जितने क्षीर अभक्ष्य हैं उनके विकारोंके भक्षणमें बुद्धिमान् मनुष्य सावधानी और प्रयत्नसे सात रात्रतक व्रत करै, ये दोनोंभी वचन जानकर अभ्यासके विषयमें हैं। और जो शंखने कहा है कि संधिनी और अपवित्रोंके भक्षणमें पक्षव्रत करै, वह अभ्यासके विषयमें है। क्योंकि सकृत्पीनेमें विष्णुने यह उपवास कहा है कि गौ बकरी भैंस इनको छोडकर समस्त दूधोंको एकवार पीकर उपवास करै, और दश दिनके भीतर और सन्धिनी, यमसू (जिसके दो बच्चे हुए हों), स्यंदिनी (रजस्वला), बछडासे हीन इनका दूधभी अभक्ष्य है, और उसके पीनेवाले अपवित्र होते हैं। तैसेही वर्णोंके आश्रयसेभी निषेध है कि सदाचारमें स्थित जो क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कपिलाका दूध पीवै तो उससे अधिक कोई पापी नहीं है। इत्यादि पदार्थोंमें जहां प्रतिपदोक्त प्रायश्चित्त (नाम लेकर) न दीखै शेषोंमें एक दिन उपवास करै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना। उसके अनंतर स्वभावसे दुष्ट मांस आदिके भक्षणमें प्रायश्चित्त कहा है उनके जानकर एकवार भक्षणमें तो शेषोंमें एक दिन उपवास करै यह मनुका कहा साधारण प्रायश्चित्त जानना और जानकर तो चाष रक्तपाद (हंस) सौन (कसाईके घरका) वल्लूर मत्स्य इनको भक्षण करके तीन दिन उपवास करै यह

---

१ अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा। आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः॥ आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषीं विना। स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि॥

२ शेषेषूपवसेदहः।

३ अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरप्राशने तप्तकृच्छ्रः पुनरुपनयनं च आनिर्दशाहगोमाहिषीक्षीरप्राशने षड्रात्रमभोजनम् सर्वासां द्विस्तनीनां क्षीरपानेऽप्यजावर्ज्यमेतदेव।

१ क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः। सप्तरात्रव्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः॥

२ संधिन्यमेध्यभक्षयोर्भुक्त्वा पक्षव्रतं चरेत्।

३ गोजामाहिषीवर्ज्यं सर्वाणि पयांसि प्राश्योपवसेत्, अनिर्दशाहं तान्यपि संधिनीयमसूस्यंदिनीविवत्साक्षीरं चामेध्यभुजश्च।

४ क्षत्रियश्चापि वृत्तस्थो वैश्यः शूद्रोथ वा पुनः। यः पिबेत्कपिलाक्षीरं न ततोऽन्योस्त्यपुण्यकृत्॥

योगीश्वरका कहा प्रायश्चित्त जानना। जानकर अभ्यासमें तो अभक्ष्य मांसको खाकर सात रात्र जौको पीवै यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना (अ० ११ श्लो० १५६) यह भी विष्ठाके भक्षक सूकर आदिके मांससे भिन्नमें समझना। क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० १५६) ने जातिके भेदसे यह प्रायश्चित्त कहा है कि कच्चे मांसके भक्षक, विष्ठाके सूकर, कुक्कुट, नर, काक, खर इनके भक्षणमें तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है और इनके मूत्र और विष्ठाके भक्षणमेंभी यही प्रायश्चित्त है। क्योंकि वृहद्यमकी यह स्मृति है कि वराह, अश्व आदि एकशफ, काक, कुक्कुट और संपूर्ण कच्चे मांसके भक्षक और जो शास्त्रमें अभक्ष्य कहे हैं इनके मांस मूत्र विष्ठाको और गौ, कुत्ता, गीदड, वानर इनके मांसको खाकर तप्तकृच्छ्र करै, अथवा बारह दिन उपवास करके कूष्मांडी ऋचाओंसे घीका होम करै। उसमेंभी यह व्यवस्था है कि जानकर भक्षणमें तप्तकृच्छ्र और अभ्याससे कूष्मांडसहित पराक करे। तैसेही प्रचेतानेभी कहा है कि कुत्ता, शृगाल, काक, कुक्कुट, पार्षत, वानर, चीता, चाष, क्रव्याद (कच्चे मांसके भक्षक), खर, ऊंट, गज, वाजी, विड्वराह (विष्ठाका भक्षक), गौ, मनुष्य इनके मांसभक्षणमें तप्तकृच्छ्र करै। और इनके मूत्र और विष्ठाके भक्षणमें अतिकृच्छ्र करै। यहभी जानकर करनेमें समझना, और जो उशनाका वचन है कि नर, कुत्ता, गौ, अश्व और पंचनख इनके मांसको खाकर महासांतपन करै वह अज्ञानसे करनेमें समझना। और जो अंगिराका वचन है कि बलाका, भास, गीध, मूसा, खर, वानर, सूकर इनके मलमूत्रको देखकर और स्पर्श करके आचमनसे शुद्ध होता है और इच्छासे मल मूत्रको भक्षण करके सांतपन और जानकर भक्षण करे तो तीनों द्विजातिय प्राजापत्य कृच्छ्र करैं, वह वचन भक्षितके वमन करने पर समझना और सांतपन शब्दसे महासांतपन लेना, क्योंकि अज्ञानमें प्राजापत्य कहा है। और जो अंगिराका वचन है कि नर काक खर अश्व गज इनके मांस मल और मूत्रको खाकर द्विज चांद्रायण करै, और जो बृहद्यमने कहा है कि शुष्क मांसके भक्षणमें ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै, ये दोनों वचन जानकर अभ्यासके विषयमें हैं। और जो शंखने कहा है कि जिनके दोनों तरफ दांत हैं और जिनके एक शफ हैं उनको और ऊंट और गौके

---

१ चाषांश्च रक्तपादांश्च सौनं वल्लूरमेव च। मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्॥

२ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं तु सप्तरात्रं यवान्पिबेत्।

३ क्रव्याद्विट्सूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे। नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्॥

४ वराहैकशफानां तु काककुक्कुटयोस्तथा। क्रव्यादानां च सर्वेषामभक्ष्या ये च कीर्त्तिताः॥ मांसमूत्रपुरीषाणि प्राश्य गोमांसमेव च। श्वगोमायुकपीनां च तप्तकृच्छ्रं विधीयते॥ उपोष्य वा द्वादशाहं कूष्मांडैर्जुहुयाद्घृतम्॥

५ श्वशृगालकाककुक्कुटपार्षतवानरचित्रकचाषक्रव्यादखरोष्ट्रगजवाजिविड्वराहगोमानुषमांसभक्षणे तप्तकृच्छ्रमादिशेत् एतेषां मूत्रपुरीषभक्षणे त्वतिकृच्छ्रम्।

१ नरमांसं श्वमांसं वा गोमांसं चाश्वमेव वा। भुक्त्वा पंचनखानां च महासांतपनं चरेत्॥

२ बलाकाभासगृध्राखुखरवानरसूकरान्। दृष्ट्वा चैषाममेध्यानि स्पृष्ट्वाचम्य विशुद्ध्यति॥ इच्छयैषाममेध्यानि भक्षयित्वा द्विजातयः। कुर्युः सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया॥

३ नरकाकखराश्वानां जग्ध्वा मांसं गजस्य च। एषां मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चांद्रायणं चरेत्॥

४ शुष्कमांसाशने विप्रो व्रतं चांद्रायणं चरेत्।

५ भुक्त्वा चोभयतोदंतांस्तथा चैकशफानपि। औष्ट्रं गव्यं तथा जग्ध्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत्॥

मासको खाकर छः मासतक व्रत करे, वह जानकर अत्यंत अभ्यासके विषयमें समझना। और जो स्मृत्यंतरमें कहा है कि मनुष्योंका मांस, विड्वराह, खर, गौ, अश्व, हाथी, ऊंट और सब पंचनख क्रव्याद, ग्रामको कुक्कुट इनको भक्षण करके संवत्सरव्रत करे, वह अत्यंत और निरंतर अभ्यासके विषयमें समझना। इस प्रकरणमें मूत्र और पुरीष (मल) का ग्रहण वसा शुक्र मज्जा इनकाभी उपलक्षण है। कर्णके मल आदि छःके भक्षणमें तो आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। केश आदिके भक्षणमें तो षट्त्रिंशन्मतमें विशेष कहा है कि अजा, भेड, महिष, मृग इनके कच्चे मांसके और केश नख रुधिर इनके जानकर भक्षणमें त्रिरात्र और अज्ञानसे भक्षणमें उपवास होता है। और जो प्रचेताने कहा है कि नख केश मिट्टी इनके भक्षणमें अहोरात्र भोजनके अभावसे शुद्धि होती है, वहभी अज्ञानसे एक वार भक्षणके विषयमें समझना। और जो स्मृत्यंतरका वचन है कि केश कीट नख मत्स्यका कांटा इनको भक्षण करे तो सोनेसे तपाये घीको पीकर उसी क्षणमें शुद्ध होता है, वहभी मुखमात्रके प्रवेशमें समझना। और जब पात्रमें परसा हुआ अन्न केश आदिसे दूषित होजाय तो प्रचेताका कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि भोजनके समयमें अन्न माक्षिका केशोंसे दूषित होजाय तो जलका स्पर्श करके उस अन्नमें भस्मका स्पर्श करे। यह श्लोक प्रसंगसे लिखा है। अत्यंत सूक्ष्म कृमि कीट अस्थि इनके भक्षणमें तो हारीतने विशेष कहा है कि कृमि, कीट, पिपीलिका (चेंटी), जलौका (जौंक), पतंग (पक्षी) इनके अस्थियोंके भक्षणमें गोमूत्र और गोमयको भक्षण करके त्रिरात्रमें शुद्ध होता है। इस प्रकार पशु पक्षी जलचरोंके मांस भक्षणके प्रायश्चित्त संक्षेपसे दिखाये। ग्रंथगौरवके भयसे व्यक्ति २ के प्रति नहीं लिखते। अब अशुद्धसे स्पर्श किये पदार्थ भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं। उसमें पहिले उच्छिष्ट जो अभक्ष उसके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं। उसमें मनुका वचन है (अ० ११ श्लो० १५९) कि बिडाल, काक, मूसा, कुत्ता, नकुल इनके उच्छिष्टको और केश कीटसे युक्त अन्नको भक्षण करके ब्राह्मी और सुवर्चलाको एकरात्र पीवे, यहभी जानकर भक्षणमें समझना। और जो विष्णुने कहा है कि पक्षी श्वापद इनके भक्षित बहुतसे रस और अन्न जो संस्काररहितभी हैं उनके भोजनमें कृच्छ्रपाद करे, वह जानकर करनेमें समझना। और अन्न आदिका संस्कार (देवद्रोण्यां०) इस वचनसे देवद्रव्य शुद्धिप्रकरणमें कहाहुआ जानना। और जो शातातपने कहा है कि श्वा, काक आदिके चाटे और शूद्रके

१ जग्ध्वा मांसं नराणां च विड्वराहं खरं तथा। गजाश्वकुंजरोष्ट्राणां सर्वं पांचनखं तथा ॥ क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥

२ अजाविमहिषमृगाणां आममांसभक्षणे केशनखरुधिरप्राशने बुद्धिपूर्वं त्रिरात्रमज्ञानादुपवासः।

३ नखकेशमृल्लोष्टभक्षणेऽहोरात्रमभोजनाच्छुद्धिः।

४ केशकीटनखं प्राश्य मत्स्यकंटकमेव च। हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुध्यति ॥

१ अन्ने भोजनकाले तु माक्षिकाकेशदूषिते। अनंतरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥

२ कृमिकीटपिपीलिकाजलौकापतंगास्थिप्राशने गोमूत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति।

३ बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च। केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥

४ पक्षिश्वापदजग्धस्य रससान्नस्य भूयसः। संस्काररहितस्यापि भोजने कृच्छ्रपादकम् ॥

५ श्वकाकाद्यवलीढशूद्रोच्छिष्टभोजने त्वतिकृच्छ्रम्।

उच्छिष्ट भोजनमें अतिकृच्छ्र करै, वह अज्ञानसे अभ्यासके विषयमें समझना । और जो शंखने[1] यावकव्रत कहा है कि कुत्तेके उच्छिष्टको खाकर एक मासतक और काकके उच्छिष्ट, गौके सूंघे अन्नको खाकर एक पक्षतक व्रत करै, वह जानकर अभ्यासके विषयमें है । ब्राह्मण आदिके उच्छिष्ट भोजनमें तो बृहद्विष्णुने[2] कहा है कि ब्राह्मण शूद्रके उच्छिष्ट भक्षणमें सात रात्र पंचगव्य पीवै, वैश्यके उच्छिष्टमें पंचरात्र, क्षत्रियके उच्छिष्टमें त्रिरात्र और ब्राह्मणके उच्छिष्टमें एक रात्र पंचगव्य पीवै, वह भी ज्ञानसे भक्षणमें समझना । और जो यमका[3] वचन है कि ब्राह्मणके संग भोजन करके प्राजापत्यसे, क्षत्रियके संग अन्नको भोजन करके तप्तकृच्छ्रसे और वैश्यके संग भोजन करके अतिकृच्छ्रसे शुद्ध होता है और शूद्रके संग अन्नको खाकर चांद्रायण करै, वह जानकर अभ्यासके विषयमें है । और जो शंखका[4] वचन है कि ब्राह्मणके उच्छिष्ट भोजनमें महाव्याहृतियोंसे जलोंका अभिमंत्रण (पढना) करके पीवै, क्षत्रियके उच्छिष्ट भक्षणमें ब्राह्मीके रससे पकाये दूधको तीन दिन पीवै, वैश्यके उच्छिष्टभक्षणमें तीन रात्र उपवास करके ब्राह्मी और सुवर्चलाको पीवै और शूद्रके उच्छिष्ट भक्षणमें छः रात्रतक भोजन न करै, वह अज्ञानसे करनेमें है और अज्ञानसे अभ्यास होजाय तो दूने आदि प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी । यहभी पिता आदिसे भिन्नमें समझना । क्योंकि आपस्तंबकी[1] स्मृति है कि पिताका और ज्येष्ठ भ्राताका उच्छिष्ट भोजन करने योग्य है और जो बृहद्व्यासका[2] वचन है कि माता, भगिनी, भार्या और अन्यस्त्री उनके संग भोजन न करै, यदि करै तो चांद्रायण करै, वह वचन संग भोजनके विषयमें है, उच्छिष्टमात्रके भोजनमें तो यह आपस्तंबका[3] कहा जानना कि शूद्र और स्त्रियोंके उच्छिष्ट भोजनमें सात रात्रतक भोजन न करै और जो अंगिराका[4] वचन है कि ब्राह्मणीके संग वा ब्राह्मणीके उच्छिष्टको जो कदाचित् भक्षण करै तो उसमें संपूर्ण पंडित जन दोषको नहीं मानते वह विवाह वा आपत्तिके विषयमें है, और अंत्यजोंके उच्छिष्ट भोजनमें तो यह आपस्तंबका[5] कहा जानना कि अंत्यजोंके भोजनसे शेष अन्नको खाकर द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य क्रमसे चांद्रायण कृच्छ्र अर्द्धकृच्छ्र करैं, अंत्यावसायियोंके उच्छिष्ट भक्षणमें तो यह अंगिराका[6] कहा महासांतपन जानना,

---

१ शुनामुच्छिष्टकं भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत् । काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥

२ ब्राह्मणः शूद्रोच्छिष्टाशने सप्तरात्रं पंचगव्यं पिबेद्वैश्योच्छिष्टाशने पंचरात्रं राजन्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रं ब्राह्मणोच्छिष्टाशने त्वेकाहम् ।

३ भुक्त्वा सह ब्राह्मणेन प्राजापत्येन शुद्ध्यति । भूभुजा सह भुक्त्वान्नं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ वैश्येन सह भुक्त्वान्नमतिकृच्छ्रेण शुद्ध्यति । शूद्रेण सह भुक्त्वान्नं चांद्रायणमथाचरेत् ॥

४ ब्राह्मणोच्छिष्टाशने महाव्याहृतिभिराभिमंत्र्यापः पिबेत्क्षत्रियोच्छिष्टाशने ब्राह्मीरसविपक्वेन त्र्यहं क्षीरेण वर्तयेत् । वैश्योच्छिष्टाशने त्रिरात्रोपोषितो ब्राह्मीं सुवर्चलां पिबेत् । शूद्रोच्छिष्टभोजने षड्रात्रमभोजनम् ।

१ पितुर्ज्येष्ठस्य च भ्रातुरुच्छिष्टं भोज्यम् ।

२ माता वा भगिनी वापि भार्या वान्याश्च योषितः । न ताभिः सह भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

३ शूद्रोच्छिष्टभोजने सप्तरात्रमभोजनं स्त्रीणां च ।

४ ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन । तत्र दोषं न पश्यंति सर्व एव मनीषिणः ॥

५ अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः । चांद्रं कृच्छ्रं तदर्धं च ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥

६ चांडालपतितादीनामुच्छिष्टान्नस्य भक्षणे । चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ॥ षड्रात्रं च त्रिरात्रं च वर्णयोरनुपूर्वशः ॥

कि चांडाल पतित आदिके उच्छिष्ट अन्नके भक्षणमें ब्राह्मण चांद्रायण, क्षत्री सांतपन, वैश्य छः रात्र व्रत और शूद्र त्रिरात्र व्रत करै । आपत्कालमें तो यह पराशरका कहा जानना कि यदि विपत्तिमें ब्राह्मण शूद्रके घर भोजन करै तो मनके पश्चात्तापसे शुद्ध होताहै और सौ १०० द्रुपदा मंत्रको जपै । और जो वृहत् शातातपने कहा है कि पीतजलका शेष जो पात्रमें मुखसे गिराहो उसको भोजनके अयोग्य जानै और उसको खाकर चांद्रायण करै, यह वचन अभ्यासके विषयमें है । क्योंकि निमित्त (दोष) अत्यंत लघु है, और जो यह वचन है कि पीनेसे शेष पानीको ब्राह्मण कदाचित् पीकर वा वामहस्तसे पीनेसे त्रिरात्र व्रत करै, यहभी ज्ञानसे पीनेके विषयमें समझना । अज्ञानसे तो आधे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी । दीपकके उच्छिष्टमें तो षट्त्रिंशत् मतमें कहा जानना कि दीपकका उच्छिष्ट तैल और रात्रिमें रथ्या (गली) का लाया पदार्थ और अभ्यंग (उबटना) का शेष इनको भक्षण करके नक्तव्रतसे शुद्ध होता है । अब अशुद्ध द्रव्यसे स्पर्श कियेके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं । उसमें संवर्त्तका यह वचन है कि केशकीटसे युक्त और नील और लाखसे संयुक्त और स्नायु अस्थि चर्मसे स्पृष्ट (छूआ) इनका भोजन करके एक दिनका उपवास करै । सोई शातातपने कहा है कि केश कीटसे युक्त और रुधिर मांस आदि स्पर्शके अयोग्योंसे स्पर्श किया और भ्रूणहत्यारेका देखा, पक्षीका चाटा, कुत्ता सूकर गौ इनका सूंघा, शुक्त(खट्टा), पर्युषित (वासी), वृथा पकाया, देवताका अन्न, हविः (साकल्य) इनके भोजनमें उपवास और पंचगव्यका भक्षण करै । ये दोनों वचन अज्ञानके विषयमें है । जानकर तो यह विष्णुका कहा समझना कि मिट्टी मिला जल, कुसुम (फूल), फल, कंद, ईख, मूली, विष्ठा मूत्रसे दूषित इन सबका भक्षण करके कृच्छ्र पाद करै और इनके संसर्गमें अर्धकृच्छ्र और कृच्छ्रसे शुद्धि होती है । यहां यह व्यवस्था है कि अल्प संसर्गमें पादकृच्छ्र और महासंसर्गमें अर्द्ध कृच्छ्र करै । और जो व्यासने कहा है कि संसर्ग और क्रियासे दुष्ट और स्वभावसे जो दुष्ट हैं उनको जानकर भक्षण करके तप्तकृच्छ्र करै । यहभी वहां जानना जहां पृथक् अपवित्र रस प्रतीत होता हो । रजस्वला आदिके स्पर्शमें तो शंखका कहा जानना कि अपवित्र पतित, चांडाल, पुल्कस, रजस्वला, अवधूत, कुणि, कुष्ठी, कुनखी इनके स्पर्श कियेको

---

१ आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि । मनस्तापेन शुद्ध्येत्तु द्रुपदानां शतं जपेत् ॥

२ पीतशेषं तु यत्किंचिद्भाजने मुखनिःसृतम् । अभोज्यं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

३ पीतोच्छिष्टं तु पानीयं पात्वा तु ब्राह्मणः क्वचित् । त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्वामहस्तेन वा पुनः ॥

४ दीपोच्छिष्टं तु यत्तैलं रात्रौ रथ्याहृतं तु यत् । अभ्यंगाच्चैव यच्छिष्टं भुक्त्वा नक्तेन शुद्ध्यति ॥

५ केशकीटावपन्नं तु नीलीलाक्षोपघातितम् । स्नाय्वस्थिचर्मसंस्पृष्टं भुक्त्वा तूपवसेदहः ॥

१ केशकीटावपन्नं च रुधिरमांसास्पृश्यसंस्पृष्टभ्रूणघ्नावेक्षितपतत्र्यवलीढश्वसूकरगवाघ्रातशुक्तपर्युषितवृथापक्वदेवान्नहविषां भोजने उपवासः पंचगव्याशनं च ।

२ मृद्वारिकुसुमादींश्च फलकंदेक्षुमूलकान् । विण्मूत्रदूषितान्प्राश्य कृच्छ्रपादं समाचरेत् ॥ संनिकृष्टेऽर्द्धमेव स्यात् कृच्छ्रःस्याच्छुचिशोधनम् ॥

३ संसर्गदुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टं च कामतः । भुक्त्वा स्वभावदुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

४ अमेध्यपतितचाण्डालपुल्कसरजस्वलावधूतकुणिकुष्ठिकनखिसंस्पृष्टानि कृत्वा कृच्छ्रं चरेत् ।

खाकर कृच्छ्र करै। जिसके हाथ न हों उसे कुणि कहते हैं। यह जानकर भक्षणमें जानना, अज्ञानसे करनेमें आधा समझना। और स्पर्शके अयोग्योंसे और अशौची, केश कीट इनसे दूषितको खाकर कुशा, गूलर, बेल, पनस, कमल, शंखपुष्पी, सुवर्चला इनके काथको पीकर शुद्ध होता है। यह जो विष्णुने कहा है वह अशक्तके विषयमें है, अथवा रजक आदिके स्पर्श कियेके विषयमें है। शूद्र आदिके स्पर्श कियेमें तो हारीतका कहा जानना कि शूद्रका उपहत (स्पृष्ट) भोजनके अयोग्य है और शुद्ध पदार्थके कीटोंसे जो युक्त है वहभी भोज्य है। और ब्राह्मणोंके भोजन करते हुए जहां शूद्र स्पर्श करले वा अयोग्य होनेसे भोजन करते हुए ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें उठकर उच्छिष्ट परस दे वा आचमन करले वा जहां निंदा करके ब्राह्मणोंको अन्न दे वहां भोजन करनेमें अहोरात्रका प्रायश्चित्त है। उच्छिष्ट पंक्तिमें भोजनकाभी यही प्रायश्चित्त है। क्योंकि क्रतुकी स्मृति है कि जो द्विज कदाचित् उच्छिष्ट पंक्तिमें भोजन करै वह अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्ध होताहै। और वाम हाथसे दिये भोजनके विषय तो षट्त्रिंशत्के मतका कहा हुआ जानना, कि जो खडा होकर वा फूटे पात्रमें भोजन करै तो सान्तपन करै, यह वैवस्वतने कहाहै। तिसी प्रकार इसमें पराशरनेभी कहाहै कि भोजनके लिये एक पंक्तिमें बैठे हुए ब्राह्मणोंके मध्यमें यदि एकभी ब्राह्मण भोजनके पात्रको त्याग दे तो ब्राह्मण शेष अन्नको न खाय। यदि उस पंक्तिमें जो कोई उस उच्छिष्ट भोजनको खाले वह प्रायश्चित्त और कृच्छ्रसान्तपन व्रतको करै। शव आदिसे छूए हुए कूप आदिके जलके पीनेमें तो विष्णुने यह कहा है कि जिस कूपमें पडकर पांचनखवाला (वानर आदि) जन्तु मर गया हो वा अत्यन्त स्पर्श जिसके साथ हुआहो ऐसे कूपके जलको पीकर ब्राह्मण तीन दिन, क्षत्रिय दो दिन, वैश्य एक दिन और शूद्र एकरात्र उपवास करै। ये सब उपवासके अन्तमें पंचगव्यको पीवें। "अत्यंतोपहताद्वा" इस पदसे यह समझना कि मूत्र पुरीष आदिसे स्पर्श हो गया हो और जब शव (मुर्दा) उच्छून (गलना) होकर उस कूपमें भिन्न हो जाय तो हारीतने विशेष कहा है कि शवके गलने और भेदन हुए कूप आदिके जलको यदि पीवै तो शुद्धिके लिये चांद्रायण वा तप्तकृच्छ्र करै। और जो कोई ब्राह्मण प्रमादसे उसमें स्नान करै तो जप और त्रिकाल स्नान करता हुआ शुद्ध होता है।

---

१ भुक्त्वाऽस्पृश्यैस्तथाशौचिकेशकीटैश्च दूषितम्। कुशोदुंबरबिल्वाद्यैः पनसाम्बुजपत्रकैः ॥ शंखपुष्पीसुवर्चादिक्काथं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥

२ शूद्रेणोपहतं भोज्यं कीटैर्वामेध्यसेविभिः। भुंजानेषु तु वा यत्र दद्याच्छूद्रमुपस्पृशेत् ॥ अनर्हत्वात्स पंक्तौ तु भुंजानेषु वा यत्रोत्थायोच्छिष्टं प्रयच्छेदाचामेद्वा कुत्सित्वा वा यत्रान्नं दद्युस्तत्र प्रायश्चित्तमहोरात्रम्।

३ यस्तु भुंक्ते द्विजः कश्चिदुच्छिष्टायां कदाचन। अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

४ समुत्थितस्तु यो भुंक्ते यो भुंक्ते मुक्तभाजने। एवं वैवस्वतः प्राह भुक्त्वा सान्तपनं चरेत् ॥

१ एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने। यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्त्यामुच्छिष्टभोजनः। प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥

२ मृतपंचनखात्कूपादत्यन्तोपहताद्वोदकं पीत्वा ब्राह्मणस्त्र्यहमुपवसेत् द्व्यहं राजन्य एकाहं वैश्यः शूद्रो नक्तं सर्वे चान्ते पंचगव्यं पिबेयुः।

३ क्लिन्ने भिन्ने शवे तोयं तत्रस्थं यदि तत्पिबेत्। शुद्ध्यै चांद्रायणं कुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ यदि कश्चित्ततः स्नायात्प्रमादेन द्विजोत्तमः। जपंस्त्रिषवणस्नायी अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥

यह चांद्रायण जानकर उस कूपके जल पीनेमें है। जो मनुष्य शवसे उपहत हो और अज्ञानसे तो छः रात्र समझना। क्योंकि देवलकी यह स्मृति है कि यदि कूपमें स्थित शव क्लिन्न (गल जाय) भिन्न (फूटना) हो जाय तो त्रिरात्रतक दूध पीवै और मनुष्यशव होय तो दूना कहा है और चांडाल आदिके कूपके जलको पीवै तो आपस्तंबका कहा जानना कि चांडालके कूप वा पात्रके जलको जो मनुष्य प्रमादसे पीता है तो वहां वर्ण २ का प्रायश्चित्त कैसे बतावै, ब्राह्मण सांतपन करै, क्षत्री प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य और शूद्र चौथाई प्राजापत्य करै, यह जानकर पीनेमें है। अज्ञानसे तो यह देवलका कहा जानना कि चांडालकूप और पात्रके जलको जो पीवै वह तीन दिनमें और शूद्र एक दिनमें शुद्ध होता है। और चाण्डाल आदिके संबंधवाले अल्प जलाशयोंमेंभी कूपके समान शुद्धि है। क्योंकि यह विष्णुकी स्मृति है अल्प २ जलके स्थान और स्थावर जो पृथिवी पर हैं उनकी शुद्धि कूपके समान है और जो महान् (बडे) हैं उनमें दूषण नहीं है। और पुष्करिणी (बावडी) आदिमें यह आपस्तंबका कहा जानना कि पुष्करिणी वा कुंडमें म्लेच्छ आदिके जलको पीकर जानुतक जो गहरा हो वह शुद्ध जानना और उससे जो न्यून होय तो अशुद्ध होता है, उस जलको जो ब्राह्मण ज्ञानसे वा अज्ञानसे पीवै तो, अज्ञानसे पीनेमें नक्त भोजन और जानकर पीनेमें अहोरात्र व्रत करै। रजक आदिके पात्रके पीनेमें तो यह पराशरका कहा जानना कि जो अंत्यजोंके पात्रके जल, दधि, दूधको ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र प्रमादसे पीवै तो द्विजातियोंकी ब्रह्मकूर्च उपवाससे और शूद्रकी उपवास वा यथाशक्ति दान करनेसे शुद्धि होती है, और जानकर पीनेमें तो दूना प्रायश्चित्त होता है और अंत्यजोंके खुदवाये जो कूप तलाव बावडी हैं उनमें स्नान और जलपान करके प्राजापत्यसे शुद्धि होती है यह आपस्तंबका वचन अभ्यासके विषयमें समझना। और जो यह आपस्तम्बने चांडालके कूप आदिके जलपानमें पंचगव्य पीना कहा है वह अशक्तके विषयमें समझना कि प्याऊ, वनका घट, सोरद्रोणि (छोटी तलैय्या) और कोशसे निकसा जल श्वपाक और चांडालके होय तो जल पीकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है। प्याऊपर जाकर जो जलके विना (धूल आदिसे) शरीरको सींचता है वह एक दिन उपवास करके सचैल

१ क्लिन्नं भिन्नं शवं चैव कूपस्थं यदि जायते। पयः पिबेत्त्रिरात्रेण मानुषे द्विगुणं स्मृतम् ॥

२ चांडालकूपभांडस्थं नरः कामाज्जलं पिबेत्। प्रायश्चित्तं कथं तत्र वर्णेवर्णे विनिर्दिशेत् ॥ चरेत्सांपतनं विप्रः प्राजापत्यं च भूमिपः। तदर्धं तु चरेद्वैश्यः शूद्रे पादं विनिर्दिशेत् ॥

३ चांडालकूपभांडस्थमज्ञानादुदकं पिबेत्। स तु त्र्यहेण शुद्ध्येत शूद्रस्त्वेकेन शुद्ध्यति ॥

४ अलाशयेष्वथाल्पेषु स्थावरेषु महीतले। कूपवत्कथिता शुद्धिर्महत्सु तु न दूषणम् ॥

५ म्लेच्छादीनां जलं पीत्वा पुष्करिण्यां ह्रदेपि वा। जानुदघ्नं शुचि ज्ञेयमधस्तादशुचि स्मृतम् ॥ तत्तोयं यः पिबेद्विप्रः कामतोऽकामतोऽपि वा। अकामान्नक्तभोज्जा स्यादहोरात्रं तु कामतः ॥

१ भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः। शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥

२ अंत्यजैः खानिताः कूपास्तडागो वाप्य एव च। एषु स्नात्वा च पीत्वा च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥

३ प्रपास्वरण्यघटके च सौरद्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च। श्वपाकचाण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्ध्येत् ॥ प्रपां गतो विना तोयं शरीरं यो निषिंचति। एकाहक्षपणं कृत्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ सुराघटप्रपातोये पीत्वा नान्यं जलं तथा होरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्यं जलं पिबेत् ॥

स्नान करे, सुराका घट और प्याऊ नवका इनके जलको पीकर अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्धि होती है । अब भावदुष्टका जो भक्षण उसका प्रायश्चित्त कहते हैं । वर्णका आकार विसदृश (भिन्न रूप) होकर जो शरीरके मल आदिकी वासनाको पूरी करै वा शत्रुके दिये विषकी शंकाको करै वह भावदुष्ट कहाता है उसके भक्षणमें पराशरने यह कहा है कि वाग्दुष्ट भावदुष्ट और भावसे दुष्ट पात्रके अन्नको ब्राह्मण खाकर त्रिरात्रमें शुद्ध होता है, यह वचन जानकर भक्षणमें समझना और जो गौतमने पंचनखोंसे भिन्न भावदुष्टके भक्षणमें वमन और घृतका भक्षण कहा है वह भी अज्ञानके विषयमें समझना । शंकामें तो वसिष्ठका कहा प्रायश्चित्त यह जानना कि अभोज्य और अभक्ष्यकी शंका पैदा हो जाय तो भोजन शुद्धिको कहते हुए मुझसे सुनो, जिसमें खारा लवण न हो ऐसी सूखी सुवर्चला (ब्राह्मी) व शंखपुष्पीको ब्राह्मण तीन दिन पीवै अथवा ढाक बेलके पत्ते कुशा पद्म गूलर इनका क्काथ करके जल पीवै तो त्रिरात्रमें शुद्ध होता है । मनुनेभी अभोज्यके भोजनकी शंकामें कहाहै (अ० ५ श्लो० २१) कि ब्राह्मण अज्ञानसे और विशेष कर जानकर भोजनकी शुद्धिके लिये वर्ष दिनमें एकही कृच्छ्को करै अब कालसे दुष्टके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं । पर्युषित अन्न और दश दिनके भीतर गौ आदिका दुग्ध कालदुष्ट कहाता है । अज्ञानसे उसके भक्षणमें शेपोंमें एक दिनका उपवास करै, यह मनुका कहा प्रायश्चित्त जानना, जानकर भक्षणमें तो यह शंखका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जिनमें घी आदि न होनेसे केवल शुक्त और पर्युषित (बासी) अन्न और ऋजीष (लोहपात्र) में पके हुए अन्नको खाकर तीन रात्र व्रत करै, दश दिनके भीतर गौके दुग्ध आदिके पीनेका प्रायश्चित्त पहिले दिखाय आये । नवीन जलके पीनेमें तो पंचगव्य पीवै, क्योंकि बृहद्याज्ञवल्क्यकी स्मृति है कि, सींग, अस्थि, दांत, शंख, शुक्ति, कपर्दिका (कौडी) इनके पात्रोंमें और नवीन जलको पीकर पंचगव्यसे शुद्धि होती है, जानकर पीवै तो उपवास करै, क्योंकि स्मृत्यन्तरमें यह देखतेहैं कि वर्षाकालका नवीन जल शुद्ध है, उसे तीन दिन न पीवै और वर्षासे भिन्न कालमें दश दिन न पीवै, पीवै तो अहोरात्र भोजन न करै ग्रहणकालके भोजनमें तो चांद्रायण करै, क्योंकि शातातपकी स्मृति है कि नवश्राद्ध, ग्रामयाजकका अन्न ग्रहण, स्त्रियोंके प्रथम गर्भका भोजन इनको करके चांद्रायण करै और जो ग्रहणसे भिन्न निषिद्ध कालमें

१ वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते । भुक्त्वान्नं ब्राह्मणाः पश्चात्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥

२ प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च ।

३ शंकास्थाने समुत्पन्ने अभोज्याभक्ष्यसंज्ञिते । आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ अक्षारलवणां रूक्षां पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् । त्रिरात्रं शंखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ पलाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्ममुदुम्बरम् । अपः पिबेत्क्काथयित्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥

४ संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः । अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥

१ शेषेषूपवसेदहः ।

२ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत् । ऋजीषपक्वं भुक्त्वा तु त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥

३ शृंगास्थिदंतजैः पात्रैः शंखशुक्तिकपर्दकैः । पीत्वा नवोदकं चैव पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

४ काले नवोदकं शुद्धं न पिबेच्च त्र्यहं हि तत् । अकाले तु दशाहं स्यात्पीत्वा नाद्यादहर्निशम् ॥

५ नवश्राद्धं ग्रामयाजकान्नं संग्रहभोजनम् । नारीणां प्रथमे गर्भे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

भोजन करै तो मार्कण्डेयने यह कहा है कि चन्द्रमा और सूर्यका जिस दिन ग्रहण हो उस दिन ग्रहणसे पूर्व भोजन न करै और सूर्योदयसे पहिले तारागणोंके दीखते और सूर्यके अस्त होनेसे भोजन न करै और न उदयसे पूर्व भोजन करे। चन्द्रमाका ग्रहण प्रहरके अनन्तर होय तो आवर्तन (मध्याह्न)से पूर्व भोजन न करै। प्रथम प्रहरमें ग्रहण होय तो प्रथम प्रहरसे पहिले भोजन न करै और अपराह्न मध्याह्न सायाह्न संगवमें भोजन न करै और संगवमें ग्रहण होय तो पहिले भोजन न करै। जो मनुने कहा है कि संधिके समय, अत्यंत प्रभात, अत्यंत सायंकालमें भोजन न करै इत्यादि और जो वह वृहत् शातातपने कहा है कि धान दधि सक्तु इनको लक्ष्मीका अभिलाषी रात्रिमें वर्जदे, और तिल मिला भोजन व तिलोंसे स्नान बुद्धिमान् मनुष्य न करै इत्यादि जो ऐसे हैं जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उनमें योगीश्वरके कहे सौ प्राणायाम जानने कि सब पापोंके दूर करनेके और उपपातक और प्रायश्चित्त न कहा हो उस पापकी निवृत्तिके लिये सौ प्राणायाम करै और अज्ञानसे करनेमें तो मनुका कहा उपवास जानना कि शेष पापोंमें एक दिन उपवास करै, अब गुणसे दुष्ट शुक्त आदिके भक्षणका प्रायश्चित्त कहते हैं, उसमें मनु (अ० ११ श्लो० १५३) ने कहा है कि शुक्त, और कषाय और अपवित्र वस्तु इनको पीकर इतने अप्रयत (असावधान) होता है इतने वह नीचे नहीं निकसता, अज्ञानसे तो जो एकदिन उपवास मनुका कहा है वह जानना, जानकर करनेमें तो शंखका कहा जानना कि केवल शुक्त पर्युषित अन्न ऋजीषपक्व (लोहपक्व) इनको खाकर तीन रात्रव्रत करै, यह भी आमलक आदि फलसे युक्त कांजी आदिसे भिन्नके विषयमें जानना, क्यों कि यह स्मृति है कि जो कुंडी फलसहित घरमें रक्खी हो उसकी कांजी ग्रहण करनी, अन्य पात्रकी कदाचित् ग्रहण न करनी और जिनका स्नेह निकास लिया हो उनमें तो यह गौतमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जिनमेंसे स्नेह निकास लिया हो ऐसे विलयन (घीका मल) पिण्याक (खल) मथित (मठा इनको तब न भक्षण करै जब इनका सारांश निकल गया हो और पंचनखोंसे जो पूर्व कहे हैं उनके भक्षणमें वमन कर दे और घृतका भक्षण करै। नहीं होमे हुए अन्नके भक्षणमें तो लिखितने कहा है

१ चंद्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहानि भार्गव। ग्रहणं तु भवेत्तस्मिन्न पूर्वं भोजनाक्रिया ॥ नाचरेत् संग्रहे चैव तथैवास्तमुपागते। यावत् स्यान्नोदयस्तस्य नाश्नीयात्तावदेव तु ॥ ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधियामतः॥ भुंजीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः। अपराह्णे न मध्याह्ने सायाह्ने न तु संगवे ॥ भुंजीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनाक्रिया ॥

२ नाश्नीयात्संधिवेलायां नातिप्रगे नातिसायम् ।

३ धाना दधि च सक्तूंश्च श्रीकामो वर्जयेन्निशि। भोजनं तिलसंबद्धं स्नानं चैव विचक्षणः

४ प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये। उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि॥

५ शेषेषूपवसेदहः।

१ शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः। तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः॥

२ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत्। ऋजीषपक्वं भुक्त्वा च त्रिरात्रं तु व्रती भवेत्॥

३ कांडिका सफला येषु गृहेषु स्थापिता भवेत्। तस्यास्तु कांजिका ग्राह्या नेतरस्याः कदाचन॥

४ उद्धृतस्नेहविलयनपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याणि नाश्नीयात्, प्राक्पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च।

५ यस्य चाग्नौ न क्षिपते यस्य चान्नं न दीयते। न तद्भोज्यं द्विजातीनां भुक्त्वा चापवसेदहः॥ वृथाकृसरसंयावपायसापूपशष्कुलीः। आहिताग्निर्द्विजो भक्त्वा प्राजापत्यं समाचरेत्॥

कि जिसमेंसे होम न किया हो, वा दिया न हो वह अन्न द्विजातियोंके भोजनयोग्य नहीं, यदि भोजन करै तो एकदिन उपवास करै । कृसर संयाव पायस शष्कुली वृथा (देवताके निमित्त न होमें) जो ये हैं उनको खाकर अग्निहोत्री द्विज प्राजापत्य करै, और अग्निहोत्रीसे भिन्नको तो पूर्वोक्त मनुका कहा उपवास जानना, और भिन्न (फूटे) पात्रमें भोजन करै तो संवर्तने कहा है कि शूद्रोंके वा फूटे पात्रोंमें भोजन करके अहोरात्र उपवास और पंचगव्य पीनेसे शुद्धि होती है । तैसेही अन्यस्मृतिमेंभी कहा है कि वट आक पीपल इनके और कुंभी (तरबूज), तेंदू, कोविदार, कदंब इनके पत्तोंमें भोजन करके चांद्रायण करै और ढाक पद्म इनके पत्तोंमें खाकर गृहस्थी ऐंदव करै और वानप्रस्थ और संन्यासी चांद्रायणके फलको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनको इस पत्तेमें भोजनका निषेध नहीं है । अब हाथसे दिये आदि क्रियादुष्ट अभोज्य अन्नके भक्षणमें प्रायश्चित्त कहते हैं उसमें पराशरका वचन है कि माक्षिक (सहत), फाणित (ईखके रसका विकार), शाक, गोरस, लवण, घृत हाथसे दिये इनको खाकर एकरात्र भोजन न करै, जानकर भक्षण करनेमें तो यह हारीतका कहा जानना कि हाथमें दिये भोजनमें ब्राह्मणसे भिन्नके समीपमें भोजनमें दुष्टोंकी पंक्ति और पंक्तिसे प्रथम भोजनमें और उवटना किये मलमूत्र करनेमें और मृतकसूतकमें शूद्रान्नके भोजनमें और शूद्रोंके संग सोनेमें त्रिरात्र भोजन न करै । और पर्यायका अन्न देनेमें तो यह वृद्धयाज्ञवल्क्यका कहा जानना कि ब्राह्मणके अन्नको शूद्र परसै और शूद्रके अन्नको ब्राह्मण परसै तो ये दोनों अन्न अभोज्य हैं, इनको खाकर एक दिन उपवास करै । शूद्रके हाथसे भोजनमें तो यह ऋतुका कहा जानना कि शूद्रके हाथसे जो भोजन करै वा कदाचित् पानी पीवै तो अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यसे शुद्ध होता है । धमन (फूक मारना) से दुष्टमें तो यह उसनेही कहा है कि आसनपर आरूढ पाद (ऊकडू) होकर वा आधी धोतीको ओढकर वा मुखसे धमन करके जो भोजन करता है वह सांतपन कृच्छ्र करै । पिता आदिके निमित्त दिये अन्न (श्राद्ध) के भोजनमें तो यह भारद्वाजका कहा जानना कि पार्वणश्राद्धमें भोजन करै तो छः प्राणायाम करै । त्रिमास और वर्ष पर्यंतके भोजनमें उपवास करै । वृद्धिश्राद्ध (नांदीमुख) में तीन

१ शूद्राणां भोजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने। अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यात ॥

२ वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुंभीतिंदुकपत्रयोः । कोविदारकदंबेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ पलाशपद्मपत्रेषु गृही भुक्त्वैंदवं चरेत् । वानप्रस्थो यतिश्चैव लभते चांद्रिकं फलम् ॥

३ माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम् । हस्तदत्तानि भुक्त्वा तु दिनमेकमभोजनम् ॥

४ हस्तदत्तभोजनेऽब्राह्मणसमीपे भोजने दुष्टपंक्तिभोजने पंक्त्यग्रतोभोजनेऽभ्यक्तमत्रपुरीषकरणे मृतसूतकशूद्रान्नभोजने शूद्रैः सह संगमे त्रिरात्रमभोजनम् ।

१ ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । द्वयमेतदभोज्यं स्याद्भुक्त्वा तूपवसेदहः ।

२ शूद्रहस्तेन यो भुंक्ते पानीयं वा पिबेत्कचित् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

३ आसनारूढपादो वा वस्त्रार्धप्रावृतोपि वा । मुखेन धमितं भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥

४ भुंक्ते चेत्पार्वणश्राद्धे प्राणायामान् षडाचरेत् । उपवासस्त्रिमासादि वत्सरांतं प्रकीर्तितः ॥ प्राणायामत्रयं वृद्धावहोरात्रं सपिंडने । असरूपे स्मृतं नक्तं व्रतपारणके तथा ॥ द्विगुणं क्षत्रियस्यैतत्त्रिगुणं वैश्यभोजने । साक्षाच्चतुर्गुणं ह्येतत्स्मृतं शूद्रस्य भोजने ॥ अतिथौ तिष्ठति द्वारि ह्यपः प्राश्नाति ये द्विजाः । रुधिरं तद्भवेद्वारि भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥

प्राणायाम और सपिंडीमें अहोरात्र उपवास करै और असरूप (भिन्न वर्णका विधिसे हीन) में नक्त और तैसेही व्रतकी पारणामें भोजन करै तो नक्तव्रत करै। यही प्रायश्चित्त क्षत्रियकेमें दूना, वैश्यकेमें तिगुना और साक्षात् शूद्रके भोजनमें चौगुना कहा है। और अतिथिके द्वार-पर टिकनेके समय जो द्विज जल पीते हैं वह जल रुधिर होता है, उसको पीकर चांद्रायण करै। और हारीतनेभी कहा है कि एकादशाह और अस्थिसंचयनमें अन्नको खाकर विधिसे स्नान और उपवास करके कूष्मांडीमंत्रसे घीकी आहुति दे। विष्णुनेभी कहा है कि नवश्राद्धमें प्राजापत्य, आद्यमासिक श्राद्धमें पादोन प्राजापत्य और त्रिपक्षमें आधा प्राजापत्य करै। द्विमासिक श्राद्धमें पंचगव्य पीवै यहभी आपत्तिके विषयमें है। विना आपत्तिमें तो यह हारीतका कहा जानना कि नवश्राद्धमें चांद्रायण और मिश्रकमें प्राजापत्य और पुराण श्राद्धोंमें एक दिन उपवास और प्राजापत्य करै। यहां मिश्रक शब्दसे आद्यमासिक लेते हैं। द्वितीय मासिक आदिमें तो यह षट्त्रिंशन्मतमें कहा जानना कि नवश्राद्धमें प्राजापत्य आद्यमासिकमें पादोन, त्रैपक्षिकमें उसका आधा, द्वैमासिकमें प्राजापत्यका पाद, और छः मास और वार्षिकमें पादोनकृच्छ्र, और अन्यमासोंमें त्रिरात्र और नित्यके श्राद्धमें एक दिन उपवास करै। क्षत्री आदिके श्राद्धमें विना आपत्ति भोजनमें तो वहांही विशेष कहा है कि नवश्राद्धमें चांद्रायण, मासिकमें पराक, त्रैपाक्षिकमें सांतपन, द्वैमासिकमें कृच्छ्र करना, क्षत्रियके नवश्राद्धमें यह व्रत कहा है और वैश्यके श्राद्धमें क्षत्रियोंसे आधा अधिक बुद्धिमानोंने कहा है, शूद्रके तो नवश्राद्धमें दो चांद्रायण और मासमें डेढ चांद्रायण और त्रिपक्षमें ऐंदवव्रत, दो मासमें पराक, उसके आगे सांतपन कहा है। और जो शंखका वचन है कि नवश्राद्धमें चांद्रायण, मासिकमें पराक, त्रिपक्षमें अतिकृच्छ्र छः मासमें कृच्छ्र, वार्षिकमें पादकृच्छ्र, पुनः आब्दिक (दूसरा वर्ष) में एक दिन उपवास, इससे आगे शंखके वचनानुसार दोष नहीं, वह वचन उस मनुष्यके श्राद्धोंमें है जो सर्प आदिसे मराहो, अथवा जो चोर पतित क्लीब आदि पंक्तिबाह्य हैं उनके विषयमें है क्यों कि इन वचनोंसे भरद्वाजने गुरु प्रायश्चित्त कहा

१ एकादशाहे भुक्त्वान्नं भुक्त्वा संचयने तथा। उपोष्य विधिवत् स्नात्वा कूष्मांडैर्जुहुयाद्घृतम्।

२ प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं तु पंचगव्यं द्विमासिके।

३ चांद्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके। एकाहस्तु पुराणेषु प्राजापत्यं विधीयते॥

४ प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं स्यात्पादो द्वैमासिके तथा॥ पादोनकृच्छ्रं निर्दिष्टं षण्मासे च तथा द्विके। त्रिरात्रं चान्यमासेषु प्रत्यहं चेदहः स्मृतम्।

१ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतः। त्रैपक्षिके सांतपनं कृच्छ्रो मासद्वये स्मृतः॥ क्षत्रियस्य नवश्राद्धे व्रतमेतदुदाहृतम्। वैश्यस्यार्धाधिकं प्रोक्तं क्षत्रियात्त मनीषिभिः॥ शूद्रस्य तु नवश्राद्धे चरेच्चांद्रायणद्वयम्। सार्धं चांद्रायणं मासे त्रिपक्षे त्वैन्दवं व्रतम्॥ मासद्वये पराकः स्यादूर्ध्वं सांतपनं स्मृतः॥

२ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके स्मृतम् पक्षत्रयेतिकृच्छ्रः स्यात्षण्मासे कृच्छ्र एव तु॥ आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके। अत ऊर्ध्वं न दोषः स्याच्छंखस्य वचनं यथा॥

३ चांडालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्॥ पतनानाशकैश्चैव विषोद्बंधनकैस्तथा। भुक्त्वैषां षोडशश्राद्धे कुर्यादिंदुव्रतं द्विजः॥ अपांक्तेयान्यनुद्दिश्य श्राद्धमेकादशेहनि। ब्राह्मणस्तत्र भुक्त्वान्नं शिशुचांद्रायणं चरेत्॥ आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति। संकल्पिते तथा भुक्त्वा त्रिरात्रक्षपणं भवेत्॥

है कि चांडाल,जल, सर्प, ब्राह्मण, बिजली, दाढवाले पशु इनसे पापियोंका मरण होता है। पतन (गिरना) अनशन, विष, उद्बंधन (कैद) इनसे जो मरे हों इनके श्राद्धमें भोजन करके द्विज इंदुव्रतको करै। तैसेही अपांक्तेयोंसे अन्योंसे अन्योंके उद्देश (निमित्त) से एकादशाहके दिन ब्राह्मण श्राद्धको खाकर शिशुचान्द्रायण करै। आमश्राद्धमें भोजन करके तप्तकृच्छ्रसे शुद्धि होती है। और संकल्प किये श्राद्धमें भोजन करके भोजनके विना तीन रात्र बितावै। ब्रह्मचारियोंमें तो वृहत्यमने विशेष कहा है कि जो द्विज व्रतोंकी समाप्तिसे पहिले मासिक आदि श्राद्धमें भोजन करै उसको तीनरात्र उपवास प्रायश्चित्त कहा है। और तीन प्राणायाम और घृतका भक्षण करके शुद्ध होता है। यह अज्ञानके विषयमें है। जानकर भोजनमेंभी उसनेही कहा है तो जो मधु मांसका श्राद्ध और सूतकमें भोजन करै वह प्राजापत्य व्रत करके शेष व्रतको समाप्त करै। आमश्राद्धमें तो सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त है। क्योंकि षट्त्रिंशत् मतमें आमश्राद्धमें सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त कहा है। और जो उशनाने कहा है कि श्राद्धका भोक्ता द्विज गायत्री पढकर दशवार जल पीवै, फिर संध्या करनेसे शुद्ध होता है, वह वचन उस श्राद्धके विषयमें है जिसका प्रायश्चित्त नहीं कहा। संस्कारका अंग जो श्राद्ध उसके भोजनमें तो व्यासने विशेष कहा है कि जिसका चूडाकर्म होचुकाहो उसके और नाम करणसे प्रथमके और जातकर्मके श्राद्धमें भोजन करके सान्तपन करै, इससे अन्य संस्कारोंमें भोजन करता हुआ निषिद्ध भोजी द्विज, गुरुकी आज्ञाके अनुसार शुद्ध होताहै। सीमन्तोन्नयन आदिमें तो धौम्यने विशेष कहा है, ब्रह्मौदन, सोम, सीमन्तोन्नयन, जातश्राद्ध, नवश्राद्ध इनमें भोजन करता हुआ द्विज चांद्रायण करै। यहां ब्रह्मौदन पदसे सोमके साहचर्यसे यज्ञका अंगकर्म लेना। अब परिग्रह अशुचि अन्नके भोजनका प्रायश्चित्त कहते हैं। जो स्वरूपसे निषिद्ध न हो और किसी विशेष पुरुषके सम्बंधसे अभोज्य कहा जाय उसमें योगीश्वरने अग्निहीनके विना दिये अन्नको आपत्तिके विना भोजन न करै। इस श्लोकसे लेकर साढे पांच ५॥ श्लोकतक जिनका अन्न भोजन नहीं करना वे कहे हैं। और मनु (अ० ४ श्लो० २०९–२१७) नेभी कुछ

१ मासिकादिषु योऽश्नीयादसमाप्तव्रतो द्विजः। त्रिरात्रमुपवासोऽस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥

२ मधु मांसं च योऽश्नीयाच्छ्राद्धं सूतकमेव वा। प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥

३ आमश्राद्धे तदर्द्धन्तु प्राजापत्यं तु सर्वदा।

४ दशकृत्वः पिबेच्चापो गायत्र्या श्राद्धभुक् द्विजः। ततः संध्यामुपासीत शुध्येत्तु तदनन्तरम् ॥

५ विवृत्तचूडाहोमे तु प्राङ्नामकरणात्तथा। चरेत्सान्तपनं भुक्त्वा जातकर्मणि चैव हि ॥ अतोऽन्येषु तु भुक्त्वान्नं संस्कारेषु द्विजोत्तमः। नियोगादुपवासेन शुद्ध्येत निन्द्यभोजनः ॥

१ ब्रह्मौदने च सोमे च सीमंतोन्नयन तथा। जातश्राद्धे नवश्राद्धे द्विजश्चां ायणं चरेत् ॥

२ नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिहुते तथा। स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुंजीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥ मत्तक्रुद्धातुराणां त न भुंजीत कदाचन। गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥ स्तेनगायकयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च। दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥ अभिशस्तस्य पंढस्य पुंश्चल्या दांभिकस्य च। चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्यायान्नमनिर्दशम्। अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः ॥ द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम्। पिशुनानृतिनोश्चैव क्रतुविक्रयिणस्तथा ॥ शैलूषतंतुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च। कर्मारस्य निषादस्य रंगावतरणस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा। श्ववतां शौंडिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च ॥ रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे। मृष्यंति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥

अधिक वेही कहे हैं कि वेदपाठीसे भिन्नके किये यज्ञमें, ग्रामयाजक, स्त्री, नपुंसक इनके किये होममें ब्राह्मण कदाचित् भोजन न करै, मत्त क्रोधी रोगी इनके यहां भोजन न करै। गण (समुदाय, चंदा) का और वेश्याका अन्न और बुद्धिमानोंने निंदित जो कहा वह अन्न, चोर, गानेवाला, बढई, वार्धुषिक (जो व्याजसे जीवै), दीक्षित, कदर्य, बंधा हुआ (जिसके बेडी पडी हों), अभिशस्त (जिसे हिंसाका दोष लगाहो), षंढ (नपुंसक), पुंश्चली (व्यभिचारिणी), दांभिक (डिंभधारी) चिकित्सक (वैद्य), मृगयु (हेडी), क्रूर स्वभाव, उच्छिष्टका भोजी, उग्र (प्रचंड), सूतिका, पर्यायका, दशदिनसे प्रथम सूतकका और अनर्चित वृथामांस (जो देवताके निमित्त न पकाया हो) और जिसके पति न हो ऐसी स्त्रीका अन्न, शत्रु, नगरी इनका अन्न, पतितका अन्न, अवक्षुत (जिसपर छिक्का हुई हो) अन्न, पिशुन (चुगल) झूठा इनका अन्न, यज्ञ विक्रय करनेवालेका अन्न, नट, तंतुवाय (जुलाहा वा कोली), कृतघ्न, कर्मार (लुहार), निषाद, रंगरेज, सुनार, वेण, शस्त्र बेचनेवाला, कुत्तेवाले, शौंडिक (हिंसक), धोबी (रजक), नृशंस (क्रूर), जिसके घरमें जार रहता हो और जारको सहतेहों, जिनको स्त्रीने जीतलिया हो इन सबका अन्न और दश दिनके प्रहिले प्रेतका अन्न और जिससे मनकी प्रसन्नता न हो ऐसा अन्न इतने अन्न भोजनके अयोग्य हैं। इस विषयके पदार्थ अभक्ष्यकांडमें कह आये हैं। इसमें प्रायश्चित्त मनु (अ० ४ श्लो० १२२) ने कहा है कि अज्ञानसे इनमेंसे किसीके अन्नको भक्षण कर तीन दिन उपवास करै। और जानकर पूर्वोक्तोंका भोजन, और वीर्य विष्ठा मूत्रको खाकर कृच्छ्र करै। पैठीनसीनेभी अज्ञानसे तीन रात्रही कहा है कि, कुनखी, श्यावदंत, पिताके संग विवादी, स्त्रीजित, कुष्ठी, पिशुन, सोमका विक्रयी, वाणिजक (व्यापारी), ग्रामका याजक, अभिशस्त, शूद्रका पुत्र, परिवित्ति, परिवेत्ता, दिधिषूका पति, पुनर्भूका पुत्र, चोर, कांडपृष्ठ, सेवक ये सब अभोज्यान्न हैं। अपांक्तेय श्राद्धके अयोग्य हैं इनका अन्न खाकर देकर अज्ञानसे त्रिरात्र होता है। शंखने तो कुछ अधिक इनकोही पढकर चांद्रायण कहा है वह अभ्यासके विषयमें समझना। गौतमने तो उच्छिष्ट पुंश्चली अभिशस्त इत्यादिसे अभोज्य है अन्न जिनका उनको पढकर पंचनखोंसे पूर्व २ के भक्षणमें वमन और घृतका भक्षण प्रायश्चित्त कहा है वह आपत्तिके विषयमें है। जो बलात्कारसे खाता है उसके लिये आपस्तंबने विशेष कहा है कि जिनको म्लेच्छ चांडाल चोरोंने

१ भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्याक्षपणं त्र्यहम्। मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च ॥

१ कुनखी श्यावदंतः पित्रा विवदमानः स्त्रीजितः कुष्ठी पिशुनः सोमविक्रयी वाणिजको ग्रामयाजकोऽभिशस्तो वृषल्यामभिजातः परिवित्तिः परिविंदानो दिधिषूपतिः पुनर्भूपुत्रश्चौरः कांडपृष्ठः सेवकश्चेत्यभोज्यान्ना अपांक्तेया अश्राद्धार्हाः एषां भुक्त्वा दत्त्वा वा अविज्ञानात्त्रिरात्रम्।

२ प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दनं घृतप्राशनं च।

३ बलाद्दासीकृता ये तु म्लेच्छचांडालदस्युभिः। अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥ उच्छिष्टमार्जनं चैव तथोच्छिष्टस्य भोजनम्। खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणम् ॥ तत्स्त्रीणां च तथा संगस्ताभिश्च सह भोजनम्। मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ चांद्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथवा भवेत्। चांद्रायणं पराकं चाचरेत्संवत्सरोषितः ॥ संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्द्धं यावकं पिबेत्। मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुद्ध्यति ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः। संवत्सरैस्त्रिभिश्चैव तद्भावं स निगच्छति ॥

बलसे दास कर लिये हैं और उनसे गोहिंसा आदि अशुभ कर्म करा दिया है और उच्छिष्टका मार्जन वा भोजन करा दिया है वा खर, ऊंट, विड्वराह इनके मांसका भक्षण कराया हो और उनकी स्त्रियोंका संग, और स्त्रियोंके संग भोजन किया होय तो द्विजातियोंका शोधन उनके संग एक मासके वासमें प्रजापत्य है, और आहिताग्निका चांद्रायण वा पराक होता है। और वर्षदिनतक वास करके चांद्रायण वा पराकको करै। और शूद्र वर्षदिन वास करके पक्षभर जौ पीवै वा शूद्र मासभर वास करके कृच्छ्रपादसे शुद्ध होता है। और वर्ष दिन अधिक वास करनेमें तो द्विजोंमें उत्तम प्रायश्चित्तकी कल्पना करैं। और तीन वर्ष चांडाल आदिकोंके संग वसै तो उनकेही भाव (जाति) को प्राप्त हो जाता है। आशौच जिसको है उसके ग्रहण किये अन्नमें तो छागलने कहा है कि अज्ञानसे सूतक वा मृतकका भोजन करनेमें सौ प्राणायाम करके शूद्रके सूतकमें ब्राह्मण शुद्ध होते हैं। वैश्यके सूतकमें साठ ६० और क्षत्रियके सूतकमें बीस और ब्राह्मणके सूतकमें दश प्राणायाम करैं। और ब्राह्मण आदि क्रमसे एक, तीन, पांच, सात रात्र भोजन न करैं, फिर इनकी शुद्धि पंचगव्य पीनेसे होती है। यह भी अज्ञानके विषयमें समझना। जानकर भक्षणमें तो मार्कंडेयने कहा है कि ब्राह्मणके आशौचमें भोजन करके द्विज सांतपन करै। क्षत्रियके अशौचमें तप्तकृच्छ्र, वैश्यके अशौचमें महासांतपन और शूद्रके अशौचमें भोजन करके तीन मासका व्रत करै और जो शंखने कहा है कि शूद्रके सूतकमें भोजन करके छः मासतक व्रत करै। और वैश्यके सूतकमें भी तीन मासतक व्रत और क्षत्रियके अशौचमें दो मासका व्रत और ब्राह्मणके अशौचमें भोजन करके एक मास व्रत करै, यह वचन अभ्यासके विषयमें है। और यह प्रायश्चित्त अशौचके अनन्तर जानना क्योंकि विष्णुकी यह स्मृति है कि जो ब्राह्मण आदिकोंके अशौचमें एक वार भी भोजन करता है उसको उतनाही अशौच है जितना उनको होता है और अशौचके बीतने पर प्रायश्चित्त करै। जिसके पुत्र न हो उस आदिके अन्न भक्षण करनेमें तो लिखितने कहा है कि व्याज लेनेवाला व्रतहीन और पुत्रहीन और शूद्र इनके अन्नको खाकर तीन रात्र भोजन न करै। तैसेही जो पराये पाकसे निवृत्त है और जो पराये पाकमें तत्पर हैं और अपच इनके अन्नको खाकर द्विज चांद्रायण करै, यह भी अभ्यासके विषयमें है। परपाक निवृत्त आदि-

१ अज्ञानाद्भोजने विप्राः सूतके मृतकेपि वा। प्राणायामशतं कृत्वा शुद्ध्यंते शूद्रसूतके॥ वैश्ये षष्टिर्भवेद्राज्ञि विंशतिर्ब्राह्मणे दश। एकाहं च त्र्यहं पंच सप्तरात्रमभोजनम्॥ ततः शुद्धिर्भवत्येषां पंचगव्यं पिवेत्ततः॥

२ भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सांतपनं द्विजः। भुक्त्वा तु क्षत्रियाशौचे तप्तकृच्छ्रो विधीयते॥ वैश्याशौचे तथा भुक्त्वा महासांतपनं चरेत्। शूद्रस्यैव तथा भुक्त्वा त्रिमासान्व्रतमाचरेत्॥

१ शूद्रस्य सूतके भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत्॥ वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत्॥ क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत्। ब्राह्मणस्य तथाशौचे भुक्त्वा मासं व्रती भवेत्॥

२ ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचं व्यपगमे तु प्रायश्चित्तं कुर्यात्।

३ भुक्त्वा वार्धुषिकस्यान्नमव्रतस्यासुतस्य च। शूद्रस्य च तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥ परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च। अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत्॥

का लक्षण भी उसनेही कहा है कि जो अग्निको ग्रहण करके और समारोप (स्थापन) करके पंचयज्ञोंको न करै वह मुनियोंने परपाक निवृत्त कहा है और जो पंच यज्ञ करके पराये अन्नसे नियमसे प्रातःकाल उठकर जीवै वह परपाकरत है। जो गृहस्थ धर्ममें स्थित होकर दानसे रहित है, धर्मतत्त्वके ज्ञाता ऋषियोंने वह अपच कहा है और जो ब्रह्मचारी आदिके अन्न भोजनमें वृद्धयाज्ञवल्क्यने कहा है कि यति और ब्रह्मचारी ये दोनों पक्वान्नके स्वामी हैं अर्थात् अन्यका किया पाक खाते हैं उनका अन्न न खाय और खावै तो चांद्रायण करै और जो पार्वणश्राद्ध न करनेवालेके भोजनमें भरद्वाजने कहा है कि पक्ष वा मासमें जिसके यहां देवता नहीं खाते उस दुरात्माका भोजन करके द्विज चांद्रायण करै। ये दोनों वचन भी अभ्यासके विषयमें हैं पहिले गिने हुओंसे भिन्न जो निषिद्धाचारी हैं उनके अन्न भोजनमें तो षट्त्रिंशन्मतका कहा प्रायश्चित्त जानना कि आचारसे रहित और निषिद्धाचारी जो द्विज उसके अन्नको खाकर चांद्रायण करै, इसकेही वर्षभरके अभ्यासमें षट्त्रिंशन्मतमेंही कहा है कि उपपातकसे युक्तके अन्नको एक वर्षतक निरन्तर भक्षण करके द्विज शुद्धिके लिये पराक करै, यह अभक्ष्यभक्षणके समुदाय विशेष और दिनोंके व्रतोंका समूह ब्राह्मणको है। क्षत्रिय आदिकोंको तो एक २ पाद कम होता है क्योंकि विष्णुकी स्मृति है कि ब्राह्मणको संपूर्ण क्षत्रियको पादोन वैश्यको आधा और शूद्रजातियोंको एक पाद प्रायश्चित्त देना ॥

इति अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

निषिद्धोंकी गिनतीके समय उपपातकके अनन्तर जातिभ्रंशकर गिने हैं अब उनके प्रायश्चित्तोंको कहते हैं, उसमें मनु (अ० ११ श्लो० १२४-१२५) ने कहा है कि जातिभ्रंश करनेवाले किसी एक भी कर्मको जानकर करके सांतपन कृच्छ्र और अज्ञानसे करके प्राजापत्य करै और संकर अपात्रकृत्या इनमें मासभर ऐंदवसे शुद्धि होती है और मलिनीकरणियोंमें तीन दिन तप्तयावक भक्षण प्रायश्चित्त है। यहां अन्यतम (कोईसा) इसका सर्वत्र सम्बन्ध है और यहां विशेष यमने कहा है कि संकरीकरण कर्मको करके मासभर जौ भक्षण करै अथवा कृच्छ्रातिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करै। अपात्रीकरण कर्मको करके तप्तकृच्छ्रसे शुद्ध होता है वा शीतकृच्छ्रसे वा महासांतपनसे शुद्धि

१ गृहीत्वाग्निं समारोप्य पंचयज्ञान्न निर्वपेत्। परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः॥ पंचयज्ञांस्तु यः कृत्वा परान्नादुपजीवति। सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः॥ गृहस्थधर्मवृत्तो यो ददाति परिवर्जितः। ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः संप्रकीर्तितः॥

२ यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्॥

३ पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्नंति देवताः। भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत्॥

४ निराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च। अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम्॥

५ उपपातकयुक्तस्य अब्दमेकं निरंतरम्। अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्यात्पराकं तु विशोधनम्॥

१ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम्। वैश्येऽर्धं पाद एकस्तु शूद्रजातिषु दृश्यते॥

२ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतमामिच्छया। चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया॥ संकरापात्रकृत्यासु मासः शोधनमैंदवम्। मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकस्त्र्यहम्॥

३ संकरीकरणं कृत्वा मासमश्नीत यावकम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रमथवा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ अपात्रीकरणं कृत्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति। शीतकृच्छ्रेण वा शुद्धिर्महासान्तपनेन वा॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्॥

होती है मलिनीकरणीय कर्मोंमें तप्त कृच्छ्रसे शुद्धि वृहस्पतिनेभी जातिभ्रंशकरमें विशेष कहा है कि ब्राह्मणकी पीडा और रासभ आदिका प्रमापण (हिंसा) और निंदितोंसे धनका ग्रहण करके आधा कृच्छ्र शोधन होता है। मनु आदिकोंके कहे जो ये जातिभ्रंशकर आदि कर्मोंके प्रायश्चित्त हैं उनके विषयका विभाग जाति शक्ति आदिकी अपेक्षासे जानना। इस पूर्वोक्त प्रकारसे योगीश्वरके हृदयमें स्थित अभक्ष्यभक्षण आदिका प्रायश्चित्त संक्षेपसे दिखाया। अब प्रकरणमें अनुसरण करते हैं अर्थात् प्रकरणकी वात कहते हैं॥

भावार्थ–गोष्ठमें वसता और मासभर केवल दूधको पीता और गायत्री जपको करता हुआ ब्रह्मचारी निंदित प्रतिग्रह लेनेसे शुद्ध होता है॥ २९०॥

प्राणायामीजलेस्नात्वाखरयानोष्ट्रयानगः।
नग्नःस्नात्वाचभुक्त्वाचगत्वाचैवदिवास्त्रियम्॥

पद–प्राणायामी १ जले ७ स्नात्वाऽ–खरयानोष्ट्रयानगः १ नग्नः १ स्नात्वाऽ–चऽ–भुक्त्वाऽ–चऽ–गत्वाऽ–चऽ–एवऽ–दिवाऽ–स्त्रियम्२॥

योजना–खरयानोष्ट्रयानगः च पुनः नग्नः स्नात्वा च पुनः दिवा स्त्रियं गत्वा जले स्नात्वा प्राणायामी शुद्ध्येत्॥

तात्पर्यार्थ–अब प्रकीर्णकका प्रायश्चित्त कहते हैं। खर और ऊंटसे युक्त रथ आदि यानमें जो गमन करै और नग्न होकर जो स्नान वा भोजन करै और दिनमें अपनी स्त्रीके संग जो भोग करै वह तडाग और तरंगिणी आदिमें स्नान और प्राणायाम करके शुद्ध होता है। यहभी जानकर करनेमें है, क्योंकि यह मनु[1]की स्मृति है (अ० ११ श्लो० २०१) कि उष्ट्रयानमें और खरके यानमें जानकर बैठे तो सचैल स्नान करके सदैव शुद्ध होता है। अज्ञानसे बैठनेमें तो स्नानमात्रकी कल्पना करनी और साक्षात् खरपर चढे तो दूने प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी, क्योंकि उसके चढनेमें पाप गुरु है॥

भावार्थ–खर और ऊंटके यानपर चढकर और नग्न होकर स्नान और भोजन करके और दिनमें स्त्रीसे गमन करके जलमें स्नान और प्राणायामसे शुद्ध होता है॥ २९१॥

गुरुंहुंकृत्यत्वंकृत्यविप्रंनिर्जित्यवादतः।
बद्ध्वावावाससाक्षिप्रंप्रसाद्योपवसेद्दिनम्॥

पद–गुरुम् २ हुंकृत्यऽ–त्वंकृत्यऽ–विप्रम् २ निर्जित्यऽ–वादतःऽ–बद्ध्वाऽ–वाऽ–वाससा ३ क्षिप्रम्ऽ–प्रसाद्यऽ–उपवसेत् क्रि–दिनम् २॥

योजना–गुरुं त्वंकृत्य विप्रं हुंकृत्य, वादतः निर्जित्य वा वाससा बद्ध्वा क्षिप्रं प्रसाद्य दिनम् उपवसेत्॥

तात्पर्यार्थ–पिता आदि गुरुको तुं करके अर्थात् तू इस प्रकार मत कहै। तैंने इस प्रकार किया इस प्रकार युष्मच्छब्दको एक वचनान्त कहके झिडककर बडे वा अपने समान वा छोटे ब्राह्मणको क्रोधसे हुंकरके अर्थात् हुं तूष्णीं रहो हुं ऐसे मत कहो, इस प्रकार आक्षेप करके और जयके फल जो जल्प और वितण्डा इनसे ब्राह्मणको जीतकर और कोमल वस्त्रसेभी कंठमें बांधकर शीघ्रही चरणोंमें नमस्कारसे प्रसन्न करके अर्थात् उसके क्रोधको दूर कराकर एक

[1] ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा रासभादिप्रमापणम्। निन्दितेभ्यो धनादानं कृच्छ्रार्धं व्रतमाचरेत्॥

[1] उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः। सवासा जलमाप्लुत्य प्राणायामेन शुद्ध्यति॥

दिन उपवास करै । और जो यमने कहा है कि वादसे ब्राह्मणको जीतकर प्रायश्चित्त किया चाहै तो तीन रात्र उपवास और स्नान करनेके अनन्तर प्रणाम करके ब्राह्मणकी प्रसन्नता करै, यह वचन अभ्यासके विषयमें समझना ॥

भावार्थ-गुरुको तुं और ब्राह्मणको हुं और वादसे जीतकर वा वस्त्रसे बांधकर शीघ्र प्रसन्न करके एक दिन उपवास करै ॥ २९२ ॥

विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वतिकृच्छ्रो निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते ॥ २९३ ॥

पद-विप्रदण्डोद्यमे ७ कृच्छ्रः १ तु ऽ-अतिकृच्छ्रः १ निपातने १ कृच्छ्रातिकृच्छ्रः १ असृक्पाते ७ कृच्छ्रः १ अभ्यन्तरशोणिते ७ ॥

योजना-विप्रदंडोद्यमे कृच्छ्रः तु पुनः निपातने अतिकृच्छ्रः असृक्पाते कृच्छ्रः अभ्यन्तरशोणिते कृच्छ्रः शुद्धिहेतुः भवति ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दण्डको उठावै तो कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होती है और दंडसे ताडना करै तो अतिकृच्छ्र और रुधिर निकस आवै तो कृच्छ्रातिकृच्छ्र और अभ्यन्तर (भीतर) शोणित होय तो कृच्छ्र शुद्धिका हेतु होता है । बृहस्पतिनेभी यह विशेष कहा है कि काठ आदिकी ताडनासे त्वचा फट जाय तो कृच्छ्र, अस्थि टूटजाय तो अतिकृच्छ्र करै । अंग कोई कट जाय तो पराक करै । पादके प्रहारमें तो यमने कहा है कि ब्राह्मणको चरणसे स्पर्श करके प्रायश्चित्त किया चाहै तो एक दिन उपवास और स्नान करनेके अनन्तर ब्राह्मणको प्रणाम करके उसको प्रसन्न करै । मनु (अ० ११ श्लो० २०२) ने तो अन्यभी प्रकीर्णकके प्रायश्चित्त दिखाये हैं कि जलोंके विना अर्थात् समीपमें जलको न रखकर अथवा जलोंमें जो दुःखी मनुष्य मलमूत्रको त्यागता है वह सचैल स्नान और गौका स्पर्श करके शुद्ध होता है, यह वचन अज्ञानके विषयमें है । जानकर तो यह यमका कहा प्रायश्चित्त जानना कि जो आपत्तिके समय जलके विना मल मूत्र करै वह एक दिन उपवास करके जलमें सचैल स्नान करै । और जो सुमंतुका वचन है कि जल और अग्निमें जो मलको त्यागै वह तप्तकृच्छ्र करै वह रोगीसे भिन्नको विषयमें वा अभ्यासके विषयमें समझना । और नित्य जो वेदोक्त कर्म हैं उनके लोपमें तो मनु (अ० ११ श्लो० २०३) ने कहा है कि वेदोक्त नित्य कर्मोंके और स्नातकके व्रतोंके लोपमें भोजन न करनाही प्रायश्चित्त है । वेदोक्त दर्श पौर्णमास आदि कर्मोंमें और स्मृतियोंमें उक्त नित्य होम आदिकोंमें जो प्रतिपदोक्त (प्रति कर्ममें नाम लेकर कहे) प्रायश्चित्त हैं, उनके संग उपवासका समुच्चय है अर्थात् वे और उपवास दोनों करने और धन होनेपरभी जीर्ण और मलीन वस्त्र धारण करै इत्यादि पूर्वोक्त स्नातकके व्रत समझने । स्नातक व्रतोंके अधिकार (प्रकरण) में ऋतु-

---

१ वादेन ब्राह्मणं जित्वा प्रायश्चित्तविधित्सया । त्रिरात्रोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥

२ काष्ठादिना ताडयित्वा त्वग्भेदे कृच्छ्रमाचरेत् । अस्थिभेदेऽतिकृच्छ्रः स्यात्पराकस्त्वंगकर्तने ।

३ पादेन ब्राह्मणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तंविधित्सया । दिवसोपोषितः स्नात्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥

१ विनाद्भिरप्सु वाप्यार्त्तः शारीरं सन्निषेव्य तु । सचैलं बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥

२ आपद्गतो विना तोयं शारीरं यो निषेवते । एकाहं क्षपणं कृत्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥

३ अप्स्वग्नौ वा मेहतस्तप्तकृच्छ्रम् ।

४ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥

५ एतेषामाचाराणामेकैकस्य व्यतिक्रमे । गायत्र्यष्टशतं जप्यं कृत्वा पूतो भवति ।

नेभी कहा है कि इन आचरणोंमें एक २ के अवलंबनमेंभी आठ सौ गायत्री जप करके पवित्र होता है । पंच महायज्ञोंके न करनेमें तो बृहस्पतिने कहा है कि जो गृहस्थी अनातुर और धनी होकरभी पांच महायज्ञोंके प्रतिदिन किये विना भोजन करता है वह कृच्छ्रार्धसे शुद्ध होता है । जो आहिताग्नि होकर अग्निका उपस्थान (सेवा) पर्वके समय नहीं करता और ऋतुके समय भार्याका गमन नहीं करता वहभी कृच्छ्रार्द्ध करै । दूसरी भार्या आदिके मरनेमें तो देवलने कहा है कि पहिली भार्याके जीवते हुए जो दूसरी भार्याको वैतानिक अग्नियोंसे दग्ध करता है वह कर्म सुरा पीनेके समान है । अपनी भार्याके अभिशंसन (निंदा) में तो यमने कहा है कि जो मनुष्य अपनी भार्याको क्रोधसे ऐसे कहता है कि तू गमनके योग्य नहीं वह ब्राह्मण होय तो प्राजापत्य करै, क्षत्री नौ दिन, वैश्य छः दिन, शूद्र तीन दिन व्रत करै । स्नानके विना भोजनमें तो यमने कहा है कि रिक्त (खाली) कमंडलुको धारण और विना स्नान भोजन करै तो अहोरात्र उपवास और एक दिनके जपसे शुद्धि होती है । एक पंक्तिमें बैठे हुओंके मध्यमें जो स्नेह आदिसे विषम (न्यून अधिक) परसता है तो यमने कहा है कि न पंक्तिमें विषम दे, न मांगै, न दिवावै, क्योंकि याचक दायक और दाता ये तीनों स्वर्गमें नहीं जाते और प्राजापत्य करनेसे उस कर्मसे छूटते हैं । और नदीके संक्रम (मार्ग वा पुल) को जो नष्ट करै और जो कन्याके विवाहमें विघ्न करै और जो पूजा आदि समर्मे विषम करै इनका प्रायश्चित्त नहीं है, इन तीनों कर्मोंका प्रायश्चित्त ढूंढने योग्य है अर्थात् नहीं है । और ब्राह्मण भिक्षासे मिले अन्नसे चांद्रायण करै । इंद्रधनुषके दर्शन आदिमें तो ऋष्यशृंगने कहा है कि जो इंद्रका धनुष और पलाश (ढाक) की अग्नि यदि अन्यको दिखावै तो अहोरात्र प्रायश्चित्त और धनुषका दंड दक्षिणा प्रायश्चित्त है। पतित आदिके संभाषणमें तो गौतमने कहा है कि म्लेच्छ अशुचि अधार्मिक इनके संग संभाषण न करै, करै तो पुण्यात्माओंका मनसे ध्यान करै वा ब्राह्मणके संग संभाषण करै । शय्या अन्न धन इनका लाभ और वधमें तो पृथक् २ वर्षोंका प्रायश्चित्त है अर्थात् भार्याके अन्न धनको लेना और नष्ट (विघ्न) करनेमें प्रत्येक कर्ममें वर्ष दिनका प्राकृत ब्रह्मचर्य प्रायश्चित्त है । तैसेही यज्ञोपवीतके विना मलमूत्र

---

१ अनिवर्त्य महायज्ञान्यो भुंक्ते प्रत्यहं गृही । अनातुरः सति धने कृच्छ्रार्धेन विशुद्ध्यति ॥ आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि । ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोपि कृच्छ्रार्धमाचरेत् ॥

२ मृतां द्वितीयां यो भार्यां दहेद्वैतानिकाग्निभिः । जीवंत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत् ॥

३ स्वभार्यां तु यदा क्रोधादगम्येति नरो वदेत् । प्राजापत्यं चरेद्विप्रः क्षत्रियो दिवसान्नव ॥ षड्रात्रं तु चरेद्वैश्यस्त्रिरात्रं शूद्र आचरेत् ।

४ वहन्कमंडलुं रिक्तमस्नातोऽश्नंश्च भोजनम् । अहोरात्रेण शुद्धिः स्याद्दिनजप्येन चैव हि ॥

१ न पंक्त्यां विषमं दद्यान्न याचेत न दापयेत् याचको दायको दाता न वै स्वर्गस्य गामिनः ॥ प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यते कर्मणस्ततः । नदीसंक्रमहंतुश्च कन्याविघ्नकरस्य च ॥ समे विषमकर्तुश्च निष्कृतिर्नोपपद्यते । त्रयाणामपि चैतेषां प्रत्यापत्तिं तु मार्गताम् ॥ भैक्षलब्धेन चान्नेन द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥

२ इंद्रचापं पलाशाग्निं यद्यन्यस्य प्रदर्शयेत् । प्रायश्चित्तमहोरात्रं धनुर्दंडश्च दक्षिणा ॥

३ न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् ब्राह्मणेन सह वा संभाषेत तल्पान्नधनलाभवधे पृथक् वर्षाणि ।

करनेमें स्मृत्यंतरमें प्रायश्चित्त कहा[1] है कि यज्ञोपवीतके विना जो द्विज उच्छिष्ट होता है तो अहोरात्र उपवास और आठ सौ गायत्रीका जप प्रायश्चित्त है । उसमेंभी नाभिसे ऊपर उच्छिष्टमें उपवास और नाभिसे नीचे उच्छिष्ट होकर जलपान आदिको करै तो गायत्रीका जप करै यह व्यवस्था जाननी । अज्ञानसे करनेमें तो स्मृत्यंतरमें कहा यह प्रायश्चित्त जानना कि जो यज्ञोपवीतके विना जल पीवै वा मलको त्यागै वह तीन वा छः प्राणायाम और तीन नक्तव्रत क्रमसे करै । भोजन करके उत्तरापोशन किये विना उठनेमें तो यह स्मृत्यंतरमें कहा[3] प्रायश्चित्त जानना कि भोजन करके विना आचमन और विना जलपान जो उठता है वह शीघ्र स्नान करै, अन्यथा (न करै तो) पतित होता है । चोर आदिके उत्सर्ग (त्याग) में तो वसिष्ठने[4] कहा है कि दंड देनेके योग्यके त्यागमें राजा एक रात्र, पुरोहित तीन रात्र उपवास करै और दंड देनेके अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहित कृच्छ्र और राजा त्रिरात्र उपवास करै, और कुनखी और श्यामदंतै ये दोनों द्वादश रात्र कृच्छ्र करैं और निंदित नख और दांतोंको उखडवाय दें । चोर पतित आदिकी पंक्तिके भोजनमें तो मार्कंडेयने कहा है कि पंक्तिसे बाह्यकी पंक्तिमें जो ब्राह्मण भोजन करता है वह अहोरात्र उपवास और पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है । नीलके विषयमें तो आपस्तंबने कहा है कि नीलसे रंगे वस्त्रको ब्राह्मण अंगमें धारण करै तो अहोरात्र उपवासके अनंतर पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है । और जो नीलका रस रोमकूपोंमें चलाजाय तो तीनों वर्णोंमें सामान्यरीतिसे तप्तकृच्छ्र शोधन है । नीलकी रक्षा विक्रय और नीलकी वृत्तिसे जीवै तो ब्राह्मण पातकी होता है और तीन कृच्छ्रोंसे पापको दूर करता है । नीलका काष्ठ ब्राह्मणके शरीरको बींध दे और रुधिर दीख पडै तो द्विज चांद्रायण करै और स्त्रियोंके क्रीडार्थ भोगकी शय्यापर नीलका दोष नहीं है । भृगुनेभी[2] कहा है कि स्त्रीका धारण किया नील ब्राह्मणोंमें दूषित नहीं है । और क्षत्रियोंके यहां वृद्धिमें अर्थात् पुत्रोत्सव आदिमें और वैश्यके यहां पर्वोंको छोडकर धारण करना युक्त है । तैसेही वस्त्रविशेषमेंभी नीलका दोष नहीं क्योंकि यह स्मृति[3] है कि कंबल और पट्टसूत्र (रेशम) में नीलका रंग दूषित नहीं । वृक्षविशेषसे बनाये खट्वाके

---

१ विना यज्ञोपवीतेन यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः । प्रायश्चित्तमहोरात्रं गायत्र्यष्टशतं तु वा ॥

२ पिबतो मेहतश्चैव भुंजतोऽनुपवीतिनः । प्राणायामत्रिकं षट्कं नक्तं च त्रितयं क्रमात् ॥

३ यद्युत्तिष्ठत्यनाचांतो भुक्त्वा वानशनात्ततः । सद्यः स्नानं प्रकुर्वीत सोऽन्यथा पतितो भवेत् ॥

४ दंडचोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदंडचदंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं राजा कुनखीश्यावदंतश्च कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वोद्धरेयाताम् ।

५ अपांक्तेयस्य यः कश्चित् पंक्तौ भुंक्ते द्विजोत्तमः । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

१ नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोंगेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कस्यचित् । त्रिषु वर्णेषु सामान्यं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ पालनं विक्रयश्चैव तद्वृत्त्या तूपजीवनम् । पातकी च भवेद्विप्रास्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ नीलीदारु यदा भिंद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरतः । शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् । स्त्रीणां क्रीडार्थसंयोगे शयनीये न दुष्यति ॥

२ स्त्रीधृता शयने नीली ब्राह्मणस्य न दुष्यति । नृपस्य वृद्धौ वैश्यस्य पर्ववर्ज्यं विधारणम् ॥

३ कंबले पट्टसूत्रे च नीलीरागो न दुष्यति ।

ऊपर चढनेमें तो शंखने कहा है कि द्विज ढाकके वृक्षकी शय्या यान आसन खडाऊं इनपर चढकर त्रिरात्र व्रत करै । प्राणोंकी रक्षाका अभिलाषी क्षत्रिय रणमें पीठ देकर और फलके दाता वृक्षको काटकर संवत्सर-तक व्रतको करे । दो ब्राह्मणोंके और ब्राह्मण अग्निके, स्त्री पुरुषके, गौ ब्राह्मणके बीचमें हो निकसै तो सांतपनकृच्छ्र करै । होमके समय और तैसेही दुहने और पढनेके समय और विवाहके समयमें द्विज वीचको निकसै तो चांद्रायण करै । यहां दुहना सान्नाय्य (हविर्विशेष) का अंग लेना, यहभी अभ्यासके विषयमें है । छिद्र-सहित सूर्य आदि अरिष्टोंके दीखनेमें तो शंखने कहा है कि दुष्टस्वप्न और अरिष्ट आदिके दर्शनमें घृत और सुवर्णका दान करै । किसी देश-विशेषके गमनमेंभी देवलने कहा है कि सिंधु-सौवीर सौराष्ट्र और इनके प्रत्यंतवासी अंग वंग कालिंग आंध्र इन देशोंमें जाकर पुनः संस्कारके योग्य होता है, यहभी तीर्थयात्राके विना समझना । अपनी विष्ठाके देखनेमें तो यमने कहा है कि सूर्यके सन्मुख मलको न त्यागै और अपने मलको न देखै और देखै तो सूर्य गौ अग्नि ब्राह्मण इनका दर्शन करले । शंखनेभी कहा है कि अग्निमें चरणोंको तपाकर और अग्निको नीचे करके और कुशोंसे चरणोंका मार्जन करके एक दिन व्रत करै । क्षत्रिय आदिको नमस्कार करनेमें तो हारीतने कहा है कि क्षत्रियको नम-स्कार करनेमें अहोरात्र, वैश्यके नमस्कारमें दो रात्र और शूद्रके नमस्कारमें तीन रात्र उपवास करै । तैसेही शय्यापर बैठे, खडाऊं उपानह इनको धारण किये, उच्छिष्ट अंधकारमें स्थित, श्राद्ध करनेके समय, जप, देवपूजा इनमें जो तत्पर इन सबको नमस्कार करनेमेंभी तीन रात्र उपवास होता है । और अन्यके निमंत्रणको स्वीकार करके अन्यत्र भोजन करै तो त्रिरात्र उपवास करै । और जिसके हाथमें समिध पुष्प आदि हो उसकेभी नमस्कारमें यही प्रायश्चित्त है । क्योंकि इस आपस्तंबके वचनमें जप आदिके संग यहभी पढा है कि समिध पुष्प कुशा घी जल मिट्टी अन्न अक्षत ये जिसके हाथमें हों और जो जप होम करताहो उस द्विजको नमस्कार न करै और नमस्कार करनेवालेकोभी यही प्राय-श्चित्त है । क्योंकि शंखने इस वचनसे उस-कोभी निषेध किया है कि जलका घट हाथमें लिये, भिक्षाटन करते, पुष्प घृत हाथमें लिये, अशुद्ध, जप करते, देव पितरोंका कर्म करते, और शयन करते समयमें नमस्कार न करै ।

---

१ अध्यस्य शयनं यानमासनं पादुके तथा । द्विजः पलाशवृक्षस्य त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ क्षत्रियस्तु रणे पृष्ठं दत्त्वा प्राणपरायणः । संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा वृक्षं फलप्रदम् ॥ द्वौ विप्रौ ब्राह्मणाग्नी वा दंपती गोद्विजोत्तमौ। अंतरेण यदा गच्छेत्कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ होमकाले तथा दोहे स्वाध्याये दारसंग्रहे । अंतरेण यदा गच्छेद्द्वि-जश्चांद्रायणं चरेत् ॥

२ दुःस्वप्नारिष्टदर्शनादौ घृतं सुवर्णं च दद्यात् ।

३ सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यंतवासिनः । अंगवंगकालिंगांध्रान् गत्वा संस्कारमर्हति ॥

४ प्रत्यादित्यं न मेहेत न पश्येदात्मनः शकृत् । दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षेत गामग्निं ब्राह्मणं तथा ॥

१ पादप्रतापनं कृत्वा कृत्वा वह्निमधस्तथा । कुशैः प्रमृज्य पादौ तु दिनमेकं व्रती भवेत् ॥

२ क्षत्रियाभिवादनेऽहोरात्रमुपवसेत् । वैश्याभिवादने द्विरात्रं शूद्रस्याभिवादने त्रिरात्रमुपवासः ॥

३ समित्पुष्पकुशाज्यांबुमृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवादेत वै द्विजम् ॥

४ नोदकुंभहस्तोऽभिवादयेत् न भैक्षं चरन्नपुष्पा-ज्यादिहस्तो नाशुचिर्न जपन्न देवपितृकार्यं कुर्वन्न शयानः॥

इसी प्रकार अन्यभी वचन अन्य स्मृतियोंमेंसे ढूंढने, ग्रंथके गौरवके भयसे यहां नहीं लिखते ॥

भावार्थ-ब्राह्मणकी हिंसाके लिये दंड उठानेमें कृच्छ्र और दंडके मारनेमें अतिकृच्छ्र, रुधिर निकासनेमें कृच्छ्रातिकृच्छ्र और रुधिरके भीतर रहनेमें कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है ॥ २९३ ॥

इति प्रकीर्णकप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र चोक्ता न निष्कृतिः ॥ २९४ ॥

पद-देशम् २ कालम् २ वयः २ शक्तिम् २ पापम् २ च ऽ-अवेक्ष्य ऽ-यत्नतः ऽ-प्रायश्चित्तम् १ प्रकल्प्यम् १ स्यात् क्रि-यत्र ऽ-च ऽ-उक्ता १ न ऽ-निष्कृतिः १ ॥

योजना-देशं कालं वयः च पुनः शक्तिं यत्नतः अवेक्ष्य तथा यत्र निष्कृतिः न उक्ता तत्र प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्यात् ॥

तात्पर्यार्थ-निमित्त अनन्त हैं इससे शरीरके प्रति प्रायश्चित्तके निमित्त नहीं कह सक्ते। जो सामान्य रीतिसे निमित्त पूर्व कह आये और जो नहीं कहे उनमें प्रायश्चित्त विशेषके जाननेके लिये यह प्रकरण कहते हैं ॥

जो पूर्व प्रायश्चित्त कह आये और जो आगे कहेंगे वह प्रायश्चित्त देश काल शक्ति और अवस्था इनको देखकर उस विशेष विषयमें समझना कि जिसमें करनेवालोंके प्राणोंपर कुछ विपत्ति न हो, अन्यथा प्रधान प्रायश्चित्तकी निवृत्ति हो जायगी। जैसे कि आगे यह कहेंगे कि दिनमें वायुको खाता हुआ और रात्रिको सूर्यके दर्शन पर्यंत जलमें बैठकर कालको व्यतीत करै सो इस प्रायश्चित्तमें रात्रिके समय जलमें निवास करनेका उद्देश यदि हिमाचल पर्वतके समीप रहनेवालोंको किया जाय, अथवा अत्यन्त शीत (जाडा) जिसमें पडताहो ऐसे शिशिर आदि कालमें किया जाय तो उस करनेवालेके प्राणोंकी विपत्ति हो जायगी, इससे यह जलमें निवासकी कल्पना उस देश कालको छोडकर करनी। तिसी प्रकार कहीं अवस्था विशेषसेभी प्रायश्चित्तकी कल्पना होती है। जैसे कि बारह वर्षका प्रायश्चित्त यदि नब्बे ९० वर्ष आदिकेको अथवा बारह वर्ष जिसकी अवस्था पूर्ण न हो उसको बताया जाय तो अवश्य प्राणोंकी विपत्ति होजायगी, इससे उस प्रायश्चित्तकी कल्पना अन्य अवस्थावालेके विषय करनी। इसीसे स्मृत्यन्तरमें वृद्ध आदिके विषयमें कहीं आधा और कहीं चौथाई प्रायश्चित्त कहा है, वह पूर्वमें विस्तारसे कह आये। तिसी प्रकार धन दान और तप येभी शक्तिकी अपेक्षासेही समझने। क्योंकि पात्रको पूर्ण धन दे इत्यादिसे जो पूर्व प्रायश्चित्त कहा है वह निर्धनके विषय संभव नहीं हो सक्ता। तिसी प्रकार जिसके पित्त आदिकी अधिकता हो उसको पराक आदि और स्त्री शूद्रको जप आदि संभव नहीं हो सक्ते। इसीसे यह कहा है कि गज आदिके दान करनेमें असमर्थ एक एककी शुद्धिके लिये कृच्छ्र व्रतको करै। तिसी प्रकार तप करनेमें जो असमर्थ है उसको स्मृत्यंतरमें पूर्व प्रायश्चित्तका ह्रास (न्यूनता) इस वचनसे[1] दिखाई है कि स्त्री और रोगी ये आधे प्रायश्चित्तके योगी होते हैं। महापातक आदिरूप है, वा ज्ञानपूर्वक है, अज्ञान पूर्वक किया है, वा एकवार किया है, वा अभ्याससे (वारंवार) किया इस प्रकार महापातक आदि रूपसे पापको देखकर फिर समस्त धर्मशास्त्रोंकी पर्यालोचना

1 प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च

करके उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करै। तिसमें जो प्रायश्चित्त अकामसे किये पापके विषयमें लिखाहै वही प्रायश्चित्त कामकृत पापमें दुगुना, और जो कामसे वारंवार पाप किया है उसमें चौगुना, इस प्रकार अन्य स्मृतियोंके अनुसार प्रायश्चित्तकी कल्पना है। तिसी प्रकार महापाप और उपपाप इनको करके जो दूसरेसे मिथ्या कहता है, वह जलमात्रको खाता हुआ महीनेतक बैठे यह जो प्रायश्चित्त कहा है इसमें महापाप और उपपातकका समान (तुल्य) प्रायश्चित्त कहना अयुक्त (ठीक नहीं) है इससे पापकी अपेक्षासे मासिक व्रतको ह्रासकी कल्पना करनी। और जो हँसना, जंभाई लेना, स्फोट न इनको अकस्मात् न करै, समुद्रके जलमें स्नान न करै, श्मश्रु (डाढीमूंछ) को न कटवावै, गर्भवाली स्त्रीका पति इनको करता हुआ प्रजोहीन हो जाता है इत्यादिमें जो प्रायश्चित्तका उपदेश नहीं किया है यहांभी देश आदिकी अपेक्षासे प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी। कदाचित् कोई यहां यह शंका करै कि कोईभी पाप ऐसा नहीं है कि जिसका प्रायश्चित्त न मिलता हो, क्योंकि आगे जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उनकाभी इस वचनमें प्रायश्चित्त कहेंगे कि सब पापोंकी तथा उपपातक और जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा है उनें पापोंकी निवृत्तिके लिये सौ १०० प्राणायाम करै। तिसी प्रकार गौतमनेभी इस वचनसे एक दिन आदि प्रायश्चित्त कहे हैं कि इनको ही जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उन पापोंमें विकल्पसे करै। उस शंकाका समाधान करते हैं कि यद्यपि सामान्यरीतिसे जो प्रायश्चित्त कहा है वह सत्य है तथापि सबमें देशकाल आदिकी अपेक्षा होती है इससे कल्पना करनेका अवसर अवश्य होता है। क्योंकि निमित्तके लघु (थोडा) होनेसे सब हँसने जृंभण आदि निमित्तमें सौ १०० प्राणायामरूप प्रायश्चित्त युक्त नहीं है, इससे पापकी अपेक्षासे ह्रासकी कल्पना करनी वा अन्य प्रायश्चित्त करना। कदाचित् कोई शंका करै कि अकस्मात् हंसने आदि पापको लघुत्व किस प्रकार है, जिसकी अपेक्षासे तुम प्रायश्चित्तके ह्रासकी कल्पना करते हो। वहां प्रायश्चित्तकी कल्पना तो निष्कृति (प्रायश्चित्त) के न कहनेसेही सिद्ध है, सो ठीक नहीं, क्योंकि अर्थवादके कहनेसे बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक और अनुबंध आदिकी अपेक्षासे पापमें गुरुलघुभाव साक्षात् प्रतीत होता है। तिसी प्रकार दण्डके ह्रास और वृद्धिकी अपेक्षासेभी प्रायश्चित्तमें गुरुलघुभाव समझना जैसे कि ब्राह्मणके अवगोरण (दंड उठाना) आदि करनेपर सजातीयको प्राजापत्य आदि कहा हैं। तिसमें यदि अनुलोम वा प्रतिलोम वा जिनका राज्याभिषेक हुआ है ऐसे क्षत्रिय आदि ब्राह्मणका अवगोरण करैं तो उसमें दण्डका तारतम्य (अधिक वा न्यून) देखनेसे उस दण्डके अनुसार दोषकी अल्पता (थोडा) और महत्त्व (बहुत) समझना। उसकेही अनुसार प्रायश्चित्तकाभी गुरुलघुभाव समझना। दण्डका गुरुलघुभाव इस[1] वचनसे दिखाया है कि प्रतिलोमको कुत्सित बोलनेपर दुगुना वा तिगुना दण्ड दे॥

भावार्थ–देश काल अवस्था शक्ति और पाप इनको यत्नसे देखकर और जिसमें प्राय

१ प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये। उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि॥

२ एतान्येवानादिष्टे विकल्पेन क्रियेरन्।

१ प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणास्त्रिगुणो दमः।

श्चित्त न कहा हो वहां प्रायश्चित्तकी कल्पना करै ॥ २९४ ॥

दासीकुंभंबहिर्ग्रामान्निनयेरन्स्वबांधवाः ।
पतितस्यबहिःकुर्युःसर्वकार्येषुचैवतम् २९५॥

पद-दासीकुंभम् २ बहिर्ग्रामात्ऽ-निनयेरन् क्रि-स्वबांधवाः १ पतितस्य ६ बहिःऽ-कुर्युः क्रि-सर्वकार्येषु ७ चऽ-एवऽ-तम् २ ॥

योजना-पतितस्य स्वबांधवाः दासीकुंभं ग्रामात् बहिः निनयेरन् च पुनः तं पतितं सर्वकार्येषु बहिः कुर्युः ॥

तात्पर्यार्थ-जीते हुए पतितके जो मातृपक्ष और पितृपक्षके जातिके बांधव हैं वे सब इकट्ठे होकर सपिण्ड आदिसे प्रेरी हुई दासी (धीमरी) के लाये हुए जलसे भरे घटको ग्रामसे बाहिर लिंवा लेजाय । यह घटनिस्सारण चतुर्थी आदि रिक्ता तिथिके विषय दिनके पांचवें भागमें करना । क्योंकि यह मनु (अं० ११ श्लो० १८२) का वचन है कि सपिण्ड बांधव पतित मनुष्यकी उदकक्रिया निन्दित दिनके विषय सायंकालके समय ज्ञातिमनुष्य ऋत्विज और गुरु इनके समीप करैं । अथवा सपिण्ड आदिकी प्रेरी हुई दासीही उस घटको लेजाय जैसे कि मनु (अ० ११ श्लो० १८३) ने कहा है कि दासी जलसे भरे घटको प्रेतके समान चरणसे औंधा मारदे और वे प्रेतके बांधव अहोरात्र उपवास करैं और दासीको प्रेतके बांधवोंके समान अशौच नहीं है । यह वचन दक्षिणकी तरफ मुख करके और अपसव्य होकर इस विधिकी प्राप्तिके लिये है । यह घटका लेजाना जलदान पिण्डदान आदि प्रेतक्रियाके किये पीछे करना । क्योंकि गौतमकी स्मृति है कि उस पतितके विद्यागुरु और सपिंड सब इकट्ठे होकर सब जलदान आदि प्रेतक्रियाको करैं । इसके पात्रको औंधा मारैं । अथवा दास (धीमर) वा कर्म करनेवाला अवकर (आवा) से पात्रको लाकर और दासीसे उस पात्रको भरवाकर और हाथमें लेकर दक्षिणाभिमुख होकर पांवसे पात्रको उलटा करदें । वे सब इस पात्रको जलसे रहित करताहूं इस प्रकार नाम लेते हुए उसको सम्मति दें और प्राचीनावीती (सव्य) होकर और शिखाकी ग्रंथिको खोलकर विद्यागुरु और योनिसंबंधी सब उसे देखें, फिर जलसे आचमन करके ग्राममें प्रवेश करैं । यह पतितका त्याग जब समझना कि जब पतित बांधवोंकी प्रेरणासेभी प्रायश्चित्तको न करैं । क्योंकि शंखकी स्मृति है कि उसके दोषोंको गुरु बांधव और राजा इनके आगे प्रकट करके फिर इसको कहा जाय कि तू पुनः (फिर) सदाचारमें प्राप्त हो, इस प्रकार कहने परभी यदि इसकी मति सदाचारमें अवस्थित न हो तब इसके पात्रको विपर्यस्त (उलटा) करैं । फिर जलदान किये पीछे उस पतितको संभाषण और एक आसनपर बैठना इत्यादि कार्योंसे बहिर्भूत करैं । सोई मनु (अ० ११

१ पतितस्योदकं कार्यं सपिंडैर्बान्धवैर्बहिः । निन्दितेऽहानि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥

२ दासी घटमपाम्पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा । अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बांधवैस्सह ॥

१ तस्य विद्यागुरुयोनिसंबंधाश्च सन्निपत्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः कर्मकरो वाऽवकरात्पात्रमानीय दासी घटान् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः यदा विपर्यस्येदिदम् अमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन्प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिसंबंधाश्च वीक्षेरन् अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः ।

२ तस्य गुरोर्बांधवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्यायानुभाष्य पुनः पुनराचारं लभस्वेति स यद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत् ।

श्लो० १८४) ने कहा है कि उसके अनंतर उस पतितके साथ संभाषण और एक आसनपर बैठना, दाय (हिस्सा) आदिका दान, लौकिकी आदि, यात्रा आदि इन सबको वर्ज दे, यदि कोई बांधव स्नेह आदिसे सभाषण करै तो इस प्रायश्चित्तको करै कि इसके अनंतर पतितके साथ संभाषण करके गायत्रीको जपता हुआ एक रात्र उपवास करै, और जो जानकर किया होय तो तीन रात्र करै ॥

भावार्थ-उस पतितके बांधव दासीसे घटको ग्रामसे वाहर लिवाले जायँ फिर उसे सब कार्योंसे वहिर्भूत करदे ॥ २९५ ॥

चरितव्रतआयातेनिनयेरन्नवंघटम् ।
जुगुप्सेरन्नचाप्येनंसंवसेयुश्चसवशः २९६ ॥

पद-चरितव्रते ७ आयाते ७ निनयेरन्-क्रि नवम् २ घटम् २ जुगुप्सेरन् क्रि-नऽ-चऽ-अपिऽ-एनम् २ संवसेयुः क्रि-चऽ-सर्वशःऽ-॥

योजना-चरितव्रते आयाते साति नवं घटं निनयेरन्, च पुनः एनं न जुगुप्सेरन् च पुनः एनं सर्वशः संवसेयुः ॥

तात्पर्यार्थ-प्रायश्चित्तको करके फिर अपने बांधवोंके समीप आवै तव उसके सपिंड आदि बांधव छिद्र आदिसे रहित नवीन घटको जलसे भरके लावैं, यह घटका लाना पुण्यहृद आदिसे स्नान किये पीछे समझना, क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० १८६) का वचन है कि यदि प्रायश्चित्त करले तो जलसे भरे नवे घटको उस पतितके साथही पवित्र जलाशयमें स्नान करके फेंक दे, गौतमने तो इसमें विशेष दिखाया है कि जो कि प्रायश्चित्तसे शुद्ध हो जाय उसको बांधव सुवर्णके पात्रको किसी पवित्र ह्रद वा वहती हुई गंगा आदि नदीसे भरैं और आचमन कराकर उसको दें, वह उस पात्रको लेकर शान्ताद्यौः शान्तापृथिवी शान्तंशिवं अन्तरिक्षं यो रोचनस्तामिह गृह्णामि इन यजुर्वेदकी ऋचाओंको जपै, और तथा पावमानी तरत्समंदी और कौष्मांडी ऋचाओंसे अग्निम घृतका होम करै और आचार्यको सुवर्ण और गौका दान दे, और जिसको मरणान्तिक प्रायश्चित्त कहा है मरकर शुद्ध होता है, यही शान्त्युदक सब उपपातकोंके विषय समझना, फिर प्रायश्चित्त किये पीछे इसकी निन्दा न करैं और सब क्रय विक्रय आदि व्यवहारको इसके साथ करैं ॥

भावार्थ-यह पतितप्रायाश्चित्त करके अपने बांधवोंमें जब आवै तब वे बांधव नवे घटको लावैं, इसकी निंदा न करै, और इसके साथ सब प्रकारका वर्त्ताव करै ॥ २९६ ॥

पतितानामेषएवविधिःस्त्रीणांप्रकीर्तितः ॥
वासोगृहांतिकेदेयअन्नंवासःसरक्षणम् २९७

पद-पतितानाम् ६ एषः १. एवऽ-विधिः १ स्त्रीणाम् ६ प्रकीर्तितः १ वासः १ गृहान्तिके ७ देयः १ अन्नम् १ वासः १ सरक्षणम् १ ॥

१ निवर्तेरंस्ततस्तस्मात्संभाषणसहासने । दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रामेव च लौकिकीम् ॥

२ अतऊर्ध्वं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन् सावित्रीमज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वं चेत्रिरात्रम् ।

३ प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुंभमपां नवम् । तेनैव सोर्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥

१ यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्ध्येत्तस्मिन् शुद्धे शातकुंभमयं पात्रं पुण्यतमाद्ध्रदात्पूरयित्वा स्रवन्तीभ्यो वा तत एनमप उपस्पर्शयेयुरथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्संप्रतिगृह्य जपेत् शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं शिवमंतरिक्षं यो रोचनस्तामिह गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिः पावमानीभिस्तरत्समन्दीभिः कूश्माण्डैश्चाज्यं जुहुयाद्धिरण्यं दद्यात् गां चाचार्याय यस्य तु प्राणांतिकं प्रायश्चित्तं स मृतः शुद्ध्येदेतदेव शान्त्युदकं सर्वेषूपपातकेषु ॥

योजना-पतितानां स्त्रीणाम् एष एव विधिः प्रकीर्तितः तासां स्त्रीणां वासः गृहान्तिके देयः तथा सरक्षणं अन्नं वासः देयम् ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्योंके परित्यागमें पिण्डदान और जलदानकी विधि है, जिन्होंने प्रायश्चित्त कर लिया है, उनके ग्रहण करनेमें परिग्रहकी विधि कही है वही विधि पतित स्त्रियोंके त्याग और परिग्रहमें भी समझनी, परन्तु इतनीही विशेष विधि है कि जो पतित स्त्री है, जिनका घटस्फोट आदि कर चुके हैं उनको तृण और पत्तोंकी बनाये हुए कुटीरूप गृहमें निवास अपने प्रधान गृहके समीप देना, और प्राणोंकी धारणा मात्र अन्न, और मलीन वस्त्र देना, और फिर अन्य मनुष्यसे उपभोग आदिमें प्रवृत्त हुई उनको निवारण आदि रक्षा करै ॥

भावार्थ-जो पतित मनुष्योंको पूर्व घटस्फोट आदि विधि कही है वही विधि पतित स्त्रियोंके विषय भी समझनी, उन स्त्रियोंको घरके समीप बसावै, अन्न और वस्त्र आदिसे रक्षा करै और अन्य पुरुषमें फिर आसक्त न होने दे ॥२९७॥

नीचाभिगमनंगर्भपातनंभर्तृहिंसनम् ।
विशेषपतनीयानिस्त्रीणामेतान्यपिध्रुवम् ॥

पद-नीचाभिगमनम् १ गर्भपातनम् १ भर्तृहिंसनम् १ विशेषपतनीयानि १ स्त्रीणाम् ६ एतानि १ अपिऽ-ध्रुवम्ऽ-॥

योजना-नीचाभिगमनं गर्भपातनं भर्तृहिंसनम् एतानि अपि स्त्रीणां ध्रुवं विशेषं पतनीयानि सन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-हीन वर्णके साथ भोग ब्राह्मणीसे भिन्नके भी, गर्भका पातन, और ब्राह्मणसे अतिरिक्त भी भर्त्ताका हिंसन (मारना) ये स्त्रियोंके पतित होनेमें असाधारण निमित्त हैं, और अपिशब्दसे जो महापातक, अतिपातक और वारंवार अभ्यास किये जो उपपातक पुरुषके पतित होनेमें निमित्त कहे हैं येभी निश्चयसे स्त्रियोंके पतित होनेमें कारण है, इसीसे शौनकने कहा है कि जो पुरुषके पतनमें निमित्त हैं वेही स्त्रियोंकेभी पतनमें निमित्त हैं, और ब्राह्मणी हीन वर्णके साथ गमन करनेसे अधिक पतित हो जाती है, जो कि वसिष्ठने यह कहा है कि धर्मके जाननेवाले लोकमें स्त्रियोंको भर्ताका वध, भ्रूणहत्या अपने गर्भका पतन करना ये तीन पातक कहे हैं, और इनमें जो भ्रूणहत्याका ग्रहण किया है वह दृष्टान्तके लिये है, कुछ अन्यमहापातक आदिकोंको स्त्रियोंके पतनमें कारणताकी निवृत्तिके लिये नहीं, और जो कि फिर वसिष्ठनेही शिष्य गुरु इनसे भोग करवाली और पतिके मारनेवाली और जो निन्दितसे विषय करै ये चार स्त्री परित्यागके योग्य होती हैं, इस वचनमें चार स्त्रियोंकाही परित्याग लिखा है उसकाभी वह अभिप्राय है कि प्रायश्चित्तको न करती हुई पतित स्त्रियोंके मध्यमें ये चार शिष्यगा आदि स्त्रीही वस्त्र अन्न गृहमें निवास आदि जीवनवृत्तिको न देकर त्यागने योग्य होती हैं अन्य नहीं अर्थात् इन स्त्रियोंको तो अन्न आदि देकर बसावै इससे यह बात जानी गई कि प्रायश्चित्तको न करती हुई अन्य पतित स्त्रियोंको गृहके समीप

१ पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामाधिकं पतति।

२ त्रीणि स्त्रियाः पातकानि लोके धर्मविदो विदुः। भर्तृर्वधो भ्रूणहत्या स्वस्य गर्भस्य पातनम् ॥

३ चतस्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या। पतिघ्नी च विशेषेण जुंगितोपगता च या ॥

वास (वासो गृहान्तिके देयः) इत्यादिसे जो कहा है वह करने योग्य है ॥

भावार्थ-नीच पुरुषके साथ गमन, गर्भका पातन पतिका मारना ये स्त्रियोंको अवश्यही पतित करनेवाले हैं ॥ २९८ ॥

शरणागतबालस्त्रीहिंसकान्संवसेन्नतु ।
चीर्णव्रतानपिसतःकृतघ्नसहितानिमान् ॥

पद-शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् २-संवसेत् क्रि-नऽ-तुऽ-चीर्णव्रतान् २ अपिऽ-सतः २ कृतघ्नसहितान् २ इमान् २ ॥

योजना-शरणागतबालस्त्रीहिंसकान् कृतघ्नसाहितान् चीर्णव्रतान् अपि सतः इमान् न संवसेत् ॥

ता० भा०-शरण आयेको, बालक और स्त्री इनको मारनेवाले और जो कृतघ्न हैं इनके दोष यदि प्रायश्चित्तसे क्षीण होगये हों तोभी इनके साथ व्यवहार न करें । ये वाचानिक प्रतिषेध है इससे वचनको न मानना चाहिये, ये बात न करनी । क्योंकि वचनका बडा भार होता है । इससे यद्यपि व्यभिचारिणी स्त्रीके बधमें थोडाही प्रायश्चित्त कहा है तथापि उसके साथभी व्यवहारका प्रतिषेध इस वचनसे सिद्ध है ॥ २९९ ॥

घटेऽपवर्जितेज्ञातिमध्यस्थोयवसंगवाम् ।
प्रदद्यात्प्रथमंगोभिःसत्कृतस्यहिसत्क्रिया ॥

पद-घटे ७ अपवर्जिते ७ ज्ञातिमध्यस्थः १ यवसम् २ गवाम् ६ प्रदद्यात् क्रि-प्रथमम् २ गोभिः ३ सत्कृतस्य ६ हिऽ-सत्क्रिया १ ॥

योजना-घटे अपवर्जिते सति ज्ञातिमध्यस्थः गवां यवसं प्रथमं दद्यात् हि यतः प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य सत्क्रिया भवति ॥

तात्पर्यार्थ-इस प्रकार प्रसंगसे स्त्रियोंको विषय विशेष विधिको कहकर प्रकरणवशासे फिर जिसने प्रायश्चित्तरूपी व्रत करलिया हो उसके विषय विशेष विधिको कहते हैं । कुण्डसे जलके भरे घटको निकालनेके पीछे प्रायश्चित्त करनेवाला मनुष्य सपिण्ड आदिके मध्यमें स्थित होकर गौओंको यवस (बुस) दे । जब गौ उस पतितका सत्कार करले उसके अनन्तर फिर ज्ञातिबांधव उसका सत्कार करैं । गौका सत्कार यह होता है कि उस पतितके दिये उस यवसको निश्शंक होकर भक्षण करना । यदि गौ उसके दिये यवसको न खाय तो वह पतित फिर उस प्रायश्चित्तको करै जैसे कि हारीतने कहा है कि अपने शिरसे यवसको लेकर[1] गौको दे । यदि वे गौ उसको ग्रहण करलें तो बांधव उसके साथ यथावत् व्यवहार करै अन्यथा नहीं इस प्रमाणको स्वीकार करना ॥

भावार्थ-घटके दूर करने पर पतित अपने बांधवोंके मध्यमें स्थित होकर गौओंको यवस दे । क्योंकि पूर्व उस गौके सत्कार किये हुएका सत्कार होता है ॥ ३०० ॥

विख्यातदोषःकुर्वीतपर्षदोनुमतंव्रतम् ।
अनभिख्यातदोषस्तुरहस्यंव्रतमाचरेत् ॥

पद-विख्यातदोषः १ कुर्वीत क्रि-पर्षदः ६ अनुमतम् २ व्रतम् २ अनभिख्यातदोषः १ तुऽ-रहस्यम् २ व्रतम् २ आचरेत् क्रि-॥

योजना-विख्यातदोषः पर्षदः अनुमतं व्रतं कुर्यात् तु पुनः अनभिख्यातदोषः रहस्यं व्रतम् आचरेत् ॥

तात्पर्यार्थ-जितना पाप जिसने कियाहो उस सबको यदि अन्य पुरुष जानले तो, पर्षद्र सभाके बताये हुए व्रतको करै । यद्यपि आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थके विचारमें चतुर हो तथापि पर्षदके समीप जाकर और उसके

---

[1] स्वशिरसा यवसमादाय गोभ्यो दद्याद्यदि ताः प्रतिगृह्णीयुरथैनं प्रवर्तयेयुः ।

साथ विचार करके उसकी अनुमतिके अनुसार व्रतको करै, तिसके समीप जानेके विषय अंगिरांने विशेष कहा है कि निःसंशय पाप करनेके अनन्तर जबतक पर्षद्के समीप न जावे तबतक भोजन न करै क्योंकि पर्षद्के समीप पापके विख्यात किये विना भोजन करता हुआ मनुष्य पापको बढाता है, वह पतित सचैल, मौन होकर स्नान करै और आर्द्र (गीले) वस्त्रोंसेही सावधान हो पर्षद्के समीप जाकर उसकी अनुमतिसे अपने पापको विख्यात करै, और व्रतको लेकर फिरभी स्नान करके व्रतको करै, यह पापका विज्ञापन दाक्षिणा देनेके अनन्तर करना, क्योंकि पैराशरने कहा है कि पापी मनुष्य अपने पापको गौ वा वृषको देकर विख्यात करै, यह दान उपपातकके विषय समझना । महापातक आदिमें तो अधिक दानकी कल्पना करनी जो कि यह वचनै है कि पापको प्राप्त हुआ मनुष्य एक वार जलमें कूदकर और पर्षदोंसे पापको विख्यात करके और कुछ देकर व्रतको करै, वह प्रकीर्णक पापके विषयमें समझना, पर्षद्का स्वरूप मनुने⁴ यह दिखाया है कि तीनों वेद न्याय निरुक्त और मीमांसा आदिके अर्थके जाननेवाला और तीनों आश्रमी ये न्यूनसे न्यून दश जिसमें हों वह पर्षद कहाती है तिसी प्रकार अन्यभी दो पर्षद दिखाये हैं¹ कि ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद इनके जाननेवाला धर्ममें संशयके निर्णय करनेमें यह दूसरा पर्षद कहा है, तिसी प्रकार एकभी वेदके जाननेवाला सावधान होकर जिस धर्मको निश्चय करले वहही परम धर्म समझना और अज्ञ (मूर्ख) दशसहस्रभी हों तथापि उनका कहा नहीं और इन पर्षदोंकी व्यवस्था संभवकी अपेक्षासे वा महापातक आदिकी अपेक्षासे समझनी, जो कि स्मृत्यन्तरमें कहा है कि पातकोंमें सौ १०० मनुष्योंकी पर्षद महापातकोंमें सहस्रकी और उपपातकोंमें पचासकी पर्षद होती हैं और तिसी प्रकार अल्पपापमें अल्प पर्षद समझनी । यह वचन महापातक आदि दोषोंके अनुसार पर्षदोंका गुरु और लघुभाव होता है । इस बातके प्रतिपादन (कहने) के विषयमें है संख्याके नियमके लिये नहीं । क्योंकि नियम मानोगे तो मनु आदि महास्मृतियोंके साथ दोष आवेगा, तिसी प्रकार देवलैने भी यह विशेष दिखाया है कि अल्पपापोंके प्रायश्चित्तको तो ब्राह्मण शास्त्र आदिके विनाही स्वयं कहदें और महापापोंकी निष्कृति (प्रायश्चित्त) को तो राजा ओर ब्राह्मण शास्त्रसे परीक्षा करके कहें । पर्षद्को व्रतका उपदेश अवश्यही करना चाहिये । क्यों कि अंगिरोंकी

१ कृते निःसंशये पापे न भुंजीतानुपस्थितः । भुंजानो वर्धयेत्पापं यावन्नाख्याति पर्षदि ॥ सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः । पर्षदोनुमतस्तत्त्वं सर्वं विख्यापयेन्नरः ॥ व्रतमादाय भूयोपि तथा स्नात्वा व्रतं चरेत् ॥

२ पापं विख्यापयेत्पापी दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ।

३ तस्माद्द्विजः प्राप्तपापः सकृदाप्लुत्य वारिणि । विख्याप्य पापं पर्षद्भ्यः किंचिद्दत्त्वा व्रतं चरेत् ॥

४ त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे पर्षदेषा दशावरा ॥

१ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च । अपरा पर्षद्विज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत्समाहितः । स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥

२ पातकेषु शतं पर्षत्सहस्रं महदादिषु । उपपापेषु पंचाशत्स्वल्पं स्वल्पे तथा भवेत् ॥

३ स्वयन्तु ब्राह्मणा ब्रूयुरल्पदोषेषु निष्कृतिम् । राजा च ब्राह्मणश्चैव महत्सु च परीक्षिताम् ॥

४ आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः । जानन्तो न प्रयच्छन्ति ते यान्ति समतां तु तैः ॥

स्मृति है कि जो दुःखी मनुष्य प्रायश्चित्तका मार्गण (ढूंढना) करते फिरते हैं उनके प्रायश्चित्तको जानतेहुए द्विज जो प्रायश्चित्तको नहीं बताते वे उन्हीं पापियोंके समान होजाते हैं, तिसी प्रकार पर्षद् जानकरही व्रतका उपदेश करै क्योंकि वसिष्ठकी स्मृति है कि जो पर्षद् धर्मशास्त्रके विना जाने प्रायश्चित्तको देती है उस प्रायश्चित्तसे पापी शुद्ध होजाता है और पर्षद् उसके पापको प्राप्त होती है, पापके करनेवाले क्षत्रिय आदिको धर्मके उपदेश करनम तो अंगिराने यह विशेष दिखाया है कि ब्राह्मण जिन क्षत्रिय आदिने पाप किया है उनके मध्यमें (आगे) ब्राह्मणको करके संपूर्ण व्रतका उपदेश करै, तिसी प्रकार धर्मपूर्वक शूद्रको सदा प्रायश्चित्तका उपदेश जप होम आदिसे अतिरिक्त करै, तिसमें याग आदि अनुष्ठानके करनेवालोंको जो जप आदिका और अन्य सबको तपका उपदेश करना, क्योंकि यह वचन है कि अपने कर्म और तपके बीचमें सावधान जो मनुष्य हैं वे कदाचित् पापको प्राप्त होजांय तो उनको विशेषतः जप होम आदिका उपदेश करैं, और जो नाममात्रके धारण करनेवाले विप्र हैं अर्थात् अपने धर्मसे शून्य हैं और जो मूर्ख और धनसे रहित हैं उनको विशेषसे कृच्छ्रचांद्रायण आदिका उपदेश करैं ॥

इति प्रकाशप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

१ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः । प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदं व्रजेत् ॥

२ न्यायतो ब्राह्मणः क्षिप्रं क्षत्रियादेः कृतैनसः । अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा व्रतं सर्वं समादिशेत् ॥ तथा शूद्रं समासाद्य सदा धर्मपुरःसरम् । प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमविवर्जितम् ॥

३ कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः कदाचित्पापमागताः । जपहोमादिकं तेभ्यो विशेषेण प्रदीयते ॥ ये नामधारका विप्रा मूर्खा धनविवर्जिताः । कृच्छ्रचांद्रायणादीनि तेभ्यो दद्याद्विशेषतः ॥

अब रहस्य प्रायश्चित्तको कहते हैं कि श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि विख्यात (ज्ञात) पापके नाश करनेवाली व्रतकी सन्तति (समूह) को कहकर अब एकान्तमें किये अप्रसिद्ध पापके नाश करनेवाली निष्कृति (प्रायश्चित्त) को कहते हैं। तिसमें प्रथम सकल रहस्यव्रतके साधारण धर्मको कहते हैं।

कर्त्ताके व्यतिरिक्त (भिन्न) पुरुषोंने जिसका पाप न जाना हो ऐसा मनुष्य रहस्य (किसीको ज्ञान न हो) प्रायश्चित्तको करै। कर्तव्यातिरिक्तैः ऐसा कहनेसे स्त्रीसंभोग आदिमें उस पापके करनेसे स्त्री भी कर्ता है। इससे उससे भिन्न पुरुषोंने जिसके दोषको न जाना हो ऐसे पुरुषको रहस्य व्रतका अधिकार है यह समझना। इसमें यदि कर्त्ता स्वयंही धर्मशास्त्रमें कुशल होय तो अन्यको उस दोषके प्रकट किये विना अपने पापके नाश करनेमें उचित प्रायश्चित्तको स्वयं ही करै और स्वयं उस प्रायश्चित्तको न जानता होय तो किसीने एकान्तमें ब्रह्महत्या आदि पाप किया है उसमें रहस्य प्रायश्चित्त क्या है इस प्रकार अन्य पुरुषके इस प्रकार बहानेसे पूछकर रहस्य प्रायश्चित्तको करै। इसीसेही स्त्री शूद्रको भी इसी मार्गसे रहस्य व्रतके ज्ञानकी सिद्धि होनेसे रहस्य व्रतका अधिकार सिद्ध है। कदाचित् कोई शंका करै कि रहस्य व्रतमें जप आदि प्रधान होते हैं और स्त्री शूद्रको विद्याके न होनेसे उन जप आदिके अधिकार न होनेसे रहस्य व्रतका अधिकार नहीं, सो ठीक नहीं। क्योंकि रहस्य व्रतोंमें जप आदिकी प्रधानता एकान्ततः (सर्वथा नहीं। क्योंकि उनमें दान आदिका भी उपदेश है। और गौतमके कहे हुए प्राणायाम आदिभी

हैं। और इतर जप आदिके अधिकारमें भी देवता, मंत्र, ऋषि, छन्द इनका परिज्ञानही उपयोगी है। कुछ स्त्री शूद्रसे अन्यका विषय नहीं, जैसे कि तडाग आदिके बनानेमें यह विप्रतिपत्ति नहीं होती कि इसको ज्योतिष्टोम आदिका अधिकार है वा नहीं। किन्तु केवल देवताके परिज्ञानमात्रकीही अवश्य अपेक्षा होती है। क्योंकि व्यासकी स्मृति है कि ऋषि, छन्द, देवता और योग इनको बिना जाने जो पढावै वा जपे है वह अत्यन्त पापी होता है। इससे शूद्रको भी रहस्य व्रतका अधिकार है। इसमें जहां आहार विशेष नहीं कहा वहां दुग्ध आदि, और जहां काल विशेष नहीं कहा वहां संवत्सर आदि, देश विशेष नहीं कहा वहां शिलोच्चय आदि गौतम आदिके कहे हुए प्रकाश प्रायश्चित्तकी समान अन्वेषण (ढूंढना) करने ॥

भावार्थ-जिसका पाप प्रसिद्ध होगयाहो वह पर्षद्‌की अनुमतिसे व्रतको करै। और जिनका दोष विख्यात नहीं है वे रहस्यव्रतको करैं ॥ ३०१ ॥

त्रिरात्रोपोषितोजप्त्वाब्रह्महात्वघमर्षणम् । अंतर्जलेविशुद्ध्येतदत्त्वागांचपयस्विनीम् ॥

पद-त्रिरात्रोपोषितः १ जप्त्वाऽ-ब्रह्महा १ तुऽ-अघमर्षणम् २ अन्तर्जले ७ विशुद्ध्येत क्रि-दत्त्वाऽ-गाम् २ चऽ-पयस्विनीम् २ ॥

योजना-ब्रह्महा त्रिरात्रोपोषितः सन्, अन्तर्जले अघमर्षणम् जप्त्वा च पुनः पयस्विनीं गां दत्त्वा विशुद्ध्येत ॥

तात्पर्यार्थ-तीन रात्र उपवास करके जलके भीतर अघमर्षणऋषि है जिसका, अनुष्टुप् जिसका छन्द है, भाववृत्त जिसका देवता है ऐसे 'ऋतं च सत्यं' इत्यादि त्र्यृच सूक्तको जप कर और तीन रात्रके अन्तमें एक दूध देती हुई गौको देकर ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता है। जप जलके भीतर तीन वार करना। जैसे कि सुमंतुने कहा है कि देवता द्विज और गुरु इनको मारकर जलके भीतर तीन वार अघमर्षण सूक्तको जपै। माता, भगिनी, मौसी, पुत्रवधू, सखी इनको और जो अगम्य हैं उनके साथ गमन करके जलके भीतर तीन वार अघमर्षणका जप करै तो शुद्ध होता है। यह प्रायश्चित्त काम (जानकर) से जो किया है जिसके विषयमें समझना। और जो कि मनु (अ० ११ श्लो० २४८) का वचन है कि व्याहृति और ॐकारसहित षोडश प्राणायाम मासपर्यंत प्रतिदिन करै तो भ्रूणहा पवित्र होता है। वह वचनभी इसी विषयमें उसको समझना, जो गौके देनेमें असमर्थ है। जो कि गौतमने बत्तीस ३२ दिनके व्रतको कहकर यह कहा है कि ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन इन पापोंमें उस व्रतको ही करै। प्राणायामोंसहित स्नान करके अघमर्षणको जपै। वह प्रायश्चित्त अकाम (अज्ञानसे) वधके विषयमें है। और जो

---

१ अविदित्वा ऋषिं छन्दोदैवतं योगमेव च । योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः ॥

१ देवद्विजगुरुहन्ताप्सु निमग्नोऽघमर्षणं सूक्तं त्रिरावर्तयेत् मातरं भगिनीं गत्वा मातृष्वसारं स्नुषां सखीं वान्यद्वागम्यागमनं कृत्वाऽघमर्षणमेवान्तर्जले त्रिरावर्त्य तदेतस्मात्पूतो भवति ।

२ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश । अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥

३ तद्व्रत एव ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽघमर्षणं जपेत् ।

कि बौधायनने कहा है कि ग्रामसे पूर्वदिशा उत्तरदिशाको निकलकर स्नान और शुद्ध हो शुद्ध वस्त्रोंको धारण कर जलके समीप स्थलकी भूमिको लीपकर एक वार आर्द्र किये वस्त्रोंसे युक्त और एक वार पवित्र किये पाणिसे (हाथ) अघमर्षण और वेद इनको सूर्याभिमुख होकर पढे और प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकालके समय सौ सौ और नक्षत्रोंके उदय होनेपर एक पसे यावकको खाय इस प्रकार करता हुआ पापी ज्ञानसे किये वा अज्ञानसे किये उपपातकोंसे सात रात्रिमें और महापातकोंसे वारह रात्रिमें मुक्त होजाता है । और जो कि यह कहा है कि ब्रह्महत्या सुरापान सुवर्णस्तेय इनको वर्ज कर उन महापातकोंकोभी इक्कीस रात्रिमें तर जाता है, वह कामसे करनेवाले पतितके विषयमें है अथवा अकामसे किये श्रोत्रिय आचार्य और वानप्रस्थके विषयमें है । जो कि मनुने यह कहा है कि (अ० ११ श्लो० २५८) वनके विषय प्रयत्नसे तीन वार वेदकी संहिताको पढकर तीन पराकों (कृच्छ्रका भेद) से शुद्ध हुआ सब पातकोंसे मुक्त होजाता है, वह कथन कामसे श्रोत्रिय आदिके वधके विषयमें है और अन्यत्र कामसे जो अभ्यास (वारंवार) से पाप कियाहो उसके विषयमें है । जो कि बृहद्विष्णुने यह कहा है कि ब्रह्महत्याको करके पुरुष ग्रामसे पूर्वदिशा वा उत्तरदिशामें जाकर बहुतसे इंधनमें अग्निको प्रज्वलित करके उसमें अघमर्षण मंत्रसे आठ सहस्र ८००० घीकी आहुति दें, तिसके अनन्तर इस कर्मसे पूत (पवित्र) होजाता है, वह बृहद्विष्णुका वचन निर्गुण ब्राह्मणके मारनेके विषयमें वा अनुग्रहकके विषयमें समझना । जो कि यमने कहा है कि युक्त होकर तीन दिन उपवास करै तीन दिन जल पीकर रहे और तीन वार अघमर्षणको जपै तो सब पातकोंसे छूटता है वह वचन गुणवाले हंतासे यदि निर्गुण ब्राह्मण मारा जाय तो उसके विषयमें वा प्रयोजक और अनुमंताके विषयमें समझना । जो कि हारीतने कहा है कि महापातक अतिपातक और उपपातक इनमें किसीके होनेमें अथवा तीनोंके होनेमें तीन वार अघमर्षणको जपै यह वचन निमित्त (पाप) के कर्ताके विषयमें समझना । इसी प्रकार अन्यभी स्मृतियोंके वचन देख देखकर इसी प्रकार तिस २ विषयकी विषयता पृथक् पृथक् समझना । ग्रंथके बढनेके भयसे हम नहीं लिखते यही व्रत यागस्थ स्त्री क्षत्रिय वैश्य आत्रेयी अग्निहोत्रीकी स्त्री गर्भिणी और विना जाने गर्भ- इनके मारनेमें चौथाई कम करके करना ॥

भावार्थ—ब्रह्महत्यारा त्रिरात्र उपवास और अघमर्षणको जलके भीतर जपकर और पयस्विनी गौ देकर शुद्ध होता है ॥ ३०२ ॥

---

१ ग्रामात्प्राचीं वोदीचीं दिशमुपनिष्क्रम्य स्नातः शुचिः शुचिवासा उदकान्ते स्थण्डिलमुपलिप्य सकृत्क्लिन्नवासाः सकृत्पूतेन पाणिनादित्याभिमुखोऽघमर्षणं स्वाध्यायमधीयीत प्रातः शतं मध्याह्ने शतमपराह्णे शतं परिमितं चोदितेषु नक्षत्रेषु प्रसृतियावकं प्राश्नीयात् ज्ञानकृतेभ्योऽज्ञानकृतेभ्यश्चोपपातकेभ्यः सप्तरात्रात्प्रमुच्यते द्वादशरात्रान्महापातकेभ्यो ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेय नि वर्जयित्वा । एकविंशतिरात्रेण तान्यपि तरति ।

२ अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् । मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥

१ ब्रह्महत्यां कृत्वा ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा दिशमुपनिष्क्रम्य प्रभूतेन्धनेनाग्निं प्रज्वाल्याघमर्षणेनाष्टसहस्रमाज्याहुतीर्जुहुयात्तत एतस्मात्पूतो भवति ।

२ त्र्यहं तूपवसेद्युक्तास्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः । मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाघमर्षणम् ॥

३ महापातकातिपातकोपपातकानामेकतमेन संनिपाते वाऽघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ।

लोमभ्यःस्वाहेत्यथवादिवसंमारुताशनः।
जलेस्थित्वाभिजुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुतीः॥

पद-लोमभ्यः४ स्वाहाऽ-इतिऽ-अथवाऽ-दिवसम् २ मारुताशनः १ जले ७ स्थित्वाऽ-अभिजुहुयात् क्रि-चत्वारिंशत् २ घृताहुतीः२॥

योजना-अथवा दिवसम् अभिव्याप्य मारुताशनः लोमभ्यः स्वाहा इति चत्वारिंशत् घृताहुतीः जले स्थित्वा अभिजुहुयात्॥

ता० भा०-अथवा अहोरात्रका उपवास करके रात्रिमें जलमें वसकर प्रातःकाल जलसे निकलकर लोमभ्यः स्वाहा इत्यादि आठ मंत्रोंसे एक २ से पांच २ आहुति इस प्रकार चालीस घीकी आहुति अग्निमें दे। इस प्रायाश्चित्तका विषय पूर्वोक्त प्रायश्चित्तके समान समझना क्योंकि जलमें वसनेमें क्लेश बहुत होता है॥ ३०३॥

त्रिरात्रोपोषितोहुत्वाकूश्मांडीभिर्घृतंशुचिः।
ब्राह्मणःस्वर्णहारीतुरुद्रजापीजलस्थितः॥

पद-त्रिरात्रोपोषितः १ हुत्वाऽ-कूश्मांडीभिः ३ घृतम् २ शुचिः १ ब्राह्मणः १स्वर्णहारी १ तुऽ-रुद्रजापी १ जले ७ स्थितः १॥

योजना-त्रिरात्रोपोषितः कूश्माण्डीभिः घृतं हुत्वा शुचिः भवति तु पुनः स्वर्णहारी जले स्थितः रुद्रजापी शुचिः भवति॥

तात्पर्यार्थ-तीन रात्र उपवास करके अनुष्टुप जिनका छंद है और मंत्रलिंग जिनका देवता है ऐसी यद्देवादेवहेडनम् इत्यादि कूश्मांडी ऋचाओंसे अग्निमें चालीस घीकी आहुति देकर सुरा पीनेवाला शुद्ध होता है। तिसी प्रकार बौधायननेभी कहा है कि जो अपनी आत्माको पापसे अपवित्र मानता है वह कूश्मांडी ऋचाओंसे होम करै, तिससे जितने भ्रूणहत्यासे कम पाप हैं उन सबसे छूटता है, अथवा स्वप्नसे अन्यत्र अयोनिमें वीर्यको गेरकर इसी होमसे शुद्ध होता है जो कि मनुने यह कहा है (अ० ११ श्लो० २६२) आपोहिष्ठा इत्यादि वसिष्ठ जिनका देवता है ऐसी तीन ऋचा माहित्र्य और शुद्धवती ऋचाओंको जपकर सुरापानवाला भी शुद्ध होता है इत्यादि श्लोकसे जो एक मासतक प्रतिदिन षोडश १६ बार इस वासिष्ठ ऋचा और महित्रीणामवोस्तु। एतान्विद्रंस्तवाम इस माहित्री और शुद्धवती इनमें एक ऋचाका जप कहा है वह जप त्रिरात्र उपवास और कूश्माण्डी ऋचाओंसे होम करनेमें जो असमर्थ है उसके विषयमें समझना और यह वचन अकामसे जो पैष्टी मदिराका पान एक वार कियाहो उसके विषय और गौडी माध्वी मदिराका पान जो वारंवार किया हो उसके विषयमें समझना। जो कि मनुने फिर (अ० ११ श्लो० २५६) कि शाकल होमके मंत्रोंसे वर्ष दिन घृतका होम वा नम इत्यादि त्र्यृचाको जप करनेवाला बडे भारी पापकोभी नष्ट करता है। इस श्लोकमें एक वर्ष तक प्रतिदिन (देवकृतस्यैनस) इत्यादि आठ ऋचाओंसे होम अथवा (नम इदुग्रं नम आविवास) इस ऋचाका जप जो कहा है वह कामसे पाप करनेवाले पुरुषके विषयमें है। और जो कि महापातकसे युक्त मनुष्य सावधान होकर गौओंका अनुगमन और पावमानी ऋचाओंका वर्षदिन तक

१ अथ कूष्माण्डीभिर्जुहुयाद्योऽपूत एवात्मानं मन्येत यावदर्वाचीनमेनो भ्रूणहत्यायास्तस्मान्मुच्यते अयोनौ वा रेतः सिक्त्वान्यत्र स्वप्नात्।

१ मासं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च त्र्यृचं प्रति। माहित्र्यं शुद्धवत्यश्च सुरापोपि विशुद्ध्यति॥

२ अपनः शोशुचदघं प्रतिस्तोमेभिरुषसम्।

३ मंत्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः। स गुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम्॥

जप और भिक्षाको भोजन करता है वह शुद्ध हो जाता है यह वचन है वहै अभ्याससे वारंवार किये पापके विषयमें वा जिसने सब महापातक किये हों उसके विषयमें है । जो ब्राह्मण स्वर्णको चुरावे वह तीन रात्र उपवास करके जलके मध्यमें बैठकर नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यादि शत रुद्रीका जप करता हुआ शुद्ध होता है। शातातपने इसमें विशेष दिखाया है कि मद्यपान गुरुकी स्त्रीसे गमन स्तेय और ब्रह्महत्या इनको करके भस्म शरीरसे लपेट और भस्मरूपी शय्यापर सोता हुआ मनुष्य रुद्रीके पठन करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है । रुद्रीका जप एकादश ११ वार करना क्योंकि अत्रिकी स्मृति है कि धर्मका जाननेवाला एकादशवार रुद्रका जप करके बडे पापोंसे युक्तभी छूट जाता है इसमें संशय नहीं । जो कि मनुने (अ० ११ श्लो० २५०) ने एकवारभी शिवसंकल्पनस्तु इत्यादि ऋचाको जपता हुआ मनुष्य सुवर्ण चुराकरभी क्षणमात्रमें निष्पाप हो जाता है इस श्लोकमें वामनसूक्तकी ५२ ऋचा हैं संख्याकी जिसमें ऐसे (अस्य वामस्य पलितस्य होतुः) इस सूक्तका तथा (यज्जाग्रतो दूरमुदैतु दैवं) इत्यादि शिवसंकल्प की हुई छः ऋचाओंका एकवार जप कहा है वह उस सुवर्णस्तेयके विषयमें है जिसका स्वामी अत्यन्त निर्गुण हो और हरनेवाला गुणवान् हो वा सुवर्ण न्यून परिणाम (थोडा) वाला हो अथवा अनुग्राहक वा प्रयोजकके विषयमें समझना और उस पापकी आवृत्ति अर्थात् वारंवार करनेमें तो (महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेत्.) इत्यादि श्लोकमें कहा हुआ प्रायश्चित्त समझना ॥

भावार्थ–तीन रात्र उपवास करके कूश्माण्डी ऋचाओंसे अग्निमें घीका होम करके सुराप शुद्ध हो जाता है और सुवर्णको चुरानेवाला ब्राह्मण जलमें बैठकर रुद्रके जप करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३०४ ॥

सहस्रशीर्षाजापी तु मुच्यतेगुरुतल्पगः । गौर्देयाकर्मणोस्यांतेपृथगेभिः पयस्विनी ॥

पद–सहस्रशीर्षाजापी १ तुऽ–मुच्यते क्रि– गुरुतल्पगः १ गौः १ देया १ कर्मणः ६ अस्य ६ अन्ते ७ पृथक्ऽ–एभिः ३ पयस्विनी १ ॥

योजना–तु पुनः गुरुतल्पगः सहस्रशीर्षाजापी सन् मुच्यते एभिः पापिभिः अस्य कर्मणः अन्ते पयस्विनी गौः पृथक् २ देया ॥

तात्पर्यार्थ–गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला नारायणका देखा अनुष्टुप् जिसका छन्द है पुरुष जिसका देवता है ऐसी षोडश ऋचाओंके सूक्तको जपै तो तिस पापसे मुक्त हो जाता है। सहस्रशीर्षजापी इस पदमें ताच्छील्यमें णिनिप्रत्यय है अर्थात् सहस्रशीर्षाके जप करनेमें जिसका शील (स्वभाव) हो वह सहस्रशीर्षाजापी होता है इससे सूक्तकी आवृत्ति प्रतीत होती है। आवृत्तिमें संख्याकी अपेक्षा हुई तो इस श्लोकसे निचले श्लोकमें जो चालीस संख्या कही है उसीका अनुमान होता है इससे वही संख्या समझनी । इस श्लोकमेंभी पूर्व श्लोकमें कहे त्रिरात्रोपोषित इस पदका संबंध होता है। इस

---

१ महापातकसंयुक्तोनुगच्छेद्गाः समाहितः । अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारी विशुद्ध्यति ॥

२ मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा । भस्माच्छन्नो भस्मशय्यां शयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः ॥

एकादशगुणान्वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् । महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥

४ सकृज्जप्त्वास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च । सुवर्णमपहृत्यापि क्षणाद्भवति निर्मलः ॥

से बृहद्विष्णुने कहा है कि तीन रात्र उपवास करके गुरुतल्पग, पुरुषसूक्तका जप और होम करनेसे शुद्ध होता है। सुराप सुवर्णका चोर गुरुतल्पग ये तीनों इस तीन रात्रके व्रतके अन्तमें बहुत दूध देनेवाली गौको दे, यह अकामसे किये पापके विषयमें समझना। जो कि मनु (अ० ११ श्लो० २५१) ने गुरुतल्पग हविष्पांती नतमंह इन दो ऋचा और पुरुषसूक्तको जपकर पापसे मुक्त होता है। इस श्लोकमें हविष्पांतीमजरं स्वर्विदा इसका वा नतमंहो नदुरितं इसका वा इति मे मनः वा सहस्रशीर्षा इसका महीनेतक प्रतिदिन षोडश २ ऋचाओंका चालीस वार जप कहा है वह अकामसे किये पापके विषयमें समझना और जो काम (जानकर) कृतपाप है उसमें तो (मंत्रैः शाकलहोमीयैः) इत्यादि ऋचासे जो प्रायश्चित्त कहा है वह समझना। क्योंकि षट्त्रिंशत्के मतमें कहा है कि द्विजन्मा महाव्याहृतियोंको पढकर तिलोंसे होम करै। उपपातककी शान्तिके लिये सहस्र आहुतियोंसे होम करै और जो महापातकसे युक्त होय तो लक्ष आहुतियोंसे शुद्ध होता है वह वारंवार किये पापके विषयमें समझना। जो कि यमने कहा है कि अस्यवामीयं वा पावमानी वा कुन्ताप वा वालखिल्य निवित्प्रैष वृषाकपि होता वा रुद्र इनको जपकर सब पातकोंसे छूटता है, वह वचन व्यभिचारिणी स्त्रीसे गमन करनेके विषयमें है। और जो गुरुतल्पके अतिदेश (समान माने) के विषय वा उसके समान पातक और अतिपातक हैं उनमें क्रमसे इस प्रायश्चित्तका चतुर्थांश वा अर्ध अंश कम करके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था समझनी। अथवा इस हारीतका कहा प्रायश्चित्त समझना कि पातक अतिपातक उपपातक और महापातक इन एक २ के वा समस्तोंके होनेमें अघमर्षणकोही तीन वार जपै। महापातकका संसर्ग जिसे हुआ हो वहभी इस वचनसे उसीके प्रायश्चित्तको करै जिसके साथ संसर्ग हो कि वह संसर्गी उसीके प्रायश्चित्तको करै। कदाचित् कोई शंका करै कि अध्यापन आदिके संसर्गमें अनेक कर्त्ता होते हैं इससे उसके प्रायश्चित्तमें रहस्यत्वकी अनुपपत्ति है सो ठीक नहीं। क्योंकि जैसे अनेक कर्त्ताओंसे होने परभी पराई स्त्रीके गमनरूप पापके प्रायश्चित्तमें रहस्यत्व है इसी प्रकार यहांभी कर्त्तासे व्यतिरिक्त तृतीय आदि (भिन्न) के न जानने मात्रसेही रहस्यता (गुप्त) है इससे अध्यापन आदि पापकाभी रहस्य प्रायश्चित्त होता है। इसी प्रकार अतिपातक आदिके संसर्गकोभी उसी अतिपातकीको कहा प्रायश्चित्त समझना ॥ ३०५ ॥

भावार्थ-गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला सहस्रशीर्षा इस सूक्तके जपसे शुद्ध होता है और ये गुरुतल्पग आदि प्रायश्चित्तके अन्तमें गौको दें ॥ ३०५ ॥

इति महापातकरहस्यप्रायश्चित्तकरणम् ॥

प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापानुत्तये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्यचैवहि ३०६

१ त्रिरात्रोपोषितः पुरुषसूक्तजपहोमाभ्यां गुरुतल्पगः शुद्धचेत् ।

२ हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च । जप्त्वा तु पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥

३ महाव्याहृतिभिर्होमास्तिलैः कार्यो द्विजन्मना । उपपातकशुद्धयर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ महापातकसंयुक्तो लक्षहोमेन शुद्धयति ॥

४ जपेद्वाप्यस्यवामीयं पावमानरिथावऽपि वा । कुंतापं वालखिल्यांश्च निवित्प्रैषान्वृषाकपिम् ॥ होतॄन्रुद्रान्सकृज्जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥

१ पातकातिपातकोपपातकानामन्यतमे संनिपाते वा अघमर्षणमेव त्रिर्जपेत् ।

पद-प्राणायामशतम् १ कार्यम् १ सर्वपापापनुत्तये ४ उपपातकजातानाम् ६ अनादिष्टस्य ६ च८-एव८-हि८- ॥

योजना-गोवधादिसर्वपापापनुत्तये च पुनः उपपातकजातानाम् अनादिष्टस्य पापस्य अपनुत्तये प्राणायामशतं कार्यम् ॥

तात्पर्यार्थ-गोवध आदि छप्पन ५६ उपपातक और जिनका रहस्य व्रत नहीं कहा ऐसे जातिभ्रंश करनेवाले सब पापोंके दूर करनेके लिये सौ १०० प्राणायाम करने तथा महापातकसे लेकर प्रकीर्णपर्यंत जितने पाप हैं उन सबके दूर करनेके लिये प्राणायाम करने। तहां महापातकके लिये चार सौ ४०० और अतिपातकोंके लिये तीन सौ ३०० और अनुपातकोंके लिये दो सौ २०० इस प्रकार संख्याकी विशेष वृद्धि समझनी। उपपातकरूप पापोंमें महापातकके प्रायश्चित्तका चतुर्थांश रूप प्रायश्चित्त देखा जाता है, इसीसे प्रकीर्णकरूप पापमें प्रायश्चित्तके ह्रास (कमी) की कल्पना करनी। इसीसे यमने कहा है कि दश १० ओंकारसहित चार सौ ४०० प्राणायामोंके करनेसे ब्रह्महत्यासे छूटता है, अन्यपातकोंकी तो क्या वार्ता है। बौधायनने भी यहां विशेष दिखाया है कि वाणी चक्षु श्रोत्र त्वचा घ्राण मन इनके भी व्यतिक्रम (अन्यथा होना) में तीन प्राणायामोंसे शुद्ध हो जाता है। शूद्रस्त्रीका गमन और अन्नके भोजनमें पृथक् २ सात दिन सात प्राणायामोंको करै। अभक्ष्य अभोज्य और अमेध्य वस्तुके भोजन करनेमें वा मधु मांस घी तैल लाख लवण इनसे अन्य अपण्य वस्तुके बेंचनेमें और इसी प्रकारके जो अन्य पाप हों उनमें बारह दिनतक बारह २ प्राणायामोंको करै और जो पातक उपपातकोंसे भिन्न अन्य पाप इसी प्रकारके हों उनमें पन्द्रह दिनतक बारह २ प्राणायामोंको करै और जिनसे पतित होजाय ऐसे पातक उपपातकोंको छोडकर जो इसी प्रकारके अन्य पाप हैं उनमें महीनेतक बारह २ प्राणायामोंको करै, और अन्यपातकोंको छोडकर जो इसी प्रकारके पाप हैं उनमें पंद्रह दिन बारह २ प्राणायामोंको करै, और पातकरूप पापके होनेमें वर्ष दिनतक बारह २ प्राणायामोंको करै। बौधायनके कहे विशेषमें १—वाक् चक्षुः इत्यादि वचनसे जो तीन प्राणायाम

१ दशप्रणवसंयुक्तैः प्राणायामैश्चतुःशतैः। मुच्यते ब्रह्महत्यायाः किं पुनः शेषपातकैः ॥

१ अपि वाक्चक्षुः * श्रोत्रत्वग्घ्राणमनोव्यतिक्रमेषु त्रिभिः प्राणायामैः शुद्ध्यति, शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजनेषु पृथक् २ सप्ताहं सप्त प्राणायामान्धारयेत्, अभक्ष्याभोज्यामेध्यप्राशनेषु तथा वा पण्यविक्रयेषु मधुमांसघृततैललाक्षालवणरसान्नवर्जितेषु, यच्चान्यदप्येवं युक्तं स्याद् द्वादशाहं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, अथ पातकोपपातकवर्ज्यं यच्चान्यदप्येवं युक्तं स्यादर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, उपपातकपतनीयवर्ज्यं यच्चाप्यन्यदेवं युक्तं स्यान्मासं द्वादशार्धमासान् द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, अथ पातकवर्ज्यं यच्चाप्यन्यदप्येवं युक्तं अर्धमासं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्, अथ पातकेषु संवत्सरं द्वादश द्वादश प्राणायामान्धारयेत्।

*इस बौधायनके वचनका जो अर्थ मिताक्षरामें लिखा है उसकेही अनुसार भापार्थ लिखा है परन्तु बौधायनके अनुसार वह संख्या प्राणायामोंकी नहीं मिलती जो मिताक्षरामें लिखी है क्योंकि नंबर ५ में द्वादशार्धमासान् इस पदके न होनेसे ३६० प्राणायामोंकी संख्या ठीक होसक्ती है, नंबर ६ में अर्ध मासमें प्रतिदिन बारह २ के हिसाबसे दो सहस्र दो सौ साठ २२६० जो प्राणायाम लिखे हैं वे ठीक नहीं होसकते, इससे नंबर ६ में 'अर्धमास' के स्थानमें 'षण्मासं' बौधायनके वचनमें और मिताक्षरामें षष्ट्यधिकद्विशतसहितद्विसहस्रसंख्याका २२६० के स्थानमें षष्ट्यधिकैकशतसहितद्विसहस्रसंख्याकाः प्राणायामाः २१६० के अर्थात् दो सहस्र एक सौ साठ प्राणायाम कहने ठीक थे हमने इस लिये न बदला कि ऋषियोंकी उक्तिमें हस्ताक्षेप करना नहीं।

कहे हैं वे प्रकीर्णक पापके अभिप्रायसे हैं, और २-शूद्रस्त्रीगमनान्नभोजन इत्यादि वचनोंसे जो उनचास ४९ प्राणायाम कहे हैं वे उपपातक विशेषोंके अभिप्रायसे हैं, तिसी प्रकार ३-अभक्ष्याभोज्य इत्यादि वचनसे एक सौ चवालीस १४४ प्राणायाम जो कहेहैं वेभी उपपातक विशेषोंके अभिप्रायसेही समझने, ४-अथ पातकोपपातकवर्ज्यं इत्यादि वचनसे जो एक सौ अस्सी १८० प्राणायाम कहे हैं वे जातिभ्रंशकारक आदि पापोंके अभिप्रायसे समझने, और ५-उपपातकपतनीयवर्ज्यं इत्यादि वचनसे जो तीन सौ साठ ३६० प्राणायाम कहे हैं वे गोवध आदि उपपातकोंके अभिप्रायसे हैं, ६-अथ पातकवर्ज्यं इत्यादि वचनसे जो दो सहस्र दो सौ साठ २२६० प्राणायाम कहे हैं वे अतिपातक और अनुपपातक रूप पापोंके अभिप्रायसे हैं, और इसी प्रकार जो ७-अथ पातकेषु इत्यादि वचनसे चार सहस्र तीन सौ बीस४३२० प्राणायाम कहे हैं वे महापातकरूप पापोंके विषयमें समझने। जो कि मनु (अ० ११ श्लो०१५३) ने स्थूल (गुरु) और सूक्ष्म(लघु) पापोंको अपनोदन (दूर करना) करनेकी इच्छा करताहुआ पुरुष अवेत्यृचं वा यत्किंचेदम् इस ऋचाका वर्ष दिनतक जप करै इस श्लोकसे वर्ष दिनतक प्रतिदिन अर्थान्तर (अन्यकार्य) का जिसमें विरोध न हो ऐसे कालमें अवते हेळोवरुण इसका वा यत्किंचेदम् वा इतिमे मनः शिवसंकल्पमस्तु इस ऋचाका जप कहा है वह अभ्याससे किये पापक विषयमें समझना ॥

भावार्थ-सब गोवध आदि पाप उपपातक और जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उन पापोंके दूर करनेमें शत प्राणायाम करै ॥ ३०६ ॥

ओंकाराभिष्टुतं सोमसलिलंपावनंपिबेत् ।
कृत्वातुरेतोविण्मूत्रप्राशनंतुद्विजोत्तमः ॥

पद-ओंकाराभिष्टुतम् २ सोमसलिलम् २ पावनम् २ पिबेत् क्रि-कृत्वाऽ-तुऽ-रेतोविण्मूत्रप्राशनम् २ तुऽ-द्विजोत्तमः १ ॥

योजना-तु पुनः द्विजोत्तमः रेतोविण्मूत्रप्राशनं कृत्वा ओंकाराभिष्टुतं पावनं सोमसलिलं पिबेत् ॥

तात्पर्यार्थ-ब्राह्मण वीर्य, विष्ठा और मूत्र इनको खाकर ओंकारसे अभिमंत्रित किये शुद्धिका साधन रूप जो सोमलताका रस है उसको पीवै वह प्रायश्चित्त अज्ञानसे किये पापके विषयमें है। ज्ञानसे किये पापमें तो सुमन्तुने यह कहाहै कि वीर्य विष्ठा मूत्र खाकर लहसन, सलगम, गाजर और कुम्भिका (तरबूज) आदि तथा हंस ग्रामका कुक्कुट कुत्ता गीदड आदिका मांस इनको भक्षण करके कण्ठतक जलमें प्रविष्ट होकर शुद्धवती ऋचाओंसे प्राणायाम और महाव्याहृतियोंको पढकर उरस्थल (छाती) पर हुए जलको पीकर शुद्ध होता है। मनु (अ०११ श्लो १५३) नेभी सात सात प्रकारके अभक्ष्यके भक्षणमें अन्य प्रायश्चित्त कहा कि प्रतिग्राह्य (ग्रहण करनेके योग्य) न हो ऐसे प्रतिग्रहको लेकर और निन्दित अन्नको खाकर जो मनुष्य तरत्समंदी ऋचाको जप-

१ एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् । अवेत्यृच जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति च ॥

१ रेतोविण्मूत्रप्राशनं कृत्वा लशुनपलाण्डुगृंजगकुम्भिकादीनामन्येषां वाभक्ष्यभक्षणं कृत्वा हंसग्रामकुक्कटश्वशृगालादिमांसभक्षणं कृत्वा ततः कण्ठमात्रमुदकमवतीर्य शुद्धवतीभिः प्राणायामं कृत्वा अथ महाव्याहृतिभिरुरोगमुदकं पीत्वा तदेतस्मात्पूतो भवति ।

२ प्रतिग्राह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्। जपेद्तरत्समंदीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥

करता है वह तीन दिनमें शुद्ध होता है। अप्रतिग्राह्य (प्रतिग्रह लेने अयोग्य) शब्दसे विष शस्त्र सुरापान आदिसे जो पतित हैं उनका द्रव्य समझना। जो मनुष्य जलमें वीर्य विष्ठा और मूत्र आदि शरीरके मलको छोडता है उसके विषयमेंभी मनुने कहा है कि जलोंके विषय मल आदिका पतन करके भिक्षाका भोजन करता हुआ महीनेतक स्थित रहै॥

भावार्थ–द्विजोत्तम वीर्य विष्ठा और मूत्र इनको जलमें गेरकर ओंकारसे अभिमंत्रण किये शुद्ध सोमलताके जलको पीवै॥ ३०७॥

निशायांवादिवावापियदज्ञानकृतंभवेत्।
त्रैकाल्यसंध्याकरणात्तत्सर्वंविप्रणश्यति॥

पद–निशायाम् ७ वाऽ–दिवाऽ–वाऽ–अपिऽ–यत् १ अज्ञानकृतम् १ भवेत् क्रि–त्रैकाल्यसंध्याकरणात् ५ तत् १ सर्वम् १ विप्रणश्यति क्रि–॥

योजना–निशायां वा दिवा (दिनविषये) अपि यत् अज्ञानकृतं भवेत् तत् सर्वं त्रैकाल्यसंध्याकरणात् विप्रणश्यति॥

तात्पर्यार्थ–रात्रि वा दिनमें जो प्रमादसे मानस और वाचिक पाप वा उपपातकरूप पाप किया है वह सब प्रातःकाल और मध्याह्न काल आदि तीनों कालोंमें किये हुए नित्यसंध्योपासन रूप कर्मसे नष्ट हो जाता है। सोई यमने कहा है कि जो दिनमें मनुष्य कर्म मन और वाणीसे पाप करता है वह सब पश्चिम (सायंकाल) संध्यामें स्थित हुआ मनुष्य प्राणायामोंसे नष्ट करता है। शातातपनेभी कहा है कि सायंकालमें उपासना की हुई संध्या झूंठ मद्यका गंध दिनमें मैथुनकर्म और शूद्रका अन्न इन सबको पवित्र करती है॥

भावार्थ–रात्रि वा दिनके विषय जो मनुष्य अज्ञानसे पाप करता है वह सब त्रिकाल संध्याकी उपासनासे नाशको प्राप्त हो जाताहै॥ ३०८॥

शुक्रियारण्यकजपोगायत्र्याश्चविशेषतः।
सर्वपापहराह्येतेरुद्रैकादशिनीतथा॥ ३०९॥

पद–शुक्रियारण्यकजपः १ गायत्र्याः ६ चऽ–विशेषतःऽ–सर्वपापहराः १ हिऽ–एते १ रुद्रैकादशिनी १ तथाऽ–॥

योजना–शुक्रियारण्यकजपः च पुनः विशेषतः गायत्र्याः जपः तथा रुद्रैकादशिनीजपः एते हि (निश्चयेन) सर्वपापहराः भवंति॥

तात्पर्यार्थ–विश्वानि देव सवितः इत्यादि वाजसनेयकमें पढे हुए आरण्यकको शुक्रिय और उसी स्थानमें पढे यजुः ऋचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये इत्यादि ऋचाको आरण्यक कहते हैं, उन दोनोंका जप सब पातकोंका हरनेवाला होता है। तिसी प्रकार गायत्रीका महापातकोंके विषय लक्ष १००००० जप, और अतिपातक उपपातकके विषय दश सहस्र १०००० जप उपपातकोंके विषय सहस्र १००० और प्रकीर्णक पापोंके विषय १०० शत जप इस प्रकार विशेषसे किया जप सब पापोंका हरनेवाला है। तिसी प्रकार गायत्रीका अधिकार करके शंखने श्लोक कहा है कि सौवार जपी हुई गा-

१ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक्।

२ यदह्ना कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा। आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्निहन्ति तत्॥

३ अनृतं मद्यगंधं च दिवा मैथुनमेव च। पुनाति वृषलान्नं च संध्या वहिरुपासिता॥

१ शतं जप्ता तु सावित्री महापातकनाशिनी। सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः प्रमोचिनी॥ दशसाहस्रजाप्येन सर्वकिल्विषनाशिनी। लक्षं जप्ता तु सा देवी महापातकनाशिनी॥ सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः सुरापश्च विशुद्ध्यन्ति लक्षं जप्त्वा न संशयः॥

त्री महापातकोंके नाश करनेवाली और सहस्र-वार जपी हुई पातकोंसे छुटानेवाली, और दश सहस्र वार जपी हुई सब किल्बिषोंके नष्ट कर-नेवाली, और लक्षवार जपी हुई महापातकोंके नष्ट करनेवाली होती है। सुवर्णका चोर ब्रह्मह-त्यारा गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला विप्र लक्ष गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध हो जाता है इसमें संशय नहीं। जो कि चतुर्विंशतिके मतसे कहा है कि किरोड गायत्रीको जपकर ब्रह्महत्यासे और अस्सी लक्ष वार जप करनेवाला सुरापानके पापसे और सत्तर लक्ष वार जप करनेवाला सुवर्णचोरी-रूप पापसे और ६० लक्ष वार गायत्रीके जप करनेवाला गुरुस्त्रीके गमनरूपी पापसे छूटता है, वह जपरूपी प्रायश्चित्त गुरु है इससे प्रकाश पापके प्रायश्चित्तके विषयमें समझना। तिसी प्रकार एकादश रुद्रानुवाकाके समूहको रुद्रैका-दशिनी कहते हैं उसको विशेष कर जपै तो सब पाप दूर हो जाते हैं। क्योंकि महापात-कोंके विषय रुद्रीकी एकादश आवृत्ति इस श्लोकमें कही है कि धर्मको जाननेवाला पुरुष एकादश रुद्रीकी आवृत्ति करके महापापोंसे मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं अति-पातक आदिमें तो चतुर्थांशका ह्रास (न्यून) करके प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी युक्त है इस श्लोकमें च शब्द अघमर्षण आदि के समुच्चयके लिये है जैसे कि वसिष्ठने कहा है कि इससे परे सब वेदोंमें जो पवित्र करने-वाली ऋचा है उनको कहता हूं। जिनके जप और होम करनेसे सब प्राणी पवित्र होते हैं इसमें संशय नहीं। देवताका किया अघमर्षण शुद्धवती तरत्समाः कौष्माण्डी पावमानी दुर्गा सावित्री अभिषंगा पदस्तोम साम व्याहृति भारदंडसाम गायत्र रैवत पुरुषव्रत भास देव-व्रत आलिंग बार्हस्पत्य वाक्सूक्त मध्वृच शत-रुद्रीय अथर्वशिरा त्रिसुपर्ण महाव्रत गोसूक्त अश्वसूक्त इंद्रशुद्ध ये दोनों साम तीन आज्य-दोह रथन्तर अग्निव्रत वामदेव बृहत् ये चौं-तीस गाई हुई ऋचा सब जन्तुओंको पवित्र करती हैं। यदि इच्छा करै तो मनुष्यपूर्व ज-न्मकी जातिका स्मरणभी इनसे होजाता है॥

भावार्थ-शुक्रिय आरण्यकका जप पुनः विशेषकर गायत्रीका जप और रुद्रैकादशि-नीका जप सब पापोंको हरनेवाला है॥ ३०९॥

यत्रयत्रचसंकीर्णमात्मानंमन्यतेद्विजः।
तत्रतत्रतिलैर्होमोगायत्र्यावाचनंद्विजः॥

पद-यत्र ऽ-यत्र ऽ-च ऽ-संकीर्णम् २ आत्मा-नम् २ मन्यते क्रि-द्विजः १ तत्र ऽ-तत्र ऽ-तिलैः ३ होमः १ गायत्र्या ३ वाचनम् २ द्विजः १॥

१ गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति। लक्षा-शीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते ॥ पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः। गायत्र्या लक्षषष्ट्या तु मुच्यते गुरुतल्पगः॥

२ एकादशगुणान्वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित्। मह-द्भ्यः स तु पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥

१ सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतःपरम्। येषां जपैश्च होमैश्च पूयन्ते नात्र संशयः॥ अघमर्षणं देव-कृतं शुद्धवत्यस्तरत्समाः। कूष्मांड्यः पावमान्यश्च दुर्गासावित्रिरेव च॥ अभिषंगाः पदस्तोमाः सामानि व्याहृतिस्तथा। भारदंडानि सामानि गायत्रं रैवतं तथा॥ पुरुषव्रतं च भासं च तथा देवव्रतानि च। आलिंगं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तं मध्वृचस्तथा॥ शतरुद्रियाथ-र्वशिरास्त्रिसुपर्णं महाव्रतम्। गोसूक्तं चाश्वसूक्तं च इंद्र-शुद्धे च सामनी॥ त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्ने-र्व्रतं वामदेव्यं बृहच्च। एतानि गीतानि पुनन्ति जन्तू-न्जातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत्॥

योजना–द्विजः यत्र यत्र आत्मानं संकीर्णं मन्यते तत्र तत्र तिलैः गायत्र्या होमः तथा द्विजः वाचनं कार्यः ॥

तात्पर्यार्थ–जिस जिस ब्रह्मवध आदिसे उत्पन्न हुए पापसे आत्माको यदि द्विज लिप्त माने तो तिस तिस पापकी शान्तिके लिये गायत्रीमंत्रसे तिलोंका होम करै। तहां यह व्यवस्था है कि महापातकोंमें तो गायत्री मंत्रसे लक्ष होम करै। क्योंकि यमकी स्मृति है कि गायत्रीमंत्रसे लक्ष होम किया जाय तो मनुष्य सब पातकोंसे छूटता है। अतिपातक आदिमें तो पादपादके (चतुर्थांश) प्रायश्चित्तमेंसे ह्रासकी कल्पना करनी उचित है। तथा तिलोंसे वाचन अर्थात् दान करना। तिसी प्रकार रहस्याधिकारमें वसिष्ठने कहाहै कि वैशाखकी पौर्णमासीके दिन पांच वा सात ब्राह्मणोंके लिये सहतयुक्त काले वा शुक्ल तिलोंका दान करके यह कहे कि हे धर्मराज ! आप प्रसन्न हो ऐसे कहनेसे जो मनमें पाप हों वे सब और यावज्जीव किये हुए पाप उसी क्षणमें नष्ट होजाते हैं। अनियत कालमें भी दान उसी वसिष्ठने कहा है कि कृष्णमृगचर्मके ऊपर तिल सुवर्ण मधु और सर्पिः इनको रखकर जो ब्राह्मणको देता है वह सब पापोंको तरजाता है। तिसी प्रकार व्यासने भी कहाहै कि आत्माको संयत (वश) में करके जो ब्राह्मणके लिये तिलधेनुको देता है वह ब्रह्महत्या आदि पापसे छूटता है इसमें संशय नहीं इसी प्रकार इत्यादि रहस्यकाण्डमें कहे हुए दान मूर्ख द्विजाति और स्त्री शूद्रके लिये समझने। जो कि यमने कहा है कि जो प्रातःकाल तिलोंका दान स्पर्श भक्षण स्नान और होम करता है वह सब पापोंको तरता है तथा इंद्रियोंको जीतकर जो मनुष्य वर्ष दिनतक मास मासकी दो अष्टमी तथा चतुर्दशी अमावास्या पूर्णमासी सप्तमी और दोनों द्वादशी इनको भोजन नहीं करता वह सर्व पातकोंसे छूटकर स्वर्गलोकको जाता है। और जो अत्रिने कहा है कि आषाढकी पूर्णमासीके दिन विष्णु क्षीरसमुद्रके विषय शेषरूपी शय्यापर सोते हैं और कार्तिककी पौर्णमासीके दिन निद्राको त्यागते हैं उन दोनों पौर्णमासियोंको जो हरिको पूजे वह शीघ्रही सब पापोंको नष्ट करताहै। उन सब यम आदिके कहे हुए वचनोंकी व्यवस्था विद्यासे रहित पुरुषोंके विषय ज्ञान अज्ञानसे सकृत् (एक वार) और अभ्यास आदिसे किये पापकी विशेषतासे समझनी ॥

भावार्थ–जिस जिस पापसे लिप्त आत्माको द्विज मानै उसी २ पापकी शांतिके लिये गायत्री मंत्रसे तिलोंका होम और दान करै ॥ ३१० ॥

१ गायत्र्या लक्षहोमे तु मुच्यते सर्वपातकैः।

२ वैशाख्यां पौर्णमास्यां च ब्राह्मणान् पंच सप्त च। क्षौद्रयुक्तैस्तिलैः कृष्णैर्वाचयेदथवेतरैः॥ प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्तते। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

३ कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी। ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥

४ तिलधेनुं च यो दद्यात्संयतात्मा द्विजन्मने। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥

१ तिलान्ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति। तिलस्नायी तिलाञ्जुह्वन्सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ द्वे वाष्टम्यौ मासस्य चतुर्दश्यां तथैव च। अमावास्या पूर्णमासी सप्तमी द्वादशीद्वयम्॥ संवत्सरमभुंजानः सततं विजितेन्द्रियः। मुच्यते पातकैः सर्वैः स्वर्गलोकं च गच्छति॥

२ क्षीराब्धौ शेषपर्यंके आषाढ्यां संविशेद्धरिः। निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेद्धरिम्॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेव व्यपोहति॥

वेदाभ्यासरतं क्षांतं पंचयज्ञक्रियापरम् । नस्पृशंतीहपापानिमहापातकजान्यपि ॥

पद-वेदाभ्यासरतम् २ क्षान्तम् २ पंचयज्ञक्रियापरम् २ नऽ-स्पृशन्ति क्रि-इहऽ-पापानि १ महापातकजानि १ अपिऽ-॥

योजना-वेदाभ्यासरतं क्षांतं पंचयज्ञक्रियापरं द्विजाः इह लोके महापातकजानि अपि पापानि न स्पृशन्ति ॥

तात्पर्यार्थ-पूर्व वेदका स्वीकार, फिर विचार, फिर अभ्यास, उसके अनन्तर जप और फिर उसकाही शिष्योंके लिये दान इस प्रकार पांच प्रकारका वेदाभ्यास जो कहाहै इसी क्रमसे जो वेदके अभ्यासमें तत्पर और तितिक्षासे युक्त और पंचमहायज्ञके अनुष्ठानमें तत्पर जो मनुष्य है उसको महापातकोंसे उत्पन्न हुए भी पाप स्पर्श नहीं करते । प्रकीर्ण और वाणी और मनसे उत्पन्न हुए पाप तो क्या कर सक्ते हैं । प्रकीर्ण इत्यादि अर्थ यहां अतिशब्दसे लब्ध होता है यह वचन अकामसे किये पापके विषयमें समझना । इसीसे वसिष्ठने प्रकीर्णक आदिके अभिप्रायसे कहा है कि जो वेद और सैकडों अकार्योंको धारण करता है उसके किये सैकडों उत्कट अकार्यों (पाप) को उसकी वेदाग्नि ऐसे दाह कर देती है जैसे अग्नि इंधनको यह कहकर यह कहा है कि वेदके बलको प्राप्त होकर पापमें रत न हो अर्थात् पाप न करै क्योंकि अज्ञान वा प्रमादसे जो कर्म किया जाता है वही दाह होता है इतर नहीं ॥

भावार्थ-वेदके अभ्यासमें तत्पर शान्तस्वरूप और पंचमहायज्ञोंमें तत्पर मनुष्यको महापातकोंसे उत्पन्न हुए भी पाप स्पर्श नहीं करते ॥ ३११ ॥

वायुभक्षोदिवातिष्ठन्रात्रिंनीत्वाप्सुसूर्यदृक् । जप्त्वासहस्रंगायत्र्याःशुद्धयेद्ब्रह्मवधादृते॥

पद-वायुभक्षः १ दिवाऽ-तिष्ठन् १ रात्रिम् २ नीत्वाऽ-अप्सु ६ सूर्यदृक् १ जप्त्वाऽ-सहस्रम् २ गायत्र्याः ६ शुध्येत् क्रि-ब्रह्मवधात् ५ ऋतेऽ-॥

योजना-वायुभक्षः दिवा तिष्ठन् तथा रात्रिं अप्सु नीत्वा सूर्यदृक् सन् गायत्र्या सहस्रं जप्त्वा ब्रह्मवधात् ऋते शुध्येत् ॥

तात्पर्यार्थ-उपवास करता हुआ मनुष्य दिनको और रात्रिको जलमें बैठकर व्यतीत करै फिर सूर्योदयके पीछे सहस्र (हजार) गायत्रीको जपकर ब्रह्महत्यासे अतिरिक्त सब महापातक आदि पापसे छूटता है । इससे यह वचन उपपातक आदिके अभ्यास वा अनेक पापोंके समुच्चयमें समझना । क्योंकि जो विषय है ऐसे विषयका सम (समान) करना अन्याय होता है । इसीसे वृद्धवसिष्ठने महापातक और उपपातकोंके विषय व्रतविशेष कालविशेषमें कहा है कि यवोंकी प-

१ यद्यकार्यशतं साग्रं कृतं वेदश्च धार्यते । सर्वं तत्तस्य वेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत् । अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरत् ॥

१ यवानां प्रसृतिमंजलिं वा श्रप्यमाणं घृतं चाभिमंत्रयेत् । यवोसि धान्यराजस्त्वं वारुणो मधुसंयुतः । निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिभिः स्मृत इत्यनेन । घृतं यवा मधु यवाः पवित्रममृतं यवाः । सर्वं पुनंतु मे पापं वाङ्मनःकायसंभवमित्यनेन वा ॥ अग्निकार्यं न कुर्वीत तेन भतवालिं तथा । नाग्रं न भिक्षां नातिथ्यं न चोच्छिष्टं परित्यजेत् ॥ येदेवामनोजाता मनोयुजः सुदक्षाः दक्षपितरः ते नः पांतु तेनोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहेत्यात्मनि जुहुयात्रिरात्रं मेधाभिवृद्धये पापक्षयाय त्रिरात्रं सप्तरात्रं ब्रह्महत्यादिषु द्वादशरात्रं पतितोत्पन्नश्च ।

की हुई प्रसृति वा अंजलिको और घृतको इस मन्त्रसे अभिमंत्रित करै कि तू जौ है, धान्योंका राजाहै और वरुण तेरा देवता है मधुसे युक्त है सब पापोंको दूर करनेवाला ऋषियोंने पवित्र कहाहै अथवा इस मन्त्रसे कि घृत और जौ मधु और जौ पवित्र अमृत यव हैं, मेरी वाणी मन कायासे पैदा हुए सब पापोंसे पवित्र करो और अग्निकार्य न करै और तिससे भूतबलि न करै। अग्रभिक्षा, आतिथ्य, उच्छिष्ट इनको न त्यागे। जो देवता मनोजात, मनोयुज, सुदक्ष, दक्षपितर हैं वे हमारी रक्षा करो २ तिनको नमस्कार है उनके लिये स्वाहा है इस मंत्रसे बुद्धिकी वृद्धि और पापके क्षयार्थ त्रिरात्र होम करै, और ब्रह्महत्या आदिमें सप्त रात्र और पतितसे उत्पन्न होय तो द्वादश रात्र हवन करै। इसी प्रकार अन्यभी स्मृतिके वचनोंका विवेक करना ॥

भावार्थ–दिनमें खडा होकर वायुको भक्षण करता और रात्रिको जलमें बसकर और प्रातःकाल सूर्यके दर्शन किये पीछे एकसहस्र गायत्रीको जपकर ब्रह्मवधसे अन्य जो पाप उनसे छूटता है ॥ ३१२ ॥

इति रहस्यप्रायश्चित्तप्रकरणम् ॥

ब्रह्मचर्यंदयाक्षांतिर्दानंसत्यमकल्कता।
हिंसास्तेयमाधुर्येदमश्चेतियमाः स्मृताः॥

पद–ब्रह्मचर्यम् १ दया १ क्षांतिः १ दानम् १ सत्यम् १ अकल्कता १ अहिंसा १ अस्तेयमाधुर्य १ दमः १ चऽ–इतिऽ–यमाः १ स्मृत : १ ॥

स्नानंमौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः। नियमागुरुशुश्रूषाशौचाक्रोधाप्रमादता ॥

पद–स्नानम् १ मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः १ नियमाः १ गुरुशुश्रूषा १ शौचाक्रोधाप्रमादता १ ॥

योजना–ब्रह्मचर्यं दया क्षांतिः दानं सत्यम् अकल्कता अहिंसा अस्तेयमाधुर्ये च पुनः दमः इति यमाः स्मृताः मन्वादिभिरिति शेषः। स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता एते नियमाः स्मृताः मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ–अब व्रतके अंग धर्मोंको कहते हैं। ब्रह्मचर्य अर्थात् संपूर्ण इंद्रियोंको विषयोंसे रोकना, दया क्षमा दान शठताका त्याग अहिंसा अस्तेय (चोरी न करना) मधुर वचन कहना और इंद्रियोंका दमन (दबाना) ये दश मनु आदिकोंने यम कहे हैं। और जो मनुने[1] यह कहा है कि अहिंसा सत्य अक्रोध आर्जव (कोमलता) इनको करै वहभी इनका उपलक्षण है कुछ गिननेके लिये नहीं और यहां दया क्षांति आदि पुरुषार्थ रूपसेही प्राप्त थे पुनः विधान प्रायश्चित्तके अंग जतानेके लिये है। क्वचित् (कहीं) विशेषभी है जैसे विवाह आदिकोंमें अनुज्ञातभी अनृत (मिथ्या) वचनकी निवृत्तिके लिये सत्यका वचन है और पुत्र शिष्य आदिकीभी ताडना न करै इसके लिये अहिंसाका विधान है और स्नान मौन उपवास यज्ञ स्वाध्याय (वेदपाठ) और उपस्थ (लिंग) का निग्रह (वशमें रखना) यहभी ब्रह्मचर्यसेही आजाता पुनः पृथक् निर्देश (पढना) गोबलीवर्द चानय इस वाक्यमें गौके कहनेसेही बैल आजाता पृथक् पाठ विशेषताके लिये है। गुरुकी शुश्रूषा शौच क्रोध और प्रमादका त्याग ये दश नियम आचार्योंने कहे हैं ॥

भावार्थ–ब्रह्मचर्य दया क्षमा दान सत्य अकुटिलता अहिंसा अस्तेय मधुरस्वभाव दम ये दश यम और स्नान मौन उपवास यज्ञ वेद (पढना) लिंग इंद्रियको रोकना गुरुकी शुश्रूषा

1 अहिंसां सत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्।

शौच क्रोध और प्रमादका त्याग ये दश नियम आचार्योंने कहे हैं ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिः कुशोदकम् । जग्ध्वापरेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रंसांतपनंपरम् ३१५

पद-गोमूत्रम् २ गोमयम् २ क्षीरम् २ दधि २ सर्पिः २ कुशोदकम् २ जग्ध्वाऽ-परे ७ अह्नि ७ उपवसेत् क्रि--कृच्छ्रम् १ सांतपनम्ऽ-परम् १ ॥

योजना-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं पूर्वे अह्नि जग्ध्वा परे अह्नि उपवसेत् एतत्परं सांतपनं कृच्छ्रं स्मृतम् ॥

तात्पर्यार्थ-पहिले दिन अन्य भोजनको त्यागकर गोमूत्र गोमय दूध दधि घी इन पांचों द्रव्योंको और कुशाके जलको मिलाकार पीवै और दूसरे दिन उपवास करै यह दो दिनका सांतपन कृच्छ्र होताहै। यहां मिलाकार पांचोंका पीना इससे जाना जाता है कि अगले श्लोकमें पृथक् २ पीना कहा है। कृच्छ्र जो कष्टसे हो यह अन्वर्थ संज्ञा है क्योंकि यह सांतपनरूप व्रत क्लेशसे होता है। अन्वर्थ संज्ञा वह होती है जि-सका अर्थ भी संगी (अर्थ) में घट जाय और जब पहिले दिन उपवास करके अगले दिन मंत्रोंसे पंचगव्योंको मिलाकर मंत्रोंसेही पंचगव्य पीया जाय तो वह ब्रह्मकूर्च कहाता है। सोई पराशरने कहाहै कि गोमूत्र गोमय दूध दही घी और कुशाका जल यह पंचगव्य कायाका शो-धन पवित्र कहा है। ताम्रवर्णकी गौका गोमूत्र, श्वेत गौका गोमय, सुवर्णके समान वर्णकीका दूध, नीली गौका दधि, काली गौका घृत ग्रहण करै अथवा यदि सब वर्णोंकी गौ न मिलैं तो संपूर्ण गोमूत्र आदि कपिल गौके लेने। पंचग-व्योंके विषय यह विधि है, आठ मासे गोमूत्र, सोलह मासे गोमय, बारह मासे दूध, दश मासे दधि कही है और गोमूत्रके समान घृतकेभी आठ भाग कहे हैं और उससे आधा कुशाका जल होताहै। गायत्री पढकर गोमूत्रको ले, और गन्धद्वारा० इस मंत्रसे गोमयको, और आप्या-यस्व० इस मंत्रसे दूधको, और दधिक्राव्णो० इस मन्त्रसे दहीको, और तेजोसि० इस मंत्रसे घीको, और देवस्यत्वा० इस मंत्रसे कुशाज-लको ग्रहण करै। ऋचाओंसे पवित्र किये पंचग-व्यको अग्निमें होम करै। सात पत्तोंके और अग्रभाग सहित और शुद्ध प्रकाशरूप कुशोंसे विधिपूर्वक पंचगव्यका होम करै। और इरा-वती० इदंविष्णु० मानस्तोके० शंवती० इन मन्त्रासे होम करै और होमके शेष पंचगव्यको द्विज पीवै। और ओंकारसे आलोडन (बिलोना वा चलाना) और ओंकार-सेही अभिमन्त्रण और ओंकारसे उद्धृत (उठाना वा लेना) करके ओंकारसेही

१ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । निर्दिष्टं पंचगव्यं तु प्रत्येकं कायशोधनम् ॥ गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चापि गोमयम् । पयः कांचन-वर्णायाः नीलायाश्च तथा दधि ॥ घृतं च कृष्णव-र्णायाः सर्वं कापिलमेव वा । अलाभे सर्ववर्णानां पंच-गव्येष्वयं विधिः ॥ गोमूत्रे माषकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश । क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिताः ॥ गोमूत्रवद् घृतस्याष्टौ तदर्धं तु कुशोदकम् । गायत्र्या-दाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि । तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥ पंचगव्यमृचापूतं होमयेद-ग्निसंनिधौ । सप्तपत्राश्च ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुचि-त्विषः ॥ एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि । इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥ एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्द्विजः । प्रणवेन समालोड्य प्रण-वेनाभिमंत्र्य च ॥ प्रणवेन समुद्धृत्य पिबेत्तत्प्रणवेन तु । मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा पिबेत् ॥ स्वर्ण-पात्रेण ताम्रेण ब्रह्मतीर्थेन वा पुनः । यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मानवे ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्य-ग्निरिवेन्धनम् ॥

पीवे और ढाकके मध्यके पत्तेसे वा पद्मके पत्तेसे पीवे अथवा सुवर्णके पात्र वा तांबेके पात्रसे पीवे अथवा ब्रह्मतीर्थसे पीवे और पीनेके समय इस मंत्रको पढे कि जो मेरे शरीरके विषय त्वचा अस्थियोंमें पाप है उसको ब्रह्मकूर्च उपवास इस प्रकार दग्ध करै जैसे अग्नि इंधनको करताहै । और जब यही पंचगव्य मिलाकर तीन रात्रि पीयाजाय तब यतिसांतपन कहाताहै । क्योंकि शंखकी स्मृति है कि इसकाही तीन दिन अभ्यास किया जाय तो यतिसांतपन कहाहै । जावालने तो सात दिनमें जो किया जाय वह सांतपन कहाहै कि गोमूत्र गोमय दूध दही घी कुशाका जल इन एक एकको प्रतिदिन पीकर अहोरात्र उपवास करै, यह सांतपन कृच्छ्र सब पापोंका नाशक है और इन गुरु लघु कृच्छ्रोंकी व्यवस्था शक्ति आदिकी अपेक्षासे जाननी इसी प्रकार आगे भी व्यवस्था जाननी ॥

भावार्थ-पहिले दिन गोमूत्र गोमय दूध दही घी और कुशाका जल इनको पीकर अगले दिन उपवास करै यह श्रेष्ठ सांतपन कृच्छ्र कहाता है ॥ ३१५ ॥

पृथक्सांतपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः ।
सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासांतपनःस्मृतः ॥

पद-पृथक्सांतपनद्रव्यैः ३ षडहः १ सोपवासकः १ सप्ताहेन ३ तु ऽ-कृच्छ्रः १ अयम् १ महासांतपनः १ स्मृतः १ ॥

योजना-पृथक्सांतपनद्रव्यैः सोपवासकः षडहः चेत् गच्छति तर्हि सप्ताहेन अयं कृच्छ्रः महासांतपनः स्मृतः मन्वादिभिरिति शेषः ॥

तात्पर्यार्थ-सात दिनमें जो किया जाय वह महासांतपन कृच्छ्र जानना कैसे जानना इस अपेक्षामें कहा है कि पृथक् २ किये छओं गोमूत्र आदिको पीकर एक २ दिन व्यतीत करै और सातवें दिन उपवास करै यह महासांतपन कृच्छ्र कहा है । यमने तो पंद्रह दिनमें जो किया जाय वह महासांतपन कहा है कि तीन दिन गोमूत्र, तीन दिन गोमय, तीन दिन दही, तीन दिन दूध, तीन दिन घी पीनेसे शुद्ध होता है । यह महासांतपन सब पापोंका नाशक है । जावालने तो इक्कीस रात्रमें जो हो वह महासांतपन कहा है कि इन गोमूत्र आदि छओंमेंसे एक २ को तीन २ दिन पीवै और पिछले तीन दिन उपवास करै और जब इन्ही सांतपनद्रव्योंमेंसे एक २ को दो २ दिन पीवै तो अतिसांतपन होता है । सोई यमने कहा है कि इनको ही एक २ करके दो २ दिन पीवै तो यह अतिसांतपन नामका कृच्छ्र श्वपाकको भी शुद्ध करता है । यहां श्वपाकको भी शुद्ध करता है यह अर्थवाद है अर्थात् श्वपाककी शुद्धि नहीं हो सकती ॥

भावार्थ-इन छहों सांतपनके द्रव्योंको पृथक् २ छः दिन पीवै और सातवें दिन उपवास करै यह सात दिनमें करने योग्य महासांतपन कहा है ॥ ३१६ ॥

पर्णोदुंबरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ।
प्रत्येकंप्रत्यहंपीतैःपर्णकृच्छ्र उदाहृतः ३१७

---

१ एतदेव त्र्यहाभ्यस्तं यतिसांतपनं स्मृतम् ।

२ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकैकं प्रत्यहं पीत्वा त्वहोरात्रमभोजनम् ॥ कृच्छ्रं सांतपनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥

१ त्र्यहं पिबेत्तु गोमूत्रं त्र्यहं वै गोमयं पिबेत् । त्र्यहं दधि त्र्यहं क्षीरं त्र्यहं सर्पिस्ततः शुचिः ॥ महासांतपनं ह्येतत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥

२ षण्णामेकैकमेतेषां त्रिरात्रमुपयोजयेत् । त्र्यहं चोपवसेदंत्यं महासांतपनं विदुः ॥

३ एतान्येव यदा पेयादेकैकं तु द्व्यहं द्व्यहम् । अतिसांतपनं नाम श्वपाकमपि शोधयेत् ॥

पद–पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः ३ प्रत्येकम् २ प्रत्यहम् २ पीतैः ३ पर्णकृच्छ्रः १ उदाहृतः १।

योजना–प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः पर्णकृच्छ्रः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ–ढाक गूलर कमल बेल इन
एक २ के पत्तोंके क्वाथके (जल) को प्रति-
दिन पीवै और फिर एक दिन कुशाका जल
पीवै यह पांच दिनमें करने योग्य पर्णकृच्छ्र
कहा है। और जब ढाक आदिके पत्तोंको इ-
कट्ठे करके तीन रात्र उनका क्वाथ पियाजाय
तब पर्णकूर्च होता है। सोई यमने¹ कहा है कि
इन सम्पूर्णोंको तीन रात्र उपवास करनेके अन-
न्तर शुद्ध होकर क्वाथ करके पीवै तो यह
जलोंका ब्रह्मकूर्च कहा है और जब बेल
आदि प्रत्येक फलोंको क्वाथ करके मासभर
पीवै तो उसकी फलकृच्छ्र संज्ञा होती है। सोई
मार्कण्डेयने कहा है कि एक मासभर फलोंके
क्वाथको पीवै तो बुद्धिमानोंने फलकृच्छ्र कहा
है। श्रीफलोंसे श्रीकृच्छ्र, पद्माक्षोंसे पद्मकृच्छ्र
और इसी प्रकार आमलकोंके क्वाथको मासभर
पीवै तो अन्यभी श्रीकृच्छ्र कहा है। पत्रोंके
पीनेसे पत्रकृच्छ्र, पुष्पोंके पीनेसे पुष्पकृच्छ्र और
मूलके पीनेसे मूलकृच्छ्र और जलके पीनेसे
तोयकृच्छ्र कहा है ॥

भावार्थ–ढाक, गूलर, कमल, बेल इनके पत्ते और कुशाका जल इन प्रत्येकको प्रतिदिन पीवै तो पर्णकृच्छ्र कहा है ॥ ३१७ ॥

तप्तक्षीरघृतांबूनामेकैकंप्रत्यहंपिबेत् ॥
एकरात्रोपवासश्चतप्तकृच्छ्रउदाहृतः॥३१८

पद–तप्तक्षीरघृताम्बूनाम् ६ एकैकम् २ प्रत्यहम् २ पिबेत् क्रि–एकरात्रोपवासः १ च८-तप्तकृच्छ्रः १ उदाहृतः१॥

योजना–तप्तक्षीरघृताम्बूनाम् एकैकं प्रत्यहं पिबेत् च पुनः एकरात्रोपवासः असौ तप्तकृच्छ्रः उदाहृतः ॥

तात्पर्यार्थ–तपाये हुए दूध घी जलोंमेंसे
एक एकको प्रतिदिन पीवै, फिर एकरात्र उप-
वास करै यह चार दिनमें होने योग्य महा-
तप्तकृच्छ्र कहा है और इन सबको एक दिन
पीकर और एक दिन उपवास करे तो दो दिनमें
होने योग्य वह तप्तकृच्छ्र कहाता है। मनुने तो
बारह दिनमें जो किया जाय वह तप्तकृच्छ्र
कहा है (अ० ११ श्लो० २१४) कि तप्तकृ-
च्छ्रका आचरण करता हुआ ब्राह्मण जल घी
दूध पवन इन प्रत्येकको उष्ण करके तीन २ दिन
एक दिन स्नान करनेके अनन्तर सावधानीसे
पीवै। दूध आदिका परिमाण तो पराशरका
कहा जानना कि तीन पल जल पीवै दो पल
दूध एक पल घी और तीन रात्र तक उष्ण पवन
पीवै अर्थात् त्रिरात्रतक उष्ण जलकी वाष्प पीवै
और जब शीतलही दूध आदिको पीवै तो शीत-
कृच्छ्र कहाता है। क्योंकि यमकी स्मृति है कि
तीन दिन ठंढा जल, तीन दिन शीतल दूध

१ एतान्येव समस्तानि त्रिरात्रोपोषितः शुचिः । क्वाथयित्वा पिबेदद्भिः पर्णकूर्चोऽभिधीयते ॥

१ फलैर्मासेन कथितः फलकृच्छ्रो मनीषिभिः । श्रीकृच्छ्रः श्रीफलैः प्रोक्तः पद्माक्षैरपरस्तथा ॥ मासेनामलकैरेवं श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतम् । पत्रैर्मतः पत्रकृच्छ्रः पुष्पैस्तत्कृच्छ्र उच्यते ॥ मूलकृच्छ्रः स्मृतो मूलैस्तोयकृच्छ्रो जलेन तु ॥

१ तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः ॥

२ अपां पिबेत्तु त्रिपलं द्विपलं तु पयः पिबेत् । पलमेकं पिबेत्सर्पिस्त्रिरात्रं चोष्णमारुतम् ॥

३ त्र्यहं शीतं पिबेत्तोयं त्र्यहं शीतं पयः पिबेत् । त्र्यहं शीतं घृतं पीत्वा वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥

तीन दिन शीतल घी और तीन दिन शीतल पवनको पीवे तो शीतकृच्छ्र होता है ॥

भावार्थ-तपाये हुए दूध घी जल इन प्रत्येकको एक २ दिन पीवे तो तप्तकृच्छ्र कहाताहै ॥ ३१८ ॥

एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥
उपवासेनचैवायंपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥

पद-एकभक्तेन ३ नक्तेन ३ तथाऽ-एवऽ-अयाचितेन ३ चऽ-उपवासेन चऽ-एवऽ-अयं १ पादकृच्छ्रः १ प्रकीर्तितः १ ॥

योजना-एकभक्तेन नक्तेन च पुनः तथा अयाचितेन तथा उपवासेन अयं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥

तात्पर्यार्थ-दिनमेंही एक वार भोजन करके एक अहोरात्रको व्यतीत कर क्योंकि नक्तेन इसपदसे रात्रिकोही भोजन करके नक्तव्रतका पृथक् उपादान है तिसमें दिनमेंही यह कहनेसे रात्रिभोजनका निषेध और एक वार कहनेसे दो वार भोजनका निषेध, भोजन यह कहनसे उपवासका निषेध समझना । कृच्छ्र आदिकोंको व्रतरूप होनेसे पुरुषार्थ भोजनके निषेधसे कृच्छ्रके अंग भोजनका विधान है । सोई आपस्तम्बने कहा है कि तीन दिन रात्रिमें भोजन न करे और तीन दिन दिनमें न करे और तीन दिन अयाचित व्रतको करे और तीन दिन कुछभी भोजन न करे इस आपस्तम्बके वचनमें अनक्ताशी इस पदमें व्रत अर्थमें णिनि प्रत्यय करनेसे नक्त (रात्रि) भोजनके निषेधसे दिनमें भोजनका नियम प्रतीत होता है । गोतमने भी यही स्पष्ट किया है कि प्रातःकाल हविष्यका भोजन करके तीन रात्रि भोजन न करे इसी प्रकार नक्त भोजनकी विधिमें भी समझना । नहीं है याचित जिसमें उसे अयाचित कहते हैं, उसमें विशेष कालका कथन नहीं इससे दिनरात्रिमें विना मांगे जो मिले उसे एक वार भोजन करे, क्योंकि कृच्छ्र तपरूप है, दूसरीवार भोजन करनेमें तप नहीं होसक्ता । और अयाचित पदसे कुछ पराये अन्नकी याचनाका निषेध नहीं किन्तु अपना भी अन्न सेवक और भार्या आदिकोंसे न मांगना । क्योंकि याच्ञा प्रेषण और अध्येषणमें समान होती है इससे अपने घरमें भी सेवक और भार्या आदि विना याचन करनेसे देदें तो लेले अन्यथा नहीं, इसी अभिप्रायसे गौतमने कहा है कि फिर तीन दिनतक किसीकी याचना न करे, इसमें ग्राससंख्याका नियम पराशरने दिखाया है कि सायं कालको बारह ग्रास, प्रातःकाल पंद्रह और याचनके चौबीस २४ ग्रास कहे हैं और आपस्तम्बने तो अन्यथा कहा है कि सायंकालको बत्तीस ग्रास, प्रातःकाल छब्बीस और याचनाके चौबीस २४ और तीन दिन उपवासके होते हैं और कुक्कुट अंडके प्रमाणका जैसा मुखमें सुखसे चला जाय तैसा ग्रास होता है । इन दोनों कल्पोंका शक्तिकी अपेक्षासे विकल्प समझना । आपस्तंबने तो प्राजापत्य प्रायश्चि-

१ त्र्यहमनक्ताश्यदिवाशी ततस्त्र्यहंत्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किंचन ।

२ हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयात् ।

१ सायंतु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः । चतुर्विंशतिरायाच्य : परं निरशनं स्मृतम् ॥

२ सायं द्वाविंशतीर्ग्रासाःप्रातः षड्विंशतिःस्मृताः । चतुर्विंशतिरायाच्याः परं निरशनात्रयः ॥ कुक्कुटांडप्रमाणस्तु यथाचास्यं विशेत्सुखम् ॥

३ त्र्यहं निरशनं पादः पादश्चायाचितंत्र्यहम् । सायं, त्र्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा त्र्यहम् ॥ प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥ अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणे स्मृतम् ॥

त्तका चार प्रकार विभाग करके चार पाद
कृच्छ्र करनेके अनन्तर वर्णोंके क्रमसे व्यवस्था
दिखाई है कि तीन दिन उपवास न करना यह
एक पाद और तीन दिन अयाचित और तीन
दिन सायंकाल और तीन दिन प्रातःकाल
भोजन करै यह एक २ पाद करै। प्रातःकालके
पादको शूद्र करै, सायंकालवेको वैश्य और
अयाचितको क्षत्री और त्रिरात्रके उपवासको
ब्राह्मण करै। और जब अयाचित उपवास तीन
दिन किये जाय तब तो अर्द्धकृच्छ्र और
सायंकालको छोडकर तीनों कृच्छ्र किये जांय तो
पादोन कृच्छ्र जानना। क्योंकि उसनेही यह कहा
है कि सायंकाल प्रातःकालके विना अर्द्ध कृच्छ्र
और सायंकालको छोडकर पादोन कृच्छ्र होता
है। अर्धकृच्छ्रका दूसरा प्रकार भी उसने
दिखाया है कि एक २ दिन सायंकाल प्रातः
काल भोजन करै और दो दिन अयाचित व्रत
करै और दो दिन उपवास करै तो कृच्छ्रार्द्ध
कहाता है॥

भावार्थ–एक दिन एकभक्त, एक दिन नक्त-
एक दिन अयाचित भोजनको करै और एक
दिन उपवास करै, इस प्रकार चार दिन करनेसे
पादकृच्छ्र कहा है॥ ३१९॥

यथाकथंचित्त्रिगुणः प्राजापत्योयमुच्यते।
अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः॥

पद–यथाकथंचित् १ त्रिगुणः १ प्राजाप-
त्यः १ अयम् १ उच्यते क्रि–अयम् १ एवऽ–
अतिकृच्छ्रः १ स्यात् क्रि-पाणिपूरान्नभोजनः १॥

योजना–यथाकथंचित् त्रिगुणः अयं प्रा-
जापत्यः उच्यते अयम् एव पाणिपूरान्नभोजनः
चेत् अतिकृच्छ्रः स्यात्॥

तात्पर्यार्थ–यही पाद कृच्छ्र यथाकथंचित्
दंड कलितके समान आवृत्ति वा अपने स्था-
नकी वृद्धि अनुलोम और प्रतिलोम क्रमसे
किया जाय और वक्ष्यमाण जप आदिसे युक्त
होय वा रहित होय और तीन वार किया जाय
तो प्राजापत्य कहाता है। उसमें दंड क-
लितके समान आवृत्तिका पक्ष वसिष्ठने दि-
खाया है कि एक दिन प्रातःकाल एक दिन
नक्त एक दिन अयाचित भोजन करै और एक
दिन पराक व्रत करै इसी प्रकार औरभी चार
दिन व्यतीत करै। धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ मनुने
ब्राह्मणोंके अनुग्रहार्थ बालक वृद्ध आतुरोंके
लिये यह शिशुकृच्छ्र कहा है। अनुलोम क्रमसे
स्वस्थानको विशेष कर वृद्धिका पक्ष तो मनुने
दिखाया है कि तीन दिन प्रातःकाल तीन दिन
सायंकाल तीन दिन अयाचितका भोजन करै
और फिर प्राजापत्यको करता हुआ ब्राह्मण
तीन दिन कुछ भोजन न करै। प्रातिलोम्यकी
आवृत्ति तो वसिष्ठने दिखाया है कि ब्राह्मण
प्रातिलोम्य क्रमसे कृच्छ्रको करै और उसके
अनन्तर चान्द्रायण करै। और जप आदिसे
रहित पक्ष तो स्त्री शूद्र आदिके विषयमें अं-
गिरोने दिखाया है कि तिससे धर्ममार्गमें स्थित
शूद्रको जप और होमसे रहित प्रायश्चित्त देना
और जप आदिसे युक्त पक्ष तो परिशेषसे
और योग्य होनेसे तीनों वर्णोंके विषयमें है॥

---

१ सायं प्रातस्तथैकैकं दिनद्वयमयाचितम्। दिन-
द्वयं च नाश्नीयात्कृच्छ्रार्धं तद्विधीयते॥

१ अहः प्रातरहर्नक्तमहरेकमयाचितम्। अहः
पराकं तत्रैकमेवं चतुरहौ परौ॥ अनुग्रहार्थं विप्राणां
मनुर्धर्मभृतां वरः। बालवृद्धातुरेष्वेवं शिशुकृच्छ्रमु-
वाच है॥

२ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायंत्र्यहमद्यादयाचितम्। परं
त्र्यहं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद्द्विजः॥

३ प्रातिलोम्यं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं चांद्रायणोत्तरम्।

४ तस्माच्छूद्रं समासाद्य सदा धर्मपथे स्थितम्।
प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं जपहोमादिवर्जितः॥

और वह गौतम आदिने दिखाया है कि इसके अनंतर कृच्छ्रोंको कहते हैं। प्रातःकाल हविष्योंको भोजन करके तीन रात्र भोजन करै, फिर तीन दिन नक्त और तीन दिन अयाचित भोजन करै, फिर तीन दिन उपवास करै और शीघ्र प्रायश्चित्तका अभिलाषी दिन और रात बैठा रहै, सत्य बोले, अनार्योंके संग न बोले, रौरवयोधा मंत्रको नित्य जपै, त्रिकाल स्नान करै और पवित्र आपोहिष्ठा इन तीन ऋचाओंसे और हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः इन आठ ऋचाओंसे मार्जन करै, फिर इन मंत्रोंसे तर्पण करै, यही सूर्यका उपस्थान है यही घृतकी आहुति है, बारह दिनके अंतमें चरुको पकाकर उन देवताओंके निमित्त आहुति दे[2] अग्निषोम इंद्राग्नि इंद्र विश्वेदेवा ब्रह्मा प्रजापति और स्विष्टकृत् अग्निके निमित्त स्वाहा है। उसमें दिनमें और रात्रिमें क्षिप्र काम टिकै इसका यह अर्थ है कि बडेभी पापसे एकही कृच्छ्रसे शीघ्र छूट जाऊं ऐसी जो कामना करै वह दिनमें कर्मके अविरोधी कालमें खडा रहै और रात्रिमें बैठजाय। इसी प्रकार योगीश्वर आदिके नहीं कहेभी रौरवयोध नाम सामके जपको और नमोहस्वाय इत्यादि तर्पणको और सूर्यकी स्तुति और चरुके पाक आदिको शीघ्र कामनाका अभिलाषी करै। इससे योगीश्वरके कहे दो प्राजापत्योंके स्थानमें गौतमके कहे अनेक कर्तव्यों सहित प्राजापत्य समझना। इसी प्रकार अन्यस्मृतियोंमें कहे अन्यभी प्रायश्चित्त ढूंढने और यही एकभक्त आदि प्राजापत्य धर्मसे युक्त अतिकृच्छ्र होता है। इतना तो विशेष है कि पहिले तीन दिनमें पाणिपूर (अंजलिभर) अन्नको भोजन करै बाईस ग्रास आदि न करै और यहां प्राप्त भोजनके अनुवादसे अर्थात् रागसे प्राप्त भोजनके कथनसे अंजलिभर भोजनके विधानसे अंतके तीन दिनमें अतिदेशसे पाया उपवास अप्रतिपक्ष है अर्थात् उसे कोई नहीं हटासक्ता। यहांभी पूर्वके समानही कृच्छ्रोंके पादोंकी व्यवस्था जाननी। और जो मनु (अ० ११ श्लो० २१३) ने कहाहै कि पूर्वके समान पहिले तीन २ दिन एक २ ग्रास खाय और अंतके तीन दिन उपवास अतिकृच्छ्र करता हुआ करै वह वचन पाणिपूरान्नकी अपेक्षा अल्प होनेसे समर्थके विषयमें हैं॥

भावार्थ–जिस किसी प्रकार तीन वार अभ्यास किया सान्तपन प्राजापत्य कहाता है और अंजलिभर अन्नका जिसमें भोजन हो ऐसा यह प्राजापत्य अतिकृच्छ्र होता है॥ ३२०॥

---

१ अथातः कृच्छ्रान्व्याख्यास्यामो हविष्यान्प्रातराशान्भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाश्नीयादथापरं त्र्यहं नक्तं भुंजीताथापरं त्र्यहं न कंचन याचेताथापरं त्र्यहमुपवसेत्तिष्ठेदहानि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेदनार्यैः सह न भाषेत रौरवयोधां जपेन्नित्यं प्रयुंजीतानुसवमुदकोपस्पर्शनमापोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयीत हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः इत्यष्टाभिरथोदकतर्पणम् नमोहमाय मोहमाय महमाय धन्वने तापसाय पुनर्वसवे नमो मौंज्याय औम्यार्य वसुविंदाय सर्वविंदाय नमः। पाराय सुपाराय महापाराय परपाराय पारयिष्णवे नमः। रुद्राय पशुपतये महते देवाय त्र्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वेशानाय उग्राय वज्रिणे घृणिने कपर्दिने नमः। नीलग्रीवाय शितिकंठाय नमः। कृष्णाय पिंगलाय नमः। ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय वृद्धायेन्द्राय हरिकेशाय ऊर्ध्वरेतसे नमः। सत्त्वाय पावकाय पावकवर्णायैकवर्णाय कामाय कामरूपिणे नमः। दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमः तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे नमः सौम्याय पुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषाय उत्तमपुरुषाय ब्रह्मचारिणे नमः चंद्रललाटाय कृत्तिवाससे नमः।

२ अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाग्नीषोमाभ्यामिंद्राग्निभ्यामिंद्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृते।

१ एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्। त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रःपयसादिवसानेकविंशतिम्।
द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्तितः ॥

पद-कृच्छ्रातिकृच्छ्रः१ पयसा ३ दिवसान् एकविंशतिम् २ द्वादशाहोपवासेन ३ पराकः परिकीर्तितः १ ॥

योजना-एकविंशतिदिवसान् पयसा अतिवर्तनं कृच्छ्रातिकृच्छ्रः स्यात् द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥

तात्पर्यार्थ भावार्थ-इक्कीस रात्रितक दूधको पीना वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र जानना । गौतमने तो बारह दिन केवल जल पीनेको कृच्छ्रातिकृच्छ्र कहा है कि तीसरा जलकाही भक्षण जिसमें हो वह कृच्छ्रातिकृच्छ्र जानना और बारह दिनके उपवास को पराक कहते हैं ॥ ३२१ ॥

पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनांप्रतिवासरम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रःसौम्योयमुच्यते ॥

पद-पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनाम् ६ प्रतिवासरम् ८- एकरात्रोपवासः १ च ८-कृच्छ्रः १ सौम्यः १ अयम् १ उच्यते क्रि- ॥

योजना-प्रतिवासरं पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां भोजनं च पुनः एकरात्रोपवासः अयं सौम्यः कृच्छ्रः उच्यते ॥

तात्प०भावार्थ-पिण्याक (खल) आचाम (भात) तक्र जल सत्तू इन पांचोंके मध्यमें एक २ को प्रतिदिन खाकर छठे दिन उपवास करै यह सौम्यकृच्छ्र कहाता है और द्रव्यका परिमाण तो प्राणयात्रा (पेट भरना) भर जानना । जाबालने तो चार दिनमें जो किया जाय वह सौम्यकृच्छ्र कहा है कि पिण्याक सक्तु मठा इनको क्रमसे तीन दिन भक्षण करै और चौथे दिन भोजन न करै और वस्त्रकी दक्षिणा दे यह सौम्यकृच्छ्र कहा है ॥ ३२२ ॥

एषांत्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्ययथाक्रमम् ।
तुलापुरुषइत्येषज्ञेयःपंचदशाह्निकः॥३२३॥

पद-एषाम् ६ त्रिरात्रम् २ अभ्यासात् ५ एकैकस्य ६ यथाक्रमम् ८-तुलापुरुषः १ इति ८- एषः १ ज्ञेयः १ पंचदशाह्निकः १ ॥

योजना-एषाम् एकैकस्य यथाक्रमं त्रिरात्रम् अभ्यासात् पंचदशाह्निकः एषः तुलापुरुषः ज्ञेयः ॥

तात्पर्यार्थ-इन पांचों पिण्याक आदिके मध्यमें एक २ के क्रमसे तीन २ रात्र अभ्याससे यह पंद्रह दिनका तुलापुरुष नामका कृच्छ्र कहा है। यहां पंद्रह दिनको व्यापक कहनेसे उपपापकी निवृत्ति जाननी । यमने तो इक्कीस दिनका तुलापुरुष कहा है कि आचाम पिण्याक मठा जल सत्तू इनको क्रमसे तीन २ दिन और छः दिन वायुका भक्षण करै तो यह इक्कीस रात्रका तुलापुरुष कहाता है । इसमें हारीत आदि ऋषियोंने इतिकर्तव्यता (करनेका प्रकार) कही है उसको यहां ग्रंथगौरव (बढना) के भयसे नहीं लिखते ॥

भावार्थ-इन पिण्याक आदि पांचोंके मध्यमें एक २ को क्रमसे तीन २ दिन भक्षण करै तो यह पंद्रह दिनका तुलापुरुष कृच्छ्र जानना ॥ ३२३ ॥

तिथिवृद्ध्या चरेत्पिंडाञ्छुक्ले शिख्यंडसंमितान् ॥ एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिंडं चांद्रायणं चरन् ॥ ३२४॥

१ अम्भक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः । २ पिण्याकं सक्तवस्तक्रं चतुर्थेऽहन्यभोजनम् । वासो वै दक्षिणां दद्यात्सौम्योऽयं कृच्छ्र उच्यते ॥

१ आचाममथ पिण्याकं तक्रं चोदकसक्तुकान् । त्र्यहं त्र्यहं प्रयुंजानो वायुभक्षी त्र्यहद्वयम् ॥ एकविंशतिरात्रस्तु तुलापुरुष उच्यते ॥

पद्–तिथिवृद्ध्या ३ चरेत् क्रि–पिण्डान् २ शुक्ले ७ शिख्यण्डसंमितान् २ एकैकम् २ ह्रासयेत् क्रि–कृष्णे ७ पिण्डम् २ चांद्रायणम् २ चरन् १ ॥

योजना–चांद्रायणं चरन् द्विजः शुक्ले शिख्यण्डसंमितान् पिंडान् तिथिवृद्ध्या चरेत् कृष्णे एकैकं पिंडं ह्रासयेत् ॥

तात्पर्यार्थ–चांद्रायण व्रतको जो कराचाहै वह मोरके अंडेके समान पिंडों (ग्रास) को शुक्लपक्षमें तिथियोंकी वृद्धिके अनुसार भक्षण करै अर्थात् जैसे प्रतिपदा आदि तिथियोंमें एक २ चंद्रमाकी कला आधे मासमें बढती है तिसी प्रकार पिंडोंकोभी प्रतिपदामें एक ग्रास द्वितीयामें दो ग्रास इस प्रकार पूर्णिमा पर्यंत एक १ ग्रास बढाता हुआ भक्षण करै फिर पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास भक्षण करके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह ग्रास और द्वितीयाको तेरह ग्रास इस प्रकार एक २ ग्रासको न्यून करता हुआ चतुर्दशी पर्यंत भक्षण करै फिर चतुर्दशीको एक ग्रास भक्षण करके अमावस्यामें न पावे अर्थात् उपवासको करै सोई वसिष्ठने कहा है कि शुक्लपक्षमें एक २ पिंड बढावे और कृष्णपक्षमें एक २ न्यून (कम) करै और अमावस्याको भोजन न करै यह चांद्रायणकी विधि है, चंद्रमाके अयन (गमन) के समान है अयन (चरण वा भक्षण) जिसमें अर्थात् चंद्रमाकी कलाके समान जिसमें ग्रासोंका ह्रास वृद्धि (न्यूनता अधिकता) हो उसे चांद्रायण कहते हैं, यह एक व्रतकी अन्वर्थ संज्ञा है, यहां " संज्ञायां दीर्घः " इससे दीर्घ होता है और यही चांद्रायण जब यवके समान आदि अंतमें सूक्ष्म और मध्यमें दीर्घ हो तब यवमध्य कहाता है और यही व्रत जब कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको प्रारंभ करके पूर्वोक्त क्रमसे किया जाय तो तब पिपीलिका (चैंटी) के समान मध्यमें ह्रस्व (लघु) होता है तब पिपीलिका मध्य कहाता है। सोई कहते हैं कि पूर्वोक्त क्रमसे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह ग्रास भक्षण करके एक २ ग्रासके अपचय (न्यूनता)से चतुर्दशीतक भोजन करै,फिर चतुर्दशीको एक ग्रासका भक्षण करके और अमावस्याको उपवासके अनंतर शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एकही ग्रास भक्षण करै, फिर एक ग्रासकी वृद्धिसे पक्षके शेषके वितानेपर पौर्णमासीको पंद्रह ग्रास होजाते हैं, इससे इसका पिपीलिका मध्य होना ठीक है। सोई वसिष्ठने कहा है कि मासके कृष्णपक्षकी आदिमें चौदह ग्रास भक्षण करे, एक २ ग्रासकी न्यूनतासे भोजन करता हुआ शेष पक्षको समाप्त करै। तैसेही शुक्लपक्षकी आदिमें एक ग्रासको भोजन करके फिर एक २ ग्रास बढाकर शेषपक्षको समाप्त करदे और जब तिथिकी वृद्धि और हानिके होनेसे एकही पक्षमें सोलह वा चौदह दिन हो जाते हैं तब ग्रासोंकी भी वृद्धि और ह्रास समझने। क्योंकि तिथिकी वृद्धिसे पिंडोंका भक्षण करनेका नियम है। गौतमनेतो यहां विशेष दिखाया है कि अब चांद्रायणको

१ एकैकं वर्द्धयेत्पिंडं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् । इंदुक्षये न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥

१ मासस्य कृष्णपक्षादौ ग्रासानद्याच्चतुर्दश । ग्रासापचयभोजी सन्पक्षशेषं समापयेत् ॥ तथैव शुक्लपक्षादौ ग्रासं भुंजीत चापरम् । ग्रासोपचयभोजी सन्पक्षशेषं समापयेत् ॥

२ अथातश्चान्द्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं च व्रतं चरेत् श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् आप्यायस्व संतेपयांसि, नवोनव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमो हविषश्चानुमंत्रणमुपस्थानं च चंद्रमसयद्देवादेवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयाद्देवकृतस्येति चान्ते समिद्भिः ।

कहते हैं उसकी यह विधि कही है कि कृच्छ्रमें मुण्डन और व्रत करै और प्रातःकाल जो पूर्णिमा आवेगी उसमें उपवास करै । आप्यायस्व०संते- पयांसि० नवोनव० इन ऋचाओंसे तर्पण घीका होम, और हविका अनुमंत्रण और चन्द्रमाकी स्तुति करै और यद्देवादेवहेडनं० इन चार ऋचाओंसे आज्य (घी) का होम करै और देवकृतस्य० इस मंत्रसे होमके अंतमें समिधोंसे होम करै, और इन ओंभूः०[1] इत्यादि मंत्रोंसे ग्रासोंका अनुमन्त्रण करै और मंत्र २ के प्रति मनसे नमः स्वाहा० यह कहकर इन्हीं मंत्रोंसे संपूर्ण ग्रासोंका भोजन करै और ग्रासका प्रमाण जिससे मुखमें विकार न हो अर्थात् सुखसे मुखमें पहुंच जाय वह करना, और चरु भिक्षाका अन्न सक्तु कण जौ शाक दूध दही घी मूल फल जल हविः ये उत्तरोत्तर (क्रमसे) श्रेष्ठ हैं । पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास खाकर एक २ ग्रासकी न्यूनतासे कृष्णपक्षमें भोजन करै और अमावस्याको उपवास करके एक २ ग्रासको बढाता हुआ शुक्ल पक्षको समाप्त करै । और किसीके मतमें यह चांद्रायणका मास विपरीत है और मुखमें जिसमें विकार न हो वह ग्रासका प्रमाण बालकोंके लिये है क्योंकि वे मोरके अण्डेके समान पन्द्रह ग्रास नहीं खासकते । दूध आदि हवियोंमें तो मोरके अण्डेका प्रमाण, पत्तोंके दोने आदिमें भरकर समझना तिसी प्रकार कुक्कुटके अण्डेका और आर्द्र आँवलेभर जो ग्रासके प्रमाण अन्य स्मृतियोंमें कहे हैं वे शक्तिके अनुसार समझने, क्योंकि वे मोरके अंडेसे लघु होते हैं और जो किसीने बत्तीस दिनका चान्द्रायण कहा है वह पक्षांतर दिखानेके लिये है सार्वत्रिक नहीं कि जो यहां पूर्णिमाको उपवास कहा है उसको चतुर्दशीमें करके पूर्णिमाको पन्द्रह ग्रास भोजन करै इत्यादि योगीश्वरके वचनानुरोधसे[1] तीस दिनकाही प्रतीत होता है । जो यह सार्वत्रिक अर्थात् सर्वत्र मानने योग्य होता तो वर्षदिनमें निरंतर बारह चान्द्रायण न होते और बत्तीस दिनके चान्द्रायणमें चंद्रमाकी गतिका अनुसारभी सिद्ध न होता ॥

भावार्थ-चान्द्रायणका अभिलाषी पुरुष शुक्लपक्षमें मोरके अण्डेके समान तिथियोंकी वृद्धिके अनुसार ग्रासोंका भक्षण करै और कृष्णपक्षमें एक २ ग्रास न्यून करके भक्षण करै ॥ ३२४ ॥

यथाकथंचित्पिण्डानांचत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥ मासेनैवोपभुंजीत चांद्रायणमथापरम् ३२५

पद-यथाकथंचित्ऽ-पिण्डानाम् ६ चत्वारिंशच्छतद्वयम् २ मासेन ३ एवऽ-उपभुञ्जीत क्रि-चान्द्रायणम् १ अथऽ-अपरम् १ ॥

योजना-पिण्डानाम् चत्वारिंशच्छतद्वयं यथाकथंचित् मासेन एव उपभुञ्जीत एतत् अपरं चान्द्रायणम् ॥

तात्पर्यार्थ-दो सौ चालीस २४० ग्रासोंका एक मासमें भोजन यथाकथंचित् प्रति-

---

१ ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐ जनः ॐतपः ॐसत्य यशः श्रीः ऊक् इट् ओजः तेजः पुरुषः धर्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रणं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वानेतैरेव ग्रासान्भुंजीत तद्ग्रासप्रमाणमास्याविकारेण । चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींषि उत्तरोत्तरप्रशस्तानि पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान् भुक्त्वा एकैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्यायामुपोष्यैकैकोपचयेन पूर्वपक्षं विपरीतमेकेषामेष चांद्रायणो मासः ।

१ चतुर्दश्यामुपवासमभिधाय पौर्णमास्यां पञ्चदश ग्रासान्भुक्त्वा ।

दिन करे कि मध्याह्नमें आठ ग्रास अथवा रात्रि और दिनमें चार ग्रास अथवा एक दिन चार ४ ग्रास दूसरे दिन बारह १२ ग्रासोंको भक्षण करै, फिर एकरात्र उपवास करके दूसरे दिन सोलह ग्रास भोजन करे। इन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारसे शक्तिके अनुसार भोजन करे यह पूर्वोक्त दोनों चान्द्रायणोंसे भिन्न चान्द्रायण क्योंकि पूर्वोक्त दोनों चान्द्रायणोंमें ग्रासोंकी संख्याका यह नियम नहीं किंतु दो सौ पच्चीस २२५ ग्रास होते हैं और मनुने ये प्रकार दिखाये हैं (अ० ११ श्लो० २१८–२२०) कि मध्याह्नमें आठ १२ ग्रास हविष्य अन्नके मनकी सावधानीसे वह मनुष्य भक्षण करै कि जो यतिचान्द्रायण करै और जो शिशुचान्द्रायण करै वह विप्र चार ग्रास प्रातःकालको और चार ग्रास सूर्यके अस्त होनेपर सावधानीसे भक्षण करै और यथाकथंचित् हविष्यके दो सौ चालीस २४० ग्रास भक्षण करता हुआ चंद्रमाके लोकको प्राप्त होता है। तैसेही दो सौ चालीस २४० संख्यासे न्यून ग्रासोंसे जो होय उसके ग्रहण करनेके लियेभी इस योगीश्वरके वचनमें अपर पदका ग्रहण है। सोई यमने कहा है कि दृढ है व्रत जिसका ऐसा मनसे सावधान पुरुष हविष्य अन्नके तीन ३ ग्रासोंको भक्षण करै तो वह ऋषिचांद्रायण कहा है और इन यतिचान्द्रायण आदिकोंमें चंद्रमाकी गतिके अनुसारकी अपेक्षा नहीं इससे तीस दिनके मासको मानकर निरंतर चान्द्रायण किया जाय और यदि कथंचित् तिथिकी वृद्धि और हानिके वश पंचमी आदि तिथिमेंभी किसी चान्द्रायणका आरंभ होय तोभी दोष नहीं और जो मार्कंडेयने सोमायन नामका मासव्रत कहा है कि सात रात्रतक गौके चारों स्तनोंका दूध पीवै, और सात रात्रतक तीन स्तनोंका और सात रात्रतक दो स्तनोंका और छः रात्रतक एक स्तनका दूध पीवै और तीन रात्रतक वायुका भक्षण करै यह सोमायन नामका व्रत पापोंको नष्ट करता है। और स्मृत्यंतरमें यह कहा है कि सात दिनतक गौके संपूर्ण स्तनोंको पीवै फिर तीन फिर दो फिर एक स्तनको पीवै और तीन दिन उपवास करै तो वहभी मासमें सोमायन होता है। वह सोमायनभी चांद्रायण धर्मक है अर्थात् उसके करनेसे भी चान्द्रायणका फल मिलता है। क्योंकि हारीतने अब चान्द्रायणका प्रारंभ करते हैं इत्यादि ग्रंथसे करनेके प्रकार सहित चान्द्रायणको कहकर इसी प्रकार सोमायन है यह अतिदेश कहा है। और जो हारीतने कृष्णपक्षकी चतुर्थीसे लेकर शुक्लपक्षकी द्वादशीपर्यं-

१ अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिंडान्मध्यंदिने स्थिते। नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं चरेत् ॥ चतुरः प्रातरश्नीयात्पिंडान्विप्रः समाहितः। चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं चरेत्॥ यथाकथंचित्पिंडानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः। मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम्॥

२ त्रींस्त्रीन्पिंडान्समश्नीयान्नियतात्मा दृढव्रतः। हविष्यान्नस्य वै मासमृषिचान्द्रायणं स्मृतम्॥

१ गोक्षीरं सप्तरात्रं तु पिबेत्स्तनचतुष्टयात्। स्तनत्रयात्सप्तरात्रं सप्तरात्रं स्तनद्वयात्॥ स्तनेनैकेन षड्रात्रं त्रिरात्रं वायुभुग्भवेत्। एतत्सोमायनं नाम व्रतं कल्मषनाशनम्॥

२ सप्ताहं चेत्पिबेद्गोस्तनमखिलमथ त्रीन्स्तनान्द्वौ तथैकं कुर्यात्त्रींश्चोपवासान्यदि भवति तदा मासि सोमायनं तत्।

३. चतुर्थीप्रभृति चतुःस्तनेन त्रिरात्रं त्रिस्तनेन त्रिरात्रं द्विस्तनेन त्रिरात्रम् एकस्तनेन त्रिरात्रमेवमेकस्तनप्रभृतिपुनश्चतुस्तनांतं या ते सोमचतुर्थी तनूस्तया नः पाहि तस्यै नमः स्वाहा या ते सोम पंचमी। षष्ठी स्येवं यागार्थरितथिहोमाः एवं स्तुत्वा एनोभ्यः पूतश्चंद्रमसः समानतां सलोकतां सायुज्यं च गच्छति।

त सोमायने कहा है कि चतुर्थीसे लेकर चार स्तनोंसे तीन रात्र और तीन स्तनोंसे तीन रात्र और दो स्तनोंसे तीन रात्र और एक स्तनसे तीन रात्र इसी प्रकार फिर एक स्तनसे तीन दिन दोस्तनोंसे तीन और तीनस्तनोंसे तीन और चार स्तनोंसे तीन दिन व्यतीत करै और हे सोम ! जो तेरी चौथी तनू है उससे हमारी रक्षा कर तिस तनूको नमस्कार और स्वाहा है इसी प्रकार जो तेरी पांचवीं छठी आदि॰ इसी प्रकार यज्ञ है अर्थ जिनका ऐसे तिथियोंमें होम होते हैं । इस प्रकार स्तुति करके पापोंसे पवित्र होकर चंद्रमाके लोकमें और सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है यह चौबीस दिनका सोमायन कहा है वह अशक्तके विषयमें है ॥

भावार्थ-जिस तिस प्रकारसे दो सौ चालीस ग्रास एक मासमें भोजन करे यह अपर (अन्य) चांद्रायण है ॥ ३२९ ॥

कुर्यात्रिषवणस्नायी कृच्छ्रंचांद्रायणंतथा ।
पवित्राणिजपेत्पिंडान्गायत्र्याचाभिमंत्रयेत् ॥

पद-कुर्यात् क्रि-त्रिषवणस्नायी १ कृच्छ्रम् २ चान्द्रायणम् २ तथाऽ-पवित्राणि २ जपेत् क्रि-पिण्डान् २ गायत्र्या ३ चऽ-अभिमंत्रयेत् क्रि-॥

योजना-त्रिषवणस्नायी पुरुषः कृच्छ्रं तथा चांद्रायणं कुर्यात् पवित्राणि जपेत् च पुनः पिंडान् गायत्र्या अभिमंत्रयेत् ॥

तात्पर्यार्थ-प्राजापत्य आदि कृच्छ्र वा चांद्रायणको त्रिकाल स्नान करके करै यह भी तप्तकृच्छ्रसे भिन्नमें है । क्यों कि वह एक वार स्नान और सावधान होकर तप्तकृच्छ्र करै इस वचनसे मनुने विशेष विधान किया है और जो शंखने कृच्छ्रोंमें त्रिकाल स्नान कहा है वह अशक्तके विषयमें है, कि तीन वार दिनमें और तीन वार रात्रिमें सचैल जलमें प्रवेश करै । और जो वैशंपायनने द्विकाल स्नान कहा है वह उसको जानना जो त्रिकाल स्नान करनेमें असमर्थ हो कि द्विजातिका स्नान द्विकाल वा त्रिकाल होता है और जो गार्ग्यने कहा है कि एकवासा (गीले वा एक वस्त्र धारे) भिक्षाटन करै और स्नान करके वस्त्रोंको न निचोडै वह भी शक्तको ही है, क्योंकि इस वचनसे शंखने एक वस्त्रभी पक्षमें विधान किया है और स्नानमें हारीतने विशेष कहा है कि कमसे कम तीन वार शुद्धवती ऋचाओंसे स्नान और जलके भीतर अघमर्षणको जपकर और धुले और नवीन वस्त्रोंको धारण करके सौम्य सामवेदसे सूर्यकी स्तुति करै। स्नानके अनन्तर पवित्र ऋचाओंका जप करै वे पवित्र अघमर्षण देवकृतः, शुद्धवत्यः तरत्समाः इत्यादिक हैं । वसिष्ठ आदिके कहे हुओंमेंसे अन्यतमोंको अर्थके अविरोधी कालोंमें जलके भीतर जपै, क्योंकि मनुकी स्मृति है कि (अ॰ ११ श्लो॰ २२२) गायत्री वा पवित्र ऋचाओंको शक्तिसे प्रतिदिन जपै और जो गौतमने कहा है कि रौरवयोधाओंका नित्य जप और प्रयोग करै वहभी पवित्र होनेके लिये है नियमके लिये नहीं, नियमके लिये होता तो अन्य-

१ सकृत्स्नायी समाहितः ।

१ त्रिरह्नि त्रिर्निशायां तु सवासा जलमाविशेत् ।
२ स्नानं द्विकालमेव स्यात्रिकालं वा द्विजन्मनः ।
३ एकवासाश्चरेद्भैक्षं स्नात्वा वासो न पीडयेत् ।
४ एकवासा आर्द्रवासा वा लब्धाशीः स्थंडिलेशयः ।
५ त्र्यवरं शुद्धवतीभिः स्नात्वाघमर्षणमंतर्जले जपित्वा धौतमहं वासः परिधाय साम्ना सौम्येनादित्यमुपतिष्ठेत् ।
६ सावित्रीं वा जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
७ रौरवयोधा जपेन्नित्यं प्रयुंजीत ।

श्रुतिमूलकी कल्पना करनी पडती इससे जिसने सामवेद न जपाहो वह गायत्री आदिकोही जपे, और जो यह कहा है कि नमोहवाय मोहमाय इत्यादि पढकर यही आज्याहुति हैं वह भी नियमके लिये नहीं किन्तु विधिके लिये हैं ही क्योंकि मनु (अ० ११ श्लो० २२२) ने द्विजाति महाव्याहृतियोंसे वा तिलोंसे होम करै इस वचनसे महाव्याहृतियोंसे होम करना। तैसेही षट्त्रिंशत् मतमें भी कहा है कि कृच्छ्रमें जो जप होम आदि कहा है वह न हो सके तो वह सब महाव्याहृतियोंसे वा गायत्री वा प्रणवसे करै। आदिके ग्रहणसे जलतर्पण और सूर्योपस्थान आदि लेने। इसीसे वैशंपायनने कहा है कि स्नान करके सूर्यकी ऋचाओंसे हाथ जोडकर सूर्यकी स्तुति करै। इसी प्रकार अन्य भी विरोधी पदार्थमें विकल्पका अनुसंधान करना और जिसमें विरोध नहीं उनमें समुच्चय समझना और शाखान्तराधिकरणन्यायसे सब कर्म संपूर्ण स्मृतियोंकी साक्षीसे होता है, और जपसंख्यामें विशेष भी उसने दिखाया है कि ऋषभ, विरज, अघमर्षण वा वेदोंकी माता पवित्र गायत्रीका जप शत वा अष्टशत वा अधिकसे अधिक सहस्र करै उपांशु (मन २) में उच्चारण वा मनसे जप करै पितर देवता मनुष्य भूत इनको शिरसे प्रणाम करके तर्पण करै। तैसेही गायत्रीसे ग्रासोंका अभिमंत्रण करै। तैसेही यमने भी विशेष कहा है कि अंगुलियोंके आगे स्थित गायत्रीसे अभिमंत्रित ग्रासको भक्षण और आचमन करके फिर अन्यग्रासका अभिमंत्रण करै। इससे जो गौतमने भूर्भुवः स्वः इत्यादि ग्रासोंका अभिमंत्रण करनेके मंत्रोंके संग इनका विकल्प कहा है और आप्यायस्व सन्तेपयांसि इत्यादि मंत्रोंसे पिण्ड करनेसे पहिले हविका अभिमंत्रण कहा है उन दोनोंको भिन्नकार्य होनेसे उनका इनके संग समुच्चय है। और जब ये कृच्छ्र आदि व्रत प्रायश्चित्तके लिये किये जाते हैं तब केश आदिके मुण्डनपूर्वक ग्रहण करने। क्योंकि मुण्डनसहित व्रतको करै यह गौतमकी स्मृति है। अभ्युदयके लिये जो किया जाय उसमें मुण्डन नहीं करना। वसिष्ठने भी यही विशेष कहा है कि व्रतरूप कृच्छ्रोंके मध्यमें कुक्षि रोम शिखा इनको छोडकर श्मश्रुकेश आदिकोंका मुण्डन करावे यहां कृच्छ्रोंके व्रतरूप मुंडन आदि अंग कहेंगे यह समझना। पर्षद् (धर्मसभा) के कहे व्रतका ग्रहण व्रत करनेके दिनसे पहिले दिन संध्याके समय करना। सोई वसिष्ठने कहा है कि सब पापोंके लिये

१ महाव्याहृतिभिर्होमस्तिलैः कार्यो द्विजन्मना।
२ जपहोमादि यत्किंचित्कृच्छ्रोक्तं संभवेन्न चेत्। सर्वं व्याहृतीभिः कुर्याद्गायत्र्या प्रणवेन च ॥
३ स्नात्वोपतिष्टेदादित्यं सौरीभिस्तु कृताञ्जलिः।
४ ऋषभं विरजं चैव तथा चैवाघमर्षणम्। गायत्रीं वा जपेद्देवीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ शतमष्टशतं वापि सहस्रमथवा परम्। उपांशु मनसा वापि तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ मनुष्यांश्चैव भूतानि प्रणम्य शिरसा ततः। तथा पिण्डांश्च प्रत्येकं गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् ॥

१ अंगुल्यग्रस्थितं पिण्डं गायत्र्या चाभिमंत्रितम्। प्राश्याचम्य पुनः कुर्यादन्यस्याप्यभिमंत्रणम् ॥
२ वापनं व्रतं चरेत्।
३ कृच्छ्राणां व्रतरूपाणां श्मश्रुकेशादि वापयेत्। कुक्षिलोमशिखावर्ज्यम्।
४ सर्वपापेषु सर्वेषां व्रतानां विधिपूर्वकम्। ग्रहणं संप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते ॥ दिनान्ते नखरोमादीन् प्रवाप्य स्नानमाचरेत्। भस्मगोमयमृद्वारिपंचगव्यादिकल्पितैः ॥ मलापकर्षणं कार्यं वाह्यशौचोपसिद्धये। दन्तधावनपूर्वेण पंचगव्येन संयुतम् ॥ व्रतं निशामुखे ग्राह्यं बहिस्तारकदर्शने। आचम्यातः परं मौनी ध्यायन्दुष्कृतमात्मनः ॥ मनः संतापनं तीव्रमुद्वहेच्छोकमन्ततः ॥

सम्पूर्ण व्रतोंका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा होय तो विधिपूर्वक ग्रहण कहता हूं । दिनके अंतमें नखरोम आदिका मुण्डन कराकर स्नान भस्म गोमय मिट्टी गोवर पंचगव्य आदिसे करै और बाह्य शुद्धिके लिये शरीरके मलको दन्तधावन और पंचगव्यसे करै और तारागणोंके दीखने पर सायंकालके समय व्रतको ग्रहण करै और आचमनके अनन्तर मौन होकर अपने पापका ध्यान करै, मनमें तीव्र (भारी) दुःख माने और अंतःकरणमें शोक करै । यहां बाह्यशौचसे ग्रामसे बाहिर मलका त्याग लेना ! स्त्री भी इसी प्रकार व्रतको ग्रहण करै । स्त्रीको केश श्मश्रु नखोंका मुण्डन तो नहीं है क्योंकि बौधायनेकी स्मृति है कि स्त्रीभी केशोंके मुण्डनको छोडकर चांद्रायण आदिमें ऐसेही करै। और जो मुण्डन न चाहता हो उसके लिये हारीतने विशेष कहा है कि राजा राजाका पुत्र वा बहुश्रुत ब्राह्मण केशोंको मुंडवाकर प्रायश्चित्त करै और केशोंकी रक्षाके लिये दुगुना व्रत करै और दूना व्रत करने पर दक्षिणा भी दूनी होती है यह महापातक आदि दोषोंके अभिप्रायसे जानना । क्योंकि मनुकी यह स्मृति है कि विद्वान् ब्राह्मण राजा स्त्री इनके और महापातकी और गोहंता आर अवकीर्णी इनके व्रतमें केशोंका मुण्डन इष्ट नहीं है । जाबालिने भी यहां विशेष कहा है कि सब कृच्छ्रोंके प्रारंभ और विशेष कर समाप्तिमें अन्यसेही शालाग्निमें व्याहृतियोंसे पृथक् २ होम करै और व्रतके अन्तमें श्राद्ध करै और गौ सुवर्ण आदिकी दक्षिणा दे । और यमेन भी यहां विशेष कहाहै कि पश्चात्ताप, पापसे निवृत्त, स्नान ये व्रतके अंग कहे हैं और संपूर्ण नैमित्तिक कर्मोंका कथन भी व्रतका अंग है और तैसेही गात और शिरका उवटना तांबूल चन्दन आदिका लेपन और जो अन्य भी बलकारी पदार्थ हैं उनको भी व्रतमें स्थित मनुष्य वर्ज दे। ऐसे पूर्वोक्त आदि इति कर्त्तव्यता (करनेका प्रकार) का समूह अन्य स्मृतियोंसे ढूंढना । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे व्रतको ग्रहण करके अवश्य समाप्त करना अन्यथा प्रत्यवाय (पाप) होता है । क्योंकि छागलेयकी स्मृति है कि जो काममोहित पुरुष पहिले व्रतको ग्रहण करके न करै वह जीवता हुआ चाण्डाल और मरकर श्वा होता है । प्रपंचसे अलं हुए अर्थात् विस्तारको समाप्त करते हैं ॥

भावार्थ–कृच्छ्र और चान्द्रायणको त्रिकाल स्नान करके करै और पवित्र मंत्रोंको जपै और गायत्रीसे ग्रासोंका अभिमंत्रण करै ॥ ३२६ ॥

---

१ केशश्मश्रुलोमनखवपनं तु नास्ति चान्द्रायणस्त्रिष्वेतदेव स्त्रियाः केशवपनवर्ज्यम् ।

२ राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः । केशानां केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् । द्विगुणे तु व्रते चीर्णे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥

३ विद्वान्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनम् । व्रते महापातकिनो गोहन्तुश्चावकीर्णिनः ॥

१ आरंभे सर्वकृच्छ्राणां समाप्तौ च विशेषतः । अन्येनैव च शालाग्नौ जुहुयाद्व्याहृतीः पृथक् ॥ श्राद्धं कुर्याद्व्रतान्ते तु गोहिरण्यादिदक्षिणा ॥

२ पश्चात्तापो निवृत्तिश्च स्नानं चांगतयोदितम् । नैमित्तिकानां सर्वेषां तथा चैवानुकीर्तनम् । गात्राभ्यंगः शिरोभ्यंगताम्बूलमनुलेपनम् । व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यद्बलरागकृत् ।

३ पूर्वं व्रतं गृहीत्वा तु नाचरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चाण्डालो मृतः श्वा चैव जायते ॥

अनादिष्टेषुपापेषुशुद्धिश्चान्द्रायणेनच।
धर्मार्थंयश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥

पद–अनादिष्टेषु ७ पापेषु ७ शुद्धिः १ चान्द्रायणेन ३ चऽ–धर्मार्थम् २ यः १ चरेत् क्रि–एतत् २ चंद्रस्य ६ एति क्रि–सलोकताम् २॥

योजना–अनादिष्टेषु पापेषु चान्द्रायणेन च शुद्धिर्भवति यः एतत् धर्मार्थं चरेत् सः चंद्रस्य सलोकताम् एति ॥

तात्पर्यार्थ–जो आदेश किया जाय उसे आदिष्ट कहते हैं, नहीं है आदिष्ट (प्रायश्चित्त) जिनमें उन पापोंको अनादिष्ट कहते हैं, उनकी शुद्धि चान्द्रायणसे होती है अर्थात् उन पापोंका प्रायश्चित्त चान्द्रायण है। और च शब्दके पढनेसे ऐन्दवसहित प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंसे शुद्धि होती है। सोई षट्त्रिंशन्मतमें तीनोंका समुच्चय कहा है कि जो कोई गुरुसेभी गुरु पाप हैं वे कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और चान्द्रायणोंसे शुद्ध होते हैं उशनोंने तो दोका समुच्चय कहा है कि दुरित (उपपातक) दुरिष्ट (पातक) जो बडेभी पाप हैं उनमें उन सबका नाशक कृच्छ्र चान्द्रायण है। गौतमने तो कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायण यह सब पापोंके प्रायश्चित्त हैं इस वचनमें समासके न करनेसे कृच्छ्रातिकृच्छ्रको चान्द्रायणकी और चान्द्रायणको उन दोनोंकी निरपेक्षता सूचित की है । और इतिशब्दसे तीनोंका समुच्चय कहा है और केवल प्राजापत्यकी तो निरपेक्षता चतुर्विंशति मतमें कही है कि जिसमें प्रायश्चित्त नहीं कहा ऐसे लघु दोषमें प्राजापत्य करे। गौतमनेभी प्राजापत्य आदिकी निरपेक्षता कही है कि प्रथम प्राजापत्य करके शुद्ध और पवित्र होकर कर्मके योग्य होता है, दूसरे प्राजापत्यको करके महापातकसे भिन्न जो पाप करता है उससे छूटता है, और तीसरे प्राजापत्यको करके सब पापोंसे छूटता है अर्थात् महापातकसेभी निवृत्त होता है। और मनुनेभी कहा है (अ० ११ श्लो० २१९) कि पराक नाम यह कृच्छ्र सब पापोंका नाश करनेवाला है। हारीतनेभी कहा है कि चांद्रायण यावक तुलापुरुष और गौओंका अनुगमन सब पापोंको नष्ट करता है। और गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशाका जल और एक रात्रका उपवास ये श्वपाककोभी शुद्ध करते हैं। तैसेही तप्तकृच्छ्रके अधिकारमें उसनेही कहा है कि दो वार अभ्यास किया यह पातकोंसे छूटता है और न्यायसे तीन वार अभ्यास किया यह शूद्रहत्याको दूर करता है और उशनोनेभी कहा है कि जहां महापातकका नाश कहा हो वा न कहा हो वहां प्राजापत्य कृच्छ्रसे शुद्धि होती है इसमें संशय नहीं। ये प्राजापत्य आदि कृच्छ्र जिन उपपात-

१ यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराणि च। कृच्छ्रातिकृच्छ्रचान्द्रैयैः शोध्यंते मनुरब्रवीत् ॥

२ दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि । कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥

३ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चान्द्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तम्।

४ लघुदोषे त्वनादिष्टे प्राजापत्यं समाचरेत्।

१ प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति द्वितीयं चरित्वा यदन्यन्महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते।

२ पराको नाम कृच्छ्रोयं सर्वपापापनोदनः।

३ चान्द्रायणं यावकश्च तुलापुरुष एव च । गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ॥

४ एष कृच्छ्रो द्विरभ्यस्तः पातकेभ्यः प्रमोचयेत् । त्रिरभ्यस्तो यथान्यायं शूद्रहत्यां व्यपोहति ॥

५ यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महापातकनाशनम् । प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शोधयेन्नात्र संशयः ॥

कोंमें प्रायश्चित्त नहीं कहा उनके एक वार अभ्याससे करनेकी अपेक्षासे व्यस्त (पृथक् २) वा समस्त युक्त करने और तैसेही जिनमें प्राय-श्चित्त कहाहै उन महापातक आदिमेंभी अभ्या-सकी अपेक्षासे युक्त करने। इसीसे यमने जहां प्रायश्चित्त कहा हो वा न कहा हो वहां प्राजा-पत्य कृच्छ्रसे शुद्धि होती है इसमें संशय नहीं गौतमनेभी कहा है सब प्रायश्चित्तोंके संग्रहके लिये सर्व प्रायश्चित्तोंका ग्रहण किया है। तैसेही जो उसने कहा है कि दूसरे प्राजापत्यको करके महापातकसे भिन्न सब पापोंसे छूटता है, यह कहकर तीसरे प्राजापत्यको करके सब पापोंसे छूटता है वहभी महापातकके अभिप्रायसे है, कुछ क्षुद्र पापोंके अभिप्रायसे नहीं है। और महापातक ऐसा नहीं है जिसको प्रायश्चित्त शास्त्रमें न कहाहो।तससे उन पातकोंमेंभी प्राजा-पत्य आदि युक्त करले। जिनका प्रायश्चित्त कहा है तिससे बारह वर्षके व्रतरूप प्राय-श्चित्तमें बारह २ दिनमें एक २ प्राजाप-त्यकी कल्पना करनेपर गिने हुए प्राजापत्य तीन सौ साठ बारह वर्षके व्रतमें विकल्पसे करने होंगे उनको न करसकै तो उतनीही धेनु दे, वेभी न दे सकै तो तीन सौ साठ निष्क दे। सोई स्मृत्यन्तरमें कहा है कि प्राजापत्यक करनेमें अशक्त मनुष्य धेनुको दे, धेनुके अभावमें उसके तुल्यमें दे, अथवा आधा मोल वा निष्क अथवा आधानिष्क शक्तिके अनुसार दे। क्योंकि यह स्मृति है कि गौओंके अभावमें निष्क आधा निष्क वा पादनिष्क दे, मूल्य भी न देसकै तो उतनेही उदवास करने, वे भी न

करसकै तो छत्तीस लाख गायत्रीका जप करै क्योंकि पराशरकी स्मृति है कि कृच्छ्र दश-सहस्र गायत्रीका जप और उदवास (जलमें वसना) और धेनुका दान ये चारों समान हैं। और जो चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि एक कोटि गायत्रीको जपै तो ब्रह्महत्याको दूर करता है, अस्सी लाख जपै तो सुरापानसे टता है, सत्तर लक्ष गायत्री सुवर्णके चोरको पवित्र करती है और साठ लक्ष गाय-त्रीसे गुरुतल्पग टता है, यह वचन बारह वर्षके तुल्य विधानसे कहा है कुछ असमर्थके विषयमें नहीं है इससे विरोध नहीं। इसी प्रकार अन्यभी कृच्छ्र, दश सहस्र गायत्री, दो सौ प्राणायाम, सहस्र तिलोंसे होम और वेदका पारायण इत्यादि प्रत्याम्नाय (प्रति-निधि) जो चतुर्विंशति और मनु आदि शास्त्रोंमें कहे हैं उनको तीन सौ साठगुने करके महा-पातकोंमें जानने, अतिपातकोंमें दो सौ सत्तर प्राजापत्य करने वा उतनेही प्रत्याम्नाय (बदले की) धेनु देनी और पातकोंमें एक सौ अस्सी १८० प्राजापत्य, वा उतनेही प्रत्याम्नाय, उतनीही धेनु देनी, तैसेही चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि जन्मसे लेकर नाना प्रकारके ब्रह्महत्यासे

१ निष्कृतीनां संग्रहार्थं सर्वप्रायश्चित्तग्रहणं कृतम्।

२ प्राजापत्यक्रियाशक्तो धेनुं दद्याद्विचक्षणः। धेनोरभावे दातव्यं मूल्यं तुल्यमसंशयम् ॥

३ गवामभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पाद एव वा।

१ कृच्छ्रोऽयुतं तु गायत्र्या उदवासास्तथैव च। धेनुप्रदानं विप्राय सममेतच्चतुष्टयम् ॥

२ गायत्र्यास्तु जपन्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति। लक्षाशीतिं जपेद्यस्तु सुरापानाद्विमुच्यते ॥ पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्या लक्षसप्ततिः। गायत्र्याः षष्टिभिर्लक्षैर्मुच्यते गुरुतल्पगः॥

३ कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम्। तिलहोमसहस्रं तु वेदपारायणं तथा ॥ तिलहोमसहस्रं तु वेदपारायणं तथा ॥ ... विविधानि च।

४ जन्मप्रभृतिपापानि बहूनि विविधानि च। ब्रह्महत्यायाः षडब्दं व्रतमाचरेत्। प्रत्याम्नाये कृत्वा वाग्... गवां देयं साशीति धनिना शतम्। तथाष्टादश लक्षाणि गायत्र्या या जपेद्बुधः॥

इतर बहुतसे इतर पापोंको करके छः वर्षका व्रत करै, अथवा धनी होय तौ उसके प्रत्याम्नाय एक सौ अस्सी गौ दे, अथवा अठारह लक्ष गायत्रीका जप बुद्धिमान् पुरुष करै। बारह वर्षके प्रायश्चित्तमें बारह २ दिनके एक २ प्राजापत्यकी कल्पनामें यही वचन प्रमाण है। इसी प्रकार तीन वर्ष प्रायश्चित्तके विषय जो उपपातक हैं उनमें नब्बे ९० प्राजापत्य और उतनेही प्रत्याम्नाय जानने, और त्रैमासिकके विषयमें साढे सात प्राजापत्य और उतनेही धेनु उदवास आदि प्रत्याम्नाय होते हैं। मासिक व्रतके विषयमें तो अढाई प्राजापत्य और उतनाही प्रत्याम्नाय होता है और जिन उपपातकोंमें चान्द्रायण करना पडता है उनमें तीन प्राजापत्य और उनके करनेमें अशक्तको उतनाही प्रत्याम्नाय होता है। और जो चतुर्विंशतिके मतमें कहा है कि चान्द्रायणके प्रत्याम्नायमें सदैव आठ गौ देनी वहभी धनवान् पुरुषको पिपीलिकामध्य आदिचांद्रायणके प्रत्याम्नायमें समझना। और मासातिकृच्छ्र जिनमें करना पडता है उन पातकोंमें तो साढे सात प्राजापत्य और उतनेही धेनु आदि प्रत्याम्नाय होते हैं। क्योंकि चतुर्विंशतिमतमें यह कहा है कि प्राजापत्यमें एक गौ सांतपनमें दो और पराकमें और तप्तकृच्छ्र अतिकृच्छ्रोंमें तीन २ गौ दे। यहभी आमलकके समान एक २ ग्रासको भक्षण करै, इस वचनसे कहे आंवलेके समान ग्रास पक्षमें जानना। पाणिपूरान्नभोजन पक्षमें तो दो धेनुही प्रत्याम्नाय होती है। क्योंकि प्राजापत्य छः उपवासोंके तुल्य है और उससे दूना अतिकृच्छ्र होता है। यद्यपि नव दिनतक पाणिपूरान्न भोजन होता है तथापि निरंतर बारह दिनतक व्रत किया जाय तो अधिक क्लेश होनेसे छः दिनके उपासकी तुल्य जो दो प्राजापत्य उनकी तुल्यता ठीक है। और प्राजापत्यको छः उपवासकी तुल्यता युक्त ही है, सोई दिखाते हैं कि पहिले तीन दिनोंमें सायंकालके तीन भोजनकी निवृत्तिसे एक उपवास और दूसरे तीन दिनोंमें प्रातःकालके तीन भोजनोंकी निवृत्तिसे दूसरा उपवास और तैसेही अयाचित भोजनके तीन दिनोंमें सायंकालके तीन भोजनोंकी निवृत्तिसे तीसरा उपवास हुआ इस प्रकार नौ दिनोंमें तीन उपवास हुए और तीन उपवास अंतके इससे प्राजापत्यको छः उपवासके तुल्य मानना ठीक है। वैल और दश गोदान सहित त्रिरात्र उपवासरूप गोवध व्रतमें तो साढे ग्यारह प्राजापत्य और उतनेही प्रत्याम्नाय समझने। और मासभर पयोव्रतमें तो अढाई प्राजापत्य और पराक रूप मास व्रतमें तीन प्राजापत्य होते हैं। क्योंकि षट्त्रिंशन्मतमें यह कहा है कि पराक तप्तातिकृच्छ्रके स्थानमें तीन कृच्छ्र करै और असमर्थ होय तो आधा सांतपन व्रत करै और तीन प्राजापत्य रूप द्वादश वार्षिक व्रतके स्थानमें चांद्रायण पराक कृच्छ्रातिकृच्छ्र तो एक सौ बीस १२० करने, और उनके प्रत्याम्नाय धेनु आदि तो तिगुने करने और अतिपातकोंमें नब्बे ९० चान्द्रायण आदि होते हैं और उनके तुल्य जो पातक हैं उनमें साठ ६० और जिनमें त्रैमासिक व्रत होता है, उन उपपातकोंमें तीस चांद्रायण होते हैं और त्रैमासिक गोवध व्रतके स्थानमें गोमूत्र स्थान

---

१ अष्टौ चान्द्रायणे देयाः प्रत्याम्नायविधौ सदा।

२ प्राजापत्ये तु गामेकां दद्यात्सांतपने द्वयम्। पराकतप्तकृच्छ्रातिकृच्छ्रे तिस्रस्तु गास्तथा॥

१ पराकतप्तातिकृच्छ्रस्थाने कृच्छ्रत्रयं चरेत्। सांतपनस्य चाप्यर्धमशक्तो व्रतमाचरेत्॥

आदिकोंकी कर्तव्यताकी अधिकतासे तीन चान्द्रायण करने। और योगीश्वरके कहे मासिक व्रतमें तो एकही चान्द्रायण होता है और धेनु उदवास आदि प्रत्याम्नाय तो सर्वत्र तिगुनाही होता है, और प्रकीर्णकोंमें तिस २ प्रायश्चित्तके अनुसार पाद आदिकी कल्पनासे प्राजापत्य समझना और आवृत्ति (अभ्यास) में तो चान्द्रायण आदि करने। इसी रीतिसे अन्यत्रभी कल्पना करनी और जो बृहस्पतिने कहा है कि जन्मसे लेकर जो पातक और उपपातक किया है उसमें तबतक कृच्छ्रकी आवृत्ति करै जबतक साठगुणा हो, वह वचन परस्त्रीगमनमें दो वर्ष व्रत करै इस गौतमके कहे द्विवार्षिक समान विषयमें अथवा उस उपपातककी आवृत्तिके विषयमें है। जिसमें त्रैमासिक व्रत करना पडता है अथवा पातक रूप चाण्डाल आदि स्त्रीगमनके दो वार अभ्यासके विषयमें समझना। क्योंकि वहां एक वार जानकर गमनमें इस वचनसे कृच्छ्राब्द (वर्ष भरका कृच्छ्र) कहा है, कि जानकर कृच्छ्राब्द और अज्ञानसे दो ऐंदव कहे हैं उसके अभ्यासमें द्विवर्षकी तुल्य साठ कृच्छ्रका विधान युक्तही है और जो सुमंतुने कहा है कि जो जानकर एकवार अभ्यास किया महापाप है वह महापातकको छोडकर अब्द कृच्छ्रसे शुद्ध होता है वहभी उपपातक आदिकी आवृत्तिके विषयमें और वा तैसे ही अज्ञानसे दो ऐंदव करै इस यमके कहे दो ऐंदवोंके विषय जो पातक उनकी आवृत्तिके विषयमें है। और जो मनुष्य तप करनेमें असमर्थ है और धान्यसमृद्ध है वह कृच्छ्र आदि व्रतोंको मुख्य २ ब्राह्मणोंके भोजनद्वारा करै। सोई स्मृत्यंतरमें कहा है कि कृच्छ्रमें प्रतिदिन पांच अतिकृच्छ्रमें तिगुने पांच (१५) ऐसेही तीसरे (कृच्छ्रातिकृच्छ्रमें) तीस तप्त कृच्छ्रमें चालीस और पराकमें त्रिगुणित बीस (साठ) और सांतपननामके कृच्छ्रमें वेही त्रिगुणित बीस छः अधिक (६६) और चांद्रायणमें उनसे दो हीन कम (६४) मुख्य२ ब्राह्मणोंको वह जिमावै, जो तप करनेमें बलसे हीन हो। यहां प्रतिदिनका सर्वत्र संबंध समझना यहां प्राजापत्यके दिनोंकी कल्पनासे साठ ब्राह्मणोंको भोजन होता है और जो चतुर्विंशति मतमें कहा है कि बारह ब्राह्मणोंको जिमावै अथवा पावकेष्टि (वैश्वानर यज्ञ) अन्य कोई पावनी यज्ञ इन सबको बुद्धिमानोंने समान कहा है इस वचनसे प्राजापत्यके स्थानमें बारह ब्राह्मणोंका भोजन कहा है वह निर्धनके विषयमें है और जो वहांही चांद्रायणका प्रत्याम्नाय कहा है कि चांद्रायण मृगारेष्टि पवित्रेष्टि मित्रविंदा पशु तीन मासका कृच्छ्र करै, और नित्य नैमित्तिक और काम्यकर्मोंके और पशुबंध इष्टियोंके अभावमें चरु कहे हैं वहभी उसके लिये है जो चांद्रायण करनेमें असमर्थ हो और जो तीन मास कृच्छ्र करै इस

---

१ जन्मप्रभृति यत्किंचित्पातकं चोपपातकम्। तावदावर्तयेत्कृच्छ्रं यावत्षष्टिगुणं भवेत् ॥

२ ज्ञानात् कृच्छ्राब्दमुद्दिष्टमज्ञानादैन्दवद्वयम्।

३ यद्यप्यसकृदभ्यस्तं बुद्धिपूर्वमघं महत् ॥ तच्छुद्ध्यत्यब्दकृच्छ्रेण महतः पातकादृते ॥

१ कृच्छ्रे पंचातिकृच्छ्रे त्रिगुणमहरहस्त्रिंशदेवं तृतीये चत्वारिंशच्च तप्ते त्रिगुणितगुणिता विंशतिः स्यात्पराके। कृच्छ्रे सांतापनाख्ये भवति षडधिका विंशतिः सैव हीना द्वाभ्यां चांद्रायणे स्यात्तपसि कृशबलो भोजयेद्विप्रमुख्यान् ॥

२ विप्रा द्वादश वा भोज्याः पावकेष्टिस्तथैव च। अन्या वा पावनी काचित्समान्याहुर्मनीषिणः ॥

३ चांद्रायणं मृगारेष्टिः पवित्रेष्टिस्तथैव च ॥ मित्रविंदापशुश्चैव कृच्छ्रं मासत्रयं तथा ॥ नित्यनैमित्तिकानां च काम्यानां चैव कर्मणाम्। इष्टीनां पशुबंधानामभावे चरवः स्मृताः ॥

वचनसे आठ कृच्छ्र कहे हैं वहभी वृद्ध और मूर्खके विषयमें है। क्योंकि तीन कृच्छ्रोंसे चांद्रायणका फल मिलता है यह दिखा आये हैं। अब ग्रंथके प्रपंच (विस्तार) को समाप्त करते हैं और प्रकृतका अनुसरण करते हैं अर्थात् प्रकरणके विषयमें कहते हैं और अभ्युदयका अभिलाषी धर्म अर्थ कामकी इच्छासे उस चांद्रायणको करै और प्रायश्चित्तके लिये नहीं करै तो वह चंद्रसालोक्य रूप स्वर्ग विशेषको प्राप्त होता है, यह वर्ष दिनकी आवृत्तिके अभिप्रायसे है। क्योंकि गौतमकी यह स्मृति है कि एक चांद्रायणको करके पापसे रहित होकर सब पापोंको नष्ट करता है, दूसरेको करके दश पिछले और दश अगले पुरुषोंको और इक्कीसवें आत्माको और पंक्तिको पवित्र करता है और एक वर्षतक चांद्रायणको करके चंद्रमाके लोकको प्राप्त होता है ॥

भावार्थ-जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा उनकी शुद्धि चांद्रायणसे होती है और जो धर्मके लिये इस चांद्रायणको करता है वह चंद्रलोकको प्राप्त होता है ॥ ३२७ ॥

कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात् ॥
यथागुरुक्रतुफलंप्राप्नोतिसुसमाहितः ३२८॥

पद-कृच्छ्रकृत् १ धर्मकामः १ तुऽ-महतीम्२ श्रियम् २ आप्नुयात् क्रि-यथाऽ-गुरुक्रतुफलम् २ प्राप्नोति क्रि-सुसमाहितः १ ॥

योजना-धर्मकामः कृच्छ्रकृत् तथा महतीं श्रियम् आप्नुयात् यथा गुरुक्रतुफलं सुसमाहितः प्राप्नोति ॥

तात्पर्यार्थ-जो अभ्युदयका अभिलाषी धर्मके लिये प्राजापत्य आदिकृच्छ्रको करता है वह उस प्रकार राज्य आदि महती (बडी) लक्ष्मीको प्राप्त होता है जैसे राजसूय आदि बडी २ यज्ञोंको भली प्रकार सावधानीसे करनेसे उनका कर्ता स्वाराज्य आदि यज्ञोंके महान् फलको प्राप्त होता है, तैसेही यहभी यथार्थ संपूर्ण अंगोंसे युक्त करता हुआ प्राप्त होता है। इस प्रकार महिमाके प्रकाशनार्थ यज्ञका दृष्टांत दिया है । सुसमाहितः इस पदसे अविकल (यथार्थ) शास्त्रोक्तके करनेको कहता हुआ योगीश्वर अंगसे हीन काम्य कर्ममें फलकी असिद्धिको द्योतन करता है इससे यहां प्रायश्चित्तोंके विषयही जितने संभव हों उतने अंगोंका अनुष्ठान अंगीकार करना। इस प्रत्याम्नायका उपादान दूरोत्सारित हुआ (दूर फेंका गया) कृच्छ्र आदि अनुष्ठानोंकी आवृत्तिमें तो अधिकारीके फलकी आवृत्ति कर्मके आरंभसे[1] भावी होते हैं इस न्यायसे हो सकती ही है इससे वह विवक्षित नहीं ॥

भावार्थ-धर्मका अभिलाषी कृच्छ्र करता हुआ महती लक्ष्मीको उस प्रकार प्राप्त होता है जैसे भली प्रकार सावधानीसे करता हुआ मनुष्य गुरु (बडी २) यज्ञोंके फलको प्राप्त होता है ॥ ३२८ ॥

श्रुत्वैतानृषयोधर्मान्याज्ञवल्क्येनभाषितान् ।
इदमूचुर्महात्मानंयोगींद्रममितौजसम् ॥

पद-श्रुत्वाऽ-एतान् २ ऋषयः १ धर्मान् २ याज्ञवल्क्येन ३ भाषितान् २ इदम् २ ऊचुः क्रिऽ-महात्मानम् २ योगीन्द्रम् २ अमितौजसम् २ ॥

योजना-ऋषयः याज्ञवल्क्येन भाषितान् एतान् धर्मान् श्रुत्वा महात्मानम् अमितौजसं योगीन्द्रम् इदम् ऊचुः ॥

---

१ कृच्छ्रं मासत्रयं तथा ।

२ चांद्रायणं त्रिभिः कृच्छ्रैः ।

३ एकामात्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हंति द्वितीयमाप्त्वा दशपूर्वान्दशापरान् आत्मानं चैकं विंशं पांक्तिं च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतमाप्नोति ।

१ कर्मण्यारंभभाव्यत्वात् ।

तात्प० भावार्थ-इस ग्रंथमें वर्ण और आश्रमसे भिन्न छः प्रकारके धर्म कहे हैं उन संपूर्ण योगीश्वरके कहे धर्मोंको सुनकर आनन्दसे प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके ऐसे ऋषि महिमा और गुणवाले अचिंतनीयशक्ति जिसकी ऐसे योगीन्द्रके प्रति यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥६९९॥

यइदंधारयिष्यंतिधर्मशास्त्रमतंद्रिताः ॥
इहलोकेयशःप्राप्यतेयास्यंतित्रिविष्टपम् ॥

पद-ये १ इदम् २ धारयिष्यंति क्रि-धर्मशास्त्रम् २ अतन्द्रिताः १ इहऽ-लोके ७ यशः२ प्राप्यऽ-ते १ यास्यंति क्रि-त्रिविष्टपम् २ ॥

योजना-ये इदं धर्मशास्त्रम् अतन्द्रिताः धारयिष्यंति ते इह लोके यशः प्राप्य त्रिविष्टपं यास्यंति ॥

तात्पर्यार्थ-जो मनुष्य इस धर्मशास्त्रको आलस्य छोडकर धारण करेंगे अर्थात् पढेंगे वे इस लोकमें यशको प्राप्त होकर स्वर्गमें प्राप्त होंगे ॥ ३३० ॥

विद्यार्थीप्राप्नुयाद्विद्यांधनकामोधनंतथा ।
आयुष्कामस्तथैवायुःश्रीकामोमहतींश्रियं॥

पद-विद्यार्थी १ प्राप्नुयात् क्रि-विद्याम् २ धनकामः १ धनम् २ तथाऽ-आयुष्कामः १ तथाऽ-एवऽ-आयुः २ श्रीकामः १ महतीम्२ श्रियम् २ ॥

योजना-विद्यार्थी विद्यां तथा धनकामो धनम् आयुष्कामः आयुः श्रीकाम महतीं श्रियं प्राप्नुयात् ॥

ता० भा०-विद्याका अभिलाषी विद्याको, धनका कामी धनको और आयुका अभिलाषी आयुको और लक्ष्मीकी इच्छावाला महालक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥ ३३१ ॥

श्लोकत्रयमपिह्यस्माद्यःश्राद्धेश्रावयिष्यतिः ।
पितॄणांतस्यतृप्तिःस्यादक्षय्यानात्रसंशयः ॥

पद-श्लोकत्रयम् १ अपिऽ-हिऽ-अस्मात् ५ यः १ श्राद्धे ७ श्रावयिष्यति क्रि-पितॄणाम् ६ तस्य ६ तृप्तिः १ स्यात् क्रि-अक्षय्या १ नऽ-अत्रऽ-संशयः १ ॥

योजना-यः पुरुषः अस्मात् श्लोकत्रयं अपि श्राद्धे श्रावयिष्यति तस्य पितॄणाम् अक्षय्या तृप्तिः स्यात् अत्र संशयः नास्ति ॥

ता० भा०-जो मनुष्य इसके तीनभी श्लोक श्राद्धमें पितरोंको सुनाता है उसके पितर उन श्लोकोंके सुननेसे अक्षय तृप्तिको प्राप्त होते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ३३२ ॥

ब्राह्मणःपात्रतांयातिक्षत्रियोविजयीभवेत् ।
वैश्यश्चधान्यधनवानस्यशास्त्रस्यधारणात् ॥

पद-ब्राह्मणः १ पात्रताम् २ याति क्रि-क्षत्रियः १ विजयी १ भवेत् क्रि-वैश्यः १ चऽ-धान्यधनवान् १ अस्य ६ शास्त्रस्य ६ धारणात् ५ ॥

योजना-अस्य शास्त्रस्य धारणात् ब्राह्मणः पात्रतां याति क्षत्रियः विजयी च पुनः वैश्यः धान्यधनवान् भवेत् ॥

ता० भा०-इस शास्त्रके धारण करनेसे ब्राह्मण पात्रतासे, क्षत्रिय विजयसे और वैश्य धनधान्यसे युक्त होता है इस प्रकार इन प्रकट अर्थवाले श्लोकोंसे सामश्रवः आदि ऋषि अनेक प्रकार प्रार्थना करते भय ॥ ३३३ ॥

यइदंश्रावयेद्विद्वान्द्विजान्पर्वसुपर्वसु ॥
अश्वमेधफलंतस्यतद्भवाननुमन्यताम् ३३४॥

पद-यः १ इदम् २श्रावयेत् क्रि-विद्वान्१ द्विजान् २ पर्वसु ७ पर्वसु ७ अश्वमेधफलम् १ तस्य ६ तत् १ भवान् १ अनुमन्यतां क्रि- ॥

योजना-यः विद्वान् इदं शास्त्रं द्विजान् पर्वसु पर्वसु श्रावयेत् तस्य अश्वमेधफलं भवति तत् भवान् अनुमन्यताम् ॥

ता० भा०-जो विद्वान् इस धर्मशास्त्रको प्रतिपर्व ब्राह्मणोंको सुनावेगा उसको अश्वमेधका फल प्राप्त होगा इस वचनसे श्रवण करानेकी विधि कही । ऋषि कहते हैं कि

इस हमारे प्रार्थना किये अर्थमें आप अपनी संमति दो ॥ ३३४ ॥

श्रुत्वैतद्याज्ञवल्क्योपिप्रीतात्मामुनिभाषितं। एवमस्त्वितिहोवाचनमस्कृत्यस्वयंभुवे ॥

पद–श्रुत्वाऽ–एतत् २ याज्ञवल्क्यः १ अपिऽ–प्रीतात्मा १ मुनिभाषितम् २ एवम्ऽ–अस्तु क्रि–इतिऽ–हऽ–उवाच क्रि–नमस्कृत्यऽ–स्वयंभुवे ४ ॥

योजना–याज्ञवल्क्यः अपि एतत् मुनिभाषितम् श्रुत्वा प्रीतात्मा सन् स्वयंभुवे नमस्कृत्य एवम् अस्तु इति उवाच ॥

ता० भावार्थ–इस ऋषियोंके वचनको सुनकर योगीन्द्र याज्ञवल्क्य भी अपने रचे हुए धर्मशास्त्रकी धारणा आदिके फलकी प्रार्थनाके लिये अपने मुखकमलको मींचकर स्वयंभू ब्रह्माको नमस्कार करके तुम्हारी संपूर्ण प्रार्थना इसी प्रकार हो इस प्रकार कहते भये ॥ ३३५ ॥

इस अध्यायमें ये प्रकरण हैं कि, प्रथम तो शुतिकाप्रकरण, आपद्धर्म, वानप्रस्थ, अध्यात्मप्रायश्चित्त, कर्मविपाक, महापातक आदिके निमित्तोंकी गणना, आतिदेशिकसहित महापातक प्रायश्चित्त, उपपातक प्रायश्चित्त, प्रकीर्णक प्रायश्चित्त, पतितत्यागविधि, व्रतग्रहणविधि, रहस्यप्रायश्चित्ताधिकार और कृच्छ्र आदिके लक्षण इति प्रकरणानि ॥

उत्तमात्मेश्वरके शिष्य विज्ञानेश्वर योगीका किया यह धर्मशास्त्रका विवरण है १। याज्ञवल्क्यमुनिके रचे शास्त्रकी विवृत्ति (विवरण वा व्याख्या) और प्रमित अक्षरवाली भी होकर विपुल (अधिक) अर्थकी बोधक यह मेरी रची हुई मिताक्षरा किस विद्वान्के कानोंमें अमृतको न सींचेगी अपितु सबकेही श्रवणोंमें अमृतका सेचन करेगी २। गंभीर और प्रसन्न और अधिक अर्थकी बोधक और अल्पवाणियोंसे यह मिताक्षरा विवृत्ति रची है ३। क्षितितलमें कल्याणपुरके समान पुरी न हुई न हो और सूर्यरूप श्रीविक्रमके समान कोई क्षितिपति (राजा) हुआ नहीं और विज्ञानेश्वर पंडितभी अन्य पंडितोंके समान अन्य किसीको नहीं भजता तिससे ये तीनों कल्पपर्यंत स्थिर हों ४। संपूर्ण आश्चर्योंकी अवधि मधुर २ वाणियोंका वक्ता और अर्थि (याचक) योंकी प्रार्थनाके अनुसार धनोंका दाता और मुरके विजयी (श्रीकृष्ण) की मूर्तिका ध्याता और शरीरके संग जन्मे हुए (इंद्रियरूप) शत्रुओंका जेता, तत्त्वविज्ञाननाथ सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति पर्यंत जीवो ५। रघुकुलतिलक श्रीरामचंद्रकी कीर्तिके राशि सेतुबंधरामेश्वरपर्यंत और शैलराज (हिमालय) पर्यंत और बडे २ चंचल मत्स्योंके उछलनेसे फैली हैं तरंगें जिसकी ऐसे पश्चिमके समुद्र पर्यंत और पूर्वके समुद्र पर्यंत नम्र हुए राजाओंके शिरोंके रत्नोंकी कांतियोंसे प्रकाशमान हैं चरण जिसके ऐसा विक्रमादित्य देव इस संपूर्ण जगत्की रक्षा करैं ६। यदि इन्द्रिय अंतर्मुख (वशमें) हैं तो तप क्या वस्तु है अर्थात् निष्फल है, यदि इंद्रिय अंतर्मुख नहीं हैं तो तप क्या कर सकता है, और यदि हरि अन्तःकरणमें और बाहिर है तो तप क्या वस्तु है, और यदि हरि अंतःकरणमें और बाहिर नहीं है तो तप क्या कर सकता है ७ ॥

इति श्रीमद्विज्ञवरपंडितहरिसहायांगजपाण्डितरामरक्षात्मजपं०-मिहिरचन्द्रशास्त्रिकृतायां श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजश्रेष्ठिकारितामिताक्षराप्रकाशाऽपरनामदीपिकायां प्रायश्चित्ताध्यायस्तृतीयः संपूर्णः ।

संपूर्णश्चायं ग्रन्थः ।

समर्पण ।

खबाणनन्देन्दुमिताख्यवत्सरे नभस्य मासस्य सिते समापिता । ग्राह्या बुधैः वह्नि-
कुजे नृणां गिरा मिताक्षरा गूढतमार्थदीपिका ॥१॥ श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजगुप्तैरितैः
श्रीमिहिरादिचंद्रैः ॥ नृणां गिरा दीपयती पदार्थान् स्थेयाच्चिरं विज्वरणप्रसादात् ॥२॥
मायापुर्या दक्षिणे दिङ्नितम्बे पूर्लाखेति श्यामलीपूर्वभागे॥ तत्राभूद्यो रामरक्षाभिधान-
स्तत्पुत्रोहं पुष्पवन्ताभिधेयः॥ ३ ॥ श्रीमद्राजारामशास्त्रिप्रसादात् तेनाप्तं यद्धर्मशा-
स्त्रस्य तत्त्वम् ॥ तत्सर्वं मे नुर्गिरा विस्तृतं स्याद्भक्त्येत्यस्यां दीपिकायां निबद्धम् ॥ ४ ॥
मन्दाः किन्न वसन्ति भूमिपटले विज्ञा न सर्वे यतो ज्ञात्वा मन्दमतेः कृतिर्बुधविशारदैः
जनैर्ग्राह्येति तानर्थये ॥ नेयं विज्ञकृते मयाऽकृत बुधा भाषाविदां प्रीतिदा अस्त्वेतन्मनसा
भवतां पत्कञ्जयोरर्प्यते ॥ ५ ॥

इति शम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.